

॥ भाविष्य ॥ महापुराणम् ॥

(द्वितीय खण्ड)

अनुवादक
पण्डित बाबूराम उपाध्याय



हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

ऋग्वेदसंहिता

(द्वितीय खण्ड)

मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व

(हिन्दी—अनुवाद सहित)

अनुवादक :

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

शक १९२८ : सन् २००६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशक

प्रभात निश्च शास्त्री

प्रधानमन्त्री

हिन्दी सःहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद - ३

प्रकाशन वर्ष

शाक १९२८ : सन् २००६

संस्करण

द्वितीय

प्रति

२२००

स्वत्वाधिकार

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

मृत्यु

तीन सौ पचास रुपये मात्र

महाक एवं

फोटो कम्पोजिंग

मनोज आफसेट

२५५. चक. जीरोरोड. इलाहाबाद

आवरण—सज्जा

कृष्णकुमार मित्तल

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रवर्तित पुराण-प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत पुराण माहित्य के संवर्धन हेतु राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी के आकौश्चानुरूप अब तक ब्रह्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, अभिपुराण, बृहन्नारदीयपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, मार्कण्डेयपुराण तथा मन्दुपुराणान्तर्गत केदारखण्ड का मूलपाठ सहित हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। जिसका समादर सुधीजनों द्वारा व्यापक स्तर पर हुआ है। फलस्वरूप सम्मेलन को अनेक पुराणों का द्वितीय संस्करण प्रकाशित कराना पड़ा।

सुधी पाठकों की पिपासा को शान्त करने तथा अपनी गौरवशाली पुराण-प्रकाशन-योजना को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु सम्मेलन ने २६, ३०६ श्लोक वाले भविष्यमहापुराण के प्रकाशन का गुरुत्तर कार्य अपने हाथ में लिया, जिसका प्रथम खण्ड “ब्राह्मपर्व” आपके सम्मुख पूर्व में प्रस्तुत हो चुका है और द्वितीय खण्ड मध्यमपर्व एवं प्रतिसर्गपर्व प्रस्तुत किया जा रहा है। सम्पूर्ण भविष्यमहापुराण का अनुवाद राजर्षि टण्डन जी ने श्री बाबूराम उपाध्याय से स्वयं कराया था। परन्तु दुर्योग से उन दोनों के जीवनकाल में इसका प्रकाशन न हो सका। आज इसे प्रकाशित हो जाने से उन दोनों की आत्मा को शान्ति मिलेगी, ऐसा विश्वास है।

‘भविष्यमहापुराण’ को प्रकाशन की दृष्टि से कुल तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। जबकि यह पुराण चार पर्वों में निबद्ध है। (१) ब्राह्मपर्व (२) मध्यमपर्व (३) प्रतिसर्गपर्व (४) उत्तरपर्व।

भविष्यपुराण के मध्यमपर्व एवं प्रतिसर्गपर्व में ८९५६ श्लोक हैं। मध्यमपर्व तीन भागों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ८९८, १४७१ और ५७१ श्लोक हैं। इस पर्व में सृष्टिवर्णन, यज्ञादिविद्यान तथा जलाशयादि वाटिकोपवनप्रतिष्ठाविद्यान के साथ ग्रहोपद्रवोत्पातशान्ति का विस्तृत विधान वर्णित है। प्रतिसर्गपर्व चार खण्डों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ४०६, ११८, २३९० तथा २१०२ श्लोक हैं। इस पर्व में सर्वांशतः कलियुगीयेतिहाससमुच्चय के अन्तर्गत सत्युग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग के राजाओं एवं विशिष्ट महापुरुषों के जीवन-वृत्त वर्णित हैं।

इस पुराण की पाण्डुलिपि एवं प्रथमखण्ड की विस्तृत भूमिका उपलब्ध कराने के लिए गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्राध्यापक डॉ० रामजी तिवारी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

ग्रन्थ के सुषुप्त सम्पादन हेतु पण्डित रुद्रप्रसाद मिश्र, श्री शेषमणि पाण्डेय तथा डॉ० शेषनारायण शुक्ल के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

आकर्षक आवरण एवं मुद्रण तथा अत्य-समय में ग्रन्थ-उपलब्ध कराने हेतु इलाहाबाद ब्लाक वर्कर्स प्रा० लि० एवं मनोज आफसेट के व्यवस्थापकों श्री कृष्णकुमार मित्तल एवं श्री मनोज मित्तल के प्रति आभारी हूँ।

मुझे आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमहापुराण के इस ‘मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व’ का द्वितीय संस्करण सुधीजनों द्वारा समादृत होगा तथा जनकत्याणकारी एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

मकरसंक्रान्ति

संवत् २०६२

विभूति मिश्र

विषय-अनुक्रमणिका

मध्यमपर्व - प्रथम भाग

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१.	पाताल वर्णन	३९	१
२.	सृष्टि का वर्णन	२७	४
३.	पाताल वर्णन	२६	६
४.	ज्योतिश्चक्र का वर्णन	४४	९
५.	कर्मानुसार व्यक्तिगतिर्थारण का वर्णन	९२	१२
६.	गुरु का वर्णन	२६	२०
७.	गुरु-वर्णन	१२५	२२
८.	अंक माहात्म्य का वर्णन	४६	३२
९.	पूर्तनिर्णय का वर्णन	९०	३६
१०.	पूर्त का वर्णन	९०	४४
११.	तन्त्रात्मक प्रतिष्ठा का वर्णन	१०	५१
१२.	प्रतिगा-लक्षण का वर्णन	२८	५२
१३.	कुण्डनिर्माण-विधि का वर्णन	४१	५५
१४.	यज्ञ-मान-विधान का वर्णन	२१	५८
१५.	कुण्डों का संस्कार-वर्णन	३५	६०
१६.	यज्ञात्म में पूजा-विधि का वर्णन	२४	६३
१७.	यज्ञों के भेद का निरूपण	१६	६५
१८.	हवन-द्रव्यों का कथन	२३	६७
१९.	सुवदर्वी निर्णय-वर्णन	१८	६९
२०.	पूर्णविधि-वर्णन	४३	७०
२१.	मण्डलविधि का वर्णन	३४	७४

मध्यमपर्व - द्वितीय भाग

१.	मण्डल देवरचना-वर्णन	२१	७७
२.	क्रौञ्च के मान का वर्णन	११०	७९
३.	मूल्यकथन का वर्णन	४०	८७
४.	मूल्यदान का वर्णन	४५	९१
५.	कलशनिर्णय का वर्णन	२६	९४

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
६.	मासों का वर्णन	५६	९७
७.	तिथि-विधान-वर्णन	५९	१०१
८.	उत्तम तिथियों के निर्णय का वर्णन	१३७	१०७
९.	प्रवर विचार का वर्णन	२३	११८
१०.	जास्तुयाग का वर्णन	११२	११९
११.	पूजाक्रम का वर्णन	१६३	१२६
१२.	अर्धदानविधि का वर्णन	३१	१४१
१३.	अग्निहोत्र विधान का वर्णन	८४	१४४
१४.	यज्ञविधान का वर्णन	२१	१६०
१५.	देवतास के ध्यान का वर्णन	९	१५२
१६.	देवध्यान का वर्णन	३१	१५३
१७.	देवध्यान का वर्णन	४८	१५६
१८.	योगस्थापन एवं देव प्रतिष्ठापन का वर्णन	१९	१६०
१९.	देवग्रह पूजन विधान का वर्णन	२९७	१६२
२०.	मध्यमविधान का वर्णन	१३९	१८६

मध्यमपर्व - तृतीय भाग

१.	उपवन आदि के प्रतिष्ठा का वर्णन	५०	१९६
२.	गो प्रचार के वैशिष्ट्य का वर्णन	७४	२००
३.	लघु उपवन की प्रतिष्ठा का वर्णन	१०	२०६
४.	लघु उपवनप्रतिष्ठा का वर्णन	३६	२०७
५.	सरोवरादिप्रतिष्ठा विधान का वर्णन	३३	२१०
६.	लभु उपवनप्रतिष्ठा-विधान का वर्णन	७	२१३
७.	श्रेष्ठ वृक्षप्रतिष्ठा-विधान-वर्णन	५	२१४
८.	पिप्लप्रतिष्ठाविधान का वर्णन	१३	२१४
९.	वटप्रतिष्ठाविधान का वर्णन	४	२१६
१०.	विल्वप्रतिष्ठाविधान का वर्णन	२०	२१६
११.	सद्वृक्षप्रतिष्ठा-विधान का वर्णन	४	२१८
१२.	मण्डपप्रतिष्ठा-विधान का वर्णन	१५	२१९
१३.	महायूप के निर्माण एवं प्रतिष्ठा का वर्णन	१७	२२०
१४.	पुष्पवाटिका प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन	६	२२२
१५.	तुलसीप्रतिष्ठा-विधान का वर्णन	१८	२२३

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१६.	प्रतिष्ठा-विशेष विद्याननियम का वर्णन	२३	२२४
१७.	गो-प्रचारविधि का वर्णन	१८	२२६
१८.	एक दिन में साध्य-प्रतिष्ठा-विद्यान का वर्णन	१०	२२८
१९.	देवी आदि को प्रतिष्ठा का वर्णन	२९	२२९
२०.	ग्रहोपद्रवोत्पात शान्ति का वर्णन	१७९	२३१

प्रतिसर्गपर्व - प्रथम खण्ड

१.	सत्ययुग के राजाओं का वर्णन	६१	२४९
२.	त्रेतायुग के राजाओं का वर्णन	७२	२५४
३.	द्वापर के राजाओं का वर्णन	९७	२५८
४.	द्वापर के राजाओं का वर्णन	६०	२६५
५.	कलियुग के राजाओं का वर्णन	४१	२७०
६.	कलियुग के राजाओं का वर्णन	४९	२७३
७.	शशिवंश के राजाओं का वर्णन	२६	२७७

प्रतिसर्गपर्व - द्वितीय खण्ड

१.	कलियुग के इतिहाससमुच्चय का वर्णन	६५	२८०
२.	कलियुग के इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३७	२८५
३.	कलियुग के भूपाल्यानेतिहाससमुच्चय का वर्णन	२५	२८८
४.	कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन	६४	२९१
५.	कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन	३४	२९६
६.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	२८	२९९
७.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१८	३०१
८.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३०	३०३
९.	कलियुग के इतिहाससमुच्चय का वर्णन	२८	३०६
१०.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३३	३०८
११.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३४	३११
१२.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१९	३१४
१३.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	४३	३१६
१४.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	४८	३१९
१५.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	४४	३२३
१६.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३०	३२७

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१७.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	२०	३२९
१८.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३६	३३१
१९.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१५	३३४
२०.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१६	३३६
२१.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	२०	३३७
२२.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३८	३३९
२३.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१८	३४३
२४.	श्रीसत्यनारायणन्रतमाहात्म्य का वर्णन	३८	३४४
२५.	श्रीसत्यनारायणन्रतमाहात्म्य का वर्णन	४४	३४८
२६.	श्रीसत्यनारायणन्रतमाहात्म्य का वर्णन	२२	३५२
२७.	श्रीसत्यनारायणन्रतमाहात्म्य का वर्णन	२८	३५४
२८.	श्रीसत्यनारायणन्रतमाहात्म्य का वर्णन	४८	३५६
२९.	श्रीसत्यनारायणन्रतमाहात्म्य का वर्णन	७०	३६०
३०.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३३	३६७
३१.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१५	३७०
३२.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	२२	३७१
३३.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	२५	३७३
३४.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१४	३७६
३५.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१६	३७७

प्रतिसर्गपर्व - तृतीय खण्ड

१.	विक्रमाख्यानकाल का वर्णन	३४	३७९
२.	शालिवाहनकाल का वर्णन	३४	३८२
३.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३२	३८५
४.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३१	३८७
५.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३८	३९०
६.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	६३	३९३
७.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	४१	३९८
८.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३२	४०१
९.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	४९	४०४
१०.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	६२	४०८
११.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	६१	४१३
१२.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१३९	४१८

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१३.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१२८	४३०
१४.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१८	४४१
१५.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१२	४४३
१६.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	७४	४४४
१७.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	६९	४५१
१८.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	२९	४५७
१९.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	५८	४६०
२०.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	५३	४६५
२१.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१०५	४७०
२२.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	७०	४७९
२३.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१४०	४८१
२४.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१०६	४९७
२५.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	६१	५०५
२६.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१०६	५१०
२७.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	७९	५१९
२८.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	८०	५२६
२९.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	५९	५३३
३०.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	९४	५३८
३१.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१८६	५४६
३२.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	२४७	५६२

प्रतिसर्गपर्व - चतुर्थ खण्ड

१.	प्रमरवंश का वर्णन	४६	५८४
२.	प्रमरवंश का वर्णन	२८	५८८
३.	प्रमरवंश का वर्णन	७९	५९०
४.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	४०	५९६
५.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	३४	५९९
६.	प्रमरवंश का वर्णन	६५	६०२
७.	रामानन्द तथा निर्भार्क के उत्पत्ति का वर्णन	८५	६०८
८.	माध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणी- भूषणभट्टोजिदीक्षितवराहमिहिराचार्य की उत्पत्ति का वर्णन	१२५	६१५

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
९.	धन्वत्तरिसुभुदजयदेव समुत्पत्ति का वर्णन	६६	६२६
१०.	कृष्णचैतन्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्ति का वर्णन	८१	६३२
११.	आनन्दगिरि वनशर्मा और पुरीशर्मा की उत्पत्ति का वर्णन	७१	६३९
१२.	भारतीश, गोरखनाथ, क्षेत्रशर्मा और दुष्टिराज की उत्पत्ति का वर्णन	१०४	६४५
१३.	अघोरपंथिभैरव हनुमज्जन्म और बालशर्मा की उत्पत्ति का वर्णन	५३	६५४
१४.	स्क्रमाहात्म्य का वर्णन	११९	६५९
१५.	वसुभाहात्म्य में त्रिलोचनवैश्योत्पत्ति का वर्णन	७३	६६८
१६.	रङ्गण वैश्योत्पत्ति का वर्णन	८१	६७४
१७.	कबीरनरसमुत्पत्ति का वर्णन	८८	६८१
१८.	सधनरैदास समुत्पत्ति का वर्णन	५६	६८८
१९.	विष्णुस्वामी मध्वाचार्य का वर्णन	६६	६९३
२०.	जगल्लाथमाहात्म्य का वर्णन	९१	६९९
२१.	कृष्णचैतन्य का वर्णन	८०	७०७
२२.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	९७	७१३
२३.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	१३२	७२०
२४.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	८१	७३०
२५.	कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन	२२३	७३७
२६.	कलियुगीयेतिहाससमुच्चय-वर्णन	३८	७५४

★ ★

भविष्यपुराणम् - मध्यमपर्व

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ मध्यमपर्वणि प्रथमभागे प्रथमोऽध्यायः पातलवर्णनम्

ॐ नमः कमलदलनयनाभिराजाय श्रीरामचन्द्राय ।

स्त्रव्छं चन्द्रवदातं कदिकरमकरक्षोभसञ्जातफेनं ब्रह्मोद्भूतिप्रसूकैर्कृतनेयमपरैः सेवितं विप्रमुखैः ।
उङ्कारालङ्कृतेन त्रिभुवनगुरुरुणालहृष्णा दृष्टपूतं सम्भोगभोगगम्यं जनकलुप्तगः पौष्ट्रकं वः पुनातु ॥१
जयति भुवनदीपे भास्करो लोककर्ता जयति च शितिदेहः शार्दूधन्वा मुरारिः ॥
जयति च शशिमौली रुद्रनामाभिधेयो जयति सकलमौलिशर्विमांश्चित्रभातुः ॥२
नमस्कृत्याप्रमेयाय देवायै ब्रह्मरूपिणे । पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयोगिना ॥३
पुराणसंहितां पुण्यां पत्रच्छूरोमहर्षणिम् । वक्तुमर्हसि चास्त्राकं पुराणार्थविशारद ॥४
मुनीनां श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः । प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम् ॥५

सूत उवाच

नमस्कृत्य जगद्योनिं ब्रह्मरूपधरं हरिम् । वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥६
दच्छृत्वा पापकर्मणिैः स गच्छेत्परमां गतिम् । पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः ॥७

अध्याय १ पातालवर्णन

पुष्टकर का वह जल तुम्हें पदित्रात्मा, बनाये, जो स्वच्छ, चन्द्र की भाँति विशुद्ध, कवि (ब्रह्मा) के हाथ रूपी मकर के क्षुब्ध होने पर जिसमें फेन उत्पन्न हुआ है, ब्रह्मोत्पत्ति के प्रवचन एवं व्रत-नियम के एकमात्र पालन करने वाले मुख्य ब्राह्मणगण द्वारा सुसेवित, औंकार से विभूषित तथा तीनों लोकों के गुरु ब्रह्मा की आँखों द्वारा (देखने से) पवित्र, अमीर गरीबों सभी के लिए प्राप्य एवं मनुष्यों के पापनाशक हैं । दीपक की भाँति भुवनों को प्रकाशित करने वाले एवं लोकों के रचयिता भास्कर की जय हो, शुक्ल वर्ण, तथा हाथ में धनुष लिए हुए मुरारि भगवान् की जय हो, भात में चन्द्र को रखने वाले रुद्रदेव की जय हो, एवं समस्त संसार के शिरोमणि और किरण वाले चित्रभातु (सूर्य) की जय हो । १-२। अप्रमेय एवं ब्रह्मरूप उस देव को नमस्कार करके मैं उस पुराण के विषय को, जिसे ब्रह्मयोगी व्यास ने बताया है, बता रहा हूँ । ३। (महर्षियों ने) रोमहर्षण (सूत) से पूँछा कि हे पुराणार्थ विशारद (पुराण के अर्थों की विशदव्याख्या करने वाले) ! हमें उस परम पवित्र पुराण की संहिता को सुनाने की कृपा कीजिए । ४। प्रधान पौराणिक सूत जी ने मुनियों की बातें सुनकर अपने गुरु व्यास को मानसिक प्रणाम करके उन लोगों से कहा । ५

सूत बोले—जगत् को उत्पन्न करने वाले एवं ब्रह्मरूप धारण करने वाले विष्णु को नमस्कार करके मैं दिव्य तथा पापनाशिनी उन पुराण की कथाओं को सुना रहा हूँ, जिसे सुनकर समस्त पाप-कर्मों की

१. भक्ताय । २. अतिहायेति शेषः ।

भविष्यपुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः । मध्यपर्व इथो बक्ष्ये प्रतिष्ठादिविनिर्णयम् ॥८
 धर्मप्रशंसनं चात्र ब्राह्मणादिप्रशंसनम् । आपद्वर्मस्य कथनं दिव्यामाहात्म्यवर्धनम् ॥९
 प्रतिमाकरणं चैव स्थापनाचित्रलक्षणम् । कालव्यवस्थात्तर्गादिप्रतिसर्गादिलक्षणम् ॥१०
 पुराणलक्षणं चैव भूगोलस्य च निर्णयम् । निरूपणं तिथीना च श्राद्धसङ्कल्पमन्तरम् ॥११
 मुसूर्धेऽपि यत्कर्म दानशःहात्म्यभेद च । मूतं भव्यं भविलां च युगाधर्माद्युशासनम् ॥१२
 उच्चावचावधानं च पायश्चित्तादिकं च यत् । षष्ठ्याधिकाष्टसाहस्रनदश्लोकशतोद्भवम् ॥१३
 पञ्चतन्त्रसामायुक्तं प्रतितंत्रे च विशेषाः । पञ्चोत्तरं तथाध्यात्माः पुराणेऽस्मद्विजोत्तमाः ॥१४
 ऋयःणामाश्रमाणां च गृहस्थो योनिरुच्यते । अन्येऽपि सूपजीवन्ति तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥१५
 एकाब्रम्मं गृहस्थस्य त्रयाणां सूतिदर्शनम्^१ । तस्मादगार्हस्थ्यमेवैकं विजेयं धर्मशासनम् ॥१६
 परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ । सर्वलोकविरुद्धं च धर्मसप्याचरन्न तु ॥१७
 तडागस्य च साक्षिध्ये तडागं परिवर्जयेत् । प्रपास्याने प्रपा वज्या भठस्थत्वे मठं त्यजेत् ॥१८
 धर्मात्सङ्गजायते हृथो धर्मात्कामोऽभिजायते । धर्मदिवत्तवर्गोऽयं तस्माद्वर्मं समाश्रयेत् ॥१९
 धर्मशार्थश्च कानश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मतः । सत्त्वं रजस्तमश्वेति तस्माद्वर्मं समाश्रयेत् ॥२०

शान्ति, और उत्तम गति की प्राप्ति होती है। ब्राह्मणगण ! उस पुण्य, पवित्र, एवं आयुप्रदायक भविष्य-पुराण की समस्त बातों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! जिसे गदाधर भगवान् ने स्वयं बताया है, इस पर्व का नाम मध्यम पर्व होगा इसमें प्रतिष्ठा आदि के निर्णय, धर्म की प्रशंसा, ब्राह्मणों की प्रशंसा आपत्ति काल के धर्म-स्वरूप, विद्या के माहात्म्य, प्रतिमाओं के निर्माण, उनकी स्थापना एवं चित्र (आश्चर्य) जनक लक्षण, काल की व्यवस्थाएँ सर्ग (सृष्टि) प्रतिसर्गादि के लक्षण, पुराणों के लक्षण, पृथ्वी के गोलाकार होने का निर्णय, तिथियों के निर्णय, श्राद्धों के संकल्प आदि बताये गये हैं। उसी भाँति मरणासन्न प्राणियों के कर्म, दान-माहात्म्य एवं युगधर्म के भूत, वर्तमान, तथा भविष्य अनुशासन की व्याख्या की गई है। तथा प्रायश्चित्तों के विषय में ऊँची-नीची (छोटी-बड़ी) व्यस्थाएँ भी। इस पर्व में आठ सहस्र नव सौ साठ श्लोक हैं, और पाँच तंत्र। द्विजोत्तम ! प्रत्येक तंत्र में पचीस अध्याय किये गये हैं। १६-१४। तीनों आश्रमों का उत्पत्ति स्थान एकमात्र गृहस्थ आश्रम बताया गया है, क्योंकि वह अन्य को भी जीवन प्रदान करता है, इसलिए गृहाश्रम सर्वप्रधान है। १५। एक मात्र गृहस्थाश्रम ही तीनों आश्रमों का दृष्ट प्रसव स्थान है, अतः धार्मिक शासन से आबद्ध एकमात्र गृहस्थ धर्म की जानकारी प्राप्त करना परमावश्यक है। १६। धर्म रहित अर्थ और काम के भी परित्याग करने चाहिए, तथा समस्त लोगों के विरुद्ध धर्म के भी। १७। तालाब के समीप तालाब, प्रपा (पियाऊ) के समीप पियाऊ और मठ के समीप मठ (मन्दिर) न बनाने चाहिए। धर्म द्वारा अर्थ, काम की उत्पत्ति होती ही है, मोक्ष की भी प्राप्ति होती है, इसलिए धर्मचिरण करना परमावश्यक होता है। १८-१९। धर्म, अर्थ, एवं काम को त्रिवर्ग कहा जाता है। एवं सत्त्व, रज, तथा तम इन त्रिगुणों की उपलिख्य भी धर्म द्वारा ही बतायी गयी है, अतः धर्म का सेवन करना, अत्युत्तम बताया

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः । जघन्युगुजदृत्तिस्था अधोऽगच्छन्ति तामसाः ॥२१
 यस्मिन्धर्मः समायुक्तो हृष्टकामौ व्यवस्थितौ । इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते ॥२२
 तस्मादर्थं च कामं च युक्त्वा धर्मं समाश्रयेत् । धर्मात्सञ्जायते कामो धर्मादर्थोऽभिज्ञायते ॥२३
 एवं धर्मस्य मध्येऽयं चतुर्वर्गः प्रदर्शितः । एवं च धर्मकामार्थं मोक्षस्थापि च मानवः ॥
 माहात्म्यं वानुतिष्ठेच्च स चानन्त्याय कल्पते ॥२४
 तस्मादर्थं च कामं च मुक्त्वा धर्मं समाचरेत् । धर्मात्सञ्जायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिनः ॥२५
 धर्मेण धार्यते सर्वं जगत्स्थावरजडगःस्मृ । अनादिनिधना शक्तिनैषा ब्राह्मी द्विजोत्तम ॥२६
 कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न संशयः । तस्माज्ञानेन सहितं रूपयोगं समाचरेत् ॥२७
 प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म वैदिकम् । ज्ञानपूर्वा निवृत्तिः स्यात्प्रवृत्तिवर्ततेऽन्यथा ॥२८
 निवृत्तिं सेवमानस्तु याति तत्परमं पदम् । तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यथा संस्तरेत्युनः ॥२९
 शम्भो इमो दया दानमलोभस्त्याग एव च । आर्जवं चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ॥३०
 सत्यं संतोष आस्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रहः । देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥३१
 अहिंसा सत्यवादित्वमपैशुन्यं सुकल्पता । शौचाचारश्चानुकम्पा सर्ववर्णेऽब्रवीन्मुनिः ॥३२
 श्रद्धापूर्वा: स्मृता धर्मा: श्रद्धामध्ये तु संस्थिताः । श्रद्धानिष्ठा: प्रतिष्ठाश्च धर्मा: श्रद्धैव कीर्तिताः ॥३३

गया है । २०। सात्त्विक गुण प्रधान प्राणी ऊर्ध्व (स्वर्ग) में प्रधान रजोगुणी मध्य (मर्त्य) लोक में, तथा निदित कर्मों के करने वाले प्रधान तमोगुणी प्राणी अधीलोक (पाताल) में निवारा करते हैं । २१। जिस प्राणी के अर्थ एवं काम धार्मिक होते हैं, वे इस लोक में सुखानुभव प्राप्त कर अंत में अनन्त भगवान् में लीन हो जाते हैं । २२। इसलिए धार्मिक अर्थ एवं काम की चेष्टा करनी चाहिए, क्योंकि धर्म द्वारा ही काम तथा अर्थ की उत्पत्ति बतायी गयी है । २३। इस भाँति धर्म के मध्य में चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष) का सन्निहित होना बताया गया है । मनुष्य इस प्रकार धर्म, अर्थ, एवं काम के आचरण करता हुआ यदि मोक्ष के महत्व का अनुशीलन ही करता है, तो उसे अनन्त भगवान् की प्राप्ति होती है । २४। इसलिए अर्थ तथा काम के परित्याग करके भी धर्माचरण अवश्य करे, क्योंकि ब्रह्मवादियों ने बताया है कि धर्म द्वारा सभी कुछ की प्राप्ति होती है । २५। द्विजोत्तम ! स्थावर-जंगम स्वरूप समस्त जगत् धर्माश्रित होकर ही रिष्ट है न कि ब्रह्म की अनादि शक्तिं इसे धारण करती है । २६। ज्ञान समेत कर्म द्वारा धर्म की प्राप्ति होती है, इसमें सदेह नहीं । अतः ज्ञानपूर्वक कर्मों को प्रारम्भ करना चाहिए । २७। प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो प्रकार के वैदिक कर्म बताये गये हैं उसमें ज्ञान-पूर्वक कर्मों के आचरण द्वारा प्राणियों की निवृत्ति और उससे हीन कर्मों द्वारा प्रवृत्ति होती है, ऐसा बताया गया है । २८। निवृत्ति करने वाले कर्मों के आचरण द्वारा उसे उत्तम पद की प्राप्ति होती है, इसलिए सदैव निवृत्यर्थ कर्म का ही आचरण करना चाहिए, अन्यथा संसार (जन्म-मरण) का त्याग होना असम्भव है । २९। शमन, दमन, दया, दान, निर्लोभ, त्याग, आर्जव, निद्रा, तीर्थयात्रा, सत्य, संतोष, आस्तिक होना, श्रद्धा, इन्द्रिय संयम, देवताओं की अर्चा, विशेषकर ब्राह्मणों की, अहिंसा, सत्यवादी होना, चुगुली न करना, सुन्दर कल्पनायें करना, पवित्रता, आचारकर्म, एवं कृपा करना सभी वर्णों के लिए मुनि ने बताया है । ३०-३२। धर्म में श्रद्धा नियुक्त हैं, श्रद्धा के मध्य में धर्म स्थित हैं, एवं श्रद्धानिष्ठ तथा उसी में प्रतिष्ठित धर्म ही श्रद्धा के रूप में बताया

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां श्रुतं स्थानं क्रियावताम् । स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां सङ्ग्रामेष्वपलायिनाम् ॥३४
 वैश्यानामसृतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्तताम् । गान्धर्वशूद्रजीवानां^१ परिचारेण वर्तताम् ॥३५
 अष्टाशीति सहस्राणां मुनीनामूद्वरेतसाम् । सृतं स्थानं तु यत्स्थानं तदेव गुरुदासिनाम् ॥३६
 उपर्णिणां तु यत्स्थानं श्रुतं तद्वै वनौकसाम् । प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयंभुवा ॥३७
 यतीनां यतचित्तानां तदेव वनदासिनाम् । हिरण्यगर्भं यत्स्थानं तस्मान्नावर्तते पुनः ॥३८
 योगिनामसृतं स्थानं व्योमाख्यं परमाकरन् । आनन्दमैश्वरं नाम सा काषा परमा गतिः ॥३९
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे नध्यमर्पणे प्रथमभागे प्रथमोऽध्यायः । १

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सृष्टिवर्णनम्

सूत उवाच

इदानीं विस्तरं चैव विभागं रूपमैश्वरम् । वक्ष्ये कल्पानुसारेण मन्वन्तरशतानुगम् ॥१
 आसीत्तमोमयं सर्वमप्नातमलक्षणम् । तत्र चैको महानासीदुद्रः परमकारणम् ॥२
 आत्मना स्वयमात्मानं सञ्चित्य भगवान्विभुः । मनः संसृजते पूर्वमहड्कारं च पृष्ठतः ॥३

गया है। क्रियाशील ब्राह्मणों के लिए प्रजापति के स्थान, युद्धस्थल से पलायन न करने वाले क्षत्रियों के लिए इन्द्र के स्थान, अपने धर्म के आचरण करने वाले वैश्यों के लिए अमृत स्थान, और सेवा कर्म करने वाले शूद्रों के लिए गन्धर्व के स्थान की प्राप्ति बतायी गयी है । ३३-३५। ऊर्ध्वरेता बालखिल्यरूप मुनियों के जो अट्ठासी सहस्र की संख्या में वर्तमान रहते हैं, जो स्थान बताये गये हैं, वही स्थान गुरुगृहनिवासियों के भी हैं। सप्तर्णियों के स्थान तपस्वियों के लिए भी नियत हैं और गृहस्थों के लिए प्राजापत्य स्थान स्वयं ब्रह्मा ने बताया है। योगियों का हिरण्यगर्भ नामक स्थान, जहाँ पहुँचकर पुनः लौटा नहीं जाता है, योगाभ्यास करने वालों के लिए भी कहा गया है। योगियों के लिए व्योम नामक परमोत्तम स्थान बताया गया है, जिसे ईश्वरानंद भी कहते हैं, तथा वही अन्तिम सीमा भी हैं । ३६-३९

श्री भविष्यपुराण में मध्यमर्पण के प्रथम भाग में प्रथम अध्याय समाप्त । १।

अध्याय २

सृष्टि का वर्णन

सूत बोले—ईश्वर के रूप के विभाग एवं विस्तार बता रहा हूँ, जिसमें कल्प के अनुसार सैकड़ों मन्वन्तर जन्म ग्रहण करते हैं। १। एक तमोमय स्वरूप था, जो समस्त लोक को आच्छान्न किये था, जिसका कोई लक्षण बताया नहीं जा सकता। किन्तु इसके मूल कारण ‘रुद्र’ परम एवं महान् कारण बताये जाते हैं। २। विभु (व्यापक) भगवान् स्वयं अपना चिन्तन करके सर्वप्रथम मन की सृष्टि करते हैं, पश्चात्

१. शुभ्रजीवानाम् ।

अहङ्कारात्प्रजानाति महाभूतानि पञ्च च । अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तः विकाराश्वैव षोडश ॥४
 शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च । प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च ॥५
 सत्त्वं रजस्तमैव गुणाः प्रोक्तास्तु ते त्रयः । तस्माद्ब्रागवतो ब्रह्मा तस्माद्विष्णुरजायत ॥६
 ब्रह्मविष्णुमेहनार्थं ततः शम्भुस्तु तेजसा । अशरीरे वासुदेवो हनुत्पत्तिरदोनिजः ॥७
 व्यामोहृष्यित्वा तत्सर्वं तेजसाऽमैत्यज्जगत् । तस्मात्पत्तरं जास्ति तस्मात्पत्तरं न हि ॥८
 ब्रह्मा विष्णुश्च द्वावेतावुद्भूतैः भगवत्सुतौ । कल्पे कल्पे तु तत्सर्वं सृजतेऽसौ जनं जगत् ॥९
 उपसंहरते चैव नानाभूतानि सर्वशः । द्वासप्ततियुगान्यैव मन्वन्तरं इति स्मृतः ॥१०
 चतुर्दशं तु तान्येवं कल्प इत्यभिधीयते । दिनैः ब्रह्मणः प्रोक्तं निशि कल्पस्तथोच्यते ॥११
 एवं मासश्च वर्षे च तथा चाल्पशतं द्विजाः । एवं बुद्धीन्द्रियस्थास्य विष्णोश्च निमिषः स्मृतः ॥१२
 ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं निमेषश्च ध्रुवस्य वै । निमेषजीवनं सर्वं सर्वलोकचराचरम् ॥१३
 भूलोकोऽथ भुवलोकः स्वलोकश्च प्रकीर्तिः । जनस्तपश्च सत्यं च ब्रह्मलोकश्च सप्तमः ॥१४
 पातालं वितलं तद्विं अतलं तत्सेव च । पञ्चमं विद्धि सुतलं सप्तमं च रसातलम् ॥१५
 एतेषु सप्त विख्याता अधः पातालवासिनः । तेषामादौ च मध्ये च अन्ते रुद्रः प्रकीर्तिः ॥१६
 ग्रसते जायते लोकान्कीडार्थं तु महेश्वरः । ब्रह्मलोकपरीपूनां गतिरूद्धर्वं प्रकीर्तिता ॥१७
 पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च विदिशस्तथा । समुद्राणां गिरीणां च अधस्तिर्यकप्रसङ्गस्यया ॥१८

अहंकार की । ३। पुनः अहंकार द्वारा पाँच महाभूत, आठों प्रकृतियाँ, तथा सोलहों विकार उत्पन्न होते हैं । ४। तथा शब्द, रूप, रस, गंध, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान भी । ५। सत्त्व, रज, एवं तम यही तीनों गुण बताये गये हैं । इसलिए उस (ब्रह्म) द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई और ब्रह्मा द्वारा विष्णु की । ६। ब्रह्मा और विष्णु के संमोहनार्थं (उसके) तेज द्वारा शंभु की उत्पत्ति हुई । इस प्रकार शरीर-हीन (परब्रह्म) वासुदेव, जिसकी अयोनिज आविर्भूति बतायी गयी है, इन्हें मोहाच्छन्न करके इसी प्रकार समस्त जगत् को मोह मुग्ध करते हैं । उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है और न कभी होने की आशा है । ७-८। भगवान् के यही ब्रह्मा और विष्णु नामक दो पुत्र सर्वप्रथम उत्पन्न हुए हैं । यही प्रत्येक कल्पों में समस्त जगत् की रचना करते हैं, तथा समय पर सभी का उपसंहार भी । बहतर युगों का समय एक मन्वन्तर के लिए बताया गया है । ९-१०। उसी प्रकार चौदह युगों का एक कल्प होता है । यही एक कल्प ब्रह्मां का दिन तथा उसी भाँति की रात्रि बतायी गयी है । ११। हे द्विजगण ! इसी भाँति आठ सौ मास तथा वर्ष का समय, बुद्धि, इन्द्रिय एवं विष्णु के एकनिमिष का समय कहा गया है । १२। ब्रह्मा आदि से आरम्भ और साम्बपर्यन्त के समय ध्रुव का एक निमिष होता है, इस भाँति समस्त लोक के चर-अचर सभी का निमेष मात्र जीवन कहा गया है । १३। भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, और सातवाँ ब्रह्मलोक स्थित है । १४। पाताल, वितल, अतल, तल, सुतल, तथा सातवाँ रसातल, ये सात अधोलोक कहे जाते हैं, इनके निवासी पाताललोक वासी के नाम से स्थात है । उपरोक्त सभी लोकों के आदि, मध्य, एवं अंत में रुद्र की स्थिति, बतायी गयी है । १५-१६। महेश्वर ! अपनी क्रीडार्थं ये लोकों के संहार करते हैं, उनमें ब्रह्म लोक के इच्छुकों को स्वर्गादि लोक की प्राप्ति होती है । १७। पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिशा, विदिशा, समुद्र, पर्वत, जिनकी ऊपर तिछं जंसी स्थिति है, तथा समुद्रों के विस्तार और प्रमाण मैं

समुद्राणां च विस्तारं प्रमाणं च ततः शृणु । स्थावराणां च शैलानां देवानां च दिवोकसम् ॥१९
 चतुष्पदानां द्विपदां तथा धर्मेकभाषिणाम् । सहस्रगुणमाल्यातं स्थावराणां प्रकीर्तिम् ॥२०
 सहस्रगुणशीलाश्च इत्याह भगवान्मुनिः । ऋषिस्तु प्रथमं कुर्वन्प्रकृतिं नाम नामतः ॥२१
 तस्या ब्रह्मा प्रकृत्यास्तु उत्पन्नः सह विष्णुना । तस्माद्बुद्ध्या प्रकुरुते सृष्टिं नैमित्तिकीं द्विजाः ॥२२
 तस्मात्स्वयम्भूत्वो ब्रह्मा ब्राह्मणान्तः प्रकल्पयत् । पादहीनान्क्षत्रियांश्च तस्माद्वीनांस्तु वैश्यकान् ॥२३
 चतुर्थादहीनांश्च आचारेषु बहिष्ठतान् । पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशं वैवाच्यकल्पयत् ॥२४
 लोकालोकतय संस्था च द्वीपानामुदधेस्तथा । सरितां सागराणां च तीर्थान्यस्यतनानि च ॥२५
 मेघस्तनिनिधींषोषरोहितेन्द्रधनूषिं च । उल्कानिर्धातिकेतूंश्च ज्योतीष्वायायतनानि च ॥२६
 उत्पन्नं तस्य देहेषु भूयः कालेन पौडयेत् ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणे प्रथमभागे द्वितीयोऽध्यायः २

अथ तृतीयोऽध्यायः

पातालदर्णनम्

सूत उवाच

द्वित्रादूर्ध्वं महर्लोकः कोटियोजनविस्तरः । कल्पाभिकरणे तत्र संस्थिता द्विजपुञ्जवाः ॥१
 जनलोको महर्लोकात्था कोटिद्वियात्मकः । सनन्दनादयस्तत्र संस्थिता ब्रह्मणः सुताः ॥२

बता रहा हूँ, सुनो ! स्थावर, शैलगण, स्वर्गस्थित देवता, चतुष्पद, द्विपद और धर्म के एकान्त भाषी के स्थावरों के सहस्र गुण बताये गये हैं । १८-२० भगवान् मुनि ने भी इन्हें सहस्रगुणशील बताया है । ऋषियों ने सर्वप्रथम क्रियाशील को उसके नामानुसार प्रकृति कहा है । २१ उसी प्रकृति द्वारा विष्णु के समेत ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं द्विज ! इसीलिए वे अपनी बुद्धि के अनुसार नैमित्तिकी सृष्टि करते हैं । २२ उसी द्वारा स्वयंश्च ब्रह्मा ने ब्राह्मणों की सृष्टि की और पादहीन क्षत्रिय, वैश्यों, एवं आचार कर्मों के अयोग्य चतुर्थ पादहीन शूद्रों के सर्जन भी । पृथिवी, अन्तरिक्ष, दिशाएँ, लोकालोक की स्थिति, द्वीप, सागर, सरितायें, लम्बे चौड़े तीर्थ, मेघ, विद्युत, उनके निर्धोष, रक्तवर्ण के इन्द्र धनुष, उल्का, निर्धाति, केतु एवं प्रकाश-गृह इत्यादि उन्हीं के शरीर से होकर पुनः काल में उसी में विलीन होते हैं । २३-२७

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पण के प्रथम भाग में दूसरा अध्याय समाप्त । २।

अध्याय ३

पातालदर्णन

सूत बोले—ध्रुवलोक के ऊपर कोटि योजन के विस्तार में महर्लोक स्थित है, जिसमें ब्राह्मण श्रेष्ठ कल्प पर्यंत स्थित रहते हैं । १। महर्लोक से दो करोड़ की दूरी पर जनलोक स्थित है, जिसमें ब्रह्मा के पुत्र

जनलोकासपोलोकः कोटित्रयसमन्वितः । विराजन्ते तु देवा वै स्थिता दाहविवर्जिताः ॥३
 प्राजापत्यात् सूलोकः कोटिष्ठृकेन संयुतः । सनत्कुमारकस्तत्र ब्रह्मलोकस्तु स स्मृतः ॥४
 तत्र लोके गुरुर्ब्रह्मा विश्वात्मा दिव्यतोमुखः । आस्ते यद्योगिभिः पीत्वा योगं मृत्योः परं गतम् ॥५
 गायन्ति यतयो गाथा ह्यास्तिका ब्रह्मवादिनः । योगिनस्तापसाः सिद्धा जापकाः परमेष्ठिनम् ॥६
 द्वारं तु योगिनामेकं गच्छतां परमं पदम् । तत्र गत्वा न शोचन्ति स विष्णुः स च शड्करः ॥७
 सूर्यकोटिप्रतीकशः पुरं तस्य दुरासदम् । न मे वर्णयितुं शक्यं ज्वालामालासमाकुलम् ॥८
 तत्र नारायणस्यादि भवनं ऋत्युः पुरे । शेषे तस्य हरिः श्रीमान्मायास्तःहचरः परः ॥९
 स विष्णुतर्तोककथितः पुनरावृत्तिर्विजितः । प्रयान्ति च महात्मानो ये प्रपन्ना जनार्दनम् ॥१०
 ऊर्ध्वं ब्रह्मासनात्पूर्वं परं ज्योतिर्मयं शुभम् । बह्निना उपरि क्षिप्तं तत्रास्ते भगवान्भवः ॥११
 देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः । योगिभिः शतसाहस्रैर्वृतैकत्वैश्च संवृतः ॥१२
 तत्र ते यान्ति नियता द्विजा वै ब्रह्मवादिनः । महादेवपरेशानास्तापसा ब्रह्मवादिनः ॥१३
 निर्ममा निरहंडिकाराः कामक्रोधविवर्जिताः । द्रष्ट्यन्ति ब्रह्मणा युक्ता रुद्रलोकः स वै स्मृतः ॥१४
 एते सप्त महर्तोकाः पृथिव्यां परिकीर्तिताः । महीतलादयश्चाधः पातालाः सन्ति वै द्विजाः ॥१५

सनंदन आदि निवास करते हैं । २। जनलोक से तीन करोड़ की दूरी पर तप लोक स्थित है, उसमें देवगण तापहीन होकर (सुखपूर्वक) निवास करते हैं । ३। प्राजापत्य लोक से छः करोड़ की दूरी पर भूलोक स्थित है, जिसे ब्रह्मलोक कहा जाता है, वह सनत्कुमार का निवास स्थान है । ४। उसी लोक में गुह, ब्रह्मा, जो विश्वात्मा एवं विश्वतोमुख बताये गये हैं, योगरूपी अमृत को पानकर स्थित हैं, जिसका पान करके योगी लोग मृत्यु से उत्तम गति प्राप्ति करते हैं । ५। यती, आस्तिक, ब्रह्मवादी, योगी, तापस, सिद्ध एवं जापक, ये सभी इसी गाथा का गान करते हैं कि परम पद की प्राप्ति करने वाले योगियों के ब्रह्म ही एक द्वार-रूप हैं, वहाँ पहुँचने पर किसी प्रकार का शोक नहीं होता है वही विष्णु है, तथा शंकर भी । ६-७। उनका आवास स्थान करोड़ों सूर्य के समान दुर्धर्ष है, प्रचण्ड तेज से आच्छन्न उस पुरी का वर्णन करने में सभी असमर्थ हैं । ८। उसी ब्रह्मपुरी में नारायण का भी वह भवन स्थित है, जिसमें माया (लक्ष्मी) समेत श्रीमान् भगवान् शेषायी होकर स्थित हैं । ९। वह विष्णु-लोक कहा जाता है, जहाँ पहुँचने पर जीव, कभी जन्म ग्रहण नहीं करता है, किन्तु वहाँ वही लोग पहुँचते हैं, जो जनार्दन भगवान् के शरण में प्राप्त होते हैं । १०। उस ब्रह्मलोक के ऊपरी भाग में सर्वप्रथम, अत्यन्त ज्योतिर्मय पुरी स्थित है, जो उस ऊपरी भाग में प्रक्षिप्त अग्नि की भाँति स्थित है, वहाँ देवी को साथ लिए भगवान् शिव सुशोभित हो रहे हैं । उन्हीं महादेव के ध्यान में मग्न सैंकड़ों मनीषी योगिजन रहा करते हैं, जो एक मात्र उन्हीं की तृप्ति के लिए संकल्पपूर्वक कटिबद्ध हैं । ११-१२। वहाँ उन्हीं ब्रह्मवादी ब्राह्मणों की नियम यात्रा होती है, जो सर्वश्रेष्ठ ईशान रूप महादेव की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे हैं । १३। निर्मम निरहंडिकार, एवं काम, क्रोधहीन होकर जहाँ सभी ब्रह्म मग्न दिखाई देते हैं, उसे 'रुद्र लोक' कहा गया है । १४। ये सात प्रकार करके महर्तोक पृथिवी में बताये गये हैं और द्विजगण ! महीतल आदि पाताल लोक नीचे स्थित है । १५। सुवर्ण की भाँति

महातलं हैमतलं सर्ववर्णोपशोभितम् । प्रासादैर्दिविधैः शुभ्रैर्वतायतनैर्युतम् ॥१६
 अनन्तेन समायुक्तं मुचुकुन्देन धीमता । नृपेण बलिना चैव पातालं स्वर्गवासिना ॥१७
 शैलं रसातलं विप्राः शाइकरं हि रसातलम् । पीतं मुतलमित्युक्तं वितलं विद्वमप्रभम् ॥१८
 सिं हि वितलं प्रोक्तं तलं चैव सितेतरस् । सुवर्णेन मुनिश्चेष्टास्तथा वासुकिना शुभम् ॥१९
 रसातलनिति स्थातं सर्वशेषभास्तमन्वितम् । वैनतेयादिभिश्चैत्र कालनेमिपुरोगमैः ॥२०
 शइकुकर्णेन सम्भिज्ञं तथा नमुचिपूर्वकम् । तथान्यैर्विविधैनगैस्तलं चैव दुशोभनम् ॥२१
 तेषामधस्तान्नरका रौरवाद्याश्वर कोटयः । पापिनस्तेषु पात्यज्ञे न तेऽवनमितुं क्षमाः ॥२२
 पातालानामधश्चान्ते शेषाख्या दैषणवी तनुः । कालालिहृदयोगात्मा नारसिंहोऽपि माधवः ॥२३
 योऽनन्तः पठचते देवो नागरूपी जनार्दनः । तदाधारमिदं तर्व सकलाप्रिमुपाश्रितम् ॥२४
 तमाविश्य महायोगी कालस्तद्वदनानलः । विषज्वालासमोऽनन्तो जगत्संहरति स्वयम् ॥२५
 तामसी शास्त्रभवी मूर्तिः कालात्मा परमेश्वरः । स एद गर्भमाश्रित्य प्रकाशयति नित्यशः ॥२६

इति श्रीभविष्ये सहापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पातालवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः । ३

सौन्दर्यपूर्ण तल वाला महातल, बताया ज्या है, जो समस्त वर्ण के प्राणियों से सुशोभित, तथा शुभ्र वर्ण के अनेक प्रकार के प्रासादों समेत सौन्दर्य पूर्ण रेवालवर्णों से युक्त है । १६। अनंत के समेत बुद्धिमान् मुचुकुन्द, स्वर्गवास के इच्छुक राजा बलि पाताल लोक में प्रतिष्ठित हैं । १७। विप्रवृन्द ! शंकर जी के निवास स्थान रूप उस पर्वत को रसातल, पीले वर्ण का मुतल, विद्वुम की भाँति प्रभा से पूर्ण एवं स्वच्छ वर्ण का वितल, और कृष्ण वर्ण का तल लोक बताया गया है । श्रेष्ठ मुनिवृन्द ! सुवर्ण की प्रभा पूर्ण वासुकी उस शुभ रसातल में निवास करते हैं, तथा वह रामस्त भाँति जी शोभा से सुशोभित हैं, कालनेमि आदि तथा एवं भाँति-भाँति के अन्य नाग लोग बड़ते हैं । उन लोकों के नीचे रौरव आदि करोड़ों नरक कुण्डों की रचना हुई है, उसमें उसी भाँति के पापी जो कभी विनम्र हो ही नहीं सकते, लाकर डाले जाते हैं । इन पाताल आदि लोकों के नीचे शेष भगवान् वैष्णवी शरीर धारण कर स्थित हैं, जिसे काल, अग्नि, रुद्र, योगात्मा, नरसिंह, माधव, और अनन्त कहा जाता है, वहीं नागरूपी जनार्दन भगवान्, उस समस्त लोकों के आधार रूप हैं, और सभी प्रकार के अग्नि वहाँ रहते हैं । उसी लोक में महायोगी की भाँति कालालिरूप अनंत देव, अपनी विषज्वाला समेत रहकर स्वयं जगत् का संहार करते हैं । उसी तामसी, एवं शास्त्रभवी (शंभुकी) मूर्ति को, कालात्मा और परमेश्वर कहते हैं । वह इस ब्रह्माण्डोदर के गर्भ में प्रविष्ट होकर इसे नित्य प्रकाशित करता रहता है । २१-२६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में पाताल वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त । ३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

ज्योतिश्वकवर्णनम्

सूत उवाद

एतद्ब्रह्माण्डभास्यातं चतुर्विधिमिदं महत्। अतः दर्तं प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्य विनिर्णयम् ॥१
 तद्द्वीपप्रधानो जम्बू प्लक्षः शाल्मल एव च । कुशः कौञ्चवश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः ॥२
 एते सप्त भवाद्वीपाः समुदैः सप्तभिर्वृताः । द्वीपाद्वीपो महानुक्तः सतगरादपि सागरः ॥३
 क्षीरोदेक्षुरसोदोऽथ धारोदश्च घृतोदकः । दध्येदः क्षीरसलिलो जलोदश्चेति शागराः ॥४
 पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा समुद्रवलया स्मृता । द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समानतः ॥५
 जम्बूद्वीपः समस्तानां द्वीपानां मध्यतः शुभः । तस्य मध्ये महामेर्विश्रुतः कनकप्रभः ॥६
 चतुराशीतिसाहलयोजनैरस्य चोच्छ्रयः । प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्वार्तिशशन्मूर्धिन विष्कृतः ॥७
 सूले षोडशसाहस्रं विस्तारस्तस्य सर्वतः । सूप्रमुख्यश्च शैलोऽसौ कलिकात्वेन संस्थितः ॥८
 हिमवान्हिमकूआश्च निषधस्तस्य दक्षिणे । नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वतः ॥९
 लक्ष्मप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे । सहस्रद्वितयं दीर्घस्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥१०
 भारतं दक्षिणं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् । हरिर्वर्षं तथैवान्यन्मेरोदक्षिणतो द्विजाः ॥११

अध्याय ४

ज्योतिश्वक का वर्णन

सूत बोले—मैंने इस महान् ब्रह्माण्ड के चार प्रकार का वर्णन सुना दिया, इसके उपरान्त भूर्लोक का वर्णन सुना रहा हूँ, (सुनो) ! भूलोक में जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, कौञ्च, शाक और सातवें पुष्कर नामक प्रधान द्वीप बताये गये हैं, उसी भाँति सात समुद्रों का भी वर्णन है। ये सातों महाद्वीप क्रमशः सातों समुद्रों द्वारा घिरे हुए हैं। एकद्वीप से दूसरा द्वीप महान् है, उस भाँति एक सागर से दूसरा सागर भी । १-३। क्षीरसागर, इक्षुसागर, रससागर, धारा(खारा) सागर, घृतसागर, दधिसागर, और क्षीरसागर यही सातों सागरों के नाम बताये गये हैं। पचास करोड़ योजन पृथिवी विस्तीर्ण है, जिसे चारों ओर से 'कंकड़' आभूषण की भाँति समुद्र ने घेर लिया है और सातों समुद्रों से युक्त है। समस्त द्वीपों के मध्य में शुभ जम्बू द्वीप स्थित है, उसके मध्य में सुवर्णमय प्रभापूर्ण महामेरु पर्वत सुशोभित है । ४-६। इसकी ऊपर की ऊँचाई चौरासी सहस्र योजन की है, पृथिवी के भीतर सोलह योजन और ऊपर की चौड़ाई बत्तीस योजन की बतायी गयी है। इसका सूल भाग पृथिवी पर सोलह सहस्र योजन में विस्तृत है। पृथिवी में सर्वप्रधान यहीपर्वत बताया गया है, हिमालय, हेमकूट और निषध पर्वत इसके दक्षिण भाग में स्थित हैं, उसी भाँति नील, श्वेत एवं शृङ्गी पर्वत उसके उत्तर प्रदेशों में स्थित हैं । ७-९। मध्य भाग में स्थित रहने वाले दोनों पर्वतों के प्रभाव एक लक्ष और अन्य पर्वतों के नब्बे बताये गये हैं और दो सहस्र योजनों की समान लम्बाई चौड़ाई बतायी गयी है । १०। द्विजगण ! उसके दक्षिण प्रदेश में भारतवर्ष,

चम्पकं चोत्तरं सर्वं तथैवाभ्यहिरण्मयम् । उत्तराः कुरुवश्रैव यथैते भारतास्तथा ॥१२
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः । इलावृतश्च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुच्छ्रीतः ॥१३
मेरोत्तुर्दिशस्तत्र नवसाहस्रविष्कृतम् । इलावृतं भग्नभागाश्रत्वारस्तत्र पर्वताः ॥१४
विष्कम्भा रचिता मेरोर्येजनायुतमुच्छ्रिताः । पूर्वेण भन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥१५
विपुलः पश्चिमे भागे सुपार्श्वशोत्तरे स्थितः । कदम्बेष्वेषु नद्यश्च पिप्पले घट एव च ॥१६
जम्बूद्वीपस्य ता जम्बूनार्महेतोर्महर्षयः । महागजप्रमाणानि जम्बून्यस्य फलानि च ॥१७
पतन्ति भूमृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वशः । रसैन चैव प्रल्याता तस्य जम्बूनदी इति ॥१८
सरित्तु वर्तते सापि पीयते तत्र वासिभिः । न खेदो न च दौर्मध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः ॥
उत्पन्नाः स्वच्छमनसो नरास्तत्र भवन्ति वै ॥१९
तीरसूत्रं समं प्राप्य वायुना च विशोषितम् । जम्बूनदाल्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥२०
भद्राभ्यः पार्थतो मेरोः केतुमालश्च पश्चिमे । वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तगोर्मध्ये इलावृतम् ॥२१
मेरोरूपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् । तद्वृद्धे वासवस्थानं तद्वृद्धे शङ्करस्य च ॥२२
तद्वृद्धे वैष्णवो लोको दुर्गलोकस्तद्वृद्धर्वतः । ज्योतिर्मयं परं स्थानं निरुकारं हिरण्मयम् ॥२३

पश्चात् किंपुरुषवर्ष, हरिवर्ष और उसी भाँति अन्य वर्ष भी स्थित हैं । ११। उसके (मेरु) के उत्तर प्रदेश में चंपक वर्ष, अश्व हिरण्यमय, उत्तर तुरु आदि प्रदेश भारत के समान ही स्थित हैं । १२। द्विजसत्तम ! इन प्रत्येक की लम्बाई चौड़ाई नव सहस्र योजन की बतायी गयी है । इसके मध्य में इलावृत प्रदेश है । उसके मध्य में मेरु के चारों ओर नवसहस्र योजन के विस्तार में रत्ना वृत प्रदेश बताया गया है, और उस प्रदेश में परम पवित्र-चार पर्वत की स्थिति भी । मेरु का विस्तार दशसहस्र योजन का कहा गया है । पूर्व में मंदराचत, दक्षिण में गन्धमादन । १३-१५। पश्चिम में विपुल, एवं उत्तर में सुपार्श्व नामक पर्वत स्थित है । इनमें अनेक नदियाँ और पीपल का वृक्ष बताया गया है महर्षि गण ! जम्बू द्वीप में स्थित उस जम्बू नामक वृक्ष के फल जो इस प्रदीप के नाम करण में मूल कारण हैं, विशाल गजराजों के समान लंबे चौड़े होते हैं । १६-१७। और पर्वत के पृष्ठभाग (ऊपर) पर वे छिन्न-भिन्न होकर गिरते रहते हैं । इस प्रदीप में अत्यन्त मधुर रसवाली जम्बू नामक नदों भी प्रवाहित होती है । १८। उस द्वीप के निवासी गण उस नदी के जल का पान करते हैं, जिससे वे शोक रहित, सभी भाँति के दुर्गन्ध से हीन, होकर कभी बुद्धे नहीं होते हैं, न उनकी इन्द्रियाँ कभी क्षीण होती हैं तथा वे सभी मनुष्य स्वच्छ मनवाले होते हैं । १९। उस सरिता के तट में वायु द्वारा सुखाये जाने पर जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न होता है, जिसके आभूषण बनाकर सिद्ध तथा उनकी स्त्रियाँ आभूषित होती हैं । २०। मुनिश्रेष्ठ ! मेरु के पार्श्व में भद्रा, पूर्व पश्चिम में केतुमाल, नामक दो वर्ष हैं जिनके मध्य में इलावृत नामक प्रदेश है । २१। विप्रेन्द्र ! उस मेरु के ऊपरी भाग में ब्रह्मा का सुन्दर स्थान निर्मित है, उसके ऊपर वासव का स्थान उनके ऊपर शंकर के, उनके ऊपर विष्णुलोक, उसके ऊपर दुर्गा के लोक और उसके ऊपर ज्योतिर्मय, निराकार एवं हिरण्यमयस्थान भक्तों के लिए बनाया गया है, एवं उसके ऊपर भगवान् सूर्यदेव, जो ज्योतिर्मण्डल रूपी चक्र पर स्थित होकर

भक्तस्थानं तद्वृद्धवं च देवो हि भगवान्‌रविः । ज्योतिश्चकस्थितः शुद्धो निश्चलः परमेश्वरः ॥

राशिचके च भ्रमति मेरोरूपरि सत्तमा:

॥२४

बिम्बषट् केद्रिनाभौ च रथचक्रं दिवानिशम् । वातरज्जुनिबन्धेन ध्रुवाधारे प्रतिष्ठितम् ॥२५

दिक्षिणालादा प्रहास्तत्र दक्षिणादुत्तरायणम् । उत्तिमात्मं गतः पन्था हासवृद्धिदिनक्षयः ॥२६

रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रः स्वातो मनिन्दुच्चः । द्वादशो भगवत्सूर्यं प्रत्यहं भक्तसेवके ॥२७

कृत्वा प्रिष्ठं त्वहोरात्रं ताराम्यगतं विभुम् । यामे यामे चोदयश्च देरेदशे च जर्वरी ॥२८

दिवा उरति यः सूर्यो रात्रौ चरति चन्द्रकाः । नक्षत्राणि दिवा रात्रौ सूर्यचक्रे प्रतिष्ठितम् ॥२९

देशान्नं चावगमनं यत्र तस्मादिवाभवत् । यत्र चन्द्रक्षयो भवति यत्र तूर्यः प्रवर्तते ॥३०

रात्रिनिदिवं विजानीयाज्ज्योतिश्चके प्रतिष्ठितम् । उद्यास्तमनं नात्ति नक्षत्राणां विशेषतः ॥३१

यन्नक्षत्रे च यो देशः स तेषामुदयः स्मृतः । तत्रास्तो जीवशुक्राणां सूर्यादीनां च सर्वशः ॥३२

तदा काले नियोक्तव्यो भार्गवास्तादिकी क्रिया । सूर्यः सोमो बुधश्चन्द्रो भार्गवश्चैव शीघ्रकः ॥३३

दक्षिणायनमास्थाय यदा चरात रशिमान् । तदा सर्वग्रहाणां स सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति ॥३४

विस्तीर्णमण्डलं कृत्वा तस्योदर्देवं चरते शशी । नक्षत्रमण्डलं कृत्वं सोमाद्वृद्धर्वं प्रसर्पति ॥३५

ज्ञक्षत्रेभ्यो बुधश्चोदर्वं बुधाद्वृद्धर्वं तु भार्गवः । चन्द्रस्तु भार्गवाद्वृद्धर्वं चन्द्राद्वृद्धर्वं शनैश्चरः ॥३६

शुद्ध, निश्चल एवं परमेश्वर हैं, चक्राकार राशि मण्डलों पर स्थित होकर मेरु के ऊपर चारों ओर भ्रमण किया करते हैं । २२-२४। छह विम्ब रूपी उस पर्वत की नाभि प्रदेश पर स्थित होकर वह रथचक्र, जो ध्रुव के आधार पर निर्भर हैं, वायु रूपी रस्सी से आबद्ध होकर रातदिन चलता रहता है । २५। उसी पर स्थित दिक्षालादि एवं सभी ग्रहों के प्रत्येक मास में दक्षिणायन और उत्तरायण में क्रमशः आने जाने की यात्रा के दिन घटते रहते हैं । २६। जिस मास में सूर्य का संक्रमण काल नहीं आता है, वह चन्द्रमास 'मलमास' के नाम से ख्यात होता है । भक्त श्रेष्ठ भगवान् भास्कर के बारहों मासों में तीनों समय (प्रातः मध्याह्न एवं सायंकाल) में (प्रदेशों की दूरी एवं समीपता के अनुसार) व्यापक एवं तारामय दिन-रात हुआ करता है जिस प्रहर में कहीं सूर्योदय हुआ उससे दूर के प्रदेशों में उस समय रात्रि का होना आरम्भ होता है । दिन में सूर्य तथा रात्रि में चन्द्र तथा सूर्य के चक्र में प्रतिष्ठित होकर नक्षत्र गणों के दिन रात भ्रमण हुआ करता है । २७-२९। प्रदेशों में चन्द्र का क्षय और सूर्योदय का होना निश्चित है क्योंकि उन्हीं द्वारा देशों में अन्न और यात्राएँ सम्भव होती हैं । ३०। इस भाँति उन्हें ज्योतिश्चक्र के ऊपर रातदिन प्रतिष्ठित रहना पड़ता है, विशेषकर नक्षत्रों के उदय अस्त नहीं होते । ३१। जिस नक्षत्र में जो प्रदेश निश्चित है, उसी प्रदेश में उनका उदय बताया गया है और उसी प्रदेश से बृहस्पति, शुक्र, एवं सूर्य आदि ग्रहों के अस्त भी । ३२। शुक्र का उदय एवं अस्त होना समय-समय पर निश्चित है, सूर्य, सोम, बुध, तथा शुक्र, ये शीघ्रामी (अतिचारी) भी कभी-कभी होते हैं । ३३। जिस समय सूर्य दक्षिणायन में भ्रमण करते हैं उस समय समस्त ग्रहों के नीचे भाग में सूर्य समेत चला करते हैं । ३४। अपने विस्तीर्ण मण्डल समेत चन्द्रमा उनके ऊपर विचरण करता है । उसी भाँति सोम के ऊपरी भाग में सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल, उसके ऊपर बुध, बुध के ऊपर शुक्र, शुक्र के ऊपर चंद्र, चन्द्र के ऊपर शनि, और शनि के ऊपर सप्तर्षियों का मण्डल

तस्माच्छनैश्चरादूर्ध्वं ततः सप्तर्षिमण्डलम् । क्रुषीणां चैव सप्तानां ध्रुवश्चोर्ध्वं व्यवस्थितः ॥३७
 कालचक्रमये चक्रे सूर्यो भवति सर्वदा । राश्यद्वेषु गतिर्यत्र तिथीनां च तिथौ स्मृता ॥३८
 स्तम्भते चरते शीघ्रं हासे चापि दिनक्षयः । पादास्तं चापि शुक्रस्य महास्तं तत्र दृश्यते ॥३९
 यादःस्ते पक्षमात्रं स्यान्महास्ते याममात्रकम् । चक्रे पक्षार्धमात्रः स्यादतिचारोऽष्टवासरान् ॥४०
 न गण्यते देशभेदे नक्षत्रेण च गण्यते । बालवृद्धस्तु शुक्रस्य देशस्ये वा गणस्य च ॥४१
 बाल्यवाद्यर्थे क्षत्तियस्य न गण्यते सदा बुधैः । पादादूर्ध्वं नहास्तस्य वैश्यस्य द्विजसत्तमाः ॥४२
 शेषार्द्धं भार्गवास्तस्य शूद्राणामथ गर्हितम् । अभिचारे च चक्रे च न शूद्रस्य विधीयते ॥४३
 वर्जयेद्वासरान्स्तप्तं इति चार्थर्वणी श्रुतिः ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमार्वणि प्रथमभागे ज्योतिश्चक्रे चतुर्थोऽध्यायः । ४

अथ पञ्चमोऽध्यायः कर्मानुसारव्यक्तिनिर्धारणदर्शनम्

सूत उवाच

त्रयाणामेव वर्णनां जन्मतो ब्राह्मणः प्रभुः । संसृष्टा ब्राह्मणाः पूर्वं तपस्तप्त्वा द्विजोत्तमाः ॥५

घूमता फिरता है एवं सातों क्रृषियों के ऊपर ध्रुव की स्थिति की गयी है । ३५-३७। इस प्रकार काल-चक्र के ऊपर सूर्य सदैव स्थित रहते हैं, उसी रथ पर स्थित रहने के नाते सूर्य एवं तिथियों को राशियों के अर्ध भाग में भी अपनी उपस्थिति करनी पड़ती है तिथियों द्वारा सूर्य कहीं स्तम्भित कहीं शीघ्रचारी होते हैं और उसके ह्लास होने पर दिनक्षय होना निश्चित बताया गया है शुक्र का भी (कमलरूपी चक्रपरस्थित होने के नाते) पादास्त होना कहा गया है एवं कहीं उनका महास्त भी देखा जाता है । पक्षमात्र का नाम पादास्त, याम (प्रहर) मात्र को महास्त, एवं पक्षार्ध (आठ दिनों) का अतिचार नाम बताया गया है । ३८-४०। तथा शुक्र गण के बाल अथवा वृद्ध होने की गणना देश-भेद के द्वारा न होकर एक मात्र नक्षत्र द्वारा की जाती है । ४१। द्विजसत्तम ! क्षत्रिय के बाल अथवा वृद्ध होने की गणना बुध लोग कभी नहीं करते हैं । किन्तु महास्त वैश्य के पाद से ऊपर की गणना होती है उनका शेषार्ध भार्गव (शुक्र) के अस्त का समय है, वही शूद्रों के लिए निंदित है । अभिचार और चक्र में शूद्र के लिए विधान नहीं बताया गया है । अतः अथर्वण वेद की श्रुति इसी बात की पुष्टि करती है कि सातों दिनों के त्याग अवश्य करने चाहिए । ४२-४४ श्री भविष्य महापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में ज्योतिश्चक्र वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त । ४।

अध्याय ५ कर्मानुसार व्यक्तिनिर्धारण का वर्णन

सूत बोले—उत्तमद्विजगण ! तीनों वर्णों के स्वामी ब्राह्मण हैं, यह उनका जन्म सिद्ध अधिकार है, क्योंकि ब्रह्मा ने तपश्चर्या करके सर्वप्रथम ब्राह्मणों का सर्जन किया है । १। उसी भाँति सभी हृव्य कं

हव्यानामिह कव्यानं सर्वस्यापि च गुप्तये । अशनन्ति च मुखेनास्य हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥२
 कव्यानि चैव पितरः किं भूतमधिकं ततः । जन्मना चोत्तमोऽयं च सर्वार्चा ब्राह्मणोऽर्हति ॥३
 स्वकीयं ब्राह्मणे शुद्धक्ते विद्याति द्विजोत्तमाः । त्रयगामिह वर्णनां भावभावाय वै द्विजः ॥४
 भवेद्विप्रो न सन्देहस्तुष्टो भावाय वै भवेत् । अभावाय भवेन्कुद्धस्तस्मात्पूज्ञः सदा हि सः ॥५
 गर्भाधानादयश्चेह संस्कारा यस्य सत्तमाः । चत्वारिंशत्तथाः चाष्टौ निर्वृत्ताः शास्त्रतो द्विजाः ॥
 स यस्ति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वेन संयुतः ॥६
 संस्कारपूतः प्रथमो वेदपूतो द्वितीयकः । विद्यापूतस्तृतीयः स्यात्तीर्थपूतस्त्वनन्तरम् ॥७
 क्षेत्रपूतं इविज्ञाय विपूतं पूजयेद्विजाः । स्वगायिकर्वाफलदमन्यथा श्रमतामियात् ॥८
 पूतानां परमः पूतो गुरुणां परमो गुरुः । सर्वसत्त्वान्वितो विप्रो निर्मितो ब्रह्मणा पुराः ॥९
 पूजयित्वा द्विजान्देवाः स्वर्गं भुज्जन्ति चाक्षयम् । मनुष्याभ्यापि देवत्वं स्वं स्वं राज्यं गतेन सः ॥१०
 यस्य विप्राः प्रसीदन्ति तस्य विष्णुः प्रसीदति । तस्माद्ब्राह्मणपूजायां विष्णुस्तुष्यति तत्क्षणात् ॥११
 यस्माद्विष्णुमुखाद्विप्रः समुद्भूतः पुरा द्विजाः । वेदात्तत्रैव सञ्जाताः सुष्टिसंहारहेतुदः ॥१२
 तस्माद्विप्रमुखे वेदाश्रापिताः पुरुषेण हि । पूजार्थं ब्रह्मलोकानां सर्वज्ञानार्थतो ध्रुवम् ॥१३
 पितृयज्ञविवाहेषु वह्निकार्येषु शान्तिषु । प्रशस्ता ब्राह्मणा नित्यं सर्वस्वस्त्ययनेषु च ॥१४

आदि की सुरक्षा करना एक मात्र ब्राह्मणों का ही कर्तव्य है क्योंकि देवगण ब्राह्मण के मुख द्वारा ही हव्यों के भक्षण करते हैं । और पितर लोग कव्यों के । इसलिए उनसे दड़कर कोई नहीं है । ब्राह्मण जन्म से ही ही सर्वप्रधान है, अतः सभी भाँति की अर्चा के योग्य हैं । २-३। द्विजोत्तमः । ब्राह्मण सर्वत्र अपनी ही वस्तु का भक्षण करता है और उसी का पालन पोषण भी । तीनों जातियों की वृद्धि एवं नाश के लिए ब्राह्मण की रचना हुई है । भली भाँति सन्तुष्ट होने पर ब्राह्मण उनकी वृद्धि करता है इसमें सदेह नहीं, तथा कुद्ध होने पर उनके सर्वनाश का मूल कारण भी होता है, इसलिए ब्राह्मण सदैव उनके लिए पूज्य है । ४-५। द्विजः जिस ब्राह्मण के गर्भाधानादि संस्कार सुसम्पन्न हुए हैं तथा वह शास्त्र के अङ्गतालीस प्रकार के नियमों से निवृत हो गया है, अतः ब्राह्मणत्वं प्रधान होने के नाते उसे ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है । ६। प्रथम संस्कार द्वारा पवित्र, दूसरे वेदाध्ययन द्वारा पूत, तीसरी विद्याद्वारा पूत, पठचात् तीर्थ-यात्रादि से पूत एवं क्षेत्रपूत (पवित्र क्षेत्र से उत्पन्न), ऐसे विशिष्ट पूत ब्राह्मणों की पूजा अवश्य करनी चाहिए । इससे पूजने वाले को स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, अन्यथा (इनकी पूजा न करने से) श्रम व्यर्थ हो जाता है । ७-८। सभी पवित्रों में परम पवित्र, गुरुओं के परम गुरु एवं सभी प्रकार के सत्त्व समेत ब्राह्मणों को ब्रह्मा ने सर्वप्रथम ही उत्पन्न किया है । ९। देवगण ब्राह्मणों की अर्चा के द्वारा ही स्वर्ग का अक्षय उपभोग प्राप्त किये हैं और मनुष्य भी अपने-अपने राज्य की प्राप्ति द्वारा देवत्व की प्राप्ति करते रहते हैं । १०। जिसके ऊपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसके ऊपर विष्णु निश्चित प्रसन्न होते हैं, इसलिए ब्राह्मण की पूजा करते समय विष्णु उसी समय प्रसन्न हो जाते हैं । ११। क्योंकि जिस विष्णु के मुख द्वारा सर्वप्रथम ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है, उसी द्वारा सर्जन एवं नाश के हेतु समस्त वेदों की भी उपलब्धि बतायी गयी है । १२। इसीलिए पुरुषोत्तम भगवान् ने निश्चित सभी लोगों के ज्ञानार्थ एवं ब्रह्मलोक के पूजन के लिए समस्त वेदों को ब्राह्मण के मुख में समर्पित कर दिया । १३। पितृ कर्म, यज्ञ, विवाह, हवन, शांति तथा सभी भाँति

देवा भुञ्जन्ति हव्यानि बलिं प्रेतादगोऽसुराः । पितरो हृष्यकव्यानि दिग्ग्रस्यैव मुखाद् द्व्रुबम् ॥१५
 देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च ये दद्याद्यज्ञकर्मसु । दानं होमं बलिं चैव विना विश्रेण निष्फलम् ॥१६
 विना विप्रं च यो धर्मः प्रयासफलमात्रकः । भुञ्जते चासुरास्तत्र प्रेता भूताश्च रक्षसाः ॥१७
 तस्माद्ब्राह्मणमाहय तस्य पूजां च कारयेत् । काले देशो च पात्रे च लक्षकोटिगुणं भवेत् ॥१८
 श्रद्धया च द्विं दृष्ट्वा प्रकुर्यादभिवाहनम् । दीर्घायुस्तस्य वाक्येन दिग्बन्धीवी भवेन्नरः ॥१९
 अनभिवादिनां विप्रे द्वेषादश्रद्धयापि च । आयुः क्षीणं भवेत्पुंसां भूमिनाशश्च दुर्गतिः ॥२०
 आयुर्वृद्धिर्यशोर्वृद्धिर्द्विदिव्याधनस्य च । शूलयित्वा द्विश्रेष्ठान्प्रेतास्त्यन्तं संशयः ॥२१

न विप्रपादोदकर्दसानि न वेदशास्त्रप्रतिगर्जितानि ।

स्वाहास्वधास्त्वस्त्विवर्जितानि इमशानतुल्यानि गृहाणि तानि ॥२२

षड्विंशतिदोषमाहुर्नरा नरकभीरचः । विमुच्यैव वसेत्तीर्थे ग्रामे चा पत्तने वने ॥२३
 तै स्वर्गे पितृलोके च ब्रह्मलोकेष्ववस्थिताः ॥२४
 अन्यथा न वसेद्वात्सत्समात्सेयौ न पालयेत् । अधर्मो विषमश्चैव पशुभ्यं पिशुनस्तथः ॥२५
 पापिष्ठो नष्टकष्टौ च रूपो दुष्टश्च पुष्टकः । हृष्टः कुण्ठश्च^१ अन्धश्च काणश्चैव तथापरः ॥२६

के कल्याणार्थ कायों में ब्राह्मण ही प्रशस्त बताये गये हैं । यही निश्चित है कि ब्राह्मणों के मुख द्वारा ही देवगण हव्य प्रेतादि असुर गण बलि, एवं पितर लोग हव्यों के भक्षण करते हैं । १४-१५। देवताओं एवं पितरों के उद्देश्य से यज्ञों में दान, हवन, तथा बलि जो कुछ बिना ब्राह्मण के किया जाता है, वह सब निष्फल होता है । १६। बिना ब्राह्मण के जो भी धर्म-कार्य किया जाता है, उसके केवल परिश्रम मात्र करना ही फल बताया गया है, क्योंकि उरा प्रदत्त वस्तु का ग्रहण एवं भोजन असुर, प्रेत, भूत, एवं राक्षस ही करते हैं । १७। इसलिए (सभी छोटे-बड़े कार्यों में) ब्राह्मण को बुलाकर उसकी पूजा करनी चाहिए, क्योंकि देश, काल, एवं पात्र को दी गयी वस्तु कोटिलक्ष फलदायी होती है । १८। ब्राह्मण को देखते ही श्रद्धालु होकर अभिवादन करना चाहिए, क्योंकि आशीर्वाद के रूप में उसके 'दीर्घायु' हो कहने पर वह मनुष्य चिरजीवन प्राप्त करता है । १९। जो मनुष्य द्वेष के कारण श्रद्धाहीन होने के नाते ब्राह्मणों का अभिवादन नहीं करते हैं, उन मनुष्यों की आयु क्षीण हो जाती है, और भूमिनाश एवं दुर्गति भी होती है । २०। श्रेष्ठ ब्राह्मणों की पूजा करने से आयु, यश, विद्या एवं धन की अत्यन्त वृद्धि होती है, इसमें संदेह नहीं । २१। जिनके धरों में ब्राह्मण चरण के प्रक्षालन करने से उत्पन्न कीचड़, वेद-शास्त्रों के गर्जन (ऊँचे स्वर से पाठ), एवं स्वाहा, स्वधा तथा स्वस्ति के उच्चारण नहीं होते हैं, वे शमशानों के समान बताये गये हैं । २२। नरक के भीरु मनुष्यों के लिए छब्बीस दोषों से मुक्त रहने के लिए बताया गया है, उनके त्याग पूर्वक तीर्थ, ग्राम, छोटे छोटे गाँव (पुरवा) अथवा वन में कहीं भी निवास करने वाले ही मनुष्य स्वर्ग, पितृलोक और ब्रह्मलोकों में अवस्थित हैं । अन्यथा कहीं भी निवास करना उचित नहीं है जिससे कि चौरों का पालन भी न हो । अधर्म, विषम, पशु, पिशुन, (चुगुली), पाप कर्म, नष्ट, कष्ट एवं रुष्ट होना, दुष्ट, पुष्टक (पालन करना), हृष्ट, कुबड़ापन, अन्धा, काना, उग्रस्वभाव, खण्ड, वक्ता, दिये गये का

चण्डः खण्डश्च वक्ता च दत्तस्यापहरस्तथा । नीचः खलश्च वाचालः कदर्यश्रवपलस्तथा ॥२७
 मलीमसश्च ते दोषाः षड्बुंशतिरमी मताः । एतेषां चापि विप्रेन्द्राः पञ्चाशीतिर्निर्गद्यते ॥२८
 शृणुध्वं द्विजशार्दूलाः शास्त्रेऽस्मिन्मुवतः क्रमात् । अधमोऽत्र त्रिधा विद्याद्विषमः स्यादिद्वधोऽचितः ॥२९
 पशुश्रुतुर्विधैव कृपणोऽपि हि वै द्विधा । द्विधाथापि च पापिष्ठो नष्टः सप्तविधः स्मृतः ॥३०
 कष्टः स्यात्पञ्चधा ज्ञेयो रुष्टोऽपि स्यादिद्वधा द्विजाः । दुष्टः स्यात्पञ्चिद्वधो ज्ञेयः पुष्टश्वैव भवेद्विद्वधा ॥३१
 हृष्टश्चाप्तविधः प्रोक्तः कुण्ठश्वैव त्रिधोऽदितः । अन्धः काणश्च तौ द्वौ द्वौ स्याद्वै च सगुणोऽगुणः ॥३२
 द्वौ चण्डौ चपलश्वैकावण्डचण्डौ द्विगुर्भवेत् । दण्डपण्डौ तथा ज्ञेयौ खलनीचौ चतुर्दृश्यम् ॥३३
 वाचालश्च कदर्यश्च क्रमात्त्रिभिरुदाहृतः । कदर्यश्रवपलश्वैव तथा ज्ञेयो मलीमसः ॥३४
 द्वावेकौ चतुरश्वैव स्तेयी चैकविधो भवेत् । पृथग्लक्षणमेतेषां शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥३५
 सम्यग्यस्य परिज्ञानं नरो देवत्वमाप्नुयात् । उपानच्छत्रधाते च गुरुदेवाप्रतश्चरन् ॥३६
 उच्चासनं गुरोरग्रे तीर्थयात्रां करोति यः । यानमारुह्या विप्रेन्द्राः सोप्येकत्राधमो मतः ॥३७
 निमज्ज्य तीर्थे विधिवद्ग्राम्यधर्मेण वर्तयन् । द्वितीयश्चाधमः प्रोक्तो निन्दितः एतिर्कीर्तितः ॥३८
 वाक्चैव मधुरा श्लृक्षणा हृदि हालाहलं विषम् । वदत्यन्तकरोत्यन्यद्द्वावेतौ विषमौ स्मृतौ ॥३९
 मोऽक्षचिन्तामतिक्रम्य योऽन्यचिन्तापरिश्रमः । हरिसेवाविहीनो यः स पशुयोनितः पशुः ॥४०
 प्रयागे विद्यमानेऽपि योऽन्यत्र स्नानमाचरेत् । दृष्टं देवं परित्यज्य अदृष्टं भजते तु यः ॥४१

अपहरण, नीच, खल, वाचाल (अधिक बोलने वाला), कायर, चपल और अज्ञान, यही छब्बीस दोष बताये गये हैं, (नरक भीओं को इन्हीं से बचना चाहिए) । विप्रेन्द्र ! इनके पचासी भेद भी बताये गये हैं, द्विजशार्दूल ! शास्त्र में उनके वर्णन किये हैं, मैं उन्हें बता रहा हूँ, सुनो ! तीन प्रकार के अधम, दो भाँति के विषम, चार प्रकार के पशु एवं कृपण (कायर) के दो भेद, पापिष्ठ के दो भेद, नष्ट के सात भेद । २३-३०। कष्ट के पाँच भेद तथा रुष्ट के दो भेद होते हैं, उसी प्रकार दुष्टों के छह भेद, पुष्ट के दो भेद, हृष्ट के आठ भेद, कुण्ठ के तीन भेद एवं अन्धे और काने के सगुण, और निर्गुण के भेद से दो-दो भेद होते हैं । चण्ड के दो, चपल के एक, चण्ड के तीन, दण्ड, खण्ड के भी दो तथा खल और नीच के आठ आठ भेद बताये गये हैं । वाचाल तथा कायर के तीन-तीन भेद एवं कायर, चपल, मलीमस (अज्ञानी) के क्रमसः दो, चार, स्तेयी (चोरी) के लक्षण कहे गये हैं—द्विजसत्तम ! इनके लक्षणों को जिनके ज्ञान होने से मनुष्य देव हो जाता है पृथक्-पृथक् मैं बता रहा हूँ, सुनो ! विप्रेन्द्र ! जूते और छत्र धारण कर गुरु एवं देवताओं के सामने चलने वाला, गुरु के सम्मुख ऊंचे, आसन पर बैठने वाला, तथा सवारी पर बैठ कर तीर्थयात्रा करने वाला प्रथम प्रकार का अधम बताया गया है । ३१-३७। विधान पूर्वक तीर्थ में स्नान करके पुनः ग्राम्य धर्म (पशुको भाँति सभी कर्म) करने वाला वह निन्दित पुरुष दूसरे प्रकार का अधम बताया गया है । ३८। हृदय में हालाहल विष रख कर मधुर एवं आकर्षक वाणी बोलने वाले, तथा जो कहते हैं कुछ कहते हैं कुछ इस प्रकार दो भाँति का विषम कहा गया है । ३९। मोक्ष की चिन्तान कर जो अन्य बातों के लिए ही चिन्ता एवं उपाय आदि करते हैं तथा हरि सेवा से वञ्चित हैं वे पशु योनि वाले से भी प्रथम पशु हैं । ४०। प्रयाग के विद्यमान होते हुए भी जो अन्यत्र स्नान तथा प्रत्यक्ष देव के त्यागपूर्वक न दिखायी पड़ने

आयुषस्तु क्षयार्थाय शास्त्रेयमृषिसम्मतः । योगाभ्यासं ततो हित्वा तृतीयश्चाधमः पशुः ॥४२
 बहूनि पुस्तकानीह शास्त्राणि विविधानि च । तस्य सारं न जानाति स एव जन्मुकः पशुः ॥४३
 बलेनच्छलछलेन^१ उपायेन प्रबंधनम् । सोऽपि स्यात्पिशुनः ख्यातः प्रणयाद्वा द्वितीयकः ॥४४
 मधुराम्बं प्रतिष्ठाप्य दैवे पित्र्ये च कर्मणि । म्लानं चापि च तिक्तात्रं यः प्रयच्छति दुर्मतिः ॥४५
 कृपणः स तु विलेयो न स्वर्गी न मोक्षभाक् । कुदाता च मुदा हीनः सक्लोधस्तु यजेत् यः ॥४६
 स एव कृपणः ख्यातः सद्वर्धमलहिष्कृतः । अदोदेण शुभत्यागी शुभकार्योपविकल्पी ॥४७
 पितृमातृगुरुत्यागी शौचाचारविवर्जितः । पित्रोरप्ये समश्नताति स पापिष्ठतसः स्मृतः ॥४८
 जीवत्पितृपरित्यक्तं सुतं सेवन्न वा क्वचित् । द्वितीयस्तु स पापिष्ठो होमलोपी वृत्तोदकः ॥४९
 साध्वाचारं च प्रच्छात्म सेवनं चापि दर्शयेत् । स नष्ट इति विज्ञेयः क्रयक्रीतं च मैथुनम् ॥५०
 जीवेद्वेदलवृत्तिर्थः भार्याविषयजीवकः । कन्याशुल्केन जीवेद्वा स्त्रीधनेन च चा क्वचित् ॥५१
 षडेव नष्टाः शास्त्रे च न स्वर्गान्नोक्षभागिनः । सदा कुद्धं भनो यस्य हीनं दृष्ट्वा प्रकोपवान् ॥५२
 भुकुटीकुटिलः कुद्धो रुष्टः पञ्चविधोदितः । अकार्यं भ्रमते नित्यं धर्मर्थं न व्यवस्थितः ॥५३

वाले देव की आराधना करता है, वह दूसरे प्रकार का प्रथम पशु है । कृषियों द्वारा निश्चित एवं शास्त्रीय योगाभ्यास के त्याग करने वाले तीसरे प्रकार के अधम पशु हैं । ४१-४२। सभी भाँति की पुस्तकें एवं सभी शास्त्रों को अपने यहाँ रखकर उसके मर्म को जानने वाला जम्बूक पशु बताया गया है । ४३। जो बलपूर्वक अथवा छल-कपट के उपायों द्वारा किसी को बंधन में डाल देता है, उसे पिशुन (चुगल) कहते हैं, और प्रणय द्वारा वही कार्य करने वाला भी दूसरे प्रकार का चुगुल कहा गया है । ४४। देवकार्य अथवा पितृ-कार्यों में जो मधुर भक्ष्य पदार्थों को अलग रख कर रुखी-सुखी और कड़वी वस्तु भोजनार्थ प्रदान करता है, ऐसे दुष्ट को स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं होती है, उसे कृपण बताया गया है । म्लान मुख होकर जो कुत्सित वस्तुओं का दान करने, एवं कुद्ध होकर हवन पूजन करने वाले को कृपण कहा गया है, वह सभी धर्मों से बहिष्कृत है । दोषहीन होने पर भी किसी शुभ वस्तु के त्याग, कल्याण मूर्ति के विक्रम, पिता, माता, एवं गुरु के त्याग करने वाले पवित्र आचरणहीन, तथा माता-पिता के संमक्ष खाने वाले को पापिष्ठ (महान्‌पापी) बताया गया है । ४५-४८। जीवित माता-पिता के त्याग, पुत्र का पालन न करने वाले दूसरे प्रकार के पापी, एवं हवन न करने वाला तीसरे प्रकार का पापिष्ठ (पापी) है । ४९। अपने पवित्र आचार को छिपा कर सेवा करने वाले को नष्ट जानना चाहिए । क्रीत (खरीद कर) मैथुन करने, देवताओं की पूजा द्वारा जीविका निर्वाह करने, बाजार में स्त्री को बैठाकर जीवन निर्वाह करने, कन्याओं के विक्रय, और स्त्री के धन से जीवन निर्वाह करने वाले ये छह भाँति के नष्ट शास्त्र में बताये गये हैं । जो कभी भी स्वर्ग एवं मोक्ष के भागी नहीं हो सकते हैं । जिसका मन सदैव कुद्ध रहता है, किसी हीन (तुच्छ) को देखते ही कोप करना, भीहें टेढ़ी रखने एवं कुद्ध रहने वाले ये पाँच प्रकार के रुष्ट कहे गये हैं । अकारण नित्य भ्रमण, धर्म के लिए कोई व्यवस्था न रखने, निद्रालु (अधिक सोने वाला), व्यसनी, शराबी, स्त्रीसेवी, सदैव

निद्रानुवर्द्धसनासक्तो मद्यपः स्त्रीनिषेवकः । दुष्टः सह सदालापः स दुष्टः सप्तधा स्मृतः ॥५४
 एकाकी मिष्टमशनाति वञ्चकः साधुनिंदकः । यथा सूकरः पुष्टः स्यात्था पुष्टः प्रकीर्तिः ॥५५
 निगमागमतन्त्राणि जाध्यापयति यो द्विजः । न शृणोति च पापात्मा स दुष्ट इति चोच्यते ॥५६
 श्रुतिः स्मृतिश्च विश्राणा नयने हैं विनिर्मिते । एकेन विकलः काणो द्वाम्यासन्धः प्रकीर्तिः ॥५७
 विवादः सोदरः भाद्रं पित्रोरप्रियकृद्वदेत् । द्विजाधमः स विजेत्रः स चण्डः शास्त्रनिन्दितः ॥५८
 पिशुगो राजगामी च शूद्रसेवक एव च । शूद्राङ्गनागमो दित्रः स चण्डश्च द्विजाधमः ॥५९
 पक्वान्नं शूद्रगेहे च यो भुइक्ते सङ्कुदेव वा । पञ्चवरात्रं शूद्रगेहे निवासी चण्ड उच्यते ॥६०
 अष्टकुष्ठान्वितः कुष्ठी त्रिकुष्ठी शास्त्रनिन्दितः । एतैः सह सदालापः स भजेतत्समोऽध्यः ॥६१
 कीटवद्भ्रमणं यस्य कुव्यापारी कुपण्डितः । अज्ञानाच्च वदेद्वर्ममग्रवृत्तिः प्रधादति ॥६२
 अविमुक्तं परित्यज्य योऽन्यदेशे वसेच्चरम् । स द्विधा शूकरपशुनिन्दितः सिद्धसम्मतः ॥६३
 कपोलेन हि संयुक्तो भुकुटीकुटिलाननः । नृपवद्वण्डयेद्यस्तु स दाढः समुदाहृतः ॥६४
 ब्रह्मस्वहरणं कृत्वा नृपदेवस्वमेद च । धनेन तेन इतरं देवं वा ब्राह्मणानपि ॥६५
 सन्तर्पयति योऽन्ताति यः प्रयच्छति वा क्वचित् । स खरश्च पशुश्रेष्ठः सर्ववेदेषु निन्दितः ॥६६
 अक्षराम्यासनिरतः पठत्येव न बुध्यते । पदशास्त्रपरित्यक्तः स पशुः स्यान्न संशयः ॥६७

दुष्टों के साथ बातचीत करने वाले ये सभी सात प्रकार के दुष्ट बताये गये हैं । ५०-५४। औरों को वच्चित कर अकेले ही मधुर भक्षणों के खाने, एवं साधुओं की निंदा करने वाले को सूकर की भाँति पुष्ट बताया गया है जो द्विज, निगम-आगम एवं तंत्रों का न अध्ययन करता है और न श्रवण ही करता है, उस पापात्मा को दुष्ट जानना चाहिए । श्रुति और स्मृति यही दोनों ब्राह्मणों के नेत्र हैं—इसमें एक से हीन होने पर काना और दोनों से हीन रहने पर अंधा कहा गया है । ५५-५७। भाइयों से झगड़े, माँ बाप को कठोर वाणी कहने वाले द्विजाधम को चंड बताया है, जो शास्त्र में निन्दित है । ५८। चुगुल, राजा के यहाँ जाने वाले, शूद्रों की सेवा करने वाले, शूद्रस्त्रियों के साथ मैथुन करने वाले को चंड ब्राह्मण कहा गया है । ५९। शूद्रों के घर में एक द्वार भी भोजन करने, और पाँच रात निवास करने वाले को भी चंड कहा गया है । ६०। आठ प्रकार के कुष्ठों के रोगी, तथा तीन प्रकार के कुष्ठों के रोगियों से सदैव बातचीत करने वाले उसी के समान अधम होते हैं । ६१। कीटों की भाँति इधर-उधर भ्रमण करने वाला, निन्दित वस्तुओं का व्यापारी, मूर्ख पंडित, अज्ञानता पूर्ण धर्म की व्याख्या करने वाला, जीविका के लिए सर्वप्रथम दौड़ने वाला, अपने यहाँ के लोगों के त्याग कर जो अन्य देश में चिरकाल तक रह जाता है, वह निन्दित शूकर पशु सिद्धों के समान व्यापात है । ६२-६३। जो कपोल, मुख एवं भीहैं टेढ़ी कर राजा की भाँति दंड प्रदान करता है, उसे दंड कहा जाता है । ६४। जो ब्राह्मण धन, तथा राजा अथवा किसी देवता की सम्पत्ति का अपहरण कर पुनः उसे किसी अन्य देव या ब्राह्मण को समर्पित, अथवा स्वयं उसके उपभोग कर या कहाँ भी प्रदान करते हैं, उन्हें पशु श्रेष्ठ खर (गधा) बताया गया है, जो सभी देवों में निन्दित है । ६५-६६। जो केवल अक्षराम्यास में ही समय व्यतीत करता है, और पढ़ता है, उसको समझता नहीं, वह यह शास्त्र का त्याग करने वाला पशु है, इसमें संदेह नहीं । ६७। जो गुरु और देवताओं के सम्मुख कहते हैं कुछ, करते हैं कुछ,

वदत्यन्यत्करोत्यन्यद्गुरुदेवाग्रतो यतः । स नीच इति विजेयो हृनाचारस्तथापरः ॥६८
 पद्गुणालङ्कृतेः साधोदौषान्मृगयते खलः । वने पुष्पफलाकीर्णे शलभः कण्टकानिव ॥६९
 दैवेन च दिहीनो यः कुसम्भाषं वेदत्तु यः । स दाचाल इति स्थातो यो हृषभ्रपतायुतः ॥७०
 चाण्डालैः सह अत्तापः पक्षिणां पोषणे रतः । भार्जरैश्चापि सम्भुक्ते यन्कृत्यं मर्कटोदितम् ॥७१
 तृणच्छेदी लोष्टरदीन् वृथा मांसाशनश्च य । चपलः स तु विजेयः परायारितस्तथा ॥७२
 स्नेहोद्वर्तनहीनो यो गन्धचन्दनवृजितः । नित्यक्रिया अकुर्वणो नित्यं स च मलीमसः ॥७३
 अन्यायेन गृहं विन्देदन्यायेन गृहान्दनम्^१ । शास्त्रादन्यद्गृहं मन्त्रं स स्तेयी ब्रह्मघातकः ॥७४
 देवगुस्तकरत्लानि^२ मणिमुक्ताश्वमेव च । गोभूमिस्वर्णहरणः स स्तेयीति निगद्यते ॥७५
 देवोऽपि भावयेत्पश्चान्मानुजोऽपि न संशयः । अन्योऽन्यभावना कार्या स स्तेयी यो न भावयेत् ॥७६
 गुरोः प्रसादाज्जयति पित्रोश्चापि प्रसादतः । करोति च यथाहं च स च स्वर्गं महीयते ॥७७
 उपकारिजनं प्राप्य न करोति परिरक्षियाम् । स तप्तनरके शेते शोणिते च पतत्यधः ॥७९
 सर्वेषां च सर्वर्णानां धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः । पृथिवीपालको राजा धर्मचक्षुरुदाहृतः ॥८०

उन आचार हीनों को नीच जानना चाहिए । ६८। पुष्पों एवं फलों से सुशोभित वन के काँटों को खोजकर जिस प्रकार पतञ्जलि निंदा करता है, उसी भाँति छहो गुणों से सुशोभित साधु-सज्जनों में दोषों के अन्वेषण दुष्ट लोग करते हैं । ६९। भाग्यहीन तथा निंदित भाषाभाषी, ऐसे निर्लज्ज को वाचाल कहा गया है । ७०। चांडालों के साथ भाषण, पक्षियों के पालन में अनुरक्त, विल्लियों के साथ भोजन करने वाले, वानरों के समान कार्य करने वाले, (अकारण) हाथ से तृण को तोड़ने वाले, मिटटी को चूर्ण करने वाले, मांसभोजी, एवं दूसरे की स्त्री से प्रेम (भोग) करने वाले, इन सबों की चपल संज्ञा है । ७१-७२। तेल, उबटन से सैदैव वन्धित रहकर गंध, एवं चन्दन का भी कभी स्पर्श तक न प्राप्त करने वाले एवं नित्यक्रिया न करने वाले को मलीमस (अस्पृश्य) कहते हैं । ७३। अन्याय से घर, स्त्री, एवं धन की प्राप्ति कर शास्त्र के अतिरिक्त मंत्र को गृह्ण स्वीकार करने वाले को ब्रह्मघाती स्तेयी कहा गया है । देवताओं की (प्रतिमा), पुस्तक रत्ल, मणि, मोती, अश्व, गो भूमि, तथा सुवर्ण के अपहरण करने वाले स्तेयी (चोर) कहते हैं । ७४-७५। मनुष्यों को देवों का विशिष्ट सम्मान प्रदर्शन करना चाहिए, पश्चात् मनुष्यों का भी । इस प्रकार अन्योन्य में सम्मान की भावना आवश्यक है, जो ऐसा न करे, वह स्तेयी है । ७६। गुरु, माता एवं माता पिता की कृपावश सर्वत्र विजय होती है, इस भाँति यथायोग्य (कर्म) करने वाले को स्वर्ग में सम्मान प्राप्त होता है । ७७। जो इन महानुभावों का पोषण न करे उसे भी स्तेयी जानना चाहिए । ७८। किसी उपकारी प्राणी के समागम में उसका स्वांगत सत्कार न करने पर उसे तप्तनरक एवं शोणित (रत्ल) वाले नरक में दुःखानुभव करना पड़ता है । ७९। समस्त जातियों के ब्राह्मण धर्मतः स्वामी तथा पृथिवी का पालन करने वाला राजा धर्मतः नेत्र बताया गया है । ८०। प्रजा पति के मुख से उत्पन्न,

१. दारानित्यर्थः । २. हरेदिति शेषः ।

प्रजापतेर्मुखोद्भूतो होरातन्त्रे यथोदितम् । तद्विदो गणनाभिज्ञा अन्यविप्राः प्रचक्षते ॥८१
 गंगाहीनो हतो देशो विप्रहीना यथा क्रिया । होराज्ञप्तिविहीनो यो देशोऽसौ विप्लवप्लवः ॥८२
 अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नशः । तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनिः ॥८३
 स्थापयेद्धर्मतो विप्रं भावयेत्कर्मवृद्धये । श्मशुयुक्तो द्विजः पूज्यः सूर्यो विप्रस्तु श्मशुलः ॥८४
 प्रत्यक्प्रदर्शनान्तुण्यं त्रिदिनं कल्पषापहम् । दर्शने ज्ञात्यविप्रस्य सूर्यं दृष्ट्वा विशुद्धयते ॥८५
 न व्रात्यत्वं सूर्यविप्रे पूजयेद्यज्ञसिद्धये । ज्योतिर्वेदरत्याधिकारः सूर्यविप्रस्य वै द्विजाः ॥८६
 ज्ञातिभेदाश्च चत्वारो भोजकः कथकस्तथा । शिवविप्रः सूर्यविप्रश्चतुर्थः यरिण्ठयते ॥८७
 कथको मध्यमस्तेषां सूर्यविप्रस्ताथोत्तमः । शिवलिङ्गार्चनरतः^१ शिवविप्रस्तु निन्दितः ॥८८
 सूर्यविप्रस्य^२ दिप्रस्य वैद्यस्य च नृपस्य च । प्रवासदेवक्षतेन सपुत्रपशुबान्धवः ॥
 अवध्यः सर्वलोकेषु राजा राज्येन पालदेत् ॥८९
 वसुर्भिर्वस्त्रगन्धादैर्माल्यैश्च विविधैरपि । देशचक्रविदः पूज्या होराचक्रविदः परा: ॥९०

तथा होरा-तन्त्र में कही गयी समस्त बातों के वेत्ता को जो अन्य ब्राह्मण है, गणक (ज्योतिषी) कहा गया है ॥८१। गंगाहीन देश उसी प्रकार नष्ट है, जिस प्रकार ब्राह्मण के बिना सम्पन्न की हुई कोई क्रिया और होरा का विशिष्ट विद्वान् जिस प्रदेश में नहीं है, वह विप्लवों से सदैव आच्छल्न रहता है ॥८२। जिस प्रकार बिना दीपक की रात्रि, एवं सूर्य हीन आकाश सुशोभित नहीं होता, उसी भाँति संवत्सर (वर्ष) हीन राजा भी भार्ग में अन्ध के समान इधर उधर भटकता रहता है ॥८३। धर्मतः ब्राह्मणों की स्थिति करके अपने कर्म के वृद्धर्थ उन्हें सम्मान प्रदर्शित करे, श्मशु (दाढ़ी) युक्त द्विज की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि दाढ़ी युक्त ही ब्राह्मण सूर्य का स्वरूप बताया गया है ॥८४। दिन के अवसान समय में उनके दर्शन मात्र से पृण्य होता है, यदि वैसा ही दर्शन तीन दिन तक होता रहे तो उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । ब्रात्य (जाति च्युत अथवा समयपर यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो) ऐसे ब्राह्मण के दर्शन हो जाते में सूर्य के देखने ही पर वह विशुद्ध होता है ॥८५। सूर्य-विप्र (दाढ़ी वाला ब्राह्मण) कभी पतित नहीं होता है, यज्ञ की सफलता के लिए उसकी पूजा अवश्य करनी चाहिए । द्विजवृन्द ! सूर्य-विप्र ही ज्योतिष शास्त्र, के अधिकारी कहे गये हैं ॥८६। भोजक, कथक, शिव विप्र, और सूर्यविप्र, यही चार प्रकार के उनमें जाति भेद भी बताये गये हैं ॥८७। इनमें कथक मध्यम, सूर्य विप्र सर्वश्रेष्ठ एवं शिवलिंग की अर्चा में अनुरक्त होने के नाते शिव-विप्र निन्दित कहा गया है ॥८८। सूर्य-विप्र, ब्राह्मण, वैद्य, एवं राजा की विदेश यात्रा में अक्षत द्वारा मांगलिक पूजा होनी चाहिए । तथा वहाँ के राजा का सहयोग इस प्रकार प्राप्त होना चाहिए जिससे उन्हें किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव न करना पड़े । उनके पुत्र, पशु और बन्धु गण सभी समस्त लोकों में अवध्य है, तथा राजा अपने राज्य द्वारा उनका पालन पोषण करता रहे ॥८९। धन, वस्त्र, गंध, माल्य आदि अनेक भाँति के उपकरणों द्वारा देश चक्र वेत्ता (समस्त देशों के भली भाँति जाता), की पूजा करनी चाहिए, होरा चक्र के विद्वान् की पूजा तो परमावश्यक है, एवं सूर्य-चक्र वेत्ता की भी अवहेलना किसी

१. जीविकायै इति शेषः । २. शेषषष्ठी ।

सूर्यचक्रविदः पूज्या नावमन्येत्कथञ्चन । सिद्धद्विं च धनंद्वि च य इच्छेदायुषा समन् ॥
गणविप्रसमः पूज्यो दैवज्ञः समुदाहृतः ॥१९१

जाते दाले निरूप्ये च लग्नग्रहनिरूपणम् । संस्थानं सूर्यविप्रो यः सूर्यविप्रस्य सत्तमाः ॥
द्विमात्रिकां समस्यस्य सर्वदेवफलं लभेत् ॥१९२

हति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पदेण प्रथमभागे पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

गुरुवर्णनम्

सूत उदाच

चतुर्णामिपि वर्णानां नान्यो बन्धुः प्रक्षते । ऋते पितुर्द्विजश्रेष्ठा इतीयं नैगमी स्मृतिः ॥१
त्रयोऽपि गुरुवः श्रेष्ठास्तामां साता परो गुहः । ये सोदरा ज्येष्ठश्रेष्ठा उत्तरोत्तरतो गुहः ॥२
द्वादश्यां तु अमावस्यामर्थ वा रविसङ्करमे । वासांसि दक्षिणा देशा सणिमुक्ता यथारुचि ॥३
अयने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यग्रहे तथा । प्राप्ते चापरपक्षे तु भोजयेच्चापि शक्तिः ॥४
पश्चात्प्रवन्दयेत्पादौ मन्त्रेणानेन सत्तमाः । विधिवद्वन्दनादेव सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥५
स्वर्गापिवर्गप्रदमेकप्रादां ब्रह्मस्वरूपं पितरं नमामि ।

प्रकार न करनी चाहिए । अपने जीवन के साथ ही जो सिद्धि, क्रद्धि, एवं धन वृद्धि के इच्छुक हैं, उन्हें गणविप्र के समान ही दैवज्ञ (ज्योतिषी) की अर्चा अवश्य करनी चाहिए । १०-११। श्रेष्ठगण ! सूर्यविप्र के गृहपुत्र उत्पन्न होने पर किसी सूर्यविप्र को उचित है कि उसके लग्न, ग्रह, एवं लक्षणों की व्याख्या करे, द्विमात्रिक के अम्यास (अद्ययन) करने से समस्त वेदाध्ययन के फलों की प्राप्ति होती है । १२

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पद के प्रथम भाग में पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

गुरु का वर्णन

सूत बोले—द्विजश्रेष्ठ ! पिता के अतिरिक्त चारो वर्णों का अन्य कोई बंधु नहीं बताया गया है, यह निगमों का सम्मत है । तीनों भाँति के गुरुण श्रेष्ठ बताये गये है, किन्तु उन दोनों में माता सर्वप्रधान गुरु हैं, सहोदरों (भाइयों) में अपने से ज्येष्ठ सभी क्रमशः गुरु एवं श्रेष्ठ कहे गये हैं । १-२। द्वादशी, अमावस्या, एवं सूर्य की संक्रान्ति के समय वस्त्रों के साथ मनोनुकूल मणि मुक्ता की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । ३। (दोनों) अयन, विषुव, चन्द्र, सूर्य ग्रहण, और शाद्व काल में शक्त्यनुसार उन्हें भोजन कराना चाहिए । ४। श्रेष्ठवृन्द ! उसके पश्चात मंत्रोच्चारण पूर्वक उनका पादाभिवंदन करे, क्योंकि विधान पूर्वक उनकी बंदना करने से समस्त तीर्थों के फल प्राप्त होते हैं । ५। मैं उस पिता को नमस्कार करता हूँ, जो स्वर्ग, मोक्ष का प्रदायक, सर्वश्रेष्ठ, सभी के आदि में स्थित एवं ब्रह्मस्वरूप हैं, जिसके ही द्वारा

यतो जगत्पथति चाहृष्यं तं तर्णयामः सलिलैस्तिलैर्युतैः ॥६

पितरो जनयन्तीह पितरः पात्यन्ति च । पितरो ब्रह्मरूपा हि तेभ्यो नित्यं नमोनमः ॥७
 यस्माद्विजयते लोकस्तस्माद्वरः प्रवर्तते । नमस्तुभ्यं पितः साक्षाद्ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥८
 या कुक्षिविवरे कृत्वा स्वयं रक्षति सर्वतः । नमामि जननीं देवीं चरां प्रकृतिरूपिणीम् ॥९
 कृच्छ्रेण महता देव्या धारितोऽहं यथोदरे । त्वत्प्रसादाज्जगदृष्टं मार्तनित्यं नमोऽस्तु ते ॥१०
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि सागरादीनि सर्वशः । वसन्ति यत्र तां नौमि मातरं शूतिहेतवे ॥११
 गुरुदेवप्रसादेन लब्धा विद्या यशस्करी । शिवरूप नमस्तस्मै संसारार्णवसेतवे ॥१२
 वेदवेदाङ्गशास्त्राणां तत्त्वं यश्च प्रतिष्ठितम् । आधारः सर्वभूतानामद्रजन्मद्वयमोऽस्तु ते ॥१३
 ब्राह्मणो जगतां तीर्थं पावनं परमं यतः । भूदेव हरे मे पापं विष्णुरूपिण्यनोऽस्तु ते ॥१४
 पितामहं च प्रणमेत्सर्वादौ सातरं गुरुम् । मातामहं च तदनु आचार्यस्थ ऋत्विजम् ॥१५
 मातृमन्त्रैश्च प्रथमं प्रणमेद्वृक्तिभावतः । यथाग्रजस्तथा ज्येष्ठः पितृव्योऽपि द्विजोत्तमाः ॥१६
 दृष्टादृष्टे च म गुरुर्युर्मतिः तथा गुरुः । दृष्टादृष्टस्तृतीयः स्यात्सूर्योऽप्निश्चन्द्र एव च ॥१७
 मन्त्रदाता गुरुः स्थ्यातस्सप्तमः परिकीर्तिः । कभोजनगुरुः श्रेष्ठः स्वर्गापिवर्गहेतुकः ॥१८
 दृष्टदेवं च यो हित्वा अदृष्टं च निषेदते । पापात्मा परमः सैकस्तिर्यग्योर्नि च गच्छति ॥१९

समस्त शिव का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है, सौन्दर्यपूर्ण इसी के लिए तिल-जलयुक्त का मैं तर्पण कर रहा हूँ ।६। पिता ही उत्पन्न करता है, और पालन-पोषण भी, इसलिए ब्रह्मस्वरूप उस पिता को नित्य नमस्कार है, ।७। उन्हीं द्वारा लोक में विजय प्राप्त होती है और धर्म का प्रवर्तक वहीं है, अतः हे साक्षात् ब्रह्म रूप पिता ! तुम्हें नमस्कार है ।८। जो अपने कुक्षिस्थल में रखकर सभी भाँति रक्षा करती है, प्रकृति-रूप एवं सर्वप्रथम उस जननी देवी को नमस्कार है ।९। हे माता ! अपनी कुक्षि में रखकर अत्यन्त दुःखों के अनुभव करती ही हृदय आपने मुझे सुरक्षित रखा है, और आप की ही प्रसन्नता से मैं संसार का दर्शन कर रहा हूँ, इसलिए तुम्हें नित्य नमस्कार है । इस भूतल के समस्त तीर्थ, तथा समस्त समुद्र जिनके अंगों में निवास करते हैं, अपने ऐश्वर्यर्थ मैं उस माता को नमस्कार करता हूँ ।१०-११। गुरुदेव के प्रसाद से मैंने उस प्रसिद्ध विद्या की प्राप्ति कीहै, अतः संसारसागर के पार होने के लिए हे कल्याण रूप ! आपको नमस्कार है ।१२। वेद, वेदांग, एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा समस्त प्राणियों के आधार रूप उस अग्रजन्मा (ब्राह्मण) को नमस्कार है ।१३। भूदेव ! मेरे पापोंका अपहरण कीजिए, क्योंकि ब्राह्मण ही संसार में परम पवित्र तीर्थ रूप है, हे विष्णुरूप वाले ! तुम्हें नमस्कार है ।१४। सर्वप्रथम पितामह, गुरुरूपमाता, मातामह, आचार्य, और ऋत्विजों को क्रमशः अभिवादन करना चाहिए ।१५। द्विजोत्तम ! भक्तिरूपक माता के मंत्रों द्वारा प्रथम माता की वंदना करके पश्चात् ज्येष्ठ माता के समान पितृव्य (चाचा) की भी वंदना करे, क्योंकि वे भी उसी भाँति ज्येष्ठ हैं । गुरु के प्रत्यक्ष दर्शन होने पर गुरु का रूप है ही, किन्तु उनके परोक्ष रहने पर माता गुरुरूप है । उसी दृष्ट एवं अदृष्ट की भाँति सूर्य, अग्नि, तथा चन्द्रमा भी तीसरे गुरु हैं ।१६-१७। मन्त्र देने वाला ब्राह्मण सातवाँ प्रव्यात गुरु बताया गया है, तपस्वी गुरु द्वारा स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, अतः वह सर्वश्रेष्ठ है ।१८। प्रत्यक्ष देवता के त्याग कर अदृष्ट देव की उपासना करने

यथा पिता ज्येष्ठपिता कनीयांश्च तथा द्विजाः । ज्येष्ठो भ्राता पितृतुल्यो मात्यः सत्कारभाग्यतः ॥२०
 आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापते । माता स्यात्पृथिवीमूर्तिश्रातिरो मूर्तिरात्मनः ॥२१
 पिता मेरुर्वशिष्ठः स्याद्गुर्ममूर्तिः सनातनः । स चाहि दृष्टदेवः स्यात्तदाज्ञां परिसालयेत् ॥२२
 पितामहं च पित्रये हृष्यकव्यैश्च तर्पयेत् । स याति ब्रह्मणः स्थानं यस्मान्नावर्तते पुनः ॥२३
 तस्य पादोदकल्पानादगङ्गा नार्हति केवलम् । तथावत्तोक्तनात्स्य ज्योतिर्तिज्ञशतैश्च किम् ॥२४
 द्वार्णत्रशत्कुण्डकशिलास्पर्शने यददृशं फलम् । तादृशं कोटितुणितं पितामहप्रदक्षिणे ॥२५
 शतमातृवरिष्ठाश्च पितामहाश्च पोषणे । गुणास्तदर्शने वित्राः संसारे च पुनर्विशेत् ॥२६
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे गुरुगुणवर्णनं नाम उष्ठोध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

गुरुवर्णनम्

सूत उवाच

समाख्यामीह विप्रेन्द्रा इतिहासपुरातनम् । श्रवणेऽपि च धर्मात्मञ्छूयतां यन्मया पुरा ॥१

वाला यहान् पापी होता है, एवं उसे पक्षी के यहाँ जन्म लेना पड़ता है । ११। द्विज ! पिता की भाँति पिता के बड़े भ्राता (ताऊ) एवं छोटे भ्राता तथा अपना ज्येष्ठ भ्राता ये सभी पिता के समान ही सत्कार के योग्य होते हैं । २०। आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति, पिता प्रजापति का स्वरूप, माता पृथिवी का स्वरूप, और मातृगण आत्मीय स्वरूप हैं । २१। पिता, मेरु, वशिष्ठ, धर्मस्वरूप, सनातन, एवं प्रत्यक्ष देव भी हैं, अतः उनकी आज्ञा सदेव शिरोधार्य तथा पालन करना चाहिए । २२। पिता के समक्ष जो हृष्यकव्य द्वारा पितामह को तृप्त करता है, उसे ब्रह्म के उस स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ से कभी लौटना नहीं पड़ता । २३। उनके पाद-प्रक्षालन वाले जल से स्नान करने पर उसकी मर्यादा गंगा से कहीं अधिक होती है, यही नहीं प्रत्युत उसके दर्शन मात्र से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे फल सैकड़ों ज्योतिर्तिज्ञ की आराधना द्वारा प्राप्त नहीं हो सकते हैं । २४। बत्तीस कुण्डों वाली शिला के स्पर्श से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे फल करोड़ों गुने होकर पितामह की प्रदक्षिणा करने पर प्राप्त बताये गये हैं । २५। पितामही सैकड़ों माताओं से श्रेष्ठ है, उसके दर्शन में वह पुण्य प्राप्त होता है, जिसके द्वारा पुनर्जन्म नहीं होता है । २६

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में गुरुवर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

गुरु-वर्णन

सूत बोले—विप्रेन्द्र ! धर्मात्मन् ! मैंने प्राचीन इतिहास एवं पुराण-श्रवण के विधान को पहले समय में जिस भाँति सुना है, वैसा ही वर्णन कर रहा हूँ । १। पूँछने पर महातेजा एवं प्रभु भगवान् विरच्च

पृष्ठोऽद्येचन्महतेजा विरिञ्चो भगवान्प्रभुः। हंत तै कथयास्येष पुराणश्रवणे विधिम् ॥२
 इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या द्विजोत्तमाः। मुच्यते सर्वपापेभ्यः ब्रह्महत्याशतं च यत् ॥३
 सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति दः। तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते शङ्करस्तथा ॥४
 प्रत्यूषे भगवान्ब्रह्मा दिनाते तुष्यते हरिः। महादेवस्तथा रात्रौ शृणतां पठतां नृणाम् ॥५
 शुक्लवस्त्रधरश्चेद चैताजिनकुशोत्तरः। प्रदक्षिणत्रयं कृयाद्या तर्स्मन्देवता गुरौ ॥६
 नात्मुच्छ्रुतं नातिनीचं स्वासनं भजते ततः। दिव्यतिभ्यो नमस्कृत्य ॐ काराद्यिष्टितानपि ॥७
 पुस्तकं धर्मशास्त्रस्य धर्माधिष्ठानशास्त्रतम्। आत्मानां शिवो देवतन्नादीनां च शारदा ॥८
 जामलानां गणपतिर्दधिराणां शतक्रतुः। नरायणो भारतस्य तथा रामायणस्य च ॥९
 वासुदेवो भवेद्देवः सप्तानां शृणु सत्तम्! आदित्यो वासुदेवश्च माधवो रामकेशवौ ॥१०
 वनमाली महादेवः सप्तानां सप्तपर्वसु । विष्णुधर्मादिकानां च शिवो ज्ञेयः सनातनः ॥

अथ चादिपुराणस्य विरिञ्चः परिकीर्तिः ॥११
 शुद्धौदनं यवक्षीरं पायसं कृशरं तथा । कृशरात्रं च वा दद्यात्क्रमाद्बलिगणं विदुः ॥१२
 शालिभक्तं सगोधूमं तिलाक्षतविनिश्चितम् । गच्छं च सफलं चैव देयश्रैस्यस्त्वयं बलिः ॥१३
 पृथक्पृथक्वैव कांस्ये विन्यसेद्विषु मध्यतः। पठेच्चापि विधानेन स यागः षष्ठ्यः परः ॥१४
 शीतोदकं मधुं क्षीरं सितेद्वोश्च रसो गुडः। सगर्भश्च परो ज्ञेयः षष्ठ्यश्रापरो बलिः ॥१५
 शालितण्डुलप्रस्त्वं तु तदर्थं वा तदर्थकम् । क्षीरेणापि च संभक्तं यवक्षीरमिदं स्मृतम् ॥१६

देव ने जो कुछ कहाथा, मैं उसी पुराण-श्रवण के विधान को बता रहा हूँ ! द्विजोत्तम ! भक्तिपूर्वक इतिहास-पुराणों के श्रवण करने से समस्त पाप यहाँ तक कि सैकड़ों ब्रह्म हत्याएँ भी नष्ट हो जाती हैं । २-३। सायंकाल, प्रातःकाल तथा रात्रि के समय पवित्रतापूर्ण जो उसका श्रवण करता है, उसके ऊपर ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर प्रसन्न होते हैं । ४। प्रातःकाल में भगवान्, सायंकाल में ब्रह्मा और रात्रि में सुनने अथवा पढ़ने वाले के ऊपर महादेव प्रसन्न होते हैं । ५। शुक्लवस्त्रधारणकर मृगचर्म तथा कुशों के आसन पर स्थित उस देव-गुरु की तीन प्रदक्षिणा करने के उपरान्त उस आसन पर जो अत्यन्त ही ऊँचा-नीचा न हो, स्थित होकर ओंकारपूर्वक दिक्पालों को नमस्कार करे, क्योंकि धर्मशास्त्र की पुस्तक, धर्म का सनातन अधिष्ठान रूप है । वेदों के प्रधान देव शिव, तत्रों की शारदा देवी, जामलों के गणपति, डामरों के शतक्रतु (इन्द्र), महाभारत के नारायण, रामायण के वासुदेव, आदित्य, वासुदेव, माधव, राम, केशव, वनमाली और महादेव यही सातों पर्वों के अधीश्वर हैं, तथा उसी भाँति विष्णु धर्मादिकों के सनातन (अनश्वर) शिव एवं आदि पुराण के अधिपति विरिञ्चि भगवान् हैं । ६-१। शुद्धतापूर्ण बनाया गया भात, यव, क्षीर, क्षीर और कृशरात्र (खिचड़ी) क्रमशः इन्हीं की बलि प्रदान करनी चाहिए, तथा साठी चावल के भात, गेहूँ समेत तिल एवं अक्षत और फल सहित गाय के धी, दूध भी उन्हें प्रदान करे । १२-१३। दिशाओं के मध्य में स्थित कांस्यपात्र में रखकर पृथक-पृथक् बलि के निमित्त समर्पित कर विधानपूर्वक उसके पठन होने चाहिए, इसे षष्ठ्य याग बताया गया है । १४। शीतल जल, शहद, क्षीर, उसके सफेद रस (चीनी) गुड़, इसी को षष्ठ्य बलि कहते हैं । १५। साठी चावल एक सेर, आधा सेर अथवा पाव भर के क्षीर बनाकर

जीरं भागाष्टकं प्राहूं सप्तभागेन संस्थितम् । हैमन्तिकं सितार्थं च ताण्डुलं प्रस्वेच्चरूपम् ॥१७
 अशीतिप्लमानेन सिद्धमासादयेत्तः । भागार्धेन ददेत्पश्चान्माक्षिकं वा सितामपि ॥१८
 गुडमिश्रेण यो दद्यात्सम्पर्को ज्ञायते क्वचित् । सम्पृक्तं माक्षिकेणापि दद्यादिक्षुरसं बुधः ॥
 गृहीत्वा याचकः शुद्धः शृणुत द्विजसत्तमा: ॥१९
 शृणुते वाधीयतानो यो दद्याद्वस्ते च पुस्तकम् । समुत्थाय च गृहीयात्प्रणम्भा विनिवेदयेत् ॥२०
 पूर्वस्थः श्रावको दिग्गो विष्वात्स्तस्यदक्षिणे । पश्चिमाशामुखेनैव तर्जन्याङ्गगुष्ठया सह ॥२१
 प्रस्तरेणापि हस्तेन विन्यासः पण्डितः सदा । इतोऽन्यथा न कर्तव्यः कृत्वा न्यासमयाभ्युत्त ॥२२
 असकृदिन्यसेद्विधाः पावमानी जले जपेत् । वेदान्तागमपेदान्तविधिरेष सृतो बुधैः ॥२३
 यमदिक्समुखे श्रोता वाचकश्रोतरामुखः । पुराणभारतार्थान एव वै कथितो विधिः ॥२४
 वैपरीत्येन विधिना विज्ञेयो द्विजसत्तमा: । रामायणे धर्मशास्त्रे हरिवर्णे च सत्तमा: ॥२५
 इतोऽन्यथा यातुधानाः प्रलुप्यन्ति फलं यतः । तस्माद्विधिविधानेन शृणुयादथवा पठेत् ॥२६
 श्रुत्वा प्रति पुण्यविद्यां योऽशनीयान्मांसमेव तु । स याति गार्दभी योर्नियदि भैरुनिनः क्वचित् ॥२७
 यदि देवालये तीर्थं वाचयेच्छृणुयादथ । यस्य देवगृहे तस्य तस्य तीर्थस्य वर्णनन् ॥२८
 माहात्म्यश्रवणादेव गोदानस्य फलं लभेत् । महागुरोश्च माहात्म्यं पित्रौरग्रे न च स्मरेत् ॥

बलि प्रदान करे, इसे यवक्षीर नामक बलि बताया गया है । १६। आठवाँ भाग पृथक् रख कर दूध के शेष सात भाग में चीनी डालकर बनाये गये उस चावल के चरू को हैमन्तिक (बलि) बताया गया है । अस्सी पल (एक सेर) की लीटे में आधाभाग शहद अथवा चीनी डालें, उसके प्रभाव में गुडमिश्रित ही बनाये, विद्वानों को चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो, ऊब के रस के लिए ही प्रयत्न करें । द्विजसत्तम ! इस प्रकार याचक शुद्ध होकर (पुराण के) श्रवण करे, पुराण की पुस्तक कोई हाथ में प्रदान करना चाहे, तो उठकर उसे सादर ग्रहण कर प्रणामपूर्वक देव के सम्मुख उसका निवेदन करना चाहिए । १७-२०। श्रवण करने वाले ब्राह्मण को पूर्वाभिमुख और उसकी दाहिनी ओर पश्चिमाभिमुख बैठकर वाचक सदैव अपनी तर्जनी और अंगूठे के द्वारा अथवा मणि एवं बहुमूल्य पत्थरों से विभूषित हाथ के द्वारा (पुराणों के भावों को) श्रोताओं को हृदयञ्जलि कराये, इसके विपरीत न होने चाहिए । २१-२२। जल में स्थित होकर पवमानी के न्यास करना आवश्यक बताया गया है, विद्वानों ने इसे ही वेदान्त विधान कहा है । २३। श्रोता को दक्षिणाभिमुख तथा वाचक को उत्तराभिमुख होकर पुराण एवं महाभारत के श्रवण-परायण करने के विधान बताये गये हैं । २४। द्विजसत्तम ! इसके विपरीत रामायण, धर्मशास्त्र और हरिवंश के श्रवण-परायण के विधान कहे गये हैं । २५। इसके प्रतिकूल अनियमित श्रवणादि करने से उसके फलों को यातुधान (राक्षस) नष्ट कर देते हैं, इसलिए विधानपूर्वक ही श्रवण-पारायण करने चाहिए । २६। इन पुण्यविद्याओं के श्रवण करने पर भी जो मांस भोजन करता है, उसे एवं मैथुन करने वाले को गधे की शरीर धारण करनी पड़ती है । २७। जहाँ तक सम्भव हो सके तो किसी देवालय अथवा तीर्थ में श्रवण करना चाहिए, क्योंकि किसी भी देवालय या तीर्थ में उसके वर्णनपूर्वक केवल माहात्म्य का ही श्रवण करने से गोदान के फल प्राप्त होते हैं । माता-पिता के सम्मुख महागुरु के महत्व की चर्चा न करनी चाहिए, प्रत्येक

पितुर्महात्म्यं यत्पुत्रेवच्चं संसदि पर्वणि
वासुदेवाग्रतश्चापि रुद्रमाहात्म्यदर्शनम् । रुद्राये वासुदेवस्य कीर्तनं पुण्यदर्घनम् ॥३०
दुर्गाग्रे शिष्ठसूर्यस्य वैष्णवाख्यानमेव च । यः करोति त्रिमूढात्मा गार्दभी योनिमाविशेत् ॥३१
गुरोरनुज्ञया पित्रोः प्रकुर्यादभिवादनम् । अनुज्ञया तथा पित्रोहरे: कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥३२
न विष्णुर्न च ब्रह्मा न च रुद्रः शचीपतिः । सर्ववेदेन तत्तुल्यं सर्वधर्मपरायणम् ॥३३
सर्वज्ञानमयं चैव सर्वज्ञेन च तत्समम् । तत्सादिद्वजन्मन्त्यित्रोऽहिं सेवनादब्रह्मशास्त्रतम् ॥३४
गुरुम्यो वन्दनं व्यर्थं पितरं यो न तर्पयेत् । जीवन्त तर्पयेन्मुख्यं गडायां मरणेऽपि च ॥
उभयोस्तर्पणं नास्ति जीवश्चपि न जीवति
व्यर्थं भागवतं विप्रा नारास्त्विहीनकम्
आदिपर्वणि हीने तु भारताख्यं न धारयेत् । विनाश्चमेधिकं विप्रा विना यज्ञाननं विना ॥३७
दानकर्मविहीनं च मोक्षधर्मं न धारयेत् । भारतं च दिवारोहधारणादौ वरं वजेत् ॥३८
वायुपुराणमश्रुत्वा शास्त्रं च यौगिकं विना । वायुहीनं देहिकुलं वृथा तस्य न धारकम् ॥३९
तथा वायुपुराणं यद्विहीनं श्रव्यमन्यकम् । यथा सुन्दरकाण्डेन आरण्यं च न धारयेत् ॥४०
लङ्कां विना चादिकाण्डं तल्लिखित्वा न धारयेत् । पाराशरं विना व्यासं याज्ञवल्क्यं विना मखम् ॥४१
दक्षं विना न शङ्खं च शङ्खहीनं बृहस्पतिम् । वह्नीयं श्रवणाद्येन न च युक्तिमयापयेत् ॥४२

पर्व के दिनों में एकचित्त मनुष्यों के समक्ष पुत्र ही अपने पिता के महत्त्व की व्याख्या करे । २८-२९। भगवान् वासुदेव के सम्मुख रुद्र माहात्म्य तथा रुद्र के समक्ष वासुदेव के माहात्म्य का वर्णन करना पुण्यवर्धक होता है । ३०। दुर्गाजी के सम्मुख शिव, सूर्य एवं विष्णु के माहात्म्य का वर्णन जो करता है, उस मूढ़ को गदा हीना अनिवार्य होता है । ३१। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर माता-पिता, का अभिवादन तथा माता-पिता की आज्ञा प्राप्त होने पर हरि की प्रदक्षिणा अवश्य करनी चाहिए । ३२। विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र एवं इन्द्र भी उनकी समता प्राप्त नहीं कर सकते, सर्वधर्मों के पारायण होने के नाते केवल वेद ही उनकी समता के योग्य है, क्योंकि वह समस्त ज्ञानमय है और वे सर्वज्ञ हैं, इसीलिए उन दोनों की समता अनुचित नहीं कही गयी है, अतः द्विजन्मन् । माता-पिता की सेवा करने से ब्रह्मा की प्राप्ति होती है । जो अपने माता-पिता के तर्पण नहीं करता है, उसकी गुरु-वन्दना व्यर्थ हो जाती है, उनके जीवित रहने पर तर्पण करना अनुचित है और गगा में प्राणान्त होने पर भी वह जीवित नहीं कहा जा सकता है । ३३-३५। पुराणों का श्रवण करना पुण्य बताया गया है, किन्तु भागवत-विहीन के श्रवण में नहीं । विप्रगण ! नरसिंह चरित्रहीन भागवत-श्रवण भी पुण्यदायक नहीं होता है । ३६। विप्रवृन्द ! आदिपर्व, अश्वमेध के पर्व, यज्ञप्रमुखपर्व हीन महाभारत का श्रवण भी व्यर्थ-सा कहा गया है । ३७। दान कर्म-विहीन मोक्ष धर्माचारण न करना चाहिए । स्वर्ग-प्रस्थान के समय एवं नियमों के विवेचनपूर्वक पालन करने के लिए महाभारत का श्रवण आवश्यक होता है । ३८। प्राण-वायुहीन प्राणी का रहना सर्वथा असम्भव है, उसी भाँति योगशास्त्र बिना तथा वायु पुराण के श्रवण बिना (अन्य के श्रवण) व्यर्थ है । ३९। जिस प्रकार सुन्दरकाण्ड के पश्चात् आरण्यकाण्ड के पारायण आदि नहीं होते उसी भाँति वायुपुराणहीन अन्य (पुराणों) के श्रवण भी । ४०। आदिकाण्ड के बिना केवल लङ्काकाण्ड को लिखकर न धारण करना चाहिए, उसी भाँति पाराशर के बिना व्यास, याज्ञवल्क्य के बिना मख (यज्ञ),

द्वावापृथिव्यौ पातालं तस्यान्तः समुद्राहृतम् । पौराणिककथायुक्त्युस्तको देवपूजितः ॥६८
 न शस्यः पूजनीयश्च गृहे स्थाप्येत मानवः । यो यस्मै शूद्रो विप्राय वृत्तिं दद्याच्च मानवः ॥६९
 स यति ब्रह्मसदनं मणिवर्त्मादिकुट्टिमस् । न शस्यः पूजनीयश्च गृहे स्थाप्येत मानवः ॥७०
 पत्राणामग्रभारे तु वेधं कुर्यात्सुवर्जुलम् । श्रवणात्मन्मात्रेण तत्र पद्मं च वरुर्लम् ॥७१
 संहितागमतन्त्रेषु प्रतिवेदे च सद्गुलम् । प्रकुर्याच्चित्ततापेन ततः शङ्कपुरं व्रजेत् ॥७२
 मध्यं तस्य हरेदायुः पार्श्ववेदेः शिवं हरेत् । युग्मवेदेऽजयं दद्यादेकवेदे बलिर्भदेत् ॥७३
 परमं प्रकृतेर्गुह्यं स्थानं देवैर्विनिर्मितम् । पूरदेत्ताम्रलिङ्गेन अथ रैत्यमयेन वा ॥७४
 अशक्तो बिल्वकाधस्य तथा श्रीपर्जिकस्य च । न काष्ठस्य नवं शस्य न लौहं योजयेत्क्वचित् ॥७५
 प्रागारम्भश्लोकशतं धर्मशास्त्रस्य वै लिखेत् । संहितायां पुराणायां युग्मकल्पं तदर्धकम् ॥७६
 ब्रह्मचर्येण विलिखेन्न मोहाद्ब्रह्मणः क्वचित् । तथापि चाखिलव्यासलेखनात्सन्ततिक्षयः ॥७७
 अनामात्वे हेमयुतां बलाकं चित्तमेव च । न लिखेत्तिलभागं च हरिवंशस्य मत्तनाः ॥७८
 गारुडस्य च स्कान्दस्य न लिखेन्मध्यतन्त्रकम् । लेखनं हरिवंशस्य व्रतस्थो नियमैयुतः ॥७९
 गृहस्थो न लिखेद्ग्रन्थं लिखेच्च भयुतां विना । लेखने पारिजातस्य मत्स्यमांसाशिनं लिखेत् ॥८०

द्वासेरे चरण से आबद्ध होने को काम-रूप तथा आकाश, पृथिवी एवं पाताल रूप उसका मध्य भाग बताया गया है । इस पौराणिक कथाओं समेत वह पुस्तक देवों द्वारा सम्मानित होती है । ६७-६८। मनुष्यों को चाहिए कि उस प्रशस्त एवं पूजनीय युस्तक को घर में स्थापित न करें । जो शूद्र किसी ब्राह्मण के लिए जीविका प्रदान करता है, उसे मणिविभूषित भाग एवं कुहिम (भूमि के ऊपरी भाग) वाले ब्रह्मन्दिर की प्राप्ति होती है । प्रत्येक पत्रों के अग्रभाग में सोन्दर्यपूर्ण गोलाकार वेध तथा गोलाकार के पदम की रचना करनी चाहिए । ७१-७२। संहिता, आगम (शास्त्र) एवं तन्त्रों के प्रत्येक वेदों में संतप्तचित्त द्वारा संकुल की रचना करने से इन्द्रपुर की प्राप्ति होती है । ७२। (उसके) मध्य में वेधनिर्माण द्वारा आयु-क्षय, पार्श्व भाग में वेध करने से शिव (कल्याण) के अपहरण, युग्मवेदों द्वारा जय की प्राप्ति और एक वेध द्वारा बलि प्राप्ति बताया गया है । ७३। प्रकृति के दैव द्वारा निर्मित उस परम गृह्य स्थान की पूर्ति ताँबे अथवा पीतल द्वारा होनी चाहिए । ७४। समर्थता के कारण वेल के काष्ठ या सेमर के काष्ठ द्वारा उसकी पूर्ति करनी चाहिए, किन्तु किसी वृक्ष के नये फल अथवा लोह द्वारा उसकी पूर्ति कभी न करे । ७५। धर्मशास्त्र के लिखते समय आरम्भ करने पर सौश्लोकों के उपरान्त ही विराम करना चाहिए । इसी प्रकार प्राचीन संहिताओं के एक कल्प के पश्चात् ही विराम करें । ब्रह्मचर्य के पालनपूर्वक उसका लेखन-विधान बताया गया है, कभी भी मोह के आवेश में आकर उसके स्वलन न होने पाये । तथापि (नियमपूर्वक रहने पर भी) संतान-क्षय हो जाता ही है । ७६-७७। सत्तम ! उसके लेखक के नाम न लिखने पर भी वही दोष बताया गया है, चंचलचित्त होकर कभी न लिखना चाहिए तथा हरिवंश का लेख कभी अधूरा न करें । ७८। गरुड पुराण एवं स्कन्दपुराण के मध्य में स्थित तन्त्र भाग को न लिखना चाहिए । व्रत एवं नियम पालनपूर्वक ही हरिवंश का लिखना बताया गया है, गृहस्थ को ग्रन्थ-लेखन न करना चाहिए, किन्तु यदि लिखना ही चाहे, तो मथुरा का त्याग करके लिखे । पारिजात के लिखने में मत्स्य-मांस भोगी का ही उल्लेख करना

इल्मीकिसंहितायाश्च लेखने च तथा क्वचित् । स्तोत्रमात्रं लिखेद्विष्ठा अव्रती न लिखेत्क्वचित् ॥८१
 अब्राह्मणेन लिखितं निष्फलं परिकीर्तितम् ॥८२
 पतितैरपि पाखण्डैर्न स्त्री विलिखति क्लचित् । दुर्दिचारो दुष्टभार्यो दुर्मतिश्चापि लेखकः ॥
 न लिखेद्वर्षशारत्रं च उरत्तं स्तोत्रसंहितम् ॥८३
 तत्त्वं प्राप्नुवन्कर्तव्यं सुवर्णरजतस्त्वं च । कज्जलैर्नलिनं कुर्यात्स्त्री निर्यासमन्त्रितः ॥८४
 जीवन्त्याश्च रसयुक्तैर्भूषणिकर्दमलोलुपैः । वङ्गुन्यान्मुख्यायुतैर्वापि पीतयोगैरथापि वा ॥८५
 कृष्णं दायुत्रिं विद्यात्पीते वायुक्षयो भवेत् । रक्ते पुष्टिमवाप्नोति कृष्णे च सम्पदागमः ॥८६
 इतिहासपुराणानां विलिखेद्वन्मुखंच्छृणु । वायव्यादिमुखेनैव काष्ठवेदं च संलिखेत् ॥८७
 पूर्वामुखे चार्थहानिश्चरे च मुखे श्रियः । मरणं दक्षिणास्ये तु पश्चिमास्ये धनक्षयः ॥८८
 पितृमेधे भुवः कम्ये न लिखेज्जन्मवासरे । अशौचे मृतके सूतावमायां रविसङ्क्रमे ॥८९
 अत्र लेखाद्विद्विः स्यात्तथा पुत्रविनाशनम् । बलधर्मं क्षयं चैव तत्साद्यत्वेन वर्जयेत् ॥९०
 पितृश्चाद्विदिने लेखः कुलक्षयकरो भवेत् । एकरात्रं भुवः कम्ये तस्मैल्लेखे क्षणक्षयः ॥९१
 अशौचेऽपि दरिद्रः स्याज्जन्माहे चायुषः क्षयः । लिपिच्छन्दःपदज्ञश्च युवा धीमात्रिजतासनः ॥९२
 द्रुतलेखी च तेजस्वी यो लेखयति लेखकः । असंवलितभावेन ऊर्ध्वोर्ध्वे स्यात्समाक्षरम् ॥९३

चाहिए । यदि कभी बाल्मीकि-संहिता को लिपिबद्ध करने की इच्छा हो, तो केवल स्तोत्रमात्र ही लिखना चाहिए, तथा विप्रवृन्द ! ब्रतहीन होकर कभी न लिखना चाहिए । ७९-८१। इसी भाँति किसी अब्राह्मण का लिखा निष्फल बताया गया है । ८२। पतित, पाखण्डी एवं स्त्री के लिए लिखने का विधान नहीं है, एवं दूषित विचार वाले, दुष्टा स्त्री के पति और अविवेकी को कभी लेखक न बनना चाहिए, यदि लिपिबद्ध करना ही चाहता है, तो धर्मशास्त्र, पुराण, स्तोत्र एवं संहिता के अतिरिक्त अन्य किसी का उल्लेख कर सकता है । ८३। सुवर्ण या चाँदी के पात्र में, गोंद, काजल, मणिकर्दम (जालामिश्रित) जीवन्ती (गुरुचि) के रस समेत, इन्हीं द्वारा मसी (स्याही) बनाये उसमें राङ्गा (धातु) भी डाले । हरिताल एवं हरदी मिश्रित करने का भी विधान बताया गया है, पर कालारंग वायुयुद्ध, पीत से वायुप्रद, रक्तवर्ण से पुष्टि तथा कृष्णवर्ण की स्याही से धनागम होता है । ८४-८६। इतिहास पुराणों को किस दिशा के सम्मुख बैठकर लिखना चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! प्रथम दिशाओं के ज्ञानपूर्वक वायव्यादि प्रशस्त दिशाओं की ओर मुख करके लिखना आरम्भ करना चाहिए । पूर्वाभिमुख होकर लिखने से अर्थ हानि, उत्तरमुख से लक्ष्मी, दक्षिणाभिमुख से मरण एवं पश्चिमाभिमुख होकर लिखने से धन नाश होता है । ८७-८८। पितृ-श्राद्ध, पृथिवी के हिलने (भूचाल) एवं जन्म के दिवस में न लिखना चाहिए । दोनों प्रकार के अशौच, अमावस्या तथा संक्रान्ति के दिन लिखने से दरिद्रता, पुत्रनाश, बल-तथा धर्म का क्षय प्राप्त होता है । इसलिए इसके त्याग के लिए विशेष सावधान रहना चाहिए । ८९-९०। पितृ-श्राद्ध के दिन लिखने से कुल का नाश होता है, एक रात्रि के भूचाल के दिन लिखने से धन क्षय, अशौच में दरिद्रता, जन्मवासर में आयु क्षीण होती है । लिपि, छंद एवं शब्द के ज्ञाता, बुद्धिमान् तथा तेजस्वी उस युवा लेखक को चाहिए कि इन्द्रियसंयमपूर्वक आसन पर बैठकर असंवलित भाव रखकर द्रुतगति से लिखना आरम्भ करे, (पंक्ति में),

लिपियुक्तः समायुक्तः एवागमलेखकः : नान्दीनागरदैर्वर्णः शुद्धनागरकैरपि ॥९४
कामरूपाक्षरैर्वापि यावच्च संहितागणः । अचेतनेन लिखितं यावत्कालं प्रवर्तते ॥९५
यावदक्षरसंस्थानं तावत्स्वर्गं महीयते । अनुक्तो वाच्येऽस्तु धर्मशास्त्रस्य वेतनम् ॥९६
लिखित्वा यस्तु पापात्मा यावदक्षरसंख्यया । तावत्कालं तु नरके पञ्चते नान्न संशयः ॥९७
कुटुम्बभरणार्थं तु गृहीयाद्वापि वेतनम् । न जीदति स दुष्टात्मा अनवस्त्रफलान्वितः ॥९८
पतितैरन्त्यजैस्त्वर्च्छै रोगी कुष्ठी क्षयी तथा । रोगी शिलोपदेश्वैव भूकोऽपि धर्मसंहतः ॥९९
एतैर्विलिखितं यच्च धारयेन्न गृहान्नमी । अनायुष्यकरं यस्मात्स्मात्तपरिज्ञयेत् ॥१००
हीनांगा प्रतिमा चैव दुस्तकं मानहीनकम् । न कलौ धारयेद्देह अनायुष्यकरं भवेत् ॥१०१
द्वात्रिंशद्वृगुलैर्युक्तं कर्तव्यं पुस्तकोत्तमम् । स वै नारायणः ख्यातो धारणाच्च कुतोऽप्यलभ् ॥१०२
चतुर्विंशाङ्गुलं यच्च तद्वै स्वधनमुच्यते । शड्करः स तु विजेयो धर्मकामफलप्रदः ॥१०३
अष्टाङ्गुलं भवेद्यच्च तत्कनिष्ठमिहोच्यते । नस्माद्ब्रह्ममयं ज्ञेयं त्रिवर्गफलदायकम् ॥१०४
ताडिता जलपत्रे च अथ वा चागुरत्वत्रि । इत्याः पत्रङ्गते मानं भूर्जे मानं न विद्यते ॥१०५
द्वादशाङ्गुलकं यच्च भूर्जतैडादिनिर्मितम् । अङ्गुलानां प्रमाणं यत्तेनापि ज्ञानपुस्तकम् ॥१०६

ऊपर-ऊपर के अक्षरों को समान रखें, इस प्रकार समाधिस्थ पुरुष की भाँति तन्मय होकर लिपिबद्ध करने वाले को ही आगम लेखक बताया गया है। नान्दी नागरक (जिस नागरी लिपि में प्रयोग करने पर देव तथा पितृगण प्रसन्न होते हैं) अथवा शुद्ध नागरी लिपि में सुन्दर अक्षरों द्वारा उसे आबद्ध करना चाहिए। अचेतन द्वारा लिखने पर वह जितने समय तक वर्तमान रहता है, और उसमें जितने अक्षरों के समावेश किये गये हों, उतने दिनों तक वह (लेखक) स्वर्ग में सम्मानित होता है। बिना पूँछे ही अथवा वेतन लेकर धर्मशास्त्र की व्यवस्था देने एवं लिखने वाले उस पापी को उन अक्षरों कीसंख्या के समान दिन तक नरक का अनुभव करना पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं। १९१-१७। परिवार के पालन-पोषण के लिए भी जो वेतन ग्रहण करता है, धन, वस्त्र एवं फल युक्त रहने पर भी वह दुष्टात्मा (अधिक दिन) जीवित नहीं रहता है। १८। पतित, शूद्र, चाण्डाल, म्लेच्छ, रोगी, कुष्ठी, क्षयी का रोगी, पीलपाँव वाला और गूंगे द्वारा लिखे गये का उपयोग गृहस्थ को न करना चाहिए, उसके उपयोग करने पर आयु क्षीण होती है, अतः उसका त्याग ही श्रेयस्कर बताया गया है। १९-१००। हीन अंग वाली प्रतिमा (मूर्ति) और असम्मानित पुस्तक के उपयोग कलियुग में करने से आयु क्षीण होती है। १०१। पुस्तक का आकार बत्तीस अंगुल के प्रमाण का होना चाहिए, ऐसी उत्तम पुस्तक का ख्याति प्राप्त नाम नारायण होता है, उसके धारण करने में कौन असमर्थ हो सकता है? (अर्थात् कोई नहीं) चौबीस अंगुल प्रमाण के अक्षर वाली पुस्तक का शंकर नाम होता है, उससे धर्म एवं कामनाएँ सफल होती है। १०२-१०३। आठ अंगुल के आकार वाली पुस्तकों को 'कनिष्ठ' कहा गया है, इसलिए उसे ब्रह्ममय एवं त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) की सफलता का प्रदायक जानना चाहिए। १०४। जलपत्र अथवा अगुरु की त्वचा (छाल) इन्हीं पत्रों पर लिखने के लिए पुस्तक के आकार-प्रमाण की आवश्यकता बतायी गयी है, और भोजपत्र को पुस्तकाकार बनाने में प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। १०५। बारह अंगुल प्रमाण के आकार की बनायी गयी वह भोजपत्र, अथवा तैड़

हस्तसंस्थापिते तत्य तेनायुष्यकरं भवेत् । धर्मशास्त्रस्य सहस्रे धर्मशास्त्रस्य वेतनम् ॥१०७
 स्वर्गमार्गस्य गमने भारते च तदर्धकम् । हरिवंशे स्वर्णमाने कृते मूल्यसहस्रके ॥१०८
 युगे दुगे पादहीनं धर्मं कुर्याद्यथारुचि । प्रणम्य शिरसा सर्वाङ्गसादीन्संहिताश्रुतान् ॥१०९
 जैमिनि च ततो व्यासं शड्करं च तथा हरिम् । नमस्कारमथैषां तु आदिमध्यावसानके ॥११०
 ततः प्रवाचयेद्विष्ट्रे धर्मशास्त्रार्थकोविदः । अलशितवनास्तद्वद्यदूपं स्पष्टमुच्चरन् ॥१११
 असंयुक्ताकरण्डं स्पष्टभागसमन्वितम् । सप्तस्वरसमयुक्तं सप्तनाशविभूषितम् ॥११२
 सामगाथा: समाश्रित्य रागयुक्तान्तरं पठेत् । मणिवारोधनं यत्साद्गौरान्धा सन्तिकस्तथा ॥११३
 धीरागश्चैव हिल्लोलरागो वाजाविकस्तथा । एवं प्रक्रमनाणेन शृणुपाठ्मसंहिताः ॥११४
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चापि विशेषतः । अश्वमेधमवाप्नोति सर्वान्कामानवाप्न्यात् ॥
 पाठैः प्रमुच्यते सर्वर्महापुण्यं च विन्दति ॥११५
 शूद्राणां पुरतो वैश्यो वैश्यानां क्षत्रियः परः । क्षत्रिदान्ते तथा विप्राः शृणुदुश्चाप्तः सदा ॥११६
 न शूद्रः कथयेद्वर्मास्तद्वद्यथापने तथा । नैहिकत्वं परत्वं च न शुभं न परां गतिम् ॥११७

आदि की पुस्तक भी अंगुल प्रमाण के नाते ज्ञान पुस्तक ही कही जाती हैं । १०६। उसे हाथ में लेकर पढ़ने से आयुवृद्धि होती है । धर्मशास्त्र की एक सहस्र प्रतियाँ लिखने पर उसका वेतन ग्रहण करना चाहिए । १०७। महाभारत के स्वर्गारोहण वाले पर्व के लिखने में उसका अर्धभाग वेतन के रूप में स्वीकार करना चाहिए और उसी भाँति हरिवंश को लिपिबद्ध करने में एक सहस्र सुवर्ण प्रत्येक युगों में व्यास आदि प्रमुख ऋषियों को, जों संहिता के निष्णात विद्वान् हैं, शिर से प्रणाम करके पादहीन धर्म का पालन यथेच्छ करना चाहिए । १०८-१०९। पश्चात् जैमिनि, व्यास, शंकर और हरि इन लोगों को नमस्कार करे, ग्रन्थ के आदि, मध्य एवं समाप्ति में नमस्कार करने का विधान बताया गया है । ११०। पुराण के पारायण में भी धर्मशास्त्र के मर्मज्ञ को उचित है कि नमस्कारपूर्वक ही उसका आरम्भ करें, तथा धीर-गम्भीर स्वभाव से उसका इस प्रकार उच्चारण करें जिससे सभी को वह स्पष्ट सुनाई पड़े । १११। उसके अक्षर एवं पदों के स्पष्ट उच्चारण करते हुए सप्तस्वर एवं सातों ध्वनियों के भी विशेष ध्यान रखने चाहिए । सामवेद की गाथाओं की भाँति इसमें भी अनेक भाँति के रागों के प्रयोग किये जाते हैं—‘मणिवारोधन, गौरान्ध, संतिक, श्रीराग, हिल्लोल राग तथा वाजाविक इन्हीं रागों के क्रमशः प्रयोगपूर्ण संहिता के श्वरण करना चाहिए । ११२-११४। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं विशेषकर शूद्र अश्वमेध के फल की प्राप्तिपूर्वक अपनी समस्त कामनाएँ सफल करते हैं तथा समस्त पापों की मुक्तिपूर्वक महान् पुण्यों की प्राप्ति भी करते हैं । ११५। उसे सुनने के लिए शूद्रों के सामने वैश्य, वैश्यों के सामने क्षत्रिय, क्षत्रियों के अग्रभाग में ब्राह्मणों को स्थित होकर सदैव प्रत्येक में इसी प्रकार की पंक्तियों से आबद्ध होकर सुनना चाहिए । ११६। शूद्रों को तप अध्यापन आदि कोई भी धार्मिक प्रवचन न करना चाहिए, उसी भाँति लोक-परलोक, धर्म एवं उत्तम गति की प्राप्ति के

१. केवल सतयुग में धर्म अपने चारों चरणों से पूरित रहता है और त्रेता आदि युगों में क्रमशः एक-एक चरण की कमी होती जाती है ।

शूद्रेणाधिगतं नास्ति विशेषाच्छब्दतक्षणम् । यद्द्वजस्य कृतो दासो ब्रह्मणाऽव्यक्तयेनिना ॥११९
 श्वशूगालखरीक्षीरमपेयं हि यथा भवेत् । एवं शूद्रमुखाद्वर्मा न ग्राह्याः शब्दसंस्कृताः
 अमेध्यं शुद्ध्यते तोऽयैः शूद्रः श्रोता हि शुद्ध्यति । एवं शूद्रोऽप्यशुचिः स्याद्यदि व्याकरणार्थदिद् ॥१२०
 यः शूद्र उद्दिशेद्वन्नं तथा चागमवैदिकम् । त वै वैष्णो नरेन्द्रेण जिह्वां चक्रेण घेदयेत् ॥१२१
 बुध्यसानः सदा हृर्थं ग्रन्थार्थं कुल्लमेव च । य एवं क्षयेत्तस्यक्षं विप्रो व्यास उच्यते ॥१२२
 वसेत्त पत्तने ग्रामे पुण्ये देशे स्त कीर्तिः । ते धन्यास्ते कृतात्मानस्ते कृतार्था न संशयः ॥
 वरत्निं पत्तने तस्मिन्व्याख्याता यत्र संवसेत् ॥१२३
 यथार्कहीनं दिवसठन्दन्दहीना यथा निशा । न रराज सभा तद्वद्यासेन रहिता द्विजाः ॥१२४
 यद्गृहे नैव शिशावो न रराज गृहं क्वचित् । यथैकतो ग्रहाः सर्वे एकतस्तु दिवाकरः ॥
 तथैव सोदरगोहे दृष्ट्वा पुष्करदर्शनम् ॥१२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे सप्तमोऽध्यायः । ७

अथाष्टमोऽध्यायः

अड्कमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

शृणुध्यं विप्रसन्धाताः पुराणं देवसम्मतम् । यच्छुत्वा मुच्यते पापात्पुरुषो ब्रह्महत्यया ॥१

लिए चेष्टा भी न करनी चाहिये ॥१७। शूद्रों को विशेषकर शब्दशास्त्र (व्याकरण) का अध्ययन वर्जित किया गया है, क्योंकि ब्रह्मयोनि ब्रह्मा ने उन्हें ब्राह्मणों का दारा बनाया है ॥१८। जिस प्रकार कुतिया शृगाली एवं गधी के दूध को पान करने के अयोग्य बताया गया है, उसी भाँति शूद्रों के मुख से निकले धार्मिक संस्कृत शब्द, श्वरण-मनन के अयोग्य हैं ॥१९। अपवित्र वस्तु जल से पवित्र की जाती है, उसी प्रकार शूद्र (पुराणादिक) सुनने से शुद्ध होता है । व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करने वाला शूद्र नितान्त अपवित्र होता है । राजाओं को शास्त्रीय अथवा वैदिक धर्मों के उपदेश्या शूद्रों का वध तथा चक्र अस्त्र द्वारा उनकी जिह्वा कटवा लेनी चाहिए ॥१२०-१२१। सम्पूर्ण ग्रन्थों के अर्थ उसके मर्मस्थलों के विशेषज्ञ एवं सुन्दर ढंग से उसकी व्याख्या करने वाले ब्राह्मणों को व्यास कहा गया है ॥१२२। जिस ग्राम, या नगर में ऐसे ब्राह्मण का निवास होता है, वह पुण्य प्रदेश बताया गया है, इस प्रकार व्याख्याता जिस नगर आदि में निवास करता है, वे धन्य हैं, कृतकृत्य हैं और दृतार्थ हैं, इसमें सदेह नहीं ॥१२३। द्विजगण ! सूर्यीहीन वासर और चन्द्रहीन रात्रि की भाँति, व्यास की अनुपस्थिति में सभा सुशोभित नहीं होती है । जिस घर में बच्चे न हों, उस घर की शोभा कभी नहीं हो सकती है । जिस प्रकार एक और समस्त ग्रह सुशोभित हैं और एक और सूर्य, उसी भाँति घर में भ्राताओं के बीच में बालकों को देखकर एक महान् आळ्हाद उत्पन्न होता है ॥१२४-१२५

श्री भविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथमभाग में सातवाँ अध्याय समाप्त । ७।

अध्याय ८

अंक माहात्म्य का वर्णन

सूतजी बोले—विप्रवृन्द ! देव सम्मत उस पुराण को, जिसके सुनने से पुरुष पाप एवं ब्रह्म हत्या से

तृतीयं शैवमाख्यातं ततो भागवतं परम् । पञ्चमं च तथा मात्स्यं भविष्यं षष्ठमुच्यते ॥२
 असामर्थ्यं च गात्स्योक्तं वैष्णवं च भद्रिष्यकम् । भारते चापि १पर्वं च शान्तिशैष्मीयकं तथा ॥३
 पराशरमतं गृह्यं गोभिलोक्तानि यानि च । कात्यायनोक्तमपरमस्यसेन्निगमादितः ॥४
 अन्तरेणागते मत्यं शास्त्रं जाध्यापयेत्क्वचित् । एकरात्रं गते मत्यं त्रिरात्रमजमेषयोः ॥५
 मण्डूके पञ्चरात्रं तु सर्पे रात्रिचतुष्टयः । सम्वत्सरं दु तुरुगे गले द्वादशवत्सरान् ॥६
 मासमेकं सरे काके स्थानत्यागात् कुत्रचित् । केरवे वा र्वे चैदं अहोरात्रं प्रचक्षते ॥७
 त्रिरात्रमपि भाजारे नकुले मूषके खरे । हुसे दिननन्धायां क्षुद्रजन्तौ न द्वृष्टम् ॥८
 अध्यापयेद्गुरोः पुञ्च मानिनं धार्मिकं शुचिम् । भर्तं शान्तं वैष्णवं च जितक्रोधं जितेन्द्रियम् ॥९
 अध्यात्माध्यापयेदेभ्यः शठं पापहरं द्विषम् । अन्यायेनैव यच्छत्तमभदं दान्तिभकं द्विषम् ॥१०
 निरर्थकं मन्थरं च विशुश्रूषुमयाजकम् । षण्डं चैवानृजुं कुद्धं कृपणं व्यसनार्थिनम् ॥११
 निन्दकं चाविधिजं च द्वरतः परिवर्जयेत् । अप्रच्छन्ननतं बूयात्युत्रपौत्रादिकादृते ॥१२
 विद्यया सह मर्तव्यं न द्विद्यान्व पृथग्जने । अतो विद्या वदत्येवं पाठ्यन्तं द्विजोत्तमम् ॥१३
 मा द्विद्याद्विक्तिहीनाय दुर्जनाय दुरात्मने । अप्रमादाय विप्राय शुचये ब्रह्मचारिणे ॥१४

मुक्त हो जाता है, मैं बता रहा हूँ, मुनो ! तीसरे शिव पुराण, चौथे भागवत, पाँचवें मत्स्य, छठवे भविष्य पुराण का श्रवण करना चाहिए, यदि किसी प्रकार इन्हें श्रवण करने में असमर्थता हो तो, मत्स्य पुराण, भविष्यपुराण तथा महाभारत के शांति और भीष्मपर्व का ही श्रवण करे । १-३। पराशर के विचार-विमर्श (स्मृतियों) गृह्यसूत्र, गोभिल द्वारा रचित समस्तग्रन्थ तथा कात्यायन सूत्र तक का अध्ययन मनन, निगम (निरुक्त) के प्रारम्भ से लेकर करना चाहिए । ४। शिष्य और गुरु के अध्ययन एवं अध्यापन के समय उनके बीच से किसी मनुष्य के आ जाने पर एकरात्र, भेड़-बकरी के आने पर तीन दिन, मेढ़क के अन्ने पर पाँच रात, साँप के आने पर चार रात, घोड़े के आने पर एक वर्ष, हाथी के आने पर बारह दिन, गधे तथा कौवे के आने पर एक मास तक अनध्याय खेलना चाहिए । स्पान त्याग करने पर अनध्याय कभी न करें, निन्दित शक एवं (उत्पात के) शक मुनने पर दिन-रात, बिल्ली, नेवला, चूहा एवं गधे के आने पर तीन रात का भी अनध्याय होता है, उसी भाँति हंस के आने के एक दिन का अनध्याय बताया गया है, तथा और छोटे-छोटे जीवों के आने पर कोई दोष नहीं होता है । ५-८। उस गुरु पुत्र को पढ़ाना चाहिए, जो ज्ञानी, धार्मिक, पवित्र, भक्त, शांत, वैष्णव, क्रोधरहित, एवं इन्द्रियसंयमी हो । ९। किसी भी अध्यात्म पुरुष को शठ, पापी, द्वेषी, अन्याय से देने वाला, निर्भीक, दम्भी, शत्रु, व्यर्थ की बातें करने वाला, मंथर गति वाला, गुरु सेवा न करने वाला, यज्ञ-पूजनहीन, षण्ड नपुंसक, कुटिल, क्रोधी, कृपण (कायर), व्यसनी, निंदक, विधि न जानने वाला, इस भाँति के पुरुषों को न पढ़ाना चाहिए, प्रत्युत, दूर से देखते ही इनका त्याग करे, केवल अपने पुत्र-पौत्र के अतिरिक्त और सभी लोगों से न ब्रता प्रकट करते हुए बात-चीत करनी चाहिए । १०-१२। विद्या को साथ लिए मर जाये किन्तु उपरोक्त ऐसे किसी पुरुष को कभी न प्रदान करे, इसीलिए पढ़ाने वाले ब्राह्मणों से विद्या कहती है कि—भक्तिहीन, दुर्जन एवं दुष्ट को मुझे न प्रदान करो ।

सार्थकाय विधिज्ञाय साधते देहि सत्तम । द्वयाद्यदि निषिद्धाय विद्याधनमनुत्तमम् ॥१५
 तथोरेकतरो गन्धेदचिरेण यमक्षयम् । अन्यतयेन ग्रहं विद्यामन्यं पाठ्यते सुखात् ॥१६
 स याति नरकं घोरं विद्यावर्ज्जः स उच्यते । आध्यात्मिकं वैदिकं चालौकिकं वाथ गो वदेत् ॥१७
 मानमादौ प्रणम्याय ततोऽधीयीत मुद्रतः । कर्मकाण्डं ज्योतिषस्य तद्विना न समन्वयेत् ॥१८
 चूतभागसमन्यासाद्विद्वश्चाभिजायते । वादभागसमन्यासाद्वननाशाय जायते ॥१९
 निधिभागसमन्यासाज्जायते नारके कुले । यस्यनुकृतानि शास्त्राज्ञि जाननीयानि यानि च ॥२०
 म्लेच्छोक्तानि नहिन्नानि नाम्यसेद्द्वूरतत्त्वजेत् । लोकानां ज्ञानवृद्धिर्धर्थः कुर्याद्वर्षमसङ्ग्रहम् ॥२१
 प्रवर्तयित्वा स गुरुर्वेज्ञानप्रदः पिता । ज्ञानदाता च लोकानां तेषु धर्मं प्रवर्तते ॥२२
 निगमानां ज्योतिषाणां वेदानां नाटकस्य च । व्याख्यानसङ्ग्रहं कृत्वा कलौ नाशमदाप्नुयात् ॥२३
 वेदानां धर्मशास्त्राणां पुराणानां तथैव च । मीमांसाज्योतिषां चैव नाटकानां दिरच्चिन्नी ॥२४
 भग्नावसाने कथितः पुराणाध्याय एव च । पुष्टकश्च परिच्छेद खण्डश्च प्रतिखण्डकः ॥२५
 व्यवहारश्रार्थशास्त्रमध्यशास्त्रस्य चैव हि । यस्य भागावसाने तु प्रयोक्तव्यः स एव हि ॥२६
 तत्सङ्ग्रहेऽपि कविना नियोक्तव्यः स एव हि । यस्य नाम्नोपदेशे तु प्रवर्तयति सङ्ग्रहः ॥२७
 तत्तदक्षरसंख्यानां ब्रह्मलोकान्न तच्छ्रुतिः । न सङ्ग्रहस्तन्त्रमन्त्रे वेदमन्त्रे च दर्जयेत् ॥२८

सत्तम ! यदि मुझे देना है तो किसी प्रमादहीन, पवित्र, ब्रह्मचारी, साथी, विधानवेत्ता एवं सज्जन ब्राह्मण को प्रदान करो । १३-१५। यदि इस उत्तम विद्यारूपी धन को किसी निषिद्ध व्यक्ति को प्रदान किया तो दोनों में से एक कोई चिरकाल तक यमयातनाओं का अवश्य अनुभव करेगा । सुखपूर्वक किसी के पढ़ते समय यदि कोई दूसरा अन्याय से उसको यहण करता है, तो उसे घोर नरक की प्राप्ति होती है, इसलिए कि उसे विद्यादान का निषेध किया गया है । वेदान्त, वैदिक या अन्य किसी अलौकिक (शास्त्र) के पठन-पाठन में प्रथम उसको सम्मानपूर्वक प्रणाम करके ही प्रारम्भ करना चाहिए, इसी प्रकार कर्मकाण्ड और ज्योतिष् का मनन आदि बिना प्रणामादि के कभी न प्रारम्भ करें । १६-१८। चूतभाग के अन्यास करने से दरिद्रता, वादभाग के अन्यास से धन नाश एवं निधिभाग के अन्यास करने से नरक की प्राप्ति होती है । जितने सम्मानित शास्त्रों को नहीं कहा गया है, उन्हें एवं माहात्म्यों को जो म्लेच्छों द्वारा कहे गये हों, दूर से ही उनका त्याग करे । लोगों के ज्ञान वृद्धि के लिए जो धर्म का संग्रह करता है, वह उसके प्रवर्तक होने के कारण गुरु कहा जाता है और ज्ञान प्रदान करने के कारण पिता । वही लोगों को ज्ञान प्रदान करता है, इसलिए उसी में सभी धर्मों का समावेश होता है । १९-२२। कलियुग में निगम, ज्योतिष्, वेद एवं नाटकों के व्याख्यान संग्रह करने वाले का नाश होता है, उसी प्रकार वेद, धर्मशास्त्र, पुराण, मीमांसा, ज्योतिष्, नाटक विरचिनी का भी । प्रत्येक भाग के अंत में एवं पुराणों के अध्याय की समाप्ति में गुच्छे का चिह्न, परिच्छेद, खण्ड, अथवा प्रतिखण्ड का निर्माण करना चाहिए । २३-२५। अर्थशास्त्र का प्रयोग व्यवहार में लाना चाहिए, उसी प्रकार अश्वशास्त्र भागों का भी । २६। जिसके नाम के उपदेश करना हो, उसके संग्रह के लिए किसी कवि को नियुक्त करना चाहिए, क्योंकि उस संग्रह का प्रवर्तक वही है । २७। उसके अक्षरों की संख्या के समान दिनों तक वह ब्रह्मलोक से च्युत नहीं होता है । तंत्र, मंत्र एवं वेद-मंत्रों

मोहात्कृत्वा होमधेनुं दत्त्वा शुद्धिर्भविष्यति । कृत्वा चात्यायिकाग्रन्थस्वरूपान्तः दिवं वज्रेत् ॥२९
 धर्मशास्त्रस्य गम्यस्य व्यवहारस्य चैव हि । कलौ यः सङ्ग्रहं कुर्यात्प्रसुप्ते चैव केशवे ॥३०
 यावत्प्रवर्तते लोकस्तावत्स्वर्गं महीयते । सिंहे पौषे च चैत्रे च न कुर्यात्प्रसुप्ते चैव चित् ॥३१
 प्रातःकाले न कुर्वीत तथा मध्यन्दिने द्विजाः । पक्षान्ते भूमिदाहे च भूवः कन्ये दिनक्षये ॥३२
 मलमासे विशेषेण सन्ध्ययोश्च विदर्जने । अमेघात्मं च पत्रं च लिप्यक्षरविभूषितम् ॥३३
 पूतं स्यात्तत्क्षणाद्विप्राक्ष्यतुः पञ्चाक्षरेण वा । नारसिंहस्य विन्यासे दूतो भवति तत्क्षणात् ॥३४
 मायाविभवविन्यस्ते महापापकलेवरे । मुहूर्तर्धिन पूतत्वं प्रभोर्यान्ति वरां गतिम् ॥३५
 स्त्रियो वाऽनिन्दितो वाऽपि स्त्वेच्छो याति परां गतिम् । यो मूढो भूत्यते दोषं तस्य शौचं समाचरेत् ॥
 स गर्दधर्मे खरीं योनिं प्रविशेन्नत्र तंशयः ॥३६

एकोवात्मकं ब्रह्म तत्प्रकृत्यात्मकं द्वयम् । नवात्मको भैरवश्च दशमश्च जनार्दनः ॥३७
 रुद्र एकादशश्चैव अकर्किश्रापि द्वादशः । त्रयोविंशे च भूतात्मा षड्विंशे मनुरीरितः ॥३८
 तिथ्यात्मकं पञ्चदशे षोडशाल्पा कलापरा । वातात्मकः सप्तदशो मन्दः समनुवर्तते ॥३९
 अष्टादशाक्षरो मन्त्रः पुराणात्मक एव च । ऊनविंशश्चन्द्रमाः स्याद्विंशो नारायणो वषुः ॥४०
 ज्योतिर्मयश्चैकविंशो द्वाविंशे केशवार्चनम् । नक्षत्राणि त्रयोविंशे चतुर्विंशे च तानकम् ॥४१

का संग्रह करना निषिद्ध है, यदि अज्ञानवश उसका संग्रह कर ही दिया तो, सुवर्ण की धेनु के दान से उसकी शुद्धि बतायी गयी है । आत्यायिका ग्रंथों के स्वरूप निर्माण करने से उसे स्वर्ग प्राप्ति होती है । २८-२९। जो इस कलिमे व्यवहारार्थ धर्मशास्त्र के सरल एवं व्यावहारिक भाग का संग्रह, विष्णु शयन (चातुर्मास काल) में करता है, तो जितने लोग उससे लाभ उठाते हैं, उतने दिनों तक वह स्वर्ग में सम्मानित होता है । किन्तु सिंह के सूर्य में, पौषमास एवं चैत्रमास में कभी भी संग्रह न करे । ३०-३१। द्विजगण ! प्रातःकाल, मध्याह्न, पक्ष के अंतिम समय, भूमि दाह, भूतात्मा, दिन क्षय, अधिकमास) और विशेषकर दोनों संध्याओं में संग्रह (लिपबद्ध) न करना चाहिए । विप्रगण ! लिपि अक्षर विभूषित पत्र के अपवित्र होने की आशंका उत्पन्न होने पर नरसिंह (पुराण) के चार दा पाँच अक्षरों का सन्निवेश उसमें करने से वह उसी समय पवित्र हो जाता है । ३२-३४। माया के ऐश्वर्य से परिपूर्ण इस (असार संसार) में यह शरीर बड़े-बड़े पापों द्वारा दूषित हो जाती है, इसलिए उसके उद्धार के लिए बताया गया है कि यदि वह क्षणमात्र भी भगवद्गुणगान या स्मरण किया तो उसे उत्तम गति प्राप्त होती है । चाहे वह स्त्री, निन्दित, अथवा स्त्वेच्छ ही क्यों न हो । जो मूर्ख उसमें दोष मानते हैं, उन्हें शुद्ध होने की आवश्यकता है, अन्यथा गधी एवं राक्षसी योनि में उन्हें प्रवेश करना पड़ता है, इसमें संदेह नहीं । ३५-३६। ब्रह्म एक ही है, वही अपनी प्रकृति (माया) के साथ रहने से दो रूपों में हो जाता है । उसका नवाँ रूप भैरव और दशवाँ जनार्दन है, यारहवाँ रुद्र, बारहवाँ सूर्य, तेहसवाँ भूतात्मा (समस्त जीवों में) छब्बीसवाँ मनु बताये गये हैं । पन्द्रह तिथियाँ, सोलह कलाएँ भी उसी के रूप हैं । उसके सत्रहवें वायुरूप को मन्त्र स्पष्ट बता रहा है । ३७-३९। अट्ठारह अक्षर के मंत्र और अट्ठारह पुराण भी भगवान् के स्वरूप हैं, उन्नीसवाँ चन्द्रमा, बीसवाँ नारायण की शरीर, इक्कीसवाँ ज्योतिर्मयस्वरूप, बाईसवाँ नक्षत्रगण, चौबीसवाँ संगीत के स्वर,

पञ्चविंशे च तीर्थानि षड्विंशे च त्रियम्बकः । अष्टाविंशे धनेशश्च ऊनविंशे सरस्वती ॥४२
 त्रिंशद्योगे शिवः प्रोक्तः पातालमेकत्रिंशके । अहोरात्रश्च द्वात्रिंशे चतुस्त्रिंशे च जाह्नवी ॥४३
 पञ्चत्रिंशे तदन्तः स्याच्छते पूर्णे दिवाकरः । सहस्रे च शिवो ज्ञेयश्चायुते मेरुच्यर्ते ॥४४
 लक्ष्मे ब्रह्मा तथा कोटिः देवो नारायणः परः । पुष्ट्रकृत्यात्मकं चान्यच्छारदातिपिमातृका ॥४५
 शुद्धज्ञानमयं नित्यं ज्ञानरूपं परं महत् । यस्तत्रात्मसनादेव गुच्छौ चाप्यगुच्छिस्थले ॥
 अन्ते ब्रह्ममयं दाति इत्याह भगवान्मनुः ॥४६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणिं प्रथमभागेऽक्षमाहात्म्यकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ।

अथ नवमोऽध्यायः

पूर्तनिर्णयदर्णिनम्

सूत उवाच

अन्तर्वेदिं प्रवक्ष्यामि ब्राह्मणोक्तं युगान्तरे : बाह्यर्वेदं तथैवोक्तं शस्तं स्याद्द्रापरे कलौ ॥१
 ज्ञानसाध्यं तु यत्कर्म अंतर्वेदीति कथ्यते । देवतास्थापनं पूजा बहिर्वेदिरुदाहृता ॥२
 प्रपापूर्तादिकं चैव ब्राह्मणानां च तोषणम् । गुरुभ्यः परिचर्या च बहिर्वेदी द्विधा मता ॥३
 अकामेन कृतं कर्म कर्म च व्यसनादिकम् । अन्तर्वेदी तदेवोक्तं बहिर्वेदी विपर्ययः ॥४

पञ्चीसवाँ तीर्थवृन्द, छब्बीसवाँ श्यम्बक (महेश), अट्टाईसवाँ धनेश (कुबेर), उन्नीसवाँ सरस्वती, तीसवाँ शिव, एकतीसवाँ पाताल, बत्तीसवाँ दिन-रात, चौंतीसवाँ गंगा, पैंतीसवाँ उसका अंतिम भाग, सौवाँ दिवाकर, एक सहस्र में शिव, दशसहस्र में मेरु, लक्ष्मि में ब्रह्मा, कोटि (करोड़) में श्रेष्ठ नारायण देव हैं और वही पुरुष प्रकृतिमय ब्रह्मा दूसरे लिपि-माता शारदा के रूप में स्थित है । ४०-४५। वही शुद्ध (निर्गुण) ब्रह्मा, नित्य, ज्ञानरूप एवं परम महान् है, पवित्र, अपवित्र किसी भी स्थान में या अवर्त्या में रहकर उसके प्रेम भाजन होने पर झणमात्र में वह ब्रह्ममय हो जाता है, ऐसा भगवान् मनु ने बताया है । ४६

श्री भविष्यपुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में अंक माहात्म्य वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त । ८।

अध्याय ९

पूर्तनिर्णय का वर्णन

सूतजी बोले—मैं तुम्हें अन्तर्वेदी, जिसे ब्रह्मा के युगारम्भ में बताया था, सुना रहा हूँ, और उसी प्रकार बहिर्वेदी को भी, जो द्वापर तथा कलियुग के लिए प्रशस्त है । १। जो कर्म, ज्ञान द्वारा सिद्ध होते हैं, उसे अन्तर्वेदी, एवं देवताओं की मूर्तियों के स्थापन-पूजन को बहिर्वेदी बताया गया है । २। पौसला स्थापन, जलाशय दान एवं ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना तथा गुरुओं की सेवा करना, इस प्रकार बहिर्वेदी के दो रूप हैं । ३। निष्काम कर्म और व्यसनादिक कर्म अन्तर्वेदी के रूप हैं तथा उससे भिन्न कर्म बहिर्वेदी के । ४। धर्म

धर्मस्य कारणं राजा धर्मभेतद्वचेन्तृपः । तस्मान्नृपं समाश्रित्य बहिर्वेदी ततो भवेत् ॥५
 सप्तशीतिर्बहिर्वेदी सारमेषां तृतीयकम् । देवतास्थापनं चैव प्रसादकरणं तथा ॥६
 तडागकरणं चैव तृतीयं न चतुर्थकम् । पञ्चमं पितृपूजा च गुरुपूजापुरःसरा ॥७
 अधिवासः प्रतिष्ठा च देवतानामविक्रिया । प्रतिमाकरणं चैव वृक्षाणामय रोपणन् ॥८
 त्रिविधा सा दिनिर्दिष्टा उत्तमा चाय मध्यमा । कनिष्ठा शेषकल्पश्च सर्वकार्येष्वरं विधिः ॥९
 त्रिधा भवति सर्वत्र प्रतिष्ठादिविधिर्मतः । पूजाहोमादिर्बन्नैर्मानितश्च त्रिभागतः ॥१०
 अहसाध्यविधानेन अष्टाविंशतिदेवताः । त्रिधा भवति सर्वत्र प्रतिष्ठादिविधिर्मतः ॥११
 प्रत्यहं पूजयेत्तत्र जापकास्तत्र षोडशः । उत्तमोऽसौ विधिः कृत्त्वो हृश्वमेधफलप्रदः ॥१२
 चत्वारो याजकास्तत्र त्रयोर्दिंशतिदेवताः । ग्रहदिक्पालवाहण्यं त्रुथिवी च शिवस्तथा ॥१३
 एकाहेनैव पूजा च मध्यमः कथितो विधिः । गणेशग्रहदिक्पालान्वरणं च शिवं तथा ॥१४
 सम्पूज्य पूज्यते यत्र कनिष्ठोऽसौ विधिः स्मृतः । एकवृक्षैश्चैकरूपैः प्रतिमाक्षुद्रदेवताः ॥१५
 नलिनीदीर्घिकागर्तवाणीमलप्रपादिकम् । एषां संस्कारकार्येषु प्रतिमानां परिष्क्रिया ॥१६
 अग्निकार्यं ततः कृत्वा न कुर्याद्विधिविस्तरम् । गणेशग्रहदिक्पालान्वूजयेदुपचारतः ॥१७

का कारण और धर्म का प्रत्यक्ष स्वरूप राजा होता है, इसलिए राजा के आश्रित रह कर बहिर्वेदी का कर्म सुसम्पन्न करना चाहिए ।५। बहिर्वेदी कर्म के सत्तासी रवरूप बताये गये हैं, किन्तु तीसरा स्वरूप, उसका साररूप है, देवतास्थापन, प्रासाद (कोठे) समेत देवालय बनाना, सरोवर बनाना यही तीन के लिए विशेष ध्यान रखना चाहिए, चौथे के लिए उतना नहीं और पाँचवाँ, गुरु पूजापूर्वक पितृपूजा का भी विशेष ध्यान रखना आवश्यक है ।६-७। देवता का अधिवास एवं निर्विकार उनकी प्रतिष्ठा, प्रतिमा (यूर्ति) बनवाना, बरीचे लगाने के रूप में इस प्रकार इसके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन रूप बताये गये हैं । समस्त कार्यों में यही विधान आवश्यक है ।८-९। सर्वत्र (देवताओं की) प्रतिष्ठादि विधि पूजा, होम और दान के भेद से तीन प्रकार की होती है, और मान द्वारा भी उसके तीन भेद हैं ।१०। जिस विधान में तीन दिन में (प्रतिष्ठादि कर्म) साध्य बताया गया है, उसमें अट्टाईस देवताओं का आवाहन-पूजन होता है । उसमें भी वह प्रतिष्ठादि विधि तीन प्रकार की कही गयी है ।११। उस विधान में प्रतिदिन सोलह जप करने वाले ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए, यही विधान उत्तम बताया गया है, क्योंकि इसके सुसम्पन्न करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है ।१२। जिसमें चार याजक (यज्ञ कराने वाले) हों, उसमें तेझ्स देवताओं का स्थापन-पूजन पूर्वक ग्रह, दिक्पाल, व्रण, पृथिवी, तथा शिव की भी स्थापना आदि अपेक्षित होती है, यह विधान एक दिन में समाप्त किया जाता है, इसलिए इसे मध्यम विधान बताया गया है । जिसमें गणेश, ग्रह, दिक्पाल, व्रण और शिव की पूजा आदि करने के उपरान्त प्रतिष्ठा आदि विधान सुसम्पन्न किया जाता है, उसे कनिष्ठ विधान कहा गया है । एक वृक्ष की शाखा आदि अनेक रूपों की भाँति प्रतिमा भी वहाँ सर्वप्रथम एक क्षुद्र देवता के ही रूप में रहती है ।१३-१५। कुमुदिनी वाले सरोवर, गृहवाली, छोटे-छोटे जलाशय, बावली एवं गृह की नालियों के संस्कार करते समय प्रतिमाओं को परिष्कृत करने के पश्चात् अग्नि द्वारा उन्हें शुद्ध करे । उसमें विधान के विस्तार रूप को अपनाना अनावश्यक बताया गया है । उसमें गणेश, ग्रह एवं दिक्पाल की उपचार समेत पूजा करनी चाहिए ।१६-१७। बावली आदि तथा

वाप्यादेः पुष्करिण्याश्र द्विपेदगङ्गाजलं ततः । उलूखलद्वयेनापि जीर्णनां तु कदाचन ॥१८
 सेतुप्रासादवापीनां प्रतिष्ठां नैव कारयेत् । प्रासादः सेतवश्चेद तडागादास्तथैद च ॥१९
 त्रिभिर्दर्जः प्रतिष्ठार्हा जीर्णनां तु समुद्रगताः । मुनयो मानमिच्छन्ति अमानं न हि दृश्यते ॥२०
 तस्मान्भानं प्रवक्ष्यामि यन्मानं यादूर्धं फलम् । एष्टिहस्तद्वापेन तदुक्तं बारणोदितम् ॥२१
 एकषष्टिहस्तमितं प्रासादं चोत्तमं दिदुः । मध्यं तदर्धं विज्ञेयं कन्दिष्ठं तत्परं स्मृतम् ॥२२
 अथ वा देवमानेत् कर्तव्यं भूतिमिच्छता । यस्तडागं नवं कृत्वा जीर्णं दद तवतां नयेत् ॥२३
 सर्वं कुलं समुद्रत्य स्वर्गलोके गहीयते । वापीकृपतडागाश्र उज्जनश्वहास्तथा ॥२४
 पुनः पुनश्च संस्कार्यो लभते नौक्तिकं फलम् । गुणानां च प्रमाणेन प्रतिमानं विभागतः ॥२५
 द्विशतेन शतेनापि प्रासादस्यैष निश्रयः । सहस्रहस्तविस्तारं दैर्घ्येणाष्टाधिकं भवेत् ॥२६
 तडागं तु विजानीयात्प्रथमं मानमीरितम् । मध्यं चतुःशतेनापि प्रस्तावे दशहीनकम् ॥२७
 कनिष्ठं त्रिशतं चैव प्रस्थेस्याद्विंश्चैनकम् । तदर्थेन कलौ ज्ञेयं तदर्थेन तदर्थकम् ॥२८
 तडागामानं विज्ञेयं त्रिवर्गफलदायकम् । अथ पुष्करिणीपक्षे द्वे शते मानमुत्तमम् ॥२९
 तडागे द्विगुणा नेत्री मानार्थं गर्तमीरितम् । तत्क्षेत्रं वारुणं स्थानं त्र्युदितं तद्विहः स्मृतम् ॥३०

(कमल वाला तालाब) के जलों में दो ओखली द्वारा गंगा जल को डाले । जीर्ण-शीर्ण सेतु, प्रासाद और बावलियों की प्रतिष्ठा कभी भी न करनी चाहिए । प्रासाद, सेतु और सरोवर आदि की प्रतिष्ठा आदि कर्म तीनों वर्णों के लिए बताये गये हैं मुनियों ने सभी कार्यों में मान की भी अपेक्षा की है, इसलिए बिना मान के उनको कोई नहीं दिखायी देते हैं । १८-२०। इसलिए जिस प्रकार के मान के जो फल प्राप्त होते हैं, (मैं बता रहा हूँ सुनो) गजशाला के निर्माण में साठ हाथ दा प्रमाण बताया गया है, एकसठ हाथ के प्रमाण वाले प्रासाद (महल) को विद्वानों ने उत्तम बताया है । उसके अर्ध प्रमाण वाले को मध्यम तथा उसके अतिरिक्त को कनिष्ठ कहते हैं । २१-२२। अथवा देवों के मान के अनुसार उनके निर्माण करने चाहिए, यह ऐश्वर्य इच्छुकों के लिए आवश्यक है । उस मान के अनुसार जो किसी नवीन सरोवर, अथवा किसी जीर्ण-शीर्ण को नवीन रूप प्रदान करते हैं, वे अपने समस्त कुलों के उद्धारपूर्वक स्वर्ग में सम्मानित होते हैं । वाली, कुएँ एवं सरोवर के, जिससे बगीचे की सिंचाई होती है, बार-बार संस्कार करने से मुक्ति रूप फल प्राप्त होता है । गुणों के प्रमाण तथा प्रत्येक मान के विभाजन द्वारा महल के निर्माण में दो सौ तथा सौ हाथ भी निश्चित किया हुआ है । एक सहस्र हाथ के विस्तार और उससे आठ हाथ अधिक लम्बाई वाला तालाब बताया गया है । यह उसका प्रथम मान है । २३-२६। चार सौ हाथ का सरोवर मध्यम बताया गया है, उसको प्रारम्भ में दश हाथ कम भी किया जा सकता है । २७। उसी प्रकार तीन सौ हाथ वाला कनिष्ठ कहा जाता है, उसमें आवश्यकतानुसार बीस हाथ कम हो सकता है । कलियुग में उसके आधे प्रमाण अथवा उसके आधे के आधे प्रमाण में सरोवर निर्माण कराने से त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) की प्राप्ति बतायी गयी है । पुष्करिणी के पक्ष में दो सौ हाथ का मान कहा गया है, तालाब के किनारे की भूमि दुगुनी होनी चाहिए और उसके मान के आधे भाग के समान उसमें गङ्गा खोदना बताया गया है । वहीं वरुण का निवास रहता है, इसी भाँति के सरोवर निर्माण को बहिर्वेदी में तीसरा प्रशस्त कर्म कहा गया है चौथा

चतुर्थं चैव गान्धर्वं पैशाचं पञ्चमं दिदुः । यक्षस्थानमिता भागे एवं सर्वक्रमाणि हि ॥३१
 अशीतिहस्तमानेन नलिन्या मणिरुच्यते । पञ्चहीनं च प्रस्तावे एवं भानविदो विदुः ॥३२
 षष्ठिहस्तेन नलिनी प्रस्तावे तुर्यहीनकम् । चतुःषष्ठिहस्तमिता दीर्घिका च प्रकीर्तिता ॥३३
 तुर्यहीनं च प्रस्तावे गर्ते मानं न विद्यते ॥३४

अग्नौ रोगो बन्धुनाशश्च याम्यां मृत्युओग्रः प्राप्यते राक्षसे च ।
 भीतिश्रोग्रा प्राप्यते वायदीये तस्मादेता दर्जनीयाः प्रयत्नात् ॥३५
 विप्रादीनां देवतानां सप्तजे मेरुस्थाने यत्र तत्रैव कुर्यात् ।
 नद्यास्तीरे वर्जयेद्वा स्मशाने तडागाद्वै आश्रमादीज्जनानाम् ॥३६
 यदा प्रतिष्ठां न करोति सूढः प्रासादवाप्यादिषु पापचेताः ।
 भयं समाप्नोति च पापनुरुं पदेऽहिना वै वधभागितां वज्रेत् ॥३७
 यदा तु दीर्घसिरसीतडागप्रासादकूपादिषु निर्मितानि ।
 कुर्वन्ति चान्यानि यदा मखानि भवन्ति नैवत्स्य फलप्रदानि ॥३८
 यदप्रतिष्ठेषु निपत्नकेषु प्रासादकूपेषु वनादिकेषु ।
 प्रतिष्ठिते यत्कलमाप्नुवन्ति फलं तदाल्पाल्पकमाहुरस्य ॥३९
 तस्मात्प्रतिष्ठां विधिना जलादेः कुर्यादिष्ट्वा प्रयतो मनुष्यः ।
 पुण्यार्जनेनैव धनेन काले स्ववित्तसाध्येन शुभाशयेन ॥४०

नहीं, क्योंकि चौथा गान्धर्व (गान आदि) पाँचवाँ पिशाचों के कर्म, शेष यक्ष स्थान कहा गया है । २८-३१।
 अस्सी हाथ के मान वाली नलिनी को मणि कहा गया है । उसके निर्माण के समय मानवेताओं ने आवश्यकतानुसार पाँच हाथ कम करने को बताया है । ३१। साठ हाथ की नलिनी (कुमुदिनी वाला सरोवर) के प्रारम्भ में चार कम हो सकता है और उसी भाँति चौंसठ हाथ की गृहवावली बनाना चाहिए । ३३। उसके प्रारम्भ में चार कम किया जा सकता है, उसके गड्ढे का कोई मान नहीं बताया गया है । ३४। (अग्निकोण) में जलाशय के निर्माण कराने से रोग, दक्षिण में बन्धुनाश, नैऋत्य में भीषण मृत्यु तथा वायव्य में उग्र भय प्राप्त होता है, इसलिए इनके त्याग आवश्यक हैं । ३५। ब्राह्मणों एवं देवताओं के समाजों में तथा मरुस्थल में जहाँ चाहे वहाँ बना सकता है । नदी के तीर, इमशान और मनुष्यों के आश्रमों के सन्निकट तालाब का निर्माण न करना चाहिए । ३६। जो मूर्ख पापी मनुष्य प्रासाद एवं बावली आदि की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं, उन्हें भय, भीषण पाप की प्राप्ति होती है और ऐसे मनुष्य का वैर में सर्प कटवा कर प्राणान्त कर देना चाहिए । ३७। गृहवावली, सरोवर, तालाब, महल, कूप आदि के नवनिर्माण करने के उपरान्त उसकी प्रतिष्ठा के साथ किसी अन्य यज्ञ का प्रारम्भ भी जो करते हैं, उन्हें उसका फल नहीं मिलता है । ३८। किसी जलाशय, महल, कूप, बन आदि की जिसकी प्रतिष्ठा न हुई हो, प्रतिष्ठा करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उनके साथ अन्य यज्ञ के आयोजन करने वाले को उसके न्यून से न्यून फल प्राप्त होते हैं, जो न प्राप्त होने के समान हैं । ३९। इसलिए मनुष्य को जल आदि की प्रतिष्ठा करने के लिए यथेष्ट प्रयत्नशील रहना चाहिए। अपनी पुण्य की कमाई से यथाशक्ति समयानुसार उसमें व्यय करना चाहिए।

प्रसादे शृण्मयं पुण्यं भयैतत्कथितं द्विजाः । तस्माच्चतुर्गुणं प्रोक्तं तृणकाष्ठमये तथा ॥४१
 तृणमये शतमयं तदर्थं नववत्कले । तस्माइशगुणं प्रोक्तं कृते दारुमये भवेत् ॥४२
 ततो दशगुणं प्रोक्तमिष्टिकारचिते शुभे । तस्माच्छतुर्गुणं सौले सहस्रं ताम्ररौप्यके ॥४३
 ततश्च शतसाहस्रं सौवर्णं द्विजसत्तमः । अनन्तफलभास्त्रेति रत्नादिरचिते तथा ॥४४
 यदतीतं भविष्यच्च कुत्तानामयुतं नरः । दिष्णुलोकं नयत्याशु कारयित्वा हरेर्गृहम् ॥४५
 कनिष्ठं मध्यमं श्रेष्ठं कारयित्वा हरेर्गृहम् । अर्धं च वैज्ञवं लोकं मोक्षं च लभते क्रमात् ॥४६
 हस्तानां षोडशैर्यावत्प्रस्थे स्यात्करहीनकम् । तृणदंशमये भूतं मध्यं चार्ककरं भवेत् ॥४७
 कनिष्ठतारहत्तं स्यादुत्तमं पञ्चविंशतिः । सर्वोत्तमं च द्वात्रिंशच्चतुष्कोणे महापलम् ॥४८
 पुरद्वारं च कर्तव्यं चतुरसं तमं भवेत् । अष्टकोणं न कर्तव्यं त्रिपुरं च कलौ युगे ॥४९
 सुरवेशमनि यावन्तो द्विजेन्द्राः^१ परमाणवः । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥५०
 कर्तुदशगुणं प्रोक्तमापानपरिपालकः । पतितान्युद्धरेद्यस्तु स तर्वं फलमश्नुते ॥५१
 पतितं पतमानं च तथार्द्धस्फुटिं तथा । सगुदृत्य हरेवेशम द्विगुणं फलमाप्नुयात् ॥५२

।४०। द्विजगण ! मिट्टी के प्रासाद (महल) बनाने से पुण्य की प्राप्ति होती है, यह मैंने तुम्हें बता दिया और उसी भाँति तृण अथवा लकड़ी के बनाने में उससे चौगुने पुण्य की प्राप्ति होती है । केवल तृण के बनाने से सौ गुनी, नवीन वल्क (छाल) में उसकी आधी पुण्य-प्राप्ति होती है, और लकड़ी के बनाने में उससे दश गुनी ।४१-४२। सुन्दर ईंटों द्वारा बनाने से उससे दशगुनी, पत्थर से सौ गुनी, तांबे या चाँदी से भहन गुनी और द्विजसत्तम ! सुवर्ण द्वारा उससे सौ सहस्र एवं रत्नादिकों द्वारा निर्मित होने पर अनन्त पुण्य प्राप्ति होती है ।४३-४४। भगवान् के लिए मन्दिर बनवाने पर मनुष्य अपने कुल के पूर्व और पर पीढ़ी के दश सहस्र परिवारों को शीघ्र विष्णुलोक में पहुँचाता है ।४५। कनिष्ठ, मध्यम एवं श्रेष्ठ भाँति के मन्दिर भगवान् के लिए बनवाने पर उसे क्रमशः आधे पुण्य, विष्णुलोक एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है ।४६। तृण और बाँस के प्रासाद बनाने में सोलह हाथ का मान बताया गया है, जो प्रारम्भ में एक हाथ कम कर दियाजा सकता है, इसे मध्यम मान कहते हैं ।४७। तार एवं हस्त के प्रमाण वाला कनिष्ठ और पञ्चीस हाथ के प्रमाण वाला श्रेष्ठ बताया गया है। इसी प्रकार बत्तीस हाथ वाला सर्वोत्तम एवं चौकोर महल बनवाने से महान् फल प्राप्त होता है ।४८। पुर का दरवाजा भी चौकोरही बनवाना चाहिए, इस कलियुग में आठ कोने वाला तीन तल का मकान न बनाना चाहिए। द्विजेन्द्रवृन्द ! देवमन्दिर के परमाणु जितनी संख्या में रहते हैं, उतने सहस्र वर्ष वह पुरुष स्वर्गलोक की प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ।४९-५०। आपान के पालन करने वाले को उसके रचयिता से दशगुने अधिक पुण्य प्राप्ति होती है, और जो पतितों जीर्ण-शीर्ण देवालयों के उद्धार करता है, उसे सभी फलों की प्राप्ति होती है ।५१। एकदम नष्ट-ब्रष्ट, जीर्ण-शीर्ण एवं अर्द्धाश भग्न विष्णु मन्दिरों के उद्धार करने से दुगुनी पुण्य प्राप्ति होती है ।५२। एकदम नष्ट-ब्रष्ट देवमन्दिर के निर्माण तथा

१. हे द्विजेन्द्राः सुरवेशमनि यावन्तः परमाणवः स्युस्तावद्वर्षसहस्राणि कर्ता स्वर्गं पूजितो भवतीत्यर्थः।

यतितस्य तु यः कर्ता पतमानस्य रक्षिता । विष्णोरधितलस्यैव भानवः स्वर्गभागभवेत् ॥५३
 यः कुर्गद्विष्णुप्रासादं ज्योतिर्लिङ्गस्य वा क्वचित् । सूर्यस्यापि विरिच्छेश्व दुर्गायाः श्रीधरस्य च ॥५४
 स्वयं स्वकुलमुद्घृत्य कल्पकोटिं दसेहिवि । स्वर्गाद्भग्नो भवेद्राजा धनीं पूज्यतमोऽपि वा ॥५५
 देवीलिङ्गेषु योनौ या कृत्वा देवकुलं नरः । त्मरत्वं प्राप्नुयाल्लोके पूजितो दिवि सर्वदा ॥५६
 प्रत्यृट्काले स्थितं तोषस्ग्रिष्ठोमफलं लभेत् । शरत्कालस्थितं तोयं यज्ञतोयाद्विश्विते ॥५७
 निदधकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वापिनः । स्वर्गं गच्छेत्स नरकं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥५८
 एकाहं तु स्थितं तोयं पूर्थिव्यां द्विजसत्तमाः । कुलानि तारयेन्तस्य सप्त सप्त पराणि च ॥५९
 पूर्वं पितृकुले सप्त तद्वन्मत्कुले द्विजाः । चतुर्दशमिदं ज्ञेयं शतलेलं ततः शृणु ॥६०
 पितुरुद्धर्वं कुलं विंशं मातुरुद्धर्वं कुलं तथा । तद्वत्परं विजानीयाद्वार्यायाः पञ्च एव च ॥६१
 पञ्च वै मातृत्रास्य पितुर्मातामहे कुले । पञ्च पञ्च विजानीयान्मातुर्मातामहस्य च ॥६२
 गुरोः पितृकुले पञ्च तस्य मातृकुले तथा । आचार्यस्य कुले द्वन्द्वं दशराजकुलस्य च ॥६३
 राजो मातामहकुले पञ्च चैद प्रकीर्तिः । एकोत्तरं शतकुलं परिसङ्ख्यातमेव च ॥६४
 आत्मना सह विप्रेन्द्रा उद्धारः सम्मतः स्मृतः । कुयादेवार्चनं तीर्थं स्वविमुक्ते दशार्णवे ॥६५
 समुद्धरेत्कुलशतं शृणु विंशं कुलं द्विज । पञ्च पञ्च च पित्रोश्र पितुर्मातामहस्य च ॥६६
 मातुर्मातामहस्यैव जातिं द्वन्द्वमुदाहृतम् । गुरोः सन्तानके द्वन्द्वं तद्विदवसात्त्वतौ ॥६७

जीर्ण-शीर्ण वाले की रक्षा करने वाला मनुष्य विष्णुलोक के नीचे स्थित स्वर्गलोक में सुशोभित होता है ॥५३। जो मनुष्य विष्णु के निर्मित महल, उसी प्रकार कहीं ज्योतिर्लिङ्ग, सूर्य, विरचि, दुर्गा एवं श्रीधर के लिए भी मन्दिर निर्माण करता है, वह अपने कुल के उद्घारपूर्वक कोटि (करोड़) कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है । पुनः कभी स्वर्ग से हटने पर धनी एवं पूज्यतम राजा होता है ॥५४-५५। देवी के चिह्न स्थानों अथवा योनि में देव-समूह के स्थापित करने से वह लोक में स्मरणीय एवं स्वर्ग में सदैव पूजित होता है ॥५६। वर्षाकाल में वावली में जल रखने से अग्निष्टोम यज्ञ के फल, शरद्काल में उसमें जल रखे तो वह जल यज्ञीय जल से अधिक महत्वपूर्ण होता है ॥५७। गर्भी के दिनों में उसमें सुन्दर पान करने योग्य जल रखने से उसे स्वर्ग की प्राप्ति इस भाँति हो जाती है, जिससे उसे कभी भी नरक नहीं जाना पड़ता ॥५८। द्विजसत्तम ! इस पृथिवी में उस जल को केवल एक दिन के रखने से उसके सात पूर्व के और सात पर पीढ़ी के परिवार पवित्र हो जाते हैं ॥५९। द्विजवृन्द ! इन चौदह कुलों में पूर्व के सात पितृकुल और पर के सात मातृकुल बताये गये हैं, अब सौ कुल की व्याख्या कर रहा हूँ, सुनो ! पिता के पूर्व के बीस कुल एवं माता के पूर्व बीस कुल, उसी प्रकार स्त्री के कुल के घर वाले पाँच कुल, पाँच मातृकुल, पाँच पितृकुल, मातामह के पाँच कुल, माता के मातामह कुल के पाँच, गुरु के पितृकुल के पाँच, उनके मातृकुल के पाँच, आचार्य कुल के दो, राजकुल के दश एवं राजा के मातामह कुल के पाँच परिसङ्ख्यात बताये गये हैं, इस प्रकार एक सौ एक परिवार का यह विशाल कुटुम्ब हुआ । विप्रेन्द्र ! अपने साथ-साथ इनका उद्धार परमावश्यक होता है । मुक्त होने के लिए दशार्णव में तीर्थ के देव की अर्चा करके उस सौ कुलों के उद्धार करना चाहिए । द्विज ! मैं अब बीस कुल का विवेचन कर रहा हूँ, सुनो ! मातृकुल के पाँच, पितृकुल के पाँच, पिता के मातामह कुल के दो, माता के मातामह कुल के दो, गुरु कुल के दश, और परपरका एक, इस प्रकार यह इक्कीस कुल का

परपक्षस्य चैकं स्यादेकदिंशं कुलं क्रमत् । पानीयमेतत्सक्लं बैलोक्यं सचराचरम् ॥६८
 पानीयेन विना वृत्तिलोके नात्तोति कहिंचित् । वारस्वस्थं पुण्यखण्डं तोये पतति यावति ॥६९
 तावत्कालं वसेत्स्वर्गं ज्ञाने ब्रह्मत्वमाप्नुयात् । तत्सात्तोयोनरि गृहं प्रसादोपरि वर्जयेत् ॥७०
 सूर्दरशिमयुतं यद्वै तत्तोयं तु विनिन्दितन् । चन्द्ररस्मिद्विहीनं यज्ञामृतत्वाय कल्पते ॥७१
 तस्याद्वशगुणं कुण्डे तस्माद्वशलुणं हुदे । देवानां स्थापनं कुर्यादविमुक्तफलं शुभम् ॥७२
 सुस्थितं हुःस्तिं यापि शिवलिङ्गं न चालयेत् । चालनाद्वैरवं याति न स्वर्गं न च स्वर्गभाक् ॥७३
 उच्छवनगरमामे स्थानत्यागे च विप्लवे । पुनः संसारधर्मेन स्थापयेदविचारयन् ॥७४
 बाहुदन्तादिप्रतिमा विष्णोश्चान्यस्य सत्तमाः । न चालयेत्स्थापिते च विप्रदृक्षं न चालयेत् ॥७५
 केशवं हरिवृक्षं च मधूकं किंशुकं तथा । नाकाले स्थापयेज्जातु चालनाद्ब्रह्महा भवेत् ॥७६
 देवालयस्य पुरतः कुर्यात्पुष्करिणीं द्विजाः । ब्राह्मणानां समाजे च राजद्वारे चतुष्पथे ॥७७
 देवार्थे ब्राह्मणार्थे च मुखं कुर्याच्च सर्वतः । नश्चिमे पुष्टिकामं तु उत्तरे सर्वकामदम् ॥७८
 याम्ये स्वार्थं न कुर्वीत कोणे तु नरकं भवेत् । मुखं प्रकल्पयेन्मध्ये केचिदुत्तरलङ्घनम् ॥७९

एक परिवार हो गया, क्रमशः इनके उद्धार आवश्यक हैं, अतः सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए । यह चराचरात्मक समस्त तीनों लोक सदैव रक्षा करने के योग्य हैं, बिना पानीय के किसी की कहीं भी स्थिति नहीं हो सकती है, वार स्वस्थ, और पुण्यखण्ड जब तक जल में गिरता रहता है, उतने दिनों तक उसकी स्थिति स्वर्ग में रहती है और पश्चात् ब्रह्मत्व की प्राप्ति हो जाती है । इसलिए जल के ऊपर और प्रासाद के ऊपर गृह बनाने का निषेध किया गया है । ६०-७०। सूर्य की किरणों से संयुक्त जल प्रशस्त नहीं कहा गया है, और उसी भाँति चन्द्र की किरणों से हीन जल मुक्तिप्रदायक नहीं होता है । ७१। उससे दश गुना पुण्य कुण्ड की रचना में, और उससे दशगुना पुण्य हृद (सरोवर) के बनाने में प्राप्त होता है । देवाताओं का स्थापन करना एक मुक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी शुभ फलों को प्रदान करता है । ७२। शिवलिंग, अच्छी बुरी किसी भी परिस्थिति में हो, उसका संचालन (एक स्थान से दूसरे स्थान से ले जाना) कभी न करे, क्योंकि उसके संचालन करने से रौरव नरक के अतिरिक्त न उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है, और न वह कभी स्वर्ग का भाजन ही बन सकता है । ७३। किसी विप्लव के कारण नगर अथवा गाँव के नष्ट हो जाने पर स्थान त्याग के समय उन्हें भी जैसा कि संसार के धर्म हैं, कहीं विना विचारे ही स्थापित कर देना चाहिए । ७४। सत्तम ! विष्णु तथा अन्य की प्रतिमा के बाहु एवं दाँत आदि कोई अंग अथवा समस्त मूर्ति के संचालन उनकी प्रतिष्ठा होने के उपरान्त न करना चाहिए, उसी भाँति ब्राह्मण वृक्ष का भी । ७५। केशव, हरि वृक्ष, मधूक (महुवा) एवं किंशुक (पलाश) इन्हें कुसमय में कभी आरोपित न करे, और कर देने पर वहाँ से पुनः अन्यत्र न लगाये, क्योंकि वैसा करने पर उसे ब्रह्म हत्या का दोष लगता है । ७६। द्विजगण ! देवालय के सामने ब्राह्मणों की सामूहिक बस्ती राजद्वार और चौराहे पर पुष्करिणी नामक जलाशय बनाना चाहिए । ७७। देव और ब्राह्मणों के लिए सभी भाँति से मुख प्रदान करना चाहिए । सरोवर आदि जलाशयों के मुख पश्चिम की ओर करने से पुष्टि, उत्तर में समस्त कामनाओं की सफलता होती है । ७८। दक्षिण दिशा में अपना किसी प्रकार का स्वार्थ न करना चाहिए, और अग्नि तथा नैऋत्य कोण में करने से नरक की प्राप्ति होती है, इसलिए मध्यभाग में उसके मुख करने को बताया गया

कुर्याद्विक्षिणपूर्वे तु अर्कहस्तप्रमाणतः । तडागे दु फलाहस्तं हस्तिकं हूतासयेत्कमात् ॥८०
तृष्णे हस्तं नलिन्यादावतो हीनं न कारयेत् । गर्जतृणं कलाहस्तं तडागेऽत्र प्रचक्ष्यते ॥
हीने होनतरं कुर्याद्विस्तमानेन हूतासयेत् ॥८१

यूपस्तथा सादिर एव कार्यः श्रेयर्णिको धात्रिसमुद्भवश्च ।

सानस्तथा षोडशहस्तसम्मितो रत्नात्सर्वाङ्गोयुगकःस्योजितः ॥८२

आनाहभद्रे च भवेच्च तस्य विंशताङ्गुलोः द्विगुणो मध्यगश्च ।

मध्येऽगुलश्च हीनः कार्यः शुभदः सर्वदा स्यात् ॥८३

एवंविधश्चैव तडागयूपो मध्ये तथा षोडशहस्तसम्मितः ।

कूपे च यूपोप्यथ हस्तमात्रस्ततश्चतुर्हस्तमितः प्रकीर्तिः ॥८४

आरामयोगेऽप्यथ मण्डपे च कार्यश्चतुर्हस्तमितोऽय यूपः ।

सम्पूर्णमाने लक्षितं प्रदाणं हीने तु हीनं प्रवदन्ति तज्जाः ॥

हस्तद्वयं प्रापितव्यं तडागे हस्तः सार्थः पुष्करिण्यां प्ररोदः ॥८५

प्रादेशं वै हस्तमानं कूपद्वयपस्य रोपतः । न कुर्याज्जलमग्नं च यूपं सर्वत्र सत्तमाः ॥८६
तडागे चापि आरामे स्थापयेच्च जलोपरि । हस्तमर्धं तदर्धं स्थान्मानेनानेन दापयेत् ॥

बाप्यां गर्ते पुष्करिण्यां प्रकुर्याज्जलसम्मितम् ॥८७

है, और कुछ लोगों की सम्मति उत्तर की ओर के लिए ही है । ८९। दक्षिण-पूर्व की ओर बारह हाथ के प्रमाण से बनाना चाहिए, तालाब में क्रमशः कम कर देना चाहिए । ८०। नलिनी आदि (जलाशय) में कुछ भी कम करने की आवश्यकता नहीं होती है । सरोवर के मध्य में स्तम्भ का सोलह हाथ का मान बताया गया है । ८१। यदि छोटा (जलाशय) है, तो क्रमानुसार हाथ के मान से उसे कम कर उसी भाँति का छोटा स्तम्भ भी लगाना चाहिए । हीर, सेमर आदि और आँवले के ही स्तम्भ सोलह हाथ के मान से सौन्दर्यपूर्ण बनाकर यथाशक्ति रत्न से विभूषित करके खड़ा करना बताया गया है । ८२। कदाचित् उस स्तम्भ की लम्बाई भाग हो जाये तो, चालीस अंगुल के उसके मध्य भाग के मध्य में कुछ अंगुल कम (पतला) कर देने पर सदैव के लिए वह शुभदायक हो जाता है । इसी प्रकार का स्तम्भ जो सोलह हाथ का लम्बा हो, तालाब के मध्य में स्थापित करने के लिए आदेश दिया गया है । और कुएँ के लिए एक हाथ अथवा चार हाथ का स्तम्भ कहा गया है । ८३-८४। उसी भाँति बगीचे, और मण्डप में भी चार हाथ का स्तम्भ लगाना चाहिए । इस भाँति सम्पूर्ण मानों की विवेचनपूर्ण व्याख्या करते हुए यह बता दिया गया कि बड़े सरोवर आदि में बड़ा स्तम्भ और छोटे में छोटे स्तम्भ के लिए सदैव ध्यान रखना चाहिए । जैसे—तालाब के स्तम्भ के लिए दो हाथ और पुष्करिणी के स्तम्भ के लिए डेढ़ हाथ भूमि के मध्य रहने को बताया गया है । उसी प्रकार कुएँ के स्तम्भ के लिए आदेश के मान से एक हाथ कहा गया है, सतम ! इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि स्तम्भ कहीं भी जलमन न होने पाये । ८५-८६। तालाब और बगीचे के स्तम्भ, क्रमशः आधा हाथ और उसके आधे हाथ जल के ऊपर रहने चाहिए, उसी भाँति बावली, गड्ढे तथा पुष्करिणी के स्तम्भ जल सतह के बराबर रहने को बताये गये हैं । ८७। गलियों में जितने धूलिकण हैं, तथा जितने दिन

यावत्प्रतोलीगतरेणुसङ्गसंख्यागणो नो जरतानुपैति ।
 तावत्सुरेशः सुरलौकवासी प्रासादकृज्जातु न जायते हि ॥८८
 किं वा वाच्यः पुष्करिण्या प्रभावः कर्ता यः स्याद्वारुणो ब्रह्मलोकात् ।
 यावत्कालो बाहुमात्रोद्धता स्याद्दृष्टिः प्रोरता न निवर्तेत्कदाचित् ॥८९
 लक्षैकमाराममयोत्तमः स्यान्मध्यं तदधीं च कनिष्ठमानन् ।
 विनार्जुनैर्बद्दरैः शैलुकैश्च हीनं कुर्याच्छङ्गलैः पातिलैश्च ॥९०
 इति श्रीभविष्ये नहापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पूर्तनिर्णयो नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

पूर्तनिर्णयवर्णनम्

सूत उचाच

शोधयेत्प्रथमं भूमिं मितां कृत्वा ततो द्विजाः । दशहस्तेन दण्डेन पञ्चहस्तेन वा पुनः ॥१
 वाहयेत्सदा वृषभेस्तडागार्थेऽपि भूमिकाम् । देवागारस्य या भूमिः श्वेतैश्च वृषभैरपि ॥२
 या भूमिर्ग्रहयागार्थं तत्र वाहैरपि स्पृशेत् । आरामार्थं कृष्णवृष्णः कूपार्थलननैरपि ॥३

वे वर्तमान रहेंगे (अर्थात् महाप्रलय तक), उतने समय तक वह पुरुष जो देवों के लिए महल निर्माण कराता है, सुरलोक में देवताओं का अधिपत्य प्राप्त कर वहाँ सुशोभित होता है । ८८। पुष्करिणी के प्रभाव का वर्णन कौन कर सकता है, क्योंकि जिसका निर्माण कर्ता स्वयं वहण रूप होकर जब तक कि बाहुमात्रोद्धत दृष्टि का विधान है उतने दिनों तक ब्रह्मलोक का निवासी होता है; बगीचे में स्थापित होने वाले लोहे के स्तम्भ का एक लक्ष मान बताया गया है, उसके आधे मान के स्तम्भ को मध्यम, और उसके आधे मान को कनिष्ठ कहा गया है, इन दोनों से भिन्न (अर्थात् उत्तम मान वाला स्तम्भ) मुनियों की सम्मति से प्रशस्त है, काष्ठ के भी स्तम्भ बनाने में अर्जुन, बेर, शैलुक, शानल और पातिल का त्याग आवश्यक है । ८९-९०

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में पूर्तनिर्णय नामक नवाँ अध्याय समाप्त । ९।

अध्याय १०

पूर्त का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजगण ! दश हाथ के दण्ड अथवा पाँच हाथ के दण्ड से प्रथम भूमि संशोधन करने के पश्चात् सरोवर आदि जिसका निर्माण कराना हो, कराये । १। सरोवर के खोदते समय निकली हुई मिट्टियों को बैलों द्वारा अन्यत्र रखनी चाहिए, उसी भाँति देव मन्दिर के निर्माण के समय उसकी मिट्टी को इवेत वर्ण के बैलों द्वारा निकालने को कहा गया है । २। गृह-यज्ञ के मण्डपादि निर्माण के समय उसकी मिट्टी को किसी भी वाहन द्वारा न हटाना चाहिए, क्योंकि वाहनों को उसका स्पर्श करने के लिए निषेध किया गया है । बगीचे एवं कुएँ के खोदने में काले रंग के बैलों द्वारा उसे मिट्टी के कार्य को संपन्न करना

वाहयेत्निदिनं विग्राः पञ्चदीर्घांश्च वापयेत् । देवपक्षे सप्तगुण आरामकरणे गुणः ॥४
 मुद्गमाषौ धान्यतिलाः श्यामाकश्चेति पञ्चमः । मसूरश्च कलायश्च सप्तश्रीहिंगणः स्मृतः ॥५
 सर्वपञ्च कलायश्च मुद्गो माषश्चतुर्थकः । श्रीहित्रयं माषमुद्गौ श्यामाक्षे महिषो गणः ॥६
 सुवर्णमृत्तिका ग्राहा वर्णनामनुपूर्वशः । द्वित्ववृक्षैरिदं कुर्याद्यूपशून्धवजे दिने ॥७
 अरतिनिरामात्रं विजेदं प्रशरतं दष्टिहस्तकम् । ऊर्णसूत्रमर्यो मूर्तिं कृत्वा कुर्याच्चतुष्टयम् ॥८
 क्षीरदारगत्युतं द्वादशाङ्गुलमेव च । ज्वालयेत्तिलतैलेन तथा केशरजेन वा ॥९
 पूर्वदिक्प्रणवे सिद्धिः पश्चिमाशागतिः शुभा । सर्वे दक्षिणायां च हनिः स्यादुत्तरे स्थिते ॥१०
 कल्पे विपत्करं विद्यातथा चैव च दिग्गते । नारसिंहेन मनुना चाग्निं प्रज्वाल्य दापयेत् ॥११
 मासे घटे तथा मासे कुर्याद्भूमिपरिप्रहम् । सूत्रयेत्कीलयेत्पत्प्रान्महामाने द्विजोत्तमाः ॥१२
 ततो वास्तुबलिं दद्यात्तिनिं परिपूजयेत् । आब्रह्मनिति मन्त्रेण खनयेन्नध्यदेशतः ॥१३
 आज्येन मधुयुक्तेन गात्रमेकं प्रलेपयेत् । स्वर्णतोदयैस्तथा रत्नतोयैः स्नात्वः प्रलेपयेत् ॥१४
 ईशानाभिमुखेनैव कूपपक्षे विदुर्बुधाः । अकृत्वा वास्तुयां च यस्तडां समुत्सृजेत् ॥१५
 तस्य वैवस्वतो राजा धर्मस्यार्थं निष्ठृत्तति । प्रासादे च तथारामे महाकूपे तथैव च ॥१६
 गृहारम्भे च विप्रेन्द्रा दद्याद्वास्तुबलिं ततः । शालैश्च खादिरैश्चैव पलाशैः केशरस्य च ॥१७

चाहिए । ३। विप्रवृन्द ! तीन दिन के भीतर मिट्टी के कार्य समाप्त कर उपरान्त पाँच प्रकार के अन्न, देवमन्दिर-निर्माण अथवा बगीचे का कार्य हो तो सात प्रकार के अन्नों का बीजारोपण करना बताया गया है—मूँग, उरद, पान, तिल, और श्यामा कुनी, ये पाँच अथवा मसूर और मटर समेत सात प्रकार के अन्न कहे गये हैं । ४-५। सरसों (राई), मटर, मूँग, उरद, इसमें उरद, मूँग और श्यामाक (काकुन) को महिष गण बताया गया है । ६। सभी वर्ण के मनुष्यों को गृह-निर्माण करने के विषय में बेल के बने हुए स्तम्भ, शून (चक्राकार) और ध्वज (स्थापन) के दिन, सर्वप्रथम क्रमशः (शास्त्र में बताये गये रंग की) अच्छी मिट्टी की अरति मात्र की एक मूर्ति बनाकर उसे ऊनी सूत्रमय करे । ७-८। पुनः उसे तिल के तेल अथवा केशर-तेल के द्वारा प्रज्वलित करना चाहिए, पूरब दिशा की ओर प्रणव के होने से सिद्धि, पश्चिम में शुभ गति, दक्षिण में मरण और उत्तर की ओर स्थित होने पर हनि होती है, उसी प्रकार कल्प दिशाओं के मध्य में स्थित होने पर आपदायें घेरती हैं । द्विजोत्तम ! मास, घट एवं मास में भूमि प्रहण करके पश्चात् महामान के अनुसार सूत्र से धेर कर कील लगाना चाहिए । ९-१२। तदुपरान्त वास्तु बलि प्रदान कर खोदने वाले अस्त्र (कुदार, फर्हा आदि) की पूजा विधिवत् सुसम्पन्न करे—‘आ ब्रह्मनिति’ मंत्र के उच्चारणपूर्वक मध्य स्थल में खनना चाहिए । १३। सुवर्ण के जल और रत्न के जल से स्नान कराकर उसमें धी मिश्रित शहद का लेपन करे, यह सभी कर्म ईशानकोण के सम्मुख होकर करना चाहिए, इस प्रकार कुएँ खोदने के विषय में विद्वानों ने अपनी सम्मितियाँ प्रकट की हैं । वास्तु बलि के बिना प्रदान किये यदि तालाब का निर्माण कराया जाये, तो उसका आधा पुण्य वैवस्वत राजा नष्ट कर देते हैं । विप्रेन्द्रवृन्द ! उसी भाँति प्रासाद (महल), बगीचा, महाकूप और गृहारम्भ आदि सभी में सर्व प्रथम वास्तु बलि प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक होता है । शाल (शाखा), खैर, पलाश, केशर, बेल एवं बकुल का ही स्तम्भ

बिल्वस्य बहुलस्यैव कर्लो यूधः प्रशस्यते । शुना चक्रोदरकृतं तत्पाश्वे तु ध्वजद्वयम् ॥१८
 सर्पाकारस्तडागे च कूपे कुम्भाकृतिर्भवेत् । आरामे पञ्चपुष्पाभश्छत्रकारस्तु मण्डले ॥१९
 कुर्याद्द्विनाकृतिं सेतौ विष्णुगोहे गदाकृतिम् । अश्वाकारं चाश्वमेधे नरमेधे नराकृतिम् ॥२०
 गोयागे च वृषाकारं गृहयागे ध्वजाकृतिम् । इमशानगोप्रचारार्थं चैत्यवृक्षालयोत्तमाः ॥२१
 चक्राकारो लक्ष्मीहोमे कोटिहोमे हलाकृतिः । नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यते द्वुमरोपणे ॥२२
 एवं शस्यादितां शूनिं शुद्धां पूर्वप्लवान्विताम् । परिगृह्य यज्ञे देवं वनपालं शिखिध्वजन् ॥२३
 सोमं च नागराजानं ततो बीजं सुशोधयेत् । आनयेद्वारयेत्तदाद्रोद्वतापेन तापयेत् ॥२४
 दिनद्वयान्तरे चैव मन्त्रैश्च परिमन्त्रयेत् । गर्भाधानं ततः कुर्याद्द्विष्णुमन्त्रं जपंस्त्रिधा ॥२५
 एवमस्येति मन्त्रेण त्रिधा जप्त्वा विमार्जयेत् । देहि भैति च मन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य दशवारिणा ॥२६
 इत्यगृहीतनामनुना पञ्चधा परिमन्त्रितम् । अयम्बकेनेति मन्त्रेण बीजमारोपयेत्ततः ॥२७
 भार्यामृतुमत्तिः स्नात्वा पञ्चमेऽहनि सत्तमाः । उत्सङ्गे स्थापयित्वा च चुम्बयेन्मन्त्रदेत्ततः ॥२८
 एवं वृक्षस्य संस्कारमध्येऽपि त्वनुगच्छति । तेन पुत्रत्वमाप्नोति नात्र कार्या द्विचारणा ॥२९
 तुलस्या बीजमादाय वैष्णवर्क्षं द्विजोऽहनि । लानयेदनि गोमूत्रबिन्दुतोयैः प्रसेचयेत् ॥३०

कलियुग के लिए प्रशस्त कहा गया है । पुनः उसके पाश्व में कुते के आकार की भाँति दो ध्वजाएँ, जिसका उदर चक्राकार होता है, स्थापित करनी चाहिए । १४-१८। सरोवर में उसका आकार सर्प की भाँति, कुएँ में घड़े के समान, उद्यान (बगीचे) के लिए कमल पुष्प की भाँति, मंडल के लिए छंत्राकार, पुल के लिए कुते के आकार, विष्णु मन्दिर में गदा की भाँति, अश्वमेध यज्ञ में अश्व की भाँति, नरमेध यज्ञ में मनुष्य की भाँति, गो-यज्ञ में बैल की भाँति, गृहयज्ञ में ध्वज की भाँति बनाना चाहिए, और इमशान एवं गो प्रचारार्थं पीपल आदि वृक्षों की भाँति बनाना उत्तम बताया गया । १९-२१। लक्ष आहुति वाले हवन में चक्राकार, करोड़ आहुति वाले हवन में हलाकार एवं वृक्ष के आरोपण करने में उसके मूल भाग में नक्षत्रों की भाँति बनाना चाहिए । २२। इस प्रकार शस्य के प्रशस्त एवं शुद्ध भूमि में जिसमें पहले पानी भर दिया गया रहा हो, मध्यर ध्वजा वाले वनपाल देव की अर्चा करने के उपरान्त नागराज सोम की पूजा करे, तथा पश्चात् बीज के संशोधन, आनयन और धारण आदि क्रियाओं को सुसम्पन्न करना चाहिए, उसे भीषण ताप से संतप्त कर दो दिन के भीतर ही मंत्रों से अभिमंत्रित करके पुनः विष्णुमंत्र का तीन बार जपपूर्वक गर्भाधान आरम्भ करे । २३-२५। पश्चात् ‘अस्येति’ मंत्र के तीन बार जपपूर्वक उसका मार्जन (शुद्धि) और ‘देहि भैति’ इस मंत्र के उच्चारण करते हुए देश जल से उसका संप्रोक्षण करना चाहिए । २६। मनु की बात को न मानने वालों ने इस भाँति पाँच प्रकार से अभिमंत्रित करना बताया है, तदनन्तर ‘अयम्बकेन’ इस मंत्र के उच्चारणपूर्वक बीजारोपण करना चाहिए । सत्तमगण ! रजोवती स्त्री को स्नान से शुद्ध होने पर पाँचवें दिन अपने गोद में लेकर उसका चुम्बन एवं पश्चात् उसे अभिमंत्रित करना चाहिए । २७-२८। इसी भाँति वृक्ष के संस्कार के मध्य समय में भी यही अनुकरण करना चाहिए, इससे उसे निश्चित पुत्र की प्राप्ति होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं । २९। विष्णु भगवान् के नक्षत्र के दिन ब्राह्मण को चाहिए कि तुलसी के बीज लेकर भूमि स्तोदकर उसमें रखे और गोमूत्र के बिन्दु-जल से उसका सेवन करता रहे, इस

एतां तु स्वर्गमाप्नोति सितकुम्भे निपातयेत् । एकरात्रं परिस्थान्य तत आरोग्येदभुवि ॥३१
 अदिदै॒ कूपदाप्यादौ खनने सूयते क्वचित् । कुर्वन्ति सहकारादिरोपणं ये नराधमाः ॥
 लभन्ते न फलं तेषामिह चाभ्येत्यधोगतिम् ॥३२
 नदीतीरे इमशाने च स्त्वगृहस्य च दक्षिणे । तुलसीरोपणं कृत्वा याति कर्ता यमालयम् ॥३३
 पञ्चपुष्टफलतानां च रजोरेणुसमागमाः । पोषणन्ति च पितरं प्रत्यहं प्रतिकर्मणि ॥३४
 यस्तु वृक्षं प्रकुल्ते छायापुष्टफलोपयम् । पथि देवालये चापि पासात्तारयते पितृन् ॥
 कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रत्यभ्येति शुभं फलम् ॥३५
 अतीतानागताश्रातः पितृन्स स्वर्गस्तो द्विजाः । तारयेद्वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षं प्ररोपयेत् ॥३६
 अपुत्रस्य हि पुत्रत्वं पादपा इह कुर्वते । यत्लेनापि च विप्रेन्दा अश्वत्यारोपणं कुरु ॥३७
 शते: पुत्रसहक्षाणामेकं एव विशिष्यते । कामेन रोपयेद्विप्रा एकद्वित्रिप्रसङ्गब्यया ॥३८
 मुक्तिहेतुः सहक्षाणां लक्षकोटीनि यानि च । धनी चाश्वत्यवृक्षे च अशोकः शोकनाशनः ॥३९
 प्लक्षो भार्याप्रदश्वैव बिल्वं आयुष्टदः स्मृतः । धनप्रदो जस्त्ववृक्षो द्व्यादः प्लक्षवृक्षकः ॥४०
 तिन्दुकात्कुलवृद्धिः स्यादाडिमो कामिनीप्रदः । बकुलो वञ्जुलश्वैव पापहा बलबुद्धिः ॥४१
 स्वर्गप्रदा धातकी स्याद्वटो मोक्षप्रदायकः । सहकारः कामप्रदो गुवाकः सिद्धिमादिशेत् ॥४२

प्रकार करने से उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है, पुनः उसे श्वेत कुम्भ की भाँति (गमले आदि) में एक रात रखकर पश्चात् भूमि में उसका आरोपण करना चाहिए । ३०-३१। विधानहीन होकर कुएँ, बाबली आदि के खोदने के समय जो नराधम सहकार (आम) आदि के आरोपण प्रसव आदि करते हैं, उन्हें उनके फल प्राप्त नहीं होते हैं, प्रत्युत उनवारी अधोगति होती है । ३२। नदी के तट, इमशान अथवा अपने घर के दक्षिण की ओर तुलसी वृक्ष के आरोपण करने से नरक की प्राप्ति होती है । ३३। आरोपित वृक्षों में पत्र, पुष्प और फलों के रजकण, प्रत्येक कर्मों में पितरों को पोषित करता है । ३४। जो कोई (अत्यन्त सघन) छाया, पुष्प और फलों वाले वृक्ष का आरोपण किसी मार्ग, चौराहे या देवालय में करता है, उसके पितरगण, पाप से मुक्त हो जाते हैं, और उसे स्वर्ग लोक में स्थापित एवं शुभ फल की प्राप्ति होती है । ३५। द्विजवृन्द ! वृक्ष का आरोपण करने वाला व्यक्ति अपने पूर्व और पर के पितरों को पाप-मुक्त कराकर स्वर्ग प्रदान कराता है, अतः वृक्ष का आरोपण परमावश्यक होता है । ३६। विप्रेन्द्रवृन्द ! इस लोक में वृक्षगण, पुत्रहीन को पुत्र प्रदान की शक्ति देते हैं, इसलिए अश्वत्य (पीपल) के आरोपण के लिए प्रयत्नशील रहो । ३७। सैकड़ों एवं सहस्रों पुत्रों में एक ही कोई विशिष्ट व्यक्ति होता है, जो इसको अपनाता है, विप्रवृन्द ! कामनावश एक, दो या तीन वृक्ष के आरोपण अवश्य करने चाहिए । ३८। उसी भाँति मुक्ति प्राप्ति के लिए सहस्रों, लाखों एवं करोड़ों (अर्थात् जहाँ तक हो सके) वृक्षों के आरोपण करे । पीपल के वृक्ष आरोपण करने से धन, अशोक से शोक नाश, पाकड़ से स्त्री प्राप्ति, बेल से आयु, जामुन से धन, और पाकड़ से ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है । ३९-४०। तेंदू से कुल वृद्धि, अनार से कामिनी, वकुल एवं अशोक से पापमुक्ति और बल बुद्धि की प्राप्ति होती है । ४१। आवले से स्वर्ग, बरगद से मोक्ष, आम से सभी कामनाएँ, सुपारी से सिद्धि, बलवल से सभी प्रकार के धान्य, और महुवे तथा अर्जुन के भी वही फल बताये गये हैं । कदम्ब से विपुल कीर्ति,

सर्वशस्यं बलवले मधुके चार्जुने तथा । कदम्बे विपुला कीर्तिस्तिन्तिद्वयी धर्मदूषिकः ॥४३
जीवन्त्या रोगशान्तिः स्यात्केशरः शत्रुमर्दनः । धनप्रदश्रैव वटो वटः श्वेतवटस्तथा ॥४४
पनसे मन्दबुद्धिः स्यात्कलिवृक्षः श्रियं हरेत् । कलिवृक्षं च शाखोट उदरावर्तकं तथा ॥४५
तथा च 'मर्कटीनीपरोपणात्संततिक्षयः । शिंशापां चार्जुनं चैव जयन्ती हयं मारकान् ॥
श्रीवृक्षं किंशुकं चैव रोपणात्स्वर्गमादिशेत् ॥४६
न पूर्वा रोपयेज्जातु शमिधं काटकीद्वृमम् । कुशं पद्मं जलनां रोपणाद्दुर्गतिं वजेत् ॥४७
मन्दारे कुलहनिः स्याच्छाल्मले शुकबुद्धिमान् । निम्बे पशुविनाशः स्याच्छत्राके कुलपांसलः ॥४८
उत्पन्ने कुलपातः स्यात्पशोरेव क्षयो भवेत् । शत्रुबुद्धिः काकनादे बलपूर्गे हतश्रियः ॥४९
विना क्रतौ विरुद्धश्च न सिंहं द्विजसत्तमाः । क्रतौ हि स्याद्विरुद्धश्च प्रानुयन्नरकाकृतिम् ॥५०
राहकारसहस्रात् वरिष्ठं धातकीद्वयम् । तस्माच्चैव सहस्राद्धि पाटलैकः विशिष्यते ॥५१
पाटलानां शतात्पश्चादैकरत्कवटो भवेत् । वटानां द्विसहस्राच्च पञ्चकं नागकेशरम् ॥५२
तस्माद्विरिष्ठः श्रीवृक्षो जम्बूवृक्षः प्रशस्यते । तस्माद्विमवतो ज्ञेयः श्रीपर्णीवृक्ष उत्तमः ॥५३
तिन्दुकस्य त्रयच्चैव जम्बूवृक्षस्य पञ्चकम् । कदम्बर्जुनवृक्षस्य नारिकेरस्य च त्रयम् ॥
एवमुक्त्वा स धर्मात्मा कारयेत्कीदृशं बलम् ॥५४
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । स्वर्गभोगं समझनाति विधिवद्दुमरोपणे ॥५५

इमली से दूषित धर्म, हरें से रोगशान्ति, केशर से शत्रु-नाश, बरगद तथा श्वेत बरगद से धन, कटहल से मन्दबुद्धि, कलिवृक्ष से श्रीहनि नाभि की भाँति प्रकार वाले शाखोट को ही कलिवृक्ष बताया गया है । जवास से संताननाश एवं शिंशापा, अर्जुन, जयंती, कनेर श्री वृक्ष तथा किंशुक के लगाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है । ४२-४६। काँटे वाले एवं समिध शमी के वृक्ष पहले कभी नहीं लगाने चाहिए, कुश, कमल, एवं पानी में उत्पन्न रहने वाले आदि वृक्षों के लगाने से दुर्गति प्राप्ति होती है । ४७। मदार से कुल नाश, सेमर से शुक की भाँति तीव्र बुद्धि, नीम से पशु विनाश, तथा छत्राक (केला आदि) से व्यभिचारी कुल हो जाता है । ४८। हाते के भीतर इसके स्वयं उत्पन्न होने पर कुल नाश, एवं पशुक्षय होता है । काकनाद से शत्रुबुद्धि, और बलपूर्ग से श्री नाश होता है । ४९। द्विजसत्तम ! यज्ञ में सिंह के बिना विरोध न करना चाहिए । और क्रतु में विरुद्ध होने पर उसे नारकीय आङ्गति की प्राप्ति होती है । ५०। सहस्रों आम के पेड़ से धातकी के दो ही वृक्ष लगाना अत्यन्त उत्तम बताया गया है, उसी भाँति सहस्रों धातकी से पाटल का एक वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ बताया गया है । ५१। सैकड़ों पाटल से एक रक्तवट, दो सहस्र वटों से नागकेशर के पाँच वृक्ष, उससे श्रीवृक्ष और जामुन के वृक्ष कहे गये हैं पुनः उससे भी पर्णी वृक्ष, तथा तीन तेंदू, पाँच जामुन, कदम्ब, अर्जुन एवं नारियल के तीन वृक्ष उत्तम बताये गये हैं, इन्हें अदश्य लगाने चाहिए, इस प्रकार के वृक्षों के लगाने से उस धर्मात्मा को किसं भाँति बल की प्राप्ति होती है, (मैं बता रहा हूँ) । सहस्रकोटि कल्प, एवं सौ कोटि कल्प एवं सौ कोटिकल्प तक स्वर्ग के उपभोग उसे इन अनेक भाँति के वृक्षों के लगाने से प्राप्त होते हैं

१. केवांछ इत्युदीच्यभाषयोच्यते । २. करवीरान् । इह सर्वत्र शेषषष्ठीविषये कर्मत्वमार्षम् ।

जन्मत्रयादिकं पापं विनाश्य स्वर्गमादिशेत् । शतरोपी च ब्रह्मत्वं विष्णुत्वं च सहस्रके ॥५६
 तुलसीरोपणाच्चैत्र आधिव्याधियुतो भवेत् । वैशाखे कीर्तिसाप्रोति ज्येष्ठे तु मरणं व्रजेत् ॥५७
 आषाढे कीर्तिसाप्रोति श्रावणे परमां गतिम् । भाद्रे धनगमश्रैव आश्विने कातिंके क्षयः ॥
 तुलसी त्रिविधा लोके कृते इवेता प्रशस्यते ॥५८
 किञ्चिच्छेदं च यः कुर्यादिश्वत्थस्य वटस्य च ! श्रीवृक्षस्य च विप्रेन्द्राः स भवेद्ब्रह्मघातकः ॥५९
 मूलच्छेदेन विप्रेन्द्राः कुलपातो भवेदनु । वृक्षच्छेदी भवेन्मूक आधिव्याधिशतं भजेत् ॥
 तारं प्रातश्च घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ॥६०
 फलमामकुलत्थश्च माषो मुद्गास्तित्तला यवाः । नृत्यगीतपयः केशफलपुष्पप्रदो भवेत् ॥६१
 अविकाकसकृच्छूर्णं यवचूर्णानि यानि च । गोमांसमुदकं चैव सप्तरात्रं निधापयेत् ॥६२
 तमेकं सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदम् । रोहिमत्यस्य पित्तानि धान्याकं तत्र त्थापयेत् ॥६३
 तेनोदकादिसेकश्च कृतो वै वृद्धिमादिशेत् । तित्तडीबीजमादाय इक्षुदण्डेन मर्दयेत् ॥६४
 तेनाशेषे क्रसेकः स्यात्सहकारस्य वृद्धिमान् । नालिकेरोदकं चैव माक्षिकैः सह सेचयेत् ॥६५
 दोहदं सर्ववृक्षाणां पूगादीनां विशेषतः । दशशिराबीजयुतादभिषेकाच्च जीविति ॥६६
 प्राक्प्रसूतिर्गवादीनां छागादिमहिषस्य च । जरादु तोयं वृक्षाश्ये स्थापयेदविचारयन् ॥६७
 परस्य सहकारस्य फलं स्यान्नात्र संशयः । मेषस्य च वितालस्य यवागूँ च समाहरेत् ॥६८

१५२-५५। उसके तीन जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं और शीघ्र स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है, सो वृक्षों को लगाने से ब्रह्मत्व एवं सहस्र से विष्णुत्व की प्राप्ति बतायी गयी है। चैत्र मास में तुलसी के वृक्ष लगाने से शारीरिक-मानसिक दोनों के कष्ट, वैशाख में कीर्ति, ज्येष्ठ में मरण, आषाढ़ में कीर्ति, सावन में परमगति, भाद्रों में धनगम, आश्विन और कार्तिक में क्षय होता है। लोक में तीन प्रकार की तुलसी में श्वेत तुलसी प्रशस्त बतायी गयी है। १५६-५८। विप्रेन्द्रगण ! पीपल, बरगद तथा श्रीवृक्ष के लेशमात्र भी काटने से उसे ब्रह्मघाती कहा जाता है। १५९। विप्रेन्द्र ! इनके जड़ समेत काटने पर तो कुल नाश ही हो जाता है, क्योंकि वृक्ष काटने वाला गूंगा होता है, उसे सैकड़ों शारीरिक एवं मानसिक कष्ट सदैव धेरे रहते हैं। प्रातःकाल, सायंकाल, धूप के अंत में, शीतकाल (जाड़ों) में एक आध दिन के उपरान्त आम, मटर, उरद, मौंग, तिल और यवा, नृत्य, गीत, पय, केश, फल और पुष्प प्रदान करते हैं। ६०-६१। भेड़, कौवे के चूर्ण, यव के चूर्ण, गोमांस, जल, इन्हें सात रात-दिन ढाँक के रख देने पर इनमें से एक-एक समस्त वृक्षों के फल, पुष्प आदि की वृद्धि प्रदान करते हैं, और रोहू मछली के पित्त में धान्याक रखकर उसके जल से जिसका सेचन किया जाये, उसकी वृद्धि होती है। तित्तडी के बीज को ऊर के दंडे से अच्छी तरह धिसने से अशोक में प्रसेक और आम के लिए वृद्धि प्राप्त होती है। नारियल के जल में माक्षिक (मोम) जलाकर सीचने से सभी वृक्षों में विशेषकर सुपाङ्गी में अंकुर उत्पन्न होता है। दशशिरा के बीज मिलाकर सीचने से तो उसमें प्राण संचार ही होने लगता है। ६२-६६। गौ आदि के प्रथम प्रसव को बकरी भैसे आदि के जरा में मिथित जल को वृक्षों के अग्रभाग में रख दे, इसमें विचार की आवश्यकता नहीं। ६७। उससे आम में फलों की अत्यन्त वृद्धि होती है, भेड़ और विताल के लप्सी बनाकर उसमें एक मास तक राई डालकर मर्दन करे, पश्चात् उसे तीन दिन

तत्र मासैः सर्षपेश्च पूरयेन्मर्दयेत्ततः । गुवाकवृक्षकं देव घर्षयेन्मर्दयेत्तिरभिः ॥६९
 मृतोऽपि जीवयेच्छीद्रं श्रियमाणोऽपि जीवति । निम्बपत्रं योगपत्रं शतावरिपुनर्नवाम् ॥७०
 क्षीरिकातात्रकैः पत्रैर्धूमं इद्याद्विनत्रयम् । सहकारस्य मूलेन कीटरोधो न जायते ॥७१
 ततः प्राधान्यतो बक्ष्ये द्रुमाणां दोहदोऽन्यथा । मत्योदकेन सिक्केन आश्राणां वृद्धिरिष्यते ॥७२
 पक्वाङ्गं रुधिरं चैव दाढिसानां प्रशस्यते । योदकं त्तगोमांसं केतकीनां प्रशस्यते ॥७३
 क्षीरके बलवृद्धिः स्यात्तिंडुकः करमर्दकः । मांसपूतिरसामज्जः शोकताले गुवाकके ॥७४
 सपूतिमांसं सधृतं तालिकेरस्य रोहितम् । मधुयष्टचुइकैः सेकात्सामान्यं निहितं भवेत् ॥७५
 कपित्पबिल्वयोः सेकं गुडोयेन सेचयेत् । जातीनां नलिकानां च कुन्दानां रन्तिकल्प च ॥७६
 गंधतोयसितकरं सर्पनिर्मोक धूपकम् । कूर्ममांसमल्लरसं विडंगस्य च पुष्पकम् ॥७७
 रथ्यमदृशे प्रतिष्ठाप्य फलवाञ्जायते ततः । वातसर्पस्य निर्मोकं तगराजगवस्य च ॥७८
 दद्यादूपं धान्यमध्ये धान्यवृद्धिश्च जायते । मयूरपत्रमादायच्छागरोमाणि सप्त दै ॥७९
 दरण्डतैलयोगेन दद्यादूपं निशागसे । हिंगुकुमुमसंयोगान्सूचिकाणां परिन्यसेत् ॥८०
 करिविष्ठामृच्छविष्ठां कृत्तिकायां समाहरेत् । निशातोये प्रसेकः स्यात्तत्क्षात्रमूलकं हरेत् ॥८१
 अश्वत्थमूले दशहस्तमात्रं क्षेत्रं पवित्रं पुरुषोत्तमस्य ।
 अश्वत्थच्छायासलिलस्य मध्ये विशेषतो वै त्रिपथैव गंगा ॥८२

तक गुवाक वृक्ष में धिसता रहे, तो यदि वह मृत हो गया हो तो जीवित हो जाता है, और मरणासन्न भी जीवित हो जाता है । नीम की पत्ती, योग की पत्ती, शतावर, पुनर्नवा (गदहपुन्ना) और क्षीरिका को रक्तपत्रों में मिलाकर उसकी तीन दिन धूप प्रदान करने से आम के जड़ में कीड़ नहीं लगते हैं । ६८-७१ । इसके उपरान्त मैं तुम्हें वृक्षों में अंकुर के शीघ्र निकलने की क्रिया बता रहा हूँ ! मछली के जल से सींचने पर आमों की शीघ्र और अत्यन्त वृद्धि होती है । ७२। पके आम और रुधिर अनार की वृद्धि के लिए प्रशस्त बताया गया है, उसी भाँति केतकी के लिए जवा के जल मिश्रित गोमांस अत्यन्त प्रशस्त हैं । ७३। उससे (दूध वाले) क्षीरक वृक्षों में बल की वृद्धि होती है, उसी प्रकार तिंडुक से हाथ में खुजलाहट, शोकताल सुपारी से मांस की दुर्गन्ध और रस मज्जा उत्पन्न होता है । रोहित (रोहू) मछली के जल से नारियल में, धी, गन्ध और मांस की वृद्धि होती है । शहद, जेठीमधु (पान की जड़) के जल से सामान्य वृद्धि होती है । ७४-७५। कैथ और बेल की वृद्धि के लिए गुड़ के जल से सींचना चाहिए । जूही, चमेली, कुंद, एवं रन्तिक में गंध, जल और इवेत धने की वृद्धि साँप की केचुल की धूप देने से होती है । कछुए के मांस अन्नरसतथा विड़ज्ज्ञ के पुष्प को गावों के मध्यवाले एवं नगरों की गलियों के वृक्षों में छोड़ने से उनकी अत्यन्त वृद्धि होती है । वायुप्रकृतिक साँप की केंचुल और तगर की धूप शस्यों में देने से धान्य वृद्धि होती है । मयूर के पखने बकरी के सातलोम, इन्हें रेडी के तेल में मिलाकर आधी रात के समय इसकी धूप देने से चूहे पलायन कर जाते हैं, तथा हींग एवं कुमुम के संयोग से भी यही होता है । ७६-८०। कृतिका नक्षत्र के दिन हाथी एवं रीक्ष के मल को जल में मिलाकर आधी रात के समय उससे सींचने से क्षात्र मूल नष्ट हो जाता है । ८१। पीपल के वृक्ष में दशहाश्वत का पुरुषोत्तम का क्षेत्र कहा जाता है, पीपल की छाया यदि कहीं जल में हो तो वह विशेष कर त्रिपथगा

ब्रह्मविंशान्तरे रोपेत्सहकारं स धर्मवित् । कलाहस्तन्तरं धात्रीं बकुलं बंजुलं तथा ॥८३॥
 श्रैपर्णिकं च पुश्पां श्रीवृक्षं द्विगुणं तरौ । हस्ते शैलमये चैव उत्तमं मानमीरितम् ॥८४॥
 शैलेष्टकादिरचिते चतुर्हस्ते तु सम्मिते । वाप्यादीनां तु कूपानामेकवृक्षादिकस्य च ॥८५॥
 श्रीविष्णोवृक्षपक्षे च वरुणेष्टं च कूपके । गणेशं पूजयेत्कुम्भं दिक्पालांश्च विशेषतः ॥८६॥
 अग्निकार्यं विना कुर्यात्प्रकुर्याच्च सतां गतिम् । श्रत्वा कृतिं विधानेन अन्येषां वा तथोद्भवम् ॥८७॥
 अन्येषां चैव दृष्टे च तना च तुलसीवने । कुम्भे चनस्पतिः स्थाप्यः पूजयेष्टोभयेत्त ॥८८॥
 तुलस्याः तहकारस्य ब्रह्मवृक्षस्य चैव हि । अश्वत्थस्य बटस्यैव स्वर्णतास्थ वेधयेत् ॥८९॥

इति श्रीभविष्ण्वे महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे पूर्तनिर्णये दशमोऽध्यायः । १०

अथैकादशोऽध्यायः तन्त्रात्मकप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

अथ तन्त्रविधिं वक्ष्ये पुराणेष्वपि गीयते । तन्त्रे चैव प्रतिष्ठां च कुर्यात्पुण्यतमेऽहनि ॥१

गंगा के समान होता है । ८२। धर्मवित्ता को चाहिए कि बीस हाथ की दूरी पर आम के वृक्ष लगाये, आँवली, बकुल, बंजुल सोलह हाथ की दूरी पर लगाने चाहिए । ८३। सेमर के वृक्ष, नागकेसर और पीपल के वृक्ष को उसकी दुगुनी दूरी पर लगाना चाहिए, इस प्रकार शैलमय हाथ के उत्तम मान को बता दिया गया । ८४। बावली आदि कुर्णे और वृक्षादिकों की प्रतिष्ठा में पत्थर या ईटे से बार हाथ की वेदी बनाकर वृक्षों की प्रतिष्ठा में श्री विष्णु, कुर्णे में वरुण की पूजा में सर्वप्रथम कलशस्थापन पूर्वक गणेश और विशेषकर दिक्पालों की पूजा आवश्यक होती है । ८५-८६। इसमें हवन न करने पर उत्तम गति प्राप्त होती है । उपरोक्त विधान में अथवा जिस किसी वृक्ष आदि की प्रतिष्ठा करनी हो, उसमें तुलसी वन में घड़े के ऊपर उस वृक्ष का स्थापन करके पूजन एवं हवन करना चाहिए । ८७-८८। पुनः उसी से तंस्कृत (संस्कार किये हुए) वस्त्र से उसे चारों ओर से आवेष्टित (लपेट) कर इस पवित्रापूर्ण कार्य के समेत उसकी प्रतिष्ठा का विधान सुसम्पन्न करना चाहिए । ८९। तुलसी, आम, ब्रह्मवृक्ष, पीपल एवं बरगद इन्हीं की स्वर्णता के वेधन करना चाहिए । ९०

श्रीभविष्ण्वपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में दशवाँ अध्याय समाप्त । १०।

अध्याय ११ तन्त्रात्मक प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—अब मैं उस तंत्र के विधान को बता रहा हूँ, जिसकी व्याख्या पुराणों में भी की गई है । उस तन्त्रात्मक प्रतिष्ठा को किसी अत्यन्त पुण्य दिवस में सुसम्पन्न करना चाहिए । १। छोटे-छोटे सौ वृक्ष,

शतवृक्षसुद्रवृक्षे दशद्वादशवृक्षके । दृष्टिमात्रान्तरे सेतौ कूपयागे समुत्सृजेत् ॥२
 न कूपमुत्सृजेज्जातु वृक्षयागे कथञ्चन । तुलसीवनयागे तु न चान्यं यागमाचरेत् ॥३
 तडागयागे सेत्वादीश्वरं चारामे कदाच्छन । न सेतुं देवयागे तु तडारं न समुत्सृजेत् ॥४
 तन्त्रे श्राद्धं पृथग्नास्ति कर्तुर्भेदे पृथग्नवेत् । शिवलिङ्गस्थापनयां न चान्यदेवस्थापनम् ॥५
 स्वदेशे वर्जयेत्तं तं स्वतन्त्रेण विधीयते । विपरीते कृते चापि आयुःक्षय इति स्मृतिः ॥६
 तडागे पुष्करिण्यां वा अःरामेऽपि द्विजोत्तराः । मानहीने मानपूर्जे दशहस्ते न दूषणम् ॥७
 द्विसहस्राधिकं यत्र तत्प्रतिष्ठां समाचरेत् । दश द्वादशवृक्षे च अःरामे पूर्ववद्विजाः ॥८
 प्रतिष्ठां दिल्ववृक्षे च अन्यथा कर्णवेधनम् । कुर्याद्विहृददानं च तत्र निर्मन्थनादिकम् ॥९
 अनन्तरं प्रदातव्यः लाजा मूर्धन्यक्षतादिकम् ॥१०
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे भद्रमपर्वदिग्नि पूर्वभागे तन्त्रप्रतिष्ठावर्णनम् नामैकादशोऽध्यायः ॥११

अथ द्वादशोऽध्यायः

प्रतिमालक्षणवर्णनम्

सूत उवाच

प्रतिमालक्षणं वक्ष्ये यथाशास्त्रमतं द्विजाः । प्रतिमां लक्षणैर्हीनां गृहीतां नैव पूजयेत् ॥१

या दश बारह वृक्ष और छोटे पुल की प्रतिष्ठा अलग न करके कुएँ की प्रतिष्ठा में ही सम्मिलित कर लेना चाहिए ।२। कूप-यज्ञ को कभी भी वृक्ष याग में सम्मिलित न करना चाहिए, उसी भाँति तुलसी वन के यज्ञ में किसी अन्य यज्ञ का सम्मिश्रण न होना चाहिए ।३। पुल आदि की प्रतिष्ठा सरोवर यज्ञ, अथवा बगीचे की प्रतिष्ठा में सम्मिलित न करना चाहिए, उसी भाँति देवयज्ञ में सेतुयज्ञ, और सरोवर यज्ञ न सम्मिलित करना चाहिए ।४। तत्र विधान में पृथक् श्राद्ध करना नहीं बताया गया है, पर, कर्ता के भेद से पृथक् करना अनुचित नहीं कहा गया है । शिवलिंग की स्थापना में किसी अन्य देव की प्रतिष्ठा सम्मिलित न करनी चाहिए ।५। प्रत्येक की प्रतिष्ठा को स्वतन्त्रता से सुसम्पन्न करने और किसी अन्य का सम्मिश्रण न करने का विधान बताया गया है, इसके प्रतिकूल करने से आयु क्षीण होती है, ऐसा स्मृतियों में कहा गया है ।६। द्विजोत्तम ! सरोवर, पुष्करिणी एवं बगीचे की प्रतिष्ठा के विषय में बताया गया है कि वह पूरे मान के अनुसार ही अथवा मानहीन केवल दश हाथ प्रमाण का ही हो, तो उसमें दोष नहीं होता है ।७। वृक्षों की दो सहस्र से अधिक संख्या जिस बगीचे में हो उसी की प्रतिष्ठा समुचित बतायी गयी है । दश-बारह आम के वृक्षों के लिए तो वही पूर्वोक्त विधान ही कराना चाहिए ।८। बेल की प्रतिष्ठा, कर्णवेध, दोहृद दान, और निर्मनादि के उपरान्त उनके सिर पर लाजा (लावा) और अक्षत चढ़ाने चाहिए ।९-१०। श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के पूर्व भाग में तन्त्रप्रतिष्ठावर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।११।

अध्याय १२

प्रतिमा-लक्षण का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजवृन्द ! मैं प्रतिमा के शास्त्र सम्मत लक्षण बता रहा हूँ, लक्षणहीन प्रतिमाओं

शैलजः दररुजा ताम्री मृद्घवा सर्वकामदा । एकहस्ता द्विहस्ता वा सार्धहस्ता तथापि वा ॥२
 प्रासादमानमथवा अथवा सर्वलक्षणम् । अष्टाङ्गगुलोत्सेधकं च न तु गेहेऽर्चयेत्कृती ॥३
 देवागारस्म यद्वारं तस्मादष्टाङ्गगुलेन तु । त्रिभागपिण्डिका कार्या द्वौ भागौ प्रतिमा भवेत् ॥४
 अङ्गगुलं वै भवेद्विरशीतिश्रतुरुत्तरा । विस्तारभानतः कार्यं वदनं द्वादशाङ्गगुलम् ॥५
 मुखत्रिभागे चिबुकं ललाटं नासिकां तथा । कण्ठो नासिकया ग्रीवातुल्यौ वा नियतौ तु यौ ॥६
 नयने द्वयङ्गगुले स्पातां त्रिभागा तारका भवेत् । तृतीयतारकः भागे शुभदृष्टिं विचक्षणः ॥७
 ललाटमस्तकः ग्रीवं कुर्यात्तस्मेव तु । परिणाहस्तु शिरसो भवेद्वात्रिंशद्वङ्गुलः ॥८
 तुल्यौ नासिकया ग्रीवा मुखेन हृदयान्तरम् । अथ विस्तारपद्मिक्तस्तु ततोऽर्थं तु कटिः सदा ॥९
 द्वाहू च बाहुतुल्यौ च ऊरु जड्ये च जाधनम् । गुल्फाकस्त्रस्तु पादः स्याद्वाटितश्वतुरङ्गगुलः ॥
 षड्ङगुलस्तु विस्तारस्तुल्याङ्गगुलोऽङ्गगुलत्रयम् ॥१०
 प्रदेशिनो च ततुल्या हीना शेषान्नखानखन् । चतुर्दशाङ्गगुलः पादस्यायामः परिकीर्तिः ॥११
 एवं लक्षणसंयुक्ता सा प्रज्ञा प्रतिमा शुभा । अधरोष्ठस्तथैवोरुङ्गललाटमनीषिकम् ॥१२
 गण्डं च नियतं मूर्तीं कुर्यादिंगसमुन्नतेः । विशालनयनस्तात्रपदो वायतलोचनः ॥१३
 सदितानलपत्रत्य चारुविद्याधरस्तथा । वत्सप्रोक्तोऽतिमुकुटः कटकाङ्गदहारवान् ॥१४

की पूजा कभी न करनी चाहिए । १। पत्थर, काष्ठ, ताँबे और मिट्टी की प्रतिमा एक हाथ दो हाथ अथवा डेढ़ हाथ की बनानी चाहिए, उससे समस्त कामनाएँ सफल होती हैं । २। प्रासाद (महल) की भाँति मानपूर्ण, मन्दिर में प्रतिमाओं का पूजन करना चाहिए और समस्त लक्षणों वाली प्रतिमा जिसकी शरीर आठ अंगुल प्रमाण की हो, का पूजन आदि अपने घर में किसी कुशल व्यक्ति को कभी न करना चाहिए । ३। देवालय के दरवाजे क्षेत्रफल में आठ अंगुल और मिलाकर उसके तिहाई भाग पीड़ी (मूर्ति के खड़े रखने की वेदी) और दो भाग की लम्बाई के अनुसार प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए । ४। प्रतिमा की लम्बाई-चौड़ाई एवं अंग (प्रत्यंग) का मान मिलकार कुल चौरासी अंगुल होना चाहिए । बारह अंगुल का लम्बा-चौड़ा मुख उसमें मुख, ठोड़ी, भाल और नाक तीन-तीन अंगुल के होने चाहिए, नाक और गले के समान दोनों कान, दो अंगुल के नेत्र, और उसके तीसरे भाग के समान आँख की कनेनिका तारा होनी चाहिए, तीसरे भाग के समान तारका वाली आँखें विद्वानों ने शुभ बतायी है । ५-७। भाल, मस्तक, और गले को उसी के अनुसार रखना चाहिए, यों ही शिर का बत्तीस अंगुल का मान बताया गया है । ८। नाक के समान कान और कण्ठ तथा मुख के समान हृदय का मध्यभाग बनाना चाहिए । जितनी लम्बाई हो, उसकी आधी कटि सदैव होनी चाहिए, उसी भाँति बाहु के समान भुजाएँ, और ऊँचे जंघे के समान जंघे का निर्माण करना चाहिए, गुल्फ (एड़ी), पैर चार अंगुल के न होने चाहिए । उसका विस्तृत मान छः अंगुल का बताया गया है—तीन अंगुल के अंगूठे एवं उसी के समान तर्जनी अंगुली तथा शेष अंगुलियाँ क्रमानुसार छोटी-बड़ी बनानी चाहिए, इसप्रकार पैर का पूर्ण मान चौदह अंगुल का होता है । ९-१। इस भाँति की लक्षण सम्पन्न एवं शुभ प्रतिमा की पूजा करना कहा गया है ; उपरोक्त उसी प्रकार उरु भौंहें, ललाट, जिह्वा एवं कपोल, इतने अंग मूर्ति के अवश्य उत्तर होने चाहिए, विशाल नेत्र, रक्तवर्ण के चरणतल अथवा दीर्घ नेत्र बनाने चाहिए । १२-१३। सूर्य एवं नल यम की प्रतिमा का इस भाँति वर्णन कर दिया गया, उसी

अन्यंगपदबन्धादि सामान्येनोपशेभिः च । सुप्रभासण्डला द्वारु विचित्रमणिकुण्डला ॥१५
 कराम्यां काञ्चनीं भालां प्रोद्धहंती शिरोरुहान् । एवं लक्षणसम्पन्नां कारयेद्विहितप्रदात् ॥१६
 सुस्तिन्धां वरदां सौम्यां द्वितीयाश्रमिणामिमाम् । नवतालो भवेद्विष्णुर्वासुदेवस्त्रितालकः ॥१७
 नृसिंहः पञ्चतालः स्याद्वयग्रीवस्तु पञ्चमः । नारायणश्राष्टालो महेशः पञ्चतालकः ॥१८
 नवताला भवेद्दुर्गा लक्ष्मीश्वर त्रितालिका । दार्णीं त्रितालिकां विद्यत्सविता सप्ततालकः ॥१९
 दक्षिणे वासुदेवस्य करे चक्रं प्रतिष्ठितम् । शङ्खो भवेच्च तदधो वामार्थे तस्य वै गदा ॥२०
 तदधश्च भवेत्पद्मं श्रीवत्सेनोदशोभितम् । सव्येऽर्थे तारकास्यं च त्रिनेत्रभुभयात्मकम् ॥२१
 पार्खे नलिनिसिंहां हौ द्वृष्टिरुद्रां दक्षिणे न्यसेत् । रक्षिमणीं वामभागे च तदधस्ताद्विवीन्द्रकम् ॥२२
 कृताञ्जलिपुटस्थश्व नारदः कपिलस्तथा । धर्माधर्माविभौ पार्खे कर्तव्यौ स्त्रिविणां वरौ ॥२३
 यदुग्रं वासुदेवस्य तथा नारायणस्य च । वैपरीत्यं विजानीयान्माधवानां तथैव च ॥२४
 तीर्थे गिरौ तडागे च समीपे स्थापयेत्नुधीः । नगरप्रामाण्ये चा ब्राह्मणानां च संसदि ॥२५
 अविमुक्ते विशेषेण सिद्धक्षेत्रे दशार्णके । श्रीप्युत्तरसहस्राणि पञ्चपञ्चोत्तराणि षट् ॥२६
 कुलानि पूर्वं विभ्रेन्द्राः समुद्धरति नान्यथा : कलौ दारुनयः कार्ये हृशक्तौ मृष्णयोऽथ वा ॥२७

भाँति सौन्दर्यपूर्ण विद्याधर की मूर्ति का निर्माण होना चाहिए । उस मूर्ति को श्रीवत्स, मुकुट, कटकांगद और हार आदि आभूषणों से भूषित कर, उबटन, पदबन्ध आदि से उसे सुशोभित करे, उसके मण्डल की प्रभा सुन्दर होनी चाहिए, सौन्दर्यपूर्ण एवं चित्र-विचित्र मणि के कुण्डलों से अलंकृत करना परमाश्रयक होता है । १४-१५। उसके हाथों में काञ्चनी माला और शिर में सौन्दर्यपूर्ण केश का निर्माण कर उसे इस भाँति के लक्षणों से सुसम्पन्न करे जिससे अपना अभीष्ट शीघ्र सिद्ध हो । उसका स्त्रिन्ध वर्ण, वर प्रदायक स्वभाव चेष्टा और सौम्य दर्शन होना परमाश्रयक होता है, ऐसी ही मूर्ति, गृहस्थों को अभीष्ट प्रदान करती है । विष्णु के नवताल, वासुदेव के तीन ताल, नृसिंह के पाँच, हयग्रीव के भी वही, नारायण के आठ, महेश्वर के पाँच, दुर्गा देवी के नव, लक्ष्मी के तीन, सरस्वती के तीन, और सूर्य के सात ताल होते हैं । १६-१९। वासुदेव के दाहिने हाथ में चक्र, उसके नीचे वाले में शंख, बायें ऊपर वाले में गदा और नीचे वाले में कमल सुशोभित करना चाहिए । श्रीवत्स से विभूषित कर पहले उनकी दाहिनी आँख में युतली सम्पन्न कर पश्चात् बायें लगाये । २०-२१। उनके पार्श्व भाग में कमल और सिंह तथा दाहिनी ओर सुभद्रा बायें रुक्मिणी एवं उनके नीचे भाग में इन्द्र की स्थापना करनी चाहिए । २२। पुनः उनके अञ्जलि पुट में नारद और कपिल तथा पार्श्व भाग में मालाधारी धर्म और अधर्म की स्थिति होनी चाहिए । २३। वासुदेव, नारायण के जो अङ्ग भीषण हों, उन्हें अपने लिए प्रतिकूल ही जानना चाहिए, उसी भाँति माधव के भी । इनका स्थापन-तीर्थ, पर्वत प्रदेश, सरोवररत्न, नगर-गाँव के मध्य अथवा ब्राह्मणों के सामूहिक बस्ती में करना चाहिए । २४-२५। अविमुक्त, विशेषकर सिद्ध क्षेत्र दशार्ण में देश में हो तो अत्यन्त उत्तम होता है । इस प्रकार उनकी इस भव्य मूर्ति के स्थापन से उन्हीं सहस्र कुल के उद्धार होते

चन्दनागुहभिः कुण्डांद्विल्वश्रीपर्णिकस्य च । पद्मकाष्ठमययत्रेव वासमस्य तथैव हि ॥२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे प्रतिमालक्षणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

कुण्डनिर्माणविधिवर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं प्रदक्षयामि कुण्डानामथ निर्णयम् । तस्योद्वारं च संस्कारं भृणुव्वं द्विजसत्तमाः ॥१
चतुरलं च वृत्तं च पादार्थं चार्धचन्द्रकम् । येन्याकारं चन्द्रं च अष्टार्धमथ पञ्चमम् ॥२
सप्तार्धं च नवार्धं च कुण्डं इशकमीरितम् । सूमिं संशोध्य विधिवत्तुषकेशादिवर्जिताम् ॥३
भ्रामयेच्चोर्ध्वतस्तस्या भस्माइग्नाराणि यत्नतः । अज्ञकुरार्पणं कुर्यात्सप्ताहादेव बुद्धिमान् ॥४
स्थानं विमर्दितं कुर्यात्खनित्वा सेचयेज्जलैः । मुष्टिहस्तोच्छायमितं प्रकुर्यात्परिसूत्रयेत् ॥५
अर्काङ्गुलमितं सूत्रं चतुरलं प्रकल्पयेत् । अष्टादशाङ्गके क्षेत्रे न्यसेदेकं बहिस्ततः ॥६
मापयेत्तेन मानेन त्रिवृतं कुण्डमुज्ज्वलम् । पूर्ववद्विभजेत्क्षेत्रं भागैकं पुरतो न्यसेत् ॥७
वृत्तानि कालिकादीनि बहिस्त्रीणि विवर्जयेत् । पद्मकुण्डमिदं प्रोक्तं विलोचनमनोहरम् ॥८

हैं, कलियुग में काष्ठ के अथवा अशक्त होने पर मिट्टी की ही मूर्ति बनाये तथा चंदन, अगुरु बेल, पीपल एवं मनोहर पद्म काष्ठ की भी प्रतिमा बनायी जाती है । २६-२८

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में प्रतिमालक्षण वर्णन नामक बारहदाँ अध्याय समाप्त । १२।

अध्याय १३

कुण्डनिर्माण—विधिवर्णन

सूत जी बोले—द्विजसत्तम ! इसके उपरान्त मैं कुण्डों के निर्णय, उद्वार और संस्कार बता रहा हूँ, सुनो ! चौकोर, गोलाकार, पादार्थ, अर्धचन्द्राकार, योनि के समान, चन्द्र की भाँति, अष्टार्ध, पञ्चमार्ध, सप्तार्ध, और नवार्ध, ये दश भाँति के कुण्ड बताये गये हैं । प्रथम भूमि संशोधन—तुष (भूसी) केश आदि रहित करके उसके ऊपर भस्मांगर को बलपूर्वक चारों ओर धुमाये, और उस बुद्धिमान् को सप्ताह के भीतर उस पर बीज आरोपित कर अंकुर उत्पन्न कर लेना चाहिए । १-४। पुनः उस दृढ़ भूमि को खन कर जल से सेचन करे, इस प्रकार एक हाथ के ऊंचे कुण्ड बनाकर सूत्र से चारों ओर उसे आवेष्टित करना चाहिए । ५। चौकोर कुण्ड के निर्माण में बारह अंगुल का सूत्र होना चाहिए, अष्टादश अंग वाले कुण्ड के क्षेत्र में एक भाग बाहर रखकर उसी माप दण्ड के मान से उस त्रिवृत (तीन बार घिरा) एवं उज्ज्वल कुण्ड का मान पूरा करना चाहिए, उसके क्षेत्र का प्रथम पूर्व की भाँति विभाजन करके एक भाग उसके सामने रखे । ६-७। उसमें कालिकादिक तीन वृत्त, बाहरी भाग में त्याग करने को बताया गया है, इस भाँति के नयनाभिराम कुण्ड को 'पद्मकुण्ड' के नाम से कहा गया है । ८। प्रथम क्षेत्र को दश प्रकार से

दशधा भेदयेत्क्षेत्रे उच्चाधीर्ध्वाद्युलद्वयम् । सम्परिपातपेत्सूत्रं पाटयेत्तप्रमाणतः ॥१९
 पञ्चधा भेदिते क्षेत्रे कामं वा विभजेत्सुधोः । न्यसेत्युरस्ताद् देवाङ्गां कोणार्थार्थप्रमाणतः ॥२०
 ग्रन्तिस्थानं त्रतिष्ठाय अभत्यस्य दलाकृतिः । सूत्रद्वयं ततो दद्यात्कुण्डं परिमितं भवेत् ॥२१
 चतुरलं समुद्दृत्य सूत्रं सङ्कल्पयोगतः । दिशं प्रति यथान्यायं पातयेच्च द्विजोत्तमः ॥२२
 शृङ्गास्तकं युगमपुटं छडसं कुण्डत्रयं बुधाः । जलाशयारामकूपे तित्से गृहमये यथा ॥२३
 चतुर्लं भवेत्कुण्डं द्विजसंस्कारकर्मणि । देवप्रतिष्ठायागे च गृहवास्तौ चतुर्थकम् ॥२४
 वसुन्धरायेऽभेदे प्रपञ्चे वर्तकादिशेत् । सोमेऽष्टौ पड्कजं प्रोक्तं नरमेधाश्वसेधयोः ॥२५
 अङ्गकुरार्पणयागे च वैष्णवे यागकर्मणि । शिवदेव्योश्च जन्मादवज्ञम्यां चार्धचन्द्रकम् ॥२६
 मार्जारपौष्टिके वैरं रम्ये च शान्तिके तथा । शान्तिप्रतिष्ठायागे तु शाक्तानां काम्यकर्मणि ॥२७
 पुरश्चरणकाम्येषु चत्रादीनां विमोक्षणे । एवंविधेषु कार्येषु योनिकुण्डं प्रशस्यते ॥२८
 देवतातीर्थयात्रादौ महायुद्धप्रवेशने । सौरे शान्ते पौष्टिके च षट्पुरं कुण्डमुत्तमम् ॥२९
 मारणोच्चाटने चैव तथा रोगोपशांतये । वैष्णवात्मां कोटिहोमे नृपाणामतिशोचने ॥२०
 अष्टाव्यमञ्जकुण्डं च सप्तास्तं निधिसाधने । राजा साध्ये च पञ्चालं कन्याप्राप्तौ त्रिरक्षकम् ॥२१
 यावन्निम्नं भवेदेव विस्तारतत्तावदेव तु । कुण्डानुरूपतः कार्या भेखला सर्वतो बुधैः ॥२२

ऊपर-नीचे और पुनः ऊपर दो-दो अंगुल के अनुपात से सूत्र को रखना चाहिए । १। पाँच प्रकार के भेद वाले क्षेत्र को विद्वान् यथेच्छ विभाजित कर सकता है, उसमें कोण के अर्ध भाग अथवा तदर्धभाग के प्रमाण से सामने रखना चाहिए । २। पीपल के पत्ते के समान योनि के प्रकार के कुण्ड-निर्मण को योनि कुण्ड बताया गया है । उसमें दो सूत्र लगाने से कुण्ड का परिमाप शुद्ध होता है । ३। द्विजोत्तमवृण्ट ! आपनी संकल्पित कामनानुसार सूत्र को चारों ओर से उठाकर न्यायोचित दिशा में डाल देना चाहिए । ४। शिवर समेत, दो पुटवाले एवं ६ कोण वाले, ये तीन प्रकार के कुण्डों के निर्माण जलाशय, बगीचे एवं कूप की प्रतिष्ठा कर्म में कराना चाहिए, जिस भाँति गृह निर्माण तथा ब्राह्मण के संस्कार कर्मों में चौकोर कुण्ड बनाये जाते हैं । देवों की प्रतिष्ठा-यज्ञ और गृह बनाने में चौथे, तथा वसुन्धरा के यौगिक भेद वाले प्रपञ्च में गोलाकार, सोम में तथा नरमेध एवं अश्वमेध में आठ कमल वाले (कुण्ड) का होना बताया गया है । ५-६। अंकुरोत्पादन, वैष्णवयज्ञ, शिव-पार्वती के जन्म और अष्टमी में अर्धचन्द्राकार का कुण्ड बनाना चाहिए । ७। मार्जार पौष्टिक कर्म बिल्ली के लोम आदि अंगों द्वारा उत्पादित घोर वैर कर्म) में, रमणीक शान्तिकर्म, शान्ति प्रतिष्ठा-यज्ञ, शाक्तकर्म, काम्य कर्म, किसी कामना वश किये गये पुरश्चरण कर्म, ज्वरों के दूर करने आदि, इस भाँति के कार्यों में योनिकुण्ड प्रशस्त बताया गया है । ८। देवतीर्थ-यात्रा, बड़े युद्ध स्थल, सौर कर्म, शांतकर्म तथा पौष्टिक कर्मों में षट्कोण वाला कुण्ड बनाना चाहिए । ९। मारण, उच्चाटन कर्म, रोग की शान्ति, कोटि आहुति वाला विष्णु यज्ञ, राजाओं के शोकाकुल होने पर, अठकोण वाला तथा पचकुण्ड का निर्माण बताया गया है, निधि-प्राप्त करने में सातकोण वाले, राजा को सफल करने में पाँच कोण का और कन्या प्राप्ति के लिए त्रिकोण कुण्ड की रचना करनी चाहिए । १०-११। कुण्ड की गहराई और चौड़ाई के अनुसार उसकी भेखला भी विद्वानों को बनानी चाहिए । १२। दशसहस्र आहुति वाले हवन-कुण्ड में भेखला का आयोजन अवश्य करना चाहिए ।

अयुतादिषु होमेणु नेखलां योजयेत्सुधीः । निम्नप्रमाणे चात्राणि सूले सार्धांगुलं त्यजेत् ॥२३
 कोणवेदरसैर्सनिं यथायोग्यमनुक्रमात् । नुष्ठिहस्ते समुत्सेधो सार्धाङ्गुलपरिष्कृतः ॥२४
 अरत्निमात्रे कुण्डे तु त्रिश्रैकाङ्गुलतः क्रमात् । एकहस्तमिते कुण्डे वेदाग्निनयनांगुलाः ॥२५
 सप्तमेखलकं युक्तं लक्षहोमे न शस्यते । पञ्चमे खलकं वाथ लक्षकोटचां च योजयेत् ॥२६
 एकाङ्गुलादिभानेन नेमि संवर्धयेत्सुधीः । चतुर्हस्तमिते कुण्डे तावदेव गुणाङ्गुलाः ॥२७
 वसुहस्ते भानुशिक्तर्युग्महीनेऽपि ताः क्रमात् । सर्वाः समा ग्रहमखे मेखलाश्च सहस्रके ॥२८
 पार्श्वर्तो योजयेत्तत्र नेखलास्ता यथाक्रमस् । सार्धांगुलादिभानेन नेमि संवर्धयेत्सुधीः ॥२९
 एकमेखलयागेन योजयेच्छतिभावतः । होमाधिक्ये बहुफलमन्यूनं नाधिकं भवेत् ॥३०
 कुण्डस्य रूपं जानीयात्परमं प्रकृतेर्वपुः । ततो होमे शतगुणं स्थण्डले स्वल्पकं फलस् ॥३१
 षट्चतुर्धा गुणायानविस्तारोन्नतिशालिनी । एकाङ्गुलं तु योन्यथं कुर्यादीषदधोमुखस् ॥३२
 एककाङ्गुलतो योनिं कुण्डशून्येषु वर्धयेत् । समन्धये मेखलायाः सपर्या यः सुलक्षणा ॥३३
 स्थापयेत्कुण्डकोणेषु योनिं तां द्विजसत्तमाः । कुण्डानां कल्पयेन्नभिं स्फुटम्बुजतन्निभाय ॥३४
 ततु कुण्डानुरूपं वा सुव्यक्तं सुमनोहरस् । योनिकुण्डे योनिमञ्जं कुण्डे नाभिं च दर्जयेत् ॥३५

इससे निम्नकोटि के कुण्डों के विषय में भी उनके मूलभाग में डेढ़ अङ्गुल त्याज्य बताया गया है । २३।
 क्रमशः यथायोग्य कोण (तीन), चार, और मुड़ी उसकी ऊँचाई और डेढ़ मुड़ी उसके ऊपर की भूमि परिष्कृत होनी चाहिए । २४। उसी भाँति अरणिमात्र वाले कुण्ड में क्रमशः चार अंगुल, एक हाथ के प्रमाण वाले कुण्ड की ऊपर परिष्कृत भूमि चार, एक यह दो अंगुल की बनानी चाहिए । २५। लक्ष, आहुति वाले हवन-कुण्ड की सात मेखला न होनी चाहिए, प्रत्युत लक्ष तथा कोटि आहुति वाले कुण्ड की भी पाँच ही मेखला बनाये । २६। विद्वानों को चाहिए कि एक अंगुल के मान से उसको नेमि को बढ़ायें, तथा चार हाथ के कुण्डों में उतने अंगुल का गुण भो । २७। आठ हाथ वाले कुण्ड में बारह पंक्ति (मेखला) और दो हाथ न्यून (छः हाथ) वाले कुण्ड के भी उसी भाँति एवं सहस्र आहुति वाले ग्रह यज्ञ में समान मेखला बतायी गयी है । २८। कुण्डों के पार्श्वभाग में क्रमशः मेखलाओं को आयोजित कर डेढ़ अंगुल के मान से उसकी नेमि को भी विद्वान् को बढ़ाना चाहिए । २९। अपनी शक्ति के अनुसार अधिक संख्या की आहुति में भी एक मेखला के कुण्ड का निर्माण करने में उसे बहुत फलों की प्राप्ति होती है न्यून नहीं । कुण्ड के रूप को प्रकृति की सुन्दर शरीर जाननी चाहिए, इसलिए उसके निर्माण में अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है, पश्चात् हवन में सौ गुने एवं स्थंडिलों (वेदी) के निर्माण में स्वल्प फल की प्राप्ति होती है । ३०-३१। दश अंगुल की लम्बी-चौड़ी एवं ऊँची योनि के कुण्ड निर्माण के समय योनि का अग्र भाग एक अंगुल नीचा होना चाहिए । ३२। शून्य कुण्डों की योनि को क्रमशः एक-एक अंगुल के मान से बढ़ाना चाहिए वह केवल मेखला के मध्यभाग में ही होना चाहिए, जो पूज्य एवं सौन्दर्यपूर्ण लक्षणों से सुशोभित होती है । ३३। द्विजवृन्द ! कुण्ड के कोण के भागों में योनि स्थापन बताया गया है, कुण्ड का नाभि स्थल भी विकसित कमल की भाँति होना चाहिए । ३४। वह कमल कुण्ड के समान सौन्दर्यपूर्ण, पूर्ण अंग एवं अत्यन्त मनोरम होना चाहिए, योनिकुण्ड में योनि कमल और नाभि में न बनाना चाहिए । ३५। दोनों के प्रमाणानुसार क्रमशः

यावद्द्रुत्यप्रमाणेन अर्धाङ्गुलकनाह्विः । नाभिं प्रवर्धयेदेकं कुण्डःनां रूपतो यथा ॥३६
 तत्र तत्र भवेत्कुण्डं बिम्बशून्यं न होमयेत् । शिवशक्तिसमायोगात्काम उत्पद्यते यतः ॥३७
 अवटोऽपि उमादेवी बिम्बः स्थातः सदाशिवः । न कुयदिकया हीनं मरणं च समुद्दिशेत् ॥३८
 त्रयोदशाङ्गुलं हित्वा वह्निहस्तमथापि वा । महातीर्थं सिद्धेन्द्रे यद्र शम्भुगृहे कुले ॥३९
 तस्य दक्षिणदिभागे अग्रतो मण्डलं लिखेत् । तत्र पूजा प्रकर्तव्यः पूर्वमानेन चाश्रयेत् ॥४०
 अर्कहस्तान्तरे कुर्याच्छतोधवांते रतेन वा ॥४१
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणे कुण्डनिर्माणविधिवर्णनं नान त्रयोदशोऽध्यायः ॥४२

अथ चतुर्दशोऽध्यायः यज्ञमानविधानवर्णनम्

सूत उवाच

यस्य यज्ञस्य यन्नानं ततु तेनैव योजयेत् । अमानेन हृतो यज्ञस्तस्मान्मानं न हापयेत् ॥१
 शतार्धं प्रथमं मानं शतसाहस्रमेव च । अयुतं च तथा लक्षं कोटिहोममतः परम् ॥२
 अतः दरं तु विभवे राजा वान्यो द्विजोत्तमाः । न स सिद्धिमवाप्नोति अयःगफलभाग्मवेत् ॥३

आधा अंगुल बाह्यभाग, एवं कुण्डों के स्वरूपानुरूप एक अंगुल नाभि में वृद्धि करनी चाहिए । ३६। सभी स्थान कुण्ड बनाकर ही हवन कार्य सुसम्पन्न करने चाहिए, विम्बशून्य में कभी नहीं, क्योंकि शिव और शक्ति के समान संयोग से ही काम की उत्पत्ति होती है । ३७। कुण्डों का स्रात (गड्ढा) उमादेवी का स्वरूप और उसका बिम्ब सदाशिव का स्वरूप बताया गया है, इसलिए किसी एक के निर्माण न करने पर मरण फल कहा गया है । ३८। महातीर्थ, या किसी सिद्ध क्षेत्र में जहाँ शिवालय स्थित हो, उसकी दक्षिण दिशा की ओर तेरह अंगुल या वह्नि हाथ छोड़कर सामने मण्डल निर्माण करके उसकी पूर्वोक्त रीति के अनुसार पूजा करनी चाहिए । ३९-४०। उसका निर्माण बारह हाथ के भीतर, सौ अंगुल के अन्त अथवा मध्य में भी किया जा सकता है । ४१।

श्रीभविष्यपुराण मध्यमर्पण के प्रथम भाग में कुण्ड निर्माण-विधि नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त । ४२।

अध्याय १४ यज्ञ-मान-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—जिस प्रकार के यज्ञ विधान में जो मान बताया गया है, उस यज्ञ में उसी मान के अनुसार कुण्ड आदि की रचना आवश्यक है, क्योंकि मानहीन यज्ञ नष्ट बताया गया है, इसलिए उसके मान में विशेष ध्यान रखना चाहिए । १। शतार्ध, शत, सहस्र, दशसहस्र, लक्ष, कोटि संख्या की आहूति वाले हवन होते हैं । २। द्विजोत्तमवृन्द ! ऐश्वर्यादि होने के कारण यदि कोई राजा इसके अतिरिक्त किसी दूसरे दूसरे की रचना करता है, उसे सफलता तो मिलती नहीं प्रत्युत, वह यज्ञ फल का भागी भी नहीं

विषयकं कर्मणां सर्वं नरः प्राप्नोति सर्वदा । शुभाशुभं ततो नित्यं प्राप्नोति मनुजः किल ॥४
 युक्ताश्रापि प्रहास्तश्च नित्यं शान्तिकपौष्टिके । तस्मात्प्रथलतो भक्त्या नित्यं पूजा यथाविधि ॥५
 अद्भुते च तथा शान्तिं कुर्याद्बृत्तिसमन्वितः । तस्माद्ग्रहाभिजनितं शुभाशुभफलं खलु ॥६
 अद्भुतेषु च सर्वेषु अयुतं कारयेन्नरः । होमं यथाभिरुचिं पौष्टिके काम्यकर्मणि ॥७
 लक्षहोमं कोटिहोमं राजा कुर्याद्यथाविधि । अन्यः शतादिकं कुर्याद्बुतं विभवे तति ॥८
 ग्रहाणां लक्षहोमस्तु कोटिहोमस्तथा कलौ । निधिहोमं चाभिचारं तत्र कुर्याद्गृहाश्रमी ॥९
 यद्र यत्र जपः कार्यो होमो वा यत्र उत्त्रचित् । मानं नवं च कर्तव्यं मानादौ चाष्टकं न्यतेत् ॥१०
 युग्मसाध्यं न र्तव्यं युग्मतो भयमादिशेत् । लक्षे सप्ततालसंख्या कोटिहोमे च विश्वतिः ॥११
 एकत्रिशद्विनैर्वापि न कुर्याद्व्यत्ययं क्वचित् । आरन्भस्त्रशःस्त्रःस्त्रियेऽष्टसहस्रकः ॥१२
 तृतीये दु सहस्रं स्याद्ग्रहसाध्यः स्मृतो विधिः । पञ्चाहे च समारम्भे सहस्रं जुहुयाद्बुधः ॥१३
 द्वितीयेऽक्षिं द्विसाहस्रं तृतीये तु सहस्रकम् । गुणसाहस्रकं तुर्ये पञ्चाहे शेषमीरितम् ॥१४
 नवाहे कल्पयेत्तलक्षमेककाङ्गं दिने दिने : पञ्चमे च तथा षष्ठे कुले भागद्वयाधेकम् ॥१५

होता है । ३। मनुष्य सर्वत्र सदैव कर्मों के परिणाम प्राप्त कर उनके अनुभव करता रहता है, इसीलिए नित्य प्रत्येक क्षणों में शुभ एवं अशुभ फल उसे प्राप्त होते रहते हैं। शांति एवं पौष्टिक कर्म करने से इसके अनिष्ट ग्रह भी अनुकूल होकर शुभ फल प्रदान करते हैं, इसलिए विधानपूर्वक भक्तिसमेत उनके नित्यपूजन के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । ४-५। अनिष्ट ग्रहों के लिए भक्तिपूर्वक उनकी शांति करनी आवश्यक होती है, क्योंकि ग्रहों द्वारा ही शुभ-अशुभ फल का भागी मनुष्य होता है, यह निश्चित है । ६। अधिक ग्रहों के अरिष्ट होने पर मनुष्य को दश सहस्र संख्या की आहुति करनी चाहिए और पौष्टिक तथा काम्य कर्मों में मन इच्छित हवन का विधान कहा गया है । ७। राजा को इन सभी कर्मों में विधानपूर्वक लक्ष अथवा कोटि संख्या की आहुति के हवन करना चाहिए और अन्य लोगों को ऐश्वर्यादि रहने पर भी सौ अथवा दश सहस्र की संख्या की आहुति वाला हवन कहा गया है । ८। गृहस्थों के लिए कलियुग ग्रहों के निमित्त लक्ष, अथवा कोटि संख्या की आहुति के हवन करने चाहिए, तथा निधि कर्म एवं अभिचार कर्म उनके लिए निषिद्ध किया गया है । ९। जहाँ-जहाँ जप करना हो, अथवा जहाँ कहीं हवन करना हो, तो उसमें मान की आवश्यकता नहीं होती है, मान आदि में आठ का त्याग करना बताया गया है । १०। दो मिलकरं इसे सिद्ध न करना चाहिए, क्योंकि युग्म द्वारा सिद्ध करने पर अन्य की उत्पत्ति होती है । लक्ष आहुति वाले हवन में सात ताल, कोटि आहुति वाले हवन में बीस ताल की संख्या बतायी गयी है । ११। इकतीस दिन तक उसमें व्यत्यय (उलट फेर) न करना चाहिए, आरम्भ में तीन सहस्र, दूसरे दिन आठ सहस्र, तीसरे दिन एक सहस्र की आहुति देना गृहयज्ञों में विधान बताया गया है । पाँच दिन में समाप्त होने वाले यज्ञ में प्रथम दिन एक सहस्र, दूसरे दिन दो सहस्र, तीसरे दिन पुनः एक सहस्र की आहुति देनी चाहिए और चौथे दिन नव सौ एवं पाँचवें दिन शेष की समाप्ति करना चाहिए । १२-१४। एक लक्ष की आहुति में नव दिन का अनुष्ठान होना चाहिए । उसमें क्रमशः प्रत्येक दिन एक-एक अंग की पूर्ति करने के उपरान्त पाँचवें और छठें दिन दो भाग अधिक की आहुति प्रदान करना बताया गया है । १५। कोटि संख्या की आहुति वाले

कोटिहोमे च तिथ्यद्वये शतभागेन कल्पयेत् । न न्यूनं नाधिकं कार्यमेतन्मानमुदाहृतम् ॥१६
 नित्यमेकं दिने दद्यात्पृथिव्यनित्यं न चाचरेत् । स समाजे जयेन्नित्यं पञ्चतारेण स्वष्टकृत् ॥१७
 अयुते स्त्रहोमे च कोटिहोमे च सर्वदा । प्रथमे दिवसे कुर्यादिवतानां च स्थापनम् ॥१८
 महोत्सवे द्वितीये तु बलिदानं तथैव च । अयहसाध्ये त्रिरात्रे च पूर्णं कृत्या विसर्जयेत् ॥१९
 पञ्चाहे तु दृतीयेऽङ्गि बलिदानं शशस्त्यते । तप्ताहे चाष्टदिवसे नवाहे पञ्चमेऽहनि ॥२०
 पञ्चाहे द्वादशाहे तु द्वार्त्रिशत्प्रातोऽशोऽहनि । इतोऽन्यथा न कुर्वीत नात्र यज्ञफलं लभेत् ॥२१
 इति श्रीभविष्यपुराणे मध्यमर्पणिं प्रथमभागे यज्ञमानविधानं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥२४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कुण्डसंस्कारवर्णनम्

सूत उवाच

कुण्डानामय दस्कारं दक्ष्ये शास्त्रमतं यथा । असंस्कृते चार्थहानिस्तस्मात्संस्कृत्य होमयेत् ॥१
 अष्टादश स्युः संस्काराः कुण्डानां तत्र दर्शिताः । तारेणावेक्षयेत्स्थानं कुशतोयैः प्रसेचयेत् ॥२
 त्रिसूत्रीकरणं पञ्चाद्वृत्तसूत्रं निपातयेत् । वारेण कीलकं दद्यान्नार्त्तसंहेन कुड्मलम् ॥३

हवन में तिथ्यंग (पन्द्रह) दिन के अनुष्ठान के संकल्प करके सौ भागों में उसे विभाजित करे, इससे न्यून अयवा अधिक करने का विधान नहीं है, इसीलिए इन मानों को बताया गया है । १६। यज्ञ कर्ता को प्रत्येक दिन नित्य एक एक के प्रदान में प्रयत्नशील रहना चाहिए, और समाज में उसे उच्चस्वर से नित्य जप भी करना चाहिए । १७। दशसहस्र की हवन, लक्ष आहुति अयवा कोटि संस्था की आहुति वाले हवन के अनुष्ठान में प्रथम दिन देवताओं के स्थापन एवं दूसरे महोत्सव के दिन बलि प्रदान करना बताया गया है, तीन दिन की समाप्ति वाले (हवन) में तीसरी रात में पूर्णाहुति प्रदान कर विसर्जन कर देना चाहिए । १८-१९। पाँच दिन के अनुष्ठान वाले (हवन) में तीसरे दिन बलि प्रदान करना प्रशस्त बताया गया है। उसी भाँति सात, आठ, एवं नव दिन के अनुष्ठान में पाँचवें दिन बलि प्रदान करना चाहिए । २०। इस प्रकार पाँच, बारह, बत्तीस एवं सोलह के दिन में भी किया जा सकता है, इससे अतिरिक्त दिनों में नहीं, क्योंकि उसमें यज्ञ के फल प्राप्त नहीं होते हैं । २१।

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमर्पण के प्रथम भाग में चौदहवाँ अध्याय समाप्त । १४।

अध्याय १५

कुण्डों का संस्कार-वर्णन

सूत जी ने कहा—कुण्डों के शास्त्रीय संस्कार तुम्हें इसलिए बता रहा हूँ कि संस्कारहीन कुण्डों में हवन करने से अर्थ हानि होती है, इसलिए संस्कार किये कुण्डों में हवन करना चाहिए । १। इसके विषय में यह बताया गया है कि कुण्डों के अट्टारह प्रकार के संस्कार होते हैं, सर्वप्रथम तार द्वारा अच्छी तरह भूमि के निरीक्षणपूर्वक उसका कुश के जल से सेचन करे। त्रिसूत्री करने के पश्चात् वृत्त सूत्र रखकर नारसिंह रूपी

जिह्वां प्रकल्पयेत्पश्चान्तस्मादपि न समाहरेत् । न च म्लेच्छगृहादपि न शूद्रनिलयात्क्वचित् ॥४
 नदीपर्वतशालाभ्यः स्त्रीहस्तात्परिवर्जयेत् । संस्कृत्य परिगृह्णीयात्त्रिधा कृत्वा समुद्धरेत् ॥५
 तमग्निं प्रतिगृह्णीयादात्मनोऽभिमुखं यथा । वह्निबीजेन नतिमाञ्छिवबीजेन प्रोक्षयेत् ॥६
 वागीश्वरीमुत्क्षातां वागीश्वरसमागताम् । ध्यात्वा समीरणं द्व्यात्काममुत्पद्यते ततः ॥७
 कासबीजेन चैशान्यं योनावर्गिं विनिक्षिपेत् । पञ्चदेवस्य देव्याश्च द्व्यादाचमनीयकम् ॥८
 चित्पिङ्गलं दहदह पञ्चयुग्ममुदीर्य च । सर्वज्ञाज्ञापद स्वाहा मन्त्रोद्यं वह्निपूजने ॥९
 वह्निबहिषि संयुक्ताः सःदिवान्ताः सविन्दवः । वह्निमन्त्राः समुद्दिष्टा द्विजानां सन्त्र ईरितः ॥१०
 जिह्वास्तास्त्रिविधाः प्रोक्ता यज्ञदत्तेन सत्तमाः । हिरण्यमायज्यहोमेषु होमयेत्संयतात्मकः ॥११
 त्रिमध्वत्तैर्यत्र होमं काणिकायां च होमयेत् । कनकास्थातु कृष्णास्थाद्विरण्या शुद्धता तथा ॥१२
 बहुरूपातिरूपा च सात्त्विका योगकर्मसु । विश्वमूर्तिस्फुलिङ्गिन्यौ धूम्रवर्णा मनोजवा ॥१३
 लोहितास्यात्करालास्यात्कालीभः सस्य इत्यादि । एताः सप्त नियुञ्जीत विज्ञेयाः कूरकर्मसु ॥१४
 समिद्देषु या जिह्वास्तास्तु तेनैव योजयेत् । हिरण्यमायज्यहोमेषु होमयेत्संयतात्मकः ॥१५
 त्रिमध्वत्तैर्यथा होमं काणिकायां च होमयेत् । शुद्धक्षीरेण रक्तायां नैत्यिकेषु प्रभा स्तूता ॥१६

वार से कुडमल रूपी कील प्रदान करना चाहिए । ३। पश्चात् उसमें जिह्वा बनानी चाहिए, जिससे कि अग्नि लाया जा सके । क्योंकि म्लेच्छ, शूद्र, नदी एवं पर्वत के घरों और स्त्री के हाथ से अग्नि न लेना चाहिए प्रत्युत संस्कारपूर्वक ग्रहणकर तीन भागों में विभाजित करके उसका आहरण करना बताया गया है । ४-५। उस अग्नि को अपने सम्मुख ग्रहण कर अनन्तर वह्निबीज (र) और शिव बीज द्वारा उसका प्रोक्षण करना चाहिए । तदनन्तर कृतुकाल के स्नान से शुद्ध होकर वागीश्वरी वा जिनका आगमन वागीश्वर के साथ हुआ है, ध्यान करते हुए उसे वायु द्वारा प्रज्वलित करना चाहिए, इसलिए कि ऐसा करने से ही इष्टसिद्धि हो सकती है । ६-७। ईशानकोण में स्थित योनि में काल बीज द्वारा उस अग्नि का स्थापन करके उसके उपरान्त देवी और देव के मुखशुद्धयर्थ आचमन जल प्रदान करना चाहिए । ८। हे चित्पिङ्गल ! दह, दह, पञ्चयुग्म इत्यादि मंत्रों द्वारा अग्नि-पूजन करके कुशाओं के आदि अन्त भाग में धी लगाकर मन्त्रोचारणपूर्वक अग्नि में डाल देना चाहिए । ९-१०। सत्तमवृन्द ! यज्ञदत्त ने अग्नि के तीन प्रकार की जिह्वा का वर्णन किया है । इससे धी के हवन में हिरण्य वाली जिह्वा में संयमपूर्वक आहुति डालनी चाहिए । १। त्रिमधु (धी, शहद, शक्कर) से जहाँ हवन करना हो, वहाँ प्रथम उसकी कर्णिका में हवन करना चाहिए । कनका, कृष्णा, हिरण्या, शुभ्रा, बहुरूपा एवं अतिरूपा, इन सात्त्विक जिह्वाओं का योग कर्मों में उपयोग किया जाता है, उसी भाँति विश्वमूर्ति, स्फुलिङ्गनी (चिनगारी) धूम्रवर्णी (धुएँवाली), मनोजवा (मन की भाँति वेग वाली), लोहिता (रक्तवर्ण), कराला और काली की भाँति आभा वाली (काली), इन सात प्रकार की जिह्वाओं के उपयोग कूर-कर्मों में किये जाते हैं । १२-१५। समिधायों (लकड़ियों) के भेद से जो जिह्वाएँ बतायी गयी हैं, उन्हें भी उन्हीं के साथ नियुक्त कर देना चाहिए जैसे—संयमपूर्वक धी के हवन करने में हिरण्या नामक जिह्वा का उपयोग करना बताया गया है, त्रिमधु (धी, शहद एवं शक्कर) के हवन में जिस भाँति प्रथम कर्णिका में हवन किया जाता है । शुद्ध क्षीर

बहुरूपा पुष्पहोमे कृष्णा चान्नेन पायसः । इक्षुहोमे पद्ममरागा सुवर्णा पद्महोमके ॥१७
लोहिता पद्महोमे च श्रेता चै बिल्वपत्रके । धूमिनी तिलहोमे च काष्ठहोमे करालिका ॥१८
लोहितारसा पितृहोमे ततो ज्ञेया मनोजवा ; वैश्वानरं स्थितं होमे समिद्धोमेषु सत्तमाः ॥१९
सम्मानमाज्यहोमे च निषणं शेषवस्तुषु । अस्याच्च जुट्ट्याद्गृहौ पिर्णति सर्वकर्मचु ॥२०
कर्महोने तु वै व्याधिर्नेत्रे तद्द्रुयमोरितम् ; नासिकायां मनः पीडा मस्तकेऽव्वा न संशयः ॥२१
युहो विपत्करं चैव तस्मात्तत्र न होमयेत् । साधारणनयो वक्ष्ये वह्नेजिह्वाश्च कीर्तिताः ॥२२
प्रवक्ष्यामि विर्द्धं कृत्वं यद्विशेषं पुनः शृणु । धृतरात्रौ हिरण्याल्या गाना परिणहोमतः ॥२३
वक्षा स्वत्ता महाहोमे कृष्णाभा सा कृतौ भता । सुप्रभा मोदकविधौ बहुरूपातिरूपिकाः ॥२४
पुष्पपत्रविधौ होमे वह्नेजिह्वा प्रकीर्तिताः । न वा संकल्पयेत्कुडे शूद्राकारविभेदतः ॥२५
इन्द्रकोष्ठं मस्तकं स्याद्वीशाश्रेये च मस्तके । तत्काष्ठपार्श्वे द्वे नेत्रे हौ करौ च पदकभात् ॥२६
अविशिष्टं भवेत्पुच्छं मध्ये चोदरसम्भवम् । उदरे होमयेत्पुष्टिमन्त्रं पायसकं च यत् ॥२७
हुत्वा ग्रीहिगणं तत्र कर्ज्ञे पुष्पाहृति हुनेत् । वामकर्जे यामनेत्रे हुनेदब्जादिकं बुधः ॥२८
श्रद्धे चैव नेत्रे च दक्षिणे चेषुखण्डकम् । वामपादे वामकरे अभिचारेषु शस्यते ॥२९

के हवन में रक्ता, निरूप कर्मों में प्रभा, फूलों के हवन में बहुरूपा, अन्न के स्त्रीर से हवन करने में कृष्णा, ऊख के हवन में पद्मरागवाली, कमल के हवन में सुवर्णा, तथा लोहिता (रक्तवर्ण वाली), वेलपत्र के हवन में श्वेतवर्णवाली, तिल के हवन में धूमिनी (धूम वाली), काष्ठ के हवन में कराली, पितृ हवन में लोहिता और सत्तमगण ! समिधाओं के हवन में, जबकि अग्नि उससे अपने रूप में स्थित हो, मनोजवा मन की भाँति वेगवाली) जिह्वा के आवाहन-ध्यान करना चाहिए । १५-१९। धी के हवन में अग्नि समान रूप से स्थित रहते हैं और शेष वस्तुओं के हवन में सोये से । अग्नि के मुख में आहुति डालने से सभी कामनाएँ सफल होती हैं । २०। उनके कान में हवन करने से व्याधियाँ, नेत्र में वही दोनों, नाक में मन की पीड़ा, मस्तक में आहुति डालने से यात्रा करना पड़ता है, इसमें संदेह नहीं । २१। उनके ग्रहण स्थान में आहुति डालने से आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं । इसलिए इन स्थानों में कभी भी हवन न करें, इसके उपरान्त मैं अग्नि की साधारण जिह्वाओं को तुम्हें बता रहा हूँ, जो अन्यत्र बतायी गयी हैं । २२। उसी प्रकार उसके समस्त विधान एवं विशेषता को भी । धी की आहुतियों के प्रदान में हिरण्यनामक, हाथ से हवन करने में गगना, महान यज्ञ में वक्षा, यज्ञ में कृष्णा, मोदक के हवन में सुप्रभा, पुष्प के हवन विधान में बहुरूपा और पत्तों के हवन में अतिरूपा, अग्नि की जिह्वा बतायी गयी है, शूद्राकार के भेद होने के नाते कुण्ड में उसका संकल्प न करना चाहिए । २३-२५। इन्द्रकोष्ठ, ईशान एवं अग्निकोण भी (अग्नि के) मस्तक कहे जाते हैं, उनके काष्ठ के पार्श्व भाग में दोनों नेत्र, दोनों हाथ एवं चरण क्रमशः बताये गये हैं । २६। शेष भाग उनकी पूँछ एवं मध्यभाग उदर कहा गया है, इसलिए उदर में ही पुष्टि के लिए अन्न अथवा स्त्रीर के हवन करना चाहिए । २७। उदर में अन्न के विधानपूर्वक हवन के उपरान्त उनके कान में पुष्प की आहुति, बायें कान, एवं बायें नेत्र में कमल पुष्प के हवन विद्वानों को करना चाहिए । २८। कान एवं दाहिनी आँख में ऊख के टुकड़े और बायें हाथ एवं पैर में अभिचार कर्मों में आहुति डालनों चाहिए । २९। मारण कर्म तथा पुण्य के

मारणे पुण्यदेशो तु न चान्यं होमयेत्स्यचित् । विपत्करं विजानीयाद्ध्वनिः सर्वविनाशकृत् ॥३०
 चन्दनागरक्षुरपाटलायूर्थिकानिमः । पाकस्य सुतो गन्धः समन्तात्सुमहोदयः ॥३१
 प्रदक्षिणस्त्यत्तकल्पा छत्राका शिथिला शिखा । शुभदा यजमानस्य राज्यस्यापि विशेषतः ॥३२
 छिन्नवृत्ताः शिखाः कुर्यान्मृत्युर्धनपरिक्षयः । निर्दाप्य मरणं विद्यान्महाधूमाकुलेऽपि च ॥३३
 एवंविधेषु दोषेषु प्रायश्चित्तं समाचरेत् । अष्टाविंशाहुतीस्त्यक्त्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥३४
 मूलेनान्प्येन जुहुयाज्जुहुयात्पञ्चांवशतिम् । महाक्लानं प्रकर्तव्यं त्रिकालं हरिपूजनम् ॥३५
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे कुण्डसंस्कारवर्णनं नामं दञ्चदशोऽध्यायः ॥१५

अथ षोडशोऽध्यायः

यज्ञान्तपूजा-विधिवर्णनम्

सूत उवाच

नित्यं नैमित्तिकं चैव यागादौ च समाप्तके । होमः वसाने प्रजपेतुपचारांश्च षोडश ॥१
 दद्यात्समीरणं पश्चात्पीठपूजां समाचरेत् । गृहीत्वा रक्तपुष्पं च ध्यायेद्वाह्नि यथा विधि ॥२
 इष्टं रक्तिस्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घदीर्घरियन्तं वरान्तम् ।
 हेमाकल्पं पद्मसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद्वाह्नि बद्धमौलि जटाभिः ॥३

प्रदेश में किसी अन्य के हवन न करना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने से इस भाँति की आपत्ति आती है, जिसमें समस्त के विनाश संभव हो जाते हैं । ३०। चन्दन, अगुह, पाटला एवं जूही के समान गधकों, जो महान् अभ्युदय कारक होता है, अग्नि पुत्र बताया गया है । ३१। प्रदक्षिणा की भाँति, असाधारण, छते की भाँति और शिथिल अग्नि की शिखाएँ यजमान के लिए शुभ-दायक होती हैं, विशेषकर राजाओं के लिए । ३२। छिन्न वृत्त वाली शिखा मृत्यु एवं धन नाश करती है, और महान् धूमों से व्याप्त होने पर मरण ही समझना चाहिए । ३३। इस प्रकार के दोषों के समुपस्थित होने पर प्रायश्चित्त करना आवश्यक होता है—अट्ठाइस आहुति छोड़कर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए मूल भाग से पच्चीस आहुति धी की डालकर महा स्नान एवं तीनों समय में विष्णु-पूजन करना आवश्यक बताया गया है । ३४-३५।
 श्रीभविष्यपुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में कुण्डसंस्कार वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त । १५।

अध्याय १८

यज्ञान्त में पूजा-विधि का वर्णन

सूत जी ने कहा—नित्य अथवा नैमित्तिक यज्ञ की समाप्ति में, जबकि हवन कार्य समाप्त हो जाय, तो सोलह उपचारों से पूजा करने का विधान बताया गया है । १। वायु द्वारा अग्नि प्रज्वलित करके पीठासन की पूजा करनी चाहिए, पश्चात् रक्तपुष्प लेकर विधानपूर्वक अग्नि का ध्यान करना बताया गया है । २। अभीष्ट प्रदान करने वाले अग्नि के उस स्वरूप का, जो अपनी लम्बी एवं विशाल भुजाओं में शक्ति तथा स्वस्तिका आदि अस्त्र धारण किये, श्रेष्ठ, सुवर्ण की भाँति कमलासन पर स्थित, शिर में

पूर्वादिद्वारदेशेषु कामदेवं शतक्रतुम् । वराहं षण्मुखं चैव गन्धादैः साधु दूजयेत् ॥४
 आवाह्य स्थापयेत्प्रादष्टौ मुद्राः प्रदर्शयेत् । दत्त्वासनं स्वागतं च दद्यात्पाद्यादिकत्रयम् ॥५
 अतः पूर्वादिपःत्रेषु यायता च हुताशनम् । सुवर्णर्वर्णसमलं समिद्धं सर्वतोमुखम् ॥६
 महोदरं महाजित्वामाकाशत्वेन पूजयेत् । तारकादीन्तपास्ते च गथ्यैः पुण्यैः पृथग्विधैः ॥७
 तदैव जिह्वास्त्रिविद्वा ध्यायेन्मन्त्रपुरःसराः । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण उपचारैरनन्तरम् ॥८
 त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारकः । परमज्योतील्पत्त्वमासनं सफली कुरु ॥९
 दद्यादासनमेतेन पुष्पयुच्छवयेण तु । पुटाङ्गजिलं ततो वद्ध्वा पृच्छेत्कुशलपूर्वकम् ॥१०
 वैश्वानरं नमस्तेऽस्तु नमस्ते हृव्यवाहन । स्वागतं तु सुरश्रेष्ठ शान्तिं कुरु नमोऽस्तु ते ॥११
 नमस्ते भगवन्देव आपोनारायणात्मक । सर्वलोकहितार्थाय पाद्यं च प्रतिगृह्यताम् ॥१२
 नारायणं परं धाम ज्योतीरूपं सनातन । गृहाणाश्चर्यं मया दत्तं विश्वरूपं नमोऽस्तु ते ॥१३
 जगदादित्यरूपेण प्रकाशयति यः सदा । तस्मै प्रकाशरूपाय नमस्ते जातवेदसे ॥१४
 धनञ्जयं नमस्तेऽस्तु सर्वपापप्रणाशन । स्नानतीयं ते मया दत्तं सर्वकामार्थसिद्धये ॥१५
 हुताशनं महाबाहो देवदेव सनातन । शरणं ते प्रयच्छामि देहि मे परमं पदम् ॥१६

जटा-जूट से विभूषित एवं तीन नेत्र हों, ध्यान करना चाहिए । ३। पूर्व आदि चारों दिशाओं के दरवाजों पर स्थित, कामदेव, शतक्रतु (इन्द्र), वाराह और षडानन की क्रमशः गंधादि द्वारा सविधि पूजा करनी चाहिए । ४। देवताओं के आवाहन एवं स्थापन के उपरान्त आठों मुद्राओं को उन्हें दिखाना चाहिए । आसन पर उन्हें स्थित कर उनके स्वागत के लिए पाद्य आदि जल देना चाहिए । ५। अनन्तर पूर्वादि पात्रों में अग्नि का, जिसका सुवर्ण की भाँति वर्ण, निर्मल, प्रदीप्त, चारों ओर मुख, महान् उदर एवं बहुत बड़ी जिह्वा है, आकाश की भाँति पूजन करना चाहिए; पश्चात् समाप्ति में तारकाओं की पृथक्-पृथक् विधानों द्वारा गन्ध एवं पुष्पों से पूजन करने के उपरान्त मंत्रोच्चारणपूर्वक उनकी तीन भाँति की जिह्वाओं का ध्यान करना चाहिए और मंत्रोच्चारणपूर्वक उनकी पूजा भी । ६-८। तुम्हें समस्त जीवों के आदि (जेठ) हो, और संसार-सागर को पार करने वाले भी । परमज्योति तुम्हारा रूप है, अतः इस आसन को ग्रहण कर सफलता प्रदान करो । इस भाँति कहते हुए पुष्प के तीन गुच्छों द्वारा उन्हें आसन प्रदान कर हाथ जोड़ कुशल पूँछने के उपरान्त कहे कि—हे वैश्वानर ! तुम्हें नमस्कार है, हे हृव्य वाहन तुम्हें नमस्कार है, एवं हे सुरश्रेष्ठ ! यह आपका स्वागत, है इसे स्वीकार कर मुझे शांति प्रदान करें, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ । ९-११। हे भगवन्, देव ! नारायण ! समस्त लोगों के कल्याणार्थ इस जल को पाद्यार्थ (पैर धोने के लिए) ग्रहण कीजिए । नारायण रूप (आप ही) परमोत्तम स्थान रूप है, ज्योति रूप और सनातन भी । मेरे दिये हुए इस अर्थ को स्वीकार कीजिये, हे विश्वरूप ! तुम्हें नमस्कार है । १२-१३। सूर्य रूप होकर जो सदैव संसार को प्रकाशित करता है, उस प्रकाशमय, अग्निदेव को नमस्कार है । १४। हे धनञ्जय ! हे समस्त पापों के नाश करने वाले ! तुम्हें नमस्कार हैं, मैं अपनी समस्त कामनाओं की सफलता के लिए स्नानार्थ तुम्हें जल प्रदान कर रहा हूँ (स्वीकार कीजिये) । १५। हे हुताशन, महाबाहो, देवाधिदेव, एवं सनातन ! मैं आपकी शरण हूँ, मुझे परमपद प्रदान कीजिये । १६। (आप) प्रकाशकों के

ज्योतिषां ज्योतीरूपस्त्वमनादिनिधनाच्युत । भया दत्तमतइकारमलइकुरु नमोऽस्तु ते ॥१७
 देवीदेवा मुदं यान्ति यत्य सम्प्रक्षसमागमात् । सर्वदोषेपशान्त्यर्थं गन्धोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥१८
 त्वं विष्णुस्त्वं हि द्वाहा च ज्योतिषां गतिरीभ्वर । गृहाण पुष्टं देवेश सानुलेपं जगद्भूवेत् ॥१९
 देवतानां पितृशां च सुहमेकं सनातनम् । धूपोऽयं देवदेवेश गृह्यतां मे धनञ्जय ॥२०
 त्वं विष्णुस्त्वं हि द्वाहा च ज्योतिषां गतिरीभ्वर । परमात्मा पराकारः प्रदीपः प्रतिगृह्यताम् ॥२१
 नमोऽस्तु यज्ञपतये प्रभवे जातवेदसे ; सर्वलोकहितार्थाय नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥२२
 हुताशनं नमस्तुभ्यं नमस्ते रुक्मवाहनं ; लोकनाथं नमस्तेऽनु नमस्ते जातवेदसे ॥२३
 इत्यनेन तु मन्त्रेण द्वाद्विष्टपूर्व्याधीतकम् । सर्वस्वं यज्ञसूत्रं च परनामं सनाकिकन् ॥२४
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्वणि प्रथमभागे यज्ञान्तपूजाविधिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अग्निवर्णनम्

सूत उवाच

यज्ञभेदं त्रिभेदं च वक्ष्ये शास्त्रमतं यथा । यथावेदानुसारेण यथाग्रहणयोजनम् ॥१

प्रकाश रूप हैं, हे जन्म-मरणहीन एवं अच्युत ! मेरे दिये हुए अलंकारों को स्वीकार कीजिये । मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ ॥१७। जिनके समागम होने से सभी देवी एवं देवता हर्ष निमग्न हो जाते हैं, उन्हें समस्त दोषों के शास्त्र्यर्थं गन्ध प्रदान कर रहा हूँ, (इसे) स्वीकार कीजिए ॥१८। तुम्हीं विष्णु एवं ब्रह्मा हो, तथा प्रकाशकों की गति भी । हे ईश्वर ! देवेश ! इस पुष्ट को ग्रहण कीजिए, इसी से समस्त संसार अनुलिप्त हो जायगा ॥१९। देव और पितरों के एक सनातन ही सुख की वस्तु हैं, देवाधिदेव, धनञ्जय । इस धूप को ग्रहण कीजिये ॥२०। स्थावर एवं चरात्मक समस्त जीवों में तुम्हीं एक परमात्मा के रूप से स्थित हो, तुम्हारा आकार भी परमोत्तम है, इस प्रदीप को स्वीकार कीजिये ॥२१। यज्ञादिदेव, प्रभु एवं अग्नि को नमस्कार है, समस्त लोकों की हितकामना पर दिये गये इस नैवेद्य को स्वीकार कीजिये ॥२२। हुताशन, तुम्हें नमस्कार है, रुद्रवाहन को नमस्कार है, लोकनाथ को नमस्कार है, जातवेदस् (अग्नि) को नमस्कार है, इस मन्त्र द्वारा उस दिव्य देव (अग्नि) को सर्वस्व यज्ञसूत्र तथा शहद समेत परमोत्तम अन्न प्रदान करना चाहिए ॥२३-२४

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमर्वण के प्रथम माग में यज्ञान्तपूजाविधिवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१।

अध्याय १७

यज्ञों के भेद का निरूपण

सूत जी बोले—शास्त्र के कथनानुसार एवं वेद की रीति से जिस प्रकार ग्रहण किया जाता है ऐसे यज्ञ के भेद, जिसमें तीन भेद हैं, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ॥१। शतार्ध में बन्दि और काश्यप (अग्नि के) नामक का

शतार्थं वह्निरुद्दिष्टः। शतार्थं काशयः। स्मृतः। धूतप्रदीपके विष्णुस्तिलयागे वनस्पतिः ॥२
 सहस्रे ब्राह्मणो नाम अयुते हरिरच्यते। लक्ष्मो में तु वाङ्मः स्यात्कोटिहोमे हुताशनः ॥३
 वरुणः शान्तिके ज्ञेयो मारणे द्वारुणः स्मृतः। नित्यहोमेजनलो नाम प्रायश्चित्ते हुताशनः ॥४
 लोहितश्रान्नयज्ञे यो ग्रहाणां प्रत्यनुक्रमात् देवप्रतिष्ठायागे तु लोहितः परिकीर्तिः ॥५
 प्रजापतिर्वस्तुयागे मण्डपे चापि पद्मके। प्रपायां चैव नागाख्ये महादाने हविर्भुजः ॥६
 गोदाने च भवेदुद्धः कन्यादाने दु गोऽजकः। तुलापुरुषदाने च धत्ताग्निः परिकीर्तिः ॥७
 वृषोत्सर्गे अवेत्सूर्योऽवसानात्ते रविः स्मृतः। पावको वैश्वदेवे च दीक्षापक्षे जनार्दनः ॥८
 आतने च भवेत्कालः क्रब्यादः शरदाहने। पर्णदाहे दमो नाम हृस्थिदाहे शिखण्डकः ॥९
 गर्भाधाने च मरुतः सीमन्ते पिङ्गलः स्मृतः। पुंसवे त्विद अस्थातः प्रशस्तो यागकर्मणि ॥१०
 नामसंस्थापने चैत्रमुपन्यस्ते च पार्थिवा। निष्कमे हाटकश्चैव प्राशने च शुचिस्तथा ॥११
 'षडाननश्च चूडायां व्रतादेशे समुद्रवः। वीतिहोत्रव्योपनये समावर्ते धनञ्जयः ॥१२
 उदरे जठराग्निश्च तमुद्रे वडवानलः। शिखायां च विभुज्येयः स्वरस्याग्निः सरीसृपः ॥१३
 अश्वाग्निर्मन्थरो नाम रशग्निर्जातवैदसः। गजाग्निर्मन्दरश्वैव तूर्याग्निर्विघ्यसंज्ञकः ॥१४
 तोयाग्निर्वरुणोनाम ब्राह्मणाग्निर्विर्भुजः। पर्वताग्निः क्रतुभुजो दावतग्निः सूर्य उच्यते ॥१५
 दीपाग्निः पावको नाम गृह्याग्निर्धरणीपतिः। धूताग्निश्च नलो वायुः सूतिकाग्निश्च राक्षसः ॥१६
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे भद्यमपर्वणि प्रथमभागेऽग्निनामवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७

उच्चारण करना चाहिए, उसी भाँति, धी के याग में विष्णु, तिल के हवन में वनस्पति, सहस्र आहुति में ब्राह्मण का नाम, दश सहस्र में हरि, लक्ष्मआहुति में वह्नि, कोटि वह्नि में हुताशन, शांति कर्म के हवन में वरुण, मारण में अरुण, नित्य हवन में अनल, प्रायश्चित्त कर्म में हुताशन का नाम बताया गया है। अन्न यज्ञ में जो क्रमशः ग्रहों के निमित्त किया जाता है, तथा देवों की प्रतिष्ठा में लोहित नामोच्चारण करना चाहिए। वास्तु (गृह) यज्ञ में जिसमें कमल मण्डल सुसज्जित होता है, प्रजापति, प्रपा (पौसला) के निर्माण आदि में नाग, महादान में हविर्भुक्त, गोदान में रुद्र, कन्यादान में गोजक, तुलापुरुष के दान में धाता, वृषोत्सर्ग में सूर्य, अंवसान में रवि, वैश्वदेव कर्म में पावक, दीक्षा में जनार्दन, भयभीत करने में काल, शरदाह में क्रब्याद, पर्णदाह में यम, अस्थिदाह में शिखण्डक, गर्भाधान कर्म में मरुत, सीमन्त कर्म में पिंगल, पुंसवन में इन्द्र प्रशस्त नाम बताया गया है । २-१०। नामकरण के समय पार्थिव, निष्कमण में हाटक, अन्नप्राशन में शुचि, चूर्णकर्म एवं व्रतादेश में षडानन, उपनयन में वीतिहोत्र, समावर्तन में धनञ्जय, उदर में जठराग्नि, समुद्र में वडवानल, शिखा में विष्णु, स्वर के अग्नि को सरीसृप कहते हैं । ११-१३। उसी प्रकार अश्व की अग्नि को मन्थर, रथ की अग्नि को जातवेदस्, गज की अग्नि को मन्थर, सूर्य की अग्नि को विघ्य कहा जाता है । १४। तोय (जल) की अग्नि को वरुण, ब्राह्मण की अग्नि को हविर्भुक्त, पर्वत की अग्नि को क्रतुभुक्त, दावाग्नि को सूर्य बताया गया है । १५। दीपक की अग्नि को पावक, गृह की अग्नि को धरणीपति, धी की अग्नि को नल वायु और सूतिका की अग्नि को राक्षस कहा जाता है । १६

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथमभाग में अग्नि वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त । १७।

अथाष्टादशोऽध्यायः

होमद्रव्यकथनम्

सूत उवाच

अथतो होमद्रव्याणां प्रमाणमभिधीयते । प्रसादे चाप्रमाणे च निष्फलं भवति ध्रुवम् ॥१
 कर्षमात्रं घृत होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम् : हत्समं पञ्चगव्यं च दधि दुग्धं तथा मधु ॥२
 सुष्टिमनेन पृथुका लाजाः स्युरुचिसंसिताः । शर्करा मुष्टिमात्रा च शर्करातोलकं विदुः ॥३
 त्रितोलकं गुडं विद्यारिक्षुपर्वविधिर्भवेत् । एकं पत्रपुष्पाणि शालूकस्य त्रिमुष्टिकम् ॥४
 एकलघ्ने न जुहुयात्प्र पृथग्जुहुयात्कवचित् । सवृतकं जपापुष्पं केशरं तत्सवृत्तकम् ॥५
 एकैकराश्च पद्मानां जलजानां तथैव च । जीवन्त्या फलभानेन पिष्ठकानां प्रसङ्ग्यया ॥६
 वसन्तकं धात्रिमाने मोदकस्य प्रमाणतः । एकैकशः फलानां च मातुलिङ्गत्रिखण्डकम् ॥७
 अष्टधा नालिकेरस्य पनसं दशधा भवेत् । पद्मदीजप्रमाणेन कूज्माण्डं चाष्टधा भवेत् ॥८
 उर्वारुकं चाष्टधा च गुडूची चतुरद्वयुलम् । पूर्णमानं च मांसस्य सगुडं तत्र दृश्यते ॥९
 अन्यद्व बद्रीमानं तिन्दुकं च त्रिधा कृतम् । काष्ठं प्रादेशमात्रं स्याद्द्वार्याश्च त्रिपत्रकम् ॥१०
 मूर्जपत्रं च गृहणीयाच्छमीं प्रादेशमात्रिकाम् । वीहयो मुष्टिमात्राः स्युः शुक्तिमानेन सर्वपाः ॥११

अध्याय १८

हवन-द्रव्यों का कथन

सूत जी बोले—अब मैं तुम्हें हवन की वस्तुओं के माप बता रहा हूँ, क्योंकि (न्यूनाधिक) प्रमाण अथवा अप्रमाण की व्यवस्था रखने पर वह (हवन) निष्फल हो जाता है । १। हवन में एक तोला चार माशा धी, एक शुक्ति (सतुही, सीप) दूध उसी के समान भागों के तुल्य पञ्चगव्य (गोदुग्ध, दधि, धी, मूत्र गाय का) दही, दूध और मधु आदि मिलाना चाहिए । २। एक मुट्ठी धान का लावा, एवं जिस भाँति मुट्ठी बाँधी जाती है, उतना ही शक्तर डालना चाहिए, इस शक्तर की माप वेत्ताओं ने बताया है । उसमें तीन तोला गुड़ डालने से उसे इक्षुपर्व विधान कहा गया है । एक-एक पत्र, पुष्प तथा तीन मुट्ठी कन्द भी डालना चाहिए । एकसाथ अथवा पृथक्-पृथक् भी जया पुष्प के गुच्छे और केशर के गुच्छे का हवन कभी न करना चाहिए । ४-५। एक-एक कमल एवं क्षेत्र तथा जीवन्ती के फल के चूर्ण को एकत्र कर बसंत कृतु के आंवले के समान अथवा मोदक के प्रमाणानुसार उसकी गोली बनाकर हवन करना चाहिए । फलों के एक-एक खण्ड, विजौरे नीबू के तीन, नारियल के आठ, कटहल के दश एवं कमल बीज के समान कुम्हड़े के आठ टुकड़े करने चाहिए । ६-८। ककड़ी के आठ, गुरुचि के चार-चार अंगुल सोपाड़ी के समान मांस के टुकड़े कर उसमें गुड़ भी मिलाना चाहिए । ९। दूसरे कामों के लिए वेर के समान उसका प्रमाण बताया गया है । और तिंदुक के तीन टुकड़े करने चाहिए । प्रादेशमात्र हवन की लकड़ी, द्रव्या के तीन पत्ते भोजपत्र और शमी की लकड़ी प्रादेशमात्र के माप की होनी चाहिए, तथा एक मुट्ठी ब्रीहि, एक सीप भर के राई, मिर्च, मृणाल की

नरिचा: स्युरिमानेन भृणालं चाय मूलकम् । सप्तखण्डं च वार्ताकं त्रिपुष्टं च त्रिधोदितम् ॥१२
 चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुड्कुमानि च । तितिडीबीजमानेन समुद्दिष्टानि देशकैः ॥१३
 समिदाप्लवने अञ्जनतिलानामपि मध्यतः । दशकं प्लावनेनैव सहस्राणां शतं दिना ॥१४
 एवं दीहिप्लावने च काष्ठविक्षुदग्डकम् । प्रोक्षणं मृदुपुष्टाणां लतादीनां तथैव च ॥१५
 पायसान्ने तथान्ने च मोदके गिर्षकेऽपि च । शाल्यासत्केन चुहयाद्वयत्यये व्यत्ययं फलम् ॥१६
 बिल्वपत्रस्य प्लवनं दण्डं हित्वा च प्लावयेत् । वृन्तसम्प्लावनादेव फलं हरति राक्षसः ॥१७
 बिल्वपत्रस्य पूर्वार्धप्राप्तमात्रेण योजयेत् । पत्रत्रयं तथाः होमे छिन्नेभिन्नेऽतिद्रौषणम् ॥१८
 न द्वित्रिप्लवनं कुर्यात्कृत्वा दाति रसातलम् । तस्माच्च पुत्रशिष्याद्यैर्भ्रह्मणैस्तत्त्वकोविदैः ॥१९
 पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा पावयेच्च यथाक्रमात् । न न्यूनं नाधिकं कुर्याच्छांतिपक्ष उदइमुखः ॥२०
 पायसान्यन्यदेवेषु यत्नेन परिवर्जयेत् । न चाशौ दापयेद्यत्नादेतेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥२१
 कनिष्ठाइगुलिमासाद्य भ्रकुर्यात्पर्वभूषणम् । गुणदोरकमानेन तावद्वोमगतिर्बुधाः ॥२२
 अङ्गुलैद्वित्रिचतुरैः पत्रहोमाकृतिक्रमात् ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणे प्रथमभागे होमद्रव्यकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८

जड़, वैगन के सात टुकडे तथा तीनों पौष्टिक पदार्थों को तीन भाग में विभाजित करके उसके साथ चन्दन, अगुरु, कपूर, कस्तूरी, कुंकुम के माप इमली के बीज के समान ग्रहण करना चाहिए ॥१०-१३। समिदाप्लवन में तीनों अङ्ग एवं तिलों के मध्य से सो सहस्र की आहुति न पड़ने वाले यज्ञ में, उसी भाँति ब्रीहि के प्लावन में काष्ठ की भाँति ईख के दण्डे का टुकड़े बनाकर कोमल पुष्पों एवं लतादिकों का प्रोक्षण करना चाहिए ॥१४-१५। सीर, केवल अन्न, मोदक एवं शाठी चावल के चूर्ण का हवन करना चाहिए, इसके प्रतिकूल हवन करने से उसके अनिष्ट फल भी प्राप्त होते हैं ॥१६। वेलपत्र के लेपन करने में दण्ड भाग के छोड़कर प्लावन करना चाहिए, वृंत (गुच्छों) के प्लावन करने में उसके फल का अपहरण राक्षस करते हैं ॥१७। वे पत्र का पूर्वार्धभाग मात्र भी प्राप्त होने पर उसका ही ग्रहण करना चाहिए । हवन कार्य में तीन पते बेल के होने चाहिए, पर उसके छिन्नेभिन्न होने से अत्यन्त दोष भी होते हैं ॥१८। दो तीन प्लवन न करना चाहिए, क्योंकि वैसा करने से वह रसातल चला जाता है । इसलिए पुत्र अथवा शिष्य आदि उस तत्ववेत्ता ब्राह्मण को चाहिए कि पूर्वाभिमुख हो क्रमशः उसे पवित्र करने की चेष्टा करें । शांति कार्य में उत्तराभिमुख होकर न्यूनाधिक न करना चाहिए, क्योंकि वैसा क्रम नहीं बताया गया है ॥१९-२०। अन्य देवों के उद्देश्य से किये जाने वाले हवन में सीर की आहुति एवं उन्हें भी न प्रदान करनी चाहिए ॥२१। हे विद्वन् ! कनिष्ठा अंगुली के द्वारा उत्सव को विभूषित करना चाहिये । गुणपरिमाण के मान से होम की स्थिति का विघ्नान करना चाहिए, दो तीन चार अंगुलियों से पत्ते की हवनाकृति का क्रम बनाना चाहिये ॥२२-२३

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमर्पण के प्रथमभाग में होमद्रव्य-कथन नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः

सुवदर्वींनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

श्रीपर्णीं शिशपा क्षीरे बिल्वः सदिर एव च । सुवे प्रशस्तास्तरवः तिद्विदा यागकर्मणि ॥१
 प्रतिष्ठायां प्रशस्तास्तु धात्रीखदिरकेशराः । संस्कारे शशिभिन्नौ च धात्री धात्रा विनिर्मिता ॥२
 सम्प्राशो यः सुवः प्रोक्तः संस्कारे यज्ञसाधने । प्रतिष्ठायां तु कथितास्तदन्ये शास्त्रवेदिभिः ॥३
 सुवं सुचमथो वक्ष्ये यदधीनश्च जायते । यज्ञे त सर्दकं धार्यमक्षरेण च व्यत्ययः ॥४
 तस्यादौ च सुवं वक्ष्ये यच्च मानं यदास्थदम् । काष्ठं गृहीत्वा बिल्वस्य रित्तादितिथिवर्जिते ॥५
 समुपोष्य च रचयेदामिषाणि न च स्मरेत् । वर्जयेद्ग्राम्यधर्मं च निर्माणे सुक्षुवस्य वै ॥६
 काष्ठं गृहीत्वा विभजेद्गारांस्त्रशतथा पुनः । विशत्यङ्गुलमानं तु कुण्डवेदिसमोदरम् ॥७
 कटाहाकारनिम्नं च सुवं कुर्याद्विचक्षणः । धात्रीफलसमाकारं स्वधानिम्नं सुशोभनम् ॥८
 वेदीं शूर्पकृतिं कुर्यात्कुण्डानि परिकल्पयेत् । हंसवन्त्रिगुणा वापि हस्तेनाऽनुमुखं लिखेत् ॥९

अध्याय १९

सुवदर्वीं निर्णय-वर्णन

सूत जी बोले—श्रीपर्णीं, शिंशपा, क्षीर वाला वृक्ष, बेल एवं खैर की लकड़ी से बना हुआ सुवा यज्ञ के लिए प्रशस्त बताया गया है, यही वृक्ष यज्ञों में सफलता प्रदान करते हैं । १। प्रतिष्ठा कर्म में आँवले और खैर, तथा केशर के सुवा प्रशस्त बताये गये हैं । चन्द्रभिन्न संस्कार के लिए आँवले का ही सुवा प्रशस्त कहा गया है, क्योंकि ब्रह्मा ने उसे उसी के लिए ही उत्पन्न किया है । २। संप्राशन संस्कार के यज्ञ-कर्म में जिस वृक्ष का सुवा बताया गया है, उसी को प्रतिष्ठा कर्म में भी शासक वेत्ताओं ने कहा है । ३। मैं सुवा और सुक्क की व्यास्त्या कर रहा हूँ, तथा ये जिसके अधीन रहते हैं, उसे भी बता रहा हूँ ! इनके यज्ञाङ्ग होने के नाते यज्ञ ही इन्हें धारण करता है, यज्ञपात्र होने के कारण दोनों समान हैं, इनमें केवल अक्षर का ही अंतर व्यत्यय (उलट-फेर) है । ४। अतः प्रथम सुवा के माप और आस्पद (स्थान) आदि बता रहा हूँ । रित्ता आदि हीन तिथियों में बेल का काष्ठ लेकर सुवा का निर्माण करना चाहिए, उसके निर्माण में उपवास रहकर आमिष का स्मरण तक न करना चाहिए और ग्राम्य धर्मं (स्त्री प्रसंग) तो नितान्त वर्जित किया गया है । सुवा के निर्माण में भी ये नियम आवश्यक हैं । उस (सुवा) के काष्ठों में पहले तीस भाग करके बीस अंगुल के प्रमाण का सुवा बनाना चाहिए, जिसके उदर भाग कुण्डवेदी के समान होते हैं । ५-७। बुद्धिमान् को कड़ाहे के समान नीचा (गहरा) आँवले के समान आकार वाले, स्वधा की भाँति नीचा और सौन्दर्यपूर्ण सुवा का निर्माण करना चाहिए । ८। सूप की भाँति वेदी की रचना करके उसमें कुण्डों के निर्माण करना चाहिए । उसके सम्मुख ही अपने हाथ से हंस की भाँति अथवा त्रिकोण कुण्ड की रचना के उपरांत चौबीस अंगुल के

सुवं चतुर्विंशतिभिर्गैश्च रचयेद्धुवम् । द्वित्रिंशं स्थात्कुण्डमानमदैवे तस्य कीर्तितम् ॥१०
 चतुर्भिरद्गैरानाहं कषाद्यग्रं ततः सुवम् । अङ्गद्वयेन विलखेत्पद्मे मृगमदाकृतिम् ॥११
 दण्डमूलाश्रये दण्डी भवेत्कडकणमूषितः । सौवर्णस्य च ताम्रस्य कार्या दर्वी प्रमाणतः ॥१२
 शैवर्णिकोद्भवं यच्च इन्दुवृक्षसमुद्भवम् । क्षीरवृक्षसमुद्भूतं द्वादशाङ्गुलसम्मतम् ॥१३
 द्वयङ्गुलं मण्डलं तस्य दर्वीं सा यज्ञसाधने । चत्वारिंशत्तोलिकाभिस्ति ताम्रमयस्य च ॥१४
 पञ्चाङ्गुलं मण्डलं च अष्टहस्तं च दण्डकम् । जन्मादिपायसविधौ दर्वीं यज्ञस्य साधने ॥१५
 दशतोलकमानेन सा च दर्वीं उदाहृता । आज्यसंशोधनार्थं तु सा तु ताम्रमयस्य च ॥१६
 षोडशाङ्गुलयानेन सर्वाभावे च पैष्पलीम् । आज्यस्थलीं धृतमर्यो मुष्मर्यो च समश्रयेत् ॥१७
 अथ ताम्रमयी कार्या न च तां तत्र योजयेत् ॥१८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे सुवदर्वीनिर्णयो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९

अथ विंशोऽध्यायः

पूर्णविधिवर्णनम्

सूत उवाच

अथ पूर्णविधिं वक्ष्ये यथा चन्द्रार्थवेदिनाम् । यस्य सम्यग्नुष्ठानात्सम्पूर्णं स्पादिति स्थितिः ॥१

प्रमाणानुसारं सुवा बनाये और उसी भाँति बत्तीस अंगुल प्रमाण के कुण्ड बनाने को बताया गया है ॥१-१०: चार अंगुल की लम्बी-चौड़ी कोठरी की भाँति उस भाग की रचना करनी चाहिए, जिसमें धी भरकर आढ़ुति दी जाती है, और शेष भाग से सुवा का निर्माण किया जाता है । दो अंगुल के आकार का जो कस्तूरी की भाँति रहता है, उस पंक में निर्माण करना चाहिए ॥१। दण्डी को उस दण्ड के मूल भाग को कंगन से भूषित करना चाहिए तथा प्रमाणानुसारं सुवर्ण अथवा ताँबे की करछी बनानी चाहिए ॥२। सेमर, देवदारु एवं गूलर की बारह अंगुल की करछी बनायी जाती है, जिसमें (कटोरी की भाँति) उसका मंडल भाग दो अंगुल का रहता है । वही करछी यज्ञ के लिए प्रशस्त होती है । ताँबे की करछी बनाने में चालीस तोले, ताँबे की करछी बनाने को बताया गया है, जिसमें पाँच अंगुल का उसका मण्डल भाग (कटोरी) और आठ हाथ का दंड रहता है, यज्ञ में अन्न आदि के स्त्री बनाने के लिए ऐसी ही करछी को प्रशस्त बताया गया है ॥३-१५। धी के संशोधनार्थ दश तोले ताँबे की करछी होनी चाहिए, अथवा सभी के अभाव में सोलह अंगुल प्रमाण की पीपल की ही करछी तथा धी के पात्र बनाना चाहिए, धी का पात्र मिट्टी का भी हो सकता है । परं जहाँ तक हो सके ताँबे की करछी और धी के पात्र यज्ञ में न रखे ॥१६-१८

श्रीभविष्यपुराण में मध्यमपर्व के प्रथम भाग में सुवदर्वी निर्णय नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१।

अध्याय २०

पूर्णविधि-वर्णन

सूत बोले—मैं चंद्रार्थ वेदियों के पूर्ण विधान को यथोचित रीति से बता रहा हूँ, जिसके विधान

होमपूर्तौ मोक्षकल्पः पूजान्तेऽर्घ्यं विधीयते । अथ तस्यामपूर्णायां हतश्रीर्यज्ञभ्रंशता ॥२
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सुवाधो विन्यसेच्चरुम् । पूर्णं दत्त्वा सवित्रेऽर्घ्यं ब्राह्मणान्भोजयेत्तः ॥३
 गृहं प्रविश्य च ततः कुलपूजां सप्ताचरेत् । सप्तते देहि मे पूर्णा पुनात्विति क्रचा क्रमात् ॥४
 नियोजयेत्प्रतिष्ठायां नित्यनैमित्तिके शृणु । पुनात्विति क्रचा पूर्णा प्रदमा परिकीर्तिता ॥५
 सप्तते द्वितीयः स्थादेहिमेति तृतीयिका । पूर्णादर्वीः चतुर्थी स्यात्कुलेवस्थाप्य देशिकः ॥६
 उत्थाय दद्यात्पूर्णा तु नेत्रविश्य कदाचन । कनकायां च जिह्वायां रक्तायां ग्रहयागके ॥७
 ग्रहहोमे शतान्ते च पूर्णं एका विधीयते । सहस्रान्ते युगं दद्यादयुतान्ते युगद्वयम् ॥८
 सहस्रान्ते ददेदेकं पुष्पहोमे च सत्तमः । पूर्णा त्वेकसहस्रं तु दद्याद्यज्ञफलेप्सया ॥९
 मृदुपुष्पाङ्गतौ त्वेका केवले चेषुहोमके । शतं द्वे च शते चैव गर्भाधानान्नप्राशने ॥१०
 सीमन्तोन्नयने चैव प्रायश्चित्ताङ्गतीषु च । वैश्वदेवे च नित्ये च पूर्णा त्वेका विधीयते ॥११
 एवं सुचौ समौ कृत्वा उपर्युपरि विन्यसेत् । यथा न व्ययते कृत्वा न कल्पयति यावता ॥१२
 ऋषिंछन्दादिकं श्रुत्वा प्रतिमन्त्रस्य सत्तमाः । अन्यथाल्पाल्पकफलं तस्मात्संलग्नस्य होमयेत् ॥१३

पूर्वक अनुष्ठान करने से यज्ञ का सुसम्पन्न होना बताया जाता है, ऐसा शास्त्रकारों का कहना है । १। हवन की सविधि समाप्ति के उपरांत मोक्ष की भाँति निवृत्ति प्राप्त होती है, इसीलिए पूजा के अंत में अर्घ्य विधान आवश्यक बताया गया है । उसके विधान में त्रुटि होने से यज्ञ अपूर्ण, उसकी श्री नष्ट एवं यज्ञ ध्वंस कहा जाता है । २। अतः समस्त प्रयत्नों द्वारा सुवा के नीचे चरु को रखकर उसकी पूर्ति, सूर्य के लिए अर्घ्य और उसके अनन्तर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । ३। पश्चात् घर पहुँचकर अपनी कुल परम्परागत पूजा 'सप्तते देहि' इत्यादि क्रचाओं द्वारा क्रमः सुसम्पन्न करना चाहिए । ४। नित्य एवं नैमित्तिक प्रतिष्ठाओं में जिन क्रचाओं के प्रयोग किये जाते हैं, उन्हें बता रहा हूँ, सुनो ! 'पुनात्वितिक्रचापूर्णा' पहली, 'सप्तते' द्वासरी, देहिमेति, तीसरी, तथा 'पूर्णा दर्वी' चौथी क्रचाओं द्वारा अपनी कुलरीति के अनुसार देवों के पूजन करना बताया गया है । ५-६। चौथी 'पूर्णा क्रचा का प्रदान नियमानुसार उठकर ही करना चाहिए, बैठकर कभी नहीं । यह प्रदान (अग्नि की) सुवर्ण जिह्वा में किया जाता है और ग्रहों के याग में उनकी रक्तजिह्वा में । ७। ग्रहों के हवन में सौ आहुति के अंत में एक पूर्णा का विधान बताया गया है, उसी भाँति सहस्र आहुति के अंत में चार और दशसहस्र आहुति के अंत में आठ पूर्णा का प्रदान आवश्यक होता है । ८। सत्तम ! पुष्प के हवन में सहस्र आहुति के अंत में एक और यज्ञ फलों की प्राप्ति के लिए एक सहस्र पूर्णा का विधान बताया गया है । ९। कोमल पुष्पों की भाँति आङ्गृति निर्माण में एक केवल ईख के हवन में सौ और गर्भाधान एवं अन्नप्राशन कर्म में दो सौ का विधान बताया गया है । १०। सीमन्तोन्नयन, प्रायश्चित्त कर्म, वैश्वदेव और नित्य कर्मों में एक पूर्णा कहा गया है । ११। इसी प्रकार दोनों सुवों (यज्ञपात्रों) को ऊपर ही ऊपर रख देना चाहिए जिसे उनका संचालन अथवा जब तक उठायेन जायें, स्थिर रहें । १२। सत्तम ! प्रत्येक मंत्रों के उच्चारण के पूर्व उनके क्रृषि एवं छंदादिकों का उच्चारण आवश्यक होता है, ऐसा न करने से उस कर्म-नुष्ठान द्वारा अल्प से अल्प फल की प्राप्ति होती है अतः उपरोक्त (यज्ञ पात्रों) के त्याग और क्रृषि के उच्चारण पूर्वक ही हवन करना चाहिए । १३। 'सप्तते' ब्राह्मण (मंत्र) क्रचा के कोण्डिन्य क्रृषि, जगती छन्द, और

सप्ततेति ब्राह्मणस्य ऋषिः कौण्डिन्य ईरितः । जगती च भवेच्छन्दो देवताग्निः प्रकीर्तितः ॥१४
 देहि मेति च मन्त्रस्य प्रजापतिर्कृषिः स्मृतः । अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो देवतास्य प्रजापतिः ॥१५
 पूर्णार्दिर्बीति मन्त्रस्य शतक्रतुर्ऋषिः स्मृतः । छन्दोनुष्टुप्दसमाख्यातं बहिःशैवाक्ष देवता ॥१६
 पुनात्विति च मन्त्रस्य ऋषिः स्यात्पवनः स्मृतः । छन्दोऽपि जगती ख्यातं देवताग्निश्च कीर्तितः ॥१७
 तुर्यपूर्णा यजमध्ये नकुले द्विजसत्तमाः । न चाशिं यज्ञमध्ये अभिषेकं च तर्पणम् ॥१८
 क्रत्विक्षन्दः स्पृशन्सम्यदक्षिणाङ्गमथापि दा : यजमानः सपत्नीको महोत्सवपुरः सरम् ॥१९
 विश्वानिनिरोऽयुतं तत्र होतां कुर्याद्विचक्षणः । लवली बदरी शस्त्रं पिचुमन्दवः छन्दकम् ॥२०
 नागरद्वाग्नं धत्तकों च पूर्णायां च विवर्जयेत् । जप्यहानिरसद्व्याते होमभ्रंशश्च जायते ॥२१
 तस्मात्प्रागे सतिलाननित्वा स्थापयेत्पृथक् । युगपद्गणयेद्वाथ न चाङ्गोन कदाचन ॥२२
 धातक्याश्र फलैः सङ्ख्या कर्तव्या फलमिच्छता । बदर्याश्र लवत्याश्र फलैः सर्वार्थसिद्धये ॥२३
 नागरद्वाग्नफलैरेव धातक्या बकुलैः फलैः । यज्ञहानिकरं यस्मात्स्मात्पत्परिवर्जयेत् ॥२४
 कर्पूरचन्दनैः कुर्याद्वोलिकां यज्ञसिद्धये ! गडगामृतिक्या पुक्तः शुग्निकामय दा द्विजाः ॥२५
 रक्तगुञ्जाकलैः संख्यां पुष्टिकामेत्यु योजयेत् । वातार्धं च शते चैव सहस्रे च तथैव हि ॥२६
 होता स्यादयुतेनापि एकाहे वेदसंख्यया । ऋणसाध्ये भवेद्वोता त्रय एव द्विजोत्तमाः ॥२७
 लक्षहोने तु होतारः षडेव परिकीर्तिताः । कोटिहोमे तु विप्राः स्युः प्रशस्ता : पद्मित्तसद्व्यया ॥२८

अग्नि देवता बताये गये हैं । १४। 'देहि मेति' मन्त्र के प्रजापति ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, प्रजापति देवता है । १५। 'पूर्णार्दिर्बीति, मन्त्र के शतक्रतु ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, और अग्नि देवता, इसी भाँति 'पुनात्विति' मन्त्र के पवन ऋषि, जगती छन्द, और अग्नि देवता बताये गये हैं । १६-१७। द्विजोत्तम ! चौथी पूर्णा के प्रयोग वाले यज्ञ के अनुष्ठान करने पर जब तक समाप्ति न हो जाये, अपने कुल में आशीर्वाद, अभिषेक, एवं तर्पण न करना चाहिए । १८। पत्नी समेत यजमान उस महोत्सव में होता के स्पर्श, छन्दों के उच्चारण पूर्वक अपने दक्षिणांगों के स्पर्श करने के उपरांत विश्व-बन्धु की भाँति दश सहस्र आहुति का हवन करे । उस पूर्णा के आरम्भ में लवली वृक्ष के फल, बेर नीम के छत्र (डाली), नारंगी, एवं आँवले के फल निषिद्ध हैं । संख्याहीन जप की हानि निश्चित है एवं हवन भी नष्ट हो जाता है । इसलिए जपादि के पूर्व ही तिल समेत गणना करके उन्हें पृथक् रख लेना चाहिए, अपना साथ ही-साथ (किसी वस्तु द्वारा) गणना भी करता जाये, केवल एकाङ्गी होकर उसे कभी न करे । १९-२१। फल के इच्छुक को आँवले के फल द्वारा सदैव उसके संख्या की गणना करनी चाहिए । और समस्त कामनाओं की सफलता के लिए बेर तथा लवली के फल द्वारा पूजा होनी चाहिए । २३। नारंगी, आँवला और मौलिश्री के फलों द्वारा संख्या गणना करने से यज्ञ की हानि होती है, अतः संख्या गणना करने में उनका त्याग श्रेयस्कर कहा गया है । २४। कपूर, चन्दन, द्वारा यज्ञसिद्धि के लिए होली करनी चाहिए, अथवा द्विजवृन्द ! गंगा की मिट्टी समेत शुक्तिका बालू से भी होना चाहिए । २५। पुष्टि की कामना वाले कार्यों में रक्त गुञ्जा फल द्वारा संख्याओं की गणना होनी चाहिए । वातार्ध, सौ, और सहस्रतथा दशसहस्र की आहुति वाले यज्ञ को सुसम्पन्न कराने वाले 'होता' ही कहे जाते हैं, इस भाँति एक दिन में चार सहस्र की आहुति वाले एवं ऋणसाध्य यज्ञों में भी । द्विजोत्तम ! इस प्रकार तीन प्रकार के होता होते हैं । २६-२७। लक्ष आहुति वाले हवन में छः होता होते हैं, और कोटि संख्या की आहुति वाले हवन में

नव पञ्च दशदशकं पञ्चविंशमथापि वा ; कामक्रोधविहीनाः स्युर्कृत्विजः शान्तचेतसः ॥२९
 नवग्रहे मखे विप्राश्रत्वारो वेदवेदिनः । अथवा कृत्विजौ शान्तौ द्वावेव परकीर्तितौ ॥३०
 कार्यावियुतहोमे तु न प्रसज्येत विस्तरे । तद्विदराधा चाष्टौ नवहोमे तु कृत्विजः ॥३१
 कर्तव्यः शक्तिस्तद्विष्टारोऽपि विमत्सराः । तमेव पूजयेद्ब्रह्मा द्वौ वा श्रीन्वा यथाविधि ॥३२
 एकमप्यर्चयेद्भ्रह्मा भृत्ये त्वेकप्राह्यणम् । दक्षिणाभिः प्रयत्नेन निर्वहेदत्पवित्रात् ॥३३
 लक्षहोमस्तु कर्तव्यो यदा वित्तं भवेत्तदा । यतः सर्वमध्वान्नोति कुर्यात्कामविधानतः ॥३४
 पूज्यते शिदलोके च वस्यादित्यमरुदग्णैः । यावत्कल्पशतान्यष्टावन्ते मोक्षमवानुयात् ॥३५
 अकामो दस्त्वमं कुर्यात्लक्षहोमं यथाविधि । शतकाममवान्नोति पदं चानन्त्यमश्वनुते ॥३६
 पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् । भार्यार्थी लभते भार्या कुमारी च शुभं पतिम् ॥३७
 ऋष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमान्युयात् । यं यं कामयते कामं सर्वं प्राप्नोति पुष्कलम् ॥३८
 निष्कामः कुरुते यस्तु परं ब्रह्माधिगच्छति । तस्माच्छत्युणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा ॥३९
 आचार्य एव होता स्याद्ब्राह्मणानामसम्भवे । न योजयेदेकमेव चायुते होमकर्मणि ॥४०

पंक्ति-संख्या के समान वे ब्राह्मण प्रशस्त बताये गये हैं । २८। (यज्ञानुष्ठान में) चौदह, बीस, अथवा पञ्चीस ब्राह्मण हवन के निमित्त, जो काम, क्रोध हीन एवं शांतिचित्त वाले हों वरण किये जाते हैं । २९। नवग्रह के यज्ञों में वेदविधानिष्णात चार ब्राह्मण अथवा शांतचित्त वाले को ही कृत्विक् (हवन कराने वाले) होना चाहिए । ३०। केवल दश सहस्र की आहुति वाले यज्ञ तक ही ऐसा कहा गया है न कि किसी विस्तृत संभार वाले यज्ञ में ; हवन में अपनी शक्ति के अनुसार दश, आठ या नव अथवा शुद्धान्तः करण वाले वे ही चार वेदवेत्ता कृषि को आसन पर बैठाना चाहिए । विधानानुसार ब्रह्मा उन्हीं, अथवा दो तीन की पूजा सुसम्पन्न करे । ३१-३२। यदि वह एक ही हो, फिर भी ब्रह्मा को उस एक ही की सविधि अर्चा करनी चाहिए, और थोड़ी खूँजी वाले मनुष्य को सहस्र संख्या की आहुति वाले हवन में केवल एक ही ब्राह्मण को प्रसन्न रखने की चेष्टा पूजा दक्षिणा द्वारा करनी चाहिए । ३३। और प्रचुर धन के व्यय करने की सामर्थ्य वाले को ही लक्ष आहुति के हवन करना बताया गया है, अतः उसी द्वारा उस यज्ञ कर्ता की समस्त कामनाएँ सफल होती है, अतः उसे यथेच्छ विधान द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । ३४। ऐसा करने से वह शिव लोक में वसु, आदित्य, एवं मरुदग्णों द्वारा आठ सौ कल्पों तक पूजित हो कर अंत में मोक्ष प्राप्त करता है । ३५। जो निष्काम होकर इस लक्ष आहुति वाले हवन की विधान पूर्वक समाप्ति करता है, उसकी सैकड़ों कामनाएँ पूर्ण होती हैं और उसे अनन्तर (अनन्त भगवान्) के स्थान की प्राप्ति होती है । ३६। पुत्र की कामना वाले को पुत्र, धनेच्छक को धन, स्त्री की चाह वाले को स्त्री, और कुमारी को उत्तम पति की प्राप्ति होती है । ३७। नष्ट-भ्रष्ट राज्य वाले को राज्य, और श्री वाले को श्री की प्राप्ति, एवं जिस जिस की कामना होती है, वह निश्चित प्राप्त होती है । इसे निष्काम करने वाले को पर-ब्रह्म की प्राप्ति होती है, ब्रह्म के कोटि आहुति की हवन को इससे सौंगुने अधिक फलदायक बताया है । ३८-३९। ब्राह्मणों के प्रभाव में आचार्य ही होता का भी कार्य कर सकता है, पर, दश सहस्र की आहुति वाले हवन कर्म में एक ब्राह्मण की नियुक्ति न करनी चाहिए । ४०। पूजा आदि कार्य कुशासन (कुश की

दर्भासनेऽतो न कुशे तृणे पत्रे त्वचेऽपि च । पाषाणे सृत्तिकायां च न च वस्त्रासने क्वचित् ॥४१
 तत्र दारमयं कुर्यादागमं भजते द्विजः । दानं दद्याच्च होमान्ते पूर्णादौ च यथा भद्रेत् ॥४२
 द्विजसंस्कारकार्येषु पूर्णादौ चापि दक्षिणा । मन्त्रोपासनकार्येषु सोमयागाभ्यमेधके ॥४३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रलम्भागे पूर्णविधिवर्णं नाम विशोऽध्यायः ॥२०

अथैकविंशोऽध्यायः

मण्डलविधिवर्णनम्

सूत उवाच

अथातो मण्डलं वक्ष्ये पुराणेषु यथोदितम् । यद्यदीना भवेत्सद्विस्तत्त्वात्कुर्यात्समाहितः ॥१
 देवाः पद्मासनस्थाश्च भविष्यन्ति वसन्ति च । विनाब्जं नार्चयेद्वर्माचिते यक्षिणी हरेत् ॥२
 अतो मण्डलविच्छेदं यस्माद्विगुणं भवेत् । रजःसाध्ये शतगुणं केवले द्विगुणं फलम् ॥३
 त्रिशतं वन्दने साध्ये सहस्रं च रजोउष्टकम् । रजोभिः षोडशैर्बिंश्चं शतं शतमनन्तकम् ॥४
 यन्त्रे मणौ शालग्रामे प्रतिमायां विशेषतः । महालये महायोनौ रक्तलिङ्गे च साधिकम् ॥५

(चटाई) पर ही करना बताया गया है इससे एक कुश, तृण, पत्ते, पेड़ की छाल, पत्थर, भूमि, एवं वस्त्र के आसन पर कभी न होने चाहिए । ४१। उस (यज्ञ में) वेदपाठ के लिए काठ के आसन बनाये, पूर्णा के विधान में जिस प्रकार बताया गया है, वैसा ही हवन के अंत में दक्षिणादान करना चाहिए । ४२। ब्राह्मणों के संस्कार, पूर्णानुष्ठान, मंत्रों की उपासना का कार्य सोमयाग एवं अश्वमेध यज्ञ में उसी क्रम से दक्षिणा होनी चाहिए । ४३

श्रीभविष्यपुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में पूर्णविधि वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त । २०।

अध्याय २१

मण्डलविधि का वर्णन

सूत जी बोले—मैं मण्डल की व्याख्या पुराणों के अनुसार कर रहा हूँ, क्योंकि सफलता उसी के अधीन रहा करती है, इसलिए उसका आरम्भ सावधानी से करना चाहिए । १। देवताओं को कमल के आसन पर ही स्थित करना चाहिए, क्योंकि वे उसी में निवास भी करते हैं, इसीलिए बिना कमल के देवों की अर्चा अनुपयुक्त बतायी गयी है, क्योंकि वैसा न करने से उस पूजा का अपहरण यक्षिणी कर लेती है । २। अतः मण्डल की रचना और उसमें विभाजन होना आवश्यक होता है, (पुष्प) रज से उसकी रचना करने पर सौगुने और केवल से दुगुने फल की प्राप्ति होती है । ३। उसे वंदना द्वारा साध्य करने में तीन सौ रज आठ विम्ब की रचना में एक सहस्र और सोलह विम्ब की रचना में सैकड़ों प्रत्युत अनन्त फल की प्राप्ति होती है । ४। किसी, पत्ना, मणि, विशेषकर शालिग्राम की प्रतिमा, महालय, महायोनि, अथवा रक्तलिङ्ग पर उसके निर्माण करने से अधिकाधिक फल प्राप्त होते हैं । ५। पूजा के कामों में जो अपने

रजोयुक्तं लिखेद्यस्तु पूजाकार्ये विज्ञूतये ! करणादिफलं यस्मात्स्मात्तप्तरिवर्जयेत् ॥६
 चतुरखं नवं व्यूहं क्रौञ्चघ्राणं चतुर्विधम् । कामबीजं वज्रनाभं विघ्नराजं गजाह्वयम् ॥७
 पारिजातं चन्द्रबिम्बं सूर्यकान्तं च शेदरम् । शतपत्रं सहस्रारं नवनाभं च मुष्टिकम् ॥८
 पञ्चवाङ्मं चैव मैनाकं कामराजं च पुष्करम् । अष्टासत्रं चैव श्रीविम्बं षडसत्रं च्यत्समेव तु ॥९
 चत्वारिंशतशा पञ्चस्त्वाधिकं परिसङ्ख्यया । चतुरखं नदव्यूढं वैष्णवे यागर्मणि ॥१०
 प्रशस्तं चापि गोमेधे क्रौञ्चं घाणं चतुर्विधम् । सुभद्रं चत्वारिंशतेष्व नरसेधे नरासनम् ॥११
 सर्वत्र सर्वतोभद्रं चतुरखं सुभद्रकम् । कामराजं तथा अ्यत्सम्भास्त्रं च षडलकम् ॥१२
 शक्तानां कामपक्षे च पञ्चसिंहासनं महत् । ध्यानाचले मेरुपृष्ठं मणिमुक्ताचलेष्वपि ॥१३
 सहस्रं शतपत्रं च अश्वदाने तिलाचले । हरिदत्तमं राजसूये सोमयागेषु शस्यते ॥१४
 प्रतिष्ठायां सुभद्रं च सर्वतोभद्रमेव च । जलाशयप्रतिष्ठायां विघ्नराजं प्रशस्यते ॥१५
 घटप्रस्थापने चैव गजाह्वं तुरगासनम् । शतपत्रं लक्ष्मीमे अयुते चतुरखकम् ॥१६
 यस्य यज्ञस्य यद्विम्बं ततु तेनैव योजयेत् । इतोऽन्यथा भवेद्दोषो दिशरीतेष्वधोगतिः ॥१७
 द्विहस्ता चतुरखा च वेदिका परिकीर्तिता । चतुरङ्गुलोच्छायमिता षडङ्गुला हृथापि वा ॥१८
 षडङ्गुला! नवव्यूहे वर्धयेद्यज्ञकोविदः । एकाङ्गुलसमुत्सेधः कर्तव्यस्मुसमाहितैः ॥१९

ऐश्वर्य के निमित्त रज से युक्त निर्माण करते हैं, उसका निर्माण करने से ही एक फल उन्हें प्राप्त होता है, अतः उसका त्याग ही उस समय श्रेयस्कर होता है ।६। चौकोर, नवव्यूह, क्रौञ्चघ्राण क्रौञ्चपक्षी की नासिका के समान, जो चार प्रकार का होता है, काम बीज, वज्रनाभ, विघ्नराज, गज पारिजात, चन्द्रबिम्ब, सूर्यकान्त, शेखर, शतयम, सहस्रार, नवनाभ, मुष्टिक, पञ्चवाङ्म, मैनाक, कामराज, पुष्कर, अष्टकोण, श्री विम्ब, षट्कोण, त्रिकोण, इस प्रकार पैतालिस प्रकार के मण्डल निर्माण के भेद बताये गये हैं । वैष्णु याग में चौकोर तथा नवव्यूह और गोमेध यज्ञ में क्रौञ्चघ्राण नामक मण्डल, जो चार प्रकार का होता है, प्रशस्त बताया गया है । उसी प्रकार अश्वमेध में सुमद्र, और नरमेध में नरासन तथा सब स्थानों में सर्वतोभद्र, जो चौकोर तथा सुभद्र के नाम से रूपात है, एवं कामराज, त्रिकोण, षट्कोण और अष्टकोण के मण्डल बनाने चाहिए ।७-१२। समृद्धशाली पुरुषों के लिए कामराज की जिसमें महान् पाँच सिंहासनों की रचना होती है, रचना करनी चाहिए । ध्यानाचल में मेरुपृष्ठ नामक मण्डल की रचना होती है, और मणिमोतियों के अचल निर्माण में भी ।१३। अन्न दान एवं तिलाचल के दान में सहस्रार और शतपत्र, राजसूय तथा सोमयाग में हरि वल्लभ नामक मण्डल बनाया जाता है ।१४। (देवों के) प्रतिष्ठा कर्म में सुभद्र, सर्वतोभद्र, जलाशयों की प्रतिष्ठा में विघ्नराज नामक मण्डल प्रशस्त बताया गया है ।१५। कलश स्थापन में गज एवं तुरगासन, लक्ष संस्था की आहृति में शतपत्र, दशसहस्र की आहृति में चौकोर मण्डल का निर्माण होना चाहिए ।१६। इस प्रकार जिस यज्ञ के जो विम्ब हैं, उसे उन्हीं से विभूषित करना चाहिए, इससे अतिरिक्त निर्माण में दोष और विपरीत करने में अधोगति प्राप्त होती है ।१७। दो हाथ की चौकोर वेदी का निर्माण बताया गया है, जो चार या छः अङ्गुल की ऊँची होती है ।१८। नवव्यूह नामक मण्डल में छः अङ्गुल ऊँची वेदी, जिसका उत्सेध एक अङ्गुल का होता है, यज्ञ कोविद को सावधान

क्रौञ्चप्राणे तुर्यहस्तं मुष्टिहस्तं तस्मिन्द्वितम् । मध्यद्वये हीनकरं कनिष्ठं अद्गुलाधिकम् ॥२०
 कुर्याद्द्वित्रिकमाद्वैनमुच्छ्रये द्विजसत्तमाः । पारिज्ञातं चन्द्रविम्बं सूर्यकान्तं च शेखरम् ॥२१
 प्रहाणां पौष्टिके पक्षे बाह्यप्रामादिसाधने । नियोजयेत्तत्र तत्र वेदिका चक्रकत्रयम् ॥२२
 प्रथमे मुष्टिहस्तः स्यात्सम्पूर्णं शेषमानकैः । नवलाभे च एवाब्जं करत्रयमुदाहृतम् ॥२३
 शेषाः चैव वरिष्ठा च लवली भित्तिवेदिका ! विज्ञेया द्विजशार्दूला यथाकाम्येषु योजयेत् ॥२४
 अयथाव्यत्यये दोषस्तस्माद्यत्नेन साधयेत् । दशहस्ते चाष्टहस्ते अष्टहस्ते च षोडशम् ॥२५
 मुष्टिबाहुञ्च प्रादेशं वर्धयेत्प्रोडशांशके । हस्तोत्सेधं च कर्तव्यं हीने हीनं च ह्रासयेत् ॥२६
 दर्पणाकारकं कुर्याद्यागके शान्तिकर्मणि । हीनं कुर्यात्प्रप्लत्नेन वप्राकारं परिस्तवे ॥२७
 निशारणैर्मायैश्च वेदिकां च प्रलेपयेत् । स्वर्णरत्नमयैस्तोर्यैरभिषिद्य कुण्डलैकैः ॥२८
 हीनवीर्यगवानां च पुरीषं धैनुकं तथा । कपिलायाश्च यत्नेन कुण्डलैकलेपते ॥२९
 वर्जयेत्सर्वयामेषु स्थण्डिलेषु प्रयत्नतः । विना सूत्रैः कीलके न मण्डले नैव सूत्रयेत् ॥३०
 तस्मात्प्रयत्नतः कार्यं यत्सूत्रं यन्व दीलकम् । अर्कहस्तमितं सूत्रं मृदुलाक्षामयं तथा ॥३१

होकर बनानी चाहिए । १९। क्रौञ्च प्राण नामक मण्डल में चार हाथ की वेदी, जो मुट्ठी बैंधे एक हाँथ की ऊँची, और कनिष्ठा अंगुली तक पूरे हाथ एवं तीन अंगुल अधिक मध्य भाग रहता है, बनानी चाहिए । २०। द्विजसत्तम ! उसकी ऊँचाई दो-तीन अंगुल कम भी हो सकती है । उसी प्रकार पारिज्ञात, चन्द्रविम्ब, सूर्यकांत, और शेखर नामक मण्डलों की रचना यहों के पुष्टि कार्य में अथवा गाँवों के बाह्यसाधन के कार्यों में की जाती है, वहाँ सभी नापों की तीन चक्रों की वेदियाँ बनानी चाहिए । २१-२२। पहली वेदी मुट्ठी बैंधे हाथ, एवं सम्पूर्ण कार्यों में अवशिष्ट मान तथा किसी नवीन नाम में पंचाब्ज नामक मण्डल जो तीन हाथ का होता है, बनानी चाहिए । २३। द्विजशार्दूल ! शेष उत्तम वेदियों के निर्माण, जिससे लवली नामक भीति (दीवाल) लगी रहती है, काम्य कर्मों के अनुष्ठान में करनी चाहिए व्यत्यय (उलटफेर) होने पर वह दूषित हो जाता है, इसलिए उसके लिए प्रयत्नपूर्वक सतर्क रहना आवश्यक होता है । दशाहाय, आठ हाँथ अथवा सोलह हाँथ की वेदी में निर्माण में, जिसमें मुट्ठी बैंधे तथा प्रादेश तक हाथ के माप होते हैं, सोलह हाँथ की वेदी में सोलहवें वेदियों में उतनी ही के उत्सेन्ध बनाये जाते हैं । २४-२६। शांति कर्म के ज्ञानानुष्ठान में दर्पणाकार और परिस्तव में वप्राकार की वेदी जो उसी क्रमानुसार हीन उत्सेध की होती है, बनायी जाती है । २७। निशारण गोबरों से वेदी को लीपना बताया गया है, पश्चात् सुवर्ण, रज अथवा कुशों के जल से उसका सेवन करना चाहिए । २८। वीर्यहीन, धेनु; अथवा कपिला गाय के गोबर से कुण्ड एवं मण्डपलेपन प्रशस्त कहा गया है । २९। समस्त यागों की वेदियाँ सूत्र (उसके माप के लिए) और कील हीन होने पर त्याज्य होती है मण्डल में सूत्र की कोई आवश्यकता नहीं होती है । ३०। अतः प्रयत्नपूर्वक सूत्र रखना चाहिए जो बारह हाथ का लम्बा मृदु और लाक्षामय होता है, और कील भी वैसी होती है । ३१। विष्णु के भाग में पीत पुष्पों की माला, सुवर्ण की कील, अथवा

पीतकार्यस्तजं चैव कीलकं स्वर्गनिर्मितम् । रौप्यतात्रस्य कुर्याद्वैष्णवे यागकर्मणि ॥३२
गणनायके लुप्रशस्तं शैवेपामार्गमेव च । ग्रहपक्षे तथेशस्य कच्छपस्य द्विजोत्तमाः ॥३३
षोडशे चार्कहस्ते च तत्र नेनियुतं भवेत् ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि प्रथमभागे मण्डलनिर्माणविधिवर्णनं
नाम एकदिंशतितमोऽध्यायः ॥२१

॥इति मध्यमपर्वणि प्रथमभागः समाप्तः ॥

द्वितीयभागे प्रथमोऽध्यायः मण्डलदेवरचनावर्णनम्

सूत उवाच

अथोद्वारं प्रवक्ष्यामि चतुरस्तादिकस्य च । अर्काङ्गुलमितं क्षेत्रं चतुरस्तं प्रकल्पयेत् ॥१
गुणाङ्गुलं प्रतिदिशं वर्धयेत्सुविचक्षणः । चतुरस्तं समं कुर्यादिष्टरब्दादशाङ्गुलम् ॥२
द्विहस्ते चैव सूत्राणे अङ्गुलानि समन्तातः । चतुरश्चीकृते पश्चाद्द्विहस्तमपि जायते ॥३
एवं षोडशहस्तान्तं वर्धयेत्क्रमतः स्वयम् । हस्ते विनिर्णयं विप्रा रचयेन्मण्डलं सुधीः ॥४
द्वादशाङ्गुलकल्पाम्यां मधुहस्ते च मण्डले । द्विहस्ते हस्तमात्रं स्याद्द्विहस्तं तु चतुष्करे ॥५
पद्ममानं चतुर्द्वा तु वृत्तं कुर्यात्समन्ततः । प्रथमे कर्णिका कार्या केशराणि द्वितीयके ॥६

चाँदी या तांबे का भी बना लेना चाहिए ॥३२। द्विजोत्तम वृन्द ! गणनायक, शेष, ग्रह, शिव, एवं कच्छप (कच्छप भगवान्) के यज्ञ में अपामार्ग (चिचिरा) की कील, वेदी सोलह अथवा बारह हाथ की लम्बी और नेमि समेत होती है ॥३३-३४

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यम पर्व के प्रथम भाग में मण्डल निर्माण विधि वर्णन
नामक इक्कोंसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१।

अध्याय १ मण्डल देवरचना-वर्णन

सूत जी बोले—मैं चौकोर आदि मण्डलों का उद्घार बता रहा हूँ सुनो ! । बारह अंगुल के क्षेत्र में चौकार मण्डल की रचना की जाती है । उसके चारों ओर तीन अंगुल की वृद्धि बुद्धिमान् को करनी चाहिए, इसीलिए चौकोर की भाँति ही अट्ठारह अंगुल का मण्डल भी इष्टप्रद बताया गया है । १-२। दो हांथ के सूत्र के अग्रभाग में (माप करते समय) चारों ओर तीन अंगुल की वृद्धि करनी चाहिए, इसी प्रकार चौकोर मण्डल की रचना में दो हाथ की वृद्धि संभव होती है । इसी भाँति क्रमशः वह सोलह हाथ तक बढ़ जाता है, विश्रवन्द ! विद्वानों को चाहिए कि हस्तप्रमाण से निर्णय करके ही मण्डल की रचना करे ॥३-४। बारह अंगुल के कल्पों द्वारा मधुहस्त वाले मण्डल की रचना होती है, उसी भाँति दो हाथ वाले एक हांथ और चतुष्कर (चौकोर) में दो हाथ की वृद्धि बतायी गयी है ॥५। कमल की भाँति (मण्डल की रचना में) चारों ओर से घिरा चार भाग का मण्डल बनाना बताया गया है । उसके पहले भाग में कर्णिका, दूसरे

तृतीये दलसन्धीश्व दलाग्राणि चतुर्थके ! कर्णिकां पीतवर्णेन शुक्लेन पड़कजं लिखेत ॥७
 केशरास्त्रिविधाः प्रोक्ता मूलमध्याप्रदेशतः । मूले शुक्लारुणा मध्ये पीताश्रापे प्रतिष्ठिताः ॥८
 पात्रसन्धिर्भवेच्छचामः कोणे रक्तेन रञ्जयेत् । देवास्त्राणि लिखेद्वाह्ये पुरमध्ये च कोणके ॥९
 अष्टाङ्गुलप्रमाणं यद्यथावर्णं विनादितः । शम्भुर्गौरी तथा ब्रह्मा रामकृष्णत्यनुक्रमात् ॥१०
 सीमरेखाङ्गुलोच्छयं तत्तदर्थेन योजयेत् । शिवविष्णुवोर्महायागे शम्भुमारभ्य दापयेत् ॥११
 प्रतिष्ठायां च रामान्तं कृष्णान्तं च जलाशये । दुर्गायागे च श्रीपक्षे ब्रह्मादीन्प्रकल्पयेत् ॥१२
 ग्रहयागे च पीतादीन्कुर्याच्च न तदन्यथा । नवव्यूहयो वक्ष्ये पुराणमतसम्मतम् ॥१३
 सर्वं च पूर्वत्कार्यं पड़कजं सुलिखेत्सुधीः । तावत्संख्याङ्गयोर्वेष्टयेत्प्रक्रनादिपि ॥१४
 शुक्लारुणैस्तथा पीतैः पीतारुणसितैरपि । पीतारुणसितैरेवं स्वभावे प्रतिभावके ॥१५
 कलायन्त्रं तदन्ते च गुह्यपत्राग्रकेण तु । षोडर्शीविशभाने तु लिङ्गं चाष्टपत्रके ॥१६
 एवं मण्डलनन्त्राणां वर्जयेत्परमार्थतः । तद्वन्मूलेषु कोणेषु केशराणि प्रकल्पयेत् ॥१७
 दशदण्डसमाकारं त्रिवर्णं प्रतिरक्षितम् । अरं द्व्याङ्गशापे तु सर्वाङ्गुलप्रमाणातः ॥१८

भाग में केशर, तीसरे भाग में दलों की संधियाँ, और चौथे भाग में दलों के अग्रभाग की रचना की जाती है । पीले रंग से कर्णिका शुक्र वर्ण से पंकज की रचना की जाती है । ६-७। मूल, मध्य, एवं अग्र भाग के भेद से केशर तीन प्रकार के बताये गये हैं । उसके मूल भाग इवेत रक्त वर्ण से मध्य एवं अग्र भाग पीत वर्ण से समलंकृत करना चाहिए । ८। पत्तों की संधियाँ के श्याम वर्ण तथा उसके कोने वाले भाग को रक्तवर्ण से विभूषित करना बताया गया है । उसके बाहरी भाग के मध्य एवं कोण के भाग में देवों के अस्त्र निर्माण को करना चाहिए । ९। शम्भु, गौरी, ब्रह्मा, राम एवं कृष्ण के चित्र की रचना, जो जिस वर्ण का हो, उसी द्वारा आठ अंगुल के प्रमाण से करनी चाहिए । १०। उसके यज्ञ की सीमा वाली रेखा को उसके आधे अंगुल प्रमाण की ऊँची बनानी चाहिए । शिव और विष्णु के महायज्ञ में शम्भु से आरम्भ करे । ११। (देवों की) प्रतिष्ठा में रामान्त और जलाशय में कृष्णान्त तक, दुर्गा यज्ञ एवं श्रीयज्ञ में भी ब्रह्मा आदि देवों की रचना आवश्यक होती है । १२। ग्रहों के यज्ञ में पीत यदि सभी रंगों से उनकी रचना की जाती है । इसके उपरांत पुराण सम्मत नवव्यूह की रचना बता रहा हूँ, सुनो ! । १३। विद्वान् को उसमें सब की रचना पूर्व की भाँति करके कमल का सौन्दर्य पूर्ण चित्र-चित्रण करना चाहिए । उसमें पूर्व की भाँति संख्या एवं उसी क्रम से आवेष्टित करना भी बताया गया है । १४। कहीं शुक्ल और रक्त वर्ण, कहीं पीत वर्ण, तथा कहीं पीत, रक्त, एवं उज्ज्वल वर्ण से उसके प्रत्येक भाग को उसके स्वभावानुसार वर्णों से विभूषित करना बताया गया है । १५। उसके अनन्त वाले भाग में कलायंत्र का निर्माण जो गुह्य पत्र के अग्रभाग में स्थित रहता है, करना चाहिए । उसी भाँति सोलह और बीस, प्रमाण वाले की रचना में, जो अष्टपत्रे से विभूषित रहता है । लिङ्ग समेत निर्माण करना चाहिए । १६। इस प्रकार मण्डल के विधान में मंत्रों का परमार्थतः प्रयोग करना निबद्ध किया गया है । उनके मूलभाग एवं कोणभाग में केशरों की रचना बतायी गयी है । १७। दशदण्डों के आकार प्रकार के समान तीन रंगों से रक्षित अर (आरागज की भाँति) की रचना की जाती है, और उसके अग्रभाग में भी समस्त अंगुलों के प्रमाण एवं उसी भाँति का अर बनाना

पीतेनारं च सर्वत्र तन्मध्ये शोणतुण्डकस् । नवव्यूहसिदं प्रोत्तं धर्मकामार्थदायकम् ॥१९
न शूद्रोमण्डलं कुर्यान्न कुर्याद्ब्राह्मणब्रुवः । कुर्याच्च सङ्गमे तीर्थे देवतायतनेषु च ॥२०
लिखित्वा नार्चयेद्यस्तुअग्निकःप्रविहीनकः । अदिद्वो जायते सोऽपि यतो जन्मनि जन्मनि ॥२१
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मण्डलदेवरचनावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१

अथ द्वितीयोऽध्यायः

क्रौञ्चमानवर्णनम्

सूत उवाच

क्रौञ्चमानं प्रवक्ष्यात्ति यथावेदर्थवादिनाम् । सम्मतं सर्वतन्त्रेषु गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१
आत्मनोऽरत्निमानेन द्विगुणं परिकल्पयेत् । मध्ये वृद्ध्या तु तत्सूत्रं आमयेत्कीलकोपरि ॥२
चतुष्टयं न्यसेद्वृत्तं मध्यमाध्यमभावतः । कर्णिका प्रथमे वृत्ते द्वितीये त्वथ केशरम् ॥३
तृतीये पद्मपत्राणि चतुर्द्वये षोडशच्छट्टवाः । शोभोपशोभे कुर्याच्च चतुरल्लेष समे शुभे ॥४
तद्विक्षिणां शुलिखेत्पार्वयोः पश्यकद्वयम् । तत्र पद्मयुग्मं कुर्यान्मध्ये चाङ्गमुलनन्तरम् ॥५
शुक्लं पीतं तथा रक्तं कृष्णं लोहितसन्निभ्रम् । सङ्ख्यातं ताम्रपर्णं च श्यामलं चाष्टकं रजः ॥६

चाहिए ॥१८। उस अर के समस्त भाग को पीत वर्ण, मध्य और मुख को रक्त वर्ण से सुशोभित करना कहा गया है। इसी को धर्म, अर्थ एवं काम फल प्रदान करने वाला नवव्यूह कहते हैं ॥१९। किसी शूद्र अथवा ब्राह्मण ब्रुव (नाम मात्र का ब्राह्मण) को मण्डल न करना चाहिए; मण्डल का निर्माण प्रायः संगमतीर्थ या देवमंदिरों में ही करना बताया गया है ॥२०। मण्डल की रचना करके जो अग्नि कार्य (हवन) हीन पूरुष उसकी अर्चा सुसम्पादित नहीं करता है, वह प्रत्येक जन्मों में अविद्व हो कर ही जन्म ग्रहण करता है ॥२१

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में मण्डलदेव रचना वर्णन नामक

पहला अध्याय समाप्त ॥१।

अध्याय २

क्रौञ्च के मान का वर्णन

सूत जी बोले—मैं तुम्हें क्रौञ्च का मान बता रहा हूँ, जो वेदार्थवेताओं की सर्वसम्मति से स्वीकृत और सभी तंत्रों में प्रयत्न पूर्वक गोपनीय है ॥१। अपने अरत्नि के मान से उसे दुगुने परिमाण की रचना करके उसके मध्य भाग में वृद्ध्यर्थ उस सूत्र को उसके कील के ऊपर धुमा देना चाहिए ॥२। इसकी भी रचना मध्यम और अध्यमादि भेद से चार भागों में होती है पहले में कर्णिका, दूसरे में केशर, तीसरे में कमल के पत्ते, और चौथे में सोलह दलों की रचना करते हुए उसे चौकोर, शुभ, सम एवं सौन्दर्यपूर्ण बनाना चाहिए उसके दक्षिण अग्रभाग में एवं दोनों पार्श्व भागों में दो पक्षों के निर्माण करके उसके मध्य भाग में एक अंगुल के व्यवधान में चार कमलों की रचना की जाती है ॥३-५। शुक्ल, पीत, रक्त, कृष्ण, लोहित, संख्यात, ताम्रपर्ण, एवं श्याम के भेद से आठ प्रकार का रज (चूर्ण) होता है, जिससे उसकी रचना होती

शुक्लं तण्डुलचूर्णोत्थं पीतं तु निशया^१ स्मृतम् । रक्तं तु निशया प्रोगाच्छङ्खचूर्णादिभावितम् ॥१७
 कृष्णं पुलकादिदन्धं रक्तं पीतास्ययोगतः । कुड्कुमसंभं पाण्डुरं च रक्तश्वेतर्विनिर्मितम् ॥८
 ताप्रवर्णं कुमुखेन श्यामलं बिल्वपत्रजम् । यवगोधूसचूर्णादिधोगेन तु रजः स्मृतम् ॥९
 सर्वरेहामु दिभजेच्छुक्लं मध्ये तु पीतकम् । कर्णिकायां केशरेषु शुभ्रमेव निष्ठतयेत् ॥१०
 पूर्वादिकमयोगेन शुक्लादीनि प्रयोजयेत् । पत्रसन्धौ तु विभजेद्वन्नः सेकान्तरकमाद् ॥११
 ततः षोडशपत्रेषु पूर्वादिकमतो भवेत् । शुक्लं पीतं तथा ताप्रं ततः सङ्ख्यातमेव च ॥१२
 श्यामलं कुड्कुमाभं च रक्तं शुक्लं च कृष्णकम् । पीतं ताप्रं च सङ्ख्यातं श्यामं कुंकुमरक्तकम् ॥१३
 एवं दद्यादिद्वजः पूर्वे ईशानान्तं विभावयेत् । कौञ्जमूर्धिर्भवेद्रक्तं चतुरड्गुलभानतः ॥१४
 तुण्डभागे भवेत्पीतं ग्रीदायां शुक्लमेव च । पुच्छे विंशतिपत्राणि आदौ पञ्च रजः क्रमात् ॥१५
 षड्डग्नुलेष्वण्डभागे पीतेन परिकल्पयेत् । ग्रीवायां शुक्लरजसा भावितायां विशेषतः ॥१६
 तत्र पीतादिकं लेख्यं पूर्वोक्तं च यथा भवेत् । शुक्लादिकं प्रदद्यात् पात्रेष्वेकैकशः पृथक् ॥१७
 चतुरड्गुलके पादे जानोरुद्धर्वे तु पीतकम् । अःस्तात् भवेद्रक्तं तदेव चतुरड्गुलम् ॥१८
 द्विघड्गुलेन भवेच्छयाममड्गुलीष्वपि विन्यसेत् । एवं पक्षद्वयेनापि लिखेच्छुक्लं विभावयेत् ॥१९
 पदे शुक्लं चाइगुलीषु रक्तं श्यामेन भावयेत् । पूर्वपञ्चमदिग्भागे शुक्लं स्वाद्वारदेशतः ॥२०

है ।६। चावल के चूर्ण से शुक्ल वर्ण, हरदी से पीतवर्ण, हरदी मिश्रित शंख के चूर्ण से रक्त वर्ण, पुलकादिदन्ध श्यामवर्ण और उसी में पीतवर्ण (हरदी) मिला देने से रक्त वर्ण एवं रक्त तथा भेत मिश्रित से कुंकुम के समान पाण्डुर वर्ण, कुमुख से ताप्रवर्ण, बेल के पत्ते से श्यामल वर्ण बनाया जाता है । और जवा तथा, गेहूं के मिश्रित चर्चे से रज बनता है ।७-९। समस्त रेखाओं को शुक्लवर्ण मध्य भाग में पीत वर्ण, एवं कर्णिका और केशरों को शुभ्रवर्ण से सुशोभित करना चाहिए ।१०। पूर्वादि दिशाओं के क्रम से शुक्ल आदि वर्णों (रंगों) का प्रयोग करना चाहिए तथा पत्रों के संधियों में एक-एक के व्यवधान में रज ही रखना बताया गया है ।११। उपरात सोलह पत्तों में पूर्वादि के क्रम से शुक्ल, पीत, ताप्र, सङ्ख्यात, श्यामल, कुंकुम की भाँति, रक्त, शुक्ल, कृष्ण, पीत ताप्र, सङ्ख्यात, श्याम, कुंकुम की भाँति रक्त वर्ण होने चाहिए ।१२-१३। इस प्रकार ब्राह्मणों को चाहिए कि पूर्व से ईशान पर्यंत सौन्दर्य पूर्ण रचकर कौचंक के मूर्धा (शिर) भाग में चार अंगुल के प्रमाण रक्त वर्ण से सुशोभित करके मुख भाग में पीत, ग्रीवा (गले) में शुक्ल वर्ण से सुसम्पन्न करे और उसके पूँछ में बीस पत्ते लगाये जिसमें आदि के पाँच क्रमशः रज (चूर्ण) द्वारा सौन्दर्य पूर्ण किये जाते हैं ।१४-१५। उसके अंडभाग छः अंगुल प्रमाण में पीत वर्ण से तथा ग्रीवा शुक्ल रज (चूर्ण) से सुशोभित होते हैं ।१६। उसमें पीत आदि वर्ण इस प्रकार रखने चाहिए जिससे वह पूर्वोक्त कथनानुसार दिखाई पड़े, पत्तों में पृथक्-पृथक् क्रमशः शुक्ल आदि वर्णों के भी प्रयोग होने चाहिए ।१७। चार अंगुल के चरण तथा जानु (घुटने) के ऊर्ध्व भाग में पीत वर्ण और उसके नीचे चार अंगुल में रक्तवर्ण रखने चाहिए ।१८। दो-दो अंगुल प्रमाण की श्यामल रंग की अंगुलियों तथा शुक्ल वर्ण से दोनों पक्षों की रचना बतायी गयी है ।१९। दोनों चरणों में शुक्ल वर्ण, अंगुलियों में रक्त तथा श्याम वर्ण रखकर दरवाजे के पूर्व तथा परिचंच

दक्षिणोत्तरतश्चैव रक्तवर्णं विनिर्दिशेत् । महाकौञ्चमिदं ज्ञेयं मध्यकौञ्चमिदं शृणु ॥२१
 कनिष्ठं सर्वज्ञेषु दिद्यानां सप्तनुतमस् । अथापरं प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रमतं क्रमात् ॥२२
 रक्तपीतं रक्तपीतैः कुर्यात्पुच्छचतुष्टयम् । पूर्वादिक्रमयोगे तु पद्मान्ते धरणीतले ॥२३
 मुलिखेन्नूलसंलग्नं बहिञ्कोणचतुष्टयम् । कनिष्ठेऽप्यकुलं कुर्यात्पुच्छं कुर्याच्चतुर्विधम् ॥२४
 त्रिवृतं वैष्येत्प्रधात्सितरक्तासितैः क्रमात् । दृष्टं जन्मशतोदभूतं पापं नाशयते ध्रुवम् ॥२५
 पीतं वा विलिखेद्विप्रा नश्यन्ति सकलापदः । अन्तश्चक्रं बहिञ्चक्रं क्षेत्रे च प्रतिदर्शनम् ॥२६
 तस्य कल्पशतोदभूतं पापं नाशयते ध्रुवम् । मयूरं वृषभं चैव सिंहं क्रौञ्चं च वै कपिम् ॥२७
 प्रमादाद्वा गृहे क्षेत्रे वृक्षाग्रे चापि भूमे द्विजाः । उत्थाय वदनं कुर्याद्व्रह्महत्याशतं दहेत् ॥२८
 पोषणात्कीर्तिसप्तमोति दर्शनात्पापविच्युतिः । दर्शनाद्वर्धते लक्ष्मीरायुवृद्धिश्च जायते ॥२९
 मयूरो ब्रह्मणो मूर्तिवृषभश्च सदाशिवः । सिंहे च सम्भवेद्वृगा वैष्णवो विधिरुच्यते ॥३०
 क्रौञ्चो नारायणो देवो आद्विष्टपुरसुन्दरी । कलिका कृष्णव्याघ्रश्चलक्ष्मीश्चित्रकपोतकः ॥३१
 स्नातः पश्यति प्रत्यक्षिणी ग्रहोषो न जायते । तस्मात्प्रयत्नतो मूत्वा धरयेत्पोषयेदगृहे ॥३२
 अतः परं प्रवक्ष्यामि मण्डले मण्डलेष्वपि । रजोद्व्यप्रमाणं च यशोकं यत्नवर्जनम् ॥३३
 तण्डुलोत्थं यवोत्थं वा वज्यं मकररोपणम् । यद्वात्यश्रावणे जातं हैंगुलं गन्धकं तथा ॥३४

भाग में शुक्ल वर्ण रखना चाहिए । २०। दक्षिण और उत्तर भाग में रक्तवर्ण से सुशोभित करने पर उसे महाकौञ्च के नाम से कहा जाता है । मध्य कौञ्च भी बता रहा हूँ सुनो ! जो समस्त यज्ञों के कनिष्ठ विद्याओं में श्रेष्ठ सातवाँ और सभी तंत्रों में स्वीकृत एक या (द्वारे) के समान है (बता रहा हूँ) । २१-२२। रक्त और पीत वर्ण से उसकी चार पूँछें लाल-पीली बनानी चाहिए । जो पूर्वादि दिद्याओं के क्रम से पृथिवी पर पत्रों के अंत में रहती है । २३। मूलभाग से मिले हुए बाहर के चार कोने भी सौन्दर्य पूर्ण बनाने चाहिए । कनिष्ठ में आठ कुल (समूह) पंच में चार प्रकार की रचना होती है । २४। पश्चात् क्रमशः श्रेत रक्त एवं छाण इन तीनों रंगों से तीन वृत्तों को आवेष्टित करके उसकी सौन्दर्य पूर्ण रचना होती है, जिसके दर्शन मात्र से सैकड़ों जन्म के संचित पाप समूह निश्चित नष्ट हो जाते हैं । २५। विप्रवृन्द ! उसकी पीत वर्ण से रचना करने से सम्पूर्ण आपत्तियाँ सान्त होती हैं । एवं भीतरी तथा बाहरी चक्र के निर्माण तथा क्षेत्र में उन प्रत्येक के दर्शन करने से सैकड़ों कल्पों के जन्माजित पाप निश्चित नष्ट होते हैं, द्विजगण ! मयूर, वृषभ, सिंह, क्रौञ्च और कपि को प्रमादवश घर, क्षेत्र अथवा वृक्ष के अग्र भाग पर स्थित खकर उन्हें उठकर बद्ना करने से सैकड़ों ब्रह्म हत्या के पाप भस्म हो जाते हैं । २६-२८। उनके भाषण करने से कीर्ति, दर्शन से पाप-नाश, तथा लक्ष्मी और आयु की वृद्धि होती है । २९। मयूर, ब्रह्म की मूर्ति, वृषभ (बैल) सदाशिव की मूर्ति, सिंह में द्वृगा की मूर्ति प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है, यह वैष्णव विधान कहा जाता है । ३०। क्रौञ्च, नारायण व, बाघ, त्रिपुर सुन्दरी, काले वर्ण के बाघ, कालिका, लक्ष्मी चित्र विचित्र वर्ण के कपोत (कबूतर) के दर्शन, स्नान के उपरांत प्रतिदिन करने से ग्रहदोष नहीं उत्पन्न होते हैं, इसलिए अपने घर में इन्हें रख कर प्रयत्न पूर्वक पोषण करना चाहिए । ३१-३२। इसके उपरांत मंडल तथा मण्डलों में रज (चूर्ण) बनाने के लिए कितनी मात्रा में द्रव्य (जवा आदि) का रहना आवश्यक होता है मैं बता रहा हूँ सुनो ! चावल, जवा के रज चूर्ण, इसके लिए प्रशस्त हैं, पर वे मकर की संक्रान्ति में

हृदितालं सुभद्रं च सदा विद्धनं विवर्जयेत् । हैमन्तिकोद्भवं यच्च सितपाषाणमेव च ॥३५
 काञ्चन्याश्र प्रभेदं यच्छस्तं शुक्लगुणं द्विजाः । शेषलिवृत्तं निशाया अतसीकुसुमानि च ॥३६
 किंशुकस्य च पुष्पाणि शस्तं पीतं गुणं भवेत् । नागजं गैरिकं चैव कुसुमभक्तुमानि च ॥३७
 कुशीतं गुडकं चैव मञ्जिष्ठां पञ्चरङ्गकम् । विजयापत्रकं चैव बिल्वपत्रं तथैव च ॥३८
 पुनर्नवाणाः पश्चं च केशरस्य बक्स्य च । कृष्णपाषाणकं चैव कृष्णाभ्रं समयूथकम् ॥३९
 नागपाषाणकं चैव पुष्पाणं दग्धपञ्चकम् । शङ्खचूर्णं लोहविष्ठां नागविष्ठां च दर्जयेत् ॥४०
 कर्पूरं कुइकुमं चैव रोचनारोदनां श्रद्धेत् । यदशालीदकैर्भिन्नं शुक्लं च कारयेत्तुधीः ॥४१
 लक्षां च यदि गृह्णीयात्तद्भजित्वा^१ प्रदापयेत् । आकाशं पृथिवीं चैव भौमं रानं तथा शनी ॥४२
 धरणीं सदनस्थाने पञ्चवाय विभजेद्द्विः । पद्ममुल्लिख्य प्रथमं कर्णिकां तदनन्तरम् ॥४३
 तर्जन्यमध्यपूर्वोत्तं विभजेद्वा समाहितः । तर्जन्यङ्गुष्ठयोगैर्वा तृणमारभ्य यद्भवेत् ॥४४
 तृणमारभ्य सामान्ये शत्रो वा मध्यमादितः । राक्षसादिग्रतिष्ठायां ग्रहपक्षेन्निमादितः ॥४५
 अङ्गुल्यग्रे च विभजेत्सर्वकामार्थसिद्धये । प्रतिष्ठायां ग्रहमखे काम्येषु परिवर्जयेत् ॥४६
 सुभद्रं मण्डलं वक्ष्ये शुभद्रं शुभमादिशेत् । अतः सुभद्रमुद्दिष्टं स्वर्गमोक्षप्रदायकम् ॥४७
 सार्धहस्तेन मानेन कुर्यान्मण्डलमुक्तमम् । चतुर्विंशाङ्गुलैः पूर्णं सर्वत्र हस्तमादिशेत् ॥४८

बोये न गये हों, बाल्य श्वावण में उत्पन्न हिंगुल (रक्त वर्ण के द्रव्य व पदार्थ) गंधक, हरताल, एवं सुभद्र विघ्नकारक होने के नाते सदैव इनके त्याग आवश्यक होते हैं । हैमन्तक्रतु-कालीन उत्पन्न ऐतिपाषाण (पत्थर) काञ्चनमय पाषाण के भेद जो प्रशस्त एवं शुक्लवर्ण के हों तथा द्विजगण ! शरीफा, हल्दी, अतसी (अलसी) के पुष्प, पलाश पुष्प पीतगुण प्रशस्त बताये गये हैं पर्वतीय ऊँचाई सुवर्ण, कुसुम के पुष्प, कुशीत, गुडक, मजीठ, विजया, बेल, गदहपुन्ना, केशर, और वक के इन पाँचों के पत्ते, कालापत्थर, कालाक्रम, समयूथक, नाग पाषाण, पुन्नाग, दग्धपञ्चक, शंख के चूर्ण, लोहे तथा शीशे के चूर्ण त्याज्य हैं । ३३-४०। कपूर, दुंकुम, रोचना, जवा और चावल के चूर्ण से पृथक् किसी अन्य वस्तु से उसे शुक्ल वर्ण बनाना चाहिए, विद्वान् को यदि लाक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता हो, तो उसे भूतकर ग्रहण कर सकते हैं । आकाश, पृथिवी, भौम, राम, शनी, इन पाँच के निमित्त पृथिवी के बाहरी भाग में विभाग करना चाहिए । पहले कमल का निर्माण करके पश्चात् उसकी कर्णिका बनानी चाहिए । ४१-४३। तर्जनी एवं मध्यमा के क्रम से सावधान होकर विभाजन करे, उसी भाँति तर्जनी और अंगूठे के द्वारा किसी तृण से उसके मध्यम भाग की प्रथम रचना करनी चाहिए, यह विधान राक्षसों आदि के प्रतिष्ठा में कहा गया है, और ग्रहों के हवन में प्रथम अग्नि से प्रारम्भ किया जाता है । ४४-४५। यह यज्ञों में समस्त कामनाओं के सिद्ध्यर्थ अंगुली के अग्रभाग से रचना की जाती है, काम्य कर्मों में नहीं । ४६। शुभदायक सुभद्र नामक मण्डल विधान, बता रहा हूँ, जो स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करता है । ४७। डेढ़ हाथ का उत्तम मण्डल बनाना चाहिए, सभी स्थान चौबीस अंगुल के ही हाथ (मान) के होते हैं । ४८। सहस्रों के मध्य में भी कर्ता के ही

कर्तुंमध्यसहस्रस्य मध्यमा मध्यपर्वणि । मध्यमा दीर्घभानेन मानाइगुलस्ति स्मृतम् ॥४९
 रेखाद्वयान्तरं यच्च सूलरेखां न चाश्रयेत् । वृद्धाइगुण्ठनखद्वन्द्वं मानाइगुलमथापि वा ॥५०
 मध्ये निबध्य शंकुं च मुष्टिबाहुप्रमाणतः । त्रिवृतं कायरेन्मध्ये ज्येष्ठोत्तरकनीयसम् ॥५१
 प्रकल्प्य कर्णिकादीनि मध्ये चाष्टदलं लिखेत् : बहिर्श्वार्कदलं कुर्याद्विर्गनां क्रमदेण तु ॥५२
 पञ्चमं श्वेतवर्णेन इहिः कुर्यात्तिवेष्टनम् । सितपीतारुणं कुर्यात्पश्चाद्वैगुलान्तरे ॥५३
 वेष्टयेच्छुक्लवर्णेन मध्ये कल्पलतां लिखेत् । सुभद्रं नण्डलात्पूर्वं सर्वतोभद्रकं शृणु ॥५४
 सर्वकर्येषु यज्ञेषु सर्वकल्प्यणमानुयात् । मण्डलं सर्वतोभद्रं सर्वयज्ञेषु पुष्टिदम् ॥५५
 साधकानां हितार्थाय ईश्वरेणैव भास्तितम् । चतुर्विशत्यइगुलेन हरतः प्रथमतो भवेत् ॥५६
 कोणे सूत्रद्वयं दद्यान्मध्ये सूत्रद्वयं पुनः । ततो मत्स्यान्विरचयैत्कर्णे सूत्राणि साधकः ॥५७
 चतुः सूत्रं पातयेच्च पूर्वपरिविभागतः । पुनर्दधायाच्चतुःसूत्रं कर्णसूत्रं पुनर्ददेत् ॥५८
 शतद्वयपदं यावत्पृष्ठचाशाधिकं तथा ! पातयेच्च तथा सूत्रमेवं सप्तदशं भवेत् ॥५९
 ऊर्ध्वपद्मक्त्यां पदयुगं चाद्ये पदचतुष्टम् । द्वारपार्श्वे भवेद्यावद्वन्तपद्मक्त्या पदत्रयम् ॥६०
 रेखां सर्वत्र शुक्लेन रचयेद्यनियोत्तनः । पद्मजं शुक्लवर्णेन वैष्णवो यात्कर्मणि ॥६१
 शक्तियोगे भवेद्रक्तं शैवे पीतं विनिर्दिशेत् । प्रतिष्ठासु शुक्लमेव प्रशस्यते ॥६२

अंगुल्यादिमान ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उसके मध्यमा अंगुली के मध्यपर्व (गाँठ) द्वारा उसके दीर्घमान को ही अंगुल मान बताया गया है । ४९। दोनों रेखाओं के मध्य भाग को मूल रेखा के आश्रित न रखना चाहिए । वृद्ध के अँगूठे के दोनों नख एवं अंगुल भी मान के रूप में ग्रहण किये जाते हैं । ५०। मुट्ठी बँधी हाथ के प्रमाण से मध्यभाग में एक शंकु (कील) स्थित कर तिवृत् (तीन ऊँची नीची रेखा) बनाये, उस समय कनिष्ठा और उसकी बड़ी अंगुली भी वहीं स्थित रहनी चाहिए । कर्णिका आदि की रचना के उपरांत मध्य भाग में अष्टदल (कमल) की रचना करके बाहरी भाग में भी क्रमशः रंगों द्वारा अर्क दल का निर्माण करे । ५१-५२। पाँच की रचना इवेत वर्ण द्वारा एवं बाहरी भाग में तीन प्रकार के वेष्टन श्वेत, पीत और रक्त वर्ण के द्वारा पश्चात् चार अंगुल व्यवधान में अद्यिष्ठित कर इवेत वर्ण द्वारा कल्पलता की रचना करे । जब मैं (तुम्हें) सर्वतोभद्र मण्डल बता रहा हूँ, सुनो । ५३-५४। सर्वतोभद्र मण्डल समस्तं कार्यं एवं यज्ञों में सम्पूर्ण कल्प्यण और पुष्टि प्रदान करता है । ५५। साधकों के हितार्थ इसे ईश्वर (शिव) ने स्वयं बताया है । इसमें सर्वप्रथम चौबीस अङ्गुल का हाथ ग्रहण करना चाहिए । साधक सर्वप्रथम कोने के भाग में दो सूत्र फिर मध्यभाग में दो सूत्र से अंकित कर कर्णभाग में मत्स्य और सूत्रों की रचना करनी चाहिए । ५६-५७। पूर्वपरिविभाग करके चार सूत्र से दो बार अंकित कर पुनः कर्णसूत्र से अंकित करे । ५८। इस प्रकार उसमें दो सौ छप्पन कोष्ठ होते हैं । और सत्रह बार सूत्र से अंकित किया जाता है । ऊपरी भाग तथा आदि में चार स्थान और द्वार के पार्श्व भाग में बत्तीस कोष्ठ होते हैं जो तीन स्थानों में बनाये जाते हैं । ५९-६०। यज्ञ के कर्मों में वैष्णव को सर्वत्र श्वेत वर्ण की रेखा एवं कमल का निर्माण करना चाहिए । ६१। शक्ति की उपासना में रक्तवर्ण, शैवयाग में पीत वर्ण एवं सभी प्रतिष्ठा कर्मों में शुक्ल वर्ण प्रशस्त बताया गया है । ६२। चीयाई भाग में मतानुसार पीत वर्ण की कर्णिका का निर्माण,

पीतेन कर्णिका कर्त्त्या चतुभिर्गेन मानतः । शुभं चकोरावस्थाने तापयित्वा विचक्षणः ॥६३
 कर्णिकामूलमारम्भ्य रेखाः षोडश कल्पयेत् । रेखानूले भवेच्छुक्तं मध्ये रक्तं निपातयेत् ॥६४
 अग्रे पीतं भवेदेवं कृत्वा पद्मकजवेष्टनम् । शुभ्रवर्णेन तद्व्यात्पीतवर्णेन सर्वतः ॥६५
 मध्ये रक्तं भवेत्तच्च एवं षोडशकल्पयेत् । कोणेषु रक्तं द्व्याच्च पद्मं क्षेत्रेषु निर्दिशेत् ॥६६
 शुक्लेन पीठगात्राणि पीठकोणे पदव्रयेत् । पीतवर्णेन रचयेद्विद्विधा पद्मिकतद्वये तथा ॥६७
 शुक्लेन रचयेत्पादौ पुनः पीतादिवर्णकैः । यित्रं सुशोभनं कार्यं तत्र कल्पतां न्यसेत् ॥६८
 मानं कल्पतायास्तु दद्यद्यगुलं परिकीर्तितम् । द्वे द्वे शस्तं च भ्रमणं शङ्खार्वतक्रमात्मव्यम् ॥६९
 ग्रन्थौग्रन्थौ पुष्पफले नानावर्णेन भावयेत् । नानापशुगणैर्युक्तं नानापश्चिगणैर्युतम् ॥७०
 वैष्णवे गारुडं शस्तं शैवे कीशवृषं लिखेत् । शक्ते व्याघ्रं तथैशो च शरभं हरिमालिखेत् ॥७१
 शोभां पीतेन रचयेद्दुपशोभां च पीतकैः । कोणेषु कृष्णादर्जेन बहिः स्याद्वेष्टनत्रयम् ॥७२
 शुक्लपीतारुणैः कार्यं मण्डलं स्पान्मनोरमम् । सर्वतोभ्रमपरं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥७३
 रङ्गजानमयं शुद्धं धर्मकाभार्थदायकम् । चतुरब्दं समं कृत्वा दिग्भ्यो द्वादशधा द्विजाः ॥७४
 पातयेत्तत्र सूत्राणि कोष्ठानां दृश्यते शतम् । चतुश्चत्वारिंशताद्यं पश्चात्पट्टिशदम्बुजम् ॥७५

जो शुभ एवं चकोरावस्थान में तप्त की गई हो, बुद्धिमान् को करना चाहिए । ६३। कर्णिका के मूल भाग से आरम्भ कर उस प्रकार की सोलह रेखाओं के निर्माण करने चाहिए जो उसके मूल भाग में शुक्ल वर्ण, मध्यमभाग में रक्तवर्ण, एवं अग्रभाग में पीतवर्ण से सुरास्जित हो। इसी भाँति कमल के आवेष्टन करना बताया गया है। सोलह की ही रचना भी बतायी गयी है जिनके मूल भाग में श्वेत वर्ण, मध्य में रक्त वर्ण और समस्त भाग में पीत वर्ण सुशोभित रहता है। कोण भाग में रक्त वर्ण से सुशोभित करे क्षेत्रों में इसी भाँति के मान के निर्माण बताये गये हैं । ६४-६६। पीठासन के समस्त भाग शुक्ल वर्ण द्वारा और उसके कोण के तीन स्थानों में पीतवर्ण से दो भाँति की रचना दो व्यक्तियों में करनी चाहिए । ६७। शुक्ल वर्ण से दोनों चरण तथा पीले आदि वर्णों से सौन्दर्य पूर्ण चित्र की रचना करके वहाँ कल्पताओं को सुशोभित करना चाहिए । ६८। कल्पताका मान दो अङ्गुल का बताया गया है, जिसमें शंखादर्त (शंख की भाँति) तीन-तीन रेखा दो बार की गयी हो । ६९। उसके प्रत्येक ग्रन्थियों (गाठों) में भाँति-भाँति के पुष्प-फल सुरास्जित करके अनेक भाँति के पशुणग और पक्षियों से उसे सुशोभित करना चाहिए । ७०। विष्णु भाग में गरुड़ की प्रतिमा शिव यज्ञ में कीश वृष्ट, शक्ति (दुर्गा) यज्ञ में वाघ, एवं ईश के यज्ञ में शंखभ हरि की मूर्ति प्रशस्त बतायी गयी है । ७१। उसके बाहरी भाग को पीतवर्ण प्रान्त भाग भी पीतवर्ण और कोण भागों को काले रंग से सौन्दर्य पूर्ण करके उसके तीन वेष्ठन बनाने चाहिए। इस प्रकार उस मण्डल को शुक्ल, पीत तथा रक्त वर्ण द्वारा अत्यन्त मनोरम बनाना बताया गया है। इसे ही समस्त सिद्धि प्रदान करने वाला दूसरा सर्वतोभ्रद कहा गया है। जो सम्पूर्ण ज्ञानमय, शुद्ध और धर्म, अर्थ, एवं कामनाओं को सफल करता है। द्विजवृन्द ! प्रत्येक दिशाओं में क्रमशः चौकोर कोष्ठ बनाने के लिए बारह बार सूत्रों को उठाना और रखना पड़ता है, जिससे सौ कोष्ठों का निर्माण हो जाता है। चौवालिस आदि में तथा छत्तीस कोष्ठ पीछे भाग में रहते हैं । ७२-७५। पीठासन पर कोष्ठों के निर्माण करते समय पंक्तियों से वीथिका (गली की

क्रोळं प्रकल्पयेत्पीठं पङ्क्त्या चैवात्र वीथिकाम् । द्वारशोभे श्यापूर्वमुपशोभं च दृश्यते ॥७६
 अवशिष्टैः पदैः कुर्यात्सद्गुस्तन्त्राणि मन्त्रवित् । विदध्यात् पूर्ववच्छेषमेवं वा मण्डलं भवेत् ॥७७
 पूर्वोक्तमण्डले विद्वन्धरणीसदनं बहिः । मध्ये कल्पलता कार्या बहिष्कोणेषु सत्तमाः ॥७८
 गुलालीतूर्यवर्णेन महामत्त इति स्मृतः । शोभोपशोभे शोभागां कुयडै मण्डलं भवेत् ॥७९
 एतद्वि सर्वतोभद्रं राशियुक्तमतः परस् । शतपञ्चं वज्रनाभं बिम्बनाभं सहस्रकम् ॥८०
 गजाहं च गजाकारं मध्ये मु समलइकृतम् । चतुभ्रन्दे चन्द्रबिम्बचन्द्रकान्तमुदाहृतम् ॥८१
 बहिर्द्विशभिः सूर्यैः सूर्योक्तान्तं प्रकीर्तिम् । शेखरी त्रिपुटं चैव शतपञ्चं च प्रकल्पात् ॥८२
 सहस्रमेव विप्रेन्द्राः पद्मान्ते यस्य स्वस्तिकम् । स्वस्तिकं तद्वेदिप्राः पुष्करं वज्रसम्मतम् ॥८३
 चिन्तामणिं कुङ्कुमांशं खातं च हरिवल्लभम् ! पञ्चसिंहासनस्थं च पञ्चसिंहासनं विदुः ॥८४
 तद्वृष्ट्यासनं ज्ञेयं शिखिरूपं शिखिध्वजम् । नार्ससहं पद्मगर्भं कपोतास्यं तथा भवेत् ॥८५
 गारुडं मेरुगर्भं च नीलकण्ठं कराकृतिम् । शतक्रतुगजारुदं श्रीबिम्बनवसूत्रकम् ॥८६
 अष्टाब्रह्ममष्टकाणाद्यं बहिः पद्मवनं कृतम् । कामद्वयेन पुष्टिं सहस्रं पद्मवेष्टितम् ॥८७
 अष्टगर्भं पङ्कजं च श्रव्यं तत्परिकीर्तितम् । अष्टपद्माणि वै मेरुं सुमेरुं तद्विपर्यये ॥८८

भाँति) की भी रचना हो जाती है । सौन्दर्यपूर्णी दरवाजे की प्रान्त भूमि भी मनोरम दिखायी पड़ती है । ७६। मन्त्रवेत्ता को शेष स्थानों में तन्त्रों की रचना पूर्व की भाँति करनी चाहिए, इस प्रकार मण्डल की रचना बतायी गयी है । ७७। विद्वन् ! पूर्वोक्त मण्डल के बाहरी भाग में पृथ्वी गृह, मध्य में कल्पलता, और उसका बाहरी कोण भाग चौथे वर्ण गुलाली से सुसज्जित किया जाता है, उसे महामत्त कहते हैं । उसके भीतर, बाहर एवं प्रान्त भागों को मनमोहक सौन्दर्य प्रदान करने से वह मण्डल बन जाता है, इसे ही राशि युक्त सर्वतोभद्र कहते हैं, इसके अतिरिक्त शतयम, वज्रनाभ, बिम्बनाभ एवं सहस्र नामक मण्डल भी बताये गये हैं । ८८-८०। गजनामक मण्डल की रचना हस्ती की भाँति ही होती है, उसके मध्य भाग पूर्ण समलंकृत रहते हैं, चन्द्रबिम्ब नामक मण्डल में चार चन्द्र की रचना होती है, उसके मध्य भाग पूर्ण समलंकृत रहते हैं, चन्द्रबिम्ब नामक मण्डल में चार चन्द्र की रचना होती है, उसे चन्द्रकान्त भी कहते हैं । ८१। बाहरी भाग में बाहर सूर्यों की रचना करने से सूर्योक्तान्त मण्डल होता है । इसी भाँति क्रमशः शिखर वाले, त्रिपुट, और शतपत्रानामक मण्डल बताये गये हैं । ८२। विप्रेन्द्रवृन्द ! इसी प्रकार सहस्र नामक मण्डल, जिस कमल में प्रान्त भाग में स्वस्तिक का अंक सुशोभित हो वह स्वस्तिक और पुष्कर की भाँति वज्र नामक मण्डल भी बनाया जाता है । ८३। चिन्तामणि, जिसमें विशेष कुंकुमांश रहता है, खात (गढ़े वाला), हरिवल्लभ, पाँच सिंहासन वाला, पंच सिंहासन, उसी भाँति का वृषासन, मौर की भाँति शिखिध्वज, नार्सिंह, पद्मगर्भ, तथा कपोतास्य (कबूतर की भाँति मुख वाला) आसन बताया गया है । मेरुगर्भ गरुड़, मनुष्य की आकृति की भाँति नीलकण्ठ, एवं इन्द्र की ऐरावत हाथी पर स्थित नवसूत्र धारण किये भी बिम्ब नामक मण्डल बनाया जाता है, जिसमें आदि भाग में अष्टकोण और बाहरी भाग में कमल समूह की रचना कर दो कामनाओं से संतुष्टि रहता है । सहस्रनाभ कमण्डल, कमलों से घिरा रहता है । त्रिकोण गर्भित कमल को ही त्रिकोण कहा गया है । उसी भाँति आठ पत्ते वाले को मेरु और

महामहोस्पृष्ठं शतत्रयच्छदैवृतम् । छिद्व्यक्तिं प्रबद्ध्यामि यथा मानेन भो द्विजः ॥८९
 चमु दिग् दिंशकैश्चैव चत्वारिं शत् शतार्धकम् । दण्डश्ववणसम्पश्चमाकाशं च सुसम्मितम् ॥९०
 शतविंशाधिकं चैव दलानि तदनन्तरम् । शुक्लरत्नं चाष्टवाणीबिम्बोष्ठं परिपूरयेत् ॥९१
 शुक्लेन पञ्चजे तत्र पश्चात्कुर्यात्प्रिवेष्टनम् । शतपत्रमयो वक्ष्ये बिम्बराजेति कथ्यते ॥९२
 स्थण्डिले कुशहस्ते च पूर्ववदेष्टयेत्क्रमात् : असु पञ्चकला पञ्चविंशकं तत्प्रश्नकात् ॥९३
 चत्वारिंशततः पश्चादष्टोत्तरशतं भदेत् । शुक्लं शोणं तथा पीतं इयामशुक्लैरनन्तरम् ॥९४
 विलोमे तत्सन्धीनि शाक्ते शैवे तु षट्पुरम् । वेष्टयेत्पञ्चवर्णं शुक्लादीनि समन्ततः ॥९५
 रक्तपीतैः समास्तीर्य कोणाञ्चुक्लैन पूरयेत् । स्थण्डिले तारहस्तेन अष्टहस्तं प्रकल्पयेत् ॥९६
 यण्डलं बिम्बराजस्य अष्टोत्तरदैवृतम् । वसुपञ्चशक्तिविंशचत्वारिंशच्छतार्ढकम् ॥९७
 अृतुपत्रं सुवृतं स्यादृतयुक्तं सबिल्वकम् । चत्वारिंशद्द्वयं चैव गगनेन समावृतम् ॥९८
 शतं विशाधिकशतं द्विशतं विंशमुत्तमम् । वेष्टनांसे च त्रिशतं प्रक्रमादय वर्धयेत् ॥९९
 लवल्पाभ्यनयो वक्ष्ये सार्हस्तप्रसाणतः : तत्वविशं कल्पयेत् चतुःसूत्राणि पातयेत् ॥१००
 दक्षिणोत्तरतश्चैव तद्वदेव विजानीहि । पीतेन रेतपुःटिता मध्ये शुक्लं विभाव्यते ॥१०१

उससे भेह वाले को सुमेरु एवं तीन सौ दल वाले को महामेरु रुष्ट बताया गया है । विश्रेन्द ! मैं उसके द्विज के मान को भी बता रहा हूँ । ८४-८९। आठ, दश, बीस, चालीस, पचास, साठ, एवं एक सौ बीस, इतने दल शुक्ल वर्ण, रक्त वर्ण और आठ भाँति के वर्णों से सुसज्जित उसके बिम्बोष्ठ भाग की रचना की जाती है । ९०-९१। पश्चात् शुक्ल दर्ण उस कमल का तीन बार आवेष्टित किया (धेर दिया) जाता है । अनन्तर शतमय नामक मण्डल बता रहा हूँ, जिसे बिम्ब राज भी कहा जाता है । ९२। हाथ में कुश लेकर उसे पूर्व की भाँति क्रमशः आवेष्टित करना चाहिए । आठ, सोलह, पच्चीस, चालीस और एक सौ आठ, इतने उसमें दल होते हैं, शुक्लवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण एवं उसके अनन्तर इयाम और शुक्ल वर्णों से वह सुसज्जित किया जाता है । ९३-९४। उसके दल की सन्धियाँ विलोम रीति से बनायी जाती हैं, शाक्त और शैव मण्डल में छः कोष्ठ बनाकर पाँच वर्णों से उसे सौन्दर्य पूर्ण आवेष्टित करके उसके चारों ओर शुक्ल आदि वर्णों से सुशोभित करना चाहिए । ९५। रक्तवर्ण और पीत वर्ण को समान भाग से उस पर रखकर उसके कोण भाग को शुक्ल वर्ण से भूषित करना चाहिए, इस प्रकार स्थण्डिल (भूमि) में विस्तृत आठ हाथ की उसकी रचना की जाती है । ९६। यह बिम्बराज नामक मण्डल आठ, सोलह, बीस, चालीस, और पचास, इतने दलों से मण्डित रहता है । ९७। तीन ऋतुपत्र, सौन्दर्यपूर्ण गोलाकार, वृत्त और विल्वक समेत एवं अस्सी मण्डलों से घिरा रहता है । सौ, एक सौ बीस, दो सौ बीस, एवं आवेष्टित करने के लिए तीन सौ दल, इस प्रकार क्रमशः इसकी वृद्धि की जाती है । ९८-९९। इसके अनन्तर लवल्पाभ (लवली वृक्ष की भाँति आकार वाले) मण्डल की व्याख्या बता रहा हूँ, जिसका आकार प्रकार डेढ़ हाथ का बताया गया है उसमें उन्तीस कोष्ठ होते हैं, उसकी रचना के लिए चार स्थान सूत्रों से अंकित करना पड़ता है । १००। दक्षिण उत्तर में उसके आकार प्रकार की पीतवर्ण द्वारा रचना करते हुए मध्य भाग में शुक्ल

प्रहृष्टेन्नपीतेन मध्ये रक्तं प्रतिष्ठितम् । सर्वा रेखाश्च शुक्लेन पौष्टिके पीतभादिशेत् ॥१०२
 सशान्तिके न योक्तव्यं कामे रक्तं विनिर्दिशेत् । मध्ये तु पङ्कजं रक्तं युग्मे सोमस्य पङ्कजम् ॥१०३
 शुक्लवर्णेन तत्कुर्यात्प्रीतवर्णमुद्भव्य च । ऐशान्यां स्तेत्तरे शागे गुरों पीतं तु पङ्कजम् ॥१०४
 पूर्वस्थां दिशि शुक्रस्य पडकजं शुभ्रवर्णकम् । बारुणे तु शनैः कृष्णं नैर्झत्यां धूब्रवर्णकम् ॥१०५
 राहोः प्रकल्पयेत्तच्च केतोरपि निदोज्जयेत् । वायव्यां दिशि संयोज्य पङ्कजं विलिखेततः ॥१०६
 विलोमे दलसन्धीनि पूरयत्सुविचक्षणः । बहिः पञ्चरजैः कार्यं युवदुर्गविभूषितम् ॥१०७
 पूर्वपश्चिमदिग्भागे शुक्लं स्यादद्वारदेशतः । दक्षिणोत्तरदिग्भागे रक्तमेव प्रशस्यते ॥१०८
 त्रिस्थाने सममध्ये च हावशाइगुलप्रक्रमात् । द्विस्तादावद्गुलेन वर्द्धयेत्तद्विभागतः ॥१०९
 पञ्चाङ्गमण्डलं ज्ञेयं चतुःस्वस्तिकभूषितम् ॥११०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे क्रौञ्चभानवर्णनाम द्वितीयोऽध्यायः । २

अथ तृतीयोऽध्यायः

मूल्यकथनवर्णनम्

सूत उवाच

न कुर्यादक्षिणाहीनं मानहीनं न कारयेत् । अमानेन हतो यजस्तस्मान्मानं प्रशस्यते ॥१

वर्ण से सुशोभित करना चाहिए ॥१०१। ग्रहों के उद्देश्य से मण्डल बनाने में पीत वर्ण का प्रयोग किया जाता है, केवल मध्य भाग रक्त वर्ण से सुशोभित होता है । किन्तु समस्त रेखाएँ शुक्ल वर्ण से सुसज्जित की जाती हैं, और पौष्टिक-कर्मों में पीत वर्ण से वह सुशोभित होता है ॥१०२। शाति-कर्म के अतिरिक्त काम्य-कर्मों में रक्त वर्ण से अलंकृत करना बताया गया है, मध्य में रक्तकमल और युग्म में चन्द्रकमल शुक्ल वर्ण से विभूषित करना चाहिए । उत्तर भाग के ईशान कोण में वृहस्पति के उद्देश्य से पीत कमल की रचना की जाती है ॥१०३-१०४। उसी प्रकार पूर्व दिशा में शुक्र के लिए धबल वर्ण के कमल पश्चिम दिशा में धूएँ के समान कृष्ण वर्ण के शनि, एवं वायु कोण में राहु और केतु की प्रतिमा के लिए कृष्ण वर्ण के कमल की रचना करनी चाहिए ॥१०५-१०६। उसके विलोम में दलसन्धियों को विद्वानों को मनमोहक बनाना चाहिए, उसी भाँति उसके बाहरी भाग में पाँच वर्णों (रंगों) द्वारा जवा के ढुर्ग भी ॥१०७। दरवाजे के पूर्व पश्चिम भाग में शुक्ल वर्ण एवं दक्षिण उत्तर भाग में सौन्दर्यपूर्ण बनाने के लिए रक्त वर्ण प्रशस्त बताया गया है ॥१०८। तीन स्थानों में बारह अंगुल के क्रम से जिसका मध्य भाग समान रहता है, दो हाथ में एक अंगुल की वृद्धि विभागानुसार की जाती है, इस प्रकार चार स्वस्तिकाओं से विभूषित पाँच कमल मण्डल का निर्माण करना चाहिए ॥१०९-११०।

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में क्रौञ्चभानवर्णनामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२।

अध्याय ३

मूल्यकथन का वर्णन

सूत बोले—दक्षिणाहीन और मानहीन यज्ञ कभी न करना चाहिए, क्योंकि मानहीन यज्ञ नष्ट

यस्य यज्ञस्य यन्मानं तत्तु तेनैव योजयेत् । अमानेन कृते सर्वे व्रजं युर्नरकं पुनः ॥२
 आचार्यहोत्रब्रह्माणो विधिज्ञः सहकर्तृकः । यस्य यज्ञे पापकश्च जातिहीनः प्रवेशयेत् ॥३
 अशीतिभिर्वराटैश्च पण इत्येभीयते । तैस्तु षोडशभिर्जयं पुराणं सप्तभिस्तु तैः ॥४
 राजतैश्राष्ट्रभिः स्वर्णं यज्ञादौ दक्षिणा स्मृता । महाराने द्विसौबैर्णं दूषे स्वर्णार्घ्यमेव च ॥५
 त्रुल्यस्यामलकीयतो सुवर्णेकं प्रचक्षते । यकृल्लोके च सौवर्णं लक्षे स्वर्णचतुष्पद्यन् ॥६
 नवने क्षोटिहोने च देवतानां च स्थापने । प्रासादस्य समुत्सर्गं अष्टादशा सुवर्णकाः ॥७
 तडागे पुष्करिण्यां च अर्धार्घ्यं परिकीर्तितम् । महादाने च दीक्षायां वृषोत्सर्गं च सत्तमाः ॥८
 जीवतश्च वृषोत्सर्गं गयाश्राद्वे तथैव च । अवित्तसाध्यमानेन यज्ञं कुर्यात्कलौ युगे ॥९
 दम्पत्योश्च वृषोत्सर्गं मानमेकमुदाहृतम् । बहुभिः क्रियमाणोऽपि याग एको महोत्तमैः ॥१०
 राज्ञः करश्च है चैव दीक्षायां दानकर्मणि । अशीतिरत्तिकं स्वर्णं श्वरणे भारतस्य च ॥११
 ग्रह्यागे प्रतिष्ठायां सुवर्णशतरत्तिकः । लक्षहोसे चायुते च कोटचामेवं विर्धीयते ॥१२
 देवानां ब्राह्मणानां च दानं यस्य प्रकल्पितम् । तस्यैव देयं तदानं साङ्गोपाङ्गं सदक्षिणम् ॥१३
 नानास्य किञ्चिद्दातव्यं सङ्गभङ्गो भवेद्यतः । गृही तु कृत्वा यदानं तदा तस्य क्रणी भवेत् ॥१४

भ्रष्ट कहलाता है, इसीलिए मान की अधिक प्रशंसा की जाती है । १। जिस यज्ञ के जो मान बताये गये हैं, उन्हें उन्ही मानों द्वारा समलंकृत करना चाहिए, अन्यथा उसके सभी मनुष्यों को नरक की प्राप्ति होती है । २। आचार्य, होता, ब्रह्मा, विधान-वेत्ता और यजमान, इतने व्यक्ति यज्ञ के अंग माने जाते हैं । जिस यज्ञ में किसी हीनजाति का पापी मनुष्य प्रविष्ट हो जाता है, उसे अस्सी कौड़ी वाले एक पण का दण्ड बताया गया है । उसीं भाँति के सोलह पण पुराण वाचक और सातपण सुवर्ण या चाँदी यज्ञ में सभी को दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए, उपवन की प्रतिष्ठा में दो पण, कूप के निर्माण प्रतिष्ठा में आधा पण तुलसी और आमलकी याग में एकपण सुवर्ण, गर्भधान में एकपण सुवर्ण, लक्ष मंत्र जप में चार पण सुवर्ण, नवें, कोटि संख्या के हवन, देवताओं की प्रतिष्ठा, और आसाद (मण्डल) के निर्माण-प्रवेश में अठारह पण सुवर्ण दक्षिणा बतायी गयी है । ३-७। सरोवर और पुष्करिणी की प्रतिष्ठा में आधे का आधा तथा सत्तम ! महादान, दीक्षा, वृषोत्सर्ग में भी उतनी दक्षिणा होनी चाहिए । ८। जीवित व्यक्ति के लिए वृषोत्सर्ग एवं गयाश्राद्वे में अवित्तसाध्य यज्ञ करना कलियुग में कहा गया है । ९। दम्पति के वृषोत्सर्ग यज्ञ में एकमान बताया गया है, उसी प्रकार अनेक उत्तम व्यक्ति मिलकर एक यज्ञ का अनुष्ठान भी करें । १०। राजा को कर रूप में देने के लिए दीक्षा दान कार्य एवं महाभारत के श्रवण में अस्सी रत्ती सुवर्ण की दक्षिणा देनी चाहिए । ग्रहों के यज्ञ तथा प्रतिष्ठा में सौरती, लक्षसंख्या, दश-सहस्र संख्या एवं कोटि संख्या की आहुति में भी उतनी ही दक्षिणा का विधान बताया गया है । ११-१२। देवताओं और ब्राह्मणों में जिसके लिए जो दान बताया गया है सांगोपाङ्ग दक्षिणा समेत वह दान उसी को समर्पित करना चाहिए । १३। अनेकों की उपस्थिति में कुछ न कुछ देना ही चाहिए, अन्यथा उस माप द्वारा (दम्पति वियोग) जोड़ी बिछुड़ जाती है । गृहस्य जिस दान को करके नहीं देता है वह उसका क्रणी होता है । १४।

यज्ञेषु होमे यद्द्रव्यं काष्ठमाज्यादिकं च यत् । तन्नायकस्य पूजायां द्रव्यमाहूर्विनिर्मितम् ॥१५
 अनादिदेवतार्चायां पूजास्नानादिकर्मणि । यस्याहूर्णादिकं द्रव्यं तस्य देवस्य तद्द्वेत् ॥१६
 प्रत्यक्षं दक्षिणां दद्याद्यज्ञदानवतादिके । अदक्षिणं नैव कार्यं प्रकुर्याद्भूरिदक्षिणम् ॥१७
 अतो दत्तं पुरा इत्तं दातव्यं दैव सम्प्रति । परस्वोदारबुद्धीनां सा सा हि दक्षिणा भवेत् ॥१८
 इत्तानि विधिवत्पुंसां देशदानानि यानि हि । इस्तीदात्तगवादीनि मनस्ता यानि कहिंचित् ॥१९
 हातव्यान्यपि तान्येव कारयेत्परित्पर्तनम् । एकस्यानेकदानं च ददेत्पश्चिमत्पृथक्पृथक् ॥२०
 वरणं च कदा कुर्यात्तन्त्रे कुर्याच्च दक्षिणान् । रत्नस्य दक्षिणा देया काञ्चनं समुदाहृतम् ॥२१
 काञ्चनस्य भवेद्वौच्यं रौप्ये काञ्चनमुद्दिशेत् । भूमेर्मुमिर्दक्षिणा इयाद्वस्त्रस्य वस्त्रदक्षिणा ॥२२
 पानीयस्य तु पानीयं ब्रीहीणां ब्रीहिदक्षिणा । गजस्य दक्षिणा छागो हृष्वस्य मेष ईरितः ॥२३
 पश्नानां च चतुष्पादा देवस्य देवदक्षिणा । यज्ञो मानस्य षड्भागो द्विगुणः परिकीर्तितः ॥२४
 आचार्यस्यैव भागैकं यजमानः प्रदास्यति । यापकैतु च कलत्राणां भागैकं तदनन्तरतः ॥२५
 पात्राणामृत्विद्वादीनां भागत्रयमुदाहृतम् । सर्वसत्त्वस्य भागैकं स्वल्पं चेच्छिष्टगौरवात् ॥२६
 आचार्याद्यिंशतः कश्चिच्छीणवित्तं समाहरेत् । अमूल्यं वर्गमूल्यं यद्द्वेष्टै दक्षिणोत्तमा ॥२७

यज्ञों में हवन के लिए काष्ठ, एवं धी आदि जो वस्तु नियमित होती है, वे ही वस्तुएँ उसके अधिनायक देव के पूजा में भी बतायी गयी है । १५। अनादि देवता के पूजा विधान में पूजा, स्नान आदि कर्मों के लिए जो उत्तम वस्तु कही गयी है वही वस्तु उस देव की प्रधान वस्तु है । १६। यज्ञ, दान, व्रतादि कर्मों में प्रत्यक्ष दक्षिणा देने का विधान कहा गया है, बिना दक्षिणा के उसका प्रारम्भ कभी भी न करना चाहिए, अपितु अधिकाधिक दक्षिणा देने का प्रयत्न करना चाहिए । १७। इसलिए जो पहले (मानसिक) दे दिया गया अथवा इस समय जो देने के लिए प्रस्तुत है, या दिया जायगा, उदार बुद्धिमान् ब्राह्मणों की वही वहाँ दक्षिणा के रूप में होती है । १८। देवों के नियमित विधान पूर्वक दान किये गये दासी, दास, गोआदि एवं उस वस्तु का मानसिक दान किया गया हो, वे सभी पुरुषों को प्रदान करने चाहिए । उसका परिवर्तन भी किया जा सकता है, जिस प्रकार किसी एक ही व्यक्ति को अनेक भाँति के दान कोई प्रदान करता है । १९-२०। वरण किस समय करना चाहिए ? दक्षिणा तन्त्र विधान द्वारा प्रदान करना चाहिए । रत्न की दक्षिणा में सुवर्ण का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि सुवर्ण द्वारा चाँदी प्राप्त की जा सकती है, और सुवर्ण चाँदी में ही प्रविष्ट होकर सुशोभित होता है । इसी प्रकार भूमि के कार्य में भूमि की दक्षिणा वस्त्र की दक्षिणा पान करने योग्य कार्यों में किसी पेय की दक्षिणा और अन्न में अन्न की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । उसी भाँति गज के कार्य में बकरी की दक्षिणा, अशव के नियमित भेंड की दक्षिणा, पशुओं के उद्देश्य से चौपायों की दक्षिणा, एवं देव-कार्यों में देव दक्षिणा देना बताया गया है । (किसी) मान के छठे भाग के दुगुने को यज्ञ कहा जाता है । २१-२४। यजमान को चाहिए कि यज्ञ के संभार का एक भाग दक्षिणा रूप में आचार्य को प्रदान करे उसके अनन्तर अपने कलत्रों (स्त्री आदि परिवारों) के पाप के प्रायश्चित्त रूप में भी एक भाग । २५। क्रत्विक् (यज्ञ कराने वाले) आदि को तीन भाग की दक्षिणा एवं इतर सभी लोगों के लिए एक अल्प भाग प्रदान करना चाहिए । २६। आचार्य आदि के अंश में से एक अल्प मूल्य की वस्तु जो अमूल्य होती हुई वर्गों में श्रेष्ठ मूल्य रखती हो, ग्रहण करना चाहिए, वही सर्वश्रेष्ठ

मानाशङ्कौ तु यज्ञानां यद्देयं यज्ञसिद्धये । देवता पुस्तकं रत्नं गावो धान्यं तिलास्तथा ॥२८
 न मेरुफलपुष्पाणि देवान्येतानि सर्वतः । चेतुश्वकाडिकतो यस्तु सान्द्रो वृत्तो जनार्दनः ॥२९
 देवताप्रतिमाद्यं च शिरोनाभिस्तथैव च । श्वेतलिङ्गं रत्नलिङ्गमिन्द्रनीलादिकं च यत् ॥३०
 दक्षिणावर्तशङ्खं च हरिवंशस्तथा खिलः । कपिलो नीलवृषभः सोमधान्यं तथैव च ॥३१
 अमूल्यान्याहुरेतानि दत्त्वानन्तकलानि च । स्वर्णपादो भवेन्मूल्यं शालग्रामस्य दक्षिणा ॥३२
 क्षुद्रनिङ्गे स्वर्णमूल्यं पादार्थं श्रीधरेऽपि च । अनन्तोऽनन्तमित्युक्तं पादार्थं बाणलिङ्गके ॥३३
 गथा पुस्तकमात्रेण स्वर्णपादार्थमिष्यते । ज्योतिषार्थं सुवर्णस्य रजतार्थं वृषे तथा ॥३४
 हरिवंशे श्लोकशते स्वर्णमेकं प्रकीर्तिग् । धर्मशास्त्रस्य साहस्रे रजतत्रयमीरितम् ॥३५
 कपिलायां सुवर्णार्थं धेनुमात्रे पुराणकम् । प्रायश्चित्तविधोऽ ज्ञेयं धेनुमात्रं पुराणकम् ॥३६
 पुराणत्रितयं चान्ये वीर्यहीने द्वयं भवेत् । कृष्णे वृषे षट्पुराणं श्वेते नवपुराणकम् ॥३७
 द्वात्रिंशच्च पुराणं स्याद्वृषे नीले तथैव च । न मेरोः प्रतिचक्रे च द्वादश स्वर्णरत्तिकाः ॥३८
 मूल्यं श्रीफलमात्रेऽपि पुराणत्रितयं भवेत् । पद्मकत्यापि नुर्यकं विद्यात्कलौ पणव्यवस्थया ॥३९
 धात्रीफलस्य प्रत्येकं भवेद्रजतमाषकम् । एतान्याहुः प्रशस्तानि मूलयोगे परं विदुः ॥४०
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे मूल्यकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः । ३

दक्षिणा होती है । २७। जिन यज्ञों में मानानुसार दक्षिणा प्रदान करने में असमर्थता प्रकट होती हो इसमें यज्ञ को सफल बनाने के हेतु देवता, पुस्तक, रत्न, गौ, धान्य, तिल, देव पुन्नाग वृक्ष के फल, पुष्प दक्षिणा के रूप में प्रदान करना चाहिए । चार चक्र से विभूषित एवं सन्दिग्ध रूप वाले जनार्दन देव का वरण जिसने किया (वही श्रेष्ठ है) । २८-२९। देवता की प्रतिमा, शिर, नाभि, श्वेतलिंग, रत्नलिंग, इन्द्रनील दक्षिणावर्तं शंख, सम्पूर्ण हरिवंश, कोयल, नीलवृक्ष, एवं सोमधान्य, इन्हीं का नाम अमूल्य है, इन्हें प्रदान करने से अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है । शालग्राम देव के निमित्त एक सुवर्ण पाद की दक्षिणा होती है । ३०-३२। रुद्रलिंग के लिए स्वर्णमूल्य, श्रीधर देव के लिए पादार्थ, अनन्त देव के लिए भी उतनी ही दक्षिणा बतायी गयी है । जिस प्रकार पुस्तक मात्र के लिए एक सुवर्ण पादार्थ भाग (दक्षिणा रूप में) प्रदान किया जाता है, उसी भाँति ज्योतिष्मान् (सूर्य आदि) देव के निमित्त सुवर्ण का आधा और वृष के निमित्त रजत (चाँदी) के आधे भाग बताये गये हैं । ३३-३४। हरिवंश के सौ श्लोक के पाठ करने की दक्षिणा एक सुवर्ण (पदक), धर्म शास्त्र के एक सहस्र के लिए तीन रजत (चाँदी) के टुकड़े दक्षिणा रूप में देने के लिए बताये गये हैं । ३५। कपिला (गौ) के निमित्त सुवर्ण के अर्धभाग (केवल) धेनुमात्र के लिए पुराण तथा प्रायश्चित्त के निमित्त भी धेनुमात्र के लिए पुराण ही बताया गया है । किन्हीं लोगों का सम्मत है कि तीन पुराणों को प्रदान करना चाहिए, वीर्यहीन वृष के निमित्त दो पुराण, कृष्ण वृष के लिए छः पुराण, श्वेत वृषभ के लिए नवपुराण, और नीलवृषभ के निमित्त बत्तीस पुराणों को बताया गया है । रुद्राक्ष के प्रतिचक्र के लिए बारह रत्नी सुवर्ण केवल श्रीफल के निमित्त तीन पुराण बताये गये हैं, कलियुग में 'पण' व्यवस्था के लिए पंक्ति द्वारा भी चौथा ही बताया गया है । ३६-३९। उसी प्रकार प्रत्येक आँख से के लिए चाँदी के माशे प्रदान करने के लिए प्रशस्त बताये गये हैं । ४०

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीयभाग में मूल्यकथन नामक तीसरा अध्याय समाप्त । ३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

मूल्यदानवर्णनम्

सूत उवाच

पूर्णपात्रमयो वक्ष्ये यज्ञे साधारणेऽपि च ! कामहोमे भद्रेऽमुष्टिर्मुष्टयोष्टौ तु कुञ्चिका ॥१
 एकैकुञ्चिग्रानेन कुर्यात्यात्राणि वै रुद्धा । पात्राणि च पृथक्कृत्वा स्थापयेद्द्वारदेशतः ॥२
 सिद्धान्तं खड्गधाराणां प्रत्येकस्य दिनक्रमात् । तत्रैव दद्यात्सान्यत्र न कुर्याद्व्यत्ययं क्वचित् ॥३
 कुण्डानां कुड्डमलानां च वेदनं यादृशं शृणु । चतुरस्त्रपदस्यापि रौप्यार्थं च कलौ युगे ॥४
 द्वे रौप्ये सर्वतोभद्रे कौञ्चधारणे चतुर्थकम् । महासिंहासने पञ्च दशपात्रे तदर्थकम् ॥५
 सहस्रारे मेरुपृष्ठे तुर्यरौप्यवृष्टिर्थिकम् । वृषे गते च वृषभं शेषे रौप्यसहस्रकम् ॥६
 चतुरस्त्र्य निर्माणे स्वर्णपादः कलौ युगे । महाकुण्डे तु द्विगुणं वृत्ते रौप्यं निवेदयेत् ॥७
 पद्मकुण्डे तु वृषभमर्घचन्द्रे तु रौप्यकम् ; योनिकुण्डे ददेष्वेनुमष्टार्थस्वर्णमाषकम् ॥८
 षड्स्ते तु तदर्थं स्याद्यागे साष्टद्वयं भवेत् । शैवे चोद्यापने चैव प्रत्यहा स्वर्णमाषकम् ॥९
 दारणे हस्तमात्रं स्यात्स्वर्णकृष्णकलं भवेत् । इष्टिकाकरणे चैव प्रत्यहा स्यात्पणद्वयम् ॥१०
 खण्डे दशवराटं स्याद्वृहन्माने तु काकिणी । तडागे पुष्करिण्यां च खनने प्रथममाङ्गके ॥११

अध्याय ४

मूल्यदान का वर्णन

सूत बोले—साधारण यज्ञ में भी दिये जाने वाले पूर्ण पात्र को मैं बता रहा हूँ, काम्य हवन में मुट्ठी रखी जाती है, उसी आठ मुट्ठी की एक कुञ्चिका होती है । दरवाजे से पृथक् कुछ दूर पर एक कुञ्चिका के पात्र रखकर उसे ही क्रमशः प्रत्येक दिन (जब तक यज्ञ का अनुष्ठान हो) खड्गधारी सिद्धान्तों को देना चाहिए । उसका कभी भी व्यतिक्रम न होने पाये । १-३। कुण्डों, एवं कुण्डलों के ज्ञान, जिस प्रकार किये जाते हैं, मैं बता रहा हूँ, कलियुग में चौकोर स्थान के लिए बाँदी (रूपये का आधा), सर्वतोभद्र के लिए दो रूपये क्रौंचधारण के लिए चौथाई (चवन्नी), महासिंहासन के लिए पाँच रूपये, दश पात्र के लिए उसका अर्धभाग, एवं सहस्रार और मेरुपृष्ठ के लिए चार रूपये तथा एक बैल, वृष के कण्ठ के लिए वृषभ और शेष के लिए सहस्र रूपये देने चाहिए । ४-६। कलियुग में चौकोर कुण्ड के निर्माण में एक सुवर्ण-पाद, महाकुण्ड के निर्माण में उससे दुगुने, और गोलाकार (कुण्ड) की रचना में एक रूपये प्रदान करना चाहिए । ७। पद्मकुण्ड के निर्मित बैल, अर्धचन्द्र नामक कुण्ड के निर्माण में एक रूपये, योनि कुण्ड में धेनु (गौ), और अष्टकोण वाले कुण्ड में एक माशा सुवर्ण, षट्कोण कुण्ड में उसका अर्धभाग, यज्ञ के लिए दो माशे, एवं शैव कार्य, अथवा किसी के उद्यापन कार्य में प्रतिदिन एक माशा सुवर्ण प्रदान करना बताया गया है । ८-९। (यज्ञ सम्बन्धी) एक हाथ भूमि खोदने के लिए उसका पारिश्रमिक सुवर्ण की एक कृष्ण कला बतायी गयी है, उसी प्रकार उसमें ईटों की जोड़ाई के लिए प्रति दिन के पारिश्रमिक दो पाण सुवर्ण देने चाहिए । खण्ड बनाने में दश कमलगटे, उसके मान को बढ़ाने में कौड़ी देनी चाहिए, उसी भाँति सरोवर या पुष्करिणी प्रथम

सप्तहस्तमिते कुण्डे निम्ने आबद्धमात्रकम् । पुराणस्य च एकांशं वेतनं परिकीर्तितम् ॥१२
 वर्धयेत्पणमात्रेण निम्ने पञ्चे च प्रक्रमात् । बृहत्कूपस्य निर्माणे प्रत्यहं च पणद्वयम् ॥१३
 शैले ज्ञेयं काञ्चनस्य रत्तिका गृहकर्मणि । कोण्ठे ज्ञेयं सार्थपनं रड्गादिरचिते पणम् ॥१४
 वृक्षाणां रोपणे द्व्यात्रत्यह्ना सार्थमाषकम् । सेतुबन्धे च पटिकले च पणद्वयं च काकिणी ॥१५
 पणे यणे तु ताप्रस्य द्व्यात्पणतुष्टयम् । घटने कांस्यसीलानां पणत्रयमुदाहृतम् ॥१६
 अथ वा दिनसङ्ख्यानं पणैकं च सकाकिणी । मुवर्गस्य पणैके तु पुराणे रत्नकुट्टिमे ॥१७
 रजते तु तदर्थं स्यात्स्फटिकस्य च दारणे । दिनसङ्ख्यापणद्वन्द्वं रत्नानामथ कुड्मलम् ॥१८
 नणिदेष्वे मणौ ज्ञेयं काकिणी परिकीर्तिता । चतुर्वर्षाटमधिकं स्फटिके मणिदेष्वने ॥१९
 कांस्यतालस्य निर्माणे धमने तु पणत्रयम् । लाक्षानिर्माणके कार्यं तदर्थमपि कीर्तितम् ॥२०
 गवां च दोहने चैव वराटे तुर्यवेतनम् । वेतने वस्त्रनिर्माणे पञ्चे हस्तपणत्रयम् ॥२१
 अविवस्त्रस्य निर्माणे स्यन्दनं दशकाकिणी । पिधानवस्त्रनिर्माणे त्रिपणं परिकीर्तितम् ॥२२
 दशकाकिणी ऊर्ध्वाधिस्तद्वये पण्यवेतनम् । वंशाजीवस्य प्रत्यह्ना पणस्यार्थं सकाकिणि ॥२३
 लोहकारस्य च तथा नापितस्य च वेतनम् । शिरसा तस्य वपने विज्ञेया दशकाकिणी ॥२४
 सशमशुनखमाने तु प्रदद्यात्काकिणीद्वयम् । नारीणामथ संस्कारे नखचित्रादरञ्जने ॥२५
 सकाकिणि पणं तच्च सवित्रे च पयोधरे । पणानां तुर्यकं द्व्यात्सीमन्तस्यालके तथा ॥२६

की खोदाई में और सात हाथ के कुण्ड के निर्माण करने में जिसका नीचे का भाग (ईंट आदि से) बाँध दिया जाता है, पुराण का एक भाग वेतन रूप में देना चाहिए । १०-१२। उसमें क्रमशः जब तक नीचे स्थल पर न पहुँच जायें, एक एक पण की वृद्धि करते रहना चाहिए । महान् कूएँ के निर्माण में प्रतिदिन दो पण पारिश्रमिक देना कहा गया है । १३। पथर के घर बनवाने में एक रत्ती प्रतिदिन पारिश्रमिक देना चाहिए, उसी भाँति कोठे के लिए डेढ़ पण, और घर की रंगाई की प्राप्ति करने लिए एक पण देना चाहिए । १४। वृक्षों के रोपने (लगाने) के लिए प्रतिदिन डेढ़माशा, दलदल में पुलबाँधने के लिए दो पण और कौड़ी देना बताया गया है । १५। ताँबे के प्रत्येक पण के निर्माण में चारं पण तथा कांसों और शीशों के गलाने में तीन पण देना चाहिए । १६। दिन की गणना करने के लिए कौड़ी समेत एक पण, सुवर्ण के लिए भी एक पण, एवं रत्न के कुट्टिम (भूमि का ऊपरी स्तर) बनाने में एक पुराण, चाँदी के कार्यों में उसका अर्धभाग, स्फटिक मणि के तोड़ने में दो पण देने चाहिए । उसी प्रकार रत्नों के कुण्डल में भी । मणियों के वेधन में कौड़ी देनी चाहिए, स्फटिक मणि के छिद्र करने में चार कौड़ी अधिक । १७-१९। कांसे का ताल, एवं चौकनी बनाने में तीन पण, लाख के निर्माण कार्य में उसका आधा तथा गौ के दुहने में चार कौड़ी, एवं वस्त्र बुनने में एक हाथ के तीन पण देना कहा गया है । २०-२१। भेंड के (ऊनी) वस्त्र तथा रथ बनाने में दशकौड़ी, एवं पहिनने के वस्त्र बनाने में तीन पण देना चाहिए । २२। ऊपर नीचे एवं उसके व्यय करने में दश कौड़ी दैनिक वेतन, तथा वंशाजीव के लिए प्रतिदिन कौड़ी समेत पण का आधा भाग देना चाहिए । २३। लोहाहर एवं नाई को शिर मुण्डनार्थ दश कौड़ी, केवल दाढ़ी बनाने और नाखून काटने के लिए दो कौड़ी, और स्त्रियों के नाखून में तथा इतर स्थान में चित्रादिरञ्जन एवं उसके पयोधर के चित्रविचित्र बनाने में कौड़ी समेत एक पण देने चाहिए । शिर के केशों के संवारने के लिए चार पण देने

पदचित्रे तु सद्दृं स्याद्ग्रीवाणां गुह्याधारणे । धन्यानां रोपणे चैव दिनैके पणवेतनम् ॥२७
 लदणे तु तथा देयः गुवाकानां च रोपणे । दण्डपत्रस्य संस्कारे मरिचानां तथैव च ॥२८
 पणद्वयं वराटानामधिकं दशमेव तु । हले हले पणैकं स्यात्काकिण्यधिकमेव च ॥२९
 पणत्रयं चक्रपणे महिवाणौ पणाधिकम् । नराणां बाहने चैव पणैकं दशकाकिणी ॥३०
 दासीनां गईभानां च अधिकं काकिणीद्वयात् । क्षालने चापि वस्त्रस्य तैलक्षारविवर्जिते ॥३१
 वस्त्रे प्रतिपग्नं दद्यादीर्घं प्रस्थेऽपि वर्धयेत् । सद्यः प्रक्षालनेऽप्यहौ दिनादावधिकं भवेत् ॥३२
 श्वेतवस्त्रे भवेन्यूनं गदे सूक्ष्मे च वर्द्धयेत् । मृत्तिकानां समुद्धारे कुद्धाले चेक्षुपीडने ॥३३
 वेतनं पुष्पसंस्कारे सहस्रे दशकाकिणी । काकिणी व्यङ्गनिबद्धे च द्विगुणं कण्ठमालिका ॥३४
 अबद्धे द्वयङ्गुलं यावन्मुण्डमाला ग्रकीर्तिता । हस्तत्रये कण्ठमाला आनाभि कमलावधि ॥३५
 काकिणीकत्रयं चैव निर्मणे द्विजसत्तमाः । मालत्याश्र तुलस्याश्र जातियूथ्योश्र सत्तमाः ॥३६
 तदर्थार्थं मारुतेन दमने बकुलस्य च । वेतनं दीपतैले च आज्यस्य परिवर्धयेत् ॥३७
 यामे यामे रौप्यमाषं स्नेहे चैव तु काकिणी । सार्धाद्युलप्रमाणेन वस्त्रवर्ति विदुर्बुधाः ॥३८
 षड्युलेन दैर्घ्यं च न न्यूनं नाधिकं भवेत् । पञ्चविंशतिभिः संस्था तन्तुभिर्द्विजसत्तमाः ॥३९
 पञ्चाद्युलेन भानेन कर्तव्यः सुसमाहितः । हस्तोच्छाये प्रदद्यात् मुष्टिहस्ते तु मध्यमम् ॥४०

चाहिए । पैर रंगने के लिए डेढ़ पण देना बताया गया है, बाल और गुह्य स्थान को सौन्दर्य पूर्ण बनाने में भी वही देना चाहिए । धन्यों के रोपण में एकदिन के एक पण वेतन होते हैं । २४-२७। नमक, सुपारी के आरोपण, दण्डपत्र के संस्कार, एवं मरिच के आरोपण में दो पण कौड़ी अथवा अधिक से अधिक दश तथा प्रत्येक हरवाहे को एक दिन के वेतन कौड़ी समेत एक पण देने चाहिए । २८-२९। चक्रपण के लिए तीन पण, महिषों के लिए चार पालकी आदि ढोने के लिए दश कौड़ी समेत एक पण देना कहा गया है । ३०। दासी, एवं गधे द्वारा काम करने वाले को उससे दो कौड़ी अधिक देना चाहिए । तेल व साबुन, सारी मिट्टी (रेह) को न छोड़ कर यों ही वस्त्र धोने में एक वस्त्र के लिए एक पण लम्बे चौड़े (जाजिम दरी) आदि वस्त्र के लिए एक प्रस्थ क्रमाईः बढ़ा देना चाहिए । तुरन्त धुलवाने पर आधा अधिक देना कहा गया है । ३१-३२। श्वेत वस्त्र की धुलाई में कमी और सूक्ष्म वस्त्र (रेशमी) की धुलाई में वृद्धि बतायी गयी है । कुम्हार से मिट्टी खोदने, ऊख पेरने, सहस्र पुष्टों की सजावट में दश कौड़ी, माला बाँधने में एक कौड़ी, और पहनने की माला बनाने में उससे दुगुना देना चाहिए । ३३-३४। बिना बैंधे ही दो अङ्गुल की कमी रहे तो उसे मुण्ड माला तीन हाथ की कण्ठ माला के जो नाभि कमल तक रहती है बनाने में तीन कौड़ी और द्विजश्रेष्ठ ! मालती, तुलसी, चमेली, एवं जूही की माला बनाने में भी उतना ही देना चाहिए । ३५-३६। वकुल पुष्प की माला के लिए जिसके पुष्प वायु द्वारा गिर रहे हों, उसका अर्धार्ध भाग दिया जाता है, तेल के दीपक जलाने में वेतन में धी की वृद्धि होनी चाहिए । ३७। एक-एक याम (प्रहर) जलाने के लिए चाँदी के एक माशा, उसके तेल के लिए एक कौड़ी देना चाहिए, जिसमें विद्वानों ने डेढ़ अंगुल की कपड़े की बत्ती डालने को बताया है । ३८। द्विजसत्तम ! छ अंगुल की बत्ती जो न न्यून एवं न अधिक हो, पञ्चीस सूत की बनायी जाती है । ३९। पाँच अंगुल के मान से सावधान होकर वह बनायी जाती है । एक हाथ की ऊँची, मुट्ठी बैंधे हाथ

त्रिहस्ते द्वुहस्ते वा उत्तमं मानमीरितम् । स्वर्णधारे हतो राजा रजते सर्वकामदः ॥४१
तांत्रे चायुःक्षयकरमायसे दुर्गतिप्रदः । शस्त्रस्य करमर्दस्य प्रशस्तोतर उच्यते ॥४२
दीपाधरं कांस्यमयं तथारीतिमयस्य च । अभावे भृष्मयस्यैव मृष्मये मानवर्जितम् ॥४३
दशाङ्गधूपके नूल्यं विंशके तु पणव्रथम् । द्वादशकांगुलेऽप्यर्थर्वाति धूपाय वर्तयेत् ॥४४
हस्ते पञ्चप्रमाणं त वस्त्रैः कुर्यान्त्व वर्तिकाम् । पञ्चविंशतिभिर्वा यः स महावर्तिश्चयते ॥४५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणे द्वितीयभागे मूल्यदानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलशनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

अतः परं प्रवध्यामि कलशानां विनिर्णयम् । यस्यार्पिते च माड्गल्ये यात्रासिदिश्च जापते ॥१
सप्ताङ्गं कलशे लेयं पञ्चाङ्गमय वा युनः । वारिमात्रेण सम्पूर्णं त सा सिद्धिः प्रजाप्तते ॥२
अथ वाक्षतपुण्येषु देवमावाहृ पूजयेत् । न चान्यत्र यजेद्वेदान्विफलं परिकीर्तिम् ॥३
वटस्याश्वत्थवृक्षस्य धातकीबिल्वकस्य च । पञ्चपल्लवमुहिष्टं विन्यसेत्कलशोपरि ॥४
सौवर्णा राजता वापि तात्राद्यामृष्मयास्तथा । कलशाः क्रमशः प्रोक्ता यथावित्तानुसारतः ॥५

की मध्यम, तीन हाथ और चार हाथ की उत्तम बतायी गयी है। सुवर्ण के पात्र में दीपक जलाने से राजा का विनाश, चाँदी में समस्त कामनाओं की सफलता, ताँबे में आयुष्य, तथा लोहे के पात्र में जलाने से भाँति-भाँति की दुर्गति प्राप्त होती है करमर्द (करमन्या) वृक्ष, दीपक के लिए उत्तम माना गया है, कांसे तथा पीतल के पात्र दीपक के लिए श्रेष्ठ हैं तथा उनके अभाव में मिट्टी के ही पात्र रखने चाहिए । ४०-४३। दशांग धूप तथा बीस अंग वाले धूप के लिए तीन पण दिये जाते हैं। बारह अंगुल में भी धूप के लिए आधी बत्ती लगाई जाती है। पांच हाथ अथवा पञ्चीस हांथ के वस्त्र की बत्ती को महाबत्ती बताया गया है । ४४-४५

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पण के द्वितीय भाग में मूल्यदान वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त । ४।

अध्याय ५

कलशनिर्णय का वर्णन

सूत बोले—उसके उपरांत कलशों के निर्णय जिसकी मांगलिक पूजा करने से यात्रा सफल होती है, मैं बता रहा हूँ । १। कलशों के सात अथवा पाँच अंग होते हैं, कलश में केवल जल मात्र से पूर्ति कर देने से सिद्धि प्राप्त नहीं हो जाती है । २। कलश के अभाव में अक्षत, या पुष्पों पर देवों के आवाहन-पूजन कर लेने चाहिए, अन्यथा अन्यत्र देवों के पूजन करने से वही निष्कल हो जाता है, ऐसा बताया गया है । ३। बट (बरगद), पीपल, आँवला और बेल इन्हीं पाँच वृक्षों के पल्लव से कलश विभूषित करना चाहिए । ४। अपनी धन-शक्ति के अनुसार सुवर्ण, चाँदी, ताँबे आदि एवं मिट्टी के कलश स्थापित करना चाहिए । ५।

अभेदाः सुषमाः प्लक्षाः सर्वे आद्या सुपुरिताः । निश्छद्रा ऋजवश्चैव सेचनान्येककर्षकः ॥६
 एकत्रिंशःङ्गुलं कुर्यात्कालाहे द्विगुणं शतम् । मुखं चाष्टङ्गुलं तस्य द्वयङ्गुले च दराथते ॥७
 तैजसैः कारयेन्मानं मृष्मये मानमुच्यते । कलशोदकनिश्चणे अमानं नैव योजयेत् ॥८
 कलशस्थापनं वक्ष्ये यत्र सन्निहिताः तुराः । व्युत्क्रमेण प्रविन्यासे यातुधानो हरेक्तिल ॥९
 यज्ञे साधारणं वक्ष्ये यद्विधानं यथाभत्तम् । स्वस्तिकोपरि विन्यासे सम्पूर्णस्यार्धमानके ॥१०
 चतुरस्योत्तरं भित्त्वा चोर्ध्वार्धोमानतः सम्म । तुर्यसूत्राणि मतिभान्यच्च पूर्वयत्नानि च ॥११
 सार्जयेत्स्वस्तिकाकारं तुर्यमात्रं यथा भवेत् । स्वास्तिकं जायते तत्र कलशानां तथासनम् ॥१२
 स्वेनापृथिवीति मन्त्रेण कुर्याद्भूमिपरिग्रहम् । मध्यमानामिकाभ्यां च न्यास्येत्पातालसम्मुखम् ॥
 ऋषिनारायणोऽस्य स्याद्गायत्री^३ देवता रविः ॥१३

विनियोगः स्थापने च तथा भूमिपरिग्रहः । धान्यमसीति मन्त्रेण धान्यसूक्तं परिस्तवेत् ॥१४
 अस्य मन्त्रस्य च ऋषिगौतमः परिकीर्ततः । अनुष्टुप्च भवेच्छन्दो देवतास्य गुरुः स्मृतः ॥१५
 आजिघ्रं कलशं महां स्थापयेत्कलशं ततः । कनिष्ठांगुष्ठकं न्यक्तवा कुम्भाग्रे उदरेऽपि च ॥१६
 विन्यासश्चैव कर्तव्यस्त्रयङ्गुले ब्रह्ममुद्रया । आजिघ्रस्य च मन्त्रस्य ऋषिर्भर्ग उदाहृतः ॥

अभेद्य (दृढ़) सौन्दर्य पूर्ण, छिद्र हीन, सीधे और एक मिट्टी के बने हुए कलश को पहले से ही उन्हें भरे रखना चाहिए इकतीस अंगुल के घट जो कालाह में उससे दुगुने और सौ अंगुल के होते हैं, आठ अंगुल के मुख और दो अंगुल के तैजस द्वारा उसका मान करना चाहिए । इसीलिए मिट्टी के घर के लिए मान कहा गया है और कलशोदक के निर्माण के लिए भी । मान शून्य होने पर वे पूजनीय नहीं होते हैं । ६-८। मैं घट स्थापन विभान बता रहा हूँ, जिसमें सम्पूर्ण देव-गण सन्निहित रहते हैं और जिससे क्रम की अपेक्षा न रखने पर उसके पूजा आदि का निश्चित अपहरण राक्षसगण कर लेते हैं । ९। उनके यज्ञीय साधारण विधान को भी, जो सर्व सम्मति से निश्चित है, बता रहा हूँ । सम्पूर्ण मान एवं अर्धमान वाले घट को स्वस्तिक के ऊपर स्थापित करना चाहिए । १०। (किसी) चौकोर स्थान का भेदन कर जिसका ऊपरी एवं नीचे का भाग समान हो, चार सूत्र से अंकित कर पुनः पाँच सूत्रों से पूर्व परिचम में अंकित करना बताया गया है । ११। उस स्वस्तिकाकार का मार्जन करना चाहिए, जो केवल चौथाई मात्र रहता है, वही स्वास्तिक कलशों के आसन के रूप में रहता है । १२। 'स्योना पृथिवी' ति मंत्र से भूमि के परिग्रह (माप आदि) किये जाते हैं, जिसमें मध्यमा और अनामिका अंगुली द्वारा पाताल संमुख उसका न्यास किया जाता है इस मंत्र के नारायण ऋषि, गायत्री छन्द, सूर्य देवता हैं । १३। यही विनियोग उस (घट) के स्थापन में उच्चारण किया जाता है । 'धान्यमसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक धान्य उसके नीचे रखा जाता है, इस मंत्र के गौतम ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, वृहस्पति देवता विनियोग में कहे जाते हैं । १४-१५। 'आजिघ्रं कलशमि' ति मंत्र से भूमि में कलश स्थापन करना चाहिए, जिसमें कनिष्ठा और अग्नृठे को छोड़ कर शेष तीन अंगुलियों की ब्रह्म मुद्रा द्वारा घट के अग्रभाग एवं उदर में विन्यास किया जाता है, इस मंत्र के भर्ग ऋषि,

१. छन्दः इति शेषः ।

पद्मिकतश्छन्दश्च उद्दिष्टो देवता विष्णुरव्ययः ॥१७
 कलशस्थापने चैव सोमयागे च योजयेत् । पञ्चनदेतिमन्त्रेण क्षिपेद्गङ्गाजलं ततः ॥१८
 देवता परमा त्रिष्टुप्देवता सोमभावितः । विनियोगः पल्लवे च विन्यसेत्यरिकीर्तिः ॥१९
 याः फलिनीति मन्त्रेण प्रदद्यात्सफलाक्षतम् । याः फलिनीति मन्त्रस्य ऋषिः कमलसंज्ञकः ॥
 त्रिष्टुप्छन्दो गणपतिर्देवता परिकीर्तिः ॥२०
 नदरं नागरं चैव धात्री च पितॄमर्दकम् । जीवन्ती पीवरं चैव कलान्येतानि वर्जयेत् ॥२१
 हिरण्यगर्भेति छन्दा पञ्चरत्नानि निक्षिपेत् । ऋषिर्हिरण्यगर्भोऽस्य छन्दस्त्रिष्टुप्दाहतम् ॥
 सविता देवता चास्य रत्नन्यासेति योजयेत् ॥२२
 अमृतीकरणं कुर्यादैवशुल्बनमेव च । दरुणस्य त्वेति ऋषिर्दरुणान्तरे योजयेत् ॥२३
 श्रीश्च ते इति मन्त्रेण दद्यात्पुष्पं सचन्दनम् । गन्धद्वारेति मन्त्रेण दद्याद्गन्धं विलोडितम् ॥२४
 काण्डादिति च मन्त्रेण दधाद्घूर्वाक्षतं पुनः । श्रीहयश्चेति गन्त्रेण पञ्च श्रीहीनश्च निक्षिपेत् ॥२५
 तिलाश्रमाषाः मुद्गाश्रम इयामाकाः शालयः स्मृताः । पञ्च धान्यगणः प्रोत्तः सर्वारिष्टनिषूदनः ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणी द्वितीयभागे कलशनिर्णयं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

पंक्ति छन्दं, शाश्वत विष्णु देवता, विनियोग में कहे जाते हैं । इसका प्रयोग कलश स्थापन एवं सोम याग में अत्यधिक किया जाता है, पश्चात् ‘पञ्च नद्ये’ ति मंत्र को उच्चारण करं गंगा जल घट में छोड़े । १६-१८। इसके परम देवता, त्रिष्टुप् छन्द, और सोम देवता, विनियोग में कहे जाते हैं । १९। ‘याः फलिनी’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक फल समेत अक्षत प्रदान करना कहा गया है । इस मंत्र के कमल ऋषि, निष्टुप् छन्द, गणपति देवता कहे गये हैं । २०। वेर, नारङ्गी, नीबू आंवला नीम, हरे, एवं पीपर, इन फलों के त्याग इन कार्यों में करने चाहिए । २१। ‘हिरण्य गर्भा’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक घर में पञ्च रत्न का निक्षेप (छोड़ना) बताया गया है, इस मंत्र के हिरण्यगर्भ ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, सविता (सूर्य) देवता कहे गये हैं, जो रत्नों के न्यास विनियोग में कहे जाते हैं । २२। इसी भाँति अमृतीकरण और दैवाचार भी करना चाहिए । ‘वरुणस्यत्वे’ ति मंत्र द्वारा वरुण का उस घट जल में प्रवेश कराया जाता है, इस मंत्र के वरुण ऋषि हैं । २३। ‘श्रीश्च ते’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक चन्दन समेत पुष्प प्रदान करना चाहिए, ‘गन्धद्वारे’ ति मंत्र से चिसा हुआ गन्ध, ‘काण्डादि’ ति मंत्र से दूर्वा और अक्षत मिश्रित अपित करना बताया गया है, एवं ‘श्रीहयश्चे’ ति मंत्र द्वारा पाँच धान्य तिल, उरद, मोथी, काकुनी और साठी धान कलश पर स्थापित करना चाहिए । २४-२६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पण के द्वितीय भाग में कलशनिर्णय नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

अथ षष्ठोऽध्यायः

मासवर्णनम्

सूत उवाच

अथ मासाश्रयं कर्ष कर्तुं मासनिरूपणम् । क्रियते तद्विधं संख्ये भलेन्मासश्चतुर्तुर्विधः ॥१
 चान्द्रः सौरः सावनश्च नाक्षत्रश्च तथापरः । शुक्लप्रतिप्रदं प्राप्य यावद्दर्शं च ऐन्दवः ॥२
 एकराशौ रवियादित्स मासः सौर उच्यते । त्रिंशता दिवसैर्मासिः सावनः परिकीर्तिः ॥३
 नाक्षत्रमासोऽश्विन्यादिरेवत्यन्तो हि विश्रुतः । उहयादुदयं यस्तु सावनो दिवसो रवे: ॥४
 तन्त्रोणैकतिथेभर्गिकालो दिवस ऐन्दवः । राशेऽन्तिशूद्धागकालः कालस्त्वेकस्य भास्वतः ॥५
 अहोरात्रं तु तज्जयं सौरेष्यि भागमानतः । अहोरात्रं साधनस्य मुख्यवृत्त्यैव लभ्यते ॥६
 सौरे चान्दे तूष्णगणौ त्रिंशूद्धागे त्वदर्शनात् । सावना दिवसा ग्राह्या ऋषीणां समये गृहे ॥७
 अतिभग्यव्यवस्थायां प्रायश्चित्तक्रियासु च । मन्त्रोपासनकार्यं च अन्नस्य प्राशने शिशोः ॥८
 करस्य ग्रहणे राज्ञो व्यवहारेषु माःसु च । यज्ञेषु दिनसंख्यायां ग्राह्यो मासस्तु सावनः ॥९
 सौरमासो विवाहादौ यदाद्यैः सुप्रगृह्यते । यज्ञेष्वपि व्रते वापि विहिते स्नानकर्मणि ॥१०
 चान्दस्तु पार्वणे ग्राह्यो वार्षिकेष्वष्टकासु च । श्राद्धेषु तिथिकार्येषु तिथ्युक्तेषु व्रतेषु च ॥११

अध्याय ६

मासों का वर्णन

सूत बोते—इसके उपरांत मैं मासों की व्याख्या कर रहा हूँ, जिनके आश्रित किये जाने वाले कर्म रहा करते हैं, वे चार प्रकार के होते हैं—चान्द्र, सौर, सावन, और नाक्षत्र, यही इनके भेद हैं, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या तक के दिन चान्द्र मास में गणना किये जाते हैं । १-२। एक राशि पर सूर्य जिनने दिन स्थित रहता है, उसे सौर मास, एवं तीस दिन के सावन मास, और अश्विनी नक्षत्र से आरम्भ होकर रेती नक्षत्र के दिन तक नाक्षत्र मास कहा जाता है । सूर्योदय से (द्विसरे दिन) सूर्योदय तक सावन मास का एक दिन, तंत्र द्वारा एक विधि के भोग करने का समय चान्द्र मास का एक दिन, एक राशि के तीस भाग का समय (अंश) सौर मास का एक दिन होता है जो दिन-रात के मान भाग से बताया जाता है । साधक लोगों की साधना के लिए अहोरात्र वाला ही दिन ग्रहण किया जाता है । ३-६। सौर मास एवं चान्द्रमास के तीसवें भाग के अदृश्य होने के कारण सावन मास के ही दिन ऋषियों के कर्मानुष्ठान एवं गृह प्रवेश आदि में गृहीत होते हैं । ७। अतिभाग की व्यवस्था, प्रायश्चित्त की क्रियाओं, मन्त्र साधन, उपासना कार्य, वच्चों के अन्न प्राशन राजा के लिए प्रजाओं से कर लेने के व्यवहार कार्य, मासिक कार्य, और यज्ञों की दिन गणना में सावन मास ग्रहण करना चाहिए । ८-९। विवाह आदि कार्यों में, यज्ञ में, व्रतानुष्ठान, तथा स्नान कर्मों के विधान में सौर-मास का ही ग्रहण होता है । १०। पार्वण, वार्षिक, एवं अष्टका श्राद्धों, तिथि कार्यों और तिथि में बताये गये व्रतानुष्ठानों में चान्द्र-मास गृहीत होता है । ११।

नाक्षत्रः सोमपादीनामार्यभागविचारणे । करप्रहविधौ राजां नायं सर्वजनाकृतिः ॥१२
 तद्वच्चैत्रादिमासोक्तं तिथ्युक्तं कर्म दृश्यते । ततु चान्द्रेण कर्तव्यं सा हि चैत्रादिनोच्चते ॥१३
 राजोक्तौ सावनः प्रोक्ते तिथिसम्भागकर्मणि । तत्र सौरो भवेद्राच्यः सौरशब्दप्रवर्तनात् ॥१४
 चित्रानक्षत्रयोगेन चैत्री सा पूर्णिमा स्मृता । तथोपलक्षितो मासश्चैत्र इल्यभिधीयते ॥१५
 त च तिथ्यात्मको मासश्चान्द्रः श्वरणभरकरः । चान्द्रश्चैत्र्यन्तिको मासो मुख्यश्चैत्रादिसंजकः ॥१६
 गौणोऽप्यसौ युगाद्यादेरनुरोधेन वर्धनात् । मुख्यः शुक्लादिदर्शातो मासो लाक्षणिको भूतः ॥१७
 चैत्राद्याश्रान्द्रमासा वे द्वादशापि तु योगातः । एर्षमासीयुताभिस्तु न चक्षत्वं न रेखिरे ॥१८
 विशाखयादेषु या वा तथा भाद्रपदेन वा । यत्र न पूर्णिमायोगे मासः स स्याद्विनाशकः ॥१९
 योजसौ यद्यपि चैत्रादौ नैष्ठिकोऽपि प्रलभ्यते । यथा सौरोऽपि यातोऽसौ योगोऽयमतिदुर्घटः ॥२०
 तथा च माससामान्ये योगेनायं भवेत्क्वचित् । यदि वर्षसहस्रान्ते तदक्षेणव पूर्णिमा ॥२१
 संयुक्ता लभ्यते यत्र भवेद्राज्यदिनाशनम् । सूर्यचन्द्रमसौ नित्यं कुर्वति तिथिभोजनम् ॥२२
 इण्डद्वये भुक्तशेषे न भुज्जीत कदाचनम् । अतिक्रम्यापरां भोक्तुं तिर्थं यत्र उभावपि ॥२३

देवादिका के लिए आर्यभाग संबंधी विचार, और राजाओं के कर (मालगुजारी) आदि में ग्रहण करने में ही नाक्षत्र मास के उपयोग किये जाते हैं, अतः यह मास सम्पूर्ण जनता के उपयोग में नहीं आता है ॥१२। उसी प्रकार चैत्र आदि मासों की तिथियों में बनाये गये कर्मों की समाप्ति चान्द्र मास के अनुसार ही होती है, क्योंकि वे चैत्रमास में करने के लिए ही कही गयी हैं । राजा के लिए सावन मास ही कहा गया है, किन्तु तिथियों के विभाग-व्यवस्था में सौर शब्द के नामोच्चारण करने के कारण सौर-मास ही गृहीत होता है ॥१३-१४। चित्रा नक्षत्र के योग से चैत्री (चैत्र की) पूर्णिमा होती है, इसीलिए उसको अपेक्षा के कारण उसे चैत्र-मास कहते हैं ॥१५। तिथियों की गणना वाले मास को चान्द्र-मास कहा जाता है, जिसमें सूर्य दृष्टि गोचर होते या सुने जाते हैं, और उस चान्द्र मास का अतिम मास चैत्र मास कहा गया है, एवं यही चैत्रादि संज्ञा वाले मास मुख्य भी हैं ॥१६। (सत्ययुग आदि) युगों के अनुरोध से यह गौण (अप्रधान) भी हो जाता है । उसमें शुक्ल की प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या काल पर्यंत वाला मास, जो सर्व सम्मति से लाक्षणिक बताया गया है, मुख्य माना जाता है ॥१७। चैत्र आदि बारहों चान्द्र मास, पूर्णिमा संयुक्त होने के नाते वे नक्षत्रों के धर्मों से अत्यन्त पृथक् रहते हैं ॥१८। विशाखा नक्षत्र (वैशाख मास) से आरम्भ होकर भाद्रपद मास तक के मासों में, जिसमें पूर्णिमा के योग न प्राप्त हों, वे मास विनाश करने वाले मास बताये गये हैं ॥१९। यद्यपि सौर-मास की भाँति चैत्र आदि मासों में भी नैष्ठिकता प्राप्त होती है, तथापि वह योग ही अत्यन्त दुर्लभ होता है ॥२०। किन्तु, साधारण मासों में यह योग कभी-कभी प्राप्त हो ही जाता है । सहस्रों वर्ष के अन्त में यदि कभी पूर्णिमा के योग प्राप्त हो जायें तो उस मास के समय में राष्ट्र का महान् विनाश उपस्थित हो जाता है । सूर्य एवं चन्द्रमा तिथियों के उपभोग नित्य करते रहते हैं, उनके उपभोग काल के दो दण्ड शेष रहने पर भोजन कभी न करना चाहिए । तथा वे दोनों (सूर्य और चन्द्रमा) द्वास्री तिथि के उपभोग करने के लिए अतिक्रमण न कर जायें, उस समय भी । जिस मास में बीस ही तिथियाँ होती हैं, उसमें एक संचिता तिथि होती है । और तीस तो केवल चान्द्रमास में ही

यत्र विश्वात्तिथिस्तस्मात्सञ्चितैका भवेदिति । त्रिशता चान्द्रमासौ तु चन्द्रेणैको हि वर्द्धते ॥२४
 स चाधिको यतो मासस्ततः स्यादधिमासकः । समरार्त्ति दिवं कृत्वा वैवस्वतपुरीगतिम् ॥२५
 राशे राशःक्तरे सूर्यो यावद्गच्छति भानुमान् । गच्छन्वर्धयति पूर्वं तिथ्यस्तास्तु सञ्चिताः ॥२६
 वर्धन्ते तिथियो यावत्तुलां यति दिवाकरः । तुलादिराशिषट्के तु न वर्द्धन्ते कदाचन ॥२७
 स्वभावात्तमगत्या तु यतः सङ्क्रमते रविः । सञ्चवयसाना त्वकेका प्रतिमासं दिवर्द्धते ॥
 निशास्त्वपि तु सौरे ताः एकस्मिस्तिष्ठ इत्येति ॥२८
 संपूर्णांत्रशत्तिथिभिमास्येकस्मिन्यदा भवेत् । स चान्द्रो मलिनो नासः कोणपात्रः समीहितः ॥२९
 भुक्तोच्छिष्टा तु तन्मासादसंस्पृष्टदिवाकरः । यदा सङ्क्रमते लङ्घ्य तदा ज्ञेयो मलिम्लुच्चः ॥३०
 सार्धवर्षद्वये पूर्णे पतत्येवं निशाकरः । परित्यक्ताश्च यावन्त्यो व्युत्क्रमिण्यश्च याः पुनः ॥
 तिथयस्ते नियोक्तव्या नरो न स्यात्स पूरणः ॥३१
 नैऋत्यान्तं हितार्थाय जलकेदुर्मिगच्छति । निर्ममं मलिनं मासं प्रेतानां च हिताय च ॥३२
 अतः प्रेताक्रियाः सर्वाः कार्या मलिम्लुच्चेत्पि च । यत्कर्तव्यं न कर्तव्यं मलमासे द्विजोत्तमाः ॥३३
 तदिदानीं प्रवक्ष्यामि कथितं च प्रसङ्गतः । यच्छाद्वं प्रेतसम्बन्धं सपिण्डीकरणावधि ॥
 मलमासेऽपि तत्कार्यं विशिनष्टि सपिण्डनम् ॥३४

होती हैं, उसमें चन्द्रमा के द्वारा एक ही वृद्धि होती रहती है । २१-२४। वही अधिक जिस मास में होता है, उसे अधिक मास कहते हैं, उसमें वैवस्वत (यम) की पुरी की भाँति रात-दिन समान होते हैं । सूर्य के एक राशि से दूसरे राशि पर प्रस्थान करते समय उनके रस में प्रविष्ट होते समय पूर्व की तिथियाँ वृद्धि प्राप्त करती रहती हैं, वे ही संचिता के नाम से कही जाती हैं । २५-२६। जब तक सूर्य तुला राशि पर पहुँचते हैं, उसी समय तक तिथियाँ भी वृद्धि प्राप्त करती हैं और छठी (कन्या राशि) के अनन्तर तुला पर पहुँचने के पश्चात् कभी नहीं बढ़ सकती है । २७। स्वभावानुसार अपनी समान गति से सूर्य एक राशि से दूसरी राशि पर पहुँचते हैं, उसमें प्रति मास में एक-एक सचित की जाने वाली तिथियाँ बढ़ती रहती हैं, रात्रि में भी उनकी वृद्धि होने के कारण एक सौर-मास होता है इस प्रकार तीन तिथियाँ वृद्धि प्राप्त करती हैं । २८। जिस मास में सम्पूर्ण तीस तिथियाँ (मानानुसार) व्यतीत होती हैं, कोणपादिकों ने अत्यन्त सावधानी पूर्वक उस चान्द्र मास को मलिन मास बताया है । २९। (सूर्य द्वारा) उपभोग करके परित्यक्त तिथियाँ वाले उस मास को, जिसे सूर्य स्पर्श नहीं करते हैं (अर्थात् उसमें कोई संक्राति नहीं होती है), पार कर दूसरे मास में उनका संक्रमण (संक्रान्ति) होता है, उसे ही अधि (मल) मास कहा जाता है । ३०। ढाई वर्ष के उपरान्त निशाकर (चन्द्र) का इसी भाँति पतन हुआ करता है कितनी तिथियाँ परित्यक्ता रहती हैं और कितनी तिथियों के (व्युत्क्रम क्रम असंबद्ध) रहते हैं (किसी श्रम कर्म में) उस समय उन तिथियों के उपयोग नहीं होते हैं एवं करने वाला अधूरा ही कहलाता है । ३१। नैऋत्य (राक्षस) गणों के हितार्थ जलकेतु का निष्क्रमण होता है, अतः यह निर्मम मलिन मास केवल प्रेतों के हित का साधक है अन्य का नहीं । ३२। इसीलिए समस्त प्रेत क्रियाएँ इस मलमास में भी होती रहती हैं, तथा द्विजोत्तम वृन्द ! दैवादि शुभ कार्य इसमें नहीं होते हैं । ३३। प्रसङ्गवश मैं वही (मलमास में क्या करना चाहिए क्या नहीं) कह रहा हूँ, प्रेतसम्बन्धी सपिण्डीकरणादि सभी श्राद्ध मलमास में किये जाते हैं विशेषकर सपिण्डन

यदा तु द्वादशो मासो दैवान्मलिम्लुचो भवेत् । तत्रैव यत्नात्कर्तव्यं क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी ॥३५
 मासान्तरे तु पतिते तस्मिन्नेव मलिम्लुचे । तदा त्रयोदशे मासि कर्तव्यं तत्सपिण्डनम् ॥३६
 वर्ज्यं भासिकया श्राद्धमेकं तस्मिंस्त्रयोदशे । त्रिंशता घटिकैः श्राद्धं वर्धतेऽद्यापि सम्मितम् ॥३७
 कुर्यात्पत्याब्दिकं कर्म प्रयत्नेन मलिम्लुचे । नैमित्तिकं च कुर्वीत नाधिकारस्तयोर्भवेत् ॥३८
 तीर्थस्नानमलभ्यं तत्तदाद्यं देवहर्षनम् । उपवासादिकं कर्म सीमन्तोन्नयनं तथा ॥३९
 आर्तवजं पुंसवनं पुत्रादिमुखदर्शनम् । मलमासेऽपि कुर्वीत शुक्रे चास्तमुपागते ॥४०
 मलमासेऽपि कुर्वीत नुपाणामभिषेचनम् । व्रतारम्भं प्रतिष्ठां च चूडाकर्म च भेखलास् ॥४१
 मन्त्रोपत्सां रहस्यं च महादातं सुमङ्गलम् । विवाहं च गृहारम्भं प्रवेशं नदवेशमनः ॥४२
 उपग्रहं गवाहीनामाश्रमान्तरसङ्क्रमम् । दीर्घमात्रासु नेत्रं वै तीर्थयात्रावेचनम् ॥४३
 वर्षवृद्धिवृषोत्सर्गकन्याद्विन्यनादि च । यज्ञं च कामिकं विद्वान्मलमासे विवर्जयेत् ॥४४
 एवमस्तं गते शुक्रे वृद्धबाल्ये च सन्त्यजेत् । पादास्तं च महास्तं च द्विविधं चास्तमस्य तु ॥४५
 द्विसप्ततिर्दिनान्यस्य महास्तं पूर्वतो भवेत् । पृथिव्यामेव पादास्तं भवेद्वादशदत्सरान् ॥४६
 ऊनपञ्चाशादधिकं दिवसानां शतद्वयम् । प्रतीच्यामुदितः काव्यो दृश्यो भवति सर्वदा ॥४७
 एकर्षे गुरुणा युक्तो यावत्तिष्ठति भार्गवः । मलमासवत्कर्माणि प्राहुस्त्याज्यानि सर्वशः ॥४८

भी । ३४। दैवयोगात् यदि दारहवें (वार्षिक) मास मलमास हो जाये, तो प्रेत का वार्षिक श्राद्ध उसी मास में करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । यदि मास के भीतर ही मलमास उपस्थित हो जाये तो तेरहवें मास में सपिण्डन विधान समाप्त करना चाहिए । ३५-३६। केवल मासिक श्राद्ध उसे तेरहवें मास में निषिद्ध है, (वृद्धि के लिए) तीस घटिका (घड़ी) के अनुसार आज भी श्राद्ध-वृद्धि सर्वसम्मत ही है । ३७। (पति का) वार्षिक एवं नैमित्तिक कर्म मलमास में प्रयत्नपूर्वक करना चाहिए, किन्तु दोनों के अधिकार कर्म नहीं किये जा सकते हैं । ३८। दुर्लभ तीर्थ स्नान, देवताओं के दर्शन, उपवास आदि कर्म, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, और मूल (गणना) संज्ञक नक्षत्रों की शान्ति समेत संतान मुखदर्शन मलमास एवं शुक्रास्त में भी किये जाते हैं । ३९-४०। राजाओं के अभिषेक (राजतिलक), देवों के आरम्भ, देवों की प्रतिष्ठा, चूडाकर्म (मुण्डन), भेखलाबन्धन, मंत्र की सिद्धि, एवं रहस्य समेत उसका ज्ञान, महादान, अत्यन्त माङ्गलिक कर्म, विवाह, गृहारम्भ, गृहप्रवेश गौओं का क्रय तथा स्थान परिवर्तन, विशाल संभार का यज्ञ, तीर्थ यात्रा एवं उसमें अभिषेक, वार्षिक, वृद्धि-श्राद्ध, वृषोत्सर्ग, कन्याओं के द्विरागमन, और काम्य-यज्ञ के परित्याग मलमास में विद्वानों को करना चाहिए । ४१-४४। इसी भाँति शुक्र के अस्त तथा वाल्य वृद्ध होने के समय भी । पादास्त (चौथाई अंश से अस्त) और महास्त (सम्पूर्णतः) इस प्रकार शुक्र का अस्त दो भाँति का होता है । ४५। पूर्व दिशा में बहतर दिन तक शुक्र का महास्त होता है, और इस भूतल में बारह दिन का उनका पादास्त होता है । ४६। इस प्रकार शुक्र दो सौ उनचास दिन तक पश्चिम दिशा में सर्वदा दिखायी देते हैं । ४७। एवं नक्षत्र पर वृहस्पति समेत शुक्र जितने दिन स्थित रहते हैं, मलमास की भाँति उस समय भी उपरोक्त कर्मों के परित्याग आवश्यक होते हैं । ४८।

ऋक्षभेदे त्वेकराशौ सम्पर्कं यदि वानयोः । गुरो राहोरपि तथा त्यजेद्विद्वान् संशयः ॥४९
 सिंहे राशौ स्थिते सूर्ये जीवे चास्तमुपागते । हेयानि यानि कर्माणि निषिद्धानि मलिम्लुच्चे ॥५०
 मिथुनस्थे यदा भानौ मलमासः पत्तयस्तौ । द्विराषाढ इति ख्यातो गौणे शब्दविवर्तनात् ॥५१
 फलं चात्र मृतस्यौर्ध्वदेहिङ्कं कर्म कुर्वता । आषाढकीर्तनं कार्यमेवं वर्षान्तरेऽपि च ॥५२
 आषाढद्वयसंयुक्तपूर्णमासीद्वयं तथा । युग्मकर्फटयो राश्योद्विराषाढस्तदा भवेत् ॥५३
 भवेद्गौणे द्विराषाढो राशिस्तत्रैव संयुते । पूर्वत्रिके तु पतिते तदेव भगवान्तरिः ॥५४
 कर्कटे शयनं कुर्यादायमिष्यं परत्रके ! ककिण्यर्के सुप्तहरौ शक्रपूजाश्चिने नजेत् ॥५५
 दुर्गोत्थानं तुलायां तु विष्णुर्निर्द्रां जहात्यसौ ॥५६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वाणि द्वितीयभागे मासवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः । ६

अथ सप्तमोऽध्यायः

तिथिविधानदर्णनम्

सूत उवाच

दैवं वा पैतृकं कर्म कालमाश्रित्य वर्तते । काले तान्येव कर्माणि फलं यच्छन्ति कुर्वताम् ॥१

नक्षत्र भेद होने पर भी एक राशि में स्थित इन दोनों में किसी के साथ राहु का सम्पर्क स्थापित हो जाये तो उस समय भी विद्वानों को उन कर्मों के परित्याग करने चाहिए । ४९। सिंह राशि में स्थित सूर्य एवं वृहस्पति के अस्त समय में भी मलमास में निषिद्ध किये गये कर्मों के परित्याग आवश्यक होते हैं । ५०। सूर्य के मिथुन राशि पर स्थित रहते समय मलमास के उपस्थित होने पर दो आषाढ मास होते हैं, इस प्रकार गौणों में शब्द विवर्तन किया गया है । ५१। इसमें मृत प्राणी के अन्त्येष्टि कर्म करते हुए आषाढ कीर्तन करना चाहिए । वर्षान्तर में भी यही बताया गया है । ५२। दो आषाढ मास की प्राप्ति में पूर्णिमा भी दो होती है, तथा मिथुन और कर्क राशि में भी दो आषाढ का योग आ जाता है । ५३। दोनों आषाढ मासों के योग को संघटित करने वाली राशि गौण मानी जाती है, इस प्रकार पूर्व की तीनों राशियों को एक त्रिक में मलमास के उपस्थित हो जाने पर भगवान् विष्णु आने वाले त्रिक के कर्क राशि में शयन करते हैं । कर्क राशि स्थित सूर्य के समय भगवान् के शयन करने पर शक्रपूजा आश्विन मास में होती है और दुर्गा का उत्थान भी । ५४-५५। तुला राशि में सूर्य की उपस्थिति के काल में भगवान् विष्णु अपनी निद्रा का त्याग करते हैं । ५६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में मास-वर्णन नामक छठाँ अध्याय समाप्त । ६।

अध्याय ७

तिथि-विधान-वर्णन

सूत बोले—देव-कर्म और पितृ-कर्म काल (समय) के ही आश्रित रहते हैं, समय पाकर ही वे कर्म अपने करने वालों को फल प्रदान करते रहते हैं । १। बाल्यावस्था के क्षण जिन कर्म-फलों को प्रदान करते

मुहुर्बाल्ये कर्मफलं त्रिकालेऽपि न विद्यते । व्ययो वा मुख्यभावेन फलदः कर्मशालिनाम् ॥२
कालस्तु गुणभावेन सर्वकालाश्रिता क्रिया । न कालेन विना किञ्चित्त्रिषु लोकेषु जायते ॥३
अतः कालं प्रवक्ष्यामि निमित्तं कर्मणामिह । काले ह्यमूर्तिर्गवानेक एव तु वद्यापि ॥
तथाप्यपाधिभेदेन भिद्यते कालभेदिभिः ॥४

तिथिनक्षत्रदारादौ रात्रयोगादयोऽपि दे । तेऽपि कालाः पक्षमासराशिवर्षान्तरेऽपि च ॥

साधनानि भवन्त्येते स्वातन्त्र्येण न कस्यचित् ॥५

धर्मस्य वाप्यधर्मस्य मुख्यो व्यापत्तर एव सः । तिथ्यादिकालभावेषु निषिद्धं निहितं हि तत् ॥६
पालयन्स्वर्गमाश्रोति हित्वा प्राप्नोत्यधोगतिम् । साधयन्त्यपि कर्माणि परस्परमवेक्ष्यते ॥७
कालभागो निःसहायो येऽपि स्युः कर्मसाधनाः । तिथौ पूर्वाह्लव्यापिन्यां कुर्वीत कर्म वैदिकम् ॥८
एकोद्दिष्टं तु मध्याह्लव्यापिन्यां हि सप्राचरेत् । पराह्लव्यापिनीं प्राप्य तिथिं कुर्यात् पार्वणम् ॥९
न तु पूर्वाह्लमध्याह्लपराह्लेषु यथोचितम् । अप्रधाने तु कुर्वीत कर्म दैवादिकं च यत् ॥१०
एको हि कालः प्रातस्तु वृद्धिश्राद्धादित्ताधने । नापेक्षते साहाय्यं तत्तिथ्यादिविषुवादिषु ॥११
देवेभ्यो ब्रह्मणा दतः पूर्वाह्लस्तिथिभिः सह ! पितृभ्यो ह्यपराह्लत्तु पार्वणं तु परं विना ॥१२
पूर्वाह्लमात्रसम्प्राप्तौ ततो देवानप्रपूजयेत् । पूर्वाह्लस्पर्शमात्रेऽपि तिथिखण्डेन चार्पयेत् ॥१३

हैं, वे पुनः त्रिकाल में संभव नहीं होते हैं। इस प्रकार कर्मशील प्राणियों के लिए (सुख-दुःख) रूप फल मुख्य रूप से काल ही प्रदान करता रहता है । २। समस्त क्रियाएँ गुणभाव से काल के ही आश्रित रहती हैं, विना काल के कोई भी वस्तु तीनों लोकों में संभव नहीं होती है । ३। इसलिए कर्मों के निमित्त कारण रूप काल की व्याख्या कर रहा हूँ, यद्यपि किसी समय अमूर्त (निराकार) भगवान् एवं ही रहते हैं, पर, कालभेदी (कर्मों) एवं उपाधियों द्वारा वे साकार रूप में प्रकट होते हैं । ४। तिथि, नक्षत्र, दिवस आदि एवं रात्रि योग आदि सभी काल के रूप कहे जाते हैं, इस प्रकार पक्ष, मास, राशि, एवं वर्षान्तर में भी काल किसी के स्वतन्त्र साधन नहीं होते हैं । ५। धर्म और अधर्म मुख्य कालभाव से उसमें निषिद्ध और गृहीत होता है । ६। उसके पालन से स्वर्ग की प्राप्ति और त्याग से अधोगति होती है, इस प्रकार कर्म को सिद्ध करते हुए एक दूसरे को देखा करते हैं । ७। इस भाँति काल-भाग निःसहाय और कर्म साधक हैं, पूर्वाह्ल व्यापिनी तिथि में ही वैदिक कर्म करना चाहिए । मध्याह्ल व्यापिनी तिथि में एकोद्दिष्ट श्राद्ध और पराह्ल व्यापिनी तिथि में पार्वण श्राद्ध करना बताया गया है । ८-९। दैवादिक कर्म के लिए कोई प्रधान समय नियत नहीं है, इसलिए सभी समय में उसकी यथोचित पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए, क्योंकि उसमें पूर्वाह्ल, मध्याह्ल और पराह्ल का संकेत नहीं है । १०। एक ही काल प्रातः की सहायता (प्रातःकाल) से वृद्धि श्राद्धादिकों की साधक होती है, और वही तिथ्यादि एवं विषुवादि में किसी प्रकार की सहायता न स्वीकार कर निरपेक्ष रहता है । ११। ब्रह्मा ने देवों को तिथियों के साथ पूर्वाह्ल (समय) भी प्रदान कर दिया उसी भाँति पितरों के लिए एक पार्वण (श्राद्ध) के अतिरिक्त (सभी श्राद्ध के लिए) अपराह्ल काल । १२। इसलिए पूर्वाह्ल (काल) मात्र की प्राप्ति में देवताओं की अर्चा सुसम्पादन करनी चाहिए, तिथियों के खण्डित होने पर भी पूर्वाह्ल काल का केवल स्पर्शमात्र होने से उस समय उन्हें उनकी

खर्वा दर्पा तथा हिंसा तिथिश्च त्रिविधा भवेत् । खर्वादि लङ्घयेन्तुल्या दर्पा भवति वृद्धिता ॥१४
हिंसा तु क्षयज्ञा ज्ञेया कालभेदेन गृह्णते । खर्वा दर्पा परे प्राह्णा हिंसा प्राह्णा तु पूर्वतः ॥१५
शुक्लपक्षे परः प्राह्णा कृष्णे पूर्वा प्रशस्यते । स्नानदानवते चैद विषयोगो निदर्शितः ॥१६
तिथ्यौ चोदेति सांदर्भा कालमात्रं च वा यदि । अन्यापि सैव विज्ञेया तिथिस्तदेमव्याहृनिश्च ॥१७
यथावास्ते रविर्भाति घटिका दश वापि वा । सा तिथिस्तदहोरात्रं व्यपदेश्या ए चेतरा ॥१८
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे खर्वा दर्पा तिथिश्च या । यथास्तं लक्षित याति पितृकार्यं च सा तिथिः ॥१९
दिनद्वयेऽपि कुतपे अस्त्वां तिथिमाश्रयेत् । श्राद्धकालादिकं यत्र तत्र श्राद्धं विधीयते ॥
वते च वृद्धिगार्भामयां यत्रोदयो रवेभवेत् ॥२०

अमावस्यापर्वणे च सा तिथिः पितृपूजने । अमावस्यामृतस्यैव पार्वणं यत्र कुञ्चित् ॥२१
अस्त्वामितिथियंत्र सा तिथिः पितृमन्दिरम् । एकोद्विष्टं चरेत्तत्र नोदये च कदाचन ॥२२
शुक्लपक्षे च कृष्णे च यो योगः परपूर्वयोः । पूर्वेयुर्वा परेयुर्वा त्रिसन्ध्यव्याप्तिनी तिथिः ॥
सा पूज्या च स्वकृत्येषु पक्षयोरुभ्योरपि ॥२३

पूज्या हि व्यस्तं सन्त्यज्य पूर्वं चैकादशीयुगम् । द्वितीया वक्ष्युक्ता चतुर्थी पञ्चमीयुता ॥२४
एता उपोष्यास्तिथयः पुण्याः स्युर्धर्मदेविभिः । एतद्व्यस्तास्तु पुण्यानि घनन्ति पूर्वकृतान्यपि ॥२५

वस्तुएँ समर्पित की जाती हैं । १३। खर्वा, दर्पा, और हिंसा के भेद से तिथियाँ तीन भाँति की बतायी गयी हैं, क्षीण तिथि खर्वा, तिथियों की वृद्धि दर्पा, एवं लुप्त प्राय तिथियाँ हिंसा कही जाती हैं । १४-१५। खर्वा तथा दर्पा नाम की तिथियों का पर उत्तर काल और हिंसा का पूर्व काल गृहीत होता है । स्नान, दान, व्रत एवं विषयोग के लिए शुक्ल पक्ष की परा और कृष्ण पक्ष की पूर्व (पूर्वकाल वाली) तिथियाँ प्रशस्त कही गयी हैं । जिस तिथि के क्षणमात्र समय में सूर्योदय होता है और उस क्षण के अनन्तर दूसरी तिथि का प्रवेश होता है, किन्तु, वह प्रविष्ट हुई तिथि अपने पूर्व तिथि के नाम से उस दिन रात तक व्यवहृत की जाती है । १६-१८। जिस प्रकार सूर्य विद्यमान रहते हैं, उसी भाँति कोई भी तिथि दश घटिका (घड़ी, या दंड) तक विद्यमान रहे तो उस रात वही तिथि गृहीत होती है, दूसरी नहीं । १९। शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष की खर्वा एवं दर्पा नाम की कोई तिथि, जिसके समय में सूर्य अस्त हों, पितृकार्य में ग्रहण की जाती है । २०। दोनों-दिनों में कुतप (श्राद्ध काल) के प्राप्त होने पर सूर्यास्त की ही तिथि ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि श्राद्धकाल आदि जिस तिथि में प्राप्त हो, उसी में श्राद्ध विधान बताया गया है, और व्रत के लिए वृद्धि तिथि, जिसमें सूर्योदय होता है, ग्रहण करना चाहिए । २१। पार्वणश्राद्ध तथा पितरों के पूजन में अमावस्या तिथि गृहीत होती है, एवं अमावस्या तिथि में प्राणोत्सर्ग करने वाले ही प्राणी के लिए पार्वण श्राद्ध जहाँ कहीं किया जा सकता है । २२, सूर्यास्त के समय वर्तमान रहने वाली ही तिथि पितरों के मंदिर के रूप में होती है, उसी में एकोद्विष्ट नामक श्राद्ध करना चाहिए, उदया (तिथि) में कभी नहीं । शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्ष में पूर्व-पर के दिनों में जब कभी वह योग प्राप्त हो, जिसमें तीनों संध्याओं में वही (एक) तिथि वर्तमान रहे, चाहे वह पहले दिन में हो या दूसरे दिन वहीं दोनों पक्षों में अपने कृत्यों (कार्यों) में पूजनीय मानी गयी है । २३-२४। विपरीत तिथियों के त्याग पूर्वक एकादशी आदि एवं अग्नि

बाणेन विद्वा या षष्ठी मुनिविद्वा तथाव्यक्ती । दशम्येकादशीविद्वा त्रयोदश्या चतुर्दशी ॥२६
 अमावस्या भूतविद्वा नोपेष्या मुनिनार्थि च । हन्ति पुत्रकलत्राणि धनानि समुपोषिता ॥२७
 विद्वा ये नाभिनिन्द्याः स्मुर्युत्सास्तेनाभिनन्दिताः । व्यस्तस्य सम्भवे युग्मं विद्वा भवति सर्वशः ॥२८
 तामस्तां तु तिर्थं प्राप्य युग्मान्यपूज्यतामिदुः । युग्मानि च दिवायोगे ग्राहाणि व्यस्तनिन्दनम् ॥२९
 नक्तादिवहत्योर्गं तु दिवासंबद्धमर्करन् । रात्रियोगश्चतुर्थ्योर्स्तु विशिष्य परिगृह्णते ॥३०
 रात्रियोगं विज्ञाएः स्यादेकादश्यादिकं व्रतम् । नक्तं जगरणं चैव विनियोगेऽपि शस्यते ॥३१
 एकादश्युपवत्सं तु द्वादशीयोगतश्चरेत् । दिवायोगे तु सम्पूर्णा त्वजेदुभयपूर्वतः ॥३२
 रात्रियोगे तु सम्पूर्णा सोपास्त्यैकादशी सदा । सप्तमी शुक्लपक्षेऽपि पूज्या दश्छ्या समन्विता ॥३३
 निशि तु स्याद्यदा षष्ठी सप्तमी नवमी दिवा । उपोष्य केवलां षष्ठीं तोषयेद्वास्करं नरः ॥३४
 एवं त्रयोदशीं कृष्णां विधिप्राप्तां विना द्विजाः । उपोष्य पार्वतीनाशं तोषदेव्यश्च केवलम् ॥३५
 दिवा त्रयोदशीयुक्ता कृष्णोपेष्या चतुर्दशीः परेणार्थि चतुर्दश्याः न तु कुर्यादभातिथौ ॥३६
 त्रिसन्ध्यव्यापिनीं प्राप्य यदि कुर्यादुपोषणम् । पारणं तु सिनीवाल्यां चतुर्दश्यामुपोषयेत् ॥३७
 चतुर्दशीमतिक्रम्य सिनीवाल्यां तु पारणात् । व्रतानि तस्य नश्यन्ति प्राकृतानि चतुर्दशीम् ॥३८

युक्त द्वितीया, चतुर्थी, और पंचमी इन्हीं पूजनीय तथा पुण्यस्वरूप तिथियों के उपवास धर्म-वेत्ताओं को करना चाहिए । इनके अनियमित व्यवहार से पूर्व संचित भी पुण्य नष्ट हो जाते हैं । २५-२६। बाण विद्वा (युता) षष्ठी, मुनि विद्वा अष्टमी, दशमी विद्धा एकादशी, त्रयोदशी विद्वा चतुर्दशी, भूतविद्वा अमावस्या, तिथियों के उपवास मुनियों को भी न करना चाहिए । अन्यथा पूत्र, स्त्री, एवं धन का महान् विनाश उपस्थित होता है । २७-२८। जो विद्व तिथियाँ निन्दित नहीं हैं, उससे युक्त तिथियाँ प्रशस्त होती हैं, और विपरीत संभव होने पर युग्म ही तिथि विद्वा हो जाती हैं । २९। अस्त समय में उन तिथियों के वर्तमान रहने पर युग्म तिथियाँ अपूज्य हो जाती हैं, दिन के योग में ही उनका ग्रहण करना बताया गया है और विपरीत तिथियों की निन्दा भी की जाती है । ३०। नक्तादि व्रत के योग में दिवस सम्बन्धी तिथियों का ग्रहण किया जाता है तथा रात्रि योग में विशेष कर चतुर्थी का ग्रहण होता है । ३१। एकादशी आदि व्रत रात्रि योग के संभव न होने पर भी किया जाता है क्योंकि रात्रि का जागरण विनियोग के लिए भी प्रशस्त होता है । ३२। द्वादशी के योग होने पर ही एकादशी का उपवास करना चाहिए, किन्तु दिन में ही यदि द्वादशी संभव हो तो पूर्व दिन की एकादशी त्याज्य बतायी गयी है । ३३। उसी भाँति रात्रि में द्वादशी संभव होने पर सदैव सम्पूर्ण एकादशी का ही व्रत करना चाहिए । शुक्ल-पक्ष की सप्तमी षष्ठी युक्त होने पर ही पूजित होती है । ३४। रात्रि में षष्ठी संभव हो और सप्तमी नवमी केवल दिन में, उस समय मनुष्य को केवल षष्ठी के उपवास द्वारा भास्कर को प्रसन्न करने की चेष्टा करनी चाहिए । ३५। इसी भाँति द्विजगण ! कृष्ण-पक्ष की विधि प्राप्त हीन त्रयोदशी के संभव होने पर केवल उसी के उपवास द्वारा भूतनाथ महादेव को प्रसन्न करना बताया गया है । दिन में त्रयोदशी के युक्त होने पर कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी का उपवास करना चाहिए, किन्तु, द्वासरे दिन चतुर्दशी युक्त अमावस्या के उपवास का निषेध किया गया है । ३६-३७। तीनों संध्याओं में व्याप्त रहने वाली चतुर्दशी की प्राप्ति होने पर उपवास करके पारण अमावस्या में करना

सप्तमी ललिता भाद्रे शक्तोत्थानं च वारुणी । पूज्याप्रैताः पराः कुर्यात्त्रिसन्ध्यव्यापिनीष्वपि ॥३९
 त्रिसन्ध्याव्यापिनी पूर्वे परतो वर्द्धते यदि । सक्रक्षा ऋक्षयोगे तु क्रक्षाभावे परः युता ॥४०
 क्रक्षाभावे परा ग्राह्णा त्रिसन्ध्यव्यापिनीष्वपि । श्रावणे चाद्यपादे तु प्रशस्ता शक्रपूजने ॥४१
 अभावे चोत्तराषाढा धनिष्ठा च विशिष्यते । दण्डर्धं दण्डमेकं च तदर्धं पलमेव च ॥४२
 उदये संयुता ग्राह्णा सा तिथिश्चोत्तमा भवेत् । त्रिसन्ध्यव्यापिनी हित्वा पूज्या शुक्लाष्टमी पदः ॥४३
 रविचक्रवता ग्राह्णा रथे तिथ्यादेरपि च । त्रिसन्ध्यव्यापिनी या तु पलमेकं चरे दिने ॥४४
 अपरेऽपि च सर्वत्र हलानां वाहनं त्यजेत् । शुक्लैकादश्यमावान्यासङ्कान्त्यां श्राद्धवासरे ॥४५
 नरावगोगजादीनां वाहनात्पतकी भवेत् ॥४६
 कर्तुर्गोमहिषादीनां गर्दभोष्ट्रखरस्य च । न वाहयेद्वासदार्तीं वाहनेनास्ति दूषणम् ॥४७
 बहुकःलिक्यज्ञे च यज्ञश्राद्धे तथैव च । ग्रामान्तरे न दोषः स्याद्वित्व नद्यन्तरेऽपि च ॥४८
 नित्यश्राद्धेऽप्यम्बुधटे यच्छ्राद्धं मासिकं भवेत् । तत्र गोमहिषादीनां वाहने नास्ति दूषणम् ॥४९
 कुर्यादिम्बुधटश्राद्धं न कालनियमं क्वचित् । न चान्ननियमं कुर्यादश्मपात्रं च वर्जयेत् ॥५०

चाहिए, चतुर्दशी में केवल उपवासहीन चतुर्दशी का अतिक्रमण कर सिनी वाली अमावस्या में (जिस अमावस्या में चन्द्रमा दिखाई पड़ते हैं) पारण करने से पूर्व चतुर्दशी में किये गये व्रत नष्ट हो जाते हैं । ३८। भाद्रपद शुक्ल की ललिता सप्तमी, शक्तोत्थान वारुणी तिथियाँ तीनों संध्याओं में वर्तमान रहने पर भी परा (दूसरे दिन) भी पूजनीय होती है । ३९। पूर्वदिन तीनों संध्याओं में व्याप्त रहने एवं नक्षत्र योग के प्राप्त होने पर दूसरे दिन यदि उसकी वृद्धि संभव हो तो पूर्व दिन की तिथि का ही ग्रहण होता है, और श्रवणनक्षत्र के प्रथमचरण में उसकी प्राप्ति होने से वही शुक्र (इन्द्र) पूजन में भी प्रशस्त बतायी गयी है । ४०-४१। उसके अभाव में उत्तराषाढा में और विशेषकर धनिष्ठा का ग्रहण किया जाता है । सूर्योदय में एक दण्ड उसका अर्धभाग एक पल अथवा उसका अर्धभाग भी जिस तिथि का प्राप्त हो, वही उदया तिथि (कर्मों के लिए) उत्तम मानी गयी है । शुक्ल-पक्ष की त्रिसन्ध्य व्यापिनी तिथि का त्याग करके दूसरे दिन की अष्टमी भी ग्रहण करनी चाहिए । ४२-४३। रथयात्रा आदि में तिथ्यादिकों के विषय में भूर्य चक्र (सूर्योदय) प्राप्त तिथि का, जो तीनों संध्याओं में व्याप्त रहती हुई दूसरे दिन भी (कम से कम) एक पल अवश्य वर्तमान रहे, ग्रहण करना बताया गया है । ४४। दूसरे दिन भी सर्वत्र हल चलाना स्थगित रखना चाहिए । उसी प्रकार शुक्ल एकादशी, अमावस्या, संक्रान्ति के दिन, और श्राद्ध के दिनों में मनुष्य को वाहन पालकी आदि यान (सवारी) पर अश्व, बैलगाड़ी, और हाथी आदि की सवारी करने से पातक भागी होना पड़ता है । ४५-४६। बैल, भैंस आदि एवं गधे, उंट, तथा खच्चर की सवारी पर गृहस्वामी को (उन दिनों) चलना चाहिए और दास दासी को (उससे) चलने फिरने में कोई दोष नहीं होता है । ४७। अधिक समय के अनुष्ठान यज्ञ तथा यज्ञ श्राद्ध में दूसरे गाँवों में दिन के समय जाने में कोई दोष नहीं होता है, उसी भाँति नदी तट की भूमि तक जाने में भी । ४८। नित्य श्राद्ध, (श्राद्ध के निमित्त) घड़े में जल लेने के लिए, एवं मासिक श्राद्ध के अवसर पर बैल, भैंस की गाड़ी द्वारा आने-जाने में दोष नहीं होता है । ४९। कुम्भ श्राद्ध करने में समय का नियम नहीं है, किन्तु पत्थर पात्र का त्याग आवश्यक है । ५०।

तैजसैर्निर्मितं कुम्भमथवा वृक्षपत्रजन् । न योजयेन्मृष्मयं च शूद्राणां मृष्मये विधिः ॥५१
 निवेदयेच्च मासान्ते मृष्मयं वृक्षमूलके ; आस्कालयेत्परेजैव न वस्त्रं तु कथञ्चन ॥
 पर्वशाङ्के दैवतलकं तथा रण्डाश्रमं त्यजेत् ॥५२
 मातृपितृपरित्प्राणी तैलहृव्यादिविक्रीयी । चत्वारिंशदुत्सवानां साप्तानां च चरेण्डादि ॥५३
 स्त्रिया विमुच्यते कश्चित्स तु रण्डाश्रमी मतः । अष्टचत्वारिंशदब्दं वयो धावन्न पूर्व्यते ॥५४
 पुत्रभार्यावियुक्तस्य नास्ति यज्ञाधिकारिता ॥५५
 या तिथिं समनुप्राप्य तमुद्देति दिवाकरः । स्नानाध्ययनदानेषु सा तिथिः सकला स्मृता ॥५६
 यपास्तं सविता याति कृष्णपक्षे तु सा तिथिः । पितृणां सकला ज्ञेया स्नानदानादिकर्मसु ॥५७
 सन्तमी शुक्लपक्षे या यावदिच्छेच्च खण्डता । आद्यभागे रवेः षष्ठ्यां परादौ याव्यटमीयुता ॥
 यद्यखण्डा भवेत्सैव तदा ज्ञेया भवात्मिका ॥५८
 माष्टभासेन साव्येवं पूर्वेण रवितोषिणी । मन्वन्तरा परेणैव स्नानपानादिकर्मसु ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे
तिथिविधानवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

कुम्भ शाद में सुर्वण अथवा वे वृक्ष पात्र के घर होने चाहिए मिट्टी के नहीं, क्योंकि मिट्टी के घड़े शूद्रों के विधान में बताये गये हैं । ५१। मास के अन्त में केवल उस मिट्टी के घड़े को किसी वृक्ष के मूल भाग में रखकर किसी दूसरे पुरुष द्वारा हटवा दे, वस्त्रों को नहीं । पार्वण-शाद में दैवलद (मन्दिर के पुजारी) और वेश्याओं के आश्रम का त्याग करना चाहिए । ५२। माता-पिता का परित्याग करने वाले, तेल, हव्य आदि का विक्रेता, तथा अड़तालिस उत्सवों का कर्ता और स्त्री द्वारा परित्यक्त पुरुष वेश्याओं के यहां रहता हो और अड़तालीस वर्ष की आयु की समाप्ति तक उसका वहाँ रहना यद्यपि अभीष्ट भी हो, एवं स्त्री पुत्र के वियोगी इन उपरोक्त व्यक्तियों को यज्ञाधिकार नहीं प्राप्त है । जिस तिथि-काल में भगवान् भास्कर उदय होते हैं, स्नान, अध्ययन, तथा दान के लिए वही उदया तिथि ग्रहण की जाती है । कृष्ण पक्ष की (श्राद्ध मूलक) जिन तिथियों में भास्कर अस्ताचल पहुँच जाते हों, पितरों के निमित्त स्नान-दान आदि कर्मों में उसी का ग्रहण करना बताया गया है । ५३-५७। शुक्ल-पक्ष की सप्तमी अधिक खण्डित क्यों न हो, षष्ठी युक्त उसके प्रथम भाग में तथा दूसरे दिन अष्टमी संयुक्त होने पर उसके पूर्व भाग में सूर्य की अर्चा आदि करनी चाहिए यदि वह (सप्तमी) खण्डित न हो तो उसे अत्यन्त प्रशस्त और भवात्मिका जाननी चाहिए । माघ में भी इसी प्रकार की सप्तमी सूर्य को सन्तुष्ट करने वाली बतायी गयी है, और मन्वन्तरों के स्नान पान आदि कर्मों के लिए दूसरे दिन वाली प्रशस्त कही गयी है । ५८-५९

**श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पण के द्वितीय भाग में तिथिविधान वर्णन नामक
सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।**

अथाष्टमोऽध्यायः उत्तमतिथिनिर्णयवर्णनम्

सूत उवाच

तिथीनां प्रवरा यस्माद्द्रहणा सनुदाहृता । प्रतिपादिता परे धूर्वे प्रतिपाद्य नवोदयते ॥१
 कार्तिकाख्युजोश्चैत्रं माघे चापि विशेषतः । स्नानं दानं दशगुणं शिवविष्णोश्च पूजनम् ॥२
 अग्निमिष्टा च कृत्वा च प्रतिपद्याभिति स्मृतम् । हविषा सर्वधान्यानि ब्राह्म्यादीप्सितं धनम् ॥३
 वृहस्पतौ द्वितीयायां शुक्लायां विध्यपूजनम् । कृत्वा नक्तं समश्नीयाल्लभते भूतिभीस्तिम् ॥४
 मिथुने कर्कटे चैव गोविप्रदमनात्तरम् । द्वितीया यातु विप्रेन्द्रात्तामुयोष्य हर्ति यजेत् ॥
 यामुपोष्य न वैधव्यं प्रयत्निति स्त्री न संशयः ॥५
 अमूल्यशयनं मासं दम्पती प्रतिपूजयेत् । वासोभिर्गन्धपुज्यैश्च नानाभक्षयैः ॥६
 वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च । गड्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥७
 स्वातियुक्ततृतीयायां वैशाखे तु विशेषतः । माघे तु रोहिणीयुक्ता वृषे चाख्युजे तथा ॥८
 तस्यां यद्यीयते किञ्चित्तदक्षयमुदाहृतम् । विशेषतो हविष्याक्षं मोदकादिसमायुतम् ॥९
 तोयदानं विशेषेण प्रशंसन्ति मनीषिणः । गुडकर्पूरसंयुक्तं ब्रह्मलोके महीयते ॥१०

अध्याय ८ उत्तम तिथियों के निर्णय का वर्णन

सूत बोले—ब्रह्मा ने जिस कारण तिथियों को उत्तम बताया है, और उनके पूर्व पर के निर्णय को भी मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कार्तिक, आश्विन, चैत्र, विशेषकर माघ-मास में स्नान-दान शिव और विष्णु के पूजन करने से दशगुणे (अधिक) पुण्य की प्राप्ति होती है । १-२। प्रतिपदा में अग्नि होत्र, हव्य द्वारा हवन आदि जिसका करना इसमें प्रशंस्त बताया गया है, सभी प्रकार के धान्य और मनोनीत धन की प्राप्ति होती है । ३। शुक्ल-पक्ष में वृहस्पति के दिन प्राप्त द्वितीया तिथि में ब्रह्म-पूजन और नक्त व्रत करने से मनोवांछित ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । ४। विप्रेन्द्र ! मिथुन और कर्क राशि में सूर्य की स्थिति के समय और गो ब्राह्मण के दमन के उपरांत जो द्वितीया तिथि प्राप्त होती है, उसमें उपवास रहकर विष्णु का पूजन करना चाहिए । और उसी में उपवास रहने पर स्त्री कभी विधवा नहीं होती है, इसमें संदेह नहीं । ५। भगवान् विष्णु का यह शयन मास चौमासा (चर्तुमास) अत्यन्त अमूल्य है, दम्पती (स्त्री पुरुष को एक साथ) चाहिए कि वस्त्र, गन्ध, पुष्प और भाँति-भाँति के अनेक भक्ष्य पदार्थ द्वारा उसकी पूजा करें । ६। उसी वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन गंगाजल में स्नान करने से शुनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है । ७। विशेषकर स्वाती नक्षत्र युक्त होने पर उस तृतीया का अत्यन्त महत्व है । उसी प्रकार माघ, वृष (ज्येष्ठ) और अश्विन मास की रोहिणी नक्षत्र युक्त तृतीया का भी महत्व बताया गया है, उसमें जो कुछ दिये जाते हैं वे अक्षय होते हैं, विशेषकर स्त्रीर और मगद (लड्डू) समेत देना चाहिए । ८-९। मनीषियों ने उसमें तपोदान की अधिक प्रशंसा की है, उसमें गुड़ और कपूर समेत प्रदान करने से वह ब्रह्म लोक में सम्मानित

बुधश्ववगसंयुक्ता तृतीया यदि लभ्यते । तस्यां स्नानोपवासाद्यमक्षयं परिकीर्तितम् ॥११
चतुर्थीभरणीयोगे भवेच्चरदिनं यदा । तदाभ्यर्थ्यं यमं देवं मुच्यते सर्वकिल्बणः ॥१२
शिवा शान्ता मुखा चैव चतुर्थी निविधास्मृता । सापि भाद्रपदे शुक्ला शिवलोके सुपूजिता ॥१३
कार्तिके तु भवेच्छाया तथा मध्ये तु कीर्त्यते । तस्यां स्नानं तपो दानमुपवासो जपस्तथा ॥

भवेत्सहस्रगुणितं श्राद्धं भवति चाक्षयम् ॥१४

गणेशे क्षारयेत्पूजां नोदकादिभिरादरात् । चतुर्थ्या विघ्ननाशाय सर्वकामप्रसिद्ध्ये ॥१५
श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे विशेषतः । पूजयेद्वधेदुग्रधाद्यः सिन्धूरैरपि भक्तितः ॥१६
तेषां कुले प्रप्रच्छन्ति अभयं प्राणरक्षणम् ॥१७

द्वादश्योभयलेखे च गोमयेन विशेषतः । पूजयेद्विदुग्धाद्यैः स्तिन्दूरैरपि भक्तिः ॥१८
सुप्ते जनार्दने कृष्णपञ्चम्या भवनाङ्गणे । पूजयेन्मनसा देवीं दासां स्तुहीति संश्रयाम् ॥१९
पिचुमन्दत्त्य पत्राणि स्थापयद्वनोदरे । पूजयित्वा नरो देवीं न सर्पभयान्पुर्यात् ॥२०
थे यं भाद्रपदे षष्ठी षष्ठी च द्विजसत्तम । स्नानदानादिकं तस्यां सर्वमक्षयमुच्यते ॥२१
षष्ठ्यां फलाशानो विप्रा विंशेषान् माघकार्तिके । इह चामुत्र नुख्यां च लभते ख्यातिमुत्तमाम् ॥२२
शुक्ले पक्षे च सप्तम्यां यदा सङ्क्रमते रविः । महाजया तदा स्याद्वै सप्तमी भास्करप्रिया ॥२३

होता है। १०। बुधवार के दिन श्रवण नक्षत्र युक्त तृतीया तिथि के प्राप्त होने पर उसमें स्नान और उपवास आदि करने से वह अक्षय होता है। ११। भरणी नक्षत्र युक्त चतुर्थी शनिवार के दिन प्राप्त होने से उसमें यगदेव की पूजा करने वाला समस्त पातकों से मुक्त होता है। १२। शिवा, शांता और सुखा नामक भेद से चतुर्थी तीन प्रकार की बतायी गयी है, वह भी भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी होने से शिवलोक में सविधि पूजी जाती है। १३। कार्तिक तथा माघ मास की छाया नामक चतुर्थी के दिन स्नान, तप, दान, उपवास, एवं जप करने से सहस्र गुने (अधिक) फल की प्राप्ति होती है। तथा उसमें किया गया श्राद्ध अक्षय फल प्रदान करता है। १४। अपनी सभी कामनाओं की निर्विघ्न पूर्ति के लिए (माया) चतुर्थी के दिन मोदक (लड्डू) आदि द्वारा गणेश देव की आराधना सादर सम्पन्न करनी चाहिए। १५। श्रावण मास में विशेषकर शुक्लपक्ष की चतुर्थी के दिन नवसंख्या के नागों का गंधमिश्रित जल से और सुगन्धित पदार्थों के संमिश्रण पूर्वक स्नान कराने से वे (नागगण) उस (व्यक्ति) के कुल में अभय दान एवं प्राण रक्षा प्रदान करते हैं। १६-१७। द्वादशी के दिन दोनों देवों की विशेषकर गोमय (गोबर) की प्रतिमा बनाकर दधि, दूध, आदि पदार्थों और भक्तिपूर्वक सिन्दूर से पूजा करनी चाहिए। १८। जनार्दन भगवान् के शयन काल में कृष्णपक्ष की पञ्चमी के दिन अपने गृहांगण में सौन्दर्यपूर्ण देवी का मनोनुकूल पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए। १९। अपने भवन के आंगन प्रदेश में नीम की पत्ती के आसन पर देवी की पूजा करने से सर्पों का भय नहीं रहता है। २०। द्विजसत्तम ! भाद्रपद (भादों) मास की षष्ठी के दिन केवल फलाहार करने से लोक एवं परलोक की उत्तम स्व्याति प्राप्ति होती है। २१। शुक्लपक्ष के सप्तमी के दिन सूर्य की संक्रान्ति प्राप्त होने से उसकी 'महाजया' संज्ञा होती है, तथा भास्कर के लिए वही

अपराजिता तु भाद्रस्य महापातकनाशिनी । ललिता केवला ज्ञेया पुत्रपौत्रविवर्द्धिनी ॥२४
 शुक्ला वा यदि वा कृष्णा षष्ठी वा सप्तमी तु वा ; रदिवारेण संयुक्ता तिथिः पुण्यतमा त्मृता ॥२५
 आश्विनस्य सिताष्टम्यामष्टादशभूजां यजेत् । कार्त्तिके शुक्लपक्षे दा महाविभवविस्तरैः ॥२६
 अष्टाङ्गे श्रावणे मासि शुक्लाष्टम्यां च चंडिकाम् । प्रातः स्तात्वाच्यैदूदक्त्या रात्रौ संसापयेद्विजाः ॥२७
 चैत्रमासि सिताष्टम्यामशोककुमुमैर्द्विजाः । अर्चयेन्मृग्यर्थं देवीमशोकार्थं च सर्वदा ॥२८
 सत्यष्टम्युहूर्ते वा रोहिणीसहितष्टसी । श्रावणे मासि सिहार्के क्वचित्सापि च शत्यते ॥२९
 एकादशीनां कोटीनां व्रतैश्च लभते फलम् । अतो दशगुणं प्रोक्तं कृत्वैतत्फलमाप्नुयात् ॥३०
 अशक्तोऽन्यक्रियां कर्तुमुपवासं तु केवलम् । कृत्वा विमुच्यते पात्पात्पत्पत्पत्पत्पत् । वरः ॥३१
 न कालनियमरतत्र न वारनियमः क्वचित् । नापि नक्षत्रदोषोरन्ति वारदोषो न गण्यते ॥३२
 त्रिकालं पूजयेद्वेवं दिवा रात्रौ विशेषतः । अर्धरात्रे विशेषेण पुण्यनानाविधैरपि ॥३३
 दिवातिथेरलाभे तु न कुर्याद्विधिद्वत्तम् । रात्रिस्पर्शे यदि परं रजन्यामपि चाष्टमी ॥३४
 सप्तमी सार्धयामं च रोहिणी दा न संस्पृशेत् । व्रती सङ्कल्पयेत्तत्र न च रात्रौ कृदाच्चन ॥३५

अत्यन्त प्रिय भी है । २३। भाद्रपद मास की अपराजिता नामक तिथि महान् पातकों का नाश करती है, और ललिता नामक तिथि केवल पुत्र पौत्र दी वृद्धि । २४। कृष्णपक्ष अथवा शुक्लाक्ष की षष्ठी या सप्तमी तिथि के दिन रविवार प्राप्त हो, तो वह अत्यन्त पुण्यस्वरूप कहलाती है । २५। आश्विन मास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी में महान् ऐश्वर्य के विस्तृत संभार से भगवती अष्टभुजा देवी की उपासना करनी चाहिए, उसी प्रकार कार्त्तिक मास के शुक्ल सप्तमी में भी । २६। द्विजगण ! आषाढ और श्रावण मास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी के दिन भगवती चन्द्रिका देवी की स्नान पूजा प्रातः काल स्नान करके भक्ति पूर्वक करनी चाहिए । २७। द्विजवृन्द ! चैत्रमास के शुक्ल-पक्ष की अष्टमी के दिन देवी की मिट्टी की मूर्ति की आराधना अशोक पुष्पों द्वारा सदैव चिन्ताहीन होने के लिए करनी चाहिए । श्रावण मास की रोहिणी नक्षत्र युक्त अष्टमी का आठवाँ मूहर्त, जब कि सूर्य सिंह राशि पर स्थित हो, तथा अष्टमी भी प्रायः प्रशस्त बतायी गयी है । २८-२९। कोटि एकादशी व्रतविधानों द्वारा जितने फल प्राप्त होते हैं, उससे दश गुने अधिक पुण्य फल इसके सविधान समाप्तिं द्वारा प्राप्त होते हैं । ३०। अन्य क्रियाओं के करने पर अशक्त होने पर भी केवल उपवास द्वारा ही उसे समस्त पापों से मुक्ति और सात कृत्यों के करने वालों में श्रेष्ठता की प्राप्ति होती है । ३१। उस पूजन में समय का कोई नियम नहीं है, दिन का भी नियम कहीं बताया नहीं गया है, और नक्षत्र-दोष एवं वार-दोष भी उसमें अकिञ्चित् कर (नगण्य की भाँति) हैं । ३२। तीनों कालों में देव पूजा में विशेषकर दिन, रात और निशीथ (अर्धरात्र) का समय प्रशस्त बताया गया है, उसी में भाँति-भाँति के पुष्पों द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए । ३३। दिन में उस तिथि के अलाभ में विधान पूर्वक व्रत का पालन न करना चाहिए, सायंकाल से आरम्भ होकर रात्रि के पिछले भाग में भी अष्टमी वर्तमान रहे और उसके डेढ़ पहर में रोहिणी नक्षत्र का स्पर्श भी न हो, तो उसी सप्तमी के दिन में ही उस व्रती को संकल्प आदि करना चाहिए, उसकी रात में कभी नहीं । ३४-३५। उसकी कुछ मात्रा की

प्रागारम्भं प्रकुर्वीत अधिमात्राधिके वती । विश्वनाथादिदेवानां दर्शनं प्रगिद्वर्जयेत् ॥३६
 यत्र तत्रोपवासी स्याद्यामाष्टकव्रतं चरेत् । यामार्द्धं तत्परं यामे पररणं विचरेद्व्रतती ॥३७
 तत्परे चाऽन्नजन्यं दा न कुर्यात्पारणं गृही ॥३८
 नक्षत्रदोगे यहणे पूजयेत्परमेश्वरम् । जपहोमादिकं कुर्याद्गृही नोपवसेत्त्वचित् ॥३९
 दिवाष्टम्यां मुहूर्ते वा आजापत्येन संयुतम् । तथापि च दिवद्वृत्यं समाप्य च व्रतं चरेत् ॥४०
 मुहूर्तां च मासान्ते अष्टम्यामपि रोहिणी । उपवासे च यो दोषः पूजाहोमः प्रशस्यते ॥४१
 नवम्यां च सदा पूज्याः प्रतिमासेऽयुतं द्विजाः । गृह्लीदान्नियमं चैव यथा कर्त्त फलप्रदस्त् ॥४२
 कार्तिकस्य तु मासस्य दशमी शुक्लपक्षिका । तस्यां युक्ताशना विप्रा ब्रह्मलोकमवाप्नुः ॥४३
 दशमी ज्येष्ठमासस्य सा देवशहरा स्मृता । आश्विनस्य महापुण्या कार्तिके विजया स्मृता ॥४४
 एकादशी ब्रतपरा सर्वपापप्रणाशिनी । सर्वपापविनिर्मुक्ता यथा कुर्वन्ति मानवाः ॥४५
 दशम्यामेकभक्तस्तु संयतः स्याज्जितेन्द्रियः । एकादश्यामुपोष्याथ द्वादश्यां पारणं चरेत् ॥४६
 द्वादश द्वादशोर्हन्ति तस्मात्तथाचरेद्वृद्धः । पूर्वेषुरेकादशी पूर्णा परेऽहनि च वर्धते ॥४७
 न वर्धते द्वादशी तु तदा त्वेवं व्यवस्थितिः । वनवासी परां कुर्यात्पूर्वां कुर्याद्गृहाश्रमी ॥४८

अधिकता में वती को पहले ही आरम्भ कर देना चाहिए, किन्तु उसमें विश्वनाथ आदि देवों के दर्शन का निषेध किया गया है । ३६। उपवास तो जिस किसी समय किया जा सकता है पर, आठ प्रहर के समय में ही ब्रतविधान करना बताया गया है, और उसके आधे प्रहर के व्यतीत होने पर उसके दूसरे प्रहर में उसे पारण करना कहा गया है । ३७। गृहस्थों को उसमें अन्नपारण करना निषेध किया गया है । नक्षत्र के योग के समय यहण उपस्थित होने पर परमेश्वर की पूजा, तथा जप हवनादि कार्य करना चाहिए, किन्तु, गृहस्थों को उस समयउपवास करना नहीं कहा गया है । ३८-३९। दिवस के आठवें मुहूर्त में प्राजापत्य के संयुक्त होने पर भी दिन के कृत्य समाप्त करके ही ब्रत-विधान करना चाहिए । ४०। मास के अन्त और मुहूर्त के अन्त में रोहिणी युक्त अष्टमी के प्राप्त होने पर उसमें उपवास से जो दोष उत्पन्न होता है, वह उस समय के पूजन, एवं हवन द्वारा शांत हो जाता है । द्विजवृन्द ! प्रत्येक मास की नवमी के दिन सदैव दश सहस्र संख्या के जप पूर्वक पूजा करनी चाहिए, उसमें नियम पालन परमावश्यक होता है, क्योंकि वे भी कर्मों की भाँति फल प्रदायक होते हैं । ४१-४२। विप्रगण ! कार्तिक मास के शुक्ल-पक्ष की दशमी में उससे युक्त होकर भोजन करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । ४३। ज्येष्ठ मास की दशमी को दशहरा, आश्विन मास की दशमी महापुण्या, और कार्तिक मास में उसका विजया नाम बताया गया है । ४४। समस्त पापों के नाश करने वाली एकादशी होती है, उसके ब्रत विधान द्वारा मनुष्य सभी पापों से किस प्रकार मुक्त होते हैं मैं बता रहा हूँ ! संयत रहकर इन्द्रिय संयम पूर्वक दशमी के दिन एक बार भोजन करके एकादशी के दिन ब्रत पालन सुसम्पन्न करने के उपरांत द्वादशी में पारण करना चाहिए । क्योंकि द्वादशी बारह दोषों का नाश करती है, अतः बुद्धिमान् को वैसा करना आवश्यक होता है एकादशी पहले दिन पूर्ण रूप में रहती हुई भी दूसरे दिन (पला आदि के रूप में) कुछ बढ़ जाती है, उस समय यदि द्वादशी की वृद्धि न संभव दिखाई दे, तभी के लिए ऐसी व्यवस्था की गयी है । और बनवासी (विरक्तों) को परा (दूसरे दिन वाली) तथा गृहस्थों को पहले दिन वाली एकादशी के ब्रत-पालन करना बताया गया है । ४५-४८।

पूर्ववैकादशी त्याज्या वर्धते चेत्तिश्छ्रव्यम् । एकादशी द्वादशी तु तदोपोष्या परा तिथिः ॥४९
 यदा तु पारणायोग्या द्वादशी नोपतिष्ठते । तदा पूर्ववै सहस्राह्ना त्याज्या वृद्धा परेऽहनि ॥५०
 एकादशी कलायुक्ता सकला द्वादशी यदि । तत्र क्रतुतमं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥५१
 एकादशी द्वादशी च परेऽहनि न लभ्यते । नोपोष्या सा महादोषा पुत्रपौत्रधनक्षयात् ॥५२
 एकादशी दशाविद्वा द्वादश्यां लिपित्का यदा । द्वादशी पारणायोग्या वर्धते चापरेऽहनि ॥
 तदा दिनद्वये त्याज्या पारणं च नियोगतः ॥५३

षोडशीप्रद्वयं दृष्ट्वा द्वादशी लुप्तपारणा : चण्डातिथौ व्रतं चैव हन्ति पुण्यं पुरा कृतम् ॥५४
 त्रयोदश्यां यद्विहितं चारणं न तु पुण्यद्वयम् । गृहाश्रमी न कुर्याद्वा दशमीद्वादशीक्षयात् ॥५५
 यदि रुद्रा दशमित्रा परेऽहित्रविसङ्कल्पः । तथापि सम्मरित्यज्ञद द्वादश्यां समुपावस्ते ॥५६
 वज्रालोकनमात्रं तु दशमी संविशेषादि । एकादशी न भोक्तव्या परा ह्येकादशी तदा ॥५७
 तदः चेद्वामीविद्वा समुपोष्या न दृषणम् ॥५८
 द्वादश्यामुपवासं तु यः करोति नरोत्तमः । स याति परमं स्थानं यत्र विष्णुरन्नमयः ॥५९
 उपोष्य दशमीमित्रां मोहवेकादशीं नरः ! निरयं याति स प्रेत्य धर्मसञ्ज्ञतिसंक्षयात् ॥६०

यदि दोनों (एकादशी और द्वादशी) तिथि की वृद्धि संभव है, तो पूर्व की एकादशी के त्यागपूर्वक दूसरे दिन द्वादशी में एकादशी का व्रतपालन करना चाहिए ।४९। पारण करने के लिए द्वादशी संभव न हो सके, तो उस समय पूर्व दिन की एकादशी में ही व्रत-पालन करना चाहिए, दूसरे दिन की वृद्धियुक्त में नहीं ।५०। जिस दिन एकादशी एक कला मात्र रहे और सम्पूर्ण समय द्वादशी उपस्थित हो, तो वह द्वादशी व्रत यज्ञ की भाँति फलदायक होती है, उसमें त्रयोदशी से पारण करना चाहिए ।५१। एकादशी तथा द्वादशी इन दोनों तिथियों की कुछ भी वृद्धि दूसरे दिन संभव न हो, तो उसमें व्रत न रहे, क्योंकि वह महान् दोष पूर्ण एवं पुत्र पौत्र तथा धन के नाश करने वाली होती है ।५२। एकादशी, दशमी विद्वा (युक्त) होकर भी द्वादशी में अन्तर्विहार हो गयी हो, और पारण के योग्य होती हुई भी द्वादशी की वृद्धि दूसरे दिन संभव हो तो उन दोनों दिनों के त्याग करके नियोग द्वारा पारण कर लेना चाहिए ।५३। सोलह कलापूर्ण ग्रहण दर्शन, पारण लुप्त होने वाली द्वादशी, और चण्डा तिथि में व्रत पालन के पूर्व किये हुए पुण्यों का नाश करते हैं ।५४। त्रयोदशी में किया गया पारण, पुण्यदायक नहीं होता है, गृहस्थों को दशमी और द्वादशी के क्षय होने पर भी उसमें पारण न करना चाहिए ।५५। दशमी विद्वा (युक्त) एकादशी के दिन यदि सूर्य की संक्रान्ति भी उसी दिन हो तो भी उसका त्याग करके द्वादशी में ही उपवास रहना चाहिए ।५६। दशमी का उत्तरा भी समय, जितने समय में विच्छृत दर्शन होता है, यदि एकादशी में सम्मिलित हो जाये, तो उस दिन की एकादशी के त्याग पूर्वक दूसरे दिन की (द्वादशी) की एकादशी में व्रत पालन करना चाहिए ।५७। किन्तु, दशमी विद्वा एकादशी का भी यदि उसी दिन (अर्थात् दूसरे दिन सूर्योदय के पूर्व ही) समाप्ति होती हो, तो उस समय दशमी विद्वा ही एकादशी के व्रतपालन में कोई दोष नहीं बताया गया है ।५८। द्वादशी में उपवास करने वाले व्यक्ति की उत्तम श्रेणी में गणना होती है, उन्हें विष्णु के शाश्वत (नित्य) स्थान की भी प्राप्ति होती है ।५९। मोहवश मनुष्य यदि दशमी युक्त एकादशी में व्रत पालन करता है तो उसे मरणानन्तर नरक की प्राप्ति और उससे धर्म परम्परा नष्ट हो जाती

रविवारे शुक्रवारे सङ्क्रान्त्यां तु दिनक्षये । उपवासं प्रकुर्वीत पारणं तु विवर्जयेत् ॥६१
 शुक्लां वा यदि वा कृष्णां पूर्वसङ्कल्पितामपि । एकादशीं सदा कुर्यात् वै कृष्णोत्तरां क्वचित् ॥६२
 नत्तेन वर्तयेत्कृष्णामिति शास्त्रविनिश्चयः । मासे चैकादशी यत्र लभ्यते शुक्लपक्षके ॥
 तत्र कुर्यात्कृष्णपक्षे परा तिथिर्गृह्यते ॥६३
 श्रावणी द्वादशी शुक्लः चान्द्रभद्रे यदा हरौ । तत्रोपेत्य हृषीकेशं पूजयेद्विधिवत्रः ॥६४
 श्रावणे चाभिने चैव लभ्यते द्वादशीदिने । श्रवणे च समायुक्ता वाहती सा प्रकीर्तिता ॥६५
 पुष्येण द्वादशीयुक्ता फालुने विजया स्मृता । कार्तिके चेत्परित्याज्या माघे तु नारकी भवेत् ॥६६
 या भाद्रे विजयः प्रोक्ता श्रवणे च समायुता । विशेषः कथ्यते तत्र यथावद्व्रतमाचरेत् ॥६७
 एकादश्यामुत्तरतो द्वादशी च द्विवान्विता । निशि पूर्णा द्वादशी च श्रवणेनापि संयुता ॥६८
 सफला द्वादशी ज्ञेया उपेत्यैषा भहफला ॥६९
 द्वादश्यां विष्णुविद्वायां दासुदेवं प्रपूजयेत् । कृष्णायां तु व्रतं कुर्याद्विद्वुःखं समाचरेत् ॥७०
 द्वादशी कामविद्वा चेन्मन्यते नाप्युपोषणम् । हन्यात्पुराकृतं पुण्यं त्रयोदश्यामुपोषणम् ॥७१
 प्रहरे प्रहरे स्तानं शर्वर्यं च विधीयते । पूजनं चाप्निकार्यं च षड्सु कार्यं भ्रती चरेत् ॥७२
 एकादशीं द्वादशीं च प्राप्नोति श्रवणे यदि । एकादश्यामुपोष्याथ द्वादश्यामप्युपादसेत् ॥७३

हैं : ६०। रविवार, और शुक्रवार के दिन संक्रान्ति, और प्राप्त दिनक्षय में केवल उपवास करना बताया गया है, धारण नहीं । ६१। शुक्लपक्ष की एकादशी अनुष्ठान के लिए यदि पहले संकल्प भी करा दिया गया हो, तो भी कृष्ण पक्ष की ही एकादशी में व्रत पालन करना चाहिए, शुक्ल की कभी नहीं । ६२। क्योंकि शास्त्र ने भी 'नत्तेन वर्तयेत्कृष्णामिति' (नत्ते के समेत कृष्ण पक्ष की एकादशी का ही ग्रहण करना चाहिए) ऐसा निश्चय किया है । जिस किसी मास में शुक्ल की एकादशी की प्राप्ति में भी कृष्ण पक्ष वाली का ही ग्रहण करना चाहिए, उसमें परा (दूसरे दिन की) तिथि का ग्रहण नहीं किया जाता है । ६३। श्रावण मास की शुक्ल द्वादशी के दिन भद्रा समेत चांद दर्शन हो तो हरिशयन काल के होते हुए भी उस दिन 'हृषीकेश' नामक भगवान् की सविधान पूजा मनुष्य को करनी चाहिए । ६४। श्रावण अथवा आश्विन मास की द्वादशी के दिन यदि श्रवण नक्षत्र प्राप्त हो जाये, तो उसका अत्यधिक महत्व बताया गया है । ६५। फालुन मास की द्वादशी के दिन पुष्य नक्षत्र के योग होने से उसको विजया नामक कहा गया है । तथा कार्तिक में वह त्याज्य हैं एवं माघ में भी उसके पालन से नारकी होना बताया गया है । ६६। भाद्रपद मास में श्रवण नक्षत्र संयुक्त होने पर जिसे विजया कहा गया है, उसी में व्रत विधान करना चाहए उसकी महत्ता बता रहा हूँ । ६७। एकादशी के दिन द्वादशी समस्त दिन रात रहे और उससे श्रवण नक्षत्र का भी संयोग हो, तो उसे फल दायक जानना चाहिए, उसमें उपवास करने से महान् फलों की प्राप्ति होती है । ६८-६९। एकादशी संयुक्त द्वादशी में भगवान् वासुदेव की पूजा करनी चाहिए, व्रत नहीं, क्योंकि व्रत रहने से अत्यन्त दुःख के भागी होना पड़ता है, व्रत केवल कृष्ण पक्ष में ही करना बताया गया है । ७०। कामविद्वा होने पर द्वादशी में उपवास न रहना चाहिए, और त्रयोदशी में भी उपवास रहने से पूर्वकाल की संचित पुण्य प्रथा नष्ट हो जाती है । ७१। व्रत रहने वाले को रात के प्रत्येक प्रहर में स्नान पूजन और हवन इस प्रकार ये कार्य करना चाहिए । ७२। श्रवण नक्षत्र के दिन एकादशी तथा द्वादशी के प्राप्त होने पर प्रायः एकादशी में ही व्रत उपवास करना चाहिए, किन्तु कहीं द्वादशी में भी करना बताया गया है । ७३। द्वादशी के अभाव में

पारणं तु त्रयोदश्यां द्वादशी चेन्न लभ्यते । आमिषान्नं न भुञ्जीत हविष्यान्नेन पारणम् ॥७४
 यदा तु पारणायोग्या लभ्यते द्वादशी तदा । तस्यां नातिक्ळमो युक्तस्तदभावे त्रयोदशी ॥७५
 एकादशी द्वादशी च श्रवणर्क्षण संपुत्ता । विष्णुशृङ्खलको नाम बुधवारे विशिष्यते ॥७६
 दशम्यां संपतो भूत्वा प्रातरेकादशीदिने । कृत्वा तु सङ्घसे स्नानं प्रहरे प्रहरे द्विजाः ॥७७
 अनेन विधिना कृत्वा विजयायां व्रतोत्तमम् । सर्वपापं क्षयं नीत्वा विष्णुलोके वसेन्नरः ॥७८
 चतुर्युगानां दिव्यानां यावत्स्थाद्विष्णुरूपधृक् । तावदेव हि सर्वत्र सार्वभौमो भवेन्नरः ॥७९
 देतायां दश जन्मानि मध्यदेशेतु भी द्विजाः । ततश्च भारते वर्षे वेदवेदान्तसारवित् ॥
 पुत्रपौत्रधनैर्युक्तो लक्षदो नृपसन्निभः ॥८०

जायते दश जन्मानि त्रेतायां ज्ञाहणोत्तमः । सप्तलीकश्च दीर्घयुद्धर्मकर्त्तसु पूजितः ॥८१
 भाद्रे मासि सिते दक्षे द्वादश्यां पृथिवीपतिम् । शत्रुमुत्थापयेत्प्राहुं शुभलग्ने शुभक्षणे ॥८२
 शल्यशाल्मलिकस्यापि सप्तपर्णीयकस्य च । एषामन्यतमं वृक्षं चम्पकस्यार्जुनस्य वा ॥८३
 बृहत्कदम्बवृक्षस्य द्विचत्वारिंशदङ्गुलैः । द्वार्त्रशदङ्गुलैर्वापि मानद्वयमथापि वा ॥
 त्रिव्यायामं च प्रथमं द्वार्त्वशहस्तमेव वा ॥८४

हस्तः षोडशवारस्य गृहस्थस्य विशिष्यते । हस्तत्रयेण विप्रस्य द्वादश ऋत्रियस्य तु ॥८५
 अष्टहस्तं तु वैश्यस्य शूद्रस्य पञ्चहस्तकम् । अभ्रतः श्वेतच्छत्रं स्यात्पताका च पुरे पुरे ॥८६

त्रयोदशी में हविष्यान्न का पारण करना चाहिए, आमिषान्न का कभी नहीं । ७४। पारण के योग्य द्वादशी की प्राप्ति में उसका त्याग कभी न करना चाहिए, उसके अभाव काल में ही त्रयोदशी का ग्रहण करना कहा गया है । ७५। श्रवण नक्षत्र युक्त होने पर एकादशी अथवा द्वादशी बुधवार में प्रातः हो, तो उसका विष्णु विशृङ्खला' नाम होता है, तथा उसकी महत्ता भी बढ़ जाती है । ७६। द्विजवृन्द ! उसमें व्रत पालन के लिए यह विधान दशमी में संयम पूर्वक रहकर एकादशी के दिन प्रत्येक प्रहर में नदी के संगम स्थान में स्नान करना बताया गया है । ७७। इस विधान द्वारा विजया (एकादशी) के उत्तम व्रत पालन द्वारा मनुष्य समस्त पापों के संक्षय पूर्वक विष्णु लोक की प्राप्ति करता है । ७८। पश्चात् चारों धुगों के दिव्य वर्षपर्यन्त विष्णुरूप धारण कर वह मनुष्य सर्वत्र सार्वभौम होकर रहता है । ७९। द्विजगण ! त्रेतायुग में मध्य देशों में दश जन्म ग्रहण करने के उपरांत भारत वर्ष में वेद वेदान्त के तत्त्वनिष्ठात होकर पुत्रपौत्र एवं धन युक्त राजाओं की भाँति सम्मान पूर्वक लाखों का दानी होता है । ८०। त्रेता युग में दश जन्मों तक उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर पल्ली समेत दीर्घायु एवं धर्म कर्म में पूजनीय होता है । ८१। भाद्रपद की शुक्ल द्वादशी के दिन पूर्वाह्नि के समय किसी शुभ लग्न में जिसमें शुभ ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो, पृथिवीपति शत्रु को उभाड़ देना चाहिए । ८२। शल्य, सेमर, सप्तपर्ण, चम्पा, अर्जुन एवं विशाल कदम्ब, इनमें किसी वृक्ष के बयालिस या बत्तीस अंगुल के दण्ड, अथवा तीन व्यायाम के तुल्य या बीस हाथ के दण्ड में शुभ बादलों की भाँति के छत्र लगाये, षोडशवार गृहस्थों के लिए विशेषकर हस्तमात्र, विप्र के लिए तीन हाथ, ऋत्रिय के लिए बारह, वैश्य के लिए आठ, और शूद्र के लिए पाँच हाथ के छत्र दण्ड होने चाहिए। प्रत्येक गाँवों में श्वेतच्छत्र के समेत पताका के आरोपण करके

अथ वक्ष्यामि चैत्रादिमासे तु पूर्णिमा वया । चित्रानक्षत्रसंयुक्तो गुरुषूर्णो विधुर्यदि ॥

महाचैत्रीति सा ज्ञेया पूर्णिमाक्षयपुण्यदा

॥११६

विशाखादिषु भेदेषु पूर्णचन्द्रो गुरुश्चरेत् । महावैशालिकत्यास्तु पूर्णिमा द्वादश स्मृताः ॥११७

महाअङ्गैष्ठी विशेषोऽप्यन्नापत्येयथा रविः । गुरुपूर्णचन्द्रो ज्येष्ठायां महाज्येष्ठीति सा स्मृता ॥११८

विनापि गुरुणा चन्द्रः कृत्तिका पूर्णिमा तथा । तथा महाकार्त्तिको सा तिथिः पुण्यतमा भवेत् ॥११९

रोहिण्यां तु स्थितश्चन्द्रः पौर्णिमास्यां तु कार्त्तिके । महाकार्त्तिको तथापि स्यात् स्वर्गलोकेऽपि दुर्लभा ॥१२०

चित्रा वा यदि वा एूर्णा यदा स्यात्पूर्णिमातिथिः । महाचैत्री तथापि स्यादश्वमेधफलप्रदा ॥१२१

रविणा कृत्तिकायोगद्विवारे च पूर्णिमा । महाचैत्री तथापि स्याहृत्स्याक्षयकारिका ॥१२२

एवं गुरुरौ गुरुरेयोंगे महाचैत्री प्रकीर्तिता । तत्र स्नानं च दातं च जपे नियम एव च ॥१२३

सर्वमक्षयतां यति फलं चैवाश्वमेधिकम् । पितरस्तर्पिता यान्ति वैष्णवं लोकमक्षयम् ॥१२४

भरज्यां कार्त्तिके मासि यदि स्यात्पूर्णिमा तिथिः । गङ्गाद्वारे तु महती वैशाखी पुण्यदा स्मृता ॥१२५

शालग्रामे महाचैत्री कृतपुण्या महातिथिः । गंगाद्वारे तु महती वैशाखी पुण्यदा स्मृता ॥१२६

शिव का स्नान, पूजन और विधान पूर्वक हवन की समाप्ति करनी चाहिए । इसके उपरान्त चैत्र आदि मासों की पूर्णिमा की व्याख्या बता रहा हैं ! चित्रा नक्षत्र समेत पूर्ण बृहस्पति के साथ चन्द्रमा के योग उस दिन (पूर्णिमा में) प्राप्त हों, तो उस पूर्णिमा को महाचैत्री कहा गया है, और वह अक्षय पुण्य प्रदान करती है । ११५-१६। इसी भाँति (वैशाख) में विशाखा आदि नक्षत्र में भेदों समेत पूर्ण चन्द्र के साथ बृहस्पति का योग प्राप्त हो तो वह महावैशाखी पूर्णिमा कही जाती है । इसी प्रकार बारहों पूर्णिमाओं को जानना चाहिए । ११७। प्राजापत्य में सूर्य की भाँति महाज्येष्ठी की भी यही विशेषता है कि, उस दिन गुरु युक्त पूर्ण चन्द्र उपस्थित हों, तो उसे महाज्येष्ठी पूर्णिमा कही जाती है । ११८। (कार्त्तिक मास में) बृहस्पति के बिना ही पूर्ण चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्र समेत उस दिन उपस्थित हो जाय, तो उस पुण्यतमा तिथि को महाकार्त्तिकी कहा गया है । ११९। कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्रमा स्थित हों तो भी उसे महाकार्त्तिकी कहा जाता है और उसकी प्राप्ति स्वर्गलोक में दुर्लभ बतायी जाती है । १२०। चित्रा नक्षत्र समेत पूर्णिमा हो अथवा केवल पूर्णिमा हो, तथापि उसे महाचैत्री कहा जाता है और वह अश्वमेध फल प्रदान करती है । १२१। रविवार के दिन सूर्य समेत कृत्तिका नक्षत्र के योग प्राप्त हो, तो उस पूर्णिमा को भी, जो अक्षय फल प्रदान करती है, महाचैत्री कहा जाता है । १२२। इसी भाँति बृहस्पति के दिन भी बृहस्पति से संयुक्त होने पर उसे महाचैत्री कहा गया है उसमें स्नान, दान, जप, नियम सभी अश्वमेध का अक्षय फल प्रदान करते हैं, उसके पितर लोग तृप्त होते हैं, तथा उसे अक्षय वैष्णव लोक की प्राप्ति होती है । १२३-१२४। कार्त्तिक मास में भरणी नक्षत्र के दिन प्राप्त पूर्णिमा और वैशाख की पूर्णिमा में गंगोत्री में महान् पुण्य प्रदान करती है । १२५। शालग्राम (तीर्थ) में पुण्य स्वरूपा महाचैत्री पूर्णिमा और गंगोत्री में महावैशाखी पूर्णिमा (स्नान आदि करने से) पुण्य प्रदान करती है । पुरुषोत्तम क्षेत्र में महाज्येष्ठी,

पुरुषेत्तमे महाज्यैषी महाषाढी तु शृंखले । महाश्रावणी केदारे महापुण्यतमा मता ॥१२७
महाभाद्री बदर्या च कुजोऽपि स्यान्नरस्तथा । महाकार्त्तिकी पुष्करे च कान्यकुञ्जे तथोत्तरे ॥१२८
महती मार्गशीर्च स्यादयोध्यायां तथोत्तरे : महापौषी पुण्यतमा महामाधी प्रयागतः ॥१२९
महाफालगुनी नैसिषे च निर्दिष्टः स्युर्महाफलाः ॥१३०

अत्र स्म विहितं कर्म शुभं वा यदि द्वाशुभम् । सर्वमक्षयतां याति वर्द्धते चाधिकं फलम् ॥१३१
आश्विने पौर्णमासी तु कौमुदीति प्रकीर्तिता । अस्यां चन्द्रोदये लक्ष्मीं पूजयेद्विधिवन्नरः ॥१३२
निर्वर्तयेत्त यः श्राद्धं प्रभाते ऐतृकं द्विजः । इन्दुक्षये मासि भासि प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥१३३
चन्द्राश्विने तु कृष्णायां पञ्चदश्यां यथाविधि । कृत्वा स्नानादिकं कर्म सोपवासो दिनं नयेत् ॥१३४
प्रदोषत्समये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाविधि । दीपवृक्षान्यथा वृक्षांलक्ष्मीप्रतीत्यै समुत्सृजेत् ॥१३५
नदीतीरे गिरौ गोष्ठे इमशाने वृक्षमूलतः । चतुष्पथे निजागारे चत्वरे तान्निधापयेत् ॥१३६
द्विर्भाजनममावास्यां न कर्तव्यं कदाचन । शर्वर्या च विशेषेण माघफालगुनयोर्नरैः ॥१३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे

उत्तमतिथिनिर्णयो नामाष्टमोऽध्यायः ।८

श्वङ्गला में महा आषाढी और केदार तीर्थ में महाश्रावणी पूर्णिमा महान् पुण्यस्वरूपा बतायी गयी है । १२६-१२७। महाभाद्री भादों मास की पूर्णिमा के दिन बदरिकाश्रम में स्नान करने से कुज (विकृत अंग वाले) भी सौन्दर्य पूर्ण मनुष्य हो जाते हैं, उसी भाँति महाकार्त्तिकी (पूर्णिमा) में पुष्कर, कान्यकुञ्ज और उत्तर के प्रदेशों में अत्यन्त पुण्यस्वरूप की प्राप्ति कही गयी है, एवं मार्गशीर्ष (अगहन) की पूर्णिमा अयोध्या और उसके उत्तर प्रदेश तथा महापौषी (पौष की पूर्णिमा) एवं महामाधी भी प्रयाग के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है । १२८-१२९। उसी प्रकार महाफालगुनी नैसिषारण्य के लिए महान् फलदायक कही गयी है । १३०। इन दिनों में किये गये शुभ अशुभ सभी कर्म अक्षय फल प्रदान करते हैं, जिनकी निरन्तर वृद्धि हुआ करती है । आश्विन मास की पूर्णिमा का कौमुदी नाम बताया गया है, उसमें चन्द्रोदय के समय विधान पूर्वक लक्ष्मी की पूजा मनुष्य को करना कहा गया है । १३१-१३२। जो ब्राह्मण प्रत्येक मास के चन्द्रक्षय के दिन प्रातः काल में पितरों का श्राद्ध सुसम्पन्न नहीं करते हैं, उन्हें प्रायश्चित्त करना आवश्यक होता है । १३३। आश्विन मास की कृष्णपक्ष की (पन्द्रहवी) अमावस्या के दिन उपवास और विधान पूर्वक स्नानादिक कर्म करते हुए उसे व्यतीत करना चाहिए । १३४। प्रदोष के समय विधान पूर्वक लक्ष्मी की पूजा सुसम्पन्न करके लक्ष्मी के प्रसन्नार्थ वृक्ष की भाँति दीप वृक्षों के प्रदान करने चाहिए । १३५। नदी तट, पर्वत, गोशाला, शमशान, वृक्ष के मूल भाग, चौराहा, निजी गृह अथवा चबूतरे पर उसे स्थापित करना चाहिए । १३६। अमावस्या के दिन और विशेषकर माघ फाल्गुन की रात्रि में मनुष्यों को दो बार भोजन करना चाहिए । १३७

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में उत्तमविधाननिर्णय

नामक आठवाँ अध्याय समाप्त । ८।

अथ नवमोऽध्यायः

प्रवरविचारवर्णनम्

सूत उवाच

वक्ष्ये प्रवरसन्तानं यथाक्लमिति द्विजाः । यद्दिना व्यत्यग्ये यस्मात्स्माच्छास्त्रानुसारतः ॥१
 प्रवरत्रयं काश्यपस्य काश्यपाशावनैर्धुवम् । पञ्चाश्यगौतमस्याङ्गं गौतमश्वेय एव च ॥२
 च्यवनो जामदग्न्यश्च आप्लवायनमेव च । नोकुन्यांगिरसभास्याज्जाभदग्न्याप्लवायनम् ॥३
 शांडिल्यासितदैवताः प्रवरत्रयमेव च । पराशरस्य च तथा स्वयं शाम्बवशिष्ठकम् ॥४
 आत्रेयमावार्यणस्याबालप्रवरमेव हि । वात्स्यवात्स्यायनौ चैव उरुकट्टक एव च ॥५
 अर्थक्षीरमित्रावरुणं पञ्चमं परिकीर्तिम् । औतथ्यस्य त्रयं विद्याद्वाल्मीकोऽवरमेव हि ॥६
 औतथ्यस्य च वाशिष्ठमैन्दे चक्रं च क्रौञ्चायनं तथा । औतथ्येति समाख्यातं माहिष्यं च्यवनं तथा ॥७
 उरुकट्टक्यं विद्यात्कौशिकस्य त्रयं तथा । यद्गालो देवराट् स्थातः कुशिकाद्याश्र भो द्विजाः ॥८
 विश्वामित्रो देवराट् च स्वयं चैव त्रयं मतम् । घृतकौशिकस्य कुशिका विश्वामित्राधर्मर्षणम् ॥९
 चण्डकौशिकस्य च तथा देवराट् देवरातकम् । विश्वामित्रे तु विल्यातः सुमन्तोरेव एव हि ॥१०
 तरुकशाकटायनः स्वयमेव प्रवरत्रयम् । भ्रमद्वयं जैमिनेश्च स्वयं वाशिष्ठमेव च ॥११
 शंखमांगिरसच्यवनं शंखभस्य त्रयं मतम् । वात्स्यस्य च्यवनो नाम आप्लवायनकस्तथा ॥१२
 सावर्णस्य तु सावर्णच्यवनजामदग्निभार्गवम् । आप्लवायनेति पाठीने एक एव तु सत्तमाः ॥१३
 कृष्णाजिनस्य कृष्णाजिनं विश्वामित्रस्य जैमिनम् । कात्यायनस्य कात्यायनगार्यायणत्रयं तथा ॥१४

अध्याय ९

प्रवर विचार का वर्णन

सूत बोले—द्विजवृन्द ! मैं शास्त्रों के अनुसार प्रवरों की चर्चा कर रहा हूँ, क्योंकि उसके ज्ञान के बिना अधिक व्यत्यय (उलटफेर) होने की संभावना रहती है । १। काश्यप गोत्र के तीन प्रवर काश्यपा शावन बताये गये हैं, गौतम के पञ्चाश्य गौतम, च्यवन, जामदग्न्य, आप्लवायन, मोकुन्य, आंगिरस, भास्य, जामदग्न्य, आप्लवायन, शांडिल, असित, देवल तीन प्रवर, पराशर के पाराशर, शांब, वशिष्ठ, आत्रेय के आत्रेय आचार्यण, स्याबाल, वात्स्य, वात्स्यायन, उरुकट्टक । २-५। अर्थक्षीर पाँचवा मित्रावरुण, औतथ्य, के औतथ्य, वाल्मीक, अवर औतथ्य के वशिष्ठ, ऐन्द्र, चक्र, क्रौञ्चायन, औतथ्य माहिष्य, च्यवन, उरुकट्टक कौशिक के तीन द्विजवृन्द ! उसी प्रकार गाल, देवराट, कुशिकादि, विश्वामित्र, देवराट, घृतकौशिक के कुशिका, विश्वामित्र, अधर्मर्षण । ६-९। चण्ड कौशिक के देवराट्, देवरातक, यही विश्वामित्र और सुमन्तु के भी प्रवर हैं । १०। तरुक, शाकटायन, जैमिनि के दो जैमिनि, वशिष्ठ, शंखभ के शंख, आंगिरस और च्यवन, तीन, वात्स्य के च्यवन, आप्लवायनक । ११-१२। सावर्ण के सावर्ण, च्यवन, जामदग्नि, भार्गव, पाठीन के एक आप्लवायन । १३। कृष्णाजिन के कृष्णाजिन, विश्वामित्र के जैमिन, कात्यायन के कात्यायन,

वात्स्यायनेति विष्णुतं कुशिकस्य च पञ्चमम् । अमुं च विश्वामित्रं च जामदग्न्याप्लवायनम् ॥१५
 गार्घ्यस्य गार्घ्यसामुञ्च तथांगिरस एव च । बार्हस्पत्यभरद्वाज इति पञ्च प्रकीर्तिम् ॥१६
 वशिष्ठस्य च वासिष्ठं च तथांगिरस एव च ! मित्रावरुणसंयुक्तं तावत्तस्य प्रकीर्तिम् ॥१७
 जाह्नवकर्णभवकर्णौ प्रवरौ परिकीर्ततौ । उपमन्युरुपमन्योस्तथेन्द्रः सह एव च ॥१८
 तदुत्तमेति त्रितयं मित्रावरुणस्य च त्रयम् । आत्रेयगौतमाङ्ग्निरसपदरत्रयमेव हि ॥१९
 कमण्डलोत्पलमित्रामित्रावरुण एव च । कमण्डलुष्ट्रेति त्रितयं प्रवरत्रयमेव च ॥२०
 च्यवनस्य तथा ज्ञेयमूर्वेच्यवनालवायनम् । अथ स कस्यांगिरसबार्हस्पत्य एव त्रयम् ॥२१
 आगस्त्यस्य अगस्तिश्च माहश्च च्यवनंति च । विश्वामित्रे देवरात औतथ्येति तथैव च ॥२२
 ये नोक्ता येऽप्यविज्ञातस्ते प्रोक्ताः काश्यपाज्जगत् ॥२३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणे द्वितीयभागे प्रवरविचारवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ।९

अथ दशमोऽध्यायः

वास्तुयागवर्णनम्

सूत उवाच

वास्तुयागमयो वक्ष्ये बलिमण्डलपूर्वकम् । अङ्कुरार्पणकं कृत्वा मध्ये कुर्याच्च मण्डलम् ॥१
 त्रिहस्ता पिंडिका कार्या चतुरक्षा उदकप्लवा । प्रादेशमात्र उत्सेधो दर्षणान्तर्निभो भवेत् ॥२
 मध्ये सम्मार्जयेद्विद्वान्यादान्नव यथाक्रमात् । कोणे चतुष्पदं ज्ञेयं दिक्षु त्रिपदकं क्रमात् ॥३

गार्घ्यायण, कुशिक के वात्स्यायन समेत पाँच, कुशिक, विश्वामित्र, जामदग्न्य आप्लवायन । १४-१५।
 गार्घ्य के गार्घ्यसा, मुंच, आंगिरस, बार्हस्पत्य, और भारद्वाज, ये पाँच प्रवर बताये गये हैं । १६। वशिष्ठ के
 वशिष्ठ, आंगिरस, मित्रावरुण, जाह्नवकर्ण, भवकर्ण, उपमन्यु के उपमन्यु, इन्द्र, तदुत्तम मित्रावरुण के आत्रेय,
 गौतम, आंगिरस, कमण्डलु उत्पलमित्र, मित्रावरुण, और कमण्डलु तीन, च्यवन के उर्द्ध, च्यवन और
 आप्लवायन, आंगिरस, बार्हस्पत्य, तीन आगस्त्य के अगस्ति, माह, च्यवन, विश्वामित्र के देवरात,
 औतथ्य, प्रवर हैं, जिनके नाम नहीं कहे गये हैं और उनके सम्बन्ध में कुछ कहा भी नहीं जा सकता, उन्हें
 संसार में काश्यप के नाम से कहा जाता है । १७-२३

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पण के दूसरे भाग में प्रवर विचार वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

वास्तुयाग का वर्णन

सूत बोले—मैं बलि मण्डल पूर्वक वास्तु (गृह) याग की व्याख्या बता रहा हूँ । अंकुरारोपण करके
 मध्य भाग में उस प्रकार के मण्डल जिसमें तीन हाथ की चौकोर एवं जल से घिरी हुई पिंडिका (वेदी) जो
 प्रादेश मात्र उत्सेध और स्वयं दर्पण के मध्यभाग के समान बनायी जाती है, बनाने चाहिए । १-२। विद्वान्
 को चाहिए कि उसके मध्य भाग में क्रमशः नव पादों के समार्जन करके कोण भाग में चतुष्पाद और

पञ्चकं युग्मशदेन चतुर्दिक्षु ततः परम् । क्लोणे चतुष्पदं स्थाप्यं चतुष्कोणे द्विभावदेत् ॥४
 चतुष्कोणं बहिः कुर्यात्कोणे चापि चतुष्टयम् । द्वात्रिंशच्च भवेद्वाह्ये चातश्चापि त्रयोदश ॥५
 चत्वारिंशत्पञ्चयुता मिलित्वा वास्तुदेवताः । शिखी चैवाय पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः ॥६
 सूर्यः सत्यो वृष्टश्रैव आकाशं बायुरेव च । पूजा च वितथश्रैव गुहान्यश्च यमस्तथः ॥७
 गन्धवर्णं मृगराजस्तु मृगाः पितृगणास्तथा । दौवरिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिषः ॥८
 असुरः पशुपाशौ च रोगो हि मोक्ष एव च । भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा ॥९
 बहिर्द्वादश इत्येतानीशानादीन्यथाक्रमम् । ईशानादिचतुष्कोणं संस्थितान्पूजयेद्बुधः ॥१०
 आपश्रेवर्णं सादित्रो जयो रुद्रस्तथैव च । अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विद्युधाधिषः ॥११
 मित्रोऽथ राजयक्षमा च सप्तमः पृथिवीधरः । अष्टमस्त्वापवत्सस्तु परिधौ ब्रह्मणः स्मृतः ॥१२
 पूर्वादिषु तथा पूज्या गन्धपुष्टैः पृथिवीधैः । पञ्चचत्वारिंशदेतच्चरक्या च चतुर्थकम् ॥१३
 मिलित्वा ऊपच्छाशदुत्तमा वास्तुदेवताः । नान्यत्र योजयेहिप्राः प्रसादे च विशेषतः ॥१४
 बहिः कोणे चरक्यादि चरकं च विदारिकाम् । पूतनां च ततः पश्चाद्वयव्ये पापराक्षसीम् ॥१५
 स्वैःस्वैर्मन्त्रैश्च गन्धादैः पूज्येत्कुमुमादिना । यथोक्तेन बलिं दद्यात्पायसान्नेन वा पुनः ॥१६
 रेखाः सर्वत्र शुक्लेन पद्मं रक्तेन भावदेत् । रञ्जयेदेव वर्णेन बहिष्पञ्चरजेन तु ॥१७
 देववर्णनिथो वक्ष्ये यथावदनुवर्णिताः । रक्तौ गौरस्तथा शोणः सितरक्तः सितस्तथा ॥१८

दिशाओं में क्रमशः त्रिपाद (तीन पैर वाले) को स्थापित करे । ३। पश्चात् ! चारों ओर (दिशाओं में) दो पाद वाले पाँच की स्थिति करके चारों कोण के भागों में चतुष्पदों की प्रतिष्ठा करायें । ४। चार कोण बाहरी भाग में बनाकर कोने में भी चार की स्थिति करें । बतीस देवता बाहरी भाग में और अन्तः स्थल में तेरह देवता प्रतिष्ठित किये जाते हैं, इस प्रकार वास्तु देवता की पैंतालिस संख्या बतायी गयी है । शिखी, पर्जन्य, जयंत, कुलिशायुध, सूर्य, सत्य, वृष, आकाश, वायु, पूषा, वितय, गुह, यम । ५-७। गन्धवर्ण, मृगराज, मृगरण, पितृगण, दौवरिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, रुण, असुर पशु, पाश, रोग, भोक्ष, भल्लाट, सोम, सर्प, आदिति, एवं दिति, देवों की, जो बारह बारह और ईशान आदि कोण में क्रमशः स्थित हैं, विद्वान् को पूजा करनी चाहिए । ८-१०। जलदेव, सावित्र, जप, रुद्र, अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विद्युधाधिष (इन्द्र), मित्र, राजयक्षमा, सातवाँ पृथिवीधर, और आठवाँ आपवत्स, ये देवगण ब्रह्मा की परिधि में स्थापित होते हैं । ११-१२। पूर्वादि दिशाओं में स्थित उन देवताओं की पूजा पृथक्-पृथक् विधान पूर्वक गन्ध-पुष्टों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । इस प्रकार पैंतालिस संख्या के बताये हुए पहल वाले और चार चरकी के मिलकर कुल उच्चास वास्तु देवता बताये जा चुके हैं । विप्रेन्द ! इनकी पूजा आदि अन्य किसी कर्मानुष्ठान में न कर विशेषकर महल प्रवेश में अवश्य करना चाहिए । १३-१४। बाहरी कोण में चरकी-चरक पश्चात् वायव्यकोण में विदारिका एवं बालध्नी पूतना राक्षसी के उनके मंत्रों के उच्चारणपूर्वक गंधादि पुष्टों द्वारा पूजा और पायस अन्नों द्वारा बलि प्रदान करना बताया गया है । १५-१६। सर्वत्र की रेखाओं को शुक्ल वर्ण, कमल को रक्तवर्ण, और बाहरी भागों को पाँच प्रकार के चूर्णा (रंगों) द्वारा विभूषित करना चाहिए । १७। देवताओं (देवों की प्रतिमाओं के निमित्त) वर्णों (रंगों) को बता रहा हूँ, रक्त, गौर, शोण (रक्त), उज्ज्वल-रक्त, शुभ्र, पीत, शुक्ल, धर्म, पूषा रक्त,

पीतः शुक्लश्च धर्मश्च पूषा रक्तः प्रकीर्तिः । श्यामः शुक्लश्च कृष्णश्च पीतः शुक्लो यथाकमम् ॥१९
 पीतो भृद्गः पुनः शुक्लः कृष्णः शुक्लस्तथैव च । रक्तः शुक्लश्च शोणश्च कृष्णरक्तस्तथैव च ॥२०
 धूम्पीतो रक्तपीतः शुक्लः कृष्णश्च श्यामकः । रक्तवर्णन द्वार्त्रशद्वश वर्णः प्रकीर्तितः ॥२१
 शुक्लशोणं पुनः श्वेतं सिन्दूराभं प्रकीर्तितम् । पाण्डुरं कुइकुमानं च रक्तं ज्ञेयं च पीतकम् ॥२२
 शुक्लपीतं च श्वेतं च गौरं चेत्यल्पवर्णकम् । पीतं रक्तं च श्यामं च गौरं चेति चतुष्पदम् ॥२३
 धरणीमदनं याद्ये शम्भुवर्णादिप्रक्रमात् । शुक्लेन रञ्जयेद्वारान्पूरद्वारं च मध्यसे ॥२४
 भृद्येन्नते उन्नगच्छाशत्सर्वं च वास्तुकर्मणि । चत्वारिंशद्वारयुतं गृहदेवकुलेऽपि च ॥२५
 महास्थूपे तथा श्वेतो अन्यद्वापि^१ प्रशस्यते । सुलिप्ते च शुचौ देशे साध्हहस्तप्रमाणतः ॥२६
 दश पूर्वायिता रेखा दश चैवोत्तरायतः । एकादशीपदं कुयद्विखानिः पदकेन तु ॥२७
 सर्ववास्तुविभागोन तिज्ञेया नवका नव । पदस्थान्पूजयेद्वास्त्रिंशत्पञ्चाशदेव तु ॥२८
 द्वार्त्रशद्वाहृतः पूज्याः पूज्यागारे त्रयोदश । मध्ये नव पदे ब्रह्मा तस्याप्यष्टौ समीपगाः ॥२९
 चतुर्दिक्षु षट्पदं तु त्रिपदं तु चतुष्पदम् ; पदैकं तु चतुष्कोणे एष वास्तुविनिर्णयः ॥
 चरक्यादि ततो हित्वा चत्वारिंशच्च पञ्चकम् ॥३०

श्याम, शुक्ल, कृष्ण, पीत, एवं शुक्ल, इसी क्रम द्वारा उनकी प्रतिमाओं को रञ्जन करना (रंगना) बताया गया है । १८-१९। पीत, भंग (भ्रमर के समान), शुक्ल, कृष्ण, शुक्ल, रक्त, शुक्ल, शोण, कृष्ण, रक्त, धूए के समान पीत, रक्तपीत, शुक्ल, कृष्ण, श्याम और रक्त वर्ण, इसी क्रम से उन्हें अनुरञ्जित करने के लिए इन बत्तीस वर्णों (रङ्गों) की व्याख्या की गयी है । २०-२१। शुक्ल, शोण (रक्त) पुनः श्वेत, सिन्दूर सदृश, कुकुम के समान पाण्डुर, रक्त, पीत, शुक्ल-पीत, श्वेत, और गौर ये आठवर्ण, तथा पीत, रक्त, श्याम, गौर इन चार वर्णों (रङ्गों) द्वारा अनुरञ्जित करना चाहिए । शम्भु वर्णादि के क्रम से वाद्य (बाजाओं) के लिए धरणी मदन रङ्ग बताया गया है । शुक्लवर्ण से दरवाजों और गाँव के मध्यम दरवाजे को तथा मध्य और अन्तभाग भी उन्हीं द्वारा विभूषित करना कहा गया है । इस प्रकार वास्तुकर्म में सब मिलाकर उनचास वर्ण बताये गये हैं, जिसमें दरवाजे समेत तक चालीस वर्ण होने चाहिए तथा उसी भाँति गृहदेवों के लिए भी । महाकूप के लिए श्वेतवर्ण, जो अन्यत्र भी प्रशस्त हैं, बताया गया है । सुन्दर लिपे-पुते पवित्र स्थान में ढेढ़ हाथ की बेदी में दश पूर्व-पश्चिम और दश उत्तर-दक्षिण रेखाओं के निर्माण के उपरान्त उन्हीं रेखाङ्कित स्थानों द्वारा यारह स्थानों की कल्पना करनी चाहिए । २२-२७। सभी वास्तु कर्मों में उनके विभाग द्वारा कुल इक्यासी स्थानों के निर्माण किये जाते हैं, उन स्थानों पर स्थित उन्हीं देवों की अर्चा करना चाहिए । बाहरी भागों में बत्तीस, पूजा स्थानों में तेरह मध्य के नवस्थानों में ब्रह्मा और उनके पार्श्ववर्ती आठ, चारों दिशाओं में षट्पदवाले, तीन स्थानों में चतुष्पद वाले, और चारों कोने के भागों में एक स्थान की कल्पना करना वास्तु निर्णय में कहा गया है । इस प्रकार चरकी आदि के त्याग कर देने से पैंतालिस देवों की पूजा शेष रह जाती है । २८-३०। शास्त्रानुसार वर्णन किये गये दूसरे मण्डल की

१. 'प्रकृत्य तः पादमव्यपरे' इति प्रकृतिभावः ।

अपरं मण्डलं दक्षे यथावदनुपूर्वशः । नवरेखाप्रयोगेण नवकोष्ठान्प्रकल्पयेत् ॥३१
 द्विचतुष्कोष्ठकैदक्षु यजेतार्यमणं ततः । विवस्वन्तं ततो मित्रं महीधरमतः परम् ॥३२
 कोणेषु कोष्ठद्वन्द्वेषु बाह्यादिपरिकीर्तितम् । सावित्रं सवितारं च शकमिन्द्रं जयं पुनः ॥३३
 रुद्रं रुद्रजयं चैव वायुं जृम्भकमेव च । पिलिपिच्छं च मेधावी विदारीं पूतनां तथा ॥३४
 क्रमादीशानपर्यन्तां जयन्तः शकभास्करौ । रत्योवृषान्तरिक्षो च दिशि त्राच्यामवस्थिताः ॥३५
 अग्निः पूजा च वितधो यमश्च गृहरक्षकः । गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगो दक्षिणमाश्रिताः ॥३६
 निर्दृतिर्दैवारिकश्च सुग्रीववरुणौ ततः । पुष्पदन्तस्वरौ शोषरोगौ प्रत्यदिशि स्थिताः ॥३७
 ध्राणवायुश्च नागश्च सोमो भल्लाट एव च । मुद्गलाख्यो दित्यदिती कुबेरस्य दिशि स्थिताः ॥३८
 मिनित्वा च त्रिपञ्चाशत्तेभ्यः पूर्वे बलिं हरेत् । पिण्याकैः परमान्नैर्वा पूर्वोक्तौर्वा यथाकमात् ॥३९
 रक्तमर्यमणं ध्यायेच्चतुर्भिर्भृभिर्वृतम् । श्वेताम्बवाहनं दिश्यं किरीटैः स्वैर्विभूषितम् ॥४०
 आकृष्णेनेति मन्त्रस्य त्वर्णकृषिर्जगतीछन्दः सवित्रयेमप्रीतये विनियोगः ॥४१
 दिवस्वन्तं पीतवर्णं पीताम्बरधरं शुभम् । मेषस्थं च महाकादं देवगन्धर्वसेदितम् ॥४२
 एतातविषंतीति मन्त्रस्य कर्दम कृषिः पंक्तिश्छन्दः कमला देवता विवस्त्रप्रीतये विनियोगः ॥४३
 मित्रं ध्यायेच्छुक्लवर्णं श्वेतहंसोपरिस्थितम् । त्रिनेत्रं त्रिभुजं चैव श्वेताम्बरधरं शुभम् ॥४४
 क्यानश्चीति मन्त्रस्य जयन्त ऋषिगायत्री छन्दः शङ्कुरो देवता मित्रप्रीतये विनियोगः ॥४५

व्याख्या बता रहा हूँ, नवरेखाओं द्वारा नव कोष्ठों की रचना करके दिशाओं के आठ कोष्ठों में अर्यमा (सूर्य) की पूजा करनी चाहिए, पश्चात बाहरी भाग के कोने के दो दो कोष्ठों में स्थित विवस्वान् मित्र, और महीधर की भी । ३१-३२। सावित्र, सविता, शक, इन्द्र, जय, रुद्र, रुद्रजय, वायु, जृम्भक, पिलिपिच्छ, विदारी और पूतना, ईशान पर्वत स्थित इन देवों की पूजा क्रमाः विद्वान् को करनी चाहिए । जयन्त, शक, भास्कर, सत्य एवं वृषान्तरिक्ष को पूरब, अग्नि, पूजा वितध, यम, गृहरक्षक, गन्धर्व, भृङ्गराज और मृगदक्षिण, निरूति, दौवारिक, सुग्रीव, वरुण, पुष्पदन्त, स्वर शोष, तथा रोग परिचम । ३३-३७। ध्राण वायु, नाग, सोम, भल्लाट, मुद्गल, दिति एवं अदिति, उत्तर दिशा में स्थापित तथा पूजित होते हैं । ३८। तिरपन देवों को और उसी संस्था में मिलाकर उन्हें पूर्व दिशा में स्थापित एवं पूजित होने के उपरान्त पिण्याक (तिल की खली), अथवा पूर्वोक्त बताये गये उत्तमान्नों द्वारा बलि प्रदान करना चाहिए । ३९। चार अथवा बहुतों से आच्छन्न, दिव्य, श्वेत वर्ण के अश्ववाहन, अपने उत्तम किरीटों से विभूषित उस रक्त वर्ण के अर्यमा का ध्यान करना चाहिए । ४०। ‘आकृष्णेते’ ति मन्त्र के स्वर्ण कृषि, जगती छन्द, सविता और अर्यमा के प्रीत्यर्थ विनियोग है ऐसा करना चाहिए । ४१। पीतवर्ण, पीताम्बरधारी, शुभ मेष (भेंड) के वाहन पर स्थित, महाकाय, देवों तथा गन्धर्वों से सुसेवित उस विवस्वान् की पूजा ‘एतातविषेती’ ति मन्त्र द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए, इस मन्त्र के कर्दम कृषि, पंक्ति छन्द, कमला देवता, विवस्वान् के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए । ४२-४३। शुक्ल वर्ण, शुभ वर्ण के हंस पर स्थित, तीन नेत्र, तीन भुजा, श्वेताम्बरधारी एवं शुभ मूर्ति वाले उन मित्र देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए । ४४। ‘क्यानश्ची’ ति मन्त्र के जयन्त कृषि, गायत्री छन्द, शंकर देवता, मित्र

प्रीतं महीधरं ध्यायेद्वृषभोपरि संस्थितम् । त्रिभुजं पश्चहस्तं च व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥४६
 अन्धकमिति मन्त्रस्य गर्गऋषित्विष्टुप् छन्दो हरो देवता महीधरप्रीतये विनियोगः ॥४७
 सादित्रीं श्वेतवर्णं च सर्वलक्षणसंयुताम् । द्विभुजां पीतवस्त्रां च श्वेतसिंहासने स्थिताम् ॥४८
 रक्ताम्बरधरं रक्तां रक्तमालोपसोभिताम् ॥४९
 तद्वर्षे इति मन्त्रस्य गौतमशृष्टिर्विराट् छन्दः सूर्यो देवता सवितृप्रीतये विनियोगः ॥५०
 शकं ध्यायेत्सीतवर्णं शुक्लकैरावतस्थितम् । सर्वदेवैः स्तूपमानं द्विभुजं पीतवाससम् ॥५१
 त्रातारमिति पन्त्रस्य भार्गव ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो नरसिंहो देवता इन्द्रजयप्रीतये विनियोगः ॥५२
 रुद्रं ध्यायेच्छ्वेतवर्णं वृषभारुदविश्रहम् । नागयज्ञोपवीतं च सर्वलक्षणसंयुतम् ॥५३
 नमस्ते रुद्रेति मन्त्रस्य गायत्री छन्दस्त्रम्बको देवता रुद्रप्रीतये विनियोगः ॥५४
 रक्तं रुद्रं जयं ध्यायेद्रक्तपश्चोपरि स्थितम् । रक्तश्यामाम्बरधरं द्विभुजं रक्तवाससम् ॥५५
 अन्धकमिति मन्त्रस्य गायत्रीछन्दो महेशो देवता रुद्रजयप्रीतये विनियोगः ॥५६
 अपि इवेतं ततो ध्यायेद्वराभयकरं परम् । सर्वलक्षणसम्पन्नं श्वेतपश्चोपरि स्थितम् ॥५७
 ईशान इति मन्त्रस्य मरीचिर्ऋषिः पश्चक्षिछन्दो वायुदेवता अपां प्रीतये विनियोगः ॥
 आपवत्सं पीतवर्णं मेषारुदं चतुर्भुजम् ॥५८

के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । ४५। प्रसन्नमुख, वृष पर स्थित, तीन भुजा, कर कमल विभूषित, सर्प के यज्ञोपवीत धारण किये उन महीधर देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए । ४६। 'अन्धकमि' ति प्रंत्र के गर्ग ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, हर देवता, महीधर के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । ४७। श्वेतवर्ण, सर्वभाँति के लक्षणों से अलड्कृत, दो भुजा पीताम्बर धारण किये, श्वेत वर्ण के सिंहासन पर सुशोभित उस सावित्री देवी की जो रक्ताम्बर धारण किये और रक्तवर्ण के मालाओं से विभूषित एवं रक्त वर्ण वाली देवी हैं, ध्यान करना चाहिए । ४८-४९। 'तद्वर्ष' इस मन्त्र के गौतम ऋषि, विराट् छन्द, सूर्य देवता, सविता के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए । ५०। पीतवर्ण, शुक्लवर्ण के ऐरावत गजराज पर स्थित, समस्त देवों से पूजित, दो भुजा, एवं पीत वस्त्र वाले उस शक्त देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए । ५१। 'त्रातारमि' ति इस मन्त्र के भार्गव ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, नरसिंह देवता इन्द्र जय के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ५२। श्वेत वर्ण, वृष पर स्थित, सापों के यज्ञोपवीत धारण किये एवं समस्त लक्षणों से युक्त उस रुद्र देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए । ५३। 'नमस्ते रुद्रं' इति इस मन्त्र के गायत्री छन्द, अन्धक देवता रुद्र प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ५४। रक्त वर्ण, रक्त कमलासन पर विराजित, रक्त श्यामाम्बर धारण किये, हो भुजा और रक्त वस्त्र वाले उस रुद्र जय देव का इस प्रकार ध्यान करना बताया गया है । ५५। 'अन्धकमि' ति इस मन्त्र के गायत्री छन्द, महेशदेवता रुद्रजय के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । ५६। सर्वलक्षणों से विभूषित, श्वेत कमलासन पर सुशोभित एवं अभय प्रदान करने वाले उस श्वेत देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए । ५७। ईशान, इस मन्त्र के मरीचि ऋषि, पंक्तिछन्द, वायुदेवता, आप (वरुण) देव के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है। पीतवर्ण, मेष (भेंड) के वाहन पर स्थित, चार भुजाएँ बायें

पद्मशङ्कुधरं वामे वराभयकरं परम्

॥५९

वरुणस्योत्तम्भनमसीति मन्त्रस्य नरोत्तम ऋषिविराट् छन्दो वरुणो देवता आवयः प्रीतये विनियोगः ॥६०

कोणसूत्रस्योभयतः श्वेतकोष्ठद्वये पुनः । शर्व ध्यायेद्रक्तवर्णं वृषभोपरि संस्थितम् ॥६१

द्विभुजं च त्रिनेत्रं च जटाभारोपशोभितम् ॥६२

माला स्वाहेति मन्त्रस्य भार्गव ऋषिगायत्री छन्दो महादेवो देवता शर्वप्रीतये विनियोगः ॥६३

गुहं ध्यायेत्वीतवर्णं पीतपद्मासनस्थितम् । नानाभरणशोभाढचं कुण्डलाद्यैरलङ्घकृतम् ॥६४

स बोध इति मन्त्रस्य अगस्तिर्त्वयिर्गायत्री छन्दो हरो देवता गुहप्रीतये विनियोगः ॥६५

अर्यम्णं द्विभुजं रक्तं रक्तमाल्योपशोभितम् । रक्तपद्मासनस्थं च देवगन्धवर्सेवितम् ॥६६

वातो वारेति मन्त्रस्य काश्यप ऋषिरनुष्टुपछन्दो वायुर्देवता अर्यमप्रीतये विनियोगः ॥६७

ध्यायेच्च जम्भकं श्वेतं द्विभुजं कुटिलाननम् । करालवदनं धोरं वराहोपरि संस्थितम् ॥६८

कुविदोगवय इति मन्त्रस्य विश्वामित्र ऋषिर्जगती छन्दः सोमो देवता जम्भकप्रीतये विनियोगः ॥६९

पिलपिच्छं रक्तवर्णं रक्तमाल्यैरलङ्घकृतम् । रक्तपद्मासनस्थं च रक्ताभरणशोभितम् ॥७०

देवस्य हेति मन्त्रस्य पंक्तिश्छन्दः शची देवता पिलपिच्छप्रीतये विनियोगः ॥७१

पीतां च चरकीं ध्यायेद्रक्तसाल्यैरलङ्घकृताम् । सुचारुवदनां भव्यां गुञ्जाहारोपशोभिताम् ॥७२

दोनों भुजाओं में कमल और शंख धारण किये, परमोत्तम वर एवं प्रणय प्रदान करने वाले उस वत्स देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए । ५८-५९। ‘वरुणस्योत्तम्भनमसी’ ति इस मन्त्र के नरोत्तम ऋषि, विराट् छन्द, वरुण देवता, आवयस्प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ६०। कोने के दोनों पार्श्व भाग के श्वेत कोष्ठों में रक्तवर्ण, वृषभ पर स्थित, दो भुजा, तीन नेत्र एवं जटा के भार से विभूषित उन शर्व देव का इस भाँति ध्यान करना कहा गया है । ६१-६२। ‘माला स्वाहेति’ इस मन्त्र के भार्गव ऋषि, गायत्री छन्द, महादेव देवता, शर्व प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ६३। पीत वर्ण, पीत कमलों के आसन पर विराजमान, भाँति भाँति, के सौन्दर्य पूर्ण आभूषणों एवं कुण्डलों आदि से अलंकृत उस गुह्य देव का इस प्रकार ध्यान करना बताया गया है । ६४। ‘स बोध’ इस मन्त्र के अगस्त ऋषि, गायत्री छन्द हर देवता, गुह प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ६५। दो भुजा, रक्तवर्ण, रक्तवर्ण की मालाओं से सुशोभित, रक्त कमलों पर स्थित एवं देव गन्धवर्णं से आच्छन्न उस अर्यमा देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए । ६६। ‘वातोवार’ इस मन्त्र के काश्यप ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, वायु देवता, अर्यमा के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । ६७। श्वेत वर्ण, दो भुजा, कुटिल मुख, भीषण काय, धोर स्वरूप, तथा वाराह पर स्थित उस जृम्भक देव का इस प्रकार ध्यान करना चाहिए । ६८। ‘कुविदोगवयः’ इस मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि, जगती छन्द, सोम देवता, जम्भक प्रीत्यर्थ यह विनियोग हैं । ६९। रक्त वर्ण, रक्त वर्ण की मालाओं से अलंकृत, रक्त कमलासनं पर स्थित और रक्त वर्ण के आभूषणों से आभूषित उस पिलपिच्छदेव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए । ७०। ‘देवस्य हेति’ इस मन्त्र का पंक्तिश्छन्द, शची देवता, पिलपिच्छ प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ७१। पीत वर्ण रक्तमालाओं से सुशोभित, सौन्दर्यपूर्ण उत्तम वदन, भव्याकृत, एवं गुञ्जा के हार से विभूषित उस चरकी

तद्र्वष्ट इति मन्त्रस्य जटिल ऋषिर्बृहती छन्दो भदो देवता चरकी प्रीतये विनियोगः ॥७३
 श्यामां विदारिकां ध्यायेत्रिनेत्रां च चतुर्भुजाम् । नानागणयुतां देवीं पङ्कजद्वयधारिणीम् ॥७४
 श्रीश्वर्ते इति मन्त्रस्य वशणऋषिर्नैसिंहो देवता विदारिकाप्रीतये विनियोगः ॥७५
 रक्तां च पूतनां ध्यायेत्पङ्कजस्थां सुशोभनाम् । सर्वाभरणसम्पन्नां सर्वालङ्कारशोभिताम् ॥७६
 मयि गृह्णामीति मन्त्रस्य विवस्वानृषिनरायणो देवता पूतनाप्रीतये विनियोगः ॥७७
 पूर्वादिदिक्षु सर्वामु साधार्यन्तपदेषु च । ईशानं जटिलं श्वेतं शूलहस्तं महाभुजम् ॥७८
 त्रिनेत्रं वृजभारूढं नामहारोपशोभितम् ॥७९
 आयुः शीर्षणि इति मन्त्रस्य वामदेव क्रृषिर्बृहती छन्दो धरणीधरो देवता ईशानप्रीतये विनियोगः ॥८०
 रक्तं ध्यायेच्च पर्जन्यं द्विभुजं पीतवाससम् । दक्षिणे परशुं ध्यायेदोङ्कारं च तथापरे ॥८१
 क्यानश्चेति मन्त्रस्य धर्मऋषिर्बृहती छन्दो भदो देवता पर्जन्य प्रीतये विनियोगः ॥८२
 । जयन्तं श्वेतं श्वेतवृषभारूढं ध्यात्वा ।

मानस्तोकेति मन्त्रस्य शक्त्यृषिस्त्रिष्टुपच्छन्दः शङ्करो देवता जयन्तप्रीतये विनियोगः ॥८३
 शुक्लं पीतं द्विभुजमैरावतस्थं वज्रधरं ध्यात्वा मूलबीजेन स्थापयेत् ॥८४
 भास्करं रक्तं द्विभुजं रक्ताश्वस्थं ध्यात्वा मायाबीजेन पूजयेत् ॥८५
 सत्यं च द्विभुजं श्वेतं त्रिनेत्रं पीतवाससं मन्दकुन्डबीजेन पूजयेत् । वृषं पीतं वृषभारूढमाकाशबीजेन पूजयेत् ॥८६

देवी को इस भाँति का ध्यान करना कहा गया है। 'तद्र्वष्ट' इस मन्त्र के जटिल ऋषि, बृहती छन्द, भवदेवता, चरकी प्रसन्नार्थ यह विनियोग है। श्यामाङ्गी, तीन नेत्र, चार भुजाएँ अनेक गणों से सेवित, तथा दो कमल पुष्प लिए इस विदारिका देवी को इस प्रकार ध्यान करना कहा गया है । ७२-७४। 'श्रीश्वते' इस मन्त्र के वशण ऋषि, नरसिंह देवता विदारिका प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ७५। रक्तवर्ण, कमलासन पर स्थित, परम सुन्दरी, समस्त आभरणों एवं समस्त अलंकारों से अलंकृत उस पूतना का इस प्रकार ध्यान करना बताया गया है । ७६। 'मयि गृह्णामि' इस मन्त्र के विवस्वान्, ऋषि, नारायण देवता, पूतना प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ७७। सभी पूर्वादि दिशाओं में अन्त के डेढ़ कोष्ठों के स्थानों में जटाधारी, श्वेत, हाथ में शूल लिए लम्बी भुजा, तीन नेत्र, वृष पर स्थित, और सर्पों के हार से विभूषित उन ईशान देव का ध्यान इस भाँति करना बताया गया है । ७८-७९। आयुः शीर्षणि' इस मन्त्र के वामदेव क्रृषि, बृहती छन्द, धरणीधर देवता, ईशान प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ८०। रक्तवर्ण, दो भुजा, एवं पीताम्बर धारण किये, इस भाँति उस पर्जन्य देव, दक्षिण में परशु एवं ओंकार देव का ध्यान करना चाहिए । ८१। 'क्यानश्चेत्ते' ति इस मन्त्र के धर्म ऋषि, बृहती छन्द, भव देवता पर्जन्य प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ८२। श्वेत वर्ण, एवं श्वेत वृषभ पर स्थित उस जयत देव का इस भाँति ध्यान करने 'मानस्तोके' ति इस मन्त्र के शक्ति ऋषि, त्रिष्टुपच्छन्द, शंकर देवता जयत प्रीत्यर्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए । ८३। शुक्लवर्ण, पीताम्बर धारण किये, दो भुजा, ऐरावत पर स्थित, उस वज्रधारीदेव का इस भाँति ध्यान करके मूल बीज से स्थापित करना कहा गया है । ८४। रक्तवर्ण, दो भुजा, रक्तवर्णके अश्व पर स्थित, भास्कर देव के ध्यान पूर्वक माया बीज से उनकी पूजा करनी चाहिए । ८५। दो भुजा, श्वेत वर्ण, तीन नेत्र, पीतवस्त्र वाले उस सत्य देव की मंद कुन्द बीज द्वारा अर्चा करनी चाहिए। पीत वर्ण, और वृषभ पर स्थित वृषदेव

ऋक्षं नीलं चतुर्भुजं महिषारूढम् ॥
 आच्छीम इति मन्त्रस्य होता यक्षऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः शंकरो देवता ऋक्षप्रीतये विनियोगः ॥८७
 अग्निमारम्य पूजयेत् । अग्निं रक्तंसप्तजिह्वं रक्तवाससं पिङ्गाक्षं ध्यात्वा । ॥८८
 अग्निं द्वूतमिति मन्त्रश्च भरद्वाजऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः शङ्करो देवता अग्निप्रीतये विनियोगः ॥८९
 वितथं रक्तमजवाहनं द्विभुजं ध्यात्वा गायत्र्या पूजयेत् ॥९०
 गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिगर्यत्री छन्दः सविता देवता वितयप्रीतये विनियोगः ॥९०
 यमं कृष्णमहिषारूढं दण्डहस्तं ध्यायेत् ॥
 अच्छिय इतिमन्त्रस्य त्रिष्टुप्छन्दो भवानीदेवता यमप्रीतये विनियोगः ॥९१
 गृहे क्षेत्रं रक्तमूर्ध्वकेशं भहुभुजं रक्तवाससं ध्यात्वा बह्मीजेन पूजयेत् ॥९२
 गन्धर्वं इवेतं द्विभुजं पश्चासनस्थं ध्यात्वा यमबीजेन पूजयेत् ॥९३
 भृङ्गराजं रक्तसिहासनारूढं दिव्ययज्ञोपवीतिनं ध्यायेत् ॥९४
 होता यस्केति मन्त्रस्य भार्गव ऋषिगर्यत्री छन्दो यशो देवता भृङ्गराजप्रीतये विनियोगः ॥९५
 भृंगं पीतं भृगारूढं पीतवाससं ध्यात्वा ॥
 कदाचनेति मन्त्रस्य वामदेव ऋषिर्वृहती छन्दो वामदेवो देवता भृगप्रीतये विनियोगः ॥९६
 नैर्झृतार्द्धपदेषु च । निर्झृति पीतं इवेतं पश्चासनस्थं ध्यात्वा ॥

की पूजा आकाश बीज द्वारा करना बताया गया है । ८६। नील वर्ण, चार भुजाएँ और महिष पर स्थित उस ऋक्ष देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए । ‘आच्छीम’ ति इस मन्त्र के होता यक्ष ऋषि, त्रिष्टुप छन्द, शंकर देवता, ऋक्ष के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है, ऐसा कहें । ८७। पूजन विधान अग्नि देव से आरम्भ करना बताया गया है, सर्व प्रथम रक्तवर्ण, सात जिह्वाएँ, रक्तवस्त्र, तथा पिंगल नेत्र वाले उस अग्नि देव का इस भाँति ध्यानपूर्वक “अग्निं इतिमिति” मंत्र के भरद्वाज ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, शंकर देवता, अग्नि के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है, ऐसा कहना चाहिए । ८८। रक्तवर्ण अज (बकरा) वाहन, एवं दो भुजा वाले उस वितथ देव का ध्यान करके गायत्री द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । ८९। गायत्री मंत्र के विश्वामित्र ऋषि, गायत्री छन्द, रविता देवता, वितथ के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । ९०। काले रंग के भैंस पर स्थित और दण्डहाथ में लिए उस यमराज देव का इस भाँति से ध्यान करना बताया गया है । ‘अच्छिय इति’ इस मन्त्र का त्रिष्टुप छन्द, भवानी देवता यम के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ९१। रक्तवर्ण, ऊर्ध्वकेश, लम्बी भुजा एवं रक्त वस्त्र वाले उस क्षेत्र देव का ध्यान करके बह्मीज द्वारा उनकी पूजा करना बतया गया है । ९२। श्वेत वर्ण, दो भुजा, एवं कमलासन पर स्थित उस गन्धर्व देव का ध्यान करके यम बीज द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । ९३। रक्तवर्ण के सिंहासन पर स्थित और दिव्य यज्ञोपवीत धारण किये उस भृङ्गराज देव का इस भाँति ध्यान करना चाहिए । ९४। होतायस्केति’ इस मन्त्रके भार्गव ऋषि गायत्री छन्द, यशोदेवता भृङ्गराज के प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । ९५। पीत वर्ण, भृंग पर सुशोभित पीत वस्त्र धारण किये, उस भृंग देव का ध्यान करके कदाचनेति’ इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, वृहती छन्द, वामदेव देवता, भृगदेव के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । ९६। नैऋत के अर्ध स्थान भाग के स्थानों में पीत वर्ण, श्वेत वस्त्र,

कैदाचनेतिमन्त्रस्य पङ्कितश्छुन्दः नविता देवता निर्ऋतिप्रीतये विनियोगः ॥९७
नैर्कृतार्द्धपदेषु च दौवारिकं इवेतशरमालूङ् त्रिनेत्रं सर्वभिरणभूषितं ध्यात्वा ॥

होतस्वेति मन्त्रस्य नरसिंहऋषिर्वृहती छन्दो गणेशो देवता दौवारिकप्रीतये विनियोगः ॥९८
श्यामं सुग्रीवं कृष्णमेषालूङ् पीतवाससं ध्यात्वा ।

स्वादित्येति मन्त्रस्य शिष्टुप्छुन्दो वामनो देवता सुग्रीवप्रीतये विनियोगः ॥९९
सुमित्रिया न इति मन्त्रस्य कन्दर्षऋषिः पङ्कितश्छुन्दः सूर्यो देवता वरुणप्रीतये विनियोगः ॥१००

पुष्पदन्तं पीतं मेषालूङ् पीतवाससं ध्यात्वा ।

या ओषधीरिति मन्त्रस्य सम्मथऋषिर्जगती छन्दो वायुर्देवता पुष्पदन्तप्रीतये विनियोगः ॥१०१
असुरं कृष्णं कृष्णगाल्यैरलङ्घुतं कृत्वा ।

आकृष्णोति मन्त्रस्य हिरण्यवर्णं ऋषिर्जगती छन्दः सविता देवता असुरप्रीतये विनियोगः ॥१०२
असुरं कृष्णं नागहाराराज्ञितं पद्मासनस्थं ध्यात्वा ।

आळह्यान्निति मन्त्रस्य नलिनश्चिस्त्रिष्टुप्छुन्दो भवानी देवता तोमप्रीतये विनियोगः ॥१०३
रोगं कृष्णं नीलन्दीवरधरं श्वेतवृषभालूङ् ध्यात्वा ।

नमस्ते रुद्र इति मन्त्रस्य नारद ऋषिः पंक्तिश्छुन्दः श्रीर्देवता रोगप्रीतये विनियोगः ॥१०४
वायुकोणादारभ्य पूजयेत् । वायुं धूम्रवर्णं ध्वजहस्तं भृगालूङ् ध्यात्वा ॥

एवं पद्मासन पर स्थित, उस निरूपि देव के ध्यान पूर्वक 'कदाचनेति' इस मन्त्र के पंक्ति छन्द, सविता देवता, निरूपि के प्रीत्यर्थ इस विनियोग को कहना चाहिए ।९७। पुनः उन्हीं स्थानों में श्वेत वर्ण के शरासन पर स्थित, तीन नेत्र, और सर्व भाँति के आभूषणों से सुसज्जित, उस दौवारिक देव का ध्यान करके 'होतस्वेति' इस मन्त्र के नरसिंह ऋषि, बृहती छन्द, गणेश देवता दौवारिक के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना बताया गया है । श्यामल वर्ण, कृष्ण वर्ण के मेष (भेंड) पर स्थित, एवं पीताम्बर धारी उस सुग्रीवदेव का ध्यान करके 'स्वादित्येति' इस मंत्र के त्रिष्टुप् छन्द, वामन देवता, सुग्रीव देव के प्रसन्नार्थ इस विनियोग को कहना चाहिए ।९८-९९। 'सुमित्रियाने' ति इस मंत्र के कन्दर्ष ऋषि, पंक्ति छन्द, सूर्य देवता, वरुण देव के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।१००। पीतवर्ण, मेष पर स्थित, एवं पीतवस्त्र धारण किये पुष्प दन्त देव का ध्यान करके 'या ओषधीरिति' इस मंत्र के मन्मथ ऋषि, जगती छन्द, वायु देवता, पुष्पदन्त के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए ।१०१। कृष्ण वर्ण के असुरों को कृष्ण वर्ण की मालाओं से अलंकृत करके 'आकृष्णोति' इस मंत्र के हिरण्य वर्ण ऋषि, जगती छन्द, सविता देवता असुर के प्रसन्नार्थ इस विनियोग के उच्चारण करना चाहिए ।१०२। कृष्ण वर्ण सापों के हार से भूषित, एवं पद्मासन पर स्थित उस असुर के ध्यान करके 'आ ब्रह्मग्नि' ति इस मंत्र के नलिन ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, भवानी देवता, सोम के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ऐसा कहे ।१०३। कृष्ण वर्ण नीलकमल धारण किये तथा श्वेत वृषभ के आसन पर आसीन उस रोग के इस भाँति ध्यान करके 'नमस्ते रुद्र इति' इस मंत्र के नारद ऋषि, पंक्ति छन्द, श्री देवता रोग के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए ।१०४। पूजा विधान वायुकोण से आरम्भ करना बताया गया है, धूएँ के समान वर्ण, हाथ में

देवा इति मन्त्रस्य बृहती छन्दो यमो देवता नागप्रांतये विनियोगः ॥१०५
श्वेतं सोमं श्वेतवर्णासनस्थं ध्यात्वा भद्रबीजेन पूजयेत् ॥१०६

रक्तं भल्लाटं पीतवाससं ध्यात्वा वह्निबीजेन पूजयेत् ।

पीतवाससमजवाहनं हारकेद्वरान्वितं बायुबीजेन मन्दरादैः पूजयेत् ॥१०७
रक्तां दिर्ति नागः हारान्वितां रक्तपद्मासनस्थां ध्यात्वा । सानार्थ इति मन्त्रस्येति पूजयेत् ॥१०८
मानोः त्वा इति मन्त्रस्य भार्गवकृष्णिः पंक्तिष्ठन्दः पृथिवी देवता दितिप्रीतये विनियोगः ॥१०९
अदिर्ति पीतवर्णां सिंहालङ्घां पीताम्बरधारां ध्यात्वा ।

हिरण्यवर्ण इति मन्त्रस्य जनर्दनऋषिर्बृहतीछन्दः सोमो देवता अदिर्तिप्रीतये विनियोगः ॥११०
एवं यथा विधायाथ होमं कुर्याद्यथाविधि । होमान्ते दक्षिणां द्वच्चात्वाभ्यनं हेमसंयुतम् ॥१११
तडागयागपक्षे तु सुवर्णं चार्धमेव वा ॥११२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणि द्वितीयभागे
वास्तुयागवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः । १०

ध्वजा लिए, मृग वाहन पर स्थित उस वायु देव का इस प्रकार ध्यान करके 'देवा इति' इस मंत्र के बृहती छन्द, यम देवता, नाग के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । १०५। श्वेत वर्ण एवं श्वेत वर्ण के आसन पर विराजमान उस सोमदेव का इस भाँति से ध्यान करके भद्रबीज से पूजा करनी चाहिए । १०६। रक्त वर्ण, एवं पीताम्बरधारी उस भल्लाट का ध्यान करके वन्हिबीज से अर्चा करनी चाहिए । पीतवस्त्र धारी, अज (बकरा) दाहन पर स्थित एवं हार केयूर आभूषणों से अलंकृत उस देव की पूजा वायु बीज द्वारा मन्दराओं से करना बताया गया है । १०७। रक्त वर्ण, नाग हार से भूषित, एवं रक्तकम्ल के आसन पर आसीन उस दिति देवी का इस भाँति ध्यान करके 'मानार्थ इति' इस मंत्र द्वारा पूजा करनी चाहिए । १०८। 'मानो त्वा इति' इस मन्त्र के भार्गवकृष्णि, पंक्ति छन्द, पृथिवी देवता, दिति देवी के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना बताया गया है । १०९। पीतवर्ण, सिंह वाहन पर सुशोभित तथा पीताम्बर धारिणी उस अदिति, देवी का इस भाँति ध्यान करके 'हिरण्य वर्ण इति' इस मन्त्र के जनर्दनकृष्णि, बृहती छन्द, सोम देवता अदिति के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । ११०। इस प्रकार (सभी देवताओं के आवाहन पूजन के उपरांत) विधान पूर्वक हवन समाप्ति करके ब्राह्मणों को हेम संयुत काञ्चन की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए, और सरोवर भाग में उसी भाँति सुवर्ण, अथवा उस के अर्धभाग के प्रदान भी करने चाहिए । १११-११२

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पण के दूसरे भाग में वास्तुभागवर्णन
नामक दशवर्ण अध्याय समाप्त । १०।

अथैकादशोऽध्यायः

पूजाक्रमवर्णनम्

सूत उवाच

अथ पूजाक्रमं वक्ष्ये पुराणस्मृतिचोदितम् । उत्तरे पश्चिमे वाथ पूर्वे चापि समाचरेत् ॥१
 नदीतीरे नैमित्रान्ते दशद्वादशसंख्या । मण्डलं रचयेद्विप्राश्वरकद्वयसंयुतम् ॥२
 त्रिभागं द्विभजेत्क्षेत्रं मध्यभागद्वयेन तु । त्रिहस्तत्वेदिकां कुर्यात्तालोत्सेधामुदक्लवाम् ॥३
 उत्तराशे दक्षिणे चरत्विहस्तान्तरेऽपि च । द्विमेततां हस्तमात्रां गुणवेदसमन्विताम् ॥४
 मूले सार्धं च शुक्लां च मेखलां तु तथैव च । चतुरझगुलिकां देविं भध्योन्नतां प्रकल्पयेत् ॥५
 षट्सप्ताङ्गगुलिकां योनि पश्चिमे भेखलोपरि । विन्यसेनाभिसंयुक्तमेवं कुण्डं प्रकल्पयेत् ॥६
 श्राद्धं वृद्धचात्मकं कुर्यात्सङ्कल्पं मानसं चरेत् । श्राद्धार्थं नैव सङ्कल्पेत्यथा वै देवदर्शने ॥७
 गयाश्राद्धार्थकं चाष्टतीर्थश्राद्धार्थमेव च । ऐशान्यां कलशे देवं पूजयेद्वागणतायकम् ॥८
 मध्ये कुण्डे महांश्रैव विष्णुदेवं दिगीश्वरान् । ब्रह्माणं चाग्निकुण्डे तु स्वैः स्वैर्मन्त्रैः प्रपूजयेत् ॥९

अध्याय ११

पूजाक्रम का वर्णन

सूत बोले—इसके उपरांत मैं पुराण एवं स्मृति के अनुसार पूजा के क्रम बता रहा हूँ, सुनो ! उसका क्रमिक आरम्भ उत्तर, पश्चिम, अथवा सूर्य की ओर से होना चाहिए । १। विप्रवृन्द ! नदी के तट पर अथवा कूप के समीप में दश-बारह संख्या के मण्डल का जिसमें चह (हवि) बनाने के लिए दो स्थानों की कल्पना की गयी हो, निर्माण करना चाहिए । २। सर्वप्रथम उस क्षेत्र को तीन भागों में विभाजित करके उसके मध्यम के दो भागों में तीन हाथ प्रमाण करके उसके मध्य के दो भागों में तीन हाथ प्रमाण की वेदी की रचना करनी चाहिए । जिसकी उचाई ताल विस्तृत (अंगूठे और मध्यमा के बीच भाग) के समान हो और (जल के निकालने के लिए) उत्तर की ओर ढालू हो । ३। उसी भाँति अरति मात्र एक हांथ की दक्षिण उत्तर दिशा वाली भूमि भी होना चाहिए और गुण, वेद युक्त हस्त मात्र की तीन मेखला के निर्माण भी । ४। मूल भाग के सार्ध (डेढ़) भागमें शुक्ल वर्ण की उसी भाँति की मेखला होनी चाहिए और चार अङ्गुल की वेदी की जिसका मध्यभाग उल्लंत हो, रचना होनी चाहिए । ५। पश्चिम भाग की मेखला के ऊपर छः सात अंगुल की योनि के निर्माण पूर्वक इस भाँति के नाभि संयुक्त कुण्ड की कल्पना की जाती है । ६। (वहाँ) वृद्धि-श्राद्ध और मानसिक संकल्प करना परमावश्यक बताया गया है, क्योंकि श्राद्धार्थ और देवता के दर्शन में संकल्प करने का विधान नहीं है । ७। गया श्राद्ध और अष्ट तीर्थ श्राद्ध के निमित्त ईशान कोण में स्थित कलश में गणनायक देव का आवाहन पूजन करना चाहिए । ८। कुण्ड के मध्य भाग में दिक्पालों एवं विष्णु देव और ब्रह्मा की अग्नि कुण्ड में उनके नाम मंत्रोंद्वारा पूजा करना बताया गया है । ९।

धृजहस्तं महाबाहुं मरुद्भूश्रोपसेवितम् । द्विभुजं धूम्रवर्णं च वायुं ध्यात्वा प्रपूजयेत् ॥३८
 राजान् इति मन्त्रेण पूजयेत्सिततण्डुलैः । ऋषिनारायणश्छन्दो गायत्री देवता द्विजाः ॥३९
 देवता च भवेद्वायुः प्रीतये तस्य योजयेत् । पूषारक्तश्च द्विभुजो रक्तपद्मासनस्थितः ॥४०
 राजान् इति च श्लूचा पूजयेदगन्धचन्दनैः । गोभिलोऽस्यऋषिः पंक्तिश्छन्दोऽथ जगती स्मृतम् ॥
 देवता च भवेद्वायुः प्रीतये विनियोजयेत् ॥४१
 वितर्थं श्यामवर्णं च चतुर्भिर्बाहुभिर्वृतम् । मृगाक्षपशशब्दाङ्गशूलं च दधतं करैः ॥
 मेलारुङ्गं विशालाक्षं राजानो महायमीरयन् ॥४२
 गृहक्षतं तथा शुक्लं चतुर्भिर्गर्भभैर्वृतम् । शूलं दण्डं च खटुंगं दधतं वृषवाहनम् ॥४३
 पीतवस्त्रधरं देवं जटामुकुटसंयुतम् । आशुः शिशान इति मन्त्रेण पूजयेदगन्धचन्दनैः ॥४४
 पुष्पदन्तं ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दश्च परिकीर्तितम् । इंश्वरस्य देवतायाः प्रीतये विनियोजयेत् ॥४५
 यमं ध्यायेत्कृष्णवर्णं महिषस्यं द्विबाहुकम् । दण्डपाशधरं चैव केयूराद्यर्विभूषितम् ॥४६
 ईशानेति च मन्त्रेण पूजयेत्कुसुमादिना । वामदेव ऋषिः पंक्तिश्छन्दः कालोऽस्य देवता ॥४७
 षडाननं च गन्धर्वं पीतं ध्यायेच्चतुर्भुजम् । पीताम्बरधरं चैव नानाभरणभूषितम् ॥४८
 यदेव इतिमन्त्रेण पूजयेत्कुसुमादिना । हारीतोऽस्य ऋषिःप्रोक्तो जगतीछन्द ईरितम् ॥
 हिरण्यगर्भो देवताऽस्य प्रीतये विनियोजयेत् ॥४९

प्रसन्नार्थं यह विनियोग है । ३६-३७। हाथ में ध्वजा लिए, महाबाहु, मरुदगणों से सुसेवित, दो भुजा तथा धूएँ के समान वर्ण उस वायु देव का इस भाँति के ध्यान पूर्वक पूजन करना चाहिए । ३८। 'राजान इति' इस मन्त्र के उच्चारण करते हुए श्वेत चावल द्वारा पूजा करना बताया गया है । द्विजगण इस मंत्र के नारायण ऋषि, गायत्री छन्द, वायुदेवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है, दो भुजा और रक्त कमल पर सुखासीन उस पूषा रक्त देव की 'राजन इति' इस ऋचा द्वारा गन्ध चन्दन समेत पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के गोभिल ऋषि, पंक्ति तथा जगती छन्द वायु देवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ३९-४१। श्यामल वर्ण, चार भुजाएँ, मृग अक्षपाश, खटुंग और शूल अस्त्रों को हाथों में लिए मेष (भेंड़) वाहन पर स्थित, एवं विशालाक्ष उस देव की पूजा 'राजानो महायमीरयन्त्रित' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक करनी चाहिए । ४२। शुक्ल वर्ण, चारों ओर गधों से घिरे, शूल, दण्ड और खटुंग अस्त्रों को धारण किये, वृषभ पर स्थित । ४३। पीताम्बरधारी, जटामुकुट विभूषित उस गृहक्षत देव की 'आशुः शिशान इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्ध चन्दन द्वारा पूजा करनी चाहिए । ४४। इस मन्त्र के पुष्पदन्तं ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, ईश्वर देवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ४५। कृष्णवर्ण, महिष पर स्थित, दो भुजा, दण्ड-पाश धारण किये, एवं केयूर (बाहुभूषण) आदि आभूषणों से सुशोभित उस यम देव का इस भाँति ध्यान करके 'ईशानेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक पुष्पों आदि से पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के वामदेव ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं कालदेवता, हैं । ४६-४७। पीत वस्त्र, चार भुजाएँ, पीताम्बरधारी, अनेक आभूषणों से विभूषित उस देव की पूजा 'यदेव इति' इस मन्त्र द्वारा कुसमों से करनी चाहिए । इस मन्त्र के हारीत ऋषि, जगती छन्द, हिरण्यगर्भ देवता हैं, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ४८-४९। जटाजूटविभूषित, स्वच्छ पीताम्बर

भृङ्गराजं जटारूढं स्वच्छं पीतास्वरं शुभम् । चक्षुः पीतेति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ॥५०
 ऋषिश्चागस्तिराख्यातस्त्रिष्टुप्छन्दः प्रकीर्तितम् । विश्वेदेवा देवता च भृङ्गराजस्य प्रीतये ॥५१
 पीतं मृगं मृगारूढं जटामुकुटमंडितम् । परो देवा इति मन्त्रेण पूजयेद्वलिपायसैः ॥५२
 कपिलश्च ऋषिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम् । वरुणो देवता चास्य प्रीतये विनियोजयेत् ॥५३
 ध्यायेत्पितृगणं शुक्लं चतुर्भिर्बहुभिर्वृतम् । पितृभ्य इति मन्त्रेण पूजयेत्कुसुमादिना ॥५४
 शुनः शेष ऋषिश्चास्य त्रिष्टुप्छन्दश्च देवता । विश्वेदेवाः समाख्याताः पितृमेधेन पूजयेत् ॥५५
 दौवारिकं चाष्टभुजं कृष्णवर्णं विचिन्तयेत् । रक्तवस्त्रं पिङ्गलाक्षं कृष्णव्याघ्रोपरि स्थितम् ॥५६
 यो नः पिबतेति मन्त्रेण पूजयेद्गूक्तितत्परः ॥५७
 वैश्वानर ऋषिश्चास्य गायत्री छन्द ईरितम् । देवता च भवेच्छक्तिर्विनियोगश्च पूजने ॥५८
 शङ्खाभं चैव सुग्रीवं द्विभुजं चक्रधारिणम् । हंसारूढं भ्राकायं बलिविज्ञानकारणम् ॥५९
 शङ्खपद्मधरं चैव महिषस्यं विचिन्तयेत् । स इषु हस्तेति मन्त्रेण पूजयेद्गृह्णभूषणैः ॥६०
 ऋषिः शङ्खस्तथाच्छन्दः पाइक्तः सोमोऽय देवता । श्वेतं जलाधिपं ध्यायेद्गन्धवर्णेश्च वेष्टितम् ॥६१
 ऋष्यासनगतं ध्यायेच्छवेतगमधेन चर्चयेत् । बृहस्पते परिदीया इति मन्त्रेण भक्तिः ॥६२
 अयंकोऽस्य ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो देवो जलाधिपः । ध्यायेच्च असुरं रक्तं करालं नरवाहनम् ॥६३

धारी, एवं शुभ उस भृङ्गराज देव की 'चक्षुः पीतेति' इस मन्त्र के उच्चारण करते हुए गन्ध चन्दनों द्वारा पूजा करनी चाहिए ।५०। इस मन्त्र के आगस्ति ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, विश्वेदेवा देवता, भृङ्गराज के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।५१। पीत वर्ण, मृग परिस्थित तथा जटा मुकुटधारी उस मृगदेव की, 'परोदेवा इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक बलि और पायस (खीर) द्वारा पूजा करनी चाहिए ।५२। इस मन्त्र के कपिल ऋषि, गायत्री छन्द, एवं वरुण देवता, हैं उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है ।५३। शुक्ल वर्ण, और चार भुजाओं को धारण किये उन पितृगणों के ध्यान करके 'पितृभ्य इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक पुष्पों आदि से पूजा करनी चाहिए ।५४। इस मन्त्र के पुनः शेष ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, विश्वेदेवा देवता हैं, पितृ मेध द्वारा उनकी पूजा होनी चाहिए । आठ भुजाएँ, कृष्ण वर्ण, रक्त वस्त्र, पिङ्गल नेत्र एवं काले वाघ पर स्थित उस दौवारिक देव का ध्यान करके 'योनः पितृति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति तन्मय होकर उनकी पूजा करनी चाहिए ।५५-५७। इस मन्त्र के वैश्वानर ऋषि, गायत्री छन्द शक्ति देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ पूजन में यह विनियोग कहना चाहिए ।५८। शंख की भाँति आभा, सुन्दर गला दो भुजा, चक्रधारी, हंस पर स्थित, महाकाय, बलि-विज्ञान के कारण, शंख पद्म धारण किये तथा महिष पर स्थित, उस (शंख) देव का इस भाँति ध्यान करके 'स इषु हस्तेति' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए रक्त वर्ण के भूषणों द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए ।५९-६०। इस मन्त्र के शंख ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं सोम देवता हैं । श्वेत वर्ण, और गन्धवर्णों से सुसेवित, एवं ऋषिके आसनों पर सुशोभित उस जलाधिप (वरुण) देव की, भक्ति पूर्वक 'बृहस्पते परिदीया इति' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए श्वेत गन्ध से उनकी अर्चा करनी चाहिए ।६१-६२। इस मन्त्र के अयंकोऽस्य ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द, और वरुण देवता हैं, रक्तवर्ण, भीषण काय, नरवाहन,

दशभिर्बहुभिर्युक्तं कृष्णदस्मानुलेपनम् । शशो देवीति मन्त्रेण दृष्णपुष्ट्यैः प्रपूजयेत् ॥६४
 ऋषिर्वैश्वानररच्छन्दो विराजित्यभिधीयते : वैश्वानरोत्तरो देवः प्रीतये तस्य योजयेत् ॥६५
 शेषं षडाननं ध्यायेत्कृष्णं च मधुपिङ्गलम् । मेषस्यं कुण्डलोपेतं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥
 उद्वर्ष इति मन्त्रेण पूजयेद्भूतिभिर्छता ॥६६
 नापं रक्तं त्रिनेत्रं च रक्तं गान्ते विचिन्तयेत् । रक्तशमशुधरं चैव वरहस्तं विचिन्तयेत् ॥६७
 सिद्धो वीरेति मन्त्रेण कृष्णपुष्ट्यैरथार्चयेत् । यमं च कृकराक्षं च आकुञ्चनमूर्धजे द्विजाः ॥६८
 कपिलोऽस्य ऋषिर्छन्दोऽनुष्टुप् चैत्र प्रकीर्तितम् । देवता त्र्य यशः ख्यातं प्रीतये विनियोजयेत् ॥६९
 यमं च कृकराक्षं च क्षमाकुञ्चितमूर्धजम् । खरस्यं द्विभुजं ध्यायेदिमं मन्त्रमूदीरयेत् ॥७०
 वासुकिः स्याद्विषश्वास्य पद्मिक्तश्छन्दश्च देवता । हिरण्यगर्भ इत्युक्तः प्रीतयेऽस्य नियोजयेत् ॥७१
 अर्धपीतं च द्विभुजं रक्ताक्षं धूम्रमेव वा । देवताभित्र सम्पन्नं वातो वारेतिरेव च ॥७२
 कृषिर्वायुश्च गायत्री छन्दो वायुश्च देवता ॥७३
 मुग्धरक्तं शत्रुचक्रगदापद्मधरं तथा । पीतवस्त्रं पत्तगस्थं हारकेयूरमण्डितम् ॥७४
 अवसृष्टा परापत इति मन्त्रेण पूजयेत् । अग्निश्वास्य ऋषिः प्रोक्तश्छन्दः सोमश्च देवता ॥७५
 पीतं भल्लाटकं ध्यायेत्पद्मस्थं रक्तमूषणम् । द्विभुजं पद्महस्तं च देवमेवं विचिन्तयेत् ॥
 यन्मातुरिति मन्त्रेण पूजयेत्सिततण्डुलैः ॥७६

दशभुजाओं से युक्त, काले वस्त्र से आच्छान्न, उस अक्षर के इस भाँति ध्यान करके 'शशो देवीति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक कृष्णवर्ण के पुष्टों द्वारा उनकी पूजा बतायी गयी है । ६३-६४। इस मन्त्र के वैश्वानर ऋषि, विराज छन्द, वैश्वानर देवता उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । षट्मुख, कृष्ण और मधु पिंगल वर्ण, मेष (भेंड) पर स्थित कुण्डल मणित सर्पों के यज्ञोपवीत धारण किये, उसे शेष देव के इस भाँति ध्यान करके ऐश्वर्यर्चन्द्रुक को 'ऊद्वर्ष इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए । ६५-६६। रक्त वर्ण, तीन नेत्र, रक्तवर्ण के नेत्र आँत, दाढ़ी मूँछे एवं वरदहस्त उस पाप की 'सिद्धो वीरेति' इस मन्त्र के उच्चारण करके कृष्ण वर्ण के पुष्टों से पूजा करनी चाहिए । द्विजगण ! उसी भाँति कृकर (वायु) के समान नेत्र, धूघुराले बाल वाले यम की भी । इस मन्त्र के कपिल ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, यशोदेवता हैं, उनके प्रसन्नार्थं यह विनियोग है । 'यमं च कृकराक्षं च क्षमा कुञ्चितमूर्धजमिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उनका ध्यान करना बताया गया है । इस मन्त्र के वासुकि ऋषि, पंक्ति छन्द, हिरण्य गर्भ देवता हैं उनके प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । ६७-७१। अर्ध पीत, दो भुजा, रक्तवर्ण की आँखें, धूरैं के समान वर्ण देवों से सुसेवित वायु और वारेति (देव) के वायु ऋषि, गायत्री छन्द, वायु देवता है । ७२-७३। मनमोहक रक्तवर्ण, शंख, चक्र गदा और पद्म धारण किये, पीत वस्त्र, पलंग पर स्थित एवं सब केयूराभूषणों से सुसज्जित देव की 'अवसृष्टा परापत इति- इस मन्त्र द्वारा पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के अग्नि ऋषि, छन्द, सोम देवता हैं । ७४-७५। पीत वर्ण, कमलासन पर आसीन, रक्तवर्ण के भूषणों से सुशोभित, एवं दो भुजा और कर कमल विभूषित उस भल्लाटक देव का इस भाँति ध्यान करने के उपरान्त 'यन्मातुरिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक श्वेत तण्डुल (चावल) द्वारा

जम्भकोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्री समुदाहृता । देवता च भवेत्कुम्भः प्रीतये विनियोगतः ॥७७
 सोमं ध्यायेच्छचामरूपं पद्मासनगतं परम् । नानाभरणसम्पन्नं किरीटवरधारिणम् ॥
 मर्माणितेतिमन्त्रेण गन्धाद्यैरपि पूजयेत् ॥७८
 क्रृषिः स्वार्थे वेदश्छन्दो जगतीत्याभिधीयते । देवता च भवेत्तेषाः प्रीयते विनियोजयेत् ॥७९
 दर्पं ध्यायेत्कृष्णवर्णं कृष्णाम्बरधरं तथा । नागद्यजोपवीतिं च शिखिस्तम्भं द्विजोत्तमाः ॥८०
 पञ्चदीशेति मन्त्रेण गन्धाद्यः परिपूजयेत् ॥८१
 मन्त्रस्यात्य ऋषिश्वास्य पञ्चायतनभीरितम् : पद्मिक्तश्छन्दस्तथा प्रोक्तं देवः पञ्चाननः स्मृतः ॥८२
 श्यामवर्णा दितिं ध्यायेद्विद्वभुजा पौत्रिग्रहाम् । त्वर्लक्षणसम्पन्नां सर्वालङ्कारशोभितम् ॥८३
 सुपर्णोऽसीति मन्त्रेण पूजयेत्पूतिचन्दनैः ॥८४
 क्रृषिनारायणश्छन्दो जगती परिकीर्त्यते । भवेदेवो भार्गवश्च इष्टार्थे परिपूजयेत् ॥८५
 रक्ताभामदितिं ध्यायेत्सर्वालङ्कारभूषिताम् । शुक्राभारितिमन्त्रेण गन्धाद्यैरभिपूजयेत् ॥८६
 वामदेव ऋषिश्चास्य गन्धाद्यैरभिपूजयेत् । देवः शुक्रः समाख्यातः स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥८७
 ईशानादिकोणगतान्यूजयेत्सुसमाहितः । आपं ध्यायेच्छुक्लवर्णं कुण्डलाद्यैवभूषितम् ॥८८
 इदं विष्णुरिति मन्त्रेण त्रिगन्धेन समर्चयेत् ॥८९
 क्रृषिः स्यात्कर्दमश्छन्दो विराडित्यभिधीयते ॥९०

उनकी पूजा करनी चाहिए । ७६। इस मन्त्र के जम्भक क्रृषि, गायत्री छन्द, कुम्भ देवता हैं, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । ७७। श्यामल वर्ण, पद्मासन स्थित, अनेक आभूषणों से सुसज्जित तथा उत्तम किरीट धारण किये उस सोम देव का इस भाँति ध्यान करके 'मर्माणि तेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादि द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । ७८। इस मन्त्र के वेद क्रृषि, जगती छन्द, सोम देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । द्विजोत्तम ! कृष्ण वर्ण, कृष्णाम्बरधारी, सर्पों के यजोपवीत, एवं मधूर वाहन पर स्थित उस दर्प देव के ध्यान करके 'पञ्चदीशेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादि द्वारा पूजन करना चाहिए । ७९-८१। इस मन्त्र के पञ्चायतन क्रृषि, पंक्ति छन्द, पञ्चानन देवता हैं । ८२। श्यामवर्ण, दो भुजा, पीत काय, सर्वलक्षण सम्पन्न एवं समस्त अलंकारों से विभूषित, उस दिति देवी के ध्यान पूर्वक 'सुपर्णोऽसीति' इस मन्त्र के उच्चारण करते हुए पीत चन्दन द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । ८३-८४। इस मन्त्र के नारायण क्रृषि, जगती छन्द, भार्गव देवता, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग है । ८५। रक्तवर्ण, समस्त अलंकारों से अलंकृत, उस अदिति देवी का इस भाँति ध्यान करके 'शुक्राभारिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादिकों से उनकी पूजा करनी चाहिए । ८६। इस मन्त्र के वामदेव क्रृषि हैं, जिनकी गन्धादि पदार्थों द्वारा पूजा करनी चाहिए । शुक्र देवता भी उनकी स्तुति में नियुक्त करने के लिए बताये गये हैं । ८७। पश्चात् ईशानादि कोण में स्थित देवताओं की पूजा होनी चाहिए । सर्व प्रथम शुक्लवर्ण, एवं कुण्डलादि आभूषणों से सुशोभित उस जल देव का इस भाँति ध्यान करके 'इदं विष्णुरिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक तीन गन्धों से उनकी पूजा करनी चाहिए । ८८-९१। इस मन्त्र के कर्दम क्रृषि, विराड

देवः सोमःसमाख्यातः प्रीतये विनियोजयेत् । सरितं द्विभुजं रक्तं रक्तश्वेताम्बरान्वितम् ॥९१
हरिचन्दनलिप्ताङ्गं वरदं तं विचिन्तयेत् । पयसा शुक्ल इति मन्त्रेण पूजयेत्कमलादिना ॥९२
नारायणं कृषिश्वास्य पद्मिक्तश्छन्दः प्रकीर्त्यते । नारायणः स्वयं देवः प्रीतये विनियोजयेत् ॥९३
जयं ध्यायेत्प्रतिवर्णं द्विभुजं वरहस्तकम् । देवं किरीटसम्पर्णं सर्वालङ्कारभूषितम् ॥९४
दृष्ट्वा परिश्रुत इति मन्त्रेणानेन पूजयेत् । कृषिर्नारायणश्छन्दः पद्मिनः सोमोऽथ देवतः ॥९५
रुद्रं ध्यायेद्रक्तवर्णं शीतांशुकृतरेतरम् । द्विभुजं शूलहस्तं च उमरं च दराभवेत् ॥९६
दिवोऽप्सूर्धनिति मन्त्रेण कृषयः भमुदाहृताः । कृषिः स्पातकाश्यपद्मिन्दो विराजित्यभिधीयते ॥९७
स्वयं देवो विनियोगः स्तुतौ च विनियोजयेत् । द्विभुजं रक्तपवास्य पङ्कजद्वयधारिणम् ॥९८
अस्य किरीट इति मन्त्रेण रक्तश्वेतचन्दनादिभिः । पूजयेत्प्रत्यर्था भक्त्या कृषिर्नील उदाहृतः ॥
त्रिष्टुप्छन्दो देवता स्पाद हृदोपि परिकीर्तिः ॥९९
सवितारं तथाध्यायेत्पद्मास्यं द्विभुजं प्रभुम् । नानाभरणशोभादधं तप्ताश्वरथमण्डितम् ॥१००
यदेवा इति मन्त्रेण गन्धाद्यैः परिपूजयेत् । कृषिरौतथ्य आख्यातः प्रीतये विनियोजयेत् ॥१०१
ध्यायेद्रक्तं विवस्वन्तं द्विभुजं पद्मविग्रहम् । अविद्या इति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ॥१०२
कृषिर्गन्धः समाख्यातस्त्रिष्टुप्छन्दश्च ईरितम् । देवता च भवेत्सोमः स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥१०३

छन्द, सोम देवता हैं । १०१ उनकी प्रसन्नता के लिए यह विनियोग है : दो भुजा, रक्तवर्ण, रक्तवर्ण एवं श्वेतवर्ण के वस्त्रों से आवृत, हरिचन्दन से अनुलिप्त अंग, एवं वरदायक उस अन्तः सलिला देवी का ध्यान करके 'पयसाशुक्ल इति' इस मंत्र द्वारा कमलों आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए । ११-१२। इस मंत्र के गारायण कृषि, पंक्ति छन्द, स्वयं नारायण देवता, उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । १३। पीत वर्ण, दो भुजा, वरदहस्त, किरीट से सुशोभित, समस्त अलंकार से अलंकृत जय देव का इस भाँति ध्यान करके 'दृष्ट्वा परिश्रुत इति' इस मंत्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। इस मंत्र के नारायण कृषि, पंक्ति छन्द, एवं सोम देवताहैं । १४-१५। रक्तवर्ण, चन्द्रमा से सुशोभित शिर, दो भुजा, हाथ में शूल और डमरू लिए उस रुद्र देव का इस भाँति ध्यान करके 'दिवोऽपूर्धनिति' इस मंत्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। इस मंत्र के काशयप कृषि, विराङ्ग छन्द, रुद्र देवता हैं, इस प्रकार के विनियोग को उनकी स्तुति में कहना चाहिए। दो भुजा, एवं दो रक्त कमल को धारण करने वाले । १६-१८। उस देव की पूजा 'अस्य किरीट इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति से ओत प्रोत होकर रक्त वर्ण की माला एवं चन्दनादिसे करनी चाहिए। इस मंत्र के नील कृषि, त्रिष्टुप् छन्द, हृद देवता हैं। कमल पर स्थित, दो भुजा, प्रभु, अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित, सात घोड़े जुते रथ से मंडित, उस सवितां (सूर्य) देव का इस भाँति ध्यान करके 'यदेवा इति' इस मंत्र द्वारा गंगादिकों से उनकी पूजा करनी चाहिए। इस मंत्र के औत्यथ कृषि, उनके प्रसन्नार्थ विनियोग में कहे जाते हैं । १९-१०१। रक्तवर्ण, दो भुजा, कमल की शरीर उस विवस्वान् देव का इस भाँति ध्यान करके 'अविद्या इति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए गन्ध चन्दनों द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । १०२। इस मंत्र के गन्ध कृषि, त्रिष्टुप् छन्द, सोम देवता हैं, उनकी स्तुति में इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । १०३। पीत वर्ण, वृषभ पर स्थित,

विबुधाधिपं ततो ध्यायेत्पीतं वृषभवाहनम् । चतुर्भुजं यज्ञिहस्तमक्षमालैकहस्तकम् ॥
 त्रिनेत्रं रक्तवस्त्रं च मुकुटाद्यरलङ्कृतम् ॥१०४
 क्रष्णहरीत इत्युतो जगतीच्छन्द ईरितम् । देवता च भवेच्छक्तिः प्रीतये विनियोजयेत् ॥१०५
 मित्रं ध्यायेच्छुक्लदर्णं वराभयकरं परम् । मेषस्थं च त्रिनेत्रं च किरीटबरभण्डतम् ॥१०६
 धनाकरस्त्विति मन्त्रेण पूजयेद्विधायासैः ॥१०७
 क्रष्णरौतथ्य इत्युतो जगती छन्द ईरितम् । देवता च भवेद्यक्षमा प्रीतये विनियोजयेत् ॥१०८
 पीतास्यं राजयक्षमाणं करालं च विचिन्तयेत् । यशोरूपमिति मन्त्रेण गन्धादैः परिपूजयेत् ॥१०९
 दध्यङ्गडार्थवर्णं क्रृपिणायिश्च छन्द ईरितम् । यक्षमा च देवता चैव स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥११०
 शुक्लाम्बरधरं ध्यायेद्विभुजं शिखिवाहनम् । यन्म विनेति मन्त्रेण पूजयेद्वक्तितप्तरः ॥१११
 क्रष्णः स्यान्नारदः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप्कीर्तितम् । विवस्वान्देवता चैव क्रतौ च विनियोजयेत् ॥११२
 एवं ध्यात्वा विवस्वनं मदाकायं महोदरम् । अभिश्वरूपमन्त्रेण गन्धादैः परिपूजयेत् ॥११३
 काश्यपोऽस्य क्रृष्णिष्ठन्दस्त्रिष्ठुद्बेदः शचीपतिः ॥११४
 बहिरीशानकोणेषु देवादीन्यरिपूजयेत् । कूम्भाण्डैर्वरणापुष्यैः शौरकैर्वा समर्चयेत् ॥११५
 पीतां करालिकां ध्यायेच्चरकीं वरवर्णनीयम् । स्वब्जस्थां द्विभुजां चैव गुञ्जाहारोपशोभिताम् ॥११६

चारभुजाएँ, हाथों में छड़ी और अक्षमाला लिए, तीन नेत्र, रक्तवर्ण के वस्त्र, एवं मुकुटादि आभूषणों से अलंकृत उस विक्रमाधिपति देव का इस भाँति ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिए। उनके मन्त्र के हारीत क्रषि, जगती छन्द, शक्ति देवता हैं, इस विनियोग को उनके प्रसन्नार्थ उच्चारण करना चाहिए। १०४-१०५। शुक्लवर्ण, वरदान और अभयदान प्रदायक, उत्तम, मेष (भेड़) पर स्थित, तीन नेत्र उत्तम किरीट से सुसज्जित, उस मित्र देव का इस भाँति ध्यान करके 'धनाकरस्त्वति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक दही, और स्त्री द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। १०६-१०७। इस मन्त्र के औतथ्य क्रषि, जगती छन्द, एवं यक्षमा देवता हैं उनके प्रीत्यर्थ यह विनियोग है। १०८। पीत मुख, तथा भीषण स्वरूप उस राज यक्षमा देव का इस भाँति ध्यान करके 'यशोरूपमिति' इस मन्त्र के द्वारा गन्धों आदि से उनकी पूजा करनी चाहिए। इस मन्त्र के दध्यङ्गार्थर्वण क्रषि, गायत्री छन्द, यक्षमा देवता हैं, उनकी स्तुति में इस विनियोग का प्रयोग करना बताया गया है। १०९-११०। शुक्लाम्बर धारण किये, दो भुजा, एवं मध्यर वाहन वाले उस देव का इस भाँति ध्यान करके भक्ति किये, दो भुजा, एवं मध्यर वाहन वाले उस देव का इस भाँति ध्यान करके भक्ति पूर्वक 'यमं विनेति' इस मन्त्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए। १११। इस मन्त्र के नारद क्रषि, अनुष्टुप् छन्द, विवस्वान् देवता हैं, यज्ञ में तदर्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए। ११२। इस भाँति महाकाय एवं महान् उदर वाले उस विवस्वान् का ध्यान करके 'अभिन्नरूपेति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक गन्धादि से उनकी पूजा करनी चाहिए। ११३। इस मन्त्र के काश्यप क्रषि, प्रिष्ठुप्छन्द, शची पति देवता है। ११४। बाहरी भाग के ईशान कोण में स्थित देवों की पूजा कूष्माण्ड (कुम्हड़े), वरणा पुष्प अथव शौरकों द्वारा करनी चाहिए। ११५। पीतवर्ण, करालवदन, कमलासन पर स्थित, दो भुजा, गृज्जे के हार से सुसज्जित, उस उत्तम नायिका चरकी देवी का इस भाँति ध्यान करके

पीतिन्यरूपमन्त्रेण पूजयेद्भूतिमिच्छुकः । बलदेवऋषिश्रास्य छन्दो गौरी च देवता ॥११७
 ध्यायेद्विदारिकां रक्तां नवयौवनसंयुताम् । पवित्रेण पुनीहीति मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥११८
 ऋषिगर्गः समाख्यातस्त्रिष्टुपळन्दोऽस्य देवता । रुद्रोऽपि च समाख्यातः स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥११९
 पापादिरक्षसीं ध्यायेत्सौरभेयोपरिस्थितात् । कथा न इति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः ॥१२०
 ऋषिः सुवर्ण आख्यातः पङ्कितशङ्खन्दः प्रकीर्तितम् । देवता च महादेव इष्टार्थे विनियोजयेत् ॥१२१
 कुण्डवेद्या अन्तरे च स्थापयेद्विद्विवदुधः । पर्वताग्रमृदं चैव गजदन्तमृदं तथा ॥१२२
 वल्मीके सङ्गाने चैव राजद्वारचतुष्पथात् । कुशमूलमृदं चैव गजियस्य वनस्पते: ॥१२३
 इन्द्रवल्ली तथाकान्त अमृती त्रुपुषस्य च : मासती चम्पकं चैव तथा । उर्वारुकस्य च ॥१२४
 पारिभद्रस्य पत्रैश्च परितः परिवेष्टनम् । पञ्चतुडगस्य परितो मुखे कुर्यात्कणान्वितम् ॥१२५
 श्रीफलं बीजपूरं च नालिकेरं च दाढिमम् । धात्री जम्बुफलं चैव अन्यथा दोषमादिशेत् ॥१२६
 पञ्चरक्तं सुवर्णं च निक्षिपेद्वरुणं यजेत् । पञ्चोपचारैर्विधिवद्गन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥१२७
 उद्वर्तन इति मन्त्रेण वरुणं च पुनर्यजेत् ॥१२८
 अस्य मन्त्रस्य च ऋषिर्विष्णुशङ्खन्द उदाहृतम् । गायत्री देवता दाशी प्रीतये विनियोजयेत् ॥१२९
 पञ्चगन्धान्विनिक्षिप्य हस्तं दत्त्वा पठेत्ततः ॥१३०
 सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि च महाहृदाः । आयान्तु सर्वपापघ्नाः सर्वलोकसुखावहाः ॥१३१

‘पीतिन्य रूपेति’ इस मन्त्र के उच्चारण करके अपने ऐश्वर्य के लिए उनकी पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के बलदेव ऋषि, गौरी छन्द एवं देवता हैं । ११६-११७। रक्तवर्ण एवं नव यौवन पूर्ण, उस विदारिका देवी, का इस भाँति ध्यान करते हुए ‘पवित्रेण पुनीहीति’ इस मन्त्र द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । इस मन्त्र के गर्ग ऋषि, त्रिष्टुप छन्द, रुद्र देवता हैं, उनकी स्तुति में इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए । ११८-११९। वृषभ पर स्थित पापादि राक्षसियों का पूजन ‘कथानेति’ इस मन्त्र द्वारा गंध चन्दनों से सुसम्पन्न करना चाहिए । १२०। इस मन्त्र के मुरुर्ण ऋषि, पंक्ति छन्द, महादेव देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । १२१। विद्वान् को कुण्ड की वेदी के अंतराल (मध्य) भाग में पर्वत के अग्रभाग एवं गजराज के दन्ताग्र भाग की मिट्टी, वल्मीकि संगम में राजद्वार, चौराहे, कुश के मूलभाग तथा यज्ञीय वृक्ष की मिट्टियों को डालना चाहिए । १२२-१२३। इन्द्रवल्ली मालती, चम्पा, ककड़ी एवं नीम के पत्रों द्वारा उसे चारों ओर से आवेष्टित करके उस उत्तम पाँचों मुख पर श्रीफल, बीजपूर, नारियल, अनार, आँवला अथवा जामुन के फलों द्वारा पाँच फण बनाने चाहिए । अन्यथा दोषभागी होना पड़ता है । १२४-१२६। रक्तवर्ण की पाँच वस्तुएँ और सुवर्ण उस (कलश) में प्रक्षेप करके वरुण की पूजा पांचोपचार गन्धपुष्पादि द्वारा करनी चाहिए, पश्चात् ‘उद्वर्तन इति’ इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक वरुण देव की पुनः पूजा करनी आवश्यक होती है । १२७-१२८। इस मन्त्र के विष्णु ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं, उनके प्रसन्नार्थ यह विनियोग कहना चाहिए । १२९। उसमें पाँचों गन्धों का प्रक्षेप (डाल) करके हाथ से स्पर्श करते हुए इस भाँति पढ़ना चाहिए—समस्त समुद्र, नदियाँ, सरोवर, एवं महान तालाबगण, ये सभी समस्त पापों के हननार्थ तथा सभी लोगों को सुखप्रदान करने के लिए यहाँ उपस्थित होने की कृपा करें, गंगादिक सभी

गङ्गाद्या: सरितः सर्वस्तीर्थानि जलदाः नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥१३२
 अधोराज्यास्तकृता वास्तोष्यतय इत्यपि । शतं वा चाष्टसंयुक्तं सहस्रं वा विशेषतः ॥१३३
 शतार्धं वा हनेद्विप्रस्तिलैर्वा तण्डुलैः सह । पालाशैर्वा पिप्पलैर्वौदुम्बरैर्वा समाचरेत् ॥१३४
 पयोदध्यादिभिर्वापि मध्वाज्ञैर्वा विशिष्यते । अन्येषां च व्रतेनैव एकैकामथ वाहुतिष् ॥१३५
 अष्टाविंशतिभिश्चान्यैरष्टाष्ट्वा पञ्चपञ्चव वा ॥१३६
 चरक्यादीश्वासनैश्च पिष्ठकैर्वटकेन वा । रक्तपुष्पेण पत्रेण त्रिस्त्रवक्तेन यत्ततः ॥१३७
 वास्तोष्यते दृढं जप्त्वा यजेहास्तुर्पत्त यदा । पञ्चोपच्चारैर्विधिवत्साङ्गोपाङ्गैरनन्तरम् ॥१३८
 बलिमासादयेत्यआद्यादेकैकशः क्रमात् । ब्राह्मणैर्वैव द्याच्च सदा आज्यं समाक्षिकम् ॥१३९
 शात्यन्नं शिखिने दद्यात्तथा नीलोत्पलानि च । ओदनं सोत्पलं दद्यात्पर्जन्याय विचक्षणः ॥१४०
 जयाय पिष्ठकं कार्यमिन्द्राय घृतमोदकः । सूर्याय पिष्ठकान्नं च सत्याय यद्यप्तिलिकाम् ॥१४१
 ऋनाय मत्स्यमांसान्नं शङ्कुलीमथ पिष्ठकम् । वायव्ये च तथा सत्कून्पूज्णे चापूपमेव हि ॥१४२
 वितथाय कलायान्नं गृहक्षार्य तमाक्षिकम् । पूष्णेत्र छृशरान्नं च शात्यन्नं च निवेदयेत् ॥१४३
 गन्धर्वाय कस्तूरिकान्नं कृशरं भृङ्गराजके । मृगाय यावकान्नं च पितृभ्यो मुद्गगपायसम् ॥१४४
 दौवारिकाय कृशरानन दुः च पूपकम् । पायसं पुष्पदन्ताय वरुणाय च पिष्ठकम् ॥१४५
 असुराय मोदकांश्चैव दद्यादापिक्षये सुराम् । घृतोदनं च सोमाय कणान्नं यक्षमणे ददेत् ॥१४६

नदियाँ, समस्त तीर्थ एवं जल दान करने वाले नदगण यजमान के दुरित शमनार्थ यहाँ आने की कृपा करें तथा शिव के निमित्त आठ यज्ञों द्वारा किये गये वास्तोष्यतिगण भी । एक सौ आठ, विशेषकर सहस्र, अथवा पचास आहुतियाँ तण्डुल मिश्रित तिल की पलाश, पीपल, अथवा गूलर की लकड़ियों द्वारा प्रज्वलित अग्नि में डालनी चाहिए । १३०-१३४। उस हवन की सामग्री में दूध-दही अथवा विशेष कर शहद और धी डालना चाहिए, अन्यलोगों को व्रत की भाँति एक-एक आहुति, अट्टाईस, आठ-आठ, अथवा पाँच पाँच आहुति बतायी गयी है । १३५-१३६। चरकी आदि देवियों के निमित्त आसन, पूर्ण वट (बरगद) के रक्त पुष्प, अथवा पत्तों द्वारा शहद, धी एवं शक्कर मिलाकर हवन करना चाहिए । १३७। वास्तोष्यति के नाम का दृढ़ता पूर्वक जप करके पंचोपचार विधान द्वारा सांगोपाङ्ग समेत उनकी पूजा करनी चाहिए, पश्चात् क्रमशः एक-एक देवताओं के लिए बलि प्रदान भी उसी भाँति ! ब्राह्मण को शहद समेत धी प्रदान करना बताया गया है । १३८-१३९। नील कमल समेत साठी चावल की खीर अग्नि को, कमल समेत भात पर्जन्य को, जप के लिए पीठी, इन्द्र के लिए धी के मोदक (लड्डू) सूर्य के लिए पीठी मिश्रित अन्न, सत्य के लिए जवा की पूलिका, भ्रम के लिए मत्स्य मांस मिश्रित अन्न दही अथवा पीठी, वायु कोण स्थायी (देवतों) के लिए सत्तु, पूषा (सूर्य) के लिए मालपूआ, (बलिरूप में) प्रदान करना चाहिए । १४०-१४२। वितथ के लिए अन्न, गृहेश के लिए शहद समेत अन्न और पूषा के लिए कृशरान्न (खिचड़ी) साठी चावल की खीर, गन्धर्व के लिए कस्तूरी मिश्रित अन्न, भृङ्गराज के लिए कृशर, मृग के लिए लप्ती, पितरों के लिए मूंग के लड्डू, दौवारिक के लिए कृशरान्न (खिचड़ी) वृषभ के लिए पूआ, पुष्पदन्त के लिए खीर, वरुण के लिए पीठी, असुर के लिए मोदक (लड्डू) अपिक्षय के लिए सुरा

रोगाय घृतलड्डूकं तपश्यस्तुडौदनम् । अक्षाय विविधान्मं च भल्लाटाय तथैव च ॥१४७
 सोमाय मधुशाल्यन्मं नागाय गुडपिष्टकम् । आदित्यै चापि गोधूमं घृतपक्वं निवेदयेत् ॥१४८
 दित्यै दद्यात्तथा क्षीरं सितशर्करया सह । क्षीरान्नं चैव पूज्णे च आपवत्साय वै दधि ॥१४९
 सावित्र्यै लड्डुकान्मं च सवित्रे च गुडौदनम् । जयाय घृतमन्मं च मिष्टान्मं च विवस्वते ॥१५०
 विरूपाय च तद्याद्ब्रह्मिद्रान्मं तथैव च । घृतौदनं च चित्राय रुद्राय घृतपायत्तम् ॥१५१
 मांसौदनं यक्षमणे च कृशारं वरुणाय च । अर्यम्णे शर्करापूषं बहिर्दद्यान्वतुष्टयम् ॥१५२
 वित्रीदनं समांसं च मत्स्यान्मं गुडपिष्टकम् ! प्रतिदेवोपरि क्षीरं^१ घृतक्षीरसमन्वितम् ॥१५३
 पताका देववर्णेन दद्याद्ब्रह्मादिषु क्रमात् । मन्त्रं जपेत्स्वसामर्थ्यात्स्वसामर्थ्यात्स्तुति पठेत् ॥१५४
 पुरुषस्तवस्य सूर्यं कृषिर्जगती छन्दः । सविता देवता सोमपाके स्तुतौ विनियोगः ॥१५५

शङ्कर उत्तराच्च

दिष्णुजिष्णुविभुर्यज्ञो यज्ञियो^१ यज्ञपालकः । नारायणो नरो हंसो विष्वक्सेनो हुताशनः ॥१५६
 यज्ञेशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णः सूर्यः सुरार्चितः । आदिदेवो जगत्कर्ता मण्डलेशो महीधरः ॥१५७
 पद्मनाभो हृषीकेशो दाता दामोदरो हरिः । त्रिविक्रमस्त्रिलोकेशो ब्रह्मणः प्रीतिवर्द्धनः ॥१५८
 भक्तप्रियोऽच्युतः सत्यः सत्यवाक्यो ध्रुवः शुचिः । संन्यासी शास्त्रतत्त्वज्ञस्त्रिपञ्चाशद्गुणात्मकः ॥१५९

(शाराब), सोम के लिए मिश्रित भात, यक्षमा के लिए अन्नों के कण, रोग के लिए धी के लड्डू, और स्त्रीर समेत मीठा भात, अक्ष और भल्लाट के लिए भाँति-भाँति के अन्न बलि प्रदान करना चाहिए । १४३-१४७। सोम के लिए शहद, साठी चावल के भात, नाग के लिए गुड़-पीठी अदिति के लिए गेहूँ के आटे के हलुआ, दिति के लिए चीनी मिश्रित दूध, पूषा के लिए दूध-भात, आपवत्स के लिए दही देना चाहिए । १४८-१४९। सावित्री के लिए लड्डू, सविता के लिए मीठा भात, जय के लिए धी-भात, विवस्वान के लिए (मिठाई) विरूप के लिए हरदी मिश्रित भात, चित्र के लिए धी भात, रुद्र के लिए धी मिश्रित खीर, यक्षमा के लिए मांस भात, वरुण के लिए कृशरान्म (खिचड़ी) अर्यमा के लिए शक्कर पूआ आदि चार वस्तुओं को बाह्य भूमि में प्रदान करना चाहिए । १५०-१५१। अनेक भाँति के भात, मांस, मत्स्य, गुड़, पीठी और धी दूध के समेत जल तथा सुगन्ध युक्त तीर्थ जल, प्रत्येक देवों के लिए समर्पित करना चाहिए । १५३। ब्रह्मादि देवों को क्रमशः पताका दान पूर्वक यथाशक्ति उनके मंत्र के जप और स्तुति पाठ भी करना बताया गया है । पुरुषस्तव मन्त्र के सूर्य कृषि, जगती छन्द, सविता देवता हैं, सोम पाक की स्तुति में इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए । १५४-१५५

शंकर बोले—विष्णु, जिष्णु, विभु, यज्ञीय, यज्ञात्मक, नारायण, नर, हंस विष्वक्सेन, हुताशन, यज्ञेश, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, सूर्य, सुरार्चित, आदि देव, जगत्कर्ता, मण्डलेश, महीधर, पद्मनाभ, हृषीकेश, दाता, दामोदर, हरि, त्रिविक्रम, त्रिलोकेश, ब्रह्मा के प्रीति वर्द्धक, भक्तप्रिय, अच्युत, सत्य, सत्यवाक्य,

१. 'नीरक्षीरम्बुशाम्बरम्' इत्यमराभिधानात्कीरशब्दोत्र जलपर्यायः, तेन 'घृतक्षीरसमन्वितम्' इत्युत्केन्द्रं विरोधः ।

विदारी विनयः शास्त्रस्तपस्वी वैद्युतप्रभः । यजस्त्वं हि वषट्कारस्त्वमोड्कारस्त्वमग्रयः ॥१६०
 त्वं स्वधा त्वं हि स्वाहा त्वं सुधा च पुरुषोत्तमः । नमो देवादिदेवाय विष्णवे शाश्वताय च ॥
 अनन्तायाप्रमेयाय नमस्ते गरुडध्वज ॥१६१
 ब्रह्मस्तवासिमं प्रोक्तं महादेवेन भाषितम् । प्रयत्नाद्यः पठेभित्यस्मृतत्वं स गच्छति ॥१६२
 ध्यायन्ति ये नित्यमनन्तमच्युतं हृत्पद्ममध्ये स्वयमाव्यवस्थितम् ।
 उपासकानां प्रभुमेकमीद्वरं ते यान्ति सिद्धिं परमां तु वैष्णवीम् ॥१६३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे पूजाक्रमवर्णनं नामकादशोऽध्यायः ।११

अथ द्वादशोऽध्यायः

अर्थदानविधिवर्णनम्

सूत उदाच

ततो शर्यादिघोषेण यजमान उद्दिष्टमुखः । कनकतोयेन गन्धेन युद्गलाग्रेण लेपयेत् ॥१
 ऐशान्यां मध्यभागे वा यजेद्वा सुसमाहितः । वर्तुलाकारयेद्यस्मान्मन इच्छति सञ्जपन् ॥२
 क्रृषिः कण्ठोऽथ गायत्री छन्द इत्यभिधीयते । देवता पृथिवी चैव स्तुतौ च विनियोजयेत् ॥३
 विवरे पूजयेत्कर्म ब्रह्माणं च धराधरम् । पृथिवीं गन्धपुष्पाद्यैनैविद्येविविधैरपि ॥४

धून, शुचि, संन्यासी, शास्त्र तत्त्वज्ञ, तिरपनगुणात्मक, विदारी, विनय, शांत, तपस्वी, एवं वैद्युतप्रभनामक तुम्हीं हो, तथा यज, वषट्कार, ओंकार, अग्नि, स्वधा, स्वाहा, और पुरुषोत्तम भी तुम्हीं हो, देवों के आदि देव, विष्णु, शाश्वत, अनंत एवं अप्रमेय को नमस्कार है, तथा हे गरुडध्वज ! तुम्हें नमस्कार है । १५६-१६१। महादेव द्वारा प्रकाशित इस ब्रह्मस्तव का पाठ करने के लिए जो प्रयत्नशील रहते हैं, उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होती है । जो अपने हृदय कमल के मध्य में स्वयं भली भाँति स्थित नित्य अनन्त उपासकों के एक ईश्वर एवं प्रभु उस अच्युत का ध्यान करते हैं, उन्हें परमोत्तम वैष्णवी सिद्धि प्राप्त होती है । १६२-१६३

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में पूजाक्रमवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त । ११।

अध्याय १२

अर्थदानविधि का वर्णन

सूत बोले—उसके अनन्तर यजमानको नगाडे आदि वाद्यों की ध्वनि कोलाहल में उत्तर मुख होकर मुद्गल के अग्रभाग से कनकतोय मिश्रित गन्ध का लेप करना चाहिए । १। ईशान कोण के मध्य भाग में गोलाकार (प्रतिमा) की स्थापना पूर्वक सावधान होकर उसका मंत्र जप करना चाहिए । २। उस मंत्र के कण्ठ क्रृषि, गायत्री छन्द, पृथिवी देवता हैं, उसकी स्तुति कार्य में इस विनियोग का प्रयोग करना बताया गया है । ३। विवर स्थित कर्म, ब्रह्मा, धराधर (शेष), और पृथिवी के पूजन गन्ध-पुष्प एवं अनेक प्रकार के

अग्रतोऽष्टदलं लेख्यं स्थापयेत्कलशं ततः । मुखे विधाय कनकं राजतेन विनिर्मितम् ॥५
 शुक्तिशङ्खसमं वापि विश्वामित्रसमुद्भवम् । पूजयेतीर्थतोयेन गन्धपुष्पाक्षतादिना ॥६
 विष्णुक्रान्तादचाकुष्ठचन्दनेन विलोडितम् । क्षीरं च मातुलिङ्गं च सावित्रं च सदूर्वया ॥७
 दध्यक्षतं मधुयुतमेवभर्य च साधयेत् । सितचन्दनवस्त्राद्यः शाल्यैश्च विविधैरपि ॥८
 अदणं कलशं कृत्वा यज्ञवर्णसमन्वितम् । आवाहयेत्तोयानिधिं मन्त्रेणानेन भक्तिः ॥९
 आयाहि भगवन्देव तोयमूर्ते जलेश्वर । हृष्णार्थ्यं मया दत्तं परितोषाय ते नमः ॥१०
 गृहेभ्यश्चैव सोमाय त्वच्छ्टे चैव च शूलिने । इमं मे वरुणेत्यादि प्रत्येकं स्याद्गतित्रयम् ॥११
 ततोऽर्थदानं विधिवक्षीरेण हृषिषा मधुः । यजमानः सप्तनीकः कुम्भं कुक्षौ निधाय च ॥१२
 हिरण्यगर्भेति मन्त्रस्य भरद्वाज ऋषिः स्मृतः । छन्दश्च जगती स्थातं देवता च ज्ञानाधिः ॥१३
 वरुणस्योत्तम्भनेति मन्त्रस्य जलकुम्भं निवेदयेत् । अस्य मन्त्रस्य च ऋषिनारिदः परिकीर्तिः ॥
 दिराट्छन्दश्च ईशानो देवता समुदाहृता ॥१४
 मोचयेन्मीनयुग्मं च मेषयुग्मं तथैव च । सम्भवे पक्षियुग्मं च आर्डीं वा चक्रवाककम् ॥१५
 शोदयेन्नागयुग्मं च आयुवृद्धेश्च हेतवे । दिक्षु जीवन्तिकां दद्याद्राक्षसेभ्यो बलिं हरेत् ॥१६
 निर्मितं माषभक्तेन रक्तपुष्पैरलङ्घितम् । क्षात्रको लक्ष्मणश्चैव मणिभद्रो गणेश्वरः ॥
 सबिन्दुकेन हन्तेन दिक्षु मध्ये यथा क्रमात् ॥१७

नैवेद्यों द्वारा करना चाहिए । ४। सामने अष्टदल कमल का निर्माण करके उसके ऊपर चाँदी के कलश में सुवर्ण, शुक्ति, शंख अथवा विश्वामित्र के समुद्र से उत्पन्न (वस्तु) डालकर स्थापित करके तीर्थ जल, गन्ध एवं पुष्पाक्षतादि से उसकी पूजा सुसम्पन्न करके अपराजिता, वच, आकुष्ठ चन्दन, क्षीर, मातुलिङ्गं, सावित्र, द्रवी के समेत दही, अक्षत, एवं शहद इन्हें एकत्र कर अर्ध्य प्रदान करना चाहिए, पश्चात् श्वेत चन्दन वस्त्र, एवं विविध भाँति के अन्न से उसकी पूजा करते के उपरांत ब्रणहीन एवं पञ्चवर्ण युक्त उस घट में भक्ति पूर्वक तोयनिधि सागर का आवाहन नि श्रलिखित वाक्यों द्वारा करना चाहिए । हे भगवान्, देव, तोयमूर्ति, एवं जलेश्वर, आप के प्रसन्नार्थ मैंने मोहक द्रव्यों के अर्ध्य प्रदान किया है, आप को नमस्कार है, इस भाँति गृहेश्वर, सोम, त्वच्ष्टा, एवं शूली के लिए नमस्कार करके 'इमं मे वरुणेत्यादि' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनकी पूजा सुसम्पन्न करके पश्चात् पत्नी समेत यजमान विधान पूर्वक क्षीर, पी और शहद कलश में डालकर उसे अपनी कुक्षि में रखकर अर्ध्य प्रदान करे । ५-१२। 'हिरण्यगर्भेति' इस मंत्र के भारद्वाज ऋषि जगती छन्द, एवं वरुण देवता हैं, इस विनियोग के प्रयोग पूर्वक 'वरुणस्योत्तम्भनिर्मिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए कलश में जल प्रक्षेप करना चाहिए । इस मंत्र के नारद ऋषि, विराट् छन्द, और ईशान देवता हैं । १३-१४। पुनः दो मछलियाँ, दो भेंड, अथवा सम्भव हो तो दो पक्षियों, शरारि पक्ष या चकोर नाग के त्याग अपनी आयुवृद्धिके लिए करना चाहिए ; और दिशाओं में राक्षसों के निर्मित जीवन्तिका (शमी, गुरुचि आदि) प्रदान करना बताया गया है । १५-१६। पश्चात् उरद का रक्त पुष्पों से अलंकृत करके उसे बलिरूप में क्षात्रक, लक्ष्मण, मणिभद्र एवं गणेश्वर आदि देवों के लिए जो दिशाओं

१. 'यज्ञत्विग्म्यां घखजौ' इति धः । २. मधुना ।

ये भवा भाविनो भूता थे च तेषु मयासिनः । आहरं तु बलिं तुष्टधा प्रयच्छन्तु शुभं मम ॥१८
 इत्युक्त्वा च बलिं दद्यान्नमस्कुर्यादिनन्तरम् । दद्यात्प्रस्त्रियो गां च आचार्याय विशेषतः ॥१९
 अन्येषां हि हिरण्यं च गां च दद्याद्विजन्मने । व्याहृतिद्वितयं चैव ततो वारुणपञ्चकम् ॥२०
 प्राजापत्यं स्विष्टकृच्च ज्ञुह्यात्तदनन्तरम् । घृतैः स्विष्टकृतं नास्ति तथा रसविसारकैः ॥२१
 पद्मोत्पलैर्मातुलिङ्गैः पनसैर्मातुलुहृषकैः । नद्यैर्दिव्यपुष्पैश्च तथान्नातककाशकैः ॥२२
 अभिषेकं ततः कुर्यात्सुवास्त्वति च वै जपन् । दद्यात्पूर्णा च विधिवत्सूर्यायार्थं निदेदयेत् ॥२३
 पञ्चदोषं पुरस्कृत्य ब्राह्मणानुमतेन च । गृहं प्रदिश्य च ततो ब्राह्मणान्य भोजयेत् ॥२४
 दीनान्धकृपणे चैव दद्याद्वित्तानुसारतः । ज्ञातिभिः सह भुञ्जीत दधिक्षीरामिषं विनाः ॥२५
 न क्षीरं च कषायं च भर्जितं शाकमेव च । न कण्डं च न पुष्पं च करीरं च कदाचन ॥२६
 शाल्यन्नं मूलकं चैव पनसान्नफलानि च । मस्तं न धुधृतगुडं मातुलिङ्गं ससैन्धवम् ॥२७
 बद्रं धातकिफलं कुन्दपुष्पं तथा तिलम् । एतत्प्रशस्तं जानीयान्मरीचानि विशेषतः ॥२८
 त्रिरात्रमय सप्ताहं परित्यज्य खले ततः । पञ्चाङ्गकं ततः कुर्यात्स्थापयेन्नेति युग्मकम् ॥२९
 प्रथमा चार्कहस्तेन द्वितीया दशहस्तिका । वितस्ते तु भवेच्छतं द्विगुणं तदनन्तरम् ॥३०
 शतार्थं ततः पश्चात्प्रस्त्रिहस्तमनन्तरम् ॥३१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागेऽर्थदानविधिवर्णनं

नाम द्वादशोऽध्यायः । १२

के मध्य भाग में विन्दुक के रूप में स्थित हैं, क्रमशः प्रदान करना चाहिए। वर्तमान, भावि और अतीत काल के भूतों (जीवों) के लिए मैं बलि प्रदान कर रहा हूँ, इसे स्वीकार करके मुझे कल्याण प्रदान करें। १७-१८। इस भाँति कहकर बलि प्रदान के उपरांत पंचवारुणी, प्राजापत्य, एवं स्विष्टकृत हवन के विधान सुसम्पन्न करना चाहिए। धी, रस विसारक, नील कमल, नीम, कटहल, महुआ, विश्वपुष्प, आन्नातक एवं काश की आहुति स्विष्टकृत हवन में नहीं दी जाती है। १९-२२। पुनः अभिषेक के उपरांत 'सुवास्त्वति' के जप पूर्वक पूर्णाहुति और सूर्य के लिए अर्ध्य प्रदान करना बताया गया है। २३। ब्राह्मणों की आज्ञा से पञ्च दोषों के समेत घर में प्रवेश करके ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। २४। दीन, अंधे, एवं असहायों को अपने वित्तानुसार दान करके बन्धुगणों के साथ भोजन करना चाहिए। दही, धीर, मांस, कषाय, भूता पदार्थ, शाक, कोण्ड, पुष्प, एवं करीर के भोजन कभी न करना चाहिए। २५-२६। साठी चावल, मूली, कटहल, आम के फल, मस्त, शहद, धी, गुड़ सेंधानमक समेत नीम, वेर, आवैला, कुन्द पुष्प और तिल तथा मिर्च इन वस्तुओं को प्रशस्त बताया गया है। तीन रात अथवा एक सप्ताह तक उसे खल (खरल) में डाल कर पञ्चाङ्ग की रचना करे, युग्म की नहीं। २७-२९। पहली बारह हांथ, दूसरी दश हांथ, एवं सौ हाथ की विस्तृत अथवा उससे दुगुने, पचास, या साठ की भी बनाई जा सकती है। ३०-३१

श्रीभविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के दूसरे भाग में अर्थविधान दान नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त । १२।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अग्निहोत्रविधानवर्णनम्

सूत उवाच

स्वगृह्णार्पिविधिं वक्ष्ये योगभेदेषु सत्तमाः । न परोक्तं विधानेन भयदं कीर्तिध्वंसनम् ॥१
पुत्रा एव च कन्याश्र जनिष्यत्वापरे मुताः । गृह्णा इति समाख्याता यजमानस्य दायदाः ॥२
तेषां संस्कारयागेषु शान्तिकर्मक्रियासु च । आचार्यविहितः कल्पस्तस्माच्चक्ष इति स्मृतः ॥३
त्रिकुरां परिगृह्णाति ततश्च कुरुते दृढम् । ऋषिर्दक्षश्च जगती छन्दो विष्णुश्च देवता ॥४
कश्यपस्तृप्यतामिति भूरसीति च शोधनम् । ऋषिः सुदर्श गायत्री जगती छन्द इष्यते ॥
देवता च भवेत्सूर्यः पृथिवीशोधने न्यसेत् ॥५

ऐशान्यादिकमेणैव प्रादक्षिण्येन यत्ततः । यत्पवित्रेति मन्त्रेण तर्जन्यङ्गुष्ठयोरपि ॥६
कुशागर्भत्रयेणापि भ्रामयेद्वलयाकृतिं । परिसमूहनमित्युक्तं स्नपनं शृणु सत्तम ॥७
ईशानादेश्च संस्कारं कुर्यात्परिसमूहनम् । प्रतिष्ठायां चरेत्यादिनैर्नैर्हत्यादिग्रहं मखे ॥८
परिसमूहनमैन्द्रस्य पर्वतोऽस्य ऋषिः स्मृतः । पद्मिक्तश्छन्दः समुद्दिष्टमिन्द्राणी चास्य देवता ॥९
गोमयं च त्रिगन्धं च पञ्चमूर्तिक्यपि च । कनिष्ठं गुह्यकं त्यक्त्वा देवतार्थं न लेपयेत् ॥१०

अध्याय १३

अग्निहोत्र विधान का वर्णन

सूत जी बोले—सत्तमवृद्ध ! योग के भेद वर्णन में अग्निहोत्र-विधान की चर्चा की गयी है, मैं उसे बता रहा हूँ । दूसरे के द्वारा कहे गये विधान के अनुसार उसे सुसम्पन्न करने से भय प्राप्ति एवं कीर्ति नष्ट हो जाती है । १। पुनः कन्याएँ और उत्पन्न होने वाले जपने पुत्र गण 'गृह्णा' (धर की वस्तु) कहते हैं, वही यजमान के दायाद भी हैं । २। उनके संस्कार यज्ञों में और शान्ति कर्म के अनुष्ठानों में आचार्य द्वारा निर्धारित कल्पों को 'चक्र' बताया गया है । त्रिकुशा के द्वारा उसे दृढ़ करना कहा गया है । उस मन्त्र के दक्ष ऋषि, जगती छन्द, एवं विष्णु देवता हैं, 'कश्यपस्तृप्यतामिति' और 'भूरसीति' इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए पृथिवी का संशोधन करना चाहिए । इस मन्त्र के सुवर्ण ऋषि, गायत्री और जगती छन्द, सूर्य देवता हैं, पृथिवी के संशोधन समय इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए । ३-५। ईशान कोण आदि के क्रम से प्रदक्षिणा पूर्वक तर्जनी और अंगुष्ठ से तीन कुशाओं को प्रहण कर गोलाकार उसका ऋमण कराना 'परिसमूहन' कहलाता है, तथा सत्तम ! अभिषेक बता रहा हूँ, सुनो ! प्रतिष्ठा एवं यज्ञ में ईशान कोण आदि के संस्कार, परिसमूह एवं नैर्हत्यादि ग्रहों की अर्चा आवश्यक होती है । ६-८। 'परिसमूहनमैन्द्रस्येति' इस मन्त्र के पर्वत ऋषि, पंक्ति छन्द, इन्द्राणी देवता बतायी गयी हैं । ९। गोबर, तीनों गंध, पञ्चमूर्तिका द्वारा लघु गुह्य स्थानों का लेपन किसी देवता के उद्देश्य से न करना चाहिए । १०।

मानस्तोकेनेति ऋचा विश्वेदेवश्च पूज्यताम् । ऋषिः स्यात्काश्यपश्चन्दो विश्वेदेवः प्रकीर्तिः ॥११
 योजपेल्लपयेद्विद्वान्घटमाबद्ध्य सत्तमाः । मध्यमातर्जनीभ्यां च कुशमारभ्य दक्षिणम् ॥१२
 चतुरस्त्रीकृतं क्षेत्रं हस्तमानं तथाननम् । यज्वभिरिति मन्त्रेण सूर्यः प्रीणाति सहमाः ॥१३
 दक्षे साधाङ्गुलं त्यक्त्वा पश्चिमेन परित्यजेत् । उत्तराग्रां लिखेदेसामन्यथाऽमडगलं भवेत् ॥१४
 आप्यायस्वेति मन्त्रस्य धन्दत्तरित्रिष्ठिः स्मृतः । त्रिष्ठुरूपूर्णः समाख्यातं सविता चात्र देवता ॥१५
 तल्लग्र दक्षिणे चैकं पूर्वार्द्धद्वादशाङ्गुलम् । अन्याङ्गुलान्तरे चैकं ततः सप्ताङ्गुलं भवेत् ॥१६
 कुशमूलेन स्वर्णेन प्रतिष्ठियां च राजते । अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च सञ्ज्योतीति च सञ्जप्तन् ॥१७
 सस्तरेत्तिन्ना वरुणौ ऋषिरौतथ्यसंज्ञकः । पंक्तिश्छन्दः शिवो देवो रेखामर्थं च योजयेत् ॥१८
 तेनैवोद्दर्वकरौ कुर्याद्विक्षवामे सकृत्सकृत् । भास्वराय क्षिपेदग्नौ तत ऊर्ध्वं रणं स्मृतम् ॥१९
 सदसम्पद्विषिः कर्णे विराट्डिति उदाहृतः । छन्द इन्द्रो देवता च पृथिव्या देवता भवेत् ॥२०
 कुशपुष्पोदकेनापि देवतीर्थेन सत्तमाः । पञ्चगव्येन मतिमान्यव्वरल्लोदकेन च ॥
 पञ्चपल्लवतोयेन महायोगे विशेषतः ॥२१

अथोनस्य च मन्त्रस्य वशिष्ठःपरिकीर्तिः । छन्दोऽथ देवी गायत्री देवता गणनायकः ॥२२
 कीशादग्निं समादाय मे गृह्णामीति सम्पठन् । मे गृह्णामीति मन्त्रस्य ऋषिगांतम ईरितः ॥
 छदोऽनुष्टुप्समाख्यातं वामदेवोऽथ देवता ॥२३

‘मानस्तोकेनेति’ इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक विश्वदेव देवों की पूजा करनी चाहिए । इस मंत्र के काश्यप ऋषि, विश्वदेव छन्द एवं देवता बताये गये हैं । ११। श्रेष्ठगण ! घर को आबद्ध कर मध्यमा तर्जनी अंगुली से कुश ग्रहण कर के दक्षिण की ओर से लेपनयोजन करना चाहिए । चौकोर क्षेत्र में सूर्य की उस प्रतिमा का, जिसमें एक हांथ के विस्तार में केवल उनके मुख की कल्पना की जाती है । ‘यज्वभिरिति’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूजा करनी चाहिए । १२-१३। दक्षिण दिशा में डेढ़ अंगुल वेदी की भूमि के त्याग करके पश्चिम की ओर से उसका परित्याग करने पर उत्तराग्र भाग वाली रेखाओं के निर्माण करना चाहिए, अन्यथा अमंगल होने की आशंका उत्पन्न होती है । १४। ‘आप्यायस्वेति’ इस मंत्र के धन्वत्तरि ऋषि, त्रिष्ठुरूप छन्द, तथा सविता देवता है । १५। उसी से सम्मिलित दक्षिण भाग में पूर्वार्द्ध के बारह अंगुल और दूसरा सात अंगुल का भी होता है । १६। कुशमूल के स्वर्ण भाग द्वारा रेखा निर्माण के उपरांत अँगूठा और अनामिका से ‘संज्योतीति’ इस मंत्र के उच्चारणपूर्वक रेखा मिट्टी का परित्याग करना बताया गया है । इस मंत्र के मित्रावरण और औतथ्य ऋषि, पत्ति छन्द, एवं शिव देवता हैं, रेखा निर्माण के समय इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए । १७-१८। उसी से दक्ष के बायेंभाग में एक एक बार हाथों को ऊपर उठा कर भास्कर अग्नि में उसका प्रक्षेप करना आवश्यक होता है । उसके ऊर्ध्व भाग को ‘रण’ बताया गया है । १९। ‘सदसम्पत् इति’ इस मंत्र के कर्ण विराट् ऋषि, इन्द्र छन्द और पृथिवी के भी देवता हैं । २०। सत्तमवृन्द ! कुश पुष्पोदक से देवतीर्थ द्वारा तथा उस बुद्धिमान् को पञ्चगव्य, पञ्चरल्लोदक, एवं पञ्चपल्लव के जल से विशेषकर महायोग में स्नान करना बाताया गया है । २१। ‘अथोनस्येति’ इस मन्त्र के वशिष्ठ ऋषि, गायत्री छन्द, एवं गणनायक देवता हैं । २२। पुनः ‘कीशादग्निं सगादाय मे गृह्णामि’ इस मंत्र का पाठ करना चाहिए । इस मंत्र के गौतम ऋषि, अनुष्टुप्

क्रव्यादग्निं परित्यज्य क्रव्यादमग्निमीरयन् । मन्त्रेणानेन मतिमान्दक्षिणस्यां विनिक्षिपेत् ॥२४
 अस्य मन्त्रस्य हारीत कृषिः स्याच्छन्द इष्यते । देवता वामदेवोऽपि दाहेऽपि विनियोजयेत् ॥२५
 आवाहनं ततः कुर्यात्संतरक्षेति मञ्जपन् । संसरक्षेति मन्त्रस्य कृषिर्नील उदाहृतः ॥
 विराट् छन्दोऽथ विज्ञेयो देवता च शतक्रतुः ॥२६
 वैश्वानरइति कृच्चाः अग्निस्थापनमीरितम् । मन्त्रमाचाति प्रीणाति कृषिः स्यात् काश्यपः स्मृतः ॥
 अनुष्टुप् च भवेच्छन्दो देवता तृव्यवाहनः ॥२७
 बध्नासीति च मन्त्रेण अग्निं कुर्यात्प्रदक्षिणम् । कृषिः स्वयम्भूराख्यातो विराट् छन्द उदाहृतम् ॥
 देवता परमात्मा च नमस्कारेण योजयेत् ॥२८
 ततोऽग्निदक्षिणे भागे प्रागग्रकुशकुब्जके । द्विहस्ते भवतश्चैव हस्तपानासदे अथ ॥२९
 ब्रह्मन्लिहोपदेश्यतामिति ब्रह्माणां दिनिवेशयेत् । ब्रह्मयज्ञानूचा दोषधी धेनुरिति त्वृचा ॥३०
 द्वाभ्यामिति च मन्त्राभ्यामिति ब्रह्मप्रवेशनम् । शक्रोऽस्य त्रायतामेति शृणु कृष्णभ्यामृषीद्विजाः ॥३१
 प्रजापतिर्कृषिश्छन्दस्त्रिष्टु व्देवोऽथ शङ्करः । नारदश्च कृषिश्छन्दरित्पृष्ठदेवः शचीपतिः ॥३२
 अग्नेरहत्तरभागे च हस्तमानान्तरेऽपि च । प्रणीतास्थापनं कुर्यादिन एहीति सञ्जपन् ॥३३
 मन्त्रस्य च कृषिश्छन्दो वामदेवः प्रकीर्तिः । जगती च भवेच्छन्दो देवता च शतक्रतुः ॥३४
 श्रीपर्णीसहकारोत्थं वरुणस्य विशेषतः । षडगुलेन विस्तारं विंशत्यद्वयुलकेन च ॥३५
 दैर्घ्येण च चतुर्ख्यातकाङ्गुलं च प्रमाणतः । दृच्छयुले चरकाकायामासासासन्देवकर्मणि ॥३६
 अभिचारे भवेत्कांस्यं ताङ्गं स्याच्छान्तिकर्मणि । प्रतिष्ठायां मृण्मयं च अष्टाङ्गुलमथापि वा ॥३७

छन्द, और वामदेव देवता बताये गये हैं । २३। शब दाहक अग्नि के अतिरिक्त अग्नि को ग्रहण कर 'क्रव्यादमग्निमीरयन' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे दक्षिण की ओर डाल देना चाहिए । २४। इस मंत्र के हारीत कृषि, छन्द एवं वामदेव देवता हैं, दाह के समय इस विनियोग का प्रयोग करना बताया गया है । २५। पश्चात् ! 'संसरक्षेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए आवाहन करना चाहिए । इस मंत्र के नील कृषि, विराट् छन्द, एवं शतक्रतु देवता है । २६। 'वैश्वानर इति' इस कृच्चा के उच्चारण पूर्वक अग्नि स्थापन करना बताया गया है । 'इस मंत्र के काश्यप कृषि' अनुष्टुप् छन्द, और हव्य वाहन देवता हैं । २७। 'बध्नासीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक अग्नि की प्रदक्षिणा करनी चाहिए । इस मंत्र के स्वयम्भू कृषि, विराट् छन्द, एवं परमात्मा देवता हैं, नमस्कारार्थ इस विनियोग का उच्चारण करना कहा गया है । २८। इसके उपरांत अग्नि के दक्षिण भाग में कुशा के प्रागग्रभाग को एक कुञ्जासन बनाकर रखने के अनन्तर हे ब्रह्मन् ! इसे सुशोभित कीजिये इस प्रकार ब्रह्मा से प्रार्थी होना चाहिए । 'ब्रह्म यज्ञानूचा दोषधी धेनुरिति त्वृचेति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण करते हुए ब्रह्मा का वहाँ प्रवेश कराना बताया गया है । शुक्र इसकी रक्षा करें और कृच्चाओं द्वारा कृषियों की रक्षा हो । २९-३१। इस मंत्र के प्रजापति कृषि, त्रिष्टुप् छन्द, शङ्कर देव, एवं नारद कृषि, त्रिष्टुप् छन्द, और इन्द्र देवता हैं । ३२। 'दिन एहीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक अग्नि के उत्तर भाग में एक हाथ प्रमाण की भूमि के मध्य प्रणीता पात्र का स्थापन करना कहा गया है । ३३। इस मंत्र के वामदेव कृषि, जगती छन्द, एवं शतक्रतु (इन्द्र) देवता हैं । ३४। श्रीपर्णी, आम, एवं विशेषकर वरुण के छः अंगुल अथवा बीस अंगुल का विस्तृत, और चार अंगुल का चौड़ा प्रणीता पात्र तथा देवकर्म में दो अंगुल की चरकी बनायी जाती है । ३५-३६। अभिचार कर्म के

द्वादशाङ्गुलप्रस्तारं तैजसं मानवजितम् । इन्में वरुणेनर्चा प्रणीतामथ पूरयेत् ॥३८
 सागरा अथ प्रीयन्तामित्यमाध्यानमाचरेत् ! सकृदच्छिन्नदर्भेण दिग्विदिक्षु परिस्तरेत् ॥३९
 नैऋते दिक्षु सीतः स्याद्वैश्वदेवे तथैव च । कया नश्चित्र इत्यृचा नागः प्रीणाति सत्तमाः ॥४०
 अस्य मंत्रस्य च ऋषिर्भरद्वाज उदाहृतः । छन्दोऽनुष्टुप्वेवता च ईशानः परिकीर्तिः ॥४१
 प्रयोजनादिकं द्रव्यं तत आसादयेत्क्रमात् । दक्षिणादि उत्तरान्तं ध्रुवास इत्यृचापि च ॥४२
 ऋषिः स्याश्वारदश्छन्दोऽनुष्टुप्चैवाथ देवता । शतक्रुत्त्रश्च प्रीणाति योजयेदथ सादरात् ॥४३
 काष्ठं च पथिमे कुर्यात्प्रयच्छन्यश्चिमेन तु । पुरतोऽप्ने पञ्चदीहीत्तिताश्च सहसर्षपात् ॥४४
 दक्षिणे चैव आपूर्पं भृङ्गराजं तथैव च । फलपत्रे वास्मभागे पिष्टकं दधि दुर्घकम् ॥४५
 पत्नसं नारिकेलं च मोदकं लड्डुकं तथा । प्रणीतां च दिग्विदिक्षु स्थापयेदविचारयन् ॥४६
 प्रणीतां न स्वृतेज्जातु होमकाले कथञ्चन । ल्लानकुम्भं च भो चिप्रा यावद्यागः प्रवर्तते ॥४७
 उच्चीरकं मातुलिङ्गं द्वार्वा धारीफलानि च । तुलसीमालतीजाती जलजात्नि विशेषतः ॥४८
 ऐशान्यां स्थापयेत्सर्वं यन्न वै कड़कतीमयम् । नैऋत्येति विशेषोऽप्य यन्न वैकड़कती शमी ॥४९
 यथा योगेन तत्सर्वं ग्राह्यं तत्पत्रमेव च । क्षीरपाके तु क्षीरान्ते चरुस्थालीमथानयेत् ॥५०
 पवित्रच्छेदनकुरौशिष्ठन्द्यात्प्रादेशिकं पुनः । छित्त्वा पवित्रं प्रोक्षण्यां स्थापयेद्वलभिदाश्रकम् ॥५१

काँसे, शांति कर्म में तांबें, प्रतिष्ठा में मिट्टी के आठ अंगुल का अथवा बारह अंगुल के सुवर्ण का प्रणीता पात्र बनाना चाहिए । ‘इमं में वरुणेनार्च’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रणीतापात्र को जल से पूर्ण करना चाहिए । ३७-३८। ‘सागरा अथ प्रीयन्तामिति’ इस मंत्र के उच्चारण करते हुए ध्यान करना बताया गया है । जो एक बार भी न कठा हो, ऐसे कुशों का परिस्तरण अग्नि के चारों दिशाओं में करना चाहिए । ३९। श्रेष्ठगण ! नैऋत्य (परिचम) दिशाओं एवं वैश्वदेव के लिए भी सीत कहा गया है । ‘कयातश्चित्र इति’ इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक नाग को प्रसन्न किया जाता है । ४०। इस मंत्र के भारद्वाज ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, एवं ईशान देवता बताये गये हैं । ४१। इसके अनन्तर प्रयोजन की वस्तुओं का आसादन क्रमशः करना चाहिए उस समय ‘दक्षिणादि उत्तरान्तं ध्रुवास इति’ इस ऋचा का पाठ भी करता रहे । ४२। इस मंत्र के नारद ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, और शतक्रुतु देवता हैं, उस समय सादर इस विनियोग का प्रयोग करना आवश्यक होता है । ४३। परिचम की ओर काष्ठ, सामने अन्न, पाँच प्रकार के धान्य, और राई समेत तिल, दक्षिण की ओर पूआ, भृंगराज, फल एवं पत्ते, बाँये भाग में पीठी, दही, दूध नारियल एवं मोदक तथा प्रणीता को रखने में विचार की आवश्यकता नहीं होती है । विप्रवृन्द ! हवन काल में याग के वर्तमान संमय तक प्रणीता और स्नान के कलश का स्पर्श किसी प्रकार न होना चाहिए । ४४-४७। उच्चीरक, मातुलिंग, द्वार्वा, आँवला, तुलसी, मालती, चमेली एवं विशेषकर कमल पुष्प कंकेती इन्हें ईशान कोण में रखना चाहिए । नैऋत्य कोण में विशेषकर कंकेती, शमी तथा यथावसर पते आदि जो कुछ प्राप्त हो जाये, उन सब का ग्रहण करना चाहिए । धीरपाक विधान में क्षीर के समीप चरुबनाने के लिए स्थाली (बटलोई) पात्र रखना बताया गया है । ४८-५०। पवित्री को काटने वाले कुशों के द्वारा किसी बलवान् द्वारा आमले की भाँति प्रादेशिक मात्र खराड बना कर पुनः उस पवित्री को प्रोक्षणी पात्र में रख देना चाहिए । ५१। ‘विष्णो रराडेति’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसके अग्रभाग से उसे काट

विष्णो रराटमन्त्रेण छेदयेदग्रभागतः । पायसेन काठिनेन प्रत्यनीयात्कदाचन ॥५२
 न रसेन न कार्णेन न दृढेन कदाचन । ताम्रेण भूमना दाथ शुक्तिशाङ्केन वारयतः ॥५३
 छेदयेत्पितॄज्जुलीं चापि पवित्रमथ देशिकः । दिष्टो रराटमन्त्रस्य हारीतश्च ऋषिः स्मृतः ॥५४
 पडिक्तश्छन्दो भवेदेवः संस्कारे विनियोजयेत् । प्रणीताभाजनं गृह्ण प्रोक्षणीं पूरयेत्विभिः ॥५५
 कायतीर्थेन तत्कुर्याद्वितीर्थेन चेत्प्रयिः । वामहस्ततले पञ्चात्त्वापयेत्प्रोक्षणीयकम् ॥५६
 मध्यमामध्यमाङ्गुष्ठ अपामार्गेण मन्त्रिभिः । उत्तानं तत्पवित्रं च पवित्रं तेति सञ्जपन् ॥५७
 ऋषिः स्याह्गौतमश्छन्दो धर्मराजोऽथ देवतः । अथ स्थापितद्रव्याणि प्रोक्षयेत्स्थापयेत्क्रमात् ॥५८
 सङ्कटद्वये त्रिभिः काष्ठैस्त्रवारं मन्त्रपुष्टकः । स्थिरस्थाने तु सम्प्राप्तप्रणीतादाश्च दक्षिणे ॥५९
 प्रादेशान्तरतश्चैव आज्यस्थालीमध्यापयेत् । अग्रतो मण्डलं कृत्वा वह्निं विप्रे तु स्थापयेत् ॥६०
 द्यूतं निःसात्येत्तु निरूप्याशु क्रमेण तु । ईशानेति च मन्त्रेण अधिश्रपणमीरितम् ॥६१
 ऋषिर्नारायणश्छन्दः पडिक्तरीशोऽथ देवता । पर्यग्निकरणं कुर्याददराद्द्वयमप्यथ ॥६२
 अवेक्ष्य ईशमारभ्य दक्षिणावर्तकेन तु । कुलायनीति मन्त्रेण ऋषिच्छन्दादिकं स्नरन् ॥६३
 परिवेष्याज्यस्थालीं च त्रिः सकृद्वा समाहितः । पितरस्तृप्यत्तामिति संस्कारे मातरः स्मृताः ॥६४
 ऋषिः स्याज्जमदग्निश्च गायत्री छन्द ईरितम् । देवता च पिनाकी स्यादग्निष्टोमे च योजयेत् ॥६५

देना बताया गया है । (क्षीर पात्र के लिए) उस कठिन (जमे हुए) दूध को मथ देना चाहिए, रस, काली वस्तु, दृढ़ ताँबा, भस्म, सीप अथवा शंख द्वारा उसका मंथन दूध को फाडना कभी न करना चाहिए । 'विष्णोरराडेति' इस मंत्र के हारीत ऋषि, पंक्ति छंद, देवता हैं, संस्कार कर्मों में इस विनियोग का प्रयोग किया जाता है । पितॄज्जुली (कुशसमूह) और पवित्र छेदन के पश्चात् प्रणीता पात्र के लिए हुए प्रोक्षणी पात्र को तीन कुशाओं द्वारा आच्छादित कर देना चाहिए । ५२-५५। कायतीर्थ, अथवा देवतीर्थ द्वारा उस आच्छादन के अनन्तर बायें हाथ की हयेली पर प्रोक्षणी पात्र रखकर 'मध्यमा मध्याङ्गुष्ठेति' और 'उत्तानं तत्पवित्रं चेति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक हवनीय सामग्रियों का क्रमशः आसेचन करके उन्हें पूर्व की भाँति स्थापित कर देना चाहिए । इस मंत्र के गौतम ऋषि, तथा छन्द, एवं धर्मराज देवता हैं । ५६-५८। विधान सामग्रियों पर एक बार, तीन कोष्ठों एवं मंत्र पुष्टयों द्वारा तीन बार प्रोक्षण होना चाहिए, अपने स्थान पर प्रणीत पात्र के स्थिर होने के उपरात उसके दक्षिण भाग में प्रादेश के भीतर ही आज्यस्थाली (धी गरम करने के पात्र) रखना चाहिए । पुनः ब्राह्मणों के सम्मुख मण्डलाकार बना कर अग्निस्थापन करना चाहिए । ५९-६०। 'ईशानेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस धी को अधिग्रहण करना (गरम करने के लिए अग्नि पर रखना) चाहिए । तथा उसमें से उस मटा आदि इतर पदार्थ को बतलाते हुए शीघ्र निकाल देना चाहिए । ६१। इस मंत्र के नारायण ऋषि, पंक्ति छन्द, एवं ईश देवता हैं । पर्यानिकरण दौर निरीक्षण दोनों एक साथ ही करके उसके सिद्ध हो जाने पर उसे किसी अन्य पात्र में रख देना चाहिए । 'कुलायनीति' इस मंत्र का उच्चारण अन्य पात्र में रखते समय करना आवश्यक होता है । पुनः उसे एक बार या तीन बार 'पितरस्तृप्यत्तामिति' (पितरगण तृप्त हों) इस प्रकार कहते हुए उन्हें अपर्ति करना चाहिए, इसी भाँति संस्कार कर्मों में माताओं के लिए कहा गया है । ६२-६४। इस मंत्र के जमदग्नि ऋषि, गायत्री छन्द, पिनाकी देवता हैं, 'अग्निष्टोम' नामक यज्ञ में इस विनियोग का प्रयोग करना

घृतस्य च तथा त्वं नो ब्रह्मा वै तुप्यतामिति । षड्ङुलं सुवं पश्चाद्गृहीत्वाद्भौ प्रतप्य च ॥६६
 त्रिरात्रं तु महायोगे सकृदन्यत्र सत्तमाः । सम्मार्जयेत्कुशेनापि मूलादयं तु त्तेचयेत् ॥६७
 अदान्मूलं पुनः कुर्यात्सम्पूज्य च पुनः पुनः । त्रिभिस्त्रिभिः प्रणीतोदे प्रोक्षयेत्तवनन्तरम् ॥६८
 सुवं पुनः प्रतप्याथ प्रोक्षण्युत्तरतो न्यसेत् । अत्ययत्रं पुरस्कृत्य पवित्रं च समाहरेत् ॥६९
 अङ्गुष्ठे द्वे अनामे तु गृहीत्वा तत्पवित्रम् । अष्टाङ्गुलं मध्यकृत्वो घृतं त्रिः पदनं चरेत् ॥७०
 पाताले त्रिस्तथःकाशे अवेक्ष्याज्ञा तत्स्त्रिभिः । प्रोक्षण्यां च तथा कुर्यादधिः सन्प्रोक्ष्य देशिकः ॥७१
 ततः पायसमादाय उत्थाय च समन्वकम् । तृष्णीं द्यात्तथा चाप्त्रो सान्निवेशनं तत्वतः ॥७२
 सपदित्रं दक्षकरे गृहीत्वा प्रोक्षणीयकम् । अष्टाङ्गुले मूलभागे तज्जलेन ईशादितः ॥७३
 अग्निं पर्युक्तयेत्पश्चाद्क्षिणावर्तकेन च । पवित्रं च प्रणीतायां निधाय प्रोक्षणीयकम् ॥७४
 संयत्वार्थं च भो विद्रा अग्निवत्त्र देशिकः । ध्यायेदप्तिं रक्तवर्णं सुवहस्तं त्रिबाहुकम् ॥७५
 कमण्डलं परे हस्ते ततो दक्षकरेण तु । सुवं गृहीत्वा ज्युहपातूष्णीमेव सप्तहितः ॥७६
 अन्ते च देवतोद्देशं प्राजापत्यं सम्मीरयन् । प्रश्नवात्तेन ज्युह्यात्सर्वत्र द्विजसत्तमाः ॥७७
 वायुकोणं समारम्भं वह्निकोणान्तकेन तु । अच्छिष्ठेन घृतेनैव इन्द्राय तवनन्तरम् ॥७८
 अग्नीषोमात्मकं चैव जुहुयाद्राक्षसादितः । ऐशानकोणपर्यन्तं ततो नैमित्तिकं चरेत् ॥७९

चाहिए । ६५। तथा ब्रह्मा के सम्मुख उस धी को रखकर 'ब्रह्मावैतृप्यताम्' 'ब्रह्मा तृप्त हों' इस प्रकार उन्हें अपीत कर उनसे प्रार्थना करना कहा गया है । पश्चात् उसे छः अंगुल के सुवे को अग्नि में तपाकर उसके मूलभाग का कुश द्वारा सम्मार्जन करना चाहिए । द्विजसत्तम ! महायोग में तीन रात और अन्त एक ही बार उसके करने का विधान बताया गया है । ६६-६७। पुनः उसके अग्नभाग के मूल की बार बार पूजा करने के उपरान्त प्रणीता के जल से तीन-तीन बार उसका प्रोक्षण करना चाहिए । ६८। पुनः उसे तपाकर प्रोक्षणी के उत्तर में रख कर उस स्त्री के पात्र के सामने रख इस विधान से दोनों हाथ के अंगूठे और अनामिका अंगुली से उस पवित्री द्वारा, जिसका मध्य भाग आठ अंगुल का हो, तीन बार उत्त्वन (ऊपर उछालकर) पवित्र करना चाहिए । ६९-७०। उस धी का भली भाँति निरीक्षण एवं तीनबार पाताल (नीचे) और तीन बार आकाश (ऊपर की ओर) उछालने के उपरान्त अधो भाग के प्रोक्षण करने पर प्रोक्षणी में भी वैसा ही करना बताया गया है । ७१। उसके उपरान्त स्त्री का ग्रहण मन्त्र समेत कर मौन हो अग्नि में उसकी आहुति खड़े होकर डाल देनी चाहिए । ७२। पवित्री समेत दाहिने हाथ में प्रोक्षणी जल का ग्रहण कर पवित्र के आठ अंगुल वाले मूल भाग द्वारा उसके जल से ईशान कोण से आरम्भ कर अग्नि का पर्युक्षण (मंडल) करके पश्चात् दक्षिणावर्ति से उस पवित्री तथा प्रोक्षणी जल को प्रणीता पात्र में डाल देना चाहिए । ७३-७४। विप्रवृन्द ! संयाव (लप्सी) बनाने के लिए रक्तवर्ण, हाथ में सुवा लिए, तीन भुजाएँ एवं दूसरे हाथ में कमण्डल लिए अग्नि के इस प्रकार का ध्यान करके पश्चात् दाहिने हाथ से सुवा ग्रहण कर मौन होकर आहुति डालनी चाहिए । ७५-७६। द्विजसत्तम ! अन्त में देवता के उद्देश्य से प्राजापत्य से आरम्भ कर प्रणवान्त तक हवन करना बताया गया है । वायुकोण से आरम्भ कर वन्दिकोण के प्रान्त भाग तक घृत की अटूट धारा प्रदान करने के उपरान्त इन्द्र के लिए आहुति प्रदान करनी

पश्चात्स्वब्दं ततो द्याह्याल्लन्मतिभिस्तथा । वारुणं पञ्चकं चैव कृत्वा पूर्णा ततो लभेत् ॥८०
उद्ग्राह इति मन्त्रस्य अर्थर्वणः ऋषिः स्मृतः । छन्दो देवी च गायत्री देवतं चापि वारुणम् ॥८१
प्रकृते योजयेन्मन्त्री रत्नतौ चापि नियोजयेत् । त्वस्त्रोग्न इति मन्त्रस्य ऋषिविशिष्ठसंज्ञकः ॥
छन्दश्च बृहती ख्यातस्तदेवाग्निः प्रकीर्तिः ॥८२

इडो गतमिति मन्त्रस्य ऋषिः को गुह्यसंज्ञकः । छन्दश्च जगती ख्यातं देवो विष्णुः प्रकीर्तिः ॥८३
उद्गर्तन इति मन्त्रस्य ऋषिः को नु प्रकीर्तिः । छन्दो देवी च गायत्री वरुणश्चाधिदेवता ॥८४
इति श्राविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणिं द्वितीयभागेऽनिहेत्रविधानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः । १३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः मखविधानवर्णनम्

सूत उचाच

मत्ते सर्वत्र ब्रह्माणमृत्विजं वरयेदथ । कुशकण्डे स्वगृहेन कृत्वाग्निं चार्चयेत्ततः ॥१
आधाराज्यभागौ तु महाव्याहृतस्त्रयः । सर्वं प्रायश्चित्तसंज्ञकं प्राजापत्यं च स्वष्टकृत् ॥२
एतनित्यं हि सर्वत्र होमे कर्मणि निर्दिशेत् । प्राजापत्ये च इन्द्राय एतावाधारसंज्ञकौ ॥३
अग्नये चैव सोमाय आज्यभागौ प्रकीर्तितौ । भूर्भुवःस्वस्त्रयश्चैव महाव्याहृतयः स्मृताः ॥४

चाहिए ! अग्नीषोमात्मक हवन के उपरांत नैक्रत्य कोण से आरम्भ कर ईशानकोण नैमित्तिक तक पूर्णहृति विद्वानों को प्रदान करनी चाहिए । ७७-८०। ‘उद्ग्राह इति’ इस मंत्र के अर्थर्वण ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं । ८१। इस यज्ञ एवं स्तुति को करते समय इस विनियोग के प्रयोग करना बताया गया है । ‘त्वस्त्रोऽग्नयिति’ इस मंत्र के वशिष्ठ ऋषि, बृहती छन्द, अग्नि देवता बताये गये हैं । ८२। ‘रुद्रो गतमिति’ इस मंत्र के गुह्य संज्ञक ब्रह्मा ऋषि, जगती छन्द, विष्णु देवता हैं । ८३। ‘उद्गर्तन इति’ इस मंत्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता हैं । ८४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पण के दूसरे भाग में अग्निहोत्रविधान वर्णन
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त । १३।

अध्याय १४ यज्ञ विधान का वर्णन

सूत जी बोले—सभी भाँति के यज्ञों में ब्रह्मा, और ऋत्विक् (हवन कराने वाले) ब्रह्मणों का वरण एवं अपने गृहा के अनुसार कुशकण्डिका के उपरांत अग्नि की पूजा करनी चाहिए । १। आधाराज्य भाग, तीनों महाव्याहृतियाँ, प्रायश्चित्त संज्ञक, प्राजापत्य, एवं स्वष्टकृत आहृतियाँ सभी हवन कर्मों में दी जाती हैं । प्राजापत्य और इन्द्र के लिए दी जाने वाली आहृति आधार संज्ञक, अग्नि तथा सोम के लिए दी जाने वाली आहृति आज्य भाग संज्ञक, और भूर्भुव तथा स्वर के लिए दी जाने वाली आहृति तीनों महाव्याहृति के नाम से ख्यात हैं । २-४। ‘अयाश्चाग्ने इति’ और ‘ये ते शतमनुत्तममिति’ इन पाँचों मंत्रों द्वारा प्रदान की

अयाश्चास्मे हति तथा ये ते शतमनुतमम् । सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञा एते वै पञ्चमन्त्रकाः ॥५
 प्राजापत्याहृतिश्चैका स्विष्टकृद्व्यापरा स्मृता । चतुर्दशैताः कृतयो होतव्या नित्यसंज्ञकाः ॥६
 कृत्वा सकृदेवतोहेशं होमं पश्चात्समाचरेत् । सोमपा ये च गोदागे नरमेधाश्चमेधयोः ॥७
 अन्यत्र विपरीतेन स्वाहान्तेन हुनेद्बुधः । नैमित्तिकं दिना नित्यं दिक्फलं याति नान्यथा ॥८
 नित्यं वर्त्य शतार्थेन वैश्वदेवे तथैव च । अहसाध्यादियागेषु यश्चिदेशं शृणु द्विजः ॥९
 एकाहे वावारारज्यौ कृत्वा नैमित्तिकीः कृतीः । समा स्विष्टकृतं विद्यादाकृत्याद्यास्ततः परम् ॥१०
 विशेषतस्त्व्यहादै तु अवारावाज्यपूर्वकम् । पश्चान्लैमित्तिकं कुर्यात्सिमाप्तिदिवसेऽप्यथ ॥११
 आधाराराज्यपूर्वेण ततो नैमित्तिकं चरेत् । स्विष्टकृद्व्याहृतिश्चैव वारुणाद्यास्तथा हि षट् ॥१२
 द्विजातिः पतितो यत्र द्वित्रिकं च चतुश्चतुः । एकस्मिन्दिवसे कुर्यात्सिमयागे च शैशवे ॥१३
 द्विजातीनां विवाहे तु नैत्यिकं प्रथमं भवेत् । एकस्मिन्दिवसे कुर्यादग्निकार्यं पृथक्पृथक् ॥१४
 दद्यादेकं च नित्यं च पृथक् नित्यं न चाचरेत् । द्विजातिः पतितो यत्र द्वित्रिकं च चतुश्चतुः ॥१५
 एकस्मिन्दिवरो कुर्यात्त्रापि नैत्यिकं त्यजेत् । होमे ब्रह्मा स्तुते विष्णुः सुवो चैव महेश्वरः ॥१६
 अजस्यानियमे चेन्द्रोऽधिश्चयणं विदस्वतः । पर्यग्निकरणे चैव उद्धाहे मातरः स्मृताः ॥१७

जाने वाली आहुतियाँ प्रायश्चित्त संज्ञक कही जाती हैं । ५। प्राजापत्य की एक आहुति तथा दूसरी स्विष्टकृत की होती है, इस प्रकार इत चौदह आहुतियों का नित्य हवन करना चाहिए, इनकी 'नित्य' संज्ञा बतायी भी गयी है । ६। देवता के उद्देश्य से एक बार आहुति डालकर पश्चात् हवन प्रारम्भ करना बताया भी गया है, गोमेध, नरमेध एवं अश्वमेध यज्ञों में सोमपान करने वालों के उद्देश्य से आहुति प्रदान की जाती है, अन्यत्र इससे विपरीत अर्थात् अन्त में स्वाहा कर विद्वानों को आहुति प्रदान करनी चाहिए, पर ये सभी बातें नैमित्तिक के कार्यों में व्यवहृत होती हैं नित्य में नहीं अन्यथा उसके निष्फल हो जाने की आशंका रहती है । ७-८। नित्यकर्म एवं वैश्व देव में पचास संख्या की आहुति का निषेध किया गया है, द्विजवृन्द ! तीन दिन में सिद्ध होने वाले यज्ञ के निर्देशों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! पहले दिन आधार, आज्य भाग, नैमित्तिक कर्म, एवं स्विष्टकृत हवन करने के उपरांत शेष समस्त कृत्यों की समाप्ति करनी चाहिए । ९-१०। विशेषकर तीन दिन वाले यज्ञ-सिद्धि के विषय में आधार और आज्य भाग की समाप्ति पूर्वक पश्चात् समाप्ति दिन में भी नैमित्तिक कार्य करना बताया गया है । ११। पहले आधार, तथा आज्य भाग की समाप्ति के उपरांत नैमित्तिक कार्य की समाप्ति होनी चाहिए । इस भाँति स्विष्टकृत, व्याहृति, एवं वारुणी मिलकर इन छहों की कृत्यसमाप्ति एक ही साथ आरम्भ में की जाती है । १२। द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), जिसमें पतित हो जाते हैं, उन दो तीन अथवा चार-चार कृत्यों की समाप्ति सोमयाग या शैशव (बचपन) के एक ही दिन में की जानी चाहिए । १३। द्विजातीयों के विवाह कार्य में पहले नित्य कार्य सम्पन्न किया जाता है, और उसी एक दिन में अग्निकार्य (हवन) भी पृथक्-पृथक् किया है । १४। उसी एक नित्य कार्य के सुसम्पन्न करने की आवश्यकता रहती है, पृथक् नित्य की नहीं । द्विजाति के पतित होने वाले उन दो, तीन या चार-चार कृत्यों की समाप्ति के दिन भी नैमित्तिक कार्यों का त्याग करना बताया गया है । हवन कार्य में ब्रह्मा, स्तुति कार्य में विष्णु, सुवा में महेश्वर, अनियमित कार्य में अजन्मा, अधिकभक्षण में इन्द्र, पर्यग्नि करण में विवस्वान् और विवाह कार्यों में मातृकाओं का स्थापन-पूजन आवश्यक बताया

चन्द्रादित्यौ चोत्पवने वीक्षणे च दिशस्तथा । प्रोक्षणां स्थापने दुर्गा इमे लक्ष्मी प्रतिष्ठिता ॥१८
 होमं कुर्याद्द्विजश्रेष्ठः विधिं कुर्यात्समाहितः । एतेषु देवताः प्रोक्ता द्विजातीनां हिताय च ॥१९
 यजेत्सुपशुब्देषु संस्कारे चैव पर्वणि ; देवताः सर्वा ज्ञातव्या एता यज्ञे समाहितैः ॥२०
 अधिदेवेन जानीयात्करवल्यां पञ्चफलं यतः । ततस्मात्सर्वप्रगत्नेन देवतामय विन्यसेत् ॥२१
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पर्वणि द्वितीयभागे चतुर्दशोऽध्यायः । १४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

देवध्यानवर्णनम्

सूत उवाच

अथ वक्ष्यामि सञ्चैषां देवानां ध्यानमुत्तमम् । अस्य यज्ञे परिज्ञानाज्जिह्वा सम्बद्धकलप्रदा ॥१
 हिरण्यवर्णां प्रथमां बह्विजिह्वां महाद्युतिम् । कनकादधकरां देवीं हिरण्याख्येष्टसिद्धये ॥२
 कनकां^३ द्विभुजां शुक्लां हस्ताम्यां दर्भसंयुताम् । कमण्डलुं च बिभ्राणां नुमः साधकसिद्धिदाम् ॥३
 उद्यदिन्दुनिभां रक्तां चतुर्भिर्भुजपल्लवैः । शङ्खचक्राभयवरान्दधतीं प्रणमाम्यहम् ॥४

गया है । १५-१७। उसी भाँति उत्पवन कार्य में चन्द्र सूर्य, निरीक्षण में दिशाओं, प्रोक्षणी के स्थापन में दुर्गा तथा लक्ष्मी को प्रतिष्ठित करना कहा गया है । १८। द्विजश्रेष्ठ ! विधान पूर्वक हवन कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए, उनमें इन सभी देवताओं के स्थापन पूजन द्विजातीयों के लिए हितकर बताया गया है । १९। पशु बन्धन, संस्कार, एवं पर्व के यज्ञ के दिनों में सावधान होकर इन्हीं देवताओं का पूजन करना चाहिए। इन देवों के अधिनायक होने के नाते करवेली में पांच फलों की प्राप्ति होती है, अतः इन कर्मों में देवों के आवाहनादि करने के लिए सभी भाँति के प्रयत्न करना चाहिए । २०-२१। श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पर्व के दूसरे भाग में चौदहवाँ अध्याय समाप्त । १४।

अध्याय १५

देवता के ध्यान का वर्णन

सूत बोले—मैं देवताओं का उत्तम ध्यान बता रहा हूँ, जिसके भली भाँति पालन द्वारा, ज्ञान द्वारा यज्ञ में जिह्वा सम्बद्ध फलों को प्रदान करती है । १। हिरण्य (सुवर्ण) के समान वर्ण, एवं अत्यन्त प्रकाशपूर्ण वह अग्नि की पहली जिह्वा है, हिरण्य रूपी इष्ट सिद्धि के लिए कनकादय करने वाली जिसके शुक्लवर्ण, एवं कुशपूर्ण दो हाथ हैं, कमण्डलु धारण किये, साधकों को सिद्धि प्रदान करने वाली उस देवी को हम लोग नमस्कार करते हैं । २-३। उदयकालीन चन्द्र की भाँति (सौन्दर्यपूर्ण), रक्तवर्ण, चार भुजा रूपी ब्राह्मणों से युक्त तथा उनमें क्रमाशः शंख, चक्र, अभय, एवं वर स्थित कर प्रदान करने वाली उस देवी को मैं प्रणाम

१. सुवर्णाभामित्यर्थः ।

भिन्नाञ्जनचयप्रस्थां स्वर्णकुम्भं तु वास्तः । दंकिष्णेन वरारक्तां धारयन्तीं नमाम्यहम् ॥५
 सुप्रभामज्जलाभा च कराभ्यां तत्कृताञ्जलिः । पवासनस्या कौशेयवसना मे प्रसीदतु ॥६
 जपाकुमुमसङ्काशा बहुरूपा सखे मम । शुभदा स्याद्भूजैः शुभ्रा सहस्रं दद्धती परात् ॥७
 नीतोत्पलनिभे देवि वह्निर्वण्डराभवे । जपापुष्पधरे नित्यं सतीरूपे प्रसीद मे ॥८
 मूलेन दीक्षयेत्स्थानं मन्त्रेण लननं मतम् । त्रिसूत्रीकरणं कुर्याञ्जतुः सूत्रं निपातयेत् ॥९
 इति श्री भद्रिष्ठे महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवध्यानवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५

अथ षोडशोऽध्यायः देवध्यानविधानवर्णनम्

सूत उवाच

प्रतिष्ठायाः पूर्वदिने कुर्याद्विदाधिवासनम् । आन्द्रप्रतिष्ठां तस्यैव यूपं चापि यथाविधि ॥१
 रात्रौ मूलग्रे च घटे स्थापयेद्गणनायकम् । सम्मूज्य च विधानेत दिगीशांश्च तजा ग्रहात् ॥२
 ब्रह्माणं च तडागेषु वरुणं शान्तियागके । सोमं च मण्डले सूर्यं पादे विष्णुं तथैव च ॥३
 शैवे शैवं तथा प्रोक्तं प्रपायामथ वारुणम् । आरामे चैव ब्रह्माणं पाद्याद्यैरपि चार्चयेत् ॥४

करता हूँ । ४। भिन्न काले अज्जन की भाँति उस रक्तमयी देवी को, जो दायें हाथ में सुवर्ण घट लिये और दाहिने हाथ से वर प्रदान कर रही है । नमस्कार कर रहा हूँ । ५। अत्यन्त प्रभा पूर्ण मण्डल की आभा समेत, दोनों हाथों से अञ्जली बाँधे (हाथ जोड़े) कमलासन पर सुशोभित और रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित वह देवी मुझ पर प्रसन्न रहे । ६। मित्र ! जया (गोङ्हहर) के पुष्प की भाँति, एवं अनेक रूप धारण करने वाली वह शुभ्र वर्णा देवी, जो अपनी भुजाओं द्वारा सहस्रों शत्रुओं को ग्रहण करती है, मेरे लिये शुभ (कल्याण) प्रदान करे । ७। हे तील कमल के समान सौन्दर्य पूर्ण, अग्नि वर्ण का अनादर करने वाली नित्य जपा पुष्प धारिणी, एवं सती रूपवाली देवि ! मुझ पर प्रसन्न हो । ८। इस प्रकार आराधना के उपरांत मूल से स्थान निरीक्षण, मंत्र द्वारा खनन, एवं त्रिसूत्रीकरण तथा चार सूत्रों का भी उपयोग करना चाहिए । ९ श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में देवध्यान वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्ता । १५।

अध्याय १६ देवध्यान का वर्णन

सूत जी बोले—प्रतिष्ठा करने के पूर्व दिन में उस देव का अधिवासन, धान्य प्रतिष्ठा, एवं उसका विधान पूर्वक यूप (यज्ञीय स्तम्भ), की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । १। रात के समय घर के मूलाघ्र भाग में गणनायक देव को स्थापित करके उनकी तथा दिक्षापाल एवं ग्रहों की विधान पूर्वक पूजा करनी चाहिए । २। तालाबों के यज्ञ में ब्रह्मा, शान्ति यज्ञ में वरुण, मण्डल में सोम, पाद में सूर्य, एवं विष्णु, शैव के कृत्यों में शैव, प्रमा (पियाऊ) में वरुण, उपवन में ब्रह्मा की पाद-अर्ध्य प्रदान पूर्वक पूजा करनी

द्रुपदादीति मन्त्रेण स्नापयेत्प्रथमं बृधः । गायत्र्या च ततः पश्चादगन्धद्वारेति तैलकम् ॥५
 सुनाभेति च मन्त्रेण द्वाभ्यासेव विशिष्यते । श्रीश्वरे ते इति कुसुमं फलिनीति च वै फलम् ॥६
 कण्डादिति च मन्त्रेण दद्यादद्वार्वाशतं ततः । सिन्दोरिवेति सिन्दूरं दिश्वामिति च मार्जनम् ॥७
 समिच्छेत्यञ्जनं दद्यादःस्थं सुरासुरा जपन् । चन्दनं वज्वभिर्जप्त्वा मानस्तोकेति चन्दनम् ॥८
 यूपे चैव विशेषोद्युमत्तराग्रं प्रविन्यसेत् । अद्यैव तेन मन्त्रेण स्थापयेदथ वारिणा ॥९
 गायत्र्या प्रथमं चैव आपो हिष्ठेति वै जपन् । शङ्गो देवीति द्रुपदां स्नापयेत्तदनन्तरम् ॥१०
 अभिमन्त्र्याथ ब्रह्मेति त्रिरात्रं मन्त्रभीर्यन् । योगं योगदृढं जप्त्वा पवित्रं विन्यसेततः ॥११
 त्वं गन्धवैति मन्त्रेण तथा सुभाष्म इत्यपि । द्वाभ्यां तैलगन्धयुतं श्रीसूक्तेनापि पुष्यकम् ॥१२
 धूरसीति च तथा धूपमात्रज्योतिर्भिर्दीपकम् । अनुमीमहताति दद्यादद्वारक्षित ततः ॥१३
 विश्वामीति च निम्न्यन्तकाण्डादिति तथाक्षतम् । सिन्दोरिवेति सिन्दूरं समिधेति तथाञ्जनम् ॥१४
 पादोऽस्येत्यय भुक्तं स्याद्या: फलिनीति पुनः फलम् । रूपं नेति दहेद्वूपं न सोचिति च पूजनम् ॥१५
 युवा सुवासेति वस्त्रं नागगन्धेति चन्दनम् । ततो यमगृहाद्वाह्ये मण्डपान्तरमाश्रितः ॥१६
 सुनातीति वचो दद्यात्तश्रावाह्येत्प्रभुम् । तत्राधिवासनं कुर्याद्विक्षयेच्च सुरक्षिभिः ॥१७
 आचार्यो यजमानश्च ऋत्विग्भोजनमाचरेत् । अक्षारलबणान्यासी दधि विश्वं तिलांस्त्यजेत् ॥१८

चाहिए । ३-४। विद्वानों को पहले 'द्रुपदादीति' इस मंत्र का उच्चारण करते हुए स्नान 'गायत्री' एवं 'गन्धद्वारेति' तथा 'सुनाभेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक तेल, एवं 'श्रीश्वरे ते इति' इस मंत्र का उच्चारण करते हुए पुष्प 'फलिनीति' इस मंत्र से फल, 'कण्डादिति' इस मंत्र से सौ द्रवा, 'सिन्दोरिवेति' इस मंत्र से सिंदूर 'विश्वामिति' इस मंत्र से मार्जन, 'दुःस्थं सुरासुरेति' इससे अञ्जन, तथा 'मानस्तोकेति' इस मंत्र से चन्दन प्रदान करना चाहिए । ५-८। तथा यूप (यज्ञीय स्तम्भ) को उत्तराग्र भाग में करके उसी दिन उसी मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे स्थापित करना चाहिए । ९। गायत्री मंत्र, 'आपेहिष्ठेति' एवं शङ्गो देवीति' इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक स्नान करने के उपरांत 'अथ ब्रह्मेति' इस मंत्र का तीन रात तक जप करके 'योग योग दृढं' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पवित्री का उसमें प्रक्षेप करना बताया गया है । १०-११। 'त्वं गन्धवैति' और 'सुभाष्म इति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक तेल एवं गन्ध प्रदान करके श्री सूक्त द्वारा पुष्प, 'धूरसीति' इस मंत्र के उच्चारण से धूप 'आश्रज्योतिर्भिरिति' इस मंत्र से दीपक, 'अनुमीमहताति, इससे द्रवा और अक्षत, 'विश्वामिति, तथा 'निम्न्यन्तकाण्डादिति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक अक्षत, 'सिन्दोरिवेति' इस मंत्र से सिंदूर और 'समिधेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए अञ्जन एवं 'पादोऽस्येति' इससे भोजन करना और या: फलिनीति' इससे पुनः फल अर्पित करने के उपरांत 'रूपं नेति दहेद्वूप न सोचिति चेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूजन करना चाहिए । १२-१५। 'युवा सुवासेति'. से वस्त्र, 'नागगन्धेति' से चन्दन चर्चित करने के उपरांत यम गृह से बाहर मण्डप के भीतर 'सुनातीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रभु का आवाहन, एवं अधिवासन करके कुशल रक्षकों द्वारा सुरक्षित रखना चाहिए । १६-१७। पुनः एक साथ आचार्य, यजमान और ऋत्विक् गण के क्षार नमक, दही, विश्व और तिल के त्याग पूर्वक भोजन कराना चाहिए । १८। इसके उपरांत मैं (देवों का) असाधारण अधिवासन

आधारणं चाधिवासं वक्ष्ये तत्रानुसारतः । सुनातेति वचो दधात्तैलं चैव शिवे त्रिभिः ॥१९
 पञ्चभिर्ब्रह्माह्यणैः सार्थं गन्धर्वां इति विस्मरन् । दधादगन्धं तैलयुतं गन्धद्वारेत्यचा पुनः ॥२०
 याः फलिनीति च फलं पूगतानामवर्जनम् । कौशिकीरुत्तमोसीति दद्यात्खज्ञं सुतीक्ष्णकम् ॥२१
 रूपेन वेति मञ्चेण मुद्गरं च निवेदयेत् । श्रीश्री ते इति कुमुमं विश्वानीति च सम्पठन् ॥२२
 तिर्मन्यनं ततः कार्यमिति साधारणो विधिः । ततोऽधिवासकल्पे तु प्रदेशे तु समाचरेत् ॥२३
 विनाधिवासनं विश्वाः प्रातेष्ठानं समाचरेत् । न तत्फलमवाप्नोति विवाहे शरणं दिशेत् ॥२४
 ततः प्रयत्नतः कार्यं पूर्वाङ्गे रात्रियेत्यगतः । नित्ये नैमित्तिके करम्ये कारयेत्कुण्डमण्डपम् ॥२५
 स्थग्निले हस्तम् त्रेण बालुकानिर्मितेऽपि च । त्रयोदशाङ्गुले हस्ते द्विहस्ते चापि वर्द्धते ॥२६
 एकैकाङ्गुलको विश्राः पीठे नास्ति विचारणा । नवपञ्चक कुण्डे च लक्षादावपि शड्कया ॥२७
 ततो दशाङ्गुले पक्षे दशाङ्गं शृणुत द्विजाः । काष्ठं पत्रं च पुष्यं च मोदकं पिष्टकं तथा ॥२८
 अन्नं च परमान्नं च हृवेक्ष्यं तिलमेव च । एतद्वै गृहपक्षे च विष्णुपक्षे तिलादितः ॥२९
 शैवे यवादितः कार्यं शाक्ते पुष्यादितो भवेत् । सूर्ये गक्षे पिष्टकादि गोपाले कृशरादितः ॥३०
 कृष्णे च करवीरादि श्रीफलानि च त्रैपुरे । सारस्वते च श्रीवृक्षे मोक्षकामे निगद्यते ॥३१
 इति श्री भविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवध्यानवर्णनं नामक षोडशोऽध्यायः । १६

शास्त्रानुसार बता रहा हूँ, (सुनो) ! 'सुनातेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक तीन ब्राह्मणों द्वारा (शिव के लिए) तेल, पांच ब्राह्मणों द्वारा 'गन्धवेति' मंत्र के उच्चारण करके तैल युत गन्ध और 'गन्धद्वारेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक पुनः गन्ध प्रदान करना चाहिए । १९-२०। 'याः फलिनीति' मंत्र से पूंगीफल (सुपाड़ी) 'कौशिकीरुत्तमोऽसीति' मंत्र द्वारा तीक्ष्ण खड़ग, 'रूपेन वेति' इस मंत्र द्वारा मुद्गर, 'श्रीश्रते इति' और 'विश्वातीति' इस से पुष्प, प्रदान करने के उपरांत निर्मयन करना चाहिए' यह साधारण विधान कहा गया है । पश्चात् उस प्रदेश में अधिवासन का कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए । २१-२३। क्योंकि विप्रवृन्द ! बिना अधिवासन कार्य को सुसम्प्लन किये प्रतिष्ठापन विधान निष्फल हो जाता है । २४। इसलिए रात्रि के पूर्वाङ्ग समय में उसे प्रयत्न पूर्वक सुसम्पन्न करना आवश्यक होता है । नित्य, नैमित्तिक, एवं काम्य इनमें किसी अनुष्ठान के आरम्भ में सर्वप्रथम कुण्डमण्डप बनाना चाहिए । २५। एक हाथ की बेदी चाहे वह बालू की ही बनायी जाये, पर, सौन्दर्यं पूर्णं बनानी चाहिए । तेरह अंगुल, हाथ एवं दो हाथ की बेदी के निर्माण में विप्रवृन्द ! एक एक अंगुल की भी वृद्धि की जा सकती है, इसलिए पीठासन के विषय में विशेष विचारने की आवश्यकता नहीं बतायी गयी है । चौदह भाँति के कुण्डों के निर्माण में भी जिसमें लक्ष संख्या की आहुतियाँ ढाली जाती हैं, वही बात है । द्विजवृन्द ! दश अंगुल के पक्ष में उन दश अंगों को बता रहा हूँ, सुनो ! काष्ठ, पत्र, पुष्य, मोदक, पीठा (चूर्ण), अन्न, परमान्न, और तिल ये गृहपक्ष की ओर से निश्चित है, विष्णु के भाग में तिल शिव के जवा, शाक्त कर्म में पुष्प, सूर्य के भाग में पीठा, गोपाल के लिए कृशराज (खिचड़ी), कृष्ण के लिए करवी (कनेर) के पुष्प, त्रिपुर सम्बन्धी कार्य में श्रीफल (बेल), तथा सारस्वत, श्री वृक्ष, एवं मोक्ष के कामों में भी उसी श्रीफल से ही आरम्भ किया जाता है । २६-३१। श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमपर्व के द्वितीय भाग में देवध्यान वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त । १६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

देवध्यानवर्णनम्

सूत उचाच

अष्टौ होतादो द्वारपालास्तथाष्टौ अष्टौ कार्या ब्राह्मणा याजकाश्च।

सर्वे शुद्धा लक्षिता लक्षणाद्यरेकः कार्यो जापकोऽस्मिन्महात्मा ॥१

दिव्यैर्ग्निर्गन्धमालयैः सुलग्नेस्तत्त्वं कार्द्धं ब्राह्मणाः पञ्चविंशाः ।

आवाप्त्येस्तु द्विगुणैर्वै बलीयो दिव्यैर्वस्त्रैर्हणादक्षिणाभिः ॥२

नार्हयित्वा यथोक्तेन कन्त्रित्यत्रं निवेशयेत् । अनर्हतेषु विप्रेषु न सम्यक्फलमाप्नुयात् ॥३

प्रतिष्ठादितु सर्वेषु सम्यग्दिव्रानथार्हयेत् । कुशद्विजं तु सर्वत्र अर्च विष्टरमात्रकम् ॥४

प्रदद्यादर्हणं सम्यक्पश्चात्तात्रं निवेदयेत् । विनार्हणं कृते तस्मिन्नरके परिपच्यते ॥५

प्रत्येकं ब्राह्मणा यज्ञे वेदमन्त्रेषु पारगाः । आचार्यो यदि कार्येषु वरयेद्वशं गोव्रजान् ॥६

विशिष्टानामभावेऽपि कुर्यात्कुशमयान्द्वजान् । कुशप्रतिकृतौ चापि स्वगोत्रं स्वं द्विजं विना ॥७

न कुर्याच्चरणोद्देशं तथा प्रहरसंहतिम् । गोव्रदिकीर्तनान्तेषु स्वनामोद्देशमीरयन् ॥८

तुलापुरुषदाने च तथा च हाटकाचले । कन्यादाने तथोत्सर्गं कीर्तयेत्प्रवरादिकम् ॥९

अध्याय १७

देवध्यान का वर्णन

सूत जी बोले—आठ होता, आठ द्वारपाल, एवं आठ यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण, जो शुद्ध तथा लक्षण सम्पन्न हों, होने चाहिए और उन्हीं विद्वानों में से किसी एक महात्मा को जापक नियुक्त करना चाहिए । १। दिव्य गन्ध, गन्ध भाल्य और सुर्वर्णों द्वारा इन पच्चीस ब्राह्मणों का तैल कार्य तथा दिव्य वस्त्र एवं दक्षिणाओं से पूजा और उनकी प्राप्ति भी दुगुनी होनी चाहिए । २। उक्त विधान द्वारा पूजा किये बिना किसी भी (यज्ञीय) पात्र का यज्ञ में प्रवेश न करना चाहिए, क्योंकि अपूजनीय ब्राह्मणों द्वारा पूर्ण फल की प्राप्ति नहीं होती है । ३। सभी प्रतिष्ठा आदि कार्यों में ब्राह्मणों की भली भाँति पूजा होनी चाहिए, क्योंकि कुश और ब्राह्मण सर्वत्र पूजनीय बताये गये हैं, अतः सर्वप्रथम उन्हें आसन प्रदान करके पश्चात् पात्रों की कल्पना और वर्गीकरण करना चाहिए, अन्यथा उन्हें नरक में परिपक्व होना पड़ता है । ४-५। यज्ञ के प्रत्येक ब्राह्मण को वेदमन्त्रों का निष्णात विद्वान् होना बताया गया है, इसलिए कार्यों में दश गोव्रज द्वारा आचार्य का वरण करना कहा गया है । ६। इस प्रकार के विशिष्ट विद्वानों के अभाव में कुशमय ब्राह्मण की कल्पना करनी चाहिए ब्राह्मण की कुश प्रतिमा बनाने में अपने गोत्र और अपने ब्राह्मण का त्याग करना चाहिए । ७। शाखा का अनुसन्धान और भाग समूह की कल्पना त करके केवल गोत्र आदि के कथन के उपरांत अपने नाम का उच्चारण करना चाहिए । ८। तुला-पुरुष दान, हाटकाचल (मेरुपर्वत) के निर्माण, कन्यादान, एवं उत्सर्ग विधान में अपने प्रवर का भी उच्चारण करना बताया गया है । ९।

न पात्रं प्रतिकृत्यर्थं न चालं सोदरं तथा ! मृतभार्यों हृष्टभार्यश्च अपुत्रो मृतपुत्रकः ॥१०
 शूद्रसंस्कारकश्चैव कृपणो गणयाजकः ! प्रायश्चित्तगृहीतश्च राजयाजकपैशुनौ ॥११
 शूद्रगेहनिवासी च शूद्रप्रेरक एव च । स्वल्पकण्ठो वामनश्च वृषलीपतिरेव च ॥१२
 बन्धुद्वेषीं गुरुद्वेषीं भायद्वेषीं तद्वैव च । हीनाङ्गश्चैव वृद्धाङ्गो भग्नदन्तश्च दाम्भिकः ॥१३
 प्रतिश्राही च कुनखः पाददारिक एव च । शिवीं कुष्ठीं कुलोद्भूतो निद्रालुवर्षमनर्थकः ॥१४
 अदीक्षितः कर्त्यश्च चण्डरोगी गलद्वक्षणः । महाक्षणी च उदरी यज्ञगानं न कारयेत् ॥१५
 वरणान्ते तु पात्राणां पूजामन्त्राङ्गृष्णु दिज । प्रतिभन्नेण गन्धादैरर्चयेन्मन्त्रवित्तमः ॥१६
 ब्रह्मपूतिस्त्वमन्वार्यः संसारात्पाहि नां विभो । त्वत्प्रसादादगुरो यज्ञं प्राप्तोरिम यन्मयेप्सितम् ॥१७
 चिरं मे शाश्वती कीतिर्यादिल्लोकाश्चराचराः । प्रसीद त्वं महेशानं प्रतिष्ठाकर्मसिद्धये ॥१८
 त्वमादिः सर्वभूतानां संसारार्णवतारकः । ज्ञानामृतप्रदाचार्यो यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥१९
 ब्रह्मणैव समुद्भूत प्रकाशितदिग्नन्तर । शुद्धजाम्बूनदप्रख्य यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥२०
 प्रतपत्कनकाभास भासितद्युतिभूतल । मन्त्रप्रख्यानसंस्थान यजुर्वेद नमोऽस्तु ते ॥२१
 प्रफुल्लकनकाभास भास्वरासुरभूषित । प्रकीर्णमन्त्रसम्भारविधिज्ञ प्रणतोऽस्मि ते ॥२२

प्रतिमा के लिए पात्रों की कल्पना नहीं की जाती है, उसी भाँति चाल के लिए सोदर की, जिसकी स्त्री का देहावसान हो गया हो, स्त्री हीन, पुत्र विहीन, मृत पुत्र वाले, प्रायश्चित के द्वारा गृहीत होने वाले, राजाओं के यज्ञ कराने एवं चुगुली वाले, शूद्र के घर निवास करने वाले, शूद्र द्वारा प्रेरित किये जाने वाले, अस्पष्ट वाणी वाले, वामन, वृषली पति (शूद्र स्त्री के पति कहलाने वाले), बान्धव, गुह और स्त्री से द्वेष करने वाले. हीनांग, वृद्धांग, भग्नदौत वाले पाखण्डी, प्रतिग्रह (दान) लेने वाले, कुनखी, परस्त्री गामी, शवेत कुष्ठ के रोगी, कुल परम्परा प्राप्त कुष्ठ के रोगी, निद्रालु, व्यसनी, दीक्षाहीन, कायर, चण्डरोगी, मलित ब्रण एवं महाब्रण वाले तथा उदररोग वालों को यज्ञ के पात्र निर्वाचित न करना चाहिए । १०-१५। द्विज ! पात्रों के वरण करने के उपरांत उनके पूजन के मंत्रों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! मन्त्रवेत्ता का गन्ध आदि सामग्रियों द्वारा उनके प्रत्येक मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पात्रों का पूजन करना नाहिए । १६। आप ब्रह्मपूति एवं मेरे आचार्य हैं, हे विभो ! इस संसार से मेरी रक्षा कीजिए, हे गुरो ! आप की प्रसन्नता से ही मैंने अपने अभीष्ट यज्ञ की प्राप्ति की है । १७। चर-अचर लोक की जितने दिनों तक स्थिति रहेगी, उतने चिरकाल तक मेरी कीर्ति अविनाशिनी होकर रहे, हे महेशान ! इस प्रतिष्ठानुष्ठान की सफलता प्रदान करने के लिए आप प्रसन्न हो जायें । १८। आप समस्त प्राणियों के आदि एवं संसार सागर के तारने वाले हैं, और ज्ञान रूपी अमृत प्रदान करने के लिए आचार्य हैं, हे यजुर्वेद ! आप को नमस्कार है । १९। ब्रह्म के ही द्वारा उत्पन्न, दिगदिग्नत्त में व्याप्त एवं शुद्ध जाम्बूनद (सुवर्ण) की भाँति स्थापित प्राप्त उस यजुर्वेद रूप आपको नमस्कार है । २०। संतप्त सुवर्ण के समान प्रकाश आभास की किरणों द्वारा प्रकाशित भूतल, एवं मंत्रों के आव्यान और संस्थान रूप उस यजुर्वेद रूप आपको नमस्कार है । २१। प्रकाशित सुवर्ण की भाँति प्रभा, भास्वर रूप असुरों से विभूषित तथा मन्त्र के विस्तृत संभार विधान के ज्ञाता आपको

षड्गवेदवेदज्ञ ऋत्विड्मोक्षप्रदो भव । प्रविश्य मण्डलं विप्रः स्वस्थाने स्थापयेत्कनात् ॥२३
 वेदाः पश्चिमभागे तु आचार्य स्थापयेद्दृधः । कुण्डस्याग्रे तु ब्रह्माणं मण्डलस्यैव पश्चिमे ॥२४
 होतारं स्थापयेत्तत्र दिविज्ञमथ चोत्तरे : द्वौ द्वौ कृत्वा ज्ञापकौ च खड्गधारकमेव च ॥२५
 द्वारि द्वारि प्रयत्नेन द्वारपालाननुक्रमात् । वक्ष्यमाणेन पञ्चेन प्रत्येकमथ स्थापयेत् ॥२६
 पूजयेद्गन्धपुष्ट्याद्यर्वासिसो गुणलेन तु । यज्ञे सवितते योऽसौ पूज्यते पुरुषः सदा ॥२७
 नारायणस्वरूपेण यज्ञं मे सफलं कुरु । यज्ञेषु साक्षी सर्वेषु यजुर्वेदार्थतत्त्ववित् ॥२८
 ऋग्वेदार्थस्य तत्त्वज्ञ इन्द्ररूप नमोऽस्तु ते । मखश्रेष्ठेषु सर्वेषु येन मन्त्राः सुविस्तृताः ॥२९
 यजुर्वेदार्थतत्त्वज्ञ ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते । मखश्रेष्ठेषु सर्वेषु एष एव विधिः स्मृतः ॥३०
 माड्यात्यं कर्मणां नित्यं सर्वज्ञं ज्ञानरूपिण्यम् । सिद्धये मम यज्ञस्य नमामि शिवरूपिण्यम् ॥३१
 पालय त्वं दिशः सर्वा विदिशश्च तथा इमम् । दिक्पालरूपिणं विप्रं यज्ञसिद्धौ नमाम्यहम् ॥
 न सङ्कल्प्यं^१ चरेद्यागं व्रतं देवार्चनं तथा ॥३२
 सङ्कल्पमूलः कामो तै यज्ञा: सङ्कल्पसम्भवाः । सङ्कल्पेन विना विप्रा यत्किञ्चित्कुरुते नरः ॥३३
 फलं चात्यात्यकं तस्य धर्मस्याद्यक्षयो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यागं सङ्कल्पयेत्तुधीः ॥३४
 कामात्परो नैव भवेश्चिक्षणमोऽपि न शोभनः । तस्मात्काममयं धर्मं विज्ञा मोक्षं न चाचरेत् ॥३५

नमस्कार है । २२। षड्गवेद समेत नेद के मर्मज्ञ, एवं ऋत्विक के मोक्ष प्रदायक हों, विप्रवृन्द ! इस भाँति कहते हुए मण्डल में प्रवेश करके क्रमशः उन्हें अपने-अपने स्थानों पर स्थापित करना चाहिए । २३। यिद्वान् को चाहिए कि वेदी के पश्चिम भाग में आचार्य, कुण्ड के अग्रभाग में ब्रह्मा, मण्डल के पश्चिम भाग में होता, और उत्तर की ओर विधान ज्ञाता को आसन पर प्रतिष्ठित करना चाहिए । प्रत्येक दरदाजे पर हाथ में खड्ग लिये द्वारपालों की भाँति दो दो ज्ञ। पक की नियुक्ति मंत्र पूर्वक करनी चाहिए, और गन्ध पुष्प आदि एवं दो-दो वस्त्रों द्वारा उनकी पूजा अवश्य होनी चाहिए । इस विस्तृत संभार के यज्ञ में जिस पुरुष की सदैव पूजा होती है, वही नारायण स्वरूप होकर इस मेरे यज्ञानुष्ठान को सफलता प्रदान करे, समस्त यज्ञों के साक्षी, यजुर्वेद के अर्थवेता, एवं ऋग्वेद के तत्त्वज्ञ उस इन्द्ररूप को नमस्कार है, समस्त श्रेष्ठ यज्ञों में जिसके द्वारा मंत्रों की अत्यन्त विस्तृत व्याख्या की गयी है, उस यजुर्वेद के अर्थतत्त्वज्ञाता एवं ब्रह्मरूप को नमस्कार है । सभी श्रेष्ठ यज्ञों का यही विधान बताया गया है । २४-३०। कर्मों के मांगलिक रूप, नित्य, सर्वज्ञ, ज्ञान रूपी, एवं उस शिव (कल्याण) रूप को मैं अपनी यज्ञ सफलता के लिए उस नमस्कार करता हूँ । ३१। आप इन दिशाओं, एवं विदिशाओं की रक्षा करें, तथा यज्ञ सिद्धि के लिए उस दिक्पाल रूपी ब्रह्मण की वन्दना करता हूँ । विना संकल्प के याग, व्रत, एवं देवार्चन कभी न करना चाहिए, क्योंकि संकल्प मूलक ही कामनाओं की उत्पत्ति होती है, और उसी भाँति संकल्प से यज्ञों की । इसलिए विप्रवृन्द ! संकल्प हीन पुरुष जो कुछ कर्म करता है, उसका अत्यन्त फल जो प्राप्त होता है, उस का अर्धभाग क्षीण हो जाता है, अतः विद्वानों को समस्त प्रयत्नों द्वारा संकल्प पूर्वक ही याग का आरम्भ करना चाहिए । ३२-३४। कामनाओं में विदान होने एवं उनका त्याग भी करना उचित नहीं है, इसलिए काम मय धर्म के बिना मोक्ष-उपाय करना श्रेयस्कर नहीं होता है । संकल्प किये बिना मनुष्य जिस नित्य, एवं

१. विनेति शेषः ।

सङ्कल्पेन विना यस्तु धर्मं चरति मानवः । न तत्य फलमाप्नोति नित्यनैमित्तिकस्य च ॥३६
 न कुर्यात्स्थापने चैव कुर्याद्वै मण्डलान्तरे ! गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णं गुणान्वितम् ॥३७
 जलाशयारामकूपसङ्कल्पे पूर्वदिङ्मुखः । साधारणे चोत्तरास्यो ग्रह्यज्ञे तु सम्मुखः ॥३८
 महावते प्रतिष्ठायां पात्रं तात्रं हिरण्यम् । राजताशमयं साइगं यद्यज्ञेतु प्रशस्यते ॥३९
 दज्जीयवात्रपुटकं हस्तस्थाने प्रकीर्तितम् । ऐश्यान्यां निक्षिपेत्तोयं प्रतिष्ठायां च पूर्दतः ॥४०
 आकाशे निक्षिपेद्यागे वते ईशोऽपि नित्यके : पितृमेधे च गोयागे नरमेधे च दक्षिणे ॥४१
 शुक्लिकांस्यादिहस्तैश्च तात्रौत्यादिभिस्तथा । सङ्कल्पो नैद कर्तव्यो मुग्मये च कदाचत ॥४२
 प्रणवं पूर्वमुच्चार्यं यनेद्यज्ञेश्वरं स्मरेत् । गङ्गा चादित्यचन्द्रै च द्यौर्षुमी रात्रिदासरौ ॥४३
 सूर्यःस्तोमो यनः कालो महाभूतानि पञ्च च । एते शुभाशुभास्येह कर्मणो नवं साक्षिणः ॥४४
 इत्युच्चार्यं न्यसेद्वृमं ध्यात्वा पुष्पाऽज्जलिं सृजेत् । अमृतं कृत्यपात्रे च ऊँ तत्सदिति निर्दिशेत् ॥४५
 धर्मः शुभ्रवपुः सिताम्बरधरः कार्योऽर्धदेशे वृषो हस्ताभ्यामभयं वरं च सततं रूपं परं यो दधत् ॥
 तर्वप्राणिसुखावहः कृतधियां मोक्षैकहेतुः सदा । सोयं पातु जगन्ति चैव सततं भूयात्सतां भूतये ॥४६
 यज्ञसम्बन्धिविप्रांश्च एकाहेनैव योजयेत् । हविर्द्व्याणि यांनि स्युरष्ट्यागांतरेऽपि च ॥४७
 पुनः पुनर्नियोज्यानि ब्राह्मणा हविरऽन्नः ॥४८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि द्वितीयभागे देवध्यानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः । १७

नैमित्तिक धर्मों का पालन करता है, उसे उसके फल से वञ्चित रहना पड़ता है । ३५-३६। जलपूर्ण गूलर के पात्र को मण्डल मध्य में स्थापित न करना चाहिए । ३७। जलाशय, उपवन, एवं कूपों की प्रतिष्ठा में पूर्वाभिमुख होकर संकल्प किया जाता है, उसी भाँति साधारण कार्य में उत्तराभिमुख और गृह यज्ञों में सम्मुख होना बताया गया है । ३८। महाव्रत तथा प्रतिष्ठा के कार्यों में ताँबैं, सुवर्ण, चाँदी, एवं पत्थर के साङ्घोपाङ्घ समेत पात्र प्रशस्त बताये गये हैं । ३९। हाथ के स्थान में यज्ञीय पात्रों के पुटक प्रहर्ण किये जाते हैं, उनके जल का त्याग इशान कोण में किया जाता है, प्रतिष्ठा में पूर्व की ओर । ४०। नित्य व्रत एवं शिव याग में आकाश की ओर, पितृमेध, गोमेध और नरमेध नामक यज्ञों में दक्षिण की ओर वह त्याज्य बताया गया है । ४१। सीप, कांसा आदि तथा ताँबैं और चाँदी के हाथों द्वारा संकल्प न करना चाहिए एवं मिट्टी के हाथों द्वारा तो कभी नहीं । ४२। सर्व प्रथम प्रणव के उच्चारण पूर्वक यज्ञेश्वर (भगवान्) और गंगा, सूर्य चन्द्र, आकाश, भूमि एवं दिन रात का स्मरण करना चाहिए । ४३। सूर्य, चन्द्र, यम काल तथा पञ्च महाभूत (पृथिवी, जल, तेज, वायु, एवं आकाश) ये नव प्रत्येक (प्राणी) के शुभाशुभ कर्म के साक्षी होते हैं । ४४। इस भाँति कह कर धर्म को ध्यान पूर्वक पुष्पाऽज्जलि प्रदान करना चाहिए । कृत्य पात्रों में अमृत है, 'ओं तत्सदिति' इस प्रकार निर्देश करके प्रार्थना आरम्भ करे शुभ्र वर्ण की शरीर, इवेत वस्त्र धारण करने वाला वह धर्म जिसके ऊर्ध्वं भाग में वृषभ हृव्यों में अभय एवं वर निरन्तर धारण किया रहता है, तथा जो समस्त प्राणियों के लिए सुखप्रदायक और परिनिष्ठित बुद्धि वालों के मोक्ष के कारण रूप हैं, सदैव मेरे रक्षक रहे, तथा सज्जनों को निरन्तर ऐश्वर्य प्रदान करते रहें । ४५-४६। यज्ञ सम्बन्धी ब्राह्मणों एवं हवि की वस्तुओं को एक ही दिन के लिए नियुक्त करना चाहिए, वही क्रम अष्ट भाग में भी बताया गया है, क्योंकि ब्राह्मण, हवि, एवं अग्नि बार-बार नियुक्त किये जाते हैं । ४७-४८.
 श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के द्वितीयभाग में सत्रहवाँ देवध्यान वर्णन नामक अध्याय समाप्त । १७।

अथाष्टादशोऽध्यायः योगस्थापनदेवप्रतिष्ठापनवर्णनम्

सूत उवाच

मत्थादिमासेष्वपि षट्सु कार्या योगप्रतिष्ठा ऋषिभिः प्रणीता ।
देवादिसंस्थापनमाहुरत्र यावत्त्र सुक्तो नधुसूहनश्च ॥१
वारे भृगोर्देवगुरोर्बुधस्य सोमस्य सर्वाः शुभ्दा भवन्ति ।
लग्ने शुभस्थे शुभवीक्षिते दा कार्या प्रतिष्ठां च जलाशयानाम् ॥२
शुद्धा द्वितीया च तथा तृतीया त्रयोदशी चापि तथैव विप्राः ।
तथापि सप्तम्यपि पौर्णमासी दशम्यसौ चाप्यथ पञ्चमी च ॥३
प्राणप्रतिष्ठाः^१ च जलाशयादेरेताः प्रशस्तास्तिथये भवन्ति ।
अप्राप्य चैतानि शुभानि यानि कार्या प्रतिष्ठा विषुवद्ये च ॥४
षडशीतिलोकाप्ययनद्वयेन युगादिके पुण्यदिते शुभे च ।
कार्या तडागादिजलाशयस्य प्राच्यां प्रतिष्ठा अथ चोत्तरे वा ॥५
सुचारु ईष्टप्रबणे च देशे सुवर्तुलः षोडशहस्तमण्डपः ।
द्वारैश्चतुर्भिः प्रथितैरुपेतश्चतुर्मुखश्चापि भवेत्सुरेताः ॥६

अध्याय १८

योगस्थापन एवं देव प्रतिष्ठापन का वर्णन

सूत जी बोले—माघ मास से आरम्भ कर जब तक मधुसूदन भगवान् विष्णु का शयन दिन न प्राप्त हो, उस छ मास के भीतर ऋषियों द्वारा कल्पित योग प्रतिष्ठा, एवं देवों आदि के स्थापन करना चाहिए ।१। शुक्र, बृहस्पति, बुध, एवं सोमवार के दिन सभी शुभदायक होते हैं, उन दिनों शुभ अथवा शुभ ग्रहों द्वारा दृष्टलग्न में जलाशयों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।२। विप्रवृन्द ! शुद्ध द्वितीया, तृतीया, त्रयोदशी, सप्तमी, पूर्णिमा, दशमी और पंचमी, तिथियाँ जलाशय की प्राण प्रतिष्ठा में प्रशस्त बतायी गयी हैं। इन शुभप्रदायक तिथियों के अभाव में दोनों विष्णुओं का प्रतिष्ठा कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए ।३-४। छियासी लोकों के भी उसी दोनों अयनों में जो युग का आदि काल होता है, पुण्य शुभ दिनों में पूरब अथवा उत्तर की ओर सरोवर आदि जलाशयों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए ।५। सौन्दर्यं पूर्ण एवं कुछ अवनत (ढालू) भूमि के प्रदेश में गोल कार सोलह हाथ का मण्डप बनाना चाहिए, जिसमें चार दरवाजे सुन्दर ढंग से बनाये गये हों, और शक्तिशाली ब्रह्मा जिसमें सुशोभित किये गये हों पूरब आदि के चारों दरवाजों को

१. सप्तम्यर्थे प्रथमा ।

पूर्वादिद्वारेषु चतुष्ख्येषु प्लक्षादिभिस्तोरजके: सुरेशः ।
 प्लक्षस्तथोदुन्न्बरपिप्पलौ च न्यग्रोधकं चापि यथाक्रमेण ॥७
 ऊर्ध्वे च हस्तान्मितानि यानि विच्चित्रमाल्याम्बरभूषितानि ।
 मूमौ यथाप्रीति च हस्तकानि भवन्ति चैतान्यपि तोरणानि ॥८
 सर्वत्र यागेऽपि हि मण्टपस्य कार्यं व्वजा दिक्षु विदिक्षु शुभ्राः ।
 दिक्षात्तलवर्णाभिपताकयुक्ता नध्ये च तै नीलपताकयुक्ताः ॥९
 उद्जात्र यस्मिन्दशहस्तसमितास्तस्मिताका अपि पञ्चहस्ताः ।
 अरत्निमाङ्गा यदि मूलभारे पञ्चाइगुलाप्रे विनिबद्धगूढाः ॥१०
 द्वारे च तस्मिंश्च निरूपिता वा रम्भा मुपुष्पा मुखशाङ्कवलाश्च ।
 वचाभिवृक्षोत्तरपञ्चहस्ताः सपञ्चशाखा अपि तोरणानि ॥११
 मुञ्जोद्भूवैर्बहिसमुद्भूवैर्वा मुरञ्जितश्रेत्तितपश्चपल्लवैः ।
 पुष्टद्वये सूत्रितं देष्टयेच्च तथेशुकाण्डरथ यागमण्डपम् ॥१२
 वेदिस्तथा मण्डपमध्यभागे कार्या च कोणेस्थितुषादिहीना ।
 हस्तोच्छ्रूता रेखन्ती सुरेखपरिष्कृता हस्तचतुष्टयेन ॥१३
 वेद्यां परित्यज्य दशाइगुलानि ऐशान्यतस्त्रीणि तथा पराणि ।
 कुण्डाय दद्याच्चतुरस्त्रमेकमवस्थितं अङ्गुलमेखलोज्जवलम् ॥१४

प्लक्षपाकड़ आदि के तोरणों से सुसम्पन्न करना चाहिए, पाकड़ि, गूलर, पीपल, और बरगद के तोरण से क्रमशः उन दरवाजों को विभूषित करना चाहिए । ६-७। उसके ऊपर के एक हाथ के परिमाण भाग में चित्र विच्चित्र मालाओं और वस्त्रों को कुछ लटकाकर उनसे सौन्दर्य वृद्धि करना बताया गया है, भूमि में जिस प्रकार प्रीति सम्पन्न हाथों का वर्णन किया गया है । यह भी तो रण के नाम से ही स्वाति प्राप्त है । ८। सभी भागों में मण्डप की चारों दिशाओं तथा विदिशाओं में श्वेत वर्ण की ध्वजा होनी चाहिए, जो दिक्पालों के लिए उनके वर्णों के अनुसार रंग पूर्ण, एवं अर्ध्य भाग में नील रंग की पताका से सुशोभित की जाती है । ९। दशहाथ के ध्वज दण्डों में पाँच हाथ के पताके लगाये जाते हैं, जिसमें मूल भाग के पाँच अंगुल के ऊपर अरणिमात्र एक हाथ के परिमाण में अत्यन्त दृढ़ता के साथ आबद्ध रहता है । १०। उन दरवाजों के सामने केला के वृक्ष, सौन्दर्य पूर्ण पुष्पों से सुशोभित एवं सुख प्रदान करने वाली हरियाली भूमि होनी चाहिए । उन वृक्षों के समीप पाँच हाथ तक लगाये गये वृक्ष तोरण के नाम से ही स्वात हैं । ११। मूँज, कुशाओं, एवं तीन प्रकार के कमल पांखुड़ियों और ऊब दण्डों द्वारा उस याग मण्डप को आवेष्टित करना चाहिए जिसको अत्यन्त पुष्टि के लिये दो स्थानों सूत्रों से आबद्ध किया गया हो । उस मण्डप के मध्य भाग में एक हाथ की ऊँची, रेखा सम्पन्न, सौन्दर्य पूर्ण रेखाओं से परिष्कृत एवं चार हाथ के परिमाण में वेदी का निर्माण करना चाहिए और चारों कोने में किसी प्रकार की हड्डी या भूसी न हो । १२-१३। वेदी में दश अंगुल छोड़कर ईशान आदि चारों और तीन-तीन अंगुल के त्याग पूर्वक एक चौकोर कुँड की रचना करनी चाहिए, जिसमें तीन अंगुल की श्वेत वर्ण की मेखला सुसम्पन्न रहती है । १४। महल, सरोवर, एवं विशाल

प्रासादे च तडागे च महारामे तथैव च । मण्डलं सर्वतोभद्रं प्रयत्नेनैव कारयेत् ॥१५
कुण्डं चापि प्रकुर्वीत यथाभ्यन्तरमेखलम् । बहिर्योनिगतं इवेतं निश्चित्रं समसूत्रकम् ॥१६

कुण्डानि कुर्यात्प्रवकुण्डपक्षे वेद्यास्तयोच्चैरविदिक्षु चैव ।

सर्वाणि तर्वत्र च मेखलानि षट्सपञ्चाब्समेखलानि ॥१७

अष्टाव्याजान्यब्जत्रिकोणकानि तथार्द्धचन्द्रं चतुरस्तकं च ।

कुण्डस्य पूर्वोत्तरदिव्यमागे स्थाप्यो घटश्वन्दनचालिप्तः ॥१८

माल्याभ्यराङ्गादिपूर्णपाथाः सवृत्पञ्च सुवर्णगर्भः ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे भविष्यमपर्वद्वितीयभागे योगस्थापनदेवप्रतिष्ठापनवर्णन-
नामकं अष्टादशोऽध्यायः । १८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवग्रहपूजनविधानवर्णनम्

सूत उवाच

गते यागगृहादन्यन्मण्डलान्तरमात्रितः । यजमानस्तथा नित्यं कर्म कृत्वा यथाविधि ॥१
पञ्च देवान्मस्कृत्य तथा यज्ञेश्वरं हरिम् । सङ्कल्प्यं च ततः कृत्वा ब्राह्मणानामनुज्ञया ॥२
एतस्मिन्पुण्यदेशे तु फलं गोत्रश्च वै यमः । वेदव्यासादिप्रणीतं यथाशास्त्रनिर्दर्शनम् ॥३

उपवन में मण्डल तथा सर्वतोभद्र का निर्माण प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए । १५। इस प्रकार के कुण्ड का निर्माण करना बताया गया है, जिसके भीतर मेखला, और ऊपरी भाग में बनायी गयी योनि के भीतर श्वेतवर्ण, चित्र हीन, एवं सूत्रों द्वारा समान भाग किया गया हो । १६। इस भाँति कुण्डों के निर्माण करना चाहिए, विशेषकर यह नवकुण्डों के पक्ष में बताया गया है । उन कुण्डों की ऐसी वेदियाँ, जिसके चारों ओर का भाग ऊँचा, और मेखला पूर्ण हो, चाहे वह षट्कोण अथवा पाँच कोण भी क्यों न हो, बनानी चाहिए । १७। आठमाला की भाँति (अष्टकोण) त्रिकोण, अर्द्धचन्द्राकार, एवं चौकोर कुण्ड निर्माण में भी यही व्यवस्था है, कुण्ड के ईशान के कोण में घट-स्थापन करना चाहिए, जो चन्दन की सौन्दर्य पूर्ण रेखाओं से अलंकृत, मालाओं वस्त्रों से आच्छादित जलपूर्ण हो, और जिसका आधार गोलाकार एवं जिसके गर्भ में सुवर्ण हो । १८-१९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के द्वितीय भाग में योगस्थापन एवं देवप्रतिष्ठा वर्णन
नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त । १८।

आध्याय १९

देवग्रह पूजन विधान का वर्णन

सूत बोले—यज्ञभवन से अन्यत्र दूसरे मण्डल में जाकर यजमान को विधान पूर्वक अपने नित्य कर्मों की समाप्ति करनी चाहिए । १। पाँचों देवों एवं यज्ञाधिपति विष्णु के नमस्कार करने के उपरात ब्राह्मणों के आदेश प्राप्त कर इस भाँति संकल्प्य करना चाहिए—इस पुण्य प्रदेश में फल एवं गोत्र वर्द्धक यम हैं, वेदव्यास आदि महर्षियों द्वारा रचित शास्त्रों के आदेशानुसार अर्थात् उस पुण्यारण्य का विहरण करते

यथादया स्वतन्त्रोक्तं पुण्यारण्याभिधायकम् । जलाशयप्रतिष्ठायां करिष्ये विधिवद्विद्वजाः ॥४
यथायथा च कल्पोक्तं यथाकुण्डं विधानतः । साधिवासं यथैवैकः पुण्यारण्यविधायकः ॥५
जलाशयप्रतिष्ठां च करिष्ये विधिवद्विद्वजाः । सङ्कुल्मेवं कृत्वा तु वृद्धिशाद्वं तमाचरेत् ॥६
सातृयगं पुरस्कृत्वं वृद्धिशाद्वं समापयेत् ॥७

भेर्यादिघोषेण सुमङ्गलेन पद्मं लिखेदत्र सषोडशाक्षरम् ।

इन्द्रादिदिव्यात्मवारामुद्धानि समुल्लिखेदेव दिशि स्थितानि ॥८

ब्रह्मेशान्वरयेत्सर्वान्नाचार्यं तु विशेषतः । स्वर्णकुण्डलयुग्मेन तथा ताम्रादिभाजनैः ॥९
नानारत्नैश्च वस्त्रैश्च आचार्यं वरेदृधः । हैमालैकारयुग्मैश्च वासोश्चिर्विधैरपि ॥१०
यथानन्तं यथशक्ति यथाभिवृण्यादृधः । रचिता यजमानेन द्वुवं स्वस्त्यस्तु ते इति ॥११
ततः सर्वैर्याधीश्च यजमानः सप्तिकः । आपोहिष्ठेतिमन्त्रेण स्नापयासामुरप्रजाः ॥१२
यवगोधूमनीवारतिलश्याभ्यक्षात्यः । प्रिन्दृगुद्वीह्यश्वास्तौ सर्वैषधिगणः स्मृतः ॥१३
ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमात्यानुलेपनः । सर्वैषध्युदक्षातः ज्ञापितो वेदपुङ्गवैः ॥१४
ब्राह्मणैरस्यनुज्ञातः पुरोहितपुरःसरः । नानामङ्गलघोषेण भेरीपटहनिस्त्वनैः ॥१५
यजमानः सप्तिकः पुत्रपौत्रसमन्वितः । पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥१६

हुए उनकी जिस प्रकार स्वतन्त्र उक्तियाँ हैं, द्विजवृन्द ! इस जलाशय की प्रतिष्ठा कर्म में मैं विधान पूर्वक उन्हें संस्थापन करूँगा । कल्पों में बताये गये विधानानुसार कुण्ड का निर्माण एवं अधिवास समेत उस पुण्यारण्य को द्विजवृन्द ! इस जलाशय की प्रतिष्ठा में विधान पूर्वक सुसम्पन्न करूँगा, इस भाँति संकल्प करके वृद्धि श्राद्धकोमातृयाग के अनन्तर सुसम्पन्न करना चाहिए । २-७। भेरी (नगाड़े) आदि मांगलिक वाद्यों के निनादित होते समय सोलह अक्षर के पद लिखकर दिशाओं में स्थित इन्द्र आदि दिक्पालों के उत्तम अस्त्रों की रचना करनी चाहिए । ८। ब्रह्मतेज पूर्ण ब्राह्मणों के वरण करने के उपरांत विशेषकर आचार्य का वरण सुवर्ण के कुण्डल, तर्बिं आदि के पात्र, अनेक रत्न एवं वस्त्रों से विद्वानों को करना चाहिए । सुवर्ण के दो आभूषण एवं भाँति-भाँति के वस्त्रों से यथाशक्ति मापदण्ड के अनुसार ब्राह्मणों का वरण करना बताया गया है, यजमान द्वारा पूजित ब्राह्मण वृन्द को वरण के अनन्तर ‘ते स्वस्तपस्तु’ (तुम्हारा कल्याण हो) इस प्रकार यजमान को शुभाशीष प्रदान करना चाहिए । ९-११। उसके पश्चात् पली समेत यजमान (बच्चों को साथ लेकर) समस्त औषधियों के जल से ‘आपोहिष्ठेति’ इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक स्नान स्वयं करे और (पली को) कराये । १२। जवा, गेहूँ, नीवार (तिनी कां चावल), तिल, सावां, साठी धान, पिप्पली (पीपर), और धान्य, इन आठों को सर्वैषधि बताया गया है । १३। उपरांत श्वेत वस्त्र धारण कर, श्वेतपुष्ट्रों की माला और वैसे ही चन्दन का लेपन करके समस्त औषधियों के जल स्नान पूर्वक वेदतत्त्वज्ञ ब्राह्मण पण्डितों की आज्ञा शिरोधार्य कर पुरोहित का अनुगमन करते हुए भाँति-भाँति के मांगलिक नगाड़े एवं परह (झुग्नी) वाद्यों की व्यनि कोलाहल में पली एवं पुत्र-पौत्र के साथ पश्चिम दरवाजे से उस याग-मण्डप में प्रवेश करे । १४-१६।

चरके पूजयेद्विष्टं गङ्गां च यमुनां तथा । पार्श्वयोश्चार्धते: लक्ष्मीं प्रतिहरमनुकमात् ॥१७
 वेदिं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुर्याद्यथादिधि । उपविश्य ततस्तस्मिन्द्वाहृणानुमते स्थितः ॥१८
 स्वस्ति वाच्यं ततः कृत्वा पञ्च देवान्प्रपूजयेत् । सूतोत्सादं ततः कृत्वा विकिरान्विकिरेऽभुवि ॥१९
 अपक्रामन्तु ये भूता ये चास्मिन्विष्टकारकाः । यस्मान्तो नमन्त्रि वर्तन्ते यज्ञमात्रं प्रवर्तताम् ॥२०
 पूजयेदासनं पश्चात्स्वकीयं पुष्पचन्दनैः । नमोनन्तासनायेति तथा पद्मासनाय च ॥२१
 विमलासनाय च नमो नमः सारासनाय च । योगासनाय च नमः पृथिव्यै नम इत्यपि ॥२२
 ततो भूमितले वामहस्तं दत्त्वा पठेन्नरः । पृथ्वि त्वया धृता लोकां देवि त्वं दिज्ञुना धृता ॥२३
 त्वं च धारय मां नित्यं पवित्रमासनं कुरु । सूर्याद्यप्य ततो दत्त्वा गुरुं नत्वा कृताञ्जलिः ॥२४
 देवं हृत्पद्मके नीत्वा प्राणायामत्रयं दरेत् । ततोऽर्चयेद्विष्टनराजमैशान्यां च घटोऽरि ॥२५
 गन्धपृथ्वैस्तया दस्त्रैनेवेद्येर्विविधरपि । गणानां त्वेति मन्त्रेण ब्रह्माणं तदनन्तरम् ॥२६
 आब्रह्मन्निति ऋचा तद्विष्णोरिति संस्मरन् । वासुदेवं ततः पश्चाद्विलिर्भर्गन्धचन्दनैः ॥२७
 ततो देवशरीरं तु नवमासन्य त्रिंशतम् । वेद्याश्रम परितः सर्वान्स्त्वे स्वे स्थाने यथाक्रमम् ॥२८
 ततो राजाधिराजेन भूतशुद्धिं समाचरेत् । ततो बुद्धमध्ये तु न्येतपद्मासनस्थितम् ॥२९
 शुद्धस्फटिकसङ्काशं शङ्खकुन्देन्दुसप्रशम् । किरीटकुण्डलयुतं सिंतं पङ्कजधारिणम् ॥३०

चरक में विद्वा, गंगा, और यमुना, पार्श्व, के अर्ध भाग में लक्ष्मी की पूजा द्वारपाल के क्रम से करके वेदी की प्रदक्षिणा तथा विधान पूर्वक नमस्कार के उपरांत आसन-आसीन होकर ब्राह्मणों की सम्मति से स्वस्ति-वाचन एवं पाँचों देवों की पूजा करके पश्चात् भूत-शुद्धि और विकरों के लिए उसे दान करना चाहिए । ‘इस यज्ञ में विष्टन करने के उद्देश्य से प्रातः भूतगण यहाँ से दूर निकल जायें जिससे यज्ञानुष्ठान निर्विघ्न समाप्त हो, इन भूतों का पलायन कराने के लिए पुष्पचन्दन द्वारा आसन का पूजन इस भाँति आरम्भ करना बताया गया है—अनंतासन, पद्मासन, विमलासन, सरासन, एवं योगासन को बार-बार नमस्कार है और पृथ्वी के लिए सभी प्रकार नमस्कार है । १७-२२। तदनन्तर भूतल पर बाँया हांथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करे—हे पृथिवी ! इस रामस्त लोकमय ब्रह्माण्ड को आपने धारण किया है और आपको भगवान विष्णु ने धारण किया, अतः आप मुझे नित्य धारण कर इस आसन को भी पवित्र कीजिये, पश्चात् सूर्य के लिए अर्च्य-प्रदान कर और गुह को करबद्ध नमस्कार करने के उपरांत (आराध्य) देव को अपने हृदय कमल में ध्यान द्वारा सुशोभित करके तीन प्राणायाम सुसम्पन्न करना चाहिए । तदनन्तर ईशान कोण में कलश के ऊपर स्थापित विद्यराज (गणेश) देव की अर्चा गन्ध, पुष्प, वस्त्र, विविध भाँति के नैवेद्य (मोदक) द्वारा ‘गणानां त्वेति’ इस मंत्र के उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करना चाहिए । २३-२६। ‘आब्रह्मन्निति’ और ‘तद्विष्णोरिति’ इन ऋचाओं द्वारा वासुदेव भगवान् की अर्चा बलि, गन्ध, चन्दन, आदि वस्तुओं से सुसम्पन्न करने के उपरांत देवों के नवीन शरीर की जिसकी संख्या तीस बतायी गयी है, और वेदी के चारों ओर अपने-अपने स्थान पर स्थित हैं, क्रमशः पूजा सुसम्पन्न करना चाहिए । २७-२८। उसके अनन्तर ‘राजाधिराजेति’ मंत्र द्वारा भूत शुद्धि के उपरांत जल के बुल्ले के मध्य भाग में श्वेत कमलासन पर सुशोभित शुद्ध स्फटिक मणि के समान शंख, कुन्द, एवं चन्द्र की प्रभा पूर्ण किरीट-कुण्डल से अलंकृत श्वेत

शुक्लमाल्याम्बरं शुक्लं शुक्लगन्धानुलेपनम् । अहितुण्डासनस्यं च पाशहस्तं महाबलम् ॥३१
 स्त्रूपमानं सुरगणैः सिद्धगन्धर्वसेवितम् । सुचाहवदनं देवं पश्चमालोपशोभितम् ॥३२
 राजेवलोचनं नित्यं नागलोकोपशोभितम् । मकरप्राहकूर्माद्यनिनाजलचरैर्वृतम् ॥३३
 जलाशयस्तःतं देवं चिन्तयेल्लतशायिनम् । ततो न्यासं प्रकुर्वोत पञ्चाङ्गत्वावशोभितम् ॥३४
 अर्घ्यपात्रं ततः कृत्यः त्रिभागजलपूरितम् । अष्टधा मूलमन्त्रं च जप्त्वा तेनोदकेन च ॥३५
 आसनं यागयस्तुनि प्रोक्षयेदेन बाटिणा । अरुणाय विद्यहे तमोघ्नाय च धीसहि ॥३६
 तज्ज्ञो अरुणः प्रचोदयादिति त्वानं समाचरेत् । ततो गणेशमेशत्वामप्नेयां गुरुपादुकाम् ॥३७
 धर्माधिर्मादिकान्वर्त्त्वादीनय द्वार्चयेत् । दूर्योत्तेमजलादीनां मण्डलानि यथक्रमम् ॥३८
 मध्ये शक्तिं च क्षीरोदमनन्तं पृथिवीं तथा । कूर्मं दाधारज्ञतिं च सुमेरुं मन्दरं तथा ॥३९
 पञ्चतत्त्वं समभ्यर्थं साङ्गोपाङ्गमनन्तरम् । ततः श्वेतं च कुमुमं साक्षतं योगनायया ॥४०
 गृहीत्वा पूर्वददेशे स्थापयेत्कलशोपरि । आवाहनं ततः कृत्वा मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥४१
 एहेहि भगवन्वरण एष यज्ञः प्रवर्तते । यज्ञभागं गृहणेदं त्वामेवावाहयाःयहम् ॥४२
 एवमावाहृ लोकेशमष्टौ मुद्राः प्रदर्शयेत् । गायत्र्या स्नापयित्वा तु द्यात्पाद्यादिकत्रयम् ॥४३
 पुष्ट्याङ्गजलिं ततो दत्त्वा मूलमन्त्रेण देशिकः । पूर्वादिपञ्चमूलेषु धर्मादीन्पूजयेद्बुधः ॥४४

कमल धारण किये, शुक्ल वर्ण की माला एवं वस्त्र से सुसज्जित, शुक्लवर्ण, शुक्ल गन्ध का अनुलेपन किये, साँप के मुखासन पर विराजमान और हाथ में पाश (फांस) लिये, महाबली, सुरगणों द्वारा स्तुति सम्पन्न सिद्ध गन्धर्व से सुसेवित, सौन्दर्यपूर्ण बदन, कमल की माला से विभूषित उस देव का, जो कमल के समान नेत्र, नित्य नाग लोक में सम्मानित मकर, ग्राह, कछुवे आदि जलचरों से पूर्ण, और जलाशय में स्थित हैं, इस भाँति ध्यान करके उसका पञ्चांग न्यास करना बताया गया गया है । २९-३४। पश्चात् अर्घ्यपात्र को जिसमें तीन भाग जल से पूर्ण किया गया है, आठ बार मूल मन्त्र का जप करके उसी जल से आसन एवं याग की वस्तुओं को सेचन द्वारा पवित्र करना चाहिए । अनन्तर 'अरुणाय विद्यहे' इत्यादि, मंत्रों के उच्चारण पूर्वक उन्हें स्नान कराकर ईशान कोण में स्थित गणेश, अग्निकोण में स्थित गुरु पादुका एवं सभी धर्माधिर्म आचरण वाले प्राणियों की पूजा सविधान सुसम्पन्न करना कहा गया है । उसी भाँति सूर्य, चन्द्र, एवं जलेश के मण्डलों का भी क्रमशः पूजन करना चाहिए । ३५-३८। मध्यभाग में स्थित शक्ति, क्षीर- सागर, अनंत, पृथिवी, आधारशक्ति, कञ्जप, सुमेरु, मन्दर और पञ्चतत्व के साङ्गोपाङ्ग की पूजा के अनन्तर श्वेतं पुष्ट्यं एवं अक्षत के द्वारा पूर्व प्रदेश में स्थापित कलश के ऊपर प्रतिष्ठित योगमाया युक्त (वरण देव) का इस मंत्र द्वारा आवाहन मंत्रवेत्ता को करना चाहिए । भगवन् वरण ! आइये, आइये ! यह यज्ञ आरम्भ हो रहा है, इसे सुशोभित कर अपने यज्ञ भाग को ग्रहण कर कृतार्थ कीजिये, इसीलिए मैं आपका आवाहन कर रहा हूँ । ३९-४२। इस भाँति आवाहन करने के पश्चात् उन लोकेश को आठ मुद्राओं के प्रदर्शन पूर्वक गायत्री मंत्र द्वारा स्नान एवं पाद्यादि के लिए जल प्रदान करना कहा गया है । ४३। पुनः पुष्ट्याङ्गजलि प्रदान करने के अनन्तर पूर्वादि पत्रों के मूल भाग में स्थित धर्म आदि देवों की आराधना उस देशिक विद्वान् को करनी चाहिए । ४४। वहाँ उन प्राणियों एवं उनकी सौन्दर्य पूर्ण पत्नियों की पूजा के पश्चात्

सत्त्वादाः पूजयेत्तत्र तेषामेव यराङ्गनाः । ज्ञानं धर्मं च सोमं च रजः सत्त्वं तमस्तथा ॥४५
 पूर्वादिपत्रमध्ये तु प्रहानष्टौ प्रपूजयेत् । पत्राये लोकपालानामगन्यादीनायुधांस्तथा ॥४६
 कर्णिकादक्षिणे पूर्वं वासे चापि शचीपतिष्ठ । पूर्वपत्रे तु ब्रह्मतणं पूजयेत्सितपञ्चांज्ञः ॥४७
 नैऋत्ये दरूणत्याथ मध्येनन्तं प्रपूजयेत् । पीठमन्त्रेषु पूर्वादिक्षत्याणं च शिवं तथा ॥४८
 विष्णुं चापि गणेशं च पृथिवीं गन्धचन्दनैः । जपेन्स्तन्त्रं साष्टशतं सहस्रं विजयेदुधः ॥४९
 जानुस्मामवनीं गत्वा विजयाल्यस्तत्वं पठेत् । ईशानादिपीठकोणेषु कमलामस्त्रिकां तथा ॥५०
 नैऋत्यां विश्वकर्णान्दं वायव्ये तु सरस्वतौष्ठः । पूर्वादिद्वारदेशे तु मरुतं चाऽब्रह्मादिकम् ॥५१
 आवहं प्रवहं चैव तथैवोद्घसंवद्है । विन्यसेत्यश्चिमे द्वारि निवहं च परीवहम् ॥५२
 विन्यसेदुत्तरद्वारि भृतं च पराभवम् । आप्नेयादिषु कोणेषु बहिष्पीठं ततो जयेत् ॥५३
 पिशाचान् राक्षसान्भृतः वेतालांश्च तथा क्रमात् । क्षोभकः कामरूपश्च सौभद्रो भृतस्तथा ॥५४
 गोमुखो नन्दभद्रश्च द्विजित्वो मसिनस्तथा । हस्तिकर्णो विशालाल्यः सप्तरक्षोगणः स्मृतः ॥५५
 सूमिदो वरदश्चैव जयन्तः क्षोभकस्तथा । विवस्वन्तः सुदन्तश्च एते सूतगणाः स्मृताः ॥५६
 अङ्गदो नीलकर्णोऽसौ वसन्तो यावकस्तथा । घोररूपा महाकाया वेतालाश्च प्रकीर्तिता ॥५७
 गन्धपुष्टाक्षतैर्मत्तं सर्वे देवा ग्रहादयः । ध्यानवर्णानुरूपेण पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥५८
 ध्यायेदादित्यमारत्तं रक्तपथासनस्थितम् । रक्ताम्बरधरं रक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥५९
 यवविदुमसञ्ज्ञाशं सिन्धुराश्चासप्रभम् । आकृष्णेनेति मन्त्रेण स्थापयेत्कलशोपरि ॥६०

ज्ञान, धर्म, सोम, रज, सत्त्व, तम एवं पूर्वादि पत्रों के मध्य भाग में स्थित आठों ग्रहों की अर्द्धा सुसम्पन्न करनी चाहिए। तथा पत्तों के अग्रभाग में लोकपालों के अःनेयादि अस्त्रों की पूजा करने पर कर्णिकाके दक्षिण भाग में सर्व प्रथम बायि और स्थित शचीपति (इन्द्र) और पूर्व पते पर स्थित ब्रह्मा की पूजा श्वैत कमल-पुष्पों द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। ४५-४७। नैऋत्यकोण में वरुण मध्य भाग में अनन्त, पीठ मन्त्रों में स्थित पूर्वादि क्रम से ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, एवं पृथिवी की पूजा गन्ध-चन्दनों द्वारा सम्पन्न करके एक सहस्र आठ सौ संख्या का जप उस विद्वान् को करना आवश्यक होता है। ४८-४९। पृथिवी में दोनों धुटने टेक कर विजय नामक स्तोत्र का पाठ करके पीठासन के ईशान आदि कोण में सुशोभित कमला, अम्बिका, नैऋत्य कोण में विश्वकर्मा, वायव्य कोण में सरस्वती पूर्व आदि दरवाजों पर स्थित भृत, अवहादिक—आवह, प्रवह, उद्ध, सवह, पश्चिम दरवाजे पर निवह, परीवह, एवं उत्तर के दरवाजे पर स्थित, मरुत, तथा पराभव का स्थापन-पूजन के उपरांत आप्नेयादि कोण में पीठासन के बाहरी भाग में स्थित पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल की क्रमशः पूजा करनी चाहिए। क्षोभक, कामरूप, सौभद्र, मरुत, गोमुख, नन्दभद्र, द्विजित्व, मलिन, हस्तिकर्ण, विशाल ये सात राक्षस गण बताये गये हैं। ५०-५१। भूमिद, वरद, जयन्त, क्षोभक, विवस्तंत, और सुदन्त इन्हें भूत गण कहा गया है। ५६। अंगद, नील कर्ण, वसंत, पावक, घोररूप, एवं महाकाय वाले इन्हें वेताल बताया गया है। ५७। समस्त देवों और ग्रहों के स्वरूपानुरूप ध्यानपूर्वक गन्ध, पुष्प, एवं अक्षतों आदि वस्तुओं से प्रयत्न पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए। ५८। रक्त वर्ण, रक्त कमल के आसन पर सुशोभित, रक्ताम्बर धारण किये, रक्त, रक्तवर्ण की माला एवं लेप से भूषित, नवीन प्रवाल के समान एवं सिंदूर की भाँति अरुण (लाल) वर्ण की प्रभापूर्णी उस आदित्य देव का ध्यान करके 'आकृष्णेनेति' मंत्र के उच्चारण करते हुए उन्हें कलश के ऊपर प्रतिष्ठित

इहागच्छेति चावाह्य पाद्यार्थं पूर्यन्विधेः । गन्धपुष्पादिभिरक्त्या पूजयेत्तं पथाविधि ॥६१
 बलि च लोहितं दद्यात्पायसं दधिखण्डकम् । धृतलिप्तं च शाल्यन्नं पताकां रक्तवर्णकाम् ॥६२
 इवेताम्बरधरं इवेतं शुक्लमन्धानुलेपनम् । द्विभुजं वरदं देवं गदाहस्तं महाबलम् ॥६३
 नानाभरणसम्प्रशं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । शुक्लपद्मासनस्थं चाशं दद्याच्छ्वेतभूषितम् ॥६४
 इमं देवा इति मन्त्रेण स्थापयेत्पूर्वदिग्दले । सितवस्त्रैश्च पुर्वंश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥६५
 पायसैः इवेतबलिभिर्दधिभूतं निवेदयेत् । धूपैः इवेतपताकाभिनैवद्यौर्धविधैरपि ॥६६
 रक्तमाल्याम्बरं देवं रक्ताभरणभूषितम् । मुचारनयनं रक्तं रक्तपद्मासनस्थितम् ॥६७
 किरीटकुण्डलधरं सेषकृष्टं चतुर्भुजम् । वरदं यज्ञनाशं च शूलशक्तिगदाधरम् ॥६८
 सर्वकामप्रबं देवं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । चिन्तयेत्परयः भक्त्या मझगलं धरणीसुतम् ॥६९
 अग्निमीठेति मन्त्रेण स्थापयेदग्निदिग्दले । पूजयेदक्तपुष्पेश्च रक्तमाल्यानुलेपनैः ॥७०
 धूपै रक्तपताकाभिर्गुडमक्तनिवेदनैः । अतसीपुष्पसङ्कुशं कर्णिकारसमप्रभम् ॥७१
 रौहिणेयं मटाकायं नीलनीरजलोचनम् । प्रशान्तवदनं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ॥७२
 खड्गचर्मधरं तद्वद्गदापरशुधारिण्म् । पद्मासनगतं देवं पीतपद्मासनस्थितम् ॥७३
 नानाभरणसम्पूर्णं मृगेन्द्रवरवाहनम् । उद्बुद्ध्यस्वेति मन्त्रेण याम्यां तु स्थापयेद्बुधम् ॥७४

करने के उपरांत 'इहागच्छेति' (यहाँ आइये) ऐसा कहकर आवाहन और पाद-अर्ध के लिए जल तथा भाँति-भाँति के गन्ध-पुष्पों द्वारा भक्ति विधान पूर्वक पूजा करनी चाहिए ।५९-६१। तदुपरांत रक्तवर्ण की बलि, खीर, दही, खांड, धी भिश्रित साठी (चावल) के भात और रक्तवर्ण की पताका प्रदान करनी चाहिए ।६२। इवेत वर्ण, इवेत वस्त्रों से सुसज्जित शुक्ल गंध के लेप लगाये, दो भुजा वरदायक, देवं गदा हाथ में लिये, महाबली, अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित, सिद्ध गन्धर्व द्वारा सुसेवित, इवेत कमल पर स्थित, एवं इवेत वर्ण के आभूषणों से विभूषित अश्व प्रदान करना चाहिए; 'इमं देवा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पूर्व दिशा के दल में स्थापित करके इवेत वस्त्र, पुष्प, इवेत वर्ण की माला एवं लेप, खीर, दही मिश्रित इवेत वर्ण की बलि, धूप, इवेत पताका और भाँति-भाँति के पकवान समर्पित करना चाहिए ।६३-६६। रक्तवर्ण की माला, वस्त्र, रक्तवर्ण और आभूषण, से विभूषित, सौन्दर्यपूर्ण नेत्र, रक्त कमल पर स्थित, किरीट-कुण्डल धारण किये, मेष (भेड़) के समान कठ, चार भुजाएँ, वरदायक, यज्ञनाशक, शूल, शक्ति, एवं गदा अस्त्र लिये, समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले, सिद्ध, गन्धर्व सेवित, उस धरणी सुत मंगल देव का इस भाँति भक्ति पूर्वक ध्यान करना चाहिए ।६७-६९। 'अग्नि मीठेति' इस मंत्र के उच्चारण करके आग्नेय दिशा के दल में उस देव की स्थापना करके रक्त पुष्प, रक्तवर्ण की माला, एवं अनुलेपन धूप, रक्तपताका और गुड प्रदान पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए, अलसी पुष्प के समान वर्ण, पुष्प की पंखुडियों की भाँति प्रभा महाकाय, नील कमल के समान नेत्र, अत्यन्त शांत मुख, पीत वस्त्र, चार भुजाएँ, उनमें क्रमशः खड्ग, चर्म, गदा और फरसे को धारण किये, कमलासन लिये, पीत कमलासन पर सुशोभित, विविध प्रकार के आभूषणों से सुसज्जित उत्तम मृगेन्द्र (सिंह) वाहन वाले रौहिणी पुत्र उस बुध देव को दक्षिणदिशा में 'उद्बुद्ध्यस्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्थापित करके

पूजयेद्गन्धपुष्पादौः पीतगन्धानुलेपनैः । वस्त्रैः पीतपताकाभिर्बलिभिः कृशराज्ञितैः ॥७५
 पीतवर्णं गुरुं ध्यायेत्पीतपद्मासनस्थितम् । पीताभरणसम्पन्नं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ॥७६
 वरदं दण्डहस्तं च साक्षसूत्रकरण्डलुम् । पूज्यमानं सुगन्धवैः सेन्द्रैर्वगणैरपि ॥७७
 बृहस्पतय इति मन्त्रेण नैऋत्यां दिशि संस्थितम् । पीतचन्दनगन्धैश्च पीतवस्त्रादिशूलगैः ॥७८
 धूपैः पीतपताकाभिः पीतोदकनिवेदनैः । पूजयेत्परया भक्त्या पुरन्दरपुरोहितम् ॥७९
 ध्यायेच्छुकं भृगुमुतं वदेतपद्मासनस्थितम् । चतुर्भुजं महाकायं वरदं दण्डधारिणम् ॥८०
 महाबाहुं विशालाक्षं साक्षसूत्रकरण्डलुम् । स्तूपमानं मुनिश्रेष्ठः सेवितं दैत्यपुज्ञवैः ॥८१
 सिंहासनगतं देवं नीलेन्दीवरलोचनम् । विलसत्पुण्डरीकस्य मालाभिरूपशोभितम् ॥८२
 नानादैत्यन्दपुत्रांश्च पाठ्यन्तं मुहुर्मुहुः । नानाशस्त्रास्त्रचतुरं नानाशास्त्रविशारदम् ॥८३
 एवं ध्यात्वा भृगुश्रेष्ठं जपन्नश्नात्परिस्तुतम् । मनसा भक्तियुक्तेन स्थापयेत्पश्चिमे दले ॥८४
 सितचन्दनवस्त्रैश्च कूपमाल्यानुलेपनैः । धूपैः श्वेतपताकाभिः सत्कृतिः क्षीरसंयुतैः ॥८५
 पूजयेत्परया भक्त्या पुण्डरीकाक्षतैरपि । ध्यादेत्सौरि चतुर्बाहुं शूलहस्तं वरप्रसदम् ॥८६
 इन्द्रनीलनिभं श्यामं दिव्यबाणधनुर्धरम् । इन्दीवरासनस्थं च सरोजवरसप्रभम् ॥८७
 नीलाम्बरधरं नीलपद्ममालोपशोभितम् । घोररूपं महाकायं छायाहृदयनन्दनम् ॥८८

गन्ध, पुष्प, पीत गंध के अनुलेपन, वस्त्र, पीत वर्ण की पताका बलि कृशराज समेत उसकी पूजा करनी चाहिए । ७०-७५। पीत कमल के आसन पर आसीन, पीतवर्ण के आभरणों से भूषित, पीताम्बर धारण किये, चार भुजाएँ, वरदायक, हाथों में दण्ड, अक्षसूत्र (हृदाक्ष) की माला एवं कमण्डलु लिए, सौन्दर्य पूर्ण गन्धवै, एवं इन्द्रादि देव गणों से पूजित पीत वर्ण वाले उस गुरु (बृहस्पति) का इस भाँति ध्यान करके 'बृहस्पतये इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक नैऋत्य दिशा में उन्हें प्रतिष्ठित और पीतचन्दन, गन्ध, पीतवस्त्र, एवं आभूषणों, धूप, पीत वर्ण की पताका, और पीतोदक निवेदन पूर्वक उत्तम भक्ति समेत उस पुरन्दर पुरोहित गुरुदेव की इस भाँति पूजा करनी चाहिए । ७६-७९। इवेत कमलासन पर स्थित, चारभुजाएँ, महाकाय, वरदायक, दण्डधारण किये, आजानु बाहु, विशाल नेत्र, हृदाक्ष की माला और कमण्डलु लिये, श्रेष्ठ मुनिगणों से प्रशंसित एवं दैत्य कुल भूषणों से सुसेवित सिंहासन पर स्थित, नीलकमल के समान नेत्र, विकसित कमल पुष्पों की मालाओं से विभूषित, अनेक दैत्याधिपतियों के बच्चों को बार-बार अध्यापन कराने वाले, विविध प्रकार के शस्त्र तथा अस्त्रों में चतुर भाँति-भाँति के शास्त्रों में निष्णात, भृगुश्रेष्ठ, भृगुपुत्र, उस शुक्र देव का इस भाँति ध्यान करके 'अश्नात्परिस्तुतमिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए तन्मय होकर भक्ति पूर्वक पश्चिम के दल में उन्हें स्थापित करके इवेत चन्दन, वस्त्र, धूप, माला, लेपन, श्वेत पताका, क्षीर मिश्रित सत्तू, एवं कमल पुष्प, अक्षत के द्वारा उत्तम भक्ति पूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिए । चार भुजाएँ, हाथ में शूल लिये, वरदायक, इन्द्रनील मणि की भाँति श्याम वर्ण, दिव्य वाण एवं धनुष धारण किये, नील कमल के आसन पर विराजमान्, नील कमल की भाँति कान्तिपूर्ण, नील वस्त्र, तथा माला से विभूषित भयानक स्वरूप, भीषण काय, छाया देवी की आनन्द देने वाले, उस सूर्य पुत्र शनि की स्थापना 'शन्नो देवीति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वायव्य दिशा में

शान्तो देवीति मन्त्रेण वायव्यां दिशि विन्यसेत् । कृष्णचन्द्रवस्त्रैश्च कृष्णमात्यानुलेपनैः ॥८९
 धूपैर्नीलपताकाभिर्बलिभिर्माषिमिश्रितैः । धूप्रवर्णं सदा केतुं गदाहस्तं वरप्रदम् ॥९०
 हि भुजं भीमकायं च धूप्राक्षं धूप्रवाससम् । केतुं कृष्णनिति मन्त्रेण ऐशान्यां स्थापयेद्विशि ॥९१
 धूप्रवर्णश्च माल्यैश्च धूप्रगन्धानुलेपनैः । धूप्राघृतपताकाभिर्बलिभिर्माषिमिश्रितैः ॥९२
 पूजयेत्परया भक्त्या केतुं सर्वर्थसिद्धिदम् । लोकपालानहं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदायकान् ॥९३
 येषु पूजितमात्रेषु नालभ्यं दिव्यते क्वचित् । देवराजं ततो ध्यायेत्पृष्ठबाणन्यप्रभम् ॥
 द्विशुजं पीतसङ्काशं नीलन्दीवरलोदनम् ॥९४
 रक्तोत्पलधरं तद्वत्प्रेतवातःसमन्वितम् । चासरासत्त्वस्तैश्च कन्यारत्नैश्च शोभितम् ॥९५
 इन्द्राणीं चिन्तयेद्वामे उत्पलद्वयधारिणीम् । एवं सम्पूजयेद्वक्त्या दुरराजं जस्त्वभुम् ॥
 श्रोतःरमिति मन्त्रेण स्थापयेत्कणिकोत्तरे ॥९६
 पूजयेत्परया भक्त्या धूपगन्धानुलेपनैः । नानाविधोपहारैश्च पत्ताकाभिर्धर्वजैरपि ॥९७
 बतिं क्षीरान्वितं दद्यान्मोदकं सितशर्कराम् । उत्तप्तस्त्वर्णसङ्काशं वीलिहोत्रं चतुर्भुजम् ॥९८
 अर्पचन्द्रसमस्यं च अजवाहनमुत्तमम् । ज्वालावितानसंरक्तं मूच्छं सप्तशिखान्वितम् ॥९९
 वरदं विभयं मालां दक्षे सूत्रं कमण्डलुम् । त्रिनेत्रं रक्तनयनं जटामुकुटमण्डितम् ॥१००
 नानाभरणसम्पन्नं सिद्धगन्धर्वसेवितम् । अग्निजिह्वेति मन्त्रेण स्नापयेदग्निदिग्वले ॥१०१

सविधान करनी चाहिए, कृष्ण चन्दन, वस्त्र, कृष्ण वर्ण की माला, अनुलेपन धूप, नील वर्ण की पताका, उरद मिश्रित बलि प्रदान करना चाहिए। धूएँ के समान वर्ण, हाथ में गदा लिए, वर प्रदायक, दो भुजा, भीमकाय, धूएँ के समान नेत्र, और वस्त्र, वाले उस केतु देव की स्थापना सदैव ईशान कोण में 'केतुं कृष्णनिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक करनी चाहिए । ८०-९१। धूएँ के समान वर्ण की माला तथा गंध, एवं अनुलेपन, धूएँ वर्ण की पताका, उरद मिश्रित बलि द्वारा उत्तम भक्ति पूर्वक उस समस्त अर्ध की सिद्धि प्रदायक केतु की पूजा करनी चाहिए। सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदायक उन लोकपालों का पूजन विधान बता रहा हूँ । ९२-९३। जिनके पूजन मात्र से कोई वस्तु दुर्लभ नहीं होती है, काम सौन्दर्य की भाँति प्रभा, दो भुजा, पीत वर्ण, एवं नील कमल के समान नेत्र वाले देवराज इन्द्र के ध्यान के अनुसार रक्त कमल धारण किये, उन्हीं की भाँति पीताम्बर से सुसज्जित हाथ में चामर लिये हुए कन्याओं से सुसेवित और दो कमलों को धारण किये वाम भागों में स्थित उस इन्द्राणी देवी का ध्यान पूजन करना चाहिए। इस प्रकार पंखुड़ियों के उत्तर भाग में स्थित उस जगत्प्रभु एवं देवेन्द्र इन्द्र की पूजा भक्ति पूर्वक 'त्रातारमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करने के उपरांत उत्तम भक्ति समेत धूप, गन्ध, लेप, विविध भाँति के उपहार पताका एवं छवजाओं द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करना चाहिए । ९४-९७। क्षीर समेत बलि मोदक और श्वेत शक्कर (चीनी) आदि के प्रदान करने के उपरांत भली भाँति तपाये गये सुवर्ण की भाँति वर्ण, चार भुजाएँ अर्ध चन्द्र के समान स्थित, अज (बकरा) वाहन, विस्तृत ज्वालाओं से रक्तमय, शिर में सात शिखाओं से युक्त, वरदायक, भयरहित, माला, सूत्र, एवं कमण्डलु लिये, रक्तमय तीन नेत्र, जटा मुकुट विभूषित अनेक भाँति के आभूषणों से सुशोभित, एवं सिद्ध गन्धवर्णों से सुसेवित, उस अग्नि का दक्षिण दिशा के दल में 'अग्निजिह्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्थापन एवं स्नान कराना चाहिए,

पूजयेद्रक्तपुष्येश्च रक्तमात्पानुलेपनैः । धूपैः रक्तपताकाभिर्वलिभिः पत्यसैरपि ॥१०२
 नीलाञ्जनचयप्रस्थं नीलांसहासनस्थितम् । महामहिषमालुङ्दं दण्डपाशधरं विभुम् ॥१०३
 करातवदनं भीमं ज्वाताधूशितलोचनम् । घोरदण्डाकरात्मैश्च किङ्कराणां गणैर्वृतम् ॥
 महिषं चिन्तयेद्वामे चित्रगुप्तं च इक्षिणे ॥१०४
 अच्छीयस इति मन्त्रेण स्थापयेद्यन्वदिगद्वले । पूजयेत्परया भक्त्या धर्मराजं जगद्गुरुम् ॥
 राक्षसेन्द्रं महाकायं कृष्णवर्णं द्विबाहुकम् ॥१०५
 नानाभरणसम्पन्नं खड्गहस्तं महाबलम् । वरमुक्ताविमानस्थं घोररूपं जलेश्वरम् ॥१०६
 एष ते इति मन्त्रेण नैऋत्यां स्थापयेद्विशि । कृष्णचन्दनवस्त्रैश्च द्वृष्णसात्पानुलेपनैः ॥१०७
 धूपैः कृष्णपताकाभिर्वलिभिर्मार्पयमिश्रितैः ! शुद्धस्फटिकसङ्काशं शाङ्खकुन्दनुसप्रभम् ॥१०८
 द्विभुजं पाशहस्तं च सुन्दराङ्गं वरप्रदम् ! दरुणस्येति मन्त्रेण स्थापयेत्यश्रिते दले ॥१०९
 स्तिचन्दनधूपैश्च पताकाभिर्धर्वजैरपि ॥११०

समीरणं कुञ्जरवर्णसम्भिर्भं मृगाधिरूपं द्विभुजं द्विनेत्रम् ।
 द्वजान्वरं चापि दधानमेकं नीलाम्बरं नेत्रगणैर्वृतं च ॥१११

नीलचन्दनवस्त्रैश्च नीलमात्पानुलेपनैः । पूजयेत्परया भक्त्या पताकाभिर्धर्वजैरपि ॥११२
 धूपैर्नीलपताकाभिर्वलिभिः पायसैरपि ॥११३

ध्यायेद्विद्वनेत्रं द्विभुजं धनेशं पीताम्बरं वै नरवाहनं च ।
 गदाधरं भक्तवरप्रदं च आवाहयेदुत्तरपथपत्रे ॥११४

पश्चात् रक्तवर्ण के पुष्प, माला, लेप, धूप, रक्तपताका, और खीर की बलि समेत उनका पूजन सुसम्पन्न करना बताया गया है । १०८-१०२। नील अञ्जन-समूह की भाँति नील वर्ण के सिंहासन पर विराजमान, महान महिष (भैसे) पर आसीन, दण्ड-पाश (फांस) धारण किये उस यम तथा भीषण मुख, भयंकर, त्यौरी चढ़ाने पर निकलती हुई ज्वालाओं से पूर्ण नेत्र, घोर एवं विकराल सींग और दाँत, सेवकों से आवृत्त, भाग में उस महिष तथा दक्षिण भाग में स्थित चित्रगुप्त का दक्षिण दिशा के दल में 'आच्छीपस इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उत्तम भक्तिसमेत जगद्गुरु धर्मराज का स्थापन-पूजन करना चाहिए । अनन्तर राक्षसेन्द्र, महाकाय, कृष्ण वर्ण, दो भुजा, अनेक भाँति के आभूषणों से भूषित, हाथ में खड़ग लिए महाबली, उत्तम मोतियों से अलंकृत विमान पर सुशोभित, एवं घोररूप, उस जलाधिपति का 'एष ते इति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए नैऋत्य दिशा में स्थापन तथा कृष्ण चन्दन, वस्त्र, कृष्ण वर्ण की माला और लेप, धूप, कृष्ण रंग की पताका, उरदमिश्रित बलि-प्रदान करने के उपरांत शुद्ध स्फटिक मणि की भाँति, वर्ण, शंख, कुन्द पुष्प और इन्दु की भाँति प्रभा, दो भुजा हाथ में फांस लिये, सौन्दर्य पूर्ण अंग, वरदायक उस वरुण देव का स्थापन-पूजन पश्चिम दल में 'वरुणस्येति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक करना चाहिए । १०३-१०९। श्वेत चन्दन, धूप, पताका, ध्वजा द्वारा उनकी पूजा करने के उपरांत गज- राज के समान वर्ण, मृग पर स्थित, दो भुजा, दो नेत्र, ध्वज के वस्त्र एवं नीलाम्बर ग्रहण किये, मेघगणों से सेवित, उस वायु देव का नीलवर्ण के चन्दन, वस्त्र, माला, अनुलेपन, पताका, ध्वजा, धूप, नील पताका, एवं खीर बलि उपहार के समेत ध्यान-पूजन करना बताया गया है । ११०-११३। दो नेत्र, दो भुजा, पीत वस्त्र, एवं मनुष्य वाहन वाले गदाधारी भक्तों को वर प्रदान करने वाले उस धनेश

गन्धनन्दनवस्त्रैश्च पीतमात्यानुलेपने:	॥११५
धूपैः पीतपताकाभिर्बलिभिः पायसैरपि	॥११६
स्त्नाधकर्षरसङ्काशां तुषारकिरणप्रभम् । त्रिशूलतुम्बुरुधरं तथाभयवरप्रदम् ॥११७	
उत्तुङ्गवृषभारुडं त्रिनेत्रं भस्मभूषितम् । कपालमालिनं तद्वत्सण्डनुकृतशेखरम् ॥११८	
एवं ध्यात्वा शहेशानं स्थापयेदीशदिग्दले	॥११९
पूजयेत्परया भक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनेकशः	॥१२०
सितध्वजपताकाभिर्बलिभिः पायसाद्विभिः । त्वमीशान इति मन्त्रेण ऋषिं छन्दः समीरयन् ॥१२१	
ब्रह्मण्णं रक्तगौराङ्गं शोणपद्मसनप्रभम् । राजीवलोचनं तद्रुत्पद्मार्भसमप्रभम् ॥१२२	
पद्मासनस्थितं तद्वच्छ्वेतदस्त्रं चतुर्भुजम् । चतुर्मुखं सुग्रेष्ठं मेघगम्भीरनिस्वनम् ॥१२३	
राजहंससमायुक्तं विमानवरसनस्थितम् । मुकुटुदौ दक्षिणे हस्ते वामे दण्डं कमण्डलुम् ॥१२४	
कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीन्सद्गान्धर्वसेवितम् । आज्ञास्थालीं तथैवाग्रे कुशांश्च समिधं तथा ॥१२५	
वामपार्षे तु सावित्री दक्षिणे तु सरस्वतीम् । आब्रह्मान्निति मन्त्रेण स्थापयेत्पूर्वदिग्दले ॥१२६	
नानाभक्ष्योपचारैश्च पूजयेद्गन्धचन्दनैः । धूपैः श्वेतपताकाभिर्बलिभिश्चाज्यपायसैः ॥१२७	
अनन्तं शुक्लवर्णभं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । शङ्खचक्रगदापद्मधारिणं जगदीश्वरम् ॥१२८	
आधारभूतं जगतां स्वर्णयज्ञोपवीतिनम् । नानाभरणसम्पन्नं फणाशतसमन्वितम् ॥१२९	

(कुबेर) की स्थिति कमल पत्र के उत्तर की ओर करके गन्ध, चन्दन, वस्त्र, पीत वर्ण की माला, लेप, धूप, पीत पताका, खीर की बलि समेत पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए। मनोरम कपूर के समान वर्ण, हिमकिरण की भाँति पंभा, त्रिशूल और तुम्बूङ (तुमड़ी), अभयवर प्रदायक, ऊँचे वृषभ पर स्थित, तीन नेत्र, भस्म से भूषित, कपाल (शिर) की माला एवं चन्द्रखण्ड मस्तक में धारण किये महेशान (शिव) का इस भाँति ध्यान करके ईशन कोण के दल में उन्हें स्थापित कर देना चाहिए। ११४-११९। विविध भाँति के भक्ष्य पदार्थ, श्वेत वर्ण की ध्वजा, पताका और पायस (खीर) आदि बलि पुरस्सर 'त्वमीशान इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भक्ति से तन्मय होकर उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए। १२०-१२१। रक्त एवं गौर वर्ण, रक्त कमल के समान प्रभा, कमल की भाँति लोचन, उरसी भाँति, पद्मर्गीभित उसकी प्रभा कमलासन पर सुशोभित, श्वेत वस्त्र, चार भुजाएँ, चारमुख मेघ के समान गम्भीर वाणी, राजहंस समेत उक्त विमान पर स्थित दाहिने हाथों में सुक और स्वाम, बाँयें हाथों में दण्ड हाथ में कमण्डलु धारण किये, लोकों की सृष्टि करते हुए की भाँति स्थिति, सिद्ध एवं गन्धवर्णों से सुसेवित, धृतपात्र, सम्मुख भाग में कुश तथा समिधाओं से युक्त, बायें पाशवै में सावित्री और दक्षिण पाशवै में सरस्वती से अलंकृत उस देवश्रेष्ठ ब्रह्मा का इस भाँति ध्यान पूर्वक 'आब्रह्मान्निति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पूर्व दिशा के दल में स्थापन करके अनेक भाँति के भक्ष्य पदार्थ, गंध चंदन, धूप, श्वेत पताका, एवं धी मिश्रित खीर का बलि आदि उपचारों समेत उनकी पूजा करनी चाहिए। १२२-१२७। शुक्ल वर्ण की प्रभा, पीताम्बर धारण किये, चार भुजाएँ, शंख, चक्र, गदा तथा कमल हाथों में लिये विश्व के अधिनायक, जगदाधार, सुर्वर्ण की भाँति यज्ञोपवीत से भूषित, अनेक भाँति के आभूषणों से अलंकृत सैकड़ों ब्रह्मों से युक्त उस अनन्त भगवान की

ॐ नमोस्त्वति मन्त्रेण स्थापयेद्वरुणान्तरे । पूजयेद्बृक्ष्यभोज्यैश्च दीपगन्धानुलेपनैः ॥१३०
 धूपैः श्वेतपताकाभिर्लिभिश्चैव निर्मितैः । ततो मण्डलपूर्वे तु द्व्यहाणं पीतवाससस् ॥१३१
 चतुर्भुजं चतुर्वक्त्रं सुवहस्तं दरप्रदम् । बिभ्रतं च श्रुतं तद्वत्तथादण्डकनण्डलू ॥१३२
 आब्रह्मत्रिति मन्त्रेण पूजयेद्गन्धचन्दनैः । दक्षिणे अर्यम्बकं ध्यायेच्छूलखटुङ्गाधारिणम् ॥१३३
 वरदं डमरुधरं नागयज्ञोपवीतिनम् । निबद्धजूटचन्द्रार्घ्यं शुद्धस्टकटिकसश्चिभम् ॥१३४
 कपालभालिनं देवं भुजद्गाभरणान्वितम् । त्रिनेत्रं कुन्दसङ्खारां शूतप्रेतगर्वृदतम् ॥१३५
 अर्यम्बकं चेति मन्त्रेण पूजयेन्मधुपायसैः । अतसीषुव्यसङ्खारां हारकेप्रसूषितम् ॥१३६
 नानाभरणसम्पन्नं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् । दक्षिणे च गदां चक्रं वामे शङ्खं सप्तधकम् ॥१३७
 श्रिया दक्षिणतो वामे सरस्वत्या समन्वितम् । तद्विष्णोरिति मन्त्रेण इथापयेत्पश्चिमे ततः ॥१३८
 पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैः पायहेन धृतेन च । गणेशं तु चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम् ॥१३९
 गजेन्द्रवदनं देवं श्वेतवस्त्रं चतुर्भुजम् । एरशुं लगुडं वामे दक्षिणे वण्डमुत्पलम् ॥१४०
 मूषकस्थं महाकाढं शङ्खङ्कुन्डेन्दुसप्रभम् । युक्तं बुद्धिकुबुद्धिभ्यामेकदन्तं भयापहम् ॥१४१
 नानाभरणसम्पन्नं सर्वापत्तिविनाशनम् । गणानां त्विति मन्त्रेण विन्यसेदुत्तरे ध्रुवम् ॥१४२

उत्तप्तजाम्बूनदहेमसश्चिभां लक्ष्मीं सरोजासनसंस्थितां शुभाम् ।

वामे सरोजं दधर्तीं तथैव हस्ते च दक्षे धृतचामरां च ॥१४३

प्रतिष्ठा, ‘ओं नमोस्त्वति’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वरुण को मध्य में करके भक्ष्य-भोज्य, दीप, गन्ध एवं लेप, धूप, श्वेत पताका तथा बलि समेत उनकी पूजा सुसम्पन्न करने के ऊपरांत मण्डल के पूर्व भाग में स्थित ब्रह्माण्ड का, जो चार भुजाएँ, चार मुख, सुवा हाथ में लिये, वरदायक, वेद तथा दण्ड-कमण्डलु ग्रहण किये हैं, ‘आब्रह्मत्रिति’ इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पूजन करना चाहिए । दक्षिण की ओर स्थित शूल खटुंगधारी, वरदायक, डमरु लिये, साँप का यज्ञोपवीत धारण किये, जटा में अर्ध्य चन्द्र से बाये, शुद्ध स्फटिक के समान वर्ण, कपाल की माला, साँपों के आभरण से युक्त, तीन नेत्र कुन्द पुष्प की भाँति प्रभा, धूत प्रेत से धिरे उस देव की ‘अर्यम्बकमिति’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक शहद पायस (खीर) पदार्थों द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करके अलसी पुष्प की भाँति वर्ण, हार, केयूर (बाँह का आभूषण), से विभूषित, अनेक भाँति के आभूषणों से अलंकृत, पीत वस्त्र, चार भुजाएँ, दाहिने में गदाचक्र और बाँये में शंख और कमल लिये दक्षिण में लक्ष्मी, तथा बाँये भाग में सरस्वती से स्रेवित उस विष्णु देव की स्थिति, ‘तद्विष्णोरिति’ इस मंत्र के द्वारा पश्चिम की ओर करके गन्ध पुष्प, स्तीर, एवं धी आदि वस्तुओं द्वारा उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए ॥१२८-१३१। चार भुजाएँ, साँप का यज्ञोपवीत धारण किये, गजेन्द्र- वदन, श्वेत वस्त्र, बाँयें दोनों हाथों में फरसा और छड़ी दाहिने दोनों हाथों में दण्ड एवं कमल लिये, चूहे पर स्थित, महाकाय, शंख, कुन्द-पुष्प और इन्दु की भाँति प्रभा, सुबुद्धि दुर्बुद्धि से युक्त, एक दाँत वाले, भयनाशक, अनेक भाँति के आभूषणों से भूषित, सम्पूर्ण आपत्तियों के विदारक, उस गणेश देव का स्थापन-पूजन उत्तर की ओर ‘गणानां त्वेति’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक करना चाहिए ॥१४०-१४२। संतप्त सुवर्ण के समान वर्ण, कमलासन पर सुशोभित शुभ, बाँये हाथ में सरोज, दाहिने हाथ

श्रीश्च तेति च मन्त्रेण ऐशान्यां मण्डलाद्विः । स्थापयेत्पूजयेद्भूत्या सितचन्दनपञ्चूजिः ॥१४४
मोदकं परमाश्रं च यवक्षीरं निवेदयेत् ॥१४५

ततो देवीमन्बिकां दिव्यरूपां ब्रह्मेन्द्रादैः स्तूयमानां त्रिनेत्राम् ।
सिंहेशस्थां तप्तजास्त्वनदाभां चन्द्रार्द्धनाबद्धमौलिं जटाभिः ॥१४६
दिव्यैर्वस्त्रैर्द्विहुभिः सत्प्रलम्बैदिव्यैर्माल्यैर्भूषणैः स्तैरुपेताम् ।
ब्रह्मेन्द्रादैर्द्वुर्जयं माहिषास्यं तीक्ष्णरस्त्रैर्दानिवं मर्दयन्तीन् ॥१४७
शूलं तीक्ष्णं बाणशक्तीं च तीक्ष्णे खड्गं तीक्ष्णं बिभ्रतीं दक्षिणेन :
चापं पाशं खेटकं चाइकुशं च घण्टां वामे दिभ्रतीं वै कुठारम् ॥१४८
शिरश्छेदादर्धजातं कबन्धं खड्गं तीक्ष्णं बिभ्रतीं दैत्यराज्ञम् ।
नागैः पाशैर्वैष्टियित्वा समन्ताच्छूलेनैनं निघातीदेहमध्ये ॥१४९
सेन्द्रैर्देवैः स्तूयमानां चुवेणीं गन्धर्वादैः सिद्धसङ्घैश्च सेव्याम् ।
नानावस्त्रैर्भूषं जैदीप्यमानां ध्यायेदेवीमन्बिकामुज्ज्वलन्तीम् ॥१५०
वस्त्रैर्माल्यैर्यक्षधूपैर्वतानैरभक्ष्यभोज्यमर्मोदकैः^१ पायसेश्च :
मांसैः पिष्टैश्छागलाढ्यैरशेषः पूज्या देवी चण्डिकाऽभीष्टदा च ॥१५१

श्यामां च पृथिवीं ध्यायेत्पद्मिकजद्वयधारिणीम् ॥१५२
मण्डूकस्थां द्विभुजां स्योना पृथिवीति चार्चयेत् । नैऋत्यां विश्वकर्मणं द्विभुजं टङ्कधारिणम् ॥१५३

में चामर धारण किये, उस लक्ष्मी का मण्डल के बाहर ईशान कोण में 'श्रीश्च तेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक स्थापन करके श्येते चन्दन, कमल पुष्प, मोदक, परमात्र, यवक्षीर पदार्थों को उन्हें अर्पित करते हुए उनका पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । १४३-१४५। पश्चात् दिव्य रूप, ब्रह्मादि देवों द्वारा की गयी स्तुति सम्पन्न, तीन नेत्र, सिंहासनातीन, तपाये हुए सुवर्ण की भाँति प्रभा, चन्द्रखण्ड से आबद्ध शिर के बाल जटा- जूट की भाँति सुशोभित, दिव्य वस्त्र, आजानुबाहु, दिव्य मालाओं एवं भूषणों से विभूषित, ब्रह्मेन्द्र देवों का अजेय, अपने तीक्ष्ण अस्त्रों से महिषासुर का मर्दन करने वाली, दाहिने हाथ में तीक्ष्ण शूल, बाण, शक्ति, एवं तीक्ष्ण खड्ग तथा बाँयें हाथ में धनुष, फांस, खेटक, अंकुश घंटा, तथा कुठार धारण किये, खड्ग द्वारा काटे गये दैत्यराज का शिर तीक्ष्ण खड्ग, एवं नाग फांस से दैत्य को दृढ़ता पूर्वक बाँधकर उसके शरीर के मध्य भाग में शूल का प्रहार करने वाली, इन्द्रादि देवों द्वारा स्तुति सम्पन्न, सुन्दर वेणी से युक्त, गन्धर्व, तथा सिद्धों के समुदाय से सुसेवित, अनेक भाँति के वस्त्र और आभरणों से सुसज्जित उस भगवती अन्बिका देवी का इस भाँति ध्यान करके वस्त्र, माला, यक्ष धूप, वितान, भक्ष्य-भोज्य मोदक, खीर, बकरे का मांस आदि वस्तुओं द्वारा मन इच्छित फल प्रदान करने वाली उस चण्डिका देवी का पूजन करना चाहिए । १४६-१५१। दो कमल-पुष्पों को धारण किये, मेढक पर स्थित उस श्यामा पृथिवी का इस प्रकार ध्यान पूर्वक 'स्योना पृथिवीति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । तदुपरांत

१. यक्षकर्दमधूपैरित्यर्थः ।

उत्सलं दक्षिणे हस्ते पश्चस्थं पीतवाससम् ! एवं ध्यात्वा ततो ब्रह्मश्चिति मन्त्रेण पूजयेत् ॥१५४
 स्वस्थां सरस्वतीं ध्यायेद्वरदाभयदायिनीम् : पीतवस्त्रां सुमुकुटां देवगन्धवसेवितान् ॥१५५
 यामधा इति मन्त्रेण पूजयेत्सितचन्दनैः । बलिं श्वेतचरणं दद्यात्कृशारं यावकं तथा ॥१५६
 स्थापयेद्वामदिग्मागे कुन्दपुष्टैः प्रपूजयेत् । पूर्वादिद्वारदेशे तु पूजयेच्च मरुदग्नैः ॥१५७
 अग्न्यादिदु च कोणेषु ब्रह्मसूतान्समाचरेत् । पिशाचाचा राक्षसा भूता वेतालकपिजातयः ॥१५८
 निणासाश्रैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः । ततो मण्डलमध्ये तु वारङ्गं पूर्ववर्तमनः ॥१५९
 पूरयेत्कलरे तत्र सुवर्णादिनिर्निर्मितम् ! जूर्म कूर्मार्हिति कुर्याच्छुद्धस्वर्णेन सत्तमाः ॥१६०
 बृहत्पर्वप्रमाणेन राजतस्य च दुर्लभम् ! पादं पादेन मानेन अङ्गुलं परिमण्डलम् ॥१६१
 प्रौष्ठीमत्स्यं तथा कुर्यात्कुलीरं ताञ्चनिर्मितम् । तेनैकस्य विनिर्माणं द्वयङ्गुलायामविस्तृतम् ॥१६२
 तथा भानेन मण्डकं तां भूमिं मुनिसत्तमाः ; शिशुमारं च वै सम्यक्तोलकद्वयनिर्मितम् ॥१६३
 अङ्गुलत्रयदीर्घं च तथा तस्याकृतिर्भवेत् । स्तितचन्दनवस्त्रैश्च पूजनीयाः समन्ततः ॥१६४
 यावकैश्च विशेषेण बहुमन्त्रविशारदान् । बहवृचौ पूर्वमत्स्यार्थं दक्षिणे तु यजुर्विदौ ॥१६५
 तासनौ पश्चिमे चाय उत्तरेऽथर्वणौ स्मृतौ । जयध्वमिति ताञ्च्याद्वोतृकान्युनरेव हि ॥१६६
 स्थापयित्वा पृथक्सूत्रे सर्वं च मात्रदीपमेव च । पञ्चाङ्गं शिवसूक्तं च यथां विष्णोर्हरस्य च ॥१६७

नैऋत्य कोण में स्थित विश्वकर्मा का जो दो भुजा, टंक, दहिने हाथ में कमल पुष्प धारण किये, कमलासन पर सुशोभित, एवं पीत वस्त्र वाले उस विश्वकर्मा का इस भाँति ध्यान करके 'ब्रह्मान्निति' इस मंत्र के उच्चारण दूर्वक पूजन करना चाहिए । स्वस्थ, वर एवं अभय दान देने वाली पीताम्बर धारणी, मुकुट से सुशोभित एवं देव-गन्धवसेहित उस सरस्वती का इस भाँति ध्यान करके 'यामधा इति' इस मन्त्रके द्वारा श्वेत चन्दन, बलि, हवि, कृशराज (खिचड़ी), लप्सी आदि वस्तुओं के समर्पण पूर्वक वाम भाग में प्रतिष्ठित करके कुन्दन-पुष्प से उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए । पूर्वादि दरवाजों पर स्थित मरुदग्नों के समेत देवों एवं अग्नि आदि कोण के वाहा भाग में स्थित पिशाच, राक्षस, भूत, वेताल कपि, आदि जीवों की जो नासाहीन, रौद्र, तथा विकृत रूप वाले हैं, पूजा करने के उपरांत मण्डल के मध्यभाग में सुवर्ण आदि धातुओं से निर्मित घट को जल से पूर्णकर वरण की पूजा करनी चाहिए तथा सत्तमवृन्द ! उस घट में शुद्ध सुवर्ण की बनायी गयी एक कछुबे के आकार की एक प्रतिमा भी होनी चाहिए । १५२-१६०। (अंगुली के) लम्बे पोर के परिमाण की चाँदी के अप्राप्त होने पर उसके चौथाई भाग के समान अर्थात् एक अंगुल परिमाण का उसका (घेरा) होना चाहिए, औष्ठी (सेहरी) मछली अथवा केकरहा की प्रतिमा का जिसकी लम्बाई-चौड़ाई दो अंगुल की हो, ताँबे के द्वारा निर्माण कराकर मुनि सत्तम वृन्द ! उसी भान से मेढ़क एवं उसके भूपृष्ठ की रचना करने के उपरांत शिशुमार (सुंस) जलचर की प्रतिमा दो तोले परिमाण की बनानी चाहिए, जो उसके आकार-प्राकार के समान तीन अंगुल की चौड़ी हो । श्वेत-चन्दन एवं वस्त्रों द्वारा उसे चारों ओर आच्छान्न कर उसकी पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए । उस मत्स्य प्रतिमा के पूर्व की ओर बहवृच वाले दक्षिण की ओर दो यजुर्वेत्ता । १६१-१६५। पश्चिम की ओर दो आसन और उत्तर की ओर दो अर्थर्वण वेत्ता की प्रतिमा की प्रतिष्ठा होताओं के 'जयध्वम्' इस वाक्य के साथ करके पुनः पृथक् सूत्र पर अपनी माता को कुद्ध करनेवाले साँप की स्थिति के

ज्याप्रतः पुरुषसूक्तमद्भ्यः सम्भूतमेव च । आशुः शिशानन्नारम्भ वर्यं मोषाङ्गरुद्दके ॥१६८
 यज्जाप्रतश्चाग्रेश्व विष्णोरराटमेव च । समस्ताध्यायरुद्देण शतरुद्राख्यमीरितम् ॥१६९
 (पञ्चाङ्गरुद्दस्य पुष्पदन्त ऋषिगायत्री छन्दो वेदाहमेतदीजं श्रीश्चते इति शक्तिर्नमस्ते रुद्र इति
 नायकः परमरुद्रो देवता परम स्तुतौ विनियोगः । सप्ताङ्गरुद्दस्य पुष्पदन्तऋषिः पद्मिक्तव्यन्दः ।
 ऋम्भकमिति अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । त्रिपादूर्ध्वमिति तर्जनीभ्यां स्वाहा । वेदाहमिति सध्यमाभ्यां वषट्
 । अर्मीषां चित्रमिति अनामिकाभ्यां हृष्म् । यवाग् सोम इति लःनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । परितो धेनुमिति
 करतलकरपृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट् इति । यज्जाप्रत इति हृदयाय नमः । सहस्रशीर्षेति शिरसे स्वाहा ।
 अद्भूतः सम्भूत इति शिखायै वषट् । आशुः शिशान इति कवचाभ्यां हृष्म् । नमस्ते रुद्र इति नेत्रव्रयाय
 वौषट् । रुद्रं ब्रह्मन्निति अस्त्राय फट् । चतुर्दिक्षु छोटिकादानम्^१ । इति सर्वाङ्गेषु ॥)
 होमे प्रवर्तमाने तु सूक्तान्न्यांश्च वै जपेत् । प्रजपेद्वारणं सूक्तं तथा च पालसूक्तकम् ॥१७०
 रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं समुज्ज्वलम् । जपेच्च पौरुषं सूक्तं सर्वतोवरतं पृथक् ॥१७१
 शाक्तं रौद्रं च सौम्यं च कूष्माण्डं जातवेदसम् । सौरसूक्तं च यज्ञतो दक्षिणेन यजुर्विदः ॥१७२
 वैराजं पौरुषं सूक्तं सौवर्णं रुद्रसंहिताम् । शैशवं पञ्चनिरयं गायत्र्यां ज्येष्ठसाम च ॥१७३

अनन्तर पञ्चाङ्ग समेत शिवसूक्त और पुरुषसूक्त का पाठ जिस प्रकार विष्णु एवं हर के लिए किया जाता है, करना चाहिए। 'यज्जाप्रत इति' पुरुष सूक्त के इस मंत्र के प्रारम्भ से 'अद्भूत इति' इस मंत्र पर्यंत 'आशुः शिशान' इति इस मंत्र से प्रारम्भ कर 'वर्यं मोषांग रुद्र के' 'यज्जाप्रतश्चाग्रेश्व' और 'विष्णोरराट इति' इस मंत्र के साथ समस्त रुद्राध्याय का पाठ जो शतरुद्री के नाम से स्वात हैं, करना आवश्यक बताया गया है। 'पञ्चाङ्गरुद्र के पुष्पदन्त ऋषि' गायत्री छन्द, वेदाहंवीज, 'श्रीश्चते' 'शक्ति' नमस्ते रुद्र इति' नायक, परम रुद्र देवता, परम स्तुति में इस विनियोग का उपयोग किया जाता है। सप्ताङ्ग रुद्र के पुष्प-दन्त ऋषि, पंक्ति छन्द हैं, पश्चात् 'ऋम्भकमिति' अंगूठे, 'त्रिपादूर्ध्वमिति' से तर्जनी, 'वेदाहमिति' से मध्यमा, 'अर्मीषां चित्रमिति' से अनामिका 'यवाग् सोम इति' से कनिष्ठा, 'परितो धेनुमिति' से करतल करपृष्ठ के विन्यास पूर्वक इसी करन्यास की भाँति हृदयन्यास भी करना कहा गया है—'यज्जाप्रत इति' से हृदय, 'सहस्र शीर्षेति' से शिरा, 'अद्भूत इति' से शिखा, 'आशुः शिशान इति' से कवच (बाह्यमूल) 'नमस्ते रुद्र इति' से नेत्र, और 'रुद्रं ब्रह्मन्निति' से अस्त्राय फट् करने के उपरांत चारों दिशाओं से छोटिका नामक मुद्रा प्रदर्शन करना चाहिए। इसी भाँति सर्वाङ्गीण कर्मों में भी यह आवश्यक बताया गया है। हवनं के प्रारम्भ होने पर अन्य सूक्तों—वारण, तथा पातालसूक्त का भी पाठ करना आवश्यक कहा गया है। उसी भाँति रात्रिसूक्त, रौद्र, पवमान का समुज्ज्वल, एवं पुरुष सूक्त का पाठ करना चाहिए। १६६-१७१। शाक्त, रौद्र, सौम्य, कूष्माण्ड, जातवेदस, तथा सौरसूक्त का पाठ दक्षिण की ओर से यजुर्वेता को करने के उपरांत वैराज, पौरुष सूक्त, सौवर्ण रुद्र संहिता, शैशव पञ्च निरय, गायत्री, ज्येष्ठ-साम, वामदेव्य, बृहस्पति, रथंतर, गोत्रत, विकर्ण, इन सभी के पाठ राक्षसों के विनाशक और

१. इयं मुद्रा ताराकल्पे मेष्टन्त्रे चान्यत्रापि बहुषु तन्त्रेषूक्ता तत एवावधारणा कर्तव्या ।

वामदेव्यं बृहत्साम तथा चैव रथन्तरम् । गोवतं च विकर्णं च रक्षोऽनं पावनं स्मृतम् ॥१७४
 गायन्तं ब्राह्मणा ये च पूर्वादिद्वारदेशतः । अन्नात्परिसूत इति पञ्चपूर्वं सौरसूक्तकम् ॥१७५
 नद्वाध्यायं च पञ्चाङ्गं रौद्रं इत्यभिधीयते । आप्यायस्वेति च चतुः सौम्यं सूक्तं प्रचक्षते ॥१७६
 ईशावेत्यादि स्वाङ्गं च कौञ्जाण्डं दशमं स्मृतम् । अगे बृहस्पति नवमूर्त्तं वै जातवेदसम् ॥१७७
 षोडशं तु विभ्राङ्गं बृहत्सौरं सूक्तं प्रकारीततम् । सौरसूक्तं ध्रुवोसीति इषवो मङ्गलं स्मृतम् ॥१७८
 रात्रिसूक्तं हि यज्वाग्रे रक्षोऽनं शैदसूक्तकम् । गणानात्त्वेति पञ्च आपोहिष्ठेति च त्रयम् ॥१७९
 पवमानं तु तद्विद्वि पावमानं तु षोडश । समस्तं देवयागेषु तद्रात्रौ तु तद्वर्धकम् ॥
 तदर्द्धर्द्धं च आरामे कूपे त्वेकश्च च जपेत् ॥१८०
 स्वगृह्णोत्तविधानेन प्रतिकूण्डेषु होमयेत् । संस्कुर्यादीक्षणाद्येत्र सम्पूज्य च परस्परम् ॥१८१
 प्रज्ञात्याप्तिं च दिधिवद्धोरेत्तुं कुर्यादिनन्तरम् । वारीश्वरं समस्तचर्यं वारीश्वर्या दमन्वितम् ॥१८२
 यस्य देवस्य यो यागः प्रतिष्ठा यस्य कस्यचित् । प्रागेव तस्य जुहुयात्सहस्रं च शतं तथा ॥१८३
 तिलाज्ये: यायरैवार्थं एत्रपुष्पाक्षतेन च । ग्रहेभ्यो विधिवत्तर्वं तथेन्द्रायेश्वराय च ॥१८४
 मरुद्वचो लोकपालेभ्यो विधिवद्विश्वकर्मणे । ऊर्जेन समिधा कुर्यादिष्टाष्टौ स्वगृहेष्वपि ॥१८५
 इन्द्रेश्वरमारुतानां तिलाज्येन धृतेन वा । एकैकामाहुर्ति दद्यात्स्वैः स्वर्मन्त्रैर्यथाक्रमात् ॥१८६
 दिगीशानां च प्रत्येकमष्टाष्टौ च विशेषतः । विश्वकर्मन्त्रिति मन्त्रेण कृत्वा आज्याहुतित्रयम् ॥१८७
 समित्रयं पलाशस्य अथवाभृत्यसम्भवम् । एकैकामाहुर्ति दद्यादाज्येन च विशेषतः ॥१८८

पाघन बताये गये हैं । पूर्वादि दरवाजे से इनका गायन करते हुए ब्राह्मणों को 'अन्नात्परिसूत इति' इन मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक सौरसूक्त का पाठ करना चाहिए । १७२-१७५। रुद्राध्याय समेत पञ्चाङ्ग को रौद्र, 'आप्यायस्वेति' इन चारों को सौम्य सूक्त, 'ईशावेत्यादि समेत स्वाङ्ग को दशवाँ कौञ्जाण्ड, और 'अगे बृहस्पति' इन नव मूर्तकों को जातवेदस कहा जाता है । सोलहवाँ 'विभ्राङ्गं बृहत् इति' को सौरसूक्त, 'ध्रुवोसीति' इस मांगलिक इषव, 'यज्वाग्ने' को रात्सूक्त, और शीव सूक्त को रक्षोऽन बताया गया है । इसी भाँति 'गणानात्वेति' इन पाँचों और 'आपोहिष्ठेति' इन तीनों को पवमान तथा सोलह ऋचाओं को पवमान कहा गया है । सभी देव यज्ञों में उस रात्रि के समय उसका ऊर्ध्वभाग, उपवन की प्रतिष्ठा में एक चौथाई और कूप की प्रतिष्ठा में एक ऋचा का जप करना चाहिए । १७६-१८०। अपने गृहोक्त सूक्त के विधानानुसार प्रत्येक कुण्डों में हवन करना चाहिए—ईक्षणादिक संस्कार एवं परस्पर की अर्चा के उपरांत प्रज्ञलित अग्नि में विधान पूर्वक वारीश्वरी समेत वारीश्वर देव (पार्वती-शिव) की पूजा पूर्वक हवन करना चाहिए । जिस देव के उद्देश्य से याग अथवा उसकी प्रतिष्ठा की जाये, उसमें उस देव के निमित्त सहस्र अथवा शत आहुति सबसे पहले प्रदान करनी चाहिए । तिल, धी, स्त्री या पत्र, पुष्प, अक्षत द्वारा विधान पूर्वक ग्रहों, इन्द्रेश्वर, मरुदगण और लोकपालों के लिए आहुति-प्रदान की जानी चाहिए, उसी भाँति सविधान विश्वकर्मा के लिए आठ-आठ समिधाएँ और इन्द्र, ईश्वर, एवं मरुदगणों के लिए तिल तथा धी की एक-एक आहुति उनके मन्त्रों द्वारा अर्पित करना बताया गया है । दिक्षापालों के लिये आठ-आठ आहुतियाँ एवं 'विश्वकर्मन्त्रिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक धी की तीन-तीन आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिए । पलाश अथवा पीपल की तीन समिधा प्रज्ञलित करके धी समेत एक-एक आहुति-प्रदान करना

शिवं प्रजापतिं विष्णुं दुर्गा च कनलामपि । सरस्वतीं च विद्यवत्युथिव्या हति पावकैः ॥१८९
 भूतेभ्योऽप्याहुर्ति दद्यादेवं मासद्वयं क्रमात् । अन्येषां मधुरात्केन तिललाजैर्यथाक्रमम् ॥१९०
 विष्णुं चैवं तु वायव्ये दुर्गायाश्च तथोत्तरे । कमलायाश्च ईशाने ईशानस्य सभूतकम् ॥१९१
 एककुण्डे तु एकस्मिन्नहोमं कुर्याद्यथाविधि । पक्षे वै पञ्चकुण्डे तु पूर्वदीनां क्रमेण तु ॥१९२
 एककुण्डे श्वान्कृत्वा कृत्वा बलभिदा सह । दक्षिणे क्रमतश्चैवं लोकेशं च तथैव च ॥१९३
 पश्चिमे यत्य यागस्य दुर्गायाश्चोत्तरे दिशि । ईशाने सूतयक्षमा च जुहुयादेशिकोत्तमः ॥१९४
 विष्वदिवेवतानां च अश्रुकुण्डे विधीयते । प्रश्नम् दिवसे कुर्याद्वितानां च स्थ॒पनम् ॥
 द्वितीये पूजनं कुर्याद्वोमं कुर्याद्यथाविधि ॥१९५
 बलिदानं वृतीये तु चतुर्थीकं चतुर्थके । नीराजनं पञ्चमे तु पञ्चाहसाध्यको विधिः ॥
 अहसाध्ये वृतीये तु नवाहे त्वय पञ्चमे ॥१९६
 उद्भूतमुखः प्राइमुखो वाप्यैशान्यादिक्रमेण तु । प्रादक्षिण्येन यज्ञं तु मन्त्रैः परिसमूहनम् !!
 मन्त्रपूर्वं साश्चिकानां निरग्नेस्तुष्टिकेन तु ॥१९७
 त्रिकुशेन महायागे विवाहादौ द्वित्त्रकम् । वैश्वदेवे त्वेकपत्रमिति साधारणो विधिः ॥१९८
 दिग्बिदिक्षु परिस्तीर्य महायागेषु सर्वदा । दिक्षु मात्रं नित्यके च विश्वदेवे तथैव च ॥१९९

बताया गया है । १८१-१८८! शिव, प्रजापति (ब्रह्मा), विष्णु, दुर्गा, कमला, सरस्वती, के निमित्त 'पृथिव्या इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सविधान आहुति-प्रदान करनी चाहिए । उसी प्रकार दो मास भूतों के लिए भी अन्य के लिए शहदमिश्रित तिल' लाजा (लावा), की आहुति-प्रदान करना बताया गया है । वायव्य कोण में विष्णु, उत्तर में दुर्गा, ईशान में कमला और भूतगण समेत शिव के लिये एक ही कुण्ड में एक साथ ही विधान पूर्वक हवन करना चाहिए तथा पाँच कुण्डों के निर्माण-विधान में पूर्वादि क्रम से आहुति-प्रदान करना कहा गया है । १८९ १९२। एक कुण्ड में बलभिद् के समेत ग्रहों की, तथा दक्षिण की ओर से क्रमशः लोकपाल, पश्चिम में उस प्रधान देव के जिसके उद्देश्य से यज्ञ आरम्भ किया गया हो उत्तर में दुर्गा, और ईशान में भूतयक्षमा के लिए आहुति-प्रदान करना चाहिए । १९३-१९४। उसी भाँति विष्णु आदि देवों के उद्देश्य से कुण्ड के अग्रभाग में आहुति-प्रदान करना बताया गया है । प्रथम दिन में देवों के स्थापन, दूसरे दिन पूजन एवं सविधान हवन, तीसरे दिन बलिप्रदान, चौथे दिन चतुर्थीक तथा पाँचवें दिन नीराजन प्रदान करना चाहिए, यह पाँच दिन के अनुष्ठान का विधान है उसी प्रकार तीन दिन के अनुष्ठान में तीसरे दिन, नव दिन वाले में नवें दिन और पाँच वाले में पाँचवें दिन नीराजन करना कहा गया है । उत्तरमुख अथवा पूर्वाभिमुख होकर ईशान आदि कोण के क्रम से प्रदक्षिणानुसार यज्ञ में मत्रों द्वारा परिसमूहन (कुश) कर्म अग्निहोत्री के लिये मंत्रपूर्वक और निरग्नि के लिये मौन होकर करना चाहिए । महायाग में तीन कुशाओं द्वारा, विवाहादिकर्मों में दो पते और वैश्वदेव विधान में एक पत्र रखकर उसे समाप्त किया जाता है, ऐसा साधारण विधानों में कहा गया है । महायागों में दिशाओं एवं विदिशाओं में नित्य एवं नैमित्तिक वैश्वदेव कर्मों में केवल दिशामात्र में कुश का स्तरण (विछाना) करना चाहिए नित्यकर्म बिना किये नैमित्तिक कर्म का अनुष्ठान न करना चाहिए, क्योंकि वैसा करने से वह

अकृत्वा कर्म नित्यं च वृद्धा नैमित्तिकं भवेत् । तस्मात्फलादैरपि तत्कृत्वा नैमित्तिकं चरेत् ॥२००
 प्रायश्चित्ते वैश्वदेवे सायंप्रातः ब्रतीषु च ॥२०१
 मारणोच्चाटहोमेषु तथा तङ्कल्पिताकृती । ग्रत्यवायकुले क्वापि तत्र नित्याकृतिं विना ॥२०२
 शतार्द्धं जुहुयाद्यत्र तत्र नित्यं दिवर्जयेत् । तूर्यहोमं ततः कृत्वा तूष्णीमेव जितेन्द्रियः ॥२०३
 प्रजपेदिन्द्रमधिं च सेमाय च यथाक्रमम् । ततस्तु समियाहोमं व्याहृतिस्तदनन्तरम् ॥२०४
 भूर्भुवः स्वाहेति तथा त्वन्न इत्यादि पञ्चकम् । अन्ते स्विष्टकृतं दद्याद्विधानं तस्य भोः शुणु ॥२०५
 घृताद्वृतिं स्विष्टकृच्च द्विजसंस्कारं कर्नेतुः । वृतेः स्विष्टकृतं दद्याद्यागादौ परिवर्जयेत् ॥२०६
 सर्वोष्ठ्युदकल्पानं करिदन्तोत्थमुष्णया । रथ्यवलम्बेकगोऽस्य तथाभ्यस्य तुरस्य च ॥२०७
 त्रिगन्धं च त्रिशीतं च कुशमूलत्यं सृत्तिकाः । निक्षिपेत्कलानकुम्भेषु आचार्यादीर्त्स्तु त्थापयेत् ॥२०८
 यजमानः पुरः कृत्वा इन्तकाष्ठपुरः स्त्रम् । रात्रौ च भक्ष्यभोज्यादैः परितोष्य यवाक्षतम् ॥२०९
 कृत्वा यथोक्तकालेन पूजयेत्तालयारया । ततः प्रभाते विमले स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥२१०
 स्नानमब्दैवतैर्वर्णन्त्रैः सूक्तेन पुरुषेण तु । वारुणेन च सूक्तेन सुरास्त्वादि यथाक्रमम् ॥२११
 सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणः प्रभुः ॥२१२
 आखण्डलोप्त्रिभर्गवान्यमो वै निर्ऋतिस्तथा । वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः ॥२१३
 ब्रह्मणां सहितः शेषो दिक्पालाः पान्तु ते तदा । कीर्तिर्क्षमीर्धतिर्मंडा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ॥२१४

निष्फल हो जाता है । इसलिये फलादि द्वारा उसकी समाप्ति करके नैमित्तिक कर्म करना बताया गया है । १९५-२००। प्रायश्चित्त कर्म, वैश्वदेव, सायं-प्रातः के प्रति कर्म, मारण, उच्चाटन के हवन एवं विघ्र ध्वसं कार्यों में नित्य कर्म नहीं भी किया जाता है, तथा पचास संस्था की आहुति प्रधान कर्म में भी । पश्चात् उस संयमी को मौन होकर सूर्य हवन-समाप्ति के अनन्तर इन्द्र, अग्नि, एव सोम के लिए जप और आहुति क्रमशः प्रदान करने पर समिधा हवन व्याहृति, 'भूर्भुवः स्वाहेति एवं त्वन्नइत्यदि' पाँच मंत्रों की आहुति देकर अन्त में स्विष्टकृत हवन करना चाहिए । उसका विधान में बता रहा हूँ सुनो ! द्विजों के संस्कार कर्मों में स्विष्टकृत हवन के समय धी की आहुति दी जाती है । परन्तु यज्ञ आदि कर्मों के अनुष्ठान में धी की आहुति द्वारा स्विष्टकृत हवन करने का निषेध किया गया है । २०१-२०६। समस्त औषधि मिश्रित उदक स्नान करना चाहिए, जिसके घर में गजदाँत द्वारा उभाडी गयी एवं गरम, गली की मिट्टी, वल्मीक (व्यमौर), गौओं के रहने की भूमि, अश्व के खुर के नीचे की मिट्टी, तीनों गन्ध, तीनों शीतकारक वस्तु, एवं कुश मूल की मिट्टी डाली गयी हो । तदुपरांत आचार्यादि व्यक्तियों के वरण एवं पूजन सुसम्पन्न करना बताया गया है । अपने समक्ष एकत्रित की हुई दातृत्व आदि से लेकर राशि के भक्ष्य भोज्यादि सामग्रियों द्वारा भली भाँति उन्हें सन्तुष्ट करने के उपरांत यजमान जवा और अक्षत के ग्रहण पूर्वक नियमित समय में उस तेल की धारा का स्नान करके प्रातः काल के निर्मल समय में सविधान स्नान सुसम्पादित करे । स्नान के समय वरुण देव के मन्त्रों, पुरुषसूक्त, और वारुणसूक्त के पाठ पूर्वक अभिषेकार्थ देवों की इस भाँति प्रार्थना करनी चाहिए—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, वासुदेव, जगन्नाथ, सङ्कर्षण, प्रभु, इन्द्र, अग्नि, भगवान्, यम, निर्ऋति (राक्षस), वरुण, वायु, कुबेर, एवं शिव, देव तुम्हारा अभिषेक करें, ब्रह्मा समेत शेष और दिक्पाल सदैव तुम्हारी रक्षा करें, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि,

बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः । एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समाहिताः ॥२१५
 आदित्यअन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कज्ञाः । ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ॥२१६
 देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसंश्नागाः । ऋषयो मनवो देवा देवमातर एव च ॥२१७
 देवपत्न्यो द्रुमा नामा दैत्याश्रामसरसां गणाः । इत्प्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनःनि च ॥२१८
 औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च दे । सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥२१९
 एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये । स्नानं समाप्य विधिवत्स्वगणेनानुलेपयेत् ॥२२०
 गवामष्टोत्तरशतं तदर्थं चाथ विशतिम् । आचार्यायाभिष्ठाय प्रदद्यादभिषृजयन् ॥२२१
 ततः प्रभाते विमले जले समवतारयेत् । शुद्धां च कपिलां दोरधीं घट्टचामरवर्जिताम् ॥२२२
 स्नानगाय ततो दद्यात्सुवर्णदक्षिणान्विताम् । यूपमादाय संस्थाप्य स्नागयेद्वारुणं जपन् ॥२२३
 अच्छेवतेन मन्त्रेण गायत्र्या तदनन्तरम् । रोचनाभिस्त्रिरत्ने तथा कुम्भोदकेन च ॥२२४
 पर्वताग्रमृदा तोयनागवत्मीकज्ञातयः । गजदन्तमृदा चैव कूलमूलतमृदा तथात ॥२२५
 पुष्पोदकेन शङ्खेन तथा रत्नोदकेन च । दध्यक्षतेन दुर्धने घटेन शतधारया ॥२२६
 सुगन्धेन त्रिशीतेन विलिप्य च समाहितः । दामयेत्कांस्यमूलं च दद्याल्लोहमयं च वा ॥२२७
 माल्यवस्त्रैरलङ्घत्य पूजयेद्गन्धचन्दनैः । ईशावा इति मन्त्रेण दद्यात्पुष्पाञ्जलित्रयः ॥२२८

श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, वपु, शांति, तुष्टि, कांति औ माताएँ ये सभी देवाङ्गनाएँ निश्चल मनोयोग द्वारा तुम्हारा अभिषेक करें । २०७-२१५। आदित्य, चन्द्रमा, भौम, बुध, बुहस्पति, शूक्र, शनि, राहु एवं केतु ग्रहगण प्रसन्न चित्त से तुम्हारा अभिषेक करें तथा देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मनुदेव, देवमाताएँ, देव पत्नियाँ, वृक्ष, पर्वत, दैत्य, अप्सराएँ, सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र, राजा लोग सभी वाहन, औषधि, रत्न समय के अवयव, सरिताएँ, सागर, शैल, तीर्थ, जलद नद, ये सभी समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिए तुम्हारा अभिषेक करें । इस प्रकार विधिवत् स्नान करने के उपरांत अपने अनुचरों द्वारा अनुलेपन कराना चहिए । तदनन्तर आचार्य के लिए उनकी अर्चा करते हुए एकसौआठ, चौवन, अथवा बीस गायें अर्पित करना चाहिए । २१६-२२१। पश्चात् प्रातःकाल के स्वच्छ समय में जलावतरण करके शुद्ध, दूध देने वाली, एवं धंटा चामर शून्य उस कपिला गाय को सुवर्ण की दक्षिणा समेत सामग्रायक विद्वान के लिए सुसमर्पित करना चाहिए । यज्ञीय यूप (स्तम्भ) को भूमि में स्थापित करके 'वारुण' मन्त्र 'अच्छेवत' एवं गायत्री मन्त्र के जप पूर्वक गोरोचन तथा तीन रत्नों से विभूषित उस कलश के जल द्वारा स्नान कराना चाहिए, जिसमें पर्वत के अग्रभाग, जल (संगम) गजस्थान, बल्मीक (व्यमौर), गजदाँत द्वारा खोदी हुए, एवं नदी तट की मिट्टी पड़ी हो, और पुष्पोदक, शंख, रत्नोदक, दही, अक्षत, एवं दुग्ध डाला गया हो । उस घट की अविरल धारा से स्नान कराने के उपरांत सुगन्धित तीनों शीत कारक वस्तुओं के लेपन करके उसके मूल भाग में कंसाया लोहा लगाकर माला, वस्त्र से उसे मनमोहक बनाये, पश्चात् गन्ध चन्दन से उसकी पूजा करनी चाहिए । तदनन्तर 'ईशावा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे तीन पुष्पाञ्जलि अर्पित करना चाहिए । २२२-२२८। तथा 'पुनस्त्वादिति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए पुष्प प्रदान

पुनस्त्वादिति मन्त्रेण पुनः पुष्पं समुत्सृजेत् । प्रादेशमात्रविस्तारं मध्ये वृत्तं षड्गुलम् ॥२२९
 कांस्यचक्रस्य मानं तु ऊर्ध्वं यद्द्वादशाङ्गुलम् । तद्वर्षे विलिखेच्छूलं चतुरड्गुलमानतः ॥२३०
 अङ्गुष्ठहीने लोहस्य तत्र शूलं न कारयेत् । ततो मङ्गलपूर्वे तु द्विजातीनां मतेन च ॥२३१
 समुत्सृजेच्च प्रासादं तडां च विशेषतः । चतुर्दशै गृहीत्वा तु ईशानाभिमुखेन तु ॥२३२
 समुत्सृजेत्ततः पश्चाद्वाक्यमेतदुदीर्घेत् ॥२३३
 ओमित्यादिश्रीङ्गुणद्वैपायनाभिधानवेदव्यासप्रणीतभविष्यपुराणोऽकलप्राप्तिकामश्वतुष्कोणाद्य
 वच्छिन्नमत्कारितपुष्करिणीजलमेतद्वृजितं गन्धपुष्पाद्यचितं वश्णवैवतं सर्वसत्त्वेभ्यः स्नाना-
 वगाहनार्थममुत्सृजे ॥२३४
 ततो वरुणसूक्तेन वरुणं नागसंयुतम् । मकरं कच्छणं चैव तोयेषु परिनिक्षिपेत् ॥२३५
 पूजयेद्वरुणं देवमध्यं दद्याद्विशेषतः । तेनोदकेन संनाप्य गजदन्तोत्थमृत्सन्या ॥२३५
 इवेताश्वसुरसमूहतं श्रीश्वतेति च सञ्जपन् । आप्यायस्वेति मन्त्रेण सृदं चतुष्पथोद्द्वाम् ॥२३६
 तद्विष्णोरिति मन्त्रेण कुशमूलेन स्थापयेत् । तीर्थतोयेन गन्धेन तथा पञ्चामृतेन च ॥२३७
 गायत्र्या स्नापदेवं रत्नतोयेन साधकः । आप्यायस्वेति मन्त्रेण क्षीरेण तदनन्तरम् ॥२३८
 दधिक्रावणेति दध्ना च मधुवातेति वै मधु । सरस्वत्यान्तेति जातीपुष्पतोयेन स्नापयेत् ॥२३९

करना कहा गया है। उस यूप का दिस्तार प्रादेशमात्र और उसके मध्य में छः अंगुल का वृत्त बना रहता है। कांस्य चक्र के ऊपरी भाग के जो बारह अंगुल के मान का होता है, ऊर्ध्व भाग में चार अंगुल के मान का एक शूल का निर्माण करना चाहिए। यदि वह अंगुठे से भी हीन हो, तो उसे लोहे का शूल न बनाना चाहिए। उसके पश्चात् मांगलिक सूक्ति पूर्वक द्विजातियों की सम्मति से महल विशेषकर तालाब में चार कुश लेकर ईशान कोण के सम्मुख उसे डाल कर इस भाँति करे—ॐ श्रीकृष्ण द्वैपायन नामक वेदव्यास प्रणीत भविष्य पुराण में बताये गये फलप्राप्ति के लिए अविच्छिन्न चार कोण वाली भेरे द्वारा निर्माण करायी गयी इस बावली के जल को, जो गंध पुष्प द्वारा अर्पित, तथा जिसके वरुण देवता हैं, सभी प्राणियों के स्नानार्थ मैं उत्तर्जन कर रहा हूँ। उसके अनन्तर वरुण सूक्त के उच्चारण पूर्वक नागसमेत वरुण, मकर (मगर) एवं कछुवे को उस जल में डाल देना चाहिए। २२९-२३४। वरुण देव की पूजा के उपरांत उन्हें विशेषकर अर्ध्य प्रदान करना चाहिए। उनका स्नान उस कुम्भोदक से होना चाहिए जिसमें गजदाँत से खोदी हुई मिट्टी पड़ी हो। तथा श्वेत रंग के घोड़े के सुर की मिट्टी भी पड़ी हो, और 'भी श्रीश्वतेति' तथा 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक चौराहे की मिट्टी उसमें डालनी चाहिए। 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र द्वारा उस कुश के मूलभाग में स्थापित करके तीर्थ-जल, पञ्चामृत (गाय के दूध, दहो, धी, शहद और शक्कर) से स्नान कराने के उपरान्त गायत्री के उच्चारणपूर्वक रत्न जल से स्नान कराना चाहिए, उसके पश्चात् 'आप्यायस्वेति' इस मंत्र द्वारा क्षीर, 'दधिक्रावणेति' इसके उच्चारण पूर्वक दही, 'मधुवातेति' इस मन्त्र का उच्चारण कर मधु, 'सरस्वत्यान्तेति' इसका उच्चारण करके जूही पुष्प के जल से क्रमशः स्नान कराना बताया गया है। 'वरुणोत्तममिति' इस मंत्र के नारायण कृषि, गायत्री छन्द, वरुण देवता

(वरुणोत्तमिति मन्त्रस्य नारायण ऋषिः गायत्री छन्दो वरुणो देवता वरुणप्रीतये विनियोगः । श्रीश्च
ते इति मन्त्रस्य कर्दमऋषिः पद्मिक्तश्छन्दः सरिहेवता अश्वसुरमुदा स्नाने विनियोगः । आप्यायस्वेति
मन्त्रस्य पर्वत ऋषिः उष्णिकछन्दः सरस्वती देवता वरुणश्चीतये चुच्छथमृदः स्नाने विनियोगः ।
तद्विष्णोरिति मन्त्रस्य सैनाक ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सरस्वती देवता वरुणप्रीतये कुरुमृदास्नाने
विनियोगः । कथात् इति मन्त्रस्य वसिष्ठ ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सोनोऽदेवता वरुणप्रीतये नानगन्धस्नाने
विनियोगः । तेजोसीति मन्त्रस्य गर्भा ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः वासवो देवता वरुणप्रीतये विनियोगः ।
सरस्वत्यै भैषज्येनेति मन्त्रस्य वामदेव ऋषिः पद्मिक्तश्छन्दो विष्णुर्देवता वरुणप्रीतये विनियोगः ।
पुष्पोदकस्नाने । अप्र आयाहीति मन्त्रस्य जनार्दन ऋषिः जगतीछन्द ऐन्द्री देवता वरुणप्रीतये
विनियोगः ॥)

प्रक्षिपेत्य-ब्रह्मीर्हीश्च इदंचेति च सम्पठन् । पश्चात्रीराजनं कुर्यात्पञ्चधोषपुरःसरम् ॥२४०
शिरीषपुष्पसम्भूतं दर्पणं कांस्यसम्भवम् । गोपीचन्दनसम्भूतं गङ्गामृत्तिकायाथवा ॥
कृष्णां गां गोमयं वापि त्वस्तिकं शङ्खसेव च ॥२४१
कारयेत्पदकं वापि द्ववगोधूमकस्य वा । उत्पन्नसर्वासम्भूतं कलशं माषसम्भवम् ॥
श्रीरसं पुष्पसम्भूतं दर्पणं कांस्यसम्भवम् ॥२४२
नन्द्यावर्ते मलयजे ततो निर्मलयेत्सुधीः । एकैकं प्रतिमन्त्रेण प्रत्येकं तु जलोपरि ॥२४३
ध्रुवप्रतिकृतैर्मन्त्रैरष्टभिश्च यथाक्रमम् । पूर्वाक्षितं माषभक्तबलिं दद्याद्विधानतः ॥२४४

हैं, वरुण के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उपयोग करना चाहिए । ‘श्रीचत्तेति’ इस मंत्र के कर्दम ऋषि, पंक्ति
छन्द, सरित देवता हैं, अश्व सुर से खोदी हुई मिट्टी के स्नान में इस विनियोग का उपयोग किया जाता है ।
‘आप्यायस्वेति’ इस मंत्र के पर्वत ऋषि, उष्णिक छन्द, सरस्वती देवता हैं, वरुण के प्रसन्नार्थ चौराहे की
मिट्टी-स्नान में इस विनियोग का उच्चारण किया जाता है । ‘तद्विष्णोरिति’ इस मंत्र के मैनस्क ऋषि,
त्रिष्टुप् छन्द, सरस्वती देवता हैं, वरुण के प्रीत्यर्थ कुश की मिट्टी के स्नान में यह विनियोग उपयुक्त होता
है । ‘कथात् इति’ इस मंत्र के वशिष्ठ ऋषि, अनुष्टुप् छन्द सोम देवता हैं, वरुण के प्रसन्नार्थ नाग-गन्ध के
स्नान में इस विनियोग का प्रयोग किया जाता है । ‘तेजोसीति’ इस मंत्र के भर्ग ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द,
वासव देवता हैं, वरुण के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । ‘सरस्वत्यै भैषज्येनेति’
इस मंत्र के वाम देव ऋषि, पंक्ति छन्द, विष्णु देवता हैं, वरुण के प्रसन्नार्थ इस विनियोग का प्रयोग करना
चाहिए । पुष्पोदक के स्नान में उच्चारित किये जाने वाले ‘अग्निआयाहीति’ इस मंत्र के जनार्दन ऋषि,
जगती छन्द, ऐन्द्री देवता हैं, वरुण की प्रसन्नता के लिए इस विनियोग का उच्चारण करना चाहिए । ॐ
पश्चात् ‘इयञ्चेति’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पाँच धान्यों का प्रक्षेप करके अनन्तर पाँच वाद्यों के घोष
समेत नीराजन करना चाहिए । २३५-२४० । शिरीष पुष्प जनित, दर्पण, कांसे, गोपी चन्दन, गंगा मिट्टी,
कृष्ण वर्ण की गौ, गोबर, स्वस्तिका, शंख, जवा अथवा गेहूँ के पदक (स्थान) बनाकर स्वर्ग सम्भव कलश,
माष सम्भव, पुष्प जनित श्रीरस, दर्पण, कांसे को मलयज नन्द्यावर्त में निर्मल करके विद्वान् को चाहिए
कि जल के ऊपर मंत्रोच्चारण पूर्वक इन एक-एक को प्रदान करके अक्षत समेत पाक किये हुए उरद की
बलि सविधान अर्पित करनी चाहिए । उपरांत ‘नारायण सूक्त के उच्चारण करके नारायण देव

ततो नारायणसूक्तेन देवं नारायणं द्रजेत् । अन्येषां चैव देवानां प्रदद्यात्तिव्रशं ब्रह्म ॥२४५
 तत आचमनीयं च वस्त्रयुग्मं निवेदयेत् । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण क्रमेणात्पि विधानतः ॥२४६
 पृथक्पृथक्ततो दद्यात्तावंत्येनापि भो द्विजाः । वेदसूक्तसमायुक्ते यज्ञसूक्तसमन्विते ॥
 सर्ववर्गप्रहे देव वाससी ते विनिर्भिते ॥२४७
 शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च । मया निवेदितानान्धस्त्रियृहृ च विलिप्यताम् ॥२४८
 अन्योत्तरशतान्दीपान्वरितः स्थापयेत्कमात् । तदर्थं वा पञ्चविंशं मन्त्रेण प्रयजेत्सुधीः ॥२४९
 त्वं सूर्यचन्द्रज्योतीषिविषादस्त्वं तथैव च । त्वं चेव सर्वज्योतीषिदीपोऽयं ब्रतिगृह्यताम् ॥२५०
 प्रदक्षिणं ततः कुर्यात्पञ्चधा सप्तधाथवा । वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण दद्याद्गूपं दशाइगकम् ॥२५१
 वनस्पतिरसौ दिव्यो गन्धाद्गः सुरभिः शुचिः । मया निवेदितो भक्त्या शूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥२५२
 अलङ्कारैश्च गन्धैश्च पीतवस्त्रैस्तथैव च । द्वाक्षितेन माल्येन युक्तं पुष्पेण पूजयेत् ॥
 दद्यात्पञ्चाङ्गजिलं पश्चाद्विष्णुसूक्तं पूनर्जपेत् ॥२५३
 ततः सुशोभने स्थाने वेदों निर्माय देशिकः । वरुणं विन्यसेत्तत्र तथा युज्करिणीमपि ॥२५४
 विवाहोत्तेन विधिना कुर्यात्तिर्मञ्छनादिकम् । गन्धपुष्पं ततो दद्याद्गां च दद्यात्सदक्षिणाम् ॥२५५
 चामरं व्यजनं छत्रं कांस्यं लोहं तथैव च । कुर्यात्पुष्करिणीं रम्यां राजतीं च त्रिपादिकाम् ॥२५६

की बलि अर्पितपूर्वक अन्य देवों के लिए भी तीस बलि प्रदान करनी चाहिए । २४१-२४५। अनन्तर आचमनीय जल और दो वस्त्र मंत्रोच्चारण पूर्वक सविधान समर्पित करना चाहिए । द्विजगण ! प्रत्येक देवों के लिए पृथक्-पृथक् सभी वस्तुएँ प्रदान करनी चाहिए । देव ! वेदसूक्त समन्वित, यज्ञसूक्त युक्त, एवं समस्त वर्ण प्रदायक इस वस्त्र को आप के लिए समर्पित कर रहा हूँ और मैं आपके शरीर को नहीं जानता, और चेष्टा तो नितान्त ही नहीं जानता हूँ, अतः मेरे द्वारा प्रदान किये गये गन्ध को स्वीकार कर उसका लेपन कीजिये । पश्चात् उसके चारों ओर एक सौ आठ दीपों को प्रज्वलित करना चाहिए । उसके अभाव में पचास अथवा पच्चीस ही दीपक का प्रदान विद्वान् को समन्वक करना बताया गया है । 'तुम्हीं सूर्य चन्द्रमा की निर्मल ज्योति हो, विषाद (निर्मल) एवं समस्त ज्योति हो, अतः इस दीपक को ग्रहण कीजिए । २४६-२५०। सात अथवा पाँच प्रदक्षिणा करने के अनन्तर दशांग धूप मंत्रोच्चारण पूर्वक विधानानुसार प्रदान करना चाहिए । वनस्पति के इस दिव्य, गंधपूर्ण, सुगन्धित, पवित्र, इस धूप को मैं भक्ति पूर्वक अर्पित कर रहा हूँ, इसे स्वीकार कीजिये । आभूषण, गन्ध, पीत वस्त्र, द्रवा, अक्षत, माला और पुष्पों से उनकी अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत पाँच अञ्जलि उन्हें प्रदान कर पश्चात् विष्णु सूक्त का पाठ करना चाहिए । २५१-२५३। तदुपरांत सौन्दर्य पूर्ण वेदी का निर्माण करके उस पर वरुण और पुष्करिणी को स्थापित करके विवाह विधान द्वारा निर्मञ्छनादिक क्रिया के अनन्तर गन्ध, पुष्प, एवं दक्षिणा समेत गौ का दान करना चाहिए । द्विजवृन्द ! चामर, व्यजन (पंखा), छत्र, कांसा, या लोहे अथवा चाँदी की तीन चरण वाली एवं रम्य पुष्करिणी का निर्माण करना चाहिए जिसकी प्रतिमा चौकोर, परम मनोहर, दो अंगूठे के समान चारों ओर का मण्डल, एवं सौन्दर्य पूर्ण माला की रचना हुई

चतुष्कोणां च सुषमां द्वयज्ञगुणपरिमण्डलात् । सुवर्णप्रतिमां कुर्याद्गुलेनैकेन भो द्विजाः ॥२५७
 अथवा स्वर्णपत्रे च कुड्कुमेन तले लिखेत् । बाणशक्तिप्रमाणेन स्वर्णपत्रं तु द्वयज्ञगुलम् ॥२५८
 कारयेच्चतुरब्दं च पीठोपरि न्यसेद्बुधः । नीराजनान्ते विप्रेन्द्राः संसरेदमृतं तरेत् ॥२५९
 अशक्तेन तथैवैककाष्ठे वा पिप्पलच्छदे । ताम्रपटे लिखेद्वापि अलक्षेन यथाविधि ॥२६०
 प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् वरुणाय निदेशेत् । महं वत्सरं कुर्याद्विद्घोषदुरः सरम् ॥२६१
 अशोकः शास्त्रो ह्यवस्थो विलक्षस्तथा । धात्री कुरुब्रह्मश्रैव बकुलो नामकेशः ॥२६२
 एषामेव काष्ठयूपं यजमानप्रनाणकम् । समादाय च संस्थाप्य वस्त्रादैः प्रतिगृह्य च ॥२६३
 यूपं रक्षेति मन्त्रेण खनित्वा च प्रदापयेत् । स्थिरो भवेति मन्त्रेण हस्तं दत्त्वा पठेत्ततः ॥२६४
 तडागस्य तथैशान्दां तथा प्रासादकस्य च । प्रापयेद्वक्षिणे भागे आदासस्य च मध्यके ॥२६५
 नौकां गत्वा ततः पश्चाद्यूपमादाय वाग्यतः । मध्यदेशे तडागस्य समुल्लङ्घ्य तथोत्तरम् ॥२६६
 गन्तव्यं प्रकल्प्य तत्रैव आप्यायस्वेति वै ऋचा । शिलायां होमयेत्तत्र हुनेव्रौकाहुतिश्यम् ॥२६७
 अङ्गदाय स्वाहेति भौमाय नम इत्यतः । लाजाशक्तौ दधिमधौ वासने प्रतिहोमयेत् ॥२६८
 कूर्माय नम इत्युक्त्वा पृथिव्यै नम इत्युत । स्वाहेत्यनन्तमन्त्रेण दद्यादर्घ्यमनन्तरम् ॥२६९
 पञ्चरत्नेन गन्धेन शङ्खेनार्घ्यं प्रदापयेत् । चतुरब्दं समाकीर्णं चतुर्दिक्ष्वयृतैर्जनैः ॥२७०
 कल्पयेद्वोपयेतत्र हस्तं दत्त्वा पठेदिदम् । स्थिरो भवेति मन्त्रेण गन्धपुष्टैः प्रपूजयेत् ॥२७१

हो । अथवा दो अंगुल के सुवर्ण पत्र में कुंकुम द्वारा बाण शक्ति के प्रमाणानुसार चौकोर उसकी प्रतिमा का निर्माण करके उस पीठासन पर विद्वान् को प्रतिष्ठित करना चाहिए । विप्रेन्द्र, ! नीराजन के अन्त में उसका ध्यान एवं जल स्मरण करना बताया गया है । यदि इन धातुओं की प्राप्ति में असमर्थता प्रकट हो, तो एक काष्ठ, पीपल के पत्ते, अथवा ताँबे के ऊपर महावर द्वारा विधान पूर्वक उसका निर्माण करना चाहिए । २५४-२६०। उस प्रतिमा की प्राण प्रतिष्ठा करके उसे वरुण को सादर समर्पित करने के उपरांत वेद ध्वनि पूर्वक उसका वार्षिकोत्सव करना चाहिए । अशोक, खेर, सातू, पीपल, बेल, आँवला, कुरुबक (रक्त पुष्ट), बकुल (मौलिकसिरी), और नागकेशर इन्हीं काष्ठों का यूप (स्तम्भ) यज्ञ मान के प्रमाणानुरूप बनाकर वस्त्र से आवेष्टित करके 'धूपं रक्षेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक भूमि के गढ़े में उसे प्रतिष्ठित करना चाहिए और पुनः उस पर 'स्थिरोभवेति' ऐसा कहते हुए हाथ में रखकर इस प्रकार कहे कि—तालाब के ईशान कोण में एवं महल के दक्षिण ओर निवास स्थान के मध्यभाग में सदैव स्थिर रहे । पश्चात् मौन होकर नौका द्वारा उस यूप (स्तम्भ) को लेकर (जलाशय के) उत्तर भाग को पार करके तालाब के मध्य प्रदेश में मार्ग (आसन) आदिकी कल्पना पूर्वक शिला के ऊपर 'आप्यायस्वेति' इस ऋचा के उच्चारण करते हुए हवन करना चाहिए और तीन आहुति उस नौका के लिए भी 'अंगदाय स्वाहा' भौमाय नम इति' इस प्रकार कहकर आहुति प्रदान करे । लाजा (लावा) के अभाव में सुवासित दही, शहद का हवन करना चाहिए 'कूर्माय नमः, पृथिव्यैनमः स्वाहेति, कहकर आहुति प्रदान के उपरांत पञ्चरत्न, गन्ध, एवं शंख समेत उस अर्घ्य को इस भाँति अंपित करना चाहिए, जो चौकोर के रूप में आकीर्ण और जिसका स्पर्श कोई मनुष्य न कर सके । २६१-२७०। इस भाँति उसकी कल्पना एवं आरोप करके

चक्रं सर्वणं दद्यान्नागदण्डशिरो गतः । विद्युदश्च च कर्तारं प्रहृष्टःखहरिप्रियम् ॥२७२
 एवं चक्रं पूजयित्वा शूलं नागांश्च पूजयेत् । उच्चैर्धर्वजं ततः कृत्वा न नागेति च सम्पटेत् ॥२७३
 गायत्रेति मन्त्रेण पठेद्वारद्वयं ततः । दिक्षासेष्यो बलि दद्यान्नमावभक्तं गुडौदनम् ॥२७४
 दक्षमुष्यान्तिं कृत्वा प्रणिपत्य प्रसादयेत् । सहस्रं वा धनं दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥२७५
 ततो भोज्यं सर्वपिश्च सहिरण्यं एथाविधि । इक्षुस्वस्तीतिकां दद्याज्ञले मातृश्च पूजयेत् ॥२७६
 मन्थरां वसुतां कान्तां राक्षसीं च पिशाचिकाम् । नागिनीनागपुत्रांश्च मध्ये सम्मूलयेत्ततः ॥२७७
 दूर्णन्ले च पृथगदद्याल्लाजाद्यर्घुडमिश्रितैः । इन्द्रो बलवतीं स्थाहा वशो बलवतामपि ॥२७८
 बृहत्पक्षाविशेषोऽयं मध्यमे च कनोदके । बृहस्पते च इन्द्राय तव देवलतामिति ॥२७९
 स्वाहेति जुहुयात्पञ्चात्प्रणीतां चालयेत्ततः । कनिष्ठपक्षे प्रासादे तथा चैव जलाशये ॥२८०
 मन्दरे त्रौणस्त्वैव विष्वक्सेनं प्रकल्पयेत् । आरामे च तथा सेतां विशेषः पञ्चनो द्विजाः ॥२८१
 पूजान्तरेण यः कस्य जपेन्मन्त्रसहस्रकम् । स्तुति समाप्तं विधिवदिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥२८२
 सर्वसत्त्वेभ्य उच्छिष्टमपि तज्जलमुदृतम् । इति पठित्वा गुरुकरिणीजलं हस्ते गृहीत्वा जले क्षिप्ते ॥२८३
 ततो जलमातृम्यो नम इति जलामातृः प्रपूजयेत् । त्रैलोक्ये यानि स्थानानि स्थावराणि चराणि च ॥२८४
 तेषामाप्यायनायैतज्जलमुत्सृज्यते मया । मात्रे तु कृतमेतत्ते जगदानन्दकारकम् ॥२८५

उस पर हांथ रख 'स्थिरोभवेति' ऐसा कहकर पश्चात् गन्ध पुष्प द्वारा उसकी अर्चा सुसम्पन्न करना चाहिए । उसके अनन्तर दर्पण समेत चक्र अपित करना चाहिए, जो नाग दण्ड के मूल भाग पर स्थित, विद्युत की भाँति प्रकाशक, कर्ता, के दुःख स्वरूप, और हरि को प्रिया हैं । इस भाँति चक्र अर्चा सादर सम्पन्न करके शूल और नागों की पूजा करनी चाहिए, पश्चात् उस ध्वजा को ऊपर फहराकर 'न नागेति' एवं 'गायत्रेति' इन मंत्रों के दोदार पाठ पूर्वक दिक्षापालों के लिए पाक किया उरद, गुडमिश्रित भात (मीठाभात) की बलि स्वर्णे के पृष्ठ समेत सादर प्रदान करना बताया गया है, पुनः सहस्र की संख्या में धन किसी कुटुम्बी ब्राह्मण को अपित करके धी, एवं हिरण्य समेत भोज्य तथा विधानानुसार ऊख की स्वास्तिका के समर्पण पूर्वक जल में मातृपूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए । २७१-२७६। मंथरा, मध्यभाग में वसुता, कांता, राक्षसी, पिशाचिका, नागिनी और नागपुत्रों के दिन पृथक्-पृथक् गुडमिश्रित लावादि की आहुति 'इन्द्राय स्वाहा' कहते हुए प्रदान करनी चाहिए । यह बृहस्पत का विशेष विधान बताया गया है, मध्यम और कनिष्ठ पक्ष में 'बृहस्पतये' इन्द्राय, तुम्यं, और देवलतायै स्वाहेति' इस भाँति कहकर आहुति प्रदान के अनन्तर प्रणीता संचालन करना चाहिए । कनिष्ठ पक्ष, महल, जलाशय एवं मन्दर उपवन और सेतु निर्माण में विशेषकर तोरण की ही विष्णु प्रतिमा बनायी जाती है, पूजा के पश्चात् सहस्र मंत्रों के पाठ पूर्वक इस स्तुति क्रिया का विधिवत् सम्पादन कर इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए तज्जलमुदृतम् ऐसा कह कर पुष्करिणी जल कोहाथ में लेकर जल में डाल देना चाहिए । तदनन्तर 'जलमातृम्यो नम इति' इस प्रकार कहते हुए जल मातृकाओं की पूजा करके इस भाँति विनाश भाव प्रदर्शन करके कितीनों लोक में जितने चर अचर स्थान कल्पित हैं, उनके वृद्धयर्थ इस जल का त्याग मैं कर रहा हूँ, इस प्रकार माता के लिए यहत्यक्त जल जगत् के लिए कल्पाणप्रदायक हो । २७७-२८५। समस्त

शिदाय सर्वभूतानां सदा पाहि जलाशयम् । पिबन्तो हृदगाहन्तः सुखिनः सर्वजन्तवः ॥२८६
 जलं विश्वेषपकाराय कृतमेतन्मया सदा । कीर्तिस्तिष्ठतु मे देवाश्चिरराय धरणीतले ॥२८७
 त्वत्प्रसादान्महाभाग नागराज नमोऽस्तु ते । येऽङ्ग केचिद्विषयन्ते चक्रकर्मफलभोजनाः ॥२८८
 तेषां दोषैर्न लिप्येऽहं स्वं स्वं गम्यमवास्थात् । नारायणो जगत्प्राणः सर्वकामप्रदायकः ॥२८९
 अपेया मातरः सन्तु जगतां वृक्षयोन्यः । अपाम्पते रसायात्र यादसामीच्चर प्रभो ॥२९०
 वरुणास्यासने कीर्ति सनातन नमोस्तु ते । तत्तोयं निदिवद्याद्विक्षिणार्थं द्विजन्मने ॥२९१
 मुवर्णं रजतं दद्यादनड्डाहं पयस्त्विनीम् । दद्यादधनुद्धयं पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥२९२
 बह्लिपूजां पुरस्कृत्य मन्त्रेण प्रशयेत्ततः । पितृङ्गां दापयेदर्घ्यं ततो देवं प्रसादयेत् ॥२९३
 बिम्बमुद्रां पद्ममुद्रां नागमुद्रां प्रदर्शयेत् । वैश्वानरा इति ऋचा पूजां कृत्वा विवर्जयेत् ॥२९४
 यस्ते प्राणाञ्जपन्यश्चात्प्रकुर्यादिथ चन्दनम् । प्रदक्षिणं ततः पश्चात्तडागस्य शृणु द्विजाः ॥२९५
 ब्राह्मणान्युरतः कृत्वा देवघोषं समुच्चरन् । महामङ्गलपूर्वेण प्रविशेद्वद्वनं सुधीः ॥२९६
 ततो गृहार्चनं कुर्याद्ब्राह्मणानां च भोजनम् । दीनानां छृण्णानां च सवित्रेऽर्घ्यं निवेदयेत् ॥२९७
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वग्नि द्वितीयभागे देवग्रहपूजनविधान-

वर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः । १९

प्राणियों के कल्याणार्थ इस जलाशय की सदैव रक्षा कीजिए, जिससे इस जलाशय के जल का पान एवं स्नान करके सम्पूर्ण जीव सुखी हों । हे देववृन्द ! समस्त विश्व के उपकारार्थ मैंने इसका निर्माण कराया है, अतः इस भूतल पर मेरी कीर्ति चिरकाल तक स्थित रहे । हे महाभाग, नागराज ! आपकी ही अनुकम्पा वश मैं इस कार्य को मुसम्पन्न कराने में समर्थ हुआ, अतः (हे) नागराज तुम्हें नमस्कार है । अपने जन्मान्तरीय कर्मानुसार जिसका इस महाराजभ में निधन हो गया है, उनका दोषभागी मुझे न होना पड़े क्योंकि प्राणियों को अपने अपने कर्म फलों की प्राप्ति होती है नारायण जगत् के प्राण और समस्त कामनाओं की पूर्ति करते हैं । संसार में वृक्ष योनि के जीव और माताओं के लिए यह वृत्पिकारक हो, हे जलपते, इस और चराचर के अधिनायक प्रभो, वरुण के आसन, मेरी कीर्ति स्वरूप, सनातन, तुम्हें नमस्कार है, उस जल को दक्षिणा की भाँति ब्राह्मणों को प्रदान करना चाहिए । २८६-२९१। सुवर्ण, चाँदी, बैल, दूध देने वाली दो नौका दान करके पश्चात् ब्राह्मण को प्रसन्न करना चाहिए । अग्नि पूजन समाप्ति के उपरांत प्राशन कर्म, पितरों के लिए अर्घ्य, एवं देवों को प्रसन्न करना चाहिए । बिम्बमुद्रा, पद्ममुद्रा, और नागमुद्रा प्रदर्शन के अनन्तर 'वैश्वानरा इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक पूजन 'यस्ते प्राणान्' का जप, चन्दन लेप और प्रदक्षिणा करनी चाहिए । द्विजवृन्द ! सरोवर का (प्रतिष्ठा विधान) बता रहा हूँ, सुनो ! वेदपाठी ब्राह्मणों को, जिसकी वेदध्वनि द्वारा आकाश मंडल गूँज रहा हो, समुख करके महामङ्गल कर्मानुष्ठान द्वारा विद्वान् को उस भवन में प्रवेश करना बताया गया है । उसके उपरांत गृह अर्चन ब्राह्मण भोजन एवं दीन हीन, कायरों को प्रसन्न करते हुए सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । २९२-२९७

श्री भविष्यमहापुराण के मध्यम-पर्व के द्वितीय भाग में देवग्रह पूजन विधान वर्णन

नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त । १९।

अथ विंशोऽध्यायः

मध्यमविधानवर्णनम्

सूत उवाच

सप्ताभिष्ठोमको नाम हृत्तनः कथितो विधिः । मध्यमे मध्यमफलं कनिष्ठे तु कनिष्ठकम् ॥१
 अधुना मध्यमं श्रद्धये विधिं शास्त्रानुसारतः । यथाविभवयागेन यत्कर्तव्यं नरेण वै ॥२
 सत्त्वोऽधिवास्तकलयेन यूपादीनविधात्य च । त्रूदिस्मशेव दिवसे दैवज्ञकशिते शुभे ॥३
 नुहर्ते कलशं स्थाप्य सङ्गृहूण् गणनायकत् । स्थाप्येत्प्रथमं यूपमापोहिष्ठेतिमन्त्रकः ॥४
 शनो देव्यास्त्ततः पश्चाद्गन्धद्वारेति गन्धकम् । श्रीसूक्तेन ततो दद्यात्पुष्टं दूर्वक्षितं ततः ॥५
 काण्डादिति च मन्त्रेण ततो धूपं निवेदयेत् । ये गृह्णामीति च ऋचा पूजायां स्थापयेत्ततः ॥६
 विवाहविधिः सर्वं कार्यं नैवाधिवासनम् ॥७

सर्वमेव प्रयुञ्जीत तडागादिषु पण्डितः । अधिवास्य तडागादीनाचार्यादीनश्च सर्वशः ॥८
 सङ्गृहा गन्धपुष्टाचैर्धूपैर्दीपैः सुशोभनैः । ततः प्रभातसमये नित्यं निर्वर्त्य शास्त्रतः ॥९
 वृद्धिश्राद्धं ततः कुर्यान्मातृपूजापुरः सरम् । अलङ्कृत्य यथाशक्तिं आचार्यादीश्चरेहृष्टः ॥१०
 शृणुयत्पत्तिश्च मागे मण्डपस्य समीपतः । मङ्गदेशे समुद्भूतं यज्ञपात्रं प्रशस्यते ॥११

अध्याय २०

मध्यमविधान का वर्णन

सूत जी बोले—सात भाँति के अग्निष्टोम नामक यज्ञ का विधान बता दिया गया है, जिसमें मध्यम विधान का मध्यम फल, और कनिष्ठ का कनिष्ठ फल होना बताया गया है । मैं इस समय शास्त्रोक्त रीति से मध्यमविधान का, जो अपनी अर्थशक्ति के अनुसार मनुष्यों का परम कर्तव्य है, व्याख्यान कर रहा हूँ, सुनो ! ज्योतिषियों द्वारा बताये हुए पूर्व दिन के किसी शुभ मुहूर्त में अधिवास कल्प और धूप आदि का अधिवासन कर्म का अनुष्ठान करना चाहिए । १-३। उस शुभ मुहूर्त में कलश स्थापन पूर्वक गणपति पूजन करके सर्वप्रथम उस स्तम्भ की प्रतिष्ठा एवं पूजन ‘आपोहिष्ठेति’ इस मंत्र के उच्चारण करते हुए करना चाहिए, तदुपरांत ‘शत्रो देवी’ और ‘गन्धद्वारेति’ मन्त्रोच्चारण द्वारा गन्ध, श्री सूक्त से पुष्ट एवं दूर्वा अक्षत, ‘काण्डादिति’ से धूप ‘ये गृह्णामि’ इस ऋचा के द्वारा पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । ४-६। पुनः विवाहोक्त विधान द्वारा सभी अधिवासन कर्म की समाप्ति बतायी गयी है, अतः सर्वप्रथम पण्डित वृन्द को चाहिए कि सरोवर आदि की भी प्रतिष्ठा में सरोवर और आचार्य आदि का अधिवासन सुसम्पन्न करते हुए गन्ध, पुष्ट, धूप, दीप सविधान प्रदान करना चाहिए । पुनः प्रातः समय में शास्त्र के आदेशानुसार नित्य कर्म की समाप्ति पूर्वक मातृपूजा पुरस्सर वृद्धि श्राद्ध सुसम्पन्न करना चाहिए । विद्वान् को चाहिए कि यथाशक्ति आचार्य आदि ब्राह्मणों को अलंकृत करके मण्डप के संक्रिकट पश्चिम भाग में प्रतिष्ठित करना चाहिए, क्योंकि मध्य देश में उत्पन्न वह यज्ञ पात्र के लिए प्रशस्त बताया गया है । ७-१। अथवा उसी देश के

अथवा तत्र देशीयं गुरुं वा श्रोत्रियोद्भूवम् । यज्ञे प्रधानद्वितीयमृत्त्विगाचार्यमेव हि ॥१२
 वैतानकल्पे सम्पन्नं शक्तिकल्पपरायणम् । निगमज्ञानसम्पन्नं यज्ञे पात्रं प्रशस्यते ॥१३
 पत्नीहीनमपुत्रं च श्यावदन्तमदन्तकम् । गणानां याजकं षष्ठं स्वगोत्रं परिवर्जयेत् ॥१४
 अप्रधानेषु यज्ञेषु दानयज्ञेषु सत्तमाः । निदोजयेत्स्वगोत्रं च होमे नास्ति विचारणा ॥१५
 कुशप्रतिकृतौ चापि ततः र्वर्गं स गच्छति । धनमादौ च संशोध्य ततो यज्ञं सनाचरेत् ॥१६
 अयाज्ययाजनोद्भूतं पल्लवं व्यदहारके । कूटसाक्षेण पल्लवे स्थाप्यहारकज्ञेव च ॥१७
 देवत्वं ब्राह्मणस्वं च लोहविकल्पयं धनम् । हविर्विक्रयणं कृत्वा पुत्रभावादिविक्रयी ॥१८
 निन्दितानि पुराणेषु यत्कृतं तत्र तत्कलम् । यज्ञसद्वनि दिप्रांश्च न श्राद्धान्मोजयेत्स्वचित् ॥
 न द्यात्स्य दानं च यावश्चैव समापयेत् ॥१९
 ब्रह्मशाचार्यमुख्योऽसि संसारात्त्राहि मां विभो । त्वत्प्रसादाद्गुरो यज्ञे प्राप्नुयां मानसेप्तिम् ॥२०
 चिरं मे शाश्वती कीर्तियाविल्लोकाश्वराचराः । प्रसीद त्वं महेशान प्रतिष्ठाकर्मसिद्धये ॥२१
 त्वमादिः स्वर्भूतानां संसारार्थवतारकः । ज्ञानामृतप्रदाचार्यं विष्णुरूपं नमोऽस्तु ते ॥२२
 ब्रह्मासनसमुद्भूतं प्रकाशितदिग्नतरम् । त्वं च जाम्बूनदप्रत्य यजुर्वेदं नमोऽस्तु ते ॥२३

निवासी जो श्रोत्रिय कुल में उत्पन्न हो गुरु या यज्ञ में प्रधान दूसरा कृत्विजाचार्य प्रतिष्ठित करना चाहिए क्योंकि यज्ञ विधान का निष्णात विद्वान् शक्ति कल्प का पारायण करने वाला, तथा शास्त्र ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति यज्ञ का प्रशस्तं पात्र बताया गया है । १२-१३। पल्लीहीन, पुत्रहीन, काले दाँत, दाँतहीन, गणों का यज्ञ करने वाला, नपुंसक, स्वगोत्री का उस कर्म में परित्याग करना चाहिए । उत्तमवृत्त ! छोटे-छोटे यज्ञ, दानयज्ञ, एवं हवन कर्मानुष्ठान में अपने नोत्र वालों की नियुक्ति में विचार करने की आवश्यकता नहीं होती है । १४-१५। यदि किसी की प्राप्ति न हो तो कुश की प्रतिमा स्थापित करने से उसी भाँति स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इसलिए सर्वप्रथम धन के संशोधन पूर्वक यज्ञानुष्ठान आरम्भ करना चाहिए । १६। अनुचित यज्ञानुष्ठान द्वारा उत्पन्न, व्यवहार में पल्लव ग्राही, कूर-साक्षी (झूठी गवाही देने वाला), हठी और मिथ्याभाषी, देव, ब्राह्मण के धन का विक्रय करने वाला, लोहे का विक्रेता, हवि, पुत्र और स्त्री का विक्रय करने वाला पुराणों में निन्दित बताया गया है, अतः ये भी यज्ञ पात्र के अयोग्य हैं क्योंकि जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है । यज्ञभवन में श्राद्ध सम्बन्धी ब्राह्मणों को भोजन न करना चाहिए और जब तक यज्ञ की समाप्ति न हो जाये, उस ब्राह्मण को दक्षिणा दान भी न करना चाहिए । १७-१९। हे ब्रह्म ! आप मेरे मुख्य आचार्य हैं, विभो ! इस संसार से मेरी रक्षा कीजिये हे गुरो ! आप के अनुग्रह से ही मेरी अभीष्ट सिद्धि हो सकेगी । चर अचर लोकों की जितने दिनों तक स्थिति निश्चित रहे, उतने दिन मेरी शाश्वती कीर्ति दृढ़ निश्चल बनी रहे । हे महेशान ! इस प्रतिष्ठा कर्म के सिद्धर्थ आप का प्रसन्न चित्त होना आवश्यक है । समस्त प्राणियों के आप आदि (ज्येष्ठ) हैं, संसार सागर के तारने वाले, ज्ञान रूपी अमृत रूपी अमृत प्रदायक, आचार्य, आप विष्णु रूप हैं, अतः आप को नमस्कार है । ब्रह्म के आसन से उत्पन्न दिग्नित्व को प्रकाशित करने वाले आप जाम्बूनद (सुवर्ण) की भाँति स्थापित प्राप्त हैं, यजुर्वेद तुम्हें नमस्कार है । २०-२३। विकसित कमल की भाँति

प्रफुल्लकमलोद्भासि भास्वराम्बारभूषित । प्रकीर्णशास्त्रसम्भार विधिज्ञ प्रणतोऽस्मि ते ॥२४
ज्वलद्वैश्वानरप्रश्य धूमश्यामालितानन । षड्डगवेदतत्त्वज्ञ ऋत्विद् मोक्षं समाचर ॥२५
ततस्त्यूर्धादिघोषेण पुरस्कृत्य द्विजोत्तमान् । यजमानः तपत्नीकः प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥२६
स्वस्थाने स्थायेद्विप्रान्मखे धर्मर्थाकमम् । पूजयेद्गन्धमवरुपोऽसौ यज्ञं मे सफलं कुरु ॥२८
यज्ञे सुवितते थोसौ पूज्यते पुरुषः सदा । नारायणस्वरूपोऽसौ यज्ञं मे सफलं कुरु ॥२८
मश्वशेषेषु सर्वेषु येन मन्त्राः सुविस्तृताः । यजुर्देवार्थतत्त्वज्ञ ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥२९
यज्ञेषु साक्षी सर्वेषु वेदवेदार्थतत्त्ववित् । ऋग्वेदज्ञ महाप्राज्ञ विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥३०
माइग्लत्यं कर्मणां नित्यं शाश्वतं ब्रह्मरूपणिम् । सिद्धये मम यज्ञस्य नमामि शिवरूपणिम् ॥३१
पालयन्ति दिशः सर्वा विदिशाश्र तथा इमाः । दिक्पालरूपिणः तिं प्रयज्ञसिद्धयै नमाम्यहन् ॥

पातयेद्वक्षिणं जानु दिकिरान्विकिरेत्तः ॥३२

त्रैलोक्ये यस्मिन् भूतानि स्थावराणि चराणि च । ब्रह्माविष्णुशिवाः सर्वे रक्षां कुर्वन्तु तानि दै ॥३३
वेद्यावेदीति मन्त्रेण पठेद्वैर्द प्रणम्य च । सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यरिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥३४
याजनं यजमानश्च श्रेयसा तत्र याजकः । इदमर्थमिदं पाद्यं धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥३५
ऐशान्यां कलशे देवं सम्पूज्य गणनायकम् । ब्रह्माणं वासुदेवं च द्वितीयकलशे यजेत् ॥३६

प्रसन्न, कान्तियुक्त वस्त्र से भूषित, विस्तृत शास्त्र के संभार स्वरूप विधिवेत्ता, तुम्हें नमस्कार है । प्रदीप्त अग्नि की भाँति स्थात, (यज्ञ के) धूम से श्याम सुख वाले छहों अंगों समेत वेद के मर्मज्ञ, ऋत्विक् को मोक्ष प्रदान कीजिये । इसके पश्चात् यजमान पत्नी सहित तुरुही आदि वाचों के घोष से ब्राह्मणों को सम्मुख करके उनके पीछे-पीछे यागमण्डप में प्रवेश करे । २४-२६। यज्ञ भवन में अपने अपने स्थान पर धर्मनिःसार उन्हें आसीन कर सौन्दर्य पूर्ण गन्ध, माला आदि वस्तुओं से उनकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए । २७। अत्यन्त विस्तृत इस यज्ञानुष्ठान में जिस पुरुष की सदैव पूजा होती रहती है, नारायण स्वरूप दहू मेरे इस यज्ञ को सफलता प्रदान करने की कृपा करें । सभी श्रेष्ठ यज्ञों में जिसके द्वारा मंत्रों का विस्तार हुआ है, यजुर्वेद के अर्थ मर्मज्ञ, एवं उस ब्रह्मरूप को नमस्कार है । सम्पूर्ण यज्ञों के साक्ष्य स्वरूप, वेदों के अर्थ वेत्ता, ऋग्वेद के निष्णात विद्वान् महायज्ञ तथा हे विश्व रूप तुम्हें नमस्कार है । कर्मों के मांगलिक स्वरूप, नित्य, शाश्वत, मेरे यज्ञ की सिद्धि के लिए जो ब्रह्मरूप एवं शिव (कल्याण) रूप है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ । समस्त दिशाओं और विदिशाओं के पालन करने वाले दिक्पाल रूपी उस ब्राह्मण को अपनी यज्ञ सफलता के निमित्त मैं नमस्कार कर रहा हूँ । २८-३२। पश्चात् दाहिने धुटने के बल बैठकर विकास दान करके इस प्रकार रहे कि तीनों लोकों में स्थित समस्त चर, अचर, जीव, ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर, ये सभी रक्षा करने की कृपा करें । पुनः 'वेद्यावेदीति' इस मंत्र के द्वारा वेदी के प्रणाम पूर्वक गन्ध पुष्प आदि वस्तुओं से उसकी पूजा करने के अनन्तर इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए— यजमान, भाजक, एवं भाजन कर्म, ये सभी भेद सम्पन्न हों, तथा इस अर्थ्य, पाद्य, और धूप को स्वीकार करने की करें । ईशान कोण में स्थित कलश में गणनायक देव की विधिवत् पूजा करके दूसरे कलश में ब्रह्मा और वासुदेव की अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए । भगवान् विष्णु समेत द्वारका पुरी रूप से यह

मण्डलं चैव विष्णुर्व द्वारकारूपमास्त्वितः । तेन त्वां पूजयाम्यद्य स्वर्गप्राप्तिं कुरुष्व मे ॥३७
 पूर्वादिदिक्षु कलशःन्संस्थाप्य च त्रयं ब्रह्म् । अर्घपादसवर्णेन निर्भितं तारणं दुधः ॥३८
 गङ्गामृत्तिक्या युक्ते पल्लवे सम्बिदेदयेत् । मन्दरं कल्पयित्वा तु गोपीनां च कुलेन वा ॥३९
 कलशोपरि संस्थाप्य मन्दरं सम्प्रपूजयेत् । स्योना पृथिवीति मन्त्रेण गन्धपुण्ड्रः पृथिवीधैः ॥४०
 (स्योनः पृथिवीति मन्त्रस्य मुमन्त्र ऋषिर्जगती छन्दो हरो देवता मन्दरप्रीतये विनियोगः)
 एवं दक्षिणदिग्भागे नवतोलकनिर्भितम् । प्रादेशमात्रलोहं तु रौप्येण गन्धमादनम् ॥
 मृदा सङ्घटनैः पश्चात्कदाचन ऋचा यजेत् ॥४१
 कदाचनेति मन्त्रस्य सूर्य ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता गन्धमादनप्रीतये विनियोगः ॥
 उत्तरे तोरणतोद्वेरङ्गुष्ठद्वयमानके । तोलकद्वयसनेन यवानां पिण्डकोपरि ॥४२
 (आप्यायस्वेति मन्त्रस्य कर्दम ऋषिर्जगती छन्दः शची देवता सुपार्षप्रीतये विनियोगः ॥)
 पूजयेत्पार्षकलशे धात्रादीन्द्र्यदिक्क्रमात् । श्रीसूक्तेनैव मन्त्रेण यजेहिजयसप्तकम् ॥
 पूजयेत्परया भक्त्या गन्धपुण्ड्राक्षतादिना ॥४३
 अम्बाअम्बिकेति मन्त्रस्य नलिन ऋषिर्गायत्री छन्दः शम्भुर्वेदता जयप्रीतये विनियोगः ।
 गायत्र्या पूजयेद्वेषे पश्चिमं कलशद्वयम् ॥४४
 (गायत्र्या विश्वमित्र ऋषिः सविता देवता विजयप्रीतये विनियोगः ॥)

मण्डल स्थित है, इसलिए मैं तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ, मुझे अवश्य स्वर्ग की प्राप्ति हो । तदनन्तर पूर्वादि दिशाओं में कलश स्थापन पूर्वक तीन-तीन कलशों का तोरण बनाना चाहिए, जिसका अर्धपाद एक वर्ण का हो क्योंकि विद्वानों ने ऐसा ही विधान बताया है । गंगा-मिट्टी समेत पल्लव उसमें प्रक्षिप्त करके गोपियों के कुल द्वारा मंदर की कल्पना (निर्माण) पूर्वक कलश पर स्थापन-पूजन करना चाहिए उनके पूजन में ‘स्योनापृथिवीति’ इस मंत्र द्वारा गंध पुण्ड्र प्रदान करना बताया गया है । ३३-४०। ‘स्योना पृथिवीति’ इस मंत्र के सुमंत्र ऋषि, जगती छन्द, एवं हर देवता हैं, मन्दर के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का प्रयोग करना चाहिए । इसी भाँति दक्षिण दिशा की ओर आदेशमात्र परिमाण में नवतोले लोहे अथवा चाँदी द्वारा गंधमादन की प्रतिमा निर्माण करने के पश्चात् उसमें मिट्टी का लेप करने ‘कदाचन’ इस ऋचा से उसका पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । ‘कदाचनेति’ इस मंत्र के सूर्य ऋषि, त्रिष्टुप्छन्द, सूर्य देवता हैं, गंध मादन के प्रसन्नार्थ यह विनियोग ग्रयुक्त होता है । तोरणादि के उत्तर भाग में दो अंगुष्ठ के परिमाण में दो तोले की निर्माण की हुई प्रतिमा को जवा के पीठी बने हुए आटे के ऊपर उसे स्थापित करके ‘अप्यायस्वेति’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पार्श्व कलश पर धृत आदि की पूजा पूर्वादि क्रम से सुसम्पन्न करनी चाहिए । ‘आप्यायस्वेति’ इस मंत्र के कर्दम ऋषि, जगती छन्द, शची देवता हैं, सुपार्षव में प्रीत्यर्थ इस विनियोग का उपयोग करना चाहिए । श्रीसूक्त के उच्चारण करते हुए उत्तमभक्ति पूर्वक गंध, पुण्ड्र, अक्षतादि से विजय सप्त की पूजा करनी चाहिए । ४१-४३। ‘अम्बाअम्बिकेति’ मंत्र के नलिन ऋषि, गायत्री छन्द, एवं शंभु देवता हैं, जप के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । दक्षिण और पश्चिम में स्थापित दोनों कलशों की अर्चा गायत्री मंत्र द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । गायत्री मंत्र के विश्वमित्र ऋषि, तथा

भद्रं चैव तु भद्रं च प्रयतः संयजेद्बुधः

॥४५

(उत्तरे युग्मकलशे मनोन्ना इति मन्त्रस्य अन्तक शृण्विर्भूती छन्दो निर्ऋतिर्वेवता भूतप्रीतये विनियोगः ॥) भूतशुद्धि ततः शृत्वा न्यासं कृत्वा विधानतः । विधायार्थादिकं चैव धर्मादिमण्डले यजेत् ॥४६ मध्ये आधारशक्त्यादीन्वरुणं मध्यतो यजेत् । पूर्वादिक्रमतत्त्वेव इन्द्रादीन्कुलदेवता ॥४७ पार्श्वद्वये कर्णिकाय ब्रह्मस्त्रं चाप्यनन्तकम् । स्वैः स्वैर्मन्त्रयथोत्तेष्व बलिभिर्गन्धुष्यकैः ॥४८ इन्द्राजितेकमन्त्रस्य वायं गान्धाररागकम् । अग्नेस्तेजोसीति वाद्यं रागं चैव वराटकम् ॥४९ घनकृष्टकमन्त्रस्यापि वाद्यं रागं तु गुरुरस्मृ । रक्षोधिपत्स्य सङ्ग्रामं दैत्यलं वाद्यमुच्यते ॥५० नाटकाल्यं तथा रागं वरुणस्यापि मे शृणु । वाद्यं राज्याभिषेकाल्यं रागो वसन्तासंजकः ॥५१ इशस्य नन्दिधोषाल्यं वाद्यं रागोऽथ कामदः । सुवर्णं दुन्दुभिर्वाद्यं ब्रह्मणः कथितो बुद्धैः ॥५२ रागो देवी वसन्तश्च अनन्तस्य निबोध मे । वाद्यं गान्धारताराल्यं रागश्चाङ्गारवातकः ॥५३ सोमे घोषे श्वेद्वाद्यं जलेशस्य महात्मनः । मालवास्यो भवेद्रागः पत्राप्रेतु महानपि ॥५४ स्वैः तत्त्वैर्मन्त्रं लङ्घगृह्ण दक्षिणे पृथिवीं यजेत् । स्योना पृथिवीति मन्त्रेण उपचारैः पृथग्विधैः ॥५५ मण्डपस्योत्तरे भागे महादेवं प्रपूजयेत् । नमो वृक्षेभ्य इत्यादि नैवेद्येष्व पृथग्विधैः ॥५६ (महादेवं द्विभुजं डमरुशूलधरं मुमासहितं ध्यात्वा । नमो वृक्षेभ्य इति मन्त्रस्य ब्रह्मा शृणिगर्यत्री छन्दश्वन्दो देवता चन्द्रप्रीतये विनियोगः ॥) गन्धपुष्यादिभिर्भक्त्या भूतानि परितो यजेत् ॥५७

सविता देवता हैं, विनय के प्रीत्यर्थ यह विनियोग है । विद्वान् को भद्र और सुभद्र की सप्रयत्न अर्चा करनी चाहिए । 'मनोन्ना' इस मंत्र के अंतक शृणि, बृहती छन्द, और नित्रहति देवता हैं, भूत के प्रीत्यर्थ इस विनियोग का प्रयोग किया जाता है । पश्चात् भूत शूद्धि तथा विधान पूर्वक न्यास करके पुनः अर्ध विधान के अनन्तर धर्मादिमण्डल सहित देवों की अर्चा करना बताया गया है । ४४-४६। मध्य भाग में आधार शक्ति आदि, और वरुण तथा पूर्व आदि क्रमशः इन्द्रादि कुल देवों की आराधना करना बताया गया है । कर्णिका के दोनों पार्श्व भाग में ब्रह्मा, और अनन्त की अर्चा उनके मंत्रों के उच्चारण पूर्वक बलि एवं गन्ध पुष्टयों द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । इन्द्राभिषेक मंत्र प्रयोग में गांधार राग का वाद्य, अग्नेस्तेजोऽसीति' इस मंत्र के प्रयोग में वराटक राग का वाद्य, 'घनकृष्टक' के प्रयोग में गुरुरर राग का वाद्य, और राक्षस नायक के संग्राम में वैताल राग का वाद्य बताया गया है । ४७-५०। वरुण एवं राग का नाटक मैं बता रहा हूँ, सुनो, ! उनका राज्याभिषेक नामक वाद्य और वसंत राग है, उसी भाँति ईश (शिव) का नन्दिधोष नामक वाद्य और कामद राग, एवं ब्रह्मा का दुन्दुभि वाद्य तथा सुवर्ण राग विद्वानों ने बताया है । अनन्त का देवी राग, वसंत वाद्य, गांधार तारा वाद्य और अङ्गार वातक राग, जलेश (वरुण) का सोम घोष वाद्य, मालव राग है । अपने-अपने धर्मानुसार इनके संग्रह करके 'स्योना पृथिवीति' मंत्र के उच्चारण द्वारा पृथक-पृथक् उपचारों से पृथिवी पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । मण्डप के उत्तरीय भाग में प्रतिष्ठित महादेव की सविधि पूजा करनी चाहिए 'नमो वृक्षेभ्य इति' इस मंत्र के द्वारा नैवेद्य अर्पित करना बताया गया है । दो भुजा, सुमेर, शूल धारण किये, एवं उमा महादेव का ध्यान करके चारों ओर भूतों से धिरे हुए उन्हें भक्ति पूर्वक गन्ध पुष्यादि प्रदान करना चाहिए । 'नमो वृक्षेभ्य इति' इस मंत्र के ब्रह्मा शृणि, गायत्री छन्द, और

वेतालाश्र पिशाचाश्र राक्षसाश्र सरीसृपाः । अस्मात्प्रयान्तु मे स्थानाद्यं चान्ये विघ्नकारकाः ॥५८
 मधुयुक्तं पायसान्नं वरुणाय निवेदयेत् । पीतं चालोहितं कृष्णं शुक्लं कृष्णं च धून्रकम् ॥५९
 पीतं शुक्लं तथा चित्रं श्वेतमन्नं यथाक्रमम् । बलयस्तु दिनीशानां ग्रहाणामपि ताञ्छृणु ॥६०
 क्षीरदैदनं ग्रहेशाय शुक्लान्नं शशिने स्मृतम् । लोहितान्नं च भौमाय बुधाय क्षीरणाष्टिकम् ॥६१
 पीतनन्नं देवगुरोः शुक्रस्य सिततन्तुलम् । मांसौदनं शनैर्जये रज्होश्च कृष्णनक्तकम् ॥६२
 धून्रवर्णं तु तान्नं तु भौमस्य क्षीरणाष्टिकम् । षष्ठिकान्नं शिवस्योक्तं सूतानां माषभक्तकम् ॥६३
 एवं बृंशं विधायाथ अग्ने कुम्भं निवेशयेत् । प्रदेशद्वयङ्गुलं ताम अष्टोत्तरसहस्रकम् ॥६४
 बह्वङ्गुलं विन्यस्य विन्यस्य कलशोपरि । निशावाञ्छित्तसूत्रैश्च संबेष्टय एहितं तथा ॥६५
 शरादं च पुनर्द्याद्वर्धनीं प्रतिपूजयेत् । अस्त्राय फडिति मन्त्रेण ध्यात्वा देवं जलेश्वरम् ॥६६
 दूस्तं यजेत्याशक्ति शतमष्टोत्तरं जपेत् । कुञ्जेषु चिन्यसेक्षागानब्दौ पूर्वादिषु क्रमात् ॥६७
 अनन्तं पूजयेत्पूर्वं मानेनाङ्गुलमात्रकम् । निर्मितं काञ्चनेनैत सप्तवर्तिकया सुधीः ॥६८
 राजतं वासुकिं नदं यजेत्प्रान्तरे पुनः । पादमात्रेष्वि चाङ्गुष्ठमात्रं तान्नस्य भक्ष्यकम् ॥६९
 पञ्चाङ्गुलं तोलिकया लौहं कर्कोटकं पुनः । वर्तकाभिः षोडभिर्बृहत्पर्वत्रमाणकम् ॥७०

चन्द्र देवता हैं, चन्द्रमा के प्रीत्यर्थं यह विनियोग बताया गया है । पुनः वेताल, पिशाच, राक्षस, सरीसृप, अथवा और जो कोई विघ्न करने वाले हैं, वे इस स्थान से अन्यत्र पथारने की कृपा करें । उपरांत शहद समेत खीर वरुण देव के लिए प्रदान कर पीत, रक्त वर्णं, कृष्ण, शुक्ल, पुनः कृष्ण, धूएँ के वर्ण के समान, पीत, शुक्ल, चित्र, एवं श्वेत अन्नों को क्रमशः दिक्पालों के लिए बलि बताया गया है, तदनन्तर ग्रहों के लिए बता रहा हूँ, सुनो ! ग्रहाधिपति (सूर्य) के क्षीर भात, चन्द्र के लिए श्वेत वर्ण के अन्न, भौम के लिए रक्तवर्णं, बुध के लिए क्षीर और साठी चावल, बृहस्पति के लिए पीत वर्ण के अन्न, शुक्र के लिए श्वेत चावल, शनि के लिए मांस भात, राहु के लिए कृष्ण वर्ण के अन्न बलि रूप में प्रदान करने चाहिए । भौम के लिए विशेषकर धूए, एवं तांबैं के वर्ण की भाँति अन्न और क्षीर-साठी चावल, शिव के लिए पीठी, और भूतों के लिए पका हुआ उरद बलि रूप में प्रदान करना चाहिए । इस भाँति विधान पूर्वक बलि प्रदान करने के उपरांत सम्मुख घर में प्रवेश करना बताया गया है, उसमें प्रदेश दो अंगुल का और वह एक सहस्र आठ अंगुल अथवा अनेक अंगुल का होता है, कलश के ऊपर उसे रखकर निशा वांछित सूत्र द्वारा उसके मुख को ढाँक कर और बाँध कर उसके ऊपर शराव (कसोरा) रखकर वर्धनी की भलीभाँति पूजा करनी चाहिए । ‘अस्त्राय फट्’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक जलेश्वर देव का ध्यान पूजन करने के उपरांत यथा शक्ति सूक्त पाठ और एक सौ आठ बार जप करके पूर्वादि के क्रम से कलशों आठों नागों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । ५-६७। पूर्व की ओर एक अंगुलि प्रमाण की अनन्त की प्रतिमा का जिसका निर्माण विद्वार द्वारा सुवर्ण की सात बत्तियों (शलाका) से किया गया हो, पूजन सुसम्पन्न करने के अनन्तर पत्रान्तर में स्थित वासुकी नाग की अर्चा सविधान समाप्त करनी चाहिए । चरण अथवा अंगूठे की भाँति तांबैं की मुख समेत दाढ़ (विवस्वान) का निर्माण करके पाँच अंगुल प्रमाण में लोहे की कर्कोटक (नाग) की प्रतिमा में जिसमें अंगुली के लम्बे पार की भाँति सोलह बत्तियाँ लगायी गयी हों, पूजन

शङ्खपालं कुशमयमर्घपादेन निर्मितम् । अङ्गुष्ठमात्रं रक्तेन नागं तत्त्वलकमात्रकम् ॥७१
 अङ्गुष्ठे तोलकं पश्चात्पद्मनामं पुनर्जेत् । तोलकार्धप्रमाणेन अङ्गुलं परिमाणतः ॥७२
 कुर्याच्छैतमयं सन्यग्यथावल्लक्षणान्वितम् । महापश्यस्य वै तस्य पूर्वमानेन निर्मितम् ॥७३
 ध्यात्वानन्तं चतुर्बाहुं सुकूलसप्तरकणान्वितम् । दक्षिणोर्ध्वकरे शङ्खमधिकं प्रतिष्ठितम् ॥७४
 वामोर्ध्वे तु गदापर्यं मध्यस्थाने व्यप्रस्थितम् । सर्वालङ्कारसंयुक्तमेवं ध्यात्वा चथाविधैः ॥७५
 सहस्रशीर्षिं मन्त्रेण पूजयित्वा बलिं हरेत् । सर्वाजेश्वरित्वासंविष्टः क्षीरयुक्तैः पृथग्विधैः ॥७६
 चतुर्दिव्यं तथा इवेतं सर्वालङ्कारसंयुतम् । स्वकीयं प्रजपेतत्र आप्यायस्वेति वै ऋचा ॥७७
 पिण्डाकं नागजिह्वां च तथा सर्जरसं दधि । बलयस्तस्य निर्दिष्टास्तकं लोहितं यजेत् ॥७८
 पद्मं टट्कं दधानं च भुजाम्यां नागसत्तमम् । मनोश्चा इति मन्त्रेण आज्यं सोमो बलि हरेत् ॥७९
 कर्कोटकं च द्विसुजं पीतवस्त्रधरं यजेत् । पञ्च नद्य इति ऋचा विष्णुक्रान्ता बलिर्भवेत् ॥८०
 पीतवस्त्रं च कुलिशं धाजयेतु चतुर्भुजम् । भुजान्मामूर्ध्वभःगे तु रक्तपद्मधरं हरिम् ॥८१
 शर्करा कुष्ठकं चैव बलिस्तस्य प्रकार्तितः । द्विसुजं शङ्खपालं च शङ्खाभं शङ्खधारिणम् ॥८२
 पद्मासनस्यं पद्माम्यां हस्ताम्यां च वरं विभुम् । ध्रुवशिति ध्रुवोसीति मन्त्राम्यां पूजयेत्पृथक् ॥८३
 घटौदेनं भृङ्गराजं पश्चं च वलयस्तयोः । स्वगृह्योक्तेन विधिना संस्थाप्याग्निं कुशकण्डिकाम् ॥८४
 कृत्वा आज्यस्य संस्कारं वारुणं श्रपयेच्चरम् । जुहुयादष्टबिल्वानि दिग्गीशानां घृतेन वै ॥८५

सुसम्पन्न करके अर्धपाद के समान कुशमय शङ्खपाल नाग, रक्तवर्ण एवं अंगुठे के समान नाग, जो तालमात्र के होते हैं, और पश्चात् तोले के प्रमाण से अंगुठे के समान पद्मनाग और एक अंगुल के परिमाण में आधे तोले की शैल की बलि सहायक प्रतिमा का जो उनके समस्त लक्षणों से युक्त हो, पूजन सुसम्पन्न करके चार भुजाएँ, शुक्लवर्ण के सात फणों से युक्त ऊपर के दोनों दाहिने हाँथों में शंख चक्र से विभूषित और बाँयें दोनों हाँथों में गदा पद्म धारण किये, मध्यस्थान के आसन पर प्रतिष्ठित समस्त अलंकारों से अलंकृत उस अनन्त भगवान् का विधान पूर्वक इस भाँति ध्यान करके उपरात 'सहस्रशीर्षिति' मंत्रोच्चारण करते हुए पूजन एवं लाजा (लावा), तिल मिश्रित क्षीर की चार प्रकार की इवेत तथा समसाधरण बलि पृथक् विधानों द्वारा प्रदान कर 'आप्यायस्वेति' इस ऋचा का जप करना चाहिए । ६८-७१। पिण्डाक (अलसी की सली), नागजिह्वा, सर्जरस (सालू का रस) और दही, यही उन सब के लिए बलि बताया गया है । रक्तवर्ण के तक्षक की प्रतिमा का पूजन करने के उपरात अपने दोनों हाथों में कमल और रंक लिये हुए उस नाग श्रेष्ठ के लिए 'मनोन्ना इति, इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक धी की बलि प्रदान करनी चाहिए पश्चात् दो भुजा, पीत वस्त्र धारण किये उस कर्कोटक की पूजा और 'पञ्च नद्या इति' इस ऋचा द्वारा विष्णुक्रान्ता की बलि प्रदान करना चाहिए । ७८-८०। पीतवस्त्र, कुलिश, और ऊपर के दोनों हाँथों में रक्त कमल धारण किये उस चार भुजा वाले हरि नारायण का पूजन सुसम्पन्न करके शक्कर और कुष्ठक की बलि उन्हें सादर समर्पित करना चाहिए । दो भुजा शंख की आभा, शंखधारी, हाँथों में कमल लिये कमलासन पर आसीन उस उत्तम विभुशङ्खपाल की अर्चा 'ध्रुवशिति ध्रुवोऽसीति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक पृथक्-पृथक् सुसम्पन्न करके घट भात, भृंगराज और कमल की बलि उन्हें सादर प्रदान करने के अनंतर अपने गृह्योक्त विधान द्वारा अग्नि स्थापन एवं कुश कण्डिका करके धी और हवि की (पंच) वारुणी तथा

एकैकामाहुतिं इद्याद्यग्रहाणां च न्यन्त्रयम् । सुसमिद्विर्घृतमधुपयोभिर्मिश्रितैः पृथक् ॥८६
 पलाशसमिधं पञ्चात्प्रतिष्ठामाहुतित्रयम् । शिवस्य परमान्नेन जुहुयादष्टस॒इल्यग्या ॥८७
 मध्वान्यगुडमिश्राभिलार्जाभिर्जुह्यात्पृथक् । लज्जान्यशोकं वितरेदेकैकामाहुतिं क्ळमात् ॥८८
 स्थालोपाकस्य जुहुयादेकैकामाहुतिं पुनः । वशं च सदुद्विष्य रुद्धं तर्वै पृथक्पृथक् ॥८९
 दास्तोष्यतय इति मन्त्रेण एञ्जनव्यो भवेत्ततः । स्योनापृथिवीतिमन्त्रेण क्लोहिमृत्तिकया पुनः ॥९०
 वृषाश्च इति मन्त्रेण क्या न इति वै पुनः । कुशमूलमृदा चैव चतुष्पथमृदा तथा ॥९१
 इमा रुद्रेति मन्त्रेण श्रीश्वेति ऋचा पुनः । पद्मलण्डस्य च मृदा लापयेत्युसमहितः ॥९२
 तद्विष्णोरिति मन्त्रेण तथा पुष्पोदकेन च । तीर्थोदकेन कृष्णेन त्रिरक्तेन त्रिशीतकैः ॥९३
 पञ्चरक्तेन रक्तानां मृदा कैश्च कुशोदकैः । स्वर्णतोयैश्च कलशैरष्टोत्तरशतेन तु ॥९४
 तेजसैर्मार्तिकैश्चापि अस्टार्विशतिभिस्तथा । यथारक्ति तु संस्थाप्य कुद्दुम्भ्रन्दनैरपि ॥९५
 अन्नं लिप्य ततो मृद्विद्याच्चैव यथाकमम् । सुरासुरेति च ऋचा वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥९६
 ध्वजं च धनुनारेति गन्धद्वारेति गोमयम् । धूरसीति ततो धूपं होत्रे चाहुतिदीपक्षम् ॥९७
 सिन्धोरीति च सिन्धूरं स्वभावे रक्तकं तथा । मालतीकुमुखैः कृत्यैर्नागान्संस्थापयेत्ततः ॥९८
 धाराभिः शतपुष्पाभिर्गन्धतोयादिभिस्तथा । अथवाश्वत्थपत्रेषु वटपत्रेषु वा सुधीः ॥९९
 रोचनाकुद्कुमैर्वापि संलिख्य तत्र पूजयेत् । प्रक्षिपेत्तत्र मुक्ता हि कलशेषु विनिक्षिपेत् ॥१००

आठ बेल की आहुति प्रदान करनी चाहिए इस भाँति दिक्पालों के लिए धी की एक एक और ग्रहों के लिए तीन-तीन आहुति समिधा की प्रज्वलित अग्नि में धी, शहद, एवं क्षीर मिश्रित पदार्थों को पृथक्-पृथक् प्रदान करने के उपरांत पलाश की समिधा में प्रतिष्ठा के निमित्त तीन आहुति प्रदान करनी चाहिए तथा शिव के लिए उत्तम अश्र की आठ आहुतियाँ । शहद, धी, एवं गुडामिश्रित लाजा (लावा) की पृथक्-पृथक् एक-एक आहुति क्रमशः प्रदान करनी चाहिए । ८१-८८। पुनः वशं और रुद्र के लिए बने हुए पाक में से एक-एक आहुति प्रदान कर वास्तोषपतय इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पञ्चगव्य से, 'स्योना पृथिवीति' इस मंत्र से धान्य की मिट्टी, वृषाश्च इति' और 'क्यान इति' इन दोनों मंत्रों के उच्चारण पूर्वक कुश के मूल भाग एवं चौराहे की मिट्टी, तथा 'इमारुद्रेति और 'श्रीश्वतेति' इस ऋचा का उच्चारण करते हुए पादखण्ड की मिट्टी से सावधान होकर स्नान करना चाहिए । पुनः 'तद्विष्णोरिति' इस मंत्र से पुष्पोदक तीर्थोदक कृष्ण, तीन रक्त और तीन 'श्रीतकारक, पांच रक्त वर्ण, रक्तवर्ण की मिट्टी, कुशोदक, सुवर्ण जल से, इस प्रकार एक सौ आठ कलश, एवं सुवर्ण और मिट्टी के अड्डाइस कलशों के जल से स्नान कराने के उपरांत यथाशक्ति कुंकुम और चन्दन का अनुलेपन करके अश्र और मिट्टी के भी क्रमशः लेप के पश्चात् 'सुरासुरेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक दो वस्त्रों से उसे आवेष्टित करना चाहिए । पुनः 'धनुनारेति' इस मंत्र से ध्वज, गन्धद्वारेति' से गोमय 'धूरसीति' से धूप, और होता के लिए आहुति दीपक 'सिन्धोरीति' से सिन्धूर स्वभावानुसार रक्तक और मालती पुष्पों द्वारा नागों को स्थापित करके सात पुष्पों और गन्ध तोय से अथवा पीपल या बरगद के पत्ते पर रोचना कुंकुम से उनकी प्रतिमा बनाकर सविधान पूर्वक पूजन करना चाहिए, पश्चात् उसे कलश में डाल देना बताया गया है । ८९-१००।

मण्डपस्थोत्तरे देशे शश्यां निर्माय शोभनाम् । राजतं वारुणं तस्यां पादमात्रेण निर्मिताम् ॥१०१
 अद्गुष्ठमात्रं संस्थाप्य ततः पुष्करिणीमयि । स्वर्णपार्दनं घटितां चतुरब्दां सुशोभनाम् ॥१०२
 अद्गुष्ठमात्रं सम्पूज्य वह्निय निवेदयेत् । यथाशक्ति ततो गां च सम्भवे पञ्चविशतिः ॥१०३
 सुवर्णं राजतं चैव धान्यं वासो वराटकम् ॥१०४
 नागयष्टिं समादाय किञ्चिद्दुत्तरतां तथा ॥१०५
 तत्तेष्टताद भौमाय कृत्वा चाज्याहुतित्रयम् । लाजान्वधिसमायुक्तं धृतं मधुगुडं तथा ॥१०६
 क्षीरं च पिष्टकं चैव शष्कुलीगन्धपुष्पकम् । पञ्चामृतं पञ्चरत्नं गर्भे दद्यात्सनाहितः ॥१०७
 आचार्यो यजमानेन सुसन्नद्वैश्च भृत्यकैः । गद्गाजलेशयोर्मध्ये पञ्चघोषपुरः सरस्म् ॥१०८
 अवाप्य च ततो यष्टिं स्थिरो भवति वैरिदा । ध्रुवं ध्रुवेति मन्त्रेण यष्टिमामन्त्रयेत्तः ॥१०९
 यज्ञप्रियासि देवि त्वं सर्वविघ्नविनाशिनी । पाहि मां सर्वपापेभ्य आत्मना त्वं स्थिरीभव ॥११०
 इत्यामन्त्र्य यजेच्चदैव गादत्रीं च पठेत्ततः । वनस्पतेति विडवामिति भन्त्रं जपेत्पुनः ॥१११
 पुनरागत्य तां वैदि निर्मला दरुणं प्रभुम् । तथा पुष्करिणीं चैव वर्धनीं कलशोदरैः ॥११२
 अनिष्टं मार्जयेत्त्रागानुदृत्य कलशं तथा । पाषाणाभ्यन्तरं कृत्वा गोमयैः परिलिप्य च ॥११३
 वरुणं पुष्करिष्यां च जलमध्ये विनिक्षिपेत् । नमोस्त्विति च मन्त्रेण बर्लि दद्याच्च पायसम् ॥११४
 निर्मन्थेतत्र यो नागः स्थापयेत्तु यथाविधि । श्रावयेत्तमिमं मंत्रमत्र सन्निहितो भव ॥११५

मण्डप के उत्तर प्रदेश में सौन्दर्य पूर्ण शश्या का निर्माण करके पादमात्र चाँदी की बनी हुई वरुण की प्रतिमा और अंगुष्ठ मात्र की पुष्करिणी की प्रतिमा, जिसके चौकोर निर्माण में सुवर्ण पाद से पूर्ति की गयी हो, उसे (शश्या) पर स्थापित करके पूजन के उपरांत उस पुष्करिणी की प्रतिमा को वरुण के लिए समर्पित करना चाहिए । पश्चात् यथाशक्ति सम्भव हो तो पञ्चीस गाय अथवा एक ही गाय, सुवर्ण, चाँदी, धान्य, वस्त्र कोड़ी आदि प्रदान के उपरांत उस नागयष्टि और उत्तरगा को ग्रहण कर भौम के लिए तीन आहुति देने के उपरांत लाजा (लावा) दही समेत धी, शहद, रुद्र, क्षीर, पीठी, पूड़ी, गन्ध, पुष्प, पञ्चामृत, और पञ्चरत्न प्रदान करना चाहिए । आचार्य सन्नद्वैष्ट्यों के साथ यजमान समेत गंगा और जलेश के मध्य भाग में पाँच धनियों से पूर्ण होकर उस यष्टि को स्थापित करके ‘ध्रुवं ध्रुवेति’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे आमंत्रित करना चाहिए । पुनः हाथ जोड़कर ‘देवी ! तुम यज्ञ की प्रिया हो, और समस्त विज्ञों का उन्मूलन करने वाली हो, अतः यहाँ अपनी दृढस्थिति कर सम्पूर्ण पापों से मेरी रक्षा करो’ इस प्रकार उसे आमंत्रित कर उनकी अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत गायत्री, ‘वनस्पतेति विडवामिति’ इन मंत्रों का जप करना चाहिए । १०१-१११। पश्चात् उस वेदी पर आकर कलश के भीतर वरुण और पुष्करिणी का मंथन करके अनिष्ट शमन और नागों के उद्धारपूर्वक कलश को पाषाण के अभ्यन्तर स्थापित कर गोमय (गोबर) से उसके चारों ओर लेप करके वरुण और पुष्करिणी को जल में डाल देना चाहिए, तदुपरांत ‘नमोस्त्विति’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक खीर की बलि उन्हें प्रदान कर उस निर्मन्थन किये गये नाग का सविधान स्थापन करके ‘पुत्रसंभिहितो भवेति’ ऐसा कहकर हे नाग ! आप इसके स्वामी हैं, इसलिए इन जनों की रक्षा कीजिए, इस भाँति विनम्र प्रार्थना करके ‘गायत्रेण त्वा

अत्र स्वासी भवान्नाम रक्षणीयस्त्वया जनः । गायत्रेण त्वा छन्दसामीमन्त्रं संश्रावयेत्पुनः ॥११६
 सम्पूज्य गन्धपृष्ठादैः पुरतो निक्षिपेद्विशि । पिधाय नागराजानमृचाम्यां परिसूत्रकैः ॥११७
 सन्निरुद्घयाशु संस्थाप्य बर्लिं दद्याद्विधान्तः । लाजौदनं मनस्तस्य यज्जाग्रत ऋचा जपेत् ॥११८
 एवं भूरिति मन्त्रैः स्वैः स्वैरेद तु पृथग्निधैः । स्वासु दिक्षु च संस्थाप्य पूजयेच्च व्रयत्वतः ॥११९
 धूर्वभागे पुष्करिण्यां हरिताभं सवज्ञकम् । हलग्रहीत मन्त्रेण न्यस्य लाजाहृतं कुले ॥१२०
 त्रात् रमिति मन्त्रेण अग्नौ विन्यस्य मौक्तिकम् । मनः शिलां प्रवालं च अग्निमीडेति सम्पटेत् ॥१२१
 वैश्वानरेण मन्त्रेण पठेत्ताँजाहृतिं पुनः । दद्याद्ये ते शतमन्त्रेण पश्चिमे काटिकं न्यस्तेत् ॥१२२
 शालिलीजेन साहृतं क्या न इति मन्त्रकम् । वरुणस्यो इति मन्त्रेण दद्यादष्टादशाहृतीः ॥१२३
 उत्तरे रोचनां कन्यां तथैव गोरसर्वयम् । कुङ्कुमेन लमादुर्तं कुविदण्डमृचा पठन् ॥१२४
 विन्यस्य तेन मन्त्रेण प्रदद्याद्याहृतं पुनः । ऐशान्यां मन्द्रकं रङ्गमीशावा इति संपठन् ॥१२५
 संस्थाप्याज्याहृतं दद्यात्तनीशान ऋचा पुनः । आसद्यैर्मन्त्रसंयुक्तैर्देवं नारायणं यजेत् ॥१२६
 वरुणात्मकं ततो ध्यात्वः ततो नीराजनं पठेत् । जानुभ्यामवनिं गत्वा पठेज्ञानामृतं स्तवम् ॥१२७
 धर्मो वंशं ततः कुर्यादुत्तरान्तो विधीयते । ततो देवीं पुनः दृत्वा दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥१२८
 सर्वसत्त्वोपकाराय समुत्सजेत्तु वै जनम् । उत्सृष्टं सर्वसत्त्वेभ्यो दृश्यते जलमूर्जितम् ॥१२९
 रमत्तीं सर्वभूतानि स्नानपानावगाहनैः । वरुणं च ततो देवं पुष्करिण्यां च निक्षिपेत् ॥१३०
 जले वरुणमन्त्रेण मत्स्यादीन्प्रक्षिपेत्तः । पश्चिणश्च शुभांस्तत्र भेकं कूर्मं च कर्दमम् ॥१३१

'छन्दसामी' इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए । पुनः गन्ध पृष्ठ आदि से उसकी अर्चा सुसम्पन्न करके सम्मुख दिशा में उसका प्रक्षेप तथा क्रृचाओं द्वारा नागराजाओं को ढैंककर और सूत्रों से चारों ओर बाँधकर उन्हें विधान पूर्वक बलि रूप में लावा भात प्रदान करके 'यज्जाग्रत इति' इस क्रृचा का पाठ करे । इस प्रकार पृथिवी आदि का अपने अपने मंत्रों द्वारा पृथक्-पृथक् अपनी अपनी दिशाओं में प्रयत्न पूर्वक स्थापन पूजन करना चाहिए । ११२-११९। पुष्करिणी के पूर्वभाग में वज्रसमेत उस हरिद्रव्ण की 'हलग्रहीत' मन्त्र द्वारा कुल में स्थापित लावा की आहृति देनी चाहिए, पश्चात्, अग्नि में उस मुक्ता को रखकर मनः शिला और प्रवाल भी साथ में लेकर 'अग्नि मीलेति'- मंत्र का उच्चारण करते हुए अग्नि के मंत्र से लावा की आहृति पुनः प्रदान करनी चाहिए । तदुपरांत 'ये ते शतं' मन्त्र द्वारा पश्चिम में कटिवस्त्र प्रदान के उपरांत शालिलीज समेत 'क्यानेति' 'वरुणस्यो' इति इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक अट्ठारह आहृति प्रदान करके उत्तर भाग में स्थित गोरोंचन, कन्या, श्वेत वर्ण की राई और कुंकुम समेत उन्हें 'कुविदण्डमिति' इस क्रृचा के पाठ पूर्वक स्थापित कर पुनः आहृति प्रदान करना चाहिए । ईशान कोण में स्थित मंडक की 'रंगमीशावा इति' ऐसा उच्चारण करते हुए स्थिति करके 'तमीशान इति' इस क्रृचा को पढ़ते हुए धी की आहृति प्रदान करनी चाहिए । पश्चात् 'आसद्यैरिति' मंत्र के उच्चारण से नारायण देव की अर्चा सुसम्पन्न करके वरुण का ध्यान पूर्वक उन्हें नीराजन प्रदान करना चाहिए, अनन्तर स्तोत्र द्वारा आराधना करे—उत्सर्ग के अन्त में धर्म, वंश की अभिवृद्धि कामना करते हुए देवी के लिए तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिए—आप समस्त जीवों के उपकारार्थ इस मनुष्य की (मेरी) रचना की है, (इसीलिए उसने) सर्वप्राणियों के हितार्थ इस जल को अर्पित किया है, सम्पूर्ण प्राणियों को इस जल में स्नान एवं पान कराने वाली उस देवी को नमस्कार है, इस प्रकार प्रार्थना के उपरांत वरुण देव

शैवालं प्रक्षिपेच्चैव दक्षिणां तदनन्तरम् । सुवर्णं धान्यरत्नं च आचार्याय पृथक्ददेत् ॥१३२
 कृत्विग्म्यश्च पृथगदद्याद्यथावित्तानुसारतः । ब्राह्मणेभ्यो गायनेभ्यो वसुम्यश्च पृथक्पृथक् ॥१३३
 नित्यं समाप्य विधिवह्यात्पूर्णाहुति पुनः । दद्यादवर्यं च सूर्याय हस्तास इति सञ्जपन् ॥१३४
 ततः प्रदक्षिणावर्तं संवेष्टच क्षीरधारया । प्रासादपक्षे प्रासादमारामे अथ मण्डपम् ॥१३५
 शताधिधारया शक्त्या द्विवारं ज्ञाह्याणः सह । विकीर्य लाजकुसुमं ब्रीहींश्चैव कपर्दकान् ॥१३६
 तूर्यघोषेण महता ततो विश्वुरःसरम् : यजमानः सपलीकः द्विशेत्स्वगृहं पुनः ॥१३७
 ततो गृहार्चनं कृत्वा ब्राह्मणानश्च भोजयेत् । कुमारीश्च कुमारांश्च दीनान्धकृपणानपि ॥१३८
 नारायणं ततो दद्याद्विप्रमुद्दिश्य भक्तिः ॥१३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणिं द्वितीयभागे विशेषध्यायः । २०

इति मध्यमर्पणिं द्वितीयभागः समाप्तः । २

अथ तृतीयोभागः
 प्रथमोऽध्यायः
 उपवनादिप्रतिष्ठावर्णनम्
 सूत उवाच

आरामादौ विशेषो यो वक्ष्यतेऽत्र मयाधुना । मण्डलं कारयित्वा तु चतुरसं समं शुभम् ॥१

को उस पुष्करिणी में डाल देना चाहिए, पुनः उस जल में वरुण मन्त्र द्वारा मछलियों आदि तथा कल्याण मूर्ति पक्षी, मण्डूक, कछुवे, कर्दम (कीचड़) और शैवाल (सेवार) छोड़ना चाहिए । उसके अनन्तर दक्षिणा का प्रक्षेप करके आचार्य के लिए सुवर्णं, धान्यं, रत्नं की दक्षिणा पृथक् से देनी चाहिए । कृत्विग्मण को भी अपने धनानुसार पृथक्-पृथक् प्रदान कर ब्राह्मण, गायक और वसुओं के लिए पृथक्-पृथक् देकर नित्य कर्म की समाप्ति के अनन्तर पूर्णाहुति प्रदान करके 'हस्ता स इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक सूर्य को अर्घ्य देना चाहिए । उसके उपरांत प्रदक्षिणा के क्रम से क्षीर धारा से जिसमें सैकड़ों धारा निकलती हुई दिखाई दें महल के पक्ष में महल, उपवन पक्ष में मण्डप को ब्राह्मणों समेत तीन बार आवेष्टित (धेर) कर देना चाहिए, पुनः चारों ओर लावा, पुष्प, ब्रीही, और कौड़ियों को बिस्तरते हुए तुरही वाद्य के घोष समेत ब्राह्मणों को आगे कर उस महारम्भ के साथ पली समेत यजमान अपने भवन में प्रवेश करे । पश्चात् गृहपूजन करके ब्राह्मण भोजन के उपरांत कुमारी, कुमार, दीन, अन्धे, कृपण को भी सन्तुष्ट करके उस नारायण की प्रतिमा ब्राह्मण को अर्पित कर देमा चाहिए । १२०-१३९
 श्री भविष्यमहापुराण में मध्यमर्पण के दूसरे भाग में मध्यमविधान वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त । २०।

तृतीय भाग
 अध्याय १
 उपवन आदि की प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—उपवन आदि की प्रतिष्ठा में जो विशेषता कही गयी है, मैं वही बताने जा रहा हूँ, शुभ

ऐशान्यं कलशे देवं तत्र नाथं प्रपूजयेत् । मध्यमे कलशे पूजा ग्रहाणं च ततः परम् ॥२
 स्वदिक्षु द्वारदेशे तु पश्चिनद्वारदेशयोः । ब्रह्माणं चाप्यनन्तं च मध्यतो वरुणं यजेत् ॥३
 वरुणं चोदकुम्भस्थं मूतशाखासु शोभनम् । तेन चावाह्याभि त्वां विभो स्वर्गाय वै भव ॥४
 पूर्वगं मन्दरं स्थाप्य तोरणोपरि लक्ष्माः । विष्वक्सेनं समन्धच्च अर्चनं स्त्वांसंयुतम् ॥५
 कर्णिकायां वासुदेवं शुद्धस्फटिकसन्तिभम् । चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदपद्मविभूषितम् ॥६
 श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं युकुटाद्यैरलङ्घनम् । दक्षिणे कमला तत्स वामे पुष्टिव्यवस्थितः ॥७
 सिद्धकिञ्चर्यक्षादौः त्यूमानं सुरासुरैः । सम्पूज्य विधिवद्वक्त्या विष्णोरराट इत्यूचा ॥८
 इते सङ्कर्षणदीनेश्च विमलाद्याश्रम नायिकाः । सम्पूज्य धूपदीपाद्यैरुपहारेऽरुत्तमैः ॥९
 धृतप्रदीपे देवस्य गुगुगुरुः सरलस्तथा । धूपो देवबलिः क्षीरं परमान्नं धृतप्लुतम् ॥१०
 ध्यायेत्सोमं कर्णिकायां दक्षिणे पद्मसंस्थितम् । शुक्लान्नं द्विभुजं शान्तं केद्वरद्युपशोभितम् ॥११
 प्रशस्यं देवयक्षाणां वरदाभयहस्तकम् । इमं देवा इति ऋचा उपचारैः पृथग्विधैः ॥१२
 पूजयेच्च निशानाथं धृतभक्तं निवेदयेत् । इन्द्रं जयन्तमाकाशं वरुणं चाग्निमेव च ॥१३
 ईशानं तत्पुरुणं चैव वायुं पूर्वादिदिक्षण्यि । कर्णिकाया वामभागे वरदःभयहस्तकम् ॥१४

एवं चौकोर मण्डल बनाकर उसके ईशान कोण में स्थित कलश में प्रधान देव और मध्य कलश में ग्रहों की उत्तम अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए । १-२। अपने अपने दिशाओं में, दरवाजे, एवं उसके पार्श्व भाग में पश्चिम द्वार और उस दिक्पाल के मध्य ब्रह्मा, अनन्त तथा मध्य में स्थित वरुण देव की पूजा करनी चाहिए । ३। घटोदक में स्थित वरुण देव का, जो भूतशाखाओं में परमसुशोभित हैं, मैं स्वर्ग प्राप्त्यर्थ आवाहन कर रहा हूँ । ४। उत्तमवृन्द ! पूर्व की ओर मन्दर का स्थापन करके तोरण के ऊपर विष्वक्सेन की अर्चा स्वर्ग लाभ के लिए करनी चाहिए । कर्णिका (पंखुडियों) में शुद्ध स्फटिक भणि की भाँति, चार भुजाएँ, क्रमशः शांख, चक्र, गदा, तथा पद्म से विभूषित, श्रीवत्स एवं कौस्तुभ से अलंकृत हृदय स्थल, तथा मुकुट आदि से सुशोभित वासुदेव की पूजा भक्ति पूर्वक करनी चाहिए, जिसके दक्षिणभाग में कमला, बाँये पुष्टि व्यवस्था, तथा सिद्ध किञ्चर यक्ष, सुर और असुर द्वारा स्तुति सम्पन्न है । विधान एवं भक्ति पूर्वक 'विष्णोरराट इति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक उनकी अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत दल में स्थित संकर्षणादि और विमला आदि नायिकाओं का पूजन करके धूप, दीप एवं उत्तम उपहार प्रदान करना चाहिए । ५-९। धी का दीपक, गुगुल, धूप, देवबलि, क्षीर और धी में डूबे हुए उत्तमान्न, उस देव के लिए प्रदान करना चाहिए । उस कर्णिका (पंखुडी) के दक्षिण भाग में कमलासन पर स्थित उस सोमदेव का जो शुक्लवर्ण की प्रभा, दो भुजा, शान्त स्वरूप, और केयूर आदि आभृषणों से विभूषित हैं, एवं देव-यक्षों में श्रेष्ठ वरद तथा अभय दान देने वाले हैं, इमं देवा इति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक पृथक् विधान तथा उपचारों द्वारा ध्यान-पूजन करना चाहिए । इस भाँति निशानाथ चन्द्रमा की अर्चा सुसम्पन्न करके धृत तक उन्हें अपित करने के उपरान्त इन्द्र, जयन्त, आकाश, वरुण, अग्नि, ईशान, तत्पुरुष और वायु देवता का पूर्वादि दिशाओं में स्थापन पूजन करते हुए कर्णिका के बाँये भाग में वर और अभय दायक हाथ, दो भुजा, एवं शुक्ल वर्ण वाले महादेव की सविधान अर्चा करके 'अम्बकमिति' इस मंत्र द्वारा

द्विभुजं शुक्लवर्णं च महादेवं प्रपूजयेत् । ऋग्मन्त्रेन च मन्त्रेण दद्याच्च वृत्तपिष्ठकम् ॥१५
 वासुदेवाय देवाय जुहुयादष्ट आहुतीः । परमान्नेन सौम्यस्य जुहुयादष्टविंशतिम् ॥१६
 शिवाय परमान्नेन जुहुयान्नाहुतिद्वयम् । गणेशस्य तथाज्येन ददेवेक्षाहुति बुधः ॥१७
 ब्रह्मणो वरुणस्याथ एककामाहुतिं तथा । ग्रहणां स्वोक्तसमिधा दिगोशानां पृथक्पृथक् ॥१८
 एककामाहुतिं दद्यादाज्येन च यथाक्रमम् । कराली धूमली श्वेता लोहिता कनकप्रभा ॥१९
 अतिरिक्ता पद्मरागा वक्त्रजिह्वा ऋकीर्तिताः । तासां मन्त्राः क्रमेनैव सादिवासान्त दिन्द्वः ॥२०
 यकारस्थाश्र विज्ञेया अष्टस्वरविभूषिताः । घृतमध्वाज्यसिक्ताभिर्हेमयेच्च पृथक्पृथक् ॥२१
 एककामाहुतिं दद्याद्दत्त्वा चैव रामाहितः । अग्नीषोमं तत्खेद्रं च पृथिवीमन्तरिक्षकम् ॥२२
 स्थालीपाकेन जुहुयान्मधुक्षीरथवान्वितम् । एककामाहुतिं तेषां समुहित्य पृथक्पृथक् ॥२३
 यावकर्त्तर्धायुष्याद्यैरचित्वः सपरावकम् । जपस्व त्वं भहाभाग श्रद्धया चैव वाग्यतः ॥२४
 जापको विधिनानेन प्रजपेतत्र रुद्रकम् । मञ्जलं परमान्नं च सौरसूक्तं तथा जपेत् ॥२५
 ततः सम्मुज्ज विधिना न्नापयित्वा यथाविधि । यूपं गर्भं विनिक्षिप्य तत्र कुर्याद्विचक्षणः ॥२६
 ध्वजानारोप्य प्रान्तेषु दद्यात्सोमं बनस्पतिम् । कोऽदादिति यठित्वा च वृक्षाणां कर्णवेदनम् ॥२७
 सूच्या सुतीक्ष्णया कार्यं द्विपात्रे वामदक्षिणे । नवग्रहणां तृप्त्यर्थं यावकं लड्डुकं तथा ॥२८
 पिष्ठकं च पृथगदद्यात्कुमारीबालकेषु च । निशारञ्जितसूत्रेण^१ संवेष्ट्य च सच्चर्णकम् ॥२९

उन्हें धी में डूबी हुई पीठी सादर समर्पित करनी चाहिए । १०-१५। परमोत्तम देव वासुदेव के लिए उत्तमान्न की आठ आहुति, बुध के लिए अट्टाइस, शिव के लिए दो और गणेश के लिए धी की एक आहुति प्रदान करनी चाहिए । उसी भाँति ब्रह्मा और वरुण के लिए एक तथा ग्रहों के लिए उपरोक्त समिधा की प्रज्वलित अग्नि में एक-एक एवं दिगीश्वरों के लिए भी उसी प्रकार पृथक-पृथक् एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिए । कराली, धूमली, श्वेता, लोहिता, कनकप्रभा, अतिरिक्त और पद्मरागा ये अग्नि की जिह्वाएँ हैं, इनके मत्र भी क्रमशः बसा दिये गये हैं, ये यकारस्थ और आठों स्वरों से सुशोभित हैं, इन्हें पृथक-पृथक् धी, शहद, और धी में भीगे हुए पदार्थों की आहुति प्रदान करनी चाहिए । १६-२१। इस प्रकार इन्हें एक-एक आहुति प्रदान करने के अनन्तर अग्निव्योम, इन्द्र, पृथिवी और अन्तरिक्ष के लिए बने हुए पाक द्वारा शहद, क्षीर भिन्नित जवा की एक एक आहुति पृथक-पृथक् प्रदान करके हलुआ, गन्ध इत्यादि से अर्चा सुसम्पन्न करते हुए उस पुण्यात्मा व्रती को मौन होकर श्रद्धापूर्वक सपरावक का जप करना चाहिए । पुनः उस जप करने वाले को इसी विधान द्वारा मांगलिक परमान्न और सौर सूक्त का पाठ करना आवश्यक होता है । पश्चात् सविधान मार्जनं एवं स्नान कराकर उस बुद्धिमान् को गर्भ में धूपस्तम्भ का स्थापन करना चाहिए । २२-२६। प्रान्तों में ध्वजाओं के आरोहण पूर्वक सोमवनस्पति को प्रदान करते हुए 'कोऽदादिति' ऐसा कहकर अत्यन्त तीक्ष्ण सूची (सूई) द्वारा दाहिने बाँयें दोनों पत्तों में वृक्षों का कर्णवेद संस्कार सुसम्पन्न करना चाहिए । उपरात नवग्रहों के तृप्त्यर्थ हलुआ लड्डू और पीठी कुमारियों और बच्चों को पृथक-पृथक् प्रदान करना बताया गया है । हरिद्रा के रंग में रंग हुए सूत्रों से

प्रदद्याद्दोहकं चैद वृक्षाणां विधिपूर्वकम् । प्राशयेच्चैव तान्वृक्षानिमं सन्त्रभुदाहरेत् ॥३०
 वृक्षाग्रात्पतितस्यापि आरोहात्पतितस्य च । मरणे वास्त्विभङ्गे वा कर्ता पापैर्न लिप्यते ॥३१
 धेनुं सुवर्णं धान्यं च आचार्यापि प्रदक्षिणम् । दत्त्वा च ऋत्विजे दद्यात्सुदर्णं रजतं तथा ॥३२
 धान्यं च ब्रह्मणे दद्याद्धृतभोज्यं सशर्करम् । इष्टां च दक्षिणां दद्यात्सदस्याय तथैद च ॥३३
 अधिकलशं समानीदं स्नानं कुर्याद्विधानतः । छृद्दा चैवानिशं कुर्याद्विधात्सृष्टिं तथा ॥३४
 सर्वोषध्युद्दनं प्रोक्ष्य त्रिवारं क्षीरधारया । त्वं वेष्ट्य त्रिश्वतुर्वरं ब्रह्मघोषपुरःसदस् ॥३५
 गृहं ऋजेत्ततो दिप्रैः कुर्याच्चैव गृहार्दनम् । तंतौ विशेषं वक्ष्यामि वरा एवेदभित्युचा ॥३६
 बलं कामं हयग्रीवं माधवं पुरुषोत्तमम् । वासुदेवं धनाध्यक्षं ततो नारायणं यजेत् ॥३७
 दधिभक्तं बर्ति दद्यात्पञ्चगव्यसमुद्दवम् । एवं सम्पूज्य विधिना दक्षिणे पृथिवीं यजेत् ॥३८
 शुद्धकांश्चनवर्णाभां वराभयकरां शुभाम् । मण्डूकस्थां च द्विभुजां सदर्लिङ्गारसुन्दरीम् ॥३९
 स्योना पृथिवीति मन्त्रेण पूजयित्वा यथाविधि । पायसं सधुसंयुक्तं बलं दद्यात्सर्शर्करम् ॥४०
 वामतो विश्वकर्मणं शुद्धस्फटिकसन्निःस् । शूलटइकधरं शान्तं संयजेदुपचारकैः ॥४१
 विश्वनिति ऋचां तं च बलिं च मधु पिष्टकम् । दद्याज्जपेच्च कौञ्जाण्डं सूक्तं पौरुषमेव च ॥४२
 मधुपावसयुक्तेन होमानष्टौ विधाय च । एकैकं होमयेत्पश्चात्पृथिवीहोमकर्मणि ॥४३
 समुत्सृज्य ततः सेतुमिमं मन्त्रं पठेत्ततः । पिच्छले पतितानां च उच्छ्रृतेनाङ्गसङ्गतः ॥४४

उस चूर्णं समेत को बाँधकर उसी द्वारा वृक्षों का दोहक और प्राशन कर्म इसी विधान से सुसम्पन्न करते हुए इस भाँति भन्त्र प्रार्थना करनी चाहिए—वृक्ष के अग्रभाग एवं उस पर चढ़ते समय उस पर गिर कर हड्डी टूट जाये अथवा मृत्यु हो जाये, तो उसके निर्माण करने वाले को उस पाप का भागी न होना पड़े । इसके अनन्तर आचार्य के लिए दक्षिणा के रूप में धेनुं, सुवर्णं, धान्यं प्रदान कर ऋत्विक् के लिए सुवर्णं और चाँदी, ब्रह्मा के लिए धान्यं, शक्कर समेत धीं का भोजन तथा अन्य सदस्यों के लिए उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान करके प्रधान कलश मगाकर विधान पूर्वक स्नान और पूर्णाहुति करनी चाहिए । २७-३४; सम्पूर्ण औषधि समेत घटोदक से तीन बार प्रोक्षण एवं क्षीर धारा से तीन या चार बार नण्डल बनाकर ब्रह्माध्वनि के साथ ब्राह्मणों को आगे करके गृह प्रवेश करने के अनन्तर गृह-पूजा करनी चाहिए । इसमें कुछ विशेष बातों को बता रहा हूँ, बल, काय, हयग्रीव, माधव पुरुषोत्तम, वासुदेव, धनाधिष्य (कुबेर) और नारायण की अर्चा 'वरा एवेदमिति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करके पञ्चगव्य एवं दही से बने हुए पदार्थ की बलि प्रदान करनी चाहिए । इस भाँति विधान पूर्वक उनकी पूजा सुसम्पन्न करने के अनन्तर शुद्ध सुवर्ण की भाँति प्रभा, वर एवं अभ्य प्रदान करने वाली, शूभ मूर्ति, मेढक पर स्थित, दो भुजा तथा समस्त अलंकारों से परम सौन्दर्यपूर्ण उस पृथिवी की अर्चा सविधान 'स्योनापृथिवीति' इसमंत्र से उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करनी चाहिए । पश्चात् दूध, शहद और शक्कर समेत उन्हें बलि प्रदान करके बाँयं भाग में स्थित शुद्ध स्फटिक की भाँति, शूल और टंकधारी तथा शांत उस विश्वकर्मा का पूजन उपचारों द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । पुनः 'विश्वनिति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक शहद और पीठी की बलि प्रदान कर कौञ्जाण्ड और पुरुष सूक्त का पाठ करना चाहिए । उपरांत शहदमिश्रित सीर की आठ आहुति प्रदान पूर्वक पश्चात् सभी के लिए एक एक आहुति उस पृथिवी हवन कर्म में प्रदान

प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्याश्च पातकम् । सेतोरस्य प्रबन्धस्य अद्भुता परप्या तथा ॥४५
 ये चात्र ग्राणिनः सन्ति रक्षां कुर्वन्ति सेतवः । वेदागमेन यत्युण्यं यथैव हि समर्पितम् ॥४६
 गर्तुं कृत्वा पञ्चरत्नं ज्ञस्थाप्य तदनन्तरम् । संस्थाप्य च ततो यूपं समूज्य च यथाविधि ॥४७
 आचार्यार्थं ततो दद्यादिष्टां च वरदक्षिणाम् । पूजयेद्द्विजदम्पत्यं लाजाभिः परिपूजितम् ॥४८
 पोटिकां च ततः शश्यां दद्यादिष्टार्थसिद्धये । सेतौ वृक्षस्थिता ये स्यू रोप्येत्कदलों शुभाम् ॥४९
 तेषां पार्थक्षयेष्वमारामे च पृथक्षृथक् ॥५०
 इति श्री ऋतिष्ठ्ये महापुराणे मध्यमर्पणं तृतीयभागे उपवनादिप्रतिष्ठावर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

गोप्रचारवैशिष्ट्यवर्णनम्

सूत उवाच

गोप्रचारं पुनर्वश्ये विशेषं तत्र मे शृणु । यजेष्विष्णुं लक्ष्मीक्रमुपचारैः पृथग्विधैः ॥१
 उपचारैश्च ब्रह्माणं रुद्रं चैव करालिकाम् । वराहं सोमसूर्यं च महादेवं यथाद्वामम् ॥२
 होमं चैव यथा विष्णोः दमलायास्त्रयंत्रयम् । आज्येन क्षेत्रपालानामन्येषां मधुमिश्रितैः ॥३
 एकैकामाहुर्ति दद्याल्लाजादिषु पृथक्षृथक् । समुत्सृज्य विधानेन यूपं संस्थाप्य पूजयेत् ॥४

करना चाहिए ! अनन्तर उस सेतु के त्याग पूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करे कि किसी के (कीचड़ से) फिसल कर या ऊँचाई से गिरने पर मुझे इस सेतु प्रतिष्ठा कर्म करने के नाते धर्म की ही प्राप्ति हो पातक की नहीं । क्योंकि श्रद्धा पूर्वक मैंने उस सेतु का प्रबन्ध किया है । जो कोई प्राणी सेतु रूप से यहाँ स्थित हैं, वे रक्षा एवं वेदागम द्वारा प्राप्त पूण्य प्रदान करें इसके उपरांत गड्ढा बनाकर उसमें पञ्चरत्न समेत यूप स्तम्भ को प्रतिष्ठित करके यथाविधान उसकी अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए, अनन्तर आचार्य के लिए उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान कर लावा द्वारा द्विज दम्पती की पूजा और अपनी इष्ट सिद्धि के लिए पोटली समेत शश्यादान करके उस सेतु पर स्थित वृक्षों एवं उपवन के दोनों पाश्वों में पृथक्-पृथक् केला के वृक्ष लगाने चाहिए । ३५-५०

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में पहला अध्याय समाप्त । १।

अध्याय २

गोप्रचार के वैशिष्ट्य का वर्णन

सूत बोले—मैं उस गोप्रचार को पुनः बता रहा हूँ, उसकी विशेषता को भी सुनो ! लक्ष्मी समेत विष्णु की अर्चा पृथक्-पृथक् उपचारों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । पश्चात् उपचार द्वारा ब्रह्मा, रुद्र, करालिका, वराह, चन्द्र, सूर्य और महादेव का पूजन क्रमशः सुसम्पन्न करके यथाविधान विष्णु और कमला के लिए खीर की तीन-तीन आहुति प्रदानपूर्वक क्षेत्रपालों के लिए शहद मिश्रित लावादि की एक-एक पृथक्-पृथक् आहुति देने के अनन्तर विधानपूर्वक यूप का स्थापन और पूजन करना चाहिए

त्रिहस्तमात्रं रचितं कुर्यान्नाशकणान्वितम् । रोपयेदेकहस्तेन गर्भे होमं प्रयोजयेत् ॥५
 लाजासंयुक्तविधिना विश्वेषामिति सञ्जपन् । नामाधिपतये तद्वद्ब्युताय तृतीयकम् ॥६
 भौमायेति चनुर्थं च ततो यूपं निवेदयेत् : मयि गृम्णामीति सम्पूज्य यूपं च रुद्रदैवतम् ॥७
 सम्पूज्य रुद्रं पञ्चाङ्गं धान्यं वस्त्रं च दक्षिणान् : आचार्याय तथा होत्रे अन्वेषामिष्टदक्षिणाम् ॥८
 गोप्रचारे च शैलेयं यूपं हुस्तद्वयान्वितम् । पञ्चशीर्षान्वितं कुर्याद्वित्तमात्रं प्ररोपयेत् ॥९
 यूपं च चैत्रवृक्षं च कुण्डलीमठपीठिकाम् । संस्पृश्याचम्य वै विप्राः प्राणायसेन शुद्ध्यति ॥१०
 चतुर्हस्तप्रमाणेन शतकुण्डेन सम्मितम् । तदर्थं च कन्तिष्ठेन अष्टकगङ्गाधिकं भवेत् ॥११
 शूमौ रत्नं च संस्थाप्य इमं मन्त्रमुदाहरेत् । शिदलोकस्तथा गावः सर्वदिवसुपूजिताः ॥१२
 शोभ्य एषा मया भूनिः सम्प्रदत्ता शुभार्थिना । एवं निवेदयेद्यस्तु गोप्रचारं समाहितः ॥१३
 स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते । धावन्ति तृणगुल्मानि सन्ति शूमौ शुभानि च ॥१४
 तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते । पूर्वे सीमां निबध्नीयात्कृत्वा दृक्षरूपं रोपणम् ॥१५
 सेतुं कृत्वा दक्षिणतः पश्चिमेऽङ्गाररोपणम् । उत्तरे खान्येत्कूपं तस्य सीमां न लङ्घयेत् ॥१६
 ततः सहस्रधारां च शस्येन परिपूरिताम् । प्रदद्याद्वा ततो विप्राः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१७
 नगरग्रामपूर्वे वा उत्तरे पश्चिमेऽपि वा । न कुर्यादग्निदिव्यभागे दक्षिणां वा ततः शुभाम् ॥१८

।१-४। तीन हाथ की नाग के फल की भाँति उसकी रचना करके एक हाथ गर्भ के भीतर प्रविष्ट करने के उपरांत हवन कर्म प्रारम्भ करना चाहिए, 'विश्वेषामिति' इसका उच्चारण करते हुए लावा मिश्रित की आहुति विधान पूर्वक नागाधिपति, अच्युत और भौम के लिए प्रदान करके 'मयि गृम्णामिति' इस मंत्र के द्वारा पूजन और आहुति उस रुद्र देवता वाले यूप के लिए समर्पित करनी चाहिए ।५-७। पञ्चाङ्ग समेत रुद्र की उपासना करके आचार्य के लिए धान्यं वस्त्रं समेत अभीष्ट दक्षिणा प्रदान पूर्वक होता के लिए भी उनकी अभिप्रेत दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । गो-प्रचार कर्म में शिलाखण्ड के बने हुए यूप-स्तम्भ के जिसका आकार प्रकार दो हाथ का एवं पाँच शिखर बने रहते हैं, एक हाथ गर्भ के भीतर प्रविष्ट कर उसका स्थापन-पूजन करना चाहिए । विप्रवृन्द ! यूप, चैत्रवृक्ष, कुण्डली मठ-पीठिका के स्पर्श करने पर आचमन और प्राणायाम द्वारा शुद्धि होती है । शत कुण्डी में उसे चार हाथ के प्रमाण का बनाना चाहिए, भूमि में रत्न स्थापित करके इस मंत्र का उच्चारण करना बताया गया है । शिवलोक और गौरैँ समस्त देवों की पूजनीया हैं, इसलिए कल्याणार्थ मैंने गौओं के लिए इस भूमि का दान किया है, इस भाँति जो मनुष्य गो प्रचार (चारागाह) का विधान सुसम्पन्न करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में पूजित होता है । तृण, गुल्मों की जितने दिनों तक पृथिवी तल पर स्थिति रहती है, उतने सहस्र वर्ष वह स्वर्गलोक में पूजित होता है । पूर्व प्रदेश में सीमा-सीमित करके दृक्ष रोपना चाहिए । दक्षिण में सेतु-निर्माण पूर्वक पश्चिम में अग्निशाला और उत्तर की ओर कूप-निर्माण करके इसकी सीमा पार न करनी चाहिए ।८-१६। विप्रवृन्द ! पश्चात् सहस्रधारा का, जो शस्य श्यामल पूर्ण हो, जो दान करता है, वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है । नगर-गाँव के पूर्व, उत्तर, पश्चिम अथवा अग्निकोण और दक्षिण में सम्बद्ध गो-प्रचार न करना चाहिए । गो-प्रचार का सनन अथवा उद्वाहन करने वाले मनुष्य का कुल-

गोप्रचारं खनेद्यस्तु बाह्येदा कथञ्चन । कुलानि पातयत्यानु ब्रह्महत्याश्र विन्दति ॥१९
स्वर्गं नयति गोचर्म सम्यगदत्तं सदक्षिणम् । यावत्तृणानि तद्भूमौ सप्तसंख्यानि संख्यया ॥२०
तत्वत्कालं वसेत्स्वर्गं विष्णुलोकान्न तच्छ्रुतिः ॥२१

महायागादत्ताने च यो न तर्षयति द्विजान् । निरर्थकं तस्य कर्म प्रदासफलमःत्रकम् ॥२२
वृषोत्सर्गांवसाने तु शदद्याद्यो महीं द्विजाः । न याति विप्राः प्रेतत्वं तस्माद्विप्रादमत्सराः ॥२३
तत्र मानं पृथक्दैव शृगुतात्र समाप्तातः । अमानेन ददेयस्तु नरकं याति रौरवन् ॥२४
गदां शतं वृषश्वेतो यत्र तिष्ठत्ययन्वितः । तद्गोचर्मेति विख्यातं दत्तं सर्वाधिनाशनम् ॥२५
गोप्रचारस्य देवस्य ब्राह्मणस्य च भो द्विजाः । यावत्कालावधे: सीमा अतीते नास्ति पातकम् ॥२६
मण्डपं पूजयेत्सूर्यं वासुदेवसमन्वितम् । होमस्तिलगुडाम्यां च अष्टावष्टौ पृथक्पृथक् ॥२७
देहि भैरति च मन्त्रेण विन्यसेन्नण्डपोपरि । यतनसिद्धं ततः कृत्वा शुक्लं घटचतुर्ष्टयम् ॥२८
समुत्सुजेजपेत्पश्चात्सौरं सूक्तं च वैष्णवम् । वटपत्रे तु संलिख्य चित्रं निर्माय वा पुनः ॥२९
दिक्ष्यालान्तसंन्यसेत्त्वामु स्वामु दिक्षु विचक्षणः । बद्धाऽङ्गतिः पठेन्मन्त्रानिन्द्रादीनां यथाक्रमसम् ॥३०
धर्मसंस्थापनार्थाय आत्मनो विभवाय च । वज्रहस्तो महेन्द्र त्वं धर्मतस्त्रातुर्महसि ॥३१
भो वहे मेषवाहस्त्वं चतुःशृङ्गविराजित । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुर्महसि ॥३२
यम त्वं दक्षिणाशेषं महामहिषवाहन । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुर्महसि ॥३३

नाश हो जाता है, और उसे ब्रह्म-हत्या का दोष भागी होना पड़ता है। दक्षिणा समेत गोचर्म के समान भूमि का दान करने से भी स्वर्ग प्राप्ति होती है, उस भूमि में जितने दिन हरियाली रहती है, उसके सात गुने पर्यंत समय तक स्वर्ग में निवास रहता है, पश्चात् विष्णुलोक से उसकी कभी च्युति नहीं होती है । १७-२१। महायाग की समाप्ति में जो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट नहीं करता है, उसका किया हुआ कर्म निष्फल एवं केवल प्रवास करना मात्र फल होता है। विप्रवृन्द ! वृषोत्सर्ग के समाप्ति में जो मनुष्य पृथिवी दान करता है, उसको कभी प्रेत नहीं होना पड़ता है, उसमें मान का पृथक् विधान बताया गया है, मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! क्योंकि मानहीन पूर्वक उस कर्म की समाप्ति करने से रौरव नामक नरक की प्राप्ति होती है। जिस प्रदेश में सौ गायों के साथ एक वृष (सांड) भी स्वतन्त्रता पूर्वक विचरण करता है, उसे गोचर्म, कहते हैं और वही सम्पूर्ण पापों का नाशक होता है। द्विजवृन्द ! गो प्रचारक किसी भी ब्राह्मण देव को उसके समयावधि के भीतर उसकी सीमा पार करने में दोष भागी नहीं होना पड़ता है। वासुदेव समेत सूर्य की अर्चा मण्डप में करने के अनन्तर तिल, गुड़ की पृथक् पृथक् आठ-आठ आहुति प्रदान करनी चाहिए। 'देहिमेति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक मण्डप के ऊपर उसका विन्यास करके शुक्ल वर्ण चार कलशों का उत्सर्जन और सौर सूक्त तथा वैष्णव सूक्त का पाठ करना चाहिए। पश्चात् बरगद के पते पर चित्र निर्माण कर दिक्षालों को अपनी अपनी दिशाओं में प्रतिष्ठित करना चाहिए। और हाँथ जोड़कर क्रमशः इन्द्रादि देवों के निमित्त इस भाँति प्रार्थना करनी चाहिए। हे महेन्द्र ! धर्म का स्थापन और अपने ऐश्वर्य वृद्धि के लिए हाँथ में वज्र लिये आप धर्म रक्षक बनाये गये हैं, हे अग्नि देव ! आप भेड़ वाहन एवं चार शिखरों से विभूषित हैं, अतः इस अनाथ मण्डप की धर्मतः रक्षा कीजिये। हे यम ! आप दक्षिण दिशा के अधीश्वर हैं, हे महामहिष (भैसे) वाहन वाले ! इस अनाथ मण्डप की धार्मिक रक्षा कीजिये

मञ्चस्थो राक्षसेन्द्रस्त्वं सङ्गपाणिर्भाबलाः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥३४
 वारिराद् ध्वजहस्तोऽसि पवनो मृगवाहनः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥३५
 धनःधक्षो गदाहस्तः पिङ्गाक्षो नरवाहनः । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥३६
 आदिदेवोऽसि देवानां कर्ता हर्ता महेश्वरः ; अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥३७
 अनन्तो नागराजो यो धरामुद्भूत्य तिष्ठति । अनाथं मण्डपं त्वं हि धर्मतस्त्रातुमर्हसि ॥३८
 चतुर्णिमेव वर्णानां स्थित्यर्थं सृगणक्षिणाम् । प्रीतये वासुदेवस्य एवं मण्डपमुत्सृजेत् ॥३९
 भग्ने स्तम्भे तृणे जीर्णे पुनस्त्वाप्रदापने । स्थापने च तथैवास्य प्रतिष्ठा स्याद्यथाक्षया ॥४०
 घातापायाद्विदोषेण ऋयन्ते यदि जन्तवः । प्रतिष्ठायां कृतायां तु धर्मो मे स्यान्न पातकन् ॥४१
 मानुषाः पश्वो ये च निवसन्तीह मण्डपे । स्वस्ति चास्तु सदा तेषां त्वत्प्रसादात्किल प्रभो ॥४२
 तत्स्त्रिगुणसूत्रेण सुत्राभागेति वै ऋचा । सप्तधा वेष्टित्वा तु दक्षिणां सम्प्रकाश्य च ॥४३
 उपानहौ तथा छत्रमाचार्याय निवेदयेत् । मण्डपे भोजयेद्विप्रांस्तेषां दद्याद्यथेऽसितान् ॥४४
 दीनेम्यश्च पृथगदद्याद्गृहं विप्रपुरःस्तरम् । प्रविशेत्यभोषेण प्रकुर्यच्च गृहार्चनम् ॥४५
 एवं प्रपायां विज्ञेयो विशेषो वरुणं यजेत् । वासुदेवे जहितं साङ्गोपाङ्गं सदक्षिणम् ॥४६
 स्थालीपाकविधानेन प्रकुर्यद्विशिकोत्तमः । आचार्याय गृहं दद्यात्परिच्छदसमन्वितम् ॥४७

मञ्च पर स्थित, हाँथ में सङ्ग लिये महाबली राक्षसेन्द्र ! आप भी इस अनाथ मण्डप की धर्मतः रक्षा कीजिये, हाथ में ध्वजा लिए जलाधिनतय और मृगवाहन वायु देव ! इस अनाथ मण्डप की आप रक्षा कीजिए । हाथ में गदा लिये, पिंगल नेत्र, एवं मनुष्य वाहन वाले धनाधीश्वर कुबेर ! आप इस अनाथ मण्डप की धर्म के नाते रक्षा कीजिए । देवों के आदि देव, एवं कर्ता हर्ता महेश्वर ! इस अनाथ मण्डप की धार्मिक रक्षा कीजिए । नागराज अनन्त ! जो इस पृथिवी का भार उठाये हुए हैं, इस अनाथ मण्डप की रक्षा करें । २२-३८। चारों वर्णों और पशु पक्षियों के स्थित्यर्थं एवं वासुदेव के प्रसन्नार्थं मण्डप का उत्सर्जन करना चाहिए । किसी स्तम्भ के दूटने अथवा जीर्ण होने पर पुनः तृण से छवाने और स्तम्भ के लगाने से उसकी प्रतिष्ठा जिस प्रकार अक्षीण ही रहती है, कहना चाहिए, किसी प्रकार के घात, अथवा उपाय (विघ्न) दोष दूषित जन्तुओं के निधन होने पर इस प्रतिष्ठा-कर्मानुष्ठान द्वारा मुझे धर्म की प्राप्ति हो पातक की नहीं । मनुष्य और पशुगण, जितने इस मण्डप में निवास करते हैं, हे प्रभो ! आप की प्रसन्नता वश उनका सदैव कल्याण होता रहे । ३९-४२। पश्चात् तिगुनें किये हुए सूत्र द्वारा 'सुत्राभागेति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक उसे आवेष्टित करके पादत्राण और छत्ते समेत दक्षिणा आचार्य के लिए अर्पित करने के उपरांत मण्डप में ब्राह्मणों को मनोनीत भोजन सुसम्पन्न करना चाहिए । पुनः दीनों आदि के लिए उनके संतोष की कुछ वस्तुओं के प्रदान पूर्वक ब्राह्मणों को आगे कर तुरुही आदि वाद्यों के ध्वनि कोलाहल में गृह-प्रवेश के अनन्तर गृह-पूजन करना चाहिए । इसी भाँति प्रपा (पियाऊ) के स्थापन प्रतिष्ठा में भी होना चाहिए, उसमें विशेषकर वरुण की पूजा की जाती है । वासुदेव समेत सांगोपांग एवं दक्षिणा सहित उनकी पूजा सुसंपन्न करके बने हुए पाक-विधान द्वारा उसकी समाप्ति के उपरांत आचार्य के लिए छाये हुए गृह का प्रदान और क्रत्विजों के लिए जल पूर्णता के पात्र तथा

ऋत्विजे ताम्रपात्रं च जलपूर्णं च भान्यकम् । दिक्षालान्द्वारदेशे तु कूपयामे विशेषतः ॥४८
 ब्रह्माणं नागराजानं द्वारपात्रौ च पश्चिमे । यजेन्मन्त्रैः पृथदेवान्मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमम् ॥४९
 बलिदानं विधानेन कृत्वा दद्याद्यथाविधि । पताकानामतस्तत्त्वं ब्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ॥५०
 बज्जी च धूमली कृष्णा पीता चैवाथ वारुणी । शीघ्रा गौरी उमा चैव पीता शुक्ला प्रकीर्तिता ॥५१
 कुम्भेषु पूजदेवान्महेशं प्रथमं बुधः । ग्रहांच मध्यकलशे ब्रह्माणं च ततः परम् ॥५२
 वेदिकापूर्वभागे दु उत्तरे कलशे शिवम् । दक्षिणे कलशे विष्णुं कर्णिकायां जलेश्वरम् ॥५३
 कलशे विधिवद्वक्त्या उपचारैः पृथग्विधैः । सम्पूर्ज वटपत्रे च नागान्संलिख्य नागजैः ॥५४
 ये नागास्तान्नवद्यामि अनन्तो वासुकिस्तथा । तथा कर्कोटकश्रैव पद्मश्च कुलिकस्तथा ॥
 पद्मश्रैव महापद्मो मन्त्रैरेभिः पृथक्पृथक् ॥५५

पुण्डरीकंदलाभास गुभकर्णान्तलोचन । फणासहवसंयुक्त शङ्खाब्जकृतलोचन ॥५६
 अनन्त नागराजेन्द्र इहागच्छ नमोऽस्तु ते । सित कुन्देन्दुवर्णाभ विरुद्धुरद्वोगमण्डल ॥५७
 सर्वनागस्य शूरस्य कृतस्वस्तिकलङ्घनः । नासेन्द्र तक्षक श्रीमन्निहगच्छ नमोऽस्तु ते ॥५८
 नवीनजलदश्याम श्रीमन्कमलोचन । विषदर्पबलोन्मत ग्रीवायामेकशेखर ॥५९
 शङ्खपाल इति ख्यात जलाधारप्रतीक्षक । अध्यक्षे नागलोकानामिहागच्छ नमोऽस्तु ते ॥६०
 अतिपीत सुवर्णाभि चन्द्रार्धाङ्गिकतमस्तक । दीप्तभोगकृताटोप शुभलक्षणलक्षित ॥६१

धान्य प्रदान करना बताया गया है । कूप-याग (कूएँ की प्रतिष्ठा) में विशेषकर दरवाजे पर दिक्षालों तथा पश्चिम की ओर स्थित ब्रह्मा और नागराज एवं देवताओं की अर्चा पृथक्-पृथक् मन्त्र विधानों द्वारा सुसम्पन्न करनी चाहिए । यथा विधान उन्हें बलि प्रदान करने के अनन्तर पताकाएँ प्रदान करनी चाहिए, मैं उसे क्रमशः बता रहा हूँ जो बज्जी, धूमली, तृणा, पीता, वारुणी, शीघ्रा, गौरी, उमा, पीता और शुक्ला के नाम से ख्यात हैं । घट-स्थापन पूर्वक देवों की पूजा होनी चाहिए । विद्वानों को सर्वप्रथम महेश की अर्चा के अनन्तर मध्य कलश में ग्रहों एवं ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिए । वेदी के पूर्व भाग में उत्तर की ओर स्थित कलश में शिव दक्षिण कलश में विष्णु, और कर्णिका के घट में जलाधीश्वर की पूजा भक्ति पूर्वक पृथक्-पृथक् सविधान उपचारों से करके बरगद के पत्ते पर नागों की प्रतिमा निर्माण पूर्वक अनन्त, वासुकी, कर्कोटक, कुलिक पद्म तथा महापद्म की अर्चा इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए सुसम्पन्न करना चाहिए । कमल दल की प्रभा, शुभ कानों तक बढ़े हुए विशाल नेत्र, सहस्र फणों से संयुक्त शंख तथा कमल की भाँति आकार वाले नागराजेन्द्र अनन्त ! तुम्हें नमस्कार है, यहाँ आने की कृपा कीजिये । श्वेत वर्ण के कुन्द पुष्प और इन्दु की भाँति वर्ण, स्फुटित फणों के मण्डल, सम्पूर्ण नागों को 'स्वस्तिक' के अंक से अंकित करने वाले, नागाधिराज श्रीमन् तक्षक ! तुम्हें नमस्कार है, यहाँ आकर कृतार्थ कीजिये । नवीन धन की भाँति श्यामल, श्रीमन्, कमल लोचन, विष के दर्प बल से उन्मत्त, ग्रीवा (गला) रूपी एक शिखर एवं जलाधार (मेघ) की प्रतीक्षा करने वाले, और नागलोक के अध्यक्ष शंखपाल नामक नागाधीश्वर ! तुम्हें नमस्कार है, यहाँ दर्शन देने की कृपा कीजिये । ४३-६०। अत्यन्त पीत वर्ण, सुवर्ण, की भाँति प्रकाश, अर्धचन्द्र से अंकित मस्तक प्रदीप्त फणों के घटाटोप , शुभ लक्षणों से सुशोभित, एवं

कुलीर नागराजेन्द्र सर्वतत्त्वहिते रह । तिष्ठेह यज्ञसिद्धिर्थं कामरूप नमोऽस्तु ते ॥६२
 यः सुवर्णेन वर्णेन पवृष्टत्रयतेक्षणः । पञ्च विन्दुकृतभोगो श्रीवायामेकशेखरः ॥
 तस्मै ते पद्यनागेन्द्र तीउरुष नमोऽस्तु ते ॥६३
 नागिन्यो नागकन्याश्व तथा नागकुमारकाः । सर्वं ते प्रीतमनसः पूजां गूल्लत्तु मे सदा ॥६४
 स्वगृह्योक्तेन विधिना कृत्वाग्रिस्थापनं ब्रुधः । आज्यं संस्कृत्य जुहुयाद्विगीशानां यथाकलम् ॥६५
 आदित्यादिग्रहांचैव अह्माणं इष्ट्यमेव च । मधुपिष्टेन च शिवं वरुणं जुहुयात्ततः ॥६६
 ऋदेशमात्रं सम्प्लोद्य यूपं चास्य षष्ठाणकम् । चतुरस्त्रं शूलयुक्तं गणानानीय द्वजयेत् ॥६७
 कूपे निक्षिप्य ताश्चागात्पञ्चरत्नं क्षिपेत्ततः । सुत्रामाणेति मन्त्रेण व्रिधा संवेष्ट्य च सूत्रकैः ॥६८
 रक्षितैः कदलीवृक्षं वरुणाय समुत्सृजेत् । त्रातारमिति मन्त्रेण वस्त्रमाल्येन भूषयेत् ॥
 कर्णवीर्यं ततः कृत्वा उत्सुजेद्वाक्यमुच्चवरन् ॥६९
 (ॐ अद्येत्यादि सर्वभूतेभ्यः फलपुष्पपत्रच्छत्यावृत्तमुख्यनानातश्चिरचित्मारम् वनस्पतिदैवतं
 सुपूजितं वेदव्याप्तात्युद्घङ्कलादाप्तये अमुककृष्णिसगोत्रः अमुकदेव शर्माहमुत्सृजे ॥)
 महोत्तरवं ततः कुर्यात्कृत्वा ब्रह्मजलिः पठेत् । वृक्षाग्रात्पतितस्थापि आरोहात्पतितस्य वा ॥७०
 मरणे चास्थि भङ्गे वा कर्ता पापैर्न लिप्यते । वज्राधातादिदोषेण त्रियन्ते तरदो यदा ॥७१
 तदोषशमनार्थाय तस्याप्येतत्प्रतिष्ठितम् । मध्ये यूपं समारोप्य चतुर्ष्कोणेऽपि यत्ततः ॥७२

सम्पूर्ण प्राणियों के उपकारक नाग राजेन्द्र कुलीर ! काम (स्वेच्छा) रूपधारी, तुम्हें नमस्कार है, इस यज्ञ की सिद्धि के लिए इस स्थल को सुशोभित कीजिये । जो सुर्वां के समान वर्ण से विभूषित, कमल पत्र की भाँति विशाल लोचन, पाँच विन्दुओं से अंकित फण, श्रीवा रूपी एक शिखर वाले तथा तीक्ष्ण स्वरूप वाले हैं उस पद्यनागेन्द्र को नमस्कार है । नागिनी, नाग कन्यायें और नाग कुमार लोग प्रसन्न मुख होकर सदैव मेरी की हुई पूजा स्वीकार करते रहें । पश्चात् अपने गृहयोक्त विधान द्वारा अग्नि-स्थापन करके धी के संस्कार पूर्वक दिक्पालों के लिए क्रमशः आहुति प्रदान करनी चाहिए । सूर्यादि ग्रह, ब्रह्मा, कृष्ण, तथा शहद समेत पीठी से वरुण और शिव के लिए आहुति प्रदान करने के उपरांत सप्रगाण बना हुआ आदेश मात्र को यूप-स्तम्भ की जो चौकोर एवं शूल युक्त रहता है, गणों के आवाहन पूर्वक पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए । उपरांत कूप में उन नागों की प्रतिमा को डालकर पञ्चरत्न भी डाल देना चाहिए, पुनः 'सुत्रामाणेति' इस मंत्र के उच्चारण करते हुए सूत्र से तीन बार उसे बाँध कर उस विभूषित केले के दृढ़ को वरुण के लिए समर्पित कर देना चाहिए । 'त्रातारमिति' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वस्त्र और माला से उसे सुशोभित करने के अनन्तर कर्णवीर्य संस्कार करके उसके उत्सर्जन में इस भाँति कहना चाहिए औं अद्येत्यादि संकल्प की भाँति कहते हुए 'समस्त प्राणियों के लिए फल, पुण्य, पत्ते और छाया से ढैंके हुए भाँति-भाँति के अनेक वृक्षों वाले इस उपवन को जिसके वनस्पति देवता, सविधान पूजित हैं, वेदव्यास आदि कृषियों के कथनानुसार फल प्राप्ति के लिए अगुक कृष्णि का सगोत्री, एवं अमुक देव शर्मा मैं उत्सर्जन (त्याग) करता हूँ । तदुपरांत महोत्सव करके हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करना चाहिए । वृक्ष के अग्रभाग से अथवा चढ़ते समय गिर कर मरने या हड्डी टूटने पर उसका कर्ता पाप भागी न हो । वज्रादि आधातों द्वारा वृक्षों के निधन होने पर उस दोष के शान्त्यर्थ ऐसी ही प्रतिष्ठा करनी चाहिए । मध्य भाग में यूप-स्तम्भ की स्थापना-पूजन के अनन्तर चारों कोनों में शहद,

मधुलाजाक्षतं दद्यादञ्जनं मात्यमेव च : निशासुश्रेण संब्रेष्टच कदलीविटपं न्यसेत ॥७३
वेष्टयेत्क्षीरधारां च पातयेद्घृतधारया । तोयसन्वितं गुच्छपुक्तं वेष्टयेत्स्वगृहं व्रजेत ॥७४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणे तृतीयभागे गोप्रचारवैशिष्ट्यवर्णनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः । २

अथ तृतीयोऽध्यायः

छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उदाच

कुद्रारामप्रतिष्ठां च वक्ष्ये वै द्विजसत्तमाः । अमण्डले शुभे स्थाने द्विहस्तेऽप्यच स्यजिले ॥१
स्थापयेत्कलशं तत्र विल्युं सोमं समर्चयेत् । आचार्यमात्रं वरयेक्षिशासूत्रैः प्रवेष्टयेत् ॥२
दृक्षान्माल्यैरलङ्घन्य भूषयेद्द्वृषणादिना । दोहदं च ततो दद्यात्स्थापयेऽङ्गतधारया ॥३
भोजयेत्पञ्च विप्रान्हि पुरतस्तं विशेषयेत् । कर्णवेधं ततः कृत्वा उत्सृजेद्वाक्यपूर्वकम् ॥४
दद्यद्वृपं मध्यदेशे रोपयेत्कलदलीं ततः । रस्माश्वं रोपयेद्विशु स्थालीपाकविधानतः ॥५
अप्तावष्टौ च जुहुयादन्येषां च धृतेन तु । एकैकामाहृतिं दद्यात्स्विष्टकृतदनन्तरम् ॥६
दक्षिणां च ततो दद्यात्पूर्णां दत्त्वाहृतिं व्रजेत् ॥७
एकादिवृक्षं वृक्षाणां विधिं वक्ष्ये द्विजोत्तमाः । समुत्सृज्य ततो यूपं कर्मणा सह धर्मवित् ॥८

लावा, अक्षत, अञ्जन, माला से विभूषित करते हुए हरदी रंग से रंगे हुए सूत्रों से सुशोभित केले का वृक्ष लगाना चाहिए, पुनः क्षीरधारा धी, धारा समेत जल की धारा से धेर कर गुच्छे से अलंकृत करके अपने गृह को प्रस्थान करना चाहिए । ६-१-७४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में गोप्रचार वैशिष्ट्य वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त । २।

अध्याय ३

लघु उपवन की प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजसत्तमवृन्द ! छोटे उपवन की प्रतिष्ठा संक्षेप में बता रहा हूँ किसी शुभ स्थान में बिना मण्डल निर्माण के दो हाथ की भूमि (वेदी) पर कलश स्थापन पूर्वक विष्णु और चन्द्रमा की अर्चा सुसम्पन्न करने के अनन्तर केवल आचार्य का वरण करके हरदी के रंग से रंगे हुए सूत्रों से वृक्षों को आवेष्टित करते हुए माला और आभूषणों से विभूषित करना चाहिए। पश्चात दोहद प्रदान करके शत धारा समेत उन्हें स्थापित करने के अनन्तर पाँच ब्राह्मणों का अभीष्ट भोजन प्रदान करते हुए कर्ण-वेद संस्कार पूर्वक उनके उत्सर्जन के समय पूर्व की भाँति करबद्ध प्रार्थना करना चाहिए । १-४। तदुपरात मध्य प्रदेश में यूप-स्तम्भ की प्रतिष्ठा पूर्वक दिशाओं में कदली वृक्ष से सुशोभित करके बने हुए पाक की आठ-आठ आहृति प्रदान पूर्वक और अन्य लोगों के लिए धी की एक-एक आहृति प्रदान करके पूर्णाहृति स्विष्टकृत हवन होनी चाहिए, पुनः दक्षिणा प्रदान करके पूर्णाहृति प्रदान करनी चाहिए। द्विजोत्तमवृन्द ! एक अथवा उससे अधिक वृक्षों का

वृक्षमूले यजेद्वर्म पृथिवीं च विशं तथा । दिगीशांश्च तथा यज्ञानादार्थं तोषयेत्ततः ॥९
धेनुं च दक्षिणां दद्याद्दोहदं वृक्षपूजनम् । कृत्वा सम्प्रिविधानेन सविक्रेत्यर्थं निवेदयेत् ॥१०
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पद्विष्णु तृतीयभागे छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः । ३

अथ चतुर्थोऽध्यायः छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उदाच

अथस्वत्थप्रतिष्ठावां मूले ब्राह्मणानके । स्थिण्डिलं कारयेत्तत्र चन्दनेनोक्तिं तथा ॥१
पद्मं प्रकल्पयेत्तत्र सामान्यार्थं विधाय च । पूर्वेष्टु रात्रिसमये तद्विष्णोरिति वै कृचा ॥२
स्थापयेद्वारेणा पूर्णं क्या नेति च गन्धकम् । गन्धद्वारेति तैलेन श्रीश्रतेति च चन्दनम् ॥३
दद्याद्वृक्षस्तं कल्पे ब्राह्मणत्रयभोजनम् । कारयेत्सितसूत्रैश्च वेष्टयेच्चन्दनोक्तिः ॥४
कुम्भे विनायकं पूज्य ब्राह्मणं च परे घटम् । स्वदिक्षु दिक्ष्यतौश्रैव वृक्षमूले नवग्रहात् ॥५
मण्डले शिवमध्यर्थं पीठपूजापुरःसरम् । अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि श्वेतं वृषभमेव च ॥६
द्विभुजं शूलहस्तं च सर्वाभिरणसंयुतम् । आरोपयेत्स्वसामर्थ्यादभूतशुद्धिं समाचरेत् ॥७

विधान बता रहा हूँ। उस धर्म वेत्ता को चाहिए कि विधान पूर्वक यूप स्थापन पूजन करके वृक्ष के मूल भाग में धर्म, पृथिवी, विश, दिक्पाल, यक्षगण, और आचार्य को सन्तुष्ट करना चाहिए। दक्षिणा रूप में योगदान करके भली भाँति विधान पूर्वक दोहद वृक्ष के पूजनानन्तर सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। ५-१०

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-गर्व के तृतीय भाग में लघु उपवन प्रतिष्ठा वर्णन
नामक तीसरा अध्याय समाप्त । ३।

अध्याय ४ लघु उपवन प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की प्रतिष्ठानुष्ठान में बाहु प्रमाण वाले उसके मूलभाग में वेदी का नर्माण कर पुनः चन्दन से सींचने के उपरांत उस पर सौन्दर्य पूर्ण कमल की रचना करनी चाहिए। सामान्य अर्घ्य सविधान प्रदान करके प्रथम दिन रात्रि के समय 'तद्विष्णोरिति' इस कृचा के उच्चारणपूर्वक जल से पूर्ण कर उसकी स्थापना के पश्चात् 'क्यानेति' इस मंत्र से गन्ध, 'गन्धद्वारेति' से तैल, 'श्रीश्चतेति' से चन्दन और द्वूर्वा अक्षत प्रदान करते हुए प्रथम कल्प में तीन ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। पुनः चन्दन से लिप्त सूत्रों से उसे आवेष्टित करके उस कलश में विनायक और दूसरे घट में ब्रह्मा की अर्चा सुसम्पन्न करने के उपरांत अपनी अपनी दिशाओं में दिशाधीश्वर, वृक्ष के मूल भाग में नवग्रह, और मण्डल में पीठासन की पूजा पूर्वक शिव की अर्चा सुसम्पन्न करनी चाहिए। इसके अनन्तर ध्यान बता रहा हूँ। श्वेत वृषभ (बैल) के ऊपर दो भुजा, हाथ में शूल लिए, समस्त आभूषणों से विभूषित उस प्रतिमा को आसीन कर अपने सामर्थ्यानुसार भूत-शूद्धि सविधान करना चाहिए। १-७।

ततोर्ध्यपात्रं कृत्वा तु पीठपूजां सनाचरेत् । गणेशं गुरुपादं च जयं भद्रं समाहितः ॥१८
 मध्ये आधारशक्तिं च कूर्मानन्तौ सप्तदाकौ । चन्द्रसूर्याश्रिकादीनां मण्डलानि क्रमाद्यजेत् ॥१९
 पुनः शात्रान्तरस्थं च गृहीत्वा कुनुनं त्रुधः । पाणिकच्छपिकां कृत्वा ध्यायेद्वै वरुणं तथा ॥२०
 पूर्वदच्च विधानेन द्वायात्प्रादिकं त्रयम् । मधुपर्कं चासनं च पृच्छेच्च स्वागतं पुनः ॥२१
 मुद्रां प्रदर्श्य विधिवद्दृग्पूजां समाचरेत् । पूर्दादिवद्वे इन्द्रादीन्नह्याणं मध्यतो यजेत् ॥२२
 अनन्तं युरतश्चैव तेषामस्त्राणिं तद्वहिः । मध्ये तोयाधिपं रुद्रं जान्तं चैव प्रशान्तकम् ॥२३
 भूस्तत्त्वं च भूवस्तत्त्वं द्वस्तत्त्वादि च तत्त्वकम् । कामं धर्ममङ्गर्मं च दिक्षु नारायणं शिवम् ॥२४
 नैर्श्रुते च यजेद्वुर्गा पार्श्वयोश्च शतक्रतुम् । विनायकं च विष्णुं च गङ्गां पृथिविष्टिकम् ॥२५
 षोडशेनोपचारेण पूजयेच्च विशेषतः । मण्डलस्योत्तरे भागे नागङ्गप्रसन्नतकम् ॥२६
 पञ्चकृष्णात्तकैः कुर्याद्बृहत्पूर्वप्रमाणकम् । आरोपयेच्चाक्षताद्यैः श्वेतचन्दनपुष्ट्यकैः ॥२७
 पूजयेत्परस्या भक्त्या अश्रिकार्यमथात्वरेत् । वरुणं जुहुयात्पूर्वं मधुना पायसेन वा ॥२८
 तिलाक्षतैर्वा अस्त्यैर्वा त्रिमध्यकैरथापि वा । अस्टोत्तरशतं कुर्याद्दिग्मीशानां घृतेन तु ॥२९
 एकैकामाहुतिं द्वायात्पृष्ठैस्तिलघृतेन च । नारायणं शिवं दुर्गा गणेशं च ग्रहाश्रिशि ॥२०
 अष्टावष्टौ च जुहुयाद्वृत्तरेकाहुतिर्भवेत् । ब्रह्मयुध्वानमितिमन्त्रेण ब्रह्माणं पायसेन तु ॥२१
 एकाहुतिं ततो द्व्यादापोहिष्ठेति वा त्रिभिः । ततो वरुणमुद्दिश्य द्व्यादाज्याहुतित्रयम् ॥२२

पश्चात् अर्ध्यपात्रं सुसज्जित करके पीठासन की पूजा करके गणेशं गुरुपादं, जयं, भद्रं, मध्यं में आधार शक्ति कमल समेत कच्छप, अनन्त, तथा चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि की अर्चा पूर्वकं मण्डलस्थं सभी देवों की क्रमशः पूजा सुसम्पन्न करना चाहिए । पुनः अन्य किसी पात्र में स्थित पुष्ट्य को ग्रहण कर अपने हाथ कच्छपाकार की मुद्रा बनाते हुए वरुण के ध्यान पूर्वकं पूर्वोक्त विधानानुसार तीन पात्र प्रदान करके मधुपर्क, एवं आसन प्रदान के साथ स्वागत कहना चाहिए । मुद्रा-प्रदर्शन के उपरांत सविधान अंग पूजा, एवं पूर्वादि पत्रों पर इन्द्रादि मध्य में ब्रह्मा समेत सामने अनन्त तथा बहिर्भाग में उनके में उनके शस्त्र और मध्य भाग में जलाधिपं रुद्रं, शांतं, प्रशान्तं, भूस्तत्त्वं, भुवस्तत्त्वं, तथा स्वस्तत्त्वादि तत्त्वं, कामं, धर्मधर्मं, दिशाओं में नारायणं, शिवं, नैऋत्यं में दुर्गा, दोनों पार्श्वभागों में इन्द्रं, विनायकं, विष्णुं, गङ्गा और पृथिवी के साठ देवों की अर्चा षोडशोपचार विधान से सुसम्पन्न करनी चाहिए । विशेषकर मण्डल के उत्तर प्रदेश में नागस्वरूप अनन्त की प्रतिमा का जिसमें काली पाँच चोटियाँ, लम्बी-लम्बी गाँठ वाली हों, निर्माण करके अक्षत आदि श्वेत-चन्दन पुष्टों द्वारा उत्तम भक्ति पूर्वकं पूजा करके हवन-आरम्भ करना चाहिए । सर्वप्रथम शहद और खीर की आहुति वरुण के लिए समर्पित करने के पश्चात् तिल अक्षत, अथवा धी, या शहद शक्कर मिश्रित धी की एक सौ आठ आहुति प्रदान कर दिक्षालों के लिए धी की एक-एक आहुति तथा रात्रि में नारायणं, शिवं, दुर्गा, गणेश एवं ग्रहेशों के लिए पुष्ट्य, तिल और धी की आठ-आठ तथा धी की एक आहुति प्रदान करनी चाहिए । पुनः ‘ब्रह्मयुध्वानमिति’ इस मंत्र के उच्चारणं पूर्वकं ब्रह्मा के लिए खीर की एक आहुति और ‘आपोहिष्ठेति’ से तीन आहुति देने के अनन्तर वरुण के लिए धी की तीन आहुति अर्पित करनी चाहिए । ८-२२। पुनः ‘इमं वरुणं इति’ ‘तद्वरोमा इति’

इमं वरुण इति वा तद्वरोना कृचा पुनः । वरुणस्योत्तम्भनमसीति येनापावक एव च ॥२३
 वातस्ययमिति पुनः पञ्चवर्णं यथाक्रमात् । ततो वरुणमुहिष्य वृतेन च गुडैः सह ॥२४
 ततः स्तिष्ठकृते दद्याद्वलिं दद्यादनुक्रमात् । मध्याज्यपायसं दद्याद्वरुणाय विशेषतः ॥२५
 यवक्षीरं दिगीशेस्यो ह्यान्येभ्यः पायसेन तु । नागाय पिष्टकं दद्याल्लाजाहोमाष्टकं पुनः ॥२६
 अनन्तस्योत्तरे तीरे पद्यपत्रं परिस्तरेत् । अष्टाष्टागद्भानेन वरुणं राजतेन तु ॥२७
 कुर्यात्पूर्वद्येनापि बाष्णारत्तिसुवर्णकैः । कुर्यात्पुष्करिणीं तत्र पूर्वार्धं चतुरव्यक्तं ॥२८
 वरुणं दिन्यसेतत्र तथा पुष्करिणीमपि । विधिवदास्यपूर्वेण उत्त्वजेत्वं जलेशयद् ॥२९
 ॐ अद्येत्यादि द्विष्णुरुपाय वरुणाय श्रुतिस्मृत्याद्युक्तदेवद्व्यासप्रणीताप्रिष्टोमफलप्रात्यये
 पुष्करिणीप्रतिष्ठाकर्मणि इमां पुष्करिणीं सुवर्णरम्भजतां स्वगृहोदितां सातंकारां सुपूजितामसुक-
 गोत्रः अमुकदेवशर्मा तुम्यमहं सम्प्रददे । इत्युत्तर्गवाक्यम् । ॐ अद्येत्यादि ब्राह्मणमुख्येभ्यः
 ममाप्रिष्टोमाद्यनेकफलप्राप्तये इमं जलाशयं वरुणदैवतं सुपूजितं चतुर्मुखसहितं चतुःसत्त्वावच्छिन्न-
 स्नानपानाद्युपभोगाय अनुकसगोत्रः अमुकदेवशर्माहमुत्सुजे ॥) ततो नौकां समादय
 मध्यात्किञ्चित्तयोत्तरे ॥

जलाशयस्यमध्यं तु कृत्विंग्घोमं चरेत्ततः ॥३०

पूर्वावस्थायिनीं यष्टिं समारोप्य विधानतः । ततो वरुणं सूक्तेन वरुणं राजतोद्भवम् ॥

पुष्करिण्या समं तेन नागयष्ट्यन्तरे क्षिपेत् ॥३१

‘वरुणस्योत्तम्भनमसीति’ येनापावक इति’ एवं ‘वातस्ययमिति’ इन पाँचों मंत्रों द्वारा क्रमशः आहुति प्रदान के उपरान्त धी, गुड की आहुति वरुण के लिए देकर स्तिष्ठकृत करते हुए क्रम से उन्हें बलि प्रदान करनी चाहिए । विशेषकर वरुण के लिए शहद, धी और खीर की आहुति प्रदान के अनन्तर दिगीश्वरों के लिए जवाक्षीर, अन्य के लिए खीर, नाग के लिए पीठी की आठ आहुति प्रदान करनी चाहिए । अनंत के उत्तर तटपर कमल के पत्ते का स्तरण (बिछौना) बनाकर उसके ऊपर वरुण की चाँदी की प्रतिमा, जिसमें अष्ट धातु के आभरण तथा इनमें पूर्व के दो चरण पाँच रत्ती सुवर्ण के बने हों, स्थापित करके पूर्वार्ध भाग में पुष्करिणी की चौकोर प्रतिमा बनाकर उस आसन पर वरुण और पुष्करिणी को आसीन करके स्थापन-पूजन के उपरान्त सविधान जलाशय में उत्सर्जन करते समय इस भाँति कहना चाहिए—ओं अद्येत्यादि’ संकल्प की भाँति कहकर श्रुति स्मृति के कथनानुसार वेदव्यास प्रणीत अग्निष्टोम फल प्राप्ति के लिए इस पुष्करिणी प्रतिष्ठानुष्ठान कर्म में अपने गृहस्थ विधानानुसार सुवर्ण रचित, और अलंकारों से अंलकृत एवं पूजित इस पुष्करिणी को विष्णु रूप वरुण के लिए अमुक गोत्र, अमुकदेव शर्मा मैं सादर समर्पित कर रहा हूँ उसका उत्सर्जन करना चाहिए । पुनः ‘ओं अद्येत्यादि’ कहकर ‘अपने अग्निष्टोमदि अनेक फल प्राप्त्यर्थ वरुण देवता एवं चतुर्मुखसहित इस जलाशय को श्रेष्ठ ब्राह्मणों और चारों वर्णों के प्राणियों के स्नान पानादि उपभोग के लिए अमुक गोत्र, एवं अमुक देव शर्मा मैं सादर समर्पित कर रहा हूँ । पश्चात् नौकर द्वारा मध्य से कुछ उत्तर प्रदेश में पहुँच कर उस जलाशय के मध्य भाग में कृत्विंग्घोम द्वारा हवनारम्भ करें । पुनः पहले से वहाँ सुरक्षित उस यष्टिका (लकड़ी या दंड) को विर्धानपूर्वक स्थापित एवं पूजित करने के उपरान्त वरुण सूक्त का उच्चारण करते हुए उस चाँदी की वरुण प्रतिमा को पुष्करिणी के साथ नागयष्टि

तत्रैवानन्तनागं च मन्त्रमेतदुदीरयेत् । उप्षरेकदलाभास शुभरक्तान्तलोचन ॥
 फणासहस्रसंयुक्त सुप्रतिष्ठ नमोऽस्तु ते ॥३२
 दक्षिणां च ततो दद्यात्ततः पूर्णा विधाय च । मोद्देन्मकरान्याहान्मीनकूर्माञ्जलेचरान् ॥३३
 पद्मोत्पलं च शैवालं मन्त्रमेव प्रयत्नतः । पुष्करिण्यां च त्रिः कुर्यात्खातं सर्वप्रदक्षिणाम् ॥३४
 आदित्याध्यात्मकं जप्त्वा द्विपेल्लाजकपर्दकान् । पातयेत्क्षीधारां च सहखेण शतेन च ॥३५
 सूत्रेण ब्रेष्टयेत्प्राज्ञो रक्तेन च चतुर्ष्कमात् । गथि सत्ततेष्येद्वीनानन्ततेष्य च गृहं द्रजेत् ॥३६
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पदिष्ठावर्णनं नाम नृतीयभागे चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः सरोवरादिप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

नलिन्याश्च तथा वाप्या हृदस्य द्विजसत्तमाः । विधि वक्ष्ये त्तहाङ्गेन विधानं शृणुत द्विजाः ॥१
 स्वर्णपादेन मानेन पूर्वेद्युरधिवासयेत् । आपोहिष्ठेति मन्त्रेण तथा अब्जैः शतैरपि ॥२
 स्वमण्डले शुभे स्थाने विशेत्पूर्वमुखेन तु । गणेशं दरूणं चैव घटे सम्पूजयेच्छिवम् ॥३
 वागीशं च तथा विष्णुं सूर्ये कुम्भे समर्चयेत् । पायसेनाहृतिं दद्याद्वरुणाय धृतेन च ॥४

के भीतर डाल देना चाहिए । २३-३१। उसी स्थान पर अनंत नाग के लिए इस भाँति प्रार्थी होना चाहिए—कमल दल की भाँति प्रभा, शुभ रक्त वर्ण के नेत्र, और सहस्र फणों से संयुक्त एवं सुप्रतिष्ठित अनंत नाग तुम्हें नमस्कार है । इसके उपरान्त दक्षिणा और पूर्णाहुति प्रदान कर मकर, ग्राह, मछलियाँ, कछुवे आदि जलचरों को उसमें प्रविष्ट कराना चाहिए । कमल, नीलकमल, और शैवाल (सेवार) का प्रक्षेप मन्त्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करके उस पुष्करिणी में तीन गड्ढे प्रदक्षिणा समेत बनाना चाहिए । आदित्याध्याय के उच्चारण पूर्वक लावा कौड़ी डालने के उपरान्त सहस्रों अथवा सैकड़ों क्षीरधारा से सुशोभित करके रक्त वर्ण के सूत्र द्वारा उसे चारों ओर से आवेष्टित करने के पश्चात् मार्ग में दीनों को प्रसन्न करते हुए अपने घर को प्रस्थान करना चाहिए । ३२-३६

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-र्पद के तीसरे भाग का लघुउपवनप्रतिष्ठाविधान वर्णन
नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५ सरोवरादिप्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत बोले—हे श्रेष्ठद्विजवृन्द ! नलिनी, बावली तथा सरोवर का साङ्गोपाङ्ग प्रतिष्ठाविधान मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ।१। प्रथम दिन स्वर्णपाद से निर्मित प्रतिमा पर सैकड़ों कमल-पुष्पों तथा ‘आपोहिष्ठेति’ मन्त्र से अधिवासन कर्म-सम्पादित करें ।२। तदनन्तर अपने मण्डल में शुभ स्थान पर पूर्वाभिमुख होकर घट की स्थापना करके तथा उसमें ही गणेश, वरुण और शिव की सविधि पूजा करनी चाहिए ।३। (इसके अनन्तर) सूर्य-कुम्भ में वागीश्वर तथा विष्णु की पुनः अर्चना करनी

एकैकामाहुर्ति दद्यादन्येषां च सुबेण च । बलिदानं पायसेन उत्सृज्जेत्तदनन्तरम् ॥५
 यूपं निवेशयेत्पश्चाद्द्याद्देनुं च दक्षिणाम् । पूर्णं दद्यात्सवित्रेऽर्थं दत्त्वा तु स्वगृहं व्रजेत् ॥६
 आरामस्य विधिं दक्ष्ये प्रतिष्ठाविधिविस्तरम् । हीनारामस्य च तथा एकवृक्षस्य च द्विजाः ॥७
 अरण्यमध्ये नाश्रात्ये उत्तरे वा विशेषतः । मण्डपं वर्तुलं कुर्यादर्थंहस्तप्रभाणकम् ॥८
 तद्दक्षिणे भवेत्कुण्डं चतुरवं समं शुभम् । चतुर्मुखं च कर्तव्यं तोरणाद्यैरलङ्घतम् ॥९
 नन्दरादिकमावाह्य ततः सम्पूजयेत्क्रमात् । विष्वक्सेनं च तत्रैव पूजयेद्गन्धन्दनैः ॥१०
 मृगुं कर्जसमारुडं सर्वभूषणभूषितम् । विष्वक्सेनस्य लक्ष्योऽपि पूजायां चैव सर्वतः ॥११
 द्वारणालं च राम्पूर्णं गौर्यादीन्कलशेषु च । स्वामु दिक्षु दिग्गीशानां बलिपुष्पाक्षतादिना ॥१२
 नैऋत्यवरणयोर्मध्ये अनन्तं प्रतिपूजयेत् । इन्द्रेशानयोश्च मध्ये ब्रह्मनां च प्रकल्पयेत् ॥१३
 देविदार्ढं ततो गत्वा देविमावाह्य पूजयेत् । आसनं कल्पयित्वा तु सामान्यार्थं विधाय च ॥१४
 ऐशाने कलशे विद्युद्ब्रह्माणं च तथः प्रहान् । स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्गन्धपूष्पैर्नैविद्यैश्च पृथग्विधैः ॥१५
 मण्डलेशं वासुदेवं जासनं च बृहस्पतिम् । पूजयेत्परया भक्त्या पायसान्नं बर्त्ति हरेत् ॥१६
 द्विभुजं द्वासुदेवं च शङ्खं चक्रधरं विभुम् । पद्मासनगतं ध्यायेत्पैत॒वस्त्रं सुशोभनम् ॥१७
 नीलोत्पलदलाभासं हरिचन्दनचर्चितम् । देवर्षिसिद्धसहितं कलत्रद्वयं संयुतम् ॥१८
 ध्यात्वा आरोपयेदेवं बालादीनथं नायकान् । विमलाद्या नायिकाश्च दिग्गीशानश्च यथाविधि ॥१९

चाहिए । (इन देवों के निमित्त यज्ञ-कुण्ड में) तदनन्तर स्तीर की आहुति प्रदान करें तथा वरुण देव को (हव्य-स्वरूप) धी अर्पित करें । ४। एक-एक आहुति सुव द्वारा प्रदान करते हुए पश्चात् उन्हें स्तीर की बलि प्रदान करनी चाहिए । ५। यूप-स्तम्भ प्रवेश करने के अनन्तर धेनु समेत दक्षिणा पूर्णाहुति और सूर्य के लिए अर्ध प्रदान करके अथ उपवन का सविस्तार प्रतिष्ठा-विधान जिससे एक वृक्ष का भी प्रतिष्ठानुष्ठान सुसम्पन्न किया जाता है, मैं बता रहा हूँ : अरण्य के मध्य भाग के पश्चात् भाग अथवा विशेष कर उत्तर प्रदेश में गोलाकार मण्डप की रचना करनी चाहिए, अर्ध द्वारा अथवा विशेष कर उत्तर प्रदेश में गोलाकार मण्डप की रचना करके उस मण्डप के चारों दरवाजों को तोरणादि से विभूषित करना चाहिए । पश्चात् उसमें मंदरादि के आवाहन पूर्वक क्रमशः उनकी पूजा करनी चाहिए । उस स्थान पर विष्वक्सेन की अर्चा गन्ध-चन्दन द्वारा सुसम्पन्न करते हुए इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए । कर्ण पर आरुद, सर्वाभरण-भूषित भृगु को नमस्कार है । पश्चात् कलशों में द्वारपाल एवं गौर्यादि देवताओं तथा अपनी अपनी दिशाओं में दिग्गीश्वरों की अर्चा बलि, पूष्प, और अक्षतादि से सुसम्पन्न करके नैऋत्य में वरुण (पश्चिम) के मध्य भाग में अनन्त, इन्द्र और ईशान के मध्य में द्रह्मा का स्थापन पूजन करते हुए वेदी के पार्श्व भाग में वेदी का आवाहन-पूजन करना चाहिए । आसन और अर्ध-प्रदान पूर्वक ईशान कोण के कलश में विद्युत, द्रह्मा, और ग्रहों की अर्चा उनके मंत्रों के उच्चारण पूर्वक गन्ध-पूष्प, एवं नैवेद्यादि वस्तुओं द्वारा पृथक-पृथक् सविधान सुसम्पन्न करना चाहिए । ६-१५। मण्डलेश वासुदेव भगवान् की आसन समेत अर्चा सुसम्पन्न करके बृहस्पति की भक्ति पूर्वक अर्चा के उपरान्त उन्हें स्तीर की बलि प्रदान करनी चाहिए । दो भुजा शाश्वत-चक्रधारी-विभु, कमलासन पर सुशोभित पीताम्बर धारण किये सौन्दर्यपूर्ण उस वासुदेव भगवान् का, जो नीलकमल-दल की प्रभा सम्पन्न हरिचन्दन से चर्चित देव, कृषि, सिद्धों समेत और दो स्त्रियों से सुसेवित हैं, इस भाँति के ध्यान पूर्वक बालों नायकों,

बोडशोच्चैः पृथग्रूपैः प्रतिपुष्पाऽज्जलिकमात् । परितः दूजयेद्विष्णुं शिवं दुर्गां सरस्वतीम् ॥२०
 शुद्धस्फटिकसङ्काशं ध्यायेत्सोमं चतुर्मुखम् । अश्वाख्दं दिव्यरूपं पद्माक्षं धृतपुष्पकम् ॥२१
 वरहं देवगन्धर्वैः सेवितं मुनिभिः स्तुतम् । श्वेतं वनस्पतिं ध्यायेद्विभुजं गीतज्वाससम् ॥२२
 स्वरथस्थं महाबाहुं शङ्खाङ्कुशस्खेटकम् । विद्यां च व्रामतो ध्यायेत्त्वमन्त्रेण च स्थापयेत् ॥२३
 दशस्वरान्तिं तोयं स्वभावं तमसान्वितम् । मन्त्रोद्यं देवदेवस्य पूजायां विनियोजयेत् ॥२४
 नीलं जयं भृज्ञिणं च परितश्च यथाकमात् । ततः कुशकण्डिकां कृत्वा स्थालीपाकं विधानतः ॥२५
 अष्टोत्तरशतं चैव सोमाय द्वादशाहुतोः । वानस्पतेस्तथात्मौ च आज्येन्येषां विधीयताम् ॥२६
 एकैकामाहुतिं दद्यात्सप्तजिह्वामनन्तरम् । वास्तोष्यतय इति मन्त्रेण स्थालीपाकद्वयं नयेत् ॥२७
 बनस्पतिं समुद्दिश्य ततोऽयमीरयेद्वच्चम् । वृक्षादीन्त्यापयेत्पूर्वं गत्यन्नया प्रथमं बुधः ॥२८
 अब्जैरर्घं कांस्यवस्त्रं रत्नं द्विष्ठु यथाकमम् । ब्रीहयश्चेति मन्त्रेण तथा च सरितश्च मे ॥२९
 मित्रत्रयश्चेति तथा पूषा च मे ऋचा तथा । संस्थाप्य ब्रीहीन्तंवाप्य तत्रैव विधिपूर्वकम् ॥३०
 क्षिपेद्गङ्गाजलं तोये सर्वोषध्युदकेन च । संस्थाप्य यजमानं च सुरास्त्वा मितिमन्त्रकैः ॥३१
 आचार्यमात्मने तत्र संस्थितं द्विजपुञ्जवैः । समाय नित्यविधिनाचार्यायाम् च दक्षिणाम् ॥३२

विमलादि नायिकाओं और दिग्गीश्वरों की यथाविधान अर्चा बोडशोपचार द्वारा पुष्पाऽज्जलि समेत पृथक्-पृथक् विधान से सुसम्पन्न करनी चाहिए। पश्चात् चारों और स्थित, विष्णु, शिव, दुर्गा, सरस्वती एवं चतुर्मुख वाले सोम का ध्यान करना चाहिए, जो शुद्ध स्फटिक के समान, अश्व पर विराजित, दिव्य रूप कमल नेत्र, पुष्प धारण किये, वरदायक, देव-गन्धर्वों द्वारा सुसेवित और मुनियों से स्तुति सम्पन्न हैं। दो भुजा, पीत वस्त्र से मुशोभित, अपने रथ पर बैठे, महाबाहु, शंख, अंकुश एवं खेटक लिए उस श्वेत वर्ण के वनस्पति के ध्यान करते हुए बर्यै भाग में विद्या का स्थापन-पूजन उनके मन्त्र द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। देवाधिदेव की अर्चा करते समय इसका उच्चारण आवश्यक होता है। दश स्वरों समेत, तमःपूर्ण जो जल स्वभाव वाला है। इस भाँति कहने के अनन्तर चारों और स्थित नील, जय, और भृज्ञी की क्रमशः पूजा करके कुशकण्डिका और पावन, निर्माण सविधान समाप्त कर एक सौ आठ आहुति देनी चाहिए। पुनः सोमदेव के लिए बारह, वनस्पति के लिए आठ और अन्य देवों के लिए धी की एक-एक आहुति प्रदान पूर्वक 'सप्तजिह्वामनन्तरमिति' 'वास्तोष्यतय इति' इस मंत्र के द्वारा दोनों पाकपात्रों को ले जाना चाहिए और वनस्पति के उद्देश्य से भी इस ऋचा का उच्चारण करना बताया गया है। विद्वान् को सर्वप्रथम पूर्व की ओर गाथत्री मन्त्र द्वारा वृक्षादिकों की स्थापना करके कमल पुष्पों से उसका अप्रभाग, काषाय वस्त्र, एवं रत्न का क्रमशः दिशाओं में स्थापन पूर्वक 'ब्रीहयश्चेति' 'सरितश्च मे इति' 'मित्रत्रयश्चेति' और 'पूषा च मेति' इन मंत्रों के उच्चारण करते हुए वहाँ व्रीहि का स्थापन और बीजवपन (रोपण) सविधान सुसम्पन्न करके गंगाजल एवं समस्त औषधियों समेत उस जल से बैठे हुए यजमान का अभिषेक 'सुरास्त्वामिति' मन्त्र द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए। नित्यविधि समाप्ति के पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणों समेत बैठे हुए आचार्य के लिए धेनु, लोहपात्र, सहित उनकी तथा अन्य ब्राह्मणों के लिए

देनुं च लोहपात्रं च दत्त्वा इष्टां च दक्षिणाम् । झाहाणेभ्यो यथाशक्ति दद्यात्पूर्णा गृहं व्रजेत् ॥३३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पर्वणि तृतीयभागे सरोवरादीनं
 प्रतिष्ठादिधानवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उच्चाच

क्षुद्रारामप्रतिष्ठां च वक्ष्ये च द्विजसत्तमः ; अमण्डले शुभे स्थाने द्विहस्तमयस्त्वज्जिले ॥१
 स्थापयेत्कलशं तत्र सोमं विष्णुं समर्चयेत् । आचार्यमात्रं वरयेनिशत्सूत्रैः प्रवेष्टयेत् ॥२
 वृक्षान्मात्पैरलङ्घृत्य भूषयेद्भूषणादिना । दोहदं च ततो दद्यात्स्थापयेच्छुतधारया ॥३
 भोजयेत्पञ्च विप्रांश्च पुरतोऽन्ते विशेषतः । कर्णदेधं ततः कृत्वा उत्सृजेद्वाक्यपूर्वकम् ॥४
 दद्याद्यूपं मध्यदेशे रोपयेत्कलदलीं ततः । रम्भां च रोपयेद्विदक्षु स्थालीदाकविधानतः ॥५
 अष्टावष्टौ च जुहुयादन्येषां च धृतेन तु । एकैकामाहुतिं दद्यात्स्वष्टकृतदनन्तरम् ॥६
 दक्षिणां च ततो दद्यात्पूर्णा दद्याद्गृहं व्रजेत् ॥७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पर्वणि तृतीयभागे छुद्रारामप्रतिष्ठावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

यथाशक्ति अभीष्ट दक्षिणा प्रदान करके पूर्णाहुति के अनन्तर अपने गृह को प्रस्थान करना चाहिए । १६-२३

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में सरोवरादिप्रतिष्ठा विधान वर्णन
 नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

लघुउपवन प्रतिष्ठा-विधान का वर्णनम्

सूत जी बोले—द्विजसत्तम ! मैं छोटे-छोटे उपवन की प्रतिष्ठा कर्म विधान बता रहा हूँ । किसी शुभ स्थान में बिना मण्डल के दो हाथ प्रमाण की वेदी के निर्माण पूर्वक उस पर कलश स्थापन करके विष्णु और सोम की अर्चा करनी चाहिए । केवल आचार्य मात्र का वरण करके हरदी से रंगे सूत्रों से उन्हें उन वृक्षों को आवेष्टित एवं मालाओं और भूषणों से विभूषित करने के उपरांत शतधारासमेत दोहद का स्थापन-प्रदान करना बताया गया है । इस प्रकार की प्रतिष्ठारामभ के समय पाँच ब्राह्मणों के भोजन दान, एवं कर्णवेध संस्कार पूर्वक उनका पूर्वोक्त वाक्यों के अनुसार उत्सर्जन करना चाहिए । मध्यभाग में यूपस्त्वम्भ का स्थापन-पूजन सुसम्पन्न करने के उपरांत चारों ओर कदली-वृक्षों को लगाकर उसे मुशोभित करना चाहिए । पुनः सविधान पाक-कर्म के अनन्तर आठ-आठ आहुति प्रदान पूर्वक अन्य के लिए धी की एक-एक आहुति देकर स्विष्टकृत और दक्षिणा एवं पूर्णाहुति क्रमशः सुसम्पन्न करके अपने भवन को प्रस्थान करना चाहिए । १-७

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में लघुउपवनप्रतिष्ठाविधान वर्णन
 नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः
श्रेष्ठवृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

एकादिवरवृक्षाणां विर्धि दद्ये द्विजोत्तमाः । वृक्षस्य पश्चिमे भागे स्थापयेत्कलशं ततः ॥१
 वृक्षं संस्थापयेत्पूर्वं सूत्रेण परिवेष्टयेत् । ब्रह्माणं कलशेभ्यश्च सोमं विष्णुं वनस्पतिम् ॥२
 ततस्तिलयवैहर्मानप्ताट्टी विधिदच्चरेत् । सदुत्सूज्य ततो यूपं कदल्पा सह धर्मवित् ॥३
 वृक्षमूले यजेद्वर्षं पृथिवीं च विशं तथा । दिगीशांश्च तथा यक्षान्नाचार्यं तोषयेत्ततः ॥४
 धेनुं च दक्षिणां दद्याहोहदं वृक्षपूजनम् । कृत्वा सम्यग्विधानेन सविशेष्यं निवेदयेत् ॥५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वाणि तृतीयभागे श्रेष्ठवृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनं
 नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः
अश्वप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

अथाभ्यत्थप्रतिष्ठायां मूले बाहुप्रभाणकम् । स्थिण्डिं कारयेतत्र चन्दनेनाङ्कितं यथा ॥१

अध्याय ७
श्रेष्ठ वृक्ष प्रतिष्ठाविधान वर्णन

सूत जी बोले—श्रेष्ठद्विज वन्द ! एक ही श्रेष्ठ वृक्ष का भी प्रतिष्ठा विधान मैं बता रहा हूँ । वृक्ष के पश्चिम भाग में कलशस्थापन पूर्वक सूत्र से आबद्ध कर वृक्ष का भी पूर्व की ओर स्थापन-पूजन करना चाहिए । उस कलश द्वारा ब्रह्मा, सोम, विष्णु, एवं वनस्पति की आराधना करके तिल और जवा की आठ-आठ आहुंति सविधान प्रदान करने के उपरांत कदली-वृक्ष के साथ यूप-स्तम्भ का उत्सर्जन करना चाहिए । पुनः वृक्ष के मूल भाग में धर्म, पृथिवी, विश, दिगीश्वर, यक्ष एवं आचार्य को सपूजन प्रसन्न करते हुए धेनु समेत दक्षिणा प्रदान कर दोहद वृक्ष के सविधान पूजन समेत विधान पूर्वक सूर्य के लिए अर्घ्य-प्रदान करना चाहिए । १-५

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में श्रेष्ठवृक्ष प्रतिष्ठा विधान वर्णन
 नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८
पिप्पल प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—इसके उपरांत मैं अश्वत्थ पीपल की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ । उसके मूल भाग में चन्दन चर्चित बाहुप्रभाण की वेदी का निर्माण करके उस पर कमल की रचना एवं सामान्य विधान द्वारा

पदं प्रकल्पयेत्तत्र सामान्यार्थं विधाय च । पूर्वैऽूरात्रिसमये तद्विष्णोरिति वै ऋचा ॥२
 स्थापयेद्वारिणा पूर्णं क्यानेति च गन्धकम् । गन्धद्वारेति तैलेन श्रीश्रेति च चन्दनम् ॥३
 द्याद्वाक्षितं कल्ये ब्राह्मणत्रयभोजनम् । कारयेत्तितसूत्रैश्च वैष्ट्येच्चन्दनस्य च ॥४
 कुम्भे विनायकं पूज्यब्राह्मणं च चरे घटे । स्वदिक्षु दिक्षपतीश्चापि वृक्षमूले नवग्रहान् ॥५
 मण्डले शिवसम्पर्च्छ पीठपूजापुरःसरम् । पूर्वे चण्डं प्रचण्डं च दक्षिणे नन्दिमृडिणौ ॥६
 अनन्तं पश्चिमे काममुत्तरे गणनायकम् । कार्तिकेयं मध्यदेश आधारशक्तिपूर्वकम् ॥७
 अनन्तं पृथिवीं चैव त्रिवृतं च त्रिमण्डलम् । अथ ध्यानं प्रवद्यानि श्वेतं वृषभमेव च ॥८
 द्विभुजं शूलहस्तं च सर्वाभिरणसंयुतम् । आरोपयेत्स्वतन्त्रेण मूले विष्णुं समर्चयेत् ॥९
 शङ्खःरं च तथा मध्ये अग्ने ब्रह्माणकं यजेत् । बलिं च पिष्ठकाङ्गं च दत्त्वा च श्रपयेच्चरूपम् ॥१०
 जुहुयाद्वद्भुद्दिय रुद्रसङ्ख्याहृतिं क्रमात् । अन्येषां च स्तुवेणैव होमं दद्यात्प्रयत्नतः ॥११
 रोपयेत्कदलीवृक्षमाद्यार्थं परितोषयेत् । कृत्वा पूर्णं पञ्चधारां कृत्वा चापि प्रदक्षिणाम् ॥१२
 क्षीरधारां च सम्पाद्य अर्थं दत्त्वा गृहं वजेत् ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे अश्वत्थप्रतिष्ठाविधानवर्णनं

नामाष्टमोऽध्यायः ।८

अर्थ-प्रदान करने के अनन्तर पहले दिन रात्रि के समय 'तद्विष्णोरिति' इस ऋचा के उच्चारण पूर्वक जलपूर्ण उसे स्थापित करके 'क्यानेति' मंत्र से गंध, 'गन्धद्वारेति' मंत्र से तैल, 'श्रीश्रेति' मंत्र से चन्दन सादर सगर्षित करना चाहिए । द्वारा, अक्षत समेत उसकी सादर सेवा के अनन्तर प्रातः तीन ब्राह्मणों को भोजन कराकर उसे श्वेत सूत्रों से आवेष्टित एवं चन्दन-चर्चित करते हुए कुम्भ में विनायक, दूसरे घट में ब्रह्मा, अपनी-अपनी दिशाओं में दिग्दीश्वरों और वृक्ष के मूलभाग में नवग्रहों की अर्चा सुसम्पन्न करते हुए मण्डल में शिव की अर्चा, पीठासन, पूजा पूर्वक पूर्व की ओर चंड-प्रचण्ड, दक्षिण की ओर नंदी और भूंगी, पश्चिम की ओर अनन्त, काम, उत्तर की ओर गणनायक, कार्तिकेय, और मध्यप्रदेश में आधार शक्ति पूर्वक अनन्त, पृथिवी, तीन भाँति की गोलायी लिए तीन मण्डल का स्थापन-पूजन करना चाहिए । अब मैं उनका ध्यान बता रहा हूँ, दो भुजा, शूल हाथ में लिए, समस्ताभरण विभूषित, उस श्वेत वर्ण के वृषभ की स्वतंत्र स्थापना करके मूल भाग में विष्णु, मध्य में शंकर, अग्रभाग में ब्रह्मा की पूजा करके पीठी की बलि प्रदान पूर्वक स्त्रीर का पाक बनाकर रुद्र के लिए ग्यारह आहृति क्रमशः प्रदान करनी चाहिए । अन्य के लिए स्त्रुता द्वारा हवन करना बताया गया है । कदली-वृक्ष के आरोपण पूर्वक आचार्य को सन्तुष्ट करके पूर्णहृति एवं पाँच धारा प्रदान करते हुए प्रदक्षिणा समेत क्षीर-धार एवं अर्थ-प्रदान कर अपने भवन को प्रस्थान करना चाहिए । १-१३

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में पिप्पल प्रतिष्ठाविधान वर्णन

नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

**अथ नवमोऽध्यायः
बटप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्**

सूत उदाच

वटस्थानमयो वक्ष्ये तत्त्वं मूले तु दक्षिणे । त्रिहरतवेदिमुपरि स्थापयेत्कलशत्रयम् ॥१
गणेशं च शिवं विष्णुं पूजयित्वा हुनेच्छरूप् । रक्तसूत्रैस्त्रिगुणितैः स्वर्णमेव पुरःरत्नम् ॥२
यवक्षीरवर्णिल दद्यादुत्सृजेद्वाक्यमुच्चरन् । यूपमारोपयेत्पश्चाद्वटमूलैः सर्मपयेत् ॥३
यक्षाश्मागांश्च गन्धार्दान्तिसिद्धांश्चैव मरुद्गणान् ॥४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पर्वणि तृतीयभागे बटप्रतिष्ठाविधानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥५

**अथ दशमोऽध्यायः
विल्वप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्**

सूत उदाच

वक्ष्ये बिल्वप्रतिष्ठां च पूर्वेद्युरधिवासयेत् । श्यम्बकं चेति मन्त्रेण स्थापयेद्गन्धवारिणा ॥१
सुनाभेति च मन्त्रेण मे गृह्णामीति चाक्षतम् । कथानेति ततो धूपं वस्त्रं माल्यं निवेदयेत् ॥२

**अध्याय ९
बट-प्रतिष्ठाविधान का वर्णन**

सूत जी बोले—मैं वट (बरगद) का प्रतिष्ठा-विधान बता रहा हूँ, उसके मूलभाग के दक्षिण की ओर तीन हाथ की वेदी का निर्माण करके उसके ऊपर तीन कलशों के स्थापन पूर्वक गणेश, शिव, और विष्णु का क्रमशः स्थापन-पूजन सुसम्पन्न करते हुए स्त्रीर का हवन करना चाहिए । पश्चात् रक्तवर्ण के तीन सूत वाले सूत्र से उसे आवेष्ठित करके सुवर्ण प्रदान पूर्वक जवाक्षीर की बलि समर्पित करने के उपरांत पूर्वोक्त वाक्यानुसार उत्सर्जन और वटमूल द्वारा यूपस्तम्भ का स्थापन तथा यक्ष, नाग, गन्धर्व सिद्ध, और मरुद्गणों को सन्तुष्ट करते हुए समाप्ति करना चाहिए ॥१-४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में बटप्रतिष्ठाविधान वर्णन
नामक नवाँ अध्याय समाप्त ॥५।

**अध्याय १०
विल्व-प्रतिष्ठाविधान का वर्णन**

सूत जी बोले—वेलवृक्ष की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ, इस अनुष्ठान में सर्वप्रथम दिन अधिवासन कर्म में ‘श्यम्बकमिति’ मन्त्र से सुगान्धित जल पूर्ण स्थापन, ‘सुनामेति’ इन मंत्रों से अक्षत, ‘कथानेति’ से धूप, वस्त्र और मालाओं को अर्पित करने के उपरांत रुद्र देव, मध्य में दुर्गा, कुबेर

यजेद्गृहं ततो देवं मध्ये दुग्गां धनेश्वरम् । ततः कल्पे समुत्थाय नित्यं निर्वर्त्य शास्त्रतः ॥३
 स्वगृहे सप्त विप्रांश्च भोजयेद्विजदम्पती । मूले हस्तद्वयं दत्त्वा वर्तुला वेदिका भवेत् ॥४
 तत्र गैरिकपुक्तेन कुसुभचूर्णके न वा । निशारक्तेन वा कुर्यादष्टपञ्चं सुशोभनम् ॥५
 निवेष्टनं ततः कुर्यादृक्षस्य द्विजसत्तमाः । रक्तं सूत्रवैष्टवेच्च पञ्चसप्तनवभिस्तु ॥६
 द्वीर्होश्च वापयेतत्र उत्तराभिमुखस्तथा । शिवं विष्णुं च ब्रह्मणं पूजयेद्भूतिमिच्छता ॥७
 शिवं च नायकं कुर्यादादित्यान्पञ्चमूलके । शेषं च तरुमूले तु भद्रेऽनन्तं शतक्षतुम् ॥८
 बनपालं च सोमं च सूर्यं पूर्वोमनुक्रमात् । होमस्तिलाक्षतैः कार्यो बर्णि दद्याद्घृतौदैः ॥९
 यक्षेभ्यो माषभत्तं च वायनानि च द्वादश । ग्रहाणां प्रीतये दद्यात्क्षीरेणावेष्टय दक्षिणाम् ॥१०
 काञ्चनं कास्य पात्रं च ताम्बूलं ताम्बूलकम् । यूपारोपं कर्णविदं सवित्रेऽर्थं निवेदयेत् ॥११
 अथ रात्रिप्रतिष्ठां च वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । यक्षेकवृक्षसंस्कारे न पुनर्जाप्ते भुविः ॥१२
 पूर्वद्युरुपवाहे तु वृक्षमूले घटं न्यसेत् । विष्णुं शिवं गणेशं च पूजयित्वा तु स्थापयेत् ॥१३
 कलशान्पञ्चं वा सप्त गन्धतैलंरलंकृतान् । दुर्घेन पञ्चगव्येन शङ्खतोयेन यत्ततः ॥१४
 सूत्रैः संवेष्टनं कृत्वा वस्त्रमालैरनन्तरम् । काण्डादिति च मन्त्रेण दद्याद्वूर्वा क्षतं ततः ॥१५
 विष्णुसूक्तेन च पुनः सिन्दूराञ्जनचन्दनम् । दद्यात्कलं च दीपं च स्वयं तत्र स्वपेत्ततः ॥१६
 ततः प्रभाते विमले ब्राह्मणान्सप्त भोजयेत् । पूर्ववत्कलशं कृत्वा शिवं विष्णुं गणाधिपम् ॥१७

की अर्चा की सुसम्पन्नता पूर्वक प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में शास्त्रानुसार नित्यकर्म की समाप्ति करके अपने घर में सात ब्राह्मण, और द्विजदम्पती को उनके मनोनीति-भोजन कराना चाहिए । पुनः उसके मूलभाग में दो हाथ की गोलायी में वेदी का निर्माण करके उसके ऊपर सुवर्ण अयवा चाँदी युक्त कुसुम चूर्ण, और हरदी के चूर्ण द्वारा अष्ट दल कमल की सौन्दर्यपूर्ण रचना के अनन्तर द्विजसत्तम वृन्द ! वृक्ष का निवेष्टन पूर्वक रक्त वर्ण के पाँच, सात, या नव सूत्रों से उस (वृक्ष को) आवेष्टित करते हुए धान्य-वपन (बीज बोने) के पश्चात उत्तराभिमुख होकर अपने ऐश्वर्यर्थी 'शिव, विष्णु, एवं ब्रह्मा' की पूजा सविधान सुसम्पन्न करनी चाहिए । १-७। पत्ते के मूल भाग में शिव, नायक, एवं आदि देवों के पूजन करते हुए वृक्ष के मूल भाग में शेष, मध्य में अनन्त, इन्द्र, बनपाल, सोम, सूर्य, एवं पृथिवी की पूजा क्रमशः करके तिल अक्षत से हवन करके एवं धी-शात की बलिप्रदान पूर्वक यक्षों के लिए पाक किये गये उत्तर, बारह वायन ग्रहों के प्रीत्यर्थ प्रदान करते हुए क्षीर से उसे आवेष्टित कर दक्षिणा समेत, सुवर्ण, कांसे का पात्र, ताम्बूल, ताँबे का पात्र प्रीतिपूर्वक अर्पित करके यूपे का स्थापन, कर्णविदं संस्कार, और सूर्य के लिए अर्थं प्रदान करके समाप्ति करना चाहिए । ८-११। इसके उपरांत मैं शास्त्रविहित रात्रि-प्रतिष्ठा-विधान बता रहा हूँ । यक्ष रूपी एक वृक्ष के संस्कार-कर्म सुसम्पन्न करने से इस भूतल पर पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है । प्रथम दिन उपवाह कर्म में वृक्ष के मूल भाग में घट-स्थापन पूर्वक विष्णु, शिव, गणेश का स्थापन-पूजन के उपरान्त पाँच या सात कलशों के स्थापन करने चाहिए, जो गन्ध-तैल से अलंकृत, दूध, पंचगव्य, और शंख-जल से पूर्ण, सूत्रों से आवेष्टित, एवं वस्त्र और मालाओं से सुशोभित किये गये हों । 'काण्डादिति' मंत्र से द्वार्वा और अक्षत तथा विष्णु सूक्त से सिंदूर, अंजन एवं चन्दन के अर्पण पूर्वक फल और दीपदान करके वहाँ एकाकी शयन करना चाहिए । उपरांत प्रातःकाल नित्यकर्म करने के अनन्तर सात-ब्राह्मणों के भोजन पूर्वक पूर्व की

सोमं वनस्पतिं चैव एककुम्भे समर्च्चयेत् । हुनेत्पञ्चाहुतीस्तत्र युपं दद्यात्ममुत्सृजेत् ॥१८
 बर्लि च पथ्यसेनैव प्रकुर्यात्कर्गवेधनम् । वेष्टपेत्खीरतोयेन धान्यं धेनुं च दक्षिणाम् ॥१९
 दद्यादर्थ्य हुनेत्पूर्णं भोजयेदिद्वजदम्पती ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पदं गितृतीयभागे विल्वप्रतिष्ठाविधानवर्णनं
 नामक दशशोऽध्यायः । १०

अथैकादशोऽध्यायः सद्वृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उचाच

शतहस्तमितां मुष्टिं नानातहविभूषिताम् । पूगान्नादिफलैर्युक्तं वास्तुं कृत्वा यजेत् यः ॥१
 षष्ठिवर्षसहदाणि स्वर्गलोके वसेच्छरम् । तद्विधानं प्रवक्ष्यामि यथाशास्त्रानुसारतः ॥२
 नित्यं निर्वर्त्य विधिवत्पञ्च विप्रान्समर्चयेत् : भोजयेत्पूजयेद्विष्णुं प्रजापतिसमन्वितम् ॥३
 अप्निकार्यं ततः कृत्वा दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पदं गितृतीयभागे सद्वृक्षप्रतिष्ठाविधानवर्णनं
 नामैकादशोऽध्यायः । ११

भाँति कलशों के अर्चन और शिव, विष्णु, गणाधिप, सोम एवं वनस्पति देव की अर्चा एक कलश पर सुसम्पन्न करके पाँच आहृति प्रदान करते हुए युप-स्थापन और उत्सर्जन कर्म की समाप्ति पूर्वक खीर की बलि, कर्ण वेद संस्कार क्षीरमिश्रित जलधारा से आवेष्टित करके धान्य, एवं धेनु समेत दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । पुनः अर्घ्यप्रदान, पूर्ण हवन (पूर्णाहुति) करके द्विज दम्पति को भोजन कराना चाहिए । १२-२०

श्री भविष्यमहापुराण के मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में विल्वप्रतिष्ठाविधान-वर्णन
 नामक दशवाँ अध्याय समाप्त । १०।

अथाया ११ सद्वृक्षप्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—सौ हाँथ की विस्तृत भूमि में मुट्ठी के प्रमाण से नपी हुई भूमि में भाँति-भाँति के अनेक वृक्षों से सुशोभित सुपारी, आन्न आदि फल वाले वृक्षों से विभूषित गृह-निमोण कर जो यज्ञानुष्ठान करता है, वह साठ सहस्र वर्ष के चिरकाल समय तक स्वर्ग का निवास प्राप्त करता है, मैं उसी के विधान को शास्त्रीय रीति से बता रहा हूँ नित्य कर्म की समाप्ति के उपरांत पाँच ब्राह्मणों को पूजन एवं भोजन कराते हुए प्रजापति समेत विष्णु की पूजा करके हवन और ब्राह्मण-दक्षिणा सुसम्पन्न करनी चाहिए । १-४

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में सद्वृक्षप्रतिष्ठाविधान-वर्णन
 नामक दशवाँ अध्याय समाप्त । ११।

अथ द्वादशोऽध्यायः मण्डपप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

प्रतिष्ठां मण्डपस्त्वै शेलदारुमप्स्य च । तृणकाष्ठस्य च विभो तृणतत्स्य च द्विजाः ॥१
 अधितास्त्रप्य पूर्वेद्युः शुभे लग्ने घटं न्यसेत् । सूर्यं सोमं तथा विष्णुं कलहो तु समर्चयेत् ॥२
 प्रोक्षयेत्कुशतोयेन आपोहिष्टेति वै श्वच्छाः । आप्यायस्त्वेति मन्धेन गन्धद्वारेति गन्धकम् ॥३
 आकृष्णेनेति तैलेन श्रीश्री ते इति चन्दनम् । सिन्दूरालक्तकं दद्यादञ्जनं पूर्वया सह ॥४
 ततः प्रभाते दिमले श्राद्धं वृद्धयात्मकं चरेत् । दिक्षालालंश्चैव विन्यस्य मण्डपे शुभलक्षणे ॥५
 मध्ये वेद्यत्तरे चैव राजभिर्मण्डलं लिखेत् । सूर्यमावहयेत्तत्र सोमं विष्णुं च पार्श्वयोः ॥६
 गणेशं च ग्रहांश्चैव दिक्षालालंश्च घटेऽर्चयेत् । पायसं चुह्यादद्वावप्तोत्तरशतं तथा ॥७
 आदित्यस्य तथा विष्णोः सोमस्य द्वादशाद्गुतीः । बलिं च पायसं दद्यात्तैलं खीरमथापि वा ॥८
 तत उत्सृज्य विधिवद्वाक्यमेतदुदीरयेत् । जानुभ्यामर्वन्नि गत्वा शनैरोष्ठं न चालयेत् ॥९
 वास्तोष्प्रति च तत्रैव पूजयेद्गन्धचन्दनैः । अर्द्धं दद्याच्च विधिवद्भूतेनैवाहुर्ति हुनेत् ॥१०

अध्याय १२ मण्डप-प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजवृन्द ! पत्थर-काष्ठ, अथवा तृण काष्ठ के द्वारा निर्माण किये गये मण्डप की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ । प्रथम दिन अधिवासन कर्म के निमित्त किसी शुभ लग्न में घट-स्थापन पूर्वक सूर्य, सोम, एवं विष्णु की अर्चा घट में सुसम्पन्न करनी चाहिए । १-२। पश्चात् कुश-जल से 'आपोहिष्टेति' मन्त्र से प्रोक्षण, 'आप्यायस्त्वेति' और 'गंधद्वारेति' इस मन्त्र से गन्ध, 'आकृष्णेनेति' मन्त्र से तेल, 'श्रीश्वचतेति' मन्त्र से चन्दन, सिन्दूर, अलक्तक (महावर) और अञ्जन के प्रदान पूर्वक दूसरे दिन निर्मल प्रातः समय में वृद्धि-श्राद्ध करते हुए उन शुभ लक्षणों से अंकित मण्डप में दिगीश्वरों के स्थापन-पूजन करना चाहिए । ३-५। पुनः मध्य भाग में दूसरी बेदी के निर्माण पूर्वक किसी रंगीन वस्तु (द्रव्य) से मण्डल की रचना करके उसमें सूर्य के आवाहन-पूजन और दोनों पार्श्व भाग में सोम, विष्णु, और गणेश, ग्रहगण, एवं दिगीश्वरों की अर्चा उस घट में सुसम्पन्न करनी चाहिए । पश्चात् खीर की एक सौ आठ आहुति प्रदान करते हुए सूर्य, विष्णु, एवं सोम के लिए बारह-बारह आहुति प्रदानकर, सीर, तेल, अथवा क्षीर की बलि देनी चाहिए । उपरात उत्सर्जन-कर्म सविधान सुसम्पन्न करते हुए घुटने के बल बैठकर इस भाँति सविधान रहना चाहिए, जिसमें धीरे-धीरे भी ओष्ठ का प्रकम्पन न होने पाये । वहीं पर गन्ध-चन्दन द्वारा सविधान वास्तोष्प्रति की पूजा करके विधान पूर्वक अर्घ्य प्रदान और हवन करना चाहिए । 'ओ-

(ॐ अद्येत्यादि ब्राह्मणादिसत्त्वेभ्यो दिष्णुप्रीणनार्थस्मिं मन्डपं सुपूजितं सूर्यदैवतं शैलेयेष्टकादिभिः सर्वसत्त्वेभ्यो रचितं श्रुतिस्मृत्युक्तफलप्राप्तिकामनगा अमुकऋषिसगोत्रः अमुकदेवशर्माहमुत्सृजे ॥)

ततः श्वेतघटं दद्यान्मण्डपोपरि सत्तमाः । त्रिगुणेन निशात्कैर्वा देष्टयेद्वारिधारया ॥११
दक्षिणां विधिवद्यात्सूर्यायार्थं निवेदयेत् । तृणदेवमनि वै सूर्यं वानुदेवसमन्वितम् ॥१२
घटे गणेशं वरदं वरं कृत्वा हमुत्सृजेत् । ऐशान्यां दापशेष्ट्रयं ध्वजान्दिक्षु प्रकल्पयेत् ॥१३
मण्डपोपरि कलशं संस्थाप्य मन्त्रमुच्चरेत् । प्रपायां वह्णः पूज्यो विश्वकर्मा प्रयत्नतः ॥१४
सृथिवीं च गणेशं च पूजयित्वा हुनेद्घृतम् । सर्ववर्जयमिदं वाक्यं ध्वजमात्रं विधीयते ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पदर्णि तृतीयभागे मण्डपप्रतिष्ठाविधानवर्णनं

नाम द्वादशोऽध्यायः । १२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः महायूपनिर्माणप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उवाच

चतुर्हस्तं महायूपं हस्तघोडशनिर्मितम् । वक्ष्ये तं च प्रतिष्ठां च रात्रौ त्रैरात्रिकं यजेत् ॥१
वरुणं सितकुम्भे च प्रपाकूपस्य प्रश्निमे । गायत्र्या स्नापयेत्पूर्वमापोहिष्ठेति वै क्रमात् ॥२

‘अद्येत्यादि’ संकल्प की भाँति कहकर ब्राह्मण आदि सभी प्राणियों के लिए विष्णु के प्रसन्नार्थ इस मण्डप का, जो सुपूजित, सूर्य प्रधान देव, पत्थर ईंट द्वारा सभी लोगों के सहयोग से सुरचित है, श्रुति, स्मृति में बताये गये फल प्राप्ति की कामना से अमुक ऋषि का सगोत्री, एवं अमुक देव शर्मा में उत्सर्जन कर रहा हूँ । सत्तमवृन्द ! तदनन्तर मण्डप के ऊपर श्वेत वर्ण के घट-स्थापित पुरस्सर तीन गुने हरदी के रंग से सूत्रों को केवल जल धारा से आवेष्टित करके सविधान दक्षिणा और सूर्य के लिए अर्थं प्रदान कर समाप्ति करनी चाहिए । तृण (छप्पर वाले) मण्डप की प्रतिमा में वासुदेव समेत सूर्य और घट में वरदायक गणेश की अर्चा करके उत्सर्जन करना चाहिए । ईशान कोण में धूप प्रदान पूर्वक दिशाओं में ध्वजाओं की स्थापना करके मण्डप के ऊपर कलश स्थापन मंत्रोच्चारण पूर्वक ‘प्रपा’ (पियाउ) में वरुण के पूज्य होने की भाँति यहाँ विश्वकर्मा पूजित हैं, ऐसा कहकर पृथिवी, गणेश, की पूजा और हवन कर्म धी द्वारा सुसम्पन्न करते हुए कदाचित् इन वाक्यों के त्याग भी हो जायें पर ध्वज-विधान अवश्य होने चाहिए । ६-१५

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में मण्डपप्रतिष्ठा-विधान वर्णन

नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त । १२।

अध्याय १३ महायूप के निर्माण एवं प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—चार हाथ अथवा सोलह हाथ के महायूप (यज्ञीय स्तम्भ) के निर्माण और उसकी प्रतिष्ठा बता रहा हूँ, इसकी प्रतिष्ठा के विधान में रात्रि में तीन रात्रि तक उसका अनुष्ठान होना बताया

गन्धद्वारेति गन्धं च अंशुना चेति तैलकम् । मनोन्ना इति कुसुमं धूरसीति च धूपकम् ॥३
क्यानेति ददेहस्त्रं नैवेद्यं दीपचन्दनम् । आदौ शाद्वं न कर्तव्यं प्रतिष्ठान्ते विधीयते ॥४
दम्पतीभोजनं कुर्याद्वरयेदेकाभ्याहृणम् । मण्डपे चाष्टहस्ते च कलशं तत्र विन्यसेत् ॥५
पूजयेद्वरुणं देवं नारायणसमन्वितम् । शिवं च पृथिवीं चैव स्वैः स्वर्मन्त्रैर्थाक्रमात् ॥६
ततः कुशकण्डिकां कृत्वा स्थालीपाकविधानतः । वरुणं च सप्तम्यर्च्य जुहुयादाहृतीर्दश ॥७
अन्येषां च सुवेदेव दद्यादेकाद्वितीं क्रमात् । वरुणस्योत्तरुणं तत्त्वायामि ततः परम् ॥८
वरुणस्योत्तम्भन्मसीति च आम्यां देवांत्तदेव च । येनापावकचक्षसा पञ्चमं समुदाहृतम् ॥९
रात्रस्य यूपमित्यादि परं च दशमस्तकम् । ततः स्त्वष्टकृतं कृत्वा सप्तजित्वं चरुं नयेत् ॥१०
इह वैत्यादिकं पञ्च ततः पञ्चाद्वितीं हनेत् । शम्भवे च पृथिव्यै च महाराजाय च क्रमात् ॥११
चरुपाकेति नैवेद्यं बलिं चैवागुरुदनम् । शङ्कराय च रुद्राय शर्वाय पशुपतये इति च ॥

उप्राय असनायेति भवाय तदनन्तरम् ॥१२

महादेवाय च पुनरीशानायेति च क्रमात् । चरुपाकेति नैवेद्यं बलिं चैवागुरुदनम् ॥१३
वाक्यपूर्वं सृजेत्तोयं तत्र वाक्करणं शृणु ॥१४

(ॐ अद्येत्यादि ब्राह्मणादिसर्वसत्त्वेभ्यः अमुकगोत्रस्य मत्पितुरमुकदेवशर्मणः श्रुतिस्मृत्याद्युक्तं कूप-
प्रतिष्ठाजन्यफलप्राप्तये इमं सुपूजितं सच्छादितं वरुणदैवतमसुक्सगोत्रः अमुकदेवशर्नाहमुत्सृजे ॥)
दक्षिणां विधिदद्याद्गां च दद्यात्पर्यस्त्वनीम् ॥१५

गदा है। श्वेत कलश में वरुण का स्थापन प्रपा (पियाऊ) या कूप के निर्माण प्रतिष्ठा में करना बताया गया है, उसमें यह भी कहा था है कि गायत्री, और 'आपोहिष्ठेति' से स्नान, 'गन्धद्वारेति' से गन्ध, 'अंशुना चेति' से तेल, 'मनोन्ना इति' से पूष्प, 'धूरसीति' से धूप, 'क्यानेति' से वस्त्र, नैवेद्य, दीप एवं चन्दन, अर्पित करना चाहिए। प्रतिष्ठानुष्ठान के आरम्भ में शाद्वन करना चाहिए, प्रत्युत उसके अंत में करना बताया गया है। दम्पती भोजन और एक ब्राह्मण के वरण करने के उपरांत इस आठ हाथ के मण्डप में कलश-स्थापन पूर्वक वरुण, नारायण देव, शिव और पृथिवी की क्रमशः उनके गत्री द्वारा अर्चा सुसम्पन्न करके कुश कण्डिका-विधान एवं पाक-विधान करते हुए वरुण की पूजा और उन्हें दश, आहुति समर्पित करनी चाहिए। पुनः अन्य देवों के लिए सुवा द्वारा क्रमशः एक एक आहुति प्रदान करते हुए वरुण की प्रार्थना 'वरुणस्योत्तम्भन्मसीति' 'येनापावक चक्षसेति', एवं 'रात्रस्य यूपमित्यादि' मंत्रों के उच्चारण पूर्वक करके स्त्वष्टकृत के उपरांत सप्तजिह्वामय अग्नि की जिह्वा के तृप्त्यर्थ हवि की पाँच आहुति' इह वैत्यादिकमिति इन पाँचों मंत्रों द्वारा प्रदान कर शंभु, पृथिवी, और महाराज के लिए क्रमशः आहुति प्रदान करनी चाहिए। १-११। 'चरुपाकेति' नैवेद्य, बलि प्रदान के अनन्तर शंकर, रुद्र, शिव, पशुपति, उग्र, असन, भव, महादेव, तथा ईशान के लिए क्रमशः चतुर्थन्त नामोच्चारण पूर्वक आहुति प्रदान करके 'चरुपाकेति' वाक्य द्वारा जलोत्सर्जन करने में इस भाँति वाक्य योजना की जाती है। 'ओं अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर ब्राह्मण आदि सभी प्राणियों के लिए अमुक गोत्र अमुक देव शर्मा नामक मेरे पिता के श्रुति-स्मृति निहित कूप प्रतिष्ठाजनित फल प्राप्त्यर्थ सुपूजित, भली भाँति आच्छादित, वरुण देव प्रधान इसका उत्सर्जन अमुक गोत्र, अमुक देव शर्मा मैं कर रहा हूँ। पश्चात् विधान पूर्वक दक्षिणा प्रदान करते समय दूध देने वाली गौ का दान करना चाहिए। १२-१५। द्विजवृन्द ! अब मैं मण्डप अथवा छोटे-

मण्डपे क्षुद्रकूपे च प्रतिष्ठां शृणुत द्विजाः । गणेशं वरुणं कुन्भे विधिवत्पूजयेत्सुधीः ॥१६
वेष्टयेद्रक्तसूत्रैश्च दद्याद्यूपं समृत्सृजेत् । दक्षिणां विधिवद्याद्विप्रान्सम्पूजयेत्तः ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणवर्णितृतीयभागे महायूपनिर्माणप्रतिष्ठावर्णनं
नाम अयोदशोऽध्यायाः ॥३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः पुष्पवाटिकाप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उचाच

पुष्पारामप्रतिष्ठां तु वक्ष्ये शृण्वन्तु वै द्विजाः । सध्ये देविं त्रिहस्तां च कृत्वा संस्थापयेद्वटम् ॥१
अधिवात्स्य पूर्वद्युर्यथावद्विप्रभोजनम् । कृत्वा घटे गणेशं च सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥२
नारायणं स्थडिले च जुहुयान्मधुपायसम् । विधिवद्यूपमारोप्य गोधूमान्सेचयेदगुरौ ॥३
वेष्टयेद्रक्तसूत्रैश्च प्रदद्याच्चेति दक्षिणाम् । एतद्वाराजलेनैव यवात्सं सगुडं पयः ॥४
ऐशान्यां यूपमारोप्य विधिवद्विजसत्तमाः । कर्णवेधं समारोप्य लाङ्येत्कुशवारिणा ॥५
धान्यं यवं च गोधूमं दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् । शतधारजलेनैव वेष्टयेत्परितो द्विजाः ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणितृतीयभागे पुष्पवाटिकाप्रतिष्ठाविधानवर्णनं
नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥४

कूप का प्रतिष्ठा-विधान बता रहा हूँ, सुनो ! विद्वान् को चाहिए कि घट स्थापन पूर्वक गणेश वरुण की अर्चा सविधान सुसम्पन्न करके रक्तवर्ण के सूत्रों से आवेष्टित करने के उपरांत धूप का उत्सर्जन, सविधान दक्षिणा प्रदान और ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए । १६-१७

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में महायूप निर्माण प्रतिष्ठा-विधान वर्णन
नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त । १३।

अध्याय १४

पुष्पवाटिका प्रतिष्ठाविधान का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजवृन्द ! पुष्पवाटिका के प्रतिष्ठा-विधान को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! तीन हाथ की सौन्दर्य पूर्ण वेदी के निर्माण पूर्वक उसके मध्य भाग में वटस्थापन करके पहले दिन अधिवासन कर्म और यथोचित ब्राह्मणों के भोजन सुसम्पादित करने के उपरांत घर में गणेश, सूर्य, सोम, अर्णि, एवं नारायण देव के पूजन करते हुए वेदी पर शहद मिश्रित खीर की आहुति प्रदान करनी चाहिए । विधान पूर्वक यूपस्तम्भ का स्थापन, बृहस्पतिवार में गेहूं का सेवन करके रक्तवर्ण के सूत्रों से उसे आवेष्टित करते हुए दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । पुनः जवा, गुड़, क्षीर मिश्रित जल धारा से आवेष्टित करके द्विजवृन्द ! ईशान कोण में सविधान धूप का स्थापन, कर्णवेध संस्कार, कुश-जल से स्नान करने के अनन्तर धान्य, जवा, गेहूं समेत दक्षिणा ब्राह्मण के लिए अर्पित करके जल की शत धारा से उसे आवेष्टित करना चाहिए । १-६।

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में पुष्पवाटिका प्रतिष्ठा-विधान वर्णन
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त । १४।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः तुलसीप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

ज्येष्ठाषाढे तुलसीश्च प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् । यजमानः शुद्धदिने एकादश्यामश्चापि चा ॥१
 ततो रात्रौ घटं स्थाप्य पूजयेत्प्रमेश्वरम् । नारायणं शिवं सोमं ब्रह्मणं चन्द्रमेव च ॥२
 गायत्र्या ऋषनं कुर्यात्तथोक्तैर्मन्त्रकैरपि । क्यानेति च गृथेन अंशुनेति च तैलकम् ॥३
 त्वां गन्धर्वेति च पुनः पुष्यं मण्डशनेति च । मानस्तोकेति कुसुमं श्रीश्चतेति च चन्दनम् ॥४
 वैश्वदेवीति च पुनर्मन्त्रेजानेन चन्दनम् । द्वार्वामन्त्रेण द्वार्वाश्च रूपेणेति च दर्पणम् ॥५
 फलमन्त्रेण च फलं समेधेति च अञ्जनम् । सकुशैः पीतसूत्राद्यर्वेष्टयेत्क्षीरधारया ॥६
 शतधाराजलेनैव वेष्टयेत्त्वगृहं व्रजेत् । वस्त्रेणावृत्य विधिवद्युधः काले घटं न्यसेत् ॥७
 सप्तपञ्चत्रिभिर्वाथ तद्विष्णोरिति वै ऋचा । ऋषयेदथ साध्वीभिः कृतमङ्गलपूर्वकम् ॥८
 ततः श्राद्धं समाप्तैव मातृपूजापुरःसरम् । आचार्यं दरयेत्पूर्वं गन्धादौः कुसुमैरपि ॥९
 आचार्य एव होता स्याद्ब्रह्मणं च सदस्यकम् । मण्डपे दशहस्तेऽपि वर्तुले स्थण्डिलेषु च ॥१०
 सहस्रं मण्डलं कुर्यात्तत्र नारायणं यजेत् । ग्रहांलोकेश्वरान्मध्ये आदित्यांश्च मरुद्गणात् ॥११
 रुद्रान्वसूंश्च कलशे परितश्च समर्चयेत् । ततः कुशकण्डिकां कृत्वा होमं तिलयवेन तु ॥१२

अध्याय १५ तुलसी-प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—ज्येष्ठ या आषाढ के मास में तुलसी की सविधान प्रतिष्ठा करनी चाहिए । किसी शुद्ध दिन अथवा एकादशी तिथि में यजमान को चाहिए कि रात्रि के समय घट स्थापन पूर्वक परमेश्वर, नारायण, शिव, सोम, ब्रह्मा, एवं इन्द्र की अर्चा करते हुए गायत्री तथा पूर्वोक्त मन्त्रों से स्नान, 'क्यानेति' से गंध, 'अंशुनेति' से तेल, 'त्वां गन्धर्वेति' और 'मण्डशनेति' से पुष्य, 'मानस्तोकेति' से कुसुम 'श्रीश्चतेति' से और 'वैश्वदेवीति' से चन्दन, द्वार्वामन्त्र से द्वार्वा, 'रूपेणेति' से दर्पण, फलमन्त्र से फल, और 'समेधेति' से अञ्जन से सुसज्जित करके कुश समेत पीले वर्ण के सूतों से आवेष्टित करते हुए क्षीर धारा और जल की शतधारा से आवेष्टित करके अपने गृह को प्रस्थान करना चाहिए । पश्चात् विद्वान् को चाहिए कि समयानुसार वस्त्र से सुसज्जित घट का स्थापन सुसम्पन्न करे । १-७। पुनः 'तद्विष्णोरिति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक मांगलिक कृत्यों के अनन्तर सात, पाँच, या तीन पतिव्रता स्त्रियों द्वारा स्नान कराने के पश्चात् मातृपूजा पूर्वक श्राद्ध समाप्ति कर गंध कुसुमादि द्वारा आचार्य का वरण करना चाहिए । दश हाथ वाले मण्डप में गोलाकार वेदी के त्रिकोण में आचार्य ही होता और ब्रह्मा, सदस्य गण होते हैं । सहस्र मण्डलों की रचना करके वहाँ नारायण देव की अर्चा, ग्रहण लोक पाल, मध्यभाग में आदित्य, मरुद्गण, रुद्र एवं वसु की अर्चा चारों ओर कलश-स्थापन पूर्वक सादर सम्पन्न करनी चाहिए । पश्चात्

अष्टोत्तरशतं कुर्यादन्येषां शक्तितो हुनेत् । नारायणं समुद्दिश्य दद्यादुत्सृज्य सत्तमाः ॥१३
 मध्ये यूपं समुद्दिश्य चरुपालं बलिं ददेत् । कदलीं दिमुं सन्यस्य ध्वजान्निदक्षु प्ररोपयेत् ॥१४
 दक्षिणां काञ्चनं दद्यात्तिलं धान्यं सपुष्पकम् । धेनुं पर्यस्त्विनीं दद्याद्वेष्टयेत्क्षीरधारयः ॥१५
 जग्नन्त्याः सोमवृक्षस्य तथा सोमवटस्य च : पनसस्य कदम्बस्य निम्बस्य द्विजसत्तमाः ॥१६
 पाटलाकनकःस्यैव शालमलीनिम्बकस्य च । हिम्बाशोकवटस्यैव प्रतिष्ठां नैव कारयेत् ॥१७
 भद्रकस्य शमीकोणचण्डातकबक्षस्य च । खदिरस्यैव कर्तव्यं कर्णवेदं न कारयेत् ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे तुलसीप्रतिष्ठाविधानवर्णनं

नाम पञ्चदशोऽध्यायः । १५

अथ षोडशोऽध्यायः प्रतिष्ठाविशेषनियसर्वानन्म्

सूत उवाच

वृक्षादीनां प्रतिष्ठां च उत्तमेषूत्तमं चरेत् । मध्ये मध्ये कनिष्ठा तु कनिष्ठं परिकीर्तितम् ॥१
 वर्तुलं मण्डलं कुर्यात्तितु शीर्षं तथान्त्यके । मध्ये वा वेदिकां कुर्यात्तिन्मध्ये कुण्डमण्डलम् ॥२
 पूर्वद्यू रात्रिसमये घटं संस्थाप्य पूजयेत् । शेषं सम्पूज्य विधिवत्पृथिवीं च शिवं तथा ॥३
 गन्धतोयेन गायत्र्या सेतुं सम्पूज्य मोक्षयेत् । कथानेति च मन्त्रेण आप्यायस्वेति वै श्वचा ॥४
 दद्याद्गन्धादिकं श्रीश्री ते लक्ष्मीरिति चन्दनम् । दूर्वामन्त्रेण दूर्वाश्रि फलमन्त्रेण वै फलम् ॥५

कुश कण्डिका विधान पूर्वक तिल-जवा की एक सौ आठ आड़हुति, और अन्य के लिए यथा शक्ति की आड़हुति प्रदान करके श्रेष्ठवृन्द ! नारायण के उद्देश्य से दान एवं उत्सर्जन करना चाहिए । मध्य भाग में यूप की प्रतिष्ठा करके पाक किये हुए हवि की बलि प्रदान कर दिशाओं में कदली वृक्ष और ध्वजाओं से सुशोभित करना चाहिए । तिल, धान्य एवं पुष्प समेत सुवर्ण की दक्षिणा और गोदान देकर क्षीर धारा से आवेष्टित करना बताया गया है । द्विजवृन्द ! जयंती, सोम वृक्ष, सोमवट, कटहल, कदम्ब, नीम, पाटल, कनक (धूतरा), सेमर, नीम, बिम्ब अशोकवटी की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । भद्रक, शमी, कोण, चण्डातक, बकवृक्ष, खैर वृक्षों की प्रतिष्ठा की जाती है, पर कर्ण वेद दंस्कार नहीं । ८-१८

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में तुलसीप्रतिष्ठा-विधान वर्णन

नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त । १५।

अध्याय १६

प्रतिष्ठा-विशेष-विधाननियम का वर्णन

सूत जी बोले—वृक्षों की प्रतिष्ठा विधान में उत्तम वृक्षों की उत्तम, मध्यम की मध्यम और कनिष्ठ की कनिष्ठ प्रतिष्ठा करनी चाहिए । उसके शीर्ष (शिर) अथवा अन्तिम भाग में गोलाकार मण्डल की रचना पूर्वक मध्य भाग में वेदी और उसके मध्य में कुण्ड मण्डल का निर्माण करना चाहिए । पहले दिन रात्रि के समय घट-स्थापन पूर्वक शेष, पृथिवी, एवं शिव का सविधान पूजन करके गायत्री द्वारा गंध जल से सेतु की पूजा के उपरांत मुक्त करना चाहिए । ‘श्रीश्चतेति’ से चन्दन, दूर्वा मन्त्र से दूर्वा, और फल मन्त्र से

शन्मोदेवीति मन्त्रेण द्वितीयकुरुमवित्रकम् । सुरासुरेति मन्त्रेण प्रदद्वाद्वस्त्रयुग्मकम् ॥६
अञ्जनालक्तकं कुर्यान्मनोन्ना इति संपठन् । कुर्याच्छ्राद्धं परदिने वसुधारापुरः सरम् ॥७
वरदेदथ आचार्यं होतारं नृवरद्धरेत् । पात्रद्वयं विधातव्यं सदस्याचार्यमेव च ॥८
सेतुयागे विधातव्यं तथा धान्याचलेत्पि च । सहलहोमे वैकं तु विवाहे ब्रह्मऋत्विजौ ॥९
यजेदेनं कृते भौलियाचार्यं यागमण्डगम् । वेदिमावाह्येत्पूर्वं मण्डपं प्रतिपूजयेत् ॥१०
विघ्नप्रहाँल्लोकपालान्सर्वतिद्विप्रदायकान् । स्थापित्तेसर्वतोभद्रे शेषं विष्णुं प्रदर्शयेत् ॥११
तत्रैव तु वराहाहृष्टं प्रतीतमृत्विगुतमम् । स्थालीपाकेन ज्युह्याद्वर्त्तार्विशतिक्रत्रयम् ॥१२
अञ्जयेन तु वराहस्य होमपञ्चकमीर्णितम् । ततस्तिलयवे नैव एकैकमाहुर्ति क्रमात् ॥१३
बर्लि द्व्यात्पृथग्रूपं शेषयेद्विधिपूर्वकम् । पिष्टकाङ्गं धृताङ्गं च विस्तरे वा गुडौदनम् ॥१४
माषभक्तं तु लोकाय पृथिव्यै परमान्नकम् । दाक्ष्यपूर्वं सृजेद्वीरो वाक्यप्रकरणं शृणु ॥१५
(ॐ अद्येत्यादि एकविंशतिकुलस्य विशिष्टस्वर्गप्राप्तय इमं सेतुं सङ्क्रमसमेतं विष्णुदैवतं सुरपूजितं
विधिवद्वासुदेवस्य प्रीतयेऽहमुत्सृजे ॥)

बद्धाञ्जलिः पठेन्मन्त्रं कुर्याच्च विधिवत्ततः । पिच्छिले पतितानां च उद्गतेनाङ्गाभङ्गतः ॥
प्रतिष्ठिते धर्मसेतौ धर्मो मे स्यान्न पातकम् ॥१६
सेतोरस्य प्रबन्धस्य श्रद्धया परया युतः । ये चात्र प्राणिनः सन्ति सर्वेषां प्राणधारकाः ॥१७
वेदागमेन यत्पुण्यं कथितं सेतुबन्धने । तत्पुण्यं तु मया देव पाथेये हि समर्पितम् ॥१८

फल, ‘शन्मोदेवीति’ से कुश और पवित्री, ‘सुरासुरेति’ से दो वस्त्र, ‘मनोन्ना इति’ मंत्र से अंजन, अलक्तक (महावर) से सुरपूजित करना बताया गया है । पुनः दूसरे दिन वसुधारा पूर्वक श्राद्ध सम्पन्न करके आचार्य एवं होताओं के वरण और आचार्य, सदस्य के लिए दो पात्रों की कल्पना की जानी चाहिए । १-८। सेतु याग, धान्य-पर्वत-विधान, सहस्र संख्या की आहुति वाले हवन कर्म में एक (आचार्य मात्र) और विवाह में बहुता तथा ऋत्विक् की भी वरण पूजा होती है । भौलियाचार्य याग-मण्डप, वेदी के पूजन में प्रथम मण्डप पूजन बताया गया है । वेदी पर सर्वतोभद्र चक्र के सैन्दर्यं पूर्णं निर्माण करके उस पर विधु ग्रहण, सर्वसिद्धिप्रदायक लोकपालों के आवाहन-पूजा करके शेष समय में विष्णु का दर्शन-पूजन होना चाहिए । वहीं पर वराह नामक श्रेष्ठ ऋत्विक् की कल्पना कर पाक-विधान द्वारा बने पाक से अट्ठाइस की तिगुनी आहुति, वराह के लिए धी की पाँच आहुति प्रदान पूर्वक पश्चात् एक-एक आहुति क्रमशः प्रदान करनी चाहिए । पुनः पृथक्-पृथक् बर्लि प्रदान करके पीठी के अन्न पर धी-मिश्रित अन्न अथवा विस्तृत की इच्छा हो तो गुड़-भात (मीठाभात) प्रदान पूर्वक लोक के लिए पाक किये हुए उरद पृथिवी के लिए परमान्न प्रदान करते हुए उत्सर्जन कर्म में इस भाँति कहना चाहिए—‘ओं अद्येत्यादि’ संकल्प की भाँति कहकर इक्कीस कुल के प्राणियों के एक साथ स्वर्वप्राप्त्यर्थं इस सेतु का जो संक्रम समेत, विष्णु प्रधान देव, सुरपूजित हैं, सविधान मैं वासुदेव के प्रीत्यर्थं उत्सर्जन कर रहा हूँ । पश्चात् अञ्जली बाँधकर इस विधान द्वारा प्रार्थना करना चाहिए । कीचड़ में फिसल कर गिरने अथवा अड़गभंग होने से निधन होने पर इस धर्म सेतु के प्रबन्धक गण जो सभी के प्राणाधाररूप में हैं, उनके पुण्य, वेदों और आगमों में से सेतुबन्धन के

यूपं दद्याति भन्नेण अन्ते चार्मि तथा ध्वजान् । विधिवद्विदिणां दद्यात्कुलानि नव पञ्च वा ॥१९
 पूर्णं दत्त्वा सविश्रेष्टव्यं दत्त्वा च स्वगृहं व्रजेत् । अनन्तपे क्षुद्रसेतोः प्रतिष्ठां विधिवच्चरेत् ॥२०
 पूर्वं च दधिवासं च प्रभाते विश्वभोजनम् । सेतुमव्यं ततो गत्वा गन्धादीन्दिधिवच्चरेत् ॥२१
 विष्णुं शिवं हुताशं च एककुण्डे समर्वयेत् । वास्तोत्पर्यात् यजेतश्च होमं तिलयवेन तु ॥२२
 कुर्यादिकैकशो विप्रा अष्टाविंशतिसंख्या । उत्सृज्य दापयेद्गूणं व्वजवर्ज्य हि सत्तमाः ॥
 ज्ञातिनिः सह भुञ्जीते कृतकृत्योऽभियीयते ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि त्रुतीयभागे प्रतिष्ठाविशेषनियमवर्णनं
 नाम षोडशोऽध्यायः । १६

अथ सप्तदशोऽध्यायः गोप्रचारविधिवर्णनम्

सूत उवाच

तत्र दण्डे च विप्रेन्द्राश्वतुरले समन्ततः । दष्टिहस्तनितां भूमिं तस्य पूर्णं भनोरभास् ॥१
 प्रचारार्थं गवां चैव यो दद्यात्सुसमाहितः । षष्ठिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥२
 तदर्थं च तदर्थं च तदर्थं वा समुत्पृजेत् । यो दद्यात्केवलां भूमिं कन्यां दासीं तथा वृष्म् ॥३
 अलङ्कारं विना धेनुं फलस्यार्थं प्रकीर्तितम् । अमण्डये शुभे स्थाने शर्करादिविवर्जिते ॥४

लिए जो पुण्य बताया गया है, हे देव ! उन पुण्यों को मैं पाथेय के लिए आपको सौंप दिया है । पश्चात् मन्त्र पूर्वक यूप-स्थापन विधान ध्वजों की स्थापना, सविधान दक्षिणा चौदह कुलों की पूर्णाहुति सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करके अपने भवन के प्रस्थान करना चाहिए । आदपहीन समय में छोटे-छोटे सेतुओं की प्रतिष्ठा सविधान सुसम्पन्न करने में पहले दधिवासन, प्रातःकाल ब्राह्मण-भोजन के उपरांत सेतु के मध्यभाग में जाकर गन्धादि से अर्चन सुसम्पन्न करते हुए विष्णु, शिव, और अरिन के लिए एक कुण्ड में पूजन आहुति प्रदान करके तिल-जवा से वास्तोष्यति के लिए आहुति और प्रत्येक देव के लिए अट्टाइस आहुति प्रदान करते हुए सत्तमवृन्द ! उत्सर्जन एवं यूप-स्तम्भ विधान की समाप्ति करनी चाहिए, इसमें ध्वजा लगाना निषेध किया गया है । पश्चात् अपने बन्धुओं के साथ भोजन करने से कृतकृत्य होना बताया गया है ॥१-२

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में प्रतिष्ठाविशेष-नियम वर्णन
 नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त । १६।

अध्याय १७ गोप्रचारविधि का वर्णन

सूत जी बोले—विप्रेन्द्रवृन्द ! उस दण्ड में जो मन लगाकर चारों ओर से चौकोर साठ हाथ परिमाण की सुन्दर एवं पूर्ण भूमि का दान गौओं के प्रचारार्थ (चारागाह) के लिए करता है, वह साठ सहस्र वर्ष पर्यंत रुद्रलोक में समानित होता रहता है । अथवा उसकी आधी, चौथाई या आठवें भाग की भूमि अथवा केवल भूमि, कन्या, दासी तथा वृषभ और अलंकार हीन धेनु का दान करता है, उसे आधे फल की प्राप्ति होती है । मण्डपहीन किसी शुभ स्थान में जो मनोरम एवं दोषहीन हो, दो हाथ की बेदी बनाकर मध्य में

द्विहस्तवेदिकामध्ये प्रकुर्यात्सेतुमण्डपम् । तत्र सम्पूजयेद्बूद्धं स्थापाणं च शत्रीपतिम् ॥५
गणेशं क्षेत्रपालं च शेषं चैव दिग्गीश्वरान् । पञ्चोपचारैर्विधिक्त्यूजयेत्पायसादिना ॥६
स्थालीपाकेन ज्ञुह्यादन्ते वै विप्रभोजनम् । अत्र यागे श्राद्धवर्ज्यं पूर्वेनुरधिवासपेत् ॥७
अ्यम्बकेनैव मन्त्रेण भूमि संस्थाप्य पूजयेत् । तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गन्धतौलं सचन्दनम् ॥८
प्रदद्यादसुनीतेति पुनस्तु नैव स्थापयेत् । पञ्चवग्न्येन च पुनः श्रीश्रतेति च पुष्टकम् ॥९
एवं द्वयस्य च तथा अधिगृह्णाति मन्त्रकम् । गन्धद्वारेति गन्धेन अंशुनातेति तैलकम् ॥१०
सुरासुरेरिति कुसुमं द्व॒र्वा॑मन्त्रेण द्व॒र्विकाम् । प्रभाते पूजयेद्वान्दृमुद्दिश्य होमयेत् ॥११
स्थालीपाकेन विधिना अन्येषां पूर्ववच्चरेत् । उत्सृज्यारोपयेदीपं स्थिरो भवेति वै ऋचा ॥१२
तन्त्रेण निर्मितं कुर्यात्सफलं च त्रिहस्तकम् । हस्तैङ्गं प्रापयेन्मध्ये क्षेत्रे चैव विशेषतः ॥१३
स्थापयेत्तत्र मन्त्रेण पञ्चगव्येन यत्ततः । मधुबातेति मधुना आप्यायस्वेति वै दधि ॥१४
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण घटतोयैरनन्तरम् । पृथिवीं च वराहं च कूर्ममाधवशत्तिकान् ॥१५
आस्तोष्ट्विति च विष्णुं च यूपे सन्मूजयेत्क्रमात् । दद्यादर्थ्यं च विवरे गर्ते होमेन विवर्जयेत् ॥१६
अर्थपाद्ये च दुष्टे च हस्तेनोत्सृज्य सन्तमाः ॥ (ॐ अद्येत्यादि गोब्राह्मणसर्वसत्त्वेभ्यः पर्यटनार्थादिइमां
भूमि सुपूजितां विष्णुदैवतां गोप्रचाररूपिणीं श्रुतिसमृत्याद्युक्तफलप्राप्तयेऽहमुत्तृजे ॥)
शिवलोकस्थिता गावः सर्वदैवैः सुपूजिताः । एवं निवेदयेद्विप्रो गोप्रचारं सप्ताहितः ॥
स मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥ १७

सेतु मण्डप के निर्माण करके उसमें भद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश, क्षेत्रपाल, शेष, और दिग्गीश्वरों की पञ्चोपचार समेत अर्चा करते हुए पाक-विधान द्वारा बनी हुई खीर से हवन और अन्त में ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करना चाहिए । इस याग विधान में श्राद्ध करना निषेध किया गया है । पर पहले दिन, अधिवासन कर्म अवश्य करना चाहिए । पुनः 'अ्यम्बकमिति' से भूमि स्थापन पूजन, 'तद्विष्णोरिति' से गन्ध, तेल, चन्दन के प्रदान पूर्वक पंचगव्य 'श्रीश्रतेति' से पुष्ट-प्रदान करना कहा गया है । इसी भाँति धूप के स्थापन पूजन में 'गन्धद्वारेति' से गन्ध, 'अंशुनातेति' से तैल, 'सुरासुरेति' से कुसुम, द्व॒र्वा के मन्त्र से द्व॒र्वा प्रदान करके प्रभात काल में देवों की पूजा पूर्वक रुद के उद्देश्य से हवन करते हुए अन्य लोगों के लिए भी पाक द्वारा आहूति प्रदान करनी चाहिए । उत्सर्जन कर्म के अनन्तर 'स्थिरोभवेति' से दीप-स्थापन तीन हाथ के प्रमाण में जिसमें एक हाथ का प्रमाण उसका मध्य भाग रहता है, मंत्रोच्चारण पूर्वक एवं पंचगव्य समेत 'मधुवातेति' से शहद, 'आप्यायस्वेति' से दही और 'तद्विष्णोरिति' मन्त्र से घट-जल अपित करते हुए उस यूप (यज्ञीय स्तम्भ) में पृथिवी, वराह, कूर्म, माधव, शक्ति वास्तोष्ट्विति, विष्णु की क्रमशः पूजा करके उस विवर में अर्ध्य-प्रदान पूर्वक गड्ढे में हवन सुसम्पन्न करना चाहिए । श्रेष्ठवृन्द ! उस अर्ध्ये, एवं पाद्ये के दुष्ट होने पर उसे हाथ से हटा देने चाहिए । 'ओं अद्येत्यादि' संकल्प की भाँति कहकर जो ब्राह्मण समेत सभी प्राणियों के विचरण करने के उद्देश्य से मैं इस गोप्रचार रूपवाली, विष्णु प्रधान देवता, और सुपूजित भूमिका श्रुतिसमृतिविहित फलप्राप्त्यर्थ उत्सर्जन कर रहा हूँ, ऐसा कहते हुए प्रार्थना करना चाहिए—गौएँ शिवलोक में स्थित होकर समस्त देवों द्वारा पूजित हों । जो ब्राह्मण गोप्रचार कर्म में मन लगाकर इस भाँति निवेदन करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णु लोक में सम्मानित होता है । और इस भूतल पर जितने

यावन्ति तृणगुल्मानि सन्ति भूमौ शुभानि च । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गतोके भहीयते ॥१८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वणि तृतीयभागे गोप्रचारविधिवर्णनं
 नाम सप्तदशोऽध्यायः । १७

अथाष्टादशोऽध्यायः दिनैकसाध्यप्रतिष्ठाविधानवर्णनम्

सूत उवाच

कलौ चैकाहसाध्येन प्रतिष्ठामत्प्रवित्तवान् । सद्योऽधिवासमाज्येन प्रकुर्यात्तान्त्रिकोत्तमः ॥१
 उत्तरं तु गते हंसे अतीते चोत्तरायणे । शरत्काले व्यतीते तु वसन्ते यज्ञमारभेत् ॥२
 नारायणादिमूर्तीनां द्वार्तिशङ्केद एव दु । प्रतिष्ठां^१ प्रतिमानां च गदास्यादीश्वर^२ सत्तमाः ॥३
 नित्यं^३ निर्वर्त्य मतिमान्कुर्यादभ्युदयं ततः । विप्रान्तस्मभोजयेद्वाय ततो यागगृहं व्रजेत् ॥४
 गणेशग्रहदिक्पालान्प्रतिकुम्भेषु पूजयेत् । स्थण्डिले पूज्येद्विष्णुं परिवारगणं यजेत् ॥५
 स्नापयेत्प्रथमं देवं तोये: पञ्चविधैरपि । पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः पञ्चमृत्यिङ्गैरपि ॥६
 तिलतैलैश्च कषायैरपि सत्तमाः । पञ्चपूष्पोदकैर्वाय त्रिपदैरपि सत्तमाः ॥७

दिन शुभ तृण-युगमों की स्थिति सुरक्षित रहती है, उतने सहस्र वर्ष स्वर्ग लोक में वह सम्मान प्राप्त करता रहता है । १-१८

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में गोप्रचारविधि वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त । १७।

आध्याय १८

एक दिन में साध्य-प्रतिष्ठा-विधान का वर्णन

सूत जी बोले—कलियुग के घोर संकटकालीन समय में अत्यधिक वर्गों के लिए भी एकदिन में साध्य होने वाली प्रतिष्ठा का विधान बताया गया है, (मैं बता रहा हूँ) । उसे चाहिए कि उसी समय शीघ्रातशीघ्र धी द्वारा अधिवासन कर्म की समाप्ति करे । सूर्य के उत्तरायण होने शरदकाल के व्यतीत होने पर वसन्त के समय इस यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करना बताया गया है । सत्तमवृन्द ! उस प्रतिष्ठानुष्ठान में नारायण आदि देवों की बत्तीस प्रतिमाओं एवं गणेश आदि देवों की अर्चा सुसम्पन्न करके नित्यक्रिया के उपरांत आम्युदयिक शाद्व, एवं ब्राह्मण-भोजन कराकर यज्ञभवन में उस बुद्धिमान् को प्रवेश करना चाहिए । प्रत्येक गणेश और दिगीश्वरादि देवों की अर्चा धटस्थापन पूर्वक करते हुए उसके बेदी पर परिवार गण समेत विष्णु की अर्चा सविधि सुसम्पन्न करना चाहिए । सर्व प्रथम पाँच प्रकार के जल, पंचामृत, पञ्चगव्य, और पाँच स्थान की मिट्टियों द्वारा देवों को स्नान कराकर तिल के तेल, कषाय स्नेह, पाँच पूष्पोदक अथवा त्रिपद द्वारा उनकी आराधना करनी चाहिए । तुलसी, कुमुम, पुष्पपत्र को त्रिपत्र,

१. विदधातेति शेषः । २. संपूज्येति शेषः । ३. तदेव व्यासेनाह—नित्यं निर्वर्त्येत्यादि ।

तुलसीकुसुमापुष्पपत्राण्याहुस्त्रिपत्रकम् । पञ्चकाष्ठशमीपद्मकरवीरं च पञ्चकम् ॥८
 मृत्तिका करिदन्तस्य तथाश्वलुरमृत्तिका । गोमूत्रं गोमदं शीरं दधि सर्पिस्तु पञ्चमम् ॥९
 कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां च होमं कुर्याद्यथाविधि । दक्षिणां विधिवद्यात्पूर्णा तु तदनन्तरम् ॥१०
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमपर्वग्नि तृतीयभागे दिनैकसाध्यप्रतिष्ठाविधानवर्णनं
 नामऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवादिप्रतिष्ठावर्णनम्

सूत उचाच

अतः परं तु विप्रेन्द्राः काल्यादीनां तथैव च । अधिवास्य च पूर्वेद्युः श्राद्धसम्भुदयात्मकम् ॥१
 प्रथमे जलजैः स्नानं पञ्चगव्यैरनन्तरम् । पूर्ववच्च विधानेन कुम्भे दुर्गां समर्पयेत् ॥२
 पञ्चामृतैः पञ्चगव्यैः करीषशतधारया । श्रीबिल्वे पूजयेद्वैर्वीं दद्यात्प्राणमनन्तरम् ॥३
 बिल्वपत्रैः फलैर्वापि दद्याच्चापि शताहुतोः । एकैकशस्तु सर्वेषां दद्यात्काञ्चनदक्षिणाम् ॥४
 प्रतिमां कालिकायाश्च तारायाश्च पृथक्पृथक् । ग्राहॄं विनार्चयेद्विप्राः पञ्चपञ्चशतैरापे ॥५
 भोजयेत्स्नापयेद्वैर्वीं गन्धतोयैदिनत्रयम् । ताम्रकुम्भेऽर्चयेद्वैर्वीं त्रिदिनं प्रातरेव हि ॥६
 समीरणं ततो दद्यात्पेटिकायां निवेशयेत् । ततोऽपि गन्धतोयैऽश्च ऋषयेत्कन्यकादिभिः ॥७
 ततो वै चाष्टमदिने रात्रावपि प्रपूजयेत् । पशुदानं प्रकर्तव्यमग्निकार्यं च पायसैः ॥८

पंचक, आम, शमी, कमल, कनेर को पञ्चक, गजदाँत, अश्वखुर की मिट्टी, गो-मूत्र, गोबर, दूध, दही एवं धी को पञ्चगव्य कहते हैं। इस भाँति सविधान प्राण-प्रतिष्ठा-विधान सुसम्पन्न करके विधान पूर्वक हवन, दक्षिणा प्रदान के अनन्तर पूर्णाहुति करनी चाहिए । १-१०

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-पर्व के तीसरे भाग में दिनैकसाध्यप्रतिष्ठा विधान वर्णन
 नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त । १८।

अध्याय १९

देवी आदि की प्रतिष्ठा का वर्णन

सूत जी बोले—विप्रेन्द्रवृन्द ! इसके उपरांत मैं काली आदि की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ, वह प्रतिष्ठा विधान भी उसी भाँति का है उसमें भी पहले दिन अधिवासन, एवं आम्बुदयिक श्राद्ध सुसम्पन्न करके जल तथा पञ्चगव्य द्वारा स्नान कराकर पूर्व की भाँति सविधान घटस्थापन पूर्वक दुर्गा की अर्चा करनी चाहिए। पञ्चामृत, पञ्चगव्य की शतधारा द्वारा बेलवृक्ष के द्वारा देवी की पूजा के उपरांत प्राण-प्रतिष्ठा-कर्म सुसम्पन्न करके बेल के पश्च अथवा फलों द्वारा सौ आहुति प्रयेक के लिए प्रदान कर सुवर्ण की दक्षिणा समर्पित करनी चाहिए। विप्रवृन्द ! कालिका और तारा देवी की प्रतिमा के पृथक-पृथक् पूजन पञ्चीस सौ आहुति प्रदान पूर्वक तीन दिन तक गन्ध जल द्वारा देवी का स्नान सुसम्पन्न करते हुए ताँबे के कलश में तीन दिन तक प्रातः कालीन पूजा करने के उपरांत वायु का उनके कन्याओं द्वारा गन्ध एवं तेल से उन्हें स्नान कराते हुए आठवें दिन भी रात्रि में सविधान उनकी पूजा, पशुदान, एवं खीर की आहुति प्रदान

शिवलिङ्गप्रतिष्ठां च वक्ष्ये तन्त्रमतं यथा । श्रिविष्णुं भोजयेद्विप्रा अधिवास्यं विशेषतः ॥१९
 नित्यं समाप्य च पुनः कुर्यादन्युदयं ततः । आचार्यं वरयेत्प्रातः लापयेत्पूर्ववर्तमन्तरम् ॥२०
 परिवारगणैः सार्वदर्शयेत्तदनन्तरम् । दद्यात्समीरणं पश्चादग्निकार्यं समाचरेत् ॥२१
 तिलहैमस्यां गां च दद्याद्गां च विधानतः । न नाम त च गोत्रं च होमकर्मणि सर्वदा ॥२२
 पूर्णिमायां विशेषेण नन्येषां च कथञ्चन । होमान्ते वसुधारां च कुम्भे दत्त्वा विधानतः ॥२३
 त्रिहस्तचरकायं च हरतैकं चतुर्हस्तके । शालग्रामशिलायाश्रम् प्रतिष्ठां विभिवच्चरेत् ॥२४
 सद्योधिवासयेद्वेवं द्वादश्यां स्नापयेदथ । रत्नतोयैः परिमलैस्त्रिगन्धैः पञ्चपल्लवैः ॥२५
 कुम्भे प्रजापति स्थाप्य श्वेताब्जं नवनाभके । नवदुर्गोक्तमार्गेण पूजयेत्परमेश्वरम् ॥२६
 चक्रस्वरूपतो जेयं प्रदद्याच्च यमीरणम् । आनीय ताम्रभाष्डे च त्रिकालं प्रतिपूजयेत् ॥२७
 पायसान्निरूपत्वेवा पञ्चजैवर्णिपि होमयेत् । सकाञ्चनं वस्त्रपुष्टम् प्रदद्यादभूरिदक्षिणम् ॥२८
 श्रीसूर्यस्य गणेशस्य विरिच्छेश्वापि सत्तमाः । वटवृक्षान्तिकं गत्वा स्थापयेद्वरुणं ततः ॥२९
 रक्ताब्जे पूज्येत्सूर्यं परिवारसमन्वितम् । अष्टर्विवशतिभिर्दत्त्वा दद्यात्प्राणमनन्तरम् ॥२०
 एकाहमयवाकाशे गुप्तं कृत्वा दिनत्रयम् । अ्यहादेव पुनः पूजां पुनहोमं समाचरेत् ॥२१
 पुनश्च भोजयेद्विप्रान्दद्यात्काञ्चनदक्षिणाम् । वाराहाग्रस्त्रिपुरायाश्रम् नारिकेलोदकैरपि ॥२२

करनी चाहिए । १-८। तंत्र मतानुसार मैं तुम्हें शिवलिङ्ग की प्रतिष्ठा का विधान बता रहा हूँ, इस अनुष्ठान में तीन ब्राह्मणों के भोजन सुसम्पन्न करने के अनन्तर विशेषकर अधिवासन कर्म की समाप्ति और नित्यकर्म करके आभ्युदयिक शाद्व एवं आचार्य का वरण करना चाहिए । पुनः प्रातः समय पूर्वोक्त रीति से स्नान कराकर परिवार गणों के साथ उनके अर्चन, वायुदान करते हुए हवन कार्य सुसम्पन्न करना चाहिए । पश्चात् तिल और सुवर्ण की गौ और विधान पूर्वक गोदान अपित करना बताया गया है । हवनकर्म में सदैव नाम गोत्र की अपेक्षा न रखनी चाहिए । विशेषकर पूर्णिमा में सभी के लिए यह बाते कही गयी है । तदनन्तर उस कलश में सविधान वसुधारा प्रदान करना चाहिए । शालिग्राम शिला के प्रतिष्ठा विधान, तीन, चार, अथवा एक हाथ की देवी पर सुसम्पन्न करने के लिए पहले अधिवासन कर्म करके द्वादशी में प्रधान देव के स्नान और रत्न-जल, मकरन्द, तीनों गन्ध, एवं पाँचों पल्लवों से सुसज्जित कर उस कलश में प्रजापति, नवनाभक पर श्वेतकमल, एवं नवदुर्गा के प्रदर्शित पथ द्वारा परमेश्वर की पूजा सुसम्पन्न करनी चाहिए । पश्चात् उन्हें चक्रांकित कर समीरणदान पूर्वक लाकर ताँबे के पात्र में उनकी त्रैकालिकी-पूजा करनी चाहिए । पुनः सीर, नील कमल या रक्तकमल की आहृति प्रदान पूर्वक सुवर्णसमेत युगलवस्त्र और अभीष्ट अधिक से अधिक की दक्षिणा प्रदान करना बताया गया है । ९-१८। श्रेष्ठ वृन्द ! सूर्य, गणेश और विरच्छित देव के प्रतिष्ठा-विधान को मैं बता रहा हूँ । किसी वटवृक्ष के समीप कलशस्थापन पूर्वक वरुण-स्थापन पूजन के उपरांत रक्त कमल में परिवार समेत सूर्यकी पूजा करके अटाइस आहृति प्रदान करते हुए प्राण-प्रतिष्ठा करनी चाहिए । पश्चात् एक-दिन अथवा तीन-दिन आकाश स्थल में उन्हें गुप्त रखकर पुनः तीन दिन के पूजनोपरांत हवन कर्म, ब्राह्मण, भोजन, एवं सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । वाराही अथवा त्रिपुर सुन्दरी देवी के प्रतिष्ठा-विधान में

स्थापयेद्वा विधानेन सिन्दूरार्द्धः समर्चयेत् । दद्यात्समीरणं पश्चात् पुनः पूजां च होमयेत् ॥२३
 पशुदानं च कर्तव्यं स्पृहासैः पञ्चमोदकैः । कुमारीं भोजयेद्वात्रौ दद्यात्कङ्कनदक्षिणाम् ॥२४
 प्रतिमां शुवनेशीं च महामायामिकामपि । कामाक्षीं च ततो देवीमिन्द्राक्षीं चापराजिताम् ॥२५
 पूर्वेद्यू रात्रिस्तमये पिष्टकाष्टौ निवेदयेत् । अष्टौ निर्माणेत्यपश्चाद्वलिं चाष्टौ विधानदित् ॥२६
 परिवारगणैः साद्वं चूजयेत्प्रयतः सुधीः । समीरणं ततो दद्याच्छ्वं सूर्यं यजेत्पुनः ॥२७
 यायसान्नैश्च जुहुयात्क्रिदिनं लिपिपूजनम् । कुमारीपूजनं कुर्यादप्रिकार्यं दिनव्रयम् ॥२८
 पशुदानं च कर्तव्यं विभवे सति सत्तमाः । रात्रौ जागरणं कुर्यान्मठोत्सवपुरःसरम् ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणि तृतीयभागे देवादिप्रतिष्ठावर्णनं
 नामैकोनविंशोऽध्यायः । १९

अथ विंशोऽध्यायः ग्रहोपद्रवोत्पातशान्तिवर्णनम्

सूत उच्चाच

दुर्निमित्तान्यथो वक्ष्ये शृण्वन्तु मुनिस्तत्तमाः । यस्य ये ग्रहदोषाः स्युस्तेषां शान्तिं यथाक्रमात् ॥१
 दिव्यन्तरिक्षे भौमे चेत्येवं त्रिः परिकीर्तितम् । ग्रहक्षार्दीः कृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे ॥२
 उल्काहितो दिशो दाहः परिवेषस्तथैव च । जलाशयानां वै कृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम् ॥३

नारियल के जल द्वारा भी उनके स्थापन पूर्वक सविधान सिन्दूरादि से उन्हें विभूषित करना चाहिए । पुनः समीरण दान, पूजा और हवन करने के अनन्तर छह मास के पशु की बत्ति, पाँच प्रकार के जल से स्नान, रात्रि में कुमारी भोजन सुसम्पन्न करते हुए सुवर्ण की दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । शुवनेशी देवी की प्रतिमा, महामाया, अम्बिका, कामाक्षी, इन्द्राणी देवी, एवं अपराजिता देवी के लिए पहले दिन रात्रि के समय पीढ़ी के आठ भोज्य पदार्थ, सविधान आठ बलि और पश्चात् परिवार गणों समेत उनकी पूजा दुदिमानों को सुसम्पन्न करनी चाहिए । पुनः समीरण दान, शिव, सूर्य की पूजा, तीन दिन तक स्तोर की आहुति, विधिपूजन, कुमारी पूजन, तीन दिन तक हवन कार्य, तथा सत्तम वृन्द यथा शक्ति पशुदान और उस मठ के उत्सव पूर्वक रात्रि जागरण करना चाहिए । १९-२९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-र्पण के तीसरे भाग में देवादिप्रतिष्ठावर्णन
 नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त । १९।

अध्याय २० ग्रहोपद्रवोत्पात शान्ति का वर्णन

सूत जी बोले—मुनिश्वेष वृन्द ! मैं उत्पातसूचक दुर्निमित्तों को तथा ग्रह दोष जनित उपद्रव की क्रमशः शांति बता रहा हूँ, आप लोग सुनिये ! स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी द्वारा ये अशुभ सूचक दुर्निमित्त उत्पन्न हैं, जिनका शांति-विधान सुसम्पन्न करना अत्यावश्यक होता है । यह नक्षत्र जनित उपद्रवों को दैवी, आकाश से गिरते हुए एक पतली रेखा के समान उस तेज पुञ्ज को, जिसके द्वारा दिशाओं में ज्वलन उत्पन्न होता है, परिवेष (किसी तेज राशि का मण्डलाकार दर्शन एवं जलाशय जनित कल्प को

भौमं चाल्पफलं ज्ञेयं दिव्यान्तरिक्षमेव च । सप्ताहमफलं द्वादैवं चापि च तत्क्षणात् ॥४
देवानां हसनं चैव कल्कनं रुधिरस्त्रवः । अकस्माद्व्यसनं तत्र यत्र निर्धातनिर्दयः ॥
सर्पाद्यागोहणं चैव दैवं तदपि कीर्तितम् ॥५

ततो भेदात्समुत्पक्षा यदि वृष्टिः शिलातले । सप्ताहाभ्यन्तरे जीवमुत्पत्तं निष्कलं भवेत् ॥६
एकराशिस्थिताः पापाः शनिभौमदिवाकराः । पृथ्वी धूमाकुला तत्र रुदन्ति द्वहवो जनाः ॥७
अभिचारं गते जीवे शनौ च तत्र नागते । तत्र पश्यति राजेन्द्रः को धरां धारायष्यति ॥८
सूर्यनपश्यनो द्वन्द्व दिव्याहश्च तथैव च । दर्शनं धूमकेतोश्च नक्षत्रे धूमदर्शनम् ॥९
भूकम्प एव मासे च एकमासे तथा दिने । राजो जन्मदिने वाथ शक्तानं दिनान्तरे ॥१०
दर्शनं खरवातस्य ग्रहयुद्धस्य दर्शनम् । मासऋणे तु ग्रहणमुल्कापातप्रपातनम् ॥११
आकाशेऽप्यथ भूमौ च तत्र मण्डूकमेव च । हरिद्रावृष्टिः पाषाणे सिंहबिल्वाकृतिर्यदि ॥

दर्शने राष्ट्रदुर्भिक्षमकरं नृपतिक्षयः ॥१२

चैत्रे कुम्भं नदीवेगदर्शने विप्लवो भद्रेत् । अर्कस्थाद्भुतमेतद्द्वि द्वाग्युक्तं श्रपयेच्चरुम् ॥१३
आकृष्णेनेति मन्त्रेण अथवार्केण यत्नतः । प्रासादतोरणं तत्र द्वारं प्राकारवेशम् च ॥१४
धान्यसारं गवां सारं कूपेकुम्भप्रदर्शनम् । आदित्यस्थाद्भुतं विद्यात्कमलं जुहुयात्ततः ॥१५

अन्तरिक्ष तथा भौम (भूमि में होने वाला) भी कहते हैं । १-३। भौम का अल्प फल एवं दैवी अन्तरिक्ष के अन्तरिक्ष जनित अशुभ सूचक के परिणाम एक सप्ताह के उपरांत और देव का उसी समय दृष्टि गोचर होता है । ४। देवताओं का हँसना, कलह, रुधिर का स्राव, एवं निर्दयता पूर्ण आधात (वज्रादि जैसे गिरने) से वहाँ की जनता को भाँति-भाँति के अनेक दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं । उसी भाँति सर्पादि जीवों के आरोहण करने को भी दैवी ही बताया गया है । ५। उनके आरोहण करने के उपरांत यदि शिलातल पर धन वृष्टि होती है, तो एक सप्ताह तक के उत्पन्न जीव नष्ट हो जाते हैं । ६। एक राशि पर पाप ग्रह शनि, मंगल, एवं सूर्य के स्थित होने पर पृथिवी धूम संकुल से आच्छन्न हो जाती है और अनेक लोगों के आँसुओं की अविरल धारा बहती रहती है । ७। वृहस्पति के अभिचार स्थान पर प्राप्त होने और (उस समय) शनि के प्राप्त होने पर भ्रूपेन्द्र कातर दृष्टि से देखते हुए चित्तातुर होता है कि यह पृथिवी अब किसके सहारे टिकेगी । ८। सूर्य को न देखते वाले को द्वन्द्व (शीतोष्ण दुःख) अनुभव करना पड़ता है उसी भाँति दिशाओं में धूमकेतु तारा के दर्शन तारा में धूम दिलायी पड़ने से एक मास अथवा उसी दिन में भूकम्प होता है । राजा के जन्म दिन या दूसरे दिन इन्द्र धनुष का दर्शन तीखी हवा और ग्रहों के युद्ध दिखायी देने से तथा तीन मास में ग्रहण पड़ने से उल्कापात जनित दुःखों के अनुभव करने पड़ते हैं । ९-११। आकाश और भूमि में उस समय मेढक, पत्थर की शिला पर हरदी रंग की वृष्टि, सिंह और बेल की आकृति दिखायी देने से राष्ट्र, दुर्भिक्ष तथा राजा का नाश होगा बताया गया है । चैत्र मास में कुम्भ के सूर्य रहते हुए उस समय नदी-वेग दिखायी पड़ने से उपद्रव होता है । यह विप्लव सूर्य द्वारा उत्पन्न होता है पुनः उसकी शांति के लिए स्त्रुता द्वारा हवि की आहृति, 'आकृष्णेनेति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रासादतोरण से सुसज्जित उस मण्डप में प्रदान करनी चाहिए । १२-१४। धान्यतत्त्व, गोतत्त्व या कुम्भ के कूप में दिखायी देने से इसे आदित्य जनित बताया गया है, इसकी निश्चित शांति के लिए कमल पूष्ट की

सहस्रं चुहुयाद्वायथ ततः शान्तिर्भवेद्धुवम् : विकृताः पक्षिणश्चैव पाण्डुकपोतकास्त्वतः ॥१६
 श्वेतोल्को ब्रूहंश्रैव द्वोणकाकश्र कोकिलः । क्रौञ्चश्र वर्द्धनी चैव निपतन्ति गृहे यदि ॥१७
 गृहे तस्य नहोत्पत्तो भविष्यति न संशयः । स्थूलभङ्गभग्नहणं प्ररोहणमथापि वा ॥१८
 हाराः कटकटायन्ते जातस्य दत्तसम्भवः । हसता देवतानां च गाढे स्वेदश्च जायते ॥
 सर्पसण्डूकप्रसवः कुन्भे वापि क्वचिद्दूदवेत् ॥१९
 निमित्तान्येवमादीनि जायन्ते यस्य त्रेतमनि । षड्भिर्मासैश्च श्रियते गृहिणी च शुभा च या ॥२०
 अशनिः पतंते यत्र गृहे वज्रं च पादये । गुरुत्वा वह्निस्फुलिङ्गाश्च तस्य विद्धि महद्वयम् ॥२१
 स्खर्जूर उदरावत्ते निकोचगरलेऽपि च । फलिवृक्षं तिन्दुके च यत्र निर्जयते क्वचित् ॥२२
 उद्याने देवयोगे च स्वगृहे चैत्यवृक्षके । कुर्यादादित्यवारे वा अयुतं तिलपायसम् ॥
 ततः शान्तिर्भवेदागु धेनुं दद्याच्च दक्षिणाम् ॥२३
 पायसं तिलमुद्दगौ च पुष्पं वा तालवृत्तकम् । इनुमोदकपिण्याकाञ्जुहुयाद्रिविमुद्दिशत् ॥२४
 सिहासनं रथश्छत्रं ध्वजश्वामरभूयिते । अकस्माद्दृश्यते यत्र राज्ञो द्वान्यत्र कुत्रचित् ॥२५
 नदयन्ति च सत्यस्योज्ज्वलनं स्त्रीपुरुषयोः । आगमस्य च वृष्ट्वैव भड्गः कटकटायनम् ॥२६
 उपरिष्टाद्वृदेवस्य महोत्पातो भवेदयम् । चलत्वं चाधरस्यापि तथा कटकटायनम् ॥२७
 रदितं कोकिलस्यापि उलूकोऽप्यशुभं वदेत् । राजामात्यविनाशाय महीं च तत्सुतोऽपि वा ॥
 हस्तिनो मदयुक्ताश्च श्रियन्ते नात्र संशयः ॥२८
 ताडीपूणादयो यत्र यन्मौ स्यातां प्रमादतः । गेही तत्र विनश्येत सदारः पुत्रसंयुतः ॥२९

सहस्र आहुति प्रदान करनी चाहिए । गृह के ऊपर (उल्ल) द्वोण कौवा, कोकिल, क्रौञ्च एवं वर्द्धनी (बढ़नी झाड़) गिरे तो उसघर में महान् उत्पात हो, इसमें संशय नहीं । हँसते हुए देवों के भागों में स्वेद, कुम्भ में साँप और मेढक के प्रसव आदि दुर्निमित जिसके गृह में उत्पन्न हों, उसकी शुभ मूर्ति पत्नी का देहावसान छः मास के भीतर हो जाता है । जिसके गृह या वक्ष पर वज्रा-धात होते हुए अग्नि कण की भाँति शुक्ल वर्ण की चिनगारियाँ दिखायी दें, तो उसे महान्, भय-ग्रस्त होना समझना चाहिए । १५-२१।
 स्खर्जूर, जल-भैंवर, अखरोट, तृण के मूलभाग, फल लगे हुए वृक्ष, तेंदू, बगीचे, देवालय, निजगेह, और चैत्य वृक्ष पर वज्रपात होने से सूर्य के दिन तिल मिश्रित खीर की दश सहस्र आहुति धेनु की दक्षिणा समेत प्रदान करनी चाहिए, उससे शीघ्र शांति प्राप्त होती है । यह खीर, तिल मूंग, पुष्प, ताड़-फल के गुच्छे, गुड के लड्डू, तिल की खली की आहुति सूर्य के उद्देश्य से प्रदान करनी चाहिए । २२-२४। राजा के सिहासन, रथ, ध्वज, चामर समेत छत्र के आकस्मिक दर्शन अन्यत्र होने उनके प्रसन्न होने स्त्री पुरुष की कामनाओं के जलते हुए दिखाई देने, वेदादि के दर्शन से कटकटायन (दाँतों का बजना) के भड्ग होने इस भाँति के दुर्निमित होने वाले गृह पर व्यक्ति के महान् उत्पात होते हैं और उसी प्रकार अधरोष्ठ के स्फुरण होने एवं दाँत के कटकटाने से भी कोकिल के रुदन, उलूक को अशुभ वाणी, राजा, मन्त्री अथवा उनके पुत्र पृथिवी के विनाश और मदमत्त हाथी का निधन होता है, इसमें संशय नहीं । २५-२८। जिसके गृह में प्रमादवश ताड़-वृक्ष और सुपारी के वृक्ष यमल (दो मिले हुए) उत्पन्न होकर रह जाते हैं, उस पुरुष की स्त्री-पुरुष समेत मृत्यु हो जाती है । किसी बढ़ पुष्प में दूसरे पुष्प अथवा फल के अक्षत दर्शन हों तो

बद्धपुष्टे यदा पुष्टं फलं वा यदि दृश्यते । अक्षतादर्शनात्तत्र सोमस्याद्भुतदर्शनन् ॥

दधि मधु घृतं चैव जुहुयादयुतं द्विजाः ॥३०

पालाशं सोममुद्दिश्य सोमस्य च स्वेदिने । इमं देवा इति मन्त्रेण सोमस्य श्रपयेच्चरम् ॥२१

उत्पत्तिं गृहे यस्य यदा माषाश्रम पुष्कलाः । दधिदीरज्जपाकेषु हृधिरं दृश्यते यदि ॥३२

अक्षस्माद्दृहदाहस्तु अनग्निज्वलनं यथा । नेष्ठीना स्त्रेद्विद्युदृष्टस्योदयननं तथा ॥३३

व्याखिलीना विनश्यन्ति निलिलाः पशुमानुषाः । एवं सर्वाणि भूतानि भवन्त्यकारके ध्रुवाः ॥३४

राजाभ्यत्यविनाशाय गेहे गेही विनश्यति । प्राणनाशाय विप्रायादुत्था च प्रभवन्ति हि ॥३५

दृष्ट्वा बाभद्भत्युभं जुहुयादयुतं क्षमात् । दधिमधुघृतैर्युक्तं खादिरोदुम्बरेऽपि च ॥३६

अग्निर्मूर्द्धति मन्त्रेण श्रपितं लोहितं चरम् । त्रिविप्रान्भोजयेद्यादक्षिणां लोहितं ततः ॥

स्वर्गमहागारमुद्दिश्य ततः शान्तिः प्रजायते ॥३७

पुष्टं वा पातयेद्यत्र फलं वापि तथैव च । दध्यन्तं च घृतैर्मिश्रं रौप्यं हिरण्यमेव च ॥३८

हस्त्यभ्यमहिषा गावौ दारापत्यधनानि च । तुष्टेनाङ्गारकेषैव सर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥

आङ्गारकेण मन्त्रेण खादिरं चक्षतैर्युतम् ॥३९

दक्षिणां च यथाशक्तिं दद्यादिवप्राय वा पुनः । लोहितं च बलिं दद्यात्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥४०

धावन्ति चोर्ध्वपुच्छाश्र गृहे गावः स्वयं यदि । आरोहन्ति गृहं विप्राः सारमेयाश्र सूकराः ॥४१

गृहे यस्य भवन्त्येते तस्य भार्या विनश्यति । सर्वेषां वा भवेन्मृत्युर्वन्ध्या गौर्वा प्रजायते ॥४२

उसकी शान्त्यर्थ दही, शहद, धी की दश सहस्र आहुति पलाश की समिधा द्वारा प्रज्वलित अग्नि में सोम के दिन सोम के उद्देश्य से 'इमं देवा इति' इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक स्त्रीर समेत प्रदान करनी चाहिए और इस उपद्रव को सोम द्वारा उत्पन्न होना बताया गया है । २९-३१। जिसके गृह में जवा, उरद भूसी समेत ऊपर उड़ते हुए दिलायी दें और दही, स्त्री, एवं धी के पाक में हृधिर का दर्शन हो, तो उसके यहाँ अक्षस्मात् गृह-दाह होता है । मेघ हीन विद्युत-दर्शन, एवं वृष (बैलों) के ऊपर धी ओर कूदना-दौड़ना हो, तो सभी पशु और मनुष्य व्याधि-पीड़ित होकर मर जाते हैं । विना शांति किये हुए इसी भाँति सभी प्राणियों, राजा, और मंत्री के विनाश, गृह में प्रधान गृहपति के विनाश होते हैं । अतः प्राण-रक्षार्थ ब्राह्मण के भोजन-दान और अग्नि को आहुति-प्रदान अवश्य करना चाहिए । किसी अकल्याणकर या उत्तरतम दुनिमित के होने पर क्रमशः दही, शहद, धी की दशसहस्र आहुति स्त्रीर या गूलर की प्रज्वलित अग्नि में 'अग्निमूर्द्धति' मन्त्र द्वारा लोहित वर्ण की स्त्रीर समेत प्रदान करना चाहिए, तथा तीन ब्राह्मणों के भोजन लोहित (रक्त) वर्ण या सुवर्ण की दक्षिणा समेत भौम के उद्देश्य से देने चाहिए, इससे शीघ्र शांति प्राप्त होती है । ३२-३७। पुष्ट, फल, दहों एवं धी मिश्रित अज्र, चाँदी, सुवर्ण, हांथी, घोड़े महिष गौर्वे स्त्री, पुत्र धन ये सभी पदार्थ भौम-ग्रह के प्रसन्नार्थ देना चाहिए एवं उनके प्रसन्न होने पर प्राप्त भी करना चाहिए । उस समय अंगारक (भौम) के मंत्रोच्चारण पूर्वक स्त्रीर की प्रज्वलित अग्नि में अक्षत समेत आहुति प्रदान कर ब्राह्मण के लिए यथा शक्ति दक्षिणा, और रक्त वर्ण की बलि प्रदान करने से शुभ की प्राप्ति होती है । विप्रवृन्द ! पूँछ ऊपर किये गायें गृह में दौड़ती हों, कुते और सूकर गृह के ऊपर चढ़ते हों, तो उस घर में उसकी स्त्री का विनाश, अथवा सभी का विनाश या गायें वध्या हो जाती हैं । ३८-४२।

मिथ्यावादेन ऐही च राजा बादैश्र तिष्ठति । अथवा यदगृहे गावो नर्दयन्ति हृसन्ति च ॥४३
 धरणीहन्तं दत्र द्वयोरास्कन्दनं तथा । निमित्तान्येवमादीनि गोशजातानि सत्तमाः ॥४४
 यस्य गेहे भवन्त्येते नाशस्तस्य भवेद्धृष्टम् । मण्डूकसर्पकूष्माण्डः प्रसुवन्ति यथा स्त्रियः ॥४५
 अकस्माद्यदि चैतानि बुधस्योत्पातलक्षणम् । शान्तं तद्र प्रदक्षयामि यथा सम्पद्यते सुखम् ॥४६
 दाधिमधुघृतात्तं च अपामार्गं तथा पुनः । अमुतं बुधवारे च जुहुयाच्छ्रद्धया युतः ॥४७
 उद्बुधस्वेति च मन्त्रेण बुधाय श्रद्येच्चरुम् । सुवर्णं बुधमुद्दिश्य गां च दद्यात्यस्त्वनीम् ॥४८
 सुवर्णं पुष्पवृष्टिं च सुफलं चाक्षतं तथा । गृहे प्राङ्गणके यस्य निपतन्ति कदाच्चन ॥४९
 अलङ्कारयुतां वापि सर्वभिरणभूषिताम् । गृहमध्ये तु यः पश्चेत्स्वीणामन्तर्हृतां स्त्रियम् ॥५०
 अकस्मान्मालतीपुष्टं ज्ञातं स्यात्स्य वा गृहे । सोमाय न च सन्तुष्टः सर्वमेतत्प्रदृश्यते ॥५१
 धनं धान्यं तथा पुत्र ऐश्वर्यं च वरस्त्रियः । समृद्धाश्रम सहिष्यन्न भरिष्यन्ति न संशयः ॥५२
 श्रीश्चतेति च मन्त्रेण अवामार्गं तथा बुधः । सहस्रं बुधवारे च जुहुयाद् घृतसंयुतम् ॥५३
 पर्यस्त्विनीं तज्ज्ञातं स्यात्स्य वा गृहे । द्विजाय श्रद्धया दद्यात्तः सम्पद्यते शुभम् ॥५४
 रक्तक्षावो भवेद्यत्र तत्र ऋत्विकप्रसूयते । सिहव्याद्रग्वादीनां धनहानिविपत्करः ॥५५
 एको वृषस्त्रयोगावः सप्ताष्टं नव दन्तिनः । संवत्सरेण तस्यैका प्रसूतिर्विहृता पुनः ॥५६
 पुनःपुनर्वर्तं चाशु अकाले मैथुनं तथा । गावो यत्र प्रसूयन्ते यमौ दोषकराविमौ ॥५७

अथवा मिथ्या कलह करने वाले गेही और राजा हो जाते हैं । जिसके गृह में गायें चिल्लाती और हँसती हों, पुरियी में आधात करती हों, या दो गायों के आक्रमणात्मक युद्ध हों, अथवा सत्तमवृन्द ! इसे अश्व भी करें, तो इस प्रकार के दुर्निमित्त वाले गृह का निश्चित दिनाश हो जाता है । स्त्रियों की भाँति मेढ़क, साँप, या कुम्हड़े में आकस्मिक प्रसव हो, तो इस उपद्रव सूचक को बुध द्वारा किया गया बताया गया है । उसकी शांति एवं सुख होने के विधान मैं बता रहा हूँ । बुधवार के दिन श्रद्धा-समेत दही, शहद एवं धी में डुबाकर अपामार्ग (चिचिरा) की दशसहस्र की आहुति 'अम्बिकेति' मंत्र पूर्वक बुध के उद्देश्य से खीर सहित प्रदान करनी चाहिए, पश्चात् सुवर्ण की दक्षिणा दूध देने वाली गोः के दान समेत ब्राह्मण के लिए अपित करनी चाहिए । ४३-४८। जिसके गृह के प्राङ्गण में सुवर्ण, पुष्पवृष्टि, सुन्दरफल, अक्षत के आकस्मिक पतन ऊपर से कभी हों, एवं गृह के मध्य भाग में अलंकार समेत समस्त आभूषणों से सुविभूषित किसी क्षीण स्त्री के दर्शन हों, जो उसी समय अन्तर्हृत हो जाये, अथवा उस धर में मालती पुष्प आकस्मिक उत्पन्न हो जाय, तो धन, धान्य, पुत्र, ऐश्वर्य, उत्तम-स्त्री एवं सेवक समेत प्रधान रानी की निश्चित मृत्यु होती है । ४९-५२। विद्वान् को चाहिए कि उसकी शान्ति के लिए बुधवार के दिन 'श्रीश्चतेति' मंत्र द्वारा अपामार्ग (चिचिरा) को धी में डुबाकर उसकी सहस्र आहुति प्रदान पूर्वक दूध देने वाली गौ तथा दो वस्त्र दक्षिणा रूप में ब्राह्मण के लिए अपित करें उससे पश्चात् शांति प्राप्त होती है । ५३-५४। जहाँ कहीं रक्तक्षाव होता है, उसे क्रत्विक् प्रसव कहते हैं, उससे सिंह, वाघ, गौ आदि की धन हानि-पूर्वक उसे विपत्ति में फँसना पड़ता है । ५५। एक वृष (बैल), तीन गायें, और चौबीस हाँथियों के प्रसव, वर्ष में एक बार होना बताया गया है, किन्तु यदि ये शीघ्रता वश अल्प समय में गर्भ धारण और अकाल में मैथुन एवं

भञ्जीकृतानि धान्यानि ग्रीहयो यवतगुलाः । प्राविमार्जारमण्डुकाः स्थूणाभृणे च प्राङ्गणे ॥५८
 विकिरन्ति नखैभूमिं प्ररोहन्ति ग्रहं तथा । गृहे यस्य प्रजायन्ते तस्य मृत्युर्न संशयः ॥५९
 एष्मात्साम्यन्तरे यत्र इमशानं यास्यति ग्रुदम् । कलहं आतिवैरं च व्याधिपीडा भविष्यति ॥६०
 विश्वलापो मित्रनाश इष्टेष्वनिष्टदर्शनम् । भार्यापुत्रविनाशश्च भवेदेषु विनिश्चितम् ॥६१
 क्रियावन्तं यदा कुर्वन्त्कुर्वीत गृद्विलित्वके । तदा राजा विभ्रमश्च तथागृहविहाशनम् ॥६२
 अमात्यवर्गश्च पुरे राजा राज्यपराङ्मुखाः । बृहस्पति समुद्दिश्य गां च वद्यात्य्यस्विनीम् ॥६३
 वारिमण्डे च कूपे च वाप्यं च मधुकाञ्जिके । औरं वधिघृतं चैव जातं यदि भविष्यति ॥६४
 अकस्मात्तत्र वृक्षश्च फलेन सह संयुतः । गृहमध्ये प्रजायेत ततः सम्पद्यते चुभम् ॥६५
 बृहस्पतेस्तु तुष्ट्य सर्वमेतनिर्दशनम् ! गौरं बृहस्पतेश्वैद पकुर्यात्प्रायदक्षिणाम् ॥६६
 शशुभं हि शुभेनैव शान्तिं होमं च कारयेत् । तत्रैव राक्षसं यत्र घटकं परिशोषणम् ॥६७
 केसरी शर्करा तैलं राजतं ताण्डवं स्थितम् । माषभक्तं तथा धान्यं मुवर्णं रजतानि च ॥६८
 ताम्रं कांत्यं तथा लोहं सीसकं पित्तलं तथा । स्थापितानीव दृश्यन्ते गृहे दैतानि यस्य चै ॥६९
 धननाशो भवेत्स्य स्वर्गभृणो हृथापि वा । व्याधिपीडे तप्ता घोरे राजोपद्रवबन्धने ॥
 गजाभ्यपशुभृत्यानां विनाशो जायते ध्रुवम् ॥७०

इसी भाँति गौ के प्रसव भी, दोनों दोउ कारक बताये गये हैं । धान्य, ग्रीहि, जवा और चावल के कूट-छाँट कर रखने, उस समय टूटे खम्भे वाले प्राङ्गण में ग्रावि, बिल्ली, और मेंदक अपने नाखूनों से भूमि खोदते हों, और कूद-कूद कर ऊपर घर के नढ़ते हों, तो उस गृहपति की मृत्यु होती है इसमें संदेह नहीं । तथा छः मास के भोतर ही किसी की निश्चित इमशानयात्रा (निधन), गृह में कलह, दन्धुओं से वैर एवं रोगजनित व्यथा उत्पन्न होती है । वियोग, मित्रनाश, इष्ट में अनिष्ट-कारक के दर्शन तथा पल्नी-पुत्र के विनाश भी अवश्यम्भावी होते हैं । किसी क्रियाशील की रचना करते हुए यदि गृद्ध और बिल्व (बेल) की रचना कर डाले उससे राजा को मोह तथा गृह विनाश होता है । और मंत्री वर्ग उस राजा के प्रतिकूल विशद्भावरण उस राजधानी में ही करने लगते हैं । अतः इसके शांत्यर्थ बृहस्पति के उद्देश्य से दूध देने वाली गौ के दान करना चाहिए । ५६-६३। वारिमण्ड, कूप, चावली में शहद और कांजिका (सिरका ऊख से बनायी गयी खटायी) डालने से शीर का दही और थी बन जाये तो उस मनुष्य के घर में आकस्मिक फल समेत वृक्ष के उत्पन्न होने से शुभ होता है, अन्यथा नहीं । इन सभी उपद्रवों को वृहस्पति द्वारा उत्पन्न होना कहा गया है, अतः उनके प्रसन्नार्थ श्वेत वर्ण की राई, कमल और केसर का दान करना चाहिए । शुभ कार्य द्वारा अशुभ की शांति की जाती है, अतः इसके लिए हवन करना आवश्यक होता है, क्योंकि वहाँ परिशोषण करने वाला कोई घटक राक्षस ही रहता है । ६४-६७। केसरी, शक्कर, तेल, शोभन नृत्य, पका उरद, धान्य, मुवर्ण, चाँदी, ताँबा, काँसा, लोहा, सीसा, और पीतल पदार्थ जिसके घर में रखे हुए की भाँति आकस्मिक दिखायी दे, तो उसके धन का नाश, स्वर्ग की यात्राभृण, घोर व्याधि-पीड़ित अथवा राजा की आज्ञा द्वारा बंधनों से बंधे (अर्थात् हथकड़ी बेड़ी) पहने हुए मृत्यु प्राप्त करना, एवं हाथी, घोड़े पशु और सेवकों की निश्चित मृत्यु होती है । ६८-७०

यस्यैतानि प्रदृश्यन्ते पर्वतः कनकानि च । सम्पत्तस्य प्रजायेत निश्चला सुखवा सदा ॥७१
दन्तोद्दरेषु बन्ताश्र पद्मिक्तमाक्लम्य संस्थितः । तेऽपि दोषकराः सर्वे शलाकाकुतिनस्तथा ॥

उपदन्ताश्र सर्वे ते न ते दोषकराः क्वचित् ॥७२

शण्डे कुम्भे यदा चैव श्रूयते घनगर्जितम् । कञ्जुकानां गृहे चैव प्राकारः श्रूयते यदि ॥७३

मूषिकानां नुखे चैव ज्वलन्ती यस्य पश्यति । गेही तदैव नश्येत शुकस्याद्भुतदर्शनम् ॥७४

शांतिं तत्र प्रवक्ष्यामि यथा सम्पद्यते शुभम् । शमीपत्रं निर्मितं च यवैर्युक्तं गृहिण्यणि ॥

इधिमधुघृताक्तं च जुहुयाद्गत्वे दिने ॥७५

शुक्लवासोयुगं चैव गां च शुक्लां पयस्त्विनीम् । सुवर्णं श्रद्धया चैव दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥७६

देवागारे यदा मूमिलोऽहिता यस्य दृश्यते । पुष्पिता दृश्यते लोके तत्र विद्धि महद्वयम् ॥७७

राजा वा राजपुत्रो वा राज्यं वापि विनश्यति । मन्त्रिणो मन्त्रिपुद्गतेश्च त्रियन्ते नाश्र संशयः ॥७८

यत्र वा दृश्यते लोके गृहे यस्य सुपूजिताः । पुष्पिताश्र गृहस्तम्भाः शरीरं च घटस्तम्भाः ॥७९

हस्तयस्मद्विषाश्रेव अजागावस्तथैव च । नित्यं स्वान्तिवद्यार्थाय पुष्पितां प्रवहन्ति च ॥८०

गृहे हंसो गृहे सम्पद्मण्डुका जलचारिणः । द्वारे प्रविश्य तर्पनं प्रतिमायाः प्रकल्पनम् ॥८१

अकस्माद्दुष्टशब्दोऽपि यत्र कुत्रापि जायते । ऋवन्ति प्रमदा यत्र भिन्नास्ते स्युर्नवांगिकाः ॥८२

गृही तत्र विनश्येत सपुत्रपशुबान्धवः । धनुःखड्ढधरा रात्रौ मध्याह्ने चानन्दके तथा ॥८३

उदितो दृश्यते व्योम्नि ज्वलितः पावकस्तथा । मनुष्याङ्गनानां भरणं तथा स्याद्वाष्टविप्लवः ॥८४

जिसे पर्वत और सुवर्ण के दर्शन होते हैं, उसे निश्चल एवं सदैव सुख-दायक सम्पत्ति की प्राप्ति होती है । दाँतों के ऊपरी स्थान में पंक्ति में आबद्ध होकर निकले हुए एवं शलाका की भाँति निकले हुए दाँत अशुभ सूचक माने जाते हैं, किन्तु, कहीं, इन्हें निर्दोष भी बताया गया है । किसी पात्र या घट में घन-गर्जन, भृत्यों के गृह में स्थाईं, तथा चूहियों के मुख में प्रकाश दिखायी देने से उस गृहपति की मृत्यु होती है, इस दोष को शुक्र द्वारा उत्पन्न होना कहा गया है, मैं उसकी शांति बता रहा हूँ, जिससे कल्याण की प्राप्ति होती है । शुक्र के दिन गृहपति या गृहिणी, शमी पत्र और जवा को दही, शहद एवं धी में डुबाकर उसी की आहुति प्रदान पूर्वक दो श्वेत वस्त्र शुक्ल वर्ण की दूध देने वाली गौ और सुवर्ण की दक्षिणा श्रद्धा-समेत आहूण को समर्पित करनी चाहिए । जिस किसी के निर्माण कराये हुए देवालय की भूमि रक्तवर्ण, और घर की भूमि पुष्पित (फूली हुयी) दिखायी देती है, उसे महान् भय उपस्थित होता है और राजा अथवा राजपुत्र का निधन एवं राज्य-विनाश, मंत्री या उसके पुत्र का निधन होता है, इसमें संदेह नहीं । जिस किसी के यहाँ घर में भली भाँति से पूजित गृह के स्तम्भ, शरीर, घट, हाथी, धोड़, महिष (भैंस), अजा (बकरी), और गायें पुष्पित दिखायी देती हैं, वहाँ अवश्य गृहपति का निधन होता है । ७१-८०। गृह में हंस, मेढ़क, जलचर या सर्प दरवाजे पर पहुँच कर किसी कल्पित प्रतिमा की भाँति अवस्थित दिखायी दे जिस किसी स्थान में घट-शब्द सुनायी पड़े और किसी नवीन बधू के रक्तमाव, या किसी अंग के विदीर्ण होने से उस गृहपति का पुत्र, पशु एवं बन्धुगण समेत विनाश होता है । रात्रि के समय धनुष और खड्ग लिये मध्याह्न में चन्द्र, एवं आकाश में प्रज्वलित अग्नि के दर्शन होने से स्त्री-पुरुषों के निधन और राष्ट्र विप्लव

रससिद्धानि वस्तूनि सुराद्यग्नापि वा पुनः । हस्तिनो मदयुक्ताश्रम अभा धीरित्वहिसकाः ॥

विनश्यन्ति सदा चैते शनैर्द्भुतदर्शने

॥८५

नगरे वा तथा ग्रामे जायन्ते तस्य वैरिणः । दिवा वा यदि वा रात्रौ शनैर्द्भुतदर्शनम् ॥८६

मृगव्याघ्रादिरक्षांसि तदा गोमहिषा अपि । उत्पत्तिं यदा चैते शनैर्द्भुतमादिशेत् ॥८७

निधिमन्त्रं ब्रवद्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । जुद्यादयुतं सम्यक्सस्यांश्च समिधं द्विजाः ॥८८

शशो देवीति मन्त्रेण शुक्लांशं शनिवासरे । चर्हं च श्रपयेत्तत्र समुद्दिष्य शनैश्चरम् ॥८९

गां च नीलां ततो दद्याज्जीवद्रूतसां पर्यस्त्वनीम् । वासोऽगुणं च विश्राय सुवर्णं इजतं तथा ॥९०

दत्त्वा तु श्रद्धया सम्पदक्षिणां शिरसि स्थिताम् । विर्धि होमावसाने तु ततः सम्पद्यते शुभम् ॥९१

यदा द्वारे गोधिका च शशिलनी प्रविशेद्गृहम् । तदाऽशुभं विजानीयादाजपीडा धनक्षयः ॥

अयुतं जुहुयात्सम्पक्ततः सम्पद्यते शुभम्

॥९२

विना गर्जितमेधेन शिलावृष्टिः प्रजायते । रक्तमिश्रा हि पांडुश्च पतल्ली यन्न दृश्यते ॥९३

तत्र सन्दृश्यते चार्खं वृक्षा वातविवर्जिताः । शङ्कवजस्तथा चापं पतनं सुमनस्य च ॥९४

दिवा शिवा पुरा रौति उलूको वा निशाचरः । निशि निपत्य काकुत्स्ये प्रदेशे रौति वा वृषः ॥९५

अर्धमप्रबला देशा राजा धर्मपराइमुखः । अन्योन्यं च जिघांसन्ति गोमाहृणमथापि वा ॥९६

गृहे गृही विनश्येच्च सपुत्रपशुवान्धवः । उत्सानं द्वारदेशेऽस्य मरणं राष्ट्रविभ्रमः ॥९७

राज्यनाशो भवेद्वाज्ञो मरणं वाहनस्य च । विपरीतानि देशानि क्रमतः सम्भवन्ति हि ॥९८

होता है । ८१-८४। रस द्वारा सिद्ध की गयी वस्तुओं, मद्य आदि, मतवाले हाथी, धी काटने वाले, अश्व के विनाश शनि-जनित उत्पात में सदैव हुआ करते हैं । दिन अथवा रात्रि में शनि द्वारा उत्पात होता है, तो उसके शत्रु सभी नगर या ग्राम वाले हो जाते हैं । मृग, वाघ, आदि, राक्षस, गौ-महिष की उत्पत्ति द्वारा शनि कृत उत्पात सूचित होता है । ८५-८७। द्विजवन्द ! मैं शुभकारक निधि मंत्र बता रहा हूँ, समिधा समेत शस्यों की दश सहस्र आहुति शनि के उद्देश्य से 'शन्लो देवीति' मंत्र द्वारा हवि समेत प्रदान करनी चाहिए । पश्चात् नील वर्ण की गो, जीवित बछड़े समेत दूध देने वाली गाय और दो वस्त्र समेत सुवर्ण और चाँदी की दक्षिणा ब्राह्मण के लिए समर्पित करके हवन के उपरांत उसे कल्याण की प्राप्ति होती है । दरवाजे पर गोधा (गोह), और शंखिनी के गृह में प्रवेश करने से अशुभ होना बताया गया है—राजा की ओर से पीड़ा एवं धन-क्षय होता है—अतः उसकी शांति के लिए दश सहस्र की आहुति प्रदान करनी चाहिए, उसी से शुभ की प्राप्ति होती है विना गर्जन के शिला वृष्टि (पत्थर पड़ने), रक्त मिश्रित पांडु वर्ण की होती हुयी वर्षा के दर्शन हों तो वहां पर मेघ, वायु संचार-हीन वृक्ष, इन्द्र-धनुष, इन्द्र व्यज, एवं पुष्य-वृष्टि दिखायी देती है । दिन में पहले स्यारनी के लदन, रात्रि में उलूक (उल्लू) या निशाचर की अशुभ वाणी, और रात में बैलों के बीच में कूदकर किसी बैल के चिल्लाने से उस देश में अर्धमं की प्रधानता, धर्मविहीन राजा, (प्रजाओं में) एक-दूसरे की हिंसा गो-ब्राह्मणों की भी हिंसा करते हैं । गृह में पुत्र, पशु और बान्धव समेत गृहपति के विनाश द्वारा प्रदेश में मरण, राष्ट्र-विप्लव, राज्य-नाश राजा एवं वाहनों के निधन और उस समस्त प्रदेश में प्रतिकूल आचरण होने लगता है । ८८-९१।

राहुणा ग्रस्तसूर्योऽपि निशि चाथ यदा दिवा । तारकागणवच्चैव राजां निधनकारकः ॥१९
 सहामात्या विनश्यन्ति स्वर्गं ये च सुदुर्जयाः । परचक्रेण पात्यन्ते राजान्ते नात्र संशयः ॥२००
 छायाध्वजश्च गगने दृश्यते चेत्कदाचन । दर्शनादेव राजास्तु विनाशः सहराष्ट्रकैः ॥२०१
 उवलितो दृश्यते यत्र पावकश्च सकृज्जले । वज्रे शिरसि गत्रे वा जीवितं तस्य दुर्लभम् ॥२०२
 द्वारोपान्ते तथा रत्नम् आग्निर्वा धून एव वा । पुरुषस्य तु तत्रैव मरणं जायते ध्रुवम् ॥२०३
 गगनेऽशनिधातश्च शक्तिहस्तेन वा पुनः । अब्दस्याभ्यन्तरे तस्य मरणं नात्र संशयः ॥२०४
 शिखावलयस्थ्ये तु सधूमः पावकोद्गमः । दृश्यते नगरे मध्ये तत्रैवाद्भुतर्दर्शनम् ॥२०५
 शबस्य नीयमानस्य उत्थानं वा प्रभावतः । स्थापितस्य च लिङ्गस्य अन्यत्र गमनं तथा ॥२०६
 निर्घातश्चापि भूकम्पो निवातोल्काप्रदर्शनम् । अकाले पुष्पिता वृक्षाः फलं चाकालसम्भवम् ॥२०७
 अनिमित्तानि सर्वाणि द्वरमागत्य निश्चरम् । अनिमित्तस्य नाशते यः सैहिकेयकृतस्य च ॥२०८
 नराणामासनं चैव गवां वा मानुषीयिरा । पक्षमाक्रत्न्तरे तस्य पुत्रस्य मरणं दिशेत् ॥२०९
 अयुतं जुहुयात्तत्र राहुमुद्दिश्य वलतः । शान्तिसत्र प्रवक्ष्यामि यथा सम्पद्यते शुभम् ॥२१०
 दधिमधुघृताक्तं च कुर्याद्वक्षितं तथा । कलायु इति मन्त्रेण जुहुयाद्विवासरे ॥२११
 चरुं च श्रपयेत्तत्र राहुमुद्दिश्य संश्रयात् । होमं कुर्यात्तितो गां च कपिलां^१ च पर्यस्त्वनीम् ॥२१२
 अतसीं तिलशङ्कौ वा वासोयुगमथापि वा । श्रद्धया राहुमुद्दिश्य दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥२१३

दिन की भाँति रात्रि में भी राहु द्वारा ग्रस्त हुए सूर्य (सूर्यग्रहण) दिन में तारागण की भाँति राजाओं की मृत्यु का सूचक होता है । स्वर्ग में भी दुर्जय समझे जाने वाले राजा की मंत्री समेत मृत्यु राष्ट्र द्वारा शीघ्र हो जाती है, इसमें संदेह नहीं । आकाश मण्डल में कभी ध्वज की छाया का आकस्मिक दर्शन हो, तो राज्य समेत राजा का विनाश होता है । जल में एक बार भी प्रज्ञलित अग्नि के दर्शन, वज्र, शिर, एवं शरीर में भी दिखायी देने से उस मनुष्य के जीवन की आशा का त्याग कर देना चाहिए । दरवाजे के समीप, या किसी स्तम्भ में अग्नि अथवा धूम दिखायी दे तो उस पुरुष की निश्चित मृत्यु हो जाती है । आकाश में वज्राधात, शक्ति समेत हाथ के आधात जिसे मालूम पड़े उस वर्ष के भीतर ही उसकी मृत्यु हो जाती है, इसमें संदेह नहीं । नगर के मध्य भाग में स्थित किसी शिखावलय के भीतर धूएं समेत अग्नि के प्रादुर्भाव शब के बहन करते हुए प्रमादवश उसका उठाना, स्थापित शिवलिङ्ग का अन्यत्र ले जाना, वज्राधात, भूकम्प, वायुहीन उल्का के प्रदर्शन असमय में वृक्षों के फूलने-फलने, ये सभी अशुभ सूचक दुर्निमित उसके द्वार चले जाने पर फलप्रदायक नहीं होते हैं । इस प्रकार राहु द्वारा किये गये उस दुर्निमित का नाश हो जाता है, अन्यथा मनुष्यों के आसन और गौओं की मनुष्य की भाँति वाणी ये सभी एक पक्ष के भीतर उसके पुत्र-निधन की सूचना प्रदान करते हैं । इसलिए राहु के उद्देश्य से दश सहस्र की आहुति प्रदान करनी चाहिए । मैं उस शुभप्रदायक शांति का विधान बता रहा हूँ । रवि के दिन 'कलायुहिति' मंत्र के उच्चारण पूर्वक दही, शहद, एवं धी में भिंगोयी हुयी द्रव्या और अक्षत की सीर समेत आहुति प्रदान करने के उपरांत दूध देने वाली कपिला गौ और अलसी, तिल, शंख, एवं दो वस्त्र समेत दक्षिणा श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मण के लिए समर्पित करनी चाहिए । १९-११३।

दुरितस्य विनाशाय तस्य सम्पद्यते शुभम् । दधिमधुघृतकीरेण वारुणेन च वारुणे ॥११४
दृश्यते चाद्भुतं तेषु विशिष्टदोषदर्शिभिः । गृही तत्र विनष्टश्च भवेत्सपशुबान्धवः ॥११५
दृश्यन्ते तत्र हौच्चाश्र लम्बुका गृध्रवायसाः । वरदणं भीषणं घोरं नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥११६
मैथुनानि च सर्वेषां यस्य वस्ते भवेद्वादि । मृत्युस्तस्य भवेदाशु ईश्वरस्य च गासनात् ॥११७
दूषकेतुर्यज्ञ व्योग्निं ज्वलत्यावक सन्धिभः । स्थानात्स्थानान्तरं याति श्रूमौ वा पतते मृतम् ॥

सबन्धुरस्यते रजा यत्कैः स पीडितः ॥११८

दुर्भिकं दरणं चैव चिरं राष्ट्रे भविष्यति । गावो लक्टकुम्भा च विशन्ते गृहवेशमनि ॥११९
गावश्च तस्य नश्यन्ति इतापत्यधनानि च । अन्यस्य दोषो भवति गृहे यान्ति प्रसादतः ॥१२०
अब्दान्तरे भवेन्मृत्युर्विरजा हि भविष्यति । शान्तिमत्र प्रवक्ष्यामि यथा सम्पद्यते शुभम् ॥१२१
सप्ताश्वरथसंयुक्तं हेमच्छात्रविभूषितम् । विप्राय मण्डपं दधाद्विल्पप्रभायापि वा ॥१२२
ऐन्द्रेष्व तु मन्त्रेण होमः कार्ये द्विजातिभिः । अकस्माच्छालतालाक्षणदिरोत्तरलोत्तरकाः ॥१२३
गृहमध्ये प्रजायेत केतोरद्भुतदर्शनम् । हंसो वा द्वोणक्षाळो वा मधूरो वा गृहोपरि ॥१२४
गृहे तस्य महोत्तातः केतोरद्भुतदर्शनम् । शान्तिमत्र प्रवक्ष्यामि यथा सम्पद्यते शुभम् ॥१२५
दधिमधुघृतात्तं च जुहुयावयुतं कुशम् । अस्त्रकं चेति मन्त्रेण केतवेभिवपेच्चरुम् ॥१२६
नीलां धेनुं सवत्सां च बहुक्षीरप्रदां तथा । मृत्तिकां हेमवासश्च नानालङ्कारमेव च ॥१२७

दुर्निन्ति के विनाशार्थ दही, शहद, धी एवं क्षीर की आहुति वारुण मंत्र द्वारा सुसम्पन्न करने से शुभ की प्राप्ति होती है । अन्यथा जो विशिष्ट दोष द्रव्याओं को वे अशुभ-सूचक दुर्निन्ति दिलायी देते हैं उनके फल भी जैसे कि बताये गये हैं—पशु, पुत्र, एवं वान्धव गण समेत उस गृहपति का विनाश हो जाता है ये निरिच्चत प्राप्त होते हैं । जिसके निवास स्थान में क्रौंच, गोदड, गोध, और कौवे दाशण, भीषण एवं घोर नृत्य परिहास तथा मैथुन आदि किया करते हों तो ईश्वर के शासन विधानानुसार उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है । जिस समय आकाश में धूमकेतु प्रज्वलित अग्नि की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, अथवा श्रुमि पर उसका पतन होता है, उसी समय वहाँ का राजा अपने बन्धु गणों के समेत दूसरे राजा से पीड़ित होता है, और राष्ट्र में दुर्भिक्ष, मरण, चिरकाल तक होता रहता है । जिसके गृह में गौओं एवं बानर एवं कुम्भ का प्रवेश होता है, उसके गौओं स्त्री, सत्तान, और धन का विनाश शीघ्र हो जाता है और अन्य के दोष से भी उसे दोष भागी बनना एवं वर्ष के भीतर ही शक्ति हीन होकर मत्यु शश्या पर शयन करना पड़ता है, अतः उसके लिए शांति-विधान मैं बता रहा हूँ, जिससे कल्याण की प्राप्ति होती है । सात घोड़े जुते हुए एवं सुवर्ण के छत्र से अलंकृत रथ के मण्डप अथवा बिल्व-पत्र ब्राह्मण को समर्पित करते हुए ब्राह्मणों द्वारा खाल (सालू) ताड़ वहेरा, सैर, नीलकमल, और कसरे (कुइयाँ पुष्प की जड़) की आहुति इन मंत्रोच्चारण पूर्वक सुसम्पन्न करानी चाहिए । १४-१२३। गृहमध्य-भाग में केतु द्वारा उत्पात हंस, द्रोण कौवे या मधूर के पतन हों तो उस घर में महान् उत्पात होने की सम्भावना बतायी गयी है, अतः उस अशुभ की शांति एवं शुभ की प्राप्ति के लिए मेरे बताये हुए विधान को सुसम्पन्न करना चाहिए—दही, शहद, एवं धी में डुबाकर कुश की आहुति केतु के उद्देश्य से ‘अस्त्रकमिति’ मंत्र द्वारा खीर समेत प्रदान करके बछड़े समेत अधिक दूध देने वाली नील गाय, मिट्टी, सुवर्ण जड़ित, वस्त्र, भाँति-भाँति के अलंकार समेत दक्षिणा ब्राह्मण को अर्पित करनी चाहिए,

दक्षिणां च प्रवक्ष्यामि यस्य नास्ति प्रतिक्रिया । देवमुद्दिश्य दानेन होमेन चरुणा तथा ॥१२८
दक्षिणस्यां दिशिच्छायां यः पश्येदात्मनः स्वयम् । स्वच्छायां पादुकस्यैव पश्येत्यञ्चशिरोद्द्वयम् ॥१२९
एवमेवैव यच्छब्दं शिनस्ति च ततो हितम् । शीघ्रं नाशमवाप्नोति सप्ताहाभात्र संशयः ॥१३०
उच्चालचान्प्रवक्ष्यामि यथा शास्त्रेण चोदितम् । काकमः जरिरशूकानां कपोतानां विशेषतः ॥

मैथुनं दृश्यते तत्र तच्च राहोर्महाद्भुतम् ॥१३१

शनिमुद्दिश्य जुहुगादयुतं शनिवासरे । पूजयेदर्कपुष्टेण शतेन जुहुयाच्चवरम् ॥१३२
कृत्वा तत्रैव पश्येत्तशनेरद्भुतदर्शनम् । अष्टादिंशं चरुं कृत्वा ततः शान्तिर्भवेद्ध्रुवन् ॥१३३
भुजपदोत्तथा चक्षुःस्थन्दे नरणं दिशेत् । ततु सोमाद्भुतं विद्याद्रामदक्षिणतः ऋमात् ॥१३४
दृष्णपदं भवेद्वामे विपरीतेऽद्भुतं दिशेत् । अनिष्टसूचकं यस्मात्तस्माच्छार्नितं प्रकल्पयेत् ॥१३५
शतार्द्धं रविमुद्दिश्य शान्त्यर्थं होममाचरेत् । चरुपाकविधानेन यवैस्तिलसुस्पर्षिषा ॥१३६
पुस्तके यज्ञसूत्रं च असत्पात्रे चरौ तु वा । शकवस्त्रप्रदध्ये च सूर्यस्याद्भुतदर्शनम् ॥१३७
हयमारं त्रिमध्वतं जुहुयादिष्टसिद्धये । देवपुस्तकरत्नानि मणिकाञ्चनमेव च ॥१३८
लोहितस्याद्भुतं विद्यात्सहस्रं च दिशोधनम् । देवागारे तथा गोधा शङ्खिनी प्रविशेत्त्वचित् ॥१३९

क्योंकि केतु के उद्देश्य से दान, हवन एवं स्त्रीर प्रदान की क्रियाओं द्वारा उसे इस भाँति शान्त कर दिया जाता है, जिससे पुनः कोई प्रतिक्रिया होने की संभावना नहीं रहती है । दक्षिण दिशा में जो अपनी छाया का स्वयं दर्शन करते हैं अथवा उसके साथ-साथ चरण पादुका के इस भाँति के दर्शन हों, जिसमें दश शिर की कल्पना-सी प्रतीत होती हो, और उस प्रकार छिन्न होकर मस्तक से कूर्च हो जाये तो शुभ समझना चाहिए, अन्यथा सप्ताह के भीतर ही उसका शीघ्र नाश होता है, इसमें संदेह नहीं । १२४-१३०। मैथुन विहित उँच-नीच अशुभ कृत्यों को बता रहा हूँ ! जैसे कौवे, बिल्ली, शूक और विशेष करके बूतर के मैथुन दर्शन रूपी अशुभ कर्म को राहु द्वारा उत्पन्न होना बताया गया है । शनिवार के दिन शनि के उद्देश्य से दश सहस्र की आहुति एवं मदार के पुष्ट-समेत स्त्रीर की सौ आहुति प्रदान करनी चाहिए, यदि उसी स्थान पर पुनः शनि द्वारा उत्पन्न अशुभ-सूचक दुर्निमित्त के दर्शन हो जायें, तो अटुआइस आहुति स्त्रीर की पुनः प्रदान करने से निश्चित शान्ति प्राप्त होती है । बाँये भाग में दक्षिण भाग के क्रम से शुजा, चरण, तथा नेत्र का स्फुरण, मृत्यु-सूचक होता है, इस दुर्निमित्तको सोम द्वारा उत्पन्न समझना चाहिए । विशेषकर कृष्ण पक्ष में (स्त्री-पुरुष के) क्रमशः दाहिने और बाँये उपरोक्त अंग के स्फुरण अनिष्ट-सूचक होते हैं, अतः उसकी शान्तिं क्रिया के अनुष्ठान शीघ्र सुसम्पन्न करना चाहिए । १३१-१३५। सूर्य के उद्देश्य से शान्ति के लिए पाक-विधान द्वारा बनायी गयी स्त्रीर, जवा, तिल, और धी की शतार्द्ध (पचास) आहुति प्रदान करना बताया गया है । १३६। पुस्तक पर यज्ञसूत्र और असत्पात्र में स्त्रीर के रखने एवं शक्र वस्त्र के जलने से होने वाले अशुभ को सूर्य द्वारा उत्पन्न जानना चाहिए, इसके शान्त्यर्थं त्रिमधु (शहद, शक्कर, एवं धी में डुबाकर कनेर की आहुति अपनी अभीष्टसिद्धि के लिए सुसम्पन्न करके देव पुस्तक, रत्न, मणि, और सुवर्ण की दक्षिणा ब्राह्मण को अर्पित करनी चाहिए । १३७-१३८। इसी भाँति लोहित (मङ्गल) जनित दुर्निमित में सहस्र आहुति प्रदान करना बताया गया है । देवालय में गोह, शंखिनी, द्वोण कौवे, बकुला, दो उलूक,

द्वोणकाको बक्ष्मीव उलूकद्वयमेव च ! रक्तकण्ठः कपोतश्च व्याघ्र एणश्च वा विशेष् ॥१४०
यस्य देवगृहं पश्येत्स्य तस्यायुतं हुनेत् । न चात्र गृहवैकृत्यं हसनं यदि दृश्यते ॥

सम्पत्तिसूचकं गेहे मरणं दुःखदर्शनम् ॥१४१

क्रन्दने हतराज्येन गजाश्वदाहने कवचित् । स्फूर्यमुद्दिश्य जुहुयादयुतं सर्वसिद्धये ॥१४२

प्रसन्नत्वात्कम्पने हानिः स्वेदै जाते विषद्भवेत् । क्षीरत्वावे च रुधिरे तत्र राज्ये महद्वयम् ॥१४३

गोच्छागौ वाघ गोमायुर्गृहोपरि प्रनृत्यति । यदा रौति दिवा केरस्तदा नाशो भवेद्ध्रुवम् ॥१४४

भजन्तुकावय व्याघ्रो यथाशक्ति च धाराति । ईशाने महिषस्तद्वत्तदा देशो च विष्वदः ॥१४५

राहोरद्भुतमुद्दिश्य सह्यं जुहुयाच्छ्वरम् । वृक्षाद्भुतं यदा पश्येत्तत्र तस्यां परित्यजेत् ॥

यद्गृहेषु हुतं याति देशविष्वदवमादिशेत् ॥१४६

देशो वा नगरे गामे आरण्यपशुबन्धनम् । सर्वे वा दिपरीतं च मांसपिण्डमथायि वा ॥

तद्गृहे मरणं चैव देशविष्वदवमादिशेत् ॥१४७

द्विवाद्भुतेषुतं रात्रौ द्विगुणं च भवेद्ध्रुवम् । द्विगुणं चापि सन्ध्यायामर्धरात्रे चतुर्णुशम् ॥१४८

अकाले तत्र भरणमकाले गृहिणीमृतिः । सौराद्भुतं विजानीयादशुभे वा विशोधनम् ॥१४९

एकैकस्यायुतं यत्र कुर्यात्त्रैव होमयेत् । साङ्गोपाङ्गेन सहितमष्टावष्टौ हुतं च वा ॥१५०

अधिप्रत्यधिसहितं गृहपक्षेऽपि सत्तमाः । तन्मानेन हुतं विप्रा कुर्यात्त्रैव मूषणम् ॥१५१

(रक्त कण्ठ, क्षबूतर, व्याघ्र, मृग के प्रवेश होने पर उसके शान्त्यर्थी दश सहस्र की आहुति प्रदान करनी चाहिए । इनके हसने (मुख की प्रसन्नता) देखने से गृहसम्बन्धी कोई क्षति नहीं होती है, प्रत्युत सम्पत्ति की प्राप्ति होती है, इसी प्रकार उनकी दुःखी अवस्था का दर्शन मरण सूचक बताया गया है । १३९-१४१। हाथी और घोड़े के करुण क्रन्दन से राज्य-विनाश होता है, अतः सर्वार्थ सिद्धि के लिए सूर्य के उद्देश्य से दश सहस्र की आहुति-प्रदान करनी चाहिए । प्रमाद-वश उनमें कम्पन होने से हानि, पसीने के निकलने से विपत्ति, एवं क्षीर या रुधिर के निकलने से राज्य में भीषण भय उपस्थित होता है । गृह के ऊपर गौ, बकरी, गोदड़ के नृत्य हों, एवं दिन में गोदड़, (स्यार) का रुदन हो, तो निश्चित विनाश ईशान कोण में कुत्ते, स्यार, वाघ और भैंसे के यथा शक्ति दौड़ने से उस देश में महान् उपद्रव होता है । अतः इसकी शान्ति के लिए राहु के उद्देश्य से खीर की सहस्र आहुति-प्रदान करनी चाहिए । वृक्ष जनित दुर्निमित्त दर्शन से उसी स्थान पर आहुति-प्रदान करना बताया गया है, अन्यथा, गृह में आकर आहुति-प्रदान करने से देश में उपद्रव होना अटल ही रहेगा । किसी प्रदेश, नगर, गाँव में जङ्गली पशु का बाँधना, अथवा सर्प का बाँधना, एवं मांस के पिण्ड का दर्शन करने से उस घर में मरण और देश में उपद्रव होना निश्चित रहता है । दिन में अशुभ दर्शन से दशसहस्र की रात्रि में उससे दुगुने अथवा संध्या समय में दुगुने और आधी रात के समय चौगुने संस्था की आहुति होनी चाहिए । सूर्य द्वारा उत्पन्न अशुभ-दर्शन से अकाल में गृहपति एवं गृहणी की मृत्यु हो जाती है, इसलिए उस अशुभ की शान्ति करना आवश्यक होता है । १४२-१४९। इस प्रकार एक एक अशुभ में दश सहस्र की आहुति तथा सांगोपाङ्ग उस उस अशुभ जनक देव के लिए आठ-आठ और अधिक आहुति प्रदान करना बताया गया है । सत्तमवृन्द ! इसी भाँति गृह निर्माण विषय में भी अधिदेव एवं प्रत्यधि

एकैकस्याद्वुतं विप्रा अष्टावच्छौ हुतं च वा । अधिप्रत्यधिदेवानां यात्रान्याश्चाङ्गदेवताः ॥१५२
मानान्तं च ददेत्पूर्णा दत्त्वा पूर्णा न होमयेत् । वह्ये प्रहमले मानं देन मानेन सिध्यति ॥१५३
अमानकरणे दोषस्तस्मान्मानं न हापयेत् । पद्मिक्तवत्वारिंशदाद्येत्रुर्धा विभजेन्नरः ॥१५४
अनिष्टाय ततो दद्याच्चरहोमं विभागतः । अधिप्रत्यधिदेवानामष्टावच्छौ हृदाहृतम् ॥१५५
अथम्बकादिषु मन्त्रेषु होमत्रयमुदाहृतम् । धनञ्जये तथा दद्याच्चरहोमं विभागतः ॥१५६
आदित्यायाष्टावच्छादधिकं कल्पयेत्सुधीः । रातहोमे तु सर्वद्र दशाङ्गं कल्पयेन्नरः ॥१५७
अनिष्टाय युगाङ्गं तु प्रहेभ्यो हृद्गनाय च । अधिप्रत्यधिदेवानां तथैवाङ्गं प्रकल्पयेत् ॥१५८
द्वौ तु दद्यात्यम्बकाय तथा धनञ्जयाय च । तत्र होमो नायकाय सर्वज्ञेद विचक्षणः ॥१५९
सहस्रे चैव विशाङ्गे अनिष्टाय दशांशकम् । पञ्चांशेन ग्रहाणां च पञ्चांशेन यवानपि ॥१६०
तत्रानिष्टे पञ्चशतं तस्यार्थं ग्रहवाग्यतः । एकत्रिंशद्वैन्मानम् अन्येषां तु चतुर्दशा ॥१६१
ग्रहाधिकं होमयुगं तत्र भागे प्रकलायेत् । अधातये च तिथ्यङ्गं पञ्चाङ्गं यस्य चाद्यभुत् ॥१६२
प्रहेभ्यश्चैव पञ्चाङ्गं तत्र दाङ्गं परानपि । एकैकाङ्गे भवेन्मानं षट्शतं षष्ठिरेव च ॥१६३
अधिकं च भवेत्यष्टिर्दशमं भागशेषतः । अनिष्टांशे त्रिसहस्रं त्रिशतं त्रिंशतं तथा ॥१६४

देव के लिए उसी मान से हवन करना उसकी शोभा वृद्धि करना है । विप्रवृत्त ! उन एक-एक अधिदेव, प्रत्यधि देव, और उसके अंग देवता के उद्देश्य से आठ-आठ आहुति जो माप दण्ड के अनुसार निश्चित है, प्रदान करना चाहिए । इसके उपरांत पूर्णाहुति प्रदान कर पुनः पूर्णाहुति के पश्चात् हवन के करने का विधान है । इसीलिए मैं गृह-यज्ञ में उस माप-दण्ड को बता रहा हूँ, जिसके उपयोग से उसकी सिद्धि प्राप्त होती है, और मान हीन उसके सुसम्पन्न करने से दोष भागी होना बताया गया है, अतः मान का त्याग कभी न करना चाहिए । मनुष्य को सर्वप्रथम उस के चार भाग करके जिसमें प्रत्येक भाग दश-दश की संख्या का रहता है, पश्चात् विभाग के क्रम से उस अनिष्ट के निवारणार्थ खीर की आहुति प्रदान करना श्रेयस्कर होता है—अधि, प्रत्यधि देवों के उद्देश्य से आठ-आठ आहुति अथम्बकादि मंत्रों के प्रयोग में तीन हवन, इसी भाँति धनंजय के लिए विभागानुसार चर (खीर) की आहुति-प्रदान पूर्वक सूर्य के लिए आठ आठ अधिक आहुति विद्वानों को प्रदान करनी चाहिए, तथा शत संख्या की आहुति में उनके दशांश की कल्पना सर्वत्र करनी चाहिए । १५०-१५१। अनिष्ट-वारण के लिए ग्रहों के लिए युगांग की भाँति अधिप्रत्याधि देवों के अंगों की कल्पना आवश्यक होती है, उसी प्रकार दुद्धिमान् को अथम्बक तथा धनंजय के दो-दो अंगों की कल्पना पूर्वक उस नायक के लिए सर्वत्र हवन विधान सुसम्पन्न करना बताया गया है । १५८-१५९। सहस्र की आहुति में जब कि बीस अंगों की कल्पना की जाती है अनिष्ट के लिए दशांश, ग्रहों के लिए पाँच अंश की आहुति होती है, उसमें पाँच भाग जवा रहता है । यदि वहाँ पुनः अनिष्ट दर्शन हो, तो पाँच सौ ग्रहों के लिए ढाई सौ, जिसमें इकतीस का मान बताया गया है, अन्य के लिए चौदह आहुति-प्रदान की जाती है । ग्रहों से अधिक के लिए दो हवन किया जाता है, जिसमें तिथि को पाँच भाग की कल्पना की जाती है । ग्रहों के लिए पाँच और दूसरों के लिए केवल अंगमात्र की कल्पना की जाती है, जिसके एक-एक अंग के मान छः सौ साठ बताये गये हैं । १६०-१६३। अधिक से अधिक इन साठ, या दशवें भाग की कल्पना पूर्वक अनिष्ट के लिए तीन सहस्र, तीन सौ तीस, ग्रहों के लिए चार सौ या सात सौ से भी अधिक एवं

चतुःशतं ग्रहाणां च तथा सप्तशताधिकम् । उपग्रहेभ्यो दद्याच्च पञ्चाशीत्यधिकं शतम् ॥१६५
 तिथ्यङ्गभागः शेषेण ग्रहे सप्तशताधिकम् । एकैकं तु ग्रहस्यैवमादित्याय युगं भवेत् ॥१६६
 ग्रहाङ्गे यः स्थितो भागसे युगलं ज्ञागेषातः । अ्यम्बकाय च तद्व्यात्तथा धनञ्जयाय च ॥१६७
 शान्तिकै पौष्टिकै काम्यै यदीच्छेत्सुखमात्मनः । ग्रहाणां चायुतं होमं अ्यहसाध्येन होमयेत् ॥१६८
 अ्यहसाध्ये विधानं दत्पुरुर्वोदीरितं द्विजाः । इदानीं प्रक्रमेषै यो भागः स निगद्यते ॥१६९
 पूर्वस्मिन्दिवसेऽनिष्टे सहस्रं चिशतोत्तरम् । इतरेषां ग्रहाणां च प्रत्येकं तु शतं शतम् ॥१७०
 अधिप्रत्यधिदेवानां पञ्चाशाद्वोम् उच्यते । प्रथमेऽह्नि प्रदद्याच्च निलित्वः विसहस्रकम् ॥१७१
 द्वितीयदिवसेऽनिष्टे द्विशहस्रुबाहृतम् । प्रतिग्रहेभ्यस्त्रिवशं दद्यावष्टशताधिकम् ॥१७२
 उपग्रहेभ्यो दद्याच्च षोडशेभ्यो यथाकम्म । एकाशीर्ति द्वौ यत्तादशीतिं चान्त्ययोर्द्योः ॥१७३
 एवं द्वितीयदिवसे निलित्वा षट्सहस्रकम् । अनिष्टतय त्रिशतं तु द्वितीयदिवसे मतम् ॥१७४
 तत्प्रत्येकं ग्रहाणां च द्वाचत्वारिंशतुच्यते । अधिप्रत्यधिदेवानां प्रत्येकं पञ्चवृत्तिशकम् ॥१७५
 द्वितीयदिवसे दद्यान्निलित्वैकसहस्रकम् । आदित्याय युगं दद्यादेकं तु अ्यम्बकाय च ॥१७६
 धनञ्जयाय होमैकमेकं चायुतमुच्यते । तदर्धकं ग्रहेभ्यश्च इतरेभ्यस्तदर्थकम् ॥१७७

उपग्रहों के लिए एक सौ पचासी भाग की कल्पना की जाती है । शेष पन्द्रहवाँ भाग जो ग्रहों के लिए समस्त सात सौ से भी अधिक बताया गया है, ग्रहों के लिए एक-एक भाग और आदित्य के लिए चार भाग की कल्पना की जाती है । ग्रहाणों के लिए स्थित शेष दो भाग अ्यम्बक और धनंजय के लिए अपिंति करना चाहिए । १६४-१६७। शान्ति कर्म, पौष्टिक एवं काम्य कर्मों में अपने ऐच्छिक सुख के लिए ग्रहों के तीन दिन वाले अनुष्ठान कर्म दशसहस्र की आहुति-प्रदान करनी चाहिए । द्विजवृन्द ! तीन दिन में साध्य होने वाले उस अनुष्ठान विधान को पहले ही बता चुका हूँ, इस समय क्रमानुसार प्राप्त शेष भाग का वर्णन कर रहा हूँ । पहले दिन में अनिष्ट होने पर तेरह सौ, अन्य ग्रहों, के लिए सौ-सौ और अधिप्रत्यधि देवों के लिए पचास संख्या की आहुति इस प्रकार पहले दिन में सब मिलाकर तीन सहस्र की आहुति-प्रदान की जाती है । दूसरे दिन के अनिष्ट होने में दो सहस्र की आहुति दी जाती है, जिसमें प्रत्येक ग्रह के लिए तीन सौ आठ, सोलह उपग्रहों के लिए क्रमशः इक्यासी और अन्त के दोनों के लिए अस्ती, इस प्रकार दूसरे दिन में कुल मिलाकर छः सहस्र की आहुति प्रदान की जाती है । अनिष्ट-शान्ति के लिए द्वितीय दिन तीन सौ आहुति-प्रदान करना चाहिए । ऐसा शास्त्रकारों का मत है । उसके बाद प्रत्येक ग्रहों के लिए बयानिस आहुतियाँ कही गयी हैं । अधि और प्रत्यधि देवताओं को (प्रधान देवता के बाद आवाहित देवताओं को अधिप्रत्यधि देवता कहा जाता है) प्रत्येक को ३५-३५ आहुतियाँ कही गयी हैं । अर्थात् प्रत्येक को ३५ आहुति देना चाहिए । १६८-१७५। तीसरे दिन सम्मिलित रूप में १००० आहुतियाँ देना चाहिए । आदित्य के लिए २००० एवं अ्यम्बक (शिव) के लिए १००० आहुतियाँ देना चाहिए । आदित्य के लिए २००० एवं अ्यम्बक (शिव) के लिए १००० आहुतियाँ देना चाहिए । १७६। धनञ्जय के लिए पाँच सौ तथा अन्यों के लिए ढाई सौ आहुति देनी चाहिए । १७७।

ग्रहाणं त्रिसहस्रं तु पञ्चवानां च सहस्रकम् । त्रिसहस्रं भागशेषमादित्याय सहस्रकम् ॥ १७८
अस्मद्काय तथादद्यात्तथा धनञ्जयाय च । षट्पादाधिकषट्षट्कसहस्रपरिसङ्ख्यया ॥
नदम्ब्लोकशतोदभुतं सम्पूर्णं स्याद्विष्यकम् ॥ १७९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे मध्यमर्पणे तृतीयभागे ग्रहोपद्रवोत्पातशान्तिवर्णनं
नाम विंशोऽध्यायः । २०

ग्रहों के लिए तीन हजार तथा चार देव के लिए एक हजार तथा आदित्य के लिए पूर्वोक्त में तीन हजार से भाग देने पर शेष एक हजार आहुति देनी चाहिए । अस्मद्क के लिए एक हजार धनञ्जय के लिए भी एक हजार आहुति-प्रदान करनी चाहिए । १७८-१७९

श्री भविष्यमहापुराण में मध्यम-र्पण के तृतीयभाग में ग्रहों के उपद्रव-उत्पात-शान्ति वर्णन
नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त । २०।

भविष्यपुराणम्—प्रतिसर्गपर्व

अथ प्रतिसर्गपर्वणि

प्रथमोऽध्यायः

कृतयुगभूपत्यानम्

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं^१ ततो ज्यमुदीरयेत् ॥

शौनक उवाच

भविष्याल्ये महाकल्ये ब्रह्मायुषि परार्द्धे । प्रथमेऽद्वेत्ति दृतीये प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ॥१
अष्टार्द्विशो सत्ययुगे के राजानोऽभवन्मुने । तेषां राज्यस्य वर्षणि तन्मै वद विचक्षण ॥२

सूत उवाच

कल्पाल्ये श्वेतवाराहे ब्रह्माव्यस्य दिनत्रये । प्राप्ते सप्तमुहूर्ते च मनुर्वैवस्वतोऽभवत् ॥३
स तप्त्वा सरयूतीरे तपो दिव्यं शतं समाः । तच्छक्कतोऽभवत्पुत्र इक्ष्वाकुः स महीपतिः ॥४
ब्रह्मणो वरदानेन दिव्यं यानं स आप्तदान् । नारायणं पूजयित्वा हरौ राज्यं निवेद्य च ॥५
अद्वित्रिशच्च सहस्राणामब्दं राज्यं तदाङ्करोत् । तस्माज्जातो विकुक्षिश्च शतहीनं^२ तदब्दकम् ॥६
राज्यं कृत्वा दिवं यातस्तस्माज्जातो रिपुञ्जयः । शतहीनं कृतं राज्यं तत्कुत्स्थसुतः स्मृतः ॥७

अध्याय १

सत्ययुग के राजाओं का वर्णन

नारायण, नरोत्तम, नर और देवी सरस्वती को (प्रारम्भ में) नमस्कार करके तब जय (महाभारत एवं पुराणादि) का उच्चारण करना चाहिए ।

शौनक ने कहा—विचक्षण ! भविष्य महाकल्य के, जो ब्रह्मा का (आयु सम्बन्धी) उत्तरार्द्ध काल कहा जाता है, उपा काल एवं अद्वितीयवं सत्ययुग में, जिसमें पहले वर्ष के तीसरे दिन वैवस्वत नामक मनु उत्पन्न होते हैं, कौन-कौन राजा हुए हैं और उनके राज्य का काल मुझे बताने की कृपा कीजिये । १-२

सूत जी बोले—श्वेतवाराह नामक कल्य में ब्रह्मा के पहले वर्ष के तीसरे दिन के सातवें मुहूर्त में वैवस्वत नामक मनु का जन्म हुआ है । उन्होंने सरयू नदी के तट पर दिव्य सौ वर्ष तक घोर तप करने के उपरान्त (नाक से) छीकने के द्वारा इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न किया था । ब्रह्मा के वरदान से उन्हें एक दिव्य (तेजोमय) यान (सवारी) भी प्राप्त हुआ था । भगवान् विष्णु को राज्य का निवेदन करके नारायण की पूजा-ध्यान में अपने जीवन का सगय व्यतीत करते हुए उन्होंने छत्तीस सहस्र वर्ष तक राज्य-भार संभाला था । गश्चात् उनके विकुक्षित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिनका राज्य-काल उनसे सौ वर्ष न्यून था । राज्यभार संभालते हुए विकुक्षित के स्वर्गीय होने के उपरान्त रिपुञ्जय का जन्म हुआ, उसका भी राज्यकाल उनसे (अपने पिता से) सौ वर्ष कम था । उनके कुत्स्थ नामक पुत्र हुआ, ऐसा कहा गया है ।

१. चैव । २. 'शतहीनम्, सहस्रहीनम्, इत्यनेन प्रतिस्थानतः 'पद्मिंशच्च सहस्राणाम्' इत्यारम्यानुक्रमेण हीनत्वं ज्ञेयम् ।

शतहीनं कृतं राज्यं ततोऽनेनांस आत्मजः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो नृपः पृथुः ॥८
 शतहीनं कृतं राज्यं विष्वगश्चश्च तत्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादाद्रो नृपोऽभवत् ॥९
 शतहीनं कृतं राज्यं भद्राश्वस्तसुतोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं युवनाश्वस्तु तत्सुतः ॥१०
 शतहीनं कृतं राज्यं श्रवस्थस्तसुतोऽभवत् । सत्यपादश्च सञ्जातः प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥११
 उदयादस्तपर्यन्तं तर्णपैर्भूमिमण्डलम् । भुक्तं नीतिपरैर्देवैः श्रवस्थेन तु भूतले ॥
 शतहीनं कृतं राज्यं बृहदश्वस्ततोऽभवत् ॥१२
 शतहीनं कृतं राज्यं तरणाल्कुदल्याश्वकः । शतहीनं कृतं राज्यं दृढाश्वस्तसुतोऽभवत् ॥१३
 सहस्रहीनं राज्यं तद्रवणाश्वस्तु निकुंभकः । सहस्रहीनं राज्यं तत्सङ्कुटाश्वस्तु तत्सुतः ॥१४
 सहस्रहीनं राज्यं तत्समाज्जातः प्रसेनजित् । सहस्रहीनं राज्यं तद्रवणाश्वस्तु तत्सुतः ॥१५
 सहस्रहीनं राज्यं तन्मान्धाता तत्सुतोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं पुरुकुत्सस्तु तत्सुतः ॥१६
 शतहीनं कृतं राज्यं त्रिशदश्वस्तु तत्सुतः । रथे यस्य त्मृता वाहा वार्जिनर्स्त्रिशतो वरा: ॥१७
 अनरण्यस्ततो जातो ह्यष्टार्विशत्सहस्रकम् । राज्यं द्वितीयचरणे स्मृतं सत्ययुगस्य वै ॥१८
 पृष्ठदश्वस्ततो जातो राज्यं षष्ठसहस्रकम् । तदब्दं भूतले कृत्वा पितॄलोकमुपाययौ ॥१९
 हर्यश्वस्तु ततो जातो विष्णुभक्तकुले नृपः । सहस्रहीनं राज्यं तत्सुतो वसुमांस्मृतः ॥२०
 सहस्रहीनं राज्यं तन्त्रिधन्वा तनयस्ततः । सहस्रहीनं राज्यं तत्सेन राजा च सत्कृतम् ॥२१

उसने भी उनसे सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया । पश्चात् उसके अंस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसके भी (अपने पिता से) सौ वर्ष कम राज्य-काल के उपरांत पृथु नामक राजा उत्पन्न हुआ । इस प्रकार पृथु के विष्वगश्व, विष्वगश्वके राजा आद्व, आद्व के भद्राश्व, भद्राश्व के युवनाश्व, युवनाश्व के श्रवस्थ नामक पुत्र हुआ, जो इस भरत-भूमि में सत्य का प्रथमपाद चरण, बताया गया है । इन सभी राजाओं का राज्य-काल उत्तरोत्तर सौ-सौ वर्ष कम है तथा सूर्य के उदय होने वाले प्रदेश से लेकर उनके अस्त होने वाले प्रदेश तक के मध्यवर्ती इस भूमि मंडल का उपभोग इन राजाओं ने अत्यन्त नीति-नियुणता के साथ किया था । श्रवस्थ के बृहदश्व, उनके कुवलयाश्व और कुवलयाश्व को पुत्र दृढाश्व हुआ । ३-१३। इनका भी राज्य-काल उत्तरोत्तर सौ वर्ष कम बताया गया है । पुनः उनके निकुंभक, निकुंभ के संकटाश्व, संकटाश्व के प्रसेनजित, प्रसेनजित के रवणाश्व, रवणाश्व के मांधाता नामक पुत्र हुआ । इन लोगों का राज्य-काल उत्तरोत्तर सहस्र वर्ष कम बताया गया है । मांधाता के पुरुकुत्स तथा उनके त्रिशदश्व नामक पुत्र हुए । इनका भी राज्य-काल सौ वर्ष उत्तरोत्तर न्यून बताया गया है । इनके रथ में तीस घोड़े जोते जाते थे इसीलिए इनका त्रिशदश्व नामकरण हुआ था । इनका अनारण्य नामक पुत्र हुआ, जिसने सत्य युग के द्वितीय चरण में अट्टाईस सहस्र वर्ष समय तक इस वसुधरा का उपभोग किया था । उनके पृष्ठदश्व नामक पुत्र हुआ, जिसने छः सहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत पितॄलोक की प्राप्ति की थी । इस विष्णुभक्त के कुल में उनके हर्यश्व, हर्यश्व के वसुमान् और वसुमान् के त्रिधन्वा नामक पुत्र की उत्पत्ति बतायी गई । इन सभी राजाओं का राज्य-काल उत्तरोत्तर सहस्र वर्ष कम बताया गया है । इस प्रकार भारत के इस अवान्तर प्रदेश में सत्य

सत्यपादः समाप्तोऽयं द्वितीयो भारतेऽन्तरे । त्रिधन्वनश्च नूपतेस्त्रपारण्यस्तु वै मुतः ॥२२
 सहस्रहीनं राज्यं तत्कृत्वा स्वर्गमुपाययौ । तस्माज्जातस्त्रिशङ्कुश्च राज्यं वर्षसहस्रकम् ॥२३
 छद्यना हीनतां जातो हरिश्चन्द्रस्तु तत्सुतः । राज्यं दिग्गत्तस्त्रैं च रोहितो नाम तत्सुतः ॥२४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हारीतस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चञ्चुभूपश्च तत्सुतः ॥२५
 पितुस्तुल्यं हि राज्यं तद्विजयो नाम तत्सुतः । पितुस्तुल्यं हि राज्यं तद्वूरुकस्तनयरत्नतः ॥२६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सगरस्तनयोऽभवत् । भूपाश्च बाहुसेनान्ता वैष्णवाः चरिकीर्तिताः ॥२७
 राज्यमानं कृतं सम्यग्भूपैर्वैवस्तवादिभिः । मणिस्वर्णसमृद्धिश्च बह्वन्नं बहुदुर्घकम् ॥२८
 पूर्णो धर्मस्तदा भूम्यां मुने सत्ययुगस्य वै । वृत्तीयचरणे मध्ये सगरो नाम भूपतिः ॥२९
 शिवभक्तः सदाचारस्तत्पुत्राः सागराः स्मृताः । त्रिशत्सहस्रवर्षं तद्वाज्यं वै मुनिभिः स्मृतम् ॥३०
 नष्टेषु सागरेष्वैवसमभज्जस आत्मजः । शतहीनं कृतं राज्यमंशुमास्तस्तुतोऽभवत् ॥३१
 शतहीनं कृतं राज्यं दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो भगीरथः ॥३२
 शतहीनं कृतं राज्यं श्रुतसेनस्ततोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं नाभागस्तनयस्ततः ॥३३
 शतहीनं कृतं राज्यमस्त्ररीषस्ततोऽभवत् । शैवाः षट् श्रुतसेनान्ता नाभागो वैष्णवो नूपः ॥३४
 सत्यपादः समाप्तोऽयं वृत्तीयो भारतेऽन्तरे । अम्बरीषेण भूपेण शतहीनं कृतं पदम् ॥३५
 चतुर्थे चरणे तस्य चाष्टादशा सहस्रकम् । अब्दं राज्यं शुभं ज्ञातं कर्मभूम्यां च भारते ॥३६

का दूसराचरण समाप्त हुआ, ऐसा कहा गया है । १४-२१। राजा त्रिधन्वा के त्रपारण्य नामक पुत्र हुआ, जिसने उनसे सहस्र वर्ष कम समय तक राज्य का उपभोग करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की । पुनः उनके (त्रपारण्य के) त्रिशंकु उत्पन्न हुए, जिसने सहस्र वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् त्रिशंकु के हरिश्चन्द्र नामक पुत्र हुआ, जो (विश्वामित्र को अपना सर्वश्वदान दे देने से) लक्ष्मीहीन (दरिद्र) हो गया था । उनका पुत्र रोहित नामक हुआ, जिसने तीस सहस्र वर्ष राज्य किया । रोहित के हारीत, चंचुभूप, चंचुभूप के विजय, विजय के रूपक एवं रूपक के सगर पुत्र हुए । वाहुसेन तक के राजाओं को वैष्णव होना बताया गया है । इन सभी राजाओं ने अपने पिता के समानकाल तक राज्य का उपभोग किया है । वैवस्तव मनु आदि राजाओं के समय में राज्य का मान विस्तृत मणियों तथा मुर्वणों से समृद्ध, अधिक अन्न की उपज और दूध की नदियाँ-सी बहती थीं । मुने ! इस प्रकार इस भूमण्डल में धर्म पूर्णरूप से विद्यमान था । २२-२८। सत्ययुग के तीसरे चरण के मध्यकाल में सगर नामक राजा का जन्म हुआ था । वे परम शिवभक्त एवं सदाचारपरायण थे । उनके अनेक (साठ सहस्र) पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका राज्य-काल मुनियों ने तीस सहस्र वर्ष का बताया है । इन पुत्रों के नष्ट हो जाने पर सगर-पुत्र असमज्जस ने उनसे सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया था । इस प्रकार असमज्जस के अंशुमान्, अंशुमान् के दिलीप, दिलीप के भगीरथ, भगीरथ के श्रुतसेन, श्रुतसेन के नाभाग और नाभाग के अम्बरीष पुत्र हुए । इन राजाओं ने उत्तरोत्तर सौ-सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया था । इनमें श्रुतसेन तक सभी राजा शैव (शिव के उपासक) और राजा नाभाग वैष्णव (विष्णु के उपासक) बताये जाते हैं । इस प्रकार भारत-भूमि में सत्ययुग के तीसरे चरण का समाप्त होना कहा गया है । २९-३५। सत्ययुग के चौथे चरण में भारत की इस कर्मक्षेत्रभूमि में राजा अम्बरीष का अद्वारह सहस्र वर्ष तक राज्य-भार का निभाना

एकोन्त्रिशद्वर्षाणि राज्यं तत्त्वशतानि च । शतहीनं कृतं राज्यं सिन्धुदीपोऽम्बरीजजः ॥३७
 शतहीनं कृतं राज्यमयुताश्वस्ततोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यमृतुपर्णस्तु तत्सुतः ॥३८
 शतहीनं कृतं राज्यं सर्वकामो नृपस्ततः । शतहीनं कृतं राज्यं नृपः कल्माषपादकः ॥३९
 शतहीनं कृतं राज्यं सुदासस्तनयोऽभवत् । तस्मादशमकश्चैव मदयन्त्या वशिष्ठजः ॥४०
 शतहीनं कृतं राज्यं हरिवर्मा ततोऽभवत् । सप्त भूपाः सुदासान्ता वैष्णवाः परिकीर्तिताः ॥४१
 गुरुशास्त्रात् सौदासो राज्याङ्गं गुरवेऽर्पयत् । गोकणेतिङ्गः भक्तश्च शैवः समय उच्यते ॥४२
 हरिवर्मा शमकजो दैश्यवत्साधुपूजकः । उन्नत्रिशतसहस्राणि तथा स्पदशतानि वै ॥४३
 हरिवर्माऽकरोद्ग्राज्यं तस्माद्वशरथोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्विलीबवयस्सुतः ॥४४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भूपेः दिश्वासहस्रस्तः । राज्यं दशसहस्रं तत्त्विजः प्राकृतो नृपः ॥४५
 तदधन्मप्रतापेन हृषावृष्टिस्तदाऽभवत् । शतवर्षमनावृष्टिसर्वराज्यं व्यनाशयत् ॥४६
 यज्ञं कृत्वा वशिष्ठस्तु राजीवचनतत्परः । यज्ञात्खटुंगं उत्पन्नः खटुंगं शस्त्रमुद्धहन् ॥४७
 इन्द्रसाहृष्ट्यम्-मद्राज्यं त्रिशतसहस्रकम् । कृत्वा तत्र वरं लब्ध्वा देवेभ्यो मुक्तिं गतः ॥४८
 खटुंगादीर्घबाहुश्च राज्यं विशत्सहस्रकम् । तस्मात्सुदर्शनो जातो देवीपूजनतत्परः ॥४९
 वैष्णवा दाशरथ्यं तास्त्रयो विश्वातसद्वलाः । खटुंगो दीर्घबाहुश्च वैष्णवौ परिकीर्तितौ ॥५०
 सुदर्शनो महाप्राज्ञः काशीराजसुतां नृपः । उद्धृष्टा भूपतीञ्जित्वा भूपसेवाप्रसादतः ॥५१

बहुत सुखदायक बताया जाता है । राजा अम्बरीश के सिन्धुदीप नामक पुत्र हुए, जिन्होंने उनसे उन्नीस, तीस एवं सौ वर्ष कम राज्य किया था । सिन्धुदीप के अयुताश्व, अयुताश्व के क्रृतुपर्ण, क्रृतुपर्ण के सर्वकाम, सर्वकाम के कल्मषपाद, कल्मषपाद के सौदास और सौदास की स्त्री मदयन्ती में वशिष्ठ द्वारा राजा अश्मक तथा इनके हरिवर्मा नामक पुत्र हुए । इन लोगों का भी अपने से उत्तरोत्तर क्रमः: राज्य-काल सौ-सौ वर्ष कम बताया गया है । इनके क्रमबद्ध राजा सुदास तक, जो गणना में सात राजा होते हैं, विष्णु के उपासक कहे गये हैं । सुदास के पुत्र राजा अश्मक ने अपने गुरु वशिष्ठ द्वारा प्राप्त शाप के कारण अपना राज्य उहें अर्पित कर दिया था । राजा अश्मक शिव के गोकर्ण नामक लिंग के परमभक्त थे । अतः उन्हें महान् शैव होना कहा गया है । उनके पुत्र हरिवर्मा भी वैश्यों की भाँति अत्यन्त साधु-सेवी थे । उन्नीस सहस्र सात सौ वर्ष तक उनके राज्य-भार निभाने के उपरान्त दशरथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । इस राजा ने अपने पिता के समान काल तक राज्यभार का वहन किया है । पश्चात् उनके दिल्लीवय नामक पुत्र हुआ और उनके राजा विश्वासह हुए । यद्यपि इस राजा ने दश सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया, किन्तु अपनी मूर्खता एवं उद्धण्डता के कारण कभी किसी यज्ञ का अनुष्ठान न कर सका । इस घोर अधर्म के कारण सौ वर्ष तक जल-वृष्टि ही नहीं हुई, जिसके परिणाम स्वरूप समस्त राज्य का नाश हो गया ॥३६-४६ । पश्चात् रानी के अनुनय-विनय करने पर वशिष्ठजी ने यज्ञ-द्वारा खटुंग नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसने अपने खटुंग अस्त्र धारण करके इन्द्र की सहायता से तीस सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया, तदुपरात देवताओं द्वारा वरदान प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की । खटुंग के दीर्घबाहु नामक पुत्र हुए, जिन्होंने बीस सहस्र वर्ष राज्य किया है । दीर्घबाहु के सुदर्शन नामक पुत्र हुए, जो देवी के परम उपासक थे । हरिवर्मा, दशरथ एवं दिलीप नामक ये तीनों बलशाली राजा परम विश्वात वैष्णव हो चुके हैं । राजा खटुंग और दीर्घबाहु भी विष्णु के उपासक थे । महाबुद्धिमान् राजा सुदर्शन ने देवी जी की अनुकम्पावश काशीराज की कन्या के साथ पाणिग्रहण करके

राज्यं भरतखण्डान्तमदधद्वर्त्तते नृपः । वर्षपञ्चसहस्राणि राज्यं चक्रे स भूरतिः ॥५२
 स्वप्नमध्ये वचः प्रोक्तं महाकाल्या नृपाय वै । वत्स त्वं प्रिययः सार्दुं वशिष्ठादिभिरन्वितः ॥५३
 हिमालयं गिरिर् प्राप्य वातं क्रुरु महामते । नहावायुप्रभावेन क्षयो भरतखण्डके ॥५४
 रत्नाकरः पश्चिमोऽबिधस्तस्य द्वीपाः क्षयं गताः । महोदधिः पूर्वतोऽबिधस्तस्य द्वीपा क्षयं गताः ॥५५
 वाडवोऽबिधर्दक्षिणे च तस्य द्वीपाः क्षयं गताः । हिनाबिधरुत्तरे तस्य सग्राहैः ग्वनितो हि सः ॥५६
 ये द्वीपास्तु मुखिष्यातास्त्वेऽपि सर्वे लयं गताः । भारतो वर्ष एवासौ वत्सरे सप्तमेऽहनि ॥५७
 सजीवः प्रलयं यायातस्त्वात्वं जीवितो भव । तथेति मत्वा स नृपः पर्वतं वै हिमालयम् ॥५८
 प्राप्तवान्मुख्यमूर्पैश्च मुख्यवैश्यैऽद्विजैः सह । पञ्चवर्षप्रमाणेन वायुस्तेजः क्रमाज्जनलम् ॥५९
 शर्करा च महीं प्राप्तस्ततो जीवाः क्षयं गताः । पञ्चवर्षमिति कात्ले जलं जाता इसुन्धरए ॥६०
 शान्ता भूत्वा पुनर्वायुर्जलं सर्वमशोषयत् । दशवर्षान्तरे भूमिः स्थली भूत्वा प्रदृश्यते ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसंगं पर्वतेण चतुर्युगखण्डापरपर्याये
 कृतयुगभूपाख्यानं नाम प्रथमोऽध्यायः । १

युद्धस्थल में राजाओं पर विजय प्राप्त किया, पश्चात् भरतखण्ड का यह समस्त राज्य अपने अधिकार में करके पाँच सहस्र वर्ष तक इसका उपभोग किया तदुपरांत भगवती महाकाली ने स्वप्न में उस राजा से कहा—वत्स ! भहामते ! तू अपनी धर्म-पत्नी एवं वशिष्ठादि महर्षियों समेत हिमालय पर्वत पर जाकर निवास करो, क्योंकि महावायु के प्रभाव से इस भरतखण्ड (भारतवर्ष) का विनाश उपस्थित है क्योंकि पश्चिमीय रत्नाकर समुद्र के द्वीप, पूर्वीय महोदधि के मध्यवर्ती, दक्षिण दिशा में रहने वाले वडवानल वाले समुद्र द्वीप और हिमालय के उत्तरीय समुद्र के द्वीप, जिसे सगर के बंशजों ने खोदकर निरस्त किया था, विनष्ट हो चुके हैं । इस प्रकार सभी स्वातिप्राप्त द्वीपों के समूल विलीन होने के उपरांत यह भारतवर्ष भी इस वर्ष के सातवें दिन इस प्रलय के समुद्री बाढ़ में सभी जीव समेत विलीन हो जायेगा । अतः तुम अपने जीवन की रक्षा करो । भगवती की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर उस राजा ने प्रमुख नृपगण, वैश्यों एवं ब्राह्मणों समेत हिमालय पर अपना आवासस्थान बनाया । पश्चात् पाँच-पाँच वर्ष तक क्रमशः वायु, तेज और जल द्वारा समस्त (पार्थिव) तत्त्व का नाश प्रारम्भ हुआ । उसमें समस्त पृथिवी का शक्कर की भाँति कण हो गया जिसमें सभी जीव नष्ट हो गये, पुनः पाँच वर्ष तक अनवरत इस पृथिवी पर जल वृष्टि होती रही, पश्चात् शांत होकर वायु ने सभी जल को सुखा दिया । इस भाँति दश वर्ष के अनन्तर यह भारतीय भूमि केवल स्थल की भाँति दिखायी देने लगी । ४७-६१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्वते में कृतयुग के राजाओं का
 वर्णन नामकं पहला अध्याय । १

अथ द्वितीयोऽध्यायः

त्रेतायुगभूपाल्यानवर्णनम्

सूत उवाच

वैशाखशुक्लपक्षे तु द्वितीयागुरुवासरे । सुदर्शनो जनैः सार्वदेवोऽध्यामगमत्युनः ॥१
 मायादेवीप्रभावेण पुरं सर्वं मनोहरम् । महावृद्धियुतं प्राप्तं द्वृत्तं सर्वरत्नकम् ॥२
 दशवर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वः सुदर्शनः । प्राप्तवाञ्छाश्वतं लोकं दिलीपसत्सुतोऽभवत् ॥३
 नन्दिनीवरदानेन तत्पुत्रो रघुरूपः । दशवर्षसहस्राणि दिलीपो राज्यसत्कृतः ॥४
 राज्यं कृतं च रघुणा दिलीपान्ते पितुस्समम् । रघुदंशस्ततः ख्यतस्त्रेतायां भृगुनन्दन ॥५
 विप्रस्य वरदानेन तत्पुत्रोऽज इति स्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वरथोऽभवत् ॥६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वाप्ते हरिः स्वयम् । एकादशं सहस्राणि रामराज्यं प्रकीर्तितम् ॥७
 तस्य पुत्रः कुशो नाम राज्यं दशसहस्रकम् । अतिथिर्नाम तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुः समम् ॥८
 निबन्धो नाम तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् । तस्माज्जातो नलो नाम त्रेतायां शक्तिपूजकः ॥९
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्ञाभः सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुण्डरीकः सुतोऽभवत् ॥१०
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्षेमधन्वा तु तत्पुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं द्वारको नाम तत्पुतः ॥११
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो ह्यहीनजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कुरुनाम सुतस्ततः ॥१२

अध्याय २

त्रेतायुग के राजाओं का वर्णन

सूतजी बोले—वैशाखमास में शुक्लपक्ष की द्वितीया वृहस्पति के दिन राजा सुदर्शन ने अपने परिजनों समेत अयोध्यापुरी में पुनः आगमन किया । माया देवी के अनुग्रहवश उस नगर में, जो सब भाँति गनोहर, सर्वसमृद्ध, अधिक अन्न एवं सभी प्रकार के रत्नों से पूर्ण था, दश सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग करके वे ब्रह्मलोक पहुँच गये । सुदर्शन के पुत्र दिलीप हुए और दिलीप के पुत्र रघु हुए, जो नन्दिनी के वरदान से उत्पन्न थे । सम्मानपूर्वक दश सहस्र वर्ष तक राजा दिलीप के राज्य करने के उपरान्त रघु ने भी उनके समान काल तक राज्य का भारवहन किया था । भृगुनन्दन ! त्रेतायुग में उन्होंने अपने नाम का (रघु) वंश चलाना आरम्भ किया था, पश्चात् ब्राह्मण के वरदान द्वारा उनके अज नामक पुत्र हुआ ऐसा कहा गया है । उन्होंने भी अपने पिता के समान काल तक राज्य किया था । अज के दशरथ हुए और दशरथ के स्वयं विष्णु भगवान् ने रामरूप से अवतार लिया था । दशरथ ने अपने पिता के समान काल तक राज्य-भार संभाला था और राम ने ग्यारह सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । उनके पुत्र कुश हुए, जिन्होंने दश सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । कुश के अतिथि, अतिथि के निबंध, निबंध के शक्ति, शक्ति के परम उपासक राजा नल, नल के नाभ, नाभ के पुण्डरीक, पुण्डरीक के क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वा के द्वारक, द्वारक के अहीनज और अहीनज के कुरु हुए जिन्होंने त्रेतायुग में सौ योजन के विस्तृत कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था । इन सभी राजाओं का राज्य-काल उत्तरोत्तर अपने पिता के समान ही बताया गया है । इस

कुरुक्षेत्रं कृतं तेन त्रेतायां शतयोजनम् । त्रेतापादस्समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥१३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पारियात्रः सुतोऽभवत् । पितुरत्नुल्यं कृतं राज्यं दलपालस्मुतस्ततः ॥१४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं छद्मकारी तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुक्थः सुतोऽभवत् ॥१५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वज्रनाभित्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शंखनाभित्ततोऽभवत् ॥१६
 पितुरत्नुल्यं कृतं राज्यं व्युत्थनाभिस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विश्वपालस्ततोऽभवत् ॥१७
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं स्वर्णनाभिस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुष्पसेनस्तु तत्सुतः ॥१८
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ध्रुवसन्धिस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमपवर्मा तु तत्सुतः ॥१९
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शीघ्रगन्ता तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मरुपालस्तु तत्सुतः ॥२०
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रसूवश्रुत उच्यते । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मुसन्धिस्तनयोऽभवत् ॥
 त्रेतापादः समाप्तोऽयं प्रथमो भारतेऽन्तरे ॥२१
 उदयादुदयं यावद्राजा तत्र सुसंधिना । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मामर्बस्तनयस्ततः ॥२२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं महाऽभस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहद्वालः सुतस्ततः ॥२३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहदैशान एव तत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमुरुक्षेपस्ततोऽभवत् ॥२४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सपालस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सव्यूहस्ततोऽभवत् ॥२५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रतिव्योमा ततो नृपः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुतो देवकरस्ततः ॥२६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सहदेवस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहदश्वस्ततो नृपः ॥२७
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भानुरत्नस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुप्रतीकस्ततोऽभवत् ॥२८
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मरुदेवस्मुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनक्षत्रस्ततोऽभवत् ॥२९
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुतः केशीनरस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमन्तरिक्षस्ततो नृपः ॥३०
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुवर्णांगो नृपोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्य पुत्रो ह्यमित्रजित् ॥३१
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बृहद्राजस्ततोऽभवत् ॥३२

प्रकार भारत के अवान्तर प्रदेश में त्रेतायुग का पहला चरण समाप्त हुआ । १-१३। राजा कुरु के पारियात्र, पारियात्र के दलपाल, दलपाल के छद्मकारी, छद्मकारी के उक्थ, उक्थ के वज्रनाभि, वज्रनाभि के शंखनाभि, शंखनाभि के व्युत्थिताभि व्युत्थिताभि के विश्वपाल, विश्वपाल के स्वर्णनाभि, स्वर्णनाभि के पुष्पसेन, पुष्पसेन के ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धि के अपवर्मा, अपवर्मा के शीघ्रगंता, शीघ्रगंता के मरुपाल, मरुपाल के प्रसूवश्रुत एवं प्रसूवश्रुत के सुसंधि नामक पुत्र हुए, जिन्होंने सूर्योदय प्रदेश से आरम्भ कर उसके चारों ओर के समस्त भूमण्डल पर अपना आधिपत्य प्राप्त किया । इन राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक राज्य भार संभाला था, ऐसा कहा गया है । १४-२१। पुनः सुसंधि के मामर्ब, मामर्ब के महाश्व, महाश्व के बृहद्वाल, बृहद्वाल के बृहदैशान, बृहदैशान के ऊर्खेप, ऊर्खेप के वत्सपाल, वत्सपाल के वत्सव्यूह, वत्सव्यूह के प्रतिव्योमा, प्रतिव्योमा के देवकर । देवकर के सहदेव, सहदेव के बृहदश्व, बृहदश्व के भानुरत्न, भानुरत्न के सुप्रतीक, सुप्रतीक के मरुदेव, मरुदेव के सुनक्षत्र,

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धर्मराजस्ततो नृपः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातः कृतञ्जयः ॥३३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो रणञ्जयः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सञ्जयस्तस्तुतः स्मृतः ॥३४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः शाक्यवर्धनः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्रोधदानस्तु तत्पुतः ॥३५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादतुलविक्रमः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातः प्रसेनजित् ॥३६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः शूद्रकः स्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुरथस्तस्तुतेऽभवत् ॥३७
 पितुरर्द्धं कृतं राज्यं सर्वे तु रघुवंशजाः । पञ्चषष्ठिमिति भूगा देवीपूजनतत्पराः ॥३८
 हिंसायज्ञपरा: सर्वे स्वर्गलोकमितो गताः । बुद्धा जाताश्र ये युत्रास्ते सर्वे वर्णसङ्ख्याः ॥३९
 त्रेतात्मीयचरणप्रारम्भेन नवतां गताः । इन्द्रेण प्रेषितो भूमौ चन्द्रमा रोहिणीपतिः ॥४०
 प्रयागनगरे रस्ये भूमिराज्यमचीकरत् । विष्णुभक्तश्चन्द्रमाश्र शिवपूजनतत्परः ॥४१
 मायादेवीप्रसन्नार्थं शतं यज्ञमचीकरत् । अष्टादशसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥४२
 तस्य पुत्रो बुधो नाम मेरुदेवस्य वै सुतः । इलामुद्धाहृ धर्मेण तस्माज्जातः पुरुरवा: ॥४३
 चतुर्दशसहस्राणि भूमिराज्यमचीकरत् । उर्वशीं सोऽपि स्वर्वेश्यां समये नैव भोग्यवान् ॥४४
 आयुर्नामं सुतो जातो धर्मात्मा विष्णुतत्परः । षट्ट्रिंशच्च सहस्राणि राज्यं कृत्वा पुरुरवा: ॥४५
 गन्धर्वलोकं सम्प्राप्य मोइते दिवि देवत्वत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमायुषो नहृषस्तुतः ॥४६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततः शक्रत्वमागतः । त्रिलोकीं स्वदशं चक्रे वर्षमेकसहस्रकम् ॥४७
 मुनेर्दुर्वासिसः शापान्त्रपोऽजगरतां गतः । पञ्च पुत्रा ययातेश्र त्रयो म्लेच्छत्वमागताः ॥४८
 द्वौ तथार्यत्वमापन्नौ यदुज्येष्ठः पुरुर्घुः । तपोबलप्रभावेण राज्यं लक्षाब्दसंमितम् ॥४९
 कृत्वा विष्णुप्रसादेन ततो वैकुण्ठमागतः । यदोः पुत्रः स्मृतः क्रोष्टा राज्यं षष्ठिसहस्रकम् ॥५०

सुनक्षत्र के केशीनर, केशीनर के अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष के सुवर्णांग, सुवर्णाङ्ग के अमित्रजित्, अमित्रजित् के बृहद्राज, बृहद्राज के धर्मराज, धर्मराज के कृतञ्जय, कृतञ्जय के रणञ्जय, रणञ्जय के सञ्जय, सञ्जय के शाक्यवर्धन, शाक्यवर्धन के क्रोधदान, क्रोधदान के अतुलविक्रम, अतुलविक्रम के प्रसेनजित्, प्रसेनजित् के शूद्रक, तथा शूद्रक के सुरथ नामक पुत्र हुए । इन राजाओं का राज्यकाल उत्तरोत्तर इनके पिता के समान ही बताया गया है । रथवंशीय पैसठ राजाओं ने अपने पिता के आधे समय तक राज्य का उपभोग किया है, जो देवी के परम उपासक और हिंसात्मक यज्ञ के अनुष्ठापक थे । उन सभी लोगों ने स्वर्ग की प्राप्ति की है । बुद्ध होने वाले सभी पुत्र वर्ण संकर कहे गये हैं । त्रेतायुग के तीसरे चरण के आरम्भक काल में इनका नवोत्थान कहा जाता है । २२-४०। इन्द्र के भेजे हुए रोहिणी पति चन्द्रमा ने इस भूमण्डल पर आकर इस रमणीक प्रयाग नगर को अपनी राजधानी बनाया । चन्द्रमा विष्णु के परमभक्त एवं नित्य शिव की भी पूजा करते थे । माया देवी के प्रसन्नार्थ उन्होंने सौ यज्ञ का अनुष्ठान सुसम्पन्न विया था । अठारह सहस्र वर्ष राज्य करके उनके दिवंगत होने पर उनके पुत्र-बुध ने राज्यभार संभाला, जो मेशदेव के पुत्र कहे जाते हैं । बुध ने इला का धार्मिक रीति से पाणिग्रहण करके पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसने चौदह सहस्र वर्ष राज्य किया था । उन्होंने प्रतिज्ञानुसार उर्वशी अप्सरा का भी उपभोग किया था । उनके आयु नामक पुत्र हुआ, जो धर्मात्मा एवं विष्णु का उपासक था । राजा पुरुरवा छत्तीस

वृजिनघस्मुतस्तस्माद्राज्यं विंशत्सहस्रकम् । तस्मात्स्वाहार्चनः पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समम् ॥५१
 तस्माच्चित्ररथः पुत्रः कृतं राज्यं पितुस्समभ् । अरविन्दस्मुतस्तस्मात्कृतं राज्यं पितुः समम् ॥५२
 अथ श्रवास्तते जातस्तेजस्वी विष्णुतत्परः । पितुरद्द्वं कृतं राज्यं तत्पुत्रस्तामसः स्मृतः ॥५३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तरमादुशानस्मुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शीतांशुकनृपोऽभवत् ॥ ॥५४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कमलांशुस्ततोऽभवत् ॥५५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दारावतसुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं जामघस्तस्तुतोऽभवत् ॥५६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विदर्भस्तस्तुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्राथो नाम सुतस्ततः ॥५७
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कुन्तिभोजस्तु तत्सुतः । पुरुदैत्यसुतापुत्रः पत्ताले वृषपर्वणः ॥५८
 उषित्वा नगरे तस्मिन्मायाविद्यस्ततोऽभवत् । प्रयागस्य प्रतिष्ठाने पुरे राज्यमथाकरोत् ॥५९
 दशवर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं गतः । देवीभक्तः स नृपतिस्तत्पुत्रो जनमेजयः ॥६०
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रचिन्वांस्तस्तुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रवीरस्तनयोऽभवत् ॥६१
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नभस्यस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भवदस्तस्तुतस्मृतः ॥६२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुद्युम्भस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं पुत्रो बाहुगरः स्मृतः ॥६३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं संयातिस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धनयातिस्ततोऽभवत् ॥६४

सहस्र वर्ष राज्य का उपभोग करके गन्धर्वलोक में आज भी देवताओं की भाँति आनन्दानुभव कर रहे हैं । उनका पुत्र आयु भी अपने पिता के समान समय तक राज्यभार का वहन किया था । पुनः आयु के पुत्र नहुण हुए जो अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग कर पश्चात् इन्द्र बनाये गये थे । उन्होंने समस्त तीनों लोकों को अपने अधीन करके उस पर एक सहस्र वर्ष तक अपना आधिपत्य जमाया था । पुनः दुर्वासा मुनि के शापवश उन्हें अजगर होना पड़ा था । राजा ययाति के पाँच पुत्र थे, जिसमें तीन म्लेच्छ एवं दो आर्य हुए थे । ज्येष्ठ का नाम यदुस था छोटे का नाम पुरु था । अपने तपोबल के प्रभाव से उन्होंने एकलक्ष वर्ष तक राज्य का उपभोग करके पश्चात् भगवान् विष्णु की प्रसन्नता से स्वर्ग की प्राप्ति की । यदु का पुत्र क्रोष्टा बताया गया है, जिसने साठ सहस्र वर्ष राज्य किया था । उनके वृजिनघ नामक पुत्र हुआ जिसने बीस सहस्र वर्ष राज्य किया था । वृजिनघ के स्वाहार्चन, स्वाहार्चन के चित्ररथ और चित्ररथ के अरविंद हुए । इन लोगों ने भी अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया है । इसके उपरात, अरविंद के श्रवा नामक पुत्र हुआ जो तेजस्वी एवं विष्णु का परम उपासक था । उसने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया है । श्रवा के पुत्र तामस, तामस के उशनस्, उशनस् के शीतांशु, शीतरुण के कमलांशु, कमलांशु के पारावत, पारावत के जामघ, जामघ के विदर्भ, विदर्भ के क्राथ, क्राथ के कुंती भोज, और पाताल निवासी वृषपर्वा द्वारा दैत्य की कन्या में पुरु नामक पुत्र हुआ । ४१-५८ । उस नगर में रहते हुए पुरु के माया विद्य नामक पुत्र हुआ, जिसने प्रयाग के प्रतिष्ठानपुर में अपनी राजधानी स्थापित करके दशसहस्र वर्ष राज्य करने के उपरात स्वर्ण की प्राप्ति की । उस देवी भक्त राजा के जनमेजय, जनमेजय के प्रचिन्वान्, प्रचिन्वान् प्रवीर, प्रवीर के नभस्य, नभस्य के भवद, भवद के सुद्युम्भ, सुद्युम्भ के बाहुगर, बाहुगर के संयाति, संयाति के

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमैन्द्राश्वस्तनयोऽभदत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्रन्तिनरः सुतः ॥६५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तत्पुत्रः सुतपा: स्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सवरणस्तनयस्ततः ॥६६
 हिमालयगिरौ प्राप्ते तपः कर्तुं सनो दध्त् । शतवर्षं ततः सूर्यस्तपतीं नाम कन्यकाम् ॥६७
 संवरणाय ददौ तुष्टो रविलोकं नृपो गतः । ततो मायाश्रभावेन युगं प्रलयमागतम् ॥६८
 चत्वारः सागरा वृद्धा भारतं क्षयतां गतम् । द्विवर्षं सागरे भूभिरुषित्वा भूधरैस्सह ॥६९
 महावायुप्रभवेन सागराः शुष्कतां गताः । अगस्त्यतेजसां भूमिः स्थली भूत्वा प्रदृश्यते ॥७०
 पञ्चवर्षान्तरे भूमिर्वृक्षद्वार्दिसंयुता । सूर्यज्ञया च सर्वर्णस्तपत्य, मुनिना सह ॥७१
 वशिष्ठेन त्रिवर्णेन्द्रं मुख्यैः सार्धं समागतः ॥७२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डागरपर्याये त्रेतायुगभूपाल्यानं
 नाम द्वितीयोऽध्यायः । २

अथ तृतीयोऽध्यायः द्वापरनृपोपाल्यानवर्णनम् सूत उवाच

संवर्णश्च महीपालः कस्मिन्काले समागतः । लोमहर्षण मे झूहि द्वापरस्य नृपांस्तथा ॥१

धनयाति, धनयाति के ऐन्द्राश्व, ऐन्द्राश्व के रंतिनर, रंतिनर के सुतपा, और सुतपा के संवरण हुए, जिसने हिमालय पर्वत पर जाकर सौ वर्ष तक तप किया । उनके तपस्त्रया से प्रसन्न होकर सूर्य ने उन्हें अपनी तपन्ती नाम की कन्या प्रदान की । पुनः राजा सूर्य लोक चले गये । तदुपरांत माया के प्रभाव से युगप्रलय उपस्थित हुआ । चारों ओर के समुद्र में जल की बाढ़ आ गई जिससे भारतवर्ष नष्ट हो गया । पर्वतों समेत पृथिवी दो वर्ष तक समुद्र के भीतर पड़ी रही । पश्चात महावायु की प्रखरता से सागर खोल गये । अगस्त्य के तेजोबल के कारण पृथिवी के बल स्थल रूप में दिखायी देने लगी । पाँच वर्ष के भीतर वृक्षों एवं द्वार्दिकों से परिपूर्ण होकर यह पृथिवी पुनः हरी भरी हो गई । उपरांत सूर्य की आज्ञा प्राप्त कर राजा संवर्ण, तपस्वी वशिष्ठ मुनि एवं प्रमुख तीनों वर्णों (वाह्ण, क्षत्रिय एवं वैश्यों) समेत पुनः इस भूतल पर आये । ५९-७२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में त्रेतायुग के राजाओं का
 वर्णन नामक दूसरा अध्याय । २।

अध्याय ३ द्वापर के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—लोमहर्षण ! राजासंवर्ण का यहाँ आगमन किस समय में हुआ और द्वापर युग के राजाओं को भी बताने की कृपा कीजिए । १

सूत उदाच

भाद्रस्य कृष्णपक्षे तु त्रयोदश्यां भृगौ दिने । संवर्णं मुनिभिः सार्द्धं प्रतिष्ठाने समागतः ॥२
 प्रतिष्ठानं कृतं रम्दं पञ्चयोजनमायत्तश्च । अर्धकोशोन्नतं हर्ष्यं रचितं विश्वकर्मणा ॥३
 बुद्धिवशे प्रसेनस्य सक्ताया भूपतिः कृतः । यदुवशे सात्वतश्च मधुराभूपतिः कृतः ॥४
 इतेन्द्रियांशे इमश्रुपालो मरुदेशस्य भूपतिः । क्रमेण द्विद्विता भूपाः प्रजाभिः सहिता भुवि ॥५
 दशवर्षसहस्राणि संवर्णो भूपतिःस्मृतः । तस्यात्मजोऽथमर्चाज्ञः कृतं राज्यं पितुस्समम् ॥६
 तस्य पुत्रः सूरिजापी पितुरर्द्धं च राज्यकृत् । सूर्यज्ञस्तस्य पुत्रः सौरयज्ञपरायणः ॥७
 शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादातिथ्यदर्थनः । शतहीनं कृतं राज्यं द्वादशात्मा तु तत्सुतः ॥८
 शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातो दिवाकरः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माज्जातः प्रभाकरः ॥९
 शतहीनं कृतं राज्यं भास्वदात्मा च तत्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं विवस्वज्ञस्तदात्मजः ॥१०
 शतहीनं कृतं राज्यं हरिदश्वार्चनस्ततः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्वैकर्तनः सुतः ॥११
 शतहीनं कृतं राज्यं स्तस्मादकेष्टिमान्युतः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मान्मार्तण्डवत्सलः ॥१२
 शतहीनं कृतं राज्यं मिहिरार्थस्तु तत्सुतः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादरुणपोषणः ॥१३
 शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्युमिग्निवत्सलः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्तरणियज्ञकः ॥१४
 शतहीनं कृतं राज्यं तस्मान्मैत्रेष्टिवर्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं चित्रभानुस्मृतस्ततः ॥१५
 शतहीनं कृतं राज्यं तस्माद्वैरोचनः स्मृतः । शतहीनं कृतं राज्यं हंसन्यायी तु तत्सुतः ॥१६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वेदप्रवर्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं तस्मात्तादित्र उच्यते ॥१७
 शतहीनं कृतं राज्यं धनपालस्ततोऽभवत् । शतहीनं कृतं राज्यं म्लेच्छहन्तसुतः स्मृतः ॥१८

सूत जी बोले—भाद्रों मास के कृष्णपक्ष की त्रयोदशी शुक्रवार के दिन मुनियों के साथ राजा संवर्ण इस प्रतिष्ठानपुर में आये हैं । विश्वकर्मा ने इस प्रतिष्ठानपुर को पांच योजन में विस्तृत एवं रमणीक बनाया है, जिसमें एक-एक मील की ऊँचाई के मुन्दर महल बने थे । बुद्धिवश में प्रसेन सक्ति का, यदुवश में सात्वत मधुरा (मधुरा) का और म्लेच्छ वंश में इमश्रुपाल मरुदेश का राजा हुआ । इन राजाओं ने इस भूतल पर अपनी-अपनी प्रजाओं समेत अधिकाधिक उन्नति की । राजा संवरण ने दश सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । संवर्ण के यमर्चाज्ञ, तथा यमर्चाज्ञ के सूरिजापी हुए । इनमें केवल सूरिजापी के सूर्यज्ञ नामक पुत्र हुआ, जो सूर्य के यज्ञानुष्ठान का ही पारायण करने वाला था । इसने अपने पिता से सौ वर्ष कम समय तक राज्य का उपभोग किया था । सूर्यज्ञ के आतिथ्यवर्धन, आतिथ्यवर्धन के द्वादशात्मा, द्वादशात्मा के दिवाकर, दिवाकर के प्रभाकर, प्रभाकर के भास्वदात्मा, भास्वदात्मा के विवस्वज्ञ, विवस्वज्ञ के हरिदश्वार्चन, हरिदश्वार्चन के वैकर्तन, वैकर्तन के अर्केष्टिमान्, अर्केष्टिमान् के मार्तण्डवत्सल, मार्तण्डवत्सल के मिहिरार्थ, मिहिरार्थ के अरुणपोषण, अरुणपोषण के द्युमणिवत्सल, द्युमणिवत्सल के तरणियज्ञक, तरणियज्ञक के मैत्रेष्टिवर्धन, मैत्रेष्टिवर्धन के चित्रभानु, चित्रभानु के वैरोचन, वैरोचन के हंसन्यायी २-१६ । हंसन्यायी के वेदप्रवर्धन, वेदप्रवर्धन के सावित्र, सावित्र के धन पाल, धनपाल के म्लेच्छहन्ता, म्लेच्छहन्ता के आनन्दवर्धन, आनन्दवर्धन के धर्मपाल, धर्मपाल के ब्रह्मभक्त ।

शतहीनं कृतं राज्यं तस्मादानन्दवर्द्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं धर्मपालसुतस्ततः ॥१९
 शतहीनं कृतं राज्यं ब्रह्मभक्तसुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्ब्रह्मेष्टिवर्द्धनः ॥२०
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादात्मप्रपूजकः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं परमेष्ठी सुतस्ततः ॥२१
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वैरण्यवर्द्धनः । शतहीनं कृतं राज्यं धातृयाजी तु तत्सुतः ॥२२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तद्विधातृप्रपूजकः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वैद्रुहिणः क्रतुः ॥२३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वैरञ्च्य उच्यते । शतहीनं कृतं राज्यं तत्पुत्रः कमलासनः ॥२४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शमवर्ती तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं श्राद्धदेवस्तु तत्सुतः ॥२५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वै पितृवर्द्धनः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सोमदत्स्तु तत्सुतः ॥२६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सौमदत्तिस्तदात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माद्वै सोमवर्द्धनः ॥२७
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमदत्तंसः सुतस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रतंसस्तनयस्ततः ॥२८
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं परातंस्तदात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमयतंसस्ततोऽभवत् ॥२९
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं समातंसस्तु तत्सुतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमनुतंसस्तदात्मजः ॥३०
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमधितंसस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमभितंसस्तदात्मजः ॥३१
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं समुत्तंसस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तंसोनाम सुतोऽभवत् ॥३२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दुष्यन्तस्तनयस्ततः । शकुन्तलायां तस्माच्च भरतोनाम भूपतिः ॥३३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं दुष्यन्तः स्वर्गीति गतः । भरतोनाम तत्युत्रो देवपूजनतप्तरः ॥३४
 महामायाप्रभावेन षट्ट्रिशब्दसहस्राणि नृपायुर्वर्दितं तथा ॥३५
 तस्य नाम्ना स्मृतः खण्डो भारतो नाम विश्रुतः । तेन भूमेर्विभागश्च कृतं राज्यं पृथक् चिरम् ॥३६

और ब्रह्मभक्त के ब्रह्मेष्टिवर्द्धन, हुए, इनमें राजा वेद प्रवर्धन और ब्रह्मेष्टिवर्द्धन ने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया है एवं शेष राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के राज्यकाल से मौ-सौ वर्ष कम समय तक ब्रह्मेष्टिवर्द्धन के आत्मप्रपूजक, आत्मप्रपूजक के परमेष्ठी, परमेष्ठी के हैरण्यवर्द्धन, और हैरण्यवर्द्धन के धातृयाजी हुए, जिन्होंने अपने पिता के राजकाल से सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया है, एवं शेष राजाओं ने अपने पिता के समान काल तक धातृयाजी के विधातृप्रपूजक, विधातृप्रपूजक के वैदुहिण, वैदुहिण के वैरोच्य, वैरोच्य के कमलासन, कमलासन के समवर्ती, समवर्ती के श्राद्धदेव, श्राद्धदेव के पितृवर्द्धन, पितृवर्द्धन के सोमदत्त, सोमदत्त के सौमदत्ति, सौमदत्ति के सोमवर्द्धन, सोमवर्द्धन के अवतंस, अवतंस के प्रतंस, प्रतंस के परातंस, परातंस के अयतंस, अयतंस के समातंस, समातंस के अनुतंस, अनुतंस के अधितंस, अधितंस के अभितंस, अभितंस के समुत्तंस, समुत्तंस के तंस, तंस के दुष्यंत, दुष्यंत के शकुतला के गर्भ से भरत उत्पन्न हुए, परचात् स्वर्गारोहण हो गया। इन सभी राजाओं का राजकाल उत्तरोत्तर उनके पिता के समान ही बताया गया है, केवल राजा कमलासन को छोड़कर क्योंकि कमलासन ने अपने पिता से सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया था। राजा भरत देवी जी के परम उपासक थे। १७-३४। महामाया के प्रभाव से छत्तीस वर्ष का जीवन छत्तीस सहस्रवर्ष का हो गया। उन्हीं के नाम से इस प्रदेश का भारतखण्ड (भारतवर्ष) नाम पड़ा। इन्होंने इस पृथिवी मंडल का विभाग करके अपना

दिव्यं वर्षशतं राज्यं तस्माज्जातो महाबलः । दिव्यं वर्षशतं राज्यं भरद्वाजस्ततोऽभवत् ॥३७
 दिव्यं वर्षशतं राज्यं तस्माद्ग्रहनमन्युमान् । अष्टादशसहस्राणि समा राज्यं प्रकीर्तितम् ॥३८
 बृहत्क्षेत्रस्ततो हासीत्पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुहोत्रस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥३९
 वीतिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् । यज्ञहोत्रस्ततोऽप्यासीत्पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४०
 शक्रहोत्रस्ततो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । प्रसन्नो भगवानिन्द्रस्तं नृपं स्वर्गमप्तवान् ॥४१
 तद्यायोऽध्यापतिः श्रीगान्त्रतापेन्द्रो महाबलः । भारतं दर्षमदधर्षं दशसहस्रकम् ॥४२
 मण्डलीकस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । विजयेन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४३
 धनुर्वीर्तस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । इन्द्राजया शक्रहोत्रो धृताच्यते मह भूतले ॥४४
 प्राप्तवान्सधनुर्दीप्तं जित्वा राज्यमचीकरत् । हस्तीनाम सुतो जात ऐरावतसुतं गजम् ॥४५
 आरुद्ध यश्चिमे देशे हस्तिनानगरी कृता । दशयोजनविस्तीर्णा स्वर्गगायास्तटे शुभा ॥४६
 राज्यं दशसहस्रं च तत्र वासं चक्कार सः । तत्पुत्रस्त्वजमीढास्यः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४७
 तस्माज्जातो रक्षपालः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुशम्र्यणस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥४८
 तस्य पुत्रः कुरुनाम पितुरर्द्धं कृतं पदम् । इन्द्रस्य वरदानेन सदेहः स्वर्गमागतः ॥४९
 तदा सात्त्वतवंशेऽस्मिन्वृष्णिर्नाम महाबलः । मथुरायां स्थितो राज्यं सर्वं स्ववशमाप्तवान् ॥५०
 भगवतो वरदानेन हरेरद्भुतकर्मणः । पञ्चवर्षसहस्रं च सर्वं राज्यं वशीकृतम् ॥५१

राज्य पृथक् स्थापित कर उसका उपभोग किया था । इनका राजकाल दिव्य वर्ष से सौ वर्ष का बताया जाता है । पुनः इनके भरद्वाज और भरद्वाज के भदन मन्युमान् हुए, इन सभी का राजकाल भरत के समान ही कहा गया है । अठारह सहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत इनके बृहत्क्षेत्र नामक पुत्र हुआ तथा बृहत्क्षेत्र के सुहोत्र, सुहोत्र के वीतिहोत्र, वीतिहोत्र के यज्ञहोत्र और यज्ञहोत्र के शक्रहोत्र हुए, जिन्हें प्रसन्न होकर भगवान् इन्द्र ने स्वर्ग निवास प्रदान किया था । इनमें केवल वीतिहोत्र ने दशसहस्र वर्ष राज्य किया था । और शेष राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक । वे महाबली श्रीमान् राजा प्रतापेन्द्र अयोध्या अधीश्वर थे । उन्होंने दश सहस्र वर्ष तक इस भारत वर्ष का राज्यभार वहन किया था । पश्चात् उनके मण्डलीक, मण्डलीक के विजयेन्द्र और विजयेन्द्र के धनुर्दीप्त, हुए । इन राजाओं ने अपने पिता के समान काल राज्य किया है । (कुछ काल के अनन्तर) इन्द्र की आज्ञा से शक्रहोत्र धृताची अप्सरा के समेत इस भूमण्डल पर आकर राजा धनुर्दीप्त पर विजय प्राप्त कर वहाँ का राज्य करने लगे । उनके हस्ती नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने ऐरावत-पुत्र गजेन्द्र पर आरुद्ध होकर पश्चिम के प्रदेश में हस्तिनापुर नामक नगर बसाया था जो स्वर्गगा के तटपर दश योजन के विस्तार में सुशोभित हो रही थी । उस नगर में उन्होंने दशसहस्र वर्ष तक राज्य का भार निभाया था । पुनः उनके अजमीढ़, अजमीढ़ के रक्षपाल, रक्षपाल के सुशम्र्यण तथा सुशम्र्यण के कुरु हुए, जिन्होंने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया था और शेष भूपगण अपने पिता के समान काल तक । इन्द्र से वरदान प्राप्त कर राजा कुरु ने इसी शरीर समेत स्वर्ग यात्रा की । उस समय सात्त्वत वंश के महाबली राजा वृष्णि ने मथुरा में रहकर समस्त राज्य को अपने अधीन कर लिया था । आश्चर्य जनक भगवान् विष्णु के वरदान द्वारा उन्होंने पाँच सहस्र

निरावृतिस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । दशारी तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥५२
 वियामुनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । जीमूतस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥५३
 विकृतिस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माज्जातो भीमरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥५४
 तस्माज्जातो नवरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माज्जातो दशरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥५५
 तस्माज्जातश्च शकुनिः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माज्जातः कुशुम्भश्च पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥५६
 तस्माज्जातो देवरथः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । देवक्षेत्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥५७
 तस्य पुत्रो मधुर्नाम पितुस्तुल्यं कृतं पदम् : ततो नवरथः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥५८
 कुरुवत्सस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्माहनुरथः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥५९
 पुरुहोत्रः सुतस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । विचित्राङ्गस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६०
 तस्मात्सात्वतवान्नुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । भजमानस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६१
 विद्वरथस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुरभक्तस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६२
 तस्माच्च सुमनाः पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । ततिक्षेत्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६३
 स्वायम्भुवस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । हरिदीपक एवासौ तस्य राज्यं पितुस्समम् ॥६४
 देवमेधास्तुतस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । सुरपालस्तदा जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६५
 शकाजया कुरुश्चैव द्वापरयत्रिये पदे । व्यतीते च सुकेश्यास्त स्वर्वेश्यायाः पतिः प्रभुः ॥६६
 आगतो भारते खण्डे कुरुक्षेत्रं तदा कृतम् । विशद्योजनविस्तीर्णं पुष्यक्षेत्रं स्मृतं ब्रूद्यः ॥६७
 द्वादशाब्दसहस्रं च कुरुणा राज्यसात्कृतम् । तस्माज्जह्नसुतो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६८
 तस्माच्च सुरथो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । विद्वरथस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६९
 सार्वभौमस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । जयसेनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७०

वर्ष तक समस्त राज्य का उपभोग किया था । ३५-५१। अनन्तर उनके निरावृति, निरावृति के दशारी, दशारी के वियामुन, वियामुन के जीमूत, जीमूत के विकृति, विकृति के भीमरथ, भीमरथ के नवरथ, नवरथ के दशरथ, दशरथ के शकुनि, शकुनि के कुशुम्भ, कुशुम्भ के देवरथ, देवरथ के देवक्षेत्र, देवक्षेत्र के मधु, मधु के नवस्य, नवस्य के कुरुवत्स, कुरुवत्स के अनुरथ, अनुरथ के पुरुहोत्र, पुरुहोत्र के विचित्राङ्ग, विचित्राङ्ग के सात्वतवान्, सात्वतवान के भजमान्, भजमान के विद्वरथ, विद्वरथ के सुरभक्त, सुरभक्त के सुमना, सुमना के ततिक्षेत्र, ततिक्षेत्र के स्वायम्भुव, स्वायम्भुव के हरिदीपक, हरिदीपक के देवमेधा और देवमेधा के सुरपाल नामक पुत्र हुए । इन सभी राजाओं का राजकाल उत्तरोत्तर उनके पिता के समान ही है । द्वापर युग के तीसरे चरण की समाप्ति समय में स्वर्गाधिनायक इन्द्र की आज्ञा से राजा कुरु ने अपनी पत्नी सुकेशी अप्सरा के साथ इस भारत वर्ष में आकर कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था, जिस पुष्यक्षेत्र का विस्तार विद्वानों ने बीसयोजन का बताया है । उस क्षेत्र में अधिनायक के पद पर रहकर उन्होंने उसे बारह सहस्र वर्ष तक सुशोभित किया था । पश्चात उनके जहनु, जहनु के सुरथ, सुरथ के विद्वरथ, विद्वरथ के सार्वभौम, सार्वभौम के जपसेन जपसेन के अर्णव हुए, जो चारों समुद्रों को भी अपना कर अपने पिता के

तस्मादर्णद एवासौ पितुस्तुल्यं कृतं पदम् : चतुर्सागरगामी च पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७१
 अयुतायुस्तस्य सुतो राज्यं दशसहस्रकम् । अक्रोधनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७२
 तस्माद्वक्षस्तुते जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । भीमसेनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥७३
 दिलीपस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । प्रतीपस्तस्य तनयो राज्यं पञ्चसहस्रकम् ॥७४
 शन्तनुस्तस्य पुत्रश्च राज्यमेकसहस्रकम् । दिवित्रिवीर्यस्तत्पुत्रो राज्यं वै द्विशतं समाः ॥७५
 पाण्डुश्च तनयो यस्मिन्नराज्यं पञ्चशतं कृतम् । युधिष्ठिरस्तस्य सुतो राज्यं पञ्चाशब्दकम् ॥७६
 सुयोधनेन पञ्चचब्दं कृतं राज्यं ततः परम् । युधिष्ठिरेण निधनं तस्य प्राप्तं कुरुत्यते ॥७७
 पूर्वं देवासुरे युद्धे ये दैत्याश्च सुरर्हताः । ते सर्वे शन्तनो राज्ये जन्मवन्तः प्रतस्थिरे ॥७८
 लक्ष्मणस्तौहिणी तेषां तद्वारेण वसुन्धरा । शक्तस्य शरणं प्राप्तावतारं च ततो हरे ॥७९
 स सौरेवसुदेवस्य देवक्यां जन्मनाविशत् । एवं कृष्णो महावीर्यो रोहिणीनिलयं गतः ॥८०
 पञ्चर्त्तिशादुक्तरं च शतं वर्षं च भूतले । उषित्वा कृष्णचन्द्रश्च ततो गोलोकमागतः ॥८१
 चतुर्थचरणान्ते च हरेर्जन्म स्फुतं बुधैः । हस्तिनापुरमध्यस्याभिमन्योस्तनयस्ततः ॥८२
 राज्यमेकसहस्रं च ततोऽभूज्जनमेजयः । त्रिशत्तम् कृतं राज्यं शतानीकस्ततोऽभवत् ॥८३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं यज्ञदत्तस्ततः सुतः । राज्यं पञ्चसहस्रं च निश्चकस्तनयोऽभवत् ॥८४

समान काल तक राज्य पर प्रतिष्ठित रहे । तथा अर्णव के अयुतायु पुत्र हुए, जिन्होंने दशसहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था । पुनः अयुतायु के अक्रोधन, अक्रोधन के ऋक्ष, ऋक्ष के भीमसेन, भीमसेन के दिलीप, और दिलीप के प्रतीप उत्पन्न हुए जिन्होंने पाँच सहस्र वर्ष तक राज्य किया था, तथा शेष राजा लोग उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक । प्रतीप के शंतनु हुए, जिन्होंने एक सहस्र वर्षतक राज्य किया, पश्चात् उनके पुत्र विचित्रवीर्य हुए उन्होंने दो सौ वर्ष तक राज्य किया था । ५-२-७५। विचित्रवीर्य के पांडु हुए, जिन्होंने पाँच सौ वर्ष तक राज्य किया । पांडु के युधिष्ठिर हुए, जिनका राजकाल पचास वर्ष का बताया जाता है । सुयोधन के साठ वर्ष राज्य करने के उपरांत कुरुक्षेत्र में युधिष्ठिर द्वारा उसका निधन हुआ था । पहले समय में देवासुर संग्राम में असुरों द्वारा जिन दैत्यों की मृत्यु हुई थी, वे दैत्यगण राजा शंतनु के राज्य में जन्म लिए । इस प्रकार उन लोगों को एक लक्ष अक्षौहिणी सेना के भार से पीड़ित होकर पृथिवी इन्द्र की शरण में गई थी । पश्चात् विष्णु भगवान् का अवतार सूरवंशी राजा वसुदेव की धर्मपत्नी देवकी में जन्म ग्रहण के द्वारा हुआ था । अनन्तर महापराक्रमी भगवान् कृष्ण के अवतरित होने पर कालान्तर में रोहिणी का निधन हुआ था । इस भूतल पर भगवान् कृष्णचन्द्र ने एक सौ पैतीस वर्ष तक प्राणियों को सुखी बनाकर पश्चात् गोलोक को प्रस्थान किया था । विद्वानों ने भगवान् का अवतार जन्म (द्वापर के) चौथे चरण के अन्त समय में बताया है । हस्तिनापुर में (युधिष्ठिर के) अभिमन्यु और अभिमन्यु के परीक्षित हुए, जिन्होंने एक सहस्र वर्ष तक राज्य किया । पुनः परीक्षित के जनमेजय, जनमेजय के शतानीक, और शतानीक के यज्ञदत्त हुए । इन राजाओं ने तीन सहस्र वर्ष तक राज्य किया था । पश्चात् यज्ञदत्त के निश्चक हुए जिन्होंने पाँच सहस्र वर्ष तक राज्य किया है निश्चक के

सहस्रमेकं राज्यं तदुष्टपालस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माच्चित्ररथस्मृतः ॥८५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिमांस्तनयस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुषेणस्तनयोऽभवत् ॥८६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनीथस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मखपालः सुतोऽभवत् ॥८७
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं न चक्षुस्तनयस्ततः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुखवन्तस्ततोऽभवत् ॥८८
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मात्पारिप्लवस्मृतः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुनयस्ततसुतोऽभवत् ॥८९
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मेधावी तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्नाज्जातो नृपञ्जयः ॥९०
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मृदुस्ततनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तिग्मज्योतिस्तु तत्सुतः ॥९१
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो बृहद्रथः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वसुदानस्ततोऽभवत् ॥९२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शतानीकस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्मादुद्यान उच्यते ॥९३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो अहीनरः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं निर्मित्रस्तनयोऽभवत् ॥९४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं क्षेमकस्ततसुतोऽभवत् । राज्यं त्यक्त्वा स मेधावी कलापग्राममाध्रितः ॥९५
 म्लेच्छेश्वरं मरणं प्राप्तो यमलोकमतो गतः । नारदस्योपदेशेन प्रद्योतस्तनयस्ततः ॥९६
 म्लेच्छयज्ञः कृतस्तेन म्लेच्छा हननमागताः ॥९७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्विंशतिरथपर्याये
 द्वापरनृपोपाख्यानं नाम तृतीयोऽध्यायः । ३

उष्टपाल हुए जिसने एक सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया है। उष्टपाल के चित्ररथ, चित्ररथ के धृतिमान्, धृतिमान् के सुषेण, सुषेण के सुनीथ, सुनीथ के मखपाल, मखपाल के नचक्षु, नचक्षु के सुखवन्त, सुखवन्त के पारिप्लव, पारिप्लव के सूनय, सूनय के मेधावी, मेधावी के नृपञ्जय, नृपञ्जय के मृदु, मृदु के तिग्मज्योति, तिग्मज्योति के बृहद्रथ, बृहद्रथ के वसुदान, वसुदान के शतानीक, शतानीक के उद्यान, उद्यान के अहीनर, अहीनर के निर्मित्र और निर्मित्र के क्षेत्रक हुए, जिन्होंने उस राज्य का परित्याग कर कलाप गाँव में निवास स्थान बनाया था, पश्चात् वहाँ म्लेच्छों द्वारा उनका निधन हुआ जिससे उन्हें यमलोक को प्रस्थान करना पड़ा। अनन्तर नारद के उपदेश देने पर उनके पुत्र प्रद्योत ने म्लेच्छ यज्ञ आरम्भ किया जिससे उन्होंने म्लेच्छों का समूल नाश किया था । ७६-९७

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में द्वापर के राजाओं का वर्णन
 नामक तीसरा अध्याय समाप्त । ३।

चतुर्थोऽध्यायः
द्वापरयुगभूपात्यानवर्णनम्

शौनक उवाच

कथं यज्ञः कृतस्तेन प्रद्योतेन विचक्षणः सर्वं कथय मे तात त्रिकालज्ञ महामुने ॥१

सूत उदाच

एकदा हस्तिनगरे प्रद्योतः क्षेमकात्सजः । आस्थितः स कथामध्ये नारदोऽस्यागमसत्तदा ॥२
 तं दृष्ट्वा हर्षितो राजा पूजयामास धर्मवित् । सुखोपविष्टः स मुनिः प्रद्योतं नृपत्रिवीत् ॥३
 म्लेच्छर्हतस्तत्वं पिता यमलोकमतो गतः । म्लेच्छयज्ञप्रभावेण स्वर्गतिर्भविता हि सः ॥४
 तच्छृत्वा क्रोधताम्राक्षो ब्राह्मणान्वेदवित्तनान् । आहूय स कुरुक्षेत्रे म्लेच्छयज्ञं रमारभत् ॥५
 यज्ञकुण्डं चतुष्कोणं योजनान्येव षोडशः । रचित्वा देवतां ध्यात्वा म्लेच्छांश्च जुहुयान्तः ॥६
 हारहूणात्कर्बरांश्च युश्णटांश्च शकान्खसान् । यवनान्पल्लवांश्चैव रोमजान्लरसम्भवान् ॥७
 द्वीपस्थितान्कामरूपं चीनान्सागरमध्यगान् । प्राहूय भस्मसात्कुर्वन्वेदमन्त्रप्रभावतः ॥८
 ब्राह्मणान्दक्षिणां दत्त्वा अभिषेकमकारयत् । क्षेमको नाम नृपतिः स्वर्गलोकं ततो गतः ॥९

अध्याय ४
द्वापर के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—हे विचक्षण ! तात ! त्रिकालज्ञ ! एवं महामुने ! राजा प्रद्योत ने उस (म्लेच्छ) यज्ञ को किस भाँति किया था मुझे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें ।

सूत जी बोले—एक समय क्षेमक के पुत्र प्रद्योत अपने हस्तिनगर की राजधानी में सिंहासनारूढ़ हो कुछ कथाओं की चर्चा कर रहे थे कि उसी समय वहाँ महर्षि नारद का आगमन हुआ । उन्हें देखकर परम प्रसन्नता प्रकट करते हुए उस धार्मिक राजा ने उनका विधिवत् आतिथ्य सत्कार किया । सुखासीन होकर नारद मुनि ने राजा प्रद्योत से कहा—‘म्लेच्छों द्वारा तुम्हारे पिता का निधन हुआ है, इसीलिए उन्हें यमलोक को प्रस्थान करना पड़ा, अब वे म्लेच्छ यज्ञ के प्रभाव से ही स्वर्ग निवासी हो सकते हैं, सुनते ही कुद्ध होने के कारण उसकी आँख ताँबे की भाँति रक्त वर्ण की हो गई । उसने शीघ्र वैदिक विद्वान् ब्राह्मणों को निर्मत्रित करके कुरुक्षेत्र में म्लेच्छयज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया । उस अनुष्ठान में चौकोर एवं सोलह योजन के विस्तृत यज्ञ-कुण्ड की रचना करके देवता के ध्यान पूर्वक उस राजा ने उसमें म्लेच्छों की आहुति प्रदान करना आरम्भ किया । वेदमंत्र के प्रभाव से उसने हार, हूण, बर्बर, गुरुण्ड (अंग्रेज), शक, खस, यवन, पल्लव, रोमज, खरसंभव, द्वीपनिवासी कामरू, चीनी, एवं सागर के मध्यवर्ती प्रदेशों के म्लेच्छों को मंत्र द्वारा बुलाकर आहुति करके भस्म कर दिया । पुनः ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत अभिषेक भी सविधान समाप्त किया । तत्पश्चात् राजा क्षेमक को स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई । उसी

म्लेच्छहन्ता नाम तस्य विख्यातं भुवि सर्वतः । राज्यं दशसहस्राब्दं कृतं तेन महात्मना ॥१०
स्वर्गलोकं गतो राजा तत्पुत्रो वेदवान्स्मृतः । द्विसहस्रं कृतं राज्यं तदा म्लेच्छः कलिः स्वयम् ॥
नारायणं पूजयित्वा दिव्यस्तुतिमथाकरोत् ॥११

कलिरुचाच

नमोऽनन्ताय महते सर्वकालप्रवर्तिने ॥१२
चतुर्युगकृते त्रिभ्यं वासुदेवाय साक्षिणे । दशादत्ताराय हरे नमस्तुभ्यं नमोनमः ॥१३
नमः शक्त्यादत्ताराय रामकृष्णाय ते नमः । नमो मत्स्यावताराय महते गौरदासिने ॥१४
नमो भक्तावताराय कल्पक्षेत्रनिवासिने ! राजा वेदवता नाथ मन स्थानं विनाशितम् ॥
दम प्रियस्य म्लेच्छस्य तत्पित्रा वंशनाशनम् ॥१५

सूत उचाच

इति स्तुतस्तु कलिना म्लेच्छस्य सह भार्यादा ॥१६
प्राप्तवान्त्स हरिः साक्षाद्गवान्भक्तवत्सलः । कलिं प्रोचाच स हरिर्युज्जवर्धं युगोत्तमम् ॥१७
बहुरूपमहं कृत्वा तवेच्छां पूरयाम्यहम् । आदमो नाम पुरुषः पत्नी हव्यवती तथा ॥१८
विष्णुकर्दमतो जातौ म्लेच्छवंशप्रवर्धनौ । हरिस्त्वन्तर्दधे तत्र कलिरानन्दसङ्कुलः ॥१९
गिरि नीलाचलं प्राप्यं किञ्चित्कालमवासयत् । पुत्रो वेदवतो जातः सुनन्दो नाम भूपतिः ॥२०
पितुस्तुत्यं कृतं राज्यमनपत्यो मृतिं गतः । आर्यदेशाः क्षीणवन्तो म्लेच्छवंशं बलान्विताः ॥२१

दिन से राजा प्रद्योत का नाम इस भूमण्डल में चारों ओर 'म्लेच्छहन्ता' विख्यात हुआ । दशसहस्र वर्ष राज्य करने के उपरांत उस महात्मा राजा ने स्वर्गलोक को प्रस्थान किया । तदनन्तर उनके पुत्र देवदान् ने दो सहस्र वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । उस समय म्लेच्छ कलियुग स्वयं नारायण की पूजा करके दिव्य स्तुति से उनकी प्रार्थना कर रहा था ।

कलि ने कहा—अनंत, महान्, सम्पूर्ण काल के प्रवर्तक, चारों युग के रचयिता, एवं साक्षी, तुम्हें वासुदेव को नमस्कार है । हे हरे ! तुम्हारे दश, अवतार को नमस्कार है, शक्त्या अवतार लेने वाले तुम्हें रामकृष्ण को नमस्कार है । मत्स्यावतार लेने वाले, महान्, एवं गौरवासी को नमस्कार है । भक्तों के लिए अवतार लेने वाले, तथा कल्पक्षेत्र के निवासी आपको नमस्कार है । नाथ ! राजा वेदवान् ने मेरे स्थानों को नष्ट कर दिया है और उसके पिता ने मेरे प्रिय म्लेच्छवंशों का समूल नाश कर दिया है । १-१५

सूत जी बोले—स्त्री समेत म्लेच्छ कलि के इस प्रकार स्तुति करने पर भक्तवत्सल भगवान् विष्णु ने साक्षात् उसे दर्शन दिया । भगवान् ने कलि से कहा कि 'तुम लोगों के लिए यह युग अत्युत्तम है । इसमें मैं स्वयं अनेक रूप धारण कर तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए तैयार हूँ । आदम नाम का पुरुष और हव्यवती नाम की उसकी पत्नी म्लेच्छों के वंश के प्रवर्द्धक ये दोनों विष्णु कर्दम से उत्पन्न होंगे ।' यह कहकर विष्णु उसी स्थान पर अन्तर्भृत हो गये और कलि आनन्दतिरेक में निमग्न हुआ । पश्चात् उसने नीलगिरि पर पहुँच कर कुछ दिन के लिए अपना निवास स्थान बनाया उधर वेदवान् के सुनंद नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया, किन्तु सन्तानहीन होकर इस लोक से प्रस्थित

भविष्यन्ति भृगुप्रेष्ठ तस्माच्च तुहिनाचलम् । गत्वा विष्णुं समाराध्य गणिष्यामो हरे: पदम् ॥२२

इति श्रुत्वा द्विजाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । अष्टाशीतिसहस्राणि गतास्ते तुहिनाचलम् ॥२३

विशालायां समासाद्य विष्णुगाथां प्रचक्षिरे । इति व्यासेन कथितं वाक्यं कलिविशारदम् ॥

श्रोतारं स मनः कृत्वा भविष्यं समुदीरयत् ॥२४

व्यास उवाच

मनः शृणु ततो गाथां भावीं सूतेन वर्णिताम् । कलेर्युगस्य पूर्णा तां तच्छ्रुत्वा तृप्तिमाहव ॥२५

सूत उवाच

दोडशाब्दसहस्रे च शेषे तद्द्वापरे युगे । बहुकीर्तिमती भूमिरार्यदेशस्य कीर्तिता ॥२६

क्वचिद्दिप्राः स्मृता भूपाः क्वचिद्वाजन्यवंशजाः । क्वचिच्छूद्वाः क्वचिद्विप्राः कुत्रचिद्वर्णसङ्काराः ॥२७

द्विराताष्टसहस्रे द्वे शेषे तु द्वापरे युगे । म्लेच्छदेशस्य या भूमिर्भविता कीर्तिमालिनी ॥२८

इन्द्रियाणि दमित्वा यो ह्यात्मध्यानपरायणः । तस्मादादमनामासौ पत्नी हृव्यवती स्मृता ॥२९

प्रदाननगरस्यैव पूर्वभागे महावनम् । ईश्वरेण कृतं रम्यं चतुःक्रोशायतं स्मृतम् ॥३०

पापवृक्षतले गत्वा पत्नीदर्शनतप्तरः । कलिस्तत्रागतस्तूर्णं सप्तरूपं हि तत्कृतम् ॥३१

वच्चित्ता तेन धूर्तेन विष्णवाज्ञा भञ्ज्यतां गता । खादित्वा तत्कलं रम्यं लोकमार्गप्रदं पतिः ॥३२

हुआ । तत्पश्चात् नैमिषारण्य निवासी समस्त द्विज वृन्द 'भृगुप्रेष्ठ ! यह आर्य देश क्रमणः क्षीण होगा और म्लेच्छवंश के लोग सबल होंगे इसलिए हमलोग हिमालय पर्वत पर चलकर भगवान् विष्णु की आराधना करके उनके लोक की प्राप्ति करेंगे, इस प्रकार की बातें सुनकर अट्ठासी सहस्र की संख्या में वे लोग हिमालय की यात्रा के लिए अग्रसर हुए । विशाला में पहुँच कर उन लोगों ने विष्णु-गाथा का प्रचार किया । इस प्रकार व्यास ने अपने मन को श्रोता बनाकर उसे सम्बोधित करते हुए कलि विषयक समस्त भविष्य की द्वातों की चर्चा की—

व्यास जी बोले—हे मन ! सूत द्वारा व्याख्या की गई उस पूरी गाथा को जो कलियुग में होने वाली है, सुनो, और उसे शुनकर शान्त हो जाओ ।

सूत जी बोले—द्वापर युग के सोलह सहस्र वर्ष शेष रहते समय आर्यदेश की भूमि अनके भास्ति की कीर्ति से व्याप्त होगी—कहीं ब्राह्मण लोग राजा होंगे, कहीं धत्रिय वंश के लोग, कहीं वैश्य वर्ग, कहीं शूद्र और कहीं वर्णसंकर वृन्द । आठ सहस्र दो सौ वर्ष द्वापर युग के शेष रहने पर म्लेच्छदेश की जो भूमि अनेक कीर्ति लताओं से गुम्फित बतायी गई है उसमें इन्द्रियों का दमन करते हुए जो आत्मध्यान परायण रहा उसी से उसका नाम आदम और उसकी पत्नी का नाम हृव्यवती बताया गया है । प्रदान नगर के पूर्व भाग में ईश्वरकृत चार कोश में विस्तृत एवं सुरम्य एक विशाल जंगल है, उसमें पाप-वृक्ष के नीचे जाकर उसने अपनी पत्नी को देखने की इच्छा प्रकट की । उस समय कलि सौंप का रूप धारण कर वहाँ शीघ्रता में पहुँच गया तथा उस धूर्त ने उन्हें उससे बंचित कर विष्णु की आज्ञा भंगकर दी । पुनः लोकमार्ग के प्रदर्शक उस दम्पति ने उस मनोहर फल का भक्षण कर गूलर के पत्ते द्वारा वायुपान भी किया । तदुपरांत जितनी

उदुम्बरस्य पत्रैश्च ताभ्यां वावशनं कृतम् । सुताः पुत्रास्ततो जाताः सर्वे म्लेच्छा बभूविरे ॥३३
 त्रिशोत्तरं नवशतं तस्यायुः परिकीर्तितम् । फलानां हवनं कुर्वन्पत्न्या सहदिवं गतः ॥३४
 तस्माज्जातः सुतः श्रेष्ठः इवेतनमेति विश्रुतः । द्वादशोत्तरवर्षं च तस्यायुः परिकीर्तितम् ॥३५
 अनुहस्तस्य तनयः रात हीनं कृतं पदम् । कीनाशस्तस्य तनयः पितामहसमं यदम् ॥३६
 महल्ललस्तस्य सुतः पञ्चहीनं शतं नव । तेन राज्यं कृतं तत्र तस्मान्मानगरं स्मृतम् ॥३७
 तस्माच्च विरदो जातो राज्यं पष्टद्युतरं समाः । ज्ञेयं नवशतं तस्य स्वनाम्ना नगरं कृतम् ॥३८
 हनूकस्तस्य तनयो विष्णुभक्तिपरायणः । फलानां हवनं कुर्वन्तस्त्वं ह्यसि जयन्सदा ॥३९
 त्रिशतं पञ्चषष्ठिश्च राज्यं वर्षाणि तत्स्मृतम् । सन्देहः स्वर्गमायातो म्लेच्छधर्मपरायणः ॥४०
 आचारश्च विवेकश्च द्विजता देवपूजनम् । कृतान्येतानि तेनैव तस्मान्म्लेच्छः स्मृतो दुर्धैः ॥४१
 विष्णुभक्त्याप्निपूजा न ह्यहिंसा च तपो दमः । धर्मार्थेतानि मुनिभिर्म्लेच्छानां हि स्मृतानि वै ॥४२
 मतोच्छिलस्तस्य सुतो हनुकस्यैव भार्गव । राज्यं नवशतं तस्य सप्ततिश्च स्मृताः समाः ॥४३
 लोमकस्तस्य तनयो राज्यं सप्तशतं समाः । सप्तसप्ततिरेवास्य तत्पश्चात्स्वर्गतिं गतः ॥४४
 तस्माज्जातः सुतो न्यूहो निर्गतस्त्वृह एव सः । तस्मान्न्यूहः स्मृतः प्राज्ञे राज्यं पञ्चशतं कृतम् ॥४५
 सीमः शमश्र्व भावश्च त्रयः पुत्राः बभूविरे । न्यूहः स्मृतो विष्णुभक्तस्सोऽहं ध्यानपरायणः ॥४६
 एकदा भगवान्विष्णुस्तस्त्वन्ने तु समागतः ॥४७
 वत्स न्यूह शृणुष्वेदं प्रलयः सप्तमेऽहनि । भविता त्वं जनैस्सार्धं नावमारह्य सत्वरम् ॥४८

संताना उत्पन्न हुई सभी म्लेच्छ हुए । नव सौ तीस वर्ष उनकी आयु बतायी गयी है । फलों के हवन करते हुए पल्नी समेत उनके स्वर्गीय होने पर उनके रवेत नामक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ । जिसकी एक सौ बारह वर्ष की आयु कही गयी है । उनके अनुह नामक पुत्र हुआ जिसने अपने पिता से सौ वर्ष कम समय तक राज्य किया । १६-३६। पुनः अनुह के कीनाश हुआ, जिसने अपने पितामह (बाबा) के समान काल तक राज्य किया । उनका पुत्र महल्लल हुआ, जिसका राजकाल नव सौ पंचानन्दे वर्ष का बताया जाता है । महल्लल के मानगर और मानगर के विरद हुए, जिन्होंने नव सौ साठ वर्ष राज्य किया तथा अपने नाम से एक नगर का भी निर्माण किया । उनके हनूक हुए, जो विष्णु, भक्ति का पारायण और फलों के हवन सदैव करते हुए परमार्थतत्त्वे के ज्ञाता हुए । तीन सौ पैसठ वर्ष राज्य करके उस म्लेच्छ धर्मानुयायी ने सदैव स्वर्गकी प्राप्ति की । आचार, विवेक खते हुए द्राह्यण बनकर देव-पूजन करना विद्वानोंने यही म्लेच्छ होना बताया है, और यही वे भी करते थे । 'विष्णु-भक्ति, अग्नि-पूजा, अहिंसा, तप और दम' मुनियों ने म्लेच्छों का यही धर्म बताया है । भार्गव ! पुनः हनुक के मतोच्छिल हुए, जिन्होंने नव सौ मत्तर वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । मतोच्छिल के लोमक हुए जिसने सात सौ तर्ष राज्य किया, पश्चात् वे स्वर्गीय हो गये । लोमक के न्यूह हुए, जिन्होंने पाँच सौ वर्ष राज्य किया । उनके सीम, शम और भाव नामक तीन पुत्र हुए । न्यूह विष्णु भक्त थे, वे 'सोऽहं' (मैं वही हूँ) का सदैव ध्यान करते थे । ३७-४६। एक बार भगवान् विष्णु ने स्वन्न में उनसे कहा कि—वत्स ! न्यूह आज के सातवें दिन प्रलय होगा अतः अपने आत्मीय जनों

जीवनं कुरु भक्तेन्द्र सर्वश्रेष्ठो भविष्यसि । तथेति मत्वा स मुनिर्विं कृत्वा सुपुष्टिताम् ॥४९
 हस्तत्रिशतलम्बां च पञ्चाशद्वस्तविस्तृताम् । त्रिंशद्वस्तोच्छ्रद्धां रम्यां सर्वजीवसमन्विताम् ॥५०
 आरह्य स्वकुलैस्ताद्धं विष्णुध्यानपरोऽभवत् । सांवर्तको भेघणगो महेन्द्रेण समन्वितः ॥५१
 चत्वारिंशद्विनन्त्येव महावृष्टिभक्तर्यत् । सर्वं तु भारतं वर्जं जलैः प्लाव्य तु सिन्धवः ॥५२
 चत्वारो मिलिताः लर्वे विशालायां न चागताः । अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥५३
 न्यूहश्च स्वकुलैस्ताद्धं शेषास्तसर्वे विनाशिताः । तदा च मुनयस्तसर्वे विष्णुमायां प्रदुष्टुदुः ॥५४

मुनय ऊचुः

नमो देव्यै नहाकाल्यै देवक्ष्यै च नमो नमः । महालक्ष्म्यै विष्णुमात्रे राधा देव्यै नमो नमः ॥५५
 रेवत्यै पुष्पवत्यै च स्वर्णवत्यै नमो नमः । कामाक्षायै च भायायै नमो भात्रे नमो नमः ॥५६
 महावात्प्रभावेन महामेघरवेण च । जलधाराभिरुग्राभिर्भयं जातं हि दारुणम् ॥५७
 तस्माद्वयाद्वैरवि त्वमस्मान्संरक्ष किञ्चारान् । तदा प्रसन्ना सा देवी जलं शान्तं तया कृतम् ॥५८
 अबदान्तरे मही सर्वा स्थली भूत्वा प्रदृश्यते । आराच्च शिषिणा नाम हिसाद्वेस्तटभूमयः ॥५९
 न्यूहस्तत्र स्थितो नादभारह्य स्वकुलैस्तह । जलान्ते भूमिमागत्य तत्र वासं करोति सः ॥६०

इति श्रीभविष्ये भहापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चर्तुर्युगखण्डापरपर्याये द्वापरनृनोपाल्यानं
 नाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

समेत शीघ्र नाव पर बैठकरे अपने जीवन की रक्षा करना' भक्तेन्द्र ! इससे तुम सभी भक्तों में श्रेष्ठ कहलाओगे । भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर एक सुदृढ़ नाव पर जो तीन सौ हाथ की लम्बी, पचास हाथ की चौड़ी, और तीस हाथ की ऊँची थी, अपने कुल समेत समस्त जीवों को उस पर बैठाकर स्वयं विष्णु का ध्यान करने लगे । सांवर्तक नामक भेघ गण ने महेन्द्र के साथ चालीस दिन तक अत्यन्त धोर वृष्टि की जिससे चारों समुद्र का जल आपस में सम्मिलित होने के कारण विशाला के अतिरिक्त समस्त भारतवर्ष जलमग्न हो गया । अद्वासी सहस्र ब्रह्मवादी महर्षियों एवं अपने कुल के लोगों के साथ न्यूह के अतिरिक्त सभी कुछ नष्ट हो गया । पश्चात् मुनिगण विष्णु-माया की स्तुति करने लगे—

मुनियों ने कहा—देवी महाकाली तथा देवकी को नमस्कार है, महालक्ष्मी, विष्णु की माता, एवं राधा देवी को नमस्कार है । रेवती, पुष्पवती, स्वर्णवती, कामाक्षा, माया एवं उस माँ को नमस्कार है । महावायु के प्रभाव एवं महान् मेघों के गर्जन समेत इस भयानक जलधारा से हम लोगों के लिए अत्यन्त कठिन भय उपस्थित हुआ है, अतः हे भैरव ! हम सेवकों की रक्षा तुम्हारे हाथ है । पश्चात् देवी ने प्रसन्न होकर उस जल को शान्त किया । एक वर्ष के अनन्तर (पृथिवी केवल स्थल के रूप में दिखायी देने लगी । हिमालय के समीप उसके तट की भूमि, जिसे शिषिणा कहा गया है, राजा न्यूह अपने परिवारों समेत नाव लेकर उसी स्थान पर ठहरे थे । पश्चात् भूमि में आकर वहाँ उन्होंने निवास किया । ४७-६०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में द्वापर के राजाओं का वर्णन
 नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः
कलियुगभूपात्यानवर्णनम्
शौनक उदाच

स्मृतं वर्तते यो दै प्रलयान्ते मुनीश्वर । द्विव्यदृष्टिप्रभावेन ज्ञातं कूहि ततःपरम् ॥१

सूत उदाच

न्यूहो नाम स्मृतो म्लेच्छो विष्णुमोहं तदाकरोह । तदा प्रसन्नो भगवांस्तस्य यंशः प्रबाह्दितः ॥२
 म्लेच्छभाषा कृता तेज वेदवाक्यपराङ्मुखा । कलेश्व बुद्धये ब्राह्मी भाषां कृत्वाऽपशब्दगाम् ॥३
 न्यूहाय दत्तवान्देवो बुद्धीशो बुद्धिगः स्वयम् । विलोमं च कृतं नाम न्यूहेन त्रिसुतस्य वै ॥४
 सिमश्च हामश्च तथा याकूतो नाम विश्रुतः । याकूतः सप्तपुत्रश्च जुम्बो नाजूज एव सः ॥५
 मादी तथा च यूनानस्तूवलोमसकस्तथा । तीरासश्च तथा तेषां नामभिर्देश उच्यते ॥६
 जुष्मा दश कनाब्जश्च रिफतश्च तजर्घमः । तन्नाम्ना च स्मृता देशा द्रुनाद्या ये सुताः स्मृताः ॥७
 इलीशस्तरलीशश्च कित्तीहृदानिरुच्यते । चतुर्भिर्नामभिर्देशात्तेषां तेषां प्रचक्रिरे ॥८
 द्वितीयतनयाद्वामात्सुताश्चत्यार एव ते । कुशो मिश्रश्च कूजश्च कनआंस्तत्र नामभिः ॥९
 देशः प्रसिद्धा म्लेच्छानां कुशात्षट्तनयाः स्मृताः । स वा चैव हवीलश्च सर्वतोरगमस्तथा ॥१०
 तथा सवतिका नाम निमरुहो महाबलः । तेषां पुत्राश्च कलनः सिनारोरक उच्यते ॥११

अध्याय ५
कलियुग के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—मुनीश्वर ! प्रलय के पश्चात् अर्थात् वर्तमान समय में जो राजा विद्यमान है, दिव्य-दृष्टि के प्रभाव से आप उसे जानते हैं, अतः आप उसे बताने की कृपा करें ।

सूत जी बोले—उस म्लेच्छ राजा न्यूह ने अपनी भक्ति से जब विष्णु को मुग्ध कर लिया उस समय प्रसन्न होकर भगवान् ने उसके वंश की वृद्धि की । उन्होंने वेद के विरुद्ध म्लेच्छ भाषा और कलि की वृद्धि के लिए ब्राह्मी भाषा का अपशब्द के रूप में निर्माण किया । १-३। बुद्धि पारगामी बुद्धीश देव ने स्वयं न्यूह के लिए (उपरोक्त रचनात्मक) बुद्धिमत्ता दी । पश्चात् न्यूह ने विलोम रीति से अपने तीनों पुत्रों का ‘सिम’ हाम और ‘याकूत’ नामकरण किया । पुनः याकूत के ‘जुष्म’ माजूज ‘मादी’ ‘यूनान’ ‘तूव’ ‘लोमसक’ एवं ‘तीरास’ नामक ये सात पुत्र हुए । उन्हीं के नामानुसार उनका देश भी बताया गया है—जुष्मा, दशकनाब्ज, रिफत, तजर्घम आदि उन यूनान आदि पुत्रों के देश हैं । इलीश, तरलीश ‘कित्ती’ और ‘हृदानि’ इन्हों चारों नामों के अनुसार उनका पृथक्-पृथक् देश भी बताया गया है । दूसरे पुत्र के ‘कुश’ ‘मिश्र’ ‘कूज’ और ‘कनआन्’ नामक चार पुत्र हुए, जिनके नामानुसार म्लेच्छ देशों की स्थापित हुई । कुश के ‘सवा’ ‘हवील’ ‘सर्वतोरगम्’ सवतिका, और ‘निमरुह’ नामक पुत्र हुए तथा इन लोगों के ‘अकृदा’ वो वुन,

अर्कदो ब्रावुनश्चेदं रसनादेशकाश्च ते । श्रावयित्वा मुनीन्सूतो योगनिद्रादशं गतः ॥१२
 द्विसहस्रे शताब्दान्ते बुद्धा पुनरथाब्रवीत् । सिमवंशं प्रवक्ष्यामि सिमो ज्येष्ठः स मूर्यतिः ॥१३
 राज्यं पञ्चशतं वर्षं तेन म्लेच्छेन सत्कृतम् । अर्कन्सदस्तस्य मुतश्छतुर्स्त्रिशत्त्वं ॥१४
 चतुश्शतं पुनर्जयं सिहस्रस्तत्तनयोऽभवत् । राज्यं तस्य स्मृतं तत्र षष्ठ्यच्युतरचतुशतम् ॥१५
 इवत्स्तस्य मुतो ज्येष्ठः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । फलजस्तस्य तनयश्चत्वारिंशःद्वयं शतम् ॥१६
 राज्यं कृतं तु तस्माच्च रऊ नाम सुतः स्मृतः । सप्तर्त्रिशत्त्वं द्विशतं तस्य राज्यं प्रकीर्तितम् ॥१७
 तस्माच्च जूज उत्पन्नः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । नहूरत्तस्य तनयो वयः षष्ठ्यच्युतरं शतम् ॥
 ॥१८
 राज्यं चकार नृपतिर्बहुशत्रून्विहसयन्
 ताहरत्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्मात्पुत्रोऽविराजनश्च नहूरो हारनस्त्रयः ॥१९
 एवं तेषां स्मृतां वंशा नाममात्रेण कीर्तिताः । सरस्वत्याश्रमं शायेन म्लेच्छभाषा महाध्यापाः ॥२०
 तेषां वृद्धिः कलौ चासीत्संक्षेपेण प्रकीर्तिता । संस्कृतस्यैव वाणी तु भारतं वर्षमूह्याताम् ॥२१
 अन्यजण्डे गता सैव म्लेच्छा ह्यानन्दिनोऽभवन् । एवं ते विप्रं क्षयितं विष्णुभक्तद्विजैस्सह ॥२२

व्यास उवाच

तच्छृत्वा मुनयस्सर्वे विशालायां निवासिनः । नरं नारायणं देवं सम्पूज्य विनयान्विताः ॥२३

रसना देशक आदि पुत्र बताये गये हैं । इतनी बातों को मुनियों को सुनाकर सूत अपनी योगनिद्रा में निषग्न हो गये । ४-१२। दो सहस्र आठ सौ वर्ष के व्यतीत होने पर बुद्ध ने पुनः कहा कि मैं सिमवंश का वर्णन करूँगा, जिस कुल में सिम नामक सर्वप्रथम राजा हुआ था । उस म्लेच्छ राजा ने पाँच सौ वर्ष तक राज्य का उपभोग किया था, पश्चात् उसके 'अर्कन्सद' नामक पुत्र हुआ, जो चार सौ चाँतीस वर्ष तक राज्य सिहासन पर सुशोभित था । उसके 'सिलह' हुए, जिसका राज्यकाल चार सौ आठ वर्ष का बताया गया है । पुनः उसके 'इव्र' हुए, जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया । उसका पुत्र 'फलज' नामक हुआ उसने दो सौ चालीस वर्ष तक राज्य किया । उसके 'रऊ' नामक पुत्र हुआ, जिसका राज-काल दो सौ सैंतीस वर्ष का बताया गया है । पुनः उसके 'जूज' हुए जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया । उसके 'नहूर' हुआ, उसने एक सौ साठ वर्ष तक राज्य किया । नहूर के ताहर हुए, जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया । पश्चात् उसके अविराम, नहूर और हारन, नामक तीन पुत्र हुए । इस प्रकार इन लोगों के वंश का वर्णन केवल नाममात्र से किया गया है । सरस्वती के शाप के कारण इन म्लेच्छों की महाअथधम म्लेच्छ भाषा हुई, जिन म्लेच्छों की वृद्धि कलियुग में संक्षेपतः कही गई है । इस भारत वर्ष नामक प्रदेश का आधारभूत संस्कृत वाणी है, जो बाहर के अन्य प्रदेशों में जाकर वहाँ के (म्लेच्छ) निवासियों को आनन्द देने वाली कही गई है । विप्र ! इस प्रकार विष्णुभक्त ब्राह्मणों द्वारा यह वृत्तान्त तुम्हें सुनाकर समाप्त किया गया । १३-२२

व्यास जी बोले—इसे सुनकर विशाला निवासी समस्त मुनिवृन्द अनुनय-विनय समेत नरनारायण देव की पूजा करके दो सौ वर्ष तक उनके ध्यान में प्रसन्नता पूर्ण निमग्न रहे । तत्पश्चात् शौनकादि

ध्यानं चक्रुमुदा युक्ता द्विशं परिवत्सरान् । तत्प्रश्नाद्वेधितास्तर्वे शौनकाद्यः मुनीश्वराः ॥२४
सन्ध्यातर्पणदेवार्चाः कृत्वा ध्यात्वा जनार्दनम् । लोमहर्षणमासीनं पप्रच्छुविनयान्विताः ॥२५
व्यात्सिंश्च य भाग चिरं जीव महामते । साम्झतं वर्तते यो वै राजा तन्मे वद प्रभो ॥२६

सूत उत्तराच

त्रिसहस्राब्दसम्प्राप्ते कलौ भार्गवनन्दन । आवन्ते शत्रुग्निमाराइसौ साम्पतं वर्तते नृपः ॥२७
म्लेच्छदेशे शकपतिरथ राज्यं करोति वै । शृणु तत्कारणं सर्वे यथा यस्य विवर्धनम् ॥२८
द्विसहस्रे कलौ प्राप्ते म्लेच्छवंशविवर्द्धिता । भूभिर्म्लेच्छमयी सर्वा नानाएवविवर्द्धिता ॥२९
ब्रह्मावर्तमृते तत्र सरस्वत्यास्तटं गुभम् । म्लेच्छाचार्याश्रम सूशाख्यस्तन्मतैः पुरितं जगत् ॥३०
देवार्दनं वेदभाषा नष्टा प्राप्ते कलौ युगे । तत्त्वक्षणं शृणु मुने म्लेच्छभाषाश्रवुर्विधाः ॥३१
वजभाषा महाराष्ट्री यावनी च गुरुण्डिका । तासां चतुर्लक्षविधा भाषाश्वान्यास्तथैव च ॥३२
पानीयं च स्मृतं पानी बुभुक्षा भूख उच्यते । पानीयं पापडीभाषा भोजनं कक्कनं स्मृतम् ॥३३
इस्तिशुद्धरवः प्रोक्त इस्तिनी मसपावनी । आहुतिर्वै आजु इति ददाति च दधाति च ॥३४
पितृपैतरं ब्राता च बादरः पतिरेव च । सेति सा यावनी भाषा हृष्वश्वास्यस्तथापुनः ॥३५
जानुस्थाने जैनुशब्दः सप्तसिन्धुस्तथैव च । सप्तहिन्दुर्यावनी च पुनर्ज्ञेया गुरुण्डिका ॥३६
रविवारे च सण्डे च फालगुने चैव फर्वरी । षष्ठिश्र सिक्सटी ज्ञेया तदुदाहारभीदृशम् ॥३७

मुनीश्वरों ने ज्ञान प्राप्त कर संध्या, तर्पण एवं देवों की पूजा करने के उपरांत जनार्दन भगवान् का ध्यान करके आसनासीन लोगहर्षण से न ब्रतापूर्वक प्रश्न किया । व्यासशिंश्च, महाभाग एवं हे महामत ! आप दीर्घजीवी हों । हे प्रभो ! आधुनिक समय में जो राजा राज्य का उपभोग कर रहा है, उसका वर्णन करने की कृपा कीजिए । २३-२६

सूत जी बोले—भार्गवनन्दन ! कलियुग के तीन सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर इस वर्तमान काल में अवन्तिपुरी में शंख नामक राजा राज्य कर रहा है, म्लेच्छ देश में शकपति जिस प्रकार जिसकी वृद्धि हुई है उसका कारण बता रहा हूँ, मुनो ! कलियुग के दो सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर म्लेच्छ वंश की वृद्धि होगी, जिसमें समस्त पृथिवी के म्लेच्छमय होने पर भाँति-भाँति के पंथों की भी अभिवृद्धि बतायी गयी है । ब्रह्मावर्त प्रदेश के अतिरिक्त किसी अन्य प्रदेश में सरस्वती के तट पर म्लेच्छाचार्य 'मूशा' ने समस्त संसार में म्लेच्छमत का प्रचार किया । देवों की पूजा और वेदभाषा का नष्टप्राय होना कलियुग में बताया गया है । मुने ! म्लेच्छ भाषा चार प्रकार की होती है, उसके लक्षण को बता रहा हूँ, मुनो ! वजभाषा, महाराष्ट्री, यावनी (यवनों की भाषा) और गुरुण्डिका (अंग्रेजी भाषा), यही म्लेच्छ भाषा के चार भेद हैं तथा इन भाषाओं के चार लक्ष अवान्तर भेद कहे गये हैं । इनके प्रचलित समय में पानीय (जल) को पानी, बुभुक्षा को भूख और कहीं पानीय को पापड़ी एवं भोजन को कक्कन, आहुति को आजु इति, जानु के स्थान पर जैनु, और सप्त सिन्धु के स्थान पर हस्त हिन्दु का प्रयोग यवनों की भाषा में किया जायेगा । उसी प्रकार गुरुण्डों (गोरों) की भाषा में रविवार को सण्डे, फाल्गुन मास को फर्वरी, और साठ को सिक्सटी कहा जायेगा, ऐसा

या पवित्रा सप्तपुरी तासु हिंसा प्रवर्तते । दस्यदः शबरा भिल्ला सूखा आर्ये स्थिता नराः ॥३८
म्लेच्छदेशे बुद्धिमन्तो नरा वै म्लेच्छधर्मिणः । म्लेच्छाधीना गुणाः सर्वेऽवगुणा आर्यदेशके ॥३९
म्लेच्छराज्यं भारते च तद्द्वीपेषु स्मृतं तथाः । एवं जात्वा मुनिश्रेष्ठ हर्हि भज महामते ॥४०
तच्छ्रुत्वा नुनयः सर्वे रोदनं चक्रिरे बहु ॥४१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्दशाण्डापरपरयाये कलियुगभूपर्वणं
नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः कलियुगभूपात्यानवर्णनम्

शौनक उवाच

ब्रह्मावर्ते कथं म्लेच्छा न प्राप्तः कारण वद । सूतः प्राह शृणुष्वेदं सरस्वत्याः प्रभावतः ॥१
म्लेच्छाः प्राप्ता न तत्स्थाने काश्यपो नाम है द्विजः । कलौ प्राप्ते सहवाब्दे स्वर्गात्प्राप्तः सुराजया ॥२
आर्यविती च तत्पत्नी दश पुत्रानकलमधान् । काश्यपात्सा लब्धवती तेषां नामानि ने शृणु ॥३
उपाध्यायो दीक्षितश्च पाठकः शुक्लमिक्षकौ । अग्निहोत्री द्विवेदी च त्रिवेदी पाण्डच एव च ॥४
चतुर्वेदीति कथिता नामतुल्यगुणाः स्मृताः । तेषां मध्ये काश्यपश्च सर्वज्ञानसमन्वितः ॥५

कहा गया है (भारत की) पवित्र सातों पुरी में हिंसा होती रहेगी, क्योंकि आर्य प्रदेश में दस्यु, शबर, भिल्ल और सूर्तीं की स्थिति वनी रहेगी । म्लेच्छ देशों में बुद्धिमन् होते हुए मनुष्य म्लेच्छ धर्मी होंगे क्योंकि सभी गुण म्लेच्छों के अधीन और समस्त अवगुण (दोष) आर्य प्रदेशों में बिखरे रहेंगे । भारतवर्ष एवं द्वीपान्तरों में म्लेच्छों का राज्य रहेगा, मुनिश्रेष्ठ ! तथा महामते ! ऐसा समझकर भगवान् का भजन कीजिये । ऐसी बातें सुनते ही सभी मुनियों ने बहुत रुदन किया ।२७-४१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुग के राजाओं का वर्णन

नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६ कलियुग के राजाओं का वर्णन

शौनक ने कहा—ब्रह्मावर्त प्रदेश में म्लेच्छों की पहुँच न होने पायी, इसका कारण बताने की कृपा कीजिये । सूत जी बोले—सुनो ! सरस्वती के प्रभाव से म्लेच्छ उस स्थान में पहुँच नहीं पाये । कलियुग के एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर देवों की आज्ञा प्राप्त कर काश्यप नामक द्विज का उस प्रदेश में स्वर्ग से आगमन हुआ । आर्यविती उनकी पत्नी का नाम था । उन दोनों (पति-पत्नी) ने पवित्रता पूर्ण दशपुरों को उत्पत्ति किया उनके नामों को बता रहा हूँ सुनो ! १-३। उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डेय और चतुर्वेदी यही उनके नाम तथा नामानुसार उनमें गुण बताये गये

काश्मीरे प्राप्तवान्सोऽपि जगदम्बां सरस्वतीम् । तुष्टाव पुजनं कृत्वा रक्तपुष्टैस्तथाकृतैः ॥६
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पुष्पाञ्जलिसमन्वितः ॥७

काश्यप उवाच

मातः शङ्कुरदयिते मायिते करुणा कुतो नास्ति । भोऽसि^१ त्वं जगदम्बा जगतः किं भां बहिर्नैर्थसि ॥८
देवि त्वं तुरहेतोर्धर्मद्रोहिणमाशु हंसि मातः । उत्तमसंस्कृतभाषां त्वं कृह म्लेच्छाश्रू मोहये: शीघ्रम् ॥९
अम्ब त्वं बहुरूपा हुङ्काराद्भ्रलोचनं हंसि । भीमं दुर्गा दैत्यं हत्वा जगतां सुखं नयसि ॥१०
दम्भं मोहं घोरं गर्वं हत्वा सदा सुखं शेषे । बोधय मातर्जगतो दुष्टान्नष्टान्करु त्वं दै ॥
तदा प्रसन्ना सा देवी भो मुनेस्तस्य भानसे ॥११
बासं कृत्वा ददौ ज्ञानं मिश्रदेशे मुनिर्गतः । सर्वान्म्लेच्छान्मोहयित्वा हृत्वाथ तान्दिजन्मनः ॥१२
संख्यादशशहस्रं च नरवृन्दं द्विजन्ननाम् । द्विसहस्रं स्मृता वैश्याः शेषाः शूद्रमुताः स्मृताः ॥१३
तैः सार्द्धमार्यदेशे स सरस्वत्याः प्रसादतः । अवसद्वै मुनिश्रेष्ठो मुनिकार्यरतः सदा ॥१४
तेषामार्यसमूहानां देव्याश्च वरदानतः । वृद्धिर्भवति बहुला चतुष्कोटिनराः स्त्रियः ॥१५

हैं । उन लोकों में काश्यप सर्वज्ञानी थे । उन्होंने काश्मीर में जाकर रक्तवर्ण के पुष्पों और अक्षतों से जगदम्बा सरस्वती की पूजा की । धूप, दीप, तथा नैवेद्य अर्पित करने के उपरांत पुष्पाञ्जलि लेकर प्रार्थना करना आरम्भ किया । ४-७

काश्यप बोले—मातः ! शंकरप्रिये ! ऐरे लिये तुम्हें करुणा क्यों नहीं हो रही है ? आप जगत् की माता हैं, तो मुझे जगत् के बाहर क्यों निकाल रही हैं । हे देवि, मातः ! देवों के कार्य के लिए आप धर्मद्रोही का शीघ्र नाश करती हैं । उत्तम संस्कृत भाषा की ही प्रधानता रहे अतः म्लेच्छों को शीघ्र मोहित करो । अम्ब ! तुम्हारे अनेकों रूप हैं, हुंकार से धूमलोचन तथा उस भीषण दुर्गादैत्य का वध करके आपने समस्त जगत् को सुखी बनाया है । दम्भ, मोह, घोर अभिमान का नाश करके आप सदैव सुख शयन करती हों । अतः मातः ! मुझे ज्ञान प्रदान कर जगत् के दुष्टों का नाश करो ! मुने उस समय देवी प्रसन्न होकर उनके मानस स्थल में निवास करके उन्हें ज्ञान प्रदान किया, जिसके कारण वे महर्षि मिश्र देश के लिए प्रस्तान किये । वहाँ उन्होंने सभी म्लेच्छों को मोह-मुग्ध (जडवत्) करके उनमें दशसहस्र को ब्राह्मण क्षत्रिय, दो सहस्र को वैश्य और शेष को शूद्र की कोटि में रखकर कुछ दिन के उपरांत उनके पुत्रों समेत इस आर्य प्रदेश में आकर सरस्वती की प्रसन्नता से निवास करते हुए उस मुनिश्रेष्ठ ने सदैव मुनि-कार्य में निरत रहकर अपना जीवन व्यतीत किया । देवी के वरदान द्वारा उन आर्य समूहों की अत्यन्त वृद्धि हुई, जिसमें चार करोड़ स्त्री पुरुष की संख्या कही गई है । उनके पुत्र एवं पौत्रों के वर्तमान

१. “भोऽसि” इत्यन्त्र “भो भगो अधो अपूर्वस्य योऽशि” इत्यनेन यादेशे कृते “ओतो गार्यस्य” इत्यनेन यत्तीपे कृते “भो असि” इत्ययमेवसंधिः समीचीनः । अयमुपरिनिर्दिष्टः संधिस्त्वार्वाः । केषां-चिन्मतेन भवसि इति योजनीयमित्येव सुवचमिति परास्वम् ।

तेषां पुत्राश्र पौत्राश्र तद्भूदः काश्ययो मुनिः । विरोत्तरशतं वर्षं तत्य राज्यं प्रकीर्तितम् ॥१६
 राज्यपुत्राख्यदेशे च शूद्राश्राष्टसहस्रकाः । तेषां भूपश्चार्यपृथुस्तस्माज्जातस्स मागधः ॥१७
 मागधं नाम तत्पुत्रमभिधिच्य ययो मुनिः । इति श्रुत्वा भृगुश्रेष्ठः शौनको हर्षमागतः ॥१८
 सूतं पौराणिकं नत्वा विष्णुध्यानपररोऽभवत् । पुनश्च श्रुतिवर्षान्ते बोधिता मुनयस्तथा ॥१९
 नित्यनैमित्तिकं कृत्वा एपच्छुरिदमादरात् । लोमहर्षण मे बूहि के राजानश्च मागधात् ॥
 कलौ राज्यं कृतं यैस्तु व्यासशिष्य वदस्व नः ॥२०

सूत उवाच

मागधो मागधे देशे प्राप्तवान्काश्यपात्मजः ॥२१
 पितृराज्यं त्वंत तेन त्वायदेशः चृथकृतः । पाञ्चालात्पूर्वतो देशो मागधः परिकीर्तिः ॥२२
 आप्नेयां च कलिङ्गश्च तथावन्तस्तु दक्षिणे । आनर्तदेशो नैऋत्यां सिंधुदेशस्तु पश्चिमे ॥२३
 वायव्यां कैक्यो देशो मददेशस्तथोत्तरः । ईशाने चैव कोणिन्द्रश्चार्यदेशश्च तत्कृतः ॥२४
 देशनाम्ना तस्य सुता मागधस्य महात्मनः । तेभ्योऽशानि प्रदत्तानि तत्यश्रात्कुपुद्धरन् ॥२५
 बलभद्रस्तदा तुष्टो यज्ञभादेन भावितः । शिशुनामः क्रतोर्जातो बलभद्रांशसम्भवः ॥२६
 शतवर्षं कृतं राज्यं काकवर्मा सुतोऽभवत् । तद्राज्यं नवतिवर्षं क्षेमधर्मा ततोऽभवत् ॥२७
 अशीतिवर्षं राज्यं तत्क्षेत्रौजास्तत्सुतोऽभवत् । दशहीनं कृतं राज्यं वेदमिश्रस्तत्सुतोऽभवत् ॥२८

समय में भी काश्यप मुनि ही राजा थे । उन्होंने एक सौ बीस वर्ष राज्य किया । राजपुत्र के प्रदेश में आठ सहस्र शूद्र निवासी थे । उनका राजा आर्य पृथु था, जिसके मागध नामक पुत्र हुआ । उसी मागध राजकुमार का राज्याभिषेक करके मुनि ने प्रस्थान किया । इसे सुनकर भृगुश्रेष्ठ शौनक अत्यन्त हर्षित हुए । पौराणिक सूत जी को नमस्कार करके पुनः विष्णु को ध्यान करना आरम्भ किया । चार वर्ष के उपरांत ज्ञान संपन्न होने पर मुनियों ने नित्य-नैमित्तिक कर्म करके नम्रता पूर्वक पूँछा—लोमहर्षण ! मगध के पश्चात् कौन-कौन राजा हुए, तथा जिन्होंने कलि में राज्य का उपभोग किया है, हे व्यास शिष्य ! उपरोक्त सभी बातें बताने की कृपा कीजिए ॥८-२०

सूत जी बोले—काश्यप के पुत्र उस मागध ने मागध देश में पहुँच कर उसे पिता का राज्य समझ कर आर्य प्रदेश को उससे पृथक् कर लिया । पाञ्चाल देश से पूर्व का प्रदेश मागध बताया गया है । उसी प्रकार उसके आग्नेय में कलिंग, दक्षिण में अवन्त नैऋत्य में आनर्त, पश्चिम में सिंधुदेश, वायव्य में कैक्यदेश उत्तर में मददेश और ईशान में कोणिन्द्र देश हैं, उसी को आर्यदेश कहा गया है । उस महात्मा मागध के देश नामक पुत्र था । उन्हें उनका अंश प्रदानकर यज्ञानुष्ठान, आरम्भ किया । उस यज्ञानुष्ठान से प्रभावित होकर बलभद्र ने अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की । पश्चात् बलभद्र के अंश से उस यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर शिशुनाम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने सौ वर्ष तक राज्य किया । शिशुनाम के काकवर्मा हुए, उन्होंने नब्बे वर्ष तक राज्य किया । काकवर्मा के क्षेमधर्मा हुए जिन्होंने अस्ती वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । क्षेमधर्मा के क्षेत्रौजा हुए जिन्होंने उनसे दश वर्ष कम समय तक राज्य किया । पुनः उनके वेदमिश्र हुए उसने भी अपने पिता से दश वर्ष कम समय तक राज्य किया । वेदमिश्र के अजात

दशहीनं कृतं राज्यं ततोऽजातरिपुस्मृतः । दशहीनं कृतं राज्यं दर्शकस्तनयोऽभवत् ॥२९
 दशहीनं कृतं राज्यमुदयाभस्ततोऽभवत् । दशहीनं कृतं राज्यं नन्दवर्धन एव तत् ॥३०
 दशहीनं कृतं राज्यं तस्मान्नन्दसुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शूद्रीगर्भसमुद्घवः ॥३१
 नन्दाज्ञातः प्रनन्दश्च दशवर्षं कृतं पदम् । तस्माज्ञातः परानन्दः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥३२
 तस्माज्ञातस्समा नन्दो विंशद्वर्षं कृतं पदम् । तस्माज्ञातः प्रियानन्दः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥३३
 देवानन्दस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । यज्ञभङ्गः सुतस्तस्मात्पितुरद्वं कृतं पदम् ॥३४
 मौर्यनन्दस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । महानन्दस्ततो जातः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥३५
 एतस्मिन्नेत्रं काले तु कलिनः संस्मृतो हरिः । काश्यपादुद्घवो देवो गौतमो नान विश्रुतः ॥३६
 बौद्धधर्मं च संस्कृत्य पट्टणे प्राप्तवान्हरिः । दशवर्षं कृतं राज्यं तस्माच्छाक्यमुनिः स्मृतः ॥३७
 विंशद्वर्षं कृतं राज्यं तस्माच्छुद्घोदनोऽभवत् । त्रिशद्वर्षं कृतं राज्यं शाक्यर्दस्ततोऽभवत् ॥३८
 शतांद्रो द्विसहस्रेऽब्दे व्यतीते सोऽभवन्नपः । कले: प्रथमवरणे वेहमार्गो विनाशितः ॥३९
 षष्ठिवर्षं कृतं राज्यं सर्वबौद्धा नराः स्मृताः । नरेषु विष्णुर्नूपतिर्थया राजा तथा प्रजाः ॥४०
 विष्णोर्वर्यानुसारेण जगद्वर्द्धमः प्रवर्तते । तस्मिन्हरौ ये शरणं प्राप्ता मायापतौ नराः ॥४१
 अपि पापसमाचारा मोक्षवन्तः प्रकीर्तिताः । शक्यासिहादुर्द्धर्सिहः पितुरद्वं कृतं पदम् ॥४२

रिपु, अजातरिपु के दर्भक, दर्भक के उदयाश्व, उदयाश्व के नंदवर्धन, नंदवर्धन के नंद हुआ, जिसका जन्म ग्रहण करना किसी शूद्री के गर्भ से बताया जाता है, उसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया। उपरोक्त सभी राजवन्द ने अपने पिता से उत्तरोत्तर दश वर्ष न्यून समय तक राज्य किये हैं। पुनः नन्द के प्रनन्द हुआ जिसने दश वर्ष तक राज्य किया। उसके परानन्द हुआ जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया। परानन्द के समानन्द हुआ उसने बीस वर्ष तक राज्य किया। समानन्द के प्रियानन्द, प्रियानन्द के देवानन्द, और देवानन्द के यज्ञभंग नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया। उपरोक्त सभी राजाओं ने उत्तरोत्तर अपने पिता के समान काल तक राज्य किया। प्रसन्न होकर हरि ने काश्यप द्वारा गौतम के नाम से जन्म ग्रहण किया ऐसा कहा गया है। उन्होंने बौद्धधर्म को अपनाकर पट्टना जाकर दशवर्ष तक राज्य किया। पश्चात् उनके शाक्य मुनि हुए, जिन्होंने बीस वर्ष तक राज्य किया। शाक्य मुनि के शुद्धोदन हुए, उन्होंने तीस वर्ष तक राज्य किया। पुनः उनके शाक्य सिंह हुआ। जिसका जन्म काल दो सहस्र सात सौ वर्ष कलि के व्यतीत होने पर बताया गया है। कलि के इस प्रथम चरण के समय इसी राजा ने वेद मार्ग को नष्ट किया है। इसने साठ वर्ष तक राज्य किया है। इसके इतने समय में राजकाल में सभी मनुष्य बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गये। मनुष्यों में राजा विष्णु का रूप माना जाता है, और जैसा राजा वैसी प्रजा का होना नियमतः सिद्ध है। विष्णु के प्राक्रम के अनुसार जगत् का धर्म प्रचलित होता है। उस समय उस मायापति भगवान् के शरण में जो मनुष्य पहुँच जाते हैं, वे कैसे भी पापी क्यों न हो मोक्ष के भागी हो ही जाते हैं। शाक्य सिंह के बुद्ध सिंह हुआ, जिसने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया। बुद्ध सिंह के

चन्द्रगुप्तस्तस्य सुतः पौरसाधिपतेःसुताम् । सुलूवस्य तथोद्धारा यावनीदौद्धतत्परः ॥४३
 शस्त्रिवर्षं कृतं राज्यं बिन्दुसारस्ततोऽभवत् । पितृस्तुल्यं कृतं राज्यमशोकस्तनयोऽभवत् ॥४४
 एतस्मिन्नेव काले तु कन्यकुञ्जो द्विजोत्तमः । अर्बुदं शिखरं प्राप्य ब्रह्महोममथाकरोत् ॥४५
 वेदमन्त्रप्रभावाच्च जाताश्वत्वात् ऋक्त्रियाः । प्रमरसामवेदी च चपहानिर्यजुविदः ॥४६
 त्रिवेदी च तथा शुक्लोथर्वा स यरिहारकः । ऐरावतकुले जातानगजानालहृते पृथक् ॥४७
 अशोकं स्ववरं चक्रुस्सर्वं बौद्धा दिनाशिताः । चतुर्लक्षा स्मृता बौद्धाः दिव्यशस्त्रैः प्रहारिताः ॥४८
 अवन्ते प्रमरो शूरश्रन्त्योजनविस्तृताम् । अम्बावतीं नाम पुरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥४९
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्दुर्गखण्डापरपरपर्ये
 कलियुगभूपर्वणोपाख्यानं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः

शशिवंशभूपर्वणनम्

सूत उवाच

चित्रकूटगिरेदेशे परिहारो महीपतिः । कलिङ्गरपुरं रम्यमक्षोशायतनं स्मृतम् ॥१
 अध्यास्य बौद्धहन्ता स्तु सुखितोभवद्वृजितः । राजपुत्राख्यदेशे च चपहानिर्महीपतिः ॥२

चन्द्र गुप्त हुए, जिसने पौरसाधिपति की सुलूवस्य की पुत्री उस यवनी के साथ पाणिग्रहण करके उस बौद्ध ने पत्नी समेत साठ वर्ष तक राज्य किया । चन्द्रगुप्त के बिंदुसार हुआ उसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया । बिंदुसार के अशोक हुए । उसी समय में कोई ब्राह्मण श्रेष्ठ कान्यकुञ्ज ने अर्बुद पर्वत के शिखर पर ब्रह्महवन आरम्भ किया था । वहाँ वेदमंत्र के प्रभाव से चार ऋक्त्रिय उत्पन्न हुए जिसमें प्रमर सामवेदी, चपहानि यजुर्वेदी एवं त्रिवेदी और शुक्ल अर्थवदेव के ज्ञाता थे । इन लोगों के छढ़ने के लिए ऐरावत कुल में उत्पन्न पृथक-पृथक् हाथी नियुक्त थे । इन्होंने अशोक को अपने अधीनकर उन समस्त बौद्धों का जिनकी संख्या चार लक्ष बतायी जाती है, दिव्य शस्त्रों द्वारा विनाश किया पश्चात् प्रमर नामक राजा ने अनन्त प्रदेश की चार योजन की दिस्तृत अम्बावती नामक नगरी को अपनी राजधानी बनाकर सुख पूर्वक रहने लगा । ३६-४९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुग के राजाओं का वर्णन
 नामक छठां अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

शशिवंश के राजाओं का वर्णन

सूत जी बोले—परिहार नामक राजा ने चित्रकूट पर्वत के प्रदेश में रमणीक एवं एक कोश का विस्तृत कलिजर नामक नगर को अपनी राजधानी बनाया । उसमें अपना निवास स्थान बनाकर उस बौद्धहन्ता ने सुखी-जीवन व्यतीत किया । राजपुत्र नामक प्रदेश में राजा चपहानि अजमेर नामक नगर में, जो

अजमेरपुरं रथं विधशोभासमन्वितम् । चातुर्वर्षयुतं दिव्यमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥३
शुक्लो नाम महीपालो गत आनर्तमण्डले : द्वारकां नाम नगरीमध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥४

शौनक उवाच

तेषामगन्युद्भवानां च ये भूपा राज्यसत्कृताः । तान्मे बूहि महाभाग सूतो वाक्यमथाद्वीत् ॥५
गच्छध्वं ब्राह्मणाः सर्वे योगनिद्रावशो ह्यहम् । तच्छृत्वा मुनयः सर्वे विष्णोर्ध्यर्थानि प्रत्यक्षिरे ॥६
पूर्णे द्वे च सहस्रान्ते सूतो वचनमध्वीत् : राप्तांत्रिशशते वर्षे दशाब्दे चाधिके कलौ ॥७
प्रमरो नाम भूपालः कृतं राज्यं च षट्सम्याः । महामदस्ततो जातः पितुरर्धं कृतं पदम् ॥८
देवापिस्तनयस्तस्य पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । देवदूतस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं स्मृतं पदम् ॥९
तस्माद् गन्धर्वसेनश्च यज्ञाशादब्दभूषदम् । कृत्वा च स्वसुतं शङ्खमभिषिद्य वनं गतः ॥१०
शङ्खेन तत्पदं प्राप्तं राज्यं त्रिशत्समाः कृतम् । देवाङ्गना वीरमती शक्रेण प्रेषितः तदा ॥११
गन्धर्वसेन सम्प्राप्य पुत्ररत्नमजोजनत् । सुतस्य जन्मकाले तु नभसः पुष्पवृष्टयः ॥१२
पेतुर्दुर्दुभयो नेदुर्वान्ति वाताः सुखप्रदाः । शिवदृष्टिर्द्विजे नाम शिश्रैस्सार्धं वनं गतः ॥१३
विंशद्भूः कर्मयोगं च समाराध्य शिवोऽभवत् । पूर्णे त्रिशच्छते वर्षे कलौ प्राप्ते भयद्वारे ॥१४
शकानां च विनाशार्थमार्यधर्मविवृद्धये । जातशिवाज्ञया सोऽपि कैलासाद्गुह्यकालयात् ॥१५

निर्माण कला के सौन्दर्य से पूर्ण और चारों वर्णों के मनुष्यों से युक्त था, अपना निवास स्थान बनाकर सुख का अनुभव करने लगा। और शुक्ल नामक भूपाल ने आनर्त प्रदेश के द्वारका नामक नगर में रहकर सुख का अनुभव किया। १-४

शौनक ने कहा—महाभाग ! अग्निद्वारा उत्पन्न राजाओं का, जिन्होंने सम्मानपूर्वक राज्य का उपभोग किया है, वर्णन करने की कृपा कीजिये । तत्पश्चात् सूत जी ने कहा—आप सभी ब्राह्मण वृन्द यहाँ से चले जाने की व्यवस्था करें तो अच्छा हो, क्योंकि मैं इस समय योगनिद्रा के वशीभूत होने के नाते कुछ भी बताने में असमर्थ हूँ इसे सुनकर सभी मुनिवृन्द भगवान् विष्णु का ध्यान करने लगे । दो सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर सूत जी ने पुनः उन महर्षियों से कहा—तीन सहस्र सात सौ दश वर्ष काल के व्यतीत होने पर प्रमर नामक राजा हुए, जिसने छह वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । प्रमर के महामह हुए, उन्होंने अपने पिता के आधे समय तक राज्य किया । महामह के देव, देव के देवदूत, और देवदूत के गन्धर्वसेन हुए जिन्होंने पचास वर्ष तक राज्य किया, शेष और भूप लोगों ने अपने पिता के समान काल तक । पश्चात् गन्धर्वसेन ने अपने पुत्र राजा शंख का अभिषेक करके वन में निवास करने के लिए प्रस्थान किया । शंख के तीस वर्ष राज्योपभोग करने के उपरात देवराज इन्द्र ने वीरमती नामक देवांगना को जंगल निवासी उनके पिता गन्धर्वसेन के पास भेजा जिसे अपना कर उन्होंने पुत्ररत्न की प्राप्ति की । उस पुत्र रत्न के जन्म ग्रहण के समय आकाश से पुष्पों की वृष्टि, दुर्दुभी की ध्वनि, और मनोहर वायु का संचार होने लगा । (उस पुत्र की) शिव वृष्टि (मांगलिक वृष्टि) होने के नाते वह द्विज अपने शिष्यों को साथ लेकर जंगल चला गया । वहाँ जाकर उसने कर्मयोग के अभ्यास से शिवस्वरूप की प्राप्ति की । कलि के तीन सहस्र वर्ष के व्यतीत होने पर उस भीषण समय में शकों के विनाशार्थ और आर्यधर्म की वृद्धि के लिए उसे

विक्रमादित्यनामानं पिता कृत्वा मुमोद ह । स बालोऽपि महाप्राज्ञः पिटृमातृप्रियङ्कः ॥१६
 पञ्चवर्षे वयः प्राप्ने तपसोऽर्थे वनं गतः । द्वादशाब्दं प्रयत्नेन विक्रमेण कृतं तपः ॥१७
 पश्चादम्बावतीं दिव्यां पुरीं यातः श्रियान्वितः । दिव्यं सिहासनं रम्यं द्वार्त्रिशत्पूर्तिसंयुतम् ॥१८
 शिवेन प्रेषितं सोऽपि तस्मै पदमग्रहीत् । वैतालस्तस्य रक्षार्थं पार्वत्या निर्मितो गतः ॥१९
 एकदा स नृपो वीरो महाकालेश्वरस्यलम् । गत्वा सम्पूजयामास देवदेवं पिनाकिनम् ॥२०
 सभा धर्ममयी तत्र निर्मिता व्यूहविस्तरा । नानाधातुकृतस्तम्भा नन्नामणिविभूषिता ॥२१
 नानाद्वुमलताकीर्णा पुष्पवल्तीभिरचिता । तत्र सिहासनं दिव्यं स्थापितं तेजं शैनक ॥२२
 आहूय लाहूणान्मुख्यान्देवेदाङ्गपारगान् । पूजयित्वा विधानेन धर्मगाथामथाशृणोत् ॥२३
 एतस्मन्नन्तरे तद्र वैतालो नाम देवता । स कृत्वा ब्रह्मणं रूपं जयाशीर्भिः प्रशस्य तन् ॥२४
 उपदिश्यासने विप्रो राजानमिदमग्रहीत् । यदि ते अवणे श्रद्धा विक्रमादित्यभूपते ॥२५
 वर्णयामि महाख्यानमिति हाससमुच्चयम् ॥२६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्भुगखण्डापरपर्याये
 कलियुगसम्भूतरविशशिवंशभूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७
 ॥ इति प्रथमखण्डं सम्पूर्णम् ॥ १

शिव की आज्ञा से गुह्यकों के यहाँ से पुनः प्रत्यक्ष होना पड़ा । ५-१५। पिता ने उस पुत्र का 'विक्रमादित्य' नामकरण करके अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की । वह बालक भी महाबुद्धिमान् एवं अपने पिता-माता का अत्यन्त प्रिय करने वाला हुआ । पाँच वर्ष की अवस्था में उसने तप करने के लिए वन-प्रस्थान किया । बारह वर्ष तक दृढ़ प्रयत्न एवं विक्रम पूर्वक तप करने के उपरांत श्री सम्पन्न होकर वह अम्बावती नामक दिव्य पुरी में गया । वहाँ एक रमणीक दिव्य सिहासन, जिसमें बत्तीस सूर्यतीर्याँ (कठपुतरी) बनी हुई थी, शिव ने उसके लिए भेजा । उसे उसने स्वीकार किया । पार्वती जी ने उसके रक्षार्थ एक वैताल को उत्पन्न कर वहाँ भेज दिया । एक बार उस वीर राजा ने महाकालेश्वर के यहाँ जाकर देवाधिदेव पिनाकी शिवजी की पूजा कीं वहाँ धर्म सभा का भी निर्माण किया गया, जिसमें विस्तृत व्यूह की रचना और भाँति-भाँति के धातुओं के खम्भे लगाये गये थे वह मणियों से विभूषित, अनेक भाँति के वृक्षों एवं लताओं से आच्छान्त और पुष्प वल्लियों से संयुक्त थी । शैनक ! उसी धर्म सभा में उन्होंने उस दिव्य सिहासन की स्थापना की । पश्चात् मुख्य-मुख्य ब्राह्मणों को जो वेद-वेदाङ्ग निष्णात थे, बुलाकर सविधान उनकी अभ्यागत सेवा करके उनके द्वारा धर्मगाथा का श्रवण किया । उसी बीच उस वैताल नामक देव ने भी ब्राह्मण का वेष धारण कर 'जय हो' इस प्रकार के आशीर्वाद प्रदान समेत उनकी प्रशंसा करते हुए आसनासीन होकर राजा से कहा । राजन्, विक्रमादित्य ! यदि आप को सुनने की इच्छा है, तो मैं इतिहासों से पूर्ण एक महा आख्यान का वर्णन कर रहा हूँ मुनो— १६-२६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुग में उत्पन्न शशिवंश के भूपों का वर्णन
 नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

द्वितीयखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उनाच

इत्युक्तस्तु तु वैतालो महाकालेश्वरस्थितः । शिवं मनसि संस्थाप्य राजान्मिदमब्रवोत् ॥१
 विक्रान्तादित्यभूपालं शृणु गाथां मनोरनाम् । वाराणसी पुरी रम्या महेशो यत्र तिष्ठति ॥२
 चातुर्वर्णप्रजा यत्र प्रतापमुकुटे नृपः । महादेवी च महिषी धर्मज्ञस्य महीपते ॥३
 तत्पुत्रो वज्रमुकुटो मन्त्रिणः सुतवल्लभाः । षोडशाब्देऽथ सम्प्राप्ते हयाहूङ्को वनं गतः ॥४
 अमात्यतनयश्चैव बुद्धिदक्ष इति श्रुतः । हयाहूङ्को गतः सार्धं समानवयसा वने ॥५
 स दृष्ट्वा विपिनं रम्यं मृगपक्षिसमन्वितम् । मुमोद वज्रमुकुटः कामाशयवशं गतः ॥६
 तत्र दिव्यं सरो रम्यं नानापक्षिनादितम् । तस्य कूले शिवस्थानं मुनिवृद्धैः प्रभूजितम् ॥७
 दृष्ट्वा तत्र गतौ वीरौ परमानन्दमापतुः । एतस्मिन्नन्तरे भूपे करणाटकं भूपते ॥८
 दन्तवक्तस्य तनया नाम्ना पदमावती मता । कामदेवं नमस्कृत्य कामिनी कामरूपिणी ॥९
 चिक्रीडं सखिभिः क्रीडां सरोमध्ये मनोहरा । तदा तु वज्रमुकुटो मन्दिरादागतो बहिः ॥१०

दूसरा खण्ड

अध्याय १

कलियुग के इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—महाकालेश्वर में स्थित उस वैताल ने मन में शिवजी को स्थापित कर राजा में कहा—राजन्, विक्रान्तादित्य ! मैं एक मनोरम गाथा सुना रहा हूँ, सुनो—वाराणसी (वनारस) की उस रमणीक नगरी में जिसमें महेश्वर निवास करते हैं, और जहाँ चारों वर्णों की प्रजाएँ रहती हैं, प्रताप मुकुट नामक राजा राज कर रहा था । उस धर्मज्ञ राजा की प्रधान रानी का नाम महादेवी था । उसके पुत्र का नाम वज्रमुकुट था, जो मंत्री के पुत्रों का परमप्रेमी था । सोलह वर्ष की अवस्था में वह घोड़े पर सवार होकर किसी जंगल में गया । मंत्री का पुत्र बुद्धिदक्ष भी समान वय होने के नाते घोड़े पर बैठकर उसके साथ चला गया । वहाँ उस मनोहर जंगल को देखकर, जो पशुओं और पक्षियों से युक्त था, राजकुमार वज्रमुकुट आनन्द विभोर हो गया, किन्तु साथ-साथ कामविवश भी हुआ । १-६ । वहाँ पर एक दिव्य एवं मनोरम तालाब दिखायी पड़ा, जो पक्षियों के कलरव ध्वनि से मुखरित हो रहा था । उसके तट पर एक शिवालय को देखकर, जो महर्षियों से अत्यन्त पूजनीय था, वे दोनों वीर परमहर्षित हुए । उसी समय करनाटक के राजा दंतवक्त की कन्या पदावती ने, जो कामिनी, काम की स्त्री रति के समान थी, कामदेव को नमस्कार करके सखियों समेत उस तालाब में क्रीड़ा करना आरम्भ

दृष्ट्वा पद्मावतीं बालं तुल्यरूपगुणान्विताम् । मूर्च्छितः पतितो भूमौ सा दृष्ट्वा सा तु मुमोहत् कै ॥११
 प्रबुद्धो वज्रमुकुटो मां याहि शिवशंकर । इत्युक्त्वा भूपतनयः पुनर्बालां ददर्श ह ॥१२
 शिरसः पद्मकुसुमं सा गृहीत्वा तु कर्णयोः । कृत्वा चलान दशनैः पादयोर्देवं धत्ती पुनः ॥१३
 पुनर्गृहीत्वा तत्पुष्यं हृदये सम्प्रवेशितम् । इति भावं च सा कृत्वाऽस्तिभिः सार्थं यथौ गृहम् ॥१४
 तीर्थार्थं च समं पित्रा सम्प्राप्ता गिरिजावने । तस्यां गतायां स नृपो मारद्वाणेन पीडितः ॥१५
 महतीं मानसीं पीडां प्राप्तवान्मोहमगतः । उन्मादीव हत्तो भूत्वा खाद्यपानविदर्जितः ॥१६
 ध्यात्वा पद्मावतीं बालां भौनद्रतभचीकरत् । तदा कोलाहलो जातः प्रतापमुकुटान्तिके ॥१७
 कुमारः कां दशां प्राप्त इति हहेति सर्वतः । द्विदिवान्ते मन्त्रिसुतो बुद्धिदक्षो विश्वारदः ॥१८
 अब्रवीहृज्रमुकुटं सत्यं कथय भूपते । स आह कारणं सर्वं यथा जातं सरोवरे ॥१९
 तच्छृत्वा बुद्धिदक्षश्च विहस्याह महीपतिम् । महाकष्टेन सा देवीं मित्रत्वं हि गमिष्यति ॥२०
 करणाटकभूपस्य दन्तवक्षस्य सा मुता । यद्यावतीति विल्याता दधती त्वां स्वमानसे ॥२१
 पुष्पभादेन ज्ञात्वाहं त्वां नयाभिति तदन्तिके । इत्युक्त्वा तस्य पितरं प्रतापमुकुटं प्रति ॥२२
 आहाज्ञां देहि भूपाल यास्येहं कारणाटके । तद्सुतस्य चिकित्सार्थं स वज्रमुकुटोऽचिरम् ॥२३
 आयामि नाड्रं सन्देहो यदि जीवयसे मुतम् । तथेति मत्वा स नृपः प्रादात्पुत्रं च मन्त्रिणे ॥२४

किया । उस समय वज्रमुकुट मंदिर से बाहर निकलकर कुमारी पद्मावती को, जो रूप गुण में उसके अनुरूप थी, देखकर मूर्च्छित होकर भूमि में गिर गया, और वह कुमारी भी राजकुमार को देखकर मोहित हो गई । चैतन्य होने पर वज्रमुकुट ने कहा—शिव, शंकर ! मेरी रक्षा करो ! पश्चात् पुनः राजकुमार ने उस कामिनी की ओर देखा । ७-१२ । उस समय राजकुमारी ने शिर से कमल पुष्प लेकर उसे कानों में लगाकर दाँतों से काटकर अपने दोनों चरणों के नीचे रख लिया, पुनः उसे उठाकर हृदय (चोली) के भीतर रख लिया । इस प्रकार का भाव प्रकट कर वह सखियों के साथ घर चली गई । वह इस पार्वती के जंगल में अपने पिता के साथ तीर्थ-यात्रा करने आई थी । उसके चले जाने पर वह राजकुमार अत्यन्त काम पीडित होने लगा । उसे इतनी अधिक मानसिक पीड़ा हुई कि वह मूर्च्छित हो गया । पश्चात् उन्मादी पुरुष की भाँति खान-पान का भी त्याग कर दिया । बोलना बन्द कर दिया । इस प्रकार उसके मौन-ब्रत धारण करने से इतना महान् कोलाहल हुआ कि राजा प्रताप मुकुट से भी यह बात छिपी न रही । ‘हा’ कुमार की कैसी अवस्था प्राप्त हो गई, यही भावना चारों ओर फैल गई तीन दिन के उपरांत मंत्रि-पुत्र बुद्धिदक्ष ने, जो कुशल व्यक्ति था, वज्रमुकुट से कहा—भूपते ! सत्य बात क्या है ? उसने भी तालाब के तट पर जो कुछ जिस प्रकार से हुआ था, कह सुनाया । उसे सुनकर बुद्धिदक्ष ने हँसकर राजा से कहा—वह देवी बड़ी कठिनाई से मित्र बन सकेगी । १३-२० । उसने (उसके किये हुए भाव का अर्थ भी) बताया कि—करणाटक प्रदेश के राजा दंतवक की वह कन्या है, पद्मावती उसका नाम है । तुम्हें वह चाहती है । उसके द्वारा किये गये पुष्प के भाव से मैंने यह सब कुछ समझ लिया है और उसी द्वारा तुम्हें उसके समीप ले चल रहा हूँ । ऐसा कहकर उनके पिता प्रताप मुकुट से उसने कहा—हे राजन् ! आप आज्ञा प्रदान करें, मैं आपके पुत्र की चिकित्सा के लिए करणाटक जा रहा हूँ । वज्रमुकुट समेत मैं शीघ्र ही वहाँ से वापस आऊँगा । यदि पुत्र को जीवनदान देना चाहते हैं तो अविलम्ब इसे

हयारुद्धौ गतौ शीघ्रं दन्तवक्षस्य पत्तने ! काचिद्वृद्धा स्थितः तत्र तस्या गेहं च तौ गतौ ॥२५
 बहुद्रव्यं ददौ तस्यै बुद्धिदक्षो विशारदः। ऊषतुर्मन्दिरे तस्मिन्नर्त्तिं घोरतमोवृताम् ॥२६
 प्रातः काले तु सा वृद्धा गच्छन्ती राजमन्दिरम् । तामाह मन्त्रितनयः शृणु मातर्वचो मम ॥२७
 पद्मावतीं च सम्प्राप्यैकान्ते मद्रचनं वद । ज्येष्ठशुक्लस्य पञ्चस्यामिन्दुवारे सरोवरे ॥२८
 यो दृष्टः पुरुषो रम्यस्त्वदर्थे समुपागतः । इति श्रुत्वा यथौ वृद्धा पद्मं तस्यै न्यवेदयत् ॥२९
 रुष्टा पद्मावती प्राह चन्दनार्द्वाङ्गुलीयिका । गच्छ गच्छ महादुष्टे तत्तेनोरस्यताडयत् ॥३०
 अङ्गुलीभिः कपोलौ च तस्याः स्पृष्ट्वा यथौ गृहम् । सा तु वृद्धा बुद्धिदक्षं सर्वं भावं न्यवेदयत् ॥३१
 समित्रं दुःखितं प्राह शृणु मित्रं शुचं त्यज । त्वामाह भूपतेः कन्या प्राणप्रिय दचः शृणु ॥३२
 त्वदर्थे ताडितं वक्षः कदा मित्रं भविष्यसि । श्रुत्वा तन्मधुरं दाक्षं रजो देहे समागतम् ॥३३
 रजस्वलान्ते भो मित्रं तवास्यं चुम्बितास्म्यहम् । इति श्रुत्वा भूपतुतः परमानन्दमाययौ ॥३४
 त्रिदिनान्ते तु सा वृद्धा पद्मावत्यै न्यवेदयेत् । त्वामुत्सुकः स भूपालस्तव दशीनलालतः ॥३५
 तं भजस्वाद्य चुश्रोणि सफलं जीवनं कुरु । इति श्रुत्वा महाहृष्टा ता मस्यार्द्वाङ्गुलीयकम् ॥३६
 गवाक्षद्वारि निष्कास्य तत्ते पृष्ठे च ताडिता । तथैव वृद्धा तं प्राप्य मन्त्रिणं चाब्रवीदुचः ॥३७

स्वीकार कीजिये । ऐसी बातें सुनकर राजा ने शीघ्रतया उसे स्वीकार कर अपने पुत्र को उसे सौंप दिया । वे दोनों युवक घोड़े पर सवार होकर राजा दन्तवक्ष के नगर को चल पड़े । वहाँ पहुँचकर किसी वृद्धा स्त्री के घर ठहर गये । कार्य-निषुण बुद्धिदक्ष ने उस वृद्धा स्त्री को बहुत-सा द्रव्य देकर उसी के घर में उस धोर अंधकार की रात्रि को व्यतीत किया । २१-२६। प्रातः काल जब वह वृद्धा राजा के यहाँ जाने को प्रस्तुत हुई तो मन्त्रि-पुत्र (बुद्धिदक्ष) ने उससे कहा—माँ एक बात मेरी भी सुन लो ! पद्मावती के पास पहुँच कर एकान्त में उससे कहना कि—ज्येष्ठ शुक्लं पञ्चमी चन्द्रवार को जिस सुन्दर पुरुष को देखा था, वह तुम्हारे लिए आ गया है । यह सुनकर कर वृद्धा ने राजा के यहाँ जाकर पद्मावती से उसकी सभी बातें बतायी । क्रुद्ध होकर पद्मावती ने उससे कहा—महादुष्टे ! जा, जा (यहाँ से) ऐसा कहकर चन्दन से गीली अंगुलियों समेत हाथ के तलवे से उस वृद्धा की छाती में आधात करके उसके दोनों कपोल में अंगुलियों के स्पर्श का चिह्न अंकित कर दिया । वृद्धा ने उस समस्त वृत्तान्त को बुद्धिदक्ष से निवेदन किया । उसे समझकर उसने अपने दुःखी मित्र से कहा—मित्र ! शोक का त्यागकर राजकन्या द्वारा कहीं हुई उसकी प्राणप्रिय बातों को सुनो ! वह तुम्हारे लिए इसके वक्षस्थल को ताड़ित कर यह बतायी कि ‘हम दोनों’ मित्र (अर्थात् दोनों हृदय) कब एक होंगे । मित्र ! तुम्हारी अमृतमयी वाणी सुनकर मेरे शरीर में रज उत्पन्न हो गया है । अतः रजस्वला से शुद्ध होकर मैं तुम्हारे मुख का चुम्बन मात्र करूँगी । उसकी कहीं हुई ये बातें सुनकर वह राजकुमार परमहर्षित हुआ । तीन दिन के पश्चात् वह वृद्धा पुनः पद्मावती के पास जाकर उससे कहीं—तुमसे मिलने के लिए वह राजा बहुत उत्सुक है, इसीलिए वह बार-बार तुम्हारे दर्शन की लालसा प्रकट कर रहा है । अतः सुश्रोणि ! आज उसकी सेवा करके अपने जीवन को सफल करो । इसे सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्न हुई और गवाक्ष (खिड़की) के मार्ग से उसे निकालकर उसकी पीठ में भीगी हुई अंगुलियों समेत (हाथ के) तलवे से अंकित कर दिया । पश्चात् उस वृद्धा ने मन्त्रि-पुत्र (बुद्धिदक्ष) के पास जाकर उस वृत्तान्त

प्रसन्नो बुद्धिदक्षश्च मित्रं प्राह् शृणुष्व भोः । पश्चिमे दिशि भोः स्त्रामिन्गवाक्षं तव निर्मितम् ॥३८
 अर्द्धरात्रे तु सम्प्राप्य भज मां कामविद्वलाम् । श्रुत्वा तद्व्याप्तमुकुटः प्रियादर्शनलालसः ॥३९
 ययौ शीघ्रं नहाकामी रमणीं तामरामयत् । मासात्ते कामशिथिलो मित्रदर्शनलालसः ॥४०
 पद्मावतीं प्रियां प्राह् शृणु वाक्यं वरानने । देन प्राप्तवतीं महं त्वं सुभूः सुरदुर्लभा ॥४१
 तन्मित्रं बुद्धिदक्षश्च किनु तिष्ठति सत्म्रतम्! आजां इहि प्रिये महं दृष्ट्यास्यामि तेऽन्तिकम् ॥४२
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य निष्ठुरं कुलिशोपमम् । मिष्टान्नं सविष्णं कृत्वा मन्त्रिणे ता न्यवेदयत् ॥४३
 तदा तु बुद्धिदक्षश्च चित्रगुप्तप्रपूजकः । ज्ञात्वा हत्कारणं सर्वं न तु भक्षितवान्स्वयम् ॥४४
 एतस्मिन्नरे प्राप्तो भूपतिस्त्वरयान्वितः । विवेकवन्तं मित्रं तं दृष्ट्वा प्राह् रुषान्वितः ॥४५
 कस्मान्न खादितं मित्रं भोजनं मतिर्याकृतम् । विहस्य बुद्धिदक्षस्तु सारमेये ददौ हि तत् ॥४६
 भुक्त्वा स भरणं प्राप्तः स दृष्ट्वा विस्मितो नृपः । स्त्रीचरित्रं च विज्ञाय स्नेहं त्यक्त्वाऽब्रवीत्तु तम् ॥४७
 मित्रं गच्छ गृहं शीघ्रं मया त्यक्ता च पापिनी । स आह शृणु भूपालं गच्छ शीघ्रं प्रियान्तिकम् ॥४८
 तदलङ्घारमाहृत्य त्रिशूलं कुरु जानुनि । प्रसुप्तां त्यज भो मित्रं या हि त्वं मा विचारय ॥४९
 इति श्रुत्वा ययौ भूपरतथा कृत्वा समागतः । स्वमित्रेण ययौ सार्थं स्मशाने रुद्रमण्डपे ॥५०

को सुनाया । २७-३७। प्रसन्न होकर बुद्धिदक्ष ने मित्र से कहा—स्वामिन् ! पश्चिम दिशा की खिड़की तुम्हारे मार्ग के लिए निश्चित है, उसने कहा है उसी मार्ग से आधीरात के समय आकर मेरी कामपीड़ा की शान्ति के लिए मेरा आलिङ्गन करो । इसे सुन कर (अपनी) प्रिया का दर्शनाभिलाषी एवं महाकामी उस वज्र-मुकुट ने शीघ्रतया वहां पहुँचकर उस रमणी के साथ रमण किया । एक मास के उपरांत काम से शिथिल होने पर उसने अपने मित्र के दर्शन के लिए अभिलाषा प्रकट करते हुए पद्मावतीं से कहा—वरानने ! मेरी एक बात सुनो ! जिस (व्यक्ति) के द्वारा मैंने तुम जैसी सुन्दर भीहों वाली स्त्री को प्राप्त किया, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ मानी जाती है । २८-४१। वह मेरा परममित्र बुद्धिदक्ष इस समय यहाँ वर्तमान है, अतः प्रिये ! मुझे आज्ञा प्रदान करो, मैं उससे मिलकर पुनः तुम्हारे पास आ जाऊँगा । वज्र के समान निष्ठुर इस बात को सुनकर उसने विष मिले मिष्टान्न (मिठाई) उस मंत्रि-पुत्र के लिए उपहार दिया । बुद्धिदक्ष भी चित्रगुप्त की उपासना करता था, इसीलिए उसके कारण को समझ उसका भक्षण नहीं किया । उसी समय राजकुमार ने आकर विवेक करते हुए अपने मित्र से कुद्ध होकर कहा—मित्र ! मेरी प्रिया द्वारा बनाये गये इस पकवान का भक्षण क्यों नहीं कर रहे हो ! बुद्धिदक्ष ने हँसकर उसे किसी कुत्ते को दे दिया वह खाते ही मर गया । उसे देखकर राजा को महान् आश्रय हुआ । उस समय स्त्रीचरित्र की ओर ध्यान देकर उसने उस (स्त्री) स्नेह के त्याग पूर्वक मित्र से कहा—मित्र ! मैंने उस पापिनी का त्याग कर दिया ! अब शीघ्र घर चलो । उसने कहा—राजन्, सुनो ! तुम अपनी उस प्रिया के पास शीघ्र जाओ । वहाँ जाकर उसके आभूषण का अपहरण करते हुए उसकी जानु (धुटने) त्रिशूल से अंकित कर देना । मित्र ! उसके इस सुलभ मिलाप का त्याग कर मेरी इस बात को बिना विचारे ही करो । इसे स्वीकारं कर वह राजा उस कार्य को बताये हुए के अनुसार करके लौट आया और अपने मित्र के साथ श्वशान के समीप वाले शिवालय की ओर चल दिया । ४२-५०। वहाँ (बुद्धिदक्ष ने) अपना योगी का वेष बनाकर

शिष्यं कृत्वा नृपं तं स योगरूपे हि भूषणम् । विक्रयार्थं ददौ तस्मै स्वमित्राय स बुद्धिमान् ॥५१
 स वज्रमुकुटो मत्वा तदाज्ञां नगरं गतः । चोरोयमिति तं मत्वा बद्धा राजो हि रक्षिणः ॥५२
 शीघ्रं निवेदयामासुर्वल्लवक्रस्तमब्रवीत् । एव प्राप्तं भूषणं रम्यं सर्वं कथय पूरुष ॥५३
 जटिलः प्राह भो राजन्मशाने गद्गुरुः स्थितः । तेन दत्तं विक्रयार्थं भूषणं स्वर्णगुणितम् ॥५४
 इति श्रुत्वा स नृपतिस्तूर्णमाहूय तद्गुरुम् । भूषणं पृष्ठवान् राजा योगी प्राह शृणुज्व भोः ॥५५
 इमशाने सधितं नन्त्रं मयः योगिस्वरूपिणा । पिशाचो प्राप्तिकाचित्तस्याश्रित्वं मया कृतम् ॥५६
 वामजानुनि शूलेन तथा दत्तं हि भूषणम् । ज्ञात्वा तत्कारणं राजा सुता निष्कामिता गृहात् ॥५७
 स वज्रमुकुटस्तां तु गृहीत्वा गृहमायदौ । विहस्य प्राह वैतालः शृणु तिक्रममूष्टते ॥५८
 कस्मै पापं भृत्यप्राप्तं चतुर्णीं मे वदाधुना !!

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य विक्रमो नाम भूषपतिः ॥५९
 विहस्य भार्विं प्राह प्राप्तं पापं हि भूतेः । मित्रकार्यममाद्येन स्वामिकार्यं च रक्षिभिः ॥६०
 भूषपुत्रेणार्थसिद्धं कृतं तस्माच्च भूषपते । महत्पापं च सम्प्राप्तं तेनासौ नरकं गतः ॥६१
 रजोवतीं सुतां दृष्ट्वा न विवाहेत यो नरः । स पापी नरकं याति षष्ठिवर्षसहस्रकम् ॥६२
 गान्धर्वं च विवाहं वै कामिन्या च कृतं यया । तस्या विघ्नकरो यो वै स पापी यमपीडितः ॥६३

उस राजा को शिष्य बनाया, पश्चात् उस बुद्धिमान् ने उस आभूषण को विक्रयार्थ अपने मित्र को सौंप दिया । वज्रमुकुट भी उस आज्ञा को शिरोधार्य कर नगर में पहुँच गया । उसी बीच राजा के रक्षक (सिपाही) उसे चोर समझ बाँधकर राजा के सामने उपस्थित किये । राजा दन्तवद्र उससे बोले—हे मनुष्य ! यह सुन्दर आभूषण तुम्हें कहाँ कैसे प्राप्त हुआ, सब बातें मुझसे कहो ! उस जटाधारी ने कहा—राजन् ! इमशान स्थान में मेरे गुरु रहते हैं, सुवर्ण से आच्छन्न इस आभूषण को विक्रयार्थ उन्होंने मुझे दिया है । इसे सुनकर राजा ने शीघ्र उस गुरु को बुलाकर उस भूषण प्राप्ति के विषय में पूँछा । अनन्तर योगी ने कहा—(मैं बता रहा हूँ) आप लोग सुनिये ! मैं योगी का वेष धारण कर इमशान में मंत्र सिद्धि कर रहा था, उसी बीच कोई पिशाचिनी वहाँ आई । मैंने अपने त्रिशूल से उसके घुटने में चिह्नकर दिया है, उसी ने यह आभूषण प्रदान किया । राजा उसके कारण को समझ कर अपनी पुत्री को घर से निकाल दिया । पश्चात् बुद्धिदक्ष वज्रमुकुट समेत उस राजकुमारी को साथ लेकर अपने घर आया । इतनी बातें कहने के उपरांत बैताल ने हँसकर विक्रमादित्य से कहा—राजन् सुनो ! इन चारों में किसको अधिक पाप का भागी होना पड़ा ! ५१-५८

सूतजी बोले—इसे सुनकर राजा विक्रमादित्य ने हँसकर कहा कि पाप का भागी राजा हुआ क्योंकि मंत्री ने मित्रकार्य, सेवकों ने स्वामी का कार्य और राजकुमार ने अपना स्वार्थ सम्पन्न किया । अतः महापापी राजा ही हुआ जिसके नाते उसे नरक की प्राप्ति हुई । जो मनुष्य अपनी कन्या का विवाह उसके रजस्वला होने की जानकारी रखते हुए भी नहीं करता है, उस पापी को साठ सहस्र वर्ष तक नरक का अनुभव करना पड़ता है । अपने गान्धर्व विवाह के लिए कन्या के तैयार होने पर जो कोई उसमें बाधक

अदृष्टदोषां यः कन्यां विवेकेन विना त्यजेत् । स पापी नरकं याति लक्ष्वर्षप्रमाणकस् ॥६४
इति श्रुत्वा स वैतालो धर्मगाथां नृपेरिताम् । प्रसन्नहृदयः प्राह भूषिं धर्मतत्परम् ॥६५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरथयिः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१

द्वितीयोऽध्यायः

कलियुगेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उदाहृत

प्रसन्नमनसं भूपं महासिंहासने स्थितम् । द्विजवर्यः स वैतालो चचः प्राह प्रसन्नधीः ॥१
एकदा यमुनातीरे धर्मस्थलपुरी शुभा । धनधान्यसमायुक्ता चतुर्वर्णसमन्विता ॥२
गुणाधिष्ठो महीपालस्तत्र राज्यं चकार वै । हरिशर्मा पुरोधास्तु स्नानपूजनतत्परः ॥३
तस्य पल्ली सुशीला च पतिव्रतपरायणा । सत्यशीलः सुतो जातो विद्याध्ययनतत्परः ॥४
तस्यानुजा मधुमती शीलरूपगुणान्विता । द्वादशाब्दवयः प्राप्ते विवाहार्थं पिता यदा ॥५
भ्राता ब्राम तौ सर्वं चिन्तुतश्च सुतावरम् । कहाचिद्राजपुत्रस्य विवाहे समतो द्विजः ॥६
पठनार्थं तु काशयां वै सत्यशीलः स्वयं गतः । एतस्मिन्नन्तरे राजन्द्विजः कश्चित्समागतः ॥७

होता है, वह पापी यमराज द्वारा दंडित होता है, विवेकहीन होकर उसके परित्याग करने पर उस पापी को एक लक्ष वर्ष तक नरक-यातना का अनुभव करना पड़ता है। इस मार्मिक गाथा को सुनकर, जिसे राजा ने विवेकपूर्ण बताया था, प्रसन्न होकर उस वैताल ने उस धार्मिक राजा से कहा—५९-६५

श्री भविष्यमहापुराण प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीयेतिहास
समुच्चय वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त । १।

अध्याय २

कलियुग के इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—द्विजसत्तम ! उस वैताल ने प्रसन्नतापूर्ण होकर प्रसन्नचित्त वाले उस राजा से कहा । जो उस समय महासिंहासन पर सुशोभित हो रहा था । एक बार यमुना जी के तट पर धर्मस्थल नामक एक सुन्दर पुरी में, जो धन-धान्य से परिपूर्ण, एवं चारों वर्णों के मनुष्यों से युक्त थी, गुणाधिष्ठ नामक राजा राज्य कर रहा था । स्नान पूजन के लिए नियत हरिशर्मा नामक उनके पुरोधा (पुरोहित) थे । सुशीला नामक पतिव्रतपरायणा उनकी पल्ली एवं सत्यशील नामक पुत्र था, जो विद्याध्ययन के लिए कठिबद्ध रहता था । शील, रूप, और गुणों से सम्पन्न मधुमती नामक उनकी एक पुत्री भी थी । बारह वर्ष की अवस्था होने पर उसके विवाहार्थ पिता और भ्राता दोनों कन्यां के अनुरूप वर की खोज करने लगे । उसी बीच पिता राजकुमार के विवाह में और भ्राता सप्तशील अपने अध्ययनार्थ काशी चला गया । राजन् ! उस

वामनो नाम दिल्ल्यातो रूपशीलवयोदृतः । सुता मधुमती तं च दृष्ट्वा कामातुराभदत् ॥८
 भोजनं छादन पानं स्वप्रं त्यक्त्वा च विहृता । चक्कोरीव विना चन्द्रं कामबाणप्रपीडिता ॥९
 दृष्ट्वा सुशीला तं बाला वामनं ब्राह्मणं तथा । वारयामास ताम्बूले: स्वर्णद्रव्यसमन्वितैः ॥१०
 हरिशर्मा प्रयोगे च द्विजं दृष्ट्वा त्रिविक्रमम् । वेदवेदाङ्गतत्त्वं सुतार्थेऽवरयत्तदा ॥११
 सत्यशीलस्तु काश्यां दै गुरुतुत्रं च केशवम् । वहित्वा तं भगिन्यर्थं यथो गेहं मुदान्वितः ॥१२
 माघकृष्णत्रयोऽश्यां भूगौ लग्नं शुभं स्मृतन् । श्रयो विप्रास्तदा पाप्ताः कन्यार्थं रूपमोहितः ॥१३
 तस्मिन्काले तु सा कन्या भुजङ्गेनैव दंशिता । मृतः प्रेतत्वमाप्ना पूर्वकर्मप्रभावतः ॥१४
 तदा ते ब्राह्मणः थत्वं कारयामासुरुत्तरम् । न जीवनवती बाला गरलेन विमोहिता ॥१५
 हरिशर्मा तु तत्सर्वं कृत्वा वेदविधानतः । आययौ मन्दिरं राजन्सुतामुणविमोहितः ॥१६
 त्रिविक्रमस्तु बहुधा दुर्खं कृत्वा स्मरानुगः । कन्याधारी यतिर्भूत्वा देशादेशान्तरं यथौ ॥१७
 केशवस्तु महादुखी प्रियास्थीनि गृहीतवान् । तीर्थतीर्थान्तरं प्राप्तः कामबाणेन पीडितः ॥१८
 भत्तमग्रही वामनस्तु विरहाङ्गिप्रपीडितः । तस्थौ चितायां कामार्तः पत्नीध्यानपरायणः ॥१९
 एकदा सरयूतीरे लक्ष्मणाल्पपुरे शुभे । त्रिविक्रमस्तु भक्षार्थं सम्प्राप्तो द्विजमन्दिरे ॥२०
 तस्मिन्दिने रामशर्मा शिवध्यानपरायणः । यत्तिनं वरयामास भोजनार्थं स्वमन्दिरे ॥२१

समय वामन नामक एक ब्राह्मण, जो रूप, शील एवं वयस्क था, हरिशर्मा के यहाँ आ पहुँचा । मधुमती कन्या उसे देखकर कामातुर हो गई उसने व्याकुल होकर भोजन, वस्त्र, पान और शयनं का त्यागकर दिया केवल चन्द्र के वियोग में चक्कोरी की भाँति कामबाण की पीड़ा का अनुभव करने लगी । १-१। सुशीला ने अपनी पुत्री की अवस्था और उस वामन ब्राह्मण को देखकर कुछ स्वर्ण द्रव्य के साथ ताम्बूल प्रदान द्वारा उसका वरण कर लिया । हरिशर्मा ने प्रयाग में किसी त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण को देखकर, जो वेद और वेदाङ्ग के तत्त्व का निष्णात ज्ञाता था, अपनी कन्या के निमित्त उसका वरण किया । उधर सत्यशील ने केशव नामक अपने गुरुपुत्र को अपनी बहिन के निमित्त वरण करके अत्यन्त आनन्द विभोर होता हुआ घर को प्रस्थान किया । माघकृष्ण त्रयोदशी शुक्रवार के दिन शुभ लग्न में कन्या का पाणिग्रहण करने के लिए वे तीनों ब्राह्मण उसके रूप पर प्रोहित होकर वहाँ पहुँच गये । उसी समय किसी सर्प ने उस कन्या को काट लिया, जिससे पूर्व कर्म के प्रभाव से उसे प्राण त्यागनं पर प्रेत होना पड़ा । उस समय उन तीनों ब्राह्मणों ने उसकी प्राणरक्षा के लिए अनेक यत्न किया, पर विष की तीक्ष्णतावश वह स्त्री जीवित न रह सकी । पश्चात् हरिशर्मा ने वैदिक विधान द्वारा उसकी अन्येष्टि किया समाप्त की । राजन् ! अपनी कन्या के गुणों के स्मरण द्वारा अत्यन्त मुध होते हुए वे अपने घर लौट आये । १०-१६। आये हुए उन ब्राह्मणों में त्रिविक्रम काम पीडित होकर अनेक दुखों का अनुभव करता हुआ कंधा (गुदड़ी) धारण कर देश-देशान्तर भ्रमण के लिए चल पड़ा । केशव ने महादुखी होकर अपनी प्रिया की अस्थियों का संचय करके कामबाण से पीडित होकर एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ को प्रस्थान किया । और वामन उसके विरह से संतप्त होकर उसके भस्म को लेकर कामार्त एवं केवल पत्नी का ध्यान करता हुआ चिता पर बैठ गया । १७-१९। एक बार सरयू नदी के तट पर स्थित लक्ष्मण नामक नगर में किसी ब्राह्मण के दरवाजे पर भिक्षा के निमित्त त्रिविक्रम पहुँच गया । शिवध्यान का पारायण करने वाले रामशर्मा ने उस दिन भोजनार्थ अपने घर

तस्य पत्नी विशालाक्षी रचित्वा दहुभोजनम् । आहूय यतिनं राजन्वात्रमालभमाकरोत् ॥२२
 तस्मिन्काले च तद्वालो मृतः पापवशः गतः । अरोदीतस्य सैरन्ध्री विशालाक्ष्यपि भर्त्सिता ॥२३
 न रोदनं त्यक्तवती पुत्रशोकाग्नितापिता । रामशर्मा तदा प्राप्तो मन्त्रं सञ्जीवनं शुभम् ॥२४
 जपित्वा मार्जनं कृत्वा जीवयामास बालकम् । विनयःननतो विप्रस्तं च सन्यासिनं तदा ॥२५
 भोजनं कर्त्तव्यित्वा तु मन्त्रं सञ्जीवनं ददौ । त्रिविक्रमस्तु तं मन्त्रं पठित्वा यमुनातटे ॥२६
 प्राप्तवान्यत्र ता नारी दाहित! हरिशर्मणा । एतस्मिन्नात्तरे तत्र राजपुत्रो मृतिं गतः ॥२७
 दाहितस्तत्त्वः पित्रा शोककर्त्रा तदामुना । जीवनं प्राप्तवान्नालस्तस्य मन्त्रप्रभावतः ॥२८
 गुणाधिपस्य तनयो राज्ञो धर्मस्थलीपतेः । त्रिविक्रमं वचः प्राह वीरबाहुर्घाबलः ॥२९
 जीवनं दत्तवान्महां वरयाद्य वरं मम । स विप्रः प्राह भो राजनेशवो नाम यो द्विजः ॥३०
 गृहीत्वाद्विष्ट गतस्तीर्थं तमन्वेषय मा चिरम् । वीरबाहुस्तथा मत्वा द्रूतमार्गेण तं प्रति ॥३१
 प्राप्तस्तं कथयामास यथा प्राप्तं हि जीवनम् । इति श्रुत्वा वचस्तस्य केशवोऽस्थिसमन्वितः ॥३२
 प्रगत्यास्थीनि सर्वाणि ददौ तस्मै द्विजातये । पुनः सञ्जीविता बाला केशवादीन्वचोऽब्रवीत् ॥३३
 योग्या धर्मेण यस्याहं तस्मै प्रायामि धर्मिणे । इति श्रुत्वा वचस्तस्य मौनवतस्त्रयः स्थिताः ॥३४
 अतस्त्वं विक्रमादित्य धर्मज्ञं कथयस्व मे । कस्मै योग्या च सा बाला नाम्ना मधुमती शुभा ॥३५

उस यती (सन्यासी) को बुलाया था । उनकी पत्नी विशालाक्षी अनेक भाँति के भोजन पात्र में आये हुए यति के सम्मुख रख रही थी, कि राजन् ! उसी समय उसका पुत्र अपने कर्म के प्रभाव से मृतक हो गया । पश्चात् उनकी सहचरी विशालाक्षी ने जब भर्त्सना करने पर भी पुत्रशोक से संतप्त होने के कारण रुदन करना बन्द नहीं किया । तब रामशर्मा ने संजीवनी मंत्र की प्राप्ति करके उसके जप और संमार्जन द्वारा पुत्र को जीवित किया । अनन्तर विनश्र होकर उस ब्राह्मण ने उस सन्यासी को भोजन कराकर उसे शुभसंजीवनीमंत्र भी प्रदान किया । त्रिविक्रम ने उस मंत्र की सिद्धि यमुना तट के उस स्थान पर प्राप्त की, जहाँ हरिशर्मा ने उस स्त्री (पुत्री) का दाह किया था । उसी समय वहाँ के राजपुत्र का निधन हो गया । उपरांत उसके पिता ने शोक-संतप्त होकर उसका दाहकर्म किया । उस बालक ने भी उस मंत्र के प्रभाव से जीवनदान प्राप्त हुआ था, त्रिविक्रम से कहा—आप ने मुझे जीवनदान दिया है, अतः मन इच्छित वरदान मार्ग लीजिये । ब्राह्मण ने कहा—राजन् ! केशव नाम का ब्राह्मण जो अस्थियों को लेकर तीर्थ चला गया है, शीघ्र उसका अन्वेषण होना चाहिए । राजकुमार वीरबाहु ने द्रूत द्वारा अपनी जीवनदान प्राप्ति की कथा उससे कहला दिया । ऐसी बातें सुनकर केशव ने अस्थियों समेत मार्ग से ही वापस आकर उस ब्राह्मण (त्रिविक्रम) को समस्त अस्थियाँ प्रदान की । अनन्तर जीवित होने पर वह स्त्री केशव आदि उन तीनों ब्राह्मणों से कहने लगी कि धर्मतः मैं जिसकी स्त्री होने के योग्य हूँ, उसी धार्मिक के साथ मैं चलने के लिये तैयार हूँ । इसे सुनकर वे तीनों ब्राह्मण मौन हो गये । अतः धर्मज्ञ, विक्रमादित्य तुम्हीं इसका निर्णय बताओ कि वह मधुमती नामक कन्या किसकी स्त्री होने के योग्य है ॥२०-३५

सूत उचाच

विहस्य विक्रमादित्यो वैतालं प्राह नन्नधीः । योग्या मधुमती नारी वामनाय द्विजन्मने ॥३६
 प्राणदाता तु यो दिप्तः पितेव गुणतत्परः । अस्थिदाता तु यो विप्रो भ्रातृतुल्यरत्न वेदवित् ॥३७
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्षुगखण्डापरपश्यते
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

कलियुगभूपाल्यानेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उचाच

विप्रवर्य महाभाग भृणु गाथां मनोरमाम् । वैतालो भूपतिश्रेष्ठ पुनर्विक्रममब्रवीत् ॥१
 वर्द्धवन्नगरे रम्ये नानाजननिषेदिते । तत्राभवन्महीपालो रूपसेने गहाबलः ॥२
 विद्वन्माला प्रिया तस्य पतिसेवापरायणा । एकदा क्षत्रियः कश्चिन्नान्ना वीरवरः स्मृतः ॥३
 पुत्रकन्यासपल्लीको वृत्त्यर्थं समुपागतः । विनयावनतो भूत्वा रूपसेनं महीपतिम् ॥४
 किञ्चिच्छुत्वा ददौ स्वर्णं सहस्रं प्रत्यहं नृप । वीरसेनस्तु तल्लब्ध्वा वह्नौ तीर्थे द्विजातिषु ॥५
 व्ययं कृत्वा तु तच्छ्रेष्ठं स कुल्ये भुक्तवान्स्वयम् । एवं वर्षे गते राजन्राजलक्ष्मीः शिवाज्ञया ॥६

सूत जी बोले—नन्नता पूर्वक राजा विक्रमादित्य ने हँसकर वैताल से कहा—वह मधुमती कन्या उस वामन नामक ब्राह्मण की स्त्री होने के योग्य है । क्योंकि प्राण देने वाला पिता के समान और अस्थि देने वाला, भ्राता के समान होता है । ३६-३७

श्री भविष्य महापुराण के प्रतिसर्ग दर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक द्वूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

कलियुग के भूपाल्यानेतिहास समुच्चय का वर्णन

शौनक ने कहा—महाभाग, श्रेष्ठ विप्रवृन्द ! सुन्दर गाथा कह रहा हूँ सुनो ! वैताल ने उस श्रेष्ठ राजा विक्रमादित्य से कहा—वर्द्धमान नामक नगर में, जो रमणीक एवं अनेक भाँति के मनुष्यों से सुसेवित था, महाबली रूपसेन नामक राजा राज्य करता था । उसकी स्त्री का नाम विद्युन्माला था, जो पति सेवा का ही पारायण करती थी । एक बार वीरवर नामक एक क्षत्री अपने पुत्र, कन्या और पत्नी समेत सेवावृत्ति (नौकरी) के लिए उस राजा के दरबार में उपस्थित हुआ और विनम्र होकर उसने राजा रूपसेन से कह कर नौकरी निश्चित करा लिया जिसमें राजा प्रतिदिन एक सहस्र सुवर्ण की मुद्रा उसे प्रतिदिन देने लगा । वीरसेन (वीरवर) उसे वेतन के रूप में ग्रहण कर अग्नि, तीर्थ, एवं द्विजातियों में व्यय करने से जो अवशिष्ट होता था, उसी से अपने परिवार समेत जीवन निर्वाह करता था । राजन् ! इस प्रकार एक वर्ष

परीक्षार्थं इमशाने च रोदनं बहु कुर्वती । अर्धरात्रे तदा राजा बुद्ध्वा प्राह स्वसेवकम् ॥७
गच्छ वीरवर त्वं वै यतोऽसौ शूयते रवः । ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं मह्यं शीघ्रं निवेदय ॥८
इति श्रुत्वा वीरवरः शस्त्रास्त्रकुशलो बली । स तत्र गत्वा यत्रास्ते राजलक्ष्मीः शुभानना ॥९
शूक्षणं वचश्च तासाह किमर्थं रोदने स्थिता । महत्कष्टं च किं प्राप्तं कारणं देवि मे वद ॥१०
इति श्रुत्वा राजलक्ष्मीर्वारसेनं तमब्रवीत् । राजलक्ष्मीं च मां विद्धि रूपसेनस्य भूमतेः ॥११
मासान्ते प्रलयं यास्ये तस्माच्छोचानि भो वलिन् । स आह शृणु भो देवि त्वदल्पायुस्सभीरितम् ॥
केन पुण्येन दीर्घायुस्त्वं भवेः कारणं वद ॥१२

देव्युवाच

महाबाहो महाप्राज्ञ यदि ते तनयस्य वै ॥१३
कपालमर्य त्वं च चण्डिकायै तदानन्ध । दीर्घायुर्भविता चाहं त्वामिकार्यं प्रसाध्य ॥१४
इति श्रुत्वा वीरवरो मन्दिरे स्वयमागतः । पल्लीं प्राह प्रसन्नात्मा सुतं देव्यै निवेदय ॥१५
तथेत्युक्त्वा तु सा साध्वी तनयं प्राह निर्भया । राज्ञोऽर्थे तव देहं वै पुत्रं पासि कुरुष्व तत् ॥१६
तथा मत्वा तु तत्पुत्रो भगिन्या मातृसंयुतः । चण्डिकाभवनं प्राप्यान्नवीतस्वपितरं तदा ॥१७
भोस्तात् मे कपालं च चण्डिकायै समर्पय । दीर्घायुर्येन यत्नेन राजलक्ष्मीश्च तत्कुरु ॥१८

के व्यतीत होने के उपरांत भगवान् शिव की आज्ञा शिरोधार्यकर राजलक्ष्मी उस (वीरवर) की परीक्षा के लिए इमशान में जाकर अन्यन्त रुदन करने लगी । आधी रात के समय राजा जागकर अपने सेनक से कहा—वीरवर ! जाओ इस (रुदन की) ध्वनि का, जिसे तुम सुन रहे हों, कारण का भलीभाँति पता लगाकर शीघ्र मुझसे कहो । ऐसा सुनकर शस्त्रास्त्र के निपुण एवं बली उस वीरवर ने वहाँ जाकर जहाँ वह राजलक्ष्मी रुदन कर रही थी, उस शुभ मुखवाली से प्रियवाणी कहा—देवि ! क्यों रुदन कर रही हों, तुम्हें क्या महान् कष्ट है, मुझे बताओ ! इसे सुनकर राजलक्ष्मी ने उस वीरसेन से कहा—वलिन् ! मैं राजा रूपसेन की राजलक्ष्मी हूँ, इस मास के अन्त समय में मेरा प्रलय (नाश) हो जायेगा, इसीलिए मैं शोक कर रही हूँ । पश्चात् उसने कहा—देवि ! मुनो इससे तो तुम्हारी अल्पायु मालूम हो रही है, किन्तु किसी पुण्य के द्वारा तुम्हारी दीर्घायु संभव हो सके, तो उसे बताने की कृपा करो । १-१२

देवी जी बोली—महाबाहो, महाप्राज्ञ ! यदि तुम, अपने पुत्र का शिर चण्डिका देवी के लिए अर्पित कर सको तो हे अनन्ध ! मेरी दीर्घायु हो जाये । अतः अपने स्वामी के लिए इसकी सिद्धि अवश्य करो । इसे सुनकर वीरवर ने स्वयं अपने घर, आकर प्रसन्न हृदय से पल्ली से कहा—पुत्र, देवी जी के लिए समर्पित कर दो’ उस पतिव्रता ने निर्भय होकर उसे स्वीकार किया, पश्चात् पुत्र से कहा—‘पुत्र ! राजा के किसी कार्य के लिए ही तुम्हारे शरीर का पालन-पोषण किया गया है, अतः उसे अवश्य पूरा करो ।’ पुत्र ने उसे स्वीकार कर अपनी भगिनी और माता के साथ चण्डिका देवी के मंदिर में पहुँचकर अपने पिता से कहा—हे पिता ! मेरा शिर चण्डिका के लिए समर्पित कर दीजिये क्योंकि राजलक्ष्मी जिस प्रकार से दीर्घायु प्राप्त करें, वह

इति श्रुत्वा वीरसेनः शिरशिछत्त्वा समर्पयत् । तस्यानुजा मृता तत्र तथा माता तथा पिता ॥१९
 दृष्ट्वा तद्रूपसेनस्तु कारणं सर्वमादितः । सेवकं सत्यसन्धं च मत्वा तु स्वशिरोऽर्पयत् ॥२०
 तदा प्रसन्ना सा देवी नृपनुज्जीव्य साक्षीत् । वरं वरय भूपाल यथेष्टं शीघ्रसाम्नुयाः ॥२१
 स आह वीरसेनस्तु सकुलो जीवमाप्नुयत् । तथेत्युक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तर्हिताभवत् ॥२२
 रूपसेनः प्रसन्नात्मा स्वसुतां कामङ्गिणीम् । ददौ सुताय वैतालो नृपतिं प्राह विस्तितः ॥
 मुख्यस्नेहं कृतं केन तेषां मध्ये बदस्व मे ॥२३

राजोवाच

मुख्यस्नेहं कृतं राजा इसार्थे स्वतनुं ददौ । स्वर्णस्नेही वीरवरो धर्मप्रीतिः पतिव्रता ॥
 बन्धुप्रीतिश्च भगिनी पितृस्नेही तु पुत्रकः ॥२४
 महान्स्नेहः कृतो राजा रूपसेनेन धीमता ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम तृतीयोऽध्यायः । ३

कार्य हम लोगों को प्रयत्न पूर्वक करना चाहिए । ऐसा सुनकर वीरसेन ने उसका शिर काटकर देवी को अपित कर दिया । तत्पश्चात् उसी प्रकार क्रमणः उसकी भगिनी, माता और पिता सभी लोग मृतक हो गये । आदि से अंत तक समस्त कारण को जानकर राजा रूपसेन ने अपने उस सेवक को सत्यवत्ता समझते हुए, अपना भी शिर अपित कर दिया । उस समय प्रसन्न होकर देवी ने राजा को प्राणदान देकर उसे कहा—राजन् ! यथेच्छ वरदान माँगो, मैं उसे शीघ्र देने को तैयार हूँ । राजा ने कहा—यह वीरसेन सपरिवार जीवित हो जायें । वैसा ही करके देवी उसी समय अन्तर्हित हो गई । तदुपरात रूपसेन ने प्रसन्न होकर सौन्दर्यपूर्ण अपनी पुत्री का पाणिग्रहण उस (वीरवर) के पुत्र के साथ सुसम्पन्न कर दिया । अनन्तर वैताल आश्चर्य करता हुआ (विक्रम) से कहा । उनमें मुख्य स्नेह किसका था । १३-२३

राजा ने कहा—मुख्य स्नेह राजा का था, क्योंकि अपने सेवक के निमित्त उसने अपनी शरीर का परित्याग किया था । और वीरवर उस सुवर्ण की मुद्रा का स्नेही था, उसकी पतिव्रता धर्म से प्रेम करती थी, भगिनी अपने माता की प्रेमिका थी और उसका पुत्र अपने पिता का स्नेही था । इसलिए बुद्धिमान् राजा रूपसेन ने उन लोगों के साथ महान् स्नेह प्रकट किया । २४-२५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त । ३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयभूपाख्यानवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो राजानमिदमब्लौत् । काचिद्द्वोगावती नाम्रा नदरी परमाद्भुता ॥१
 रूपवर्मा च नृपतिस्तत्र राज्यं करोति वै । चूहामणिरिति ख्यातः शुको बुद्धिविशारदः ॥२
 तस्य भूपस्य ऐहे च निवसनञ्चुभपञ्जरे । कदाचिद्दूपदर्मा च त्रिशदब्द उरुर्जितः ॥३
 प्रच्छ मम योग्या वै शुक काचिद्वराज्ञना । चेदास्ते तर्हि मे ह्यहि श्रुत्वा तं चाक्रवीञ्जुकः ॥४
 मगधेभ्वरभूपस्य कन्या चन्द्रवती शुभा । तव योग्या हि भो राजन्साम्प्रतं तां गृहाण वै ॥५
 इति श्रुत्वा स नृपतिर्गणेण द्विजसत्तमम् । प्रेषमित्वा ददौ दव्यं यथोद्वाहृता तथा कुरु ॥६
 गणेशोपि गतस्तूर्ण देशे मागधके शुभे । महादेवं च सम्पूज्य चकार स्तवनं मुदा ॥७
 नमः शिदाय शान्ताद सर्वाभिष्ठप्रदायिने । भवाय शङ्करायैव रुद्राय 'सततं नमः ॥८
 मृडायानन्दरूपाय सर्वदुःखहराय च ॥९

इत्युक्तवति विप्रे च तदा चन्द्रवती शुभा । कामातुराक्रवीच्चैनां नाम्ना मदनमञ्जरीम् ॥१०
 मम योग्यश्च पुरुषः कश्चिदस्ति महीतले । साङ्गं भो रूपवर्मा च योग्यो भोगापुरीपतिः ॥११

अध्याय ४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत उवाच—इसे सुनकर वैताल ने राजा से पुनः कहा—परम अद्भुत एक भोगावती नामक नगरी है, जिसमें रूपवर्मा नामक राजा राज करता था। उसके बुद्धिविशारद एक शुक (तोता) था, जिसका नाम चूडामणि बताया गया है। वह उस राजा के यहाँ एक सुन्दर पिंजरे में रहता था। तीस वर्ष की अवस्था होने पर किसी समय उस रूपवर्मा ने उस शुक से पूँछा—शुक ! मेरे योग्य कोई सुन्दरी है ! यदि है, तो बताओ ! उसे सुनकर उस शुक ने कहा—राजन् ! मगध देश के राजा की पुत्री, जिसका नाम चन्द्रवती है, आप के योग्य है, इस समय उसी का ग्रहण कीजिये। ऐसा सुनकर उस राजा ने गणेश नामक किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को यथेच्छ धन देकर उससे कहा—जिस प्रकार उसके साथ विवाह हो सके, वही कीजियेगा। यह गणेश नामक ब्राह्मण भी शीघ्रतया मगध देश में पहुँचकर वहाँ महादेव जी की प्रार्थना करके प्रसन्नचित्त से उनकी स्तुति करने लगा। शिव, शान्त, एवं समस्त अभीष्ट के प्रदायक को नमस्कार है, भव, शंकर एवं रुद्र के लिए अनवरत नमस्कार है। मृड, आनन्दरूप, तथा सम्पूर्ण दुःख के अपहरण करने वाले को नमस्कार है। इस प्रकार उस ब्राह्मण के स्तुति करने के समय में चन्द्रवती कामातुर होकर मदनमंजरी नामक मैना से कहने लगी—इस भूतल में मेरे योग्य कोई पुरुष है ? उसने कहा—भोगावती पुरी का राजा रूपवर्मा तुम्हारे योग्य हैं। यह सुनकर उस राजपुत्री ने मनोरथ सिद्धि-

इति श्रुत्वा तु सा देवी दुर्गा वच्छितदायिनीम् । तुष्टाव मनसा सुभूर्यथा जातनिदं जगत् ॥१२
 नमो नमो लगन्मार्तमन कार्यप्रदायिनि । त्रिलङ्घननी त्वं वै वर्णमूर्तिः सनातनी ॥१३
 त्वं स्वाहा त्वं स्वधा संध्या नमस्तस्यै नमो नमः । नृपर्ति रूपवर्मणं मत्पर्वतं कुरु भोः शिवे ॥१४
 इति स्तुत्या प्रसन्नाभूजगदम्बा जगन्मयी । पितरं मगधेशं च मोहयित्वा च मातरम् ॥१५
 विवाहं कारयत्मास मासान्ते सिद्धलिपिणी । रूपवर्मा चन्द्रवती बुभुजाते परं सुखम् ॥१६
 एकस्मिन्दिवसे राजन्मेनां भद्रनमञ्जरीम् । नृपः प्राह विवाहं त्वं उशुकेन कुरुत्व भोः ॥१७
 मेनका प्राह भो राजन्दिवाहाश्रेदृशे मताः । उत्तमाधममध्याश्र पुरुषास्त्रिविधाः स्मृतः ॥१८
 तथैदं त्रिविधा नारी यथा योग्यो वरो भवेत् । उत्तमा या भवेन्नारी योग्याया चाधमाय वै ॥१९
 शृणु तत्कारणं राजन्मदा दृष्टं यथाऽभवत् । इलापुरे वसत्येको वैश्यो लक्षपतिर्धनी ॥२०
 अनपत्यो देवयाजी तस्य पत्नी पतिव्रता । बहुयत्नेन तनयस्तस्य जातो भवाधमः ॥२१
 द्यूतक्रीडापरो नित्यं सुरामाने रत्स्तदा । वेश्यागामी महाधूर्तो नित्यं मांसाशनः खलः ॥२२
 तस्य धर्मं च पितरौ समालोक्य वनं गतौ । नरं नारायणं ध्यात्वा परसं पदरापतुः ॥२३
 मदपालस्तु तनयः कृत्वा सर्वधनव्ययम् । अन्यदेशो च वृत्यर्थं जायाम धनवर्जितः ॥२४
 प्राप्तश्चन्द्रपुरे रम्ये यत्र हेमपतिः स्थितः । वृत्तान्तं कथयामास वैश्यं हेमपर्वतं हि सः ॥२५
 देवयाजी सुतोऽहं वै स्वल्पं वै धनमाहृतम् । देशान्तरे विक्रयार्थं सिन्धुमार्गेण प्राप्तवान् ॥२६

करने वाली उस दुर्गा देवी का, जिसने इस जगत् का निर्माण किया है, मानसिक आराधना आरम्भ की । १-१२। हे जगत् की माता ! आप के लिए बार-बार नमस्कार है, आप मेरे कार्य की सिद्धि करने वाली हैं ; आप त्रिलङ्घन की जननी, सनातनी वर्णमूर्ति हैं, स्वाहा, स्वधा, एवं संध्या भी आप ही हैं अतः आपको बार-बार नमस्कार है । हे शिवे ! राजा रूपवर्मा को मेरा पति कीजिये । इस प्रकार की स्तुति करने पर जगन्मयी जगदम्बा ने प्रसन्न होकर उसके पिता मगधेश, तथा माता को मोहित करके उसी मास के अन्त में उन दोनों का विवाह संस्कार सम्पन्न करा दिशा । पश्चात् वे दोनों सुखापभोग करने लगे । १३-१६। एक दिन राजा ने भद्रन मंजरी नामक उस मैना से कहा कि—तुम इस शुक के साथ अपना विवाह संस्कार सम्पन्न करा लो । मैना बोली—राजन् ! विवाह इस प्रकार का अच्छा होता है, जिसमें यथायोग्य स्त्री—पुरुष हो क्योंकि उत्तम, मध्यम और अध्यम तीन प्रकार के पुरुष होते हैं उसी प्रकार तीन भाँति की स्त्रियाँ भी होती हैं । अतः उत्तमा नारी अध्यमपुरुषों के योग्य नहीं होती हैं क्योंकि राजन् ! इसका कारण जिस प्रकार मैंने देखा है, वता रही हूँ, सुनो ! इलापुर नगर में एक लक्षपति वैश्य रहता था, जिसका नाम देवयाजी बताया जाता है । उसकी पत्नी पतिव्रता थी, किन्तु उसके कोई सन्तान नहीं थी । बहुत प्रयत्न करने पर महादुष्ट एक पुत्र उत्पन्न हुआ । द्यूत की क्रीडा, मद्यपान, और वैश्याओं का साथ करता हुआ वह महाधूर्ति प्रतिदिन मांस का भक्षण भी करता था । उसके इस कुकृत्य को देखकर उसके माता और पिता दोनों ने बन में जाकर नरनारायण का ध्यान करके परमपद की प्राप्ति की । उसके पुत्र मदनपाल ने घर के समस्त धन का अपव्यय करके निर्धन होने पर अपने वृत्यर्थं (व्यापार के लिए) किसी अन्य देश की यात्रा की । उस यात्रा में वह उस रमणीक चन्द्रपुर में पहुँचा, जिसमें हेमपति नामक वैश्य रहता था । उसने उस सेठ से अपना समस्त वृत्तान्त कह सुनाया—मैं देवयाजी वैश्य का पुत्र हूँ, अपने पास थोड़ा-सा

नहावायप्रभावेन द्रव्यं तन्मग्नमम्भसि । तल्लज्जया न यास्येऽहं पितरं प्रति मारिष ॥२७
 इति श्रुत्वा हेमपतिः स्वपत्नीं काममञ्जरीम् । वचः प्राह प्रसन्नात्मा संयोगे विधिना कृतः ॥२८
 चन्द्रकान्तिं सुतां दास्ये तद्वराय त्वदाज्ञया । सामन्त्र्य दम्पती राजन्ददौ कन्यायां विधानतः ॥२९
 स्वगृहे बास्याग्रास मदपालं त्रुतापतिम् । मासमेकमुषित्वा तं श्वशुरं प्राह नन्द्रधीः ॥३०
 आज्ञां देहि धनाध्यक्ष स्वगेहं यामि मा चिरम् । इति श्रुत्वा हेमपतिः स्वसुतां स्वर्णभूषिताम् ॥३१
 चन्द्रकान्तिं सदासीं च तस्मै दत्त्वा गृहं यथौ । नरान्विसृज्य दुष्टात्मा शिविकावाहकान्त्रूप ॥३२
 दासीं हत्वा तदा पत्नीं विसृज्य धनर्वजिताम् । एकाक्ते प्राप्तवानेहं मदपालो महाधमः ॥३३
 वर्षान्तरे च तत्स्वर्ण व्ययं कृत्वा कुमारगे । बुभुक्षितः पुनः शोकं चकार बहुधा नृप ॥३४
 पुनश्च शशुंरस्यैव गृहे सम्प्राप्तवान्खलः । चन्द्रकान्तिस्तु तं दृष्ट्वा स्वपतिं प्राह नन्द्रधीः ॥३५
 मया निवेदितं पित्रे धनं चौरैश्च लुणिठतम् । अतस्त्वं त्यज सन्तापं चिरं वस गृहे भम ॥३६
 तथेत्युक्त्वा महाधूर्त उवास कतिचिद्दिनम् । ज्ञात्वा विमोहितां पत्नीमर्द्धरात्रे तमोवृते ॥३७
 हत्वा तां स यथौ गेहं गृहीत्वा बहुभूषणम् । अयोग्योऽयमतो राजन्विवाहः शुक्मेनयोः ॥३८
 इति श्रुत्वा शुकः प्राह भूषितं करुणानिधिम् । विवाहं न करिष्यामि नार्यः नाधमया सह ॥३९

धन लेकर समुद्री मार्ग से इस प्रदेश में विक्रयार्थं आया था । पर महावायु के झकोरे से मेरा सम्पूर्ण द्रव्य जल में डूब गया । आर्य ! अतः लज्जावश मैं अपने माता-पिता के पास नहीं जा रहा हूँ । ऐसा सुनकर हेमपति ने प्रसन्न होकर अपनी पत्नी काम मंजरी से कहा—व्रह्णा ने यह उत्तम सुन्दर संयोग उपस्थित किया है, तुम्हारी सम्मति प्राप्त कर मैं युक्ति चन्द्रकान्ति का पाणिग्रहण इससे कराना चाहता हूँ । आपस में उन दोनों ने इस प्रकार मंत्रणा करके विधान पूर्वक उसे कन्यादान दे दिया । १९-२९। उपरात अपने घर में ही उस जामाता मदनपाल को भी ठहराया । एक मास रहकर उसने विनश्च होकर अपने श्वसुर से कहा—हे धनाध्यक्ष ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं शीघ्र अपने गृह जाना चाहता हूँ । इसे सुनकर हेमपति ने अपनी कन्या चन्द्रकान्ति को सुवर्ण के आभूषणों से सुसज्जित करके दासीसमेत उसके साथ भेज दिया । राजन् ! उस दुष्टात्मा ने (कुछ दूर जाकर) पालकी के वाहक कहारों और इतर मनुष्यों को लौटाकर दासी का प्राण ले लिया । पश्चात् समस्तधन ग्रहणकर अपनी पत्नी को अकेली छोड़कर महानीच मदनपाल एकाकी गृह पहुँच गया । एक वर्ष के भीतर उस धन का कुमारग में अपव्यय करने पर पुनः भूखे रहकर अत्यन्त शोक करने लगा । तदुपरात वह दुष्ट पुनः अपने श्वसुर के यहाँ पहुँचा । चंद्रकान्ति अपने पति को देखकर नम्रता पूर्वक उससे बोली मैंने अपने पिता से कह दिया है कि चोरों ने मेरे धन का अपहरण किया है, अतः आप अपने संताप का त्याग कर इसी मेरे गृह में सदैव निवास करो । उसे स्वीकार कर उस महाधूर्त ने कुछ दिन वहाँ रहकर अपनी उस पत्नी को अत्यन्त मोहित समझकर एक दिन अंधेरी आधी रात के समय उसका प्राण का अपहरण करके उसके सम्पूर्ण आभूषणों को लेकर वहाँ से चल दिया । अतः कह रही हूँ कि राजन् ! तोता और मैना का विवाह संबंध करना अयोग्य होने के नाते अनुचित है । ऐसा सुनकर उस शुक (तोते) ने उस काशुणिक राजा से कहा—मैं इस प्रकार की अधम स्त्री से सम्बन्ध स्थापित नहीं करना चाहता हूँ । क्योंकि यह मैना नारी के समान अधम और श्यामांगी होने के

अधमा मेनका नारी इयामाङ्गा च कुरुपिणी । उत्तमोऽहं शुको राजन्युरुषश्च हरेत्तनुम् ॥४०
 भृणु तत्कारणं भूप मया दृष्टं महेत्तमम् । नगरे काञ्चनपुरे वणिकछत्वाप्तिः श्रुतः ॥४१
 तस्य पुत्रस्तु मेधावी सिंधुगुप्तो गुणी धनी । प्रभादती क्रिया तस्य श्रीदत्तस्तत्सुतः स्मृतः ॥४२
 विवाहमकरोत्तस्य जयश्रीपत्तने शुभे ! सोमदत्तस्य सुतया जयलक्ष्म्या समन्वितम् ॥४३
 श्रीदत्तस्तु गतो देशं वाणिज्यार्थं कुरुस्थलम् । आयाति द्वादशाब्दे तु सधनो गेहमाग्नतः ॥४४
 जयलक्ष्मीस्तु कामेन पीडिता पितृमन्दिरे । अमात्यतन्येनैव होमदत्तेन मोहिता ॥४५
 दूती मरणेण तं प्राप्य व्ययं कृत्वा धनं बहु । रमयामास सा नारी तेन साढ़ुं महाधमा ॥४६
 त्रिमासान्ते च तत्स्वामी श्रीदत्तः वशुरालये । सम्प्राप्तः सा तु तं दृष्ट्वा महद्वाख्यमुपाययौ ॥४७
 अर्द्धात्रे तु तन्मात्रा प्रेषिता स्वपर्ति प्रति । जयलक्ष्मीश्च सम्प्राप्ता क्रोधेन स्फुरिताधरा ॥४८
 बहुमानेन स्वप्तिस्नेहं कृत्वालयं ययौ । तदा तु कुलटा सा च गता दूतीगृहं प्रति ॥४९
 शून्यालये होमदत्तो इंशितो भुजगेन वै । सुष्वाप मरणं प्राप्य तदा बस्ता समागता ॥५०
 वेगेन रमयामास तं जारं विषमोहितम् । पिण्डपत्त्वः पिशाचश्च दृष्ट्वा तां जारिणीं शुभाम् ॥५१
 शबदेहं च सम्प्राप्य रमणीं तामरीरमत् । खनित्वा दशनैर्नासां पिष्पलोपरि सोऽगमत् ॥५२
 कफल्लो नाम चौरस्तु दृष्ट्वा तत्कारणं तदा । कामिन्या अनुगो भूत्वा मन्दिरे तत्प्रविष्टवान् ॥५३

नाते कुरुपा है । राजन् ! मैं उत्तम शुक हूँ । राजन् ! मैं उस कारण को बता रहा हूँ, जिसे मैंने स्वयं देखा है । कांचनपुर नामक नगर में शंखपति नामक एक बनिया रहता था । ४०-४१। उसके पुत्र का नाम सिंधुगुप्त था, जो गुणी एवं धनी व्यक्ति था । उसकी पत्नी का नाम प्रभावती और पुत्र का श्रीदत्त नाम था । उसने जयश्री नामक नगर के निवासी सोमदत्त की पुत्री जयलक्ष्मी का पाणिग्रहण अपने पुत्र (श्रीदत्त) के साथ सम्पन्न किया । पश्चात् श्रीदत्त ने अपने व्यापारार्थं कुरुदेश की यात्रा की । वहाँ से धन की राशि अर्जित करके बारहवें वर्ष अपने घर आया । इधर जयलक्ष्मी अपने पिता के गृह में रहती हुई एक दिन काम पीडित होने पर मंत्रीपुत्र सोमदत्त पर मोहित हो गई । उस महाअधम स्त्री ने दूती द्वारा उससे सम्पर्क स्थापित करके अधिक धन के अपव्यय समेत उसके साथ रमण कराना आरम्भ किया । तीन मास के उपरांत उसका पति श्रीदत्त अपनी सुसुराल आया । उसे आया हुआ देखकर वह दुःख का अनुभव करते लगी । आधीरात के समय उसकी माता ने उसे उसके पति के पास भेजा । यद्यपि अत्यन्त क्रुद्ध होने के नाते जयलक्ष्मी का ओंठ स्फुरित हो रहा था, तथापि किसी प्रकार वहाँ गई । ४२-४८। अत्यन्त सम्मान समेत अपने पति के साथ स्नेह प्रकट कर अपने महल में लौट आई । पश्चात् वह व्यभिचारिणी उस दूती के घर गई तो देखा कि उस (संकेत वाले) शून्य घर में सोमदत्त किसी सर्प के काटने से निष्प्राण होकर पड़ा है । किन्तु वह स्त्री वहाँ पहुँच कर विषमुग्र उस जारपुरुष के साथ वेग से रमण करने लगी । उसी स्थान के पीपल के वृक्ष पर रहने वाला कोई पिशाच उस सुन्दरी व्यभिचारिणी को देखकर उस शव की देह में प्रविष्ट होकर उस रमणी के साथ अत्यन्त रमण किया । पश्चात् दाँतों से उसकी नाक काट कर उसी पीपल पर पुनः चला गया । कोई कफल्ल नामक चौर उस घटना को देखकर उस कामिनी के पीछे-पीछे उसके महल में चला गया । ४९-५३।

तदा तु जयलक्ष्मीश्च स्वपतिं प्राप्य दुर्भगा । चक्रे भा रोदनं गाढं सर्वे लोकाः प्रतस्थिरे ॥५४
 नासाहीनां सुतं दृष्ट्वा सोमदत्तो महाधनः । बद्धवा जामातरं शोघ्नं राजान्तिकमुपाययौ ॥५५
 नृपाज्ञया राजद्वात्स्तमुद्धन्धनमादधुः । तदा कफलः सम्प्राप्य सर्वं राजे न्यदेवयत् ॥५६
 मत्वा तस्य वचः सत्यं जयलक्ष्मीं महाधनमाम् । रासभोपरि संस्थाप्य कृत्वा दुर्गतिरूपिणीम् ॥५७
 नगरात्प्रेष्यतामास वनं शार्दूलसेवितम् । अतस्त्वं शृणु भूयाल मेनामधोऽप्यद्वा न हि ॥५८
 इत्युक्त्वा स दु वैतालो विक्रमं प्राह नम्रधीः । नारी पापाधिका वाथ पुरुषस्तद्वदस्व मे ॥५९

विक्रम उवाच

ज्ञानेऽगुणरूपस्य मायावर्णस्वरूपिणी । तमो नपुंसकं हेयं त्रिलङ्घकं तदव्ययम् ॥६०
 अव्ययं ब्रह्मणो धास माया लिङ्गस्वरूपिणी । तया जातमिदं विश्वं तदस्त्रायै नमो नमः ॥६१
 क्लीबा स्त्री तर्वदा श्रेष्ठा स्त्रियास्तु पुरुषस्तथा । अव्याधिकश्च पुरुषो नारी कर्माधिका मता ॥६२
 क्लीबमज्ञानमधिकं कथितं पूर्वकोविदैः । कर्मेव बन्धनं पुंसां ज्ञानं निर्बन्धनं सृतम् ॥६३
 अतः पापाधिका नारी पुरुषो हीनकिंविषयः ॥६४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरपर्याये
 कलयुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम चतुर्थोऽध्यायः ।४

उस समय वह अभागिनी जयलक्ष्मी अपने पति के समीप जाकर अत्यन्त रुदन करने लगी, जिससे कि सभी लोग वहाँ पहुँच आये । महाधनी सोमदत्त ने अपनी पुत्री को नाकविहीन देखकर अपने जामाता को बाँध कर शोघ्न राजा के यहाँ पहुँचाया । राजा के आदेश से राज कर्मचारीगण उसे फाँसी पर चढ़ाना चाहते थे कि उसी समय वही कफल नामक चोर ने वहाँ पहुँच कर राजा से समस्त घटना का वर्णन किया । उसकी बातें सत्य मानकर राजा ने उस महानीच जयलक्ष्मी को, विरूप करके उसकी दुर्गति की गई, गधे पर बैठाकर अपने नगर से निकाल कर बाघ आदि जानवरों से युक्त किसी जगंग में भेज दिया । अतः नृप ! मेरी बात सुनो मैना मेरे योग्य नहीं है । इतना कहकर वैताल ने नम्रता पूर्वक विक्रमादित्य से कहा—अधिक पाप करने वाली स्त्रियाँ होती हैं या पुरुष यह मुझे बताने की कृपा कीजिये ॥५४-५९

विक्रम बोले—उस निर्गुण ब्रह्म की माया वर्ण स्वरूप और तम नपुंसक बताया गया है, अतः वही एक अव्यय ब्रह्म तीनों लिंगों वाला कहा जाता है । ब्रह्म का तेज अक्षीण और उसकी माया लिंगों (पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग) का स्वरूप बतायी गयी है । उसी के द्वारा यह निखिल विश्व उत्पन्न हुआ है, अतः उस अम्बिका को नमस्कार है । नपुंसक स्त्री सदैव श्रेष्ठ होती है और स्त्री से अधिक पुरुष । व्याधिहीन पुरुष और नारी, अधिक कर्म करने वाली बतायी गई है । उसी प्रकार पण्डितों ने क्लीब (नपुंसक) में अज्ञान अधिक बताया है । पुरुष के लिए कर्म ही एक बन्धन और बन्धनहीन होना ज्ञान बताया गया है । अतः अधिक पाप कर्म करने वाली नारी और पाप कर्महीन पुरुष कहा गया है ॥६०-६४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
 नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

**अथ पञ्चमोऽध्यायः
कलीयुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्**

सूत उवाच

भृगुवर्यं महाभागं श्रुत्वा वैतालं एड सः । प्रसन्नात्मा वचः प्राह शूर्पतिं ज्ञानसम्पदम् ॥१
 उज्जयिन्यां महाराजं महाबलं इति श्रुतः । चन्द्रदंशी नृपः प्राज्ञो वेदशास्त्रविशारदः ॥२
 तस्य दूतो हरेदासः स्वामिकार्यदरः सदा । भक्तिमाला प्रिया तस्य साधुसेवापरायणा ॥३
 तस्यो जाता रूपवती कन्या कुशललोचना । महादेवीति विल्याता सर्वविद्याविशारदा ॥४
 हरिदासं च सा प्राह शृणु तात वचो मम । सत्ताऽधिको नरो यो वै तस्मै मां तु इदस्व भोः ॥५
 तथेत्यकृत्वा पिता राजन्नराजाहृतो गतः सभाम् । नत्वा तं नृपतिः प्राह हरिदासं शृणुष्व भोः ॥६
 तैलङ्घाधिपतिं गच्छ हरिश्चन्द्रं महीपतिम् । तस्य क्षेमं तथा ज्ञात्वा मां निवेदय मा चिरम् ॥७
 इति श्रुत्वा द्विजः प्रागाद्वरिश्चन्द्रं महामतिम् । कुशलं वर्ण्यामास महाबलनृपस्य वै ॥८
 श्रुत्वा प्रसन्नहृदयो हरिश्चन्द्रो महीपतिः । अशुरस्तस्य नृपते: स भूयो हर्षमागतः ॥९
 हरिदासं स प्रपञ्चं कलेरागमनं कदा । इत्युक्तः स तु तं प्राह न्यूहश्च भविताधिकम् ॥१०
 यदा राज्यं कृतं तेन कलेरागमनं तदा । अत्यन्तोऽस्य मुखाज्जात अँकारः सत्यपूजितः ॥११

अऽध्याय ५

कलीयुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुत्रेष्ठ, महाभाग ! प्रसन्न होकर उस वैताल ने ज्ञान-निधि उस राजा विक्रमादित्य से कहा—महाराज ! उज्जयिनी पुरी में चन्द्रवंश में उत्पन्न महाबल नामक एक राजा राज कर रहा था, जो वेद शास्त्रों में जिज्ञात था । हरिदास नामक उसका सेवक सदैद अपने स्वामी का कार्य करता था । भक्तिमाला उसकी पत्नी का नाम था, जो सदैव साधु-सेवा में निरत रहती थी । उस पत्नी से महादेवी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, जो कमल की भाँति नेत्रवाली, रूपवती, समस्त विद्याओं में निपुण थी । उसने हरिदास के कहा—तात ! मेरी एक बात सुनो ! मुझसे अधिक गुण सम्पन्न जो युरुप हो, उसे ही मुझे समर्पित करना । पिता ने स्वीकार किया, किन्तु उसी समय राजा ने उन्हें बुलवाया, वे राजसभा में चले गये । राजा ने उन्हें प्रणाम करके कहा—विप्र हरिदास ! तैलङ्घाधीश्वर राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ जाकर उनका कुशल क्षेम जानकर शीघ्र मुझे बताओ । १-७। यह सुनकर उस ब्राह्मण ने राजा हरिश्चन्द्र के यहाँ पहुँच कर राजा महाबल का कुशल मंगल वर्णन किया, जिसे सुनकर राजा हरिश्चन्द्र, जो महाबल राजा के इवसुर थे, बार-बार हर्ष में निमग्न होने लगे । तदुपरांत उन्होंने हरिदास से पूछा कि—कलि का आगमन कब होगा ? हरिदास ने कहा—न्यूह के समय में । जिस समय वे राजसिंहासन पर स्थित होंगे उस समय कलि का आगमन होगा कलि के समय में ब्रह्मा के मुख से निःसृत औंकार ही सत्यपूजित

द्वितीयास्याच्च यिदिधा भाषणं लोकविमोहिनीः । जाता कलेहितार्थाय यम्लोकहितैषिणी ॥१२
 यदा धर्मं च वेदोक्तं विपरीतं हि दृश्यते । कलिराज्यं तदा ज्ञेयं म्लेच्छा यस्य प्रियाः स्मृताः ॥१३
 कलिनाऽधर्मभित्रेण सर्वे देवा निराकृताः । पापस्यैव मृषा भार्या दुःखं तत्तनयः स्मृतः ॥१४
 दुर्गतिस्तस्य चाधार्यांगो गेहे गेहे तदा भवेत् । क्रोधदश्याः नृपाः सर्वे ब्राह्मणाः कामकिङ्कराः ॥१५
 लोभवश्यास्तु धनितो महत्त्वं शुद्रका गताः । नार्यो लज्जाविहीनाश्रं किङ्कराः स्वामिधातकाः ॥१६
 निष्कला तु मही जाता कलौ भ्रातृं हि दृश्यते । ये हरे: शरणं प्राप्तास्ते सर्वे मुदिताः कलौ ॥१७
 इति श्रुत्वा हरिश्चन्द्रो दत्त्वा तस्मै भुदिग्नियाम् । स्वगेहं प्राप्तशान्तालः विप्रत्तु शिविरं नर्याः ॥१८
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र ब्राह्मणो बुद्धिकोविदः । स्वविद्यां दर्शयामास विद्वासाय धीमते ॥१९
 विमानं शीघ्रगं नाम देव्या दत्तं महोत्तमम् । मन्त्रजापात्समुद्भूतं कामजं विस्मयप्रदम् ॥२०
 तस्मिन्दर्शकं न्यार्थं तदा विप्रो विमोहितः । वारित्वा तं स्वकल्यार्थं ततः स्वपुरमागतः ॥२१
 हरिदासस्य तगयो मुकुन्दो नाम कोविदः । पठित्वा रत्नगुरुं प्राह वृणीष्ठ गुरुदक्षिणाम् ॥२२
 गुरुराह च शिळ्यं तं शृणु वाचं मुकुन्दं मे । दापय स्वत्य भगिनीं मत्पुत्राय च धीमते ॥२३
 तथेत्युक्त्वा मुकुन्दस्तु स्वगेहं शीघ्रमाययौ । तस्मिन्काले महादेवी द्रौणिशिष्यं द्विजं शुभम् ॥२४
 वामनं वरयामास तं विप्रं शब्दवेधिनम् । दक्षिणादिभिरभ्यर्थं ताम्बूलेन विधानतः ॥२५

और (संस्कृत मिश्र) दूसरी भाषा प्रधान होगी, जो अपने अनेक रूपों से लोगों को मुग्ध करेगी । कलि का हित उसी से सम्पन्न होगा, क्योंकि वह यम-लोक का भी हित चाहेगी । जिस समय वेदोक्त धर्म विपरीत दिखायी दे, उसे कलिराज्य जानना चाहिए, क्योंकि म्लेच्छ ही उसके प्रिय होंगे, ऐसा कहा गया है । अर्थम भित्र की सहायता से कलि में समस्त देववृन्द न रहने के समान रहेंगे । पाप की मृषा (झूठ) नामक भार्या, दुःख नामक पुत्र, और दुर्गति नामक अर्द्धांगिनी प्रत्येक गृहों में निवास करेंगी । क्रोध के वशीभूत सभी राजा, काम के सेवक समस्त ब्राह्मण, लोभ के वशीभूत धनिकवर्ग और महत्त्व शुद्रों को प्राप्त होगा । स्त्रियाँ लज्जाहीन, सेवक स्वामी के घातक होंगे । कलि के समय में पृथिवी प्रायः फलहीन होगी । उस समय जो एक मात्र भगवान् की शरण में रहेगा वही प्रसन्न दिखायी देगा । ८-१७। इसे सुनकर राजा हरिश्चन्द्र उस ब्राह्मण को मन इच्छित दक्षिणा प्रदान करके अपने महल चले गये और ब्राह्मण अपने शिविर में आये । उसी समय एक बुद्धिकोविद नामक ब्राह्मण ने उस विद्वान् हरिदास को अपनी विद्या (का चमत्कार) दिखाना आरम्भ किया—शीघ्रगामी नामक उत्तम विमान को जिसे देवी ने प्रदान किया था, मंत्रजप कर प्रकट किया । वह कामप्रद एवं आश्चर्यप्रद भी था । उस पर उस ब्राह्मण को बैठाकर इस भाँति दिखाया था, जिससे वह अपनी कन्या के निमित्त उस पर मुग्ध हो गया । पश्चात् अपनी कन्या के लिए उसका वरण करके वह अपनी पुरी को लौट आया । हरिदास का मुकुंद नामक पुत्र, अध्ययन के उपरांत अपने गुरुजी से गुरुदक्षिणा देने के लिए पूछा । गुरुजी ने अपने शिष्य से कहा—मुकुंद भेरी बात मुनो ! भेरे इस विद्वान् पुत्र के लिए अपनी भगिनी को दिला दो । इसे स्वीकार करके मुकुंद अपने घर आये । उसी समय महादेवी ने वामन नामक एक ब्राह्मण को, जो द्रोणाचार्य का शिष्य एवं शब्दवेधी वाण चलाने में निपुण था, दक्षिणा समेत उसकी पूजा करके ताम्बूल द्वारा उसका वरण कर

श्रयस्ते ब्राह्मणाः प्राप्ताः सुतार्थं गुणकोविदाः । एतस्मिन्नन्तरे कामी राक्षसो दैवमोहितः ॥२६
 महादेवीं जहाराशु प्राप्तो विन्ध्याचले गिरौ । तदा ते दुःखिनो भूत्वा विलेपुः कामपीडिताः ॥२७
 धीमान्नाम् द्विजो विद्वांस्तान्प्राह गणकेत्तमः । विन्ध्याचले गिरौ ब्राता चास्ते क्रव्यादवश्यगा ॥२८
 स्वविषयते समारोप्य तौ द्विजौ बुद्धिकोविदः । विन्ध्याचले गिरौ प्राप्तः शब्दवेधी तदा धनुः^१ ॥२९
 समारोप्य शरणैद जधानाशु स राक्षसम् । कन्दां गृहीत्वा ते जग्मुरुज्जयिन्यां विभानगाः ॥३०
 मिथो विवादवन्तत्ते दृष्ट्वा कन्यां स्मरानुगाः । कस्मै योग्या भवेत्कन्या भूप मे कृपयः वद ॥३१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा दवस्तस्य विक्रमो नाम भूपतिः । प्रश्यावनतः प्राह वैतालं रुद्रकिङ्गरम् ॥३२
 विदित्वा योऽददत्कन्यां पितृतुल्ये द्विजो हि सः । येन प्राप्ता विमानेन स तु तद्भ्रातुकः स्मृतः ॥३३
 हत्वा यो राक्षसं दीरं कन्यायोग्यो हि सोऽभवत् ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगाखण्डापरपरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

लिया । १८-२५। जिस समय वे तीनों गुण-निपुण ब्राह्मण वहाँ विवाह के लिए उपस्थित हुए, उस समय दुर्भाग्य वश किसी राक्षस ने मोहित होकर उस कन्या का अपहरण करके विन्ध्याचल पर्वत को प्रस्थान किया। उपरांत वे विप्रवृन्द कामपीडित होकर अत्यन्त दुखी होने के नाते विलाप करने लगे। उस समय धीमान् नामक एक विद्वान् ज्योतिषी ने उन लोगों से कहा—विन्ध्याचल पर्वत पर एक राक्षस के अधीन वह स्त्री वर्तमान है। इसे सुनकर बुद्धिकोविद ने उन दोनों ब्राह्मणों को भी अपने विमान पर बैठाकर विन्ध्याचल पर्वत पर पहुँचाया। वहाँ उस धनुर्धारी ने धनुष पर वाण चढ़ाकर उस राक्षस का निधन कर दिया। पश्चात् वे सब कन्या समेत विमान द्वारा उज्जयिनी पहुँच गये। वहाँ काम-पीडित होकर वे तीनों विप्र आपस में उस स्त्री के निमित्त विवाद करने लगे। राजन्! कृपया आप यह बताइये कि वह कन्या किसकी स्त्री होने के योग्य है। २६-३१

सूत जी बोले—इसे सुनकर राजा विक्रम ने नम्रतापूर्वक उस रुद्रसेवक दैताल से कहा—समस्तं वृतान्तं जानकर जो उस कन्या से कहा वह उसके पिता के समान एवं जिसके विमान द्वारा वह प्राप्त हुई वह भ्राता के समान हुआ। अतः जो राक्षस का वध करके उसके लिए इच्छुक था वही कन्या के साथ संबंध स्थापित करने के योग्य हुआ। ३२-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक पाँचवा अध्याय समाप्त ।५।

१. श्लोकद्वयमेकान्वयि ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनराह स वैतालः शृणु राजन्कथामिमाम् । ग्रामे धर्मपुरे इस्ये नानाजननिषेद्विते ॥१
 तत्राभवन्महीपालो धर्मशीलो महोत्तमः । लज्जादेवी च नहिंषी तस्य भूपस्य भूपते ॥२
 अंधको नाम तन्मन्त्री न्यायशास्त्रविशारदः । कियता चैव कालेन देवीमन्दिरमुत्तमम् ॥३
 धर्मशीलेन रचितं तत्र दुर्गा प्रतिष्ठिता । अपत्यार्थं शूद्रतिना कृतस्तत्र महोत्तमः ॥४
 अर्द्धरात्रे महागौरी नृपं प्राह वृणीष्व भोः । श्रुत्वामृतमयं वाक्यं धर्मशीलो नृपोत्तमः ॥५
 स्तुतिं चकार नन्नात्मा येन दुर्गा प्रसीदति ॥

धर्मशील उवाच

एका तु प्रकृतिनित्या सर्ववर्णस्वरूपिणो ॥६
 सा त्वं भगवती साक्षात्त्वया सर्वमिदं तत्तम् । त्वदाज्ञया सुरश्रेष्ठो रचित्वा लोकमुत्तमम् ॥७
 महालक्ष्म्या त्वया सादृं बुभुजे निर्मलं सुखम् । त्वद्दूकत्या भगवान्विष्णुस्त्रैलोक्यं ब्रह्मनिर्मितम् ॥८
 पालयन्त्रे महालक्ष्म्या त्वया सादृं सनातनि । त्वद्वलेन महादेवि त्रैलोक्यं विष्णुपालितम् ॥९

अध्याय ६

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—पुनः वैताल ने कहा—राजन् ! इस कथा को सुनो ! उस धर्मपुर गाँव में जो रमणीक और अनेक जाति के मनुष्यों से सुसेवित था, महान् एवं उत्तम धर्मशील नामक राजा राज कर रहा था । भूपते ! उसकी प्रधान रानी का नाम लज्जा देवी, एवं मंत्री का नाम अंधक था, न्याय शास्त्र का निष्पात विद्वान् था । कुछ दिन के उपरांत राजा धर्मशील ने अपने सन्तानार्थ एक उत्तम मन्दिर का निर्माण कराकर उसमें भी दुर्गा जी की प्रतिष्ठा कराया । पश्चात् उस राजा ने वहाँ महान् उत्सव भी किया । उस दिन आधीरात के समय गौरी जी ने राजा से कहा कि—वरदान की याचना करो । इस अमृत वाणी को सुनकर राजा धर्मशील ने नम्रतापूर्वक इस प्रकार की स्तुति करना आरम्भ किया, जिससे दुर्गा जी प्रसन्न होती हैं । १-५

धर्मशील बोले—जो प्रकृति एक और नित्य है, समय पर सब वर्णों की स्वरूपिणी हो जाती है । साक्षात् भगवती वही आप हैं जिसने इस विश्व को विस्तृत किया । आप की ही आज्ञा शिरोधार्य कर श्रेष्ठ देवगण उत्तमलोक की रचना करके तुम्हारे महालक्ष्मी के साथ निर्मल सुख का उपभोग करते हैं । सनातनि ! तुम्हारी भक्ति द्वारा विष्णु ब्रह्मरचित तीनों लोकों का तुम महालक्ष्मी के साथ ही पोलन करते हैं । महादेवि ! तुम्हारे बल से (शिव जी) विष्णु द्वारा पालन-पोषण किये गये इस त्रैलोक्य को तुम्ही

महाकाल्या स्वया सार्द्धं भस्न कृत्वा विराजते । सर्वे देवास्तथा दैत्याः पितरो मनुजाः खगाः ॥१०
 त्वल्लीलया च ते जाता जगन्मातर्नमोऽस्तु ते । इत्युक्तवन्तं नृपति वागुवाचाशरीरिणी ॥११
 महाबलो महावीर्यस्तन्यस्ते भविष्यति । तत्र स्तुत्या प्रसन्नाऽहं दास्यामि विविधं फलम् ॥१२
 इति श्रुत्वा स नृपतिः स्वर्गेहं प्राप्य निर्भयः । राज्यै निवेदयामास देवीवचनमुत्तमम् ॥१३
 ततः प्रभुति राजेन्द्रं मूर्तीं जाता स्वयं किल । एकस्मिन्दिवसे राजनरजकः कलिभोजनः ॥१४
 काशीदासेन सहितो ग्रामं धर्मपुरं गतः । तद दृष्ट्वा शुभां कन्यां कामाङ्गीं नाम विश्रुताम् ॥१५
 दित्रान्वितां राजमार्णं गच्छन्तीं श्रमणीडिताम् । तुमोह कामवेगेन रजकः कलिभोजनः ॥१६
 कामान्धशयणिकां प्राह जगन्मातः सनातनि । यदि मे भविता सुभूस्तर्हि दास्यामि ते शिरः ॥१७
 जातियोग्या भौमैवात्ति रजकस्य चुता शुभा । इति श्रुत्वा तु सा देवी बद्रनं रजकस्य दै ॥१८
 सोहरित्वा च पितरं तस्या: पाणिग्रहः कृतः । स सुतां कामिनीं प्राप्य प्रसन्नात्मा गृहं यथौ ॥१९
 भुक्त्वा स विविधं भोगं तया सार्द्धं सुखप्रदम् । वर्षान्तरे शिरो देव्यै गत्वा शीघ्रं समर्पयत् ॥२०
 काशीदासस्तु तच्छ्रुत्वा स्नेहेन त्वरितोऽग्रमत् ! स्वशिरो दहवान्देव्यै कामाङ्गीं दतिशोकतः ॥२१
 अर्पयित्वा शिरो देव्यै देवीरूपत्वमागता । तदा प्रसन्ना सा चण्डी त्रीनुज्जीव्याद्रवीच्च तान् ॥२२
 वरं वरयतामद्य यो यः कामो ह्यभीप्सितः । काशीदासस्तु तां प्राह कामाङ्गीं मां समर्पय ॥२३

महाकाली के साथ भस्म करके सुशोभित होती हो । समस्त देव, दैत्य, पितृगण, मनुष्य एवं पक्षी तुम्हारी ही लीला द्वारा उत्पन्न हुए हैं, अतः जगन्मातः ! तुम्हें नमस्कार है । इस भाँति स्तुति करने वाले उस राजा से आकाशवाणी द्वारा उन्होंने कहा—१६-११। महाबलवान् एवं महापराक्रमी पुत्र तुम्हारे यहाँ उत्पन्न होगा । तथा तुम्हारी स्तुति से मैं बहुत प्रसन्न हूँ अतः तुम्हें अनेक भाँति के फल प्रदान करूँगी । ऐसा सुनकर राजा ने अपने महल में पहुँचकर अपनी रानी से देवी की सभी बातें कह सुनाया । पश्चात् उसी दिन से उन्होंने उस राजेन्द्र के शरीर में निवास करना भी आरम्भ किया । राजन् ! एक दिन कलि भोजन नामक एक रजक (धोबी) काशीदास नामक एक व्यक्ति के साथ धर्मपुर नामक किसी गाँव में गया था । उस गाँव में कामाङ्गी नामक एक कन्या को देखकर, जो अपने पिता के साथ उसी राजमार्ग (सड़क) से भ्रान्त होकर जा रही थी, रजक कलि भोजन काम के वेग से उत्पन्न होने के नाते उस पर मोहित हो गया । पश्चात् कागांध होकर उसने चण्डिका देवी से कहा—हे सनातनि, जगन्मातः ! यदि यह मुन्दरी मेरी (स्त्री) होना स्वीकार कर लें तो मैं तुम्हें अपना शिर अर्पित कर दूँगा । और वह मेरी ही जाति के किसी रजक की पुत्री है (इसीलिए मैं याचना कर रहा हूँ) । उस रजक की ऐसी बातें सुनकर देवी जी ने उसके पिता को मोहित करके उसका पाणिग्रहण उसके साथ सुसम्पन्न करा दिया । पश्चात् वह रजक उस कामिनी स्त्री को साथ लेकर अपने घर चला गया । उसके साथ अनेक प्रकार के सुखप्रद सुखों का उपभोग करके उसने उसी वर्ष के अंत समय में देवी के लिए अपना शिर अर्पित कर दिया । काशीदास ने भी उसके स्नेह वश शीघ्र वहाँ जाकर देवी को अपना शिर प्रदान किया । अनन्तर वह कामाङ्गी भी पति के लिए शोक करती हुई वहाँ जाकर देवी को अपना शिर अर्पित करके देवी स्वरूप की प्राप्ति की । उस समय चण्डी देवी ने प्रसन्न होकर तीनों को जीवित कर उन लोगों से कहा—जिसकी जो इच्छा हो, वर की याचना करे । काशीदास ने कहा मुझे कामाङ्गी को दे दीजिये ।१२-२३। किन्तु उस कामाङ्गी ने

कामाङ्गी सा दु तां प्राह् स्वपतिं मां समर्पय । कलिभोजन एवासौ देवीं प्राह् प्रसन्नधीः ॥२४
मित्राङ्गं सुन्दरं महां देहि मातर्नमो नमः । तेषां वाचस्तदा श्रुत्वा सा दुर्गा मौनमास्थिता ॥
यथाकामं दत्तवती वरं दारसुरूपणी ॥२५

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपं प्राह् विहस्य भोः ॥२६
कि कृतं च तथा देव्या तंषाभर्ते ददस्व मे । इत्युक्तः स तु भूपालो वैतालमिदमन्नवीत् ॥२७
कपालमुत्तमं देहे तथा चिछ्नं द्वयोस्तदा । विपरीतं कृतं मात्रा । वरं स्वं स्वं समाप्नुयुः ॥२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरयाये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् ।६

अथ सप्तमोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

तस्मिन्काले स वैतालो भृगुवर्द्धः प्रसन्नधीः । राजन्मुत्तमां गाथां वर्णयामास विश्रुताम् ॥१
चम्पापुरी च विख्याता चम्पकेशो महीपतिः । तत्रास्ते बलवान्धन्वी महिषी तत्सुलोचना ॥२

कहा कि मुझे मेरे पति को सर्पित कीजिये और कलिभोजन ने प्रसन्न होकर देवी से कहा—मातः मित्र के इस सुन्दर अंग को मुझे देने की कृपा कीजिये, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार है । उन लोगों की ऐसी बातें सुनकर दुर्गा देवी ने उस समय मौन धारण कर लिया । किन्तु पश्चात् वर भी प्रदान किया । २४-२५

सूत जी बोले—इतना कहकर वैताल ने हँसकर राजा से कहा—देवी जी ने उनकी इच्छा कैसे पूरी की, उसे विवेचन पूर्वक मुझे बताने की कृपा कीजिये । इस प्रकार कहने पर राजा ने वैताल से कहा—देवी जी ने उन दोनों की शरीर से उनके उत्तम शिर को काट लिया । इस प्रकार देवी जी ने तो विपरीत किया, किन्तु उन्हें अपने वरदान की प्राप्ति हो गई । २६-२८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक छठां अध्याय समाप्त ।६।

अध्याय ७

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस समय वह वैताल प्रसन्न होकर राजा से एक उत्तम गाथा का वर्णन करने लगा । चम्पापुरी में चम्प नामक राजा, जो बलवान् एवं धनुधरी था, राज कर रहा था । उसकी प्रधान रानी का नाम सुलोचना था । उनके त्रिलोक सुन्दरी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई, चन्द्र के समान

त्रिलोकसुन्दरी नाम कन्या तस्यामजायत । बदनं चन्द्रदद्यस्या भ्रुवौ चापसमे स्मृते ॥३
 मृगाक्षी कोकिलरवा कोमलाङ्गी महोत्तमा । देवैर्मनोवृता वाला किमन्यैर्मनुषैर्नृप ॥४
 तस्याः स्वयम्बरो जातो नृपा बहुविधास्तदा । तस्या योगेन सम्प्राप्तः ये भूपा भुवि विश्रुताः ॥५
 इन्द्रो यमः कुबेरश्च वरणो विबुधोत्तमः । कृत्वा नरमयं रूपं तदर्थं समुपागताः ॥६
 चम्पकेशमिदं शाह शृणु राजन्वचो मम । सर्वशास्त्रेषु निपुणं रूपवन्तं मनोरमम् ॥
 इन्द्रदत्तं च मां विद्वि स्वसुतां मे समर्पय ॥७
 द्वितीयस्तु तदा प्राह धर्मदत्तं मनोरमम् । धनुवेदेषु निपुणं स्वकन्यां दातुर्महसि ॥८
 तृतीयश्चाह भो राजन्धनपालाय शोभिने । तर्वजीवस्य भाषाणां ज्ञायिने गुणरूपिणे ॥
 महां च स्वसुतां शीघ्रं समर्पय सुखो भव ॥९
 चतुर्थश्चाह भो राजन्सर्वकलामु कोचिदः । पञ्चरत्नसमुद्योगी प्रत्यहं भूपते ह्यहम् ॥१०
 पुण्यार्थमेकरत्नं च होमार्थं द्वितीयं वसु । आत्मार्थं तृतीयं रत्नं पत्न्यर्थं तुरियं दमु ॥११
 शेषं सुश्लेषजन्मार्थं च रत्नं नित्यं मयाहृतम् । ईदृशिधं मां पुरुषं स्वसुतां दातुर्महसि ॥१२
 इति श्रुत्वा वचस्तेषां मोहितो नृपतिस्तदा । स्वसुतां प्राह धर्मात्मा कस्मै दात्यामि कन्यके ॥१३
 सा देवी तु वचः श्रुत्वा श्रीडिता दैवमोहिता । नोत्तरं च ददौ तस्मै स्वपित्रे धर्मशालिनी ॥१४
 इत्युक्त्वा स तु वैतालो विहस्योवाच भूपतिम् । कस्मै योग्या भवेत्कन्या रूपयौवनशालिनी ॥१५

जिसका मुख, धनुष की भाँति भीहैं, मृग के समान नेत्र एवं कोकिल की भाँति वाणी थी । नृप उस परम सुन्दरी कोमलाङ्गी को प्राप्त करने के लिए जब देवगण इच्छुक थे, तो मनुष्यों को क्या कहा जा सकता है । उसका स्वयम्बर दुआ, जिसमें पृथिवी के स्वातिप्राप्त अनेक राजवृन्द उसके लिए लालादित होकर आये थे । देवथेष्ठ इन्द्र, यम, कुबेर, और वरुणदेव भी मनुष्य वेष में उसकी प्राप्ति के लिए वहाँ उपस्थित थे । एक ने चम्पकेश से कहा—राजन् ! मेरी बात सुनो ! समस्त शास्त्रों में निपुण, रूपवान्, एवं सौन्दर्यपूर्णी मैं हूँ, मेरा नाम इन्द्रदत्त है । ऐसा जानकर मुझे अपनी कन्या प्रदान कीजिये । दूसरे ने कहा—मेरा नाम धर्मदत्त है, मैं मनोहर एवं धनुर्वेद में कुशल हूँ अतः मुझे अपनी कन्या देने की कृपा कीजिये । तीसरे ने कहा—राजन् ! मुझ धनपाल के लिए जो समस्त जीवों की भाषा का जाता, और गुणी है, शीघ्र अपनी कन्या अपित करके सुख का अनुभव कीजिये । १०। चौथे ने कहा—राजन् ! मैं समस्त कला का विद्वान् हूँ, तथा प्रतिदिन पाँच रत्न की प्राप्ति के लिए उद्योग करता हूँ । उन्हें प्राप्तकर पहले रत्न को पुण्यार्थ दूसरे को हवन के निमित्त, तीसरा अपने लिए, चौथा पत्नी के लिए और पाँचवा कलीब के भोजनार्थ प्रदान करता हूँ । अतः मुझ जैसे पुरुष को आप अपनी कन्या प्रदान करें । ऐसी बातें सुनकर राजा मोहित हो गया । उस समय उस धर्मात्मा ने अपनी कन्या से कहा—पुत्रि ! मैं तुम्हें किसे अपित करहूँ ? वह देवी उस समय उनकी बात सुनकर दैवयोग से लज्जा के कारण अपने उस धार्मिक पिता को कुछ उत्तर न दे सकी । इतना कहकर उस वैताल ने हँसकर राजा से कहा—रूप, और यौवन सम्पन्न वह कन्या किसके योग्य हुई ?

१. द्वितीयं तृतीयं तुरियं वसु' इत्यादावीकारहस्त आर्षः ।

सूत उवाच

इत्युक्तः स तु भूपालो वचनं तं समद्वीत् । धर्मदत्ताय सा कन्या योग्या भवति रूपिणी ॥१६
 सर्वशास्त्रेषु निपुणः स द्विजो वर्णतः स्मृतः । भाषावेत्ता तु वणिजो धनधान्यप्रसारकः ॥१७
 कलाजः स तु शूद्रो हि धनुर्वेदी स सूपतिः । सवर्णाय च वैताल सदा योग्या हि कन्यका ॥
 अतो विवाहिता बाला धर्मदत्ताय शीलिने ॥१८

इति श्रीभद्रिष्ठे महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्थुगलांउपरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् ॥७

अथाष्टमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो राजान्मिदमब्दीत् । विदेहदेशे भूपाल नगरे मिथिलावती ॥१
 गुणाधिपस्तत्र राजा धनधान्यसमन्वितः । चिरंदेव इति ख्यातो राजन्यः कश्चनागतः ॥२
 वृत्यर्थं मिथिलादेशे तत्र वासं चकार सः । वर्षान्ते भूपतिः सोऽपि चतुरङ्गबलान्वितः ॥३
 मृगयार्थं वनं प्राप्तस्तत्र शार्दूलमुत्तमम् । दृष्ट्वा तं चावधीद्राजा क्रोधतान्रेक्षणे वने ॥४
 व्याघ्रमार्गेण भूपालो वनान्तरमुपाययौ । चिरन्देवस्तु तत्पश्चादगतः स गहने वने ॥५

सूत जी बोले—ऐसा कहने पर, राजा ने वैताल से कहा—वह रूपवती कन्या धर्मदत्त के योग्य हुई क्योंकि वह सम्पूर्ण शास्त्र में निपुण और जन्मना ब्राह्मण जाति का था । वह भाषावेत्ता तथा अपने धन धान्य की वृद्धि करने वाला वैश्य, कला-निपुण वह शूद्र, और धनुर्वेदी वह राजा क्षत्रिय था । अतः वैताल ! कन्या सदैव अपनी जाति के योग्य होती है । इसीलिए शीलसम्पन्न उस धर्मदत्त के साथ उस कन्या का विवाह संस्कार किया गया । १०-१८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७।

अध्याय ८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इसे सुनकर वैताल ने राजा से कहा—राजन् ! विदेह प्रदेश में मिथिला नामक नगरी है, धन-धान्य सम्पन्न गुणाधिप नामक राजा वहाँ राज कर रहा था । सेवावृति के लिए चिरंदेव नामक एक राजपुत्र मिथिला पुरी में आकर रहने लगा । एक वर्ष के पश्चात् राजा गुणाधिप ने अपनी चतुरङ्गिणी सेना समेत आखेट के लिए जंगल में जाकर एक वाघ का शिकार किया । उसी क्रोध के आवेश में राजा उस बाघ के मार्ग से किसी जंगल में पहुँच गये । चिरंदेव भी उनके पश्चात् उसी गहन वन

क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापभीडिः । चिरन्देवमुवाचाशु भोजनं देहि मेऽद्य भोः ॥६
 इति श्रुत्वा स राजन्ये हत्वा हरिणमुत्तमम् । संस्कृत्य प्रददौ राजे तन्मांसं भूपतिप्रियम् ॥७
 तुष्टो भूपत्तदा प्राह वरं धरय सन्तम् । वाञ्छितं ते ददाम्याशु स होवाच महीपतिम् ॥८
 त्वया सहस्रमुद्राश्च लादिता भम् भूपते । गृहमानीय भूपल ताः समर्पय मा चिरम् ॥९
 शतमुद्रास्तु मासान्ते महां देहि कटुग्निने । तथेत्युक्त्वा स नृपतिः स्वगेहं शीघ्रसाधयौ ॥१०
 एकस्मिन्दिवसे राजन्स च राजा गुणाधिपः । चिरन्देवं स्वभूत्यं च प्रेष्यामास सागरे ॥११
 स गत्वा सागरतटे देवीमूर्तिं दर्दा ह । नान्ना कुसुमदां देवों मार्कांडेयस्थलस्थिताम् ॥१२
 गन्धर्वतनयां सुभूङ्गं पूजयित्वा प्रसन्नधीः । प्राञ्जलिः पुरस्तस्थौ तदा देवी रमायाता ॥१३
 वरं वरय तं प्राह चिरन्देवस्तु चाब्रवीत् । पाणिं गृहण मे सुभूस्त्वद्वैष विनोहितः ॥१४
 इति श्रुत्वा तु सा देवी विहस्योवाच कामिनम् । अहा स्नानं विधेहि त्वं मत्कुण्ठे देवनिर्मिते ॥१५
 तथेत्युक्त्वा गतस्तोये प्लावितो मिथिलां ययो । स स्थितो भूपतिं प्राह कारणविस्मयप्रदम् ॥१६
 गुणाधिपस्तु तच्छ्रुत्वा स्वभूत्येन समन्वितः । प्राप्तवान्मन्दिरे देव्याः सा भूयः प्राह पुष्ट्वा ॥१७
 गान्धर्वेण विवाहेन मां गृहण गुणाधिप । इति श्रुत्वा नृपः प्राह यदि देवि वचो भम् ॥१८
 पुण्यदे त्वं गृहणाद्य तर्हि त्वां सम्भजाम्यहम् । तथेति मत्वा तं प्राह सत्वं कार्यं निवेदय ॥१९
 स होवाच शृणु त्वं भो मम भूत्यं चिरं सुरम् । भज त्वं चपलापाङ्गिः देवि सत्यं वचः कुरु ॥२०

में पहुँच गये । क्षुधा के नाते राजा का कंठ सूख गया था, श्रम और संताप से पीडित होकर राजा ने चिरन्देव से कहा—आज मुझे शीघ्र भोजन दीजिये । १-६। इसे सुनकर उस राजा के पुत्र ने उत्तम हरिण का शिकार करके उसका मांस पकाकर राजा को अप्ति किया । उस प्रियमांस के भोजन से संतुष्ट होकर राजा ने उससे कहा—श्रेष्ठ ! इच्छित वर की याचना करो । उसने राजा से कहा—तुम्हारे यहाँ अवैतनिक कार्य करते हुए मैं (एक सेठ की) सहस्र मुद्रा खा गया हूँ । अतः राजन् ! घर बुलवाकर उसे शीघ्र दे दीजिये और परिवार के पोषणार्थ मुझे सौ मुद्रा का मासिक वेतन प्रदान करने की कृपा करते रहें । राजा उसे स्वीकार करके सबके समेत अपने घर चले आये । राजन् ! एक दिन राजा गुणाधिप ने अपने सेवक चिरन्देव को सागर के समीप भेजा । उन्होंने सागर के तट पर पहुँचकर कुसुमदा नामक एक देवी की पूर्ति को देखा, जो मार्कांडेय के स्थल पर मुशोभित हो रही थी । वह प्रसन्न होकर उस सुन्दरी गन्धर्व पुत्री की पूजा करके अंजलि बाँध कर सामने खड़ा हुआ कि देवी जी ने आकर कहा—वर की याचना करो । चिरन्देव ने कहा—सुन्दरि ! मैं रूप पर मुध हूँ, अतः मेरा हाथ ग्रहण करो । यह सुनकर उस देवी ने हँसकर उस कामीपुरुष से कहा—चिरन्देव ! देवों द्वारा निर्मित इस मेरे कुण्ड में आज स्नान करो । ७-१५। उसने स्वीकार कर जल के भीतर ज्यों डुबकी लगाया कि अपने को मिथिला में स्थित देखा । वहाँ रहकर उस विस्मयदायक वृतान्त को उसने राजा से कहा—राजा गुणाधिप जो उसे सुनकर उसके समेत उस देवी के मन्दिर में पहुँच गया । देवी ने राजा से कहा—गुणाधिप ! गांधर्व विवाह द्वारा मुझे स्वीकार करो ! उसे सुनकर राजा ने कहा—देवि ! पुण्यदे ! यदि तुम मेरी एक बात मानती हों तो मैं तुम्हें स्वीकार करने को तैयार हूँ । देवी ने उसे स्वीकार करके कहा—शीघ्र उस कार्य का निवेदन कीजिये । उन्होंने कहा—चपल नेत्रे ! चिरन्देव नामक मेरे सेवक को स्वीकार कर अपनाओ । देवि ! मेरी इस बात को

व्रीडिता तु कथां कुत्वा भूर्पति प्राह कामिनी । मां भजस्व दयासिन्धो कामिनीं शकचोदिताम् ॥२१
 चिरंदेवं तु सम्प्राप्य कामान्धात् त्वां समागता । पुष्पदत्तस्य तनया गन्धर्वस्य शुभानना ॥
 शापिता देवदेवेन नरभोगकरी ह्रहम् ॥२२
 इति श्रुत्वा स भूपालो धर्मात्मा शीलविग्रहः । कथं भजाम्यहं सुभूः लुषात्मिव सुधर्मिणीम् ॥२३
 निरंदेवस्तु राजन्दो मत्युत्र इव वर्तते । तस्य त्वं भोगिनी नारी शोभने भव साम्प्रतम् ॥२४
 लज्जिता सा तदा देवो स्नुषेव च चर्दत्तं तै ॥२५
 इत्युक्त्वा भूर्पति प्राह वैतालो रुद्रकिङ्ग्रः । सत्यं धर्मश्च कस्यैव जातस्तन्मे वदस्व भोः ॥२६

सूत उवाच

भूर्पतिस्तं विहस्यह चिरन्देवस्य जायते । सत्यं धर्मश्च वैताल भृणु तत्कारणं शुभम् ॥२७
 नृपाणां परमो धर्मः सर्वोपकरणं स्मृतः । कृतोपकारभृत्यस्य तेन तत्किं हि सत्यता ॥२८
 भृत्येन च कृतं कर्म तत्त्वृणुष्व वदाम्यहम् । विना वृत्तिं स्थितो गेहे भूपतेर्गुणशालिनः ॥
 सेवावृत्तिः कृता सर्वां यथान्यैर्न नरैः इति ॥२९
 पश्चाद्भूपतिना ज्ञातः सङ्कुटे बृहदागते । चिरन्देवस्तु तस्माच्च कारणादधिको मतः ॥३०
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनमाष्टमोऽध्यायः ।८

अवश्य सत्य करो । उस कामिनी ने लज्जित होकर राजा से कहा—दया सागर ! इन्द्र द्वारा प्रेषित मुझ कामिनी को अपना लो क्योंकि गन्धर्व पुष्पदत्त की मैं पुढ़ी हूँ । चिरंदेव के द्वारा मैं काम विह्वल होकर तुम्हारे पास आई हूँ । मुझ कल्याणमुखी को इन्द्र ने शाप प्रदान किया है कि 'तुम्हारा उपभोग मनुष्य करेंगे ।' इसे सुनकर शीलस्वरूप उस धर्मात्मा राजा ने कहा—सुभूः ! तुम ऐसी सुधर्मिणी को मैं कैसे अपना सकता हूँ, क्योंकि तुम मेरी स्तुषा (पुत्र-वधू) के समान हो और राजकुमार चिरंदेव मेरे पुत्र के समान । शोभने ! तुम उसी की उपभोग्य हो, तुम इसका विचार करो । पश्चात् वह लज्जित होती हुई उनकी पुत्र-वधू की भाँति स्थित हुई । इतना कहकर रुद्र-सेवक उस वैताल ने राजा (विक्रम) से कहा—सत्यतः एवं धर्मनुसार वह किसकी हुई मुझे बताने की कृपा कीजिये । १६-२६

सूत जी बोले—राजा ने हँसकर कहा—वैताल ! सत्यतः, धर्मतः वह चिरंदेव की हुई, क्योंकि मैं उस शुभ कारण को बता रहा हूँ, सुनो ! सभी लोगों का उपकार करना राजा का परमधर्म बताया गया है । अतः राजा ने अपने सेवक का उपकार किया है इससे उनकी कोई सत्यता नहीं कही जा सकती । किन्तु सेवक ने जो कुछ किया है, उसे भी मैं बता रहा हूँ, सुनो ! उस गुणशाली राजा के गृह में वह सेवक विना किसी जीविका के स्थित रहा । और वहाँ रहकर अन्य सेवकों की भाँति उसने भी सेवा की । पश्चात् उस महासंकट के उपस्थित होने पर राजा को उसकी परिस्थिति का परिचय प्राप्त हुआ । इसी कारण उससे अधिक चिरंदेव का महत्व है । २७-३०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक आठवाँ अध्याय समाप्त । ८।

अथ नवमोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उचाच्च

भो शौनक महाबुद्धे वैतालेन महोपतिः । महाप्रबीणश्च पतस्तमाह स च भूयतिम् ॥१
 राजन्कामपुरे रम्ये वीरसिंहो महोपतिः । न्यायतो धर्मतत्त्वे तत्र राज्यमचीकरत् ॥२
 हिरण्यदत्तत्रैव वैश्यो धनमदान्वितः । कामालसा तस्य सुता रूपयौवनशालिनी ॥३
 अवसत्सुखतो नित्यं वसन्ते कुसुमप्रिया । कदाचित्कुसुमार्थं वै वनं भ्रमरनादितम् ॥४
 गच्छन्तीं तां समालोक्य धर्मदत्तात्मजो बली । सोऽवदत्त इति ख्यातः पर्यामदनालसाम् ॥५
 सः तु तं निर्जने स्थाने प्रोवाच विनयान्विताः । कन्यकाहं महावीर त्यज मां धर्मतोऽद्य भोः ॥६
 विवाहे सति पूर्वं त्वां शजाभिं दशमेऽहनि । अतो दशदिनस्यैवादेशं देहि द्यानिधे ॥७
 तथेति नत्वा तां त्यक्त्वा निजगेहं समागमः । कामालसा तु तद्ग्रामे पित्रा दत्ता वराय च ॥८
 नदपालाय वैश्याय मणिग्रीवसुताय च । श्वशुरस्य गृहं गत्वा स्वमित्रं प्रत्यचिन्तयत् ॥९
 नवमेऽहनि तत्स्वामी गृहीत्वा कामिनीं बलात् । कामातुरः स पत्नीं तामालिलिङ्गं मदान्वितः ॥१०
 अरुदत्ता तु तत्पत्नी मित्रवाक्येन कर्षिता । तामुवाच तदा वैश्यः शान्तिपूर्वमिदं वचः ॥११

अध्याय ९

कलियुग के इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—महाबुद्धे, शौनक ! उस महाकुशल राजा का सम्मान करता हुआ वैताल ने उनसे कहा—राजन् ! रमणीक कामपुर नामक नगर में राजा वीरसिंह न्याय और धर्म के अनुसार राज करता था । उसी नगर में धनी, मानी हिरण्यदत्त नामक वैश्य भी रहता था । रूप-यौवन सम्पन्न कामालसा नामक उसकी पुत्री, जो मुझे जीवन व्यतीत कर रही थी, कुसुमप्रिय होने के नाते वसंत के समय नित्य पुष्टों के लिए लालायित रहती थी । एक बार वह पृष्ठ-संचय के लिए भ्रमर गुंजित किसी उपवन में जा रही थी, उस समय उसे धर्मदत्त के पुत्र सोमदत्त ने देखकर बल प्रयोग करना चाहा कि उस निर्जन स्थान में उसने नम्रता पूर्वक कहा—महावीर ! अंभी कन्या हैं, अतः धर्मतः मुझे छोड़ दीजिये । १-६। विवाह हो जाने पर उसके दशवें दिन पहले आपकी ही सेवा करूँगी । अतः दयानिधे । दश दिन के लिए (मुझे मुक्त करने की) आज्ञा प्रदान कीजिए । वह उसे स्वीकार करके अपने घर आया । उस कन्या के पिता ने उसी गाँव में मणिग्रीव वैश्य के पुत्र मदपाल के साथ उसका पाणिग्रहण कार्य सम्पन्न कर दिया । वह स्त्री अपने श्वसुर के घर जाकर अपने मित्र के प्रति चिंतित होने लगी । नवमें दिन कामातुर एवं मदांध होने के नाते (उसके स्वामी ने) उस कामिनी को पकड़कर बलात् आलिंगन करना चाहा कि उसकी पत्नी उस पूर्व मित्र की बातों का स्मरण करके रुदन करने लगी । उस समय उसके पति ने शान्तिपूर्वक यह कहा—शोभने ! तुम्हारी अँखें तो मद से भरी दिखायी दे रही हैं, किर क्यों रुदन कर रही हो, मुझसे

किं रोदिवि मदाधूर्जे सत्यं कथय शोभने । सा तु सत्यवती प्राह यथाजातं हि कानने ॥१२
 यदि नायामि पाश्वे त्वां सोमदत्त धनोत्तम । तदा वैधव्यतां प्राप्य भजामि वृजिनं हि तत् ॥१३
 इति वाङ्मेन दद्वाहं पात्याम्यद्य तदन्तिके । इति श्रुत्वा च तत्स्वामी तामाज्ञाप्य मुदान्वितः ॥१४
 मुष्वाप सा तु तत्पाश्वे हृगमत्कामविह्वला । तदा चौरस्तु तां दृष्ट्वा सर्वाभरणभूषिताम् ॥१५
 वचश्वोवाच लोभत्ता कुत्र यासि च सुन्दरि । केनैवापेक्षिता रात्रौ सत्यं क्षाय भानिनि ॥१६
 कामालसा तु तं चौरमुवाच मदविह्वला । रक्षिता कामबाणेन स्वनित्रं प्रति यामि भोः ॥१७
 चौरस्तामाह भोः सुभूष्मूषणं देहि मेडबले । चौरोऽहं ते धनग्राही सा श्रुत्वा वाक्यमब्रवीत् ॥१८
 आर्तिग्योपपतिं मित्रं तुम्यं दास्यामि भूषणम् । तथेत्युक्त्वा तु तेनैव सोमदत्तं समागता ॥१९
 दृष्ट्वा तामब्रवीद्वैश्यः कथं याता स्मरालसे । सत्यं कथय मे शीघ्रं तत्पञ्चाल्तदां भजाम्यहम् ॥२०
 कामालसा तु तच्छ्रुत्वा यथा जातं तथाऽब्रवीत् । श्रुत्वा स ज्ञानहृदयो विष्णुदेवेन बोधितः ॥२१
 मत्वा पतिव्रतां नारों परिक्रम्य व्यसर्जयत् । चौरस्तु कारणं श्रुत्वा विष्णुदेवेन बोधितः ॥२२
 गेहे प्रवेशयामस्त तत्पतिव्रतं तिष्ठति । सा तु कामालसा देवी स्वपातिवत्पर्धर्मिणी ॥२३
 बुधुजे विषयान्दिव्यान्देवदेवेन चोदितान् । इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह कोविदम् ॥
 कस्य सत्यं स्मृतं श्रेष्ठं तेषां मध्ये वदस्व मे ॥२४

सत्य कहो । उस सत्यवती ने उपवन में जो कुछ हुआ था उस को उसी ढंग से उससे कहकर यह भी कहा ‘भीमसोमदत्त ! यदि मैं तुम्हारे समीप न आ सकी तो मैं अपना वैधव्य जीवन व्यतीत करती हुई उस पाप का प्रायश्चित्त करूँगी !’ इस प्रकार वचन-बद्ध होने के नाते मैं उसके समीप अवश्य जाऊँगी । यह सुनकर उसके पति ने उसे जाने के लिए सहर्ष आज्ञा प्रदान किया । ७-१४। पश्चात् कुछ समय तक उसके पाश्व भाग में शयन करने के उपरांत कामपीड़ित होकर वह कामिनी अपने मित्र के यहाँ गई । मार्ग में चौर ने उसे समस्त आभूषणों से सुसज्जित देखकर उसके लोभवश उससे कहा सुन्दरि ! कहाँ जा रही हो, इस रात्रि में तुम्हारा किसने सम्मान नहीं किया । भामिनि ! मुझसे सत्य कहो । मदांध होती हुई कामालसा ने उस चौर से कहा—काम-बाण से रक्षित होकर मैं अपने मित्र के यहाँ जा रही हूँ । चौर ने उससे कहा—सुभ्रु ! अबले ! अपना आभूषण मुझे दे दो, क्योंकि मैं चौर होने के नाते धन का ही ग्रहण करता हूँ । इसे सुनकर उसने कहा उस उपपति अपने मित्र के साथ आलिंगन करके तुम्हें आभूषण प्रदान करूँगी । इसे स्वीकार करके वह भी उसके साथ सोमदत्त के यहाँ गया । उस कामिनी को देखकर उस वैश्य ने कहा—कामालसे ! यहाँ किस प्रकार तुम्हारा आगमन हुआ शीघ्र सत्य बातें बताओ, पश्चात् तुम्हारी सेवा स्वीकार करूँगा । कामालसा ने सभी बातों का यथावत् वर्णन किया । इसे सुनकर विष्णुदेव द्वारा अवबोधित होने पर उसके हृदय में ज्ञान उत्पन्न हुआ । अनन्तर पतिव्रता मानकर उसकी परिक्रमा करके सम्मान पूर्वक लौटा दिया । विष्णुदेव द्वारा उसके कारण ज्ञान कराने पर वह चौर भी उसके पति के गृह में जाकर प्रवेश किया । अनन्तर वह कामालसा देवी अपने पतिव्रत धर्म के प्रभाव से देवाधिदेव द्वारा प्राप्त दिव्य विषयों का उपभोग कर जीवन व्यतीत करने लगी । इतना कहकर वैताल ने उस कोविद राजा से कहा—उनमें किसका सत्य श्रेष्ठ कहना चाहिए, मुझे बताइये । १५-२४

सूत उचाच

इत्युक्तः स तु भूपालो वैतालमिदमब्रवीत्

॥२५

चौरस्य सत्यता श्रेष्ठा यथा जाता तथा भृणु । नृपभीत्या श वैश्यस्तु तां नारीं तु भुक्तवान् ॥२६
वैधव्यभीत्या सः देवी स्वमित्रं प्रति चागता । धर्मभीत्या च तत्स्वामी स्वपत्नी न तु भुक्तवान् ॥२७
चौरस्तु सत्यभीत्या वै त्यक्त्वा तां मुदमागतः ॥२८

इति श्रीभदिष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डपरपर्यये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् ।९

अथ दशनोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उचाच

वैतालस्तु महाभाग राजानमिदमब्रवीत् । गौडदेशे महाराज वर्धनं नाम वै पुटस् ॥१
गुणशेखर आख्यातो भूपालस्तत्र धर्मवान् । तन्मन्त्री निर्भयानन्दो जैनधर्मपरायणः ॥२
कदाचिद्भूपतिर्यातो मन्दिरे गिरजापतेः । पूजयामास तं देवं सर्वव्यापिनमीश्वरस् ॥३
वृश्चिकस्तत्र सम्प्राप्य ददंश नृपतिं रुषा । तत्कष्टेन स भूपालो मूर्छितः पतितो भुवि ॥४
तदा तु निर्भयानन्दो विषमुत्तार्य तस्य वै । मूर्पतिं वर्णयामास जैनधर्मपरायणः ॥५

सूत जी बोले—ऐसा कहने पर राजा ने वैताल से कहा—श्रेष्ठ सत्यता चोर की है, मैं उसका कारण भी बता रहा हूँ, मुनो ! राजा के भय से उस वैश्य ने उस नारी का उपभोग नहीं किया, वैधव्य-भय के नाते वह देवी अपने मित्र के यहाँ गई । और उसके स्वामी ने धर्मभय के नाते अपनी पत्नी का उपभोग नहीं किया ! किन्तु चोर ने केवल सत्य के भय से सहर्ष उसका त्याग किया । २५-२८

श्री भविष्यमहापुराण मे प्रतिसर्ग पर्व मे कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

अध्याय १०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाभाग ! वैताल ने राजा से यह कहा कि—महाराज ! गौड़ देश मे वर्धन नामक नगर है, उसमे रुत्यातिप्राप्त एवं धार्मिक गुणशेखर नामक राजा राज करता था । जैन धर्मानुयायी निर्भयानन्द नामक उनका मंत्री था । किसी समय राजा ने शिव जी के मन्दिर मे जाकर उस सर्वव्यापी एवं ईश्वर शंकर जी की अर्चना की । उसी समय एक बिच्छू ने कुद्द होकर राजा को काट लिया । उस दुःख से दुःखी होकर राजा मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े । उस समय जैनधर्मी निर्भयानन्द ने उस विष का

शृणु राजन्महाभाग शत्रूत्थण्नानसाधमान् । कामः क्रोधस्तथा लोभो रतिहिंसा च त्रुष्णिका ॥

रजोगुणाच्च ते जातास्तेषां भेदाः पृथद्वृथक्

॥६

मोहो दम्भो मदश्वैव ममताशा च गर्हणा । तमोगुणाच्च ते जातास्तैरिदं पूरितं जगत् ॥७

कामी विष्णुस्तथा रुद्धः क्रोधी लोभी विद्युत्स्तथा । इमीशको यमो मोही मदी यक्षपतिः स्वयम् ॥८

माया दद्याश्च ते सर्वे तर्हि तत्पूजनेन किम् । वद्शश्वत्रभिर्जितो दो वै स जिनो मुनिङ्गिः स्मृतः ॥९

न जितः स जिनो ज्ञेयोऽद्वैतवादी निरञ्जनः । तस्य ध्यानेन भावेन मोक्षवन्तो नरा तदा ॥१०

तत्प्रसादाय यो धर्मः शृणु से वसुधात्रिप । गोपूजनेन ते देवास्तुष्टिं यान्ति सदैव हि ॥११

अतो गोपूजनं शूद्रं हेसा सर्वत्र वर्जिता । मदपानेन सर्वात्मा जिनः क्लेशं समाप्त्यात् ॥१२

तस्मान्मांसं च पानं च वर्जितं सर्वदैव हि । न्यायेनोपार्जितं वित्तं भोजयेच्च बुभुक्षितान् ॥१३

रविरात्मा जिनस्यैव तत्प्रकाशे हि भोजयेत् । इत्येवं वर्णयित्वैनं मन्त्री गेहनुपाययौ ॥१४

तथैव मत्वा स नृपो जिनधर्मं गृहीतवान् । कियता चैव कालेन वेदसारो हि लङ्घितः ॥१५

तदा तु दुःखिता राजी शिवस्य शरणं ययौ

॥१६

वरदानेन रुद्रस्य पुत्रो जातो महेत्तमः । धर्मराज इति स्वातो वेदन्तपरायणः ॥१७

गुणशेखर एवासौ पञ्चत्वे निरयं ययौ । धर्मराजस्तदा राज्यं कृतवान्धर्मतः स्वयम् ॥१८

अपहरण करके राजा से कहा—महाभाग, राजन् ! इन छहों शत्रुओं का, जो मान संस्थित एवं अधम हैं, मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! काम, क्रोध, लोभ, रति, हिंसा और तृष्णा ये छहों दोष रजोगुण से उत्पन्न होते हैं, इनका भेद पृथक्-पृथक् बताया गया है । १-६। मोह, दंभ, मद, ममता, तथा निन्दित आशा की जो जगत् ये व्याप्त हैं, तमोगुण से उत्पत्ति हुई है । विष्णु कामी है, शिव क्रोधी, ब्रह्मा लोभी, इन्द्र दंभी, यम मोही, और कुबेर अभिमानी हैं । इस प्रकार ये सभी देवगण माया के अधीन हैं अतः इनके पूजन करने से क्षमा लाभ हो सकता है । उपरोक्त छहों शत्रुओं द्वारा जिसकी हार हो गयी है, उसे मुनियों ने अजिन बताया है, और जिसने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लिया वह अद्वैतवादी रागादि हीन होने के नाते जिन कहा गया है । उसी के ध्यान एवं भाव रखने से मनुष्यों को मोक्ष की प्राप्ति होती है । पृथिवीपति ! उनकी प्रसन्नता के लिए जो धर्म बताया गया है मैं कहा रहा हूँ, सुनो ! गो-पूजन से वे देवगण भी सदैव प्रसन्न रहते हैं इसलिए गो-पूजन ही शुद्ध धर्म है क्योंकि हिंसा सर्वत्र वर्जित की गई है । मदपान करने से सर्वात्मा भ्रूत जिन को कष्ट होता है, अतः मांस भोजन और मद्यपान कराना सदैव निषिद्ध कहा गया है । न्यायतः धन का उपार्जन करके भ्रूते को भोजन करना चाहिए । सूर्य ही जिनकी आत्मा कहे गये हैं अतः जैनियों को उनके प्रकाशित रहने पर ही भोजन करना चाहिए । इस प्रकार (जैन धर्म का वर्णन करके वह मंत्री धर चला गया । तथा उसकी बातें स्वीकार करके राजा ने जिन धर्म को ग्रहण किया । कुछ समय व्यतीत होने पर उन्होंने वेद-मार्ग का उल्लंघन कर दिया । उस समय उनकी रानी ने अत्यन्त दुःखी होकर भगवान् शिव की शरण प्राप्त की । ७-१६। रुद्र के वरप्रदान द्वारा रानी के महान् उत्तम पुत्र हुआ । उस वेद-ऋत के पारायण करने वाले का धर्मराज नामकरण हुआ । पश्चात् राजा गुणशेखर का निधन हुआ जिससे उन्हें नरक की प्राप्ति हुई । उस समय धर्मराज स्वयं धर्मिक राज्य करने लगा । अनन्तर उसके धर्म के

तस्य धर्मप्रभावेण तत्प्रिया स्वर्गमाप्तवान् । त्रयः पत्न्योभवस्तस्य गुणरूपा महोत्तमाः ॥१९
 वसन्तसमये राजा ताभिः सह बनान्तरे । संयातो रमयान्नास पुष्ट्यभ्रमरनादिते ॥२०
 श्रमितः स तु भूपालो राजीभिः सह मोदितः । सरोदरे स्नागितवान्मदाघूर्णितलोचनः ॥२१
 गृहीत्वा कुसुमं पाञ्चं करे राजै समर्पयत् । पदि हीनत्वमायाता पततः कुसुमेन वै ॥२२
 दुःखितः स तु भूपालो राजीं तामचिकित्सयत् । रात्रौ प्राप्ते द्वितीया तु चन्द्रशीतेन मोहिता ॥२३
 अपतद्वधाकुलीभूत्वा शुद्धं पादमभूत्ततः । पतितायाश्च शब्देन वृतीया ज्वरिताऽभवत् ॥२४
 तस्या मूर्च्छा तदा क्षीणा द्वितीयाय अजायतः । नृस्पर्शेन सा सञ्चूर्ज्वरताम् विहाय च ॥२५
 प्रभाते सुंदरे जाते स ताभिर्गृह्यमाययौ । इत्युक्त्वा स तु वैतालो भूपतिं प्राह नन्नधीः ॥
 आसां मध्ये महाराज का श्रेष्ठा सुकुमारिका ॥२६

राजोदाच

वृतीया सुकुमारी च तासां मध्ये महोत्तमा । वायुप्रकृतितश्वासौ पद्मपुष्पेण खञ्जिता ॥२७
 शीतांशुना द्वितीया तु मूर्च्छिता कफभावतः । शब्दमात्रेण सन्तापे यस्यां जातो हि सोत्तमा ॥२८
 विहस्याह पुनर्देवो भवभक्तं भ्रीपतिम् । जैनधर्मः प्रधानो हि वेदधर्मोऽथदावद ॥२९
 सहोवाच प्रधानोऽसौ वेदधर्मः सनातनः । अस्तु श्रेष्ठो हि तस्यैव ब्रह्मणोऽव्यक्तरूपिणः ॥३०
 शूद्रो वैश्यस्तथा क्षत्री ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यकृत् । गेही वन्यो यतिश्वेव क्रमाच्छ्रौढः प्रकीर्तिता ॥३१

प्रभाव से उसके पिता को स्वर्ग की प्राप्ति हुई । धर्मराज के गुणानुरूप और अत्यन्त उत्तम प्रकृति की तीन स्त्रियाँ हुईं । वसंत क्रृतु में किसी समय वह राजा अपनी रानियों समेत एक उपवन में जिसमें पुष्पों के ऊपर भौंटे गुंजार कर रहे थे, जाकर रमण करने लगा । शान्त होने पर वह राजा स्त्रियों समेत मदमत्त होकर प्रसन्नता प्रकट करता हुआ किसी सरोवर में स्नान करने लगा । १७-२१। वह एक कमल पुष्प लेकर रानी के हाथ में अपित किया, किन्तु उस पुष्प के पतत होने से उसका चरण लंगड़ा हो गया । दुखी होकर राजा ने उस रानी की चिकित्सा की । पुनः रात्रि के समय चन्द्रप्रकाश होने पर चन्द्रकी किरणों से मुग्ध होकर घबड़ाकर गिर गई, किंतु, (पहली स्त्री का) चरण अच्छा हो गया । और उसके गिरने के शब्द सुनकर तीसरी स्त्री को ज्वर हो आया । उस समय दूसरी पत्नी की मूर्च्छा छूट गई । राजा के स्पर्श करने से उसका ज्वर भी दूर हो गया । सुन्दर प्रभात होने पर वह उन स्त्रियों को लेकर अपने घर आया । इतना कहकर नन्नता पूर्वक उस वैताल ने राजा से कहा महाराज ! इन स्त्रियों में कौन सुकुमारी श्रेष्ठ कही जायगी । २२-२६

राजा ने कहा—उनमें तीसरी स्त्री परमोत्तम है क्योंकि वायु प्रकृति होने से पहली स्त्री का चरण कमल पुष्प (के स्पर्श) से लंगड़ा हो गया, कफ के अधिक कष्ट होने से चन्द्र किरण के कारण दूसरी स्त्री मूर्च्छित हो गई और शब्द मात्र सुनकर तीसरी को संताप हो गया अतः यही सर्वोत्तम उसकी स्त्री है । पश्चात् शिवभक्त उस राजा से वैताल ने पुनः कहा—प्रधान जैन धर्म है या वेद धर्म ? उन्होंने कहा सनातन (नित्य) होने के नाते वेदधर्म प्रधान है । उस व्यक्त रूपी ब्रह्म (वेद) के आठ श्रेणियाँ हैं—शूद्र, वैश्य, क्षत्री, ब्राह्मण एवं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ बताये गये हैं । २७-३१।

यः कुत्वा दारसंसर्वं यतिवद्वर्तते गृही । स पापी नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम् ॥२२
गृहेषु यतिवद्वर्तमो जैनशास्त्रे प्रकीर्तितः । पाखण्डः स स्मृतः प्राज्ञवर्जनीयो हि सर्वदा ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे चतुर्युगलण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये दशमोऽध्यायः । १०

अथैकादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भोः शौनक महाभाग स वैतालो हि देवता । राजान्मब्रवीदगःथां धर्मप्रश्नमयीं शुभाम् ॥१
राजन्पुण्यपुरे रम्ये नानाजननिषेविते । धर्मवल्लभभूपालस्तत्र राज्यं पुराकरोत् ॥२
सत्यप्रकाशस्तन्मन्त्रीतक्षमीश्वामात्यकामिनी । कदाचित्स तु भूपालो मन्त्रिणं प्राह धर्मवित् ॥३
आनन्दः कतिधा लोके तन्ममन्त्रक्ष्व स्ततमः । स होवात् महाराज सुखं चैव चतुर्विधन् ॥४
ब्रह्मचर्याश्रमे यो वै ब्रह्मानन्दो महोत्तमः । गार्हस्थ्ये विषयानन्दो मध्यमः कथिते बुधैः ॥५
वानप्रस्थे महाराज स धर्मानन्दकोऽधमः । कर्मकाण्डेन चानन्दः सत्यधर्मः स वै स्मृतः ॥६
संन्यस्ते तु शिवानन्दस्त्वं हि सर्वोत्तमोत्तमः । विषयानन्दको राजन्स्त्रीप्रधानः प्रकीर्तिः ॥७

जो गृहस्थ पुरुष स्त्री का सम्पर्क रखते हुए संन्यासी की भाँति रहता है । वह पापी नरक में महाप्रलय काल तक रखा जाता है । घर में संन्यासियों की भाँति रहना जैनशास्त्र में बताया गया है । इसलिए वह पाखण्डधर्म कहा गया है, बुद्धिमानों को सदैव उसका परित्याग करना चाहिए । ३२-३३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक दशवाँ अध्याय समाप्त । १०।

अध्याय ११

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाभाग ! शौनक ! उस वैताल देव ने पुनः शुभ एवं धार्मिक प्रश्न वाली गाथा को राजा से कहा—राजन् ! रमणीक उस पुण्यपुर नामक नगर में धर्म वल्लभ नामक राजा पहले राज करता था । सत्य प्रकाश उसके मंत्री का नाम था, जिसकी सेवा लक्ष्मी कामिनी की भाँति करती थी । किसी समय धर्मवेत्ता उस राजा ने मंत्री से कहा—सत्तम ! लोक में कितने प्रकार का आनन्द है, मुझे बताइये । उसने कहा—महाराज ! चार प्रकार का सुख बताया गया है—ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मानन्द महान, उत्तम बताया गया है, गार्हस्थ्याश्रम में विषयानन्द कहा गया है, जिसे विद्वानों ने मध्यम श्रेणी में रखा है । १-५। महाराज ! वानप्रस्थ में धर्मानन्द को अधम बताया गया है, क्योंकि कर्मकाण्ड में कोई आनन्द नहीं है, पर, सत्यधर्म वही कहा गया है । और संन्यास में शिवानन्द कहा गया है, वही सर्वोत्तम एवं परमोत्तम आनन्द है । राजन् ! विषयानन्द को स्त्री-प्रधान कहा गया है क्योंकि नृप ! गृहस्थाश्रम में

स्त्रियं विनासुखं नास्ति गृहस्थाश्रमके नृप । इति श्रुत्वा स भूपालो देशान्तरपुण्ययौ ॥८
पत्नीमन्वेषयामास स्वयोग्यां धर्मतत्पराम् । प्राप्तवान्न तु वामाङ्गी मनोवृत्यनुसारिणीम् ॥९
स भूपो मन्त्रिणं प्राह नारीलन्वेषयाद्य भोः । नो चेत्प्राणानहं त्यक्ष्ये सत्यं वाक्यं ब्रवीम्यहन् ॥१०
इति श्रुत्वा ययौ मन्त्री देशादेशान्तरं प्रति । सिन्धुदेशो च सम्प्राप्य समुद्रं प्रति सोऽगमद् ॥
तुष्टाव भनसा सिन्धुं सर्वतीर्थर्पति शुभम् ॥११

बुद्धिप्रकाश उवाच

सिन्धुदेव नमस्तुम्यं सर्वरत्नालय प्रभो ॥१२
अहं ते शरणं प्राप्तः शरणगतवत्स्तलः । त्वां नमांम जलाधीशं गङ्गांदिसरितां पतिम् ॥१३
स्त्रीरत्नं देहि राजोऽर्थे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् । इति श्रुत्वा प्रलत्रात्मा सागरः सरितां पतिः ॥१४
जले वृक्षं सुवर्णांगं पत्रविद्वमकं महत् । मुक्ताफलान्वितं दिव्यं मन्त्रिणे समर्दर्यत् ॥१५
तस्योपरि स्थिता बाला मुकुमारो मनोरमा । तत्रैव सातये जाता वृक्षेण सह भूपते ॥१६
इति दृष्ट्वा महाश्रव्यं नृपान्तिकमुपाययौ । धर्णयित्वा तु तत्सर्वं राजा सार्धं समाप्तवान् ॥१७
तथाविधं नृपो दृष्ट्वा सागरान्तरपुण्ययौ । बालया सह पातालं प्राप्तवान्भूपतिः स्त्वयम् ॥१८
तां नारीं प्राह नग्रात्मा त्वदर्थेऽहं समागतः । गान्धर्वेण विवाहेन मां प्रापय वरानने ॥१९
विहस्य साऽहं तं भूपं कृष्णपक्षे चतुर्दशी । तद्दिनेऽहं समागत्य त्वां भजामि नृपोत्तम ॥२०

बिना स्त्री के सुख सम्भव नहीं होता है । ऐसा सुनकर वह राजा देशान्तर में जाकर अपने अनुरूप धार्मिक पत्नी की खोज करने लगा । किन्तु मनोनुकूल वासांगी उसे प्राप्त नहीं हुई । पश्चात् उसने अपने मंत्री से कहा—आज मेरे लिए स्त्री की खोज अवश्य करो नहीं तो मैं सत्य कह रहा हूँ, प्राण परित्याग कर दूँगा । ऐसा सुनकर उस मंत्री ने देश देशान्तर के लिए प्रस्थान किया । सिंधु देश में पहुँचकर उसने समुद्र के यहाँ जाकर उस सभी तीर्थों के स्वामी की मानसिक स्तुति करना आरम्भ किया—६-११

बुद्धिप्रकाश ने कहा—प्रभो ! सिंधुदेव, सम्पूर्ण रत्नों के आलय ! तुम्हें नमस्कार है । शरणांगत वत्सल ! मैं तुम्हारी शरण आया हूँ, गंगा आदि नदियों के स्वामी, एवं जलाधीश को मैं नमस्कार करता हूँ । अतः मेरे राजा के निमित्त स्त्री रत्न प्रदान कीजिये, अन्यथा मैं प्राण परित्याग करने जा रहा हूँ । यह सुनकर सरित्पति सागर ने प्रसन्न होकर जल में एक इस भाँति का वृक्ष सुवर्ण की भाँति जिसके अंग, विद्वुम (मूंगा) के समान पत्र, और मुक्ताफल से युक्त था, उस मंत्री को दिखाया । नृप ! उसी वृक्ष पर एक मुकुमारी एवं मनोरमा स्त्री स्थित थी किन्तु उसी स्थान पर वृक्षसमेत वह डूब गई । इस प्रकार का आश्चर्य देखकर वह मंत्री राजा के समीप आकर उस घटना का वर्णन करके राजा के साथ उसी स्थान पर पुनः गया । १२-१७। राजा भी उसी प्रकार की घटना देखकर समुद्र के भीतर प्रवेश करके उस स्त्री के साथ पाताल पहुँच गया । विनश्च होकर उसने उस स्त्री से कहा—मैं तुम्हारे लिए ही यहाँ आया हूँ अतः गांधर्व विवाह द्वारा मुझे अपनाओ । उसने हँसकर के राजा से कहा नृपश्रेष्ठ ! मैं कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन आकर आपकी सेवा करूँगी । इसे सुनकर वह राजा उस दिन कामपीड़ित होकर हाथ में खड़ग लेकर

इति श्रुत्वा स नृपतिस्तद्विने स्नरविद्वलः । खड्गहस्तो ययौ तत्र यत्र देवीगृहोत्तमम् ॥२१
 एतस्मन्नन्तरे तत्र राक्षसो बकवाहनः । तां बालां स च पस्पर्शं नृपः क्रोधातुरोऽभवत् ॥२२
 कामान्धो राक्षसं हत्वा स्वपत्नीं प्राह निर्भयाम् । क्रोऽयं तेऽत्र समायातः कारणं वद भास्मिनि ॥२३
 साह भोः शृणु भूपाल विद्याधरसुता ह्यहम् । पितृप्रिया भद्रवती कामातां वनमागता ॥२४
 नागतः भोदने काले पितृमात्रोऽत्र मन्दिरे । ज्ञात्वा ध्यानेन मत्पित्रा शापिता तच्छृणुष्व भोः ॥२५
 अच कृष्णचतुर्दश्यां त्वां भजिष्यांते राक्षसः । कृष्णपक्षचतुर्दश्यां भुक्ष्व त्वमपराधकन् ॥२६
 तदाहं रोदनं कृत्वा ब्रवीमि पितरं प्रति । कदम्बुक्तिभवेद्व तत्त्वं कथय सुव्रत ॥२७
 स होदाच कुमारि त्वं वीरचुक्ता भविष्यसि । तदा शापस्य मुक्तिः स्यात्साहं तव विमोचिता ॥२८
 त्वदाज्ञयाहं यास्यामि भो राजन्यिदृमन्दिरे । इति श्रुत्वा नृपः प्राह भम देहं समाव्रज ॥२९
 त्वया साद्वं गमिष्यामि गृहं विद्याधरस्य तत् । तथेत्युक्त्वा तु सा देवी नृपगेहं समाययो ॥३०
 तदा तु नगरे तस्मिन्नृणां जातो महोत्सवः । मन्त्री दृष्टा तु तं भूपं दिव्यपत्नीसमन्वितम् ॥
 पञ्चत्वमगमतूर्णं कुतो हेतोर्हि तद्वद ॥३१

राजोदाच

मन्त्री बुद्धिप्रकाशस्तु दृष्टा देवीं समागताम् ॥३२
 नृपं स हृदि सन्ध्यात्वा राज्यभङ्गभयातुरः । त्यक्त्वा प्राणान्ययौ स्वर्णं शृणु यत्कारणं शुभम् ॥३३

देवी के उस उत्तम मन्दिर में पहुँचा किन्तु उसी समय बक पक्षी की सवारी पर आकर राक्षस ने उस स्त्री का स्पर्श किया । उसे देखकर वह क्रोधातुर हो गया । अनन्तर कामांध होकर राजा ने उस राक्षस का दधकर के उस निर्भय अपनी पत्नी से कहा—भास्मिन् ! तुम्हारा यह कौन है, और यहाँ क्यों आया । इसका कारण बताओ । उसने कहा—राजन् ! सुनो ! मैं विद्याधर की पुत्री हूँ । अपने पिता की लाडली होने के नाते मैं मत्त एवं कामातुर होकर वन में चली आई, भोजन समय में भी अपने माता-पिता के गृह न जा सकी । पश्चात् मेरे पिता ने ध्यान द्वारा उसे समझकर मुझे शाप दिया कि—आज कृष्ण चतुर्दशी के दिन तुम्हें राक्षस की सेवा करनी पड़ेगी । अतः इस कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में तुम अपने अपराध परिणाम का भोग करो । उस समय मैं रुदन करती हुई अपने पितरों से कहने लगी—देव, सुव्रत ! मेरी मुक्ति कब होगी, इसे निश्चित बताने की कृपा कीजिये । उन्होंने कहा—कुमारि ! जिस समय मैं तू वीरोपभोग्या होगी । उस समय यह मेरा शाप छूट जायगा । राजन् ! मैं तुम्हारी आज्ञा प्राप्त कर अपने पिता के गृह जाना चाहती हूँ । ऐसा सुनकर उस राजा ने उसमें कहा—मेरे घर चलो ! पश्चात् मैं भी तुम्हारे साथ विद्याधर के यहाँ चलूँगा । उस देवी ने स्वीकार कर राजा के घर प्रस्थान किया । उस समय राजा के नगर में मनुष्यों ने महान् उत्सव किया । किन्तु, उस दिव्यपत्नी समेत राजा को देखकर उस मंत्री का निधन हो गया, वैताल ने पूछा—इसका कारण बताइये । १८-३१

राजा ने कहा—मंत्री बुद्धिप्रकाश उस दिव्य रमणी को देखकर अपने हृदय में राजा के विषय में सोचने लगा—कि स्त्री के वश होने के नाते राजभंग हो जायेगा । इसका कोई प्रतीकार न देखकर उस भय

विषयी ये: हि भूपालस्तस्य राज्यविनाशनम् । स्त्रीमदं प्राप्तराज्यस्य सदा हानिमवान्तुयात् ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगाखण्डःपरयर्थे
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकादशोऽध्यायः । ११

अथ द्वादशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

विहस्य स तु वैतालो राजानमिदमद्वीत् । राजंचूडायुरे रम्ये भूपश्चूडामणिः स्मृतः ॥१
देवस्वामी गुरुस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः । तस्य पत्नी विशालाक्षी पतिधर्मपरायणा ॥२
शिवमाराधयमास पुत्रार्थं वरवर्णिनी । रुद्रस्य दरदानेन कामदेवसमः सुतः ॥३
हरिस्यामीति विल्यातो जातो देवांशवान्बली । सर्वसम्पत्त्वमायुक्तो देवतुल्यसुखी क्षितौ ॥४
रूपलावण्यिका नान्ना तत्पत्ती हि सुरांगना : जाता देवलशायेन तस्य नन्दनतो नृप ॥५
एकदा पतिना सार्द्धं वसन्ते कुसुमाकरे । हर्म्ये मुष्वाप सम्प्रीत्या शव्यामध्यास्य सुन्दरी ॥६
सुकलो नाम गन्धवस्तस्या रूपेण मोहितः । तां जहार विमाने स्वे संस्थाप्य स्वपुरं यथौ ॥७
प्रबुद्धः स तु तां नारीं मृगयामास विह्वलः । अलब्ध्वा व्याकुलो भूत्वा देशं त्यदत्वा वनं गतः ॥८

से वह अपना प्राण परित्याग कर स्वर्ग चला गया । क्योंकि जो राजा विषयी होते हैं उनके राज्य का नाश हो जाता है और स्त्री रूपी भट (नशे) की ग्राप्ति करने से राज्य की सदैव हानि होती रहती है । ३२-३४
श्रीभविष्यमहापुराणे के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक ग्यारहवाँ अध्याय । ११।

अध्याय १२ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

शौनक ने कहा—वैताल ने हँसकर राजा से कहा—राजन् ! चूडायुर में चूडामणि नामक राजा राज कर रहा था । वेद एवं वेदाङ्ग निष्णात देवस्वामी उसका गुरु था । विशाल नेत्र वाली उसकी पत्नी सदैव पतिधर्म का ही पारायण करती थी । उस सुन्दरी ने पुत्र कामनया शिव जी की उपासना की । भगवान् रुद्र जी के वरदान द्वारा उसके हरिस्यामी नामक स्वातिप्राप्त पुत्र हुआ, जो कामदेव के समान सुन्दर बली एवं देवांश युक्त था । वह सम्पूर्ण सम्पत्ति से युक्त होकर देवता के समान पृथ्वी पर सुखी जीवन व्यतीत करने लगा । रूपलावण्यिका नामक उसकी पत्नी थी । नृप ! वह देवाङ्गना थी, देवल के शाप से उसके लड़के से उत्पन्न हुई थी । उस हरे-भरे वसन्त के समय में एक दिन वह सुन्दरी अपने पति के साथ महल में मृदुशश्या पर शयन कर रही थी । उस समय सुकल नामक एक गन्धर्व उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसका अपहरण करके अपने विमान पर बैठाकर उसे अपने नगर ले गया । उसके पति ने जागने पर घबड़ा कर अपनी पत्नी को खोजने का प्रयास किया । उसके न मिलने पर विह्वल होकर वह देश का परित्याग

संन्यस्य विषयान्सर्वान्हरिध्यानपरायणः । वदाचित्प्राप स स्नेही विप्रगेहमुपागतः ॥१९
 प्रपच्य पायसमपि वटवृक्षमुपाश्रितः । वृक्षोपरि निधायाशु नदीस्नानमथाकरोत् ॥२०
 भोजनं च ततो राजन्सर्पेण गरलीवृत्तम् ॥२१
 ततो यतिः समायातो भुक्त्वा मदमुपाययौ । विषेण पीडिततुर्दृष्ट्वा ब्रह्मणमब्रदीत् ॥२२
 त्वया प्रदत्तं मूर्खेण पायसं विषमिश्नितम् । भरणं दामि भो दुष्टं ब्रह्महत्यामदास्थसि ॥२३
 इत्युक्त्वा गरणं प्राप्य शिवलोकमुपाययौ । रूपतेजोयुतां देवीं गृहीत्वा सुखमस्तवान् ॥२४
 इत्युक्त्वा स तु वैतालो राजानमिदवृतीत् । कस्मै प्राप्ता ब्रह्महत्या तेषां मध्ये वदस्तु मे ॥२५

राजोवाच

स्वाभाविकविषो नागो हृज्ञानेन विषं कृतम् । अतो दोषी हि भुजगो ब्रह्महत्यां न चाप्तवान् ॥२५
 बुभुक्षिते ददौ भिक्षां स द्विजो दैवमोहितः । ब्रह्महत्यामतो नायाकुलधर्मपरायणम् ॥२६
 आत्मना च कृतं पापं भोक्तव्यं सर्वदा जनैः । आत्मत्यागो ब्रह्महत्या चातिथेश्वरवाननम् ॥२७
 ब्रह्महत्या तदा ज्ञेया विषदत्तेन सा तथा । आत्मत्यागः स्मृतो दैदात्स्मात्सोऽपि न पापवान् ॥२८
 यैर्नरैः कथिता वार्ता ब्रह्महत्या त्वया कृता । तेषां ब्रह्मणहत्या सा न्यायभ्रष्टवतां नृणाम् ॥२९
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्पुर्णगण्डापरपरयिः
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम द्वादशोऽध्यायः । १२

कर जंगल चला गया । वहाँ जाकर वह सभी विषयों के त्यागपूर्वक (संन्यास लेकर) भगवान का ध्यान करने लगा । एक बार खीर खाने की इच्छा से वह किसी ब्राह्मण के घर क्षुधापीडित होकर पहुँचा । वहाँ से खीर लाकर एक वट वृक्ष के नीचे बैठ गया पञ्चात् उस पायस को उसी वृक्ष पर रख कर नदी में स्नानार्थ चला गया । राजन् । उसी बीच किसी सर्प ने उसे अपने विष से दूषित कर दिया । अनन्तर उस संन्यासी को उसका भक्षण करने से मद (नशा) होने लगा । विष की व्यथा से व्याकुल होकर उसने उस ब्राह्मण से कहा कि उसी ब्राह्मण ने खीर में विष मिला दिया है । अतः दुष्ट ! मैं प्राण त्याग कर रहा हूँ, तुम्हें ब्रह्महत्या का पाप भोगना पड़ेगा । इतना कहने के उपरांत वह प्राण परित्याग करके शिवलोक जाकर वहाँ रूप एवं तेज युक्त देवी की प्राप्ति कर मुख का अनुभव करने लगा । इतना कह कर वैताल ने राजा से कहा—उनमें ब्रह्महत्या का भागी कौन हुआ ? मुझे बताने की कृपा कीजिये । १-१४

राजा ने कहा—साँपों में विष का होना स्वाभाविक है और अज्ञान वश उसने उसे दूषित किया था, इसीलिए वह दोषी अवश्य है, पर, ब्रह्महत्या का भागी नहीं । तथा वह ब्राह्मण दुर्भाग्यवश उस भूखे ब्राह्मण संन्यासी को भिक्षा प्रदान किया है, ऐसा करके उसने अपने कुलधर्म की रक्षा ही की है अतः उसे भी ब्रह्महत्या नहीं हो सकती । मनुष्यों को सर्वदा अपने किये हुए पाप-कर्म का फल भोगना ही पड़ता है । ब्राह्मण द्वारा अपमानित होकर उस ब्राह्मण के यहाँ विष मिश्रित भोजन प्राप्त कर उसके भक्षण करने से अह अतिथि आत्मत्याग किये होता तो वह ब्राह्मण ब्रह्महत्या का भागी होता । उसने दैव (भाग्य) वश आत्मत्याग किया अतः वह ब्राह्मण ब्रह्महत्या का भागी नहीं है । जो मनुष्य उस बात की चर्चा करते हुए यह कहेंगे कि ब्रह्महत्या तुमने की है, उन्हीं न्याय भ्रष्ट मनुष्यों को वह ब्रह्महत्या लगेगी । १५-१९

श्री भविष्यंमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय नामक
 बारहवाँ अध्याय समाप्त । १२।

**अथ त्रयोदशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्**

सूत उचाच्च

कृतकृत्यः प्रसन्नात्मा वैतालो नृपमञ्जवीत् । नगरे चन्द्रहृदये रणधीरो नृपोऽभवत् ॥१
 तत्र वैश्योऽवसद्धर्मी नान्ना धर्मध्वजो धनी । तस्य पुत्री समायाता चुन्दरी सुखभाविनी ॥२
 एकहा नगरे तस्मिन्न्यातुभक्तो नरोऽन्वन् । द्यूतविद्यापरो नित्यं मद्यांसपरायणः ॥३
 वाशरो नाम तत्रासीद्राक्षसः पुष्टादनः । तस्मै मद्यं च मांसं च प्रत्यहं स च दत्तवान् ॥४
 प्रसन्नो राक्षसो भूत्वा यानुभक्तं तमब्रवीत् । वरं वरय यो योग्यो मत्तः सर्वमवाप्स्यसि ॥५
 स होवाच वरो मह्यं देयस्ते पुरुषादक । गुप्तगर्तं च भूमध्ये कुरु चौरनिरूपणम् ॥६
 इति श्रुत्वाकरोद्गर्तं नरबुद्धिविमोहनम् । स्वयं तत्र स्थितो देवः स्वभक्तेन समन्वितः ॥७
 तेन रात्रौ तु चौर्येण नृपदासी वराङ्गना । हृता संस्थापिता गर्ते बहुद्वयं तथा इतम् ॥८
 सप्तपत्न्योऽभवस्तस्य चतुर्वर्णस्य योषितः । तासां मध्ये भूपदासी तस्य चौरस्य वल्लभा ॥९
 नृपदुर्गसं गेहं रचितं तेन रक्षसा । भूतले गुप्तरूपं च नरबुद्धिविमोहनम् ॥१०
 चोरितं बहुधा द्रव्यं गर्ते संस्थापितं बलात् । तदा ते व्याकुला राजञ्जना राजानम्भुवन् ॥११

अध्याय १३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—कृतकृत्य होकर उस वैताल ने प्रसन्नचित्त से राजा से कहा—चन्द्रहृदय नामक नगर में रणधीर नामक राजा राज कर रहा था । उसी नगर में धर्मध्वज नामक एक धार्मिक वैश्य रहता था । उसके सुखभाविनी नामक एक सौन्दर्य पूर्ण कन्या थी । एक बार उस नगर में एक मनुष्य राक्षस की उपासना करने लगा । द्यूत (जुए) खेलना और मद्य-मांस का भक्षण करना उसका नित्य दैनिक कार्य था । पुरुष का भक्षण करने वाला, वाशर नामक एक राक्षस वहाँ रहता था । उसी के लिए वह मद्य मांस प्रतिदिन अर्पित करता था । प्रसन्न होकर राक्षस ने उस भक्त से कहा । यथेच्छ वर की याचना करो, मैं सभी कुछ देने को तैयार हूँ । पुरुषभक्षक ! यदि मुझे आप वरदान प्रदान करना चाहते हैं, तो भूमि के भीतर एक गुप्त स्थान (चोरी का माल रखने के लिए) बनाइये । इसे सुनकर उस राक्षस ने एक इस प्रकार का गुप्त स्थान बनाया जिसमें मनुष्यों की बुद्धि चकित हो जाती थी । उस स्थान में उस राक्षस के साथ वह भक्त रहने लगा । एक बार रात्रि में उस चोर ने राजा की एक दासी का अपहरण करके उसी स्थान में रख दिया, उसने भी अधिक संख्या में द्रव्य का अपहरण किया । इस प्रकार उस चोर की चारों वर्णों वाली सात पल्लियाँ थी । किन्तु उनमें राजा की वह दासी ही उस चोर की हृदयेश्वरी थी । राक्षस ने उस स्थान का निर्माण राजा के दुर्ग के समान दृढ़ एवं इस भूतल में मनुष्यों की बुद्धि को चकित करने वाला किया था । उसने चोरी तथा बलपूर्वक अनेक भाँति के द्रव्यों का अपहरण करके संचय किया । उस

त्यजाम नगरीं भूप चौरविघ्नकरीं तद । इति श्रुत्वा भूपेन रक्षिणः शस्त्रसंयुताः ॥
 स्थापिता नगरे तर्स्मश्वौरहिंसापरायणाः ॥१२
 आज्ञाप्य स ययौ गेहं तैस्तु श्रुत्वा तथा कृतम् ॥१३
 राक्षस्या सायथा सर्वे मोहिता रक्षिणस्तदा । चौरेण बहुधा द्रव्यं हृतं च धनिनां बलात् ॥१४
 पुनस्ते प्रययुर्भूपं रणधीरं समेरयन् । श्रुत्वा तु विस्मितो राजा स्वयं नगरमागतः ॥१५
 अर्धात्रे तमोभूते स चौरो नृपमागतम् । ज्ञात्वाब्रदीच्च राजानं को भवानत्र चाप्तवान् ॥१६
 नृपोऽब्रवीदहं चौरश्वोदितार्थः समागतः । यास्यामि धनिनां गेहे भवान्मे वचनं कुरु ॥१७
 मया सार्द्धं च बहुधा द्रव्यं हर सुखी भव । तथा मत्वा तु बहुधा चौरेण धनमाहृतम् ॥१८
 गर्तनध्ये गतो रात्रौ स्थापयित्वा नृपं बहिः । एतस्मन्नेव तत्पत्नी नृपदासी वराङ्गना ॥१९
 भूपतिं श्राह भो राजनाच्छ शीघ्रं स्वकं गृहम् । चौरोऽसौ हि त्वदर्थे च मृत्युं कुर्वन्नाहं गतः ॥२०
 इत्युक्त्वा सा तु भूपाय मार्गभेदमदर्शयत् । नृपोऽपि स्वगृहं प्राप्य प्रभाते विमले रद्वौ ॥२१
 आप्यौ सेनया सार्द्धं यत्र चौरः स्वयं स्थितः । चौरोऽपि भयमासाद्य वाशरं नाम राक्षसम् ॥२२
 सम्पूज्य वर्णयामास यथा जातं तथाविधि । विहस्याह च रक्षसं त्वया मे भोजनं कृतम् ॥२३
 अद्य भक्ष्याम्यहं सर्वान्मानुषान्दैवचोदितान् । इत्युक्त्वा स ययौ घोरो राक्षसो नृपतिं प्रति ॥२४

समय वहाँ की प्रजा अधीर होकर राजा से कहने लगी । राजन् ! चौरों के द्वारा इस नगर में अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित हो गई हैं, अतः हम लोग इसके परित्याग करने के लिए प्रस्तुत हैं । ऐसा सुनकर राजा ने अपने शस्त्रधारी रक्षकों को, जो चौरों की हिंसा करने में निपुण थे, उस नगर के चारों ओर नियुक्त कर दिया । किन्तु राक्षस की माया से मोहित होकर वे रक्षकण किरकर्त्तव्यमूढ़ हो गये, और उन चौरों ने बल प्रयोग करके धनवानों के भाँति-भाँति के धनों का अपहरण कर ही लिया । नगर के प्रजा वर्ग ने पुनः उस रणधीर राजा के पास जाकर उन घटनाओं का निवेदन किया । उसे सुनकर राजा आश्चर्य चकित होकर स्वयं नगर के रक्षार्थ वहाँ उपस्थित हुआ । १-१५। उस अधेरी रात में आधी रात के समय चौर ने आये हुए राजा से पूछा—आप कौन हैं, तथा यहाँ आने का प्रयोजन क्या है । राजा ने कहा—मैं भी चौर हूँ, चौरी के निमित्त यहाँ आया हूँ । मैं धनवानों के यहाँ चलने के लिए प्रस्तुत हूँ, आप भी मेरी बात स्वीकार करें—मेरे साथ चलकर अनेक भाँति के द्रव्यों का अपहरण करके मुखी जीवन व्यतीत करें । चौर ने उसे स्वीकार करके अनेक भाँति के द्रव्यों का अपहरण कर राजा को बाहर खड़ा करके स्वयं उस धन को रखने के लिए भीतर उस गुप्त स्थान में प्रविष्ट हुआ । उसी बीच वह दासी जो उस चौर की पत्नी के रूप में वहाँ रहती थी, राजा से कहने लगी—राजन् ! आप शीघ्र अपने घर को प्रस्थान कीजिये क्योंकि वह चौर भीतर जाकर आप के निधन के लिए उपाय कर रहा है । इतना कहकर उस दासी ने राजा को वहाँ का मार्ग भेद भी दिखा दिया । राजा अपने घर पहुँच कर निर्मल प्रभात के समय सूर्य के उदयकाल में अपनी सेना के साथ उस चौर के स्थान पर पहुँच गया । पश्चात् भयभीत होकर उस चौर ने वाशर नामक उस राक्षस से सभी वृत्तान्त जो कुछ रात में जिस प्रकार हुआ था कह सुनाया । राक्षस ने हँसकर उससे कहा । आज तुमने मुझे अच्छा भोजन प्रदान किया । दुर्भाग्यवश आये हुए उन सभी मनुष्यों का भक्षण करने के लिए मैं चल

चलाद बहुलां सेनां तेजपि यात। दिशो दश। आक्रान्तः स च भूपालो रक्षसा विकलीकृतः ॥२५
 तदा चौरः स्वयं प्राप्य भूर्पति प्राह रोषतः। पलायनं न भूपस्य योग्यं धर्मजनस्य वै ॥२६
 इति श्रुत्वा नृपश्वेत तूर्णमात्मत्य तत्र ह। ध्यात्वा देवीं महाकालीं लब्ध्वा मन्त्रं महोत्तमस् ॥२७
 रक्षसा सह तद्गतं भस्मसाद्भवत्क्षणाद्। निगड्स्तं बलधारुं चौरं नगरलुण्ठकम् ॥२८
 तथा सर्वधनैः सार्थं स्त्रीभिस्ताभिः समाययौ। राज्यस्थानं समासाद्य दुर्गतिस्तस्य चाभवत् ॥२९
 पठहाताङ्गितेनै शज्जेन च गृहे गृहे। ज्ञापितं करणं सर्वं तच्चौरस्य वधस्य तैः ॥३०
 तद्विने नगरे तस्मिन्द्वामितो गर्दभोपरि। धर्मध्वजगृहद्वारे स चौरो हि समागतः ॥३१
 तस्य रूपं समालोक्य मुमोह सुखभाविनीः पितरं प्राह दुःखार्ता चौरं मोक्षय सत्वरम् ॥३२
 स गत्वा नृपतिं प्राह पञ्चलक्षणं मम। गृहाण चौरमोक्षार्थं श्रियते न हि मे सुता ॥३३
 विहत्याह नृपस्तं वै चौरोऽयं धनलुण्ठकः। कर्हिचिन्न मया त्याज्यो भुवि वै पुरुषाधमः ॥३४
 इति श्रुत्वा निराशोऽभूत्स चौरो भरणं गतः। शल्यारोपणकाले तु प्राक्प्रहस्य ततोऽरुदत् ॥३५
 एतस्मिन्नेव तत्पुत्री देवमायाविमोहिता। गृहोत्त्वा चौरदेह तु वह्निकुण्डे तु सागमत् ॥३६
 तदा प्रसन्ना सा दुर्गा तावुजीव्य प्रसादतः। तस्यै दत्तो वरो दिव्यो भुक्तिमुक्तिकलप्रदः ॥३७
 इत्युक्त्वा स तु भूपालं पुनः प्राह विहस्य तम्। किं कारणेन चौरोऽसौ प्राक्प्रहस्य ततोऽरुदत् ॥३८

रहा हूँ। इस प्रकार कहकर राक्षस राजा के पास पहुँचा। बहुधा सैनिकों का उसने भक्षण कर लिया और जो किसी प्रकार जीवित रहे इधर-उधर भाग गये। उस राक्षस ने राजा के अंगों को क्षत-विक्षत करके उन्हें भ्रान्त कर दिया। उस बीच वह चोर रूप होकर राजा के पास पहुँच कर कहने लगा—धार्मिक राजा को (युद्ध से) भागना उचित नहीं है। इसे सुनकर राजा ने महाबली देवी के मन्दिर में शीघ्रता से पहुँचकर उनका ध्यान करके महान् एवं परमोत्तम मंत्र की प्राप्ति की। पश्चात् राक्षस समेत उस गुप्त भवन को उसी समय भस्म करके नगर में चोरी करने वाले उस चोर को हथकड़ियों से बांधकर उसके समस्त धन एवं स्त्री समेत उसे राजस्थान (राजदरबार) में लाकर उसकी अत्यन्त दुर्देशा की। अनन्तर ढोल बजवाकर प्रत्येक घरों से उसके वध करने के निमित्त प्रमाण माँगने पर नागरिकगणों ने समस्त कारणों को उपस्थित किया। उस दिन उसे गधे पर बैठाकर नगर में धुमाते हुए उसे धर्मध्वज वैश्य के दरवाजे पर लाया गया कि सुखभाविनी नामक वैश्य की पुत्री उसे देखकर उसके रूप पर मुग्ध हो गई। पश्चात् दुःखी होकर उसने अपने पिता से कहा—इस चोर को शीघ्र छुड़ा लीजिये। उसने राजा के पास जाकर कहा—मेरे पास पाँच लाख मुद्रा है, उसे ग्रहणकर चोर को छोड़ दीजिये, नहीं तो मेरी पुत्री का निधन हो जायेगा। हँसकर राजा ने कहा—धन का अपहरण करने वाला यह चोर है अतः इस भूतल में इस नीच पुरुष का परित्याग मैं कभी नहीं कर सकता इसे सुनकर वह निराश हो गया और उस चोर का जीवनान्त कर दिया गया। शूली पर चढ़ने के समय पहले उसने हँसा, पश्चात् रुदन किया। उसी समय देवमाया से मुग्ध होकर उस वैश्य की पुत्री चोर-देह को लेकर अग्नि कुण्ड में पहुँच गई। उस समय भी दुर्गा जी प्रसन्न होकर कृपया उसे जीवितकर मुक्ति-भुक्ति फल प्रदानपूर्वक दिव्य वर भी प्रदान किया। इतना कहकर उस (वैताल) ने हँसकर राजा से कहा—चोर ने पहले हँसकर पश्चात् रुदन किया, इसका क्या कारण है। १६-३८।

राजोवाच

मदर्थं सुन्दरी नारी स्वप्राणान्वातुमुद्यता । तस्यै किं च प्रदातव्यं मया तत्क्षेहरूपिणा ॥३९
 अतो रोदितवान्पश्चाद्वसने कान्जं शृणु । धन्योऽयं भगवान् कृष्णो यस्य लीलेयभीदृशी ॥४०
 अर्थनिषेच नाकस्य फलं दातुं समर्हति । धर्मिणो नरकस्यैव फलं तस्मै नमो नमः ॥४१
 अतः स हसितः शूद्रं मोहितो हरिलीलया । इति शुत्वाह वैतालो हरेः शरणमुत्तमम् ॥४२
 वाक्यं तेन कृतं शूल्यामतो जीवितवाञ्छुच्चिः ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् । १३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्यं महाभाग वैतालो नृपमब्रवीत् । राजन्युष्यावती रम्या नगरी तत्र भूपतिः ॥
 सुविचार इति ख्यातः प्रजापालनत्परः ॥१
 चन्द्रप्रभा तस्य पत्नी रूप्यौवनशालिनी । तस्यां जाता मुता देवी नाम्ना चन्द्रावली मता ॥२
 कदाचित्स्वालिभिः सार्द्धं विपिनं कुसुमाकरम् । आययौ तत्र वै विप्रं सुदेवं सा ददर्श ह ॥३

राजा ने कहा—यह सुन्दरी स्त्री मेरे लिए प्राण परित्याग करने को तैयार है, यद्यपि मैं उसका प्रीतिभाजन हूँ, पर उसे क्या दे सकता हूँ, इसलिए उसने रुदन किया; अब हँसने का कारण बता रहा हूँ, मुझो ! भगवान् कृष्ण धन्य हैं, जिसकी ऐसी लीला है कि अधर्मी को स्वर्ग और धर्म को नरक वास प्रदान करते हैं, उन्हें बार-बार नमस्कार है। इसी भगवान् की लीला से मोहित होकर वह पहले हँसा था। इसे सुनकर वैताल ने कहा—भगवान् का शरण ही उत्तम है क्योंकि शूली होने पर उसे पवित्र जीवन प्राप्त हो गया । ३९-४३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त । १३।

अध्याय १४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुवर्यं महाभाग ! वैताल ने राजा से कहा—राजन् ! पुष्पावती नामक रमणीक नगरी में सुविचार नामक राजा राज करता था। वह प्रजाओं के पालनपोषण में सदैव कटिबद्ध रहता था। रूप्यौवन सम्पन्न चन्द्रप्रभा नामक उसकी पत्नी थी। उस रानी से चन्द्रावती नामक एक पुत्री उत्पन्न हुई। एक बार वह अपनी सखियों समेत एक जंगल में गई, जहाँ भाँति-भाँति के पुष्प सुशोभित हो रहे थे। वहाँ सुदेव नामक व्राह्मण को देखकर वह मुग्ध हो गई और वह व्राह्मण भी मोहित होकर पृथिवी

मोऽहिता चाभवदेवी विप्रोऽपि पतिः क्षितौ । कामबाणव्यथां प्राप्य गतप्राण इवाभवत् ॥४
 तस्यां गतायां सदने द्वौ विप्रौ तत्र चागतौ । मूलदेवः शशी नाम्ना तत्र विद्याविशारदौ ॥५
 तथागतं द्विजं दृष्ट्वा रूपयौवनशालिनम् । पप्रच्छ कारणं सर्वं येन मोहन्वमागतः ॥६
 स श्रुत्वा रोदनं कृत्वा सर्वं तस्मै निवेदयत् । कृपालुमूलदेवस्तु तं स्वगेहमवाप्तवान् ॥७
 गृहे जप्त्वा महामन्त्रं चामुण्डाबीजसंयुतम् । कृतवाङ्गुटिके चोभे मुदेवाय समार्थयत् ॥८
 एक्या सुन्दरी कन्या द्वादशाब्दमयी शुभा । द्वितीयया महावृद्धो मूलदेवस्तदाभवत् ॥९
 द्वौ गतौ राजसदने नृपमाशीर्भर्त्यर्थं तस्मै । हेतुं निवेदयामास तच्छृणुष्व महामते ॥१०
 नगरे तान्त्रिके राजन्मद्गेहं सुन्दरोपमम् । विलापध्वजनाम्ना वै राजो संलुठितं बलात् ॥११
 पलायितौ सुतः पल्नी तावन्वेष्टुं समाययौ । इयं वधूर्महाराज मम तत्युत्रभाविनो ॥१२
 यावदहं न गच्छामि स्वगेहे रक्ष धर्मतः । इति श्रुत्वा स नृपतिश्चाहूय स्वसुतां तदा ॥
 तस्यै समर्थं तां पश्वात्स द्विजो गेहमाययौ ॥१३
 सुदेवस्तु तंशीथे वै रमणीं ग्राह निर्भयः । कृतस्ते मन उद्विग्नं सत्यं कथय मे सखि ॥१४
 साह मे हृदये नित्यं सुदेवो ब्राह्मणोत्तमः । उषितस्तद्वियोगेन व्याकुलाहं सदा सखे ॥१५
 सुदेवश्चाह भोः सुभूर्यदि ते ब्राह्मणोत्तमम् । समर्थयामि तत्त्वं मे किं ददासि वदस्व भोः ॥
 साहु ते सर्वदा दासी भवामि द्विजभामिनि ॥१६
 इति श्रुत्वा सुदेवस्तु मुखान्निष्कृष्य यन्त्रकम् । पूर्वदेहत्वमापन्नस्तया साद्वं समारमत् ॥१७

पर गिर पड़ा । काम के बाणों से पीड़ित होकर निर्जीव की भाँति वह दिखाई देता था । उस कुमारी के घर चले जाने पर मूलदेव और शशी नामक दो ब्राह्मण उस ब्राह्मण के दरवाजे पर आये । रूप-यौवन सम्पन्न उस ब्राह्मण को देखकर उसके मोहित होने का कारण उन्होंने पूँछा । उसने रुदन करके सभी वृत्तान्त कह सुनाया । वह दयालुमूलदेव अपने घर आकर चामुण्डा देवी के बीज समेत मंत्र का जप करके दो गुटिका बनाकर सुदेव को दे दिया । उसके द्वारा उनमें से एक बारह वर्ष की सुन्दरी कन्या और दूसरा मूलदेव अत्यन्त वृद्ध का रूप धारण करके राज दरबार में पहुँचे । वहाँ आशीर्वाद प्रदान कर राजा का सम्मान प्रकट किया । महामत ! उनके वहाँ प्रविष्ट होने का कारण भी सुनो ! उसने कहा—राजन् ! तांत्रिक नगर में मेरा एक सौन्दर्यपूर्ण गृह है । वहाँ के विलापध्वज नामक राजा बलात् मेरे घर को लुटाना चाहता था, इससे मेरे घर के दोनों पुत्र और पल्नी घर से न जाने कहाँ चले गये । मैं उन दोनों पुत्र एवं पल्नी को ढाँढ़ने आया हूँ । महाराज ! यह मेरी पुत्रवधू है । जब तक मैं न आऊँ अपने गृह में इसकी धर्मपूर्वक रक्षा कीजिये । इसको सुनकर राजा ने अपनी पुत्री को बुलाकर उसे उस वधू को सीप दिया और वह ब्राह्मण भी अपने घर चला गया । १-१३। आधी रात के समय उस रमणी ने राजकन्या से कहा—सखि ! तुम्हारा मुख म्लान क्यों है, मुझे सत्य बताओ ! उसने कहा—मेरे हृदय में सुदेव नामक ब्राह्मण नित्य निवास करता है, अतः सखे ! उसी के वियोग-व्यथा से पीड़ित रहती हूँ । उसने कहा सुभ्रु ! यदि मैं उस श्रेष्ठ ब्राह्मण सुदेव को तुम्हारे पास पहुँचा हूँ, तो मुझे क्या (पुरस्कार) दे सकोगी । उसने कहा द्विजभामिनी ! मैं तुम्हारी सर्वदा दासी रहूँगी । यह सुनकर उसने अपने मुख से उस यंत्र को निकालकर पूर्व शरीर की

चतुर्मास्यो भवद्गर्भस्तस्मिन्काले तु भो नृप ॥१८
 अमात्यतनयो विप्रस्त्रीरूपं प्रति मोहितः । तदा मरणसम्पन्नं ज्ञात्वा तं मदनालसम् ॥१९
 मन्त्री स्नेहाच्च बहुधा मञ्चित्य हृदि पण्डितैः । तस्मै समर्यामास तां नारीं मन्त्रसम्भवाम् ॥२०
 साह भोऽमात्यतनय क्रिमासं तीर्थमण्डले । संस्नाहि तर्हि मे योग्यो भविष्यसि तथा कुरु ॥२१
 तथा मत्वा मन्त्रिसुतो नन्नात्मा मदनालसः । तीर्थन्तरं गतःसोऽपि सुदेवस्तस्य योषितम् ॥२२
 भूपकान्तिं कामवशां चालिलिङ्गं स कामुकः । सा तु गर्भं दधाराशु द्विमासस्य द्विजेन वै ॥२३
 सुदेवो मानुषो भूत्वा मूलदेवगृहं ययौ । सर्वं निवेदयामास वथाजातं नृपालये ॥२४
 मूलदेवः प्रसन्नात्मा शशिनं नाम मित्रकम् । दिंशद्वृष्टरं कृत्वा स्वयं वृद्धस्य रूपवान् ॥२५
 राजे निवेद्य तत्सर्वं वधूं मे देहि भूपते । तदा तु स नृपो भीत्या तं प्राह श्लक्षण्या गिरा ॥२६
 मन्त्री राजकरो नाम तत्पुत्रो मदनालसः । दृष्ट्वा तत्र वधूं रम्यां सुमोह मरणोन्मुखः ॥२७
 स्वपुत्रस्य वियोगेन स मन्त्री च तथेदृशः । तथाहं ब्राह्मणान्वृद्धान्पुष्ट्वा तस्मै च तामदाम् ॥२८
 यथा प्रसन्नो हि भवान्कुरु त्वं च तथाविधम् । मूलदेवस्तु नृपर्ति ग्रोवाच विष्णुद्वागत् ॥२९
 देहि भूप सुतां महां तत्पुत्रस्य सुखाय वै । तथैव मत्वा स नृपः सुतां चन्द्रावलीं शुभाम् ॥३०
 दत्त्वा च वेदविधिना दहुधा द्रव्यसंयुताम् । स्वयं चकार राज्यं वै ब्रह्मदोषविवर्जितः ॥३१
 शशी तु भूपते: कन्यां गृहीत्वा स्वगृहं ययौ । सुदेवस्तु तदा दुःखी मूलदेवमुवाच ह ॥३२

प्राप्ति की और उसके साथ रमण करना आरम्भ किया । १-१७। नृप ! वह कुमारी चारमास की गर्भवती हो गई । उस समय मंत्री का पुत्र उस ब्राह्मण पत्नी को देखकर मोहित हो गया था । उस मंत्री पुत्र मदनालस को निष्ठाण होने की भाँति देखकर मंत्री के स्नेहवश राजा ने हृदय में विचारते हुए पण्डितों की सम्मति से उस मंत्र संभूत नारी को उसे समर्पित कर दिया । अनन्तर उस ब्राह्मण स्त्री ने उससे कहा—अमात्य पुत्र ! तीन मास तक आप तीर्थीं में स्नान करते हुए मेरे अनुरूप योग्य होने का प्रयत्न कीजिये । उसे स्वीकार कर मंत्री पुत्र मदनलालस ने विनम्रतया तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थान किया । पश्चात् उस कामुक ने उसकी पत्नी का जो रानी के समान सुन्दरी एवं कामपीड़ित थी, उपभोग करके उसे भी दो मास की गर्भवती बना दिया । पश्चात् मनुष्यरूप धारणकर उसने मूलदेव के घर पहुँचकर उनसे सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया । प्रसन्न होकर मूल देव ने उस शशी नामक मित्र को बीस वर्ष का युवक और स्वयं वृद्ध का रूप धारणकर राजा के पास पहुँचा । उन्होंने कहा—भूपते ! मेरी पुत्रवधू प्रदान कीजिये । उस समय भयभीत होकर राजा ने नम्रता पूर्वक कहा—राजकर नामक मंत्री का पुत्र मदन लालस उस अधिक सुन्दरी वधू को देखकर मोहित हो गया था । उसके लिए उसे भरणासन्न देखकर मंत्री ने अपने पुत्र के वियोग का कारण मुझसे कहा मैंने वृद्ध ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्तकर उसे उसको सौंप दिया । अब आप जिस भाँति प्रसन्न हो सके मुझे आदेश दें । मूलदेव ने विषपूर्ण शब्दों को उच्चारण करते हुए कहा—राजन् ! मेरे पुत्र के सुखार्थ आप अपनी कन्या प्रदान करें । उसे स्वीकार करके राजा ने चन्द्रावली नामक अपनी पुत्री को अनेक भाँति के द्रव्यों समेत वैदिक विधान द्वारा उन्हें प्रदानकर उपस्थित ब्रह्मदोष से मुक्त होकर राज्य का उपभोग किया । शशी राजकन्या को साथ लेकर अपने घर चला गया । उस समय

मदीयेयं नृपसुता भोगपल्ली महोत्तमा । तच्छुद्वा सूलदेवस्तु विस्मितःस तथाकरोत् ॥३३
इत्युक्त्वा नृपांत्र प्राह वैतालो रुद्रकिञ्चुरः । कस्मै प्राप्ता नृपसुता धर्मतस्तद्वदस्व मे ॥३४

राजोवाच

एतिभात्राज्ञया पुत्री देवानां सन्मुखे स्थिता । यस्मै निवेदिता तस्मै स योग्या धर्मतः सदा ॥३५
शास्त्रेषु कथितं देव स्त्रीरत्नं सर्वदैव हि । यथाक्षेत्रं भूवि स्थाप्तं बीजशन्येन रोक्षितम् ॥३६
तत्क्षेत्रं कृषिकारस्य बीजदातुन् चैव ह । तस्मादौ राजतनया शशिनं वरयिष्यति ॥३७
सुदेवस्य वै तनयो धोग्यत्वं हि नमिष्यति ॥३८
इति ते कथितं देव धथा शास्त्रेषु भार्षितम् । किं कृतं मन्त्रिपुत्रेण तथैव कव्यस्व मे ॥३९
इति श्रुत्वा स होवाच स पुत्रो मदनालसः । वृन्दावनं शुभं प्राप्य राधाकुण्डे समागतः ॥४०
स स्नात्वा बहुलाष्टम्यां तत्पुण्येन नृपोत्तम । भस्मसादभवत्पापं येन मोहत्वशागतः ॥४१
ह्मृत्वा स हृदि गोविन्दं तुष्टाव शूद्धण्याः गिरा ॥४२

मदनालस उवाच

नमस्ते दयासिन्धवे कृष्णदेव त्वयेदं तत विश्वमम्भोधिरूपम् ।
त्वयैकेन लीलार्थतो देव देव प्रियाराधया सार्द्धमेतद्विगुप्तम् ॥४३
जगत्यन्तकाले त्वया काममूर्त्या जगत्संहृतं वै नमस्ते नमस्ते ।
मदीया च बुद्धिर्षीकेश शुद्धा यथा स्यात्यर्थेवेश शीघ्रं कुरु त्वम् ॥४४

सुदेव ने दुःखी होकर मूलदेव से कहा—यह राजपुत्री मेरे उपभोगार्थ है । उसे सुनकर मूलदेव ने आश्चर्य प्रकट करते हुए वैसा ही किया । इतना कहकर रुद्रसेवक वैताल ने रजा से कहा—धर्मतः राजकन्या किसे प्राप्त होनी चाहिए मुझे बताने की कृपा कीजिये । १८-३४

राजा ने कहा—माता-पिता की आज्ञा प्राप्तकर कन्या देवों के सम्मुख उपस्थित होकर जिसके लिए निवेदित की जाती है, वह धर्मतः सदैव उसी के योग्य रहती है । देव ! शास्त्रों में स्त्रियों को सदैव रत्नरूप बताया गया है, जिस प्रकार पार्थिव क्षेत्रों (खेतों) में बीज का आरोपण किसी दूसरे के द्वारा होने पर वह क्षेत्र किसान का ही रह जाता है, बीज बोने वाले का नहीं । उसी प्रकार राजपुत्री शशी का ही वरण करेगी और उसका गर्भस्थित पुत्र सुदेव को प्राप्त होना चाहिए । देव ! इस प्रकार मैंने शास्त्र विहित नियमों की व्याख्या कर दी । उसने पुनः राजा से कहा—पश्चात् मंत्रिपुत्र ने क्या किया, मुझसे बताइये । ऐसा सुनकर उन्होंने कहा । मंत्रीपुत्र मदनलालस ने वृन्दावन में पहुँचकर बहुलाष्टमी के दिन राधा कुण्ड में स्नान किया । नृपसत्तम ! उसी पुण्य के प्रभाव से उसका वह पाप, जिसके द्वारा वह मोहित हुआ था, भस्म हो गया । उपरांत अपने हृदय में गोविन्द जी का स्मरण करते हुए श्लक्षणवाणी से उनकी स्तुति की । ३५-४२

मदनलालस ने कहा—हे कृष्णदेव ! सागर रूप इस विश्व का विस्तार आप ने ही किया है, अतः आप दयासिन्धु को नमस्कार हैं, तथा देवदैव ! अपनी लीला के निमित्त आप एकाकी इसकी रचना करके अपनी प्रेयसी राधा जी के समेत इसकी रक्षा करते हैं, और अन्त समय में आप ही कालमूर्ति होकर इस विश्व का संहार करते हैं, अतः तुम्हें बार-बार नमस्कार है । हृषीकेश ! मेरी बुद्धि की शुद्धि जिस प्रकार

इति स्तोत्रप्रभादेन देवदेवेन नोचितः । कामपाशाक्षस्य बुद्धिः स क्षत्रीगृहमाग्ययौ ॥४५
रमणीं स्वां सशालिङ्गय ननन्द मुदितो नृप । विप्रदोषविनाशाय हृदि सञ्चिन्त्य बुद्धिमान् ॥

सुदेवं स समाहूय स्वां स्वसारं ददौ मुदा ॥४६

सुदेवस्तस्य भगिनीं क्षत्रियस्य मदातुराम् । धर्मेणोद्वाहू न्तं गेहं प्राप्तवान्कामकिङ्गूरः ॥४७

इति ते कथितं भूप चरित्रं तस्य धीमतः । मूलदेवस्य विप्रस्य तथान्यत्कथयाम्यहम् ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्पणीं चतुर्युगखण्डापरपरर्याये

कलियुगीयेतिहाससमुच्चये चतुर्वैशोऽध्यायः । १४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयदर्थनम्

सूत उवाच

प्रशस्य भूर्पति शुद्धं दैत्यात्मे रुद्रकिङ्गूरः । पुनराख्यानकं विप्र वर्णयामास सुन्दरम् ॥१
कान्यकुञ्जे भहाराज ब्राह्मणो दानशीलकः । बभूव सत्यसन्धश्च देवोपूजनतत्परः ॥

प्रतिग्रहेण यद्द्रव्यं तेन दानमचीकरत् ॥२

कदाचित्तु शरत्काले नवदुर्गाव्रतं ह्यभूत् । न प्राप्तं दानतो द्रव्यं तदा चिन्तातुरोऽभवत् ॥३

किं कर्तव्यं मया चाद्य येन द्रव्ययुतो ह्यहम् । कन्या निमन्त्रिताश्राद्य कथं ता भोजयाम्यहम् ॥४

होः सके शीघ्रतया वही आप करें । इस स्तोत्र के प्रभाव से देवाधिदेव द्वारा उसकी बुद्धि कामपाश से मुक्त हो गई । पश्चात् वह क्षत्री अपने घर आया । नृप ! अपनी पत्नी का आलिङ्गन करके वह अत्यन्त हर्षित हुआ । उस बुद्धिमान् ने अपने हृदय में विप्रदोषद्वारा विनाश की कल्पना करके उनके प्रसन्नार्थ सुदेव ब्राह्मण को बुलाकर प्रसन्न मुदा समेत अपनी भगिनी का पाणिग्रहण उनके साथ कर दिया । सुदेव ने कामकिर होने के नाते उसकी मदोन्मत्त भगिनी का पाणिग्रहण धर्मतः सुसम्पन्न करके अपने घर के लिए प्रस्थान किया । इस प्रकार राजा का चरित्र और उस बुद्धिमान् मूलदेव की कथा के बाद अन्य को कथा कहकर बात समाप्त किया । ४३-४८

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्पणीं पर्वं में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन

नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त । १४।

अध्याय १५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—विप्र ! रुद्रगण उस वैताल ने राजा की प्रशंसा करते हुए पुनः एक सुन्दर आख्यान का वर्णन करना आरम्भ किया । महाराज ! कान्यकुञ्ज प्रदेश में दानशील ब्राह्मण रहता था । वह सत्यवत्ता एवं देवीं जी की पूजा के लिए कटिबद्ध रहता था । प्रतिग्रह (दान) रूप में उसे जो कुछ द्रव्य की प्राप्ति होती थी उसका दान करता था । एक बार शरद काल में उसने नवदुर्गा का व्रत करना आरम्भ किया । एक दिन स्वयं दान करने के लिए उसे दुर्गाव्रत में कहीं से द्रव्य की प्राप्ति न होने के नाते वह चिंतित होने लंगा—आज मैं कौन-सा उपाय करूँ जिससे द्रव्य की प्राप्ति हो जाये क्योंकि भोजन के लिए कन्याओं को

इति शोकसमायुक्तस्तदा देवीप्रसादतः । मुद्राः पञ्च तदा प्राप्तास्ताभिर्वतगच्छिकरत् ॥५
निराहारव्रतं तेन कृतं तु नवमाह्निकम् । तेन व्रतप्रभावेन मृतो देवत्वमागतः ॥६
जीमूतकेतुरिति च सोभूद्विद्याधराधिष्ठितः । हिमाचलगिरौ रम्ये पुरे विद्याधरे शुभे ॥७
उवास कतिचिद्वर्षान्विष्वभोगश्चोगवान् । तत्र कल्पदुमं नित्यं पूजयामास भक्तिः ॥८
तेन वृक्षप्रभावेन जातः पुत्रो महोत्तमः । रार्वाक्लिलात्मु निपुणो नान्ना जीमूतवाहनः ॥९
स वै पूर्वभवे राजन्मध्यदेशे महोत्तमे । क्षत्रियः शूरसेनाख्यो बभूव वसुधाधिष्ठितः ॥१०
एकदा मृग्याकेलिलोलुपः स महीरितः । ग्राम्यवत्तुत्तलारण्यं पत्र बाल्मीकिरास्थितिः ॥११
चैत्रशुद्धलनवस्यां तु न कृतं जीवधातनम् । उत्सवं रामदिवसे चकार विधिवन्नृपः ॥१२
बाल्मीकेश्व्र कुटीमध्ये रात्रौ जागरणं कृतम् ॥१३
श्रुता रामस्यी गाथा तस्य पुण्यप्रभावतः । विद्याधरत्वमापन्नो मुमुदे तत्र शक्वत् ॥१४
कल्पवृक्षस्य वै पूजा कृता तेन महात्मना । वर्षान्तरे द्वुमः प्राह वरं वरय सत्तमः ॥१५
स तमाह महावृक्ष मदीयं नगरं शुभम् । धनधान्यसमायुक्तं यथैव स्यात्तथा कुरु ॥१६
इत्युक्ते सति वृक्षेण नगरं भूपतेः सन्म् । कृतं तदा न कौड्यासीद्यो मन्येत्पार्थिवाश्रयस् ॥१७
सर्वे ते राजतुल्याश्च कल्पवृक्षप्रसादतः । तदा तौ तु पितापुत्रौ तपसोऽर्थे वनं गतौ ॥१८

निमंत्रित किया है आज उन्हें कैसे भोजन कराऊँगा । इस प्रकार शोक करते हुए उसे देवी जी की कृपावश पांच रूपये की प्राप्ति हो गई, जिससे उसका व्रत समाप्त हो सका । १-५। उसने नव दिन तक निराहार रहकर उस व्रत को पूरा किया । उस व्रत के प्रभाव से वह याणि परित्याग के अनन्तर देवयोनि में उत्पन्न होकर जीमूतकेतु नामक विद्याधरों का अधिनायक हुआ । हिमाचल पर्वत के उस रमणीक विद्याधर नगर में दिव्य भोगों का उपभोग करते हुए उसने कुछ वर्षों का समय व्यतीत किया । वहाँ वह भक्तिपूर्वक नित्य कल्पवृक्ष की पूजा करता था । उस वृक्ष की कृपावश उसके उत्तम पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सम्पूर्ण कलाओं में निपुण था एवं जीमूतवाहन उसका नाम था । राजत् ! पूर्वजन्म में वह उस परमोत्तम मध्यदेश में शूरसेन नामक क्षत्रिय राजा था । एकबार वह राजा मृग्या की क्रीडा में मुर्ध होकर उस कमलवन में पहुँच गया जहाँ वाल्मीकि ऋषि रहा करते थे । चैत्र शुक्ल की नवमी में उसने कोई जीव हिसा नहीं की । किन्तु उस राजा ने सविधान उत्सव करके उस रात दिन को व्यतीत किया । महर्षि बाल्मीकि की पर्णकुटी में उसने मध्य-रात्रि तक जागरण करके भगवान् रामचन्द्र की माथाओं का श्वरण किया । जिसके पुण्य के प्रभाव से विद्याधर होकर वह इन्द्र की भाँति सुखी जीवन व्यतीत करने लगा । उस महात्मा ने एक दर्ष तक कल्पवृक्ष की पूजा की इसके उपरांत उसने कहा—सत्तम ! वर की याचना करो । ६-१५। उसने कहा—महावृक्ष ! मेरे उस शुभ नगर को धन धान्य-पूर्णे जिस भाँति हो सके बनाइये । ऐसा कहने पर उस वृक्ष ने उस नगर को राजा के नगर की भाँति बना दिया । जो किसी राजा के आश्रित रह रहा था (उस वृक्ष के प्रभाव से) स्वयं राजा बन बैठा । उस नगर में कल्पवृक्ष के प्रभाव से सभी राजा की भाँति सुखी थे । उस समय वे पिता पुत्र दोनों तप करने के लिए बन चले गये । मलय पर्वत के उस रमणीक स्थान में

सत्याद्रौ महारस्ये तेषुर्बहुलं तपः । एकस्मिन्दिवसे राजन्मलयध्वजभूपतेः ॥१९
कमलःकीर्ति विल्यातः कन्या च शिवमंदिरे । स्वसङ्ग्या सहिता प्राप्ता शिवपूजनतत्परा ॥२०
जीमूतवाहनश्रैव पूजार्थं भन्दिरं यथौ । बालां दर्शी दिव्याङ्गीं सर्वभूषासमन्विताम् ॥२१
तत्या दर्शनमात्रेण कामब्राणेन पीडितः । भनसा कामदेवं तं तुष्टाव शूक्षण्या गिरा ॥२२

जीमूतवाहन उवाच-

भदनाय नमस्तुभ्यं कृष्णपुत्राय ते नमः । शम्बरप्राणहन्त्रे च चतुर्व्यूहस्य ते नमः ॥२३
एच्छाणाय कामाय प्रद्युम्नाय नमो नमः । मद्दोयायं कुरु सुश्रोणीं कामिनीं कमलाननाम् ॥२४
तदा प्रसन्नो भगवान्मकरध्वजदेवता । मोहूयित्वा च पितरं तद्विवाहमकारयत् ॥२५
विश्वावसुरिति स्यातस्तस्य भूपस्य वै सुतः । भगिनीपतिना सादुं स यथौ गन्धमादनम् ॥२६
नरं नारायणं नत्वा गरुडोत्तुङ्गमाययौ । तदा नागस्य वै माता शत्रूङ्चूडस्य भो नृप ॥२७
रुरोद बृहुधा तत्र यत्र जीमूतवाहनः । दुःखितः स जगामाशु दयालुर्दीनवत्सलः ॥२८
वृद्धामाश्वास्य पपङ्ग्छ केनेदं दुःखमागतम् । साह मे तनयो देव गरुडास्ये गमिष्यति ॥२९
तद्वियोगेन दुःखाता विलपामि महाकुला । इति ज्ञात्वा स नृपतिर्गरुडोत्तुङ्गमाययौ ॥३०
गरुडोऽपि गृहीत्वा तं नभोमर्त्तमुपागमत् । तस्याङ्गादोऽसृजा लिप्तो न्यधात्तत्र भामिनी ॥३१
कमलाक्षी तु वियति स्थितं गरुडभक्षितम् । विलोक्य चारुदद्गाढं पतिदुःखेन दुःखितां ॥३२

पहुँचकर वे दोनों घोर जप करने लगे । राजन् ! एक दिन राजा मलयध्वज की कमलाकी नामक कन्या अपनी सहेलियों के साथ शिव जी की आराधना हेतु उनके मंदिर में आई । जीमूतवाहन भी पूजार्थ उसी मन्दिर में पहुँचे । वहाँ उस दिव्य अंगवाली कन्या को देखा, जो सम्पूर्ण उपमाओं से युक्त थी । १६-२० । उसे देखते ही कामब्राण से पीडित होकर उन्होंने काशणिक स्वरों द्वारा कामदेव की मानसिक आराधना की ।

जीमूतवाहन बोला—मदन को नमस्कार है, कृष्ण पुत्र को नमस्कार है । शंबर के प्राण का अपहरण करने वाले एवं चारों व्यूहरूप तुम्हें नमस्कार है । पांचोबाण, काम, एवं प्रद्युम्न को बार-बार नमस्कार है, सुन्दर श्रोणी तटवाली, तथा उस कमलमुखी कामिनी को मेरे अधीन कीजिये । इसे सुनकर उस समय भगवान् मकरध्वज देव ने उसके पिता को मोहित करके उसका विवाह संस्कार सुसम्पन्न करा दिया । विश्वावसु नामक वहाँ का राजपुत्र अपने भगिनी पति (जीजा) के साथ गन्धमादन पर्वत पर गया । वहाँ नर-नारायण को नमस्कार करके गरुडोत्तुङ्ग पर पहुँचा । राजन् उस समय शंखचूड नामक सर्प की माता जीमूतवाहन के सम्मुख अधीर होकर रुदन करने लगी । दयालु दीनवत्सल उस जीमूत वाहन ने उस वृद्धा को आश्रासन देकर उससे पूछा तुम्हें क्या कष्ट है ? उसने कहा—मेरा पुत्र गरुड का भक्ष्य हो जायगा । उसी के वियोग दुःख से अधीर होकर रुदन कर रही हैं । राजन् यह जानकर वह भी उसी गरुडोत्तुङ्ग नामक स्थान पर आया । २३-३० । गरुड उसे ग्रहण कर आकाश मार्ग में पहुँच गये । वहाँ उन्होंने उस स्त्री को जिसके शरीर में उसके पति का रक्त आदि लगा हुआ था, उतार दिया । उस आकाश में स्थित होकर वह स्त्री गरुड द्वारा भक्षित अपने पति को देखकर पति दुःख से दुःखी होती हुई

तदा तु गरुडस्त्रस्तत्रागत्य त्वरान्वितः । जीमूतवाहनं प्राह कस्मात्त्वं मन भक्षितः ॥३३
 स होदाच प्रभो मेऽद्य वचः भृणु महामते । शङ्खचूडस्य जननी महादुःखेन दुःखिता ॥३४
 तस्याः पुत्रस्य रक्षार्थं सम्प्राप्तोऽहं तवान्तिकम् । इत्युत्के सति भूपाल शङ्खचूडश्च पन्नगः ॥३५
 तद्यथात्स्यैव दुःखेन दुःखितः शङ्खमाप्तवान् । मां प्रभक्ष कृपासिन्धो त्वदाहारार्थमागतम् ॥३६
 तत्त्वयज्य मानुषं दिव्यं कुर्दाहारं महामते । तदा प्रसन्नो गरुडो ददौ तस्मै वरत्रयम् ॥३७
 जीमूतवाहनायैव विद्याधरसुताय च । शङ्खचूडकुलं नाहं भक्षयिष्ये कदाचन ॥३८
 त्वं तु विद्याधरपुरे प्राप्य राज्यं भूतेतम् । मुभोजियित्वा नक्षालं ततो वैकुण्ठमेष्वसि ॥३९
 इत्युक्त्वान्तर्दधौ देवः स वित्रा राज्यमाप्तवान् । स्वपत्न्या सह राज्याङ्गं भुक्त्वा दैकुण्ठमाययौ ॥४०
 इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह नन्नधीः । तेषां मध्ये महाराज कस्य प्राप्तं महाफलम् ॥४१

राजोवाच

शङ्खचूडस्य सम्प्राप्तं जीवदानमहाफलम् । नृपत्यौपकारं च स्वभावो विधिना कृतः ॥४२
 पतिन्रताप्रभावेन जीवदानेन भूपतेः । सनुष्टो गरुडो जातस्तस्य किं तर्हि तत्फलन् ॥४३
 निर्भयः शङ्खचूडस्तु स्वशशं विप्रति चागमत् । शरीरमर्पयित्वा तं ततः प्राप्तं महाफलम् ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलण्डापरपर्याये

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम पञ्चदशोऽध्यायः । १५

प्रगाढ़ रुदन करने लगी । उस समय भयभीत होकर गरुड भी वहाँ शीघ्र पहुँचकर जीमूतवाहन से बोले कि—तुम मेरे भक्ष्य कैसे हो गये । उन्होंने कहा—महामते, मुनो, मैं बता रहा हूँ । शंखचूड की माता अत्यन्त दुःख से दुखी थी । उसके पुत्र के रक्षार्थ मैं आप के पास पहुँचा हूँ । राजन् ! ऐसा कहने पर शंखचूड नामक नाग ने उस सर्प के दुःख से दुःखी होकर अपने शत्रु गरुड के पास जाकर कहा—कृपासिधो ! मेरा भक्षण कीजिये, मैं आपके भोजनार्थ आया हूँ । महामते ! इस मनुष्य का परित्याग कर इस दिव्य आहार को अपनाइये । उस समय प्रसन्न होकर गरुड ने तीन वर प्रदान किया । उन जीमूतवाहन ने विद्याधर देव से कहा—मैं शंखचूड के कुल का भक्षण कभी नहीं करूँगा । तुम विद्याधर के नगर में उस महान् उत्तम राज्य की प्राप्ति करो । तथा एक लक्ष वर्ष तक उसका उपभोग करके ने उपरांत वैकुण्ठ की प्राप्ति करोगे । इतना कहकर गरुड अन्तर्हित हो गये । और वह अपने पिता के समेत उस राज्य की प्राप्ति किया । पश्चात् अपनी रानी के समेत उस राज्य का उपभोग करने के अनन्तर उन्होंने वैकुण्ठ की प्राप्ति की । इतना कहकर वैताल ने नन्नता पूर्वक राजा से कहा—महाराज ! उनमें किसे उस महान् फल की प्राप्ति हुई । ३१-४१

राजा बोले—उस जीवदान का महाफल शंखचूड को प्राप्त हुआ क्योंकि वहां ने राजाओं को परार्थ करना स्वाभाविक बताया है । और पतिन्रता के प्रभाव से राजा को जीवदान प्राप्त हुआ तथा उसी से गरुड भी प्रसन्न हुए, किन्तु उसका कुछ फल नहीं है । अतः निर्भय होकर शंखचूड के अपने शत्रु के सम्मुख जाकर अपनी शरीर के समर्पण करने से उन्हें उस महाफल की प्राप्ति हुई । ४२-४४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन-

नामक पन्द्रहर्वाँ अध्याय समाप्त । १५।

अथ षोडशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनः प्राह स वैतानो भूपतिं ज्ञानकोविदम् । चन्द्रशेखरभूपत्य नगरी दक्षिणे स्थिता ॥१
 रत्नदत्तोऽवस्थैश्यो धर्मज्ञो धनधान्यवान् । कामावरूथिनी तस्य सुता जाता महोत्तमा ॥२
 तद्वापमुत्तमं दृष्ट्वा स वैश्यो भूपतिं प्रति । उवाच शो महाराज सुता मम सुरेसिता ॥३
 तां गृहाण कृपासिन्धो त्वद्योग्या विभिन्निनिता । इति शुत्वा तु वचनं भूपतिश्चन्द्रशेखरः ॥४
 मन्त्रिणं विदुरं प्राह त्वं च गच्छ महामते ! यथायोर्यं हि तद्वासं मां निवेदय सत्वरम् ॥५
 इत्युक्त्वा स ययौ गेहं भूपतिश्चन्द्रशेखरः । इयामला नाम तत्पत्ती ज्ञात्वा राजानमागतम् ॥६
 धूपदीपादिभिः पुष्ट्यर्थायोग्यैः ज्ञामार्चयत् । एतस्मिन्नेव काले तु गौश्च शार्दूलपीडिता ॥७
 हम्भाशब्देन महता निललाप भयातुरा । तच्छ्रुत्वा स तु भूपालः खड्गहस्तः समभ्यगतात् ॥८
 शीघ्रं हत्वा तु शार्दूलं मुमोद नृपतिस्तदा । मुकुलो दानवो नाम तद्वाहाद्वप्माप्तवान् ॥९
 भूपतिं प्राह नन्नात्मा धर्मज्ञं चन्द्रशेखरम् । त्वया विमोदितो नाथ यास्यामि वरुणालयम् ॥१०
 प्रह्लादस्यैव शापने व्याघ्रदेहत्वमागतः । परिक्रम्य ययौ दैत्यः प्रह्लादं प्रति सत्वरः ॥११

अध्याय १६

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस वैताल ने पुनः ज्ञाननिपुण उस राजा से कहा—दक्षिण प्रदेश में राजा चन्द्रशेखर की राजधानी है जिसमें रत्नदत्त नामक वैश्य जो धर्मज्ञ एवं धन धान्य से सम्पन्न था निवास करता था । कामावरूथिनी नामक परम सुन्दरी कन्या उसके उत्पन्न हुई । उसके उत्तम सौन्दर्य को देखकर उस वैश्य ने राजा से कहा—महाराज ! मेरी पुत्री परम सुन्दरी है, जिसके लिए देवता भी लालायित रहते हैं । कृपासिन्धो ! आप उसे स्वीकार करें, क्योंकि ब्रह्मा ने आप के अनुरूप ही उसकी रचना की है । इसे सुनकर राजा चन्द्रशेखर ने अपने विदुर नामक मंत्री से कहा—महामते ! उसका सौन्दर्य देखकर आप मुझसे शीघ्र उसका यथायोग्य वर्णन करो । इतना कहकर राजा चन्द्रशेखर अपने निवास भवन चले गये । इयामला नामक उनकी पत्नी ने राजा का आगमन जानकर धूप, दीप, एवं पुष्ट्यादि से उनकी यथोचित पूजा सुसम्पन्न की । उसी समय वाघ से पीड़ित होकर किसी गौ ने अपने रंभने वाले शब्द के द्वारा ऊँचे स्वर से विलाप करना आरम्भ किया । उसे सुनकर राजा हाथ में खड़ग लेकर वहाँ पंहुँच गया । शीघ्रता से उस वाघ का वध करके वह राजा प्रसन्नता प्रकट कर रहा था कि उसी बीच मुकुल नामक दानव उस वाघ के शरीर से अपने रूप की प्राप्ति करके नन्नापूर्वक राजा चन्द्रशेखर से कहने लगा—नाथ ! तुम्हारे द्वारा मुक्ति प्राप्तकर मैं वरुण के गृह जा रहा हूँ । १-१० प्रह्लाद के शाप प्रदान करने से मुझे वाघ की देह प्राप्त हुई थी । उपरांत वह दैत्य परिक्रमा करके प्रह्लाद के समीप चला गया और राजा

नृपतिर्गृहमागत्य सुष्वाप परया मुदा । प्रभाते द्वोधितो राजा सभायां स्वयम्भागन्त् ॥१२
 नृपोक्तः स यथौ तत्र यत्र कामावरूथिनी । दिव्यमूर्तिमर्यां दृष्ट्वाचिन्तयत्स स्वमानसे ॥१३
 अस्या मूर्तिप्रभावेन राजाऽसौ भोहमाप्स्यति । इति ज्ञात्वा नृपं प्राह सैव त्वद्योग्यकरं न हि ॥१४
 तथा मत्वा स नृपतिर्न विवाहमयथाकरोत् । रत्नदत्तस्य भूपस्य सेनायाः पतये इदौ ॥१५
 बलभद्रस्य सा पत्नी बभूव उरवर्णिनी । एकदा नृपतिस्तां वै दृष्ट्वा कामावरूथिनीम् ॥१६
 नोहितः कामबाणेन मूर्च्छितः गतितो भुवि । तदा सेनापतिस्तूर्णं नृपमुत्थाप्य सत्वरम् ॥१७
 शिविदं चैव संस्थाप्य सभायां च समैरयत् । तदा प्रबुद्धो नृपतिः प्राह सेनापतिं शुदा ॥१८
 क्षस्येयं सुन्दरी भार्या कुतो जाता महोत्तमा । बलभद्रस्तु तच्छृत्वा नृपतिं प्राह नन्नधीः ॥१९
 मर्येयं सुन्दरी नारी रत्नदत्तस्य सा सुता । राज्यभङ्गभयान्मन्त्री न रूपं त्वयि वर्णिवान् ॥२०
 मम दासस्य या पत्नी त्वद्योग्या भूपते सदा । तदेच्छां पुरयिष्यामि तां गृहाण कृपानिधे ॥२१
 इत्युक्तः क्रोधतात्राक्षो भूपतिस्तमुवाच ह । तवेयं धर्मतो भार्या ब्राह्मा सुन्दररूपिणी ॥२२
 गृह्णामि यदि तां देवीं नरके यर्मकिकराः । पातायित्वा महादुःखं भजयिष्यन्ति तर्हि भोः ॥२३
 इत्युक्त्वा भूपतिस्तूर्णं विरहाग्निप्रीडितः । मर्णं प्राप्तवान्राजा गतो धर्मपुरान्तिके ॥२४
 इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपं प्राह शृणुष्व भोः । मृते राजनि तत्पत्नी सती भूत्वा प्रदृश्यते ॥२५
 सेनापतिस्तु तत्रैव भस्मसादभवत्क्षणात् । कामावरूथिनी देवी भस्म कृत्वा कलेवरम् ॥२६

भी अपने महल में पहुँच कर परमानन्द में निमग्न होते हुए शयन किये । प्रातः काल प्रवोधित होने (जगाये जाने) पर राजा राजसभा में आये । उधर राजा के कहने पर वह मंत्री कामावरूथिनी नामक् उस कन्या के पास जाकर उस दिव्य सौन्दर्य को देखकर अपने मन में विचार करने लगा कि—इस रूप को देखकर राजा अवश्य मोहित हो जायगा । अतः उसने राजा से कहा—वह कन्या आप के योग्य नहीं है । राजा उसकी बात स्वीकार करके उसके साथ विवाह नहीं किया । पश्चात् उस उत्तमाङ्गी कन्या का पाणिग्रहण राजा रत्नदत्त के बलभद्र नामक सेनापति के साथ सम्पन्न हुआ । ११-१५। एक बार राजा उस कामावरूथिनी को देखकर कामबाण से मुध होकर पृथिवी पर गिर पड़े । उस समय सेनापति ने शीघ्र राजा को पालकी में बैठाकर राजसभा में पहुँचाया । वहाँ चेतना आने पर राजा ने प्रसन्नतया सेनापति से कहा—यह सुन्दरी किसकी पत्नी एवं कहाँ उत्पन्न हुई है ? इसे सुनकर बलभद्र ने न अन्त त्रया प्रकट करते हुए कहा—यह सुन्दरी मेरी पत्नी एवं रत्नदत्त की पुत्री है, राज्य के भंग हो जाने के भय से मंत्री ने उसके रूप का वर्णन आप से नहीं किया । किन्तु राजत् ! मुझ सेवक की पत्नी सदैव आप के योग्य ही है अतः कृपानिधे ! उसका ग्रहण करें मैं आपकी इच्छापूर्ति करने को तैयार हूँ । इतना कहने पर राजा क्रोध के नाते रत्ननेत्र करके कहने लगा—यह सुन्दरी धर्मतः तुम्हारी ही पत्नी है, इसलिए यदि मैं इस देवी का ग्रहण करता हूँ तो यमदूत मुझे नरक में गिरा देंगे उस समय मुझे अत्यन्त दुःख का अनुभव करना पड़ेगा । ऐसा कह राजा उसकी वियोग अग्नि से पीड़ित होकर शीघ्र प्राण-परित्याग करके धर्मपुर पहुँच गया । १६-२४। इतना कहकर वैताल ने राजा से कहा राजा के निधन होने पर उनकी पत्नी रानी सती हो गई और सेनापति भी उसी समय वहाँ भस्म हो गया । पश्चात् कामावरूथिनी देवी ने भी अपनी देह को

स्वर्गं गतास्तु ते सर्वे कस्य पुण्याधिकं मतम् । स हेवाच च वैतालं राजा धर्माधिको मतः ॥२७
मरणं किङ्करस्यैव योग्यं भूपतिहेतवे । पतिव्रताया मरणं पतिसङ्गेन योग्यकम् ॥२८
दत्ता यत्किङ्करेणैव सुन्दरी नृपहेतवे । धर्मभीत्या न नृष्टिस्तामगृह्णात्स कामुकः ॥२९
जित्वा कामं तथा पत्न्यं धर्मं तस्मान्नपेऽधिकम् ॥३०

इति श्रीभविष्ये नहापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्दुर्गाखण्डापरप्रयत्ने
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् ॥१६

अथ सप्तदशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

पुनः प्रोवाच वैतालस्तदा आहूणरूपवान् । शृणु भूप महाभाग कथां तव मनोरमाम् ॥१
उज्जयिन्यां महाभाग महासेनो नृपेऽभवत् । तस्य राज्येऽवसद्विप्रो देवशर्मेति विश्वतः ॥२
गुणाकरस्तस्य सुतो मद्यमांसपरायणः । द्यूतेन संक्षयं वित्तं तस्य पापस्य चाभवत् ॥३
बान्धवैः स परित्यक्तो ब्राह्मण वसुधातले । कदाचिद्वैवयोगेन सिद्धाश्रममुपागमत् ॥४

भस्म करके उन सब के साथ में स्वर्गपुरी को प्रस्थान किया । किन्तु, इन सब में किसका पुण्य अधिक है ? राजा ने वैताल से कहा—राजा के लिए सेवक का मरण प्राप्त होना धर्मतः अधिक (थेष्ठ) है । और पतिव्रता का पति के साथ प्राण परित्याग करना उचित ही है एवं सेवक ने राजा को अपनी सुन्दरी स्त्री प्रदान किया, पर, धर्मभय के नाते राजा कामुक होने पर भी उसे स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत काम को जीतकर धर्म का पालन किया । अतः राजा का धर्म अधिक है । २५-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६।

अध्याय १७ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस ब्राह्मण रूपधारी वैताल ने पुनः राजा से कहा—राजन् महाभाग ! मैं तुम्हें मनोहर कथा सुना रहा हूँ सुनो ! महाभाग ! उज्जयिनी नगर में महासेन नामक राजा रहता था । उसी के राज्य में देव शर्मा नामक ब्राह्मण निवास करता था ऐसा बताया जाता है । गुणाकर नामक उसी का पुत्र था । नित्य मद्य-मांस का सेवन करता था । उस पापी ने द्यूत (जूआ) खेलकर अपना सम्पूर्ण धन नष्ट कर दिया । पश्चात् बन्धुओं द्वारा त्याग करने पर पृथ्वी में चारों ओर धूमने लगा । एक बार वह दैवयोग से

कपर्दी नाम तं योगी कपालान्नैरपूजयत् । ज्ञात्वा पैशाचमन्त्रं स बुभुक्षुर्न गृहीतवान् ॥५
 तदातिथं तदर्थं स यक्षिणीं समुपाह्वयत् । तया रात्रौ महानन्दं प्राप्तवान्स द्विजः शयी ॥६
 प्रातः काले तु संप्राप्ते कैलासं यक्षिणीं गता । स द्विजस्तद्वियोगेद योग्यन्तिक्षमुपाययौ ॥७
 कपर्दी प्रददौ तस्मै विद्यां यक्षिणिकर्षिणीम् । चत्वारिंशद्विनाम्येव निशीथे जलमध्यागः ॥८
 स जजाप शुभं मन्त्रं त प्राप्तां कामचारिणी । तदा योग्याज्ञया द्विः स्वयं तु ममतां त्यजन् ॥९
 प्राप्तदान्तितरौ नत्वा स्वरोहे निवसन्निशि । प्रातः संन्यासिवद्भूत्वा कुलैश्च रुदितैर्द्विजः ॥१०
 प्रतिबोधिवनं प्राप्तस्तच्छिष्यत्वमुपाययौ । पञ्चमिग्राध्ये स स्थित्वा तन्मन्त्रमजपच्छुच्चिः ॥११
 न प्राप्ता योगिनी देवी तदा चिन्तातुरोऽभवत् । इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपर्ति ज्ञानकोविदम् ॥१२
 पुनराह कथं देवी न प्राप्ता यक्षिणी प्रिया । शुत्वाह नृपतिर्विप्र वैतालं रुद्र किङ्ग्रामम् ॥१३
 त्रिविधं कर्म भो विप्र सिद्धघर्थे साधकाय वै । मनोवाग्विहितं कर्म परलोके सुखप्रदम् ॥१४
 मुन्दराङ्कुतं ज्ञेयं पुनर्वाक्कायसम्भवम् । किञ्चित्सिद्धिप्रदं ज्ञेयमिह जन्मनि दीक्षितम् ॥१५
 परत्र च शुवर्लोके पिण्डेहकृतं स्मृतम् । मनः कायेन सम्भूतं परजन्मनि राज्यदम् ॥१६
 शनोवाक्कायसम्भूतमिह जन्मनि सिद्धिदम् । परत्र परमां सिद्धिं तत्कर्म प्रददाति हि ॥१७
 तस्मात्कर्तव्यमेवेह त्रिविधं कर्म साधकैः । अन्यवित्तेन स द्विजः कृतवान्कर्म मन्त्रजम् ॥

सिद्धाश्रम में पहुँच गया । १-५। वहाँ कपर्दी नामक योगी रहता था । उसने कपाल में अन्न रखकर उससे उस अतिथि की सेवा करनी चाही, किन्तु उसे पिशाच का पुत्र समझकर उसने भूज्ञा रहने पर भी उसका ग्रहण नहीं किया । पश्चात् उसने उसकी आथित्य सेवा के निमित्त यक्षिणी का आह्वान किया । उस रात्रि ब्राह्मण ने उसके साथ शयनादि करके महान, आनन्द की प्राप्ति की । प्रातःकाल होने पर वह यक्षिणी कैलास पर्वत पर चली गई । उपरांत उसके वियोग से दुःखी होकर वह उस योगी के पास गया । कपर्दी ने उसे यक्षिणी का आकर्षण करने वाली विद्या प्रदान किया । मध्य रात्रि में वह जल के भीतर जाकर उस शुभ मंत्र का जप करने लगा । इस प्रकार चालीस दिन तक उस मंत्र का जप करने पर भी वह यक्षिणी की प्राप्ति न कर सका । उस समय योगी की आज्ञा प्राप्तकर वह ब्राह्मण माया-मोह के त्याग पूर्वक अपने माता पिता का अभिवादन करके प्रातःकाल संन्यासी का वेष धारण करके रोते कलपते अपने परिवारों को छोड़कर प्रतिबोधि वन में चला गया । ६-१। वहाँ उनके शिष्य होने के उपरांत पंचार्णि के मध्य में स्थित होकर आचरण पूर्वक वह उस मंत्र का जप करने लगा वहाँ भी योगिनी की प्राप्ति न होने पर उसे चिंता होने लगी । इतना कहकर वैताल ने ज्ञाननिपुण राजा से कहा—उसे वह यक्षिणी देवी प्रेयसी के रूप में क्यों नहीं प्राप्त हुई! इसे सुनकर राजा ने उस रुद्र सेवक वैताल से कहा—विप्र ! साधको सिद्धि प्राप्ति करने के लिए तीन प्रकार का कर्म बताया गया है—मन और वाणी द्वारा किया गया कर्म परलोक में सुख प्रदान करता है, वाणी और शरीर द्वारा किये गये कर्म से शरीर सौन्दर्य और इसी जन्म में कुछ सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है, मन और काय द्वारा किये गये कर्मवश परलोक में भुवलोक की प्राप्ति और अगले जन्म में राज्य की प्राप्ति होती है । मन, वाणी और शरीर द्वारा सुसम्पन्न किया गया कर्म इसी जन्म में सिद्धि तथा परलोक में परमसिद्धि की प्राप्ति प्रदान करता है । १२-१७। इसलिए साधकों को इस तीन प्रकार के कर्म को

अतोऽन्यजन्मनि प्राप्तो यक्षत्वं तत्परो द्विजः

॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालः प्रसन्नवहनोऽभवत्

॥१९

साधु साध्विति तं प्रोच्य सद्वाक्यैः समपूजयत् । इतिहासं पुनः प्राह परीक्षार्थं नृपाय सः ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्पर्वणि चतुर्दुग्लण्डापरपर्याप्ते

कालगुणीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् । १७

अथाष्टादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भोः शौनक महाप्राज्ञ दैतालस्तं हि सोऽबवीत् । सुदक्षो नाम नृपतिर्वसन्कम्बलके पुरे ॥१
न्यायवाच्यवाच्यूरो दाता शिवपरायणः । तस्य राज्येऽवसद्वैश्यो धनाध्यक्ष इति श्रुतः ॥२
तनया सुन्दरी तस्य नामा धनवती शुभा । गौरीदत्ताय वैश्याय पित्रा दत्ता वराङ्गना ॥३
कियता चैव कालेन मोहिनी तत्सुताभवत् । द्वादशाब्दवयस्तस्याः पिता तु निधनं गतः ॥४
तदा धनवती रण्डा निधना पितुरन्तिके । कन्या सह सम्प्राप्ता निशि भार्गे तमोनये ॥५

मुसम्पन्न करना चाहिए । उस ब्राह्मण ने दूसरे के धन का उपभोग करते हुए उस मंत्र का जप किया था अतः उसे दूसरे जन्म में यक्षत्व की प्राप्ति होगी । १८

सूत जी बोले—इतना कहने पर वह वैताल हर्षित होकर साधु, साधु कहते हुए उत्तम वाणी द्वारा उसका अत्यन्त सम्मान किया । उपरांत राजा के परीक्षार्थ इतिहास कहना पुनः आरम्भ किया । १९-२०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त । १७।

अध्याय १८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—शौनक, महाप्राज्ञ ! वैताल ने राजा से कहा—कम्बल नगर में सुदक्ष नामक राजा रहता था, जो न्यायी, धर्मिक, शूर, दानी एवं शिव जी का उपासक था । उसकी राजधानी में धनाध्यक्ष नामक वैश्य रहता था, उसकी धनवती नामक परमसुन्दरी कन्या थी । उस रमणीक कन्या को उसके पिता ने गौरीदत्त वैश्य को प्रदान कर दिया । कुछ समय के अनन्तर मोहिनी नामक कन्या उससे उत्पन्न हुई । उसकी बारहवर्ष की अवस्था होने पर उसके पिता का निधन हो गया । उस समय धनवती पति के निधन होने के नाते निर्धनावस्था में अपनी कन्या समेत अपने पिता के यहाँ जा रही थी । अंधेरी रात में

न्यायशर्मा द्विजः कश्चिद्बहुस्वस्यापहारकः । नामसत्यत्वभावेन शूल्यां न निधनं गतः ॥६
 अकस्माद्वैश्यजात प्राप्ता तत्करं सा तदास्पृशत् । तेन दुःखेन महता वरोदोच्चैर्द्विजश्च सः ॥७
 हा राम कृष्णं प्रद्युम्नानिरुद्धेति पुनः पुनः । श्रुत्वा धनवती दीना को भवानिति साद्ववीत् ॥८
 द्विज आह च विप्रोऽहं व्यहं शूल्यां निरूपितः । यदि दास्यसि मे कन्यां कोटिस्वर्णं ददामि ते ॥९
 श्रुत्वा धनवती तस्मा उद्वाह्य मोहिनीं सुताम् । वटसूले स्थिरं द्रव्यं लनित्वा गृहसाययौ ॥१०
 नोऽह्यपि पर्ति प्राह भवान्मृत्युवशं गतः । कुतो जायेत तनयस्तन्मे ब्रूहि दयनिधे ॥११
 द्विजः प्राह शृणु व्यङ्गे यदा ते हृच्छयो भवेत् । तदा त्वं पण्डितं प्राप्य पुञ्चमुत्पादयाशु वै ॥१२
 इत्युक्त्वा मरणं प्राप्य यमलोकं गतो द्विजः । नारकीं यातनां नित्यं बुभुजे निन्द्यर्कर्मजात् ॥१३
 मातुर्गृहे तु सा नारी मोहिनी यौवनान्विता । समयं हृदये कृत्वा तिष्ठन्ती च पुनः पुनः ॥१४
 के भेरगाश्च किमाश्र्वर्यं को जागर्ति शयीत कः । पापो व्याधिश्च दुःखं च कुतो जातं हृदि स्थितम् ॥१५
 इति श्लोकं द्विजानाह नोत्तरं च ददुद्विजाः । मेधावी नाम काश्मीरे स्थितो विप्रः समागतः ॥१६
 तामुवाच प्रसन्नात्मः शृणु मोहिनि सुन्दरि । सुगन्धिं वनिता वस्त्रं गीतं पानं च भोजनम् ॥
 शय्या च भूषणं ज्ञेयो भोगो हृष्टविधो द्रुधेः ॥१७

उसे मार्ग में न्याय शर्मा नामक एक ब्राह्मण मिला, जिसे किसी ब्राह्मण का सर्वस्व का अपहरण करने पर भी अपने नाम की सत्यता के नाते उसे शूली हुई और उसका निधन नहीं हुआ (अर्थात् उसके धन का हरण भी नहीं किया गया) । १-६। अकस्मात् उसकी पुत्री उसके पास जाकर अपने हाँथ से उसके चरण स्पर्श किया कि वह अत्यन्त दुःखी होकर 'हा राम कृष्ण' प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध ! इन्हीं नामों का बार-बार उच्चारण करते हुए रुदन करने लगा । उसे सुनकर वह दीन-कृपणा धनदत्ती उसके समीप जाकर कहने लगी—आप कौन हैं ? ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ किन्तु तीन दिन से मेरे मन में अत्यन्त पीड़ा हो रही है, यदि इस कन्या को मुझे अर्पित कर दो तो मैं तुम्हें कोटि सुवर्णं प्रदान करूँगा । यह सुनकर धनदत्ती ने अपनी मोहिनी नामक पुत्री का विवाह संस्कार उसके साथ सम्पन्न कर दिया । पश्चात् बरगद के नीचे पृथ्वी के भीतर सुरक्षित द्रव्य को खोदकर अपने घर चली आई । मोहिनी ने अपने पति से कहा—दयानिधे आप तो मरणासन्न हो रहे हैं, मेरे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा । ब्राह्मण ने कहा—प्रिये ! जब तुम्हें काम उत्पन्न हो तो तुम किसी पण्डित के पास पहुँचकर उसी द्वारा पुत्र को उत्पन्न करना । ७-१२। इतना कहकर वह ब्राह्मण मरणोपरांत यमलोक में पहुँच गया । वहाँ वह अपने किये हुए निन्दित कर्मों के परिणाम स्वरूप नारकीय यातनाओं का अनुभव करने लगा । अपनी माता के घर में रहकर वह मोहिनी यौवनावस्था प्राप्त होने पर भी अपने पति की प्रतिज्ञा का बार-बार स्मरण करके (अनुचितपथ से) रुक जाती थी । कौन भोग हैं, क्या आश्चर्य है, कौन जागरण करता है, कौन शयन कर रहा है, पाप, व्याधि एवं दुःख, हृदय में रहकर कैसे उत्पन्न हो जाते हैं । इसी श्लोक का अर्थ वह ब्राह्मण से पूछती थी, पर किसी ने उसका उत्तर न दिया । पश्चात् मेधावी नामक एक काश्मीर निवासी ब्राह्मण वहाँ आया । उसने प्रसन्न होकर उस मोहिनी से कहा—सुन्दरि ! इसका अर्थ मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सुगंध, स्त्री, वस्त्र, ज्ञान, पेयपदार्थ, भोजन, शय्या और भूषण इन्हीं आठ प्रकार के भोग को विद्वानों ने बताया है । नित्य प्रति

अहन्यहनि भूतानि भ्रियन्ते जनयन्ति^१ च । ममतां यः करोत्येषां तदाश्रव्यं स्मृतं बुधैः ॥१८
 यो विवेकं समासाद्य कुरुते कर्मसंग्रहम् । संसारे घोरतमत्ति स जागर्ति विवेकवान् ॥१९
 संसाराजगरं ज्ञात्वा वैराग्यं योऽकरोद्भुवि । औदासीन्यं समर्थिं च सुखं शेते हि मानवः ॥२०
 सङ्कृत्याज्जायते कामस्ततो लोभः प्रजायते । लोभाज्जातश्च तृष्णायां स पादो निरयप्रदः ॥२१
 जलप्रकृत्यां यो जातो रसो रसविकारवान् । रसाज्जातस्य देहेऽस्मिन्न्याधिः कर्भमयोऽशुभः ॥२२
 रुद्रात्काल्यां समुद्भूतो मोहो हृदि च लोकहा । स तुष्टाव महादेवीं पत्न्यर्थं सुरपूजितम् ॥२३
 मिथ्यादृष्टिस्ततो जाता मोहस्य दियताभवत् । तस्मात्स्तेनहश्च तत्पत्न्यां जातश्च ममताप्रियः ॥२४
 तयोः सकाशात्सञ्जातं दुःखं शोकसमन्वितम् । इति श्रुत्वा तु सा नारी मुहोह वरवर्णनी ॥२५
 मत्ती शूरश्च चतुरोऽधिकारी गुणवान्सदा । स्त्रीरक्षकश्च पुरुषो वशं नारीं सदा नयेत् ॥२६
 तस्यै गर्भं च विप्रोऽसौ दत्त्वा स्वर्णं गृहीतवान् । सापि नारी सुखं लेभे तेन गर्भेण प्रत्यहम् ॥२७
 कदाचिद्दृशमासान्ते मोहिनीमन्नवीच्छिवः । स्वप्नान्तरे महाराज सापि ज्ञात्वा तथाकरोत् ॥२८
 दोलामध्ये सहस्रं च स्वर्णं चैव स्वबालकम् । राजद्वारे स्थापयित्वा सुष्वाप जननी सुखम् ॥२९
 शिवेन ब्रोधितो राजा सुतार्थी रुद्रपूजकः । द्विजयुत्रं समालेभे मोहित्यां जातमुत्तमम् ॥३०

जीव मरते और उत्पन्न होते हैं, इसके लिए जो मोहित होता है विद्वानों ने उसे ही आश्चर्य बताया है । १३-१८। जो कोई विवेकपूर्वक कर्मशील होता है, वही विवेकी इस घोर अन्धकारपूर्ण संसार में जागरण करता है । संसार को अजगर की भाँति जानकर जो विरागी होकर उदासीनता एवं समाधिनिष्ठ होता है, वही मनुष्य सुखपूर्वक शयन करता है । संकल्प से नाम, काम से लोभ और लोभ से तृष्णा उत्पन्न होती है, जो इहें अपनाता है, उसे पापी कहा गया है, जो नरकप्रद है । जलप्रकृति से जिस रस की उत्पत्ति होती है, वही रस विकारी होता है, इस देह में उसी रसद्वारा अशुभ कर्म भय की उत्पत्ति होती है, उसे ही व्याधि कहा गया है । रुद्र द्वारा काली में लोक का अपहरण करने वाला मोह हृदय में उत्पन्न हुआ । उन्होंने पत्नी के लिए महादेवी की आराधना की, उससे सुरपूजित मिथ्या दृष्टि उत्पन्न हुई, जो मोह की प्रेयसी कही जाती है । उसी पत्नी से स्नेह और ममता की उत्पत्ति हुई । १९-२४। इन्हीं दोनों के संगम से शोकपूर्ण दुःख की उत्पत्ति हुई है । इसे सुनकर वह उत्तमांगी मोहिनी मुग्ध हो गई । क्योंकि मानी, शूर, चतुर, अधिकारी, गुणवान् सखा तथा स्त्रीरक्षक पुरुष के वश में स्त्रियाँ सदैव रहती हैं । उस ब्राह्मण ने उसे गर्भवती करने के उपरांत उसका धन ग्रहण करके प्रस्थान किया । पश्चात् वह स्त्री भी उस गर्भ के द्वारा प्रतिदिन सुख का अनुभव करने लगी । दशवें मास के आरम्भ में शिव जी ने उस मोहिनी से कहा—महाराज ! वह स्वप्न की बातें वैसी ही सुसम्पन्न की । पालकी के भीतर एक सहस्र सुवर्ण संपन्न उस बालक को शयन कराकर राजा के दरवाजे पर जाकर उस पुत्र को वहीं रखकर स्वयं भी निद्रित हो गई । उसी समय शिव जी ने उस राजा को जो सुतार्थी एवं रुद्र का उपासक था उस बालक को अपनाने के लिए आदेश दिया । मोहिनी के गर्भ से उत्पन्न उस ब्राह्मण पुत्र को राजा ने अपना पुत्र

कारयित्वा जातकर्म वित्तार धनं बहु । हरदत्तश्च नाम्नासीत्सर्वविद्याविशारदः ॥३१
 पितुरन्ते च तद्राज्यं प्राप्य धर्मं प्रकाशयन् । गयाश्रादं कृतं तेन फल्लूतीरे विधानतः ॥३२
 अदो हस्तास्तदा जाताः स राजा विस्मितोऽभवत् ॥३३
 हत्युपत्त्वा रात्रे वैतालो नृपतिं प्राह भौ नृपः । कस्मै योथो हि पिण्डोऽत्रौ श्रुत्वा राजाभवीदिदम् ॥३४
 द्रव्यार्थी पण्डितो ज्ञेयो गुरुतुल्यश्च भूपतिः । चौराय पिण्ड उचितो यस्य नारो च मोहिनी ॥३५

सूत उवाच

तेन पिण्डप्रभावेन त चौरो ब्रह्मद्रव्यव्याहा । निरशान्निःसृतो विप्र स्वर्गलोकं राजागतः ॥३६
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्द्वयाखण्डाभरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामाऽष्टादशोऽध्यायः । १८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

चित्रकूटे च नृपती रूपदत्त इति श्रुतः । वने मृगप्रसङ्गेन वनान्तरमुपाययौ ॥१
 मध्याह्ने सरसस्तीरे मुनिपुत्रो दर्दश सः । चिन्वतों पद्मकुमुमं रूपयौवनशालिनीम् ॥२

बनाकर उसका जात संस्कार किया जिसमें अत्यन्त धन का व्यय किया गया । उसका नाम हरदत्त रखा गया । वह सम्पूर्ण विद्या का पारगामी हुआ । पिता के निधन होने पर उस राज्य का स्वामी होकर उसने धर्म का विस्तार किया । फल्लु नदी के तटपर उसने विधानपूर्वक गया का शाढ आरम्भ किया । उस समय उस नदी में से तीन हाथ निकले जिसे देखकर उस राजा को महान्, आश्चर्य हुआ । इतना कहकर उस वैताल ने राजा से कहा—नृप ! उस पिण्ड का अधिकारी कौन हुआ । इसे सुनकर राजा ने कहा—पण्डित तो द्रव्यार्थी थे, और राजा गुरु के समान होता है, अतः वह पिण्ड उस चौर को प्राप्त होना आहिए, जिसकी मोहिनी स्त्री थी । २५-३५

सूत जी बोले—विप्र ! उस पिण्ड के प्रभाव से ब्राह्मण द्रव्य का अपहरण करने वाले उस चौर लालौण ने नरक से मुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति की । ३६

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त । १८।

अध्याय १९

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

चित्रकूट में रूपदत्त नामक राजा रहता था । वह मृगया (शिकार) के लिए एक वन से दूसरे वन में पहुँच गया । वहाँ मध्याह्न के समय सरोवर के तट पर कमल-पुष्प का संचय करने वाली किसी मुनि की पुत्री देखा । जो रूपलावण्य पूर्ण और यौवन के भद्रसे उन्मत्त सी रहती थी । १-२। वे दोनों आपस में एक दूसरे

तस्य नेत्रे स्वयं नेत्रे चैकीभूते समागते । एतस्मिन्नन्तरे विश्वस्तत्र प्राप्तो ददर्श तौ ॥३
 तस्य दर्शनमात्रेण नृपतेज्ञानमागतम् । विनयावन्ततो राजा धर्मं प्रच्छ चोत्तमम् ॥४
 तमुवाच मुनिर्द्विमान्दयाधर्मप्रपोदणम् । निर्भयस्य समं दानं न भूतं न भविष्यति ॥५
 अनहन्दण्डमादद्याद्वृप्तजाफलं भजेत् । मित्रता गोद्विजे नित्यं सत्यता दण्डनिश्च ॥६
 सत्यता सुरपूजायां दमता गुरुपूजने । मृदुतां दानसमये सन्तुष्टिर्निन्द्यकर्मणि ॥७
 इत्युक्त्वा स मुनिः पुत्रो तस्मै दत्त्वा गृहं यथौ । राजापि च तपा सार्वं वटभूतेऽशयिष्ठ वै ॥८
 तदा तु राजसः कश्चित्तपत्नोभक्षणोत्कुकः । बोधयामास्तु नृपतिं बलिं तस्मै स भूपतिः ॥९
 दानार्थं चैव क्रव्यादे सप्तवर्षात्मकं द्विजम् । समयं कृतवान्राजा सत्येन स्वगृहं यथौ ॥१०
 अमात्यैः सम्मतं छत्वा स्वर्णलक्षं ददौ द्विजे । मध्यं बालं पुरस्कृत्य राक्षसाय बलिं ददौ ॥११
 मृत्युकाले द्विजसुतो विहस्योच्चे रुरोद ह । कथं हास्यं कृतं तेन तत्पश्चाद्रोदनं कथम् ॥१२
 इति श्रुत्वा नृपः प्राह शृणु वैतालिक द्विज । ज्येष्ठपुत्रं पितुर्हृद्यमवर्यकम् ॥१३
 ज्ञात्वा स मध्यमः पुत्रो राजानं शरणं यथौ । निर्दद्यी रूपसेनश्च पत्नीकल्याणभिक्षुकः ॥१४
 खड्गहस्तं नृपं ज्ञात्वा जहास शिवतप्तरः । राक्षसाय शरीरं मे प्राप्तमस्माद्वरोद ह ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्दुग्खण्डापरपरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

से आँख मिला रहे थे कि उसी समय वहाँ पहुँच कर महर्षि ने उन दोनों को देख लिया । उनके देखते ही राजा को ज्ञान उत्पन्न हो गया । विनय विनम्र होकर राजा ने उनसे उत्तम धर्म की जिज्ञासा की । ज्ञान- निपुण मुनि ने दया और धर्म का अत्यन्त पोषक वर्णन आरम्भ किया । अभयदान के समान कोई दान न कहीं है और न होगा । इसीलिए अपराधी को दण्ड प्रदान करने से पूजनीय की पूजा का फल प्राप्त होता है । गौ और ब्राह्मण से नित्य मित्रता, दंडविधान में समता, देवों की अर्चना में सत्यता, गुरु की सेवा में (इन्द्रिय) दमन, दान के समय को मलता और निर्दित कर्मों में संतोष करना चाहिए । इतना कहकर वे महर्षि उन्हें अपनी पुत्री प्रदान कर घर चले गये । उपरांत राजा उसके साथ किसी बरगद के मूल भाग पर शयन करने लगे । उस समय किसी राक्षस ने उनकी पत्नी को भक्षण करने के व्याज से राजा को जगाकर कहा—मुझे बलि चाहिए । 'तदनन्तर आज के सातवें दिन दान रूप में सात वर्ष का एक ब्राह्मण पुत्र मैं आपको दूँगा । इस प्रकार सत्य प्रतिज्ञा करके राजा अपने घर चले गये । वहाँ पहुँचकर अपने मंत्री से परामर्श करके एक ब्राह्मण को एक लक्ष का सुवर्ण प्रदानकर उसके मध्यम पुत्र का क्रय किया और राक्षस को उसी की बलि दी गई । निधन के समय उस बालक ने पहले हँसा और पश्चात् रुदन किया । उसने पहले हँसकर पीछे रुदन क्यों किया । इसे सुनकर राजा ने वैताल से कहा—द्विज ! ज्येष्ठ पुत्र पिता के लिए और कनिष्ठ (छोटा) पुत्र माता को प्रिय होता है, ऐसा जानकर वह मध्यम (मञ्जला) पुत्र राजा की शरण में गया किन्तु निर्दद्यी उस राजा रूपसेन को हाथ में खड़ग लिए हुए देखकर उस बालक ने अपने कल्याणार्थ हँसा और राक्षस की उदरपूर्ति के लिए मेरी शरीर जा रही है, ऐसा जानकर उसने रुदन किया । ३-१५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो नुपं प्राह पुनः कथाम् । विशालनगरे रम्ये विपुलेशो भ्रहीपतिः ॥१
 तत्र द्वामे वनद्वैश्योऽर्थदत्तः विषणे रतः । अनङ्गमञ्जरी कन्या तस्य जाता मनोरमा ॥२
 सुवर्णनाम्ने वैश्याय पिता वै दत्तवान्त्वयम् । कदाच्चित्कमलप्रामात्सृदर्गो दोपमतगम्त् ॥३
 द्रव्यलाभाय न्यवसञ्चिरं कालं स लुब्धवान् ॥४
 अनङ्गमञ्जरीगे है दैदयोगाद्विजोत्तमः । कमलाकरनामासौ कृत्ययोगात्समाप्तः ॥५
 होमान्ते सुन्दरी नारी भार्जनार्थं सुता गता । इष्ट्वा तां कामकलिकां मुमोह द्विजसत्तमः ॥६
 सुतापि मदधूर्गक्षीरे विप्राय समयं ददौ । निशीथे तम उद्भूते त्वं मां प्राप्य सुखी भव ॥७
 इति श्रुत्वा दिजो वाक्यं तस्यां ध्यानं तदाकरोत । कामाग्निना चिरं तप्तः सुष्वाप परम्पासने ॥८
 अर्द्धरात्रे तु सा नारी द्विजागमनतत्परा । मर्गमन्वेषमाणा सा प्रियस्य स्मरपीडिता ॥९
 नागतः स द्विजो दैवात्तदा सा मरणं गता । कमलाकर एवाशु समयान्ते समाययौ ॥१०

अध्याय २०
कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इतना सुनकर वैताल ने पुनः राजा से कथा कहना आरम्भ किया । उस रमणीक विशाल नामक नगर में विपुलेश नामक राजा राज्य करता था । उस नगर में अर्थदंत नामक एक व्यापारी कुशल वैश्य रहता था । उसके अनगमञ्जरी नामक एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई । उसके पिता ने सुवर्ण नामक वैश्य के साथ उसका पाणिग्रहण सुसम्बन्ध करा दिया । एक बार वह सुवर्ण नामक वैश्य ने कमल नगर से किसी द्वीप के लिए प्रस्थान किया । उस लोभी ने द्रव्य के लोभवश वहाँ चिरकाल तक निवास किया । दैव योगात् एक दिन अनगमञ्जरी के यहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका नाम कमलाकर था, किसी अनुष्ठान के निमित्त आया । हवन करने के उपरांत मार्जनार्थं वह सुन्दरी वहाँ आई । काम की कली की भाँति उसे देखकर वह ब्राह्मण मोहित हो गया और उसने मुग्ध होकर अपनी मदभरी (नशीली) आँखों से ताकती हुई उससे मिलने के लिए समय प्रदान किया । ‘इस अंधेरी रात में आधीरात के समय तुम मुझसे मिलकर अत्यन्त सुख का अनुभव करो’ इसे सुनकर वह ब्राह्मण उसके ध्यान में निमग्न हो गया । काम की अग्नि द्वारा चिरकाल से संतप्त रहने के नाते वह परमोत्तम आसन पर निद्रा के अधीन हो गया । १-७। आधीरात के समय वह सुन्दरी काम पीडित होने के नाते उस ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा में तत्पर होकर उस अपने प्रिय का मार्ग देखने लगी । दैव संयोगवश वह ब्राह्मण उस समय न आ सका, इससे उसने अपने प्राण का परित्याग कर लिया । पश्चात् कमलाकर भी वहाँ पहुँचकर उस सुन्दरी का निधन

स्वर्गं गतास्तु ते सर्वे कस्य पुण्याधिकं मतम् । स होवाच च वैतालं राजा धर्माधिको मनः ॥२७
मरणं किङ्करस्यैव योग्यं भूपतिहेतवे । पतिव्रताया मरणं पतिसङ्घेन योग्यकम् ॥२८
दत्तः यत्किङ्करेणैव सुन्दरी नृपहेतवे । धर्मभीत्या न नृपतिस्तमगृह्णात्स कामुकः ॥२९
जित्वा कामं तथा पात्वं धर्मं तस्मान्त्वयेऽधिकम् ॥३०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्थगुण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयेनाम षोडशोऽध्यायः । १६

अथ सप्तदशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उत्तात्त्व

पुनः प्रोवाच वैतालस्तदा ब्राह्मणरूपवान् । शृणु शूप महाभाग कथां तत्र मनोरमाम् ॥१
उज्जयिन्यां महाभाग महासेनो नृपोऽभवत् । तस्य राज्येऽवसद्विप्रो देवशर्मेति विश्रुतः ॥२
गुणाकरस्तस्य सुतो मद्यमांसपरायणः । द्यूतेन संक्षयं वित्तं तस्य पापस्य चाभवत् ॥३
बान्धवैः स परित्यक्तो बन्ध्राम वसुधातले । कदाचिद्देवयोगेन सिद्धाश्रममुपागमत् ॥४

भस्म करके उन सब के साथ में स्वर्गपुरी को प्रस्थान किया । किन्तु, इन सब में किसका पुण्य अधिक है? राजा ने वैताल से कहा—राजा के लिए सेवक का मरण प्राप्त होना धर्मतः अधिक (थ्रेष्ठ) है । और पतिव्रता का पति के साथ प्राण परित्याग करना उचित ही है एवं सेवक ने राजा को अपनी सुन्दरी स्त्री प्रदान किया, पर, धर्मभय के नाते राजा कामुक होने पर भी उसे स्वीकार नहीं किया, प्रत्युत काम को जीतकर धर्म का पालन किया । अतः राजा का धर्म अधिक है । २५-३०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त । १६।

अध्याय १७ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस ब्राह्मण रूपधारी वैताल ने पुनः राजा से कहा—राजन् महाभाग ! मैं तुम्हें मनोहर कथा सुना रहा हूँ सुनो ! महाभाग ! उज्जयिनी नगर में महासेन नामक राजा रहता था । उसी के राज्य में देव शर्मा नामक ब्राह्मण निवास करता था ऐसा बताया जाता है । गुणाकर नामक उसी का पुत्र था । नित्य मद्य-मांस का सेवन करता था । उस पापी ने द्यूत (जूआ) खेलकर अपना सम्पूर्ण धन नष्ट कर दिया । पश्चात् बन्धुओं द्वारा त्याग करने पर पृथ्वी में चारों ओर धूमने लगा । एक बार वह दैवयोग से

कपर्दीं नाम तं योगी कपालान्नैरपूजयत् । ज्ञात्वा पैशाचमन्त्रं स बुधुक्षुर्न शृहीतवान् ॥९
 तदातिथ्यं तदर्थं स यक्षिणीं समुपाहृयत् । तया रात्रौ महानन्दं प्राप्तवान्स द्विजः शयी ॥१०
 प्रातः काले तु संप्राप्ते कैलासं यक्षिणीं गता । स द्विजस्तद्वियोगेन योग्यन्तिकमुपाययौ ॥११
 कपर्दीं प्रददौ तस्मै विद्यां यक्षिणिकर्षिणीम् । चत्वारिंशट्टिनाम्येव निशीथे जलमध्याः ॥१२
 स जजाप शुभं नन्त्रं न प्राप्तां कामचारिणी । तदा योग्याज्ञया विप्रः स्वयं तु इन्नतां त्यजन् ॥१३
 प्राप्तवान्नितरौ नत्वा स्वरोहे निवसन्निशि । प्रातः संन्यासिद्वभूत्वा कुलैश्च रुदितैर्हिजः ॥१४
 प्रतिबोधिवनं प्राप्तस्तच्छिष्यत्वमुपाययौ । पञ्चाश्रिमध्ये स स्थित्वा तन्मन्त्रमजपञ्चुनिः ॥१५
 न प्राप्ता योगिनी देवी तदा चिन्तातुर्नोऽभदत् । इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपर्तिं ज्ञानकोविदम् ॥१६
 पुनराह कर्त्तं देवी न प्राप्ता यक्षिणी प्रिया । श्रुत्वाह नृपतिर्विप्रं वैतालं रुद्रं किञ्च्चरन् ॥१७
 त्रिविधं कर्म भो विप्रं सिद्धचर्ये साधकाय वै । मनोवाचिविहितं कर्म परलोके सुखप्रदम् ॥१८
 सुन्दराङ्कुतं जेयं पुनर्वक्तायसम्भवम् । किञ्चिच्चतिसद्विप्रदं ज्ञेयमिह जन्मनि वीक्षितम् ॥१९
 परत्र च भुवलोंके पिण्डदेहकृतं स्मृतम् । मनः कागेन सम्भूतं परजन्मनि राज्यदम् ॥२०
 मनोवाक्कायसम्भूतमिह जन्मनि सिद्धिदम् । परत्र परमां सिद्धिं तत्कर्मं प्रददाति हि ॥२१
 तस्मात्कर्तव्यमेवेह त्रिविधं कर्मं साधकैः । अन्यवित्तेन स द्विजः कृतवान्कर्मं मन्त्रजम् ॥

सिद्धाश्रम में पहुँच गया । १-५। वहाँ कपर्दी नामक योगी रहता था । उसने कपाल में अन्न रखकर उससे उस अतिथि की सेवा करनी चाही, किन्तु उसे पिशाच का पुत्र समझकर उसने भूखा रहने पर भी उसका ग्रहण नहीं किया । पश्चात् उसने उसकी आथित्य सेवा के निमित्त यक्षिणी का आह्वान किया । उस रात्रि ब्राह्मण ने उसके साथ शयनादि करके महान, आनन्द की प्राप्ति की । प्रातःकाल होने पर वह यक्षिणी कैलास पर्वत पर चली गई । उपरांत उसके वियोग से दुःखी होकर वह उस योगी के पास गया । कपर्दी ने उसे यक्षिणी का आर्कर्ण करने वाली विद्या प्रदान किया । मध्य रात्रि में वह जल के भीतर जाकर उस शुभ मंत्र का जप करने लगा । इस प्रकार चालीस दिन तक उस मंत्र का जप करने पर भी वह यक्षिणी की प्राप्ति न कर सका । उस समय योगी की आज्ञा प्राप्तकर वह ब्राह्मण माया-मोह के त्याग पूर्वक अपने माता पिता का अभिवादन करके प्रातःकाल संन्यासी का वेष धारण करके रोते कलपते अपने परिवारों को छोड़कर प्रतिबोधि वन में चला गया । ६-१। वहाँ उनके शिष्य होने के उपरांत पंचाग्नि के मध्य में स्थित होकर आचरण पूर्वक वह उस गंत्र का जप करने लगा वहाँ भी योगिनी की प्राप्ति न होने पर उसे चिंता होने लगी । इतना कहकर वैताल ने ज्ञाननिपुण राजा से कहा—उसे वह यक्षिणी देवी प्रेयसी के रूप में क्यों नहीं प्राप्त हुई ! इसे सुनकर राजा ने उस रुद्र सेवक वैताल से कहा—विप्र ! साधको सिद्धि प्राप्ति करने के लिए तीन प्रकार का कर्म बताया गया है—मन और वाणी द्वारा किया गया कर्म परलोक में सुख प्रदान करता है, वाणी और शरीर द्वारा किये गये कर्म से शरीर सौन्दर्य और इसी जन्म में कुछ सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है, मन और काय द्वारा किये गये कर्मवश परलोक में भुवलोक की प्राप्ति और अगले जन्म में राज्य की प्राप्ति होती है । मन, वाणी और शरीर द्वारा सुसम्पन्न किया गया कर्म इसी जन्म में सिद्धि तथा परलोक में परमसिद्धि की प्राप्ति प्रदान करता है । १२-१७। इसलिए साधकों को इस तीन प्रकार के कर्म को

अतोऽन्यजन्मनि प्राप्तो यक्षत्वं तत्परो द्विजः

॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालः प्रसन्नवदनोऽभवत्

॥१९

साधु साधिवति तं प्रोच्य सद्वाक्यैः तमपूजयत् ; इतिहासं पुनः ऋह परीक्षार्थे नृपाय सः ॥२०

इति श्रीभविष्ण्वे नहापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि ब्रुद्युगलखण्डपरस्यर्थे

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् ॥२७

अथाष्टादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भोः शौनक महाप्राज्ञ वैतालस्तं हि सोऽब्रवीत् । युद्धको नाम नृपतिर्वसन्कम्बलके पुरे ॥१
न्यायदान्धर्नवाऽद्धूरो दाता शिवपरायणः ! तस्य राज्येऽवसद्वैश्यो धनाध्यक्ष इति श्रुतः ॥२
तनया सुन्दरी तस्य नामा धनवती शुभा । गौरीदत्ताय वैश्याय पित्रा दत्ता दशञ्जना ॥३
कियता चैव कालेन मोहिनी तत्सुताभवत् । द्वादशाब्दवयस्तस्याः पिता तु निधनं गतः ॥४
तदा धनवती रण्डा निधना पितुरन्तिके । कन्या सह सम्प्राप्ता निशि भर्ते तमोमये ॥५

सुसम्पन्न करना चाहिए । उस ब्राह्मण ने दूसरे के धन का उपभोग करते हुए उस मंत्र का जप किया था अतः उसे दूसरे जन्म में यक्षत्व की प्राप्ति होगी ॥८

सूत जी बोले—इतना कहने पर वह वैताल हर्षित होकर साधु, साधु कहते हुए उत्तम वाणी द्वारा उसका अत्यन्त सम्मान किया । उपरांत राजा के परीक्षार्थ इतिहास कहना पुनः आरम्भ किया । १९-२०

श्रीभविष्ण्वमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७।

अध्याय १८

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—शौनक, महाप्राज्ञ ! वैताल ने राजा से कहा—कम्बल नगर में सुदक्ष नामक राजा रहता था, जो न्यायी, धर्मिक, शूर, दानी एवं शिव जी का उपासक था । उसकी राजधानी में धनाध्यक्ष नामक वैश्य रहता था, उसकी धनवती नामक परमसुन्दरी कन्या थी । उस रमणीक कन्या को उसके पिता ने गौरीदत्त वैश्य को प्रदान कर दिया । कुछ समय के अनन्तर मोहिनी नामक कन्या उससे उत्पन्न हुई । उसकी बारहवर्ष की अवस्था होने पर उसके पिता का निधन हो गया । उस समय धनवती पति के निधन होने के नाते निर्धनावस्था में अपनी कन्या समेत अपने पिता के यहाँ जा रही थी । अंधेरी रात में

न्यायशर्मा द्विजः कश्चिद्ब्रह्मस्वस्यापहारकः । नामसत्यत्वभावेन शूल्यां न निधनं गतः ॥६
 अक्समादैश्यजा प्राप्ता तत्करं सा तदास्पृशत् । तेन दुःखेन महता रुरोदोच्चैर्द्विजश्च सः ॥७
 हा राम कृष्णं प्रद्युम्नानिरूपेति पुनः पुनः । श्रुत्वा धनवती दीना को भवानिति साद्वीत् ॥८
 द्विज आह च दिपोऽहं व्यहं शूल्या निरूपितः । यदि दास्यसि मे कन्धां कोटिर्वर्णं ददामि ते ॥९
 शूल्या धनवती तस्मः उद्वाल्म शोहिनीं सुताम् । वटमूले स्थितं द्रव्यं खनित्वा गृहमाशयौ ॥१०
 शोहिन्यपि नर्ति प्राह भवान्मृत्युवशं गतः । कुतो जायेत तनयस्तन्मे ब्रूहि दयतनिधे ॥११
 द्विजः प्राह शृणु व्यञ्जे यद् । ते हृच्छयो भवेत् । तदा त्वं पण्डितं प्राप्य पुत्रमृत्यादयाशु वै ॥१२
 इत्युक्त्वा भरणं प्राप्य दमलोकं गतो द्विजः । नारकीं यतनां नित्यं बुधुजे निन्द्यकर्मजाम् ॥१३
 मातुर्गृहे तु सा नारी शोहिनी यौवनान्विता । सनयं हृदये कृत्वा तिष्ठन्ती च पुनः पुनः ॥१४
 के भोगाश्र किमाश्र्वर्यं को जागर्ति शदीत कः । पापो व्याधिश्च दुःखं च कुतो जातं हृदि स्थितम् ॥१५
 इति श्लोकं द्विजानाह नोत्तरं च दत्तुद्विजाः । मेधावी नाम काश्मीरे स्थितो विश्रः समागतः ॥१६
 तामुवाच प्रसन्नात्मा शृणु शोहिनि सुन्दरि । सुगन्धि चनिता वस्त्रं गीतं पानं च भोजनम् ॥
 शय्या च भूषणं ज्ञेयो भोगो हृष्टविधो बुधैः ॥१७

उसे मार्ग में न्याय शर्मा नामक एक ब्राह्मण मिला, जिसे किसी ब्राह्मण का सर्वस्व का अपहरण करने पर भी अपने नाम की सत्यता के नाते उसे शूली हुई और उसका निधन नहीं हुआ (अर्थात् उसके धन का हरण भी नहीं किया गया) । १-६। अक्समात् उसकी पुत्री उसके पास जाकर अपने हाँथ से उसके चरण स्पर्श किया कि वह अत्यन्त दुःखी होकर 'हा राम कृष्ण' प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध ! इन्हीं नामों का बार-बार उच्चारण करते हुए रुदन करने लगा । उसे सुनकर वह दीन-कृपणा धनवती उसके सभीय जाकर कहने लगी—आप कौन हैं ? ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ किन्तु तीन दिन से मेरे मन में अत्यन्त पीड़ा हो रही है, यदि इस कन्धा को मुझे अर्पित कर दो तो मैं तुम्हें कोटि सुवर्णं प्रदान करूँगा । यह सुनकर धनवती ने अपनी शोहिनी नामक पुत्री का विवाह संस्कार उसके साथ सम्पन्न कर दिया । पश्चात् बरगद के नीचे पृथ्वी के भीतर सुरक्षित द्रव्य को खोदकर अपने घर चली आई । शोहिनी ने अपने पति से कहा—दयानिधे आप तो मरणासन्न हो रहे हैं, मेरे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा । ब्राह्मण ने कहा—प्रिये ! जब तुम्हें काम उत्पन्न हो तो तुम किसी पण्डित के पास पहुँचकर उसी द्वारा पुत्र को उत्पन्न करना । ७-१२। इतना कहकर वह ब्राह्मण मरणोपरांत यमलोक में पहुँच गया । वहाँ वह अपने किये हुए निन्दित कर्मों के परिणाम स्वरूप नारकीय यातनाओं का अनुभव करने लगा । अपनी माता के घर में रहकर वह शोहिनी यौवनावस्था प्राप्त होने पर भी अपने पति की प्रतिज्ञा का बार-बार स्मरण करके (अनुचितपथ से) रुक्ष जाती थी ; कौन भोग हैं, क्या आश्चर्य है, कौन जागरण करता है, कौन शयन कर रहा है, पाप, व्याधि एवं दुःख, हृदय में रहकर कैसे उत्पन्न हो जाते हैं । इसी श्लोक का अर्थ वह ब्राह्मण से पूछती थी, पर किसी ने उसका उत्तर न दिया । पश्चात् मेधावी नामक एक काश्मीर निवासी ब्राह्मण वहाँ आया । उसने प्रसन्न होकर उस शोहिनी से कहा—सुन्दरि ! इसका अर्थ मैं बता रहा हूँ, सुनो ! सुगंधि, स्त्री, वस्त्र, ज्ञान, पैयपदार्थ, भोजन, शय्या और भूषण इन्हीं आठ प्रकार के भोग को विद्वानों ने बताया है । नित्य प्रति

अहन्यहनि भूतानि त्रियन्ते जनयन्ति^१ च । ममतां यः करोत्येषां तदाश्रव्यं स्मृतं बुधैः ॥१८
 यो विवेकं समासाद्य कुरुते कर्मसंग्रहम् । संसारे घोरतमसि ल जागर्त विवेकवान् ॥१९
 संसाराजगरं ज्ञात्वा वैदायं योऽकरोद्भुदि । औदासीन्यं समाधिं च सुखं शेषं हि मानवः ॥२०
 सद्बूल्प्याज्ञायते कामस्ततो लोभः प्रजायते । लोभाज्ञातश्च त्रृण्यायां ल पापे निरयप्रदः ॥२१
 जलप्रकृत्यां यो जातो रसो रसविकारवान् । रसाज्ञातस्य देहेऽस्मिन्न्याधिः कर्ममदोऽशुभः ॥२२
 शुद्धात्काल्यां समुद्भूतो मोहो हृदि च लोकहा । त तुष्टाव महादेवीं पत्त्वर्थं सुरपूजिताम् ॥२३
 मिथ्यादृष्टिस्ततो जाता मोहस्य दस्तिभवत् । तस्मात्तेहश्च तत्पत्त्यां जातश्च ममताप्रियः ॥२४
 तयोः सकाशात्सञ्जातं दुःखं शोकसमन्वितम् । इति श्रुत्वा तु रा नारी मुहोह वरनर्णिनी ॥२५
 मानी शूरश्च चतुरोऽधिकारी गुणवान्तस्था । स्त्रीरक्षकश्च पुरुषो वशं नारीं सदा नयेत् ॥२६
 तस्यै गर्भं च विप्रोऽसौ दत्त्वा स्वर्णं गृहीतवान् । सापि नारी सुखं लेभे देन गर्भेण प्रत्यहम् ॥२७
 कदाचिद्विशमासान्ते मोहिनीमब्रवीच्छिवः । स्वप्नान्तरे महाराज सापि ज्ञात्वा तथाकरोत् ॥२८
 दोलामध्ये सहस्रं च स्वर्णं चैव स्वबालकम् । राजद्वारे स्थापयित्वा सुष्वाप जननी सुखम् ॥२९
 शिवेन बोधितो राजा सुतार्थी रुद्रपूजकः । द्विजपुत्रं समालेभे मोहिन्यां जातमुत्तमम् ॥३०

जीव मरते और उत्पन्न होते हैं, इसके लिए जो मोहित होता है विद्वानों ने उसे ही आश्रव्य बताया है । १३-१८। जो कोई विवेकपूर्वक कर्मशील होता है, वही विवेकी इस घोर अन्धकारपूर्ण संसार में जागरण करता है । संसार को अजगर की भाँति जानकर जो विरागी होकर उदासीनता एवं समाधिनिष्ठ होता है, वही मनुष्य सुखपूर्वक शयन करता है । संकल्प से नाम, काम से लोभ और लोभ से त्रृणा उत्पन्न होती है, जो इन्हें आनातः है, उसे पापी कहा गया है, जो नरकप्रद है । जलप्रकृति से जिस रस की उत्पत्ति होती है, वही रस विकारी होता है, इस देह में उसी रसद्वारा अशुभ कर्म भय की उत्पत्ति होती है, उसे ही व्याधि कहा गया है । रुद्र द्वारा काली में लोक का अपहरण करने वाला मोह हृदय में उत्पन्न हुआ । उन्होंने पत्नी के लिए महादेवी की आराधना की, उससे सुरपूजित मिथ्या दृष्टि उत्पन्न हुई, जो मोह की प्रेयसी कही जाती है । उसी पत्नी से स्नेह और ममता की उत्पत्ति हुई । १९-२४। इन्हीं दोनों के संगम से शोकपूर्ण दुःख की उत्पत्ति हुई है । इसे सुनकर वह उत्तमांगी मोहिनी मुग्ध हो गई । क्योंकि मानी, शूर, चतुर, अधिकारी, गुणवान् सभ्या तथा स्त्रीरक्षक पुरुष के दश में स्त्रियां सदैव रहती हैं । उस ब्राह्मण ने उसे गर्भवती करने के उपरांत उसका धन ग्रहण करके प्रस्थान किया । पश्चात् वह स्त्री भी उस गर्भ के द्वारा प्रतिदिन सुख का अनुभव करने लगी । दशवें मास के आरम्भ में शिव जी ने उस मोहिनी से कहा—महाराज ! वह स्वप्न की बातें वैसी ही सुसम्पन्न की । पालकी के भीतर एक सहस्र सुवर्ण संपन्न उस बालक को शयन कराकर राजा के दरवाजे पर जाकर उस पुत्र को वहीं रखकर स्वयं भी निद्रित हो गई । उसी समय शिव जी ने उस राजा को जो सुतार्थी एवं रुद्र का उपासक था उस बालक को अपनाने के लिए आदेश दिया । मोहिनी के गर्भ से उत्पन्न उस ब्राह्मण पुत्र को राजा ने अपना पुत्र

कारयित्वा जातकर्म वित्तार धनं द्वृत् । हरदत्तश्च नान्नासीत्सर्वविद्यादिशारदः ॥३१
 पितुरन्ते च तद्राज्यं प्राप्य धर्मं प्रकाशयन् : गयाश्रादं कृतं तेन फलूतीरे विधानतः ॥३२
 अयो हस्तास्तदा जाताः स राजा विस्मितोऽभवत् ॥३३
 इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपांत्रं प्राह भो नृप । कस्मै योग्यो हि पिण्डोऽस्तौ श्रुत्वा राजाम्बवीदिदम् ॥३४
 इत्यार्थी पण्डितो ज्ञेयो गुरुतुल्यश्च भूतिः । चौराय पिण्डं उचितो यस्य नारी च मोहिनी ॥३५

सूत उवाच

तेन पिण्डश्चावेन स चौरो ब्रह्मद्वय्यहा । निरयाद्विःसृतो विष स्वर्गलोकं समागतः ॥३६
 इति श्रीभद्रिष्ठे महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलण्डापरपर्यये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामाऽष्टादशोऽध्यायः । १८

अथैकोनविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

चित्रकूटे च नृपती रूपदत्त इति श्रुतः । वने मृगप्रस्तङ्गेन वनान्तरमुपाययौ ॥१
 मध्याह्ने सरसस्तीरे मुनिपुत्री इदर्शं सः । चिन्वतीं खचकुमुमं रूपयौवनशालिनीम् ॥२

बनाकर उसका जात संस्कार किया जिसमें अत्यन्त धन का व्यय किया गया । उसका नाम हरदत्त रखा गया । वह सम्पूर्ण विद्या का पारगामी हुआ । पिता के निधन होने पर उस राज्य का स्वामी होकर उसने धर्म का विस्तार किया । फल्गु नदी के तटपर उसने विधानपूर्वक गया का शाद आरम्भ किया । उस समय उस नदी में से तीन हाथ निकले जिसे देखकर उस राजा को महान्, आश्चर्य हुआ । इतना कहकर उस वैताल ने राजा से कहा—नृप ! उस पिंड का अधिकारी कौन हुआ । इसे सुनकर राजा ने कहा—पण्डित तो इत्यार्थी थे, और राजा गुरु के समान होता है, अतः वह पिण्ड उस चोर को प्राप्त होना चाहिए, जिसकी मोहिनी स्त्री थी । २५-३५

सूत जी बोले—विष ! उस पिण्ड के प्रभाव से ब्राह्मण द्रव्य का अपहरण करने वाले उस चोर ब्राह्मण ने नरक से मुक्त होकर स्वर्ग की प्राप्ति की । ३६

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त । १८।

अध्याय १९

कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

चित्रकूट में रूपदत्त नामक राजा रहता था । वह मृगया (शिकार) के लिए एक वन से दूसरे वन में पहुँच गया । वहाँ मध्याह्न के समय सरोवर के तट पर कमल-मुष्प का संचय करने वाली किसी मुनि की पुत्री को देखा । जो रूपलावण्य पूर्ण और यौवन के मदसे उन्मत्त सी रहती थी । १-२। वे दोनों आपस में एक दूसरे

तस्या नेत्रे स्वयं नेत्रे चैकीभूते समागते । एतस्मिन्नन्तरे विप्रस्तत्र प्राप्तो ददर्शं तौ ॥३
 तस्य दर्शनमात्रेण नृपतेज्ञानमागतम् । विनयावनतो राजा धर्मं प्रच्छ चोत्तमम् ॥४
 तमुवाच मुनिर्द्वीमान्दयाधर्मप्रपोषणम् । निर्भयस्य सदं दानं न भूतं न भविष्यति ॥५
 अन्हर्न्दण्डमादद्यादर्घपूजाफलं भजेत् । मित्रता गोद्विजे नित्यं समता दण्डनिग्रहे ॥६
 सत्यता सुरपूजायां दमता गुरुपूजने । भृदुतः दानसरये सन्तुष्टिर्निर्व्यकर्मणि ॥७
 इत्युक्त्वा स मुनिः पुत्रीं तस्मै दत्त्वा गृहं यथौ । राजादिं च तया सार्वद्वृत्तमूलेऽशयिष्ठ वै ॥८
 तदा तु राक्षसः कवित्तत्वनीभक्षणोत्सुकः । बोधयामास नृपतिं बलिं तस्मै स भूपतिः ॥९
 नानार्थं चैव क्रव्यादे सप्तवर्षत्मकं द्विजम् । समयं कृतवानराजा सत्येन स्वगृहं यथौ ॥१०
 अभात्यैः सन्मतं कृत्वा स्वर्णलक्षं ददौ द्विजे । मध्यं बालं पुरस्कृत्य राक्षसाय बलिं ददौ ॥११
 गृत्युक्ताते द्विजसुतो विहस्योच्चे लरोद ह । कथं हास्यं कृतं तेन तत्प्राद्रोदनं कथम् ॥१२
 इति श्रुत्वा नृपः प्राह शृणु वैतालिक द्विज । ज्येष्ठपुत्रं गिरुर्हृद्यं मातृहृद्यमवर्यकम् ॥१३
 ज्ञात्वा स भध्यमः पुत्रो राजानं शरणं यथौ । निर्दयी रूपसेनश्च पत्नीकल्याणभक्षुकः ॥१४
 खडगहस्तं नृपं ज्ञात्वा जहास शिवतत्परः । राक्षसाय शरीरं मे ग्राप्तमस्माद्वरोद ह ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वेण चतुर्युगखण्डापरपरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामैकोनविंशोऽध्यायः । ११।

से आँख मिला रहे थे कि उसी समय वहाँ पहुँच कर महर्षि ने उन दोनों को देख लिया । उनके देखते ही राजा को ज्ञान उत्पन्न हो गया । विनय विनम्र होकर राजा ने उनसे उत्तम धर्म की जिज्ञासा की । ज्ञान- निपुण मुनि ने दया और धर्म का अत्यन्त पोषक वर्णन आरम्भ किया । अभयदान के समान कोई दान न कहीं है और न होगा । इसीलिए अपराधी को दण्ड प्रदान करने से पूजनीय की पूजा का फल प्राप्त होता है । गौ और ब्राह्मण से नित्य मित्रता, दंडविधान में समता, देवों की अर्चना में सत्यता, गुरु की सेवा में (इन्द्रिय) दमन, दान के सदय कोमलता और निर्दित कर्मों में संतोष करना चाहिए । इतना कहकर वे महर्षि उन्हें अपनी पुत्री प्रदान कर घर चले गये । उपरांत राजा उसके साथ किसी बरगद के मूल भाग पर शयन करने लगे । उस समय किसी राक्षस ने उनकी पत्नी को भक्षण करने के व्याज से राजा को जगाकर कहा—मुझे बलि चाहिए । 'तदनन्तर आज के सातवें दिन दान रूप में सात वर्ष का एक ब्राह्मण पुत्र मैं आपको द्वौँगा । इस प्रकार सत्य प्रतिज्ञा करके राजा अपने घर चले गये । वहाँ पहुँचकर अपने मंत्री से परामर्श करके एक ब्राह्मण को एक लक्ष का सुवर्ण प्रदानकर उसके मध्यम पुत्र का क्रय किया और राक्षस को उसी की बलि दी गई । निधन के समय उस बालक ने पहले हँसा और पश्चात् रुदन किया । उसने पहले हँसकर पीछे रुदन क्यों किया । इसे सुनकर राजा ने वैताल से कहा—द्विज ! ज्येष्ठ पुत्र पिता के लिए और कनिष्ठ (छोटा) पुत्र माता को प्रिय होता है, ऐसा जानकर वह मध्यम (मझला) पुत्र राजा की शरण में गया किन्तु निर्दयी उस राजा रूपसेन को हाथ में खड़ग लिए हुए देखकर उस बालक ने अपने कल्याणार्थ हँसा और राक्षस की उदरपूर्ति के लिए मेरी शरीर जा रही है, ऐसा जानकर उसने रुदन किया । ३-१५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त । ११।

अथ विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स वैतालो नृषं प्राह पुनः कथान् । विशालनगरे रस्ये विपुलेशो महीपतिः ॥१
 तस्य ग्रामे दसद्वैश्योर्थदत्तो विपणे रतः । अनङ्गमञ्जरी कन्या तस्य जंता भनोरमा ॥२
 सुवर्णनाम्ने दैश्याय पितः दै दत्तवान्त्वयम् । कदाचित्कस्तलग्रामात्सुवर्णो द्वीपमागमत् ॥
 द्विव्यलाभाय न्यवसच्चिरं कालं स लुब्धवान् ॥३
 अनङ्गमञ्जरीगेहे दैवयोगाद्विजोत्तमः । कमलाकरनामासौ कृत्ययोगात्समागतः ॥४
 होमान्ते सुन्दरी नारी मार्जनार्थं सुता गता । दृष्ट्वा तां कामकलिदां भुमोह द्विजसत्तमः ॥५
 सुतापि मदघृणक्षी विप्राय समयं ददौ । निशीथे तम उद्भूते त्वं मां प्राप्य सुखी भव ॥६
 इति श्रुत्वा द्विजो वाक्यं तस्या ध्यानं तदाकरोत् । काभग्निना चिरं तप्तः सुष्वाप परमासने ॥७
 अर्द्धरात्रे तु सा नारी द्विजागमनतत्परा । मार्गमन्वेषमाणा सा प्रियस्य त्मरपीडिता ॥८
 नागतः स द्विजो दैवात्तदा सा भरणं गता । कमलाकर एवाशु समयान्ते समायद्यौ ॥९

अध्याय २०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इतना सुनकर वैताल ने पुनः राजा से कथा कहना आरम्भ किया । उस रमणीक विशाल नामक नगर में विपुलेश नामक राजा राज्य करता था । उस नगर में अर्थदंत नामक एक व्यापार कुशल वैश्य रहता था । उसके अनंगमञ्जरी नामक एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई । उसके पिता ने सुवर्ण नामक वैश्य के साथ उसका पाणिग्रहण सुसम्पन्न करा दिया । एक बार वह सुवर्ण नामक वैश्य ने कमल नगर से किसी द्वीप के लिए प्रस्थान किया । उस लोभी ने द्विव्य के लोभवश वहाँ चिरकाल तक निवास किया । दैव योगात् एक दिन अनंगमञ्जरी के यहाँ एक श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका नाम कमलाकर था, किसी अनुष्ठान के निमित्त आया । हवन करने के उपरांत मार्जनार्थं वह सुन्दरी वहाँ आई । काम की कली की भाँति उसे देखकर वह ब्राह्मण मोहित हो गया और उसने मुख होकर अपनी मदभरी (नशीली) आँखों से ताकती हुई उससे मिलने के लिए समय प्रदान किया । ‘इस अंधेरी रात में आधीरात के समय तुम मुझसे मिलकर अत्यन्त सुख का अनुभव करो’ इसे सुनकर वह ब्राह्मण उसके ध्यान में निमग्न हो गया । काम की अग्नि द्वारा चिरकाल से संतप्त रहने के नाते वह परमोत्तम आसन पर निद्रा के अधीन हो गया । १-७। आधीरात के समय वह सुन्दरी काम पीडित होने के नाते उस ब्राह्मण के आगमन की प्रतीक्षा में तत्पर होकर उस अपने प्रिय का मार्ग देखने लगी । दैव संयोगवश वह ब्राह्मण उस समय न आ सका, इससे उसने अपने प्राण का परित्याग कर लिया । पश्चात् कमलाकर भी वहाँ पहुँचकर उस सुन्दरी का निधन

दृष्ट्वा भूत्युवशां सुन्नूं स्वयं मरणमाग्नतः । प्रभाते चार्थदत्तो वै दाह्यामास तां शुचा ॥१०
सुवर्णश्च तदागत्य विललात् प्रियां प्रति । चितायां भस्मसाद् भूत्वा स्वर्गलोके तु सा यथौ ॥११
इत्युक्त्वा स तु वैतालो नृपतिं प्राह विक्रमम् । कस्य स्नेहोऽधिकरतेषां कुतः स्वर्गपुरं यथौ ॥१२

राजोदाच

पतिः स्नेहोऽधिकस्तेषां मध्यमौ नारिविप्रकौ । द्विजलेहेन सा नारी मृता स्वर्गपुरं यथौ ॥१३
बैश्यवर्णैः सदा पूज्यां ब्राह्मणो ब्रह्मसूर्तिमान् ॥१४

द्विजोऽपि जाप्तवान्नारीं तदा स्वर्गगतिं हरिम् । हृदि कृत्वा च निधनं प्राप्तो ह्यस्मात्त्रविष्टपम् ॥१५
सुवर्णो हृदि संज्ञाय सतिप्रिया ब्रह्मवत्सला । मां त्यक्त्वा तु दिवं याता वह्निदाहप्रभावतः ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डपरप्रयये

कलियुगीयेतिहाससमुच्चये दिंशोऽध्यायः ॥२०

अथैकविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालो राजानं प्राह नन्नधीः । जयस्थलपुरे रस्ये वर्धमानो नृपोऽभवत् ॥१

होना देखकर अपना प्राणान्त कर लिया । प्रातःकाल अर्थदत्त ने उस स्त्री का दाह संस्कार किया । सुरुणा भी वहाँ आकर अपनी प्रेयसी के लिए रुदन करने लगा । किंतु वह चिता में भस्म होकर स्वर्गलोक पहुँच गई । इतना कहकर दह वैताल राजा विक्रम से कहने लगा उनमें दिसका स्नेह अधिक था । और उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति कैसे हुई । ८-१०

राजा ने कहा—उसके पति का स्नेह अधिक है और उस स्त्री तथा ब्राह्मण का स्नेह मध्यम कोटि का है । ब्राह्मण के स्नेह से उस स्त्री का निधन होने के नाते उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई क्योंकि वैश्यों को सदैव ब्रह्मपूर्ति ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए, एवं वह ब्राह्मण भी उस स्त्री की प्राप्ति नहीं कर सका उसने स्वर्गाधिनायक विष्णु का ध्यान करते हुए अपना निधन किया था अतः उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई । तथा सुवर्ण भी अपने हृदय में यही समझा कि भेरी प्रिया ब्राह्मण सेविका थी इसीलिए वह मेरा त्याग कर अग्नि दाह के प्रभाव से स्वर्ग चली गई । ११-१६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीयेतिहाससमुच्चय वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त । २०।

अध्याय २१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इतना कहने पर उस वैताल ने विनम्र होकर राजा से कहा—जयस्थल नगर में

तस्य ग्रामेऽवसद्विपो वेदवेदाङ्गपारगः । विष्णुस्वामीति विख्यातो राधाकृष्णपरायणः ॥२
चत्वारश्चात्मजास्तस्य चतुर्भागनरायणः । द्यूतदासर्मा च कुलटो विषयी नास्तिकः श्रुतः ॥३
कदाचिद्दैवयोरेन निर्धनत्वं च ते गताः । पितरं विष्णुशसर्णं नेत्रुस्ते दिनशान्विताः ॥४
ऊरू रमा कथं नष्टा तद्वद्दस्व पितः प्रिय । पितोवाच तु तच्छ्रुत्वा द्यूतकर्मनिशामय ॥५
द्यूतो धनव्ययकरः पापदूलो महादत्तः । व्यभिचारस्तथा चौर्यं निर्दयत्वमतो भवेत् ॥

द्यूतकर्मनभावेण त्वदीयद्व्यसंक्षयः ॥६
धनोपायेन भोः पित्रोर्वाक्यं कुरु मर्ति प्रति । तीर्थव्रतप्रभावेण त्वनापं संक्षयं द्वजेत् ॥७
हे पुत्र कुलट त्वं वै वेश्यासङ्गं महाशुभम् । त्यक्त्वा ब्रह्मपरो भूत्वा ब्रह्मचर्यं मर्ति कुरु ॥८
विषयिन्मांसमदिरे नित्यपापविवर्धके । अतः प्राप्त्यति चौर्यत्वमतो वै निरयस्तथा ॥९
तस्मात्त्वं प्रभुभीशानं विष्णुं जिष्णुं जगत्पतिम् । निवेद्य सर्वथा द्रव्यं भुज्जीथा दाग्यतः स्वयम् ॥१०
नास्तिकत्वं देवनिन्दां परित्यज्य मर्ति कुरु । आत्मा सर्वाभ्यो नित्यमात्मशक्तिश्च चण्डिका ॥११
आत्मनोऽङ्गनि देवाश्च सर्वजीवगुहाशायाः । ताङ्गात्वा पूजनं तेषां कुरु त्वं पापशान्तये ॥१२
इति ते वचनं श्रुत्वा गतास्तीर्थान्तरं प्रति । शिवमाराधयामासुविद्यार्थं सर्वरूपिणम् ॥१३
वर्षान्ते च महादेवो विद्यां सञ्जीवनों ददौ । ते प्राप्य वनमागत्य परीक्षार्थं समुद्यताः ॥१४

वर्धमान नामक राजा हुआ । उसकी राजधानी में विष्णु स्वामी नामक ब्राह्मण रहता था, जो वेदवेदाङ्ग निष्णात एवं राधाकृष्ण का उपासक था । उस ब्राह्मण के चार पुत्र चार प्रकार के कर्म करने वाले थे—जुआड़ी, कुलमर्यादानाशक, विषयी (व्यभिचारी) एवं नास्तिक थे । दैवात् वै सब निर्धन हो गये । पश्चात् अपने पिता विष्णु शर्मा के पास पहुँचकर विनयावनत होकर उन लोगों ने कहा—प्रियपिता ! हम लोगों की लक्ष्मी नष्ट कैसे हो गई । उनके पिता ने कहा—सुनो ! जुआ खेलने से धन नष्ट हो गया है । द्यूतक्रीडा धन का नाशक, पाप का मूल एवं महाखल बताया गया है । उसी से उसका कर्ता व्यभिचारी, चोर तथा निर्दयी होता है । जूआ खेलने के नाते तुम्हारा धन नष्ट हो गया है, अतः धनोपार्जन के लिए हमारी बातें स्वीकार करो । तीर्थयात्रा और ब्रह्मानुष्ठान से तुम्हारे पाप नष्ट हो जायेगे । १-७। और पुत्र महाअशुभ वेश्या का साथ करके कुल की मर्यादा का नाश करना उचित नहीं । उसके त्याग पूर्वक ब्रह्म के ध्यान करने के लिए ब्रह्मचारी रहना स्वीकार करो । विषयी के लिए उन्होंने कहा । नित्य पापवर्द्धक उस मांस मदिरा का सेवन करने से वह चोर एवं नरकगामी होता है, अतः तुम्हें उस प्रभु को जो ईशान, विष्णु, जपनशील एवं जगत्पति हैं को अर्पित करके पश्चात् उस द्रव्य का उपभोग मौन होकर करना चाहिए । उस नास्तिक से उन्होंने कहा—तुम देवों की निन्दा का परित्याग करो, यह आत्मा निर्भय, एवं नित्य है, और आत्मा की शक्ति चण्डिका हैं एवं इस आत्मा के सम्पूर्ण जीवों के निवासभूत देवगण, अंग हैं, ऐसा जानकर अपनी पाप शान्ति के लिए उन लोगों की उपासना करो । इन बातों को सुनकर वै सब तीर्थ यात्रा के लिए प्रस्तुत हो गये । वहाँ जाकर विद्याध्ययन के लिए सर्वरूपी शिव जी की आराधना करने लगे । ८-१३। एक वर्ष के उपरांत महादेव जी ने उन्हें संजीवनी विद्या प्रदान किया । पश्चात् उन लोगों ने उस विद्या की परीक्षा के निमित्त किसी मृतक वाघ की अस्थियों को एकत्र करके उस पर उस मंत्र से

मृतव्याघ्रास्थिति श्रेष्ठं मन्त्रपूताम्बु चाक्षिपत् । तेन मन्त्रप्रभावेण पञ्जरत्वमुपागतम् ॥१५
तस्योपर्येव कुलटो मन्त्रपूतं पयोऽक्षिपत् । घनमांसं च रुधिरं तेन मन्त्रेण चाभवत् ॥१६
विषयी चाक्षिपच्चैव तस्योपरि जलं शुभम् । तेन मन्त्रप्रभावेण त्वक्प्राणत्वमुपागतम् ॥१७
सुप्तं व्याघ्रं च संज्ञाय नास्तिकस्तु जलं ददौ । मन्त्रेण बोधितो व्याघ्रस्तांश्च निप्रानखादयत् ॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स तु वैतालो राजान्मिदमद्वीत । राजन्मूर्खो हि कस्तेषां श्रुत्वा राजाब्रवीदिदम् ॥१९
बोधितो ऐन स व्याघ्रः स मूर्खस्त्वधिको मतः । इति श्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वैतालः पुनरब्रवीत् ॥२०

इति श्रीशविष्णे महायुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्च्य एकविंशोऽध्यायः । २१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्च्यवर्णनम्

वैताल उवाच

भोराजन्निबल्वतीप्रामे गङ्गायामुनमध्यगे । अहं पूर्वभवे चासं क्षत्रसिंहो महीपतिः ॥१

अभिमन्त्रित जल का प्रक्षेप किया : उस मंत्र के प्रभाव से उसका पांजर (जंघे) उत्पन्न होकर स्वस्थ्य हो गये । उसके ऊपर उस कुलटे ने पुनः अभिमन्त्रित जल का प्रक्षेप किया जिससे उसमें दृढमांस और रक्त संचार होने लगा । पुनः उस विषयी ने उसके ऊपर जल का प्रक्षेप किया जिससे उसमें उस मंत्र के प्रभाव से ऊपरी चर्म और भीतरी प्राण वायु प्रविष्ट हो गया । उस शयन किये हुए बाथ को देखकर उस नास्तिक ने उसके ऊपर जल का प्रक्षेप किया । जिससे उसी समय मंत्र द्वारा चेतना प्राप्त कर उस बाथ ने उन्हें भक्षित कर लिया । १५-१८

सूत जी बोले—इतना कहकर वैताल ने राजा से कहा—राजन् ! उनमें कौन मूर्ख था इसे सुनकर राजा ने कहा—जिसने उसे चेतना प्रदान की, वही सबसे अधिक मूर्ख था । यह सुनकर उस द्विजश्रेष्ठ वैताल ने पुनः कहा । १९-२०

श्रीभविष्यमहायुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्च्यवर्णन
नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त । २१

अध्याय २२

कलियुगीय इतिहाससमुच्च्य का वर्णन

वैताल बोले—राजन् ! गंगा-यमुना के मध्य प्रदेश में बिल्वती नामक गाँव है । जन्मान्तर में मैं

तस्य ग्रामेऽवसद्विश्वो वेदवेदाङ्गपारगः । शम्भुदत्त इति ख्यातो रुद्रभक्तिपरायणः ॥२
 उभकौ तमयौ तस्य सर्वविद्याविशारदौ । विष्णुभक्तः स्मृतो ज्येष्ठो नाम्ना लीलाधरो बली ॥३
 शास्त्रोऽभवतदनुजो मोहनो नाम निश्चुतः ॥३
 कदाचित्क्षत्रिंशहस्तु यज्ञार्थी यज्ञहेतवे । शम्भुदत्तं समाहूय समुत्तं धर्मकोविदम् ॥४
 स्वयं च कारयामास छागमेधं सुप्रियन् ॥४
 शम्भुदत्तस्तु वृद्धात्मा शिवभक्तिपरायणः । चतुश्चक्रांश्च संस्थाप्य कलशं कार्यसिद्धिदन् ॥५
 हृष्टैः सुसंस्कृतै रम्यैश्चकार हवने मुदा । छागमाहूय विधिवत्पूजयामास भूपतिः ॥६
 लीलाधरस्तु तं दृष्ट्वा छागं च मरणेन्मुखम् । दयालुर्वैष्णवो धीमानब्रवीद्वचनं रुषा ॥७
 दाशणं नरकं योग्यमनया जीवहिंसया । सर्वेषो भगवान्विष्णुर्हिंसायज्ञेन दुष्प्रति ॥८
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य ज्येष्ठबन्धौश्च मोहनः । मृदुपूर्वं जहासोच्चर्वचनं प्राह नम्नधीः ॥९
 पुरा सत्ययुगे भ्रातर्ब्रह्मणा यज्ञतत्परा । अजेनैव हि यष्टव्यमिति ज्ञात्वा परां श्रुतिम् ॥१०
 तिलःधिकमजं मत्वा हृष्टे ते तु मनो दधुः । तदा शक्नादयो देवा वह्निमध्ये समागताः ॥११
 ऊचुस्ते मधुरं वाक्यं त्वन्मतं निष्फलप्रदम् । अजश्छागः स्मृतो वेदस्तेन यष्टव्यमन्तरम् ॥१२
 श्रुत्वेति वचनं तेषां विस्मिता मुनयोऽभवन् । एतस्मिन्नन्तरे तत्र पितृयोनिरमावसुः ॥१३
 विमानं परमारुह्य मुनीन्प्रोवाच निर्भयः । छागमेधेन यष्टव्यं सुराणां तृप्तिहेतवे ॥१४

वहाँ का क्षत्रिसिंह नामक राजा था । उसी गाँव में शम्भुदत्त नामक ब्राह्मण रहता था, जो वेदवेदांगवेत्ता एवं रुद्र की उपासना करता था । उसके दो पुत्र थे, जो सभी विद्याओं में कुशल थे । ज्येष्ठ का नाम लीलाधर था, जो बली एवं विष्णु की उपासना करता था और कनिष्ठ का नाम मोहन था जिसे शक्ति का उपासक बताया गया है । एक बार राजा क्षत्रिसिंह ने यज्ञार्थी उस धर्म निपुण शम्भुदत्त को उसके पुत्र के समेत बुलाया । और स्वयं देवप्रिय उस छागमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया । १-४। शिवभक्त एवं वृद्ध शम्भुदत्त ने प्रसन्नतापूर्वक चार चक्र का निर्माण करके उसी पर कार्यसिद्धिप्रद कलशों के स्थापन करके उस रमणीक एवं सुसंस्कृत हृष्ट द्वारा हवन कार्य सुसम्पन्न किया । राजा ने उस छाग (बकरी) को मंगाकार सविधान उसकी पूजा थी । दयालु, लीलाधर ने जो विष्णु के उपासक एक एवं परम बुद्धिमान थे, उस छाग को मरणोन्मुख देखकर रोषपूर्ण वाणी से कहा—इस जीवहिंसा द्वारा भीषण नरक की प्राप्ति होती है, क्योंकि सर्वेष भगवान् विष्णु हिंसा यज्ञ से अप्रसन्न होते हैं । इस प्रकार अपने ज्येष्ठ भ्राता की बात सुनकर मोहन ने पहले तो मन्दमुसुकान किया पश्चात् नम्रता पूर्वक ऊचे स्वर से कहा—भ्राता ! पहले सत्ययुग में यज्ञानुष्ठान करने वाले ब्राह्मणों ने ‘छागमेध से ही यज्ञ सुसम्पन्न करना चाहिए’ इस श्रुति को उत्तम समझकर और तिल से अधिक अज का महत्व स्वीकार करके उसी द्वारा हवन को आरम्भ करना निश्चय किया । उस समय अग्निकुण्ड में शक्नादि समस्त देवगण उपस्थित होकर मधुरवाणी से कहने लगे कि तुम्हारा सिद्धान्त निष्फल प्रद है क्योंकि अज छाग को वेद में बताया गया है । ५-१२। अतः उसी छाग द्वारा ही यज्ञ करना थेयस्कर होगा । उनकी ऐसी बातें सुनकर महर्षियों को महान् आश्चर्य हुआ । उसी बीच पितृयोनि में उत्पन्न अमावसु ने उत्तम

इति श्रुत्वा च चस्तस्य तथः कृत्वा शिवं युः । तस्मात्वं च मया सार्द्धं यज्ञं कुरु महामते ॥१५
 इति श्रुत्वा वचो घोरं लीलाधर उदारदीः । मोहनं प्राह् धर्मात्मा यज्ञस्त्रेतायुगेऽभवत् ॥१६
 रजोगुणमयो लोकस्वेताणां सम्बूद्ध ह । हिंसा सत्ययुगे नासीद्वर्नस्तत्र चतुष्पदः ॥१७
 हव्येन तर्पिता देवा न मांसै रक्तसम्भवैः । इति श्रुत्वा क्षत्रिंसहस्त्यक्त्वा छागं भयातुरम् ॥१८
 फलाद्यैः कारयमास तदा पूर्णाहुतीर्णपृ । एतस्मिन्नन्तरे देवी तामसी क्रोधमूर्च्छिता ॥
 नगर दाहयामास नरनारीसमन्वितम् ॥१९

महामत्यप्रभावेण शम्भुदत्तः शिवप्रियः । स भूत्वा च भहोत्सादो त्यक्त्वा देहं दिवं यथौ ॥२०
 तदा लीलाधरो वित्रो दशपुत्रोपजीवकः । बालानध्यापयामास ग्रामे पद्मयुरे शुभे ॥२१
 क्षत्रिंसहस्तु नृपतिर्मोहनान्तिकमाययौ । प्रसादं कारयामास देवमादुरुग्रहम् ॥२२

मोहन उवाच

बीजसन्दर्जपाद्ब्रह्म ब्राह्मीं शक्तिमवाप्तवान् । तदम्बायै नमस्तुभ्यं महात्मीरायै नमो नमः ॥२३
 जप्त्वा सप्तशतीं विजुर्वैष्णवीं शक्तिमाप्तवान् । तदम्बायै नमस्तुभ्यं महालक्ष्यै नमो नमः ॥२४
 प्रणदास्त्तनया यस्यास्तुरीयपुरुषप्रिया । तदम्बायै नमस्तुभ्यं प्रणवायै नमो नमः ॥२५
 यथा दृश्यमिदं जातं यथा वै पाल्यते जगत् । यस्या देहे स्थितं विश्वं तदम्बायै नमो नमः ॥२६

विमान पर बैठकर उन मुनियों से कहा—देवताओं की तृप्ति के लिए छागमेघ द्वारा ही यज्ञारम्भ करना चाहिए । इसे सुनकर उन्होंने वैसा ही उसे सुसम्पन्न करके कल्याण की प्राप्ति की अतः महामते ! मेरे साथ आप भी इस यज्ञ को सुसम्पन्न करें । इस घोरयाणी को सुनकर उदारचेता एवं धर्मिक लीलाधर ने मोहन से कहा—वह यज्ञ त्रेतायुग में हुआ है क्योंकि त्रेतायुग में रजोगुण प्रधान (जीव) होते हैं और सत्ययुग में धर्म के चार चरण वर्तमान रहने के नाते उसमें हिंसा नहीं होती है । देवगण द्वय द्वारा तृप्त होते हैं न कि मांस और रुधिर से । इसे सुनकर भयभीत होकर क्षत्रिंसह ने उस छाग के त्यागपूर्वक फलों आदि से पूर्णाहुति प्रदान की । नृप ! उस समय तामसी देवी ने कुद्ध होकर नर-नारी समेत उस नगर को भस्म कर दिया । महामाया के प्रभाव से शिवप्रिय शम्भुदत्त महा उन्मादी की अवस्था में देह का त्याग कर देवलोक चले गये । उस लीलाधर ब्राह्मण ने पद्मपुर नामक नगर में विद्यार्थियों के अध्यापन द्वारा दश पुत्रों की जीविका का निर्वाह करना आरम्भ किया । और राजा क्षत्रिंसह ने मोहन के समीप पहुँचकर देवमाता के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए उन्हें प्रसन्न किया । १३-२२

मोहन ने कहा—ब्रह्मा ने बीज मन्त्र का जप करके ही अपनी वाहनी शक्ति की प्राप्ति की है अतः अम्बा को नमस्कार है उस महापराक्रमशालिनी को बार-बार नमस्कार है । विष्णु ने सप्तशती की आराधना करके वैष्णवी शक्ति की प्राप्ति की है । अतः माता को नमस्कार है, उस महालक्ष्मी को बार-बार नमस्कार है । २३-२४ । प्रणव जिसके पुत्र हैं और जो स्वयं तुरीय (चौथे) पुरुष की जो प्रेयसी है, उस माता को नमस्कार है, उस प्रणवरूपा को बार-बार नमस्कार है । जिसके द्वारा यह समस्त जगत् दृष्टिगोचर हो रहा है और इसका पालन-पोदण हो रहा है तथा जिसकी देह में यह विश्व स्थित है, उस अम्बा को

शची सिद्धिस्तथा मृत्युः प्रभा गीर्वाणसैनिकाः । स्वाहा च निर्झृती रांत्रंकृद्धिभृत्स्त्वदुद्ध्रवा ॥

लोकपालप्रिया त्वं हि लोकमातर्नम्ने नमः ॥२७

तृष्णा तृप्ती रत्तन्मीतिर्हिंसा क्षांतिर्महिर्गतिः । निन्दा स्तुतिस्तथेऽर्था च लज्जा त्वं हि नमो नमः ॥२८

इत्यष्टकप्रभावेण क्षत्रियसंहो महीपतिः । शिवलोकं गतः साधुर्वैतालत्वमवाप्तवान् ॥२९

तस्मात्त्वं विद्वनादित्य भज दुर्गा सनातनीम् । शिवालया त्वं प्राप्तस्त्वत्समीपे महीपते ॥३०

प्रश्नोत्तरणे भूपाल मया त्वं सम्परीक्षितः । भुजयोस्ते स्थितिर्मे स्याज्जहि सर्वरिपूनभुवि ॥३१

दस्युनष्टा: पुरीः सर्वा: क्षेत्राणि विविधानि च । शास्त्रमानेन संस्थाप्य समयं कुरु जो नृप ॥३२

यो नृपः सर्वतीर्थानि पुनरुद्धारयिष्यति । स हि मत्स्थापितं संवद्विपरीतं करिष्यति ॥३३

विक्रमाल्यानकालोऽयं पुनर्धर्मं करोति हि । द्वादशाब्दशतं वर्षं द्वापरो हि प्रवर्तते ॥३४

तदन्ते भुवि कृष्णांशो भविष्यति महाबली । कलेरुद्धरणार्थाय म्लेच्छवंशविवृद्धये ॥३५

सताद्या मुनयः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । विशालायां समागत्य चक्तीर्थनिवासिनः ॥

भविष्यन्ति महाराज पुराणश्वरवेण रतः ॥३६

इत्युक्त्वा स तु वैतालस्तत्रैवान्तरधीयत । नृपतिर्विक्रमादित्यः परमानन्दमाप्तवान् ॥३७

तस्माद्यूयं मुनिश्रेष्ठा ज्ञात्वा सन्ध्यां समागताम् । शिवं भजत सर्वेशं ध्याननिष्ठासमन्विताः ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनाम द्वाविंशोऽध्यायः । २२

बार-बार नमस्कार है । इन्द्राणी, सिद्धि, मृत्यु, प्रभा, कातिकेय, स्वाहा, राक्षस, रात्रि, ऋद्धि, और भुक्ति तुम्हीं से उत्पन्न है, तुम्हीं लोकपाल की प्रिया हो, अतः लोकमाता को बार-बार नमस्कार है । दृष्णा, तृप्ति, रति, नीति, हिसा, क्षांति (त्याग), मति, गति, निन्दास्तुति ईर्ष्या एवं लज्जा रूप तुम्हें बार-बार नमस्कार है । इस अष्टक (स्तुति) के प्रभाव से राजा क्षत्रिय सिंह ने शिव लोक की प्राप्ति की । वही मैं वैताल के रूप में आपकी सेवा के लिए उपस्थित हूँ, इसलिए विक्रमादित्य ! सदैव वर्तमान रहने वाली श्री दुर्गा जी की आराधना करो । महीपते ! मैं भगवान् शंकर की आज्ञा से थहाँ आया हूँ ! राजन् ! इस प्रश्नोत्तर द्वारा मैंने आप की परीक्षा की है । तुम्हारी दोनों भुजाओं में मेरी स्थिति रहेगी । अतः इस भूतल पर स्थित अपने शत्रुओं का नाश करो । राजन् ! अब दस्यु गण नष्ट हो गये हैं, अतः समस्त पुरी, एवं भाँति-भाँति के क्षेत्रों का शास्त्र प्रमाण द्वारा संस्थापन करो । जो राजा सम्पूर्ण तीर्थों का पुनरुद्धार करेगा, वह मेरे द्वारा स्थापित संवत् के प्रतिकूल कार्य करेगा । विक्रम का स्वातिप्राप्त काल द्वारा पुनः धर्म प्रचार प्रारम्भ होगा । बारह सौ वर्ष द्वापर का शेष समय है, इसके अन्त समय में महाबली कृष्ण का अंश उत्पन्न होगा जिससे कलि का उद्धार और म्लेच्छ वंशों की वृद्धि होगी । महाराज ! नैमिषारण्य निवासी सूत आदि महर्षि वृन्द विशालापुरी में पहुँचकर चक्रतीर्थ के निवासी होकर पुराणश्वरवण में निमग्न रहेंगे । इतनां कहकर वह वैताल उसी स्थान से अन्तर्हित हो गया और राजा विक्रमादित्य को परमानंद की प्राप्ति हुई । इसलिए श्रेष्ठ मुनिवृन्द ! संध्या समय की उपस्थिति जानकर आप लोग ध्याननिष्ठ होकर सर्वाधिक शिव जी की आराधना कीजिये । २५-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन

नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त । २२।

अथ त्रयोर्विशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तु मुनदे विशालानगरीस्थिताः । ऋत्वा केदारकुण्डे ते मनस्तापूजयच्छन्म् ॥१
समाधिनिष्ठास्ते सर्वे वर्षमेकं व्यतीतयन् ॥२
एतस्मिन्नन्तरे राजा विक्रमादित्यभूपतिः । नत्वा मुलीन्समाधिस्थानस्तुज्ञाद परदर गिरा ॥३
जषित्वा ते तु मुनयः सूतं गत्वाऽब्रुवन्निदन् । सोऽयं राजा समाधतो यस्यैवं वर्णिता कथा ॥४
वाजिमेधं च नृपते: कारयामस्त्वदाज्ञया । भवान्हि चक्रतीर्थं च स्थित्वा ध्यानपरो भवेत् ॥५
तथेत्युक्त्वा तु सूतस्तैः सार्थं च पुनरागमत् । विधिना कारयामास ह्यमेधं महामखम् ॥६
पूर्वे तु कपिलस्थानं दक्षिणे सेतुबन्धनम् । पश्चिमे सिन्धुनद्यन्तं चोत्तरे बद्रीवनम् ॥७
हयो जगाम तरसा ततः क्षिप्रां नदीं गतः । त्यक्त्वा कलेवरं वह्नौ स्वर्गलोकमतो यदौ ॥८
नृपयज्ञे मुराः सर्वे सप्तनीकाः समागताः । चन्द्रमास्तत्र नायातो भूपतिविमना अभूत् ॥९
यज्ञान्ते विविधं दानं दत्त्वा वैतालसंयुतः । चन्द्रलोकं गतो राजा चन्द्रमाः मुखितोऽभवत् ॥१०
भोभो राजन्महाभाग कलौ प्राप्ते भयङ्करे । मद्गतिर्भूतले नास्ति तस्मान्नाद्यामि तेऽन्तिकम् ॥११

अध्याय २३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

व्यास जी बोले—विशाला नगरी में स्थित महर्षि वृन्द ने इसे सुनकर केदार कुण्ड में स्नान करके शिव जी की मानसिक अर्चना प्रारम्भ की । इसी प्रकार समाधिनिष्ठ होकर एक वर्ष का समय व्यतीत किया कि उसी समय राजा विक्रमादित्य वहाँ आकर उन समाधिस्थ महर्षियों की उत्तम वाणी द्वारा स्तुति करने लगे । पश्चात् वे मुनिगण सूत जी के पास जाकर कहने लगे कि आपने जिसकी कथा का वर्णन किया है, वही राजा यहाँ आया हुआ है । यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो हम लोग राजा के अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ करायें, किन्तु, आप चक्रतीर्थ में चलकर वहाँ ध्यान करें । उसे स्वीकार कर सूत जी ने उनके साथ पुनः उसी स्थान पर आकर अश्वमेध नामक उस महायज्ञ का अनुष्ठान सविधान सुसम्पन्न कराया । १-६। पूर्व में कपिला स्थान, दक्षिण में सेतुबन्धन, पश्चिम में सिन्धु नदी, और उत्तर में बद्रिकाश्रम के जंगल तक शीघ्रता से जाकर वह अश्व क्षिप्रा नदी के तट पर पहुँच गया । वहाँ अपने कलेवर (देह) को अग्नि में डालकर स्वयं स्वर्गलोक चला गया । राजा के उस यज्ञ समारोह में सभी देवगण अपनी पत्नियों के समेत आये थे । केवल चन्द्रमा का आगमन वहाँ नहीं हुआ था, अतः अन्य मनस्क होकर राजा भाँति-भाँति के दान देने के उपरांत वैताल के साथ चन्द्रलोक में गये । उससे चन्द्रमा का सुख प्राप्त हुआ । उन्होंने कहा—राजन् ! महाभाग ! इस भीषण कलि के आगमन से पृथ्वी तल पर मेरी गति नहीं होती है, इसीलिए मैं तुम्हारे

दत्ता सुधामयं तोदं चन्दश्चान्तर्दधे पुनः । ज्ञात्वेन्द्रस्तत्र सम्प्राप्य द्विजरूपी ह्याचयत् ॥१२
 दत्तं राजा तदमृतं शकः स्वर्गमुपागतः । तेन तस्य फलं जातमायुलक्षसमं ह्यभूत् ॥१३
 तस्मिन्काले द्विजः कश्चिल्लज्यन्ते नाम विश्रुतः । तत्कलं तपसा प्राप्तः शक्तः स्वर्गृहं यदौ ॥१४
 जयन्तौ भर्तृहर्षे लक्षस्वर्णेन वर्णयन् । मुक्त्वा भर्तृहरिस्तत्र योगार्थो वनं यदौ ॥१५
 विक्रमादित्य एवास्य भुक्तदा राज्यमकण्टकम् । शतवर्षं मुदा युक्तो जगाम मरणे दिवम् ॥१६
 शौनकाद्यास्तु ऋषयो हात्वा भूपस्य इर्वर्गतिम् । गत्वा सूतं प्रणम्योचुर्धर्मं सुश्यं बदाधुना ॥१७
 तेष्यः सूतः पुराणानि श्रावयमात्त वै पुनः । शतवर्षं पञ्चलक्षश्चोकमध्याप्यन्मुदा ॥१८
 ते श्रुत्वा सुनयः सर्वे जग्मुर्हृष्टाः स्वभालयम् ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वेण चतुर्युगखण्डापरपदं दि
 कलियुगीदेतिहाससमुच्चयोनाम ऋयोविशेषध्यायः । २३

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

व्यास उवाच

एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः । पृच्छन्ति विनयेनैव सूतं पौराणिकं खनु ॥१

समीप न आ सका । पश्चात् अमृतमय जल प्रदान कर चन्द्रमा वहां अन्तर्हित हो गये । यह बात इन्द्र को विदित द्वई । इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण कर उसकी याचना को । राजा ने उसे इन्द्र को दे दिया । अनन्तर इन्द्र स्वर्ग चले आये । उसे इन्द्र को प्रदान करने के नाते राजा की आयु लक्ष के समान हो गई । उस समय जयन्त नामक किसी ब्राह्मण ने तप द्वारा इन्द्र से उसी फल की प्राप्ति करके स्वर्ग को प्रस्थान किया । जयन्त ने राजा भर्तृहरि से एक लक्ष मुद्रा ग्रहणकर उनसे उसका वर्णन किया । भर्तृहरि उसका उपभोग करके योग की तैयारी कर वन वन चले गये । पश्चात् राजा विक्रमादित्य सौ वर्ष तक उस राज्य का निष्कटं उपभोग करके स्वर्ग चले गये । शौनकादि कृषिगण ने राजा को स्वर्गीय जानकर सूत के पास जाकर प्रणाम पूर्वक उनसे कहा—इस समय मुख्य धर्म की चर्चा कीजिये । सूत जी ने पुनः उन्हें पुराणों का श्रवण कराया । उन्होंने प्रसन्नचित होकर सौ वर्ष तक पाँच लक्ष श्लोकों का उन्हें अध्ययन कराया । मुनिवृन्द उन्हें श्रवण करके हर्ष निमग्न होते हुए अपने-अपने गृह चले गये । ७-१८

श्री भविष्यमहापुराण में प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक तेईसर्वां अध्याय समाप्त । २३।

अध्याय २४

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

व्यास जो बोले—एक बार शौनक आदि कृषिगण ने नैमिषारण्य में एकत्र होकर नम्रता पूर्वक पुराणवेत्ता सूत जी से पूछा—भगवन् ! लोक के कल्याणार्थ चारों युगों में पूजनीय सेवा करने योग्य और

भगवन्नूहि लोकानां हितार्थयि चतुर्युगे । कः पूज्यः सेवितव्यश्च वाज्ञिष्ठतार्थप्रदायकः ॥२
विनायासेन वै कामं प्राप्नुयुमनिवाः शुभम् । सत्वं ब्रह्मन्वदोपायं नराणां कीर्तिकारकम् ॥३

सूत उदाच

नवाम्भोजनेत्रं रमाकेलिपात्रं चतुर्बहुचामीकराचाराग्रात्रम् ।

जगत्त्राणहेतुं रिपौ धूम्रकेतुं सदा सत्यनाराथणं स्तौभि देवम् ॥४

श्रीरामं सहलक्षणं सकरुणं सीतान्वितं सात्त्विकं । वैदेहीमुखपद्मलुध्मधुष्पं पौलस्त्यसंहारकम् ।

वन्दे वन्द्यपदाम्बुजं सुरवरं भक्तानुकर्षाकरं । शकुनेन हनूमतः च भरतनासेवितं राघवम् ॥५

कलिकलुषविनाशं कामसिद्धिप्रकाशं सुरवरमुखभासं शूसुरेण प्रकाशम् ।

विवृद्धबुधविलासं साधुचर्याविशेषं नृपतिवरचरित्रं भोः शृणुष्वेतिहासम् ॥६

एकदा नारदो योगी परानुग्रहवाञ्छयत । पर्यटन्विविधाल्लोकान्मत्यलोकमुपगमत् ॥७

तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्निनान्लेशसरमन्वितान् । आधिव्याधियुतानार्तान्पच्यमानान्स्वर्कर्मिनः ॥८

केनोपायेत चैतेषां दुःखनाशो भवेदध्ववम् । इति सञ्चिन्त्य मनसः विष्णुलोकं गतस्तदा ॥९

तत्र नारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम् । शंखचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥१०

प्रसन्नवदनं शान्तं सनकाद्यैरभिष्टुतम् । दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥११

अभीष्ट फल प्रदान करने वाला कौन है, जिससे मनुष्यों की शुभ कामनाएँ अनायास सफल हो सकें । वह्यन् ! मनुष्यों के कीर्तिप्रद उस सत्य उपाय को बतलाने की कृपा कीजिये । १-३

सूत जी बोले—मैं उस सत्यनारायण देव की सदैव आराधना करता हूँ, जिसका नूतन कमल के समान नेत्र, स्वयं लक्ष्मी की क्रीड़ा का पात्र, चार भुजाएँ, सुवर्ण के समान सौन्दर्य पूर्ण शरीर, जगत् की रक्षा का मुख्य हेतु और शत्रुओं के लिए (विनाश सूचक) धूम्रकेतु, रूप है । लक्षण समेत भी शामचन्द्र की मैं वन्दना करता हूँ, जो कारुणिक, सीता सहित, सान्विक, जानकी के मुखकमल के लोभी भ्रमर, पुलस्त्यवंश रावणादि के संहारक, वंदनीय चरणकमल, देवथेष्ट, भक्तों पर अनुग्रह करने वाले, एवं शकुन, हनुमान और भरत से सुसेवित तथा रथकुल में उत्पन्न हैं । उस राजा का श्रेष्ठ चरित सुनो, जो कलिमलनाशक, कामनाओं की मिद्दि करने वाला, श्रेष्ठ देवों के मुख का प्रकाणक, व्राह्मण द्वारा प्रकाणित, देवों एवं विद्वानों का विलास, साधुओं द्वारा विणेण महत्व प्राप्त एवं इतिहास रूप है । ४-६। एक बार नारद योगी ने दूसरों पर कृपा करने की इच्छा से सभी लोकों में विचरते हुए इस मनुष्यलोक में आगमन किया । यहाँ सभी जन-वर्ग को देखकर जो अनेक भाँति के दुखों से दुखी, मानसिक, शारीरिक रोगों से प्रस्त, दरिद्रता से पीड़ित, और अपने कर्मों से परिपक्व हो रहे थे, किस उपायं द्वारा इनके दुख नष्ट होंगे डसका अपने मन में विचार करते हुए वे उस समय विष्णु के लोक चले गये । वहाँ नारायण देव को देखकर, जो शुक्लवर्ण, चार भुजाएँ क्रमशः शंख, चक्र, गदा, पद्म उनमें धारण किये, वनमाला से सुशोभित, प्रसन्नमुख, शांत, एवं सनकादि साधुओं से स्तुत हो गहे थे, ऐसे उन देवाधिदेव की स्तुति करना प्रारम्भ किया । ७-१

नारद उवाच

नमो वाऽमनसातीतरूपायानन्तशक्तये । नादिमध्यान्तदेवाय निर्गुणाय महात्मने ॥१२
सर्वेषाभादिभूताय लोकानामुपकारिणे । अपारपरिमाणाय तपोधाम्ने नमो नमः ॥१३

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स्तुतिं विष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत् । किमर्थमागतोऽसि त्वं किं ते मनसि वर्तते ॥१४
कथयस्त महाभाग तत्सर्वं कथयामि ते । श्रुत्वा तु नारदो विष्णुमुक्तवान्सर्वकारणम् ॥१५
नारदस्य वचः श्रुत्वा साधुसाधित्वपूजयत् । शृणु नारद वक्ष्यामि ऋतमेकं सनातनम् ॥१६
कृते त्रेतायुगे विष्णुद्वापरेऽनेकरूपधृक् । कलौ प्रत्यक्षफलदः सत्यनारायणो विभुः ॥१७
चतुष्पादो हि धर्मश्च तस्य सत्यं प्रसाधनम् । सत्येन धार्दते लोकः सत्ये ऋग्न प्रतिष्ठितम् ॥१८
सत्यनारायणव्रतमतः शेष्ठतमं स्मृतम् । इति श्रुत्वा हरेवक्ष्यं नारदः पुनरब्रवीत् ॥१९
किं ज्ञाते किं विधानं च सत्यनारायणार्चने । तत्सर्वं कृपया देव कथयस्व कृपानिधे ॥२०

भगवानुवाच

नारायणार्चने वक्तुं फलं नालं चतुर्मुखः । शृणु संक्षेपतो हेतत्कथयामि तवाग्रतः ॥२१
निर्धनोऽपि धनाद्यचः स्यादपुत्रः पुत्रवान्भवेत् । भ्रष्ट राज्यो लभेद्राज्यमन्धोऽपि स्यात्सुलोद्धनः ॥२२
मुच्यते बन्धनाद्वद्धो निर्भयः स्याद्द्रूयातुरः । मनसा कामयेद्यं यं लभते तं विधानतः ॥२३

नारद बोले—वाणी एवं मन से अगोचर रूप वाले उस अनंत शक्ति वाले देव को नमस्कार है, जो आर्द, मध्य, एवं अन्तहीन, निर्गुण, तथा महात्मा है । और सभी के आदि काल में रहने वाला, लोक का उपकारक एवं अजेय परिमाण वाला है उस तपोनिधि को बार-बार नमस्कार है । १२-१३

सूतजी बोले—इस प्रकार की स्तुति सुनकर विष्णु ने नारद से कहा—महाभाग ! आपका आगमन कैसे हुआ, और आप क्या चाहते हैं, सभी बातें बताइये । मैं उन्हें (उनकी प्राप्ति के कारण समेत) तुम्हें बताऊँगा । इसे सुनकर नारद ने विष्णु जी से उन समस्त कारणों को बताया । नारद की बातें सुनकर उन्होंने ‘साधु-साधु’ कहकर उनका अधिक सम्मान प्रकट किया और कहा—नारद ! मैं एक सनातन (अविनाशी) व्रत की व्याख्या तुम्हें बताऊँगा जो सत्य, त्रेतायुग तथा द्वापर में अनेक रूपधारी विष्णु और कलियुग में प्रत्यक्ष फलप्रदायक वही व्यापक सत्यनारायण रूप हैं । धर्म के चार चरण बताये गये हैं, किन्तु उसका मुख्य साधन सत्य है क्योंकि सत्य के द्वारा लोक का धारण होता है और उसी सत्य में ब्रह्मप्रतिष्ठित है, अतः उस सत्यनारायण का व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ है । भगवान् की ऐसी बातें सुनकर नारद पुनः बोले—देव, कृपानिधे ! सत्यनारायण देव की पूजा करने में उसका फल एवं विधान बताने की कृपा कीजिये । १४-२०

श्रीभगवान् बोले—नारायण की पूजा करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उसका वर्णन करने में चार मुखवाले ब्रह्मा भी असमर्थ हैं । इसलिए मैं तुम्हारे सम्मुख संक्षेप में उसका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! उसे सुसम्पन्न करने से निर्धन धनवान्, अपुत्री पुत्रवान्, अपहरण किये गये राज्य का लाभ, अंधे को सुन्दर नेत्र, बैंधे हुए को बंधन-मोक्ष, भयभीत-निर्भय की प्राप्ति करता है, तथा मन में उत्पन्न सभी कामनाओं की

इह जन्मनि भो विप्र भक्त्या च विधिनार्चयेत् ; लभेत्कामं हि तच्छीधं नात्र कार्या विचारणा ॥२४
 प्रातःक्षार्या शुचिर्भूत्वा दत्तधङ्गनपूर्वकम् । तुलसीमञ्जरीं धृत्वा ध्यायेत्सत्यस्थितं हरिम् ॥२५
 नारायणंसान्द्रघनावदातं चतुर्भुजं पीतामहार्हवाससम् ।

प्रसन्नवक्त्रं नवकञ्जलोचनं सनन्दनादैरुपसंवितं भजे ॥२६

करोति ते व्रतं देव सायङ्कल्पे त्वदर्चनम् । श्रुत्वा गाथां त्वदीयां हि प्रसादं ते भजाम्यहम् ॥२७
 इति सङ्कल्प्य मनसा रायंकाले प्रपूज्येत् । पञ्चभिः कलशैर्षुष्टं कदलीतोरणान्वितम् ॥२८
 शालग्रामं स्वर्णयुक्तं पूजयेदात्मसूक्तकैः । पञ्चानुतेन संस्नाप्य चन्दनादिभिरर्चयेत् ॥२९
 अँ नमो भगवते नित्यं सत्यदेवाय धीमहि । चतुःपार्थदात्रे च नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥३०
 जप्त्वेत्यष्टोत्तरशतं त्रुहुयात्तद्वारांशकम् । तर्पणं मार्जनं कुत्वा कथां श्रुत्वः हरेरिमाम् ॥३१
 दण्डश्यार्यों सत्यमुख्यां तत्प्रात्तप्रत्प्रादकम् । सम्प्रगिर्वभज्य तत्सर्वं दापदेच्छ्रेतुकाय च ॥३२
 आचार्यायादिभागं च द्वितीयं स्वकुलाय सः । श्रोतृभ्यश्च तृतीयं च चतुर्थं चात्महेतवे ॥३३
 विप्रेभ्यो भोजनं दद्यात्सवयं भुञ्जीत वाग्यतः । देवर्षेऽनेन विधिना सत्यनारायणं वर्णनम् ॥३४
 कारयेद्यदि भक्त्या च श्रद्धया च समन्वितः । व्रती कामानदाःप्रोति वाञ्छितानिह जन्मनि ॥३५
 इह जन्मकृतं कर्म परजन्मनि पद्धतेः । परजन्मकृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वदा नरैः ॥३६

सफलता प्राप्त होती है । ब्राह्मण ! इस जन्म में भक्तिसमेत सविधान उसे सुसम्पन्न करने से उसको मनोरथ की पूर्ति शीघ्र होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं । प्रातः काल दातृत्व समेत स्नान करने के उपरांत (संध्यादि कर्म से) पवित्र होकर तुलसी की मंजरी हाथ में लेकर सत्यस्थित भगवान् का ध्यान करना चाहिए—‘मैं उस नारायण देव की आराधना कर रहा हूँ, जो सधन बादलों की भाँति स्वच्छ, चारभुजाएँ, अत्यन्त उत्तम पीताम्बर, प्रसन्नमुख, नवीन कमल की भाँति नेत्र एवं सनक आदि मुनियों से सुसेवित हैं’ । २१-२६। देव ! मैं तुम्हारा व्रतानुष्ठान कर रहा हूँ, संध्या के समय में तुम्हारी पूजा करके कथा थ्रवण करूँगा और पश्चात् अन्त में आप के प्रसाद का सेवन करूँगा ।’ इस प्रकार मानसिक संकल्प करके सायंकाल में उनकी विधिवत् पूजा करना चाहिए । पाँच कलशों को सुसज्जित करके कदली (केले) के तोरण समेत आत्मसूक्तद्वारा सुवर्ण युक्त शालिग्राम की अर्चना करते हुए पंचामृत से स्नान कराकर चन्दन-चृच्छित कर देना चाहिए । ‘ओ’ भगवान् सत्यदेव का ध्यान करता हुआ मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ और चारों पदार्थ के दाता को बार-बार नमस्कार है । एकसौ आठ बार इसका जप करके इसके दशांश से हवन, तर्पण और मार्जन सुसम्पन्न करते हुए भगवान् की इस छह अद्यायवाली सत्य प्रधान पवित्र कथा का थ्रवण करना चाहिए । उपरांत उनके प्रसाद को विभक्त करके श्रोताओं आदि को देना चाहिए पहला भाग आचार्य को, दूसरे अपने बन्धु वर्ग को, तीसरा श्रोताओं को और चौथा भाग अपने लिए रखकर ब्राह्मणों को सप्रेम भोजन से सन्तुष्ट करके स्वयं भी मौन होकर भोजन करे । देवर्षि ! इस विधान द्वारा यदि श्रद्धा भक्ति समेत सत्यनारायण की पूजा सुसम्पन्न हो तो व्रत करने वाले उस मनुष्य की सभी कामनाएँ इसी जन्म में सफल हो जाती हैं । इस जन्म में किये हुए कर्मों के फल दूसरे जन्म में और दूसरे जन्म में किये गये कर्मों के फल मनुष्यों को सदैव भोगने पड़ते हैं । २७-३६। किन्तु सत्यनारायण का व्रत इसी जन्म में सभी

सत्यनारायणव्रतमिह सर्वान्कामान्ददाति हि । अद्यैव जगतीमध्ये स्थापयामि त्वदाज्ञया ॥३७
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवो नारदः स्वर्गतिं यथौ । स्वयं नारायणो देदः काश्यां पुर्या समागतः ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं
नाम चतुर्विंशोऽध्यायः । २४

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

कृपया ब्राह्मणद्वारा प्रकटीकृतवान्तवकम् । इतिहासमिमं वक्ष्ये संवादं हरिविप्रयोः ॥१
काशीपुरीति विख्याता तत्रासीद्ब्राह्मणो वरः । दीनो गृहाश्रमी नित्यं भिक्षुः पुत्रकलत्रवान् ॥२
शतानन्द इति स्यातो विष्णुव्रतपरायणः । एकदा पश्य मिक्षार्थं गच्छतस्तस्य श्रीपतिः ॥३
विनीतस्यातिशान्तस्य स ब्रह्मबाह्यणवेषेण प्रच्छ ब्राह्मणं हरिः ॥
क्व यासीति द्विजश्रेष्ठ वृत्तिः कामेन कथ्यताम् ॥४

शतानन्द उवाच

भिक्षावृत्तिरहं सौम्य कलत्रापत्यहेतवे^१ । याचितुं धनिनां द्वारि व्रजामि धनमुत्तमम् ॥५

कामनाएँ सफल करता है । अतः मैं आज ही इसकी प्रतिष्ठा संसार के मध्यभाग में करने जा रहा हूँ,
इतना कहकर विष्णुदेव अन्तर्हित हो गये और नारद ने स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया । पश्चात्
सत्यनारायणदेव का काशीपुरी में आगमन हुआ । २३-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य वर्णन
नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त । २४।

अध्याय २५

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—मैं विष्णु भगवान् और ब्राह्मण के संवाद विषयक इतिहास की चर्चा कर रहा हूँ,
जिसमें भगवान् ने ब्राह्मण द्वारा अपने स्वयं को कृपया प्रकट किया है । स्यातिप्राप्त काशीपुरी में
शतानन्द नामक एक भिक्षुक ब्राह्मण रहता था, जो दीन-हीन, गृहस्थ, पुत्र-कलत्र समेत विष्णु के व्रत का
पारायण करने वाला था । एक बार भिक्षा के लिए जाते हुए मार्ग में विनयविनम्र एवं अतिशांत उस
ब्राह्मण के सम्मुख लक्ष्मीपति भगवान् दिखायी पड़े । वृद्ध ब्राह्मण का वेष धारणकर भगवान् ने उस
ब्राह्मण से पूँछा—द्विजश्रेष्ठ ! आप अपनी जीविका के लिए कहाँ जा रहे हैं ? १-४

शतानन्द ने कहा—सौम्य ! मेरी भिक्षावृत्ति है, इसलिए अपने परिवार के पोषणार्थ मैं धनवानों के
यहाँ भिक्षा की याचना करने जा रहा हूँ । ५

नारायण उवाच

शिक्षावृत्तिस्त्वया दीर्घकालं द्विज सदा धृता । तद्रारक उपायोऽयं विशेषेण कलौ किल ॥६
ममोपदेशतो विप्र सत्यनारायणं भज । दारिद्र्यशोकशमनं सन्तापहरण हरेः ॥
चरणं शरणं याहि मोक्षदं पद्मलोचनम् ॥७
एवं सम्बोधितो विप्रो हरिणा करुणात्मना । युनः पत्रच्छ विप्रोऽसौ सत्यनारायणो हि कः ॥८

बृद्धब्राह्मण उवाच

बहुरूपः सत्यसङ्घः सर्वव्यापी निरञ्जनः । इदानीं विप्रल्येण तव प्रत्यक्षमागतः ॥९
इःखोदधिनिमग्नातां तरणिश्वरणौ हरेः । कुशलाः शरणं यान्ति नेतरे विषयात्मिकः ॥१०
आहृत्य पूजासम्भारात्निताय जगतां द्विजः अर्चयंस्त्मनुध्यायंस्त्वभेतत्प्रकटी कुरु ॥११
इति ब्रुवन्तं विप्रोऽसौ ददर्श पुरुषोत्तमम् । जलदश्यामलं चारुचतुर्बाहुं गदादिभिः ॥१२
पीताम्बरं नवाम्भोजलोचनस्मन्पूर्वकम् । वनमालामवुवातचुम्बितांघ्रिसरोरुहम् ॥१३
निशम्य पुलकाञ्जोऽसौ प्रेमपूर्णसुलोचनः । स्तूवन्गदशदया वाचा दण्डवत्पतितो शुर्चि ॥१४
प्रणमामि जगन्नाथं जगत्कारणकारकम् । अनाथनाथं शिवदं शरण्यमनधं शुचिम् ॥१५
अव्यक्तं व्यक्ततां यातं तापत्रयविमोचनम् ॥१६

नारायण बोले—ब्राह्मण ! (निर्धन होने के नाते) आप बहुत दिनों से भिक्षा की याचना ही सदैव करते आये हैं अतः इस कलियुग में इससे मुक्त होने के लिए मैं निश्चित उपाय बता रहा हूँ—विप्र ! मेरे उपदेश से आप सत्यनारायण देव की आराधना कीजिये । भगवान् का चरण दारिद्र्य एवं शोक का नाशक तथा संतापहारी है, अतः (उनकी सेवार्थ) उस मोक्षप्रद एवं कमलनेत्र वाले की शरण में अवश्य प्राप्त होना चाहिए । इस प्रकार करुणासागर भगवान् विष्णु के कहने पर वह ब्राह्मण बार-बार कहने लगा कि सत्यनारायण कौन है ॥६-८

बृद्ध ब्राह्मण बोले—जो (सत्यनारायण) अनेक रूपवाले, सत्यप्रतिज्ञ, सभी में व्यापक तथा त्रिगुण रहित हैं, वे इस समय ब्राह्मणवेष धारणकर तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हैं । भगवान् का चरण दुःखसागर में डूबने वाले प्राणियों के लिए नौका रूप है, इसलिए बुद्धिमान् पुरुष ही उनकी शरण में प्राप्त होते हैं न कि अन्य विषयाभिलाषी । विप्र ! संसार के कल्याणर्थ पूजनसामग्री एकत्र करके उसी द्वारा उनकी अर्चना एवं ध्यान करते हुए उसे विस्थापित करो । इस प्रकार कहने वाले उन पुरुषोत्तम को द्वाराह्ण ने इस भाँति देखा जिसको नवीन मेघ की भाँति श्यामल वर्ण, चारों बाहुओं में क्रमशः गदा आदि से भूषित, पीताम्बर ओढ़े, नूवीन कमल के समान नेत्र, मन्दसुसुकान, वनमाला पहने, भ्रंमरों द्वारा चरणकमल चुम्बित हो रहा है । उन्हें देखकर हसर्तिरेक से गदगद होकर प्रेमपूर्ण नेत्रों वाला वह ब्राह्मण अपनी गदगदवाणी द्वारा स्तुति करता हुआ पृथिवी में गिरकर दण्डवत् करने लगा । मैं उस जगन्नाथ को प्रणाम करता हूँ, जो जगत् के कारण, अनाथ के नाथ, कल्याणप्रद, शरणदायक, अधर्हीन, पवित्र, अव्यक्त को व्यक्त करने वाले

१. पदं लोचयति बोधयतीति 'कर्मण्यण् । पद्माधिकसुन्दरमित्यर्थः । २. उपेतमित्यर्थः ।

नमः सत्यनारायणायास्य कर्त्ते नमः शुद्धसत्त्वाय विश्वस्य भर्ते ॥

करालाय कालाय विश्वस्य हर्ते नमस्ते जगान्मङ्गलायात्ममूर्ते ॥ १७

धन्योऽस्मयद्य कृती धन्यो भवोऽद्य सफलो मम ! नाइमनोगोचरो यस्त्वं मम प्रत्यक्षमागतः ॥ १८
 दिष्टं कि वर्णयास्याहो न जाने कस्य वा फलम् । क्रियाहीनस्य मन्दस्य देहोऽयं कलदान्कृतः ॥ १९
 पूजनं च प्रकर्तव्यं लोकनाथ रमाप्ते । विधिना केन कृपया तदाज्ञापय मां विभो ॥ २०
 हरिस्तमाह मधुरं सस्तिं विश्वमोहनः : पूजायां मम विश्रेद्ध बहु नापेक्षितं धनम् ॥ २१
 अनायासेन लब्धेन श्रद्धामात्रेण मां यज : ग्राहप्रस्तोऽजामिलो वा पथाऽमूर्तसङ्कृटः ॥ २२
 विधानं शृण विप्रेन्द्र मनसा कामयेत्कलम् । पूजाराम्भृतसम्भारः पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥ २३
 गोधूमत्रूर्णं दादार्ढं सेटकादिप्रमाणतः । उग्धेन तावता युक्तं मिश्रितं शर्करादिभिः ॥ २४
 तच्चूर्णं हरये दद्याद् धृतयुक्तं हरिप्रियम् । शोदुर्घेनैव दधिना गोधृतेन समन्वितम् ॥ २५
 गङ्गाजलेन मधुना युक्तं पञ्चामृतं प्रियम् । पञ्चामृतेन संस्कार्य शालग्रामोद्भवां शिलाम् ॥ २६
 गन्धपुण्ड्रादिनैवेद्यवेद्यवादैर्मनोहरैः । धूपैर्तीर्पेश्व नैवेद्यस्ताम्बूलादिभिरर्चयेत् ॥ २७
 मिष्टान्नप्राप्नानसन्मानर्भहयैर्भोज्यैः फलस्तथा । क्रतुकालोद्भवैः पुष्ट्यैः पूजयेद्भूक्तितपरः ॥ २८
 आह्याणैः स्वजनैश्वैव वेष्टितः श्रद्धयान्वितः । त्वया सार्द्धं भम कथां शृणुयात्परमादरात् ॥ २९
 इतिहासं तथा राजो भिल्लानां वणिजोऽस्य च । कथांते प्रणमेद्भूक्त्या प्रसादं विभजेत्ततः ॥ ३०

एवं तीनों तापों के शमन करने वाले हैं । १९-१६। सत्यनारायण को नमस्कार है, इसके कर्ता को नमस्कार है, जो शुद्ध सत्त्व, विश्व का पालन-पोषण करने वाला, करालकाल की मूर्ति धारणकर संसार का अपहरण करने वाला, एवं जगत् की मांगलिक मूर्ति है। आप वाणी एवं मन से अगोचर (अप्रत्यक्ष) होते हुए भी मुझे दर्शन दिया अतः आज मैं धन्य हूँ, कृतकार्य हो गया हूँ और मेरा जन्म सार्थक हो गया। आज मैं अपने भाग्य का क्या वर्णन करूँ क्योंकि मैं नहीं जानता कि किस वाणी का यह फल मुझे आज प्राप्त हुआ कि मेरे ऐसे मंदभागी एवं अक्रमण्य की भी देह सफल हो गई। लोकनाथ, रमाप्ते ! किस विधान द्वारा आपका पूजन किया जायगा, विभो ! उसे बताने की कृपा करें। विश्व मोहन भगवान् दिष्टु ने मन्द मुसुकान करते हुए उससे कहा। विप्रेन्द्र ! मेरी पूजा में अधिक धन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अनायास जो कुछ प्राप्त हो जाये, उस धन से तथा श्रद्धालु होकर मेरी पूजा करो और उसके द्वारा ग्राहप्रस्तावज एवं अजामिल की भाँति संकट मुक्त हो जाओ। विप्रेन्द्र ! मैं उस विधान को बता रहा हूँ, सुनो ! जिसमें पूजा सामग्री एकत्रकर जिस विधान द्वारा पूजा सुसम्पन्न की जाती है। सेर के हिसाब से आधा या चौथाई भाग के गेहूँ का चूर्ण (आटा) में उतना ही दूध, धी एवं शक्कर आदि मिलाकर वह प्रिय प्रसाद भगवान् को समर्पित करना चाहिए। गौ का दूध, दही, धी, गंगाजल और शहद युक्त इस पंचामृत द्वारा उस शालग्राम मूर्तिका स्नान कराकर गंध, पुष्ट्य, नैवेद्य, धूप, दीप, एवं ताम्बूलादि से वेदमंत्रों के उच्चारण समेत उनकी अर्चना करके मिठाई, तथा भक्ष्य भोज्य में क्रतुकालीन फलों एवं पुष्पों को समर्पित कर अपने बन्धुवर्ग एवं ब्राह्मणों समेत श्रद्धा सम्पन्न होकर मेरी उस कथा का थवण करना चाहिए जिसमें राजा, भिल (लकड़ी का विक्रेता), और उस वैश्य का इतिहास वर्णित है। कथा की समाप्ति में भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणामकर प्रसाद का विभाग करना चाहिए। १७-३०।

लब्धं प्रसादं भुञ्जीत मानयन्न विचारयेत् । द्रव्यादिभिर्मे शान्तिर्भक्त्या केवलया यथा ॥३२
 विधिनानेन विप्रेन्द्रं पूजयन्ति च ये नराः । पुत्रपौत्रधनैर्युक्ता भुक्त्वा भोगाननुत्तमान् ॥३२
 अन्ते स्तन्निध्यनासाद्य मोदन्ते ते मया सह । यं यं कर्त्तव्यते कामं सुव्रती तं तमान्युयात् ॥३३
 इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्दिग्ग्रोऽपि सुखप्राप्तवान् । प्रणम्यागाद्यथादिष्टं मनसा कौतुकाकुलः ॥३४
 अद्य भैक्ष्येण लभ्नेन पूज्यो नारायणे मया ; इति निश्चित्य मनसा भिक्षार्थी नगरं गतः ॥३५
 विना देहीति वचनं लब्धवः च विपुलं धनम् । कौतुकायासमनसा जगाम निजनालयम् ॥३६
 वृत्तान्तं सर्वमाच्युयौ^१ ब्राह्मणी सान्द्यमोदत । सादरं द्रव्यसम्भारभाहृत्य भर्तुराज्यम् ॥३७
 आहृय बन्धुमिद्वाणि तथा सत्त्विध्यवर्तिनः । सत्यनारायणं देवं यज्ञाम स्वगर्णैर्वृतः ॥३८
 भक्त्या तुतोऽश भगवान्त्यनारायणः स्वयम् । कामं दित्सुः प्रादुरासोत्कथान्ते भक्त्वत्सलः ॥३९
 वत्रे विप्रोऽभिलम्पितमिहामुत्र सुखप्रदम् । भक्तिं परां भगदति तथा तत्सङ्गिनां व्रतम् ॥४०
 रथं कुञ्जरं मञ्जुलं भान्दिरं च हयं चारुं चामी करालं कृतं च :
 धनं दासदासीगणं गां महीं च लुलायाः सदुधाः हरे देहि दास्यम् ॥४१
 तथास्त्विति हरिः प्राह तत्त्वान्तर्दधे प्रभुः । विप्रोऽपि कृतकृत्योऽभूत्सर्वे लोका विसिस्मिरे ॥४२

प्राप्त प्रसाद का सम्मान करते हुए बिना विचार किये ही उसका भक्षण कर लेना चाहिए । द्रव्यादि प्रदान द्वारा मैं उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ, जितना कि केवल भक्ति द्वारा । विप्रेन्द्र ! जो मनुष्य इस विधान द्वारा मेरी पूजा करते हैं वे पुत्र, पौत्र, तथा धनों से सम्पन्न होकर उत्तम शोगों का उपभोग करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं, पश्चात् प्राण परित्याग करने पर मेरे साथ रहकर आनन्दानुभव भी करते हैं जिस प्रकार की कामनाएँ होती जाती हैं व्रत करने वाले उस मनुष्य की वे सभी कामनाएँ उत्पन्न क्रमानुसार सफल होती रहती हैं । ३१-३३ इतना कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये और उस ब्राह्मण को भी महान् सुख की प्राप्ति हुई । पश्चात् प्रणाम करके उस कौतुक में विभोर होता हुआ वह ब्राह्मण मनइच्छित दिशा की ओर चल दिया । ‘आज भिक्षा में जो कुछ प्राप्त होगा उससे मैं नारायण की पूजा करूँगा ।’ अपने मन में ऐसा निश्चय करके वह भिक्षुक ब्राह्मण नगर की ओर प्रस्थित हुआ । बिना याचना किये ही उसे अत्यन्त धन की प्राप्ति हुई, यह देखकर वह कौतुक मग्न होकर अपने घर चला आया और अपनी पत्नी से समस्त वृत्तान्त कह सुनाया । वह ब्राह्मणी उसे सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने पति की आज्ञा से उस द्रव्य के भार को ग्रहण कर अपने बांधव, मित्र, तथा पडोसी आदि को ‘आज मैं सत्यनारायण देव की पूजा करूँगी’ यह कहकर बुलवाया । उपरांत सभी के साथ भगवान् की पूजा सुसम्पन्न किया । उस भक्ति से भगवान् सत्यनारायण स्वयं प्रसन्न होकर कथा के अंत में उसकी कामनाओं की सफलता प्रदान करने के लिए वहाँ प्रादुर्भूत हुए । भगवान् भक्त्वत्सल के कहने पर उस ब्राह्मण ने कहा—भगवन् ! पहले आप लोक परलोक के सुखों को प्रदान करने वाली अपनी उस पराभक्ति को प्रदान कीजिये और उसे प्राप्त करने वाला व्रत भी । पश्चात् रथ, हाथी, सुवर्ण खचित सुन्दर महल, धन, अनेक दास-दासी, गौ, पृथिवी, दूध देने वाली भैंस और अपनी सेवा प्रदान कीजिये । ३४-४१ भगवान् नारायण उसे स्वीकार कर अन्तर्हित हो गये तथा ब्राह्मण

१. ब्राह्मणीमिति शेषः ।

प्रणम्य भुवि कायेन प्रसादं प्रापुरादरात् । स्वं स्वं धाम सेमाजगमुर्धन्यधन्येति वादिनः ॥४३
प्रचचार ततो लोके सत्यनारायणाच्चनम् । कामसिद्धिप्रदं मुक्तिभुक्तिं कलुषापहम् ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वाणि

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामं पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५

अथ षड्विंशोऽध्यायः

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

राजासीद्धार्मिकः कश्चित्केदारमणिपूरके । चन्द्रचूड इति ख्यातः प्रजापालनतत्परः ॥१
शान्तो मधुरवाग्धीरो नारायणपरायणः । बभूतुः शत्रवस्तस्य म्लेच्छा विन्ध्यनिवासिनः ॥२
तस्य तैरवभवयुद्धमतिप्रबलदारुणैः । भुशुण्डीयुद्धनिपुणैः क्षेपणैः परिघायुधैः ॥३
चन्द्रचूडस्य महती सेना दमपुरे गता । शतं रथास्तथा नागा सहखं तु हयात्तथा ॥४
पत्तवः पञ्चसाहस्रा भृताः स्वर्गपुरं यथुः । दस्यवः पञ्चसाहस्रा भृताः कैतवयोधिनः ॥५
आक्रान्तः स महाभागस्तैर्म्लेच्छैर्दम्भयोधिभिः । त्यक्त्वा राष्ट्रं च नगरं सैकाकी वनमाययौ ॥६
तीर्थव्याजेन स नृपः पुरीं काशीं समागतः । तत्र नारायणं देवं वन्द्यं सर्वगृहे गृहे ॥७

कृतकृत्य हो गया । इसे देखकर सभी लोगों को महान् आश्चर्य हुआ । सभी लोगों ने दण्डवत् करके प्रसाद लहण किया और (ब्राह्मण के लिए) धन्य-धन्य कहते हुए अपने घर को प्रस्थान किया । उसी समय से भगवान् सत्यनारायण देव की अर्जना प्रचलित हुई जो कामनाओं की सफलता, भुक्ति-मुक्ति की प्रदायक और पाप का नाश करने वाली है । ४२-४४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णन नामक पञ्चविंशति अध्याय समाप्त । २५।

अध्याय २६

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य-वर्णन

सूत जी बोले—केदारमणि नगर में चन्द्रचूड नामक राजा रहता था, जो परम धार्मिक, प्रजापालन में सदैव कटिबद्ध, शांत, मधुरभाषी, धीर, और नारायण का उपासक था । विंध्याचल निवासी म्लेच्छगण उसके शत्रु थे, जिन लोगों के साथ उस राजा का अत्यन्त भीषण युद्ध आरम्भ हुआ था । उस युद्ध में भुशुण्डी एवं परिघ आदि अस्त्रों के निपुण योद्धाओं द्वारा चन्द्रचूड की वह विशाल सेना नष्ट कर दी गई । उसमें सौ रथ, उतने हांथी, सहस्र धोड़े और पाँच सहस्र की पैदल सेना थी और पाँच सहस्र दस्युगण भी भृतक हुए, जो कूटनीति से युद्ध कर रहे थे । ये सभी प्राणपरित्याग कर स्वर्ग यहुँच गये । पश्चात् उन म्लेच्छ योद्धाओं द्वारा वह पुण्यात्मा राजा घिर गया, किसी भाँति वहाँ से निकलकर अकेले जंगल में पहुँचा । तीर्थयात्रा के व्याज से वह धूमता हुआ काशी नगर में पहुँचा । वहाँ प्रत्येक घरों में

ददर्श नगरीं चैव धनधान्यसमन्विताम् । यथा द्वारावती ज्ञेया तथा सा च पुरी शुभा ॥८
विस्मितशचन्द्रचूडश्च दृष्टुप्रर्थ्यमनुत्तमम् । सत्येन रोधितां लक्ष्मीं शीलधर्मसमन्विताम् ॥९
दृष्ट्वा श्रुत्वा सदानन्दं सत्यदेवपूजकम् । पतित्वा तच्चरणयोः प्रणनाम मुदा युतः ॥१०
द्विजराज नमस्तुभ्यं सदानन्दं महाभृते । भ्रष्टराज्यं च मां ज्ञात्वा छपया सां समुद्धर ॥११
यथा प्रसन्नो भगवांलक्ष्मीकान्तो जनार्दनः । तथा तद्वद् यद्योग्यं व्रतं पापप्रणाशनम् ॥१२

सदानन्द उवाच

दुःखश्तेकादिशमनं धनधान्यप्रवर्धनम् । सौभाग्यसन्ततिकरं सर्वत्र विजयप्रदम् ॥१३
सत्यनारायणव्रतं श्रीपतेस्तुष्टिकारकम् । यस्मिन्कस्मिन्दिने भूप यजेच्चैव निशामुखे ॥१४
तोरणादि ब्रकर्तव्यं कदलीस्तम्भमण्डितम् । पञ्चभिः कलशैर्युक्तं ध्वजपञ्चसमन्वितम् ॥१५
तन्मध्ये वेदिकां रस्यां कारयेत्स व्रती द्विजैः । तत्र स्थाप्य शिलारूपे कुछणं स्वर्णसमन्वितम् ॥१६
कुर्यादगंधादिभिः पूजां प्रेमभक्तिसमन्वितः । भूमिशायी हरिं ध्यापनस्पतरात्रं व्यतीतयेत् ॥१७
इति श्रुत्वा ह्य नृपतिः काश्यां देवमपूजयद् । रात्रौ प्रसन्नो भगवान्वदौ राजेऽस्मिन्मुत्तमम् ॥१८
शत्रुपक्षक्षयकरं प्राप्य खड्गं नृपोत्तमः । प्रणम्य च सदानन्दं केदारमण्िमाययौ ॥१९
हत्वा दस्यून्त्सष्टिशतांस्तेषां लब्ध्वा महद्वनम् । हरिं प्रपूजयामास नर्मदायास्तटे शुभे ॥२०
पौर्णमास्यां विधानेन मासि मासि नृपोत्तमः । अपूजयत सत्यदेवं प्रेमभक्तिसमन्वितः ॥२१

वन्दनीय नारायण देव को प्रतिष्ठित देखा पश्चात् द्वारावती की भाँति धन-धान्य युक्त उस नगरी को भी । उसे देखकर राजा चन्द्रचूड अवाक् रह गये, अनन्तर सत्य द्वारा धर्मशील समेत लक्ष्मी का अवरुद्ध होता देखकर उन्हें और भी महान् आश्चर्य हुआ । तदुपरान्त सत्य देव के अनन्य भक्त श्री सदानन्द जी को देख सुन कर उनके चरण पर गिर कर पुलकित धरीर से उन्हें प्रणाम करने लगा—द्विजराज, महामते, सदानन्द ! तुम्हें नमस्कार है, मेरे राज्य का अपहरण हो गया । है, अंतएव मेरा उद्धार कीजिये । भगवान् लक्ष्मीकान्त जो जनार्दन कहे जाते हैं, को प्रसन्न करने के लिए किसी पापनाशक व्रत को बताइये । १-१२

सदानन्द ने कहा—एक सत्यनारायण देव का व्रत, जो दुःख, शोक आदि का नाशक, धन-धान्य का वर्द्धक, सौभाग्य, और संतान प्रदायक एवं सर्वत्र विजय प्रदान करने वाला है, भगवान् लक्ष्मी पति को प्रसन्न करता है । नृप ! जिस किसी दिन संध्या के समय में उनकी पूजा करनी चाहिए । केले के खन्ने लगाकर उसे तोरण द्वारा सुसज्जित करते हुए उस व्रती को चाहिए कि पाँच पताकाओं समेत पाँच कलशों की प्रतिष्ठा के अनन्तर उसके मध्य भाग में ब्राह्मणों द्वारा रमणीक वेदी का निर्माण कराये । उस पर मुवर्ण समेत शिलारूप की कुछण (शालिग्राम) को स्थापित कर प्रेम भक्ति पूर्वक गंधादि द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए । पश्चात् भूमिशायी होकर भगवान् का ध्यान करते हुए उस राजा ने वहाँ काषीपुरी में देव की पूजा की । उससे प्रसन्न होकर भगवान् ने राजा को एक उत्तम खड्ग प्रदान किया । उस शत्रुदलों के विनाशक खड्ग को ग्रहण कर सदानन्द को प्रणाम पूर्वक वह राजा केदारमणि नगर चला गया । वहाँ के छह सहस्र शत्रुओं के संहार द्वारा राजा उसे अत्यन्त धन की प्राप्ति कर नर्मदा के शुभ तट पर भगवान् की व्रत पूजा सुसम्पन्न किया । १३-२० । अनन्तर वह श्रेष्ठ राजा प्रत्येक मास की पूर्णिमा के दिन

तद्ब्रतस्य प्रभवेण लक्षणामाधिपोऽभवत् । राज्यं कृत्वा स षष्ठ्यब्दमन्ते विष्णुपुरं ययौ ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः । २६

अथ सप्तविंशोऽध्यायः श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अथेतिहासं श्रुणुत यथा भिल्लाः कृतार्थिनः । विचरन्तो वने नित्यं निषादाः काञ्छवाहिनः ॥१
वनात्काषाणि विक्रेतुं पुरीं काशीं ययुः क्वचित् । एकस्तृष्टाकुलो यातो विष्णुदासाश्रमं तदा ॥२
ददर्श विपुलं शर्यं सेवितं च द्विजैर्हरिम् । जलं पीत्वा विस्मितोऽभूद्विक्षुकस्य कुतो धनम् ॥३
यो दृष्टोऽकिञ्चनोऽप्नो दृश्यतेऽद्य महाधनः । इति सञ्चिन्त्य हृदये स प्रच्छ द्विजोत्तमम् ॥४
ऐश्वर्यं ते कुतो ब्रह्मन्दुर्गतिस्ते कुतो नतः । आज्ञापय महाभाग श्रेतुगिच्छामि तत्त्वतः ॥५

सदानन्द उवाच

सत्यनारायणस्याङ्गसेवया किं न लभ्यते । न किं किञ्चित्सुखमाप्नोति विना तस्यानुकम्पया ॥६

प्रेम भक्ति में निमग्न होकर सत्यदेव की पूजा करने लगा । उस व्रत के प्रभाव से वह एक लक्ष गाँवों का अधिपति हो गया । उसमें साठ वर्ष तक सुखोपभोग करके अन्त में विष्णु की पुरी में चला गया । २१-२२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णन

नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त । २६।

अध्याय २७ श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य-वर्णन

सूत जी बोले—इसके अनन्तर उस इतिहास को सुनो ! जिसमें भिन्न जातियों के निषादगणों का जो काञ्छवाहन (लकड़ी ढोने) का कार्य करते हुए उन जंगलों में नित्य धूमा करते थे, कृतार्थ होना बताया गया है । एकबार जंगल से लकड़ी लेकर वे उसके विक्रयार्थी काशीपुरी में पहुँचे । उनमें से एक पिपासा से आकुल होकर किसी भगवद्भक्त के आश्रम में गया । वहाँ अत्यन्त ऐश्वर्य सम्पन्न ब्राह्मणों को देखा, जो भगवान् की व्रत आराधना में लगे हुए थे । उसे अत्यन्त आश्र्वर्य हुआ, जल पीकर वह सोचने लगा कि इन भिक्षुकों को धन की प्राप्ति कहाँ से हो गई । जो ब्राह्मण अत्यन्त अकिञ्चन दिखाई देता था, वही आज महा धनवान् दिखाई दे रहा है, (क्या कारण है) इस प्रकार अपने मन में विचार करके उसने उस ब्राह्मण श्रेष्ठ से पूँछा—ब्रह्मन् ! आप की दुर्गति का नाश एवं इस ऐश्वर्य की प्राप्ति कहाँ से हुई है । महाभाग ! इसे आप बताने की कृपा करे, मुझे सुनने की इच्छा हो रही है । १-५

सदानन्द बोले—सत्यनारायण देव की सेवा करने पर किस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है (अर्थात् सभी की प्राप्ति होती है), उनकी अनुकम्पा से विहीन होने पर सुख का लेश मात्र भी नहीं प्राप्त होता है । ६।

निषाद उवाच

अहो किमिति माहात्म्यं सत्यनारायणार्चने । विधानं सोपचारं च हृष्पदेष्टुं त्वमर्हसि ॥७
 साधूनां समचित्तानामुपकरवतां तताम् । न गोप्यं विद्यते किञ्चिदार्तनामार्तिनाशनम् ॥८
 इति पृष्ठो विधिं दक्षुमितिहासमथाद्रबीत् । चन्द्रचूडो महीपालः केदारमणिपूरके ॥९
 ममाश्रम समायातः सत्यनारायणार्चने । विधानं श्रोतुकामोऽसौ मात्राह सादरं वचः ॥१०
 मया यत्कथितं तस्मै तन्निबोध निषादजः सङ्कल्प्य मनसा कामं निष्कामो वा जनः क्वचिन् ॥११
 गोधूमचूर्णं पादर्थं सेटकादैः सुचूर्णकम् । तस्कृतं मधुगन्धाज्यनैवैद्यं विभदेऽर्पयेत् ॥१२
 पञ्चामृतेन संस्नाप्य चन्द्रनश्वैश्च पूजयेत् । पायसापूपसंयादविधिक्षीरमथो हरेत् ॥१३
 उच्चावचः फलैः पुष्टैर्धूपदीपैर्मनोरमैः । पूजयेत्परया भक्त्या विभदे सति विस्तरैः ॥१४
 न तुष्टेदद्रव्यसम्भारैर्भक्त्या केवलया यथा । भगवान्परितः पूर्णो न मानं वृणुयात्कदचित् ॥१५
 दुर्योधनकृतां त्यक्त्वा रजपूजां जनार्दनः । विदुररथाश्रमे वासमातिथ्यं जगृहे विभुः ॥१६
 सुदाम्नस्तण्डुलकणाञ्जावा गानुष्यदुर्लभाः । सम्पदोऽदद्विरः प्रीत्या भावितमात्रमपेक्ष्यते ॥१७
 ज्ञेपो गृध्रो वणिगव्याधो हनुमान्त्सविभीषणः । येऽन्ये पापात्मका दैत्या वृत्रकायाध्वादयः ॥१८
 नारायणान्तिकं प्राप्य मोदन्तेऽद्यापि यद्वशाः । इति श्रुत्वा नरपतिः पूजासम्भारमादरात् ॥१९

निषाद ने कहा—अहो, उनका इतना महत्व है, तो मुझे भी उन सत्यनारायण देव की अर्चना का विधान उपचार समेत बताने की कृपा कीजिये । क्योंकि उन साधुओं के लिए कष्टनाशक कोई वस्तु गोप्य नहीं होती है, जो समचित्त उपकारों एवं सज्जन होते हैं । उन्हें विधान बताने के व्याज से उसे एक इतिहास बताया—केदारमणिपूर में चन्द्रचूड नामक राजा रहता है, वह मेरे आश्रम में आकर सत्यनारायण की अर्चना का विधान जानने के लिए मुझसे सादर अनुनय विनय करने लगा । निषाद पुत्र ! मैंने उससे जो कुछ कहा, उसे बता रहा हूँ, मुझे ! मनुष्यों को चाहिए कि अपनी कामनाओं का मानसिक सङ्कल्प करके या यूँ ही, गेहूँ के पाव आधसेर आटे का शहद, गंध, धी एवं नैवेद्य द्वारा उत्तम प्रसाद (पंजीरी) बनाकर भगवान् को समर्पित करें । और पंचामृत से स्नान एवं चन्दनादि से पूजा सुसम्पन्न करके उन्हें खीर, मालपूआ, लपसी, दही और दूध अपित करे । इस प्रकार अपने धनानुसार विस्तृत या लघु उनकी पूजा छोटे बड़े फलों, पुष्टों, तथा उत्तम धूपदीपों द्वारा भक्ति विभोर हुए सुसम्पन्न करनी चाहिए । ७-१४। क्योंकि केवल भक्ति द्वारा जितना वे प्रसन्न होते हैं, उतना द्रव्यों के संभार द्वारा कभी नहीं । भगवान् सभी प्रकार से परिपूर्ण हैं, अतः उनके विषय में कभी मान न करना चाहिए । इसीलिए विभु जनार्दन भगवान् ने दुर्योधन द्वारा की गई सेवा अस्वीकार करके विदुर के आश्रम में (शाक का) आतिथ्य सप्रेम स्वीकार किया । तथा सुदामा के उन चावल के कणों (किनकियों) का सप्रेम भक्षण करके भगवान् ने उन्हें मनुष्य-दुर्लभ ऐश्वर्य प्रदान किया । अतः भगवान् केवल भक्ति मात्र की चाह करते हैं । गोपण गीध (जटायु) वैश्य, व्याध, हनुमान, विभीषण और इस प्रकार अन्य पापात्मा वृत्रादि दैत्यगण, आज भी भगवान् के समीप रहकर आनन्द का अनुभव कर रहे हैं । इसे सुनकर राजा ने सादर सामग्री एकत्र करके उनकी पूजा की, जिससे उन्हें धन की प्राप्ति हुई और आज भी नर्मदा के तट पर सुखानुभव कर रहे हैं ।

कृतवान्स धनं लब्ध्वा मोदते नर्मदातटे । निषाद त्वमपि प्रीत्यः सत्यनारायणं भज ॥२०
 इह लोके सुखं प्राप्य चान्ते साश्रित्यमासुयाः । कृतकृत्यो निषादोऽभूत्प्रणम्य द्विजपुञ्जवम् ॥२१
 त गत्वा स्वगणानाह माहात्म्यं हरिसेवने । ते हृष्टमनसः सर्वे समयं चकुरादृताः ॥२२
 सत्यनारायणे पूजां काष्ठलब्धेन वावता । वयं कुलैः करिष्यामः पुण्यवृक्षनिधानतः ॥२३
 इति निश्चित्य मनसा काष्ठं दिङ्गीथ लेभिरे । चतुरुर्णां धनं हृष्टाः स्वं स्वं भदनमाययुः ॥२४
 शुदा स्त्रीभ्यस्समाच्छुर्वृत्तान्तं सर्वमादितः । ताः शुदाः हृष्टमनसः पूजनं चकुरादरात् ॥२५
 कथान्ते प्रणमन्भक्त्यः प्रसादं जग्नुहुस्ततः । स्वजातिभ्यः परेभ्यश्च ददुस्तच्चूर्धमुत्तमम् ॥२६
 पूजाप्रभावतो भिल्लाः पुत्रदारादिभिर्युतिः । लब्ध्वा भूमित्तले द्रव्यं ज्ञानचक्षुर्महोत्तमम् ॥२७
 शुक्तवा भोगान्यथेष्टन्ते दरिद्रान्धा द्विजोत्तम । जग्मुस्ते वैष्णवं धाम योगिनामपि दुर्लभम् ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वते

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविशोऽध्यायः । २७

अथाष्टाविंशोऽध्यायः श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

अथ ते वर्णयिष्यामि कथां साधूपचारिताम् । नृपोपदेशतः साधुः कृतार्थोऽभूद्विषयम् ॥१

इसलिए निषाद ! तुम भी प्रेम पूर्वक सत्यनारायण देव की आराधना करो जिससे इस लोक में सुखानुभव करने के उपरांत, अंत समय में उनके समीप नियार करो । पश्चात् कृतकृत्य होकर वह निषाद उस द्विज श्रेष्ठ को प्रणाम करके दहाँ जाकर अपने साथियों से भगवान् का माहात्म्य कहने लगा । उसे सुनकर उन लोगों ने हर्ष विभोर होते हुए सादर प्रतिज्ञा की कि इन लकड़ियों के विक्रय करने पर जितने द्रव्य की प्राप्ति होगी, उसके द्वारा हम लोग सपरिवार सविधान सत्यनारायण देव की पूजा करेंगे—ऐसा यन से निश्चय करके वे लोग लकड़ियों के विक्रय करके चौमुने धन की प्राप्ति पूर्वक प्रसन्न होते हुए अपने अपने घर चले गये ; घर में पहुँच कर सभी आमूल वृत्तान्त स्त्रियों से कह सुनाया इसे सुनकर उन लोगों ने हर्षित होकर सादर उस पूजन को सम्पन्न किया—कथाश्रवण के उपरांत भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रसाद ग्रहण किया—अपनी जाति तथा इतर जाति के लोगों में उसका वितरण किया । द्विजोत्तम ! उस पूजा के प्रभाव से पुत्र-स्त्री समेत वे भिल्लगण इस भूतल में द्रव्य एवं उत्तम ज्ञान-चक्षु की प्राप्ति करके यथेच्छ भोगों को प्राप्त करने के उपरांत वे दरिद्रान्ध योगी दुर्लभ उस वैष्णवधाम को चले गये । १५-२८

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णन
नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त । २७।

अध्याय २८

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—मैं अब तुम्हें उस साधु वैश्य का चरित सुनाऊँगा, जो राजा के उपदेश देने पर कृतार्थ

मणिपूरपती राजा चन्द्रचूडे महायशः । सह प्रजाभिरानवं सत्यनारायणं प्रभुम् ॥२
 अथ रत्नपुरस्थायी साधुर्लेखपतिर्वर्गिक् । धनैरापूर्य तरणीः सह गच्छन्नदीतटे ॥३
 ददर्श ब्रह्मलं लोकं नानाप्रस्तविलात्तिनम् । मणिमुक्ताविरच्चितैवितानैस्समलङ्घकृतम् ॥४
 वेदवादांश्च शुश्राव गीतवादित्रसञ्ज्ञतान् । रम्यं स्थानं समालोक्य कर्णधारं समादिशात् ॥५
 विश्राप्यात्र तरणीरिति पश्यामि कःतुकम् । भर्त्तादिष्टस्तथा चक्रे कर्णधारः समृद्ध्यकः ॥६
 तद्दीम्नः समुत्तीर्ण मल्ललोला विलासिनः । कर्णधारा नगा वीरा पुयुधुर्मल्लीलयः ॥७
 स्त्यमुत्तीर्ण सामात्यो लोकान्प्रच्छ लादरम् । यज्ञस्थानं समालोक्य प्रशस्तं समुदा यदौ ॥८
 किमत्र क्रियते सम्या भजद्विलोकपूजितैः । सम्या ऊबुश्च ते तर्वं सत्यनारायणो विभुः ॥९
 पूज्यते बन्धुभिः सार्धं राजा लोकानुकम्पिना । प्राप्तं निष्कण्टकं राज्यं सत्यनारायणार्चनात् ॥१०
 धनार्थी लभते द्रव्यं पुत्रार्थीं सुतमुत्तमम् । ज्ञानार्थी लभते चकुर्निर्भयः स्याद्युयानुरः ॥११
 सर्वात्मामानवाप्नोति नरः सत्यसुरार्चनात् । विधानं तु ततः श्रुत्वा चैतं बद्ध्वा गलेऽसकृत् ॥१२
 दण्डवत्प्रणिपत्याह कामं सम्यानमोदयत् । अनपत्योऽस्मि भगवन्वृथैश्वर्यो वृथोद्यमः ॥१३
 पुत्रं वा यदि वा कन्यां लभेयं त्वत्प्रसादतः । पताकां काञ्चनीं कृत्वा पूजयिष्ये कृपानिधिम् ॥१४
 श्रुत्वा सम्या अब्रुवस्ते कामनासिद्धिरस्तु ते । हरिं प्रणम्य सम्यांश्च प्रसादं भुक्तवांस्तदा ॥१५

हो गया था । मणिनगर का महायशस्वी राजा चन्द्रचूड अपनी प्रजाओं समेत सत्यनारायण प्रभु की अर्चना कर रहा था । उसी बीच रत्नपुर का लक्षपति एवं वैश्य जाति का साधु उस नाव पर बैठकर जिसमें अत्यन्त धन भरा हुआ था । जाते हुए अनेक ग्रामों एवं उसके निदासियों को देखते हुए एवं सुन्दर स्थान को देखा, जो मणि स्रोतियों द्वारा खचित वितानों से अलंकृत था । वहाँ वेदपाठ के श्रवण समेत गायन वाद्य भी सुना । उस रमणीक स्थान को देखकर उसने अपने सेवकों से कहा जो नाव चला रहे थे ॥१-५। नाव को यहाँ रोक दो, क्योंकि मैं इस कौतुक को देखना चाहता हूँ । उन्होंने स्वामी की आज्ञा प्रदान करने पर अपने सहायकों समेत वैसा ही किया । उस नदी के तट पर उत्तरकर मल्लयुद्ध निपुण ने नाव चलाने वाले वहाँ के मल्लाहों के साथ (अपने दाव-पेच द्वारा) युद्ध करते हुए मनोरञ्जन दिखाने लगे । उस साधु ने अपने मंत्री को साथ लेकर नाव से उत्तरकर सादर लोगों से पूछा । पश्चात् उस प्रशस्त यज्ञ-स्थान को देखकर हर्षित होते हुए वहाँ भी गया—सज्जन वृन्दो ! आप महानुभाव यहाँ क्या कर रहे हैं ? इस प्रकार पूँछने पर उन सज्जनों ने कहा—लोगों पर अनुग्रह रखने वाले यहाँ के राजा अपने बन्धुदण्डों के साथ मैं सत्यनारायण देव की पूजा कर रहे हैं । इसी के प्रभाव से उन्हें निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति हुई है । (इसके श्रवण करने पर) धनार्थी द्रव्य, पुत्रेच्छुक उत्तम पुत्र, ज्ञानार्थी ज्ञाननेत्र एवं भयभीत निर्वाण की प्राप्ति करते हैं । अर्थात् सत्यदेव की पूजा करने से मनुष्य की सभी कामनाएँ सफल होती हैं । उसके उपरांत (पूजन के) विधान को सुनकर गले में एक वस्त्र बाँधकर बार-बार दण्डवत् प्रणाम करके उन सम्य सज्जनों को प्रसन्न किया और कहा भी, कि भगवन् ! मैं सन्तान-हीन हूँ, इसलिए मेरा ऐहवर्य एवं उसके उपार्जन का उद्यम करना व्यर्थ है । किन्तु अपनी प्रसन्नतावश यदि मुझे इस अवस्था में भी किसी सन्तान पुत्र अथवा कन्या की प्राप्ति हो जाये तो मैं सुवर्ण की पताका के समर्पण द्वारा कृपानिधि भगवान् की पूजा करूँगा ॥६-१४। इसे सुनकर उन सज्जनों ने कहा—तुम्हारी कामना सफल हो, उपरांत उन

जगाम स्वालयं साधुर्मनसा चिन्तयन्हरिम् । स्वागृहे ह्यागते तस्मिन्नार्थे मङ्गलपणयः ॥१६
 मङ्गलानि विचिद्राणि यथोचितमकारयत् । विवेशान्तःपुरे साधुर्महाकौतुकमङ्गलः ॥१७
 क्रतुलाता सती लीलावती पर्यचरत्पतिन् । गर्भ धृतवती साधवी सनये सुषुदे तु सा ॥१८
 कन्यां कमललोलाक्षीं बान्धवामोदकारणीम् । साधुः परां मुदं लेभे विततार धनं बहु ॥१९
 विप्रतामूर्य देवजान्कारयामास मङ्गलस् । लेखगित्वा जन्मपत्रीं नाम चक्रे कलावतीम् ॥२०
 कलानिधिकले वासौ वृद्धे सा कलावती । अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी ॥२१
 दशवर्षा भवेत्कन्या ततः प्रौढा रजस्वला । प्रौढां कालेन तां दृष्ट्वा विवाहार्थमचिन्तयत् ॥२२
 नगरे काञ्चनपुरे वणिकछत्वपतिः श्रुतः । कुलीनो रूपसम्पत्तिशीलौदार्यगुणान्वितः ॥२३
 वरयामास तं साधुर्द्दुहितुः सदृशं वरम् । शुभे लग्ने बहुविधैमङ्गलैरप्निसन्धिधौ ॥२४
 वेदवादित्रनिनदैर्ददौ कन्यां यथाविधि । मणिमुक्ताप्रवालानि वसनं भूषणानि च ॥२५
 महा॒मोदमना॑ः साधुर्मङ्गलर्थं इदौ च ह । प्रेम्णा निवासयामास गृहे जामातरं ततः ॥२६
 तं मेरे पुत्रवत्सराधुः स च तं पितृवत्सुधीः । अतीते भूयसः काले सत्यनारायणार्चनम् ॥
 विस्मृत्य सह जामात्रा वाणिज्याय ययौ पुनः ॥२७

सम्यों के प्रणाम पूर्वक प्रसाद भक्षण कर भगवान् का मानसिक चिन्तन करता हुआ वह वैश्य अपने घर को लौट आया । १५-१६। उसके आने पर घर की स्त्रियाँ हाथों में मांगलिक वस्तुओं को लेकर विचित्र भाँति के मांगलिक कर्म करने लगीं । अनन्तर उस साधु वैश्य ने उस महान् मांगलिक कौतुक समेत अपने नगर में प्रवेश किया । कुछ समय के उपरांत लीलावती नामक उसकी पत्नी ने क्रतुकालीन स्तान करके पति की सेवा-शुश्रूषा द्वारा गर्भधारण किया और समय प्राप्त होने पर उस पति परायण ने एक कन्या रत्न उत्पन्न किया, जिसके कमल की भाँति विशाल, तथा चपल नेत्र और जो स्वयं बन्धु वर्गों को आनन्द प्रदान करने वाली थी । उसे देखकर वह वैश्य आनन्द विभोर होकर अत्यन्त धन का वितरण करने लगा । वैदिक ब्राह्मणों को बुलाकर कर मंगल कर्म सुसम्पन्न कराकर ज्योतिशी ब्राह्मण द्वारा जन्मपत्री बनवाया और स्वयं उसका नामकरण कलावती किया । वह कलावती भी कलानिधि चन्द्र की कला की भाँति प्रतिदिन बढ़ने लगी । (कन्याये) आठ वर्ष की अवस्था में गौरी, नव वर्ष की अवस्था में रोहिणी दश वर्ष की अवस्था में कन्या और उसके पश्चात् प्रौढा एवं रजस्वला कही गई हैं । उसने समय पाकर अपनी कन्या की प्रौढावस्था देखकर उसके विवाहार्थ काञ्चनपुर नगर के निवासी उस शंखपति नामक वैश्य का, जो कुलीन, रूप सौन्दर्य युक्त, शील एवं उदार आदि गुण युक्त था, अपनी पुत्री के समान वर की उपलब्धि होने पर उसके लिए वरण किया । पश्चात् शुभ लगन में भाँति-भाँति के अनेक मांगलिक समारोह समेत यथा विधान जिसमें वैदिक ध्वनियों से वह स्थान गुजित हो रहा था, उसके साथ अपनी कन्या का पाणिग्रहण सुसम्पन्न कराया । उस साधु ने उसकी मांगलिक कामना के निमित्त मणि, मोती, मूरे, वस्त्र, एवं आभूषणों को प्रसन्नता में विभोर होकर प्रदान किया । पश्चात् अत्यन्त प्रेम के नाते उसे (दामाद को) अपने ही घर में रख लिया । वह साधु उससे पुत्र की भाँति प्रेम करने लगा और वह उससे अपने पिता की भाँति । अधिक दिनों के बीत जाने पर सत्यनारायण की पूजा का स्मरण न रहा, और अपने दामाद के साथ अपने व्यापार के लिए पुनः प्रस्थान भी किया । १७-२७

सूत उचाच

अथ साधुः समादाय रत्नानि विविधानि च ॥२८
नौका: संस्थाप्य स यथौ देशाहेशान्तरं प्रति । नगरं नर्मदातीरे तत्र वासं चकार सः ॥२९
कुर्वन्क्षयं विक्रयं च चिरं तस्थौ महामनाः । कर्मणा मनसा वाचा न कृतं सत्यसेवनम् ॥३०
ततः कर्मविपाकेन तापमापाचिराद्विणिकः कस्मिंश्चिद्विसे रात्रौ रात्रौ गेहे तमोवृते ॥३१
ज्ञात्वा निद्रागतान्सर्वान्हृतं चौरैर्भाधनम् । भ्रभते वाचितो राजा सूतमागद्यवन्दिभिः ॥३२
प्रातः कृत्यं नृपः कृत्वा सदः सन्प्राविशन्वत्त चः । ततस्तत्त्वं समायातः किञ्च्चिरो राजवल्लभः ॥३३
उचाच ह तदा वाक्यं शृणुष्व त्वं धरापते । मुक्तामालाश्च बहुधा रत्नानि विविधानि च ॥३४
मुमुषुओरा गतास्त्वे न जानीमो वयं नृप । इति विज्ञापितो राजा पुण्डिलोकशिखामणिः ॥३५
उचाच क्रोधताद्वाक्षो दूयं संयात मा चिरम् । सचौरं द्रव्यमादाय मत्यार्थं त्वमुपानय ॥३६
नो चेद्विष्ये सगणानिति द्रूतान्समादिशत् । नृपवाक्यं समाकर्ण्य प्रजामुस्ते च किञ्च्चिराः ॥३७
बहुयत्नं संशोध्य द्रव्यं चौरसन्वितम् । एकीभूत्वा निशि तदा महाचिन्तातुरोभवत् ॥३८
हन्ता मां सगणं राजा किं करोमि कुतः सुखम् । नृपदण्डाच्च मे मृत्युः प्रेतत्वाय भवेदिह ॥३९
नर्मदायां च मरणं शिवलोकप्रदायकम् । इत्येवं सम्मतं कृत्वा नर्मदायास्तटं यथुः ॥४०
विदेशिनोऽस्य वणिजो ददर्श विपुलं धनम् । मुक्ताहारं गले तस्य लुण्ठितं वणिजोऽस्य च ॥४१

सूत जी बोले—भाँति-भाँति के रत्नों को अपनी नौका में रखकर वह साधु उस नाव द्वारा देश-देशान्तर के लिए प्रस्थित हुआ। नर्मदा नदी के तट पर एक नगर में पहुँचकर नाव रोक कर ठहर गया। क्रय-विक्रय करता हुआ वह महात्मा वैश्य अधिक दिनों तक वहाँ रहने पर भी कर्म, मन, अथवा वाणी द्वारा सत्य-नारायण की सेवा का स्मरण न कर सका जिससे उरा वैश्य को देव दुर्विपाक (दुर्भाग्य) वश शीघ्र ही (उसके परिणाम-स्वरूप) संतप्त होना पड़ा। किसी दिन रात्रि के समय घने अंधकार में राजा के यहाँ सब को निद्रित समझकर चोरों ने वहाँ से अत्यन्त धन की चोरी की। २८-३२। प्रातः काल सूत, मागध एवं बंदियों द्वारा जागकर राजा प्रातः काल का कृत्य समाप्त करके सभा में प्रविष्ट हुआ कि—राजा के प्रिय सेवकों ने वहाँ आकर कहा—पृथिवी पते! मेरी बातों को सुनते की कृपा करें। मोतियों की मालाएँ और अनेक भाँति के रत्नों को चुराकर चोर गण भाग गये, राजन्! उनके विषय में हम लोग कुछ भी नहीं जानते हैं। इस प्रकार निवेदन करने पर पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ वह राजा कुद्द होने के नाते रक्तनेत्र होकर कहने लगा—तुम लोग शीघ्र जाओ और धन समेत उन चोरों को मेरे सम्मुख उपस्थित करो। नहीं तो तुम्हें गणसमेत प्राण-दण्ड दिया जायगा। इस प्रकार उसने अपने सेवकों को आज्ञा प्रदान की। वे सेवक वर्ग राजा की बातें सुनकर वहाँ से चल दिये। अनेक प्रयत्न करने पर भी धन समेत चोर का पता न मिलने पर वे सब रात्रि में एकत्र होकर चिन्तित होने लगे। राजा, गणसमेत हमें प्राणदण्ड देगा, अतः क्या कहूँ, सुख की प्राप्ति कैसे हो। राजदण्ड द्वारा होने वाली मृत्यु मुझे प्रेत बनायेगी ही अतः नर्मदा में डूबकर प्राण परित्याग करना कल्याणप्रद समझता हूँ, इस प्रकार निश्चय करके वे लोग नर्मदा के तट पर पहुँचे। ३३-४०। वहाँ उस विदेशी वैश्य के विपुल धन तथा उस साधु के कुण्ड में सुशोभित उस मोती के हार को देखकर अपनी रक्षा के निमित्त उसे चोर निश्चय कर बाँध

चौरोऽयमिति निश्चित्य तौ बलन्धात्मरक्षणात् । सधनं सह जामात्रा नृपान्तिकमुपात्यत् ॥४२
 प्रतिकूले हरौ तस्मिन्राजापि न विचारितम् । धनागारे धनं नीत्वा बधनीत तौ मुदुर्मतौ ॥४३
 करागारे लोहमयैः शृङ्खलैरज्ञपादयोः । इति राजाज्ञया द्रूतास्तथा चक्रुर्निवन्धनम् ॥४४
 जामात्रा सहितः साधुर्विललाप्य भृशं मुहुः । हा पुत्र तात तातेति जामातः क्व धनं गतम् ॥४५
 क्व स्थिता च सुता भार्या पश्य धातुर्विर्यर्थयम् । निमग्नौ दुःखजलधौं को वां पात्यति सङ्कटात् ॥४६
 मया बहुतरं धातुर्विप्रियं हि पुरा कृतम् । तत्कर्मणः प्रभावोऽयं न जाने कस्य दाः फलम् ॥४७
 सदांशुशुरजामात्रो द्वादशेषु विजादिनौ ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वदणि
 श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टाविंशोऽध्यायः ।२८

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

तापत्रयहरं विष्णोश्चरितं तस्य ते शिवम् । शृण्वन्ति सुधियो नित्यं ते वसन्ति हरेः पदम् ॥१
 प्रतिकूले हरौ तस्मिन्यास्थन्ति निरयान्बहून् । तत्प्रिया कमला देवी चत्वारस्तस्य चात्मजाः ॥२

लिया । उसके धन एवं दामाद समेत उसे राजा के समीप उपस्थित किया । भगवान् के प्रतिकूल होने के नाते राजा भी उनके विषय में कुछ विचार न कर धनालय (खजाने) में धन रखकर इन दोनों दुष्टों को बाँधकर लोहे की शृंखला (जंजीर) से इनके दोनों चरण बाँधकर जेल में डाल दो, इस प्रकार राजा के आदेश होने पर उनके सेवकों ने वैसा ही उन्हें बन्धनों से जकड़ दिया । दामाद समेत साधु बार-बार विलाप करता था—हा, पुत्र, तात जामात ! मेरा धन कहाँ चला गया, मेरी पुत्री और स्त्री कहाँ हैं । भाग्य का उलट-फेर देखो, इसी कारण हम लोग दुःख सागर में डूब रहे हैं, इस संकट से हमारी कौन रक्षा करेगा । मैंने पहले अनेक बार भगवान् को, अप्रसन्न किया है, उसी का यह दुर्विपाक परिणाम उपस्थित है, अथवा नहीं जानता यह किस कर्म का फल प्राप्त हो रहा है, इस प्रकार वे श्वसुर जामाता दोनों बारह दिनों तक चिन्तित रहकर दुःखों का अनुभव करते रहे हैं । ४१-४८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य वर्णन
 नामक अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त । २८।

आध्याय २९

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—भगवान् विष्णु का चरित तीनों तापों का विनाश करता है, वही उसे तथा तुम्हारे लिए कल्याणप्रद है । जो विद्वद्गण नित्य उसका श्रवण करते हैं, वे भगवान् के स्थान की प्राप्ति करते

धर्मो यज्ञो नृपश्चौरः सर्वे लक्ष्मीप्रियद्वाराः । विप्रेभ्यश्चातिथिभ्यश्व यद्वानं धर्मं उच्यते ॥३
 मातृभ्यो देवताभ्यश्च स्वधा स्वाहेति वै मखः । धर्मस्यैव लक्ष्मीप्रियद्वाराः । यत्र सत्यं ततो धर्मस्तत्र लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥४
 द्वयोर्हन्ता हि चोरः स ते सर्वे धर्मकिङ्गुराः । यत्र सत्यं ततो धर्मस्तत्र लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥५
 सत्यहीनस्य तत्साधोर्धनं यत्तदगृहे स्थितम् । हृतवानवनीपालः चौरैर्भर्यातिदुःखिता ॥६
 वासोऽलङ्कुरणादीनि पिक्रीय बुधुजे किल । जास्ति तत्पच्यते किञ्चित्तदा कष्टमगाहत ॥७
 अथैकस्मिन्दिने कन्या भोजनाच्छादनं विना । गतः विप्रगृहेऽपश्यत्सत्यनारायणार्चनम् ॥८
 प्रार्थयन्तं जगत्राथं दृष्ट्वा सा प्रार्थयद्वरिम् । सत्यनारायण हरे पिता भर्ता च मे गृहम् ॥९
 आगच्छत्वर्चयिष्यामि भवन्तमिति याचये । तथास्तु ब्राह्मणैरुक्ता ततः सा त्वाश्रमं यथौ ॥१०
 मात्रा निर्भस्ति यं तं कालं कुत्र स्थिता शुभे । वृत्तान्तं कथयानास सत्यनारायणार्चने ॥११
 कलौ प्रत्यक्षफलदः सर्वदा क्रियते नरैः । कर्तुमिच्छाम्यहं मातरनुज्ञातुं त्वमर्हसि ॥१२
 देशमायातु जनकः स्नामी च मम कामना । रात्रौ निश्चित्य मनसा प्रभाते सा कलादती ॥१३
 शीलपालस्य गुप्तस्य गेहे प्राप्ता धनार्थिनी । बन्धो किञ्चिद्द्रुतं देहि येन सत्यार्चनं भवेत् ॥१४

है । भगवान् के प्रतिकूल (अप्रसन्न) रहने पर अनेक भाँति के नरकों की प्राप्ति होती है । भगवान् की प्राणप्रिया कमला देवी हैं और धर्म, यज्ञ, राजा एवं चोर नामक ये चार पुत्र हैं, जो लक्ष्मी का प्रिय कार्य करते रहते हैं । ब्राह्मण तथा अतिथि के निमित्त दिये जाने वाले दान को धर्म बताया गया है, मातृकाओं और देवताओं के लिए स्वधा तथा स्वाहा के द्वारा अर्पित करने को मख (यज्ञ) कहा गया है । इन्हीं दोनों (धर्म और यज्ञ) के रक्षक को राजा, एवं इन्हीं दोनों के विनाशक को चोर कहा जाता है । इसीलिए सब धर्म सेवक हैं । जहाँ सत्य की स्थिति रहती है, उसी स्थान पर लक्ष्मी स्थिर रहती है । सत्य-हीन होने के नाते उस साधु के नौकास्थित धन को राजा और घर में स्थित धन को चोरों ने चुराकर उसकी पत्नी को इतना कष्ट प्रदान किया । जिससे उसने अपने आभूषणों वस्त्रों आदि को भी विक्रय करके प्राण-रक्षा की किन्तु कुछ दिन के अनन्तर भोजन बनाने की किसी सामग्री के न रहने पर वे दोनों माता-पुत्री लकड़ी ढोने लगी । इसके उपरांत एक दिन वह कन्या भोजन-वस्त्र विहीन होकर एक ब्राह्मण के घर गई जहाँ सत्यनारायण देव की पूजा हो रही थी । १-८। वहाँ जगन्नियन्ता की प्रार्थना हो रही थी । उसे देखकर उसने भी भगवान् से प्रार्थना की—सत्यनारायण भगवान् ! हमारे पिता और पति दोनों सकुशल घर आ जायें तो मैं भी आपकी पूजा करूँगी, यही आप से प्रार्थना कर रही हूँ । वहाँ के ब्राह्मणों ने कहा—वैसा ही होगा ! पश्चात् वह घर चली आई । पर घर आने पर उसे उसकी माता ने डाँटते हुए कहा—शुभे ! तुम इतने समय तक कहाँ रही ! उसने उस सत्यनारायण की अर्चना का सभी वृत्तान्त उसे सुना दिया । कलियुग में यह प्रत्यक्ष फल प्रदान करता है, अतः मनुष्य सदैव इसे किया करते हैं । इसलिए मातः ! तुम्हारी यदि आज्ञा हो जाये तो इसे मैं भी करना चाहती हूँ । क्योंकि मेरी एकान्त कामना है कि पिता और स्वामी शीघ्र घर आ जायें । इस प्रकार रात्रि में निश्चय करके प्रातः काल वह कलावती कन्या शीलपाल नामक गुप्त के यहाँ जाकर कुछ धन की याचना करने लगी—भ्रातः ! ‘कुछ थोड़ा-सा धन दीजिये जिससे सत्यनारायण की अर्चना सुसम्पन्न हो जाये । ९-१४। इसे सुनकर शीलपाल ने उसे पाँच सुवर्ण की

इति श्रुत्वा शीलपालः पञ्चनिष्ठं धनं ददौ । त्वत्पितुश्च कृणं शेषं मधीत्येव कलावति ॥१५
 इत्युक्त्वा सोऽनृणो भूत्वा गयाश्राद्वाय संययौ । सुताऽपि तेन द्रव्येण कृतं सत्यार्चनं शभम् ॥१६
 लीलावती सह तया भक्त्याकार्षीत्प्रपूजनम् । पूजनेन विशेषेण तुष्टे नारायणोऽभवत् ॥१७
 नर्मदातीरनगरे नृपः सुष्टप भन्दिरे । रात्रिशेषे सुपर्यंड्वे निद्रां कुर्वति राजनि ॥
 उवाच विप्रलुपेण बोधयच्छूलदण्या निरा ॥१८
 उत्तिष्ठोनिष्ठ राजेन्द्र तौ साधू परिमोचय । अपराधं दिना चद्वौ नो चेच्छं न भद्रेत्वा ॥१९
 इत्येवं भूपतिश्चैव विप्रलुपेण बोधितः । तदा ह्यन्तर्दधे दिष्णार्विनिद्रो नृपतिस्तदा ॥२०
 विस्मितः सहसोत्थाय दध्यो ऋहं सनातनम् । सभायां भन्त्रिणे राजा स्वप्रहेतुं न्यवेदयत् ॥२१
 महामन्त्री च भूपालं ग्राह सत्येन भो द्विज । मधापि दर्शितं स्वप्रं वृद्धविश्रेण बोधितम् ॥
 अतस्तौ हि समानीय सन्धृच्छ विधिवन्नृप ॥२२
 आनीय साधुं प्रपच्छ सत्यमालम्भ्य भूपतिः । कुत्रत्यौ दां कुलं किं वा वसतिः कस्य वा प्रे ॥२३

साधुरुद्वाच

रम्ये रत्नपुरे वासो वणिगजातौ जनिर्मम । वाणिज्यार्थं महाराज वाणिज्यं जीविकात्वयोः ॥२४
 मणिमुक्तादिविक्रेतुं क्रेतुं वा तव एत्तने । प्राप्तौ दूतैश्च बद्धावां त्वत्समीपमुपागतौ ॥२५
 प्रतिकूले विधौ को वा दशां नाम्नोति वै पुमान् । विनापराधं राजेन्द्र मणिचौरानवादयन् ॥२६

मुद्रा (गिन्नी) प्रदान किया । और कहा—कलावति ! यह तुम्हारे पिता का ऋण मेरे यहाँ रह गया था, इतना कहकर ऋण से मुक्त होने पर वह गया श्राद्व के लिए चला गया । और उस कन्या ने उस धन द्वारा सत्यनारायण की शुभ पूजा अपनी माता लीलावती समेत भक्तिपूर्वक सुसम्पन्न किया । उस पूजन द्वारा नारायण अत्यन्त प्रसन्न हुए । नर्मदा के टट पर राजा भन्दिर में शयन कर रहा था । थोड़ी सी रात्रि के षोष रहते समय जब कि राजन् अपनी शय्या पर निद्रामग्न शयन कर रहा था । ब्राह्मण का रूप धारण करके विष्णु ने विनम्र वाणी द्वारा उससे कहा—राजेन्द्र ! उठो, उठो ! उन दोनों साधुओं को शीघ्र मुक्त करो, तुमने बिना अपराध उन्हें बाँध रखा है, अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं होगा । इस प्रकार ब्राह्मण रूप द्वारा भगवान् के कहने पर राजा जाग उठे । उस रामय भगवान् अन्तर्हित हो गये । आश्चर्य प्रकट करता हुआ राजा सहसा उठकर सनातन ब्रह्म के ध्यान पूर्वक सभा में पहुँचकर स्वप्न का कारण मन्त्रियों से कहने लगा—द्विज ! प्रजागण और मंत्री सभी राजा से कहने लगे कि यह सत्य है, मैंने भी इसी भाँति का स्वप्न देखा है, जिसमें वृद्ध ब्राह्मण द्वारा ज्ञान कराया गया है । पश्चात् राजा ने उन दोनों वैश्यों को बुलाकर सादर पूँछा । उन दोनों के आने पर उनसे राजा ने कहा—आप लोग कहाँ रहते हैं, किस कुल में उत्पन्न हैं और किस नगर के निवासी हैं । १५-२३

साधु ने कहा—रमणीक रत्नपुर का मैं निवासी हूँ, वैश्य कुल में भेरा जन्म हुआ है, महाराज ! हमारी जीविका व्यापार ही है, अतः व्यापार के लिए हम दोनों मणि-मोतियों के क्रय-विक्रयार्थ आप के नगर में आये थे । वहाँ आप के सेवकों ने आकर हमें बाँध कर आप के सम्मुख उपस्थित किया । भाग्य के पलट जाने पर मनुष्य को कौन-सी दशा प्राप्त नहीं है इसीलिए बिना अपराध भी कृष्ण को मणि का चोर

आवां न चौरौ राजेन्द्र तत्त्वतस्त्वं विचारय । शुत्वा तन्निश्चयं ज्ञात्वा तयोर्बन्धनकारणम् ॥२७
 छेदयित्वा दृढं पाशं लोमशातिमकारयत् । कारयित्वा परिष्कारं भोजयामास तौ नुपः ॥२८
 नगरे पूजयामात वस्त्राभूलणवाहैः । अब्रदीत्याजितः साधुर्भूषितं विनयान्वितः ॥२९
 कारणारे बहुविधं प्राप्तं दुःखमतः परम् । आज्ञाय शहाराज देशं गन्तु कृपानिधे ॥३०
 शुत्वा साधुवचो राजा प्राह कोशाधिकरणम् । मुद्राभिस्तरणीः सद्यः पूरयस्तु मदाजया ॥३१
 जात्सत्रा सहितः साधुर्गीतवादित्रमञ्जलैः । स्वदेशं चलितोऽद्यःपि न चक्रे हरिसेवनम् ॥३२
 सत्यनारायणो देवः प्रत्यक्षफलदः कल्पै । त एव तापसो भूत्वा चक्रे साधुविडम्बनम् ॥३३

तापस उवाच

धर्मः किं नौषु ते साधो मःभनादृत्य यासि भोः । प्रत्युत्तरमदात्साधुः क्षिप नौकाश्व सत्वरम् ॥३४
 भोः स्वामिन्मे धनं नास्ति लतापत्रादिपूरितम् । नौभिर्गच्छामि स्वस्थानं विरोधे नात्र किं फलम् ॥३५
 इत्युक्तस्तापसः प्राह तथास्त्विति वचः क्षणात् । धनमन्तर्दधे साधोलेतापत्रावशेषितम् ॥३६
 धनं नौकासु नास्तीति साधुश्चिन्नातुरोऽभवत् । किमिदं कस्य वा हेतोर्धनं कुत्र गतं मम ॥३७
 वज्रपाताहत इव भृशं दुःखितमानसः । वच यास्यामि वच तिष्ठामि किं करोमि धनं कुतः ॥३८
 इति मूर्च्छागतः साधुर्विललाप पुनः पुनः । जामात्रा बोधितः पश्चात्तापसं तं जगाम ह ॥३९

कहा गया था । राजेन्द्र ! आप भली भाँति विचार कर सकते हैं—हम दोनों चोर नहीं हैं । उनके बन्धन के कारण को सुनकर तथा उसे निश्चित मानकर उनकी हथकड़ी बेड़ी काटकर, उनके क्षीर कराकर तथा उन्हें भूषणों से भूषित करके राजा ने उन्हें भोजन कराया । २४-२८। पुनः अपने नगर में वस्त्र, आभूषण एवं वाहन (सवारियों) समेत उनकी पूजा सुसम्पन्न करने पर साधु ने विनय-विनम्र होकर राजा से कहा—महाराज ! जेल में तो बहुत दुःखों का अनुभव करना पड़ा, किन्तु अब तो दूसरी अवस्था में हूँ, अतः कृपानिधे ! आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं अपने देश जाना चाहता हूँ । साधु की बातें सुनकर राजा ने अपने कोषाध्यक्ष से कहा—मेरी आज्ञा है, इनदी नौका मुद्राओं से परिर्योप्त कर दीजिये । इसके उपरांत अपने जामाता समेत वह साधु मांगलिक गायन-वाद्य समेत स्वदेश के लिए प्रस्थित हुआ, किन्तु इतने पर भी उसने भगवान् की अर्चना न की । कलियुग में सत्यनारायण-देव प्रत्यक्ष फल प्रदान करते हैं, अतः तपस्त्री का वेष धारणकर भगवान् साधु की भाँति व्यवहार करते लगे—२९-३३

तापस ने कहा—साधो ! तुम्हारी नौका में क्या है, और मेरा अनादर करके चले जा रहे हो यह क्या धर्म है ? इसके उत्तर में साधु ने कहा—नाव छोड़ दीजिये । महाराज ! मेरी नौका में धन नहीं है केवल लता-पत्र से यह भरी पड़ी है । अतः इस नौका द्वारा मैं अपने घर जा रहा हूँ, इसमें विरोध करने से क्या लाभ हो सकता है । इतना कहने पर उस तापस ने कहा—इसी क्षण तुम्हारी बात सत्य हो । तदनन्तर साधु वैश्य का धन तो अन्तहित हो गया और नौका में केवल लतापत्र आदि शेष रह गये । अपनी नौका में धन न देखकर साधु व्याकुल हो गया और सोचने लगा—यह क्या हुआ, क्या कारण है, मेरा पात्र कहाँ चला गया । वज्राधात से आहत होने की भाँति अत्यन्त दुःखित होकर अब कहाँ जाऊँ, कहाँ रहूँ, और क्या करूँ, हा मेरा धन क्या हो गया । ३४-३९। इस प्रकार मूर्च्छित होकर वह वैश्य बार-बार विलाप करने लगा । पश्चात् जामाता के बताने पर वह तपस्त्री के पास गया । गले में वस्त्र बाँधकर तपस्त्री को प्रणाम

गले वसनमादाय प्रणनाम स तापसम् । को भवानिति प्रच्छ देवो गन्धर्व ईश्वरः ॥४०
देवदेवोऽथ वा कोऽपि न जाने तव विक्लमम् । आज्ञापय महाभाग तद्विडम्बनकारणम् ॥४१

तापस उवाच

आत्मा चैवात्मनः शत्रुस्तथात्र च प्रियोऽप्रियः । त्यज मौढ्यर्मति साधो प्रवादं सा वृथा कृथा ॥४२
इति विज्ञापितः साधुर्न बुनोद्य महाधनः । पुनः स तापसः प्राह कृपया पूर्वकर्मतः ॥४३
चन्द्रचूडो यदानर्च सत्यनारायणं नृपः । अनपत्येन सुचिरं पुत्रकन्यार्थिना त्वया ॥४४
प्रार्थित न स्मृतं ह्येव इदानीं तप्यसे वृथा । सत्यनारायणो देवो विश्वल्यायी फलप्रदः ॥४५
तमनादृत्य दुर्बुद्धे कुतः सम्यग्भवेत्तत्व । पुरा लब्धवरं स्मृत्वा सस्मार जगदीश्वरन् ॥४६
सत्यनारायणं देवं तापसं तं ददर्श ह । प्रणम्य शुचि क्षायेन परिक्रम्य पुनः पुनः ॥
तुष्टाव तपतं तत्र साधुर्गदगदया गिरा ॥४७

साधुरुखाच

सत्यरूपं सत्यसन्धं सत्यनारायणं हरिम् । यत्सत्यत्वेन जगतस्तं सत्यं त्वां नमाम्यहम् ॥४८
त्वन्मायामोहितात्मानो न पश्यन्त्यात्मनः शुभम् । दुःखाभ्योदौ सदा मग्ना दुःखे च सुखमानिनः ॥४९
मूढोहं धनगर्वेण मदान्धीकृतलोचनः । न जाने स्वात्मनः क्षेमं कथं पश्यामि मूढधीः ॥५०

किया और कहने लगा—आप कौन हैं देव, गन्धर्व या ईश्वर ! अथवा देवाधिदेव हैं, मैं आप के पराक्रम जानने में अग्रमर्थ हैं । महाभाग ! इस भाँति के व्यवहार करने का कारण बताइये ॥४०-४१

तापस बोले—साधो ! आत्मा ही आत्मा का शत्रु है तथा वही उसका प्रिय और अप्रिय भी । अतः व्यर्थ बाद करने की आवश्यकता नहीं है, अपनी मूढता का त्याग करो । तापस के इस भाँति कहने पर भी उस धनादृय साधु को ज्ञान उत्पन्न न हुआ । इसलिए उसके पूर्व कर्मों के कारण कृपा करते हुए तापस ने कहा—राजा चन्द्रचूड़ जिस समय सत्यनारायण की पूजा कर रहे थे, सन्तानहीन होकर तुमने भी सन्तानार्थ उनकी प्रार्थना की थी, क्या तुमने उसका विस्मरण नहीं किया, फिर क्यों व्यर्थ संतप्त हो रहे हो । दुर्बुद्धे ! सत्यनारायण देव विश्वव्यापी हैं, और वही फल प्रदान करते हैं, उनका अनादर करने पर तुम्हें सुख प्राप्त कैसे हो सकता है । पश्चात् उस वैश्य ने पहले समय में प्राप्त हुए वरदान का स्मरण करते हुए जगदीश्वर का स्मरण किया, पुनः उस तपस्वी को सत्यनारायण देव के रूप में देखा । पृथिवी में गिरकर दण्डवत् करके उनकी बार-बार परिक्रमा करते हुए अपनी गद्गद वाणी द्वारा तापस को प्रसन्न करने लगा—४२-४७

साधु ने कहा—सत्यनारायण देव को नमस्कार है, जो सत्य रूप, सत्य प्रतिज्ञ और जगत् में सत्य रूप से वर्तमान हैं । तुम्हारी माया से मुग्ध होकर मनुष्य अपने आत्म कल्याण को नहीं देखता है, तथा दुःख सागर में निमग्न रहते हुए भी अपने को सुखी अनुभव करता है । मैं तो मूर्ख हूँ, धन के गर्व से मेरे दोनों नेत्र अन्धे से हो गये हैं । इसलिए अपने आत्म-कल्याण को नहीं जानता हूँ, एवं मूर्खबुद्धि होने के नाते देख भी कैसे सकता हूँ । अतः हरे ! मेरी दुष्टता को क्षमा कीजिये, आप तपोनिधि को नमस्कार है । मुझे अपना

क्षमस्व मम दैरात्म्यं तपोधाम्ने हरे नमः । आज्ञापयात्मदास्यं से येन ते चरणौ स्मरे ॥५१

इति स्तुत्वा लक्ष्मुद्राः स्थापिताः स्वपुरोधसि । गत्वावासं पूजयिष्ये सत्यनारायणं प्रभुम् ॥५२

तुष्टो नारायणः प्राह वाञ्छा पूर्णा भवेत्तु ते । पुत्रपौत्रत्समायुक्तो भुक्त्वा भोगास्त्वनुत्समान् ॥

अन्ते सानिध्यसासाद्य सोदरे त्वं मया सह ॥५३

इत्युस्त्ववान्तर्दधे विष्णुः साधुश्च स्वाक्षरं यथौ । सप्ताहेन गृहं प्राप्तः सत्यदेवेन रक्षितः ॥५४

आश्त्य नगराभ्याशे प्राहिणोद्दृतमाश्रमम् । गृहमागत्य दूतोऽपि प्राह लीलावतीं प्रति ॥५५

जामात्रा सहितः साधुः कृतकृत्यः समागतः । सत्यनारथ्याचार्यां स्थितः साध्वी सकल्यका ॥५६

पूजाभारं सुतायै सा दत्त्वा नौकान्तिकं यथौ । सखीगणैः परिवृता कृतकौतुकमञ्जला ॥५७

कलादती त्ववज्ञाय प्रसादं सत्वरा यथौ । पातुं पतिमुखाम्भोजं चकोरीव दिनात्यये ॥५८

अवज्ञानात्प्रसादस्य नौकाशङ्खपतेरथ । निसग्ना जलमध्ये तु जामात्रा सह तत्क्षणात् ॥५९

मग्नं जामात्रं पद्यन्विलाप स मूर्च्छितः । लीलावती तु तदृष्टा मूर्च्छिता विलाप ह ॥६०

ततः द्वालवती दृष्ट्वा पपात भुवि मूर्च्छिता । रम्भेव वातदिहता कान्तकान्तेतिदादिनी ॥६१

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणाकरकौशल । त्वदा विरहिता पत्या निराशा विधिना कृता ॥

पत्युरद्दृं गतं कस्मादद्वाङ्मं जीवनं कथम् ॥६२

दास बनाने की कृपा करें जिससे आपके चरणों का स्मरण करता रहूँ । ४८-५१। इस भाँति स्तुति करके एक लक्ष्मुद्रा सामने रखा और कहा—घर पहुँचकर सत्यनारायण देव की अर्चना करूँगा । उपरांत नारायण ने प्रसन्न होकर कहा—‘तुम्हारा मनोरथ सफल हो’ तथा पुत्र-पौत्र समेत उत्तम भोगों के उपभोग करने के पश्चात् मेरे समीप रहकर आनन्दानुभव करना । इतना कहकर विष्णु अन्तर्हित हो गये और वह वैश्य अपने नगर की ओर चला । सत्यदेव से सुरक्षित होकर वह वैश्य सातवें दिन अपने घर पहुँचा । अपने नगर के समीप पहुँचकर उसने अपने घर एक सेवक भेजा । घर पहुँचकर वह सेवक लीलावती से कहने लगा कि—जामाता के साथ कृतकृत्य होकर साधु आ गये । उस समय वह अपनी कन्या समेत सत्यनारायण की अर्चना कर रही थी । ५२-५६। उसने पूजा का सभार कलावती पर रखकर स्वयं नौका के पास चली गई । कलावती भी, जो सखियों के साथ मैं वहीं मांगलिक कौतुक कर रही थी, प्रसाद-परित्याग रूप अनादर करके शीघ्र वहाँ पहुँच गई । उस समय वह सायंकाल में चकोरी की भाँति पति के कमलमुख का पान करना चाहती थी, किन्तु, उस प्रसाद के अपमान करने के कारण शंखपति की नौका जामाता के समेत उसी क्षण जल में अन्तर्हित हो गई । अपने जामाता को उस जल में निमग्न होते देखकर वह वैश्य मूर्च्छित होकर विलाप करने लगा, लीलावती भी उसे मुनकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी में गिर पड़ी । चेतना प्राप्त होने पर विलाप करने लगी—वायु के झोके से कम्पित केले की भाँति काँपती हुई—कान्त-कान्त कहकर पुकारने लगी तथा हा नाथ, प्रिय धर्म एवं करुणानिधि-कौशल ! मुझ वियोगिनी को देव ने पति से सर्वदा के लिए पृथक् कर दिया । पति का शरीरार्ध भाग तो चला गया, शेष यह अर्द्धांग भाग जीवित कैसे रहे । ५७-६२.

सूत उवाच

कलावती चारुकलामु कौशला प्रवालरक्ताङ्गिधतलातिकोमला ।

सरोजनेत्राम्बुकणान्विमुञ्चती मुक्तावलीभिस्तनकुडमलाञ्जिता ॥६२

हा सत्यनारायण सत्यसिंधो मग्नं हि मासुद्वर तद्वियोगे ।

श्रुत्वार्तशब्दं भगवानुवाच वचस्तदाम्नाशसुद्वृद्धवं च ॥६४

साधो कलावती क्षिप्रं मत्प्रसादं हि भोजदेत् ! तत्पश्चादिह सम्प्राप्य पर्ति प्राप्स्यति सा शुचः ॥६५

इत्याकाशे वचः शुत्वा विस्मिता तच्चकार सा । नारायणस्य कृपया र्ति प्राप्ता कलावती ॥६६

तत्रैव साधुः साह्यादो भक्त्या गरमया युतः । पूजनं लक्ष्मुद्राभिः सत्यदेवस्य चाकरोत् ॥६७

तेन व्रतप्रभावेन पुत्रपौत्रसमन्वितः । भुक्त्वा भोगान्मुदा युक्तो यृतः स्वर्गपुरं यथौ ॥६८

इतिहासमिन्द्रं भक्त्या शृणुयाच्यो हि मानवः । सोऽपि विष्णुप्रियतरः कामसिद्धिमवाप्न्यात् ॥६९

इति ते कथितं विप्र व्रतानामुत्तरां व्रतम् । कलिकाले परं पुण्यं ब्राह्मणस्य मुखोद्भवम् ॥७०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि

श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः । २९

सूत जी बोले—कलावती ने, जो सुन्दर कलाओं में निपुण, मूँगे की भाँति चरणतल रक्तवर्ण एवं अति कोमल तथा कमल की भाँति अपने विशाल नेत्रों से अशुविन्दुओं की पवित्र धारा बहाती थी, जो मुकुलित पुष्पों की भाँति उसके स्तनों पर भोती के हार की भाँति दिखाई देती थी, कहा—हा सत्यनारायण सत्यसिंधो ! इस पति वियोग से मेरा उद्धार कीजिये, मैं इसमें डूब रही हूँ । इन काशणिक वाक्यों को सुनकर भगवान् आकाशवाणी द्वारा बोले—साधो ! यह कलावती शीघ्र मेरे प्रसाद का भक्षण कर ले, पश्चात् यहाँ आने पर अपने पति की प्राप्ति कर सकेगी, अतः शोक मत करो । इस आकाशवाणी को सुनकर उसने विस्मित होती हुई वैसा ही किया नारायण की कृपा से कलावती ने पति दर्शन प्राप्त किया । उसी स्थान पर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए उस साधु ने अनन्य भक्ति में विभोर होकर एक लक्ष्मुद्रा द्वारा सत्यनारायण देव की अर्चना किया । उस द्रवत के प्रभाव से पुत्र-पौत्र युक्त होकर उसने उत्तम भोगों के उपभोग करते हुए आनन्दमय जीवन व्यतीत किया और निधन होने के उपरांत स्वर्ग निवास प्राप्त किया । जो मानव भक्ति समेत इस इतिहास का थ्रवण करेंगे वे विष्णु के अत्यन्त प्रिय होंगे और उनकी कामनाएँ सफल होंगी । विप्र ! इससे इस उत्तमव्रत को, जो कलिकाल में परमपुण्य स्वरूप और ब्राह्मण के मुख से निकला है, तुम्हें सुना दिया । ६३-७०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में श्रीसत्यनारायणव्रतमाहात्म्य-वर्णन

नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त । २९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्नुहृजं कर्म वृत्तं प्रोक्तं पुरातनैः । ब्रतानां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं नारायणव्रतम् ॥१
त्वन्मुलेन श्रुतं सूतं तापत्रयविनाशनम् । इदानीं श्रोतुमिच्छा॒सि लिङ्गं ज्ञानं कर्मचोरमम् ॥२
सर्वेषां इहृचर्याणां इहृचर्ये हि किं परम् । तन्मे वद महाप्राज्ञ सर्वज्ञोऽसि मतौ मम ॥३

सूत उवाच

आसीत्पुरा कलियुगे पितृशर्ना द्विजोत्तमः ! वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो यमलोकभयान्वितः ॥४
ज्ञात्वा घोरतमं कालं कलिकालमधर्मजम् । वार्धनं यमराष्ट्रस्य तदः चिन्तातुरोऽभवत् ॥५
केनाश्रदेण वर्णनं मम श्रेयो भवेदिह । कलौ संन्यासमार्गां हि दम्भगाखण्डखण्डितः ॥६
वानप्रस्थः कलौ नास्ति ब्रह्मचर्यं क्वचित्क्वचित् । गार्हस्यं कर्म सर्वेषां कर्मणां श्रेष्ठभुव्यते ॥७
अतः इत्रोसङ्ग्रहो ग्राहो मया घोरे कलौ युगे । यदि मे च भवेन्नारी मनोदृत्यनुसारिणी ॥
तर्हि ने सफलं जन्म मम श्रेयो भवेदिह ॥८
इत्येवं सम्भवं कृत्वा शिवां मङ्गलदायिनीम् । चन्दनादैश्च सम्पूज्य तुष्टाव मनसा पराम् ॥
विश्वेश्वरीं जगन्मूर्तिं सच्चिदानन्दरूपिणीम् ॥९

अध्याय ३०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषि ने कहा—भगवन् ! जिस गुह्य कर्म-वृत्तान्त को प्राचीनों ने कहा था, जो सभी व्रतों में श्रेष्ठ एवं नारायणव्रतप्रधान है, उसे हम लोगों ने आपके मुखारबिन्द द्वारा श्रवण किया । सूत जी ! इस समय उस लिंगज कर्म को, जो उत्तम एवं तीनों तापों को नष्ट करता है, सुनने की इच्छा है । महाप्राज्ञ ! सभी के ब्रह्मचर्य में श्रेष्ठ क्या है ? हमें बताने की कृपा करें क्योंकि मेरी सम्मति से आप सर्वज्ञ हैं । १-३

सूत जी बोले—कलियुग में पितृशर्ना नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो वेद एवं वेदाङ्ग के तत्त्वों का ज्ञाता और सदैव यमलोक से भयभीत था । इस कलिकाल के घोरतम काल (समय) को जानकर, जो अधर्म द्वारा उत्पन्न एवं यमराज के यहाँ जाने के लिए बंधन रूप था, अत्यन्त चित्तित हुआ ‘किस आश्रम या वर्ण (जाति) द्वारा मेरा कल्याण होगा’ क्योंकि कलियुग में संन्यास-मार्ग दम्भ तथा पाखंड से दूषित हो गया है । और वानप्रस्थ कलि में है ही नहीं, हाँ, ब्रह्मचर्य की प्रथा कहीं-कहीं पर प्रचलित है । किन्तु, गार्हस्य-कर्म सभी कर्मों में श्रेष्ठ बताया गया है, इसलिए मुझे इस घोर कलियुग के समय स्त्री का संग्रह करना श्रेयस्कर होगा—यदि मुझे मनोनुकूल स्त्री की प्राप्ति हो जाये, तो मेरा जन्म सार्थक तथा मेरा कल्याण भी होगा इस प्रकार निश्चित करके मंगल प्रदान करने वाली शिवा पार्वती की जो विश्वेश्वरी, जगत्स्वरूप एवं सच्चिदानन्द रूप होकर प्रस्त्यात है, आराधना चन्दनादि द्वारा सुसम्पन्न करके मानसिक स्तुति करते हुए उन्हें प्रसन्न करने लगा—४-९

पितृशर्मोवाच

नमः प्रकृत्यै सर्वायै कैवल्यायै नमोनमः । त्रिगुणैक्यस्वरूपायै तुरीयायै नमोनमः ॥१०
 प्रहतत्त्वजनन्यै च द्वन्द्वकर्त्र्यै नमोनमः । ब्रह्मातर्नमस्तुभ्यं सःहङ्कारपितामहि ॥११
 पृथगुणायै शुद्धायै नमो मातर्नमो नमः । विद्यायै शुद्धसत्त्वायै लक्ष्यै सत्त्वरजोमयि ॥१२
 नमो मातरविद्यायै ततः शुद्धचै नमो नमः । काल्यै सत्त्वतमोभूत्यै नमो मातरनेमो ननः ॥१३
 स्त्रियै शुद्धरजोभूत्यै नमस्त्रैतोव्यवासिनि । नमो रजस्तमोभूत्यै दुर्गायै च नमो नमः ॥१४
 इति श्रुत्वा स्तं देव्या प्रसादः स्थापितस्तथा । सुतायां विष्णुयशसो ब्राह्मणस्य तदा स्वयम् ॥१५
 तामुद्वाङ्ग्य द्विजो देवीं नान्ना वै ब्रह्मचारिणोम् । न्यवसन्मथुरायां स कृत्वा धर्मे स्वयं हृदि ॥१६
 प्रियायै स रजोवत्यै क्रतुदानं करोति हि । चत्वः रश्वात्मजाश्चासंश्रुतुर्वेदैक्यधारिणः ॥१७
 क्रहयजुश्च तथा साम तुर्यश्वासीदर्थर्वणः । क्रचश्च तनयो व्याडिन्यायशःस्त्रविशारदः ॥१८
 यजुषस्तु सुतो जातो मीमांसो लोकविश्रुतः । पाणिनिः सामनस्यै च सुतोऽभूच्छब्दपारगः ॥१९
 पुत्रो वरहचिः श्रेष्ठोऽथर्वणस्य नृपत्रियः । ते गता भागधेशस्य चन्द्रगुप्तस्य वै सभाम् ॥२०
 नृपस्तान्पूजयामास बहुमानपुरःसरम् । अब्रवीत्तांस्ततो राजा ब्रह्मचर्यं हि किं परम् ॥२१
 व्याडिराह महाराज यः स्तुतौ तत्परः पुमान् । न्यायतोऽखिलदेवानां ब्रह्मचारी हि मे मतः ॥२२

पितृशर्मो बोले—सर्वरूपप्रकृति को नमस्कार है, उस केवल स्वरूप को नमस्कार है, तीनों गुणों की एक सूर्ति तथा तुरीय (चौथे) स्वरूप को बार-बार नमस्कार है, महतत्व को जन्म देने वाली को नमस्कार है, जो सुखदुःखादि को प्रदान करती रहती है, ब्रह्मातः ! तथा अहंकार समेत पितामहि ! तुम्हें नमस्कार है, मातः ! तुम्हारे निर्गुण एवं शुद्धस्वरूप को नमस्कार है, सत्वरजोगुणात्मके ! विद्या, शुद्धसत्त्व, एवं पितामही को नमस्कार है, मातः ! अविद्या तथा उससे शुद्धरूप को बार-बार नमस्कार है, मातः ! सत्त्व तथा तमोगुण वाली काली को बार-बार नमस्कार है, शुद्धरज वाली स्त्री स्वरूप और त्रैलोक्य निवासिनी को नमस्कार है, रज तथा तमोभूर्ति दुर्गा जी को बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार की स्तुति सुनकर देवी जी ने उनपर कृपा की । विष्णुयशस्वी नामक ब्राह्मण की कन्या का पाणिग्रहण उस ब्राह्मण के साथ सुसम्पन्न हो गया । उस ब्राह्मण ने उस देवी का ब्रह्मचारिणी नामकरण करके मथुरा पुरी का निवासी होकर उसके साथ धर्माचरण आरम्भ किया । क्रतुकालीन (मासिक धर्म) स्नान के अनन्तर वह ब्राह्मण उसमें क्रतुदान करने लगा जिससे कुछ दिनों में उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए । १०-११। जो चारों क्रहग्, यजु, साम और अथर्वेद के निष्णात् विद्वान् थे । उनमें क्रहवेद के व्याधि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो न्यायशास्त्र में निपुण था । यजुर्वेदी के लोक प्रस्त्यात मीमांसा नामक पुत्र हुआ, सामवेदी के शब्द-शास्त्र (व्याकरण) का पारगामी विद्वान् पाणिनि नामक हुआ और अथर्ववेदी के वरहचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो राजप्रिय एवं श्रेष्ठ था । वे सभी मगधाधिनायक चन्द्रगुप्त की सभा में पहुँचे । राजा ने अत्यन्त सम्मानपूर्वक उनकी सेवा की पश्चात् उसने सब से पूँछा—ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ वस्तु है क्या ? व्याधि ने कहा—महाराज ! जो पुरुष न्यायतः समस्त देवों की

मीमांसश्चाह भो राजन्यज्ञे यो हि पुमान्त्वरः । कर्मणा यजते देवान्नोचनादिभिरर्जयेत् ॥२३
 हवनं तर्पणं कृत्वा ब्रह्मादिकसुरान्प्रति । तत्प्रसादं हि गृहीयाद्ब्रह्मचारी च स स्मृतः ॥२४
 श्रुत्वेदं पाणिनिश्चाह चन्द्रगुप्त शृणुष्व भोः । त्रिधास्त्वरैः परं ब्रह्म शुद्धशब्दमयैः परैः ॥२५
 तथैव सूत्रपाठैश्च लिङ्घाद्यतुगणावृतैः । यो यजेद्ब्रह्मचारी स परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२६
 श्रुत्वा वररुचिश्चाह शृणु भागधार्मपते । गृहीत्वा यज्ञसूत्रं यः प्राप्तो गुरुकुले वसन् ॥२७
 दण्डलोकसन्ताधारी भिक्षार्थीं देवतपरः । आज्ञदा च गुरोर्वर्तेद्ब्रह्मचारी हि स स्मृतः ॥२८
 इति तेषां वचः श्रुत्वा पितृशर्माबिवौदिदिस् । यो गृहस्थे वसन्विष्टः पितृदेवातिथिषियः ॥२९
 गामी पाणिगृहीतायामृतुकालां यतेन्द्रियः । ब्रह्मचारी हि मुख्यस्तः श्रुत्वा राजाब्रवीदिदिस् ॥२०
 स्वामिन्यद्बूबृतः चोक्तं धर्मज्ञेन यशस्त्विनाः । कलौ भयङ्करे प्राप्ते स धर्मो हि मतो मम ॥३१
 इत्युक्त्वा तस्य शिष्योऽभ्रद्युरुवाक्यपरादगः । तथान्ते मरणं प्राप्य स्वर्गलोकं नृपो ययौ ॥३२
 पितृशर्मापि मनसा ध्यात्वा दामोदरं हरिम् । हिमालयं गिरिं प्राप्य गोगध्यानपरोऽभवत् ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलण्डपरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रिशोऽध्यायः । ३०

स्तुति के लिए कटिबद्ध रहता है, उसका श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य है। मीमांसा ने कहा—राजन् ! जो पुरुष यज्ञ में कर्मकाण्ड विधान से गोरोचन चन्द्रगुप्ति से देवों की पूजा करते हुए ब्राह्मणों एवं देवों को हवन-तर्पण द्वारा प्रारान्त करता हुआ एवं उनके प्रसाद को ग्रहण करता है वही श्रेष्ठ ब्रह्मचारी है। इसे सुनकर पाणिनि ने कहा—राजन् चन्द्रगुप्ति ! जो परमशुद्ध शब्द (शास्त्र) मय तीनों स्वरों (उदात्त, अनुदात्त और स्वरित) एवं सूत्रों के पाठ द्वारा जिसमें लिंग, धातु तथा गणों के सन्निवेश हैं, परब्रह्म का यज्ञानुष्ठान सुसम्पन्न करता है, वही ब्रह्मचारी है, और उसे परब्रह्म की प्राप्ति होती है। यह सुनकर वैररुचि ने कहा—मगधाधिनायक ! यज्ञोपवीत संस्कार होने पर जो गुरुकुल में रहते हुए हण्ड, लोम, नख को धारण कर भिक्षाटन करके वेदाध्ययन में अनुरक्त रहता है और सदैव गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करता है, वही ब्रह्मचारी है इन लोगों की बातें सुनकर पितृशर्मा ने कहा—जो ब्राह्मण गृहस्थी में रहते हुए पितृ, देव तथा अम्यागत की सेवा में तप्तर रहकर ऋतुकाल के उपरांत अपनी धर्मपत्नी के साथ ही गमन करता है, वही संयमी मुख्य ब्रह्मचारी कहा गया है। इसे सुनकर राजा ने कहा—स्वामिन् ! इस भयंकर कलि के समय आपकी ही बात उत्तम एवं धर्मिक प्रतीत हो रही है, क्योंकि आप धर्मज्ञाता तथा परमयशस्त्री हैं और मेरी भी यही सम्मति है। इतना कहकर गुरुवाक्य का अनन्य प्रेमी वह राजा उनका शिष्य हुआ एवं निधन होने पर स्वर्ग पहुँच गया। उपरांत पितृशर्मा भी भगवान् दामोदर का मानसिक ध्यान करते हुए हिमालय पर्वत पर पहुँचे और वहाँ योगियों की भाँति समाधिनिष्ठ हुए। १८-३३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३०।

अथैकांत्रिशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऋचः

भगवन्सर्वतीर्थनां दानानां किं परं स्मृतम् । यत्कृत्वा व ब्लौ घोरे परां निर्वृतिमाप्नुयात् ॥१

सूत उवाच

सामनस्य सुतः श्रेष्ठः पाणिनिर्नामि विश्रुतः । कणभुजरशिष्येश्च शास्त्रज्ञैः स पराजितः ॥२
लज्जितः पाणिनिस्तत्र गतस्तीर्थन्तरं प्रति । स्नात्वा सर्वाणि तीर्थान्ति संतर्प्य पितृदेवताः ॥३
केदारमुबकं पीत्वा शिवध्यानपरोऽभवत् । पर्णशी सप्तदिवसात्भजलभक्षस्ततोऽभवत् ॥४
ततो दशदिवान्ते स वायुभक्षो दशाहनि । अष्टाविंशद्विने रुद्रो वरं ब्रूहि वचोऽब्दवीत् ॥५
श्रुत्वामृतमयं वाक्यमस्तौद्गद्गदया गिरा । सर्वेशं सर्वलिङ्गेशं गिरिजावल्लभं हरम् ॥६

पाणिनिरुवाच

नमो रुद्राय महते सर्वेशाय हितैषिणे । नन्दीसंस्थाय देवाय विद्याभयकराय च ॥७
पापान्तकाय भर्गाय नमोऽनन्ताय वेधसे । नमो मायाहरेशाय नमस्ते लोकशङ्कर ॥८
यदि प्रसन्नो देवेश विद्यामूलप्रदो भव । परं तीर्थं हि मे देहि द्वैमातुरपितर्नमः ॥९

अध्याय ३१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! समस्त तीर्थों में कौन तीर्थ श्रेष्ठ है, जिसकी सेवा करने पर निर्वाण पद की प्राप्ति हो जाती है । १

सूत जी बोले—सामन (सामवेदी) के पुत्र पाणिनि जी शास्त्रार्थ में काणभुक् के प्रशिष्य (शिष्य के शिष्य) से पराजित हो गये थे । लज्जित होकर पाणिनि जी उसी समय तीर्थयात्रा के लिए प्रस्थित हो गये । सभी तीर्थों में स्नान एवं पितृदेव तर्पण करते हुए केदार तीर्थ में पहुँचे और वहाँ जलपान करके शिव जी का ध्यान करना आरम्भ किया । सात दिन तक जीर्ण शीर्ण पत्तों का भक्षण करने के उपरांत दश दिन तक जलपान और दश दिन तक केवल वायुभक्षण किया । अनन्तर अट्टाइसवें दिन रुद्र भगवान् ने कहा—वर की याचना कीजिये ! इस अमृतमयी वाणी को सुनकर उन्होंने शंकर भगवान् की जो सर्वेश सम्पूर्ण लिंगों के ईश एवं गिरिजा के हृदय वल्लभ हैं, अपनी गद्गद वाणी द्वारा स्तुति करना आरम्भ किया । २-६

पाणिनि बोले—महान्, सर्वेश, हितैषी, नन्दी पर बैठने वाले, देव, विद्या एवं अभयदान देने वाले रुद्र को नमस्कार है । पापनाशक, देव, अनन्त तथा ब्रह्मरूप को नमस्कार है, उमापति, हर ईश रूप और लोकशंकर को नमस्कार है । देवाधिदेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे विद्याओं का मूल कारण प्रदान करने की कृपा करें । हे द्वैमातुर के पिता ! आप को नमस्कार है, आप इन्हीं श्रेष्ठ तीर्थों को मुझे प्रदान करें । ७-१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा महादेवः सूत्राणि प्रददौ मुदा । सर्ववर्णमयान्येव अइउणादिशुभानि वै ॥१०
ज्ञानहृदे सत्यजले रागद्वेषमन्तपहे । यः प्राप्तो नानसे तीर्थं सर्वतीर्थफलं भजेत् ॥११
मानसं हि नहत्तीर्थं ब्रह्मदर्शनकारकम् । पाणिने ते ददौ विप्रं कृतकृत्यो भवन्नभव ॥१२
इत्युक्तवात्तर्दधे रुद्रः पाणिनिः स्वरूहं यथौ । सूत्रपाठं धातुपाठं गणपाठं तथैव च ॥१३
लिङ्गंसूत्रं तथा कृत्वा परं निर्वाणमाप्तदात् । तस्मात्स्वं भार्गवश्रेष्ठं मानसं तीर्थमाचर ॥१४
यतो याता रुद्रं गङ्गा त्वर्तीर्थमयी शिवः । गंगातीर्थत्परं तीर्थं न भूतं त भविष्यति ॥१५
श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वतिं चतुर्पुण्ड्रपरपरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकांत्रिशोऽध्यायः । ३१

अथ द्वार्त्रिशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चदर्शनम्

सूत उवाच

तोतादर्या द्विजः कश्चिद्दोपदेव इति श्रुतः । बभूव कृष्णभक्तश्च वेदवेदाङ्गपारगः ॥१
गत्वा वृन्दावनं रम्यं गोपगोपीनिवेवितम् । मनसा पूजयामास देवदेवं जनार्दनम् ॥२

सूत जी बोले—यह सुनकर महादेव जी ने प्रसन्न होकर उन्हें सूत्रों को प्रदान किया, जो समस्त वर्ण (अक्षर) एवं शुभ अइउण के रूप में हैं । इस ज्ञानसरोवर रूप मानसतीर्थ में जो सत्य रूप जल से परिपूर्ण एवं राग-द्वेष रूपी मल से हीन हैं, जो पहुँचकर स्नान करता है, उसे समस्त तीर्थों के फल प्राप्त होते हैं । उन्होने कहा—विप्र, पाणिनि ! यह मानस नामक महान् तीर्थ है, इसी से ब्रह्मदर्शन प्राप्त होता है, मैंने इसे तुम्हें दे दिया इससे आप कृतकृत्य हो जायेंगे । इतना कहकर भगवान् रुद्र अन्तर्हित हो गये और पाणिनि जी भी अपने घर पहुँच गये । उन्होने उनमें सूत्रपाठं, धातुपाठं, गणपाठं, और लिंगसूत्रों की सृष्टि कर निर्वाण प्राप्त किया । अतः भार्गवश्रेष्ठ आप भी मानसतीर्थ का सेवन कीजिये । क्योंकि उसी द्वारा सम्पूर्ण तीर्थमयी एवं कल्याणप्रदायिनी गंगा की उत्पत्ति हुई है । गंगातीर्थ से श्रेष्ठतीर्थं न कोई है और न होगा । १०-१५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३१ ।

आध्याय ३२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—तोतादरी में बोपदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो कृष्ण जी का भक्त एवं वेद-वेदाङ्ग का निष्णात विद्वान् था, गोप-गोपियों द्वारा सुसेवित उस रमणीक वृन्दावन में जाकर उन्होने देव-नायक जनार्दन भगवान् की आराधना आरम्भ की । १-२। एक वर्ष के उपरांत भगवान् कृष्ण ने उन्हें प्रत्यक्ष

वर्षन्ते च हरिः साक्षाद्वौ ज्ञानमनुत्तमम् । तेन ज्ञानेन सम्प्राप्ता हृदि भागवती कथा ॥३
शुकेन वर्णिता या वै विष्णुराताय धीमते । हां कथां वर्णयामास मोक्षमूर्तिं सनातनीम् ॥४
कथान्ते भगवान्विष्णुः प्रादुरासीज्जनार्दनः । उवाच स्त्रिया वाचा नरं ब्रह्मि महामते ॥५

बोपदेव उवाच

नमस्ते भगवन्विष्णो लोकानुग्रहकारक । त्वया तत्पिदं विश्वं देवतिर्थङ्करादिकम् ॥६
त्वद्ग्राहा नरकार्ताश्च ते कृतार्थाः कलौ युगे । त्वया दत्तं भागवतं श्रीमद्भासेन निर्धितम् ॥
माहात्म्यं तस्य मे ब्रूहि यदि दत्तो वररत्वया ॥७

श्रीभगवानुवाच

एकदा भगवान्द्वो भवान्या सह शङ्खः
बौद्धराज्ये जगत्प्राप्ते दम्भपालण्डनिर्मिते । दृष्ट्वा काश्यां भूमितुङ्गं प्रणनाम मुदा युतः ॥
जय सच्चिदानन्द विभो जगदानन्द कारक ॥९
इति श्रुत्वा शिवा प्राह को देवोऽस्ति तदोत्तमः । त होवाच महादेवि यज्ञः सप्ताहमत्र वै ॥१०
तस्माद्भूमिपवित्रत्वमिह प्राप्तं वरानने । सर्वतीर्थाधिकत्वं च स्वयं ब्रह्म सनातनम् ॥११
इति श्रुत्वा शिवा देवी प्राप्तातीदगुह्यकालयम् । रुद्रेण सहिता तत्र भूमिशुद्धिमकारयत् ॥१२
चण्डीशश्च गणेशश्च नन्दिनो गुह एव च । रक्षार्थे स्थापितास्तत्र देवदेवेन भो द्विज ॥१३

होकर उत्तम ज्ञान प्रदान किया । उसो ज्ञान द्वारा उनके हृदय में सम्पूर्ण भागवती कथा का ज्ञान हुआ, जिसे शुकदेव जी ने अनन्यविष्णु-भक्तों को मुनाया था । मोक्ष की साक्षात् मूर्ति एव सनातनी (अविनाशिनी) उस कथा का वर्णन उन्होंने किया, जिससे कथा की समाप्ति के समय में भगवान् विष्णु ने प्रत्यक्ष होकर दर्शन दिया । पश्चात् जनार्दन देव ने कहा कि महामते ! वरदान की याचना करो । ३-५

बोपदेव ने कहा—लोकों के ऊपर अनुग्रह रखने वाले भगवान् विष्णु को नमस्कार है, आपने ही इस निखिल विश्व की जो देव, पक्षी एवं मनुष्यों आदि से युक्त है, रचना करके उसे विस्तृत किया है । कलियुग में नरक भीरु प्राणी, तुम्हारे नामस्मरण के नाते कृतार्थ रहेंगे । जिस श्रीमद्भागवत की रचना श्रीमान् व्यास जी ने की है, उसे आपने मुझे प्रदान किया है, आपने यदि मुझे वरदान दिया है, तो उसका माहात्म्य मुझे बताने की कृपा कीजिये । ६-७

श्रीभगवान् बौले—एकबार भगवान् शंकर जी भवानी को साथ लेकर उस समय काशीपुरी में आये, जब कि सारा जगत् दंभ-पालण्डपूर्ण उस बौद्ध राज्य से आक्रान्त था । वहाँ पहुँचकर भूमि-तुरंग (ढीले) को सर्व प्रणाम किया—विभो ! जगत् के आनन्दप्रदायक एवं सच्चिदानन्द रूप आप की जय हो । इसे सुनकर शिवा (पार्वती) ने कहा—तुम्हारा प्रधान देव यहाँ कौन है ! उन्होंने कहा—महादेवि ! यहाँ सप्ताह्यज्ञ हुआ था, इसीलिए शोभनेमुखे ! यह भूमि अत्यन्त पवित्र हो गई है । इसे सुनकर पार्वती जी ने शंकर के साथ उसी गुहास्थान में अपना वासस्थान बनाया और उस भूमि को पवित्र किया । द्विज ! देवाधिदेव ने चंडीश, गणेश, नन्दी और स्कन्द को वहाँ रक्षार्थ नियुक्त करके कहा—देवि ! मेरी उस

भृणु देवि कथां इम्यां नम मानससंस्थिताम् । इत्युक्त्वा ध्यानमात्थाय सप्ताद्वेन स्वर्वर्णयत् ॥१४
 अष्टाहे नेत्र उन्मील्य दृष्ट्वा निद्रागतां शिवाम् । बोधयामास भगवान्कथान्ते लोकशङ्करः ॥१५
 कियती ते श्रुता गाथा श्रुत्वाह जगद्म्बिका : मुधामन्थनपर्यन्तं चरित्रं शिवयेरितम् ॥१६
 कोटरस्थः शुकः श्रुत्वा चिरञ्जीदत्त्वमागतः । पार्वत्या रक्षितोऽसौ वै शुकः परमसुन्दरः ॥१७
 स्थित्वा शिवस्य सदने मम ध्यानपरोऽभवत् । ममाज्ञया शुकः साक्षात्त्वदीयहृदयस्थितः ॥१८
 तेन प्राप्तं भागवतं माहात्म्यं चास्य दुर्लभम् । त्वं वै गन्धर्वसेनाय पित्रे विक्रमशूपतेः ॥१९
 नर्मदाकूलमासाद्य श्रावयस्वं कथां गुभाम् । हरिमाहात्म्यदानं हि सर्वदानपरं स्मृतम् ॥२०
 सत्यत्वाय प्रदातत्वं विष्णुभक्ताय धीमते । बुभुक्षिनान्नदानं च तदान्स्य समं न हि ॥२१
 इत्युक्त्वान्तर्दर्थे देवो बोपदेवः प्रसन्नधीः ॥२२

इति श्रीभविष्ण्वे महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्दुग्खाण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोः नाम द्वार्तिशतमोऽध्यायः । ३२

अथ त्र्यस्त्रिशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयदर्णनम्

ऋषय ऊचुः

वाग्जं कर्म स्मृतं सूतं वेदपाठः सनातनः । बहुत्वात्सर्ववेदानां श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥१

रनणीक कथा को सुनो ! जो मेरे गानस स्थान में स्थित हैं । इस प्रकार कहकर ध्यान पूर्वक उसका वर्णन करना आरम्भ किया । आठवें दिन आँख खोलकर लोक के कल्याणरूप भगवान् शंकर ने पार्वती को निद्रामग्न देखकर जगाया और कहा—कहाँ तक की कथा का श्रवण किया है । जगद्म्बा ने कहा क्षीरसागर का मन्थन पर्यन्त कथा मैंने सुनी है । ८-१६ । वहाँ वृक्ष के कोटर में एक शुक-शावक उस कथा को सुन रहा था जिससे उसे चिरञ्जीवन प्राप्त हुआ । उस परम सुन्दर शुक की रक्षा पार्वती जी स्वयं कर रहीं थीं, वह भी उस शिव-मन्दिर में रहकर मेरा ध्यान कर रहा था । मेरी आज्ञा से वही शुक तुम्हारे हृदय में स्थित हुआ, इसी से तुम्हें भागवत का दुर्लभ माहात्म्य प्राप्त हुआ है । नर्मदा के तट पर स्थित राजा विक्रमादित्य के पिता गन्धर्व सेन को इस शुभ कथा का श्रवण कराओ । क्योंकि भगवान् का माहात्म्यदान सभी दानों से श्रेष्ठ बताया गया है । इसे उस सत्गात्र में रखना चाहिए, जो विष्णुभक्त और परम चिद्रान् हो । बुभुक्षित (भूखे) के लिए अनन्दान भी उस दान के समान नहीं है । यह कहकर बोपदेव भी प्रसन्न हुए । १७-२२

श्रीभविष्ण्वमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३२।

अध्याय ३३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—सूत ! वेद-पाठ करना सनातन से वाणी का प्रशस्तकर्म बतायां गया है किन्तु,

केन स्तोत्रेण वेदानां पाठस्य फलमाप्युत् । पापानि विलयं यान्ति तन्मे वद विचक्षण ॥२
सूत उवाच

विक्रमादित्यराज्ये तु द्विजः कश्चिद्भूद्धुवि । व्याधकर्मेति विख्यातो ब्राह्मण्यां रूद्रतोऽभवत् ॥३
 त्रिपाठिनो द्विजस्यैव शार्या नाम्ना हि कामिनी । मैथुनेच्छावती नित्यं मदाघृणितलोचना ॥४
 द्विजस्पतशतीपाठे वृत्थर्थे कहृचिद्गतः । ग्रासे देवलके रसे बहुवैश्यनिषेदिते ॥५
 लत्र मासो गतः कालो नाययौ स स्वर्मान्दरम् । तदा तु कामिनी दुष्टा रूग्यौवनसयुता ॥६
 दुष्टा निशादं सबलं काष्ठभारोपजीविनम् । तस्मै दत्तवा पञ्च युद्धा बुभुजे कामपीडिता ॥७
 तदा गर्भं दधौ सा च व्याधिदीर्येण सञ्चितम् । पुत्रोऽङ्गदशमासान्ते जातकर्म पिताकरोत् ॥८
 द्वादशाब्दे गते काले स धूर्तो देवदर्जितः । व्याधकर्मकरो नित्यं व्याधिकर्मा हृतोभवत् ॥९
 निष्कासितौ द्विजेनैव मातृपुत्रौ द्विजाधमौ । त्रिपाठी ब्रह्मचर्यं तु कृतवान्धर्मतत्परः ॥१०
 प्रत्यहं चण्डिकापाठं कृत्वा विन्ध्यगिरौ वसन् । जीवन्मुक्तोऽभवच्छीघ्रं जगदम्बाप्रसादतः ॥११
 निषादस्य गृहे चोभौ बने गत्वोष्टुर्मुदा । प्रत्यहं जारभावेन बहुद्व्यमुपाजितम् ॥१२
 व्याधकर्मा तु चौर्येण पितृमातृत्रियङ्करः । एकदा दैवयोगेन शिवामन्दिरमाययौ ॥१३
 चौरवृत्तिपरो धूर्तः स्त्रिया भूषणमाहरत् । कैश्चिज्ज्ञातः स त्तो धूर्तो बहुमायादिशारदः ॥१४

चार वेद होने के नाते सब का पाठ असम्भव है । अतः मुझे यह सुनने की इच्छा है कि किस स्तोत्र द्वारा वेद-पाठ का फल प्राप्त होता है । विचक्षण ! अतः उस पापनाशक को बताने की कृपा करें । १-२

सूतजी बोले—राजा विक्रमादित्य के राज्य में कोई व्याधकर्मा (बहेलिये का कर्म करने वाला) ब्राह्मण रहता था, जिसका जन्म ग्रहण करना ब्राह्मणी में शूद्र द्वारा कहा गया है । एक त्रिपाठी ब्राह्मण की स्त्री का नाम कामिनी था, सदैव मैथुन के लिए उत्सुक रहने के नाते जिसकी आँखें मद से भरी रहती थीं । एक बार वह त्रिपाठी जी दुर्गा सप्तशती का पाठ करने के लिए किसी यजमान के यहाँ किसी गाँव में चले गये थे जिसमें देवलक एवं वैश्यों की संख्या अधिक थी । वहाँ एक मास तक रहने के नाते वे अपने घर न आ सके । उसी बीच उनकी दुष्टा पत्नी कामिनी ने अपने रूप एवं यौवन में मदांध होकर उस बलवान व्याध को बुलाकर जो काष्ठ (लकड़ी) द्वारा अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, उसे पाँच मुद्रा प्रदान कर अत्यन्त काम-पीडित होने के नाते उससे भली भाँति भोग कराया । पश्चात् उस व्याध के बीर्य द्वारा उसने गर्भवती होकर दशवें मास में पुत्र उत्पन्न किया उसके पिता ने उसका जात कर्म सुसम्पन्न किया । बारह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर वह धूर्त एवं विद्याध्ययन न करने के नाते नित्य व्याध-कर्म (शिकार) करने लगा उसी से उसका व्याधकर्मा नामकरण हुआ । त्रिपाठी ने उन दोनों माता-पुत्र अधमों को अपने घर से निकाल दिया । पश्चात् त्रिपाठी ब्रह्मचर्य पालन करते हुए विन्ध्यगिरि पर नित्य चण्डिका का पाठ करने लगे जिससे जगदम्बा के प्रसाद से वे शीघ्र जीवनमुक्त हो गये । वे दोनों घर से निकलकर बन में उसी व्याध के यहाँ प्रसन्नता पूर्वक रहने लगे । वहाँ रहकर उस स्त्री ने कर्म (पर पुरुषों से भोग) द्वारा अत्यन्त द्रव्यों का उपार्जन किया । ३-१२। वह व्याध-कर्मा चोरी करने के नाते अपने माता-पिता का प्रिय हुआ । एक बार दैवयोग से देवी जी के मन्दिर में आकर उस धूर्त चोर ने स्त्रियों के

कदाचित्प्राप्तवांस्तत्र द्विजवस्त्रसमुद्गतम् । श्रुतमादिचरित्रं हि तेन शब्दप्रियेण वै ॥१५
 पाठपुण्ड्रभावेण धर्मबुद्धिस्ततोऽभवत् । दत्त्वा चौर्यधनं सर्वं तस्मै विप्राय पाठ्ने ॥१६
 शिष्यत्वमगमस्त्राक्षरमैशं लजाप ह । बीजमन्त्रभावेण तदङ्गात्पापमुल्बणम् ॥१७
 निःसृत कृमिरूपेण बहुवर्लेन तापितम् । त्रिवर्षान्ते च निष्पापो बभूद द्विजसत्तमः ॥१८
 पठित्वाक्षर मालां च जजापादिचरित्रकम् । द्वादशाब्दमिते काले काश्यां गत्वा भ तु द्विजः ॥१९
 अन्नपूर्णा सहादेवीं तुष्टाव परका मुदा । रोचनादैश्च सम्पूज्यां मुनिदेवनिषेविताम् ॥२०
 नित्यानन्दकरी पराभयकरी सौन्दर्यरत्नाकरी निधूताखिलपापावनकरी काशीपुराधीश्वरी ।
 नानालोककरी महाभयहरी विश्वस्मरी सुन्दरी विद्यां देहि कृपावलम्बनकरी मातान्नपूर्णेश्वरी ॥२१
 स इत्यष्टोत्तरं जप्त्वा ध्यानस्तिमितलोचनः । सुष्वाप तत्र मुर्दितः स्वप्ने प्रादुर्भूच्छित्वा ॥२२
 दत्त्वा तस्मै हि कृग्निद्वां पुनरन्तरधीयत । उत्थाय स द्विजो धीमाल्लब्धवा विद्याभ्रनुत्सम्म ॥२३
 विक्रमादित्यसूपस्य यज्ञाचार्यों बभूव ह । यज्ञान्ते योगमास्थाय जगाम तु हिमालयम् ॥२४
 एतते वर्णतं विप्र पुण्ड्रमादिचरित्रकम् । जहीभूय यथा विप्रो लेखे सिद्धियनुत्तनाम् ॥२५
 इति श्रीभविष्णे महापुराणे प्रतिसर्गपर्वतिं चतुर्विंशतिहाससमुच्चये
 प्रथमचरित्रवर्णनं नाम ऋग्यस्त्रिंशोऽध्यायः । ३३

आभूषणों का अपहरण किया । कुछ लोगों ने उस नियुण मायानी की धूर्तता को पहचान लिया । पश्चात् वह भी ब्राह्मण-वेष में वहाँ आकर देवी जी के आदि चरित्रों का श्रवण किया । उपरांत उस मधुरवाणी द्वारा किये गये पाठ के पुण्ड्र-प्रभाव से उसकी धार्मिक बुद्धि हो गई । वह उसी पाठकरने वाले ब्राह्मण को सम्पूर्ण धन प्रदानकर उसी से दीक्षा प्राप्तकर शिव-मंत्र का जप करने लगा । उस बीज मंत्र के प्रभाव से उसके ज्वलन्त पाप कृमिरूप होकर उसके शरीर से निकलने लगे, जो (मुख निःसृत) पाठ के अक्षरों से संतप्त हो रहे थे । तीन वर्ष के उपरांत वह निष्पाप होकर श्रेष्ठ ब्राह्मण हो गया । पुनः अक्षर माला का पाठ करते हुए आदि चरित्र का जप करना प्रारम्भ किया । पश्चात् बारहवें वर्ष वह ब्राह्मण काशी में पहुँचकर प्रसन्नचित्त से महादेवी अन्नपूर्णा को प्रसन्न करने लगा जो रोचना आदि से सुपूजित एवं मुनि और देवों से सुसेवित हो रही थी । अन्नपूर्णेश्वरी मा! मुझे विद्या प्रदान कीजिये । आप नित्य आनन्द करने वाली, दूसरे को निर्झय बनाने वाली, और सौन्दर्य की निधि हैं । आप उस काशी पुरी की अधिष्ठात्री देवी हैं, जो समस्त पापों के नाशपूर्वक उसे पवित्र करती हैं, अनेक लोकों के निर्माण करने वाली, महान् भय के अपहरण करने वाली और विश्व के पालन-पोषण करने वाली आप प्रधान सुन्दरी एवं कृपारूप अवलम्बन प्रदान करने वाली हैं । १३-२१ । इस प्रकार इसका एक सौ आठ बार जाप करके ध्यान करते हुए उसी स्थान पर अर्खे मूढ़ कर शयन कर गया । उसके स्वप्न में देवी जी प्रत्यक्ष होकर उसे कृग्निविद्या प्रदानकर स्वयं अन्तर्हित हो गई । वह विद्वान् ब्राह्मण जागने पर उस अनुपम विद्या की प्राप्ति के अनन्तर राजा विक्रमादित्य के यज्ञ का आचार्य हुआ । पश्चात् यज्ञ की समाप्ति के अनन्तर वह योग के अम्यास के लिए हिमालय पर्वत पर चला गया । विप्र! इस प्रकार इस आदि चरित्र प्रधान पवित्र कथा को तुम्हें सुना दिया, जिसमें उस ब्राह्मण को ब्राह्मणत्व प्राप्ति के साथ उत्तम सिद्धि की प्राप्ति हुई । २२-२५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन

नामक तैतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३३।

अथ चतुर्स्त्रशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उदाच्च

उज्जयिन्यां पुरा विप्र राजन्यः सर्वहिंसकः । बभूव मद्यमांसाश्च भीमवर्मेति दिश्वुतः ॥१
मांसलोभेन स खलः सूकरान्गामकुकुटान् । हत्वा चाभक्षयत्पापी वेऽयासङ्घपरायणः ॥२
नरमांसं स क्रव्यादस्त्यस्त्वान्यन्भक्षकोऽभ्रत् । एवं बढुगते काले भीमवर्गं नहाधमः ॥३
विषुच्याग्निवशं यातो नमार च युवापि सः ॥३

कारितश्चण्डिकापाठस्तेन दुष्टेन भीरुणा । तस्य पुण्यप्रभावेन नागतो नरकान्प्रति ॥४
पुनः क्षत्रत्वमगमन्मगधे स महीपतिः । महानन्दीति विष्यातो राजनीतिपरायणः ॥५
जातिस्मरो बभूवासौ वेदधर्मपरायणः । कात्यायनस्य शिष्योऽभून्महाशाक्तस्य धीमतः ॥६
नस्मै नृपाय स मुनिर्दत्त्वा मध्यचरित्रकम् । सबीजं पुनरगत्य विन्द्ये शक्तिपरेऽभवत् ॥७
नृपोऽपि प्रत्यहं देवीं महालक्ष्मीं सनातनीम् । रोचनाद्यैश्च सम्पूज्य जपन्मध्यचरित्रकम् ॥८
पुण्यक्षेत्रत्वमगमन्महामायाप्रसादतः । शूद्रभावं परित्यज्य क्षत्रभावमुपागतः ॥९
द्वादशाब्दान्तरे प्राप्तस्तदगुरुः शक्तितत्परः । लक्षचण्डीं नृपादेव कारयामास धर्मतः ॥१०

अध्याय ३४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—विप्र ! उज्जयिनी नगरी में भीमवर्मा नामक धत्रिय राजा रहता था, जो सभी की हिंसा करके मद्य-मांस का भक्षण करता था । वह दुष्ट मास के लोभ से सूकरों एवं मुर्गों की भी हिंसा करके भक्षण कर लेता था तथा वह पापी वेश्या प्रसंग भी करता था । वह राथस केवल मनुष्य का मांस त्याग कर अन्य सभी के मांस का भक्षण करता था । वह अपनी युवावस्था में ही विसूचिका (हैजे) की बीमारी से आक्रान्त होकर इस लोक से चला गया । १-३। उसने चण्डिका का पाठ कराया था जिस पुण्य के प्रभाव से दुष्ट नरकायातना से बचकर पुनः मगधाधिपति के यहाँ क्षत्रिय कुल में जन्म ग्रहण किया । महानन्दी उसका नाम था । वह राजनीति का अत्यन्त प्रेमी था । वहाँ वह अपनी पूर्व जाति के स्मरण होने से वैदिक धर्म का अनुयायी होकर वह महाशाक्त एवं परम धीमान् कात्यायन जी का शिष्य हुआ । उस महर्षि ने राजा को (सप्तशती) का मध्यमचरित्र बीजसमेत प्रदान किया । पुनः कात्यायन ने विंध्य पर्वतपर आकर शक्ति की उपासना करना आरम्भ किया और राजा भी प्रतिदिन उस सनातनी महालक्ष्मी देवी की पूजा चन्दनादि से सुसम्पन्न करके मध्यमचरित्र का पाठ कर रहा था—जिससे महामाया के प्रसाद से पुण्य क्षत्रत्व प्राप्त किया । शूद्र भाव का परित्याग पूर्वक क्षत्रिय भाव प्राप्ति किया । बारह वर्ष के उपरांत शक्ति की उपासना करके उनके गुरुजी पुनः लौटकर घर आये और उस राजा के द्वारा लक्ष चण्डी का अनुष्ठान

तदा प्रादुरभूदेवो जगदम्बा सनातनी । नृपाय धर्मर्थं च कामं मोक्षं हि चाददात् ॥११
महानन्दी महाभागो भुक्त्वा भोगं सुरेजितम् । अन्ते जगाम परमं लोकं देवनमस्कृतम् ॥१२
इति ते कथिता विप्र यत्प्रोक्तं यजुषो गतिः । सावै मध्यचरित्रेण प्रात्ता शूदनृपेण वै ॥१३
इत्येवं वर्णितं विप्र शाहात्म्यं मुनिवर्णितम् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरपर्याप्ते
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये मध्यभर्त्रित्रनर्जनं नाम चतुर्स्त्रिंशोऽध्यायः । ३४

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

चित्रकूटे गिरौ रम्ये नानाधातुविचित्रिते । तत्रादसन्महाप्राज्ञ उपाध्यायः पतञ्जलिः ॥१
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो गीताशास्त्रप्रधाणः । विष्णुभक्तः सत्यसन्धो भाष्यशास्त्रविशारदः ॥२
कदाचित्स तु शुद्धात्मा गतस्तीर्थन्तरं प्रति । काश्यां कात्यायनेनैव तस्य वादो महानभूत् ॥३
दर्यन्ते च तदा विप्रो देवीभक्तेन निर्जितः । लज्जितः स तु धर्मात्मा सन्तुष्टाव सरस्वतीम् ॥४

आरम्भ करवाया । ४-१०। उस समय सनातनी एवं जगज्जननी देवी जी ने प्रत्यक्ष होकर उस राजा को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान किया । इस प्रकार वह महानन्दी नामक राजा देवों की भाँति भोगों का यथेच्छ उपभोग करके अन्त में उस देववन्दनीय परमलोक की प्राप्ति किया । विप्र ! इस भाँति मैंने वह कथा सुना दी जिसमें पूजा करने वालों की गति का वर्णन किया गया है—उस मध्यम चरित्र द्वारा उपासना करके उस राजा शूद्र ने उर्फी को प्राप्त किया है । अब इस मुनि वर्णित माहात्म्य को यही समाप्त करता हूँ । ११-१४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३४।

अध्याय ३५ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—चित्रकूट पर्वतपर, जो अनेक भाँति के धातुओं से विभूषित हैं, पतञ्जलि नामक महाविद्वान् अध्यापक रहते थे, जो वेद-वेदाङ्ग के तत्वों के ज्ञाता, गीता-शास्त्र में निष्णात विष्णु-भक्त, सत्य-प्रतिज्ञ एवं भाष्य शास्त्र के निपुण दिव्वान् थे । एक बार उस शुद्धात्मा पुरुष ने तीर्थयात्रा के निमित्त काशीपुरी में पहुँचकर कात्यायन जी के साथ महान् शास्त्रार्थ आरम्भ किया । एक वर्ष के उपरान्त उस देवीभक्त के द्वारा पराजित होने पर उस धर्मात्मा पतञ्जलि ने लज्जित होकर सरस्वती जी की आराधना करना आरम्भ किया— १-४

पतञ्जलिरुद्धाच्च

नमो देव्यै महामूर्त्यै सर्वमूर्त्यै नमो नमः । शिवायै सर्वमाङ्गल्ये विष्णुमाये च ते नमः ॥५
त्वयेव श्रद्धा बुद्धिस्त्वं सेधा विद्या शिवडूरी । शान्तिर्दाणि त्वयेवासि नारायणि नमो नमः ॥६
इत्युक्ते सति विप्रे तु वागुवानाशारीरिणी । विप्रोन्नम चरित्रं मे जप चैकाग्रमानसः ॥७
तच्चरित्रप्रभावेण सत्यं ज्ञानमवाप्स्यसि । कात्यायनस्य विप्रस्य राजसंज्ञानमुद्घतम् ॥

शद्भूक्त्या तेन सम्प्राप्तं पराजय पतञ्जले ॥८

इति श्रुत्वा ह यो देव्या विष्ण्यवासिनिमन्दिरसः । गत्वा तां पूजयामास तुष्ट्राज स्तोत्रपाठतः ॥९
ज्ञानं प्रसादजं विप्रः प्राप्य दिल्लापरायणम् । कात्यायनं पराजित्य परां मुदमवत्य ह ॥१०
ऊर्ध्वपुण्डं च तिलकं तुलसीकाठमालिकाम् । कृष्णनन्दं च शिवदं स्थापयित्वा गृहे गृहे ॥११
जने जने तथा कृत्वा महाभाष्यमुदैरयत् । चिरञ्जीवित्वमगमद्विष्णुस्थाप्रसादतः ॥१२
इति ते क्थितो विप्र जाप्यानामुत्तमो जपः । किमन्यच्छ्रोतुमिच्छन्ति शौनकाद्या महर्षयः ॥१३
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाव्यते ॥१४

मङ्गलं भगवान्विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः । मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनो हरिः ॥१५
शुचिर्यो हि नरो नित्यमितिहाससमुच्चयम् । शृणुयाद्वर्तकामार्थी स याति परमां गतिम् ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरयायि
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये उत्तमचरितमाहात्म्यं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः । ३५

पतञ्जलि ने कहा—देवी जी को नमस्कार है, महामूर्ति एवं उस सर्वमूर्तिमयी को बार-बार नमस्कार है । शिवा (कल्याणरूप), समस्त मंगल प्रदान करने वाली, उस विष्णुमाया को नमस्कार है । श्रद्धा, बुद्धि, मेधा, विद्या, कल्याणरूपा, शांति एवं वाणि तुम्हीं हो, अतः नारायणि ! तुम्हें बार-बार नमस्कार है । ब्राह्मण के इस भाँति आराधना करने पर आकाशवाणी हुई—ब्राह्मण ! एकाग्रचित्त से मेरे उत्तम चरित्र का जप करो उसी चरित्र के प्रभाव से सत्यज्ञान की प्राप्ति होगी । कात्यायन को यह राजस-ज्ञान भी उसी से प्राप्त हुआ है । मेरी भक्ति द्वारा ही उसने पतञ्जलि को पराजित किया है । देवी जी की ऐसी वाणी सुनकर विष्ण्यवासिनी देवी के मंदिर में जाकर उन्होंने पूजा करने के उपरांत स्तोत्र-पाठ द्वारा देवी को प्रसन्न किया १५-१। उस ब्राह्मण ने देवी की प्रसन्नतावश विष्णु पारायण का उत्तम ज्ञान प्राप्त-कर कात्यायन को पराजित कर अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया । पञ्चात ऊर्ध्वपुण्ड्र, तिलक, कण्ठ में तुलसी की माला, एवं कल्याणप्रद कृष्ण-मंत्र का प्रत्येक धरों के प्रत्येक प्राणियों में प्रचार करके महाभाष्य की रचना की । विष्णुमाया के प्रसाद से उन्होंने चिर जीवन प्राप्त किया है । विप्र ! इस प्रकार मैंने उत्तम जप की व्याख्या कर दी । आप शौनकादि महर्षिगण अब क्या सुनना चाहते हैं । सभी लोगों को कल्याण प्राप्त हो, कोई भी दुःखी न रहे । भगवान् विष्णु, तथा उनका गरुडध्वज, पुण्डरीकांक्ष रूप मंगलमय है और हरिस्वरूप तो मंगल के निधि ही हैं । पवित्रतापूर्ण होकर जो मनुष्य इस इतिहास समुच्चय का श्रवण करेगा, उसे धर्म, काम एवं अर्थ प्राप्ति समेत परमगति की प्राप्ति होगी । १०-१६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन

नामक पैतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३५।

॥(द्वितीय खण्ड समाप्त)॥

तृतीयखण्डम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

विक्रमाख्यानकालवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

भगवन्विक्रमाख्यानकालोऽथं भवतेदितः । शतद्रुशस्तर्दिते द्वापरस्य समो भुवि ॥१
अस्मिन्काले महाभाग लीला भगवता कृता । तसेतां कथयास्मान्वै सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ॥२

सूत उवाच

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥३
भविष्याख्ये महाकल्पे प्राप्ते वैवस्वतेन्तरे । अष्टावैशशद्द्वापरान्ते कुरुक्षेत्रे रणोऽभवत् ॥४
पाण्डवैर्निर्जिताः सर्वे कौरवाः युद्धुर्मदाः । अष्टादशे च दिवसे पाण्डवानां जयोऽभवत् ॥५
दिनान्ते भगवान्कृष्णो ज्ञात्वा कालस्य दुर्गतिम् । शिवं तुष्टाव मनसा योगस्थं सनातनम् ॥६

कृष्ण उवाच

नमः शान्ताय रुद्राय भूतेशाय कर्पदिने । कालकर्त्रे जगद्भूर्वे पापहर्त्रे नमो नमः ॥७
पाण्डवान्रक्ष भगवन्मूर्त्त्वान्भूतभीरुकान् । इति श्रुत्वा स्तवं रुद्रो नन्दियानोपरि स्थितः ॥
रक्षार्थं शिविराणां च प्राप्तवाऽऽधूलहस्तधृक् ॥८

अध्याय १

विक्रमाख्यान काल का वर्णन

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! राज्य विक्रमादित्य की सामयिक कथा आप ने सुना दी । द्वापर के बारह सौ वर्ष शेष रहने के समय भगवान् कृष्ण ने इस भूतल में अपनी लीला की है । आप सदैव सर्वज्ञ हैं, अतः उसी कथा को हमें सुनाने की कृपा करें । १-२

सूत जी बोले—भविष्य नामक महाकल्प में वैवस्वत मनु के समय जो अट्टाईसवें द्वापर का अन्त समय बताया गया है, कुरुक्षेत्र में भीषण संग्राम हुआ था । उस युद्ध में मदांध कीरवण पाण्डवों द्वारा पराजित हुए और पाण्डवों को अठारहवें दिन विजय भी प्राप्त हो गई थी । भगवान् कृष्ण ने दिन के अन्त समय में काल की दुर्गति समझकर उस सनातन योगी शिवजी की मानसिक, आराधना की । ३-६

कृष्ण ने कहा—शांत, रुद्र, भूतेश एवं कपर्दी को नमस्कार है, काल के कर्ता, जगत् के पालन-पोषण करने वाले, एवं पाप नाशक को बार-बार नमस्कार है । भगवन् ! पाण्डवों की रक्षा कीजिये, ये मेरे भक्त एवं भूत-भीरु हैं । इस स्तुति को सुनकर भगवान् रुद्र नन्दी पर बैठकर हाथ में शूल लिए उनके रक्षार्थ

तदा नृपाज्ञया कृष्णः स गतो गजसाहृयम् । पाण्डवाः पञ्च निर्गत्य सरस्वत्यास्तटेऽवसन् ॥१९
 निशीथे द्रौणिभोजौ च कृपस्तत्र समाययुः । तुष्टुवुर्मनसा रुद्रं सेभ्यो मार्गं शिवोऽवदात् ॥२०
 अश्वत्थामा तु बलवाञ्छिवदत्तमर्ति तदा । गृहीत्वा स जघानाशु धृष्टद्युम्पुरःसरत् ॥२१
 हत्वा यथेष्टमग्मद्वौपिस्तम्भ्यां तमन्वितः ॥२२

पार्षतस्यैव सूतश्च हतशेषो भयातुरः । पाण्डवान्वण्यात्माग्म यथा जातो जनक्षयः ॥२३
 आगस्त्कृतं शिवं ज्ञात्वा भीमाद्याः क्रोधमूच्छिताः । स्वायुधैस्ताड्यामास देवदेवं पिनाकिनम् ॥२४
 अस्त्रशस्त्राणिं तेषां तु शिवदेहे समादिशन् । दृष्ट्वा ते विस्मिताः सर्वे प्रजच्छुस्तलमुच्छितिः ॥२५
 ताञ्छशाप तदा रुद्रो यूयं कृष्णप्रपूजकाः । अतोऽस्माभी रक्षणीया दधयोगाश्च वै भुवि ॥२६
 पुनर्जन्म कलौ प्राप्य भोक्ष्यते चापराधकम् । इत्युक्त्वान्तर्दर्थे देवः पाण्डवा दुःखितास्तदा ॥२७
 हरिं शरणमाजग्मुरपराधनिवृत्तये । तदा कृष्णयुताः सर्वे पाण्डवाः शस्त्रवर्जिताः ॥२८
 तुष्टुवुर्मनता रुद्रं तदा प्रादुरभूच्छिवः । वरं वरयत प्राह कृष्णः श्रुत्वाब्रवीदिदग् ॥२९
 शस्त्रशस्त्राणिं यान्येव त्वद्भेदं क्षपितानि वै । पाण्डवेभ्यश्च देहि त्वं शापस्यानुग्रहं कुरु ॥२०
 इति श्रुत्वा शिवः प्राह कृष्णदेव नमोऽस्तु ते । अपराधे न मे स्वामिन्मोहितोऽहं तवाजया ॥२१
 तद्वशेन मया स्वानिन्दतः शापो भयद्वूरः । नान्यथा वचनं मे स्यादंशावतरणं भवेत् ॥२२

शिविरों में पहुँच गये । उस समय राजा की आज्ञा से कृष्ण हस्तिनापुर चले गये । और पाँचों पाण्डवों ने वहाँ से निकल कर सरस्वती के टट पर अपना निवास स्थान बनाया था । आधीरात के समय द्रोणि (अश्वत्थामा), भोज और कृपाचार्य वहाँ पहुँच गये । इन लोगों ने भगवान् रुद की मानसिक स्तुति की । शिव ने उन्हें मारा प्रदान किया । उस समय बलवान् अश्वत्थामा शिदद्वारा प्राप्त तलवार से धृष्टद्युम्न आदि का शीघ्र बध करके उन दोनों के समेत वहाँ से अपने अभीष्ट स्थान चले गये । पार्षदों (सेवकों) में मरने से बचे हुए सूत ने पाण्डवों से उस नरसंहार का वर्णन किया । जिस प्रकार वह घटना हुई थी । उस समय शिव को अपराधी समझकर भीमादि पाण्डवों ने अत्यन्त कुद्द होकर अपने अस्त्रों द्वारा देवाधिदेव पिनाकी शंकर जी को क्षत-विक्षत किया—उनके अस्त्र शस्त्र शिव जी की शरीर में प्रविष्ट होकर वहीं रह गये । इसे देखकर उन्हें आशर्चय हुआ । पश्चात् अपने हाथों की हथेली (ज्ञापड़) मुट्ठी (मुक्के) द्वारा उन पर प्रहार किया । उस समय भगवान् रुद ने उन्हें शाप दिया—तुमलोग कृष्ण के पुजारी हो, इसलिए मेरे द्वारा रक्षित रहने पर भी इसी पृथिवी में तुम्हारा बध होगा—कलियुग में पुनः जन्म ग्रहण करके इस प्रकार के अपने अपराध के फल का अनुभव करोगे ।’ इतना कहकर शिव जी अन्तर्हित हो गये और पाण्डवगण दुःखी होकर अपने अपराध की क्षमा याचना के लिए भगवान् की शरण में गये । उस समय अस्त्र विहीन पाण्डव लोग कृष्ण समेत भगवान् रुद्र को मानसिक स्तुति द्वारा प्रसन्न करने लगे । वहाँ प्रत्यक्ष होकर शिव ने कहा—वर की याचना करो । इसे सुनकर कृष्ण ने कहा—आपके अंगों में प्रविष्ट उन अस्त्रों शस्त्रों को उन्हें लौटाकर उनके शाप के लिए कृपा कीजिये । १७-२०। इसे सुनकर शिव ने कहा—कृष्णदेव ! तुम्हें नमस्कार है । स्वामिन् ! इसमें मेरा अपराध नहीं है, मैं आप की माया से मोहित हो गया था । उसी से यह भयंकर शाप दे दिया । इसलिए मेरी बात अन्यथा नहीं हो सकती, इन

दत्तसराजस्य पुत्रत्वं गमिष्यति युधिष्ठिरः । बलखानिरिति ख्यातः शिरोषाव्यपुराधिपः ॥२३
 भीमो दुर्वचनाद्वृष्टो म्लेच्छयोनौ भविष्यति । दीरणो नाम विख्यातः स वै वनरसाधिपः ॥२४
 अर्जुनांशश्च प्रदूक्तो जगिष्यति महामतिः । पुत्रः परिमलस्यैव ब्रह्मानन्द इति स्मृतः ॥२५
 कान्यकुञ्जे हि नकुलो भविष्यति महाबलः । रत्नभानुमुतोसौ वै लक्षणो नाम विश्रुतः ॥२६
 सहदेवस्तु बलवाऽजनिष्यते महामतिः । भीमसिंहं सुतो जातो देवसिंहं इति स्मृतः ॥२७
 धृतराष्ट्रांश एवासौ जनिष्यत्यजमरके । वृथिवीराज इति स द्वौपदी तत्सुताः स्मृता ॥२८
 वेला नाम्ना च विख्याता तारकः कर्ण एव है । रक्तबीजस्तथा द्वदो भविष्यति महीतले ॥२९
 कौरवाश्च भविष्यन्ति मायायुद्धविशारदाः । पाण्डुपक्षाश्च ते सर्वे धर्मिणो बलशालिनः ॥३०

सूत उवाच

इति श्रुत्वा हरिः प्राह विहस्य परमेश्वरम् । मया शक्त्यवतारेण रक्षणीयः हि पाण्डवाः ॥३१
 महात्मी पुरी रम्या मायादेवीविनिर्मिता । देशराजसुतस्तत्र ममांशो हि जनिष्यते ॥३२
 देवकीजठरे जन्मोदर्यसिंह इति स्नृतः । आल्हादो मम धामांशो जनिष्यति गुरुर्ममः ॥३३
 हत्वागिन्द्रवंशजान्भूपान्स्थापयिष्यामि वै कलिम् । इति श्रुत्वा शिवो देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्पुण्डिकाण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चये विक्रमाल्यानकाले प्रथमोऽध्यायः ।१

लोगों का आंशिक जन्म होगा ही । युधिष्ठिर वत्सराज (वन्चुराज) के बलखान (मलखान) नामक पुत्र और शिरीष (सिरसा) नगर के अधिनायक होंगे । दुष्टवचन कहने के नाते भी म्लेच्छ योनि में उत्पन्न होकर वीरण नामक वनरस के अधिपति होंगे । महाबुद्धिमान् एवं मेरा भक्तं अर्जुन अपने अंश से परिमल के यहाँ ब्रह्मानन्द नामक पुत्र उत्पन्न होंगे । कान्यकुञ्ज प्रदेश में राजा रत्नभानु (रत्तीभान) के यहाँ महा बलवान् नकुल लक्षण (लघन) नामक पुत्र होंगे । महाबुद्धिमान् एवं महाबली सहदेव भीम सिंह के देव सिंह नामक पुत्र होंगे । धृतराष्ट्र के अंश से पृथिवीराज नामक राजा अजमेर में उत्पन्न होगा, द्वौपदी जिसकी सुता होकर जन्म ग्रहण करेगी । उसका वहाँ वेला नाम होगा । कर्ण तारक (सादर) के नाम से उत्पन्न होंगे । रक्तबीज तथा रुद्र भी इस भूतल में जन्म ग्रहण करेंगे । ये कौरवगण मायावी होकर युद्ध निपुण होंगे किन्तु पाण्डव पक्ष के सभी धार्मिक एवं बलवान् होंगे । २१-३०

सूत जी बोले—यह सुनकर कृष्ण ने हँसकर परमेश शिव जी से कहा—मैं शक्ति-अवतार द्वारा पाण्डवों की रक्षा करूँगा । माया देवी द्वारा विरचित महावती नामक पुरी में मेरे अंश से देशराज के द्वारा देवकी के उदर से पुत्र उत्पन्न होगा, जिसका उदयसिंह नाम होगा । मेरे तेजपुञ्ज का अधिकांश रूप आल्हार (आल्हा) नाम से उत्पन्न होगा । जिसके द्वारा अग्निवंशीय राजाओं के नाशपूर्वक कलि की स्थापना करूँगा । यह सुनकर शिव जी उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । ३१-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
 विक्रमाल्यान काल नामक पहला अध्याय समाप्त । १।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शालिवाहनकालवर्णनम्

सूत उवाच

प्रातःकाले च सम्प्राप्ते पाण्डवः पुत्रशोकिनः । प्रेतकार्याणि ते कृत्वा भीष्मान्तिकमुपाययुः ॥१
राजधर्मान्मोक्षधर्मान्दानधर्मान्विभागशः ॥ २ उत्त्वायजन्मभ्रमेधैस्त्रिभिरहर्मकर्मभिः ॥२
षट्क्रिशदब्दराज्यं हि कृत्वा स्वर्गपुरं ययुः । जनिष्यन्ते तदंशा दै कलिधर्मदिवृद्धये ॥३

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिः सर्वान्पुनः सूतो वदिष्यति : गच्छध्वं मुनयः सर्वे योगनिद्रावशो ह्यहम् ॥
चक्रतीर्थं समाधिस्थो ध्यायेऽहं त्रिगुणात्परम् ॥४
इति श्रुत्वा तु मुनयो नैमिषारण्यवासिनः । योगसिद्धिं समाप्त्याय गमिष्यन्त्यात्मनोऽन्तिके ॥५
द्वादशाब्दशते कालेऽतीते ते शौनकादयः ॥६
उत्थाय देवताते च स्नानध्यानादिकाः क्रियाः । कृत्वा सूतान्तिकं गत्वा वदिष्यन्ति पुनर्वचः ॥७

ऋषय ऊचुः

विक्रमाल्यानकालोऽयं द्वापरे च शिवाज्ञया । विनीतान्भगवन्भूमौ तदा तान्नपतीन्वद ॥८

अध्याय २

शालिवाहनकाल का वर्णन

सूत जी बोले—शोकाकुल पाण्डवों ने प्रातः काल होने पर निधन हुए उन प्राणियों के प्रेतकार्य समाप्त कर भीष्म के यहाँ प्रस्थान किया । उनके समीप में पहुँचकर राजधर्म, मोक्षधर्म, और दानधर्म का सविभाग श्रवण किया । पश्चात् तीन अश्वमेध यज्ञों का सविधान अनुष्ठान सुसम्पन्न करते हुए के छत्तीस वर्ष राज्योपभोग करने के उपरांत स्वर्गपुरी चले गये । पुनः उन्हीं के अंश कलिधर्म के वृद्धयर्थ जन्म ग्रहण करेंगे । १-३ ।

व्यास जी बोले—इतना कहकर सूत जी पुनः उन महर्षियों से कहेंगे कि मैं अब योगनिद्रा के अधीन हो रहा हूँ । अतः आप लोग चले जाइये । मैं चक्रतीर्थ में समाधिस्थ होकर त्रिगुणातीत उस परब्रह्म का चितन करूँगा इसे सुनकर नैमिषारण्यवासी मुनिगण भी योग-सिद्धि द्वारा अपनी आत्मा का प्रत्यक्ष प्राप्त करेंगे । पुनः बारह सौ वर्ष व्यतीत होने के उपरात वे सौनकादि गण जागृत होकर उस देव सरोवर में स्नान ध्यानादि क्रिया सुसम्पन्न करने के उपरांत सूत जी के समीप पहुँच कर उनसे कहेंगे । ४-७ ।

ऋषियों ने कहा—भगवन् ! द्वापर में भगवान् शिव जी की जो आज्ञा हुई थी, उसके अनुसार विक्रम-काल (संवत्सर) का यह समय उपस्थित है, इसलिए इस भूतल के राजाओं का वर्णन कीजिये । ८

सूत उवाच

स्वर्गं विक्रमादित्ये राजानो बहुधाऽभवन् । तथाष्टादशराज्यानि तेषां नामानि मे शृणु ॥१
 पश्चिमे सिन्धुनद्यन्ते सेतुबन्धे हि दक्षिणे । उत्तरे बदरीस्थाने पूर्वे च कपिलान्तिके ॥१०
 अष्टादशैव राष्ट्राणि तेषां मध्ये बभूविरे । इन्द्रप्रस्थं च पांचालं कुरुक्षेत्रं च कापिलम् ॥११
 अन्तर्वेदी व्रजव्यवाजमेरं मरुधन्वं च । गौर्जरं च नहाराष्ट्रं द्राविडं च कलिङ्गकम् ॥१२
 आवन्त्यं चोडुपं वज्ञं गौडं मागधमेदं च । कौशल्यं च तथा झेयं तेषां राजा पृथक्पृथक् ॥१३
 नःनाभाषास्थितास्तत्र बहुधर्मर्वतकाः । एयमब्दशतं जातं ततस्ते वै शकादयः ॥१४
 श्रुत्वा धर्मविनाशं च बहुवृद्धं सप्तन्विताः । केचित्तीत्वा सिन्धुनदीमार्यदेशां समागताः ॥१५
 हिमपर्वतसार्गणं सिन्धुमार्गेण चागमन् । जित्वार्यालौँठयित्वा तान्स्वदेशं पुनराययुः ॥१६
 गृहीत्वा योषितस्तेषां परं हर्षमुभाययुः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र शालिवाहनभूपतिः ॥१७
 विक्रमादित्यपौत्रश्च पितृराज्यं गृहीतवान् । जित्वा शकान्दुराधर्षाश्रीनतैत्तिरिदेशजान् ॥१८
 बाल्मीकिन्कामरूपांश्र रोमजान्बुरजाञ्छठान् : तेषां कोशान्नगृहीत्वा च इण्डयोगया नकारयत् ॥१९
 स्थापिता तेन मर्यादा स्तेच्छार्याणां पृथक्पृथक् । सिन्धुस्थानमिति ज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम् ॥२०
 म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना । एकदा तु शकाधीशो हिमतुङ्गं समाययौ ॥२१
 हृणदेशस्य मध्ये वै गिरिस्थं पुरुषं शुभम् । ददर्श बलबानराजा गौराङ्गं श्वेतवस्त्रकम् ॥२२

सूत जी बोले—राजा विक्रमादित्य के स्वर्गीय होने के उपरांत उस वसुधातल पर अनेक राजा एवं अट्ठारह राज्य हुए हैं, मैं उनके नाम बता रहा हूँ सुनो ! पश्चिम में सिंधु नदी, दक्षिण में सेतुबन्ध, उत्तर में बदरीनाथ धाम और पूर्व में कपिलान्त्रम्, इन्ही के मध्य में इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली), पांचाल (पंजाब), कुरुक्षेत्र, कपिला, अन्तर्वेदी, व्रजव्यवाज, अजमेर, मरुधन्वा, गौर्जर (गुजरात), महाराष्ट्र, द्राविड, कलिंग, अवंती, उडुपी, बंग (बंगाल) गौड़, मागध और कोशल नामक ये अट्ठारह राज्य स्थापित हुए । इनके पृथक्पृथक् राजा थे, जो अनेक भाँति के भाषा-भाषी, और अनेक धर्म के प्रवर्तक थे । सौ वर्ष के उपरांत शकादि गणों ने उनके धर्म का विनष्ट होना सुनकर अपने अनेक सहायक वृन्दों समेत, जो सिंधु नदी को पारकर इस आर्य प्रदेश में आये थे तथा कुछ हिमालय पर्वत और कुछ लोगों समुद्र मार्ग से, आर्यों पर विजय प्राप्तकर उन्हें लूट-पाट कर अपने देश लौट गये । १९-१६। साथ में इनकी स्त्रियों का अपहरण भी करते गये, जिससे उन्हें वहाँ पहुँचने पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त होने लगा । उसी समय शालिवाहन नामक राजा ने जो विक्रमादित्य का पौत्र कहा जाता था, अपने पिता का राज्य पुनः अपने अधीन किया । उस विजय में उसने दुर्धर्ष शकों चीन और तैत्तिरि (तातार) देश में उत्पन्न बाल्मीक, कामरूप, रोम तथा खुर (खुरासन) के राजाओं को बांधकर उनके कोश (खजानों) को दंड के रूप में ग्रहण किया । उन्होंने ही म्लेच्छों और आर्यों की भिन्न-भिन्न मर्यादा स्थापित की । आर्यों के राष्ट्र का नाम करण सिन्धु के पार प्रदेश में स्थापित किया । एक बार शकाधिनायक ने हिमालय के एक टीले की यात्रा की । १७-२१। वहाँ हृण प्रदेश के मध्य में उस पर्वतपर एक शुभमूर्ति वाले पुरुष का दर्शन किया, जो गौरवर्ण और श्वेतवस्त्र से सुसज्जित

को भ्रवानिति तं प्राह स होवाच मुद्दन्वितः । ईशपुत्रं च मां विद्धि कुमारीगर्भसंभवम् ॥२३
 म्लेच्छधर्मस्त्य वक्तार सत्यव्रतपरायणम् । इति श्रुत्वा नृपः प्राह धर्मः को भवतो मतः ॥२४
 श्रुत्वोवाच महाराज प्राप्ते सत्यस्य संक्षये । निर्मर्यादि म्लेच्छदेशे मसीहोऽहं समागतः ॥२५
 ईशामसी च दस्यूनां ग्रन्थुर्भूता भयद्वारी । तास्महं न्लेच्छतः प्राप्य मसीहोऽहं समागतः ॥२६
 म्लेच्छेषु स्थापितो धर्मो भया तच्छृणु भूपते । मानसं निर्मलं कृत्वा मतं देहे शुभाशुभम् ॥२७
 तैगमं जपमास्थाय जपेत् निर्मलं परम् । न्यायेन सत्यवच्चसा भन्सैव्येन मानवः ॥२८
 ध्यानेन पूजयेदीशं सूर्यमाङ्गतसंस्थितम् । अचलोऽयं प्रभुः साक्षात्तथा सूर्योऽचलः सदा ॥२९
 तत्त्वानां चलभूतानां कर्णणः स तमन्ततः । इति कृत्येन भूपात मसीहा विलगं गता ॥३०
 ईशामूर्तिर्हृदि प्राप्ता नित्यशुद्धा शिवद्वारी । ईशामसीह इति च मम नाम प्रतिष्ठितम् ॥३१
 इति श्रुत्वा स भूपालो नत्वा तं म्लेच्छशुजकम् । स्थापयामास तं तत्र म्लेच्छस्थाने हि दारणे ॥३२
 स्वराज्यं प्राप्तवानराजा हयमेधमचीकरत् । राज्यं कृत्वा स षष्ठ्यब्दं स्वर्गलोकमुपाययौ ॥३३
 स्वर्गते नृपतौ तस्मिन्यथा चामीत्यथा शृणु ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्थगण्डापरपरयायि कलियुगीयेतिहाससमुच्चये
 शालिवाहनकालो नाम द्वितीयोऽध्यायः । २

था । ‘आप कौन हैं’, ऐसा पूँछने पर उसने प्रसन्न होकर कहा—मैं ईश पुत्र हूँ, मेरा जन्म कुमारी के गर्भ से हुआ है । मैं म्लेच्छधर्म का प्रवक्ता और सत्यव्रत का पारायण करता हूँ । इसे सुनकर राजा ने कहा—धर्म के विषय में आप का दया मत है ? उसने कहा—महाराज ! इस म्लेच्छ देश में जो सत्यहीन एवं मर्यादा विहीन है, मसीहा होकर आया हूँ । यह ईशामसी ही दस्युगणों के लिए भीषण रूप धारण करेगी । उसी को मैं म्लेच्छों से प्राप्त कर मसीहा हुआ हूँ । भूपते ! म्लेच्छों में मैं धर्म की स्थापना कर चुका हूँ । बता रहा हूँ, सुनिये ! देह में स्थित शुभाशुभ रूपी मलग्रस्त मन को निर्मल करके मनुष्य सत्य एवं न्याय को अपना कर सावधान होकर वैदिक मन्त्र जपपूर्वक सूर्य मण्डल स्थित उस निर्मल परमेश की ध्यान पूजा करे । जिस प्रकार परमेश्वर अचल हैं उसी भाँति सदैव साक्षात् सूर्य भी । राजन् ! प्राणियों के नश्वर तत्त्वों (पञ्च तत्त्वों) का चारों ओर से कर्षण करने खींचने से ही, इस कर्म द्वारा मसीहा नष्ट हो गया और हृदय में ईश की मूर्ति जो नित्य शुद्ध तथा कल्याणप्रद है, स्थित हो गई । इसीलिए मेरा नाम ‘ईशामसीह’ है इसे सुनकर राजा ने उस म्लेच्छ पूजक को नमस्कार पूर्वक उस भीषण म्लेच्छ स्थान में प्रतिष्ठित कर दिया । पश्चात् अपने राज्य में लौटकर राजा ने अश्वेमध्यज्ञ का अनुष्ठान सुसम्पन्न करके साठ वर्ष राज्योपभोग के उपरांत स्वर्ग को प्रस्थान किया । राजा के स्वर्ग चले जाने पर पुनः जो कुछ हुआ, कह रहा हूँ, सुनो ! ॥२२-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में शालिवाहन काल का वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२।

**अथ तृतीयोऽध्यायः ।
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्**

श्रीसूत उवाच

शालिवाहनवंशे च राजानो दश चाभवन् । राज्यं पञ्चशतःब्दं च कृत्वा लंकान्तरं ययुः ॥१
 मर्यादा क्रमतो लीना जाता भूमण्डलं तदः । भूमतिर्दशमो यो वै भोजराज इति स्मृतः ॥
 दृष्टुः प्रक्षीणमर्यादां ब्रह्मी दिग्विजयं यद्यौ ॥२
 सेनया दशसःहस्या कःलिदासेन संयुतः । तथान्दै ब्राह्मणैः सार्वे रिन्धुपारमुपाययौ ॥३
 जित्वा गान्धारजान्म्लेच्छान्काशमीरान्नरवाञ्छठान् । तेषां प्राप्य महाकोशं दण्डयोग्यानकार्यत् ॥४
 एतस्मिन्नतरे म्लेच्छ आचार्येण समन्वितः । महामद इति ख्यातः शिष्यशाखासमन्वितः ॥५
 नृपश्चैव महादेवं महस्थलनिवासिनम् । गङ्गाजलैश्च संस्नाप्य पञ्चगव्यसमन्वितैः ॥६
 चन्दगादिभिरभ्यर्च्य दुष्टाव मनसा हरम् ॥७

भोजराज उवाच

नमस्ते गिरिजानाथ महस्थलनिवासिने । त्रिपुरामुरनाशाय बहुमायाप्रवर्त्तिने ॥८
 म्लेच्छैर्गुप्ताय शुद्धाय सच्चिदानन्दरूपिणे । त्वं मां हि किञ्च्चरं विद्धि शरणार्थमुपागतम् ॥९

अध्याय ३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—शालिवाहन के वंश में दश राजाओं ने क्रमशः जन्म ग्रहणकर पाँच सौ वर्ष तक राज्य का उपभोग किया है । पश्चात् वे सर्वगामी हो गये । उन लोगों के राजकाल में मर्यादा क्रमशः विलीन होती गई, यहाँ तक कि दशवें राजा भोज के समय मर्यादा इस भूतल में नाममात्र रह गई थी उस बली राजा ने मर्यादा को नष्ट-भ्रष्ट देखकर दिग्विजय के लिए प्रस्थान कर दिया, जिसमें दश सहस्र सेना के साथ कालिदास भी थे । अन्य ब्राह्मणों को भी साथ रखकर वह राजा सर्वप्रथम सिधु नदी के पार पहुँचकर गांधार प्रदेश के म्लेच्छों और काश्मीर के (नारव) दुष्टों पर विजय प्राप्ति पूर्वक उनके कोशों (खजानों) को दण्डरूप में अपनाते हुए आगे बढ़ा । उसी समय ‘महामद’ (मोहम्मद) नामक म्लेच्छों का आचार्य (गुरु) अपने शिष्यों समेत प्रचार कर रहा था । राजा भोज भी महस्थल प्रदेश में स्थित शिव जी की पूजा पंचगव्य समेत गंगाजल एवं चन्द नादि से सुसम्पन्न करके उनकी स्तुति करने लगे—। १-६

भोजराज बोले—महभूमि के निवासी गिरिजापति को नमस्कार है, जिन्होने अत्यन्त माया के प्रवर्तक त्रिपुरामुर का नाश किया है, म्लेच्छों द्वारा रक्षित शुद्ध एवं सच्चिदानन्द रूप हैं । मैं आपका सेवक हूँ, आपकी शरण में उपस्थित हूँ । ७-८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स्तवं देवः शब्दमाह नृपाय तम् । गन्तव्यं भोजराजेन महाकालेश्वरस्थले ॥१९
 म्लेच्छस्मुद्घिष्ठा भूमिवाहीका नाम विश्रुता । आर्यधर्मो हि नैदात्र वाहीके देशदाख्ये ॥२०
 द्वभूवात्र महामायी योजसौ दग्धो मया पुरा । त्रिपुरो बलिदैत्येन प्रेषितः पुनरागतः ॥२१
 अयोनिः स वरो भतः प्राप्तवान्दैत्यवर्द्धनः । महामद इति स्यातः वैशाच्चकृतित्परः ॥२२
 नागन्तव्यं त्वया भूप पैशाचे देशधूर्तके । मत्प्रसादेन सूपाल तद शुद्धिः प्रजायते ॥२३
 इति श्रुत्वा नृपश्चैव स्वदेशानुनरागमत् । महामदश्च तैः साद्वै सिन्धुतीरमुपाययौ ॥२४
 उवाच शूर्पतिं प्रेम्णा मायामदविशारदः । तव देवो महाराज मम दासत्वमागतः ॥२५
 मग्नेच्छिष्ठं सभुञ्जीयाद्यथा ततपश्य भो नृप । इति श्रुत्वा तथा दृष्ट्वा परं द्विस्मयशागतः ॥२६
 म्लेच्छधर्मे मतिश्चासीत्स्य भूपस्य दारणे ॥२७

तन्युत्तदा कालिदासस्तु रुषा प्राह महामदम् । माया ते निर्मिता धूर्त नृपमोहनहेतवे ॥१८
 हनिष्यामि दुराचारं वाहीकं पुरुषाधमम् । इत्युक्त्वा स द्विजः श्रीमान्नवर्णजपतत्परः ॥१९
 चप्त्वा दशसहस्रं च तदशांशं जुहाव सः । भस्म भूत्वा स मायावी म्लेच्छदेवत्वमागतः ॥२०
 भयभीतास्तु तच्छ्या देशं वाहीकमाययुः । गृहीत्वा स्वगुरुर्भस्म मदहीनत्वमागतम् ॥२१
 स्थापितं तैत्रं भूमध्ये तत्रोषुर्मदतत्पराः । मदहीनं पुरं जातं तेषां तीर्थं समं स्मृतम् ॥२२
 रात्रौ स देवरूपश्च बहुमायाविशारदः । पैशाचं देहमास्थाय भोजराजं हि सोऽन्नवीत् ॥२३

सूत जी बोले—इस स्तुति को सुनकर शिव जी ने राजा से कहा—भोजराज ! आप महाकालेश्वर स्थान के वाहीक नामक भूमि प्रदेश में जाइये, वह भूमि म्लेच्छों द्वारा दूषित हो रही है। उस भीषण 'वाहीक प्रान्त में आर्यधर्म नहीं है। यहाँ बलि दैत्य से प्रेषित यही त्रिपुरासुर पुनः आ गया है, जिस महामायावी को मैंने भस्म कर दिया था। वह अयोनि से उत्पन्न, श्रेष्ठ, एवं दैत्यवंश का वर्द्धक है। 'महामद' (मुहम्मद) उसका नाम है, जो सदैव पिशाच कर्म ही करता रहता है। अतः राजन् तुम इस धूर्त एवं पिशाच के प्रदेश में मत ठहरो, मेरी कृपा से तुम्हारी शुद्धि हो जायगी। इसे सुनकर राजा अपने देश के लिए चल दिये। अपने शिष्यों समेत महामद भी सिंधु नदी के तटपर आया। उस कुशल मायावी ने प्रेम भाव से राजा से कहा—महाराज ! आपके देव मेरे दास हैं, नृप ! देखिये ये मेरा उच्छिष्ठ भोजन करते हैं। इसे देख सुनकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ । १९-२६। और वह भी उस भोषण म्लेच्छ-धर्म का अनुयायी होने के लिए सोचने लगा। उस समय कालिदास ने कुद्ध होकर महामद से कहा—धूर्त ! राजा को मोहित करने के लिए यह तुम्हारी माया है, अतः तुम ऐसे दुराचारी एवं वाहीक के अधमाधम का मैं वध कर दूँगा। इतना कहकर वह ब्राह्मण नवार्ण मंत्र का दशसहस्र जप करने के उपरांत उसके दशांश से आहुति-प्रदान करने लगा। उसी में वह भस्म होकर म्लेच्छों का देवता हो गया। पश्चात् उसके सभी शिष्यगण भयभीत होकर वाहीक देश चले गये। वहाँ अपने गुरु (मुहम्मद) का भस्म ले जाकर भूमि के मध्य (नीचे) स्थापित करके वे लोग शान्त हो गये। उस स्थान को 'मदहीन पुर' (मदीना) के नाम से स्थापित किया। वही उन लोगों का तीर्थ स्थान है। २७-२१। रात्रि के समय वह मायावी देव पिशाच रूप से भोज

आर्यधर्मो हि ते राजन्सर्वधर्मोत्तमः स्मृतः । ईशान्नया करिष्यामि पैशाचं धर्मदारणम् ॥२४
लिङ्गच्छेदी शिखाहीनः इमश्रुधारी स दूषकः । उच्चातापी सर्वभक्षी भविष्यति जनो मम ॥२५
दिना कौलं च पशवस्तेषां भक्ष्या मता मम । भुतलेनैव संस्कारः कुशैरिव भविष्यति ॥२६
तस्मान्मुसलदन्तो हि जातयो धर्मदूषकाः । इति पैशाचधर्मश्च भविष्यति मया कृतः ॥२७
इत्युक्त्वा प्रययौ देवः स राजा गेहमाययौ । त्रिवर्णं स्थापिता वाणी सांस्कृती स्वर्गदायिनी ॥२८
शूद्रेणु श्रान्ती भाषा स्थापिता तेन धीमता । पञ्चाशदब्दकालं तु राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२९
स्थापिता तेन मर्यादा सर्वदेवोपमानिनी । आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः ॥३०
आर्यवर्णः स्थितास्तत्र विन्ध्यान्ते वर्णसङ्कराः । नरा मुसलवन्तश्च स्थापिताः सिन्धुपारजाः ॥३१
बर्वरे तुषदेशो च द्वीपे नानाविधे तथा । ईशामसीहधर्मस्मृत्युं सुरै राज्ञैव संस्थिताः ॥३२
इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्पवर्णिं चतुर्दुःखण्डापरपरयिः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम तृतीयोऽध्यायः । ३

अथ चतुर्थोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

स्वर्गते भोजराजे तु सप्तभूपास्तदन्वये । जाताश्राव्यायुषो मन्दस्त्रिशताब्दान्तरे मृताः ॥१

से कहने लगा—राजन् ! तुम्हारा आर्यधर्म सभी धर्मों से उत्तम है । मैं तो ईशा की आज्ञावश इस दारुण धर्म का प्रचार कर रहा हूँ—लिंग कटाना, शिला (चोटी) हीन होकर केवल दाढ़ी रखना, बड़ी बड़ी बाते करना और सर्वभक्षी मेरे वर्ग के लोग होंगे । कौलतन्त्र के बिना ही वे पशुओं के भक्षण करेंगे, कुश के स्थान पर मूसल द्वारा अपने सभी संस्कार उनके होंगे इसीलिए यह मूसलमान जाति धर्मदूषक कही जायगी । इस प्रकार का पैशाच धर्म मैं विस्तृत करूँगा इतना कहकर वह चला गया और राजा भी अपने घर लौट आये । तीनों वर्णों (त्राह्यण, क्षत्रिय, एवं वैश्यों) में इन्होंने स्वर्गप्रद संस्कृत वाणी और शूद्रों में प्राकृत भाषा स्थापित की । पश्चात् पचास वर्ष राज करने के उपरांत स्वर्गगामी हो गये । उन्होंने ही सर्व देवों की मर्यादा तथा विन्ध्य हिमालय के मध्य प्रदेश की पुण्य भूमि में आर्यावर्त नामक देश स्थापित किया । वहाँ आर्य जाति के लोग रहते हैं और विन्ध्य के अन्त में वर्णसंकर गण तथा सिंधुपार के मूसलमानों को भी स्थान दिया । ईशामसीह धर्म, वर्वर, तुष तथा सभी द्वीपों में देव एवं राजाओं की भाँति स्थापित हो गया । २३-३२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्प पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक तीसरा अध्यायं समाप्त । ३।

अध्याय ४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—राजा भोज के स्वर्गीय होने के उपरांत उनके कुल के क्रमशः सात राजा और हुए थे,

बहुभूपवती भूमित्तेषां राज्ये बभूव ह । वीरसिंहश्च यो भूपः सप्तमः सम्प्रकीर्तिः ॥२
 तदन्वये त्रिभूपाश्र द्विशताब्दन्तरे मृताः : गङ्गासिंहश्च यो भूपो दशमः स प्रकीर्तिः ॥३
 कल्पक्षेत्रे च राज्यं स्वं कृतवान्धर्मतो नृपः । अन्तर्वेदां कान्यकुञ्जे जयचन्द्रो महीपतिः ॥४
 इन्द्रप्रस्थेनङ्गपालस्तोमराज्यसम्भवः । अन्ये च बहवो भूपा बभूदुर्गामिराष्ट्रपाः ॥५
 अग्निदंशस्य विस्तारो बभूव बलवत्तरः । पूर्वं तु कपिलस्थाने वाहीकान्ते तु पश्चिमे ॥६
 उत्तरे चीनदेशान्ते सेतुबन्धे तु दक्षिणे । षष्ठिलक्षाश्र भूपाला ग्रानपा बलवत्तरः ॥७
 अग्निहोत्रस्य कर्त्तरी गोग्राहणाहितैषिणः । बभूदुर्गापिरसमा धर्मदृश्यविशारदः ॥८
 द्वापराख्यन्तमः कालः सर्वत्र परिवर्तते : गेहे गेहे स्थितं द्वयं धर्मश्चेद जने जने ॥९
 ग्रामे ग्रामे स्थितो देवो देशे देशे स्थितो मत्वः । आर्यधर्मकरा म्लेच्छा बभूवः सर्वतोमुखाः ॥१०
 इति दृष्ट्वा कलिश्चोरो म्लेच्छया सह भीरुकः । नीलाद्रौ प्राप्य मतिमान्हरिं शरणमाययौ ॥११
 द्वादशाब्दमिते काले ध्यानयोगपरोऽभवत् । ध्यानेन सच्चिदानन्दं दृष्ट्वा कृष्णं सनातनम् ॥१२
 तुष्टाच भनसा तत्र राधाः सहितं हरिम् । पुराणमजरं नित्यं वृद्धावननिवासिनम् ॥१३

कलिरुचाच

साष्टाङ्गदण्डवत्स्यामिन्गृहाण भम चेश्वर । पाहि मां शरणं प्राप्तं चरणे ते कृपानिधे ॥१४

किंतु अल्पायु होने के नाते उन भाग्यहीनों का राजकाल तीन सौ वर्ष के भीतर ही समाप्त हो गया । और वे स्वर्गीय होते गये । उनके राज्य के अन्तर्गत छोटे-छोटे अनेक राजा हुए । उनके कुल के सातवें राजा का नाम वीरसिंह बताया जाता है । उनके कुल के तीन राजा दो सौ वर्ष के अन्तर्गत स्वर्गीय हो गये थे । दशवें राजा का नाम गंगा सिंह बताया जाता है, जिसने कल्पक्षेत्र में अपने राज्य का धर्मतः उपभोग किया है । अन्तर्वेदी नामक कान्यकुञ्ज प्रदेश में जयचन्द्र नामक राजा हुआ तथा इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में तोमर कुलभूषण अनंगपाल नामक राजा हुआ । इसी भांति ग्राम-राष्ट्रपाल (जमीदार-तालुकेदार) के रूप में अनेक राजा हुए । अग्निवंश का बलवत्तर विस्तार हुआ है पूर्व में कपिलाश्रम, पश्चिम में वाहीकान्त उत्तर में चीन के अन्त तक और दक्षिण में सेतुबन्ध तक विस्तृत भूमि में साठ लाख बलवान ग्रामाधिप (जमीदार-तालुकेदार) हुए हैं, जो अग्निहोत्र करने वाले तथा गो-व्राह्मण के हितैषी थे । उन धर्मकुशल राजाओं के समय में द्वापर के समान ही धर्म का प्रचार था, इसी से सभी स्थानों में द्वापर के समय का ही अनुभव हो रहा था । सभी घरों में धन था, प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक थे, गाँव-गाँव में देवता प्रतिष्ठित थे और देश-देश में यज्ञानुष्ठान का महारम्भ हुआ था । उस समय चारों ओर म्लेच्छ राजा आर्य-धर्म के ही अनुयायी थे । इसे देखकर घोर कलि म्लेच्छ समेत अत्यन्त भीरु होकर नीलांचल पर पहुँचकर उस बुद्धिमान् ने भगवान् की शरण ली । वहाँ उसने बारह वर्ष तक ध्यानयोग किया—अपने ध्यान में सच्चिदानन्द एवं सनातन भगवान् कृष्ण को देखकर उसने राधा समेत उन भगवान् को मानसिक स्तुति द्वारा प्रसन्न किया जो पुराण (प्राचीन) रूप, अजर और नित्य वृद्धावन में निवास करते हैं ॥१-१३

कलि ने कहा—स्वामिन् ! मेरे किये हुए साष्टांग दण्डवत् को आप स्वीकार करें । कृपानिधान ! मैं आपके चरण की शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये । आप समस्त पापों के नाशक तथा समस्त काल-

सर्वयापहरस्त्वं वै सर्वकालकरो हरिः । भवान्नौरः सत्ययुगे ब्रेतायां रक्तरूपकः ॥१५
द्वापरे पीतरूपश्च कृष्णत्वं मम दिष्टके । मत्युत्राश्च सृता म्लेच्छा आर्यधर्मत्वमागताः ॥१६
चतुर्गेहं च मे स्वामिन्द्यूतं मद्यं सुवर्णकम् । स्त्री हास्यं चाग्निवंशयैश्च क्षत्रियैश्च विनाशितम् ॥१७
त्यक्तदेहस्यकुलस्त्वक्तराष्ट्रो जनार्दन । त्वत्पादाम्बुजमाध्य श्यितोऽहं शरणं त्वयि ॥१८
इति श्रुत्वा स भगवान्कृष्णः प्राह विहस्य तस्म् । भो कले तव रक्षार्द्दं जनिष्येहं महाबतीम् ॥१९
भमान्शो भूमिमासाद्य क्षयिष्यति महाबलान् । म्लेच्छदंशस्य भूपालान्स्थानपिष्यति भूतले ॥२०
इत्युक्त्वा भगवान्साक्षात्त्रैवान्तरधीयत । कलिस्तु म्लेच्छया लार्दं परमानन्दमाप्तवान् ॥२१
एतस्मिन्नन्तरे विप्र यथा जातं शुणु स्वयम् ! आभीरी वाक्सरे ग्राने ब्रतपानाम विश्रुता ॥२२
नदुर्गावितं श्रेष्ठं नववर्णं चकार ह । प्रसन्ना चण्डिका प्राह वरं वरय शोभने ॥२३
तां यदि मे मातर्वरो देयस्त्वयेष्वरि । रामकृष्णसमौ बालौ भवेयातां भमान्वये ॥२४
तथेत्युक्त्वा तु सा देवी तत्रैवान्तरधीयत । वसुमानाम नृपतिस्तस्या रूपेण मोहितः ॥२५
जदाह्य धर्मतो शूणः स्वगेहे तामवासयत् । तस्यां जातौ नृपत्युत्रौ देशराजस्तु तद्वरः ॥२६
आवार्यो वत्सराजश्च शतहस्तिसमो बले । जित्या तौ मागधान्देशान्राज्यवन्तौ द्वूबूवतुः ॥२७
शतयत्तः सृतो म्लेच्छः शूरो वनरसाधिपः । ततुत्रो भीमसेनांशो वीरणोभूच्छिवाज्ञया ॥२८

रूप भगवान् हैं । आप का रूप सत्ययुग में गौर, ब्रेता में रक्तवर्ण, द्वापर में पीतवर्ण और मेरे समय सौभाग्यवश आप कृष्णरूप हैं । मेरे पुत्र जिन्हें म्लेच्छ कहा जाता है, आर्यधर्म के अनुयायी हो गये हैं । १४-१६। स्वामिन् । मेरे लिए चार घरों का निर्माण किया गया है—द्यूत (जूआ खेलने का स्थान) मद्य का स्थान, सुवर्ण-स्थान, और स्त्रियों के हास्य । इन्हें अग्निवंश के क्षत्रियों ने नष्ट-ब्रह्म कर दिया है । जनार्दन ! मैं इस समय देह, कुल और राष्ट्र का त्यागकर आपके चरणकमल में स्थित हूँ । यह सुनकर भगवान् कृष्ण ने मन्दमुस्कान करते हुए कहा—कले ! तुम्हारी रक्षा के लिए महाबली मैं उत्पन्न हूँगा । वहाँ मेरा अंश भूतल में पहुँचकर उन बलशाली राजाओं का विनाश करके महीतल में म्लेच्छ वंश के राजाओं की प्रतिष्ठा करेंगे । इतना कहकर भगवान् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और म्लेच्छ समेत कलि को परम आनन्द की प्राप्ति हुई । उस बीच विप्र ! जो घटना घटी मैं बता रहा हूँ, सुनो ! बाक्सर (बक्सर) नामक गाँव में एक ब्रतपा नामकी आभीरी (अहीरिन) रहती थी, जिसने नववर्ष तक अनवरत श्री दुर्गा जी की उपासना की थी । प्रसन्न होकर उससे चण्डिका देवी ने कहा—शोभने ! वर की याचना करो । उसने कहा—मातः ! यदि आपको वर प्रदान करना है, तो ईश्वरि (स्वामिनि) मेरे कुल में रामकृष्ण के समान दो बलशाली बालकों की उत्पत्ति हो । इसे स्वीकार करके देवी उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गई । वसुमानुनामक एक राजा ने उसके रूप-लावण्य पर मुग्रध होकर उसके साथ धार्मिक विवाह संस्कार सुसम्पन्न करके उसे अपने महल में रख लिया । उस राजा के उस रानी द्वारा ‘देशराज और कनिष्ठ वत्सराज’ नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो सौ हाथी के समान बलवान् थे । उन दोनों ने मगध के राजा पर विजय प्राप्तकर वहाँ के राजा हो गये । वनरस के अधिपति शतयत्त (सैयद) नामक म्लेच्छ अत्यन्त शूर था । उसके शिव की आज्ञावश भीमसेन के अंश से उत्पन्न, वीरन नामक पुत्र हुआ । १७-२८। एक म्लेच्छ ताड़ के

तालवृक्षप्रसःणेन चोर्ध्ववेनो हि तस्य त्रै । तालनो नाम विख्यातः शतयनेन वै कृतः ॥२९
ताभ्यां नृपाभ्यां तद्युद्धमभवल्लोमहर्षेणम् । युद्धेन हीनतां प्राप्तस्तालनो बलवत्तरः ॥३०
तदा मैश्ची कृता ताभ्यां तालनेन समन्विता । जयचन्द्रपरीक्षार्थे त्रयः शूराः सल्लायुः ॥३१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्थगुण्डापरपरपयोगे
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयोनामं चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ चन्द्रमोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इन्द्रप्रस्थेऽनज्ञप्तालोऽनपत्यश्च महीपतिः । पुत्रार्थं कारयामास शैवं यज्ञं विधानतः ॥१
कन्यके च तदा जाते शिवभागप्रसादतः । चन्द्रकान्तिश्च ज्येष्ठा वै द्वितीया कीर्तिमालिनी ॥२
कान्यकुञ्जाधिपाद्यैव चन्द्रकान्तिं पितादद्वत् । देवपालाण्य शुद्धाय राष्ट्रपालान्दयाद्य च ॥३
सोमेश्वराय भूपाय चपहानिकुलाय तु । अजमेराधिपत्यैव तथा वै कीर्तिमालिनीम् ॥४
जयशर्मा द्विजः कप्तित्समाधिस्थो हिमालये । दृष्ट्वा भूपोत्सवं रम्यं राज्यार्थं स्वमनोऽदधत् ॥५
त्यक्त्वा देहं स शुद्धात्मा चन्द्रकान्त्याः सुतोऽभवत् । जयचन्द्र इति ख्यातो बाहुशाली जितेन्द्रियः ॥

बरावर ऊँचाई तक कूदता था इसीलिए उसका तालन नाम रखा गया था उस समय उससे सैयद का रोमांचकारी युद्ध आरम्भ हुआ । उसमें बलवान् होने के नाते तालन की विजय हुई । पश्चात्, आपस में मित्रता करके वे तीनों शूर जयचंद्र की परीक्षा के लिए उनके यहाँ गये । २९-३१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहास समुच्चय वर्णन
नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५ कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) के राजा अनंगपाल ने पुत्रार्थ (पुत्रेष्टि नामक) यज्ञ का सविधान अनुष्ठान आरम्भ किया । भगवान् शिव की प्रसन्नता से 'चन्द्रकान्ति और कीर्तिमालिनी, नामक दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं । पिता ने चन्द्रकान्ति का पाणिग्रहण कान्यकुञ्ज (कन्नौज) के अधीश्वर राजा देवपाल द्वारा सुसम्पन्न कराया, जो शुद्ध एवं राष्ट्रपाल के कुल में उत्पन्न था । उसी प्रकार कीर्तिमालिनी का पाणिग्रहण राजा सोमेश्वर के साथ सुसम्पन्न हुआ, जो चपहानि कुल में उत्पन्न होकर अजमेर का अधीश्वर था । उस समय जय शर्मा नामक कोई ब्राह्मण हिमालय पर्वत पर समाधिस्थ होकर कठिन तप कर रहा था । राजा के यहाँ उस राज महोत्सव को देखकर उसे भी राजा होने की इच्छा हुई । पश्चात् उस शुद्धात्मा ने देह परित्याग कर पुनः चन्द्रकान्ति के गर्भ से जन्म ग्रहण किया, जो जयचन्द्र

रत्नभानुश्रव सञ्जज्ञे शुरस्तस्यानुजो बली ॥६
 स जित्वा गौडव ज्ञादीन्मरुदेशान्मदोत्कटान् । दण्डचान्कृत्वा गृहं प्राप्य भ्रात्राज्ञातत्परोऽभवत् ॥७
 गङ्गासिंहस्य भगिनी नाम्ना वीरवती शुभा । रत्नभानोश्च महिषी बभूव वरवर्णिनी ॥८
 नकुलांशस्तदा भूमौ तस्यां जातः शिवाज्ञया । लक्षणो नाम बलवान्खड्गयुद्धदिशारदः ॥
 स सप्ताब्दान्तरे प्राप्ते पितुस्तुल्यो बभूव ह ॥९
 त्रयश्च कीर्तिमालिन्यां पुत्रा जाता मदोत्कटाः । धुन्धुकारश्च प्रथमस्ततः कृष्णकुमारः ॥
 पृथिवीराज कनिष्ठात्मज इति स्मृतः ॥१०
 द्वादशाब्ददयः प्राप्तः सिंहखेलस्ततोऽभवत् । श्रुत्वा चानङ्गपालश्च तस्मै राज्यं स्वयं ददौ ॥
 गत्वा हिमगिरिं रम्यं योगध्यानपरोऽभवत् ॥११
 मथुरायां धुन्धुकारोऽजमेरे च ततोऽनुजः । राजा बभूव नीतिज्ञस्तौ सुतौ पिंदुराज्ञया ॥१२
 प्रद्योतश्चैव विद्योतः क्षत्रियौ चन्द्रवंशजौ । मन्त्रिणौ तस्य भूपस्य बलवन्तौ मदोत्कटौ ॥१३
 प्रद्योततनये जातो नाम्ना परिमलो बली । लक्षसेनाधिपः सो हि तेन राजैव संस्कुतः ॥१४
 विद्योताङ्गीष्मसिंहश्च गजसेनाधिपोऽभवत् । स्वर्गतेऽनङ्गपाले तु ज्ञमिदाजो महीपतिः ॥१५
 दृष्ट्वा तरन्विप्रियान्सर्वान्निजराज्यान्निरकरोत् । प्रद्योताद्याश्च चत्वारः स्वशूरैर्द्विशतैर्युताः ॥१६
 कान्यकुञ्जपुरं प्राप्य जयचन्द्रमवर्णयन् । जयचन्द्र महीपाल त्वन्मातुष्वसुजो नृपः ॥१७
 मातामहस्य ते राज्यं प्राप्तवान्निर्भयो बली । न्यायेन कथितोऽस्माभिरद्वराज्यं हि ते स्मृतम् ॥१८
 सर्वराज्यं कथं भुक्षे श्रुत्वा तेन निराकृताः । भवन्तं शरणं प्राप्ता यथायोग्यं तथा कुरु ॥१९

के नाम से स्थातिप्राप्त, बलशाली एवं संयमी था । उसके कनिष्ठ (छोटे) भ्राता का नाम रत्नभानु था, जो शूर और पराक्रमी था । १-६। उसने गौड, बंग आदि और मरुदेश के मदांध राजाओं पर विजय प्राप्ति समेत उनसे दंड-कर ग्रहण करते हुए अपने घर आकर अपने भाई की आज्ञा से सेवा शिरोधार्य की । गंगासिंह की वीरमती नामक भगिनी रत्नभानु की प्रधान स्त्री हुई, जिसके गर्भ से शिव की आज्ञा वश नकुल का अंश लक्षण के नाम से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जो बलवान् एवं खड्ग युद्ध में अत्यन्त निपुण था । वह सात वर्ष की अवस्था में ही अपने पिता के समान दिवाई देने लगा । कीर्तिमालिनी के धुंधकार, कृष्णकुमार और पृथिवीराज नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए । पृथिवीराज सबसे छोटा था जो बारह वर्ष की और अधिक अवस्था हो जाने पर सिंह खेल नामक अपने पिता के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ था । उसे सुनकर अनंगपाल ने अपना राज्य उसे समर्पित कर दिया और स्वयं हिमालय पर्वत पर जाकर योगाभ्यास करने लगा । मथुरा का राजा धुंधकार और अजमेर का राजा उसका छोटा भाई हुआ । ये दोनों अपने पिता की आज्ञा प्राप्तकर राजसिंहासन पर बैठ गये । चन्द्रवंश के प्रद्योत और विद्योत नामक दो क्षत्रिय कुमारोंने पृथिवीराज के राजमंत्री का पद-भार ग्रहण किया, जो बलवान् एवं मदोत्कटथे । ७-१३। प्रद्योत के पुत्र का नाम परिमल था, जो स्वयं बली तथा उसी राजा द्वारा उसकी एक लक्ष सेना का अधिनायक हुआ था एवं विद्योत से उत्पन्न भीष्मसिंह गजराजों की सेनाओं का अधिपति हुआ । राजा अनंगपाल के स्वर्णीय होने पर राजा पृथिवीराज ने उन सबको अपने प्रतिकूल देखकर राज्य से निकाल दिया । प्रद्योत

इति श्रुत्वा महीपालो जयचन्द्र उवाच तान् । अथसैन्ये मदीये चाधिकारी ते सुतो भवेत् ॥२०
 नाम्ना परिमलः शूरस्त्वं मन्मन्त्रो भवाधुना । विद्येतश्च तथा मन्त्री गजसैन्ये हि भीष्मकः ॥२१
 वृत्त्यर्थं च मया वौ वै पुरी दत्ता महावती । महीपतेश्च भूपस्य नगरी सा प्रियङ्करी ॥२२
 इति श्रुत्वा तु ते सर्दे तथा मत्वा मुमोदिरे । महीपतिस्तु बलवान्दुःखात्सन्त्यज्य तां पुरीम् ॥२३
 कृत्वीवायां पुरीमन्यां तत्र वासमकारयत् : अगमा मलना चैव भगिन्यौ तस्य चोत्तमे ॥२४
 अगमा भूमिराजाय चर्त्या परिमलाय सा । दत्ता भ्रात्रा विधानेन परमानन्दनापतुः ॥२५
 विवाहान्ते च भूराजा दुर्गमन्यमकारयत् । कृत्वा च नगरीं रम्यां चतुर्वर्णनिवासिनीम् ॥२६
 देहली सुमुहर्तेन दुर्गद्वारे सुरोपिता । गता सा योजनान्ते वै वृद्धिरूपा मुकालतः ॥२७
 विस्मितः स नृपो भूत्वा देहली नाम चाकरोत् । देहलीग्राम इति च प्रसिद्धोऽभूत्वपाज्ञया ॥२८
 त्रिवर्षान्ते च भो विप्रा जयचन्द्रो महीपतिः । लक्षणोडशसैन्यादध्यस्तत्र पत्रमचोदयत् ॥२९
 किमर्थं पृथिवीराज महायं मे न दत्तवान् । मातामहस्य वै दायं चार्द्धं मे च समर्पय ॥३०
 नो चेमच्छस्त्रकठिनैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः । इति ज्ञात्वा महीराजो विंशत्प्रलक्षाधिष्ठो बली ॥३१

आदि वे चारों अपने दो सौ सूर-बीरों समेत कान्यकुञ्जपुर (कन्नौज) में राजा जयचन्द्र के पास पहुँचकर कहते लगे—राजा जयचन्द्र ! आपकी मातृ-भगिनी (मौसी) का पुत्र आपके मातामह (नाना) के राज्य का उपभोग निर्भय होकर कर रहा है । हम लोगों ने न्यायतः उस राजा से कहा—आप इस राज्य के आधे भाग के ही अधिकारी हैं अतः सम्पूर्ण राज्य का उपभोग आप कैसे कर रहे हैं ? इसे सुनकर उसने हमलोगों को निकाल दिया । हम लोग अब आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं, जैसा उचित हो, कीजिए । इसे सुनकर राजा जयचन्द्र ने उन लोगों से कहा—मेरी अवसेना के अधिनायक तुम्हारे दोनों पुत्र बना दिये गये । और परिमल से कहा कि—आप इस समय विद्योत समेत मेरे मन्त्रीपद का भार ग्रहण करें । भीष्मक गज सेना का अधिपति बनाया गया । १४-२१। आप लोगों की जीविका के निमित्त वह महावती नामक पुरी प्रदान की गई है, जो राजा महीपति (माहिल) की अत्यन्त प्रिय नगरी है । यह सुनकर वे सब अत्यन्त हर्ष निमग्न हुए । राजा महीपति (माहिल) बलवान् होते हुए भी अत्यन्त दुःख के साथ उस पुरी का त्यागकर उर्वीं (उर्रई) नामक नगर में आकर रहने लगे । उनकी अगमा और मलना (मल्हना) नाम की दो बहिनें थीं अगमा का पाणिग्रहण भूमिराज (पृथिवीराज) से, मलना का पाणिग्रहण परिमल के साथ सुसम्पन्न हुआ । विवाह हो जाने के उपरान्त भूमिराज (पृथिवीराज) ने एक अन्य दुर्ग (किले) का निर्माण कराया और चारों वर्णों के मनुष्यों को निवासी बनाकर अपनी पुरी को सुसज्जित करा दिया । उस दुर्ग के द्वारपर शुभ मुहूर्त में उन्होने (देहली) (सुंरग) लगवाई, जो एक योजन (चार कोस) तक विस्तृत होती हुई अधिक दिनों में सुसम्पन्न की गई थी । उसे देखकर राजा स्वयं विस्मित हुए और उसका देहली नाम रखा । उस दिन से राजा की आज्ञा वश वह देहली (दिल्ली) ग्राम के नाम से व्याप्त होने लगी । विप्र ! तीन वर्ष के उपरान्त राजा जयचन्द्र ने अपनी सोलह लाख सेनाओं को सुसज्जित करके वहाँ पत्र भेजा—पृथिवीराज ने मेरे दाय भाग का अपहरण क्यों किया, अब तक मुझे क्यों नहीं दे दिया ? अस्तु अब भी मेरे मातामह (नाना) के राज्य का अर्धभाग दाय रूप में मुझे शीघ्र प्रदान करें । अन्यथा मेरे कठिन अस्त्रों द्वारा उनका सैनिक बल नष्ट कर दिया जायगा । पत्र को देखकर मदांध महीराज

द्रुतं वै ब्रेष्यामास राजराजो मदोत्कटः । जयचन्द्र महीपाल सावधानं शृणुष्व तत् ॥३२
 यदा निराकृता धूर्ता मया ते चन्द्रवंशिनः । ततः प्रभृति सेनाङ्गं विंशल्लक्षं समाहृतम् ॥३३
 त्वया षोडशलक्षं च युद्धसैन्यं समाहृतम् । सर्वे वै भारते भूपा दण्डयोग्याश्च मे सदा ॥३४
 भवान्न दण्डचो बलवान्करं मे दातुमर्हति । नो चेन्मत्कठिनैवर्णैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः ॥३५
 इति ज्ञात्वा तयोर्घोरं वैरं चासीन्महीतले । भूमिराजश्च बलवाञ्जयचन्द्रभयादितः ॥३६
 जयचन्द्रश्च बलवान्पृथिवीराजभीरुकः । जयचन्द्रश्चार्थदेशमर्द्धराष्ट्रमकल्पयत् ॥३७
 पृथिवीराज एवासौ तथाद्दं राष्ट्रमानयत् । एवं जातं तयोर्वैरमग्निवशप्रणाशनम् ॥३८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

एकदा रत्नभानुर्हि महीराजेन पालिताम् । दिशं याम्यां स वै जित्वा तेषां कोशानुपाहरत् ॥१

(पृथिवीराज) ने भी जो बीस लाख की सेना सुसज्जित किया तथा द्रूत भेजकर कहा—राजा जयचन्द्र ! सावधान होकर मेरी बातें सुनो ! २२-३२। जिस समय मैंने उन चन्द्रवंशी क्षत्रियों को अपने यहाँ से निकाल दिया था उसी समय से मैंने बीस लाख सेना का सुसंगठन करना आरम्भ किया था, जो इस समय भली भाँति सुसज्जित है। तुमने तो केवल सोलह लाख ही सेना की सहायता से युद्ध करने की तैयारी की है। भारत के सभी राजा दंडित होने के नाते सदैव मुझे दंडकर देते हैं केवल एक तुम हीं अपने को बलवान समझने के नाते कर नहीं देते। किन्तु अब उसे शीघ्र प्रदान करो, नहीं तो मेरे कठिन बाणों द्वारा तुम्हारी सेना नष्ट हो जायगी। इसे जानकर इन दोनों में इस भूतल में अनुपम वैर उत्पन्न हुआ। भूमिराज (पृथिवीराज) बलवान् होकर भी जयचन्द्र के भय से दुःखी हो रहे थे। और जयचन्द्र भी बली होते हुए पृथिवीराज से भयभीत हो रहा था। जयचन्द्र ने आर्य देश (भारत) का आधा राज्य अपनाया था और पृथिवीराज ने शेष आधे भाग को। इसी विषय को लेकर दोनों में महान् वैर उत्पन्न हुआ जिससे अग्निवंश का समूल नाश हो गया। ३३-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६ कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—एक बार रत्नभानु (रत्नमान) ने पृथिवीराज के राज्य के दक्षिणी प्रदेश पर विजय

महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा परं विस्मयमागतः । रत्नभानोश्च तिलको बभूव बहुविस्तरः ॥२
 तिलका नाम विख्याता या तु वीरवती शुभा । श्रेष्ठा द्वादशराज्ञीनां जननी लक्षणस्य वै ॥३
 जयचन्द्रस्य भूपस्य योषितः षोडशाभवन् । तासां न तनयो ह्यासीत्पूर्वकर्मविपाकतः ॥४
 गौडभूपस्य उहिता नाम्ना दिव्यविभावरो । जयचन्द्रस्य महिषी तदासी मुरभानवी ॥५
 रूपयैदनसंयुक्ता रत्नकेलिविशारदः दृष्ट्वा तां स नृपः कामी दुभुजे स्मरयीडितः ॥६
 तस्यां जाता सुता देवी नाम्ना संयोगिनी शुभा । द्वादशाब्दवयः प्राप्ता सा बभूव वराङ्गना ॥७
 तत्रयः स्वयम्बरे राजाह्वयद्भूपान्महसुभान् । भूक्षिराजस्तु बलवाञ्छृत्वा तद्वृपमुत्तमम् ॥८
 दिवाहार्थे मनश्चासीच्चन्द्रभट्टमचोदयत् । मन्त्रिवर भो मित्र चन्द्रभट्ट मम प्रिय ॥९
 कान्यकुञ्जपुरीं प्राप्य मन्मूर्ति स्वर्णनिर्मिताम् । स्थापय त्वं सभामध्ये यद्वृत्तान्तं तु मे वद ॥१०
 इति श्रुत्वा चन्द्रभट्टो भवानीभक्तितप्यरः । गत्वा तत्र भृगुश्रेष्ठ यथ प्रोक्तस्तथाकरोत् ॥११
 स्वयंवरे च भूपाश्च नानादेश्याः समागताः । त्यक्त्वा संयोगिनी तान्वै नृपसूर्तिविभोहिता ॥१२
 पितरं प्राह कामाक्षी यस्य मूर्तिरियं नृप । भविष्यति स मे भर्ता सर्वलक्षणलक्षितः ॥१३
 जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा चन्द्रभट्टमुवाच तम् । यदि ते भूपतिश्रैव सर्वसैन्यसमन्वितः ॥१४
 सञ्जयेद्योगिनीमेतां तर्हि मेऽतिप्रियो भवेत् । चन्द्रभट्टस्तु तच्छ्रुत्वा ततु सर्वमर्वण्यत् ॥१५

प्राप्तकर उसके कोष (खजाने) का अपहरण कर लिया था । उसे सुनकर पृथिवीराज को अत्यन्त आश्चर्य हुआ । रत्नभानु का तिलक अत्यन्त विस्तृत रूप में था । इसीलिए उस कल्याणमूर्ति वीरमती को तिलका भी कहते थे, बारह रानियों में प्रधान एवं लक्षण (लपन) की जननी थी । राजा जयचन्द्र की सोलह रानियाँ थीं, किन्तु जन्मान्तरीय दुर्विपाक वश किसी के कोई सन्तान न थी । उनकी प्रधान रानी जिसका नाम दिव्य विभावरी था, गौड भूप की कन्या थी । उनकी साथ की आई हुई दासी का नाम सुरभानवी था, रूप-योवन सम्पन्न एवं रतिक्रीड़ा में अत्यन्त निपुण थी । उसे देखकर राजा जयचन्द्र अपनी काम-पीड़ा को सहन न कर सकने के नाते उसके साथ खूब रमण किया । पश्चात् उसके संयोगिनी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई । बारह वर्ष की अवस्था में ही वह कन्या अप्रतिम सर्वाङ्ग सुन्दरी दिखायी देने लगी । उस समय उसके स्वयम्बर के लिए राजा ने सभी देशों के राजाओं को निमंत्रित किया । बलदान् पृथिवीराज भी उसके उत्तम सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर स्थिर न रह सके । उससे विवाह ह संबंध स्थापित करने के उद्देश्य से चन्द्रभट्ट (चन्द्रवरदाई भाँट) को बुलाकर कहा—मंत्रिश्रेष्ठ, चन्द्रभट्ट ! मेरे प्रिय ! कान्यकुञ्ज (कन्नौज) पुरी में जाकर मेरी सुवर्ण की मूर्ति वहाँ सभा में स्थापित करना, उसके विषय में जैसा वहाँ का वृत्तान्त हो मुझसे कहना । भृगुश्रेष्ठ ! भगवती के अनन्य भक्त चन्द्रभट्ट ने जैसा कहा गया था, वैसा ही उस कार्य को पूरा किया । उस स्वयम्बर में अनेक देशों के राजागण उपस्थित थे, किन्तु संयोगिनी ने उन सबका त्यागकर केवल पृथिवीराज की उस प्रतिमा-सौन्दर्य पर मुग्धहोकर अपने पिता से कहा—‘नृप ! जिस राजा की यह मूर्ति है, सर्वलक्षण सम्पन्न वही राजा मेरा पति होगा ।’ इसे सुनकर जयचन्द्र ने चन्द्रभट्ट से कहा—यदि तुम्हारा राजा सभी सेनाओं के साथ यहाँ आकर युद्ध में इस पर विजय प्राप्तकर सके, तो मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँगा । चन्द्रभट्ट ने उसे सुनकर पृथिवीराज से उसका आनुपूर्वी वर्णन किया । १-१५।

पृथिवीराज एवासौ श्रुत्वा सैन्यमचेदयेत् । एकलक्षा गजास्तस्य सप्तलक्षास्तुरद्भुमाः ॥१६
रथः पञ्चसहस्राश्र धनुर्बाणविशारदाः । लक्षाः पदातयो ज्ञेया द्वादशैव महाबलाः ॥१७
राजानस्त्रिशतान्येव महीराजपदान्द्रगाः । साहूं द्वाभ्यां च बन्धुभ्यां कान्यकुञ्जे नृपोऽगमत् ॥१८
भुन्धुकारश्च तद्वन्धुर्गजनीकपतिस्सदा । हयानीकपतिः कृष्णकुमारो बलवत्तरः ॥१९
पदातीनां नृपतयः पतयस्तत्र चाभवत् । महान्कोलाहलो ज्ञातः स्थलीं शून्यमकारयत् ॥२०
विंशत्कोशप्रमाणेन स्थितं तस्य महाबलम् । जयचन्द्रस्तु संज्ञाय महीराजस्य चागमम् ॥२१
स्वसैन्यं कल्पयामास लक्षणोदशतम्मितम् । एकलक्षा गजास्तस्य सप्तलक्षाः पदातयः ॥२२
बाजिनश्चाष्टलक्षाश्च भर्वयुद्धविशारदाः । द्विशतान्नेन राजानः प्राप्तास्तत्र समागमे ॥२३
आगस्त्कृतं महीराजं मत्वा ते शुक्लवंशिनः । युद्धार्थिनः स्थितास्तत्र पुरमागस्त्कृतं ह्यभूत् ॥२४
ईशनद्वाः परे कूले ते तदोला स्थापिता तदा । नानावादायानि रम्याणि तत्र चक्रुर्महारवम् ॥२५
रत्नभानुर्गजानीके रूपानीके हि लक्षणः । ताभ्यां सेनापतिभ्यां तौ सद्गुप्तौ बलवत्तरौ ॥२६
प्रद्योतश्चैव दिद्योतो रत्नशानुं रक्षतुः । भीमः परिमलश्चैव लक्षणं चन्द्रवंशजः ॥२७
मूपाः पदातिसैन्ये च संस्थिता मदविह्वलाः । तयोश्चासीन्महद्युद्धं दारुणं सैन्यसंक्षयम् ॥२८
हया हर्यमृता जाता गजाश्चैव गजैस्तथा । पदातयः पदातैश्च मृताश्रान्ये क्रमादग्ने ॥२९
भूपैश्च रक्षिताः सर्वे निर्भया रणमाययुः । यावत्सूर्यः स्थितो व्योम्नि तावद्युद्धमवर्तत ॥३०

पृथिवीराज ने शीघ्र अपनी सेनाओं को सुसज्जित होने के लिए आज्ञा प्रदान किया । उस सेना में एक लाख गजराज के सैनिक, सात लाख अश्वारोही, पाँच सहस्र रथ वाले, जो धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण थे, बारह लाख पैदल सैनिक थे, और तीन सौ राजा पृथिवीराज के साथ चल रहे थे । अपने दोनों भाइयों को साथ लेकर राजा पृथिवीराज कान्यकुञ्ज (कन्नौज) की पुरी में पहुँच गये । उस सेना में धुन्धुकार गज सेनानायक और अश्वारोही सेना के अधिपति बलवान् कृष्णकुमार बनाये गये थे । तथा पैदल की सेनाओं के अधिनायक राजा लोग बनाये गये थे । उसमें इतना महान् कोलाहल हो रहा था, जिससे पृथिवी निःशब्द मालूम होती थी । बीस कोश की भूमि में वह सेना धेरा डाले पड़ी थी । पश्चात् राजा जयचन्द्र पृथिवीराज का आगमन सुनकर अपनी सोलह लाख की सेना को सुसज्जित होने का आदेश दिया । उस सेना में एक लाख गज सैनिक, सात लाख पैदल, आठ लाख अश्वारोही जो सभी भाँति के युद्ध में कुशल थे, तथा दो सौ राजा उनकी सहायता के लिए उपस्थित थे । वे चन्द्रवंशी राजागण पृथिवीराज को अपराधी जानकर चारों ओर से युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गये । ईशनदी के दूसरे तटपर संयोगिनी का ढोला (डोला) रखा गया, जहाँ मधुरध्वनि वाले अनेक बाजे बज रहे थे । १६-२५। गजसेना नायक रत्नभानु और रूपानीक लषन (लखन) नामक इन दोनों सेनापतियों द्वारा उस डोला की रक्षा हो रही थी । प्रद्योत और विद्योत रत्नभानु की रक्षा कर रहे थे, और चन्द्रवंशी भीम तथा परिमल लषन की । राजा की पैदल सेनाएँ मदांध होकर भीषणरूप धारणकर सेना का वध करने लगीं । उस युद्ध में घोड़े द्वारा घोड़े की, हाथी द्वारा हाथी की और पैदल द्वारा पैदल सेना के योधाओं की मृत्यु होने लगी । केवल राजा लोग उस युद्ध की रक्षा निर्भय होकर कर रहे थे । जब तक सूर्य आकाश मण्डल में स्थित रहते थे, तब तक युद्ध होता

एवं पञ्चदिनं जातं युद्धं वीरजनक्षयम् । गजा दशसहस्राणि हया लक्षणि संक्षिताः ॥३१
 पञ्चलक्षं नहीर्भुर्हतास्तत्र इदातयः । राजानो द्वे शते तद्र रथाश्च त्रिशतं तथा ॥३२
 कान्यकुञ्जाधिपस्यैव गजा नवसहस्रकाः । सहस्रैकं रथा ज्ञेयास्त्रिलक्षं च पदातयः ॥३३
 एकलक्षं हयास्तत्र भूताः स्वर्गपुरं ययुः । षष्ठाहे समनुप्राप्ते पृथिवीराज एव सः ॥३४
 दुःखितो मनसा देवं रुद्धं तुष्टाव भक्तिमान् । सनुष्टस्तु महादेवो मोहयामास तद्वलम् ॥३५
 प्रसन्नस्तु महीराजो गतः संयोगिनीं प्रति । दृष्ट्वा तत्मुन्दरं रूपं मुमोह वसुधाधिषः ॥३६
 संयोगिनीं नृपं दृष्ट्वा मूर्च्छिता चाभवत्क्षणात् । एतस्मिन्नन्तरे राजा तदोलामनयद्वलात् ॥३७
 जगाम देहलीं भूपः सर्वसैन्यसमन्वितः । योजनान्ते गते तस्मिन्बोधितात्ते भद्रोद्भूटाः ॥३८
 दृष्ट्वा नैव तदा दोलां प्रजमुर्वेगवत्तराः । श्रुत्वा कोलाहलं तेषां महीराजो नृपोत्तमः ॥३९
 अर्द्धसेन्यं च संस्थाप्य स्वर्यं गेहमुपागमत । उभौ तद्भ्रातरौ वीरो चार्द्धेन्यसमन्वितौ ॥४०
 सूकरक्षेत्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितौ । एतस्मिन्नन्तरे सर्वे प्रद्योतादिमहाबलाः ॥४१
 स्वैरन्यैः सह सम्प्राप्य महद्युद्धमकारयन् । हया हयैश्च सञ्जगमुर्गजा अथ गजैः सह ॥४२
 सङ्कुलश्च महानासीद्वारुणो लोमर्हणः । दिनान्ते संक्षयं यातं तयोश्चैव महद्वलम् ॥४३
 भयभीताः परे तत्र जात्वा रात्रिं तमोवृताम् । प्रदुदुर्वभ्याद्वीरा हतशेषास्तु देहलीम् ॥४४
 प्रद्योताद्याश्च ते वीरा देहलीं प्रति संयुः । पुनस्तयोर्महद्युद्धं ह्यभवल्लोमर्हणम् ॥४५
 धुन्धुकारश्च प्रद्योतं हृदि बाणेरताडयत् । त्रिभिश्च विषनिर्घृतैर्मूर्च्छितः स ममार च ॥४६

था । २६-३०। इस प्रकार वह वीर नाशक युद्ध पाँच दिन तक होता रहा जिसमें पृथिवीराज के दश सहस्र गजराज, एक लाख घोड़े, पाँच लाख पैदल की सेना, दो सौ राजा और तीन सौ रथारोही का निधन हुआ और कन्नौज के राजा जयचन्द्र के नव सहस्र गजराज, एक सहस्र रथ, तीन लाख पैदल और एक लाख अश्वारोही सैनिकों का निधन हुआ। छठे दिन राजा पृथिवीराज ने अत्यन्त दुःखी होकर भगवान् शंकर वी मानसिक आराधना की। प्रसन्न होकर महादेव जी ने जयचन्द्र की सेना को मोहित कर दिया। उस समय प्रसन्न होकर पृथिवीराज संयोगिनी के पास जाकर उसके रूप-सौन्दर्य को देखते हो मुग्ध हो गया और संयोगिनी भी उसे देखकर उसी समय मोहमूर्च्छित हो गई। उसी बीच राजा ने बलपूर्वक उस डोले को साथ लेकर सेनाओं समेत देहली (दिल्ली) के लिए प्रस्थान कर दिया। एक योजन (चार कोस) तक उनके चले आते पर (जयचन्द्र) के मदांध सैनिकों की आँखें खुलीं। वहाँ डोला न देखकर वे सब अत्यन्त वेग से पीछा करने लगे। उनके कोलाहल (शोर) को सुनकर राजा पृथिवीराज अपनी आधी सेना वहाँ रखकर स्वयं अपने घर चले गये। उनकी आधी सेना समेत उनके दोनों भाइयों ने बाराह क्षेत्र में युद्ध के लिए सन्दर्भ होकर सेना समेत आये हुए प्रद्योतादि महाबलवानों के साथ महान् युद्ध आरम्भ कर दिया। घोड़े का घोड़ों के साथ, हाथी का हाथियों के साथ भीषण एवं रोमांचकारी युद्ध आरम्भ हुआ। संध्या होते-होते दोनों और की सेनाओं का अत्यन्त नाश हो गया। उस अंधेरी रात में शेष बचे हुए पृथिवीराज के सैनिक भयभीत होकर देहली (दिल्ली) भाग गये। ३१-४४। किन्तु प्रद्योत आदि योद्धाओं ने वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। वहाँ पुनः भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध में धुन्धुकार ने प्रद्योत के हृदय में बाण-प्रहार किया। इस

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा विद्योतक्ष महाबलः । आजगाम गजारुद्धो धुन्धुकारमताऽङ्गत् ॥४७
 त्रिभिश्च तोमरैः सोऽपि मूर्च्छितो भूमिमागमत् । मूर्च्छितं भ्रातरं दृष्ट्वा धुन्धुकारं महाबलम् ॥४८
 तदा कृष्णकुमारोऽसौ गङ्गस्थस्त्वरितो यथौ । रूपाकिष्टश्च तं वीरं भल्लेनैवरताडयत् ॥४९
 भल्लेन तेन सम्भ्रन्नो मृतः स्वर्गपुरं यथौ । विद्योते निहते तस्मिन्सर्वसंन्यवूपतौ ॥५०
 रत्नाभानुर्महावीरोऽवृथ्यतेन समन्वितः । एतस्मिन्नन्तरे राजा सहस्रगजसंयुतः ॥५१
 लक्षणं सहितं ताम्भं कुद्दं तं समयुध्यत । शिवदत्तवरो राजा भीष्मं परिमतं रुषा ॥५२
 रुद्रास्त्रैर्मैह्यामासलक्षणं बलवत्तरम् । मूर्छितांस्तान्तमालोक्य रत्नभानुः शरैर्निजैः ॥५३
 धुन्धुकारं महीराजं वैष्णवैः समनोह्यन् । कृष्णको रत्नभानुञ्च पुयुध्यते परस्परम् ॥५४
 उभौ समबलौ दीरौ गजपृष्ठस्थितौ रणे । अन्योऽन्यनिहतौ नागौ खड्गहस्तौ महीतले ॥५५
 युयुधाते बहून्मार्गान्कृतवन्तौ सुदुर्जयौ । प्रहरान्तं रणं कृत्वा मरणायोपजग्मतुः ॥५६
 हते तस्मिन्महावीर्ये कान्यकुञ्जा भयातुरा: । मूर्छितांस्त्रीन्समादाय पञ्चलक्षबलैर्गुताः ॥५७
 रणं त्यक्त्वा गृहं जगमुर्नपशोकपरायणाः । रत्नभानौ च निहते हतोत्साहाश्च भूमिपाः ॥५८
 स्वं स्वं निवेशनं जगमुर्नहीराजभयातुराः । देवानाराधयामासुर्येष्टं ते गृहे गृहे ॥५९
 महीराजस्तु बलवान्सप्तलक्षवलान्वितः । धुन्धुकारेण सहिते बन्धुकृत्योर्धर्वमाचरत् ॥६०
 तथा भीष्मः परिमलो लक्षणः पितरं स्वकम् । गङ्गाकूले समागम्य चोर्धर्वदैहिकमाचरन् ॥६१

प्रकार उनके विषाक्त तीन बाणों द्वारा क्षत-विक्षत (धायल) होकर प्रद्योत का प्राण विसर्जन हो गया । भ्राता का निधन देखकर महाबली विद्योत ने अपनी हाथी बढ़ाकार धुन्धुकार पर प्रहार किया । उनके तीन बार तोमर नामक अस्त्र द्वारा प्रहार करने पर वे मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े । अपने भाई धुन्धुकार को मूर्च्छित देखकर कृष्णकुमार ने अपनी हाथी बढ़ाई । कुद्द होकर उस वीर पर भाले का प्रहार किया जिससे वह मृतक होकर चला गया । सेनानायक विद्योत के निधन होने पर महापाराक्रमी रत्नभानु ने युद्ध प्रारम्भ कर दिया । उसी समय धुन्धुकार (धांधू) एक सहस्र गज सेना लेकर लघन से युद्ध करने लगा, जिसकी सहायता भीष्म और परिमल कर रहे थे । शिव का वरदान प्राप्त उस राजा ने उन तीनों—भीष्म, परिमल और लघन को अपने रुद्रास्त्र द्वारा मूर्च्छितकर दिया । रत्नभानु (रतीभान) ने उन्हें मूर्च्छित देखकर अपने वैष्णवास्त्र द्वारा धुन्धुकार (धांधू) को मूर्च्छित कर कृष्णकुमार के साथ युद्धारम्भ किया । वे दोनों समान बली, वीर एवं गजराज पर स्थित थे । अपनी कला-कुशलता से उन्होंने एक दूसरे के गज का निधन कर दिया । पश्चात् भूतल में स्थित होकर हाथ में खड्ग लेकर उन दुर्मदान्धों ने युद्ध करते हुए अनेक मार्गों का निर्माण किया । और उसी रण-स्थल में एक दूसरे पर धात-प्रतिधात करते हुए प्राण विसर्जन किया । उन दोनों के निधन होने पर कान्यकुञ्ज (कन्नीज) के सैनिक भयभीत होकर उन तीनों को तथा बची हुई पाँच लाख सेना को लेकर अपने घर चले आये । शोकग्रस्त होकर राजाओं ने रत्नभानु के स्वर्गीय होने पर और भी हतोत्साह का अनुभव किया । अनन्तर पृथिवीराज के भय से अपने अपने घर जाकर वे राजागण अपने इष्टदेवों की आराधना करने लगे । बलवान् पृथिवीराज ने अपनी शेष सात लाख की सेना और धुन्धुकार को साथ लेकर घर जाकर अपने भाई की अन्त्येष्टि किया प्रारम्भ की । और भीष्म, परिमल एवं लघन ने गंगा जी के तट पर पहुँचकर अपने पिता का अन्तिम संस्कार सुसम्पन्न किया । ४५-६१। इस प्रकार रण-स्थल में

मूमिराजस्य विजयो जयचन्द्रयशो रणे । प्रसिद्धमभवद्भूमौ गेहे गेहे ज्ञने जने ॥६२
जयचन्द्रः कान्यकुञ्जे देहल्यां पृथिवीपतिः । उत्सवं कारदित्वा तु परमानन्दमाशयौ ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्गुगखण्डापरपर्यये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम षष्ठोऽध्यायः । ६

अथ सप्तमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भीष्मः सिहस्थिते गङ्गाकूले शकप्रपूजकः । शकं सूर्यमयं ज्ञात्वा तपसा सन्तोष्यत् ॥१
मासान्ते भगवानिन्द्रो ज्ञात्वा तद्भक्तिमुत्तमाम् । वरं वरय च प्राह श्रुत्वा शूरोऽब्दीदिवम् ॥२
देहि मे वडवां दिव्यां यदि तुष्टो भवान्प्रभुः । इति श्रुत्वा तदा तस्मे वडवां हरिणीं शुभाम् ॥३
ददौ स भगवानिन्द्रस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् ॥४
तस्मिन्काले परिमलः पितृशोकपरायणः । पार्थिवैः पूजयामास महादेवमुमापतिम् ॥५
परीक्षार्थं शिवः साक्षात्सर्परोगेण तं ग्रसत् ॥६

पृथिवीराज का विजय और जयचन्द्र का यश इस भूतल में घर-घर के प्रत्येक मनुष्यों में व्याप्त हो गया ।
जयचन्द्र ने कान्यकुञ्ज (कन्नौज) तथा पृथिवीराज ने देहली (दिल्ली) में अनुपम उत्सव को सुसम्पन्न
करके परम आनन्द की प्राप्ति की । ६-६३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक छठवाँ अध्याय समाप्त । ६

अध्याय ७

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भीष्मसिंह ने गंगा जी के टट पर इन्द्र की पूजा करना आरम्भ किया । पश्चात् इन्द्र
को सूर्यमय जानकर तप द्वारा उन्हें प्रसन्न किया । एक मास के उपरान्त भगवान् इन्द्र ने उनकी भक्ति से
प्रसन्न होकर उनसे कहा—वर की याचना कीजिये । उसे सुनकर उस शूरवीर ने कहा—यदि आप प्रसन्न
हैं, तो मुझे एक दिव्य वडवा (घोड़ी) देने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर उन्होंने एक शुभ हरिणी नामक
वडवा (घोड़ी) उन्हें प्रदान किया । भगवान् इन्द्र उसके पश्चात् उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । उसी
समय परिमल ने पिता के शोक से दुःखी होकर पार्थिव पूजन द्वारा उमापति महादेव की आराधना करना
आरम्भ किया था । उनकी परीक्षा करने के लिए शिव जी ने उन्हें सर्परोग से पीड़ित कर दिया । १-५।

व्यतीते पञ्चमे मासे नृपः शक्तिविदर्जितः । न तत्याज महापूजां महाक्लेशसमन्वितः ॥१६
 मरणाय यथौ काशीं स्वपल्या सर्हितो नृपः । उवास वटमूलान्ते रात्रौ रोगप्रपीडितः ॥१७
 एतस्मिन्नन्तरे कश्चित्पन्नगो मूलसंस्थितः । शब्दं चकार मधुरं श्रुत्वा रुद्राहिराययौ ॥१८
 रुद्राहिं पन्नगः प्राह् भवान्निर्दय मन्दधीः । शिवभक्तं नृपमिमं पीडयेत्प्रत्यहं खलः ॥१९
 मूर्खोऽयं भूपतिः साक्षादःरनालं पित्रेन्नहि । इति श्रुत्वा स रुद्राहिराह् रे पन्नगाथम् ॥२०
 राजो देहे परं हृष्टं प्रत्यहं पाप्तवानहम् । स्वगेहं दुखतस्त्याज्यं कथं त्यालं स्या शठ ॥२१
 मूर्खोऽयं भूपतियों वै तैलोण्णं यन्न दत्तवाह् । इत्युक्त्वान्तर्गतो देहे श्रुत्वा सा मलना सती ॥२२
 चकार पन्नगोऽन्तं तद्गतरेणो नृपोऽभवत् । तैलोण्णैवित्तमादूर्धं चक्षान च सती स्वयम् ॥२३
 ततो जातं स्वयं लिङ्गमङ्गुष्ठानं सनातनम् । ज्योतीरुपं चिदानन्दं सर्वलक्ष्मसमन्वितम् ॥२४
 निशीथे तम उद्भूते दिक्षु सूर्यत्वयामागतम् । दृष्ट्वा स विस्मितो राजा पूजयामास शङ्करम् ॥२५
 महिम्नस्तत्वपाठैश्च तुष्टाव गिरिजापतिम् । तदा प्रसन्नो भगवान्वरं ब्रूहि तमब्रवीत् ॥२६
 श्रुत्वाह नृपतिर्देवं यदि तुष्टे महेश्वर । श्रीगतिर्मं गृहं प्राप्य वसेन्मत्रियकारकः ॥२७
 तथेत्युक्त्वा महादेवो लिङ्गरूपत्वमागतः । प्रत्यहं भारमेकं च सुवर्णं सुषुवे तनोः ॥२८

पाँचवें मास की समाप्ति तक राजा एकदम शक्तिहीन हो गया, किन्तु उस महादुःख से दुःखी होने पर भी उन्होंने उस पूजन का त्याग नहीं किया। पश्चात् मरण के निमित्त उस राजा ने अपनी पत्नी समेत काशी को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उस रात्रि उस रोग से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी वटवृक्ष के नीचे ही शयन किया। उसी बीच उस वट के पूल भाग में रहने वाले एक सर्प ने मधुर ध्वनि किया। उसे मुनकर रुद्रसर्प (रोगी के अन्दर रहने वाला) वहाँ आया। उससे उसने कहा—तुम बड़े निर्दयी एवं मूर्ख हो, दुष्ट! इस शिव भक्त राजा को तू नित्य पीड़ित करता है। यह राजा भी मूर्ख ही है, नहीं तो इसे अब तक कभी (इस रोग से मुक्ति पाने के लिए) आरनाल का पान कर लेना चाहिए। इसे मुनकर उस रुद्रपन्नग ने उससे कहा—रे नीच पन्नग! राजा के इस देह में मुझे नित्य परमानन्द की प्राप्ति होती है। अतः शठ! मैं इसका त्याग कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि अपने, घर का त्याग दुःख के कारण ही किया जाता है। राजा भी मूर्ख ही है, जो तुम्हारे बिल में तेल गरम करके नहीं डाल देता। इतना कहकर वह पुनः राजा की देह के भीतर चला गया। पश्चात् उस साध्वी मलना (मल्हना) रानी ने उस सर्प के बताये हुए उपाय को सुसम्पन्न किया उससे राजा का रोग विनष्ट हो गया और उसकी बिल को गरम तेल से भरकर वह रानी स्वयं उसे खोदने भी लगी। ६-१३। उससे एक अंगुष्ठमात्र का शिव लिंग उत्पन्न हुआ, जो सनातन, आकाश रूप, सच्चिदानन्द रूप एवं सर्वलक्षण सम्पन्न था। उस अंधेरी रात के आधी रात के समय भी उसके निकलने से दिशाओं में प्रकाश सूर्योदय के समान ही दिखाई देने लगा। उसे देखकर राजा आश्चर्य-चकित होकर शंकर जी की पूजा करने लगे। उन्होंने महिम्न पाठ द्वारा गिरिजापति की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे वरयाचना के लिए कहा उसे मुनकर राजा ने कहा—देव, महेश्वर! यदि आप मुझपर अनुग्रह करना चाहते हैं, तो मेरी इच्छापूर्ति के लिए ‘श्रीपति’ मेरे घर में निवास करें। इतना कहकर महादेव लिङ्गरूप धारणकर अपने शरीर से एक भार सुवर्ण प्रतिदिन राजा को देने लगे। और प्रसन्न

तदा मलस्तु सन्तुष्टः प्राप्तो गेहं महावतीम् । भीष्मसिंहेन सहितः परमानन्दमाययौ ॥१९
 ततःप्रभृति वर्षान्ते जयचन्द्रपुरीं यथो । दृष्ट्वा परिमलं राजा कृतकृत्यत्वमागतः ॥२०
 दिष्टच्चाते संक्षितो रोगो दिष्टच्चाते दर्शितं सुखम् । भवान्निजपुरीं प्राप्य सुखी भन्तु मा चिरम् ॥२१
 यदा मे विघ्न आभूयात्तदा त्वं मां समाच्चर । इति भृत्वा परिमलो गत्वा स्थानमवासयत् ॥२२
 तदा तु लक्षणो वीरो भगवन्तमुषार्थितम् । जगन्नाथपुणामन्य समभ्यच्छापिरोऽभद्रद् ॥२३
 दक्षमात्रान्तरे विष्णुर्जगन्नाथ उषापतिः । दरं ब्रूहि वचश्चेति लक्षणं प्राह हर्षतः ॥२४
 इत्युक्तः स तु तं देवं नत्वोवाच विनश्चधीः । देहि मे वाहनं दिव्यं सर्वशत्रुदिनाशनम् ॥२५
 इति श्रुत्वा जगन्नाथः शक्तिमैरावताद्गजात् । समुत्पाद्य ददौ तस्मै दिव्यामैरावतीं मुदा ॥२६
 आरुह्यैरावतीं राजा लक्षणो गेहमाययौ । स वै परिमलो राजा जगाम च महावतीम् ॥२७
 एतस्मिन्नन्तरे वीरास्तालनाद्य भद्रोत्कटाः । महादत्तीं पुरीं प्राप्य ददृशुस्त महीपतिम् ॥२८
 तेन सार्द्धं च महीतीं प्रीतिं कृत्वा न्यवासयन् । मासान्ते च पुनस्ते वै राजानो विनयान्विताः ॥२९
 ऊचुस्तं शृणु भूपालवर्णं गच्छाम्हेपुरीः । तदा राजाऽपि लान्प्राह सर्वान्वितपतीनथ ॥
 दत्त्वाधिकारं पुत्रेभ्यस्तदाऽप्यास्यामि वोऽन्तिकम् ॥३०

तथेत्युक्तस्तु ते राजा स्वगेहं पुनरराययुः । सानुजो देशराजस्तु द्विजेभ्यः स्वपुरं ददौ ॥३१
 पुत्रेभ्यस्तालनो वीरो ददौ वाराणसीं पुरीम् । अलिकोल्लामतिः कालात्पत्रः पुष्पोदरीवरी ॥३२

होकर राजा परिमल भी अपने घर महावती पुरी आकर भीष्मसिंह समेत परम आनन्द से रहने लगे । १४-१९। एक वर्ष के उपरान्त वे राजा जयनन्द के यहाँ गये । राजा ने परिमल को देखकर अपने को कृतकृत्य समझ— परम सौभाग्य है कि आप स्वस्थ्य हो गये, और आज मुझे आपके प्रसन्न सुख का दर्शन मिला । अब आप, अपने नगर में जाकर सुखपूर्वक रहो, किसी विघ्न-बाधा के उपस्थित होने पर बुलाऊँगा, तब आइयेगा । इसे सुनकर परिमल अपने यहाँ जाकर सुख का अनुभव करने लगे । उस समय लघ्ण (लघन) भी ऊषापति भगवान् विष्णु की उपासना कर रहे थे । एक पखवारे के व्यतीत होने पर ऊषापति जगन्नाथ विष्णु भगवान् ने उनसे कहा—वर की याचना करो ! इस प्रकार कहने पर उन्होंने विनय-विनश्च होकर नमस्कारपूर्वक उन देव से कहा—‘मुझे एक दिव्यवाहन प्रदान कीजिये, जो समस्त शत्रुओं के नाश करने में समर्थ हो । इसे सुनकर जगन्नाथ जी ने ऐरावतगज से शक्ति उत्पन्न कर एक-एक दिव्य ऐरावत नामक हाथी प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रदान किया । उसी पर आसनासीन होकर राजा लघन अपने घर आये । राजा परिमल के महावती पहुँचने पर तालन आदि दुर्मदा वीरगण ने भी वहाँ पहुँचकर परिमल का दर्शन किया । वहाँ उनके साथ धनिष्ठ मैत्री स्थापित कर प्रेमपूर्वक रहने लगे । एक मास के उपरान्त उन लोगों ने राजा से विनयपूर्वक कहा—राजन् । अब हम लोग अपने नगर जाना चाहते हैं, आप आज्ञा प्रदान करें । राजा ने आज्ञा दी उन लोगों ने कहा—मैं अपने सभी अधिकार लड़कों को सौंपकर पुनः यहाँ आपके समीप आ जाऊँगा । २०-३०। इस प्रकार राजा से कहकर वे सब अपने घर चले गये । अपने छोटे भाई (वत्सराज) समेत देशराज ने अपना नगर ब्राह्मणों को अर्पित कर दिया । वीरतालन ने अपना वनारस नगर पुत्रों को सौंप दिया जिनके क्रमशः अलिकोल्लामति, काल, पत्र, पुष्पोदरी वरी, करी, नरी एवं

करीनरी सुललितस्तेषां नामानि वै क्रमात् । द्वौ द्वौ पुत्रौ स्मृतौ तेषां पितुस्तुत्यपराक्रमौ ॥३३
 स वै पुत्राज्ञया शूरस्तालनो राक्षसप्रियः । यातुधानमयं देवं तुष्टाव म्लेच्छपूजनैः ॥३४
 तथा नसुमतः पुत्रौ भूपती देशवत्सर्जौ । शक्रं सूर्यं सभाराथ्य कृतकृत्यौ ब्रह्मवतुः ॥३५
 सिंहनीं नाम वडवां यातु दत्ता भयानका । आल्हा बलावाञ्छूरो गमनाय मनो दधौ ॥३६
 पञ्चशब्दं सहानागमिन्द्रदत्तं मनोरमभ् । देशराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ॥३७
 हयं पपीहकं नाम सूर्यदत्तं नरस्वरम् । वत्सराजस्तमारुह्य गमनाय मनो दधे ॥३८
 त्रयः शूराः समागम्य नगरीं ते महावतीन् । जघुस्तत्र महात्मानो बहुमानेन सत्कृताः ॥३९
 सेनापित्तिसहस्रं तत्त्वेषां स्वामी स तालनः । मन्त्रिणौ भ्रातरौ तौ च नृपतेष्वन्द्रवंशिनः ॥४०
 तैर्वर्तैर रक्षितो राजा कृतकृत्यत्वमागतः ॥४१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वतिं चतुर्युगखण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

जम्बूको नाम भूपालो महीराजो भयातुरः । कालियेन युतः प्राप्तो नर्मदायास्तटे शुभे ॥१

मुख्लित ये नाम बताये गये हैं । इनके प्रत्येक के दो-दो पुत्र थे, जो अपने पिता के समान पराक्रमशाली थे । राक्षसप्रिय तालन ने अपने पुत्रों के आदेश से म्लेच्छपूजन द्वारा राक्षसदेव को प्रसन्न किया । अनन्तर वसुमान के पुत्र देशराज और वत्सराज ने क्रमशः इन्द्र और सूर्य की आराधना की । यातुधान (राक्षस) ने सिंहनी नामक घोड़ी तालन को प्रदान किया, इन्द्र के दिये हुए पञ्चशब्द नामक गज देशराज को और पपीहा नामक घोड़ा सूर्य का दिया हुआ, जो यनुष्य की भाँति बोलता था, वत्सराज को मिला । ये तीनों शूर-वीर अपने वाहनों पर बैठकर महावती नगरी में पहुँचे और वहाँ सादर सम्मानपूर्वक रहने लगे । वहाँ उनकी साठ सहस्र सेना के अधिनायक तालन बनाये गये और उस चन्द्रवंशी राजा (परिमल) के मन्त्रिपद का भार उन दोनों भाइयों ने संभाला । इस भाँति उन तीनों वीरों द्वारा सुरक्षित होकर राजा परिमल अपने को कृतकृत्य होने का अनुभव करने लगे । ३१-४१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—जम्बूक नामक राजा ने भयभीत होकर अपने पुत्र कालिय (करिया) को साथ

पार्थिवैः पूजयामास देवदेवं पिनाकिनम् । षष्ठ्यासान्ते महादेवो जग्नूकं प्राह भूपतिम् ॥२
 वरं वरय तेऽभीष्टं भूप आह कृताञ्जलिः । अजितत्वं नृैः सर्वदर्हि मे कशणानिधे ॥३
 तथेत्युक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत् । कालियस्तत्सुतो लब्ध्वा वीरो माहेश्वरं वरम् ॥४
 नोहनं सर्वसैज्यानं पितुरन्तिकमाययौ । पितरं प्राह नम्नात्मा देव्याज्ञां तात मत्प्रियम् ॥५
 गमिष्यामि बलैः सार्द्धं गङ्गां शुद्धजलां शुभाम् । तथेत्युक्त्वा पिता तस्मै ययौ तु स्वं निवेशनम् ॥६
 भगिनीं प्राह बलवान्दिनजैषिण शोभने । किञ्चिच्छसि शुभं वस्तु तदाज्ञां देहि मा चिरम् ॥७
 साह त्रैवेवकं हारं मणिमुक्ताविभूषितम् । मत्प्रियं देहि मे वीरं तथेत्युक्त्वा ययौ गृहत् ॥८
 कालियो लक्ष्मतुरन्तः संयुतस्त्वरितोऽगमत् । प्राप्य गङ्गासागरगां कृत्वास्त्नानं दिधानतः ॥९
 दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो जयचन्द्रपुरीं ययौ । निर्धनः समभूद्राजा बाहुशाली महाबलः ॥१०
 कान्यकुञ्जे महाहारो न प्राप्तो बहुमूल्यकः । तदोर्बीर्याधिगेनेव मर्हीशेन प्रबोधितः ॥११
 ययौ महावतीं रस्यां शिवदत्तवरी बली । हरोदं नगरीं सर्दा श्रुत्वा राजा भयात्तुरः ॥१२
 रुद्रं कपर्दिनं शम्भुं शरण्यं शरणं ययौ । शिवाज्ञया नृपो धीमान्बलैः षष्ठिसहस्रकैः ॥१३
 सार्द्धं पुराद्विर्हार्यातस्त्रिभिः शूरैः सुरक्षितः । तस्य नागाः सहस्रं च देशराजश्च तत्पतिः ॥१४
 ह्याः षोडशसाहस्रा वत्सराजस्तु तत्पतिः । शेषाः पदातयस्तस्य तालनेनैव रक्षिताः ॥१५

लेकर नर्मदा के टट पर देवाधिदेव पिनाकपाणि शिव की आराधना पार्थिव पूजन द्वारा करना आरम्भ किया । छठे मास की समाप्ति में महादेव ने राजा जम्बूक से कहा—यथेच्छ वर की याचना कीजिये । राजा ने हाथ जोड़कर कहा—‘करुणानिधे ! मुझे अजेय कर दीजिये, जिससे कोई राजा मुझे जीत न सके ।’ उसे स्वीकार कर महादेव उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । उसके पुत्र कालिय ने शंकर के उस वरदान मोहनास्त्र की प्राप्ति कर अपने पिता से विनम्र होकर कहा—‘तात ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, मैं पवित्र जलपूर्ण गंगा का दर्शन करने के लिए सेना समेत जा रहा हूँ ।’ पिता आज्ञा प्रदान कर अपने महल चले गये और उसने अपनी भगिनी (बहिन) से कहा—शोभने, विजये ! तुम्हें कौन-सी उत्तम वस्तु चाहिये, मुझे शीघ्र बताओ । उसने कहा—वीर ! मणि-मोतियों से विभूषित (नौलखा) हार मुझे अत्यन्त प्रिय है । अतः इसे अवश्य ला देना । उसने स्वीकार कर घर से प्रस्थान कर दिया । १-८। कालिय एक लाख अश्वारोहियों की सेना लेकर गंगासागर पर पहुँचा वहाँ विधान समेत स्नान करने के उपरान्त ब्राह्मणों को दान देकर जयचन्द्र के नगर की ओर चला । वहाँ बाहुशाली एक महाबलवान् जयचन्द्र को निर्धन की भाँति समझकर छोड़ दिया । कान्यकुञ्ज (कन्नौज) में उसे बहुमूल्य वाला वह महाहार जब न मिला, तब उस समय उर्वीय (उर्रई) के राजा ने उससे बताया । पश्चात् वह राजा शिव जी से प्राप्त वरदान के नाते मदान्ध होकर उस रमणीक महावतीपुरी में जाकर उसे चारों ओर से घेर लिया । उसे सुनकर राजा भयभीत होकर भगवान् शंकर की शरण पहुँचकर आराधना करने लगे । शिव की आज्ञा से राजा साठ सहस्र सेना लेकर तथा उन तीनों महाबलवानों से सुरक्षित होते हुए नगर के बाहर रणस्थल में पहुँच गये । इनकी सेना में एक सहस्र हाथी की सेना थी जिसके नायक देशराज बनाये गये थे । ९-१४। सोलह सहस्र अश्वारोही की सेना थी, जिसका आधिपत्य वत्सराज को प्राप्त था, और शेष पैदल की सेना तालन के

अभवत्तुमुलं युद्धं तेषां वीरवरक्षयम् । अहोरात्रप्रमाणेन महद्वेरभवत्तत ॥१६
 ते हत्वा शात्रवीं सेनां चकुर्जयरवान्मुहुः । भयार्ता नार्मदेयाश्च माहिष्मतिैनिवासिनः ॥१७
 द्वुद्वुः सर्वतो विप्र दृष्ट्वा तान्कालियो नृपः । आश्वास्य प्रययौ युद्धमद्वैसैन्यसमन्वितः ॥१८
 हृदि कृत्वा महादेवं शोहनं ब्राणमादधत् । सिद्धमन्त्रप्रभावेण मोहितास्ते ब्रूपविरे ॥१९
 शेषास्ते शत्रवः सर्वे रिपुघाताय संयुयः । अलसांस्तान्कपालेषु जग्नुस्ते भयवर्जिताः ॥२०
 भीष्मसिंहस्तथा दृष्ट्वा बोधयामास सैनिकान् । सूर्यदत्तेन बाणेन सज्जाख्यानेन तत्र वै ॥२१
 भैरवास्थेन भल्लेन शत्रुदेहमताडयत् । मूर्च्छितः सोऽप्तद्वीरो गजपृष्ठे शरादितः ॥२२
 तदा माहिष्मती सेना निर्ययौ सा दिशो दश । मुहूर्त कश्मलं प्राप्य पुनरुत्थाय कालियः ॥२३
 भल्लेन तच्छिरः कायदपाहरत् भूमिपः । हते तस्मिन्महावीर्ये तालनाद्या महाबलाः ॥२४
 कालियं ते पराजित्य तं शत्रुं प्रत्यषेधयन् । महाकष्टान्वितो भूपो ध्यात्वा मनसि शङ्करम् ॥२५
 मोहित्वा रिपून्तर्वान्ति यथौ स्वं निवेशनम् । अर्द्धसैन्येन सहिता हतशेषास्त्रयस्तथा ॥२६
 तदा परिमलो राजा दृष्ट्वा शत्रुपराजयम् । परिष्वज्य भहावीरान्स्वगोहं पुनराययौ ॥२७
 जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा परं विस्मयमागतः । तालनं च समाहूय सेनाधीशसमकरायत् ॥२८

अधिकार में थी । दोनों राजाओं का तुमुल संग्राम आरम्भ हुआ, वीरगण भूमिशायी होने लगे, वह घोर युद्ध दिन-रात में समान रूप से हो रहा था । (परिमल के) सैनिकों ने शत्रुसेना का नाश करके 'जय-जय' की ध्वनि से अपनी विजय की सूचना बार-बार देना आरम्भ किया और नर्मदा टट के माहिष्मती नगर के निवासी (करिया) की सेना भयभीत होकर चारों ओर भागने लगी । विप्र ! राजा कालिय (करिया) ने भागते हुए उन्हें देखकर आश्वासन (धैर्य) दिया । पश्चात् शेष बची हुई अपनी आधी सेना समेत युद्ध के लिए पुनः वहाँ (रणस्थल में) पहुँचा । वहाँ उसने अपने हृदय में महादेव जी का ध्यान करके मोहनबाण का प्रयोग किया । उस सिद्धमन्त्र के प्रभाव से वे सब मोहित हो गये । शेष शत्रुसेना अपने शत्रु (परिमल) के सैनिकों का संहार (शिरश्छेदन) करते लगी । इसे देखकर कर भीष्मसिंह ने सैनिकों को सूर्यप्रदत्त उस संज्ञा नामक बाण द्वारा चैतन्य किया । पश्चात् भैरव नामक भल्लास्त्र से शत्रु की देह में आधात किया, जिससे वह वीर (करिया) अपनी हाथी पर व्यथित एवं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा । १५-२२ । उस समय उसकी सेना सभी दिशाओं में तितर-वितर हो गई । एक घड़ी मूर्च्छित रहने के उपरान्त कालिय ने उठकर अपने भाला से भीष्म का शिरश्छेदन कर दिया । उस महाबली के स्वर्गीय होने पर तालन आदि बलवानों ने उस कालिय शत्रु को आगे बढ़ने से रोकना आरम्भ किया । पश्चात् अत्यन्त दुःखी होकर उस राजा ने शंकर जी का मानसिक ध्यान करते हुए शत्रुओं को मोहित कर अपने घर को प्रस्थान किया । इधर ये तीनों—तालन आदि वीरों ने अपनी बची हुई आधी सेना लेकर नगर में प्रवेश किया । उस समय राजा परिमल शत्रु का पराजय सुनकर उन आये हुए वीरों का गले मिलकर अत्यन्त सम्मान किया । इसे सुनकर जयचन्द्र को महान् आशर्चय हुआ । उन्होंने तालन को बुलाकर अपने यहाँ सेनाधीश बनाया । २३-२८ ।

१. डीपोहस्त्र आर्षः ।

भीष्मतिंहे गते लोके पञ्चमासान्तरे नृपे । तत्पत्नी जनयामास युत्ररलं शुभाननम् ॥२९
सा तु गुर्जरभूपस्य तनयात्या मदालसा । दिव्यं पुत्रं समालोक्य मुमुदे सगणा भृशम् ॥३०
श्रुत्वा तज्जन्म नृपतिर्दिततार धनं बहु । आह्य गणकान्नाजान्नातकर्म हृकारयत् ॥३१
सहदेवांश एवासौ भूवि जातः शिवाज्ञया । देवसिंहः कृतो नाम गणकैः शास्त्रचिन्तकैः ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वेण चतुर्युगखण्डापरपरयर्थि
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् ।८

अथ नवमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कालियं तौ पराजित्य भ्रातरौ नृपसेवकौ । गतौ गोपालके राष्ट्रे भूपार्तिर्दलवाहनः ॥१
सहस्रचण्डिकाहोमे नानाभूपसमागमे । गृहीतौ महिषौ ताभ्यां भूपरन्दैश्च दुर्जयौ ॥२
पूर्वं हि नृपकन्याभ्यां प्रत्यहं बन्धनं गतौ । तौ सम्पूज्य विधत्तेन ददौ ताभ्यां च कन्यके ॥३
देवकीं देशराजाय ब्राह्मीं तस्यानुजाय वै । ददौ दुर्गाज्ञया राजा रूपयौवनशालिनीम् ॥४

भीष्म सिंह के स्वर्गीय होने पर पाँच मास के भीतर ही उनकी पत्नी ने एक शुभ युत्ररल उत्पन्न किया, जो गुर्जर (गुजरात) देश के राजा की पुत्री थी । मदालसा उसका नाम था । उसके दिव्य पुत्र का जन्म सुन्तकर सभी लोग प्रसन्न हुए । राजा ने उसके जातकर्म संस्कार तथा जन्म के उपलक्ष्य में अत्यन्त धन वितरण किया । ज्योतिषियों द्वारा जातकर्म सुसम्पन्न होने के उपरान्त उनके दूँछने पर उन्होंने बताया—सहदेव का शिव की आज्ञा से अंश इस बालक के रूप में पृथिवी तल को सुशोभित करने के लिए आया है । पश्चात् उन विद्वानों ने ‘देवसिंह’ उसका नामकरण किया ॥२९-३२॥

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अध्याय ९

कलियुगीय इतिहास-समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—राज-सेवक दोनों भाइयों ने कालिय (करिया) को पराजित करके गोपालक राज्य के अधीश्वर राजा दलवाहन के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ सहस्र चण्डी के अनुष्ठान में हवन का आरम्भ होने जा रहा था जिसमें अनेक राजागण उपस्थित थे । इन दोनों भाइयों ने (देवी के दलिदानार्थ) उपस्थित उन भैंसों को पकड़कर अपने अधीन कर रखा था जिन्हें अन्य कोई राजा नहीं पकड़ सकता था । राजा की दोनों कन्याओं ने उन्हें पहले ही बाँध रखा था । प्रसन्न होकर राजा ने अपनी दोनों कन्याएँ इन दोनों भाइयों को प्रदान किया । देवकी देशराज को और ब्राह्मी वत्सराज को देकर दुर्गा जी की आज्ञा से उन रूप यौवनशालिनी कन्याओं का पाणिग्रहण संस्कार सविधान सुसम्पन्न कराया । १-४। उन कन्याओं के साथ

लक्षावृत्तिं तथा वेश्यां गीतनृत्यविशारदाम् । कन्ययोहच सखीं रम्यां मेघमल्लाररागिणीम् ॥५
जातं राजान्रथान्पञ्च हयांश्रैव सहस्रकान् । चत्वारिंशच्च शिबिकाः प्रददौ दलवाहनः ॥६
बहुद्रव्ययुतां कन्यां दासदासीसमन्विताम् । उद्धव्य वेदविधिना ग्रापतुश्च महावतीम् ॥७
मलना तां वधूं दृष्ट्वा तस्यै ग्रैवेयकं ददौ । ब्राह्म्यै षोडशशृङ्खारं तथा द्वादशशूषणम् ॥८
राजा च परमानन्दी देशराजाय शूरिणे । ददौ दशपुरं रम्यं नानाजननिषेवितम् ॥९
उष्टुस्तत्र तौ वीरौ राजमान्यौ महाबलौ । एतस्मिन्नन्तरे जातो देवसिंहे हराज्ञया ॥१०
जाते तस्मिन्कुमारे तु देवकी गर्भसादधौ । दसश्चुता पतेदेवी शुभुवे पुत्रमूर्जितम् ॥११
गौराङ्गं कमलाक्षं च दीप्यमानं स्वतेजसा ! तदानन्दमयो देवः शकः सुरगणैः सह ॥१२
शत्रुघ्नशब्दं चकारोच्चर्जयशब्दं पुनःपुनः । दिशः प्रफुल्लिताश्रासन्यहाः सर्वे तथा दिवि ॥१३
आयाता बहवो विप्रा वेदशास्त्रपरायणाः । चकुस्ते जातकर्मस्य नामकर्म तथाविधम् ॥१४
रामांशं तं शिशुं ज्ञात्वा प्रसन्नवदनं शुभम् । भाद्रकृष्णतिथौ षष्ठ्यां चन्द्रवारेऽरुणोदये ॥१५
सञ्जातः कृतिकाभे च पितृवंशयशस्करः । आह्लादनान्नाह्लाभवत्प्रश्रितश्च महीतले ॥१६
मासान्ते च सुते जाते ब्राह्मी पुत्रमजीजनत् । धर्मजांशां तथा गौरं महाबाहुं सुवक्षसम् ॥१७
तदा च ब्राह्मणाः सर्वे दृष्ट्वा बालं शुभाननम् । प्रसन्नवदनं चारुपद्मचिह्नपदस्थितम् ॥१८

लक्षावृत्ति नामक वेश्या, जो नृत्य एवं गान में अन्यन्त निपुण थी, और मेघ मलार राग शाने वाली उसकी सुन्दरी सखियाँ भेजी गईं तथा सौ हाथी, पाँच सहस्र धोड़े और चालीस पालकी भी राजा दलवाहन ने सप्रेम प्रदान किया । अन्यन्त धनराशि और अनेक दास दासी गणों समेत उन कन्याओं को लेकर सविधान विवाह हो जाने के उपरान्त अपनी महावती पुरी में वे दोनों भाई चले आये । मलना ने उस वधू को देखकर वह अमूल्य (नौलखा) हार, ब्राह्मी को सोलह शृङ्गार तथा बारह आभूषण प्रदान किया । परमानन्द मग्न होकर राजा परिमल ने दण गाँवं जिसमें भाँति-भाँति की जाति के मनुष्य अधिक संख्या में रह रहे थे, वीर देशराज को प्रदान किया । उसी स्थान में ये दोनों पराक्रमी भाई रहने लगे । शिव की आज्ञावण जिस समय देवसिंह ने जन्म ग्रहण किया उसी समय देवकी ने गर्भ-धारण किया था, समय पाकर गौरवर्ण, कमलवत् नेत्र एवं अपनी आभा से देवीष्यमान सन्तान के उत्पन्न होते ही देवताओं के सहित इन्द्र आनन्दित हुए । शंखों की ध्वनि और बार-बार जय शब्द होने लगे । द्रिशाएँ हरी-भरी दिखाई देने लगी, उसी भाँति आकाश में ग्रहण प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे । वेद-शास्त्र के पारगामी अनेक ब्राह्मण विद्वानों ने वहाँ एकत्र होकर उस शिशु का जातकर्म एवं नामकरण सविधान सुसम्पन्न किया । ५-१४। शुभ एवं प्रसन्नमुख वाले उस पुत्र को, जो भाद्रकृष्ण की पष्ठी चन्द्रवार के दिन अरुणोदय बेला तथा कृतिका नक्षत्र में उत्पन्न एवं अपने पितृवंश को यशस्वी बनाने वाला था, राम का अंश जानकर उसका 'आह्लाद' (आह्ला) नामकरण किया । वह बालक इसी नाम से इस भूतल में स्थानि प्राप्त किया । इस बालक के जन्मग्रहण करने के एक मास पश्चात् ब्राह्मी ने भी पुत्ररत्न उत्पन्न किया, जो गौरवर्ण, लम्बी भुजाएँ, विशालवक्षस्थल, तथा धर्म-पुत्र (युधिष्ठिर) का अंश था । १५-१७। उस समय ब्राह्मणों ने उस बच्चे को देखकर, जिसका शुभ-प्रसन्नमुख और चरण-तल, सुन्दर कमल चिह्न से विभूषित था, महाबली होने के नाते उसका 'बलस्वामी (मलखान) नामकरण ब्राह्मणों ने

तृतीयाब्दे वयः प्राप्ते कृष्णांशो बलवत्तरे । शक्रस्तदृशनाकांक्षी हयारूढो जगाम ह ॥४४
 क्रीडन्त चन्दनारण्ये कृष्णांशो भ्रातृभिः राह । नभस्यं पुरुषं दृष्ट्वा सहस्राक्षं जहास वै ॥४५
 अश्विनी हरिणी दिव्या उच्चैः अवसमन्तिके । गत्वा गर्भमुपादाय स्वगेहं पुनराययौ ॥४६
 वर्षान्तरे च मुदुवे क्योतं तनयं शुभम् । पञ्चाब्दे च समायाते विद्याध्ययनमास्थिताः ॥४७
 ब्राह्मणं शिवशर्माणं सर्वविद्याविशारदम् । स्वभक्त्या तेवनं कृत्वा ते चलुर्वेदपाठिकाम् ॥४८
 अष्टाब्दे चैव कृष्णांशो नामपत्रादिकां क्रियाम् । लिखतां बालकानां च कृष्णांशः श्रेष्ठतामगात् ॥४९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युग्मखण्डापरपरयायि कलियुगीयेतिहाससमुच्चये
 कृष्णांशावतारो नाम नवमोऽध्यायः । ९

अथ दशमोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

नवमाब्दं वयः प्राप्ते कृष्णांशो बलवत्तरः । पठित्वान्वीक्षिकीं विद्यां चतुःषष्ठिकलास्तथा ॥१
 धर्मशास्त्रं तथैवापि सर्वश्रेष्ठो बभूव ह । तस्मिन्काले भृगुश्रेष्ठ महीराजो नृपोत्तमः ॥२

तीसरे वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर उस सबल एवं कृष्णांश (से उत्पन्न उदय) के दर्शनाभिलाषी इन्द्र घोड़े पर बैठकर वहाँ आये, जहाँ वह चन्दन के वन में अपने भाइयों के साथ बाल-क्रीडा में निमग्न हो रहा था । उस समय आकाश में स्थित इन्द्र को देखकर उस बालक ने अट्टहास (लठाकर हँसा) किया, इधर हरिणी नामक बड़वा (घोड़ी) भी इन्द्र के उस दिव्य उच्चैः श्रवा नामक घोड़े के पास पहुँचकर उसके द्वारा गर्भ धारणकर पुनः अपने घर लौट आई । पश्चात् वर्ष की समाप्ति में उसने कपोत (कबूतर) नामक एक पुत्र (अश्व) उत्पन्न किया । पाँचवें वर्ष के आरम्भ में इन बालकों ने विद्याध्ययन आरम्भ किया । शिवशर्मा नामक ब्राह्मण की, जो सम्पूर्ण विद्या में निपुण थे, भक्ति-थद्वा से सेवा कर रहे थे, जो इन्हें शिक्षा दे रहे थे । आठ वर्ष की अवस्था में वह उदयसिंह अध्ययन करने वाले सभी बालकों में कुशाग्र बुद्धि हुआ, पत्रादि-लेखन भली-भाँति कर लेता था । ४४-४९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक नवाँ अध्याय समाप्त । ९।

अध्याय १० कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—नवें वर्ष के आरम्भ में वह सबल कृष्णांश (उदयसिंह) राजनीति विद्या, चौमठ कलाओं और धर्मशास्त्र में निपुणता प्राप्तकर सर्वश्रेष्ठ होने के नाते स्थानि प्राप्त हुआ । भृगुश्रेष्ठ ! उस समय राजा पृथिवीराज ने कर (माल-गुजारी) ग्रहण करने के लिए अपनी सेना को महावती (महोबा)

करार्थं प्रेषयामास स्वसैन्यं च महावतीम् । ते वै नक्षं महाशूरा: सर्वशस्त्रास्त्रधारिणः ॥२
 ऊचुः परिमलं भूपं शृणु चन्द्रकुलोद्भव । सर्वे च भारते वर्षे ये राजानो महाबलाः ॥४
 षडंशं करमादायास्मद्वाजाय ददिति वै । भवान्करे हि तस्यैव योग्ये भवति साम्प्रतम् ॥५
 अद्यप्रसृति चेद्राजे तस्मै दद्यात्करं न हि । महीराजस्य रौद्रास्त्रैः क्षयं यास्यति सैनिकैः ॥६
 ये भूषा जयचन्द्रस्य पक्षगास्ते हि तद्भूयात् । ददन्ते भूमिरजाय द्युङं तन्मानसत्कृताः ॥७
 इति श्रुत्वा स नृपतिस्तस्मै राजे महात्मो । करं षडंशमादाय ददौ प्रीतिसमन्वितः ॥८
 दशलक्ष्मितं द्रव्यं गृहीत्वा ते समाप्तयुः । महीराजः प्रसन्नात्मा पूर्ववैरमपाहरत् ॥९
 तदा ते लक्ष्मूराश्च कान्यकुब्जमुपाययुः । जयचन्द्रं तु नत्वोचुः शृणु लक्षणकोविद ॥१०
 पृथ्वीराजो महाराजो दण्डं त्वतः समिच्छति । इत्युक्तस्तैर्षणवास्त्री लक्षणस्तानुवाच्च ह ॥११
 मद्देशे मण्डलीकाश्र बहवः सन्ति साम्प्रतम् । भूमिराजो माण्डलिको मयि जीवति मा भवेत् ॥१२
 इत्युक्तचा वैष्णवास्त्रं तान्कुद्धः स च समादधत् । तदस्त्रज्वालतः सर्वे भयभीताः प्रदुद्रुदुः ॥१३
 महीराजस्तु तच्छ्रुत्वा महद्भूयमुपागमत् । दशाद्वं च वयः प्राप्ते कृष्णांशो भल्लकोविदे ॥१४
 नानामल्लाः समाजग्मुस्तेन राज्ञैव सत्कृताः । तेषां मध्ये स कृष्णांशो बाहुशाली वभूव ह ॥१५
 उर्द्ध्याधिपतेः पुत्रः षोडशाब्दवया बली । शतमल्लैश्च सहितः कदाचित्स समागतः ॥१६

नगर में भेजा । महापराक्रमी एवं शस्त्रास्त्रधारी उन एक लाख सैनिकों ने राजा परिमल से कहा—चन्द्रकुलोत्पन्नं, राजन् ! हम लोगों की बातें सुनने की कृपा करें । भारत वर्ष के जितने बलवान् राजा हैं, सभी (अपनी आप का) छठाँ भाग कररूप में हमारे महाराजा को समर्पित करते हैं । अब आप भी उन्हें कर देने की क्षमता प्राप्त करें, अतः आज से आपको यह राजकर अर्पित करना पड़ेगा, नहीं तो, कर न देने पर पृथिवीराज के सैनिकों के रुद्रास्त्रों द्वारा आप नष्ट कर दिये जायेंगे क्योंकि जयचन्द्र के पक्ष वाले सभी राजागण भयभीत होकर पृथिवीराज को वह राजकर सदैव मान-सत्कार के साथ प्रदान करते आ रहे हैं । इसे सुनकर राजा (परिमल) ने छठाँ भाग राजदण्ड रूप में गहाराज पृथिवीराज को सप्रेम समर्पित किया । १-८। दश लाख द्रव्य लेकर वे सैनिकगण वहाँ से चले आये और पृथिवीराज ने भी प्रसन्न होकर पुराने वैर का त्यागकर दिया । पश्चात् वे एक लाख के सैनिक शूरों ने कान्यकुब्ज (कन्नीज) में पहुँचकर राजा जयचन्द्र से नमस्कारपूर्वक कहा—लक्षणकोविद ! महाराज पृथिवीराज ने आपसे राजकर माँगा है, इतना कहने पर वैष्णवास्त्र के लक्षणवेत्ता उस राजा ने उन लोगों से कहा—मेरे राज्य में इस समय अनेक मण्डलीक (छत्रधारी) राजा हैं, किन्तु मेरे जीवन-काल में पृथिवीराज मण्डलीक राजा न बने । पश्चात् कुद्ध होकर उसने अपने वैष्णवास्त्र का प्रयोग करना ही चाहा कि सैनिकगण उस अस्त्र की ज्वाला से भयभीत होकर भाग गये । इसे सुनकर पृथिवीराज भी अत्यन्त भयभीत हुए । दशवें वर्ष की अवस्था में कृष्णांश (उदयसिंह) मल्ल विद्या में भी निपुण हो गया । उस समय महावती नगरी में अनेक मल्लों (पहलवानों) का आगमन हुआ । राजा ने उन सबको आतिथ्य सत्कार प्रदान किया । मल्लों के वहाँ एकत्र होने पर सबसे अधिक बली उदयसिंह ही दिखाई देने लगा । उन मल्लों में पृथिवीराज का पुत्र, जो सोलह वर्ष का था, अपने सौ मल्लों समेत उपस्थित था । ९-१६। उसने फूफा राजा परिमल से कहा राजन् ! यह

पितृष्वसृपतिं भूपं नत्वा नाम्नाऽभयोबली । उवाच शृणु भूपाल कृष्णोऽयं मदमत्तरः ॥१७
 तेन सार्द्धं भवेन्मल्लयुद्धं मम नृपोत्तम । इति वज्रसमं वादयं श्रुत्वा राजा भयातुरः ॥१८
 उवाच श्यालजं प्रेम्णा भवान् युद्धविशारदः । अष्टाब्दोऽयं सुतः स्त्नाधो मम प्राणसमो भुवि ॥१९
 क्व भवान्वज्ञं सदृशः क्व सुतोऽयं सुकोमलः । अन्यैर्मल्लैर्मदीदैश्च सार्द्धं योग्यो भवान्तरे ॥२०
 इति श्रुत्वा नृपः श्यालो महीपतिरिति स्मृतः । स तमाहु रुषाविष्टो बलोऽयं बलवत्तरः ॥२१
 शृणु तत्कारणं भूप यथा ज्ञातो मया शिशुः । आगस्त्यं सहीराजं नृत्वा सतिलकः सुतम् ॥२२
 पण्डितांश्च समाहूय मुहूर्तं पृष्ठवान्मुदा । गणेशो नाम भूतिमाङ्ग्योतिशास्त्रविशारदः ॥२३
 लक्षणं वचनं प्राह महीराजमनुत्तमम् । शिवदत्तवरो राजन्कुबेर इव साम्ब्रतम् ॥२४
 कृष्णांशस्तस्य योग्योऽयं देशराजसुतोऽवरः । नान्योऽस्ति भूतले राजन्सत्यं सत्यं छवीम्यहम् ॥२५
 तच्छुत्वा लक्षणो दीरः पूर्वे बहिष्मतीं प्रति । कल्पक्षेत्रं दक्षिणे च भूमिग्रामं तु पश्चिमे ॥२६
 उत्तरे नैमिषारण्यं स्वकीयं राष्ट्रमादधत् । अतः श्रेष्ठः कुमारोऽयं कान्यकुञ्जे गया श्रुतः ॥२७
 नागोत्सवे च भूपालं पञ्चम्यां च नभस्तिते । दृश्यनात्रं कुमाराङ्गं तस्माद्योग्यो हृयं सुतः ॥२८
 इति श्रुत्वा स कृष्णांश्चो वाक्षरेण प्रपीडितः । अभयं भुजयोः शीघ्रं गृहीत्वा सोऽयुद्धदूली ॥२९
 क्षणमात्रं रणं कृत्वा भूमिमध्ये तमक्षिपत् । अभयस्य भुजो भग्नस्तत्र जातो बलेन वै ॥३०
 मूर्च्छितं स्वसुतं ज्ञात्वा खड्गहस्तो महीपतिः । प्रेषयामास तान्मल्लान्कृष्णांशस्य प्रहारणे ॥३१

कृष्ण अधिक मदमत्त दिखाई देता है, और मेरा भी नाम अभय है, अतः नृपोत्तम ! उससे मेरा मल्ल युद्ध होना चाहिए । वज्र के समान इस बात को सुनकर राजा ने कातर होकर अपने साले से कहा—आप युद्ध कुशल हैं, मेरा यह स्त्नाधपुत्र, जो मेरा प्राणप्रिय है, अभी आठ ही वर्ष का है । कहाँ वज्र की भाँति कठोर आयु और कहाँ अत्यन्त सुकोमल यह बालक ।' मेरे यहाँ और अन्य मल्ल रहते हैं, आप उनके साथ रण-कुशलता दिखा सकते हैं ! इसको सुनकर उसने कुद्ध होकर कहा—'यह बालक अत्यन्त बलवान् है' राजन् ! इसका कारण तथा मैं जिस प्रकार इस बालक को जानता हूँ, कह रहा हूँ, सुनिये ! अपने पुत्र पृथिवीराज को अपराधी समझकर राजा तिलक ने पण्डितों को बुलवाकर उनसे मुहूर्तं पूछा । उस समय ज्योतिषशास्त्र के निपुण विद्वान् पण्डित गणेश जी ने लक्षण-फलों की व्याख्या करना आरम्भ किया—राजन् ! देशराज का वह सर्वश्रेष्ठ पुत्र इसके योग्य है, जो शिव जी से वरदान प्राप्तकर इस समय कुबेर की भाँति दिखाई पड़ता है तथा कृष्ण के अंश से उत्पन्न है । राजन् ! और दूसरा इस भूतल में कोई भी इसके योग्य नहीं है' यह मैं बार-बार सत्य ही कह रहा हूँ । १७-२४। उसे सुनकर दीर लक्षण (लषन) ने पूर्व बहिष्मती नगरी, दक्षिण में कल्पक्षेत्र, पश्चिम में भूमिग्राम और उत्तर में नैमिषारण्य तक अपना राज्य स्थापित किया । अतः मैंने सुना कि कान्यकुञ्ज (कन्नौज) का राजकुमार सर्वश्रेष्ठ है । राजन् ! श्रावणमास की इस नाग-पञ्चमी के दिन कुमारों के अंग दृश्य होते ही हैं इसलिए इस योग्य बालक का मेरे साथ मल्ल-युद्ध होना ही चाहिए । इसे सुनकर वह कृष्णांश (उदयसिंह) उनके वाक्शर से अत्यन्त पीड़ित होकर अभय के दोनों बाहुओं को शीघ्रता से पकड़कर युद्ध करने लगा—क्षण में उससे युद्ध करके उसे भूमि में फेंक दिया—उस युद्ध में उसने अभय की भुजा तोड़ दी । २६-३०। राजा ने अपने पुत्र को संज्ञाहीन (मूर्छित

रुषाविष्टांश्च ताज्ज्ञात्वा कृष्णांशो बलवत्तरः । तानेकैकं समाक्षिण्य विजयी स बभूद ह ॥३२
 पराजिते मल्लबले खड्गहस्तो महीपतिः । मरणःय मतिं चक्रे कृष्णांशस्य प्रभावतः ॥३३
 ज्ञात्वा तमीदृशं भूपं द्वारयामास भूपतिः । अभयं नीरुजं कृत्वा प्रेम्जा गेहमवास्यत् ॥३४
 नवबद्धाङ्गे च कृष्णांशो चाह्लादाद्याः कुनारकाः । मृगयार्थं दधुश्रितं तमूचुभूपतिं प्रियम् ॥३५
 नमस्ते तत्त भूपाप्य सर्वान्दप्रदायक । अस्मम्यं त्वं ह्यान्देहि मत्प्रियान्करुणाकर ॥३६
 इति श्रुत्वा वच्स्तेषां तथेत्युक्त्वा महीपतिः । भूतले वासिनोऽध्यान्वै दिव्यान्राद् चतुरो वरान् ॥३७
 ददौ ते भ्यो नुदा युक्तो हरिणीगर्भसम्भवान्

ऋषय ऊचुः

त्वन्मुखेन श्रुतं सूत हरिणी वडवा यथा
 भीष्म सिंहाय सम्प्राप्ता राकादेवेशतो मुनं । इदानीं श्रोतुमिच्छामः कुतो जातास्तुरङ्गमः ॥३८
 दिव्याङ्गाभूषणापन्ना नभस्सलिलगामिनः

सूत उवाच

देशराजेन भूपेन पुरा धर्मयुतेन वै
 सेवनं भास्करस्यैव कृतं च द्वादशाब्दिकम् । सेवान्ते भगवान्सूर्यो वरं ब्रूहि तमन्नवीत् ॥४१

देखकर हाथ में तलवार लिए उन मल्लों को कृष्णांश के हननार्थ भेजा । उन मल्लों को कुद्ध एवं रोषपूर्ण जानकर उस बलवान् कृष्णांश ने उनमें से एक-एक को भूमि में गिराकर विजय की प्राप्ति की । मल्ल सैनिकों के पराजित हो जाने पर राजा ने हाथ में तलवार लेकर उस कृष्णांश द्वारा अपने जीवन को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध होने का निश्चय किया । राजा ने उन्हें इस प्रकार मरण के लिए निश्चित तैयार जानकर अभय को आरोग्य करके उसके समेत राजा को अपने यहाँ प्रेम-पूर्वक रखा । नवं वर्ष के आरम्भ में कृष्णांश (उदय सिंह) के आह्लाद (आल्हा) आदि कुमारों समेत मृगयार्थं जंगल के लिए प्रस्थान किया । उन्होंने प्रस्थान करते समय राजा से कहा—भूपश्रेष्ठ, तात ! सम्पूर्ण आनन्द को प्रदान करने वाले आप परमकारुणिक हैं अतः हमें उन प्रिय घोड़ों को दे दीजिये । उसे सुनकर राजा ने उसे स्वीकार करते हुए अत्यन्त हर्षमग्न होकर उन चारों कुमारों के लिए पृथिवी निवासी चार दिव्य घोड़े प्रदान किये, जो हरिणी नामक घोड़ी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । ३१-३७

ऋषियों ने कहा—मुने ! सूत ! भीष्मसिंह को देवेश इन्द्र के द्वारा वह हरिणी घोड़ी जिस प्रकार से प्राप्त हुई थी, हम लोगों ने आपके द्वारा उसे सुन लिया । अब यह सुनने की इच्छा है कि ये घोड़े, जो कुमारों को राजा द्वारा प्राप्त हुए हैं और जो दिव्यभूषणों से सुसज्जित एवं नभ (सलिल) चारी हैं, किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं ? ३८-३९

सूत जी बोले—धार्मिक राजा देशराज ने पहले समय में लगातार बारह वर्ष तक सूर्य की सेवा की थी । तदुपरान्त प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने उनसे कहा—वर की याचना करो । उन्होंने कहा—देव !

प्राह देव नमस्तुभ्यं यदि देयो वरस्त्वया । हयं दिव्यमयं देहि नभस्थलजलातिगम् ॥४२
 तथेत्युक्त्वा रविः साक्षाद्दौ तस्मै पपीहकम् । लोकान्पाति पपीर्ज्ञेयस्तस्येवं नाम चोत्तमम् ॥४३
 अतः पपीहको नाम लोकपालनकर्मवान् । स हयो भद्रमतश्च हरिणीं दिव्यरूपिणीम् ॥४४
 ब्रुभुजे न्मरवेगेन तस्यां जातास्तुरज्ञभाः । भग्नोरथश्च पीताङ्गः करालः कृष्णरूपकः ॥४५
 एकगर्भे समुद्भूतौ शैव्यसुग्रीवकांशकौ । यस्मिन्दिने भमुद्भूतौ लिष्णुविष्णुपुकलांशतः ॥४६
 तदा जातौ हरिण्यश्च मेघपुष्पबलाहकौ । बिन्दुलश्च सुवर्णाङ्गः श्वेताङ्गो हरिनागरः ॥४७
 दिव्याङ्गास्ते हि चत्वारः पूर्वं जाता महाबलाः । पश्चादंशावताराश्च जातास्तेषां मङ्गात्मनाश् ॥४८
 इति ते काथतं विप्रं शृणु तत्र कथां शुभाम् । भूतले ते हयाः सर्वे प्राप्ताश्चोपरिभूमिगाः ॥४९
 देवसिंहाय बलिने ददौ चार्षं मनोरथम् । आह्लादाय करालं च कृष्णां शायैव बिन्दुलम् ॥५०
 ब्रह्मानन्दाय पुत्राय प्रददौ हरिनागरम् । ते चत्वारो हृषारुद्धा नृगयार्थं वनं ययुः ॥५१
 हरिणीं वडवां शुभ्रां बलखानिः समारुहत् । तदनु प्रययौ वीरो वनं सिंहनियेदितग् ॥५२
 आह्लादेनैव शार्दूलो हतः प्राणिभयङ्गः । देवतिंहेन सिंहश्च सूकरो बलखानिना ॥५३
 ब्रह्मानन्देन हरिणो हतस्तत्र भवत्वा गृहं यदुः ॥५४
 एतस्मिन्नन्तरे देवी शारदा च शुभानना । मृगी स्वर्णमयी भूत्वा तेषामग्रे प्रधाविता ॥५५

तुम्हें नमस्कार है, यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो मुझे आकाश-गंगा के जल में चलने वाले उस घोड़े को प्रदान करने की कीजिये । ४०-४२। इसे स्वीकार कर सूर्य ने उसे पपीहा (लोक की रक्षा करने वाला) नामक घोड़ा प्रदान किया । पश्चात् लोक पालन करने वाला यह पपीहा नामक अश्व मदोन्मत्त होने के नाते काम को रोकने में असमर्थ होकर उस दिव्य हरिणी नामक घोड़ी के साथ मैथुन किया, जिसके गर्भ से ये—पीले वर्ण का मनोरथ (मनोहर) और कृष्ण वर्ण का कराल (भीषणाकार) ये दोनों एक ही गर्भ से उत्पन्न हुए, उन्हें शैव्य और सुग्रीव का कला अंश बताया जाता है । पश्चात् जिष्णु और विष्णु कला के अंश हरिणी के गर्भ से मेघपुष्प और बलाहक उत्पन्न हुए, जिन्हें सुवर्ण के समान अंगवाले को विन्दुल (वेंदुल) और श्वेतवर्ण वाले को हरिनागर कहा गया है । प्रथम दिव्य अंग वाले ये महावली चार घोड़े उत्पन्न हुए, अनन्तर इन्हीं अश्वों के अंश से अनेक की उत्पत्ति हुई है । विप्र ! इस प्रकार इनकी उत्पत्ति कथा तुम्हें बता दी गई । अब आगे समाचार बता रहा हूँ, सुनो ! इन चारों घोड़ों के भूमि पर प्राप्त होने पर मनोरथ नामक अश्व बलवान देवसिंह को दिया गया, आह्लाद (आल्हा) के लिए कराल, उदयसिंह को विन्दुल, और पुत्र ब्रह्मानन्द को हरिनागर नामक अश्व दिया गया । ये चारों राजकुमार अपने घोड़ों पर सवार होकर मृगया के लिए किसी जंगल की ओर चल पड़े । ४३-५१। उस समय उन सबके पीछे बलखान (मलखान) भी अपनी हरिणी घोड़ी पर बैठकर जा रहा था । वहाँ वे सब सिंह के जंगल में पहुँचकर, आह्लाद (आल्हा) ने एक बाघ का शिकार किया, जो प्राणियों के लिए भयंकर होता है । उसी प्रकार देवसिंह ने सिंह, बलखान ने शूकर और ब्रह्मानन्द ने हरिण का शिकार किया । इस प्रकार उन कुमारों ने उस जंगल में सैकड़ों जंगली जीवों का शिकार करके उन्हें साथ लेते हुए अपने घर को प्रस्थान किया । उसी बीच कल्याणमुखी देवी शारदा ने सुवर्ण की मृगी का रूप धारणकर उनके

दृष्ट्वा तां मोहिताः सर्वे स्वैः स्वैर्बण्णिरताडयन् । शरास्तुः संक्षयं जग्गुर्मृग्यज्ञे बलवत्तरः ॥५६
 आह्लादाद्याश्र ते शूरा विस्मिताश्च बभूविरे । तस्मिन्काले स कृष्णाङ्गो बाणेनैव ह्रताडयत् ॥५७
 तदा च पीडिता देवी भयभीता यथौ वनय् । कृष्णांशः क्रोधताम्राक्षस्तपश्चातप्रययौ बली ॥५८
 वनान्तरं च सम्प्राप्य देवी धृत्वा स्वकं व्रपु । तस्मुवाच प्रसन्नाक्षी परीक्षा ते मया कृता ॥५९
 यदा ते च भयं ल्यान्तदा त्वं भां सदा स्मर । साधिष्ठ्यामि ते कर्त्य कृष्णांश्चो हि भवान्विभुः ॥६०
 इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शारदा । सर्वमङ्गला ! कृष्णांशस्तु यथौ गेहं तैश्च सार्द्धं मुदा युतः ॥६१
 तदा पराक्रमं तेषां दृष्ट्वा राजा मुखोऽभवत् । शूरे गृहे च भर्वषां लक्ष्मीर्देवी समाविशत् ॥६२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्दुर्गखण्डापरपर्यायि
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् । १०

अथैकादशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

दशाब्दे च वयः प्राप्ते विष्णोः शक्त्यवतारके । वसन्तसमये रम्ये ययुस्ते प्रमदावनम् ॥१

सम्मुख दौड़ना आरम्भ किया ।५२-५५। उसे देखकर मोहित होकर कुमारों ने अपने-अपने बाणों से उस पर प्रहार किया किन्तु, उनके वे भीषण बाण, उस मृगी के अंगों में प्रविष्ट होकर भी नष्ट हो जाया करते थे । उसे देखकर आह्लाद आदि कुमार अत्यन्त आश्चर्य-चकित होने लगे । उस समय उदयसिंह ने अपने बाण से उस पर आधात किया । उस बाण से पीड़ित एवं भयभीत होकर देवी दूसरे जंगल में चली गई । परचात् कृष्णांश (उदयसिंह) भी कुद्ध होने के नाते अपने नेत्र को ताँबी की भाँति रक्तवर्ण करते हुए उसके पीछे चल पड़ा । वहाँ दूसरे जंगल में पहुँचकर देवी ने अपने स्वरूप को धारण करके प्रसन्न मुख मुद्रा करती हुई उससे कहा—मैंने तुम्हारी परीक्षा ली है, अतः जब कभी तुम्हें कहीं किसी प्रकार का भय दिखाई पड़े, उस समय सदैव मेरा स्मरण करते रहना, मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगी, क्योंकि आप विभु (व्यापक) एवं कृष्ण के अंश से अवतरित हैं । इतना कहकर वह सर्वमंगला शारदा देवी अन्तर्हित हो गई और उदयसिंह उन कुमारों के साथ प्रसन्नतापूर्ण होते हुए घर पहुँचे । उस समय राजा उन कुमारों के पराक्रम को देखकर अत्यन्त मुखी हुए और वहाँ उसी समय से लक्ष्मी देवी ने भी प्रत्येक घरों में निवास करना आरम्भ किया ।५६-६२

श्री भविष्यमहापुराणे के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक दशावाँ अध्याय समाप्त । १०।

अध्याय ११

कलियुगीय इतिहास-समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उस विष्णु की शक्ति के अवतार-उदयसिंह के दशवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ में

अषुस्तत्र ब्रताचारे माधवे कृष्णबलभेदे । स्नात्वा च सागरे प्रातः पूजयामासुरम्भकाम् ॥२
 श्रुतुकालोद्भवैः पुष्टैर्धूपैर्दीपैर्विधानतः । जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं दध्युः सर्वकर्तौ शिदाम् ॥३
 कन्दमूलफलाहरा जीवर्हिसाक्विर्जिताः । तेषां भक्ति सप्तालोक्य मासान्ते जगदस्त्विका ॥४
 ददौ तेभ्यो वरं रम्यं तच्छृणुध्यं समाहिताः । आह्लादाय तुरत्वं च बलत्वं बलखान्तये ॥५
 कालज्ञत्वं च देवाय ब्रह्मज्ञत्वं नृपाय च । कृष्णांशायैव योगत्वं दत्त्वा ज्ञान्तर्दधे शिवा ॥६
 कृतकृत्यारतदा ते वै स्वगेहं पुनरायथुः । तेषां प्राप्ने वरे रम्ये मलना पुत्रमूर्जितम् ॥७
 श्यामाङ्गं सःत्यकरं शं मुषुवे शुभत्क्षणम् । स ज्ञेयो रणजिच्छूरो राजन्वप्रियकारकः ॥८
 आपादे मासि सम्प्राप्ते कृष्णांशो हृषवाहनः । उर्वार्णवं नगरी प्राप्त एकाकी निर्भयो बली ॥९
 दृष्ट्वा स नगरीं रम्यां चतुर्वर्णनिषेदविताम् । द्विजशालां यदौ शूरो द्विजधेनुप्रपूजकः ॥१०
 दत्त्वा स्वर्णं द्विजातिभ्यः सन्तर्प्य द्विजदेवताः । महीपतिगृहं रम्यं जगाम बलवत्तरः ॥११
 नत्वा स मातुलं धीमांस्तथान्यांश्च सभासदः ॥१२
 तदा नृपाज्ञया शूरा बन्धनाय समुद्यताः । खड्गहस्ताः समाजगम्रुयथा सिंहं गजाः शशाः ॥१३
 मोहितं तं नृयं कृत्वा दुष्टदुद्धर्महीपतिः । कृत्वा लोहमयं जालं तस्योपरि समादधेः ॥१४

एक दिन राजकुमारों ने वसन्त कृतु के रमणीक आगमन में आनन्द का अनुभव करते हुए प्रमदाओं के उपवन की ओर प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर कृष्णप्रिय उस वसंत के समय उन लोगों ने व्रत करने का निश्चय किया—प्रातःकाल सागर में स्नान करके सामयिक पूष्प, फल, धूप एवं दीप द्वारा सविधान भगवती अम्बिका देवी की पूजा किया । पश्चात् कुमारगण सप्तशती (दुर्गाजी) का स्तोत्र पाठ करके जगज्जननी कल्याणी पार्वती जी का ध्यान करने लगे, और भोजन में केवल कन्दमूल का फलाहार करते थे । इस प्रकार व्रतानुष्ठान करते हुए वहाँ के उनके एक मास के जीवन में अत्यन्त परिवर्तन हो गया था—जीव हिंसा से अत्यन्त विरत थे । उनकी इस प्रकार की भक्ति से प्रसन्न होकर जगदस्त्वा भगवती ने उन्हें जो सुन्दर वर प्रदान किया है, मैं बता रहा हूँ, रावधान होकर मुझे ! आह्लाद (आह्ला) को देवत्व, बलखान (मलखान) को बल, देव (डेवा) को काल-ज्ञान, राजा (ब्रह्मा) को ब्रह्म-ज्ञान और उदयसिंह को योग-प्रदान करके भगवती वहाँ अन्तर्हित हो गई और वे कुमारगण अपने को कृतकृत्य समझते हुए अपने घर आ गये । उन लोगों के उस प्रकार के रम्य वरदान प्राप्त करने के उपरान्त रानी मलना ने एक तेजस्वी पुत्र का जन्म दिया । १-७। जो श्यामवर्ण एवं सात्यकि का अंश था । वह शूर, रणकुशल और राजाओं का प्रियपात्र हुआ । आपाह्नमास में एक दिन उदयसिंह अपने घोड़े पर बैठकर अकेला ही उर्वा (उरई) नगरी पहुँच गये । वहाँ बली एवं निर्भय उस सुन्दर नगरी को देखते हुए जिसमें चारों जाति के लोग मुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे, द्विज-शाला में ब्राह्मणों को देखा । वह ब्राह्मण और गाय का महान् भक्त था इसीलिए वहाँ द्विजातियों को सुवर्ण देकर द्विज-देवताओं को प्रसन्न करता हुआ वह बली राजा के उस रमणीक महल में पहुँच गया । वहाँ स्थित अपने मामा और अन्य सभासदों को नमस्कार करने के उपरान्त राजा की आज्ञा पाकर उस धीमान् को बाँधने के लिए उनके शूर-वीर तैयार हो गये । वे सब हाथ में खड्ग लेकर सिंह के ऊपर गज की भाँति एक साथ ही उसके ऊपर टूट पड़े । राजा ने उस बालक को मंत्रमोहित करके एक लोहे का जाल-सा बनाकर उसी पर स्वयं स्थित हो गया था । ८-१४। उसी बीच देवमाया

एतस्मन्नन्तरे वीरो बोधितो देवमायया । आगस्कृतान्निरपूज्जात्वा खडगहस्तः समावधीत् ॥१५
 हत्वा पञ्चशतं शूरो हयारुद्धो महाबली । उर्वीया नगरीं प्राप्य जलपाने मनो दधौ ॥१६
 कूर्ये दृष्टवा शुभा नार्यो घटपूर्तिकरीत्तदा । उवाच मधुरो वाक्यं देहि सुन्दरि मे जलम् ॥१७
 दृष्ट्वा ताः सुन्दरं रूपं मोहनयोपचक्रिरे । भित्त्वा तासां तु वै कुम्भान्प्रयिन्वा हयं जलम् ॥१८
 दनं गत्वा रिपुं जित्वा बद्ध्वा तमुभयं बली । चण्डिकापार्षमागम्य तद्वधाय मनो दधे ॥१९
 श्रुत्वा स करुणं वाक्यं त्यक्त्वा स्वनगरं यथौ । नृपतिकमुपगम्य वर्णयामास कारणम् ॥२०
 श्रुत्वा परिमलो राजा द्विजातिभ्यो ददौ धनम् । समाधाय स कृष्णांश्च कृतकृत्योऽभवत्तनुपः ॥२१
 सम्प्राप्तैकादशत्त्वे तु कृष्णांश्च युद्धुर्भवे । महीपतिर्निश्चाहः प्रययौ देहलीं प्रति ॥२२
 बलि यथोचितं दत्त्वा भगिनै भयकातरः । रुद्रो बहुधा दुःखं देशराजात्मजप्रजम् ॥२३
 अगमा भगिनी तस्य दृष्ट्वा भ्रातरमातुरम् । स्वपर्ति वर्णयामास श्रुत्वा राजाद्वीदिदम् ॥२४
 अद्याहं स्वबलैः सार्टं गत्वा तत्र महावतीम् । हनिष्यामि महादुर्दृष्टं देशराजमुतं रिपुम् ॥२५
 इत्युक्त्वा धुन्धुकारं च समाहृय महादलम् । सैन्यमज्जापयामाल्ल सप्तलक्षं तनुत्यजम् ॥२६
 केचिच्छूरा हयारुद्धा उष्ट्रारुद्धा महाबलाः । गजारुद्धा रथारुद्धाः संयुश्च पदात्तयः ॥२७

(शारदा) ने उस कुमार को बोधित किया । पश्चात् वह खडग हाथ में लेकर उन अपराधी शत्रुओं का संहार करने लगा । थोड़ी देर में पाँच सौ शूरों का हनन किया । तदनन्तर वह महाबली अपने धोड़े पर बैठकर उर्वीं (उरई) नगरी के भीतर प्रविष्ट हो गया । वहाँ पहुँचकर उसे जलपान करने की इच्छा हुई । उसने कूप पर जल-घट भरने वाली सुन्दरियों से कहा—सुन्दरि! मुझे (थोड़ा) जल चाहिए । वे स्त्रियाँ उसके सौन्दर्य को देखकर उसे मोहित करने का उपक्रम दरने लगीं । उस समय उसने उनके धोड़े फोड़कर अपने धोड़े को जलपान कराकर उसके उपरान्त वन में पहुँचकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की और उन्हें बाँधकर चण्डिका के सम्मुख उपस्थित किया एवं सोच रहा था कि देवी को इसकी भेंट (बलि रूप में) की जाय । इस होने वाली कारणिक चर्चा को सुनकर राजा पृथिवीराज अपने नगर से वहाँ राजा परिमल के पास आये और उनसे सभी कारणों को कह सुनाया । इसे सुनकर राजा परिमल द्विजातियों को धन-दान करके उदयसिंह के शिर का स्पर्श एवं आद्याण (सूँधना) किया । इससे अपने को कृतकृत्य समझने लगे । उस युद्ध-दुर्भव उदयसिंह के ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश करने पर वह राजा पृथिवीराज हतोत्साहित होकर अपनी देहली (दिल्ली) को लौट गया । भय-कातर होकर अपनी-भगिनी को यथोचित बलि प्रदानपूर्वक वह देशराज-पुत्र (उदयसिंह) द्वारा जनित दुःख का अनुभव करके अत्यन्त रुदन किया । उसकी भगिनी का नाम अगमा था । उसने अपने भाई को आकुल देखकर उसका समाचार अपने पतिदेव से कहा । उसे सुनकर राजा ने यह कहा—मैं आज अपनी सेना लेकर महावती (महोबा) नगर जाकर उस दुष्ट देशराज-पुत्र (उदयसिंह) का हनन करूँगा । इतना कहकर महाबली धुन्धुकार (धांधू) को बुलाकर आज्ञादिया—मेरी सात लाख सेना को जो सदैव प्राण परित्याग के लिए कटिबद्ध रहती है, शीघ्र सुसज्जित करो । कुछ शरवीर धोड़े पर बैठकर जा रहे हैं, कुछ ऊंट, हाथी और रथ पर तथा उनके साथ पदाति (पैदल) सेना भी जा रही है । १५-२७। देवसिंह (डेबा) को समय-परिज्ञान का वर प्राप्त

देवसिंहस्तु कालज्ञः श्रुत्वा चागमनं रिषोः । नृपपार्खं समग्रस्य सर्वं रज्जे न्यवेदयत् ॥२८
 श्रुत्वा परिमलोः राजा विद्वलोऽभूद्यातुरः । बलखानिस्तमुत्थाय हर्षयुक्त इवाह च ॥२९
 अद्याहं च महीराजं धुन्धुकारं सर्वैच्यकम् । जित्वा इण्डचं च भवतः करिष्यामि तवाज्ञया ॥३०
 इत्युक्त्वा तं नमस्कृत्य सेनापतिरभूम्नुने । तद्वा तु निर्भया धीरा दृष्ट्वा राजानमातुरम् ॥२१
 चतुर्संक्षब्दैः सार्द्धं ते युद्धाय समाययुः । शिशापाल्यं वनं घोरं छेदयित्वा रिषोस्तदा ॥२२
 ऊषुस्तत्र रणे भत्ता: सर्वशत्रुभयङ्कराः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र धुन्धुकारादयोऽज्जलाः ॥२३
 कृत्वा कोलाहलं शब्दं युद्धाय समुपाययुः । पूर्वाह्वेष्टे तु भृगुशेष्ठ सन्नद्वास्ते शतच्छिष्ठाः ॥२४
 शतच्छीभिस्त्रिसाहस्रैः पञ्चसाहस्रका यथुः । द्विसहस्रशतच्छीभिः सहिताश्रन्द्रवंशिनः ॥२५
 सैन्यं चष्टिसहस्रं च स्वर्गलोकमुपाययौ । तदर्द्धं च तथा सैन्यं यहीराजस्य संक्षितम् ॥२६
 उद्गुर्भूर्भुकाः शूरा बलखानेदिशो दश । रथा रथै रणे हन्युर्गजाश्रव गजैस्तथा ॥२७
 हया हृष्टैस्तथा उष्ट्रा उष्ट्रपैश्च समाहनन् । एवं सुतुमुले जाते दारणे रोमर्हणे ॥२८
 हाहाभूतान्स्वकीयांश्च सैन्यान्दृष्ट्वा महाबलान् । अपराह्ले भृगुशेष्ठ पञ्च शूराः समाययुः ॥२९
 ब्रह्मानन्दः शरैः शत्रूननयद्यमसादनम् । देवसिंहस्तथा भल्लैराह्लादस्तत्र तोमरैः ॥४०
 बलखानिः स्वखड्गेन कृष्णांशस्तु तथैव च । द्विलक्षान्कश्चियाऽज्जन्मुः सर्वसैन्यैः समन्ततः ॥४१

हो चुका है, अतः उन्होंने शत्रु का आगमन जानकर राजा के पास जाकर सभी कुछ कह सुनाया । इसे सुनकर राजा परिमल भयभीत होकर आकुल होने लगे । उन्हें कातर होते देखकर बलखानि (मलखान) ने उमङ्गमें आकर उन्हें उठा लिया और हपर्तिरेक से कहना आरम्भ किया—आज मैं राजा पृथिवीराज और सेना धुन्धुकार (धांधू) को जीतकर आपके आदेश से राजकर उनसे ग्रहणकर सदैव के लिए उन्हें आपदी प्रजा (रियाध) बना दूँगा । २८-३०। मुने ! इतना कहकर उसने नमस्कार पूर्वक सेनानायक होना स्वीकार किया । उस समय उसके निर्भय दीरण अनुगामी हुए, किन्तु राजा फिर भी कातर ही बने रहे । वे वीर चार लाख की संख्या में होकर वहाँ युद्धस्थल में युद्ध के लिए पहुँच गये । वहाँ शत्रु के शिशापा नामक वन को काटकर दे शत्रु भयंकर एवं मदोन्मत्त सैनिक रहने लगे । उसी दीन धुन्धुकार (धांधू) अदि महाबल कोलाहल करते हुए वहाँ पहुँचकर युद्धारम्भ कर दिये । भृगुशेष्ठ ! पूर्वाह्वे के समय के सैनिक गण कटिवद्ध होकर तीन सहस्र की संख्या में तोप लेकर पाँच सहस्र की संख्या में स्वयं घोर युद्ध करने लगे । उसमें चन्द्रवंशी क्षत्रिय अपनी दो सहस्र तोप के साथ सेना समेत युद्ध कर रहे थे । ३१-३५। उस भयानक संग्राम में चन्द्रवंशी राजा परिमल की साठ सहस्र की सेना धर्मपुरी पहुँच गई तथा उसकी आधी सेना पृथिवीराज की भी । बलखान (मलखान) के शूरवीर भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे । रथी-रथी के साथ, हाथी-हाथी के साथ, घोड़े-घोड़े के साथ और ऊँट वाले ऊँटवाले के साथ भीषण युद्ध कर रहे थे । भृगुशेष्ठ ! उस रोमाच्चकारी भीषणयुद्ध में अपनी सेना को पराजित होते देखकर दूसरे पहर दिन में पाँच शूरों ने एकत्र होकर सैनिकों के भीतर प्रवेश किया—ब्रह्मानन्द अपने वाणों द्वारा शत्रुओं को यमपुरी भेजने लगे उसी प्रकार देवसिंह भाले, आह्लाद (आल्हा) तोमर, बलखानि (मलखान) अपने खड्ग और उदय सिंह भी उसी भाँति शत्रुओं को भूमिशायी कर रहे थे—इन शूरों ने अपने सैनिकों समेत शत्रु की दो लाख सेनाओं को समाप्त कर दिया । ३६-४१। उस समय महाबली

दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं धुन्धुकारो महाबलः । आह्लादं च स्वभल्लेन गजारूढः समादीत् ॥४२
 आह्लादे मूर्च्छिते तत्र देवसिंहो महाबलः । भल्लेन श्रातरं तस्य दंशयामास वेगतः ॥४३
 स तोक्षणव्रणमासाद्य गजस्थः संमुमोह वै । आगतः शतराजानो नानादेव्या महाबलाः ॥४४
 शस्त्राण्वस्त्राणि तेषां तु छित्वा खड्गेन वत्सजः । स्वखड्गेन शिरांस्येषां पातयामास भूतले ॥४५
 हते शत्रुसम्हे तु तच्छेषास्तु प्रदुद्दुयुः । महीराजस्तु बलवद्दृष्ट्वा भूपं स्वसैन्यकम् ॥४६
 आजगाम गजारूढः शिवदत्तवरो बली । रौद्रेणास्त्रेण हृदये चावधीद्वत्सजं रिपुम् ॥४७
 आह्लादं च तथा वीरं देवं परिमलात्मजम् । मूर्च्छियित्वा महावीराऽच्छदुरैन्यमुपागमत् ॥४८
 पूजयित्वा शतघ्नीश्च महावधमकारयत् । रोपणस्त्वरितो गत्वा राजे सर्वमर्वण्यत् ॥४९
 एतस्मिन्नन्तरे वीरः सुखलानिर्महाबलः । कपोतं हयमारुहा नभोमार्गेण चागमत् ॥५०
 मूर्च्छियित्वा महीराजं स्वबन्धूश्च सवाहनान् । कृत्वा नृपान्तमागम्य बन्धनाय समुद्यतः ॥५१
 तदोत्थाय महीराजो महादेवेन ज्ञेधितः । पुनरतांस्वशरै रौद्रैमूर्च्छियामास कोपदान् ॥५२
 सुखलान्पादिकाच्छूरानसम्बद्ध्य निगडैर्दृष्टैः । नृपं परिमलं प्राप्य पुनर्युद्धमचीकरत् ॥५३
 हाहाभूतं स्वसैन्यं च दृष्ट्वा स उदयो हरिः । नभोमार्गे हयं कृत्वा ताः शतघ्नीरत्नाशयत् ॥५४
 महीराजगं प्राप्य बद्ध्वा तं निगडैर्बली । आह्लादपार्षमागम्य भ्रात्रे भूपं समर्पयत् ॥५५

धुन्धुकारने अपनी सेना को पराजित होते देखकर हाथी पर बैठे ही अपने भाले से आह्लाद पर आधात किया। आह्लाद के मूर्च्छित हो जाने पर महावली देवसिंह ने भाले से उसके भाई के ऊपर महान् वेग के साथ आधात किया, जिसके द्वारा तीक्ष्ण व्रण (घाव) होने से वह हाथी पर बैठा ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उस समय बड़े-बड़े बलवान् सैकड़ों राजा अनेक देशों से आये थे, उनके शस्त्रास्त्रों को अपने खड्ग द्वारा बलखान (मलखान) ने शीघ्रता से काट दिया और उनके शिर भी काटकर भूतल में छिन्न-भिन्न कर दिया। उसमें जो कुछ थोड़े शेष रह गये वे भयभीत होकर भाग निकले इस प्रकार अपनी सेना का नाश देखकर बलवान् पृथिवीराज ने, जो शिव जी से वर प्राप्त कर चुका था अपने हाथी पर बैठकर उस रणभूमि में प्रस्थान किया—रौद्र अस्त्र से बलखान के हृदय में और उसी प्रकार आह्लाद तथा परिमल पुत्रगण—इन महावीरों को मूर्च्छित करके वे शत्रु की सेना में पहुँच गये। वहाँ शतघ्नी (तोपों) की पूजा करके उसके द्वारा सेनाओं का वध कराया। इस दृश्य को देखकर रोपण वीर ने राजा के पास पहुँचकर सम्पूर्ण वृतान्त का वर्णन किया । ४२-४९। इसी बीच वीर महाबली सुखलानि ने अपने कपोत नामक घोड़े पर बैठकर आकाश मार्ग से वहाँ रणस्थल में पहुँचकर पृथिवीराज को मूर्च्छित किया, और अपने बन्धुओं को वाहनों पर बैठाकर उनके समेत मूर्च्छित पृथिवीराज को बाँधने के लिए उनके पास वह पहुँचा ही था कि उसी समय पृथिवीराज ने महादेव द्वारा चेतना प्राप्तकर कुदू होकर पुनः अपने रौद्रास्त्र द्वारा उन सुखलानि आदि वीरों को मूर्च्छित करके और श्रुखलाओं (जंजीरों) से उन्हें बाँधकर उनके समेत राजा परिमल के पास पहुँच पुनः युद्धारम्भ किया। उस समय हाहाकार करती हुई अपनी सेना को देखकर कृष्णांशु (उदय सिंह) ने घोड़े पर बैठकर आकाश मार्ग से वहाँ पहुँचकर उनकी तोपें और सेनाओं का समूल नाश कर दिया । ५०-५४। पश्चात् पृथिवीराज की हाथी के पास पहुँचकर उस बली ने पृथिवीराज को हथकड़ी-वेणी द्वारा दृढ़ बन्धन में डालकर आह्लाद (आल्हा) के

तदा तु पृथिवीराजो लज्जितस्तेन निर्जितः । पञ्चकोटिधनं दत्त्वा स्वगेहं पुनराययौ ॥५६
 देवर्भिंहाज्ञया शूरो बलखानिर्हि वत्सजः । तैर्द्व्यर्नगरीं रम्यां कारयामात्रं सुन्दरीम् ॥५७
 शिरीषाख्यं पुरं नाम तेन वीरेण वै कृतम् । जर्ववर्णसमायुक्तं द्विक्षेशायामसंमितम् ॥५८
 तत्रैव न्यवसद्वीरो वत्सजः स्वकुलैः सह । त्रिशत्कोशे कृतं राष्ट्रं तत्रैव बलखानिना ॥५९
 श्रुत्वा परिमलो राजा तत्रागत्य मुदान्वितः । आघ्राय वत्सं शूरं देशराजसुतं तथा ॥६०
 ब्रह्मानन्देन सहितः स्वगेहं पुनराययौ ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगल्खण्डपरपर्यग्मि
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकःशोऽध्यायः । ११

अथ द्वादशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उचाच

द्वादशाब्दे हि कृष्णांशे यथाजातं तथा शृणु । इषशुक्लदशम्यां च राजां जातः समागमः ॥१
 कान्यकुञ्जे महारम्ये नानाभूपाः समायुः । श्रुत्वा पराजयं राजो महीराजस्य लक्षणः ॥२
 कृष्णांशदर्शने वाञ्छा तस्य चासीत्तदा मुने । पितृव्यं भूपर्ति प्राह द्रष्टुं यास्यामि तं शुभम् ॥३

पास आकर उन्हें पृथिवीराज को सौंप दिया । उस समय पृथिवीराज उससे पराजित होकर अत्यन्त लज्जित हुए और पाँच करोड़ का धन उन्हें (भेट) पदानकर अपने घर चले गये । उस समय देवर्भिंह की आज्ञा प्राप्तकर वत्स पुत्र बलखानि ने उन द्रव्यों द्वारा एक सुन्दर नगरी का निर्माण कराया । उस वीर ने उस नगरी का शिरीस (शिरसा) नामकरण किया । उसमें सभी जाति के मनुष्य रह रहे थे जो दो कोश तक व्याप्त थी । उसी राजधानी में अपने परिवार समेत बलखानि रहकर अपना राष्ट्र तीस कोश में स्थापित किया । इसे सुनकर राजा परिमल अत्यन्त प्रसन्न होकर उदय सिंह समेत वहाँ आये और उनके शिर का आघ्राण करके ब्रह्मानन्द समेत पुनः अपनी राजधानी लौट गये । ५५-६१

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय-इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त । ११

अध्याय १२ कलियुगीय इतिहास-समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदय सिंह के बारहवें वर्ष की अवस्था में जो कुछ हुआ मैं कह रहा हूँ, सुनो—कान्यकुञ्ज (कन्नौज) नामक राजधानी में आश्विन शुक्ल दशमी के दिन राजाओं का महान् समागम हुआ । लक्षण (लषन) ने उस समय पृथिवीराज की पराजय सुनकर उदय सिंह के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की । मुने ! उसने अपने पितृव्य (चाचा) राजा जयचन्द्र से कहा—मैं उस (उदयसिंह) को देखने के

जितो येन महीराजः सर्वलोकप्रपूजितः । इति श्रुत्वा वदस्तस्य जयचन्द्रो महीपतिः ॥
 आतृजं प्रणतं प्राह श्रुणु शुक्लयशस्कर ॥४
 राजराजपदं ते हि कथं संहर्तुमिच्छसि । इत्युक्त्वा जयचन्द्रस्तु तदाज्ञां नैव दत्तवान् ॥५
 राजानस्ते च सहिताः स्वसंख्येः परिवारिताः । कृष्णांश्च द्रष्टुमिच्छन्तः संयुश्च महीपतिम् ॥६
 शिरीषाख्यपुररथं च ज्ञात्वा कृष्णांश्चमुत्तमम् । महीपतिं पुरस्कृत्य समाजगमुर्नृपास्तदा ॥७
 ददृशुस्तं भद्रात्मानं पुण्डरीकनिभातनम् । प्रस्तन्नददिनः सर्वे प्रजाशांसुः समतत्तः ॥८
 तदा महीपतिः कुटुं वचनं प्राह भूपतीन् । यस्येयं च कृता श्लाघा युव्याभिर्दूरवासिभिः ॥
 पितरौ तस्य बलिनौ दाहिष्मत्यां मृत्यं गतौ ॥९
 जन्मुको नाम भूपालो नार्मदीयैः समन्वितः । बद्ध्वा तौ प्रयथौ गेहं त्रुण्ठयित्वा धनं बहु ॥
 शिलापत्रे समारोप्य तयोर्गत्रमद्वृण्यत् । शिरसी च तयोश्चित्त्वा वटवृक्षे समारुहत् ॥१०
 अद्यापि तौ स्थितौ वीरौ हा पुत्रेति प्रभालिणौ । प्रेतदेहे च पितरौ यस्य प्राप्तौ महाबलौ ॥
 तस्योदयो वृथा ज्येयो वृथाकीर्तिः प्रियङ्करी ॥११
 इति श्रुत्वा स कृष्णांशो भूपतीन्प्राह नन्नधीः । गतौ सत्पितरौ सार्द्धं गुर्जे यत्र वै रणः ॥१२
 म्लेच्छैनराशनैः सार्द्धं तन्त्रपेण रणोऽभवत् । देशराजो वत्सराजो युद्धं कृत्वा भयङ्करम् ॥
 म्लेच्छैस्तैश्च हतौ तत्र श्रुतेयं विश्रुता कथा ॥१३

लिए जाना चाहता हूँ, जिसने पृथिवीराज को पराजित कर समस्त लोकों में प्रतिष्ठा प्राप्त की है । इसे सुनकर राजा जयचन्द्र ने अपने विनय-विनम्र भर्तीजे लक्षण (लवण) से कहा—‘तुम्हारा पद राजाधिराज (महाराज) का है, इस प्रकार उसे क्यों नष्ट करना चाहते हो ।’ इतना कहकर उन्होंने उसे आज्ञा नहीं प्रदान किया । १-५। पश्चात् आये हुए राजगण अपनी सेना समेत उदयसिंह के दर्शनाभिलाषी होकर महीपति के यहाँ पहुँचे । वहाँ शिरीषपुर में स्थित उदयसिंह को जानकर वे राजगण महीपति को प्रमुख बनाकर उनके पास पहुँच गये । उस समय उदयसिंह को जैसे कमल की भाँति मुख सौन्दर्यपूर्ण दिखाई देता था, देखकर वे राजगण प्रसन्नतापूर्ण होकर चारों ओर उनकी प्रशंसा करते लगे । ६-८। उसे सुनकर कुछ होकर महीपति ने उस सभा के भीतर ही राजाओं से कहा—आप दूर निवासीगण जिसकी इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, उनके पिता की मृत्यु महिष्मती नगरी में हुई है—जम्बूक नामक वहाँ का राजा अपने नर्मदा निवासी सैनिकों समेत यहाँ आकर उन्हें बांधकर एवं अत्यन्त धन को लूटकर अपने घर चला गया । वहाँ शिलापत्र (पत्थर के कोल्ह) में उनकी देह को पिसवा दिया है और उनके शिर आज भी वहाँ वटवृक्ष में लटक रहे हैं । इस प्रकार वे वहाँ पुत्र कहते हुए आज भी स्थित हैं, जिसके बलवान पिता इस भाँति प्रेत शरीर में दुःखानुभव कर रहे हों, उसका अस्युदय होना वर्थ है और उसकी प्रिय कीर्ति भी नष्ट हो जाती है । इसे सुनकर नन्नतापूर्वक उदयसिंह ने उन राजाओं के समक्ष कहा—मेरे पिता गुर्जर (गुजरात) गये थे, जहाँ वह युद्ध हुआ था । नरभक्षी म्लेच्छों के साथ वहाँ उस (गुजरात के) राजा का युद्ध आरम्भ हो गया । देशराज और वत्सराज वहाँ रण-स्थल में भीषण संग्राम करते हुए म्लेच्छों द्वारा स्वर्गीय हुए ।’ ऐसा मैंने सुना था,

मातुलेनाद्य ऋथिं नवीनं मरणं तयोः । चेत्सत्यं बचनं तस्य पौरुषं मम पश्यत ॥१४
 इत्युक्त्वा तान्स कृष्णांशो मातरं प्राह सत्वरम् । हेतुं च वर्णयस्मास भाषितं च महीपते ॥१५
 श्रुत्वा वज्रसमं वाक्यं हरोद जननी तदा । नोत्तरं प्रददौ माता पतिदुःखेन दुःखिता ॥१६
 जात्वा पितृवधं श्रुत्वा जम्बूकं शिवकिङ्गुरम् । मनसा स च कृष्णांशस्तुष्टाव पत्सेष्वरीम् ॥१७
 जय जय जय जगद्भ्व भवानि द्वृक्खिललोकसुरपितृभुविनिखानि ।

त्वया ततं सचराचरनेव विष्वं पातमिदं हृतमेव ॥१८

इति ध्वात्वा स कृष्णांशः मुष्वाप निजसद्वानि । तदा भगवती तुष्टा तालनं बलवत्तरम् ॥
 १९
 मोहगित्वाशु तत्यार्थे प्रेषयामास सर्वगा

चतुर्लक्षबलैः सार्द्धं तालनः शीघ्रमागतः । स्वसैन्यं चोदयामास चैकलकं महाबलम् ॥२०
 बलखानिस्तदा प्राप्तंचैकलक्षबलान्वितः । अनुजं तत्र संस्थाप्य शिरीषाख्ये महाबलः ॥२१
 सज्जीभूतान्ममालोक्य तानुद्याने ससैन्यकान् । भीतः परिमलो राजा कृष्णांशं प्रति चाययौ ॥२२
 विद्वलं नृपमालोक्य कृष्णांशोऽभ्यासयन्मुदा ॥२३

लक्षसैन्यं तदीयं च गृहीत्वा चाधिपोऽभवत् । शतघ्नयः पञ्चसाहस्रा नानावर्णा शुवाहना ॥२४
 पताकाः पञ्चसाहस्राः साहस्रं काष्ठकारिणः । गजा दशसहस्राश्र रथाः पञ्चसहस्रकाः ॥२५
 त्रिलक्षाश्र हयाः सर्वे उष्ट्रा दशसहस्रकाः । शेषाः पदातयो ज्ञेयास्तस्मिन्नैन्ये भयानके ॥२६
 तालनश्च समायातः सर्वसेनाधिपोऽभवत् । देवर्सिहो रथानां च सर्वेषामीश्वरोऽभवत् ॥२७

किन्तु मामा ने आज उन दोनों के मरण में नवीनता प्रकट की है : यदि यह कहना इनका सत्य है, तो मेरे पौरुष को आप लोग देखियेगा, देर नहीं है । १९-२४। इतना सभा में कहकर उदयसिंह अपनी माता के पास पहुँचे, उनसे महीपति का कथन स्पष्ट कहकर उन्होंने पूँछा भी, किन्तु वज्र के समान इस वाणी को सुनकर उनकी माता ने पति:दुःख से दुःखी होकर रुदन करने के अतिरिक्त कुछ उत्तर नहीं दिया । पश्चात् उदयसिंह ने अपने पिता का वध और राजा जम्बूक का शिवभक्त होना जानकर भगवती दुर्गा जी का मानसिक स्मरण करना आरम्भ किया—उस शिव की अद्वागिनी जगज्जननी की बार-बार जय हो, जो निखिल लोक के सुर, पितृ और मुनियों की निधान रूप हैं । तू ही इस चर, अचरमय जगत् को उत्पन्न, पालन एवं संहार करती हो । इस प्रकार मानसिक ध्यान करते हुए उदयसिंह शश्यापर नींदमग्न हो गये । उस समय भगवती ने प्रसन्न होकर बली तालन को मोहित कर उसे उदयसिंह के पास भेजा । अपनी चार लाख सेना समेत तालन वहाँ शीघ्र आ गया । बलखानि (मलखान) भी एक लाख सेना समेत वहाँ आया । वह अपनी राजधानी की रक्षा में अपने छोटे भाई को रखकर आया था । इस प्रकार अपने उद्यान में सेनाओं का जमाव देखकर राजा परिमल भयकातर होकर उदयसिंह के समीप पहुँचे । उन्हें आतुर देखकर उदयसिंह ने उन्हें धैर्य प्रदान किया और उनकी एक लाख सेना के अधिनायक भी हो गये । वहाँ की एकत्र हुई सेना में पाँच सहस्र तोप, नाना भाँति के वाहन, पाँच सहस्र पताकाएँ, एक सहस्र बढ़ई (काष्ठ का कार्य करने वाले), दश सहस्र गजराज, पाँच सहस्र रथ, तीन लाख घोड़े, दश सहस्र ऊँट और शेष पैदल की सेना थी । २५-२६। सम्पूर्ण सेनाओं का आधिपत्य तालन को सौंपा गया । उसी प्रकार देवसिंह सभी

बलखानिर्हयानां च सर्वेषामधिपोऽभवत् । आह्लादश्च गजानां च सर्वेषामधिपोऽभवत् ॥
 पत्तीनां चैव सर्वेषां कृष्णांशश्राद्धिपोऽभवत् ॥२८
 नत्वा ते मलनां भूयो दत्त्वा दानान्यनेकेशः । समायदुश्च ते सर्वे दक्षिणाशां बलान्विताः ॥२९
 पक्षमात्रगतः क्लालो मृगो तस्मिन्नरौषिणाम् । छित्त्वा तत्र वनं घोरं नानाकण्टकसंयुतम् ॥
 सेनां निदारथामासुर्निर्भयस्ते महाबलाः ॥३०
 देवर्जिहमतेनैव योगिनस्ते तदाभवन् । नर्तकश्चैव कृष्णांशश्राह्लादो डमरूप्रियः ॥३१
 मङ्गडुधारी तदा देवो देणाधारो च तालनः । वत्सजः कांस्यधारी च बलखानिर्महाबलः ॥३२
 मात्सुरग्रे स्थितस्ते वै ननृतुः प्रेमविह्वलाः । मोहिताः देवकी चासीज्ञ ज्ञातं तत्र कारणम् ॥३३
 मोहितां मातरं दृष्ट्वा परं हर्षमुपायुः । तदा तां कथयामासुवर्यं ते तनया हि भोः ॥३४
 नत्वा तां प्रयुः सर्वे पुरीं माहिष्मतीं शुभाम् । नगरं मोहियामासुवर्यागत्विशारदाः ॥३५
 दूत्या सार्द्धं रिपोर्गेहं दयुस्ते कार्यतत्पराः । नृत्यगानसुवादैश्च राज्ञस्ते मोहने रताः ॥३६
 विसंज्ञां महिषीं कृत्वा कृष्णांशः सर्वमोहनः । प्राप्तवांस्तत्र यत्रतौ तत्सुता विजयैषिणी ॥३७
 दृष्ट्वा सा मुन्दरं रूपं श्यामाङ्गं पुरुषोन्मम् । मुमोह वशमपन्ना मैथुनार्थं समुद्यता ॥३८
 दृष्ट्वा तथा गतां नारीं कृष्णांशः श्लक्षण्या गिरा । शत्रोर्भेदं च प्रच्छ कामिनीं मदविह्वलाम् ॥३९

रथ सेना के अधिनायक हुए, बलखानि सभी अश्वारोही सेना के गजराओं के आह्लाद और पदाति (पैदल) सेनाओं के अधिनायक उदयसिंह बनाये गये । यात्रा के समय सभी भाइयों ने रानी मलना का चरण-स्पर्श किया तथा अनेक भाँति का दान करके दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े । उन रणाभिलाषी वीरों का एक पक्ष (पन्द्रह दिन) का समय नार्ग में व्यतीत हो गया । उपरान्त वे अपने इष्ट स्थान पर पहुँचकर वहाँ के घोर वन को कटवाकर जो अनेक भाँति के कण्टकों से आकीर्ण था, अपनी सेना को ठहरा दिया । वह निर्भय महाबली भ्रातृगण देव सिंह को आज्ञा से योगी का रूप धारण किया । नर्तन (नाचना) को उदयसिंह, डमरू को आह्लाद, ज्ञाल को देवसिंह, वीणा को तालन और कांस्य (कांसे की बनी हुई टुन-टुनी) भजीरा को वत्स पुत्र महावलवान बलखानि (मलखान) ने ग्रहण किया और अपनी माता के सम्मुख प्रेममग्न होकर वे लोग नृत्य करने लगे । उसे देखकर देवकी मोहित हो गई, किन्तु उसका कारण उन्हें ज्ञात नहीं हुआ । २७-३३ । अपनी माता को मोहित होते देखकर वे सब अत्यन्त हर्षित हुए और अपनी माता से कहा—माता ! हमसब आपके ही पुत्र हैं । पश्चात् उन्हें नमस्कार करके वे कुमारगण शुभ-माहिष्मती नगरी में पहुँचकर वहाँ के नागरिकों को अपने नृत्य-गान आदि से मुग्ध करने लगे क्योंकि वे अपनी कला में अत्यन्त निपुण थे । कार्य परायण वे कुमार द्वाती के साथ अपने शत्रु के महल में पहुँचकर अपनी अपनी नृत्य आदि की कला-कुशलता से उस राजसभा को मुग्ध कर दिये । सबको मोहित करने वाले उदयसिंह ने तो राजा की प्रधान रानी को जड़ की भाँति चेतनाहीन (अत्यन्त मुग्ध) ही कर दिया । अनन्तर वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ राजकुमारी विजया रहती थी । उसने पुरुष श्रेष्ठ उदयसिंह को, जो कि श्यामवर्ण और सौन्दर्यपूर्ण रूप था, देखकर वह इतना मोह-मुग्ध हुई कि (लज्जाहीन होकर वह) उनसे उपभोग कराने के लिए तैयार हो गई । ३४-३८ । उदयसिंह ने उसे उस प्रकार काम-पीड़ित देखकर उस मदमत्त कामिनी से शत्रु को

साह भो देवकीपुत्र यदि पार्णि गृहीष्यति । तर्हि ते कथयिष्यामि पितुर्भेदं हि दारणम् ॥४०

तथेत्युक्त्वा स बलवांस्तस्याः पार्णि गृहीतवान् । ज्ञात्वा भेदं रिपोः सर्वं तासाधास्य ययौ मुदा ॥४१

एतस्मिन्नन्तरे राज्ञी बाधिता प्राह योगिनम् । देशराजश्रियाहारं नवलक्षस्य मूल्यकम् ॥

तुम्यं दास्यामि सन्तुष्टा नृत्यगानविमोहिता ॥४२

इति श्रुत्वा वत्ससुतस्तां प्रशस्य गृहीतवान् । प्रदयौ बन्धुभिः सार्द्धं जम्बुको यत्र तिष्ठति ॥४३

नन्तरं तत्र कृष्णांशो बलसानिरग्यतः । आह्लादस्तालनो देवो दध्नुर्वाद्यगतीमुंदा ॥४४

मोहितोऽभ्यन्त्रपस्तत्र कालियः स्वजनैः सह । कामं वस्त्रं कृष्णाङ्गं यच्च ते हृदये स्थितम् ॥४५

इति श्रुत्वा वदः शत्रोर्बलखानिर्महाबलः । तमाह भो महीपल लक्षावर्तिरांगना ॥

त्वविद्यां दर्शयेन्महां तदा तृप्तिं वजाम्यहम् ॥४६

इति श्रुत्वा तथा मत्वा लक्षावर्तिं नृपोत्तमः । सभायां नर्तयामाराद देशराजप्रियां तथा ॥४७

स। देश्या सुतमाह्लादं ज्ञात्वा योगित्वमागतम् । रुरोद तत्र दुःखार्ता नेत्रादशूलिं मुच्यती ॥४८

रुदितां तां स्मालोक्य रुदन्नाह्लाद एव सः । स्वभुजौ ताडयामास्त तत्प्रियार्थं महाबतः ॥४९

कृष्णांशस्तत्र तं हारं तस्याः कण्ठे प्रदत्तवान् । उवाच क्रोधताम्राक्षस्तामाधास्य पुनः पुनः ॥५०

अहं चोदर्यांसिंहोऽयं पितुर्वैरार्थमागतः । हनिष्यामि रिषुं भूपं सात्मजं सबलं तथा ॥५१

पराजित करने के लिए भेद पूछा । उसने कहा—देवकी पुत्र ! आप मेरा हाथ पकड़कर अपनी बनाने की प्रतिज्ञा करें तो मैं अपने पिता के कठिन भेदों को बता सकती हूँ । उन्होंने स्वीकार करते हुए उसका हाथ पकड़ा और शत्रु के भेद को जानकर उसे अश्वासन दिया, पश्नात् प्रसन्न होकर अपने निवास रथान की ओर लौट पड़े । उसी बीच रानी ने प्रेममन्त्र होकर उस योगी से कहा—मैं तुम्हारे नृत्य से अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतः तुम्हें इस देशराज की रानी का नौलखाहार उपहार में दे रही हूँ इसे सुनकर वत्स पुत्र (बलखान) ने रानी की विस्तृत प्रशंसा करते हुए उसे सादर ग्रहण किया । पश्चात् सबको साथ लेकर वे राजा जम्बूक के महल में पहुँचे । ३८-४३। वहाँ पहुँचकर उदयसिंह नृत्य और बलखानि गान करने लगे एवं शेष तालन आदि उसी भाँति अपने वादों की ध्वनि में मग्न होने लगे । वहाँ अपने बन्धुओं समेत कालिय (करिया) भी उपस्थित था । उसने उदयसिंह से कहा—श्याम जी ! मनइच्छित वस्तु की याचना करो । शत्रु की इस वाणी को सुनकर बलखानि ने कहा—राजन् ! लक्षावर्ति नामक वेश्याङ्गना यदि अपनी कला-प्रवीणता का प्रदर्शन कराये तो हमें अत्यन्त प्रसन्नता होगी । इसे सुनकर राजा ने लक्षावर्ति नामक वेश्या को जो देशराज की परम प्रेयसी थी, उस सभा में नृत्य करने के लिए आदेश प्रदान किया । वह वेश्या पुत्र आह्लाद को योगी का वेष धारण किये देखकर अपनी आँखों से आँसुओं की धारा बहाती हुई रुदन करने लगी । उस समय उसे रुदन करते देखकर आह्लाद ने भी रुदन करते हुए अपनी दोनों भुजाओं पर ताल ठोकना आरम्भ किया, उधर उदयसिंह ने उसके कंठ को उसी हार से विभूषित कर दिया । कुद्ध होकर रक्तनेत्र करके आह्लाद ने कहा—मैं और यह उदयसिंह अपने पिता के वैर शोधनार्थ यहाँ आये हैं । अपने शत्रु राजा एवं उसके समस्त परिवार का हनन मैं निश्चित करूँगा । ४४-५१। इसे सुनकर बलवान् कालिय ने

इति श्रुत्वा वचस्तस्य कालियो बलवन्नरः । पितुराज्ञां पुरस्कृत्य शतव्यूहसमन्वितः ॥५२
 तेषां च बन्धनायैद कपाटं समरुद्ध सः । ताङ्ग्रून्समनुज्ञाय पाशहस्तान्सशस्त्रगान् ॥५३
 त्वं स्वं खड्गं समाकृष्य क्षत्रियास्ते समाधनत । शतशूरे हते तैश्च कालियो भयकातरः ॥५४
 त्यक्त्वा तातं प्रदुद्राव ते तु गेहाद्विर्ययुः । स्वसैन्यं शीघ्रमासाद्य युद्धाय समुपस्थितः ॥
 शिकिरणि कृतान्येव नर्मदाकूलमास्थितैः ॥५५
 कृत्वा तु नर्मदासेतुं नल्वमात्रं सुपुष्टिदम् । स्वसैन्यं तारयाभास चतुरङ्गसमन्वितम् ॥५६
 ररोध नगरों सर्वं बलखानिर्बलैर्युतः । शतघ्नीरप्रतः कृत्वा मृशब्दकरीस्तदा ॥
 माहिष्मत्याश्र्व हस्त्याणि पातयाभास भूतले ॥५७
 नरश्च स्वकुलैः सार्द्धं मुख्यद्रव्यसमन्विताः । विन्ध्यादेश्च गुहां प्राप्य तत्रोषुर्भयकातराः ॥५८
 कालियस्तु गजानीके पञ्चशब्दगजे स्थितः । हस्तिपा दशसाहस्रा युद्धाय समुपस्थितः ॥५९
 तस्यागुजः सूर्यवर्मा निलक्षेस्तुरगैर्युतः । तुष्टिलश्च रथः सार्द्धं रथस्थश्च सहस्रकैः ॥६०
 रङ्गणो वङ्कणश्चोभौ चतुर्लक्षपदातिभिः ॥
 जग्मतुस्तौ महाम्लेच्छौ न्तेच्छभूपसहस्रकैः । दक्षिणात्यग्रामपास्ते तौ पुरस्कृत्य संयुः ॥६१
 उशे सेने समासाद्य युद्धाय समुपस्थिते । तयोश्च तुमुलं युद्धमभवल्लोमर्हणम् ॥६२
 त्रियामे रुद्धिरैस्तेषां नदी प्रावर्तत द्रुतम् । दृष्ट्वाक्षजां नदीं घोरां मांसकर्दमवाहिनीम् ॥

अपने पिता की आज्ञा से शतव्यूह सेनाओं को उन लोगों को बाँधने तथा प्रमुख दरवाजे के फाटक (किवाड़) को बन्द करने के लिए आदेश दिया । शत्रु की उस सशस्त्र सेना को सम्मुख उपस्थित होते देखकर वे क्षत्रिय वीर अपने-अपने खड्ग लेकर उसमें प्रविष्ट होकर उन्हें धराशायी करने लगे । उन सौ शूरों की सेना को नष्ट होते देखकर कालिय (करिया) भयभीत होकर अपने पिता को छोड़कर वहाँ से भाग गया और आह्लाद आदि ने क्षत्रिय वीर उस राजमहल से बाहर हो गये । पश्चात् शीघ्रता से अपनी सेना में पहुँचकर उसे सुसज्जित कर युद्ध के लिए तैयार हो गये । इन लोगों ने नर्मदा के टट पर अपने शिविरों को लगवाया था । ५२-५५। पुनः नल्वमात्र एक सुपुष्ट सेतु बनाकर उसी द्वारा अपनी सेनाओं को नर्मदा पार किया । और बलखानि (मलखान) आदि वीरों ने निश्चितकर चारों ओर से सेना द्वारा उस माहिष्मती नगरी को धेर लिया तथा भीषण गर्जना करने वाली तोपों के गोले से उस नगरी की गगन चुम्बी अट्टालिकाओं वाले महलों को भूमि पर गिरवाना आरम्भ कर दिया । वहाँ के निवासी भयभीत होकर अपने परिवार एवं प्रमुख द्रव्यों को लेकर विंध्य-पर्वत की गुफाओं में जाकर रहने लगे । उस कालिय (करिया) ने गजों की सेना के मध्य में पंचशब्द नामक गजराज पर स्वयं स्थित होकर दश सहस्र पीलवानों समेत रणस्थल की ओर प्रस्थान किया । उसी भाँति सूर्य वर्मा नामक उसका अनुज तीन लाख अश्वारोहियों की सेना को साथ लेकर, तुंदिल रथ पर बैठकर एक सहस्र रथियों के साथ, रंकण-वंकण नामक दोनों म्लेच्छों, चार लाख की सेना और एक सहस्र म्लेच्छ राजाओं एवं दक्षिण प्रदेश निवासी इन दोनों म्लेच्छों को अग्रसर करके युद्धस्थल की ओर प्रस्थित हुए । रणस्थल में दोनों सेनाएँ हृदय-विदारक तुमुल युद्ध करने लगीं । ६०-६२। उस तीन प्रहर के युद्ध में रक्त की नदी प्रवाहित हो चली जिसमें मांस पंक की

बलखानिरमेयात्मा खड़गपाणिर्नरो ययौ

॥६३

भल्लहस्तस्तदा देवो मनोरथहये स्थितः । बिन्दुलस्थश्च कृष्णांशः खड़गेनैव रिपूनहन् ॥६४

आह्लादश्च गदाहस्तः पोथयामास बाहिनीम् । रूपणो नाम शुद्रश्च शक्तिहस्तोन्यहन्निरपून् ॥

तालनो हस्तनिर्स्त्रिशो भाहिष्णात्यां हनन्ययौ

॥६५

एवं महाभये जाते रजे तरिम्नमहाब्रते । दुदुवुः सर्वतो वीराः पाहिपाहीन्यथज्ञवन् ॥६६

प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा कालियो बलखानिकम् । गजस्थस्ताडग्रामास स्वबाणैस्तं महाबलः ॥६७

हरिणी बडवा तस्य ज्ञात्वा स्वरूपिनमादुरम् । गजोपरि लग्नस्थाय स्वपादैस्तमपातयत् ॥६८

पतिते फालिये वीरे पञ्चशब्दो महामजः । शृंखलैस्ताडयामास शूरांस्तान्सदमतकान् ॥६९

मूर्च्छते पञ्चशूरे तु रूपणो भयकातरः । देवकीं वर्णयामास यथाजातं गजेन वै ॥७०

तदा तु दुःखिता देवी दोलमालहृष्टा सत्वरा । तं गजं च समासाद्य वर्णयामास कारणम् ॥७१

गजराज नमस्तुभ्यं शकदत्त महाबल । एते पुत्रास्तु ते वीर पालनीया यथा पितुः ॥७२

इति श्रुत्वा दिव्यगजो देवमायाविशारदः । देवकीं शरणं प्राप्य क्षमस्वामस्कृतं सम ॥७३

इत्युक्ते गजराजे तु कृष्णांशो बलवत्तरः । त्यक्त्वा मूर्च्छा ययौ तत्र यत्राह्लादश्च मूर्च्छितः ॥७४

तमुत्थाप्य करस्पर्शबलखानिसमन्वितः । पिरुगंजं महामत्तमाह्लादाय प्रदत्तवान् ॥

करालमध्यं दिव्याङ्गं रूपणाय तदा ददौ

॥७५

मूर्च्छितं कालियं शत्रुं बद्ध्वा स निश्चिरैर्दृढैः । सेनान्तं प्रेषयामास बलखानिर्महाबलः ॥७६

भाँति बहु रहा था, उसे देखकर बलखानि हाथ में खड़ग, देवसिंह मनोरथ धोड़े पर बैठे हुए हाथ में भाला लिए, विंदुल धोड़े पर बैठकर उदयसिंह खड़ग, आह्लाद गदा, रूपन शक्ति और तालन अपनी तलवा। र लिए शत्रु सेना को धराशायी करते हुए माहिष्मती में प्रविष्ट हो गये। वीरों के उस भीषण संग्राम में वीर सैनिक त्राहि-त्राहि करके भागने लगे। ६३-६६। उस समय अपनी सेना को छिन्न-भिन्न होते देखकर कालिय ने हाथी पर स्थित रहकर ही अपने बाणों से बलखानि पर धात-प्रवात किया। पश्चात् उनकी हरिणी नामक धोड़ी ने अपने स्वामी को आतुर समझकर शत्रु की हाथी पर पहुँचकर अपने चरणों से उसे भूमि पर गिरा दिया। वीर कालिय (करिया) के गिर जाने पर पंचशब्द नामक गजराज ने लोहे की शृंखला (जंजीर) द्वारा इन मदोन्मत्त पाँचों भाइयों को मूर्च्छित कर दिया। पाँचों वीरों के मूर्च्छित होने पर रूपन ने शीघ्रता से देवकी के पास जाकर उस गजराज द्वारा किये गये कृत्य का यथावत् वर्णन किया। उसे सुनकर दुख का अनुभव करती हुई देवकी ने डोला द्वारा वहाँ पहुँचकर उस गजराज से उन कारणों का विस्तृत वर्णन किया—शक प्रदत्त एवं महाबली गजराज तुम्हें नमस्कार है, वीर पुत्रों की रक्षा तुम्हें सदैव पिता की भाँति करनी चाहिए। इसे सुनकर देवमय निपुण वह गज देवकी की शरण में पहुँचकर अपने अपराध की क्षमा याचना करने लगा। ६७-७३। उसी बीच सबल उदयसिंह चेतना प्राप्तकर आह्लाद के समीप पहुँचकर उन्हें अपने करस्पर्श द्वारा चेतना प्रदान किये। पुनः बलखानि समेत अपने पिता के उस गजराज को आह्लाद को सौंपकर कराल नामक उस दिव्य अश्व को रूपन को दे दिया। अनन्तर मूर्च्छित उस कालिय नामक शत्रु को हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर महाबलशाली बलखानि ने उसे अपनी सेना में भेज

सूर्यवर्मा तदा ज्ञात्वा बद्धं बन्धुं च कालियम् । प्रययौ शत्रुसेनान्तं क्रोधेन स्फुरिताथरः ॥७७
 तमायान्तं समालोक्य ते वीरा युद्धुर्मदाः । रथस्थं मण्डलीकृत्य स्वं स्वमस्त्रं समाक्षिपन् ॥७८
 कुण्ठितेऽस्त्रे तदा तेषां विस्मिनास्तेऽभवन्मुने । चिन्तां च महतीं प्राप्ताः कर्थं वश्यो भवेदयस् ॥७९
 तस्यास्त्रैस्ते गहावीरा व्रणार्तिभयपीडिताः । त्यक्त्वा युद्धं पुनर्गत्वा रणं चक्रः पुनः पुनः ॥८०
 एवं कृति दिनान्येव बभूव रणं उत्तमः । आह्लादो वत्सजो देवस्तालनो अप्यसंयुतः ॥
 कृष्णांशं शरणं जग्मुत्तेन वीरेण मोहिताः ॥८१
 कृष्णस्तु तं तथा दृष्ट्वा देवीं विश्वविमोहिनीम् । तुष्टाव मनसा दीरो रात्रिसूक्तं पठन्हृदि ॥८२
 तदा तुष्टा जगद्वात्री दुर्गा दुर्गार्तिनशिनी । मोहित्वा तु तं वीरं तत्रैवान्तरधीयत ॥८३
 निद्रिया मोहितं दृष्ट्वा कृष्णांशस्तु महाबलः । बबन्धं निगडेस्तं च देवक्यन्ते सनाममत् ॥८४
 तुन्दिलश्च तथा ज्ञात्वा भातृशोकपरिप्लुतः । आजगाम हयारूढः खडगहस्तो महाबलः ॥
 रिपुसैन्यस्य मध्ये तु बहूरात्ताडयत् ॥८५
 माहिष्मात्याश्र ते शूरा रङ्गेन समन्विताः । तत्सैन्यं भञ्जयामासुस्तालनेन प्रपालितम् ॥८६
 प्रद्रुतं स्वं बलं दृष्ट्वा तालनः परिधायुधः । शिरांसि पोथयामास स्लेघ्छानां च पृथक्पृथक् ॥८७
 वङ्गाणं च तथा हत्वा खड्गोनैव च रङ्गेन्म् । तुन्दिलं च तथा बद्ध्वा दिनान्ते शिविरं ययौ ॥८८

दिया । सूर्यवर्मा को जिस समय यह मालूम हुआ कि मेरा भाई कालिय शत्रुओं द्वारा शृंखलाबद्ध है, क्रोध के बेंग से अपने होठ फरफराते हुए उसी समय वह शत्रु की सेना में प्रविष्ट हो गया । उसे आते हुए देखकर वे युद्ध-दुर्मद वीर रथ पर बैठे हुए उसे चारों ओर से मंडलाकार धेरकर अपने-अपने अस्त्रों के प्रहार करने लगे । किन्तु मुने ! उसके ऊपर किसी अस्त्र का आघात नहीं हो पाता था । अतः अपने अस्त्रों को कुण्ठित देखकर उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ और बहुत बड़ी चिन्ता हुई कि इसका बध कैसे किया जाय । पश्चात् उसके अस्त्रों से इन वीरों के देह में व्रण होने लगा । उससे पीडित होकर वे युद्ध से भाग जाते और पुनः आकर युद्ध करते । इस प्रकार कई दिन तक ऐसा ही उत्तम युद्ध होता रहा, अनन्तर आह्लाद, बलखानि, देवसिंह और तालन आदि उस वीर द्वारा भयकातर एवं मोहित होकर उदयसिंह की शरण में पहुँचे । उन्हें इस भाँति आकुल देखकर उदयसिंह ने विश्व को मोहित करने वाली देवी की मानसिक आराधना की वे अपने हृदय में रात्रिसूक्त का पाठकर रहे थे । ७४-८२ । उस समय जगत् को धारण करने वाली एवं दुर्ग (किले) के समान कष्टों के नाश करने वाली भगवती दुर्गा जी प्रसन्न होकर उस (सूर्यवर्मा) वीर को मोहितकर वहीं अन्तहित हो गई । महाबली उदयसिंह ने उसे निद्रामग्न देखकर हथकड़ी-बैड़ी से बाँधकर देवकी के समीप उपस्थित किया । इस समाचार के प्राप्त होने पर तुंदिल ने भ्रातृ-शोक से व्याकुल होकर हाथ में खड्ग लिए शत्रु सेना की ओर प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर शत्रु के सैनिकों को धराशायी करने लगा और माहिष्मती का रंकण नामक शूर तालन की सेना को । अपनी सेना को भागते हुए देखकर तालन ने अपने परिधि, अस्त्र द्वारा म्लेच्छों के शिररस्त्रेदन करके उन्हें भूमि में गिरा दिया । पुनः रंकण और वंकण का खड्ग द्वारा बध करके तथा तुंदिल को बाँधकर वे सायंकाल के समय शिविर में पहुँचे

कालिये च रिपौ बद्धे मुबद्धे सूर्यवर्मणि । तुन्दिले च तथा बद्धे रङ्गणे बङ्गणे हते ॥८९
 सहस्रं म्लेच्छराजानो हतशेषा बलान्विताः । पक्षमात्रमहोरात्रं युद्धं चक्रः समन्ततः ॥९०
 प्रत्यहं तालनो वीरः सेनापतिरमर्षणः । षष्ठिं भूपाञ्जयानाशु शत्रुसैन्यभयङ्करः ॥९१
 भयभीता रिपोः शूरः हता भूया हतौजसः । हतशेषा ग्रयुर्गहमर्द्धसैन्या भयातुराः ॥९२
 जन्मुक्स्तु तथा श्रुत्वा दुःखितो गेहमाययौ । गतं ह्यनशनं कृत्वा रात्रौ शोचन्नरोत्सः ॥९३
 निशीथे समनुप्राप्ते तत्सुता विजयैषिणी ! वूर्णा तु सा कला ज्ञेया द्रष्टायाः द्रजवासिनी ॥९४
 आस्वास्य पितरं तं च ययौ प्रायाविशारदा । रक्षकान्तिष्ठविराणां च मोहयित्वा समाययौ ॥९५
 भ्रातरो तत्र गत्वासौ यश्च सर्वानिबोधयत् । कृत्वा सा राक्षसों मायां पञ्चवीरानमोहयत् ॥९६
 निरस्त्रकवचान्बन्धून्प्रतिदोत्तां समारुहत् । पितुरन्तिकमासाद्य तस्मै भ्रातृन्दूदौ मुदा ॥९७
 प्रभाते बोधिताः तर्वे स्नानध्यानादिकाः क्रियाः । कृत्वा यथू रिपोः शालां दृष्टवन्तो न तांस्तदा ॥९८
 बभूवर्दुःखिताः सर्वे किमिदं कारणं कथम् । तानुवानं तदा देवः प्राप्ता ह्यत्र रिपोः सुता ॥९९
 कृत्वा सा राक्षसों मायां हृत्वा तानोहमाग्यौ । तस्माद्यूयं मया सार्द्धं गत्वा यत्रैव तद्गुरुः ॥१००
 विन्ध्योपरि महारण्ये नानासत्त्वनिषेविते । कुटीरं तस्य तत्रैव नाम्नैवैत्तविली हि सः ॥
 योगसिद्धियुतः कामी राक्षसेभ्यो हि निर्भयः ॥१०१

गये । इस प्रकार कालिय, सूर्य वर्मा, और तुंदिल के बांधे जाने एवं रंकण तथा वंकण के निधन होने पर वे म्लेच्छ राजगण जो सहस्रों की संख्या में वहाँ स्थित थे, अपनी सेना समेत एक पक्ष (पञ्चवारा) तक रात दिन युद्ध करते रहे । ८३-९०। वीर सेनापति तालन ने कुद्ध होकर भाठ म्लेच्छ राजाओं का शीघ्र वध कर दिया । वे (तालन) शत्रु की सेना के लिए काल रूप दिखाई देने लगे—म्लेच्छ शत्रु के शूरवीर तथा राजगण जो शेष रह गये अपनी अवशिष्ट सेना समेत भयभीत होकर अपने-अपने घर भाग गये । इस समाचार के श्रवण करने पर राजा जम्बूक को अत्यन्त दुःख हुआ, वे अनशन व्रत करते हुए रात में बिना भोजन किये ही शय्या पर शयन कर गये । चिन्तित रहने के कारण उन्हें नीद नहीं आई । आधी रात के समय उनकी विजया नामक पुत्री ने जो पूर्णकला की ज्ञाता तथा व्रज निवासिनी राधा रूप थी, अपने पिता को आश्वासन प्रदानकर शत्रु के शिविर स्थान पर पहुँचकर वहाँ के रक्षकों की मोहित कर दिया । पश्चात् अपने भाइयों के समीप पहुँचकर उन पाँच (आह्लाद आदि) वीरों को भी अपनी राक्षसी माया द्वारा मोहितकर अपने भाइयों को डोला में बैठाकर अपने पिता को समर्पित कर दिया । प्रातःकाल जागने पर स्नान-ध्यान आदि क्रियाओं से निवृत्त होकर सब लोग शत्रु-स्थान गये, जहाँ उन्हें बन्दी बनाकर रखा गया था, वहाँ उन्हें न देखकर अत्यन्त दुःख प्रकट करते हुए लोग कहने लगे कि ऐसा होने का कारण क्या है ? उस समय देवसिंह (डेवा) ने कहा—यहाँ शत्रु की पुत्री (विजया), आई थी, वही अपनी राक्षसी माया द्वारा उन्हें यहाँ से भगा ले गई है, अतः तुम लोग मेरे साथ वहाँ चलो जहाँ उसके गुरु रहते हैं । उसके गुरु का नाम ऐलविली है, वे विंध्यपर्वत के ऊपर भाँति-भाँति के पश्च आदि से निसेवित उस महावन में कुटी बनाकर रहते हैं । वह योग-सिद्धि प्राप्त है, इसीलिए उसे राक्षसों से कोई भय नहीं है ॥९१-१०१। किन्तु, इतना होते

जम्बुकस्य सुता तत्र प्रत्यहं स्वजनैर्युता । एकाकिनी च सा रात्रौ स्वं पुरुं तमरीरमत् ॥१०२
 कृतेयं चैल विलिना माया ननुजमोहिनी । कार्यसिद्धिं गमिष्यामो गत्वा तं पुरुषाधमम् ॥
 ॥१०३
 इति श्रुत्वा तु चत्वारो विनाह्लादं श्युर्वनम्
 गौतनृत्यवाद्यश्च मोहयित्वा च तं दिने । वासं चक्रुश्च तत्रैव धूर्तं मायाविशारदम् ॥१०४
 ॥१०४
 तु पूर्वभृदे ईत्यद्वित्रो नाम महाशुरः । बाणकन्यामुषा नित्यमवोच्छच्छतपूजकः ॥
 जात ऐलविली नाम पक्षपूजी स वेगवान् ॥१०५
 तयोर्मध्ये प्रमाणोऽयं विवाहो मे यदा भवेत् । तदाहं त्वां भजिष्यामि संत्यक्त्वोद्वाहितं वतिम् ॥१०६
 हते तस्मिन्महाधूर्ते गत्वा संग्राममूर्द्धनि । जम्बुकस्य यथुर्दुर्गं दृष्ट्वा ते तं तमाखन् ॥
 ॥१०७
 हत्वा तत्र स्थितान्वीराज्छत्त्व्यः परिखाकृताः
 तदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो बली । जित्वा पञ्च महावीरान्बद्धवा तान्निगडैर्दैः ॥
 ॥१०८
 शैवं दद्यं च कृतवांस्तेषां नाम्नोपब्रहितम्
 रूपणस्तु तथा ज्ञात्वा देवकीं प्रत्यवर्णयत् । तदा तु दुखिता देवी भवानीं भयहारिणीम् ॥
 ॥१०९
 मनसा च जगामाशु शरण्यां शरणं सती
 तदा तुष्टा जगद्वात्री स्वप्राप्ते तामवर्णयत् । अहो देवकि कल्याणि पुत्रशोकं त्यजाधुना ॥११०
 ॥११०
 यदा तु जम्बुको राजा शिवदत्तवरो बली । होमं कर्ता स मन्दात्मा तेषां च बलिहेतवे ॥१११
 मोहयित्वा तदाहं तं मोचयित्वा च ते सुतान् । विजयं ते प्रदास्यामि मा च शोके मनः कृथा ॥११२
 इति श्रुत्वा सती देवी नमस्कृत्य महेश्वरीम् । पूजयामास विधिवद्वपदीपोपहारकः ॥११३

हुए भी वह अत्यन्त कामी है । राजा जम्बूक की पुत्री प्रतिदिन स्वजनों समेत या अकेले ही जाकर उसके साथ रमण करती है । उसी ऐलविली ने मनुष्य मोहित करने वाली इस माया को उसे प्रदान किया है । उस नीच पुरुष के समीप पहुँचकर हम लोग अवश्य कार्य-सिद्ध कर लेंगे, इसे सुनकर आह्लाद के अतिरिक्त वे चारों भाई उस वन के लिए चल दिये । वहाँ पहुँचकर इन लोगों ने उस धूर्तं मायावी को अपने नृत्य-गान द्वारा मुग्ध करके उस दिन उसी के निवास स्थान पर निवास किया । वह नराधम पूर्वजन्म में चित्र नामक महाराक्षस था, जो बाणासुर की कन्या उषा को अपनाने के लिए नित्य शिव जी की आराधना कर रहा था । इस जन्म में इसका ऐलविली नाम हुआ है । वह अत्यन्त आवेग से यथ की पूजा कर रहा है, क्योंकि उन दोनों में यह निश्चय हुआ है कि जब मेरा विवाह संस्कार हो जायेगा तो उस विवाहित पति का व्याग करके मैं सदैव के लिए आपकी हो जाऊँगी । पश्चात् इन लोगों ने उसका वध करके पुनः उस रणस्थल में पहुँचकर जम्बूक के दुर्ग पर चढ़ाई कर दी । और चारों ओर से उसे धेरकर वहाँ के वीरों को धराशायी कर दिया । उस समय राजा जम्बूक ने जिन्हें शिवजी का वरदान प्राप्त था, उन पाँचों महावीरों को पराजित करके हथकड़ी बेड़ी द्वारा उन्हें बांधकर उनकी बलि देने के निमित्त शैव-यज्ञ करना आरम्भ किया । तदुपरान्त इसका आनुपूर्वी वर्णन रूपन ने देवकी से किया । उसे सुनकर अत्यन्त अधीर होकर देवकी ने भयनाशनी भगवती पार्वती की शरण में जाकर उनकी मानसिक आराधना की । १०२-१०९। प्रसन्न होकर

एतस्मिन्नन्तरे राजा देवमायाविमोहितः । सुष्वाप तत्र होमान्ते ते च जाता ह्यबन्धनाः ॥११४
 तर्बद्धो जम्बुको राजा निगडैरायसैदृढैः । ते तं बद्ध्वा ययुः शीघ्रं देवकीं प्रति निर्भयाः ॥११५
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र कालिगायास्त्रयः सुताः । त्रिलक्षं सैन्यमादाय युद्धाय तमुपाययुः ॥११६
 पुनर्युद्धमभूद्धोरं सेनयोरुभयोस्तदा । तात्तनायाश्च चत्वारो हत्वा तां रिपुवाहिनीम् ॥११७
 त्रैञ्छत्रून्कोष्ठकीकृत्य स्वस्त्रैर्जग्नुर्जिताः । एवं दिनानि नितिवित्तत्र जातो मदारणः ॥११८
 कालियो दुःखितो भूत्वा सस्मार मनसा हरशः । मोहनं मन्त्रमासाद्य मोहयामास तान्त्रिपून् ॥११९
 एतस्मिन्नन्तरे देवी देवकी पतिदेवता । पतिव्रत्यस्य पुण्येन चुलान्तिकमुपागता ॥१२०
 बोधयित्वा तु कृष्णांशं पञ्चशब्दगजस्थितम् । पुनस्तुष्टाव जनर्ना सर्वविश्वविमोहिनीम् ॥
 तदा तुष्टा स्वयं देवी बोधयामास तान्मुदा ॥१२१

आह्लादः सूर्यवर्मणं कालियं च ततोऽनुजः । जघान बलखानिस्तं तुन्दिलं जम्बुकात्मजम् ॥१२२
 ते तु पूर्वभवे विप्र जरासन्धः सकालियः । द्विविदो बानरः शूरः सूर्यवर्मेह चाभवत् ॥१२३
 त्रिशिरास्तुन्दिलो जातः शृगालः स च जम्बुकः । नित्यवैरकराः सर्वे भूपाश्वासन्महीतले ॥१२४
 हतेषु शत्रुपुत्रेषु देवकी जम्बुकं रिपुम् । खड्गेन तर्जयामास पतिशोकपरायणा ॥१२५
 कृष्णांशः शिरसी पित्रोर्गृहीत्वा स्नेहकातरः । जम्बुकस्त्वैव हृदये स्थापयामास विह्वलः ॥१२६

जगज्जननी देवी ने उनसे कहा—देवकि ! कल्याणि ! इस समय पुत्र-शोक क्यों कर रही हो । जिस समय जम्बूक हवन करते हुए उन लोगों की बलि देने के लिए प्रस्तुत होगा मैं उस समय उसे मोहित कर तुम्हारे पुत्रों को मुक्तकर उन्हें विजय प्रदान करूँगी, इसलिए मेरा कहना है कि तुम अपने मन में शोक के लिए स्थान मत दो । इसे सुनकर उस पतिव्रता ने नमस्कारपूर्वक धूप, दीप एवं उपहार द्वारा सविधि महेश्वरी देवी की पूजा सुमन्यन्न की । इसी समय राजा देव-माया द्वारा मोहित होकर निद्रित हो गये, और ये लोग बन्धनमुक्त होने पर दृढ़ शृंखला द्वारा उस राजा को बाँधकर निर्भय होकर अपनी माता देवकी के पास पहुँचे । इसे सुनकर कालिय आदि तीनों पुत्रों ने तीन लाख सैनिकों को साथ लेकर रणस्थल में जाते ही युद्ध की घोषणा की । उन दोनों सेनाओं का आपस में पुनः घोर संग्राम आरम्भ हुआ, जिसमें तालन आदि चारों वीरों ने उस सेना का हनन करके उन तीन भाइयों को जो प्रमुख शत्रु थे, धेर कर अपने-अपने अस्त्रों से कठिन आधात-प्रतिधात करना आरम्भ किया । इस प्रकार समान रूप से कई दिन तक वह युद्ध होता रहा । उस समय कालिय दुखी होकर भगवान् शंकर का मानसिक स्मरण करने लगा । पश्चात् मोहन-मंत्र द्वारा शत्रुओं को मुर्द्ध कर रहा था । ११०-१११ । उसी समय पतिपरायण देवकी देवी ने अपने पतिव्रत पुण्य के प्रभाव से अपने पुत्रों के पास पहुँचकर पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित उस पुत्र को बोधित करती हुई निखिल दिश्व का विग्रहन करने वाली माता को पुनः प्रसन्न किया, जिससे देवी द्वारा चेतना प्राप्तकर आह्लाद ने सूर्यवर्मा, उदयसिंह ने कालिय, और बलखानि ने जम्बु पुत्र तुन्दिल का निधन किया । विप्र ! पूर्व जन्म में कालिय जरासन्ध था, उसी भाँति सूर्य वर्मा द्विविद नामक बानर, तुन्दिल त्रिशिरा राक्षस और जम्बूक शृगाल था । इस भूतल पर ये नृपगण सदेव ईर्ष्या, वैर एवं कलह किया करते थे । इस प्रकार शत्रु के पुत्रों के निधन होने के उपरान्त पतिशोकपरायण देवकी ने शत्रु जम्बूक को खड्ग से छिन्न-भिन्न किया । अनन्तर उदयसिंह ने स्नेह से आर्द्र होकर अपने पिता के दोनों शिर अधीर होते हुए

विहस्य तौ तदा तत्र प्रोचतुर्वद्धनं प्रियम् । चिरं जीव हि कृष्णांश गयां कुरु महामते ॥

इति वाणी तयोर्जाता बलिनोः प्रेतदेहयोः ॥ ११२७

खड्गहस्ता च सा देवी शिलायन्त्रे तु तं रिपुम् । संस्याप्य चोदयामास स्वपुत्रान्हर्षसंयुता ॥ ११२८

हे पुत्राः स्वपितुः शत्रुं जम्बुकं पुरुषाधमम् । खण्डं खण्डं च तिलशः कृत्वानन्दसमन्विताः ॥ ११२९

सञ्चूर्णयत तदगात्रं तत्त्वैर्मदनिमितैः । स्नास्याम्यहं तथेत्युक्त्वा रुदो जननी भृशम् ॥ १३०

तथा कृत्वा तु हे पुत्रा महिषों समुत्तां तदा । बलखानियुतास्तत्त्वाहृय चक्रश्च तत्क्रियाम् ॥ १३१

तदा परिमलं राज्ञी दृष्ट्वा स्वामिनमातुरम् । मरणायोन्मुखं दिप्रं पञ्चत्वमगमन्मुने ॥ १३२

तत्सुता खड्गमानीय बलखानिभुजं प्रति । कृतित्वा मूर्च्छयित्वा तं तत्पक्षानन्वधावत ॥ १३३

तालनं देवसिंहं च राजाशञ्च तथाविधम् । कृत्वान्यांश्च तथा शत्रूनगच्छत्कुलकातरा ॥ १३४

कृष्णांश मोहयित्वाशु मायया च समाहरत् । हते तत्र शते शूरे बलखानिरमर्धितः ॥

तच्छिरश्च समा॑हृत्य चितायां च समाक्षिप्त् ॥ ११३५

तदा वाणी समुत्तन्ना बलखाने शृणुष्व भ्योः । अवध्या च सदा नारी तव्या वध्या हृधर्मिणः ॥ ११३६

फलमस्य विवाहे स्वे भोक्तव्यं पापकर्मणः । इति श्रुत्वा तदा दुःखं बलखानिर्यौपुरम् ॥ ११३७

ततस्तु सैनिकाः सर्वे महाहर्षसमन्विताः । शतोष्ट्रभारवाह्यानि लुण्ठयित्वा धनानि च ॥ ११३८

जम्बूक के हृदय स्थान पर रखा । उस समय वे दोनों शिर हँसकर बोले—उदयसिंह, चिरजीवी रहो । महामते ! मेरे निमित्त गया मैं श्राद्ध अवश्य करो । उम प्रेत देह से निकली हुई ऐसी वाणी को सुनकर देवकी देवी ने शिला-यन्त्र (पत्थर के कोत्तू) में शत्रु जम्बूक को स्थापित करती हुई हर्षातिरेक से पुत्रों से कही—पुत्रगण ! अपने पिता के परम शत्रु एवं इस नराधम जम्बूक का तिल की भाँति खण्ड-खण्ड वार इसे इसमें पिसवा डालो, क्योंकि मैं इसकी देह के तेल को लगाकर स्नान कर्ही, इतना कहकर वे अत्यन्त रुदन करने लगीं । वे पुत्र उनकी आज्ञा पालन करने के उपरान्त बलखानि (मलखान) आदि पुत्रों के साथ रानियों समेत एकत्र होकर अपने पिता की अन्येष्टिक्रिया किये । उसी समय रानी मलना ने अपने पति राजा परिमल को मरणासन्न देखा । विप्र ! उस समय उनके देहावसान हो जाने पर उनकी (जम्बूक की) पुत्री खड्ग लेकर बलखानि (मलखान) को मूर्च्छित करने के उपरान्त उनके पक्ष के तालन, देवसिंह एवं आह्लाद (आल्हा) को मूर्च्छित करती हुई शत्रु के नन्य शूर-सामन्तों को मूर्च्छित कर अपनी माया द्वारा उनका अपहरण कर ली । उसके द्वारा अपने सौ वीरों के निधन होने पर कुद्ध होकर बलखानि (मलखान) ने उसका शिर काटकर उसी चिता में डाल दिया । १२०-१३५। उसी समय आकाशदाणी हुई—बलखाने (मलखान) ! मेरी बात सावधान होकर सुनो, स्त्री सदैव अवध्य मानी गई है, किन्तु, तुम्हारे जैसे अधर्मी ने इस (स्त्री-हृत्या) काम को भी कर ही डाला, अतः इस पापकर्म का दुष्परिणाम अपने विवाह में तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा । इसे सुनकर वह बलखानि (मलखान) को अत्यन्त दुःख का अनुभव हुआ । अनन्तर उनके वीर सैनिकों ने हर्ष निमग्न होकर सैकड़ों ऊँट, धन लूटकर शेष बची हुई

महावतीं समाजगमुः कृतकृत्यत्वमागताः । हतगेषैश्चार्द्धसैन्यैः सहिता गेहमाययुः ॥१३९
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्व्युगखण्डापरपर्याप्ति
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वात्मोऽध्यायः ॥१२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

कृष्ण ऊर्ध्वः

कस्मिन्मास्यभवद्युद्धं तयोः कतिदिनानि च । तत्पश्चात्स्वपुरों प्राप्य तदा किम्भवन्मुने ॥१

सूत उवाच

पौषमास्यभवद्युद्धं तयोः शतदिनानि च । ज्येष्ठे मासि गृहं प्राप्ता दध्मुर्वद्यान्यनेकशः ॥२
 श्रुत्वा परिमले राजा स्वसृताऽज्जयिनो बलान् । ददौ दत्तानि विप्रेभ्यः सुखं जातं गृहे गृहे ॥३
 इति श्रुत्वा महीराजो बलखानि महाबलम् । तत्रागत्य नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः ॥४
 अर्द्धकोटिमितं द्रव्यं मत्तः प्राप्य सुखीभव । माहिष्मत्यश्च राष्ट्रं मे देहि वीर नमोऽस्तु ते ॥५
 वर्षे वर्षे च तद्द्रव्यं गृहाण बलवन्प्रभो । इति श्रुत्वा तथा मत्वा बलखानिर्गृहं ययौ ॥६

आधी सेना समेत अपने को कृतकृत्य मानते हुए महावती (महोबा) के लिए प्रस्थान किया । १३६-१३९

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त । १२।

अध्याय १३ कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—मुने ! इन दोनों माहिष्मती एवं महावती (महोबा) वालों का आपस में किस मास में कितने दिनों तक युद्ध होता रहा । पश्चात् अपनी राजधानी में पहुँचकर महावती (महोबा) वालों ने क्या किया ? १

सूत जी बोले—उन दोनों का भीषण संग्राम गौप मास से आरम्भ होकर समान रूप से सौ दिन तक होता रहा । इस प्रकार ज्येष्ठ में वे महावती के वीर अपने घर पहुँचकर अनेक ब्रकार के वाद्यों की हर्ष ध्वनि करने लगे । बली एवं विनयी उन अपने पुत्रों की विजय ध्वनि को सुनकर राजा परिमल ने ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें अनेक भाँति के दान प्रदान किये और वहाँ के प्रत्येक प्राणी सुख का अनुभव करने लगे । इस विजय-समाचार को सुनकर पृथिवीराज ने विनय-विनाश पूर्वक नमस्कार के उपरान्त महाबलवान् बलखानि (मलखान) से कहा—वीर ! आधा कोटि द्रव्य मैं आपको दे रहा हूँ, इसे ग्रहणकर सुख का अनुभव करते हुए आप माहिष्मती का राज्य मुझे लौटा दें । आपको नमस्कार है, प्रभो ! मैं इतना ही द्रव्य प्रत्येक वर्ष समर्पित करता रहूँगा । इसे स्वीकार कर बलखानि (मलखान) ने उन्हें वह राज्य लौटा दिया

वयस्त्रयोदशाब्दे च कृष्णांशे बलवत्तरे । तथा जाता हरेलीला भृगुश्रेष्ठ तथा शृणु ॥७
 भाद्रे शुक्ले त्रयोदश्यां चाह्नादः सानुजो ययौ । गयार्थं धनमादाय हस्त्यश्वरथसङ्कुलम् ॥८
 कृष्णांशे बिन्दुलाख्छो वत्सजो हरिणीस्थितः । देवः पपीहकारूढः सुखखानिः करालके ॥९
 चत्वारो द्विदिनान्ते च गयाक्षेत्रं समाययुः । पूर्णिमान्ते पुरस्कृत्य घोडशश्राद्धकारिणः ॥१०
 शतं शतं गजांश्रैव भूषितांश्रै रथसंस्तथा । दुर्व्ययान्सहस्रं च हेममालः विभूषितान् ॥११
 धेनूर्हिरण्यरत्नानि वासांसि विविधानि च । दत्त्वा ते सुफलीभूय स्वगेहाय दधुर्मनः ॥१२
 लक्षावर्तिस्तु या वेश्या ययौ बदरिकाश्रमम् । प्राणांस्तत्र परित्यज्य सात्सरस्त्वमुपागता ॥१३
 राकः चन्द्रे तु सम्प्राप्ते राहुग्रस्ते तमोमये : काश्यां समागता भूपा नाना देश्या कुलैः सह ॥१४
 हिमालयगिरौ रम्ये नानाधातुविचित्रिते । तत्र शार्दूलवंशीयो नेत्रसिंहो महीपतिः ॥१५
 रत्नभानौ हते शूरे नेत्रसिंहो भयातुरः । नवतुङ्गे समासाद्य तोषयामास वासवम् ॥१६
 द्रादशाब्दान्तरे देवो ददौ ढक्कामृतं मुदा : पार्वत्या निर्मितं यत् दासवाय स्वसेविने ॥१७
 ददौ ढक्कामृतं राज्ञे पुनः प्राह शुभं वचः । अस्य शब्देन भूपाल त्वं सैन्यं जीवयिष्यसि ॥१८
 क्षयं शीघ्रं गमिष्यन्ति शत्रवस्ते महाभटा । प्राप्ते ढक्कामृते तस्मिन्नेत्रसिंहो महाबलः ॥१९

पञ्चात् अपने घर चले गये । २-६। भृगुश्रेष्ठ ! उदयसिंह के तेरह वर्ष की अवस्था में भगवान् ने जिस प्रकार की लीला की है, मैं बता रहा हूँ, सुनो । भाद्रपद (भाद्रों) मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन आलहाद (आल्हा) ने उदयसिंह को साथ लेकर अनेक हाथी, घोड़े, रथ एवं द्रव्य समेत गया में पिण्डदानार्थ प्रस्थान किया । उस यात्रा में उदयसिंह बिन्दुल (बेंदुल) पर, मलखान हरिणी पर, देवसिंह एवं ही पर और सुखखानि कराल नामक घोड़े पर आसीन थे । ये चारों दो दिन की यात्रा कर यथा क्षेत्र पहुँच गये । वहाँ पूर्णिमा से आरम्भ कर अगले (क्वार के प्रथम) पन्द्रह दिन (पूर्णिपितृयज्ञ) तक उन्होंने सोलह शादों को सुसम्पन्न किया । जिसमें उन्होंने सौ गजराज, सौ रथ और सुवर्ण की मालाओं से विभूषित एक सहस्र घोड़े का दान करते हुए गौ, हिरण्य रत्न एवं अनेक भाँति के वस्त्रों को अर्पित किया पञ्चात् सुफल होने पर घर चलने के लिए निश्चित किया । उनके यहाँ की रहने वाली लक्षावर्ति (लखपातुर) नामक वेश्या ने भी बदरिकाश्रम में जाकर अपने प्राण परित्यागकर अप्सरत्व की प्राप्ति की (अर्थात् पुनः अप्सरा हो गई) । गया जी से लौटकर वे सब काशी में आकर निवास करने लगे, क्योंकि पूर्णचन्द्र (पूर्णिमा) के दिन राहु द्वारा चन्द्रमा में ग्रहण होने के नाते चारों और अंधकार हो गया था । उसमें स्नानार्थ अनेक देश के राजा काशी में आकर रह रहे थे । उनमें शार्दूल (बघेल) वंशीय नेत्रसिंह नामक राजा भी उपस्थित था, जो भाँति-भाँति की धातुओं से विभूषित एवं रमणीक उस हिमालय के प्रदेश का निवासी था । वीर रत्नभानु के निधन होने के उपरान्त भयभीत होकर नेत्रसिंह राजा ने नेत्रतुंग नामक स्थान पर पहुँचकर इन्द्र की आराधना की । ७-१६। बारह वर्ष के उपरान्त आराधना से प्रसन्न होकर देवराज (इन्द्र) ने उन्हें ढक्का (डमरू) रूपी अमृत प्रदान किया, जिसे पार्वती जी ने, अपने परम सेवक इन्द्र के लिए बनाया था । उसे राजा को देकर यह शुभ वाक्य भी कहा—नृप ! इसकी ध्वनि द्वारा तुम्हारी सेना जीवित हुआ करेगी और शत्रु के वीरभट्ट योद्धा शीघ्र नष्ट हो जायेंगे । इस डमरू की

नगरं कारयामात् तत्र सर्वजनैर्दुर्तम् । योजनान्तं चतुद्वारं दुराधर्षं परैः सदा ॥२०
 नेत्रसिंहगढं जाङ्गा विख्यातं भारते भुवि । काश्मीरान्ते कृतं राज्ये तेन शृङ्गसमन्ततः ॥२१
 पश्चिमं नेत्रसिंहेन तत्पुरं प्रत्रवन्मुने । नेत्रपाल इति ख्यातो ग्रामोऽसौ दुर्गमः परैः ॥२२
 सोऽपि राजा समायातो नेत्रसिंहो गहाबलः । कन्या स्वर्णवती तस्य रथेत्यंशसमन्विता ॥
 कामाक्ष्या घरदानेन सर्वज्ञायाविशारदः ॥२३
 दृष्ट्वा तां सुन्दरीं कन्यां बालेन्दुरसदृशाननाम् । मूर्च्छितश्चाभवन्मूपा रूप्यौवनमोहिताः ॥२४
 दृष्ट्वा तां च तथाह्लादः सर्वरत्नांविभूषिताम् । शोडशाब्दवयेषुकां कामिनीं रतिरूपिणीम् ॥
 मूर्च्छितश्चापतदभूमौ सा तं दृष्ट्वा मुमोह वै ॥२५
 दोलामारह्य तत्स्वयौ नृपान्तिकमुपाययुः । आह्लादस्तु समुत्थाय महामोहत्वमागतः ॥२६
 दृष्ट्वा तथाविधं बन्धु कृष्णांशः प्राह दुखितः । किमर्थं मोहमायातो भवांस्तत्त्वविशारदः ॥२७
 रजो रागात्मकं दिद्धि प्रमादं मोहजं तथा । ज्ञानासिना शिरस्तस्य छिन्धित्वमजितः सदा ॥२८
 इति श्रुत्वा वचो भ्रातुस्त्यक्त्वा मोहं यथौ गृह्मः । भोजित्वा द्विजश्रेष्ठान्सहस्रं वेदतपरः ॥२९
 दुर्गामाराधयानास जप्त्वा मध्यचरित्रकम् । मासान्ते च तदा देती दत्त्वाभीष्टं हृदि स्थितम् ॥३०

प्राप्ति के उपरान्त महाबली नेत्रसिंह ने एक सार्वजनिक नगर का निर्माण कराया, जो एक योजन (चारकोश) का विस्तृत एवं जिसके चारों दरवाजे शत्रुओं के लिए अत्यन्त अजेय थे । इस भारत प्रदेश के पृथिवीतल में वह नेत्रसिंह गढ़ के नाम से ख्यात हुआ । काश्मीर के समीप वाला प्रदेश उसका राज्य था, जो उसकी पर्वतीय शिखरों के चारों ओर विस्तृत है । मुने ! उस नगर का पालन नेत्रसिंह ने अपने पुत्र की भाँति किया था, जिससे उस शत्रु द्वारा दुर्गम ग्राम का नाम 'नेत्रपाल' हुआ । १७-२२। (काली की यात्रा में) उस बलवान् नेत्रसिंह नामक राजा के साथ स्वर्णवती (सोना) नामक उनकी पुत्री भी थी, जो रेती के अंश से उत्पन्न होकर कामाक्षी देवी के वर प्रदान द्वारा सम्पूर्ण माया के कार्यों में निपुण हो गई थी । उस सौन्दर्यपूर्ण कन्या को जिसका मुख नवीन (द्वितीया के) चन्द्रमा के समान था, देखकर स्नान में आये हुए नृपतिगण उसके रूप-यौवन पर मुग्ध होकर अचेतन की भाँति अवाक् हो गये । उसी भाँति आह्लाद (आल्हा) भी समस्त रत्नों से अलंकृत उस सुन्दरी को देखकर जो सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने के नाते काम-मद-विह्वल एवं रति-मूर्ति के समान थी, मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर गये और वह कन्या भी उन्हें देखकर मोहित हो गई । उसे उसकी दोनों सखियों ने डोला में बैठाकर राजा के समीप पहुँचाया । उस महामोह से किसी भाँति चेतना प्राप्त करने पर आह्लाद (आल्हा) को पुनः चेतनाहीन होते देखकर अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए उदयसिंह ने कहा—आप तत्त्व के जाता हैं, अतः आप इतना मोह-मुग्ध क्यों हो रहे हैं ? जबकि आप यह जानते हैं कि—रजोगुण से अनुराग उत्पन्न होता है, उससे मोह तथा मोह से प्रमाद होता है । तुम सदैव अजेय हो, इसलिए ज्ञान रूपी तलवार से इसका समूल नाश कर दो । भाई की ऐसी बात सुनकर उन्होंने मोह का त्याग किया पश्चात् अपने घर के लिए प्रस्थान किया । घर पहुँचकर भगवती दुर्गाजी की मध्यम चरित्र द्वारा आराधना करके सहस्रों वैदिक एवं विद्वान् ब्राह्मणों को प्रिय भोजन से प्रसन्न किया । उसी मास के अन्त में देवी ने उन्हें अभीष्ट सिद्धि

मोहग्रामास तां कन्यां विवाहार्थमनन्दिता : स्वप्ने ददर्श सा बाला रामांशं देवकोमुहम् ॥३१
 प्रातर्बुद्धवा तु सञ्चिन्त्य नहामोहमुपाययौ । तदा ध्यात्वा च कामाक्षीं सर्वभीष्टप्रदायिनीम् ॥३२
 पौष्पमासे तु सम्प्राप्ते शुककण्ठे सुष्पत्रिकाम् । बद्धवा तं प्रेष्यग्रामास शुकं पत्रस्थितं प्रियम् ॥३३
 स गत्वा पुष्पविपिनं महावतिपुरीस्थितम् : नरशब्देन बचनं कृष्णांशाय शुकोऽन्नवोत् ॥३४
 वीर तेऽवरजो बन्धुनार्णालहादो महाबलः । नत्सै हि प्रेषिता पत्री स्वर्णवत्या हितप्रदा ॥३५
 हां ज्ञात्वा च पुनस्तत्त्वा उत्तरं देहि मत्प्रियम् । अथवा पत्रमालिख्य तत्त्वं मे कुरु कण्ठके ॥३६
 इति श्रुत्वोदयो वीरो गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । ज्ञातवांस्तत्र वृत्तात्तमालहःदाय पुनर्ददौ ॥३७
 जम्बुकश्च नृपे वीरो स्वददत्तवरो बली । अजेदौऽन्यनृपैर्वीरं त्रया युधि निपातितः ॥३८
 तथाविधं स्तिपतरमिन्द्रदत्तवरं रिषुन् । तमेवं जहि सङ्ग्रामे मम पाणिग्रहं कुरु ॥३९
 इति ज्ञात्वा स आल्हादस्त्तामाश्वास्य हृदि स्थिताम् । शुककण्ठे बबन्धाशु लिखित्वा पत्रमुत्तमम् ॥४०
 स शुकः पन्नः पूर्वं पुण्डरीकेन शापितः । रेवत्यंशस्य कार्यं च कृत्वा मोक्षत्वपागतः ॥४१
 मृते तस्मिन्छुके रम्ये देवी स्वर्णवतीं तदा । दाहयित्वा ददौ दानं विद्रेभ्यस्तस्य तृप्तये ॥४२
 माघमासि च सम्प्राप्ते पञ्चस्तां कृष्णपक्षके ! आल्हादः सप्तलक्षैऽव सैन्यैः सार्द्धं ययौ मुदा ॥४३
 तालनायाश्रे शूराः स्वं स्वं वाहनमाश्रिताः । आल्हादं रक्षयन्तस्ते ययुः पञ्चदशाहकम् ॥४४

प्रदानकर विवाहार्थ उस कन्या को मोहित किया । उस कुमारी ने स्वप्न में देवकी पुत्र आल्हाद (आल्हा) का दर्शन प्राप्त किया । २३-३१। प्रातःकाल उठने पर वह उसी विषय में चिन्ता करती हुई अत्यन्त मोहित हुई । उस समय उसने समस्त मनोरथ प्रदान करने वाली कामाक्षी देवी को ध्यानपूर्वक पौष्पमास के आरम्भ में एक पत्र लिखकर शुक (तोते) के कंठ में बाँध दिया, पश्चात् प्रियपत्रवाहक उस शुक (तोते) को भेज दिया । वह शुक महावती नगर के पुष्पवाटिका में पहुँचकर वहाँ उदयसिंह से मनुष्य की वाणी में कहा—वीर ! तुम्हारे भाई महाबलवान् आल्हाद (आल्हा) के लिए स्वर्णवती (सोना) राजकुमारी ने यह पत्र भेजा है । इसे जानकर मुझे उत्तर दें अथवा पत्र लिखकर मेरे कंठ में बाँधने की कृपा करें । इसे सुनकर वीर उदयसिंह ने उस पत्र को लेकर पढ़ा, समस्त वृत्तात्त जानकर पश्चात् आल्हाद (आल्हा) को दे दिया । उसमें लिखा था—वीर ! शिव द्वारा वरदान प्राप्त करने वाले राजा जम्बूक ऐसे अनेक अजेय भूपों को तुमने जिस प्रकार रणाङ्गन में स्वर्गीय बताया है, उसी प्रकार इन्द्र द्वारा वरदान प्राप्त मेरे पिता रूप शत्रु को संग्राम में पराजित करके मेरा पाणिग्रहण करो । इसे पढ़कर आल्हाद (आल्हा) ने उसे आश्वासन प्रदानकर उत्तर में एक पत्र लिखकर उसके गले में बाँध दिया । वह शुक (तोता) जन्मान्तर में पन्नग था, पुण्डरीक द्वारा शाप प्राप्त होने के नाते शुक का रूप धारण किये था । रेवती के अंश से उत्पन्न उस स्वर्णवती (सोना) नामक राजकुमारी के कार्य को सुसम्पन्न करने के उपरान्त यह शुक परलोक पहुँच गया । ३२-४१। उसके देहावसान होने पर कुमारी स्वर्णवती (सोना) ने उसका दाहसंस्कार करके ब्राह्मणों को उसके तृप्त्यर्थ दान प्रदान किया । माघ मास की कृष्णपञ्चमी के दिन आल्हाद (आल्हा) ने प्रसन्न होकर अपनी सात लाख सेनाओं के साथ वहाँ के लिए प्रस्थान किया । तालन आदि सबल शूरों ने अपने-अपने वाहनों पर बैठकर चारों ओर से आल्हाद (आल्हा) की रक्षा में

वज्ञदेशं समुल्लङ्घ्य शीघ्रं प्राप्ना हिमालयम् । रूपणं पत्रकर्त्तारं बलखानिरूपत्वं तस् ॥४५
 गच्छ त्वं वीर कवची करलाश्वं समास्थितः । पञ्चशस्त्रसमायुक्तो राजानं शीघ्रमावह ॥४६
 युद्धचिह्नं तनौ कृत्वा मामागच्छ त्वरान्वितः । तथा मत्वा शिखण्डयंशो यथौ शीघ्रं स रूपणः ॥४७
 स ददर्श सभां राजो लहूशूरसमन्विताम् । पार्वतीर्दैर्नैः सङ्क्षे पहर्वलवत्तरैः ॥४८
 स उबाच नुपश्रेष्ठं नेत्रसिंहं महाबलम् । त्वत्सुतायाः विद्वाहाय बलखानिर्महाबलः ॥
 सप्तलक्षबलैर्गुप्तः सम्प्राप्तस्तव राष्ट्रे ॥४९
 तस्मात्त्वं स्वसुतां शीघ्रभालादाय समर्पय । शुल्कं मे देहि नपते युद्धरूपं सुदारुणम् ॥५०
 इति शुन्ना वचस्तस्य स राजा क्रोधमूर्च्छितः । पट्टनाधिपमाज्ञाय भूयं यूर्णबलं रुषा ॥
 अरुधत्यक पापां च तस्य वन्धनहेतवे ॥५१
 पाशहस्ताञ्चूरशतं पट्टनाधिपरक्षितान् : दृष्ट्वा स रूपणो वीरः खडगयुद्धमचीकरत् ॥५२
 हत्वा तन्मुकुटं राजो गृहीत्वाकाशगो बली । बलखानि तु संप्राप्य चिह्नं तरमै न्यवेदयत् ॥५३
 इति श्रुत्वा प्रसन्नात्मा सप्तलक्षदलैर्युतः । अरुधत्यगरीं सर्वा नेत्रसिंहेन रक्षिताम् ॥५४
 नेत्रसिंहस्तु बलवान्यार्दितैर्नैः रह । हिमतुञ्जतलं प्राप्य युद्धार्थीं तान्समाहृयत् ॥५५
 सहस्रं च गजास्तस्य ह्या लक्षं महाबलाः । सहस्रं च नृपाः धूराश्रवतुर्लक्षयदातिभिः ॥५६

सन्नद्ध रहकर पन्द्रहवें दिन उस राजधानी में पदार्पण किया । बंग देश को पारकर ये लोग शीघ्र हिमालय के प्रदेश में पहुँचकर संदेशवाहक रूपण से बलखानि (मलखान) ने कहा—वीर ! कवच धारणपूर्वक कराल (करील) नामक घोड़े पर बैठकर पाँचों अस्त्र लिए हुए तू राजा के पास पहुँचकर उन्हें हमारे अगमन की सूचना देने के पश्चात् अपनी देह में कोई युद्धचिह्नं अंकित कर शीघ्र लौट आवो । इसे स्वीकार करके वह शिखण्डी का अंश रूपण राजधानी में शीघ्र प्रविष्ट हुआ । उसने वहाँ जाकर राजा की राजसभा को देखा, जिसमें पर्वतीय अनेक शूरवीर नृपतिगण अपने शूर-सामन्तों समेत उपस्थित होकर वहाँ की श्रीवृद्धि कर रहे थे । महाबलवान् राजा नेत्रसिंह से उसने कहा—बलखानि (मलखान) नामक महाबली योद्धा अपनी सात लाख सेना लेकर अपनी कन्या के पाणिग्रहणार्थ इस राजधानी में उपस्थित हुए हैं—अतः आप अपनी पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार आल्हाद (आल्हा) के साथ शीघ्र सुसम्पन्न करने के लिए प्रस्तुत हो जाय । और राजन् ! इसका पुरस्कार मुझे भीषण-युद्ध के रूप में मिलना चाहिए । उसकी ऐसी बात सुनकर राजा ने क्रोधान्ध होकर पूर्णबल नामक अपने मदनाध्यक्ष को आदेश दिया । उसने रूपण की बाँधने हेतु (रंगभूमि के) विशाल दरवाजे को बंद करा दिया । नगराध्यक्ष की अध्यक्षता में आये हुए उनके रक्षकवीरों को देखकर जो सौ की संख्या में उपस्थित होकर पाश (फांस) अस्त्र से सुसज्जित थे, रूपण हाथ में खड़ग लेकर युद्ध करने के लिए उनके सम्मुख खड़ा हो गया । पश्चात् युद्ध में उन्हें धराशायी कर और राजा के मुकुट को लेकर आकाशमार्ग से वह बलखानि (मलखान) के समीप पहुँचकर उन्हें वह राज-मुकुट सौंप दिया । यह साहस देखकर बलखानि (मलखान) ने प्रसन्न होकर सात लाख सैनिकों समेत उस नेत्रसिंह की सुरक्षित राजधानी को चारों ओर से धेर लिया । बलवान् नेत्रसिंह ने भी अपने पर्वतीय राजाओं को साथ लेकर हिमालय की ऊँची तलहटी में उन्हें युद्धार्थ निमन्त्रित किया । उनकी सेना में एक सहस्र गज, एक लाख घोड़े, एक सहस्र की संख्या में वीर नृपगण और चार लाख पदाति (पैदल) की सेना थी । ४२-५६। गज सेनानायक योगसिंह ने अपनी सेना समेत बलखानि

योगसिंहो गजैः सार्द्धं बलखानिं समाहृयत् । भोगसिंहो हयैः सार्द्धं कृष्णांशं च समाहृयत् ॥५७
विजयो नृपपुत्रश्च सर्वभूपतिभिः सह । देवसिंहस्तथा म्लेच्छै रूपणं च समाहृयत् ॥५८
तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोस्तद्व दत्तणन् । निर्भयाश्चैव ते शूराः पार्वतीयाः समन्ततः ॥

जघ्नुस्ते शत्रवीं सेनां द्विलक्षां वीरपालिताम् ॥५९

प्रभग्रं स्वबलं दृष्ट्वा चत्वारो मदमत्काः । दिव्यान्धन्समारूप्य चक्षुः शत्रोर्महावधम् ॥
पुनरुज्जीवितं सर्वं दक्षकामृतरवाद्वलम् ॥६०

युद्धाय सम्मुखं प्राप्य भृगुश्चेष्ठ पुनः पुनः । अहोरात्रं राजश्चासीतेषां तत्रैव वारणः ॥६१

एवं सप्ताहिं सञ्जाते युद्धे भीरभयङ्कूरे । उपार्थैहुभिर्वाराद्वक्षुश्चैव रजं बहुग् ॥६२

पुनस्ते जीवमापन्ना जघ्नुस्तान्निरपुसैन्यपात् । तालनाद्यास्तु ते शूरां दुखितास्तत्र चाभवन् ॥

निराशां विजये प्राप्य कृष्णांशं शरणं यतुः ॥६३

तानाश्चास्य स कृष्णांशस्तत्र दिव्यहये स्थितः । न भोगर्णेण बलवान्स्वर्णवत्यन्तिकं यथौ ॥६४

हस्योपरि स्थितां देवीं सर्वशोभासमन्विताम् । नत्वोवाच वचः इलक्षणं किञ्च्चरोहमिहोदयः ॥

शरण्यां त्वामुपागच्छं कामाक्षीमिव भामिनि ॥६५

वृत्तात्तं कथयामास यथासीच्च महारणः । श्रमेण कर्शिता वीरा निराशां जीवनेऽगमन् ॥६६

साहं चोदयसिंहं त्वं कामाक्ष्या मन्दिरं व्रज । अहं च स्वालिभिः सार्द्धं नवम्यां पूजने रता ॥६७

(मलखान) को, अश्व सेनाध्यक्ष भोगसिंह ने उदय तिंह को तथा राजपुत्र विनयकुमार ने राजाओं समेत उस रणस्थल में देवसिंह, तालन एवं रूपण को युद्ध के लिए ललकारा । दोनों के वीरभट्ट सैनिकों ने एक दूसरे पर भीषण आघात-प्रतिघात करते हुए उस युद्ध को अत्यन्त भयानक बना दिया । पर्वतीय शूरों ने चारों ओर से घेरकर शत्रु की दो लाख सेनाओं का हनन कर दिया । उस समय अपनी सेना का विनाश होते उन चारों मत्तोन्मत्त वीरों ने अपने दिव्य अश्व वाहनों पर बैठकर शत्रुदल का महान् वध करना आरम्भ किया । किन्तु शत्रु के सैनिक वीर डमरु के ध्वनि रूप अमृतपान करने से शीघ्र जीवित हो जाते थे और बार-बार युद्धार्थ सम्मुख पहुँच जाते थे । भृगुश्चेष्ठ ! इस प्रकार बार-बार उनके जीवित होने के नाते वह युद्ध दिन-रात में समान रूप से चलते हुए सात दिन में भीषणाकार हो गया । उसमें वीरों ने अपनी अनेक भाँति की रण कुशलता प्रकट की, किन्तु शत्रुसैनिक पुनः जीवित होकर इनकी सेनाओं का बध करने लगे । इसे देखकर तालन आदि शूर वीरों ने अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए विजय के लिए सर्वथा निराश होकर उदयसिंह के पास पहुँचकर प्रार्थना की । ५७-६३ । उन्होंने उन्हें धैर्य प्रदानकर अपने दिव्य वाहन पर बैठकर आकाश मार्ग से राजकुमारी स्वर्णवती (सोना) के महल में पहुँचकर उसे देखा, जो समस्त सौन्दर्य से अलंकृत होकर अपने प्रासाद पर देवी की भाँति स्थित थी । नमस्कारपूर्वक स्निग्ध वाणी द्वारा उससे कहा—मैं आपका सेवक उदय सिंह हूँ, भामिनि ! कामाक्षी देवी की भाँति आपकी शरण में मैं उपस्थित हुआ हूँ । पश्चात् उस युद्ध के समस्त वृत्तात्त कों उससे निवेदन किया । और यह भी कहा कि—हमारे सैनिक वीर अत्यन्त क्लान्त होने के नाते विजय से निराश हो गये हैं । उसने कहा—उदयसिंह ! इस समय तुम कामाक्षी देवी के मन्दिर में चलो । मैं अपनी सखियों समेत नवमी के दिन देवी के

ढक्कामृतस्य बादेन पूजये सर्वकामदाम् । इति श्रुत्वा स बलवान्स्वसैन्यं प्रति चागमत् ॥६८
अर्धशेषां रणात्तेनां पराजाप्य च दुद्वुः । पटृनाल्यपुरे प्राप्ता जयं प्राप्य महाबलाः ॥६९
पराजिते रिषौ लस्मिन्नेत्रसिंहसुतैः सह । गृहमागत्य बलवान्निव्येभ्यो गोधनं ददै ॥७०
नवम्यां पितरं प्राह देवी स्वर्णवती तदा । कामाक्षीसेवनेनाशु कुरु यागोत्सवं मम ॥

यत्प्रसादाच्च विजयी दुर्जयेभ्योऽभवद्वान् ॥७१

इति श्रुत्वा पिता प्राह स्वप्नो दृष्टस्तथा मया । पूजनान्तर्भूलं राजां नो चेद्विघ्नो हि शोभने ॥७२

पित्रोत्तेजं निशायां तु सा भुता पितुराजया । ढक्कामृतं च नारीभ्यो गृहीत्वा त्वरितो ययौ ॥७३

कृष्णांशो माल्यकारस्य वधूर्भूत्वा समागतः । ढक्कामृतं च नारीभ्यो गृहीत्वा त्वरितो ययौ ॥७४

एतस्मिन्नन्तरे वीरा: षष्ठिर्वाहनसंयुताः । ढक्कामृतं प्रयुः शीघ्रं सर्वशस्त्रैः समुद्यताः ॥७५

तानागतान्स बलवान्दृष्ट्वा खड्गं गृहीत्वान् । षष्ठ्यपञ्चाशतः शूराननयद्यमसादनम् ॥७६

कृष्णांशस्त्वरितो गत्वा रूपणो यत्र तिष्ठति । ढक्कामृतं च सम्प्राप्य हयारुद्दो ययौ सभाम् ॥७७

हृते ढक्कामृते दिव्ये नेत्रसिंहो भयातुरः । ऐन्द्र यज्ञं तथा कृत्वा हवनत्य परोऽभवत् ॥७८

प्रभाते समनुप्राप्ते ते वीरा: स्वबलैः सह । तस्मा प्रयुः सर्वे गजोष्ट्वह्यसंस्थिताः ॥

दिनान्ते प्राप्तवन्तश्च यत्राभूत्स महारणः ॥७९

कृष्णांशः पूजयित्वा तं दध्मौ ढक्कामृतं बली । तच्छब्देन भूता वीरा: पुनरुज्जीवितास्तदा ॥८०

पूजनार्थं वहाँ आऊँगी । ६४-६७। किसी स्त्री (दासी) के हाथ में वह डमरू बाद्य भी रहेगा । उससे उसका अपहरण कर लेना । इतना सुनकर वह बलवान् आनी सेना में चला आया । पश्चात् अपनी बंधी हुई आधी सेना समेत रण का त्यागकर पटना नगर में आकर रहने लगा । ६८-७३। शत्रु के पराजित होने पर नेत्र सिंह ने अपने पुत्रों समेत घर आकर ब्राह्मणों को गो धनादि का दान दिया । पश्चात् नवमी के दिन राजकुमारी स्वर्णवती (सोना) ने अपने पिता से कहा—कामाक्षी देवी की आराधना के लिए मैं वहाँ जाना चाहती हूँ, अतः आप उस मेरे यज्ञोत्सव की तैयारी शीघ्र करा दें, क्योंकि उसी के प्रसाद से आपने अजेय शत्रुओं पर विजय प्राप्त की है । इसे सुनकर पिता ने कहा—मैंने भी इसी भाँति का स्वप्न आज देखा है—उनके पूजन से ही राजाओं का कल्याण होता है, अन्यथा शोभने ! विघ्न का महान् भय होता है । पिता की ऐसी बात सुनकर उसने पिता की आज्ञा प्राप्तकर डमरू बजवाती हुई कामाक्षी देवी के मन्दिर में प्रवेश किया । उस समय उदयसिंह वहाँ के माली की पुत्र-बहू (पतोहू) बनकर उपस्थित थे, वे स्त्री के हाथ से उस डमरू को छीनकर वहाँ से भाग निकले । उसी बीच साठ सैनिक वीरों ने वाहन पर बैठे हुए अस्त्रों से सुसज्जित होकर उस डमरू के निमित्त उदयसिंह के पीछे अनुगमन किया । उन सबल सैनिकों को देखकर उन दोनों वीरों ने उन साठ सैनिकों को यमपुरी भेज दिया । पश्चात् उदयसिंह रूपन को साथ लेकर अपने शिविर में पहुँच गये । उस अमृत रूपी डमरू के अपहरण हो जाने पर भयभीत होकर नेत्रसिंह ने पुनः ‘ऐन्द्र’ यज्ञ के समारम्भ की तैयारी के लिए आदेश प्रदान किया । प्रातःकाल होने पर अपने-अपने हाथी, घोड़े एवं ऊँटों आदि वाहनों पर बैठकर वेग से चलते हुए सायकाल तक उस स्थान पर वे वीरगण पहुँच गये जहाँ वह धोर युद्ध नेत्र सिंह के साथ आरम्भ हुआ था । उदयसिंह ने पूजनपूर्वक उस डमरू की ध्वनि की जिससे उसकी अमृत ध्वनि सुनकर उनके भूतक सैनिकों ने पुनः जीवन प्राप्त किया । ७४-८०। पुनः वे

सप्तलक्षबलं तस्य पुनः प्राप्तं मदातुरम् । रुरोथ नगरीं सर्वां दध्मौ बाद्यान्धगेकशः ॥८१
 रुद्धे तु नगरे तस्मिन्नेत्रसिंहो भयातुरः । स्वात्मानमर्घयामास वह्नौ शङ्खाय धीमते ॥८२
 तदा प्रसन्नो भगवानुवाच नृपतिं प्रति । रामांशोऽयं च कृष्णांशो भुवि जातौ कलैकथा ॥८३
 तस्मै योग्याय सा कन्या रामांशाय यशस्विने । योगिनीरं स्वर्णवती रेवत्यंशादतारिणी ॥८४
 इत्युक्त्वा च स्वयं देवो ढक्कामृतमुभाप्रियम् । हृत्वा वह्नौ सम्भाक्षिष्य दुर्गयै संन्यदेष्यत् ॥८५
 गते तस्मिन्नुरपतौ स राजा ब्राह्मणः सह । महीपतिं प्रति यवौ मेलनाथैं समुद्यतः ॥८६
 तथागतं नृपं दृष्ट्वा कृष्णांशश्च महोपतिः । आह्लादभातुलः प्राह भ्रान्यः सर्वबलैः सदा ॥८७
 राजन्नयं स बलवानाह्लादः सानुजैः सह । मत्यइक्तौ न स्थितो वीरः कुले हीनत्वमागतः ॥८८
 आद्यभीरो स्मृता तेषां किं त्वया विदितं न हि । यदि देया त्वया कन्या तर्हि त्वं हीनतां च च ॥८९
 अतस्त्वं वचनं चेदं कुलयोग्यं शृणुष्व भोः । चातुरो बालकान्नीचांस्तालनेन समन्वितान् ॥९०
 वच्चयित्वा विवाहार्थे शिरांस्येषां समाहर । माडपत्ने मखं कृत्वा चामुण्डायै समर्पय ॥९१
 त्वत्कन्या समाहृता वीरा वै रेवतोऽहं सा । पश्चात्कन्यां स्वयं हृत्वा कुलकल्याणमावर्ह ॥९२
 नो चेद्भवान्क्षयं यायात्सकुलो जम्बुको यथा । इत्युक्त्वा स ययौ सार्द्धं यत्राह्लादस्य दान्धवः ॥९३

अपने साथ मदोन्मत्त सैनिकों द्वारा चारों ओर से उस नगरी को घेरकर अनेक भाँति के वादों की ध्वनि कराने लगे । उस ध्वनि के साथ अपने नगरी को अवरुद्ध होना सुनकर भयभीत होते हुए नेत्रसिंह उस यज्ञ के अग्निकुण्ड में इन्द्र के प्रसन्नार्थ अपने को अर्पित कर दिया । उससे प्रसन्न होकर भगवान् इन्द्र ने राजा से कहा—आह्लाद (आल्हा) और उदय सिंह के रूप में राम और कृष्ण अपनी एक कला द्वारा इस भूतल में अन्तरित हुए हैं, इसलिए उस यशस्वी रामांश आह्लाद (आल्हा) के योग्य आपकी कन्या है । क्योंकि वह कन्या भी योगिनी और रेवती के अंश से उत्पन्न है । इतना कहकर स्वयं देवराज ने पार्वतीप्रिय डमरु का अपहरण करके उसे उसी अग्निकुण्ड में प्रक्षिप्त कर श्री दुर्गाजी से निवेदन करते हुए अपने लोक को प्रस्थान किया । सुरपति इन्द्र के चले जाने पर उस (उदयसिंह) से संधि करने की इच्छा से नेत्रसिंह ने उर्वी (उरई) निवासी महीपति (माहिल) के यहाँ प्रस्थान किया । राजा को देखकर आथिथ्य सेवा के उपरान्त आह्लाद (आल्हा) के मामा ने उनसे कहा—‘राजन् ! यद्यपि यह आह्लाद (आल्हा) अपने भाइयों के नाते अत्यन्त बलवान् है, तथापि हीन कुल में उत्पन्न होने के कारण मेरी पंक्ति (समाज) में इनका प्रवेश नहीं हो पाया है । ८१-८८। क्योंकि ऐसा सुना भी गया है कि इनकी ‘पूर्वजा’ जाति की अहीरिनि थी । क्या यह तुम्हें विदित नहीं है ! यदि इन्हें अपनी कन्या प्रदान करोगे तो तुम्हें भी समाज से बहिष्ठत होना पड़ेगा ।’ अतः अपने कुल के योग्य मेरी इस बात को सुनो ! तालन समत चौथे पुत्र (उदयसिंह) को कहीं किसी प्रवंचना द्वारा वंचित कर उस विवाह में उनके शिर काट लो और उसे मण्डप के अन्त में चामुण्डादेवी को अर्पित कर दो तथा तुम्हारी कन्या के आह्लान करने पर ही ये वीरगण आये हुए हैं । अतः इसके परचात् अपने हाथ से उस रेवती कन्या का भी शिरश्छिदन करना तुम्हें आवश्यक होगा, क्योंकि इसी में तुम्हारे कुल का कल्याण दिखाई दे रहा है । ८९-९२। अन्यथा राजा जम्बूक की भाँति आप भी सकुटुम्ब नष्ट हो जायेंगे । सुयोधन के अंश से उत्पन्न उस महीपति (माहिल) की बातों को स्वीकार

इति श्रुत्वा स शत्यांशः सुयोधनमुखेरितम् । तथेत्युक्त्वोत्सवं कृत्वा मण्डपान्ते विधानतः ॥
 आह्लादस्य समीपं स गत्वैतद्वच्चनाय हि । तमाह दण्डवत्पादौ गृहीत्वा नृपतिस्त्वयम् ॥९४
 भवन्तेऽशावताराश्र मया ज्ञाताः सुरोन्नत्मात् । निरस्त्रान्पञ्च युष्मांश्र पूजयित्वा यथाविधि ॥
 रामांशाय स्वकन्यां च दास्यामि कुलरीतिः ॥९५
 इत्याह्लादं समादिश्य स नृपश्छलमाश्रितः । इत्योत्सवे यथौ गेहं तद्वधाय सनुद्यतः ॥९६
 सहस्रं मण्डपे भूपान्संस्थाप्य स्वबलैः सह । तालनायांश्र षट् शूरान्मण्डपान्ते समाहृयत् ॥९७
 विवाहप्रयमावर्ते योगसंहोसिसुत्तमम् । वरमाहत्य शिरसि जग्द बलयानुषा ॥९८
 तमाह तालनो थीमान्नयोग्यं भवता कृतम् । श्रुत्वाह नेत्रसिंहस्तं कुलरीतिरियं बलिन् ॥
 निरायुधैः परैः सार्द्धं शस्त्रिणां सङ्घरो हि नः ॥९९
 इति श्रुत्वा योगसिंहं कृष्णांशस्तं समारुद्धत् । भोगसिंहं तथाकृष्य बलखानिर्गृहीतवान् ॥१००
 विजयं तृतीयावर्ते सुखखानिन्यरुद्ध वै । न्तुर्थवर्तके शत्रुं नृपं पूर्णबलं शठम् ॥
 रूपणस्तं गृहीत्वाशु युयुधे तद्वलैः सह ॥१०१
 पञ्चमे बहुराजानं तालनश्च समारुद्धत् । षष्ठावर्ते नेत्रसिंहं तथाह्लादो गृहीतवान् ॥१०२
 सम्प्राप्ते तुमुले युद्धे बहुशूरा: क्षयं गताः । निरायुधाः षट् बलिनः संक्षम्य व्रणमुत्तमम् ॥

करके शत्यांश से उत्पन्न नेत्रसिंह ने उनसे कहा—मण्डप के अन्त में आपके समेत उन पाँचों व्यक्तियों को निरस्त्र वहाँ बुलाकर उस रात्रि में तक्का पूजन करूँगा पश्चात् रामांश आह्लाद (आल्हा) को अपनी पुत्री प्रदान करूँगा । इतना कहकर वह आह्लाद के यहाँ गया जहाँ वे अपने बधुओं आदि के साथ रह रहे थे । उनके चरण का साप्ताङ्ग दण्डवत् करके राजा ने उनसे कहा—आप लोग देवथ्रेष्ठ के अंश से उत्पन्न हुए हैं, यह मुझे भी विदित हुआ है (अतः मैं आपकी बात अङ्गीकार कर रहा हूँ) इतना कहकर अपने घर चले आये और दुर्गाजी के महोत्सव में उन लोगों के वध करने की तैयारी करने लगे—अपनी सेना समेत एक सहस्र राजाओं को मण्डप के भीतर गुप्त रखकर पश्चात् तालन आदि उन छः शूरवीरों को विवाहार्थ उस मंडप में निमंत्रित किया । १३-१७। वहाँ पहुँचने पर विवाह कार्य आरम्भ हुआ, उसकी पहली भाँवर में योगसिंह ने अपनी उस उत्तम तलवार से आह्लाद (आल्हा) के शिर पर आधात करके रोपपूर्ण गर्जना की । उसे देखकर तालन ने उनसे कहा—आपने महान् अनुचित कार्य किया है । उसे सुनकर नेत्रसिंह ने कहा—बलिन् ! यह मेरे कुल की रीति है अस्त्रहीन शत्रुओं से सशस्त्र हम लोग घोर युद्ध करते हैं । इसे सुनकर उदयसिंह ने योगसिंह को रोक लिया और भोगसिंह को बलखानि (मलखान) ने पकड़ लिया । ८-१००। तीसरी भाँवर में प्रहार करने वाले विजय को सुखखानि ने रोक लिया, चौथी भाँवर में पूर्णबल नामक शठ राजा को रूपन ने पकड़कर उससे घोर युद्ध किया । पाँचवें भाँवर में बहु राजा को तालन ने रोका और छठे भाँवर में आह्लाद (आल्हा) ने स्वयं नेत्रसिंह को पकड़ लिया । उस घोर युद्ध में अनेक शूरवीर आहत हुए । ये छहों व्यक्ति निरायुध रहने पर भी अपने-अपने शत्रुको अस्त्रहीन कर देते

निरायुधानिरपून्त्वान्स्वांश्चक्षुः शक्तिप्रपूजकाः

॥१०३

एतस्मिन्नतरे देवः कालदर्शीं समागतः । नभोमर्गेण तानश्चांस्तेभ्य आगत्य सन्ददौ ॥१०४
बिन्दुलं चैव कृष्णांशो देवस्तत्र मनोरथम् । रूपणश्च करालाश्च चःह्लादस्यु पपीहकम् ॥१०५
हरिणीं बलखानिश्च तद्भ्राता हरिनागदम् । सिंहर्णीं तालनः शूरः समाख्य रणोद्यतः ॥१०६
रात्रैः तन्तृपतेः सेनां हत्वा बद्धवा च तत्पतिम् । दोलां गेहाच्च निष्काश्य सप्तभ्रमरक्षारिताम् ॥१०७
स्वसैन्यं ते समाजगमुर्निर्भया बलवत्तराः । तान्सर्वान्नेत्रित्तिंहादीन्दृष्ट्यत् । पाहीति जल्पितः ॥१०८
निगडैरेकतः कृत्वा पञ्च भूपान् हि वञ्चकान् । कारागारे महाभासरे तत्र तान्संन्यदारयन् ॥१०९
नेत्रसिंहो वरो भ्राता सुन्दरारण्यभूमिपः । हेतुं ज्ञात्वा यदो शीघ्रं मायादी लक्षसैन्यकः ॥११०
तत्रागत्य हरानन्दो नाम्नः तानयुधद्वली । नेत्रसिंहस्य सैन्यं च चतुर्लक्षं तदागमत् ॥१११
पञ्चलक्षै रणो घोरः सप्तलक्ष्युतैरभूत् । पञ्चाहोरात्रमात्रं च तयोश्चासीत्स संकुलः ॥

अर्द्धसैन्यं रिपोस्तत्र हतशेषमदुद्वत्

॥११२

विस्मितः स हरानन्दो श्वसमायाविशारदः । बलाधिक्ययुताञ्जात्वा शिवध्यानपरोऽभवत् ॥११३
रचित्वा शाबरीं मायां नानारूपविधारिणीम् । पाषाणभूतान्सकलाङ्कत्वा भूपान्समाययौ ॥११४
समुत्तं भ्रातरं ज्येष्ठं नृपं पूर्णबलं ततः । मोचयित्वा यदौ गैहं कृतकृत्यो महाबली ॥११५
आह्लादं निगडैर्बद्धवा मायया जडतां गतम् । नेत्रसिंहः स बलवान्ययौ स्वं दुर्गमुद्यतः ॥

थे । उसी बीच काल-तत्त्व के ज्ञाता देवसिंह ने आकाश मार्ग से आकर उनके वाहनों को उन्हें प्रदान किया । पश्चात् विन्दुल (वेंदुल) पर उदयसिंह, मनोरथ (मनोहर) पर देवसिंह, कराल (करील) पर रूपन, पपीहा पर आह्लाद (आल्हा), हरिणी पर बलखानि (मलखान), हरिनागर पर सुखखानि, और सिंहर्णी पर तालन सवार होकर रण के लिए तैयार हो गये । १०१-१०६। उस रात्रि में उन्होंने राजा की सेना का विघ्वास करके उनके अध्यक्ष (सेनानायक) को बाँध लिया । पुनः डोला को घर से बाहर ले जाकर सहर्ष सातों भाँवर की समाप्ति की । पश्चात् वे वीर अपने सेनाओं के बीच शिविर में पहुँच गये । वहाँ पहुँचने पर त्राहि-त्राहि करने वाले नेत्रसिंह आदि को देखकर हथकड़ी-बेड़ी से आबद्धकर उन वंचकों को घोर कारागर में डाल दिया । तदुपरान्त नेत्रसिंह के छोटे भाई हरानन्द ने जो सुन्दर नामक जंगल का राजा था, अपने भाई की दशा सुनकर एक लाख सेना समेत वहाँ आकर युद्धारम्भ कर दिया उसी बीच नेत्रसिंह की भी चार लाख सेना आ गई । यह पाँच लाख सेना शत्रु के सात लाख की सेना से युद्ध करने लगी । उस तुमुल संग्राम में शत्रु की आधी सेना समाप्त हो गई और शेष सैनिक भागने लगे । उसे देखकर हरानन्द को महान् आशर्चय हुआ । पश्चात् उस मायावी ने, जो रुद्र की माया में अत्यन्त निपुण था, शत्रु को सबल देखकर शिव का ध्यान करना आरम्भ किया । अनन्तर भाँति-भाँति के रूप धारण करने वाली उस शाबरी माया द्वारा सेना समेत शत्रुओं को पाषाण-शिला बनाकर पुत्र समेत बड़े भाई और पूर्णबल को मुक्त कराकर वह अपने घर चला गया । १०७-११५। जाते समय नेत्रसिंह ने माया द्वारा अचेतन आह्लाद (आल्हा) को हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर साथ लेकर अपने दुर्ग को प्रस्थान किया । घर पहुँचने पर अपने भाई की

तं प्रशंस्यानुजं वीरो विमेभ्यश्च ददौ धनम् ॥११६
 तदा स्वर्णवती दीना ददुं ज्ञात्वा पति निजस् । कृष्णांशाद्यान्मोहितांश्च शम्भुमायावशः नुगान् ॥११७
 रुरोदोच्चैस्तदा देवों अथान्ती कामरूपिणीम् । तदा तुष्टा जगद्वात्री मूर्च्छितांस्तानबोधयत् ॥११८
 ते सर्वे चेतनां प्राप्ताः प्राहुः स्वर्णवतीं मुदा । क्वास्थितो बन्धुराह्लादो देवि त्वं कारणं दद ॥११९
 यथा बद्धः स्वयं स्वामी कथ्यामास सा तया । अहं शुक्ली भवाम्यद्य भवान्विदुलसम्भितः ॥१२०
 इत्युक्त्वा सा शुक्ली भूत्वा कृष्णांशेन समन्विता । यत्रास्ते तत्परिर्दुस्तत्र सा कामिनी ययौ ॥१२१
 कृष्णांशोऽपि हयः रुदो न भोस्तर्गेन चाप्तवान् । अभीरों मूर्तिमात्ताद्य स्वामिनं प्रति सा ययौ ॥१२२
 आश्वास्य तं यथायोर्यं कृष्णांशं प्रत्यवर्णयत् । कृष्णांशस्तत्र बलवान्हत्वा दुर्गनिधासिनः ॥१२३
 रक्षकाच्छतसाहृस्तान्हत्वा भ्रातरसायदौ । पौर्णिमां सधुयुक्तं च ज्ञात्वा सर्वे त्वग्नन्विताः ॥१२४
 अयोध्यां शीघ्रमागम्य ज्ञात्वा वै सरयू^१ नदीम् । होलिकादाहसमये शीघ्रं देण्यां समागता ॥१२५
 स्नानध्यानादिका निष्ठाः कृत्वा गेहमुपाययुः । सान्गरस्य तटं प्राप्य कृत्वा ते च महोत्सदम् ॥

प्रशंसापूर्वक ब्राह्मणों को दान प्रदान किया । उस समय स्वर्णवती (सोना) ने अपने पति को बैंधा हुआ और उनके बंधुवर्ग एवं सैनिकों को शम्भु की माया से मोहित (अचेतन) देखकर अधीर होकर रुदन किया । पश्चात् कामरूपिणी देवी को ध्यानपूर्वक प्रसन्न करने लगी, प्रसन्न होकर जगज्जननी ने उन मूर्च्छितों को चेतना प्रदान की । ज्ञान होने पर उन लोगों ने स्वर्णवती (सोना) से पूँछा—देवि ! भाई आह्लाद (आल्हा) कहाँ हैं, उसका कारण यहीं ब्रत बताइये । जिस प्रकार उसके स्वामी आबद्ध होकर गये थे, उसने सब कुछ सविस्तृत कह सुनाया और उदयसिंह से यह भी कहा कि—मैं तोते का रूप धारणकर तुम्हारे साथ चल रही हूँ, तुम घोड़े पर बैठो । इतना कहकर वह तोते का रूप धारण कर उदयसिंह के साथ वहाँ गई, जहाँ उसके स्वामी बैंधे हुए कारागार में पड़े थे । उदयसिंह भी आकाशमार्ग से वहाँ पहुँच गये । स्वर्णवती (सोना) ने अहीरिनि का रूप धारणकर अपने पति के पास पहुँचकर उन्हें आश्वासन प्रदान किया । पुनः उदयसिंह से वहाँ का सभी मार्मिक भेद वर्णन किया । बलवान् उदयसिंह ने समस्त दुर्ग रक्षकों का जो सहन की संख्या में वहाँ सदैव रह रहे थे, हनन करके अपने भाई को साथ ले उसी चैत्र की पूर्णिमा के दिन अयोध्या के लिए प्रस्थान किया । स्वर्णवती ने प्रसन्न होकर वहाँ अत्यन्त स्नान-दर्शन किया । पश्चात् होली के अवसर पर वे सब वेणी तट पर पहुँचे । ११६-१२५। वहाँ स्नान-ध्यान करके अपने घर पहुँच गये । कुछ दिन के उपरान्त सागर के टट पर जाकर एक विशाल महोत्सव का आयोजन किया, उसे सुसम्पन्न करने के उपरान्त चैत्रकृष्ण पञ्चमी के दिन पुनः अपने घर आकर सानन्द रहने लगे । ऊँट (गाडियों) पर चलने वाले भंडेश वाहक द्रुतगण फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी के दिन ही अपने घर पहुँच गये थे । उस समय मलना तथा राजा परिमल के आनन्द की सीमा नहीं रही, घर-घर महोत्सव मनाकर

चैत्रस्य कृष्णपञ्चम्यां स्वगेहं पुनराययुः ॥१२६
 दूता उष्ट्रसमारूढास्तत्क्षेमकरणोत्सुकाः । वैशाखे शुक्लपञ्चम्यां स्वगेहं पुनराययुः ॥१२७
 मलना भूपतिश्वैव गेहे गेहे महोत्सवम् । कारदित्वा विधानेन ब्राह्मणेभ्यो ददौ धनम् ॥१२८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयप्रदर्शनम्

सूत उवाच

चतुर्दशाब्दे कृष्णांशे यथा जातं तथा शृणु । जयन्तः शक्रपुत्रश्च जानकीशापमोहितः ॥
 कलौ जन्मत्वमापन्नः स्वर्णवत्युदरेऽवसत् ॥१
 चैत्रशुक्लनवम्यां च मध्याह्ने गुरुवासरे । स जातश्वन्द्रददनो राजलक्षणलक्षितः ॥२
 जाते तत्मिन्सुतश्चेष्ठे देवाः सर्षिगणास्तदा । इन्दुलोऽयं महीं जातो जयन्तो वासवात्मजः ॥
 इत्यूचुर्वचनं तस्मादिन्दुलो नाम चाभवत् ॥३
 आह्लादो जातकर्मादीन्कारयित्वा शिशोर्मुदा । ब्राह्मणेभ्यो ददौ स्वर्णधेनुवृन्दं हयानगजान् ॥४
 इन्दुले तनये जाते द्विमासान्ते महीतले । योगसिंहस्तदागत्य स्वर्णवत्यै ददौ धनम् ॥५
 नेत्रसिंहसुतं दृष्ट्वा मलना स्नेहसंयुता । पप्रच्छ, कुशलप्रश्नं भोजयित्वा विधानतः ॥६

उन्होंने ब्राह्मणों को अधिकाधिक दान प्रदान किया । १२६-१२८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय दर्शन
 नामक तेरहाँ अध्याय समाप्त । १३।

अध्याय १४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदयसिंह की चौदह वर्ष की अवस्था में जो कुछ हुआ है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! इन्द्र-पुत्र जयन्त ने जानकी जी के शाप द्वारा कलि में जन्म ग्रहण करने के निमित्त रानी स्वर्णवती (सोना) के गर्भ में निवास किया । चैत्र शुक्ल नवमी में वृहस्पति के मध्याह्न समय उसने राजकुमार के रूप में जन्म ग्रहण किया, जिसका मुख चन्द्रमा की भाँति सीन्दर्यपूर्ण एवं वह स्वयं राजलक्षणों से सम्पन्न था । उस उत्तम बालक के जन्मग्रहण करने पर कृष्णियों समेत देवों ने कहा—‘यह वासवपुत्र जयन्त इन्दुल होकर भूतल में जन्म ग्रहण किया है’। इसीलिए उस कुमार का ‘इन्दुल’ नामकरण हुआ । उस समय प्रसन्नतापूर्ण आह्लाद (आल्हा) ने उस कुमार का जातकर्म संस्कार सुसम्पन्न कराने के उपरान्त ब्राह्मणों को सुवर्ण, धेनु एवं अनेक हाथी-घोड़े दान रूप में समर्पित किया । इन्दुल के पृथ्वीतल पर जन्म ग्रहण करने के दो मास पश्चात् योगसिंह ने वहाँ जाकर स्वर्णवती (सोना) को अत्यधिक धन प्रदान किया । उस समय रानी मलना ने नेत्रसिंह के पुत्र योगसिंह को देखकर स्नेह-विभोर होने के नाते अत्यन्त गद्गद कंठ से उनसे कुशल प्रश्न पूछा, पश्चात् सविधान भोजन कराने के अनन्तर उनके महल में जहाँ वे ठहराये गये थे,

शतवृन्दाश्र नर्तक्यो नानारोगेण संयुताः । तत्रागत्यैव ननृतुर्वत्र भूषमुतः स्थितः ॥७
 सप्तरात्रमुषित्वा स योगसिंहो यथौ गृहम् । षण्मासे च सुते जाते देवेन्द्रः स्नेहकातरः ॥८
 पुत्रस्तेहेन तं पुत्रं स जहार स्वमायया । संहृत्य बालकं श्रेष्ठमिन्द्राण्यै च समर्पयत् ॥९
 स्नेहप्लुता शची देवी स्वस्तनौ तमपाययत् । इव्या दुर्गं स वै पीत्वा षोडशाब्दसमोऽभवत् ॥१०
 इन्दुं पीयूजभवनं गृह्णाति वपुषा स्वयम् । अतः स इन्दुलो नाम जयन्तश्च प्रकरीतिः ॥
 स बालः स्वपितुर्विद्यां पठित्वा श्रेष्ठतामगात् ॥११
 विनष्टे बालके तस्मिन्देवी स्वर्णवती तदा । ररोदेच्छैस्तदा दीना हा युत्र कद गतोऽसि भांः ॥१२
 ज्ञात्वा ह्लादं तथा भूतं दशप्रमे तथाविधे । रौद्रः केनाहलो जातो रुदतां च नृणां मुने ॥१३
 आह्लादः स्वकुलैः सार्द्धं निराहारो यतेन्द्रियः । शारदां शरणं प्राप्तास्त्रिरात्रं हत्र चावस्त् ॥१४
 तदा तुष्टा स्वयं देवी वागुवाचाचाशरीरिणी । हे पुत्र स्वकुलैः सार्द्धं मा शुचस्त्वं सुतं प्रति ॥१५
 इन्द्रपुत्रो जयन्तश्च स्वर्गलोकमुपागतः । दिव्यविद्यां पठित्वा स त्रिवर्षाति^१ गमिष्यति ॥१६
 यायत्त्वं भूतलेऽवात्सीस्तावत्स^२ भूतले वसेत् । तत्पश्चात्स्वर्गंति प्राप्य लग्नतो हि भविष्यति ॥१७

सैकड़ों नर्तकियाँ अपने भाँति-भाँति के राग एवं कला-कुशलता द्वारा उन्हें प्रसन्न करने लगीं । इस प्रकार आनन्द-सागर में सात रात्रि रुकने के उपरान्त वे अपने घर गये । उस कुमार की छह मास की अवस्था तक अपने दिनों को व्यतीत करने में इन्द्र अधीर हो गये, उनसे न रहा गया, अन्ततोगत्वा पुत्रस्नेहवश उन्होंने अपनी माया द्वारा उस अपने पुत्र का अपहरण कर लिया । उस श्रेष्ठ बालक का अपहरण करके उसे अपनी इन्द्राणी (स्त्री) को सौंप दिया । १-१। स्नेह-कातर होकर शचीदेवी ने उसे श्रीघ अपने स्तनों का पान कराया । देवी का दुग्धपान करने से वह कुमार सोलहवर्ष की अवस्था बालों के समान दिखाई देने लगा । उसने अमृत राशि चन्द्रमा की समानता अपने असाधारण शरीर द्वारा प्राप्त की । इसलिए जयन्त को इन्दुल कहा गया है । उसने अपने पिता की विद्या का अध्ययन करके श्रेष्ठता प्राप्त की थी । १०-१। बालक के अपहृत होने पर उसे कहीं न देखकर स्वर्णवती (सोना) दीन-हीन होकर 'हा पुत्र', तुम कहाँ चले गये, इस प्रकार कहती हुई उच्च स्वर से रुदन करने लगी । इस समाचार को सुनकर आह्लाद (आल्हा) एवं उस 'दशग्राम' के निवासी गण हाय-हाय करने लगे । मुने ! इस प्रकार वहाँ जनता के क्रन्दन से कंरणा का सागर उमड़ आया । आह्लाद (आल्हा) ने अपने कुटुम्ब के साथ निराहार एवं संयमी रहकर भगवती शारदा की शरण में पहुँचकर तीन रात तक वहाँ निवास किया । उस समय प्रसन्न होकर देवी ने आकाशवाणी की—पुत्र ! तुम उस कुमार के विषय में कुटुम्ब समेत शोक क्षणों कर रहे हो, चिन्ता छोड़ दो ! वह इन्द्र का पुत्र जयन्त है, अतः अपने पिता के यहाँ स्वर्गलोक चला गया है । वहाँ दिव्य विद्या का अध्ययन करके तीन वर्ष पश्चात् आ जायगा और जब तक तुम इस भूतल पर निवास करोगे वह तुम्हारे साथ रहेगा । पश्चात् स्वर्ग पहुँचकर जयन्त के रूप में हो जायगा । १२-१७। देवी की इस बात को सुनकर वे

१. आगमिष्यतीत्यर्थः । २. वत्सीत्यर्थः ।

इत्युक्ते चचने देव्या निश्चोकास्ते तदाभवन् । दशग्रामपुरं प्राप्य समूषुर्ज्ञानितत्पराः ॥१८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्यये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

इन्दुले स्वर्गसम्प्राप्ते ते वीरा: शोककातराः । शारदां पूजयानासुः सर्वलोकनिवासिनीम् ॥१
 जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं त्रिसन्ध्यं प्रेमभक्तिः । ध्यानेनानन्दमापन्नास्तदा सप्तशतेऽहनि ॥२
 सामन्तद्विजपुत्रश्च चामुण्डो नाम विश्रुतः । सोऽष्टवर्षवया भूत्वा पूजयामास चण्डिकाम् ॥३
 द्वादशाब्दे ततो ज्ञाते त्रिचरित्रस्य पाठतः । परीक्षार्थं तु भक्तजनां साक्षात्मूर्तित्वमागता ॥४
 कुण्डिकेयं च भोः भक्ताः पूरयामि च तामहम् । यूयं तु मनसोपायैः कुरुध्वं पूरणे मतिम् ॥५
 सुखखानिस्तु बलवान्मधुपुष्पैस्तथा फलैः । कुण्डिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपागता ॥६
 बलखानिस्तथा मांसमूलशर्मा तु रक्तकैः ॥६
 देवकी च तदा हव्यैश्चन्दनादिभर्चनैः । कुण्डिकां पूरयामास न पूर्णत्वमुपागता ॥७

शोक-परित्यागपूर्वक अपने नगर 'दशग्राम' चले गये, वहाँ ज्ञानियों की भाँति दिन व्यतीत करने लगे ॥८

श्री भविष्यपुराण के प्रतिसर्ग चर्च में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४।

अध्याय १५ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय-वर्णन

सूत जी बोले—इन्दुल के स्वर्ग चले जाने पर वीरगणों ने शोक से दुःखी होकर समस्त लोकों में निवास करने वाली श्री शारदा देवी जी की पूजा की । प्रेम में मग्न होकर भक्तिपूर्वक वे लोग तीनों काल सप्तशती स्तोत्र का पाठ करते हुए ध्यान द्वारा आनन्द प्राप्त करने लगे । सामन्त ब्राह्मण का पुत्र, जिसे लोग चामुण्ड कहते हैं, आठ वर्ष की अवस्था से चण्डिका देवी की उपासना तीनों चरित्रों के पाठ द्वारा कर रहा था ॥१-३। उस समय उसकी बारह वर्ष की अवस्था आरम्भ थी । सातवें दिन भक्तजनों के परीक्षार्थ भगवती ने अपनी साक्षात् मूर्ति प्रकटकर उन लोगों से कहा—'भक्तवृन्द ! मैं इस अपने कुण्ड को पूर्ण करना चाहती हूँ, तुम लोग अपने मन से इसके पूर्ण होने का उपाय निश्चित कर इसे पूर्ण करो । इसे सुनकर बलवान् सुखखानि ने सर्वप्रथम धूप, पुष्प और फलों द्वारा उस कुण्ड की पूर्ति करना चाहा, किन्तु प्रयत्न करने पर असफल ही रहे—उसकी पूर्ति न कर सके । उसी भ्रंकार बलखानि (मलखान) ने मांस, मूल शर्मा ने रक्त-पुष्प और देवकी ने चन्दन-पुष्प से पूर्ण करने का प्रयत्न किया, किन्तु उसकी पूर्ति न हो

आह्लादश्रैद सर्वाङ्गैश्चयः शिरसा स्वयम् । कुण्डिकां पूर्यामास तदा पूर्णत्वमागता ॥८
 उषाच वचनं देवी स्वभक्तान्भक्तवत्सला । मुखाखाने भवान्वीरो भविष्यति सुरत्रियः ॥९
 बलखानिर्महावीरो दीर्घे काले च मृत्युभक्तः । मूलशर्मा तु बलवन्तरक्तबीजो भविष्यति ॥१०
 देवकी च भवेदेवी चिरकालं स्वलोकगा । आह्लादश्रैद कृष्णांशस्तदोर्मध्ये द्वयं वरम् ॥
 एकस्तु देववत्प्रोक्तो बलाधिक्यो द्वितीयकः ॥११
 निष्कामोऽयं देवसिंहो मृतो सोक्त्वमान्तुयात् । इत्युक्त्वान्तर्दधे माता ने सर्वे तृप्तिमागताः ॥१२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्पुण्यापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः । १५

अथ षोडशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

प्राप्ते सप्तदशाब्दे च कृष्णांशे तत्र चाभवत् । शृणु त्वं नुनिशार्दूल दृष्टं यद्योगदर्शनात् ॥१
 रत्नभानौ मृते राज्ञि मरुधन्वमहीपतिः । गजसेनस्तदा विप्र पृथ्वीराजभयान्तुरः ॥२
 आराध्य पावकं देवं यज्ञध्यानवतार्चनैः । द्वादशाब्दं समाचारः प्रेमभक्त्या ह्यतोषयत् ॥३

सकी । उस समय आह्लाद (आल्हा) ने अपने सर्वाङ्ग तथा उदयसिंह ने अपने शिर को समर्पित करके उस कुण्डिका की पूर्ति कर दी, इससे प्रसन्न होकर भक्त वत्सला भगवती ने भक्तों से कहा—‘वीर, सुखखाने ! तुम देव-प्रिय होगे, महादली बलखानि (मलखान) की मृत्यु दीर्घकाल में होगी बलवान् मूलशर्मा रक्तबीज होगे, देवकी देवी अपने लोक में चिरकाल से प्रवेश करेंगी, आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह के प्रति दो वरदान दे रही हूँ, एक देवता की भाँति रहेगा एवं दूसरे में बलाधिक्य होगा और निष्काम कर्म करने वाले देवसिंह मृत्यु के पश्चात् मुक्ति प्राप्त करेंगे ; इतना कहकर माताजी अन्तर्हित हो गई और वे (भक्तवृन्द) अत्यन्त प्रसन्नता से रहने लगे । ४-१२

श्रीभविष्यपुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय-वर्णन
नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त । १५।

अध्याय १६ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुनि शार्दूल ! उदयसिंह की सत्रहवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर योगबल से मैंने जो कुछ देखा है, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! विप्र ! राजा रत्नभानु के स्वर्गीय होने पर मरुधन्व देश के राजा गजसेन ने पृथ्वीराज से भयभीत होकर यज्ञ, ध्यानव्रत एवं अर्चना द्वारा अग्निदेव की आराधना

तदा प्रसन्नो भगवान्यावकीयं हयं शुभम् । ददौ तस्मै मुतौ चोभौ कन्यां च गजमुक्तिकाम् ॥४
 पावकास्ते हि चत्वारः समुद्भूता महीतले । अग्निवर्णा महावीराः सर्वलक्षणलक्षिताः ॥५
 अष्टादशादशब्दवयोभूताः सर्वे ते मुनिपुञ्जव । जातमात्रा देवसमाः सर्वविद्याविशारदाः ॥६
 अष्टादशादशब्दवयसा सा कन्या चरवर्णिनी । दुर्गायाश्र वरं प्राप्ता धर्माशस्त्वां वरिष्यति ॥७
 शार्दूलवंशी स नृपः कृतवान्वै स्वयंवरम् । नानादेश्या नृपाः प्राप्ताः सूताया रूपमोहिताः ॥८
 मार्गशीर्षे स्तिते पक्षे त्राष्ट्रम्यां चन्द्रवासरे । तस्याः स्वयंत्रश्रासीत्सानृपानन्त्रति चाययै ॥९
 विद्युद्वर्णं मुखं तत्याश्रज्ज्वलायास्तथागतम् । दृष्ट्वा मुमोहं धर्माश्रो बलखानिमेहीपतिः ॥१०
 सापि दृष्ट्वा च तं वीरं मुमोहं गजमुक्तिका । बुद्ध्वा तस्मै ददौ मालां वैजयन्तीं शुभाननाः ॥११
 तारकायाश्र भूपालाः सर्वशस्त्रास्त्रसंयुताः । रुधुः सर्वतो वीरं ते बलात्कन्यकार्थिनः ॥१२
 तथाविघ्ननृपान्दृष्ट्वा भूपान्पञ्चशतान्बली । स शीघ्रं खड्गमुत्सृज्य शतभूपापशिरांस्यहन् ॥१३
 सर्वतो वध्यमानं तं बलखानि स तारकः । तदभुजाभ्यां ददौ खड्गं ह तदञ्जे द्विधाधवत् ॥१४
 महीराजसुतो ज्येष्ठो दृष्ट्वा खड्गं तथा गतम् । अपोवाहु रणाञ्चूरस्तत्पश्चात्ते नृपा ययुः ॥१५
 पराजिते नृपबले बलखानिर्महाबलः । तां कन्यां शिविकारुदां स्वगेहं सोऽनयदृली ॥१६

की । १-३। प्रसन्न होकर भगवान् अग्निदेव ने एक सुन्दर अश्व, दो पुत्र और गजमुक्तिका (गज मोतिना) नाम की एक कन्या प्रदान की । पावकांश से उत्पन्न ये चारों अग्नि के समान वर्ण, स्वयं महाबली एवं सर्वलक्षणों से अलंकृत थे, इस धरातल पर जन्म ग्रहण किये । मुनिश्रेष्ठ ! अट्टारह वर्ष-की अवस्था में ये सभी देनों की भाँति सौन्दर्यपूर्ण तथा समस्त विद्याओं में निपुण हो गये । अट्टारह वर्ष की ही अवस्था में उस उत्तमाङ्गी कन्या को प्रसन्न होकर दुर्गाजी ने वर प्रदान किया था—वत्स पुत्र (मखलान) तुम्हारा पति होगा । बघेलवंशी राजा गजसेन ने अपनी कन्या के विवाहार्थ स्वयंवर किया, जिसमें उनकी कन्या के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर अनेक देश के राजवृन्दों का आगमन हुआ था । मार्गशीर्ष (अगहन) की शुक्लाष्टमी में चन्द्रवासर के दिन स्वयम्बर में आये हुए राजाओं के 'वरणार्थ वह कन्या आई, जो स्वयं चपल एवं उसका मुख विद्युत की भाँति कान्तपूर्ण था । राजा बलखानि (मलखान) तो उसे देखते ही मूर्च्छित हो गया और वह कुमारी गजमुक्तिका (गजमोतिका) भी उन्हें देखकर कामपीड़ित होने लगी । और उसी अवस्था में उस शुभ-वदना ने उनके गले में वैजयन्ती माला पहना कर दी । तारक आदि नृपगण, जो उस कन्या के वरणार्थ वहाँ उपस्थित थे, बलप्रयोग करते हुए चारों ओर से बलखानि (मलखान) को धेर लिये । उन पाँच सौ राजाओं को अपने ऊपर आक्रमण करते देखकर बलखानि (मलखान) ने शीघ्रता से हाथ में खड्ग लेकर सौ राजाओं के शिर काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया । तारक ने उस समय बलखानि (मलखान) को चारों ओर से धिरा देखकर अपने खड्ग से उनके हाथों पर आधात किया, परन्तु उनकी देह में वह खड्ग आधात करते ही दो टुकड़ा हो गया । पृथ्वीराज के ज्येष्ठ पुत्र (तारक) इसे देखकर तथा अश्व के अपहरण हो जाने पर उनके समेत सभी राजगण भाग निकले । राजाओं के पराजित हो जाने पर बलखानि (मलखान) ने उस कन्या को शिविका (पालकी) में बैठाकर अपने घर को प्रस्थान किया । ४-१६। उस समय अपनी पुत्री को जाते हुए देखकर राजा गजसेन ने

तां गच्छन्तीं मुतां दृष्ट्वा गजसेनो महीपतिः । महीपत्याज्ञया प्राप्तो ज्ञात्वा तं क्षत्रियाधमम् ॥१७
 जम्बुकनं महावीरं मायथा तत्त्वमोहयत् । जाते निद्रातुरे वीरे दुर्गायाः शापमोहिते ॥१८
 निगडेस्तं लब्धन्धाशु दृढैर्लोहमयै रुषा । लोहदुर्गः च भस्माप्य ग्रामरूप महीपतिः ॥१९
 चाण्डालांश्च समाहृय काठनंस्तत्रवासिनः । वधयाज्ञापयामास तस्य दण्डेरनेकशः ॥२०
 ते रौद्रास्तं समाक्षाध्य ताडयामामुरुर्जिताः । तत्ताडनात्तदा निदा तत्रैव विलम्बं गतः ॥२१
 दृष्ट्वा तत्स्तु दण्डालान्दलखन्निरताडयत् । तलमुष्टिप्रहारेण चाण्डाला भरणं ज्ञातः ॥२२
 मुते पञ्चशते रौद्रे तच्छेषा दुदुवर्भगत् । कपाटं सुदृढं कृत्वा नृपान्तिकमुपाययुः ॥२३
 स नृपः कारणं ज्ञात्वा हस्तबद्धो महाबली । उवाच तत्र गत्वासौ वचनं कार्यतप्तरः ॥२४
 भवान्महाबलो वीर चाण्डलैर्बन्धनं गतः । दस्युभिरुष्टितस्तत्र निद्रावश्ये वनं गतः ॥२५
 मत्सुता भवने प्राप्ता दिष्टच्चा त्वं जीवितं गतः । उद्भाव्य मत्सुतां शीघ्रं स्वगेहं यातुर्महसि ॥
 इति शुर्वा प्रियं वाक्यं तं प्रशस्त्य तथाकरोत् ॥२६
 मण्डपे वेदकर्मणि विवाहार्थं चकार सः । जातायां मण्डपार्चयां पत्रमाल्लादहेतवे ॥२७
 तद्वज्ञया लिखित्वासौ गजसेनोऽग्निसेवकः । उष्ट्रारुदं समाहृय शीघ्रं पत्रमन्नोदयत् ॥२८
 बलखानेर्विवाहोऽत्र भवान्त्सैन्यसमन्वितः । सम्प्राप्य योग्यद्वद्व्याणि भुक्त्वा त्वं तृप्तिमावह ॥२९

उर्वी पति माहिल तथा पराजित राजाओं की सम्मति से बलखानि (मलखान) को, जो क्षत्रियाधम, जम्बूक का हन्ता एवं महावीर था, अपनी माया से मोहित किया। पश्चात् दुर्गा शाप के कारण मोहित एवं निद्रित उस वीर को हथकड़ी-बेड़ी से दृढ़ आबद्र करके लोहदुर्ग वाले ग्रामरूप में पहुँचकर वहाँ के निवासी चाण्डालों को बुलाकर कहा—‘अनेक भाँति के दण्ड देते हुए इसका वध करो।’ इस प्रकार की आज्ञा पाकर भीषण चाण्डालगण उन्हें बेतों आदि के प्रहार से पीड़ित करने लगे। कुछ समय पश्चात् उनकी मूर्च्छा नष्ट हो गई। चाण्डालों को प्रहार करते हुए देखकर बलखानि (मलखान) ने हथेलियों (थप्ड़ों) और मुट्ठियों के प्रहार से उन्हें धराशायी कर दिया। पाँच सौ चाण्डालों के निधन होने से शेष बचे हुए वहाँ से भाग निकले। पश्चात् (उस दुर्ग का) कपाट (किवाड़) भलीभाँति दृढ़ता से बन्द करके बलखानि (मलखान) भीतर राजा के पास पहुँचे। १७-२३। सभी कारणों को जानकर राजा ने अञ्जलि बाँधकर कहा—‘वीर ! खेद का विषय है कि चाण्डालों ने आपको बाँध लिया और चोरों ने धन का अपहरण कर लिया है, शायद, आप उस वन में पहुँचकर निद्रित हो गये थे। मेरी कन्या मेरे भवन में आ गई है, सौभाग्य से आपको जीवित देख रहा हूँ। अब उसके साथ विवाह करके आप शीघ्र अपने घर चले जाइये। इसे सुनकर बलखानि (मलखान) ने प्रसन्न होकर उनकी अत्यन्त प्रशंसा की। राजा ने भी विवाहार्थ मण्डप आदि की रचना के लिए आदेश प्रदान किया; विवाह की तैयारी हो जाने पर अग्नि सेवक गजसेन ने आल्हाद (आल्हा) के पास पत्र लिखकर एक संदेशवाहक को, जो सांडिया पर पत्र-वाहन का कार्य करता था, देकर कहा—इस पत्र को शीघ्र आल्हाद (आल्हा) के पास ले जाओ। पत्र में लिखा था कि—‘बलखानि (मलखान) का विवाह यहाँ होना निश्चित हुआ है, आप सेना समेत यहाँ आकर मेरे द्वारा किये गये आतिथ्य सत्कार को स्वीकार करने की कृपा करें।’ २४-२९। पश्चात् उसी रात्रि में राजा ने

इत्युक्ते निशि जातायां बलखानिर्महाबलः । भोजनं कृतवांस्तत्र विषजुष्टं नुपार्पितम् ॥३०
 गरलं रेन सम्भुक्तं न ममार दरच्छुभात् । ततः काले च सम्प्राप्ते दृष्ट्वा मोहत्वमागतम् ॥
 मुर्नवर्बन्धं निगदैस्ताडयामास वेतसैः ॥३१
 दिवदोषमसृक्ष्वारान्निस्तुतं^१ सर्वदेहतः । तदा बुबोध बलवान्भूपतिं प्राह नन्धीः ॥३२
 राजन्निकमीदृशं जातं त्वत्सैन्यं ताडने रतम् । स आह भो महावीर मत्कुले रीतिरीदृशी ॥
 यातनां प्रथमं पात्प्र तदनूद्वाहितो भवेत् ॥३३
 इत्युक्ते सति भूपाले गजमुक्ता समागता । पितरं प्राह वचनं कोऽयं तत्ताडने गतः ॥३४
 नृपः प्राह सुते शीघ्रं याहि त्वं निजमन्दिरे । कृषिकरोऽयमायातो द्रव्यार्थं ताडने गतः ॥३५
 इति श्रुत्वा वचो घोरं बलखानिर्महाबलः । छित्वा तद्वन्धनं घोरं खड्गहस्तः समाययौ ॥३६
 शूरान्पञ्चशतं तं च रुद्धवा शस्त्रैः समन्ततः । प्रजग्नतस्तु तान्सर्वान्बलखानिर्विज्ञाशयत् ॥३७
 गजसेनसुतो ज्येष्ठः सूर्यद्युतिरुपागतः । बद्धवा पुनस्तं बलिनं गर्तमध्ये समाक्षिपत् ॥३८
 तथा गतं पतिं दृष्ट्वा गजमुक्ता सुदुःखिता । निशि तद्र गता देवी दत्त्वा द्रव्यं तु रक्षकान् ॥३९
 पतिं निष्काश्य रुदती व्यजनं पतये ददौ । रात्रौ रात्रौ तथा प्राप्ता व्यतीतं यक्षमात्रकम् ॥४०
 एतस्मिन्नन्तरे वीरश्चाह्लादः सप्तलक्षकैः । सैन्यैः सहाययौ शीघ्रं श्रुत्वा तत्रैव कारणम् ॥४१

बलखानि (मलखान) को भोजन में विष भक्षण करा दिया । किन्तु भोजन भक्षण करने पर भी वरदान प्राप्त होने के कारण उसकी मृत्यु नहीं हुई । मूर्च्छित होने पर राजा ने पुनः हथकड़ी-बेड़ी से ढूँढ बाँधकर उनके दैरों पर बेतों के प्रहार कराने लगा । उस समय सम्पूर्ण देह में व्याप्त विष के रक्त के द्वारा बाहर निकल जाने पर बलखानि (मलखान) को चेताना प्राप्त हुई । उन्होंने विनम्र होकर राजा से कहा—राजन् ! क्या कारण है, आपकी सेना मुझ पर आघात कर रही है । राजा ने कहा—वीर ! मेरे कुल की रीति ही इस प्रकार है कि—प्रथम यातनाओं के उपभोग प्रदानकर पश्चात् उसका विवाह किया जाता है । राजा के इस प्रकार कहने पर राजकुमारी गजमुक्ता (गजमोतिना) वहाँ आकर अपने पिता से कहने लगी । इस प्रहारों द्वारा किसे दण्डित किया जा रहा है । ३०-३४। राजा ने कहा—पुत्रि ! तू शीघ्र अपने महल चली जा, यह एक खेतिहार किसान है, राजकर के लिए दण्डित हो रहा है । इस घोर अपमानपूर्ण बात को सुनकर महाबली बलखानि (मलखान) ने अपने शृंखला-बन्धनों को तोड़कर हाथ में खड्ग ग्रहण कर उसके द्वारा उन घेरे हुए पाँच सौ सैनिकों को, जो शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर वहाँ युद्धार्थ उपस्थित थे, छिन्न-भिन्न करके धराशायी कर दिया । अनन्तर राजा गजसेन के सूर्यद्युति (सूर्यमणि) नामक ज्येष्ठ पुत्र ने वहाँ आकर उस बली बलखानि (मलखान) को पुनः बंधन समेत गर्त (गड्ढे-खाई) में डाल दिया । पति की उस अवस्था को देखकर गजमुक्ता (गजमोतिना) अत्यन्त दुःख का अनुभव करती हुई आधी रात के समय वहाँ पहुँचकर रक्षकों (सिपाहियों) को द्रव्य देकर भीतर कारागार में अपने पति के पास गई और उन्हें सविधि व्यञ्जन भोजन कराकर लौट आई । प्रत्येक रात्रि में इसी प्रकार का क्रम चलता हुआ एक पक्ष (पखवारा) का समय व्यतीत हो गया । ३५-४०। पश्चात् अपनी सात लाख सेना समेत आह्लाद

१. सम्बन्धमनुवर्तिष्यत इतिवदिहापि नपुंसकत्वम् । २. रक्षकेभ्य इत्यर्थः ।

बलखानिर्गतो गर्ते हरोध नगरों तदा । गजैः षोडशसहस्रैर्गजसेनो रणं यथौ ॥४२
 त्रिलक्षैश्च हयैः सार्द्धं सूर्यद्युतिरूपाययौ । कान्तामलस्तदा प्राप्तस्त्रिलक्षैश्च पदातिभिः ॥४३
 तयोश्चासीन्महद्युद्धमहोरात्रं हि सैन्ययोः । रक्षिते तालनाद्ये च गजसेनाद्यके तदा ॥४४
 द्वितीयेऽत्रि समायते गजसेनो नहावलः । प्रभग्रं स्वबलं दृष्ट्वा पादकीर्यं समारुहत् ॥
 दाह्यामास तत्सैन्यं तालनाद्यैश्च पातितम् ॥४५
 भस्मीभूतं बलं दृष्ट्वा तालनः शत्रुसम्मुखे । गत्वा भलेन भूपालं ताडयामास वेगतः ॥४६
 मूर्छितं नृपमाजाय सूर्यद्युतिरूपाययौ । पावकीयं समारुह्य दाह्यामास तालनम् ॥४७
 एतस्मिन्नल्लरे शूरौ देवौ चाह्नादकृष्णकौ । बवन्धद् रुषःविष्टौ सूर्यद्युतिमर्दनम् ॥४८
 सुबद्धं भ्रातरं ज्ञात्वा हयं कान्तामलोऽरुहत् । देवसिंहं च सम्मोह्य कृष्णांशं प्रति सोऽगमत् ॥
 गृहीत्वा तं स कृष्णांशं तस्य तेजः समाहरत् ॥४९
 सप्तलक्षबलं सर्वं वह्निभूतमभूत्तदा । अमरत्तात्स आह्नादस्तदा तु समजीवयत् ॥५०
 गजसेनस्यार्द्धसैन्यं तैश्च सर्वैर्दिनाशितम् । विजयं नृपतिः प्राप्य हर्षितो गेहमाययौ ॥५१
 वह्निभूतं च कृष्णांशं दृष्ट्वाह्नादः सुदुखितः । दुर्गा देवीं स तुष्टाव भनसा रणमूर्द्धनि ॥५२
 तदा देवी वचः प्राह वत्स ते पुत्र एव च । स्वर्गादागत्य सर्वाणि पुनरुज्जीवयिष्यति ॥५३
 इत्युक्ते वचने देव्या इन्दुलो वासदाज्ञया । द्वादशाब्दसमं रूपं धृत्वा विद्याविशारदः ॥

(आल्हा) वहाँ शीघ्र पहुँच गये । ४१। उन्होंने पहले ही सुना था कि बलखानि (मलखान) किसी गर्त (स्थाई) में पड़े हुए हैं, इसलिए उनकी नगरी को चारों ओर से घेरखर युद्धार्थ राजा को निमन्त्रित किया। सोलह सहस्र की गजसेना समेत गजसेन, तीन लाख घोड़े की सेना समत सूर्यद्युति (सूर्यमणि) औरं तीन लाख पदाति (पैदल) की सेना लेकर छोटे भाई कांतामल ने उस रणस्थल में पहुँचकर दिन-रात्रि का अविराम घोर युद्ध आरम्भ किया। तालनादि और गजसेनादि की अध्यक्षता में दोनों सेनाओं ने भीषण संग्राम करते हुए प्रथम दिन व्यतीत किया। किन्तु, महाबली गजसेन ने दूसरे दिन अपनी सेना को छिन-भिन्न होते देखकर अग्नि का प्रयोग किया, जिससे तालन आदि की सेनायें भस्मीभूत हो गईं। इसे देखकर तालन ने अपने भाला के प्रहार से राजा गजसेन को मूर्च्छित कर दिया। तदुपरांत सूर्यद्युति ने उस अग्नि के घोड़े द्वारा तालन को भस्म कर दिया। उसी बीच आह्नाद (आल्हा), और उदयसिंह ने कुद्ध होकर सूर्यद्युति को बाँध लिया। अपने भाई को दृढ़बंधन में पड़ा देखकर कांतामल उस घोड़े पर बैठा। वह देवसिंह को मोहितकर उदयसिंह के पास गया, किन्तु उदयसिंह ने उसे पकड़कर उस (घोड़े) के तेज का अपहरण कर लिया, जिससे उनकी सात लाख की सेना तत्काल भस्मीभूत हो गई, केवल एक आह्नाद (आल्हा) ही अमर होने के नाते शेष रह गये । ४२-५०। उन्होंने गजसेन की अवशिष्ट सेना को घोड़े ही समय में नष्ट कर दिया। किन्तु विजय राजा गजसेन की ही रही, वे अपने घर लौट आगे। उदयसिंह के भस्म हो जाने पर आह्नाद (आल्हा) ने भगवती दुर्गाजी की मानसिक आराधना की। उस समय देवी ने कहा—‘वत्स ! तुम्हारा पुत्र स्वर्ग से आकर इन सभी मृतकों को पुनः जीवन प्रदान करेगा।’ देवी जी के इस प्रकार कहने पर उस समय इन्द्र के यहाँ से विद्याविशारद इन्दुल बारह वर्ष के समान अवस्था प्राप्तकर

^१बडवामृतमाल्ह्य हयं तत्र समागतः

१५४

तदङ्गादुदृता वाहा मेघा हव समन्ततः । पावकं शमयामासुस्त्रयस्ते देवतोपमाः ॥५५
शमीभूते तदा बहौ स्वमुखात्सद्यो मुदा । लालामुद्वाहयामास तय । ते जीवितास्ततः ॥५६
जीविते सप्तलक्षे तु शमीभूते हि पावके । गजसेनः सुताभ्यां च प्रयतः भर्वतादिशम् ॥५७
लक्षं सैन्यं तु ये शिष्टात्स्ते सर्वेऽपि भयातुराः । दुद्रवर्धार्गवश्रेष्ठ दिव्यरूपत्वधारिणः ॥५८
केचित्संगासिनो भूत्वा केचिद्वै ब्रह्मचारिणः । जीवत्वं प्रभृतवन्तस्ते तथान्ये संक्षयं गताः ॥५९
बद्धवा तान्गजसेनादीस्त्रीञ्जूरान्स च तालनः । कृष्णांशेन समाप्तुत्त इन्द्रदुर्गं शमाययौ ॥६०
बलखानिं च निष्काश्य तालनस्तदनन्तरम् । पृष्ठवान्कारणं सर्वं श्रुत्वा तन्मुखतो वचः ॥
तान्वीरांस्ताड्यामास वेतसैः स्तम्भबन्धनैः ॥६१

गजमुक्ताज्ञया निप्र सेनापतिरूदारधीः । तालनस्तान्समुत्सृज्य विवाहार्थं तमाययौ ॥
बलखानिर्हयारूढो गजमुक्ता च मण्डपे ॥६२
गजसेनस्तदा दिव्यभौर्जनैस्तानभोजयत् । निदास्य लोहदुर्गं तान्कपाटः^३ सुदृढीकृतः ॥
लक्षाशूरान्स संस्थाप्य स्वयं रुद्रपुरं यथौ ॥६३
ते रात्रौ लोहदुर्गेषु ह्युषित्वा यत्नतो बलात् । प्रभाते च कपाटेन द्वारं दृष्ट्वा तदाब्रवीत् ॥

अमृत-अश्व पर बैठकर बहाँ आया । उसके घोड़े के अंग से मेघ की भाँति तीन घोड़े प्रकट होकर जो तीनों देवों की भाँति दिखाई दे रहे थे, उस रणस्थल की अग्नि का शमन किये । पश्चात् उस प्रमुख घोड़े ने अग्नि को शान्त देखकर अपने मुख से लार टपकाया, जिसमें वे सभी जीवित हो जठे । अग्नि के गांत होने एव शत्रु की सात लाख सेना को पुनः जीवित होकर सुसज्जित देखकर राजा गजसेन अपने दोनों पुत्रों समेत चारों ओर भागने लगे । उनके पास जो एक लाख सैनिक शेष रह गये थे, वे भयभीत होकर अनेक शाँति के अपने वेष बनाकर इधर-उधर भाग निकले । कुछ संन्यासी के रूप में और कुछ ब्रह्मचारी के रूप में थे—इन्हीं लोगों का जीवन सुरक्षित रहा, किन्तु, जो सैनिकों के वेष में थे, धराशायी कर दिये गये । तदुपरान्त तालन ने दोनों पुत्रों समेत गजसेन को बाँधकर उदयसिंह के साथ इन्द्र दुर्ग के लिए प्रस्थान किया । वहाँ जाकर दलखानि (मलखान) को उस बंधन एवं खाई से मुक्तकर उनसे समस्त कारणों को पूँछने लगे । पश्चात् उन तीनों को स्तम्भ में बाँधकर बेतों के प्रहार द्वारा दण्डित करने लगे । विप्र ! उसी समय गजमुक्ता (गजमोतिना) ने वहाँ आकर अपने पिता एवं भाइयों को मुक्त कराया । पश्चात् विवाह की तैयारी होने लगी । अश्वारूढ़ होकर बलखानि (मलखान) और गजमुक्ता (गजमोतिना) उस मण्डप स्थान में पहुँचकर सुशोभित होने लगे । ५-६२। वहाँ राजा गजसेन ने दिव्य भौजनों द्वारा उन लोगों का आतिथ्य सत्कार किया । किन्तु, यह सत्कार छलपूर्ण था, उसी व्याज से उन्हें उस लोहदुर्ग में रखकर उसके दरवाजे को सुदृढ़ बन्द करा दिया गया और एक लाख शूर सैनिकों को वहाँ गुप्त रक्षक के रूप में नियत कर राजा स्वयं अपने पुत्री, पुत्रों समेत चले गये । प्रातःकाल दरवाजे को बन्द देखकर सेना

१. बडवामृत इति तदीयाश्वस्य नाम, तेन हयशब्देन न पौनश्वत्यम् । २. गजसेनेतिभावः ।

द्वारमुद्भाटयाशु त्वं नो वेत्प्राणांस्त्यनिष्यसि ॥६४

इति सेनापतिः श्रुत्वा लक्षशूरान्समादिशत् । नानायत्नैश्च हृतव्याः शत्रवो भयकारिणः ॥६५

इति श्रुत्वा तु ते शूराः शतञ्यस्तैः सुरोपिताः । एकैकं क्रमशो जघ्नुर्वृन्दं ते वैरतत्पराः ॥६६

हते दशसहस्रे तु कृष्णांशो ब्रिन्दुलं हयम् । समाख्या जथनाशु स्वखड्गेन महद्वलम् ॥६७

हतेषाधा भयाताश्च रुद्राशीतिसम्मिताः । इन्द्रदुर्गं प्रति प्राहृर्यथः जातो बलश्चयः ॥६८

श्रुत्वा भयातुरो राजा स्वसुताभ्यां समन्वितः । गजनुकां पुरस्कृत्य बहुद्व्यासमन्विताम् ॥

स्वपायं क्षालयामास दत्त्वा कन्यां विधानतः ॥६९

षोडशोष्ठाणि स्वर्णानि गृहीत्वाह्लाद एव सः । यदौ स्वगेहं महितः उत्रभ्रातुरुसमन्वितः ॥७०

सम्प्राप्ते गेहमाह्लादे देवी स्वर्णवती स्वयम् । इन्दुलं स्वाङ्गमारोप्य ललाप॑ करुणं बहु ॥७१

मृताहं च त्वया पुत्रपुनरुच्छीविता खतु । धन्याहं कृतकृत्यात्मि जयन्त तव दर्शनात् ॥७२

इति श्रुत्वेन्दुलो वीरो नत्वाह जननीं मुदा । अनृतां नाधिगच्छामि त्वत्तो मातः कदाचन ॥७३

सम्प्राप्ते गेहमाह्लादे राजा परिमलः सुधीः । वाद्यानि वाद्यामास विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ॥७४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वाणि चतुर्युगवर्णापरपर्याये

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६

नायक से कहा गया कि—दरवाजे (के किंवाड़) को शीघ्र खोलवा दो, अन्यथा तुम्हें प्राण परित्याग करना पड़ेगा । ६३-६४। सेनानायक ने इसे सुनकर अपने सैनिकों को आदेश दिया कि—‘इन भीषण शत्रुओं का सभी प्रकार से हतन करना आरम्भ हो । इतना सुनकर वे शूर वीरगण अपने शस्त्र तथा तोप आदि चलाने लगे । इन सबने भी सैनिक बुँदों को छिन्न-भिन्न करके धराणायी करना आरम्भ किया । दशसहस्र सैनिक के निधन होने के उपरान्त उदयगिंह ने अपने विन्दुल (वेंदुल) नामक अङ्ग पर आसीन होकर अपने खड़ग द्वारा उन सैनिकों का वध करना आरम्भ किया । शेष अस्सी सहस्र सेना भयभीत होकर इन्द्र दुर्ग पहुँच गई, वहाँ उसने जिस प्रकार सैनिकों का हतन हुआ था, इसे राजा से कहा—इसे सुनकर राजा गजसेन ने अत्यन्त भयभीत होकर अपने दोनों पुत्रों समेत आह्लाद (आल्हा), वे पास आकर कुमारी गजमुक्ता (गजमोतिना) को अनेक द्रव्यों समेत उन्हें समर्पित कर उर्वी (उरई) पति (माहिल) द्वारा किये गये अपने पाप का प्रक्षालन किया । प्रसन्न होकर आह्लाद (आल्हा) ने सोलह ऊँट पर सुवर्ण लेकर अपने पुत्र एवं बांधुओं समेत अपने घर को प्रस्थान किया । आह्लाद (आल्हा) के घर पहुँचने पर देवी स्वर्णवती (सोना) ने इन्दुल (इन्दुल) को अपने अंक (गोद) में बैठाकर बहुत करुण रुदन किया—पुत्र ! मेरे जैसे मृतक को आज तुमने पुनः जीवित कर दिया, जयन्त ! तुम्हारे दर्शन से मैं धन्य एवं कृतकृत्य हो गई ।’ इसे सुनकर वीर इन्दुल ने भी प्रसन्नतापूर्ण होकर अपनी माता से नमस्कार पूर्वक कहा—माता ! मैं तुम्हारे ऋण से कभी भी मुक्त नहीं हो सकता हूँ । इस समाचार को सुनकर राजा परिमल ने वाद्यों की ध्वनिपूर्वक ग्राहणों को धन दान करना आरम्भ किया । ६५-७४

श्री भविष्यपुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन

नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कृष्णांशेऽष्टादशाब्दे तु यथाजातं तथा शृणु । भृते कृष्णकुमारे तु भूपतौ रत्नभानुना ॥१
 महीराजः सुदुखार्ते लक्ष्मण्डीमकारयत् । होमान्ते तु तदा देवी वागुदाच नृपं प्रति ॥२
 वर्षे वर्षे तु ते सप्त भद्रियन्त्यगसम्भवाः । कुमाराः कौरवांशाच्च द्वौपद्यांशाः सुता नृप ॥३
 इत्युक्ते वचने तास्मन्नराजी गर्भमयो दधौ । कर्णांशश्च सुतो जातस्तारको बलवत्तरः ॥४
 द्वितीयाब्दे तथा जाते दुश्शासनशुभांशतः । नृहरिरिति विख्यातस्तृतीयाब्दे तु चाभवत् ॥५
 उद्धर्षाशः सर्वदनो दुर्मुखांशस्तु भद्रनः । विकर्णाशः सूर्यकर्मा भीमश्रांशो विविशते ॥६
 द्वन्द्वनश्चित्रबाजांशो देला तदनु चाभवत् । यथा कृष्णा तथा सैव रूपचेष्टा पुण्यमुने ॥७
 भूवि तस्यां च जातायां भूकम्पो दाहणोऽभवत् । अट्टाद्वहासमशिखं चामुण्डा खे यकार ह ॥८
 रक्तवृष्टिः पुरे चासीदस्थिर्शर्करया पुता ॥९

ब्राह्मणाश्रम समागत्य जातकर्मादिकां क्रियाम् । कृत्वा नाम तथा चक्रे शृणु भूमिप साक्षरम् ॥१०
 इता च शशिनो माता विकल्पेनाऽभवद्भुवि । तस्माद्वेतति विख्याता कन्येयं रूपशालिनी ॥१०

अध्याय १७

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदयसिंह की अट्टारहवें वर्ष की अवस्था में जो कुछ मैंने देखा, सुना, तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! रत्नभानु द्वारा राजा कृष्ण के निधन हो जाने पर पृथ्वीराज ने अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए लक्ष्मण्डी यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ किया । हवन हो जाने पर देवी ने राजा से आकाशवाणी द्वारा कहा—तुम्हारी अगमा नामक रानी के गर्भ द्वारा सात वर्षों तक प्रत्येक वर्ष कौरवांश एवं द्वौपदी के अंश से कुमार जन्म ग्रहण करते रहेंगे । अनन्तर रानी ने गर्भ धारण किया, जिससे कर्ण के अंश से तारक नामक बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ । दूसरे वर्ष दुःशासन के अंश से ‘नृहरि’ नामक पुत्र, तीसरे वर्ष उद्धर्षाश से ‘सरदन’ नामक, (चौथे वर्ष) दुर्मुखांश से ‘मर्दन’ नामक, (पांचवें वर्ष) विकर्णाश से ‘सूर्यकर्मा’ नामक, छठे भीम, सातवें वर्धन के पश्चात् एक कन्या का भी जन्म हुआ । मुने ! जिस प्रकार कृष्णा (द्वौपदी) के रूप-सौन्दर्य, चेष्टा एवं गुण थे, वैसे ही इस कन्या के भी हैं, इस कन्या के जन्म ग्रहण समय में भयंकर भूकम्प हुआ और चामुण्डा देवी ने आकाश में अमांगलिक (विश्व विनाशक) अट्टहास किया । नगर में अस्ति के चूर्ण मिथित रक्त की वृष्टि हुई । १-८। ब्राह्मणों ने वहाँ जाकर उसका जातकर्म संस्कार सुसम्पन्न कराने के अनन्तर उस कन्या का जो नामकरण किया, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! शशी की माता का नाम इता, उसी ने अपने वैकल्पिक रूप से इस भूतल में जन्म ग्रहण किया, इसलिए उस रूप-सुन्दरी कन्या

जातायां च सुतायां स पिता दिप्रेभ्य उत्तमम् । ददौ दानं मुदार युक्तो दासांसि विविधानि च ॥११
 द्वादशाब्दवयः प्राप्ते सा सुता वरवर्जिनी । उवाच पितरं नम्रा शृणु त्वं पृथिवीपते ॥१२
 मण्डपे रक्तधारतभिर्यो मां संस्नापयिष्यति । द्वौपद्या भूषणं दाता स मे भर्ता भविष्यति ॥१३
 त्वर्णपत्रे तदा राजा पद्यं वेलामालोद्घूवम् । लिखित्वा तारकं प्राहृ त्वमन्देष्य तत्पतिम् ॥१४
 साद्वं लक्षत्रयं दलं गृहीत्वा लक्षत्त्व्यक्तः । नृपान्तरं ययौ शीघ्रं तारकः पितुराज्ञया ॥१५
 सिन्धुस्थाने चार्यदेशे भूपं भूपं ययौ बती । न गृहीतं नृपैः कैश्चित्तद्वाप्यं घोरमुल्बणम् !!
 महीपतिं स मम्प्राप्य यातुलं तद्वचोऽब्रवीत् ॥१६

श्रुत्वा स आहृ भो वीर ब्रह्मानन्दो महाबलः । स च वाक्यं प्रगृहीयादाह्नादाद्यैः सुरक्षितः ॥१७
 किं त्वया विदितं नैव चरितं तस्य दिश्मुतम् । भवान्पद्मन्धुसहितः कृष्णांशाद्यैर्विवाहितः ॥१८
 ते सर्वे वशगास्तस्य ब्रह्मानन्दस्य धीमतः । नास्ति भूमण्डले कश्चित्तद्वलेन समो नृपः ॥१९
 इति श्रुत्वा ययौ तूर्णं तारकः स्वत्रलैः राह । तत्पद्यं कथयित्वाये हस्तबद्धस्तदाभवत् ॥२०
 कृष्णांशस्तु गृहीत्वाशु पद्यं वाक्यमुवाच ह । अहं विवाहयिष्यामि ब्रह्मानन्दं नृपोत्तमम् ॥२१
 तूर्णों भूतास्तदा सर्वे तारकः स द्विजैः सह । अभिषेकं तदा कृत्वा स्वगेहं पुनराययौ ॥२२
 माघमासे सिते पक्षे त्रयोदश्यां सुवासरे । विवाहलग्नं शुभदं वरकर्मार्थयोस्तदा ॥२३

का 'बेला' (अर्थात् वह इला का ही रूपान्तर है) नामकरण हुआ । उसके उत्पन्न होने पर उसके पिता ने अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए ब्राह्मणों को उत्तम अनेक भाँति के वस्त्रों समेत दान प्रदान किया । बारह वर्ष दी अवस्था में उस उत्तम कन्या ने अपने पिता से कहा—‘आप मेरी बात सुनें, पृथिवीपते ! मण्डप में रक्त की धारा पर जो मुझे शयन करायेंगे, वही मुझ द्वौपदी को भूषण प्रदान करने वाला पुरुष मेरा पति हो सकेगा ।’ बेला के मुख से निकले हुए इस पद्यांश को भुवर्ण के पत्र में अंकित कराकर राजा ने तारक को देते हुए कहा—‘कन्या के लिए इस भाँति के पति का अन्वेषण करो ।’ पश्चात् तारक ने अपने पिता की आज्ञा से एक लाखसैनिक और साढ़े तीन लाख द्रव्य समेत राजाओं के यहाँ प्ररथान किया । सिन्धु नदी के तट से आरम्भकर आर्य देशों के सभी राजाओं के पास उनकी यात्रा हुई, किन्तु घोर विष की भाँति उस वाक्य को किसी राजा ने स्वीकार नहीं किया । तदुपरांत उन्होंने इधर-उधर भ्रमण करते हुए अपने मामा (माहिल) के यहाँ पहुँचकर उनसे सब वृत्तान्त कहा । १-१६ । उसे सुनकर उनके मामा ने कहा—‘वीर ! राजकुमार ब्रह्मानन्द के यहाँ जाओ, जो स्वयं महाबली एवं आह्नाद (आल्हा) आदि से सुरक्षित है, तुम्हारी इन बातों को वह अवश्य स्वीकार करेगा ।’ और क्या उसके चरित्र को तुम नहीं जानते ! छः भाइयों समेत आप के विवाह को उदयसिंह आदि ही सुसम्पन्न कराये थे, उस बुद्धिमान् ब्रह्मानन्द के अधीन वे सभी लोग हैं । उनके समान बली कौन राजा इस भूमण्डल मे है ? इसे सुनकर तारक (ताहर) ने अपने सैनिकों समेत वहाँ पहुँचकर अञ्जली बांधकर उस पद्य को सुनाया । उदयसिंह ने शीघ्र उस पत्र को लेकर कहा—‘मैं नृपथेष्ठ ब्रह्मानन्द के द्वारा उस कन्या का पाणिग्रहण कराऊँगा ।’ उस समय सभा एकदम निस्तब्ध थी, तारक ने ब्रह्मानन्द का अभिषेक (तिलक) करके अपने घर को प्रस्थान किया । १७-२१ । माघमास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन वर-कन्या का विवाह शुभ लग्न में होना निश्चित

सप्तलक्षबलैः सार्दुं लक्षणश्च सतालनः । महावतीं पुरीं प्राप्तो बलीं परिमलादिभिः ॥२४
 आह्लादो लक्षसैन्यादचः कृष्णांशेन समन्वितः । बलखानिर्लक्षसैन्यः संयुतः सुखखानिना ॥२५
 नेत्रसिंहो लक्षसैन्यो योगभोगस्तमन्वितः । रणजित्त्व बली बालो द्विलक्षलसंयुतः ॥२६
 एवं द्वादशलक्षाणां सैन्यानामधिष्ठो बली । तालनः सिंहिनीसंस्थो वटवां प्रययौ सह ॥२७
 सैन्यैर्हाविशलक्षैश्च सहितस्तालने बली । आययौ देहलीग्रामे महीरजानुपालिते ॥२८
 देवो भनोरथारूपौ बिन्दुलस्थः स कृष्णकः । वडवामृतमासाद्य स्वर्वत्यत्याः सुतो गतः ॥२९
 रूपगश्च करात्तस्थ आह्लादश्च पपीहके । बलखानि: कपोतस्थो हरिणस्थैर्जुनस्ततः ॥३०
 रणजित्तनाम्युन्नः सम्प्रितो हरिनागरे । पञ्चशब्दगजारूढो महावत्यधिष्ठो गतः ॥३१
 विमानवरमारुह्य धीवरैः शतवाहिकैः । मणिमुक्तास्वर्णमयं सहस्रवाद्यकैर्युतम् ॥३२
 अयुतैश्च पताकैश्च^१ वेत्रपाणिसहस्रकैः । सहैः शिविकाशिश्च पञ्चसाहस्रकै रथैः ॥३३
 शकटैर्महिषोदैस्तु तथा पञ्चसहस्रकैः । सर्वतोपस्कृतं रम्यं ब्रह्मानन्दं समागत ॥३४
 श्रुत्वा कोलाहलं तेषां महीराज्ञे नृपोत्तमः । दिस्मितः स बभूवात् शिविराणि मुदा ददौ ॥३५

हुआ । २३। उस बारात में प्रस्थान करने के लिए सात लाख सैनिक समेत तालन महावती (महोबा) नगर में पहुँचे, लाख सैनिक समेत आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह, सुखखानि के साथ, लाख सैनिक लेकर बलखानि (मलखान), योग-भोग (योगा-भोग) समेत लाख सैनिक लेकर नेत्र सिंह, और दो लाख सेना समेत रणविजयी बाल बली वहाँ पहुँचे । इस प्रकार बारह लाख सेना सनेत उसके अध्यक्ष तालन ने अपनी सिंहिनी घोड़ी पर बैठकर उन बारह लाख सेनाओं का संचालन करते हुए पृथिवीराज के दिल्ली नगर में आकर सैनिकों को विश्राम के लिए आज्ञा प्रदान की । उस यात्रा में देवसिंह मनोरथ (मनोहर) नामक घोड़े पर, उदयसिंह बिन्दुल (वेंदुल) पर, स्वर्णवती (सोना) का पुत्र इन्दुल (इंदल) अपनी अमृत घोड़ी पर, रूपन कराल पर, आह्लाद (आल्हा) पपीहा पर, बलखानि (मलखान) कपोत (कबूतर) नामक घोड़े पर, सुखखानि हरिण नामक घोड़े पर, और रण-विजयी एवं मलना के पुत्र ब्रह्मानन्द स्वयं हरिनागर नामक घोड़े पर सुधोमित हो रहे थे । उसी प्रकार पञ्चशब्द नामक गजराज पर महावती (महोबा) का अधिनायक राजा परिमल स्वयं विराजमान था । उनके साथ उत्तम विमान था, जो मणि, मुक्ता एवं सुवर्णों से खचित तथा सैकड़ों धीमर (कहार जाति के) लोग जिसका संवाहन कर रहे थे, उसके साथ अनेक भाँति की वाद्य ध्वनियाँ, दशसहस्र पताकाएँ, हाथ में वेत (की छड़ी) लिए हुए सहस्र सभा स्थान के भूत्यगण, सहस्र शिविकाएँ (पालकियाँ), पाँच सहस्र रथ, और पाँच सहस्र भैंसा गाड़ियाँ ब्रह्मानन्द को धेरे हुए चल रही थीं । उस बारात के कोलाहल (शोर) सुनकर राजा पृथिवीराज को महान् आश्रय हुआ, पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न होकर उनके रहने के लिए शिविर (तम्बू) आदि प्रदान किया । २४-३५। अपने दुर्ग के दरवाजे की (द्वारपूजा आदि) क्रिया को विधानपूर्वक सुसम्पन्न करने के उपरान्त उन्होंने कहा—बैला

१. पताकावद्धूः—इत्यर्थः । ‘कुन्ता विशन्ति’ इतिवन्मत्वर्थीयोऽत्र, तद्वत्सु लक्षणा वा, परन्तु—लक्षणापक्षेऽजहल्लिङ्गत्वात्पत्ताकाभिरित्येव सुसाधु स्यात् । २. सन्धिरार्थः ।

दुर्गद्वारिक्रियां रम्यां कृत्वा विधिविधानतः । द्वौपद्या भूषणं देहि बेलायै स तमब्रवोत् ॥३६
 इन्दुलस्तु ययौ स्वर्गं वासवं प्रति चाब्रवीत् । द्वौपद्याभूषणं सर्वं देहि मह्यं सुरोत्तम ॥३७
 कुबेरात्स समानीय दिव्यभाभूषणं ददौ । इन्दुलः प्रहृशन्ते च प्राप्तः पित्रे न्यवेदयत् ॥३८
 आळ्हादस्तु स्वयं गत्वा बेलायै भूषणं ददौ । प्राप्ते ब्रह्मे मुहूर्ते तु विवाहस्तत्र चाभवत् ॥३९
 मत्प्राप्ते प्रथमावर्ते तारकः खडगमाददौ । आळ्हादस्तं समासाद्य युयुधे बहुलीलया ॥४०
 नृहरिस्तु द्वितीये च कृञ्जांशं प्रति चाहृथत् । तथा भरदनं वीरं बलखानिरूपाययो ॥४१
 मर्दनं मुखलानिस्तु चतुर्थविर्तकेऽरुधत् । रणजित्सूर्यवर्माणं स भीमं रूपणो बली ॥
 देवस्तु वर्धनं वीरं सप्तावर्ते क्रमादयौ ॥४२

शतभूपान्खडगधरानाजसेनादिकांस्तदा । लक्षणाद्याः समाजगमुर्मण्डपे बहुविस्तृते ॥४३
 भग्नभूतं नृपबलं दृष्ट्वा राजा रूषान्वितः । महीराजो ययौ छ्ठो गजं चारिभयङ्करम् ॥४४
 जित्यः तःन्नेत्रासंहादीच्छब्दवेधी नृपोत्तमः । लक्षणं प्रयद्यौ शीघ्रं बौद्धिनीं हस्तिनीं^१ स्थितम् ॥४५
 शिवं मनसि संस्थाप्य जित्वा बद्धवा रूषान्वितः । अगमत्तमुपगृह्य दर्शयामास तं नृपम् ॥४६

(कन्या) के लिए द्वौपदी के सभी आभूषण भेजने की कृपा करें।' इसे सुनकर इन्दुल (इंदल) ने स्वर्ग में इन्द्र के पास पहुँचकर उनसे कहा—सुरश्रेष्ठ ! द्वौपदी के सभी आभूषण मुझे दिलवाने की कृपा करें।' इन्दुल ने उसी समय कुबेर के यहाँ से द्वौपदी के सभी आभूषणों को मंगाकर इन्हें सौंप दिया। उसे लेकर इन्दुल ने पुनः एक प्रहर के भीतर ही अपने पिता के पास पहुँचकर निवेदनपूर्वक उसे सौंप दिया। आळ्हाद (आल्हा) ने स्वयं वहाँ जाकर उन आभूषणों को सानुराग बेला के लिए भिंजवाया। पश्चात ब्राह्मा मुहूर्त में विवाह-संस्कार भी आरम्भ हुआ। प्रथम भाँवरि के समय तारक (ताहर) ने खड़ग से वर (ब्रह्मानन्द) के ऊपर आधात किया, किन्तु आळ्हाद (आल्हा) ने शीघ्र वहाँ पहुँचकर उस प्रहर को रोककर अपनी कई लीलाओं द्वारा उनसे युद्ध किया। दूसरी भाँवरि में नृहरि के प्रहार को उदयसिंह तथा तीसरी भाँवरि में सरदन के प्रहार को बलखानि (मलखान) ने रोक लिया। उसी भाँति चौथी भाँवरि में मर्दन द्वारा किये गये आधात के सुखलानि, पाँचवीं में ब्रह्मानन्द ने स्वयं सूर्यवर्मा को, रूपन ने भीम को और सातवीं भाँवरि में देवसिंह (डेबा) ने वीरवर्धन को रोक लिया था। उस समय उस विस्तृत मण्डप (रंगभूमि) के मैदान में गजसेन आदि सौ राजाओं समेत लक्षण (लखन) आदि वीर भी वहाँ उपस्थित होकर राजा की सेनाओं को धराशायी करने लगे। अपनी सेनाओं को तितर-वितर होते देखकर राजा पृथ्वीराज ने कुद्द होकर अपने अरिभयंकर नामक गजराज पर बैठकर वहाँ रणस्थल में घोर युद्ध करना आरम्भ किया। ३६-४४। उस शब्दवेधी नृपश्रेष्ठ ने नेत्रसिंह आदि वीरों को पराजित करते हुए उस लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर जो बौद्धिनी नामक हस्तिनी पर सुशोभित हो रहे थे, घोर संग्राम आरम्भ किया। मन में शिव का ध्यान करते हुए अत्यन्त रोषपूर्ण होकर पृथ्वीराज ने उन पर विजय प्राप्त-कर उन्हें बाँध भी लिया, पश्चात् ले जाकर राजा को दिखाया। उसे सुनकर राजा परिमल ने अत्यन्त

श्रुत्वा परिमतो राजा कृष्णांशं भीरुको दयौ । वृत्तान्तं कथयामास चाह्नादादिपराजयम् ॥४७
 अजितः स च कृष्णांशो नभोभारेण भन्दिरम् । गत्वा जगर्ज बलवान्योगिन्यानन्ददायकः ॥४८
 तदा स लक्षणो वीरस्थ्यक्त्वा बन्धनमुत्तमम् । विष्णुं मनसि संस्थाप्य महीराजं समाययौ ॥४९
 गृहीत्वा चागमां दोलां स्वयं शिविरमप्तवान् ॥५०
 एतस्मन्नन्तरे सर्वे त्यक्त्वा नूच्छा समन्ततः । खड्गयुद्धेन ताङ्गित्वा बद्धवा ताङ्गिगड्डैर्दृढः ॥५१
 सान्वयाऽच्छत्मूपांश्च हत्वा तदुधिरावहैः । द्वौपदीं स्नापयामासुर्वेष्टरूपां कलोत्तनाम् ॥५२
 विवाहान्ते च ते सर्वे शिविराणि समाययुः । समुत्सृज्य युतान्सत्तं भुज्ञैर्यस्ते ह्यभोजयन् ॥५३
 भुक्तवत्तु सुवीरेषु साहस्रास्तैः सुतैः सह । रुधुः सर्वतो जघ्नुरस्त्रशस्त्रैः समन्ततः ॥५४
 सहवश्वरांस्तान्हत्वा पुनर्बद्धा महाबलान् । शिविराणि सप्ताङ्गमुस्तेषां हास्यविशारदाः ॥५५
 दशलक्ष्मसुवर्णानि गृहीत्वा नृपतिर्बली । वेलां नवोढामादाय गत्वा नत्वा तमब्रवीत् ॥५६
 प्रद्योतसुत हे राजेलक्षणोऽसौ महाबलः । मम पत्नीं समादाय दासीं कर्तुं समिच्छति ॥५७
 इति श्रुत्वा परिमलः सर्वभूपसमन्वितः । बहुधा बोधितश्चैव न बुबोध तदा नृपः ॥५८
 तदा महासती वेला विलताप भृशं भुहुः । तच्छ्रुत्वा स च कृष्णांशः सहितो बलखानिना ॥

भयभीत होकर उदयसिंह से कहा—आह्नाद (आल्हा) आदि सभी राजा पृथ्वीराज के युद्ध में पराजित हो गये हैं, अजेय उदयसिंह ने शीघ्र आकाशमार्ग से राजा के महल में पहुँचकर अत्यन्त गर्जना की । योगिनी के आनन्द प्रदाता उदयसिंह के उस भीषण गर्जना से वीर लक्षण (लाखन) ने रोष में आकर अपने बंधनों को तोड़ दिया और मन में विष्णु का ध्यान करके पृथ्वीराज के महल में शीघ्र पहुँचकर रानी अगमा को डोला के साथ में लेकर अपने शिविर में लौट आये । उसी बीन सभी लोगों में मूर्छानष्ट होकर चेतना आ गई थी, वे अपने-अपने खड़ग आदि अस्त्रों को लेकर शत्रु की सेना को धराशायी करने लगे । विजय प्राप्त करते हुए उन्हें हयकड़ी-बेड़ियाँ बाँधकर उनके कुल के केवल सौ राजाओं का बध किया, जिसके रुधिर की धारा में द्वौपदी रूप सर्वाङ्ग सुन्दरी बेला ने स्नान किया । अनन्तर विवाह के वे योद्धागण अपने-अपने शिविर में चले गये । वहाँ पहुँचकर राजा के सातों पुत्रों को मुक्तबंधन कर दिया । वे सब घर पहुँचकर बारात के भोजन का प्रबन्धकर सभी लोगों को निमन्त्रित किये । वहाँ दुर्ग के गुप्त स्थानों में सेना सुसज्जित होकर प्रतीक्षा कर रही थीं । उसी समय महावती (महोबा) वाले बाराती भोजनार्थ अस्त्रों से सुसज्जित होकर पहुँचे । राजा के सातों पुत्रों ने आतिथ्य सत्कार में भाग लिया, उसी बीच उन गुप्त सैनिकों ने युद्धारम्भ कर दिया । भोजन त्यागकर वीरों ने उन सहस्र सैनिकों के निधनपूर्वक सातों पुत्रों को पुनः बाँध लिया और साथ रखकर उनकी हँसी करते हुए अपने शिविरों के लिए प्रस्थान किये । ४५-५५। पश्चात् पृथ्वीराज ने दशलक्ष्मसुवर्ण समेत वेला कन्या को साथ में लेकर राजा परिमल के पास जाकर उनसे करबद्ध प्रार्थना की—‘प्रद्योतसुत, राजन् !’ इस महावती लक्षण (लाखन) ने मेरी अगमा नामक स्त्री का अपहरण कर उसे दासी बनाना चाहा है । इसे सुनकर राजा परिमल ने अन्य सभी राजाओं समेत लक्षण (लाखन) को बहुत समझाया, किन्तु उस राजा की समझ में कुछ नहीं आया । पश्चात् उसी स्थान पर महासती बेला अत्यन्त विलाप करने लगी । उसकरुणक्रन्दन को सुनकर

तामाश्वास्य तदा वेलां नभोमार्गेण चाययौ

॥५९

लक्षणं तर्जयित्वासौ गृहीत्वा चागमन्मुदा ! नभो मार्गेण गेहे तं कृष्णांशः समपेषयत् ॥६०

पुनस्त्यक्त्वा सप्त सुतान्सहितानृपतेस्तु ते ; शपथं कारयामासुर्दम्भं प्रत्ति महाबलाः ॥

उषित्वः दशरात्रान्ते इध्यगृह्णतुमनो सुने ॥६१

महीराजस्तु बलवान्नृहीत्वा भूपतेः पहौ । स उवाचाश्रूपूर्णस्तदा परिमलं नृपम् ॥६२

महाराज वधूस्ते च वेलेयं द्वादशाब्दिकाः । पिटृमातृवियोगं च न क्षमत्ती तु बालिका ॥६३

तस्नातः त्वं परित्पत्य गच्छ रेहुं सुखो भव । पतियोग्या यदा भूयात्तदा त्वां पुनरेष्यति ॥६४

इत्युक्त्वा च दचो राजा स स्नेहादङ्कमस्पृशत् । चूर्णभूते परिमले चाल्लादस्तत्र दुःखितः ॥

महीराजं स पस्पर्शं स राजा चूर्णतां गतः ॥६५

भग्नास्थी भूपती चोभौ पावकोयैश्चिकित्सकैः । सुखदत्तौ गृहं ग्राप्य कृतकृत्यत्वमागतौ ॥६६

मलना स्वसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमुद्भाहितं गृहे । कृत्वोत्सवं बहुविधं विप्रेभ्यश्च ददौ धनम् ॥

होमं वै कारयामास चण्डिकायाः प्रसादतः ॥६७

सभायां लक्षणो वीरो यात्राकाले तमब्रवीत् । अगमां जयचन्द्राय मत्वा जित्वा हृता तु ताम् ॥

नभोमार्गेण सम्प्राप्तौ दोगिनौ च शिवाज्ञया ॥६८

उदयसिंह और बलखानि (मलखान) ने बेला को आश्वासन प्रदानपूर्वक आकाशमार्ग से लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर उनकी भर्त्सज्जना की । अनन्तर अगमा को लेकर आकाशमार्ग द्वारा उदयसिंह ने उन्हें उनके महल पहुँचा दिया और शिविर में आकर पृथ्वीराज के सातों पुत्रों को भी मुक्तबंधन कर दिया । उन पुत्रों ने बंधन-मुक्त होने पर पुनः दम्भ न करने की शपथ की । मुने ! इस भाँति राजा परिमल वहाँ दशरात्रि तक रहने के उपरान्त अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान करने लगे । ५६-६१। उस समय राजा पृथ्वीराज ने आँखों में आसू भरकर उनके चरणों को पकड़कर कहा—महाराज ! यह आपकी बहू बेला अभी बारह ही वर्ष की है, बालिका होने के नाते यह माता-पिता के वियोग को सहन न कर सकेंगी । इसलिए इसे यहाँ छोड़कर आप अपने घर जाने की कृपा करें, पुनः इसे पति-योग्य हो जाने पर आपकी सेना में उपस्थित कऱूँगा । इतना कहकर राजा पृथ्वीराज सन्नेह राजा परिमल से मिले । किन्तु, उन दोनों के मिलने में राजा परिमल को अंग-भंग देखकर आल्हाद (आल्हा) को अत्यन्त दुःख हुआ । उन्होंने पृथ्वीराज को पकड़कर चूर्ण कर दिया । दोनों राजाओं की अस्थियों के टूट जाने पर अपि चिकित्सक राजा नेत्रसिंह ने उन्हें आरोग्य किया, जिससे वे दोनों सुखी होकर अपने-अपने घर चल पड़े । रानी मलना ने अपने पुत्र को विवाहित देखकर हृषीतिरेक से ब्राह्मणों को भाँति-भाँति का दान दिया और चण्डिका के प्रसन्नार्थ सविधान हवन सुसम्पन्न कराया । राजा लक्षण (लाखन) अपनी यात्रा के अवसर पर उसी सभा में रानी मलना से उस वृत्तान्त को बताये—जयचन्द्र की स्त्री बनाने के लिए अगमा का मैंने विजय-पूर्वक अपहरण किया था, किन्तु, शिव की आज्ञा से इन दोनों योगियों ने मेरे पास पहुँचकर उसे छीन लिया और उसे (उसके) अपने भवन पहुँचा दिया । ६२-६८। (अन्यथा वैसा करने का मेरा विचार निश्चित हो

जहतुस्तौ च मां जित्वा ततीक्षणभयमोहितम् । अद्याहं धाम गच्छामि चिरं जीव नृपोन्नम् ॥
इत्युक्तवन्तं तं नत्वा यथुर्मूपाः स्वमालयम् ॥६९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरयाये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम शप्तदशोऽध्यायः । १९

अथाष्टादशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

विंशाब्दे चैव कृष्णाशो यथा जातं यथा श्रुणु । सागरात्यसरस्तोरे कदाचिदिन्दुलो बली ॥
जप्त्वा सप्तशतीस्तोत्रं तत्र ध्यानान्वितोऽभवत् ॥१
एतस्मिन्नन्तरे हंसर आकाशाद्भूमिगणताः । तेषां च रुतशब्दैश्च स ध्यानादुत्थितोऽभवत् ॥२
दक्ष्यमाणं च च ग्राहुर्धन्योऽयं दिव्यविग्रहः । पर्वतानां हिमगिरिर्वनं दृढावनं तथा ॥३
महावती पुरीणां च सगगरः सरसामपि । नारीणां पद्मिनी नारी नृणां श्रेष्ठस्त्वमिन्दुलः ॥४
भो इन्दुल महाप्राज्ञ भानसे सरसि स्थिताः । वयं श्रुत्वा श्रियो वाक्यं नलिनी सागरं गताः ॥५
दृढ्वा तत्र शुभां नारीं सर्वाभरणभूषिताम् । सप्तालिर्भिर्युतां रम्यां गीतनाट्यविशारदाम् ॥६

चुका था) पश्चात् प्रसन्नतापूर्ण होकर राजा ने विदा माँगी—नृपश्रेष्ठ ! आप चिरंजीवी हों, मुझे आज्ञा
प्रदान कीजिए, मैं आज घर जाना चाहता हूँ । उनके जाने के पश्चात् सभी नृपगण राजा परिमल से सप्रेम
नमस्कार पूर्वक विदा होकर अपने-अपने घर गये । ६९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त । १७।

अध्याय १८ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—उदयसिंह की बीस वर्ष की अवस्था में उनके जो कुछ चरित्र हुए हैं, मैं बता रहा हूँ,
मुनो ! एक बार सागर नामक किसी सर (तालाब) के तट पर पहुँचकर उदयसिंह ने सप्तशती स्तोत्र के
जप (पाठ) पूर्वक भगवती का ध्यान करना आरम्भ किया । उसी समय आकाश से हंसगण वहाँ उतरे ।
उनके शब्दों के मुनने से इनका ध्यान भंग हो गया । पश्चात् उठकर वे उन हंसों की ध्वनि सुनने लगे, वे
कह रहे थे—दिव्य शरीर धारण करने वाला यह धन्य है, जिस प्रकार पर्वतों में हिमालय, बनों में
वृन्दावन, नगरियों में महावती (महोबा), सरों में सागर श्रेष्ठ है, उसी प्रकार स्त्रियों में पद्मिनी, और
पुरुषों में इन्दुल सर्वश्रेष्ठ हैं । पश्चात् हंसों ने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—महाप्राज्ञ, इन्दुल ! हम लोग
मानसरोवर के निवासी हंस हैं, लक्ष्मी की बात को स्वीकार कर नलिनीसागर गये थे । १-५। वहाँ समस्त
आभूषणों से सुसज्जित एक परम सुन्दरी स्त्री को देखा था, जो अपनी सात सुन्दरी सखियों समेत वहाँ

दृष्ट्वा मोहत्वमापन्ना वयं देशान्तरं गताः । विलोकिता नराः सर्वेऽत्रास्माभिर्जगतीतले ॥
 त्वत्समो न हि कोऽप्यत्र पदिनी सदृशे वरः ॥१७
 तस्मात्त्वं नः समाख्या तां देवीं द्वष्टुमर्हसि । तथेत्युक्त्वा शक्तुतो हंसराजं समाख्यत् ॥८
 सिंहलदीपके रम्ये ह्यादेसिंहो नृपः स्थितः । तत्पुता पदिनी नाम्ना रूपयौवनशालिनी ॥
 रागिण्यः सप्त विल्यगत्तास्तत्सख्यः प्रमदेत्तमा: ॥९
 नलिनीसागरे रम्ये गिरिजामन्दिरं शुभम् । तत्र स्थितां च तां देवीमिन्दुलः स ददर्श ह ॥१०
 सापि तं चुन्दरं दृष्ट्वा हंसदेहे सनास्थितम् । सम्मोहाह्या तं देवं तेन सार्वभरीरमत् ॥११
 वर्षमेकं ययौ तत्र नानालीलासु मोहितः । नक्तं दिवं न बुबुधे रममाणस्तया सह ॥१२
 भक्तिर्गर्वत्वमापन्ने चाह्नादे जगदम्बिका । दृष्ट्वा चान्तर्दद्ये देवी गर्वाच्चरणकुण्ठिता ॥१३
 तस्य प्राप्तं महदुखमाह्नादस्य जयैषिणः । स कैश्चित्पुरुखैर्वैरः कथितोऽभृत्वमन्दिरे ॥१४
 इन्दुलं रूपसम्बन्धं लङ्घापुरनिवासिनः । राक्षसास्तं समाहृत्य स्वगेहं शीघ्रमाययुः ॥१५
 इति श्रुत्वा वचो घोरं सकुलो विलत्ताप ह । हा हा शब्दो महांश्चासीतेषां त्रु रुदतां मुने ॥१६
 कृष्णांशो रुदितं प्राहाह्नाद ज्येष्ठं शृणुष्व भोः । जित्वाहं राक्षसान्तर्वास्तालनादैः समन्वितः ॥
 इन्दुलं त्वां समेष्यामि भवान्दैर्यपरो भवेत् ॥१७
 बलखानिश्च कृष्णांशो देवसिंहश्च तालनः । सप्तलक्षबलैः सार्वं लङ्घां प्रतियुर्मुदा ॥१८

उपस्थित थी, गायन एवं नाट्य-निपुणा उस स्त्री को देखकर मोहित होकर हम लोग देश-देशान्तरों में भ्रमण किये, इस धरातल के सभी मनुष्यों को देखा, किन्तु तुम्हारे समान पुरुष पदिनी के समान कोई स्त्री नहीं है, अतः हमारे ऊपर बैठकर आप वहाँ चलने की कृपा करें तो बड़ी प्रसन्नता होगी । इन्दुल भी स्वीकार कर हंसराज की पीठ पर बैठा । ६-८। रमणीक सिंहलदीप में आर्य सिंह नामक राजा राज करता था । पदिनी नामक उसकी पुत्री थी, जो रूप-यौवन सम्पन्न अनुपम ललना थी । सातो रागिणियाँ सुन्दरी स्त्रियों के वेष में उसकी सहेलियाँ हुई थीं । नलिनी सागर के टट पर स्थित पार्वती जी के उस रम्य भवन में स्थित होकर वह मनोविनोद कर रही थी । उसी अवसर में इन्दुल वहाँ पहुँचकर उसे देखा । उस सुन्दरी ने हंस की पीठ पर स्थित परम सुन्दर उस पुरुष को देखकर मुग्ध होकर उस पुरुष श्रेष्ठ को अपने पास बुलाया और उसके साथ रमण किया । उसकी अनेक भाँति की लीलाओं से मोहित होकर इन्दुल एक वर्ष तक वहाँ रह गये । उसी बीच आह्नाद (आल्हा) को देवी की भक्ति का गर्व हो गया था, भगवती जगदम्बिका उस गर्व का सर्वनाश करने के लिए अन्तर्हित हो गई । पश्चात् आह्नाद (आल्हा) को अत्यन्त दुःख का अनुभव करना पड़ा, क्योंकि उस समय कुछ लोगों ने उनसे उसी मन्दिर में कहा—इन्दुल के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध होकर लंका निवासी राक्षसों ने उसका अपहरण कर अपने घर को प्रस्थान कर दिया है । ९-१५। इसे सुनते ही सकुटुम्ब आह्नाद (आल्हा) विलाप करने लगे । मुने ! रुदन करते हुए उन लोगों के मुख से हा-हा शब्द हो रहे थे । उस समय उदयसिंह ने अपने भाई से, जो अधीर होकर रुदन कर रहे थे, कहा—तालन आदि के साथ मैं उन राक्षसों को पराजित कर इन्दुल को लाकर सौंप दूँगा, किन्तु आप धीरज को अपनाते रहें । अनन्तर बलखानि (मलखान), उदयसिंह, देवसिंह (डेबा) और

मार्गप्राप्ताश्र ये भूपा आमपा राष्ट्रपास्तथा । यथायोग्यं बलिं रम्यं प्राप्य तस्मै न्यवेदयन् ॥१९
 ये भूपा मदमत्ताश्र जित्वा तंरंतालनो बली । बद्धवा तैश्रं समागच्छत्सेतुबन्धं शिवस्थलम् ॥२०
 पूजयित्वा च रत्नेशं रामेण स्थापितं शिवम् । सिंहलद्वीपमगमन्वण्मासाभ्यन्तरे तदा ॥२१
 नलिनीसागरं प्राप्य तद्र वासमकारयन् । पत्रं सम्ब्रेषयामात्रं बलखानिर्वपाय च ॥२२
 आर्यसिंहं महाभाग स्वपोतात् देहितीर्णकान् । भवांश्रं स्वबलैः सार्द्धं लङ्कां प्रति द्रजाधुना ॥
 नो चेत्वां सबलं जित्वा राष्ट्रभङ्गं करोम्यहन् ॥२३
 इति श्रुत्वा पत्रवचो भूर्सर्वबलदत्तरः । रक्षितः शक्तिपुत्रेण युद्धाय समुपायौ ॥२४
 इन्दुलः स्तम्भनं मन्त्रं संस्थाप्य शर उत्तमे । स्तम्भयामात् तत्सैन्यं तालनाद्यैः सुरक्षितम् ॥२५
 दिवसे नुखर्षम् च त्रिलक्ष्मैः स्वदलैः सह । आर्यसिंहस्य तनयो महद्युद्धमचीकरत् ॥२६
 निशामुखे च सम्प्राप्ते शक्तिपुत्रे महाबलः । शतपुत्रैः क्षत्रियाणां सार्द्धं युद्धाय चाययौ ॥२७
 तेषां हया हरिद्वर्णा योगिवेषधरा बलात् । महतीं ते सहस्रं च रिपोः सेनां व्यनाशयन् ॥
 तत्पश्चाद्गेहमासाद्य तदा तैः सुखितोऽवसत् ॥२८
 एवं जाताश्र षण्मासास्तयोर्युद्धं हि सेनयोः । क्रमेण संक्षयं प्राप्तं बलखानेर्महद्वलम् ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डः परपर्याप्ते

कलियुगीयेति हाससमुच्चयो नामाष्टादशोऽध्यायः । १८

तालन ने अपनी सात लाख सेना समेत लंका के लिए प्रस्थान किया । मार्ग में जो राजा मिल जाते थे, वे उचित भेंट प्रदानपूर्वक इन लोगों की प्रार्थना करते थे, और जो अपने मद में मुग्ध रहते थे, बली तालन उन्हें पराजित करके हथकड़ी-बेड़ी से आबद्ध उन्हें साथ लिए चल रहे थे । इस प्रकार वे सेतुबन्ध के शिवालय के समीप पहुँच गये । वहाँ भगवान् राम द्वारा स्थापित रामेश्वर जी की पूजा करने के पश्चात् सिंहलद्वीप की यात्रा किये । छ: मास की यात्रा में वहाँ पहुँचकर नलिनी सागर पर उन लोगों ने अपना निवास-स्थान बनाया । बलखानि (मलखान) ने पत्र लिखकर राजा के पास भेजा—‘पुण्यात्मन् ! आर्य सिंह ! अपनी नौकाएँ भेज दीजिए, हम लोग आप के नगर में आना चाहते हैं, अथवा अपनी सेना समेत आप इस समय इसी लंका में आ जाय ।’ अन्यथा सेना समेत विजय प्राप्तकर आपका राष्ट्र भंगकर दूँगा ।’ १६-२३ । पत्र को पढ़कर बली राजा ने इन्द्रपुत्र (इन्दुल) द्वारा सुरक्षित होने के नाते युद्ध के लिए शोध प्रस्थान कर दिया । इन्दुल ने स्तम्भन मंत्र द्वारा अभिमंत्रित बाण से तालन आदि की सेनाओं को स्तम्भित कर दिया । दिन में सुख शर्मा अपने तीन लाख सैनिकों द्वारा युद्ध किया, और रात्रि हो जाने पर इन्दुल जी सौ राज कुमारों को साथ लेकर युद्धार्थं उस रण-स्थल में गया । उनके घोड़े हरित् (हरे) वर्ण (रंग) के थे, और कुमार गण योगी के वेष बनाये थे । शत्रु की सहस्रों संख्या की उस बड़ी सेना को नष्ट कर घर में सुखपूर्वक रहते थे । इस प्रकार दोनों सेनाओं का अविराम गति से छ: मास तक युद्ध हुआ, जिसमें क्रमशः बलखानि (मलखान) की वह विशाल सेना नष्ट होने लगी । २४-२९

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन

नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त । १८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

दृष्ट्वा सैन्यनिपातं च बलखानिर्महाबलः । सम्प्राप्य मानसों पीडां युद्धार्थं विमुखोऽभवत् ॥१
 देवसिंहं समाहूय त्रिकालज्ञं महामतिम् । तं मन्त्रं मन्त्रयामास कार्यसिद्धिर्था भवेत् ॥२
 श्रुत्वोवाच महायोगी देवसिंहो महाबलः ॥३
 महेन्द्रतनयः कश्चित्सर्वशस्त्रास्त्रकेविदः । त्वत्सैन्यं रेधयित्वा वै दिव्यास्त्रेण दिवामुखे ॥४
 रात्रौ स्वयं समागम्य करोति बलसंक्षयम् ॥५
 अतस्त्वं मत्सहायेन तालनेन समन्वितः । कृष्णांशेन समागम्य शक्तिपुत्रं शुभाननम् ॥६
 विजयी भव शीघ्रं हि नो चेदायां यमक्षयम् ॥७
 इति शुत्वा वचस्तस्य देवसिंहस्य भाषितम् । यत्नं चकार बलवान्भ्रातृमित्रसमन्वितः ॥८
 एकविंशाब्दकृष्णांशे सम्प्राप्ते युद्धकोविदे । सेनां निवेशयामास पोतेषु हयवाहनः ॥९
 अर्द्धसैन्यं च तत्रैव स्थापयित्वा महाबलः । अर्द्धसैन्ये शक्तिपुत्रो दक्षिणां दिशमागमत् ॥१०
 हयारुदाश्रम ते शूराः सर्वे युद्धसमन्विताः । कपाटं दृढमुद्धाटच नगरान्तमुपाययुः ॥११
 हत्वा ते रक्षणः सर्वल्लिङ्ठयित्वा पुरं शुभम् । रिपोर्तुर्गं समासाद्य चक्रुः शत्रोर्महाक्षयम् ॥१२

अध्याय १९ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाबली बलखानि (मलखान) ने अपनी सेना का ह्रास देखकर मानसिक पीड़ा का अनुभव करते हुए युद्ध बन्द करने का आदेश प्रदान किया, पश्चात् तीनों काल के ज्ञाता एवं बुद्धिमान् देवसिंह (डेबा) को बुलाकर कार्य की सफलता के हेतु उनसे मंत्रणा करना आरम्भ किया। उनकी बातों को सुनकर महाबली एवं महायोगी देवसिंह ने कहा—इन्द्र के किसी पुत्र ने, जो सभी शस्त्र एवं अस्त्रों के प्रयोग में अत्यन्त निपुण है, प्रातःकाल ही अपने दिव्यास्त्र द्वारा तुम्हारी सेना को अवरुद्ध (रोक) कर देता है। पश्चात् रात्रि में स्वयं आकर उनके निधन करता है, इसलिए मेरी सहायता से तुम तालन और उदयसिंह को साथ लेकर उस सुन्दर इन्द्र पुत्र पर शीघ्र विजय प्राप्त करो, अन्यथा शीघ्र नष्ट होकर यमपुरी पहुँच जावोगे। देवसिंह की ऐसी बात सुनकर बलवान् बलखानि (मलखान) ने अपने भाइयों तथा मित्रों के सहयोग से प्रयत्न करना आरम्भ किया। उस समय उदयसिंह की इक्कीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस युद्ध के पण्डित उदयसिंह ने अपनी सेना को पोत (जहाजों) में छिपा दिया, आधी सेना को उसी स्थान (जहाज में) पर रखकर शेष आधी सेना समेत दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया, उनके सैनिक अत्यन्त युद्ध-कुशल एवं अश्वारोही थे । १-८३। नगर के दरवाजे पर पहुँचकर अत्यन्त दृढबद्ध उस दरवाजे (किवाड़) को खोलकर वहाँ के रक्षकों का हनन करते हुए भीतर नगर को लूटना आरम्भ कर दिया। पश्चात् शत्रु के दुर्ग पर पहुँचकर वहाँ के शत्रु-सैनिकों के संहर करने के अनन्तर राजा के

राजोऽन्तः पुरमागत्य कृष्णांशो बलवन्नरः । ददशे सुन्दरीं बालां पद्मिनीं पद्मलोचनाम् ॥
सप्तालिभिर्युतां रम्यां गीतनृत्यविशारदःऽम् ॥१०
बलाद्वोलां समारोप्य लुण्ठयित्वा रिषोर्गृहम् । जगाम शिबिरे तस्मिन्यत्र जातो महारणः ॥११
बलखानिस्तु बलवान्देवतालनसंयुतः । जघान शावर्वीं सेनामिन्दुलास्त्रेण पालिताम् ॥१२
मुखवर्माप्मागत्य सेनाध्यज्ञं रिषोः सुतम् । सर्वतस्तं स्वकीयास्त्रैर्जग्नुस्ते मदविह्वलाः ॥१३
हते तस्मिन्महावीर्ये जयत्तः क्रोधसूच्छितः । सेनामुज्जीवयाचक्रे शक्तपुत्रः ग्रतापवान् ॥१४
श्यालं च मुखवर्माणं सञ्जीव्य स्वगृहं यथौ । तत्र दृष्ट्वा जनान्सर्वान्बहुरोदनतत्परान् ॥१५
विस्मितः स यथौ गेहं यथा पूर्वं तथाविधिः । न ददर्श प्रियां तत्र सखीभिः सहितां मुने ॥१६
आर्यसिंहगृहं गत्वा पृष्ट्वान्सर्वकारणम् । जात्वा संतुष्टितं गेहं शत्रुभिः शस्त्रकोविदैः ॥१७
रुरोद मुभूषां वीरो हा प्रिये मदविह्वले । दर्शयाद्य मुखं रम्यं त्वत्पतिस्त्वदं समुत्सुकः ॥१८
इत्येवं रोदनं कृत्वा वडवोपरि संस्थितः । धनुस्तूणीरमादाय खड्गं शत्रुविमोहनम् ॥
एकाकी स यथौ क्रुद्धो निशि यत्र स्थितो रिषुः ॥१९
एतस्मिन्समये वीरो बलखानिर्महाबलः । दृष्ट्वा तां सुन्दरीं बालां विलाप भृत्यं मुहुः ॥२०
हा इन्दुल महावीर हा मद्वन्धो प्रियङ्कर । त्वद्घोग्येण शुभा नारी रूपयौवनशालिनी ॥२१
दर्शनं देहि मे शीघ्रं गृहाणाद्य शुभाननाम् । इत्युक्त्वा मूर्च्छितो भूत्वा मानसे पूजयच्छिवाम् ॥२२

अन्तःपुर में उदयसिंह पहुँच गये । वहाँ कमल के समान विशाल नेत्रवाली उस सुन्दरी पद्मिनी नारी को देखकर, जो अपनी सातों सखियों समेत नृत्य-गायन में ही समय व्यतीत किया करती थी, सखियों समेत उसके डोले को साथ ले अपने शिविर में चले आये, जहाँ वह भीषण युद्ध हुआ था । इधर बलवान् बलखानि (मलखान) ने देव और तालन की सहायता से इन्दुल की अध्यक्षता में संग्राम करने वाली उस शत्रु-सेना का विध्वंस करके सेनाध्यक्ष शत्रु-पुत्र सत्यवर्मा को चारों ओर से घेरकर उसे धराशायी कर दिया । उन मदोन्मत्तों द्वारा सत्यवर्मा के हनन होने पर अत्यन्त कुद्ध होकर प्रतापी शक्त-पुत्र जयन्त (इन्दुल) ने सेना समेत अपने साले को जीवितकर अपने भवन को प्रस्थान किया । वहाँ सभी लोगों को रुदन करते देखकर सदैव की भाँति अपनी प्रेयसी के महल में गये, किन्तु मुने ! सखियों समेत अपनी प्रिया को वहाँ न देखने पर आर्यसिंह के महल में जाकर उन्होंने सभी कारणों का पता लगाया । विदित हुआ कि—शस्त्र निपुण शत्रुओं ने घर को लूटकर उसका अपहरण कर लिया है । १९-२० । वह वीर अत्यन्त रुदन करने लगा—हा, प्रिये, मदविह्वले ! शीघ्र अपने सुन्दर मुख को दिखाओ, तुम्हारा पति तुम्हें देखने के लिए अधीर हो रहा है । इस प्रकार विलाप समेत रुदन करके धनुष-बाण और शत्रुओं को मोहित करने वाले खड्ग को लेकर घोड़ी पर बैठकर कुद्ध होकर अकेला ही रणस्थल में पहुँच गया । उसी समय बलशाली बलखानि (मलखान) उस परम सुन्दरी कामिनी को देखकर अत्यन्त विलाप करने लगा । हा, इन्दुल, महावीर, हा मेरे बन्धु प्रियकारक ! यह रूप-यौवन सम्पन्न एवं परम सुन्दरी तुम्हारी ही प्रिया होने के योग्य है, कहाँ छिपे हो, शीघ्र दर्शन देकर इस कल्याणमुखी को अपनाओ । इस प्रकार विलाप करके शिव की मानसिक आराधना करते हुए बलखानि (मलखान) मूर्च्छित हो गये । उसी बीच महाबली इन्द्रपुत्र

तस्मिन्काले च सम्प्राप्तः शक्तपुत्रो महाबलः । जयान शात्रवीं सेनां कृष्णांरेनैव पालिताम् ॥२३
 दृष्ट्वा सैन्यनिपत्तं च तालनो वाहिनीपतिः । सिंहनादं ननादोच्चैः सिंहिन्युपरि संस्थितः ॥२४
 न जयः सैन्यनाशेन तद वीर भविष्यति । मां हृत्वा जहि मत्सैन्यं घोगिन्बालस्तरूपक ॥२५
 इति शुत्वा वचस्तस्य शक्तपुत्रो भयञ्ज्ञरः । जयान हृदये वाणान्स तु खड्गेन चाच्छिनत् ॥
 स्वभलेन पुनर्वर्तो दंशदानास वक्षसि ॥२६

इन्दुले मूर्च्छिते तस्मिन्वडवा दिव्यरूपिणी । आकाशेऽपरि सम्प्राप्य जयन्तं समबोधयत् ॥२७
 तदा स दालस्त्वरितः कालास्त्रं चाप आदधे । तेन ज्ञातो महाञ्छब्दस्तालनः स ममार ह ॥२८
 मृते सेनापतौ तस्मिन्कृष्णांशो मदविद्वलः । न भोगर्णेण सम्प्राप्य जगर्ज च मुहुर्मुहुः ॥२९
 इन्दुलः क्रोधत्ताम्राक्षस्त्वास्येदं शरमाददे । वहित्तिभूतं तभस्त्र स्वयोगेन महाबलः ॥
 कृत्वा शोद्रं यथौ शत्रुं स तु वायव्यमादधे ॥३०

स्वयोगेनैव कृष्णांशः पीत्वा वायव्यमुत्तमम् । पुनर्जगाम तत्पाश्वं कलैकः^१ स हरेः स्वयम् ॥३१
 तथाविधं रिष्युं दृष्ट्वा शक्तपुत्रो महाबलः । गन्धवास्त्रं समादाय मोहनायोपचक्रमे ॥३२
 पुनर्योगबलेनैव तदस्त्रं संक्षयं गतम् । वारुणं शरमादाय तस्योपरि समाक्षिप्त ॥३३
 स्वयोगेनैव कृष्णांशो जलं सर्वं मुखेऽकरोत् । एवं सर्वाणि चास्त्राणि पीत्वा शीत्वा पुनःपुनः ॥३४

(इन्दुल) ने उदयसिंह की अध्यक्षता में युद्ध करने वाली सेना का विघ्वंस कर दिया । उपरान्त नायक तालन ने उस सेना को नष्ट होते देखकर सिंहिनी घोड़ी पर बैठकर सिंहनाद किया—वीर ! केवल सेनाओं के विघ्वंस करने से तुम्हारी विजय नहीं होगी । बालस्तरूप घोगिन् ! पहले मुझे धराशायी करो । पश्चात् मेरी सेनाओं का हनन करो । उस भीषण इन्दुल ने इतना सुनकर तालन के हृदय पर बाण का प्रहार किया । उसे उन्होंने खड़ग से काट दिया । पश्चात् अपने भाले से वक्षस्थल में आधात कर उन्हें मूर्च्छित भी कर दिया । इन्दुल के मूर्च्छित होने पर दिव्य रूप धारण करने वाली घोड़ी आकाश में पहुँच गई, वहाँ उन्हें चेतना प्राप्त हुई । उस समय उस बालक ने कालास्त्र को अपने धनुष पर रखा । जिससे महान् शब्द और तालन की मृत्यु हो गई । सेनापति के निधन हो जाने पर आकाशमार्ग से पहुँचकर उदयसिंह बार-बार गर्जना करने लगे । उस सथम इन्दुल ने क्रुद्ध होकर अरिन-बाण का प्रहार किया, जिससे पूर्ण आकाश अग्निमय दिखाई देने लगा । पश्चात् उसने वायव्य अस्त्र का प्रयोग किया । १८-३०। उदयसिंह अपने योगबल द्वारा उसका पान करके एकदम उनके पाश्व में पहुँच गये । महाबली इन्द्र-पुत्र ने शत्रु की धृष्टता को देखकर उनके मोहनार्थ गन्धवास्त्र का प्रयोग किया, किन्तु, योगबल द्वारा पुनः वह अस्त्र नष्ट हो गया । उसके ऊपर उन्होंने वारुणास्त्र का प्रयोग किया, उदयसिंह ने अपने योगबल द्वारा उसका पान कर लिया । इस प्रकार बाहुशाली एवं संयमी उस उदयसिंह ने प्रसन्नचित्त होकर उनके सभी-अस्त्रों का बार-बार पान करके उनके प्रयत्न को निष्फल कर दिया । उस समय कुद्ध होकर इन्दुल

१. एका कला यस्मिन्स इति विग्रहः ।

ययौ शीघ्रं प्रसन्नात्मा बाहुशाली पतेन्द्रियः । इन्दु लस्तु तदा कुद्रोऽशिनीं त्यक्त्वा भुवि स्थितः ॥
 चर्म खड्गं गृहीत्वाशु खड्गयुद्धमचीकरत् ॥३५
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता देवाद्याः सर्दभूमिपाः । ददृशुस्तन्महद्युद्धं सर्वविस्मयकारणम् ॥३६
 प्रातःकाले च सम्प्राप्ते बलखानिर्महाबलः । ददर्श बालकं रम्यं जटाजिनस्मभित्वम् ॥३७
 श्रेण कर्षितो वीरः शकपुत्रः प्रतःपवान् । बलखानेः पितुर्बन्धोः शपथं कृतवान्त्स्वयम् ॥३८
 स्वखड्गेनैव कृजग्निंश शिरस्त्व हराम्यहम् । नो चेन्मे द्वषिता माता नाम्ना स्वर्णवती लती ॥
 इत्युक्त्वा खड्गमादय ययौ शीघ्रं रुद्धन्वितः ॥३९
 बलखानिस्तु तं ज्ञात्वा त्यक्त्वास्त्रं प्रेमकात्तरः । पुत्रान्तिकमुपागम्य दन्तं चेदमन्नवीत् ॥४०
 हे इन्दुल महाभाग पितृमातृयशस्कर । आह्लादप्राणसदृश स्वर्णवत्यज्ञमानस ॥४१
 धूर्वं हृत्वा च नां वीर स्वपितृव्यं ततः पुनः । तथैवोदयसिंहं च देवसिंहं तथा कुलम् ॥
 मुखी भव महावीर गेहे वै मुखवर्मणः ॥४२
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य ज्ञात्वा च स्वकुलं शिशुः । त्यक्त्वा खड्गं पतित्वा च स्वपितृव्यस्य पादयोः ॥
 कृतवान्नरोदनं गाढमपराधानिवृत्तये ॥४३
 उवाच मधुरं वाक्यं शृणु तात मम प्रिय । नारीयं द्वषिता वेदैर्नृणां मोहप्रदायिनी ॥४४
 देवो वा मानुषो वापि पन्नगो वापि दानवः । आर्यं नारीमयैर्जलैर्बन्धनाय समुद्यतः ॥४५

ने घोड़ी से उतर पृथिवी पर स्थित होकर खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया । उसी बीच देवसिंह आदि राजाओं ने उस भीषण युद्ध की ओर दृष्टिपात किया, जिसे देखकर उन लोगों को महान् आश्चर्य हुआ । ३१-३६। प्रातःकाल होने पर महाबली बलखानि (मलखान) ने उस सुन्दर बालक (इन्दुल) को देखा, जो जटा एवं मृगचर्म धारणकर सुशोभित हो रहे थे । प्रतापी इन्द्रपुत्र वह उस समय अत्यन्त श्रिगत दिखाई देता था । उसने अपने पिता की, जो बलखानि (मलखान) के भाई होते थे, शापथ की—‘कृष्णांश (उदयसिंह) ! इसी अपने खड्ग द्वारा तुम्हारा शिरश्छेदन करँगा ।’ यदि ऐसा न किया तो मेरी माता स्वर्णवती (सोना) को दूषित (असती) समझना । इस प्रकार दृढ़तापूर्वक प्रतिज्ञा करके वह दोषपूर्ण होकर हाथ में खड्ग लेकर शीघ्र वहाँ पहुँच गया । बलखानि (मलखान) ने उसे देखकर प्रेम गदगद होने के नाते अपने अस्त्र के त्यागपूर्वक पुत्र के समीप पहुँचकर कहा—इन्दुल ! महाभाग एवं माता-पिता को यश प्रदान करने वाले तुम आह्लाद (आल्हा) के प्राण समान तथा स्वर्णवती (सोना) के मानस अंग हो, इसलिए वीर ! पहले मेरा वध करो, पश्चात् अपने अन्य पितृ (चाचा) उदयसिंह, देवसिंह और समस्त कुल-कुटुम्ब का निधन करके सुखवर्मा के घर रहकर सुख का अनुभव करो । उनकी ऐसी बातें सुनकर उस बालक ने उन्हें अपने ही कुल में उत्पन्न जानकर खड्ग द्वार रखकर शीघ्र अपने पितृव्य (चाचा) के चरण पर शिर रखा, और अपने अपराध की क्षमा के लिए अत्यन्त रुदन करते हुए कहा—मेरे प्रिय तात ! वेदों में बताया गया है—स्त्रियां पुरुषों को मोहित करती हैं, वह देव, मनुष्य, पन्नग अथवा दानव कोई भी हो, अतः ये दूषित हैं, आर्य ! यह नारीमय जाल आबद्ध करने के लिए ही सदैव उच्यत रहता है । ३७-४५। आज मुझे

सोऽहमाजन्मशुद्धस्य पितुराह्लादकस्य च । गेहे जातो जयन्तश्च शक्पुत्रः स्वयं विभेऽ ॥४६
पद्मिन्या जनितं मोहं गृहीत्वा ज्ञातवान्न हि । क्षमस्व मम मन्दस्य शेषमज्ञानजं पितुः ॥४७
इत्युक्त्वा स पुनर्बल्तो रुरोद स्तेहकातरः । सेनामुज्जीवयामास तालनं च महाबलम् ॥४८
इति श्रुत्वा वचस्तस्य कृष्णांशो वचनं शिशोः । परमानन्दमागम्य हृदये तमरोपयन् ॥
उत्सवं दारायामास तत्र देशे जने जने ॥४९

आर्यसिंहस्तु तच्छ्रुत्वा नानाद्रव्यसमन्वितः । ददौ कन्यां विधानेन पद्मिनीमिन्दुलाय वै ॥५०
शतं हृष्यांस्तथा नागान्मुक्तामणिविभूषितान् । कन्यार्थं ताव्ददौ राजा जामात्रे बहुभूषणम् ॥५१
प्रस्थानमकरोत्तेषां स त्रेष्णा वाक्यगद्गदः । ते तु सर्वे मुदा युक्ताः स्वगेहं शीघ्रमाययुः ॥५२
उषित्वा मासनेकं तु तस्मिन्मार्गं भयनके । कीर्तिसागरमासाद्य चकुस्ते बहुधोत्तवम् ॥५३
आह्लादस्तु प्रसन्नात्मा मुतं पत्नीसमन्वितम् । दृष्ट्वा विप्रान्समाहृय ददौ दानान्यनेकशः ॥५४
दशहारात्यनगरं सम्प्राप्तः स्वकुलैस्तस्ह । कृष्णांशस्य महाकौर्तिर्जिता तोके जने जने ॥५५
पृथ्वीराजस्तु तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं यथौः सा तु वै पद्मिनी नारी दुर्वासिः शापमोहितः ॥५६
अप्सरस्त्वं स्वयं त्यक्त्वा भूमौ नारीत्वमागता । द्वादशाब्दप्रमाणेन सोखित्वा जगतीतले ॥५७

इसका पूर्ण अनुभव हो रहा है—यद्यपि मैं इन्द्र का पुत्र जयन्त हूँ, और पिता आह्लाद (आल्हा) के जो आजन्म विशुद्ध हैं, कुल में जन्म ग्रहण किया तथापि इस पद्मिनी के मोह में विभोर होकर मैंने इस पर ध्यान कभी नहीं दिया ; अतः मुझ मन्दभागी एवं अज्ञानी का अपराध क्षमा करने की कृपा करें । इतना कहकर वह बालक स्नेह से अधीर होकर पुनः रुदन करने लगा । मैंने सेना समेत महाबली तालन को जीवित कर दिया है, उस बालक की इस बात को सुनकर उदयसिंह ने परमानन्द निमग्न होकर उसे अपने अङ्ग (गोद) में बैठा लिया । पश्चात् उसी प्रदेश में प्रत्येक मनुष्यों में महाद् उत्सव सुसम्पन्न कराया । आर्य सिंह ने भी इस समाचार को सुनकर अनेक भाँति के द्रव्य समेत उस पद्मिनी कन्या का पाणि-ग्रहण इन्दुल के द्वारा सविधान सुसम्पन्न कराया तथा मुक्ता (मोती) और मणियों से विभूषित अनेक गजराज एवं अत्यन्त आभूषण अपने जामाता (जामाई) को प्रदान किया । अनन्तर उन लोगों के प्रेम वाक्य से गद्गद होकर अपने घर लौट आये और उन सबने भी आनन्दानुभव करते हुए अपने देश के लिए प्रस्थान किया । ४६-५२ । एक मास की यात्रा में उस भीषण मार्ग की समाप्ति करके कीर्तिसागर पर पहुँचकर उन लोगों ने अनेक भाँति के उत्सव की आयोजना की । आह्लाद (आल्हा) ने अत्यन्त प्रसन्न होकर पत्नी (पुत्र-वधू) समेत पुत्र को देखकर द्वाहृणों को निर्मंत्रित कर अनेक भाँति के दान प्रदानकर उन्हें तृप्त किया । पश्चात् दशहार नगर के प्रत्येक प्राणी अपने कुटुम्ब समेत वहाँ एकत्र होकर उदयसिंह की विशाल कीर्ति का यशोगान करने लगे, जो प्रत्येक प्राणियों में व्याप्त होने ने नाते अत्यन्त दूर तक विस्तृत हो गई । पृथिवीराज ने भी इसे सुनकर महान् विस्मय प्रकट किया । दुर्वासा के शाप के कारण उस पद्मिनी स्त्री ने अप्सरा पद का त्यागकर इस भूतल में मनुष्य (नारी) रूप में जन्म ग्रहण किया था । बारह वर्ष की आयु

यक्षमणा मरणं प्राप्य स्वर्गलोकमुपाययौ । नवमासान्कुतो वासस्तया चाह्नादमन्दिरे ॥५८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामैकोनविंशोऽध्यायः । १९

अथ विंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

मुने पाञ्चालदेशे तु राजासीद्वलवर्द्धनः । तस्य पत्नी विशालाक्षी जलदेवीति विश्रुता ॥१
बिसेनवंशभूपालो वेदतत्त्वविशारदः । नस्त्रीकः पूजयामास वरुणं यादसां पत्तिम् ॥२
तस्य पुत्राव॒भौ जातौ इत्रधर्मपरायणौ । लहरो ज्येष्ठतनयो मयूरध्वज एव हि ॥३
द्वादशाब्दवया भूत्वा मयूरध्वज एव सः । आज्ञया ज्येष्ठदद्योऽपि स्कन्ददेवमतेष्यत् ॥४
यतेन्द्रियस्तथा मौनी वानप्रस्थपरायणः । पञ्चाब्दं तद्वत्ती भूत्वा जपध्यानपरोऽभवत् ॥५
तदा प्रसन्नो भगवान्सेनानीरपिभूः स्वयम् । स्वरूपं दर्शयामास सर्वाश्रिर्यसमन्वितम् ॥६
मयूरध्वज एवापि दृष्ट्वा सर्वमयं शिशुम् । देवसेनासहायं च तुष्टाव शूक्षण्या गिरा ॥७

तक वह इस जगत् में सुशोभित रही । तदुपरान्त यक्षमा रोग से पीड़ित होकर पुनः स्वर्ग चली गई ।
उसने आह्नाद (आह्वा) के महल में केवल नव मास ही निवास किया था । ५३-५८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त । १९।

अध्याय २०

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुते ! पाञ्चाल (पंजाब) देश में बलवर्द्धन नामक राजा राज्य करता था । उसकी विशालाक्षी पत्नी का नाम ‘जलदेवी’ था । वेदतत्त्व निपुण एवं विसेन वंशावतंस उस राजा ने जलाधिनायक दम्पती (स्त्री-पुरुष) वरुण की आराधना की, जिससे उनके दो पुत्ररत्न उत्पन्न हुए, जो नितान्त क्षत्रिय धर्म के ही पारायण करने वाले थे । ज्येष्ठ का नाम लहर और कनिष्ठ (छोटे) का नाम मयूरध्वज रखा गया । बारह वर्ष की अवस्था में मयूरध्वज ने अपने ज्येष्ठ भाई की आज्ञा प्राप्तकर स्कन्द देव की आराधना आरम्भ की । उसने संयम और मौन धारणकर पाँच वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम की भाँति रहकर जप ध्यान को सविधि सम्पन्न किया । पञ्चात् अग्निपुत्र एवं सेनानायक भगवान् स्कन्द ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने आशर्चर्यजनक स्वरूप के दर्शन देने की कृपा की । मयूरध्वज ने उस सर्वमय देव को देखकर जो उनके इष्टदेव थे, स्तिर्ग्रथ वाणी द्वारा उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा की । १-७

मधूरध्वज उचाच

जदति ते वपुर्दिव्यविश्रहं नयति रार्वदा देवतागणान् ।
पिबति मात्रियं दुग्धमृत्तमं वधति सर्वदा दैत्यदानवान् ॥८

नमस्ते देवसेनेश महिषासुरमर्दनः । षडानन महाबाहो तारकप्राणनाशक ॥९
प्रसन्नो थव सर्वात्मनुहशक्तिधरःस्य । किङ्कूरं पार्वीं भां नित्यं शरणागतवत्सल ॥१०
इति श्रुत्वा स्तुतिं तस्य सेनानीस्तमुवाच वै । किं तेऽभीष्टं नृपथ्रेष्ठ नतः सर्वमहाप्यसि ॥११
इथ्युक्तस्तेन देवेन भूयतः प्राह नम्नश्ची । बलं मे देहि भगवन्सहायं कुरु सर्वदा ॥१२
तथेत्युक्त्वा तु तं स्कन्दस्तत्रैवान्तर्दद्यै धुनः । स नृपस्तु प्रसन्नात्मा कारयामास वै पुरम् ॥१३
नाम्ना मधूरनगरं नरवृन्दसमन्वितम् । द्वियोजनायामधुतं स्कन्ददेवेन रक्षितम् ॥१४
लहरो नामः तद्वन्धुर्द्विदशाब्दप्रयत्नतः । वरुणं पूजयामास नदीनदसमन्वितम् ॥१५
तदा प्रसन्नो भगवान्वरुणो यादसां पतिः । वरं ज्ञौरीति वचनं प्रेमणेवाच महोपतिम् ॥१६
इति श्रुत्वाऽपृतमयं वचनं लहरो नृपः । तुष्टाव श्लक्षण्या वाचा पाशिनं पयसां पतिम् ॥१७

लहर उचाच

यस्य चित्तं महज्ज्ञेयं तपो बलसमन्वितम् । अतः प्रदेतास्ते नाम नमस्तुभ्यं प्रचेतसे ॥१८
रुणद्वि पयसां वेगं न केनाप्यवरोधितः । अतस्त्वं वरुणो नाम नमस्ते वरुणाय वै ॥१९
दैत्यानां दन्धनार्थाय देवानां जयहेतवे । दिव्यः पाशस्त्वयानीतः पाशिने ते नमोनमः ॥२०

मधूरध्वज ने कहा—तुम्हारी इस दिव्य शरीर की जय हो, जो देवगणों का (सेनाती) रूप में संचालन करती हुई केवल अपनी माता के दुग्ध का ही पान करके समस्त दैत्य-दानवों का वध करती है । देवसेना के अधीश्वर, महिषासुर के विध्वंसक, छः मुख वाले, महाबाहो एवं तारकासुर के हन्ता आपको नमस्कार है । सर्वात्म भू ! गुहशक्तिधारी मुझपर आप सदैव प्रसन्न हों, तथा शरणागत दत्सल ! मुझ सेवक की रक्षा कीजिये । इसे सुनकर स्कन्द ने कहा—नृपथ्रेष्ठ ! तुम क्या चाहते हो, कहो ! मुझसे सभी कुछ प्राप्तकर सकोगे । देव स्कन्द के इस प्रकार कहने पर नम्रता पूर्वक राजा ने कहा—‘भगवन् ! मुझे वल प्रदान करके सर्वदा मेरी सहायता करने की कृपा करें’। इसे स्वीकार कर भगवान् स्कन्द उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये, और उस राजा ने प्रसन्न होकर एक नगर का निर्माण कराया जिसका नामकरण ‘मधूरनगर’ हुआ, उसमें अनेक जाति के मनुष्य निवास करते थे, तथा वह दो योजन में विस्तृत और स्कन्ददेव से सुरक्षित था । उनके भाई लहर ने भी बीस वर्ष तक अत्यन्त प्रयत्नं पूर्वक नदी-तट समेत वरुण की उपासना की । उस समय प्रसन्न होकर वरुण भगवान् ने प्रेमवाणी द्वारा राजा से कहा—नृप ! वर की याचना करो ! इस अमृतमयीवाणी को सुनकर राजा लहर ने अपनी स्त्रियोग्यवाणी द्वारा जलाधिपति एवं पाश (कांस) वस्त्रधारी उन वरुण को प्रसन्न किया ।८-१७

लहर ने कहा—तपोबल युक्त होने के नाते आपका चित्त महत्त्वपूर्ण है, इसीलिए ‘प्रचेता’ आपका नामकरण हुआ है, मैं उस प्रचेता को नमस्कार कर रहा हूँ । जल के उस वेग को, जो किसी के द्वारा रोका न जा सके, आप अनायास रोक लेते हैं, अतः आपका ‘वरुण’ नाम हुआ, मैं उस वरुण को नमस्कार करता हूँ । दैत्यों को आबद्ध करने एवं देवों के विजयार्थ आपने दिव्यपाश अस्त्र को अपनाया,

इति स्तुतस्तदा देवो राजा तेनैव धोमता । नगरीं कारयामास लाहरीमथ चोत्तमाम् ॥२१
त्रियोजनायामयुतां चतुर्वर्णसमन्विताम् । स्वयं च ग्रामरक्षार्थं तत्रोदास जलाधिपः ॥२२
भूपस्तु तत्प्रसादेन प्राप राज्ञीं शुभाननाम् । रादी नाम भहश्रेष्ठा ज्ञेयः देवाङ्गनोपमा ॥२३
तस्यां स जनयामस्तु मुतान्योडशसम्मितान् । धर्तराष्ट्रांशजान्मुख्यान्गजुल्यबलान्वितान् ॥२४
तत्प्रश्वात्कन्यका जाता नामा भदनमञ्जरी । द्वादशव्वदवयःप्राप्ते सुतायाः स तु भूपतिः ॥२५
देवसिंहं वरं मत्वा चन्द्रवंशिनमुत्तमम् । प्राहृप ज्येष्ठतनयं प्रेषयामास भूपतिः ॥२६
रणधीरस्तु तत्यो लक्ष्मुद्रान्वितो बल्ते । सहखशूरसहितः प्राप्तवान्स महावतीम् ॥२७
नत्वा परिमलं भूपं तदीयान्कुलशालिनः । स्वहेतुं वर्णयामास विवाहार्थं स्वमुः स्वयम् ॥२८
श्रुत्वा परिमलो भूपो देवसिंहं भहामतिम् । आहूय वचनं प्राह विवाहार्थं मनः कुरु ॥२९
देवसिंहस्तु बलवान्वितृव्यं प्राह नम्नधीः । विवाहं न करिष्यामि ब्रह्मचर्यं व्रतं मम ॥३०
बहुधा प्रार्थित्सर्वैर्द्विजवृन्दसमन्वितैः । न तत्याज वतं श्रेष्ठं देवसिंहो भहामतिः ॥३१
तदा परिमलो भूपो रणधीरं वचोऽन्नवीत् । सुखखानिरवयं दालो विवाहार्थं वदास्यहम् ॥३२
तथेति. मत्वा स नृपो रणधीरो गृहं ययौ । पितरं कथयामास सुखखानिर्महाव्रतः ॥३३

इसलिए पाशा अस्त्रधारी को बार-बार नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार दरुणदेव की आराधना करके उस बुद्धिमान् राजा ने लहरी नामक नगरी का निर्माण करवाया जो तीन योजन में विस्तृत तथा चारों वर्णों के मनुष्यों से सुशोभित हो रही थी। उस नगरी के रक्षार्थ स्वयं वरुणदेव वहाँ निवास करते थे। तदुपरान्त राजा को वरुण देव की अनुकम्पावश कल्पाणमुखी रानी की प्राप्ति हुई, जिसका नाम रावी था, तथा जो अत्यन्त श्रेष्ठ देवांगना के समान रूप-यौवन सम्पन्न थी। राजा द्वारा उस रानी के गर्भ से सोलह पुत्ररत्न की उत्पत्ति हुई, जो धृतराष्ट्र-पुत्र कौरवों के अंश से उत्पन्न एवं गजराज के समान बली थे। पश्चात् मदन मंजरी नामक एक परमसुन्दरी कन्या का जन्म हुआ। उसकी बाहर वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर राजा ने चन्द्रवंशी देव सिंह के साथ उस कन्या का विवाह करने के विचार से अपने ज्येष्ठ पुत्र को उनके पास भेजा। पुत्र रणधीर ने भी एक लाख मुद्रा एवं सहस्र शूर सामन्तों समेत महावती को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर राजा परिमल तथा उनके वंशजों को नमस्कार करके अपने आगमन का कारण बताया कि—‘मैं अपनी भगिनी के विवाहार्थ ही आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।’ १८-२८। इसे सुनकर राजा ने उस कुशाग्रबुद्धि वाले देवसिंह को बुलाकर कहा—मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम इस विवाह को स्वीकार कर लो। इसे सुनकर बली देवसिंह ने नम्रतापूर्वक अपने पितृव्य (चाचा) से कहा—‘मैंने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का नियम किया है, अतः विवाह करने में असमर्थ हूँ।’ इसे सुनकर विप्रगणों ने भी वहाँ एकत्र होकर उन्हें अनेक भाँति से समझाया, किन्तु उस वीर ब्रतधारी देवसिंह ने अपने व्रत का त्याग करना उचित नहीं समझा। अतः उसी पर दृढ़ रहे। अनन्तर राजा परिमल ने रणवीर से कहा—‘मैं इस सम्बन्ध के लिए सुखखानि नामक बालक को आपको सौंपता हूँ, आप उसी का विवाह स्थिर कीजिये।’ राजा रणधीर ने उसे सहर्ष स्वीकार कर अपने गृह को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर अपने पिता से सुखखानि के व्रत एवं रूपगुण की प्रशंसा की। २९-३३। बीच में महीपति (माहिल) बोल उठे—राजन्! इस

एतस्मिन्नन्तरे धूर्तो महीपतिरुचाच तम् । अयोग्योऽयं विवाहोऽत्र पावकीये कुलेत्तमे ॥३४
 शूद्रीयोऽत्र वरो राजन्वर्णसङ्करकारकः । तस्मात्वं सैन्यसहितो जेतुं तान्गन्तुमर्हसि ॥३५
 कारागारे लोहमये बन्धनं कुरु भूपतेः । मत्कीर्तिः स्वर्गागा नित्यं जगत्यन्ते भविष्यति ॥३६
 जितस्तर्जम्बुको राजा नेत्रसिंहस्तु यो नृपः । तथा गजपतिर्भूषः पृथ्वीराजो महाबलः ॥३७
 आर्यसिंहस्तथान्ये च जितास्ते बलवत्तराः । इति श्रुत्वा वचो रस्यं लहरो नृपतत्तमः ॥३८
 सेनां तंस्थापयामात चतुरङ्गबलान्विताम् । चतुर्लक्षमितां शेषां पालितां षोडशात्मजैः ॥३९
 माघशुक्लदशम्यां च बलखानिं महाबलः । सम्प्राप्तः स्वकुलैस्तार्द्धं चतुर्लक्षबलान्वितम् ॥४०
 देशो पाञ्चालके रस्ये लहरीनगरे स्थितः । द्वादशाब्दे च कृष्णांशे तत्र वासमकारयत् ॥४१
 नृपतेराज्ञया शूरा युद्धाय समुपाययुः । बलखानिस्तु धर्मात्मा दृष्ट्वा शूरांस्तथागतान् ॥
 वीरानाज्ञापयामास स्वकीयान्सङ्करे पुनः ॥४२
 तयोर्युद्धस्भूद्वोरं तेनयोर्लोममर्हणम् । पञ्चमेऽत्रि दिवा प्राप्ते इलखानिर्महाबलः ॥
 कृष्णांशेनैव सहितो रिपोर्वधमकारयत् ॥४३
 पराजिताश्र ते शूरा हतशेषा भयातुराः । तान्दृष्ट्वा षोडशसुता रथं स्वस्तं समाप्तिताः ॥
 युद्धायाभिमुखं जग्मुर्धनुर्बाणविशारदाः ॥४४
 कृष्णांशस्तांस्तथा दृष्ट्वा शरवर्षसमन्वितान् । एकाकी प्रययौ शीघ्रं खडगचर्मधरो बली ॥४५

पावकीय उत्तम कुल के योग्य वह विवाह नहीं है, क्योंकि वर शूद्र से उत्पन्न होने के नाते वर्णसंकर है, अतः उन पर विजय प्राप्त करने के लिए सेना समेत वहाँ अवश्य गमन करो । भूपते ! उन्हें हथकड़ी-बेड़ी से बाँधकर इस लोहे के जेल में अवश्य करो, जिससे आपकी इस अन्तिम अवस्था में आपकी कीर्ति संसार में विचरण करती हुई स्वर्ग तक पहुँच जाये क्योंकि उन लोगों में राजा जम्बूक, राजा नेत्रसिंह, राजा गजपति, महाबली पृथ्वीराज तथा आर्यसिंह और ये अन्य बलवान् नृप हैं, सभी को पराजित कर विजय प्राप्ति की है । इस बात को सुनकर नृपशेष राजा लहर ने अपनी चार लाख की चतुरंगणी सेना को जिसकी अध्यक्षता उनके सोलह युत्र कर रहे थे, नित्य प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया । माघ शुक्ल दशमी के दिन महाबली बलखानि (मलखान) चार लाख सैनिकों समेत अपने कुल कुटुम्ब के साथ पंजाब प्रान्त के लहरी नामक नगरी में पहुँच गये । उनके साथ बारह वर्ष की अवस्था वाले उदयसिंह भी वहाँ रह रहे थे । ३४-४१। राजा की आज्ञा से उनके सैनिकगण ने युद्ध की घोषणा कर दी । धर्मात्मा बलखानि (मलखान) ने आये हुए उन शूरों को देखकर संग्राम में विजयी होने के लिए अपने सैनिक वीरों को आदेश प्रदान किया । दोनों सैनिकों का भीषण एवं रोमाञ्चकारी युद्ध आरम्भ हो गया । पाँचवें दिन महाबली बलखानि (मलखान) ने उदयसिंह को साथ लेकर स्वयं शत्रुओं का वध किया । उस रणस्थल में शत्रु के अनेक सैनिकों ने वीरगति प्राप्त की, और शेष भयभीत होकर भाग निकले । अपनी सेना को तितर-वितर एवं सामने उपस्थित शत्रुओं को देखकर उन सोलह राजकुमारोंने भी जो धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण थे, अपने-अपने रथ पर बैठकर रणस्थल में पहुँचकर युद्ध आरम्भ कर दिया । बाणों की वर्षा करने वाले उन कुमारोंको रणस्थल में उपस्थित देखकर उदयसिंह ने छड़ग और (ढाल) लेकर स्वयं अकेले ही वहाँ

तेषां धनूदि सञ्जिद्य वद्वां तान्युद्गुर्मदाद् । आह्लासाय ददौ वीरः कृष्णांशो रणकोविदः ॥४६

पुत्राणां बन्धनं श्रुत्वा लहरो नृपसत्तमः । प्लावयामास तत्सैन्यं बलखानेर्महात्मनः ॥४७

जलीभूते तथा सैन्ये ज्यन्तो दलवत्तरः । वायव्यास्त्रेण स्मरे शुशोष सकलं जलम् ॥

लहरस्य ततः सेनामुवाह बहुयोजनम् ॥४८

तदा तु भगदान्देवो वरुणो यस्त्वां पतिः । सुतमुद्गाहयामाद लहरस्य महीपतेः ॥४९

लहरोऽपि प्रसन्नात्मा ज्ञात्वांशं जगतीतले । भक्तिं चकार गुद्धानामंशानां परया मुदा ॥५०

दत्त्वा च बहुधा द्रव्यं परिक्रम्य युनःयुनः । स्वान्ते^१ निवेशयामास मासमात्रं प्रसन्नधीः ॥५१

अंशास्तेऽपि महापूजां गृहीत्वा लहरप्रदाम् । दोलामारोप्य तां देवीं स्वगेहाय यथुर्मुदा ॥५२

इति ते कथितं दिप्र कृष्णांशचरितं शुभम् । सुखखानेर्विवाहं च श्रुत्वानन्दमन्ताप्नुयात् ॥५३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणिः चतुर्पुरुगखण्डपरपर्याये
कलियुगीणेतिहाससमुच्चयो नाम विंशोऽध्यायः । २०

पहुँचकर उनके धनुष को नष्ट कर उन मदान्धों को बाँध लिया । पश्चात् रणपिण्डित उदयसिंह ने उन्हें लाकर आह्लाद (आत्मा) को सौंप दिया । ४२-४६। अपने पुत्रों को आबद्ध सुनकर राजा लहर ने महात्मा बलखानि (मलखान) की सेना को जल के प्रवाह में प्रवाहित किया । बलवान् जयन्त ने सेना को जलरूप देखकर अपने वायव्य अस्त्र से शत्रु के सभी जल का शोषण कर दिया और उनकी सेना को अनेक योजन की दूरी पर पहुँचा दिया । जस समय जलाधिनायक भगवान् वरुण देव ने स्वयं राजा लहर की कन्या का विवाह संस्कार सुखखानि के साथ सुमन्पन्न कराया । इसे जानकर राजा लहर अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस भूतल में वे वरुणदेव के सदैव के लिए अनुपम एवं अटलभक्त हो गये । तदनंतर अनेक द्रव्य उन वीरों के मरण पर रखकर उनकी बार-बार परिक्रमा की और प्रसन्नतया उन्हें अपने महल में एक मास तक अतिथि बनाया । वे वीर भी उनकी उस महती पूजा का सादर ग्रहणपूर्वक उस वधु (बहू) को डोला में बैठाकर प्रसन्न होते हुए अपने घर लौट आये । विप्र ! इस प्रकार इस उदयसिंह के चरित को तुमसे वर्णन किया, जिसमें सुखखानि के विवाह को सुनकर तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा । ४७-५३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त । २०।

१. स्वसमीप इत्यर्थः ।

अथैकविंशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्गनम्

ऋषि उवाच

गृहं गत्वा च ते वीरा: किं चक्षुश्चरितं शुभम् । तत्वं कथय विप्रेन्द्र सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः ॥१

सूत उवाच

गृहमागत्य ते सर्वे परितो भूपतेः सभाम् । गत्वा वार्ता तथा चक्रूर्यशा जातो भहरणः ॥२
 श्रुत्वा परिमलो भूपो वाजिवृन्दं क्षयं गतम् । आहूय स च कृष्णांशं चचनं प्राह नम्रधीः ॥३
 सिन्धुदेशो च गन्तव्यं त्वया च बलशालिना । पञ्चलक्षान्हयान्कृत्वा पुनरागच्छ वै गृहम् ॥४
 इति श्रुत्वा तु कृष्णांशो देवसिंहेन संयुतः । स्वर्णभाररसहस्रोष्टानृहीत्वा तरसा ययौ ॥५
 शूरैश्च दशसाहृष्टैस्त्वार्द्धं तत्र समागतः । मध्यरनगरी यत्र चतुर्वर्णसमन्विता ॥६
 प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते मालाकारम्भ्य वै सुता । पुष्पानाम समासन्ना चारम्भे कुसुमार्थिनी ॥७
 कृष्णांशस्तु तदा पूजां कृत्वा देवस्यो मुदा । जगाम विपिनं रम्यं वसन्ते पुष्पनालिके ॥८
 बह्वाश्रययुतं पुष्यं भत्तभ्रमरनादितम् । दृष्ट्वा मुमोह कृष्णांशस्तदर्थं स्वयमुद्यतः ॥९
 एतस्मिन्नन्तरे पुष्पा पुष्पार्थं समुपागता । ददर्श देवसदृशं षोडशाब्दमयं नरम् ॥

आध्याय २१

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषि जोले—विप्रेन्द्र ! घर पहुँचकर उन वीरों ने जो कुछ चरित किया है, उसे सुनाने की कृपा करें, हमलोगों के समक्ष आप सर्वज्ञ हैं ।

सूत जी जोले—उन वीरों ने घर पहुँचने पर राजा (परिमल) की सभा को चारों ओर से अलंकृत करते हुए जिस प्रकार वहाँ युद्ध आदि हुआ था । सभी का वर्णन करके राजा को सुनाया । उन बातों को राजा परिमल ने सुना कि वहाँ की रणस्थली में धोड़ों का अधिक ध्वंस हुआ है, उन्होंने उदयसिंह को बुलाकर नम्रतापूर्वक कहा—सिन्धु प्रदेश में जाकर तुम पाँच लाख धोड़ों का क्रय करके शीघ्र चले आओ । इसे सुनकर उदयसिंह ने देवसिंह को साथ लेकर एक सहस्र भार सुवर्ण ऊँटों पर रखकर और दश सहस्र सेना समेत वहाँ के लिए प्रस्थान किया । वहाँ की मध्यूर नामक नगरी में पहुँचकर, जो चारों वर्णों के मनुष्यों से सुशोभित हो रही थी, प्रातःकाल के समय देखा, एक माली की कन्या, जिसका नाम पुष्पा था, पुष्य के लिए जारही है । देवांश उदयसिंह भी पूजा के उपरान्त प्रसन्न मुखमुद्रा में उसी उपवन में पहुँचे, जहाँ ऋतुराज बसत की छत्रछाया में विकसित कलियाँ आश्चर्य प्रकट कर रही थीं और मतवाले होकर भौंरें उन पर गूंज रहे थे । उस उपवन की छटा देखकर उदयसिंह मोहित हो गये । २-१। उसी बीच वह पुष्पा भी पुष्य संचय के लिए वहाँ आ गई । उसने देखा—यह पुरुष देवता की भाँति सर्वाङ्ग सुन्दर सोलह वर्ष की अवस्था

प्रसन्नवदनं शान्तमिन्द्रनीलमणिद्युतिम्

११०

कृष्णांशस्तु शुभां नारो दृष्ट्वा श्रर्थमुपागतः । पश्चच्छ वचसा तां वै कस्येयं परसुन्दरी ॥

स्वर्गलोकादिहायाता यदि वा पन्नगी स्वयम्

१११

द्विति श्रुत्वा च सा प्राह मालाकारस्य वै सुता । अहं शूद्री महाबाहो पुष्पार्थं समुपागतः ॥१२

पुष्पेणानेन भूपाल तुलिता भूपते शुता । नान्ना पुष्पवती देवी राधेव सगुणावली ॥१३

देवैश्च प्रार्थिता बाला रूपयौवनशालिनी । नकरन्दभयादेवास्तस्या योग्या न वै बलात् ॥१४

शृणु तत्कारणं भूप मकरन्दो यथा भवेत् । नयूरध्वजभूपेन सम्प्राप्ते गुहतो वरः ॥१५

अजेयोऽन्यैश्च कृष्णांशादृते त्वं जगतीतले । तन्मित्रं पृथिवीराजो राजराजः शिवप्रियः ॥१६

स राज्यं कारयामास धर्ममेधं हरिप्रियम् । तदा प्रसन्नो भगवान्यज्ञेशो यशमूर्तिमान् ॥१७

मिथुनं जनयामास पावकात्सुन्दरानन्म् । मकरन्दः सुतो ज्ञेयः कन्या पुष्पवती भता ॥१८

पञ्चमाब्दवया भूत्वा मकरन्दो महाबलः । दुष्टाव तपसा धर्मं वेदधर्मदरायणः ॥१९

द्वादशाब्दवयः प्राप्ते मकरन्दे नृपप्रिये । प्रसन्नो भगवान्धर्मो ददौ तस्मै महाहयम् ॥२०

शिलामयं महावेगं शत्रुसेनाक्षयञ्चूरम् । तस्मयं स्वयमारुह्यं सर्वपूज्यो ह्यभूत्मुखी ॥२१

तस्येदं सुन्दरं दिव्यं विपिनं सुरपूजितम् । भवान्हर्ति वै श्रेष्ठः पुष्पवत्याः कलेवरम् ॥२२

सम्पन्न, प्रसन्नमुख, शान्त और इन्द्रनील मणि की भाँति इसके देह की आभा है। उदयसिंह ने भी उस कल्याणमुखी को देखकर विस्मित हो उठे। उन्होंने उससे पूँछा कि—सुर सुन्दरी की भाँति यह स्त्री किसकी प्रिया है, जो स्वर्गलोक से यहाँ आई है, अथवा स्वयं पन्नगी ही है? इसे सुनकर उस माली की कन्या ने कहा—महाबाहो! मैं शूद्र कुल में उत्पन्न हूँ, यहाँ पुष्प संचय करने आई हूँ। तृप! इसी पुष्प द्वारा वह राजकुमारी तुलित (तौली) की जायगी, जिसका नाम पुष्पावती देवी है, और जो गुण समूहों से सुशोभित राधा की भाँति स्वाति प्राप्तकर चुकी है। उस रूप-यौवन सम्पन्न कुमारी के लिए लालायित होकर देवगण प्रार्थी रहते हैं। मकरन्द के भय से देवगण कोई बल प्रयोग नहीं करते हैं, राजन्! मैं उस कारण को बता रही हूँ, सुनो! राजा मयूरध्वज ने स्कन्द से वरदान प्राप्त किया है कि—उदयसिंह के अतिरिक्त और सभी के लिए तुम इस भूतल में अजेय हो।' तथा उनके मित्र राजा पृथिवीराज हैं, जो राजाधिराज और शिव के अनन्य भक्त हैं। एक बार राजा ने भगवान् विष्णु के प्रसन्नार्थं धर्ममेध नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस समय प्रसन्न होकर भगवान् यज्ञेश ने अग्नि द्वारा सुन्दर मुख वाले मिथुन (जुड़वाँ) सन्तान की उत्पत्ति की जिसमें एक मकरन्द नामक पुत्र और दूसरी पुष्पवती नाम की कन्या हुई। १०-१८। पाँच वर्ष की अवस्था में महाबलवान् मकरन्द ने, जो वेद धर्म का परायण करने वाले थे, अपने तप द्वारा धर्म को प्रसन्न करना आरम्भ किया। पुनः मकरन्द की बाहुबर्ष की अवस्था में भगवान् धर्मदेव ने प्रसन्न होकर उन्हें एक महान् अश्व प्रदान किया, जो पाषाणमय, महावेगवान् एवं शत्रु की सेना का विघ्नकरने वाला था। उस घोड़े को अपनाने के कारण वे सभी के पूज्य तथा सब भाँति से सुखी हुए। यह सुन्दर उपवन उन्होंने का है, जो दिव्य और देवपूजित हैं। पश्चात् उसने यह भी कहा कि—‘पुष्पवती (फुलवा) का रूप सौन्दर्य आपके ही योग्य है। इस बात को सुनकर उदयसिंह अत्यन्त मोहित होकर

इति श्रुत्वा तु द्वचनं कृष्णांशः स्मरपीडितः । ददौ बहुधनं तस्यै मातिन्या गेहमागतः ॥२३
देवतिंहस्तु कालज्ञो ज्ञात्वा योहत्वमागतम् । कृष्णांशं बोधयामास पद्मैः सङ्ख्यसमुद्धृवैः ॥२४
कृष्णांशस्तु ततस्साद्दै देवसिंहेन तन्मयः । सिन्धुदेशं समागत्य क्रीत्वा सर्वहयांस्तदा ॥२५
मासान्ते गृहमागत्य राज्ञे सर्वान्यवेदयत् । पुष्पवत्याः शुभं रूपं ध्यात्वा पुष्पेरितं बलो ॥
कृष्णांशो मोहमागत्य तुष्ट्रव जगदम्बिकाम् ॥२६

कृष्णांश उवाच

देवमाये महामाये नित्यशुद्धस्वरूपिणि । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥२७
मधुकैटभसम्मोहे महिषासुरधातिनि । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥२८
धूम्रलोचनसन्द्वाहे चण्डमुण्डविनाशिनि । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥२९
रक्तबीजासृकपीते सर्वदैत्यभयङ्करे । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥३०
निशुभदैत्यसंहारे शुभ्ददैत्यविनाशिनि । पाहि मां कामदेवार्तं पुष्पवत्यै प्रबोधय ॥३१
इति स्तुत्वा च मुष्वाप स वीरः परमासने । तदा तु शारदा देवी तस्याः स्वप्नप्रदर्शनम् ॥
चकार प्रत्यहं देवी वरदाभयकारिणी ॥३२
एवं गते चतुर्मसे जलवृष्टिकरे मुने । त्रिविंशाब्दवयश्चासीत्कृष्णांशस्य यशस्करम् ॥३३
कार्तिके कृष्णपक्षे तु गतोऽसौ देवसंयुतः । मयूरनगरे रम्ये मकरन्देन रक्षिते ॥३४
पुष्पागृहमुपागम्य तत्र वासमचोकरत् ॥३५

कामपीडित हुए, अनन्तर उसे बहुत-सा धन देकर उसके घर आये। कालदर्शी देवसिंह ने उदयसिंह को उस कुमारी के प्रति मोहित जानकर सांख्यमत के उपदेश द्वारा उन्हें ज्ञान प्रदान किया। तदुपरान्त देवसिंह के साथ उदयसिंह ने मिन्धु देश में पहुँचकर घोड़ों का क्रय करके गास की समाप्ति तक घर पहुँचकर राजा को निवेदनपूर्वक सौप दिया। एक दिन पुष्पा द्वारा वर्णन किये गये पुष्पवती के शुभरूप का ध्यान करके मोहित हो जाने पर उदयसिंह ने जगदम्बिका की आराधना की। १९-२६

उदयसिंह ने कहा—हे देवमाये, महामाये एवं नित्यशुद्ध स्वरूप धारण करने वाली देवि ! कामदेव द्वारा मैं अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ, मेरी रक्षा कीजिये और पुष्पवती को मेरे प्रति सचेष्ट करने की कृपा कीजिये। मधु कैटभ को समोहित करने वाली तथा महिषासुर का उन्मूलन करने वाली देवि ! मुझ कामपीडित की रक्षा करते हुए पुष्पवती को प्रबोधित कीजिये। धूम्रलोचन को भस्म करनेवाली एवं चण्ड-मुण्ड की विनाशिनी देवि ! आपने रक्तबीज के रक्त का पान करके समस्त दैत्यों को भयभीत किया है। निशुभ और शुभ दैत्य का वध करने वाली देवि ! मुझ कामपीडित की रक्षा करते हुए आप उस पुष्पवती को मेरे प्रति अनुरागपूर्ण कीजिये। इस प्रकार देवी की आराधना करते हुए वे अपने उत्तमासन पर निद्रित हो गये। उस समय स्वप्न में शारदा देवी ने दर्शन दिया। इसी प्रकार वरदहस्ता भगवती ने प्रतिदिन उन्हें दर्शन देकर वर्षाकाल के चार मास व्यतीत करा दिया। मुने ! उस समय उदयसिंह की तेइस वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। २७-३३। कार्तिकमास के आरम्भ में देवसिंह को साथ लेकर उदयसिंह ने मकरन्द रक्षित उस मयूर नगर को प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर उसी पुष्पा मालिनी के घर

एकदा सुन्दरं हारं कृष्णाशेनैव गुणितम् । मणिमुक्तायुतं रम्यं नानाउष्णसमन्वितम् ॥
 गृहीत्वा प्रययौ पुष्पा पुष्पवत्याश्रमनिदे ॥३६
 सा तु गैवेयकं दृष्ट्वा त्वष्ट्रेव रचितं प्रियम् । हृदि कृत्वा भुमोहाशु कामिनी रतिरूपिणी ॥३७
 अये सखि महामाये सत्यं कथय मेऽग्रतः । गैवेयकमिदं रम्यं कुतः प्राप्तं मम प्रियम् ॥३८
 इति श्रुत्वा वचस्तस्या मकरन्दभयातुरा । पुष्पां पुष्पाञ्जलिं कृत्वा वचनं प्राह तां प्रति ॥३९
 जीवदानं च मे दोहे तर्हि ते कथयाम्यहम् । तथेत्युक्तवतीं कन्यां साह भे भगिनी शुभे ॥४०
 कृष्णा नाम महारम्या सर्वलोकविमोहिनी । महावत्यां गृहं तस्या मदगृहे सा समाधता ॥
 तया विरचितं सुभूत्वैवेयकमनुत्तमम् ॥४१
 इति श्रुत्वा तु वचनं देवी पुष्पवती स्वयम् । उवाच मालिनीं ब्राक्षं शीघ्रं दर्शय तां मम ॥४२
 मकरन्दभयादेवास्तथान्यै पुरुषा भुवि । मत्समीये गतिर्नास्ति तेषां सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥४३
 इति श्रुत्वा वचो घोरं पुष्पा तु भयकातरा । नोवाच वचनं किञ्चित्पृछ्यमाना पुमः पुनः ॥४४
 तदा उष्पवती प्राह किं ते भयमुपागतम् । साह मे भगिनी रम्या यदि त्वद्गेहमागता ॥४५
 मोहितः पुरुषः कञ्चिद्विलासां हि भजिष्यति । तर्हि मे मरणं ज्ञेयं कुलधर्मपरायणे ॥४६

में रहने लगे । एक बार उदयसिंह द्वारा गूंथे गये एक सुन्दर हार को लेकर जिसमें पुष्पों के बीच-बीच में मोतियों और मणियों को लगाकर उसे अत्यन्त मनमोहक बनाया गया था, पुष्पा ने पुष्पवती के भवन में जाकर उसे प्रदान किया । उस अनुमत हार को देखकर, जो त्वज्ञा की भाँति रचित एवं अत्यन्त प्रिय था, रति के समान सुन्दरी उस कामिनी ने मोहित होकर उसे हृदय में धारण कर लिया (पहन लिया) । पश्चात् उसमें कहा—अये सखि ! महामाये । मेरे समझ सत्य कहना, मेरे मन को हरण करने वाले इस सुन्दर हार को तूने कहाँ से प्राप्त किया है । इस बात को सुनकर मकरन्द के भय से भयभीत होकर पुष्पा ने अपनी अञ्जलि में पुष्प रखकर उससे कहा—आप मुझे जीवन-दान प्रदान करने की कृपा करें तो मैं सभी कुछ बता सकती हूँ । कुमारी के अभय दान देने पर उसने कहना आरम्भ किया—शुभे ! कृष्णा नाम की मेरी एक भगिनी है, जो अत्यन्त सुन्दरी एवं समस्त लोक को मोहित करने वाली है, उसका घर महावती (महोबा) राजधानी में है, इस समय मेरे यहाँ आई हुई है । शुभे ! उसी ने इस मनोहर हार को गूँथा है । ३४-४१ । इसे सुनकर देवी पुष्पवती ने मालिनी से कहा—मुझे उसे शीघ्र दिखाओ । तुम जानती हो कि इस भूतल में मकरन्द के भय से देव अथवा कोई भी मनुष्य मेरे पास तक पहुँच नहीं सकता है, मैं यह सत्य कह रही हूँ । इस दारण वाणी को सुनकर भयभीत होकर पुष्पा उस समय कुछ भी न कह सकी, यद्यपि उसने बार-बार पूछा भी । पुष्पवती ने उसकी ओर देखकर कहा—तुझे किसी बात का भय हो रहा है क्या ? उसने कहा—वह मेरी भगिनी परम सुन्दरी है, उसके यहाँ आने पर मोहित होकर किसी पुरुष ने बल प्रयोग द्वारा उसके साथ उपभोग कर लिया तो उस समय निश्चित मेरा मरण हो जायगा । आपसे इसलिए कहा कि आप कुल धर्म का सतत पालन करती हैं । इसे सुनकर धर्ममूर्ति पुष्पवती ने फिर

इति श्रुत्वा पुष्पवती पुनः प्रोवाच धर्मिणी । मधूरध्वज एवापि मत्प्रिता नीतितत्परः ॥
 अयोऽयं ये करिष्यन्ति ते यास्यन्ति यमालयम् ॥४७
 अतस्त्वं श्रीघ्रामादाय तद्वेलां च मन्दतिके । दर्शयित्वा च तां रम्यां पुनर्गच्छ गृहं स्वकम् ॥४८
 तथेति मत्वा सा शूद्री गृहमागत्य भासिनी । कृष्णांशं वर्णयामास यथा प्रोक्तं तथा सुने ॥४९
 इति श्रुत्वा वचो रम्यं कृष्णांशो बलदत्तरः । नासा वेद्यं स्वदं कृत्वा पुनर्नारीमयं व्रपुः ॥
 जगाम पुञ्यया सार्द्धं दोलामारुद्धं दीर्घवान् ॥५०
 तत्र पुष्पवती देवी दृष्ट्वा कृष्णां मन्त्रोरमाम् । उवाच वन्ननं पुष्पां शृणु मे वचनं सखि ॥५१
 यादृशीयं शुभा नारी तादृशः पुरुषो मया । स्वप्नान्ते प्रत्यहं दृष्टो रसपाणो मया सह ॥५२
 कृष्णांशश्च स तामाह देशराजसुनुतो वरः । उदयो नाम विख्यातस्तस्याहं ललिता सखी ॥५३
 प्रत्यहं रचितं हारमधं पूजनहेतवे । स वीरस्तु गृहीत्वा तं देवीं पूज्यै न्यवेदयत् ॥५४
 एकदा प्रस्थितं वीरं पुष्पमध्ये शनैःशनैः । उदासीनं च तं दृष्ट्वा प्रोवाचाहं समागता ॥५५
 मोहोऽयं ते कुतः प्राप्तः स त्वं कथय मा चिरस्त् । इत्युक्तः स तु भासाहं स्वप्नांते प्रत्यहं सखि ॥५६
 मया दृष्टा शुभा नारी इप्पौवनशःलिनी । तद्वियोगेन दुःखार्तं मुखं म्लानत्वमागतम् ॥५७
 इति श्रुत्वा पुष्पवती तामाह रुचिराननाम् । विवाहो मे यदा तेन सार्द्धं रम्यो भविष्यति ॥५८
 तदा त्वं तर्पयिष्यामि बहुद्वयैः शुभानने । अतस्त्वं गच्छ तत्पाश्वं शीघ्रं तस्मै निवेदय ॥५९

कहा—तुम भली भाँति जानती हो कि मेरे पिता मधूरध्वज अत्यन्त नीतिज्ञ पुरुष हैं इस प्रकार का अयोग्य कार्य जो पुरुष करेगा, उसे यमराज के यहाँ प्रस्थान करना पड़ेगा। इसलिए तू उसके डोले को शीघ्र मेरे पास लाकर उस सुन्दरी को मुझे दिखाने के पश्चात् पुःः अपने धर चली जाना। उसे स्वीकार कर उस शूद्र जाति की स्त्री ने घर आकर उदयसिंह से उन सभी बातों को बताया। मुने! इस सुन्दर वाणी को सुनकर बलवान् उदयसिंह ने अपने नासिका को स्वयं छेदकर आभूषण धारण किया। अपना परमसुन्दरी स्त्री का वेष बनाकर वहं पराक्रमी डोले में बैठकर पुष्पा के साथ चल दिया। उस परम सुन्दरी कृष्णा को देखकर पुष्पवती ने पुष्पा से कहा—सखे! मेरी एक बात सुनो! जिस प्रकार इस सुन्दरी का रूप रङ्ग है, इसी भाँति के पुरुष को मैं नित्य स्वप्न में देखती हूँ, जो आकर मेरे साथ रमण करता है। उसे सुनकर उदयसिंह ने कहा—देशराज के श्रेष्ठपुत्र, जिनका उदयसिंह नाम है, मैं उनकी ललिता (प्रिय) सखी हूँ। मैं उनके पूजन के लिए नित्य हार गूँथती हूँ, जिसे ग्रहणकर वे पूजन के उपरान्त देवी को समर्पित करते हैं। ४२-५४। एक बार उपवन के पुष्पों के बीच धीरे-धीरे जा रहे थे, उस समय उनका मुख कुछ मलीन था, मैंने वहाँ पहुँचकर उनकी उदासीनता को देखकर कहा—आज आप चिन्तित क्यों हैं, मुझसे शीघ्र बताइये। इसे सुनकर मुझसे उन्होंने कहा—‘सखि! मैं एक रूप यौवन सम्पन्न परम सुन्दरी स्त्री को नित्य स्वप्न में देखता हूँ, उसके वियोग दुःख से मेरा चित्त बहुत म्लान हो रहा है। इसे सुनकर पुष्पवती ने उस सुन्दरी से कहा—शुभानने! जिस समय मेरा शुभ विवाह उनके साथ सुसम्पन्न होगा, उस समय मैं तुम्हें अनेक भाँति के द्रव्यों से तृप्त कर दूँगी। इसलिए तुम उनके पास शीघ्र जाकर मेरा उनसे निवेदन करना। इसे

इति श्रुत्वा तु तद्वाचं पुष्पा ब्रेमसमन्विता । दोलामारोप्य तां कृष्णां स्वगेहं गन्तुमुद्यता ॥६०
 दुर्गद्वारे तु प्राप्तायां तदोलायां च भार्गव । मकरन्दो महावीर्यो द्वादशाब्दवया बली ॥६१
 दोलासमीपमागत्य ददर्श इचिराननाम् । कृष्णाभिन्नीवरश्यामां चारुनेत्रां मनोहराम् ॥६२
 मुमोह द्वलवान्वीरो गोदर्घट कलांशकः । ब्रेणोवाच स चार्वज्ज्ञं शृणु मे वचनं प्रिये ॥६३
 मद्गृहं शीघ्रमागच्छ पत्नी मम भवाधुना । इति श्रुत्वा तु सा कुञ्जा विहसोवाच भूपतिम् ॥६४
 कुलीनस्त्वं महावीर वत्तिकुण्डत्समुद्भवः । षोडशाब्दवयास्तूणी ॑शनिभल्लसमन्वितः ॥६५
 त्वद्योग्या भूपतेः कन्या चन्द्रसूर्यान्वयस्य है । अहं शूद्धी हीनतमा कथं योग्या तवेह है ॥६६
 कन्याहं शूद्रजातेश्च ब्रह्मचर्यवत्रे स्थितः । इति श्रुत्वा तु वचनं नकरन्दो नृपात्मजः ॥६७
 बलाद्गृहीत्वा तां नारीं पर्स्परं हृदये स्वयम् । कृष्णांशस्तु तदा तस्मै दत्त्वा हृदयवेदनाम् ॥
 मोहयित्वा नृपसुतं सदेवः स्वगृहं यथौ ॥६८
 मकरन्दस्तु सम्बुद्धो नदनाप्रिप्रीडितः । गेहमागत्य पुष्पायाः सर्वं तस्यै न्यवेदयत् ॥६९
 तत्स्नेहकातरं भूपं मकरन्दं महाबलम् । पुष्पाह श्लृक्षण्यः वाचा शृणु पर्थिदसत्तमः ॥७०
 महावती पुरी रम्या तत्र कृष्णागृहं शुभेष । त्वद्गृयाच्च गता गेहं कृष्णांशस्य च सा सखी ॥७१
 रोदनं कुर्वती गाढं तव निन्दनतत्परा ॥७२

सुनकर ब्रेम गदगद होकर पुष्पा कृष्णा को डोला में बैठाकर अपने घर चल दी । भार्गव ! दुर्ग के दरवाजे पर उस डोला के आने पर महापराक्रमी मकरन्द ने, जिसकी आयु उस समय बारह वर्ष की थी, उस डोले के समीप आकर उस सुन्दरमुखी कृष्णा को देखा, जो नील कमल की भाँति श्यामल वर्ण, विशाल सुन्दर नेत्र एवं मन को हरण करने वाली थी । गोवर्धन की कला से उत्पन्न वह वीर उसी समय मुग्ध हो गया । ब्रेम से गदगद होकर उसने कहा—‘प्रिये ! मेरी एक बात स्वीकार करो ! मैं चाहता हूँ कि इसी समय मेरे भवन में चलकर मेरी पत्नी होना शीघ्र स्वीकार करो ।’ इसे सुनकर कृष्णा ने मन्द मुसुकान करते हुए राजकुमार से कहा—महावीर ! आप कुलीन एवं अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुए हैं, आपकी सोलह वर्ष की अवस्था दिखाई देती है (अर्थात् विवाह के योग्य हैं) और तरकस, तलवार एवं भाले आदि अस्त्र से युक्त भी हैं । ५५-६५। आपके इस रूप के अनुरूप सोमवंशी या सूर्यवंशी राजा की कोई कन्या ही हो सकती है । मैं शूद्रकुल में उत्पन्न हूँ, जो छोटी जाति की कहीं जाती है, इसलिए आपके योग्य मैं कैसे हो सकती हूँ । मैं शूद्रकुल में उत्पन्न होकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर रही हूँ । इसे सुनकर राजकुमार मकरन्द ने बलात् उसे पकड़कर अपने हृदय (छाती) से लगा लिया । उस समय उदयसिंह उसके हृदय में एक पीड़ा उत्पन्न करते हुए उसे मोहित कर चले गये, पश्चात् देवसिंह के साथ अपने घर पहुँचे । उधर मुकरन्द चेतना प्राप्त करने पर काम की अग्नि से संतप्त होने लगा । और उसी समय पुष्पा के घर जाकर उससे सभी वृतान्त कहा । कृष्णा के स्नेह में निमग्न उस महाबली मकरन्द को देखकर पुष्पा ने नग्रात्मापूर्वक कहा—श्रेष्ठराजन् ! आप मेरी बातें सुनें ! महावती (महोबा) राजधानी में कृष्णा का घर है, आपसे भयभीत होकर वह मेरी सखी उदयसिंह के घर चली गई वह अत्यन्त रुदन करती हुई आपकी निन्दा कर

१. शनिदत्तभल्लसमन्वित इत्यर्थः । अत एव—एकोननवतिमेपदे ‘शनिभल्लूकरं ग्राही’—इत्युक्तं संगच्छते ।

आगमिष्यति वै वीरो बलैस्सार्द्धं महाबलः । अतस्त्वं सर्वसैन्यानि सज्जीभूतानि वै कुरु ॥७३
जितो येन महावीरः पितृव्यो लहरस्तव । विवाहं कारयामास तद्वन्धोः सुतया सह ॥७४
इति श्रुत्वा वन्नो घोरं मकरन्दो महीपतिः । शतघ्नीः स्थापयामास दुर्गकूटेषु दारुणाः ॥७५
स्वसैन्यं च समाहृय त्रिलक्षं खडगसंयुतम् । तत्रैव स्थापयामास राष्ट्ररक्षार्थमुद्यतः ॥७६
कृष्णांशस्तु गृहं प्राप्य बलखानिमुवत्तच तत् । श्रुत्वा स च महावीरो भ्रातृमित्रसमन्वितः ॥
पञ्चलक्षबलैस्सार्द्धं मयूरनगरं यथौ ॥७७
शतघ्न्यः पञ्चसाहस्रा गजा दशसहस्रकाः । एकलक्षं हयाः सर्वे शेषा ज्ञेयाः पदातयः ॥
उवित्वा पक्षमात्रं तु मार्ये पञ्चालके तदा ॥७८
मकरन्दस्तु तच्छृत्वा शनिभल्लकरः स्थितः । सेनामाज्ञापयामास जहिं शत्रून्महाबलान् ॥७९
श्रुत्वा पदातयो लक्षं शतघ्नीर्वात्माददन् । ते तु वै सप्तसाहस्राश्वकुः शत्रुबलक्षयम् ॥८०
ग्रामस्य दक्षिणद्वारे हयारूढात्तदा ययुः । भुशुण्डीसेपणीशत्किंखडगयुद्धविशारदाः ॥८१
एदलक्षं हयास्सर्वे मकरन्दस्य भूपतेः । तयोश्चत्तीन्महद्युद्धं तुमुलं हयसेनयोः ॥८२
तदा तु पश्चिमद्वारे गजा विंशत्सहस्रकाः^१ । तथा दशसहस्रैश्च शत्रुभिः सह संयुः ॥८३
उष्ट्ररक्षा महावीराश्वत्वारिंशत्सहस्रकाः । बलखान्यादिभिः सार्द्धं युधुर्दिशि चोत्तरे^२ ॥८४

रही थी । जिस महाबली ने आपके पितृव्य (चाचा) लहर को पराजित कर उनकी पुत्री का विवाह अपने भाई के साथ कर लिया, वे वीर उदयसिंह अवश्य आयेंगे अतः आप भी अपनी सेना को सुसज्जित करें । इस भीषण बात को सुनकर राजा मकरन्द ने अपने दुर्ग के दरवाजों पर तोपों को रखाकर खड़गधारी अपने तीन लाख सैनिकों को भी राष्ट्र के रक्षार्थ उसी स्थान में नियुक्त किया । ६६-७६ । उदयसिंह ने अपने गृह पहुँचने पर बलखानि (मलखान) से सभी वृतान्त कहा । उस बलशाली ने उसे सुनकर अपने भाई एवं मित्रों समेत पाँच लाख सैनिकों को साथ लेकर मयूर नगर के लिए प्रस्थान किया । उनकी सेना में पाँच सहस्र तोपें, दश सहस्र हाथी, एक लाख घोड़े और शेष पदाति (पैदल) सेना थी । उसके साथ वे पन्द्रह दिन की यात्रा करके पंजाब प्रान्त के उस मयूर नगर में पहुँच गये । यह आगमन सुनकर मकरन्द ने स्वयं तलवार और भाले को हाथ में लेकर रणाङ्गन में पहुँचकर सेनाओं को आदेश दिया कि—इन महाबली सैनिकों का विघ्वास करो । इसे सुनकर उसके एक लाख के पैदल सैनिकों ने तोपों में अग्नि (पलीता) लगाना आरम्भ किया जिससे उस सात सहस्र सैनिकों द्वारा शत्रु-सेना का विघ्वास होने लगा । दुर्ग के दक्षिण द्वार पर बलखानि (मलखान) के एक लाख अश्वारोहियों के साथ, जो भुशुण्डी शत्कि और खड़ग द्वारा युद्ध करने में अत्यन्त कुशल थे, मकरन्द के एक लाख अश्वारोही सैनिकों ने घोर युद्ध आरम्भ किया । वहाँ पर दोनों अश्वारोही दलों का आपस में भीषण एवं रोमाश्वकारी महान् युद्ध हो रहा था । ७७-८२ । पश्चिम दरवाजे पर बीस सहस्र की सेना दश सहस्र शत्रु-सैनिकों से युद्ध कर रही थी, उसी प्रकार चालीस सहस्र ऊँट की सेना बलखानि (मलखान) आदि वीरों के साथ उत्तर दरवाजे पर घोर युद्ध

१. इकारलोपश्चान्दसः । २. अनुदातेल्लक्षणस्यानित्यत्वाच्छान्दसत्वाद्वा परस्मैपदम् ।

अहोरात्रमभूद्युद्धं तुमुलं लोमहृषणम् । ततः पराजितास्सर्वे बलखानेर्महाबलाः ॥८५
 त्यक्त्वा युद्धं तु ते सर्वे दुदुवुश्च दिशो दश । कृष्णांशो बिन्दुलाख्षो बलखानिः कपोतगः ॥८६
 मनोरथस्थितो देवश्राह्लादस्तु गजस्थितः । पूर्वादिक्रमतो द्वारि गतास्ते रणदुमेदाः ॥८७
 सत्सर्वं खडगमुत्सृज्य चक्रः शत्रुमहादधम् । पराजिताश्र ते शूरा मकरन्दमुपाययुः ॥८८
 वह्निपुत्रस्तुबलवान्वाजिनं च शिलामयम् । शनिभल्लकरग्राही तमारूह्य रणं यथौ ॥८९
 कृष्णांशाश्चाश्र ते शूरा रुध्युसर्वतोदिशम् । तं च कण्ठे ददौ खड्गं बलखानिर्महाबलः ॥९०
 स्वभल्लं देवसिंहश्च तमङ्क्षे च समाहनत् । आह्लादो वक्षसि शरं कृष्णांशः खडगमुत्तमम् ॥९१
 शिलावाजिन्निर्भावेण कश्मलं न जगाम ह । स इष्ट्वा निष्फलान्वीराज्ञगर्ज भैरवं ध्वनिम् ॥९२
 शनिभल्लेन ते सर्वे बभूवूर्मिर्णिता रणे । तेऽव्याः शिलाश्ववेगेन मूर्छिताश्राभवस्थणात् ॥९३
 मकरन्दस्तु बलवान्दद्वचा तान्युद्धुर्मेदान् । प्रसन्नात्मा यथौ गेहं स्वपित्रे तान्यवेदयत् ॥९४
 दृष्ट्वा पराजितान्वीरानरूपणो भयकातरः । महावतीं पुरीं प्राप्य भूपतिं समवर्णयत् ॥९५
 ब्रह्मानन्दस्तु तच्छुत्वा लक्ष्मैन्यस्तस्मितः । इन्दुलेन सहायेन मयूरनगरं यथौ ॥९६
 लिखित्वा निर्ममं पत्रं तद्राजे त्वरितो ददौ । भूमिराजमुत्ताकान्तं दिद्धि मां मनुजर्जभ ॥९७
 कृष्णांशाय सुतां देहि नाम्ना पुष्पवतीं शुभाम् । तो चेन्मत्कठिनैर्बाणैः क्षयं यास्यन्ति सैनिकाः ॥९८

कर रही थी । यह रोमाञ्चकारी युद्ध अविरल गति से दिन-रात चल रहा था । पश्चात् बलखानि (मलखान) के सैनिक पराजित होकर रणस्थल छोड़कर चारों ओर भागने लगे । उस समय विन्दुल (बेन्दुल) पर बैठकर उदयसिंह, कपोत (कबूतर) पर बलखानि (मलखान), मनोरथ (मनोहर) पर देवसिंह (डेबा) और गज पर आह्लाद (आल्हा) स्वार होकर क्रमशः पूर्व आदि दरवाजों पर पहुँचकर अपने तीक्ष्ण खड्ग द्वारा शत्रुओं का वध करने लगे । उनके, अस्त्रों के आघात को सहन न कर सकने के कारण वे शूरवीर रणस्थल से भागकर मकरन्द के पास पहुँचे । अग्नि-पुत्र मकरन्द ने अपने सैनिकों को पलायन करते हुए देखकर अपने शिलामय अङ्ग पर बैठकर तलवार और भाले को सँभालकर रण के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचते ही उदयसिंह आदि वीरों ने उसे चारों ओर से घेर लिया, उपरान्त महावली बलखानि (मलखान) ने खड्ग द्वारा कण्ठ में प्रहार किया, उसी भाँति देवसिंह ने भाले, आह्लाद ने बाण द्वारा वक्षस्थल में और उदयसिंह ने खड्ग का प्रहार किया । किन्तु उस पाषण के घोड़े पर बैठने के नाते उन वीरों के सभी प्रहार निष्फल हो गये । पश्चात् उन्हें निष्फल देखकर उस वीर ने भीषण गर्जना की । और उस भाले द्वारा सभी वीरों को मूर्च्छित किया । उस पत्थर घोड़े के बेग से उनके घोड़े भी मूर्च्छित हो गये थे । ८३-९३ । बलवान मकरन्द ने उन दुःसहवीरों को उसी अवस्था में बांधकर अपने पिता के सामने लाकर उनसे निवेदन किया । वीरों को पराजित देखकर भयभीत होकर रूपन ने शीघ्र महावती (महोबा) आकर राजा से सब वृत्तान्त कहा । उसे सुनकर ब्रह्मानन्द ने इन्दुल को साथ लेकर एक लाख सैनिक समेत मयूर नगर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर एक दिन निर्मम पत्र लिखकर राजा के पास भेजा । नृपवर ! मैं पृथ्वीराज की पुत्री का पति (जमाई) हूँ, मेरा नाम ब्रह्मानन्द है । आप अपनी पुष्पवती नामक कन्या उदयसिंह के लिए सौंप दीजिये, अन्यथा मेरे कठिन बाण प्रहारों द्वारा आपकी सेना

निशम्येति नृपश्रेष्ठो मयूरध्वज एव सः । मकरन्देन सहितो द्वितीयबलसंयुतः ॥
अहोरत्नं कृतं युद्धं तेन सार्द्धं भयप्रदम् ॥१९९
ब्रह्मानन्दस्तु बलवान्बाणयुद्धमचीकरत् । मकरन्दस्य भल्लेन मूर्छितः सोऽपतद्भुवि ॥२००
तदा स्वर्णवतीपुत्रो जयन्तः शक्सम्भवः । स्वविद्यां दर्शयामास मकरन्दाय धीमते ॥२०१
वैष्णवास्त्रप्रभावेन शिलाश्वो भस्म चाभवत् । ब्रह्मास्त्रेण भृगुश्रेष्ठ शनिभल्लोऽपतद्भुवि ॥२०२
नागपाशेन तं बद्ध्वा मकरन्दं महाबलम् । तत्राहं कारयामास कृष्णांशस्य महात्मनः ॥२०३
सेनामुज्जीवयामास स्वकीयामिन्दुलो छली । मञ्जुलं कारयामास मकरन्दो गृहे गृहे ॥
ददौ कन्यां विधानेन बहुद्रव्यसमन्विताम् ॥२०४
मयूरध्वजमूपालो महात्मेहमचीकरत् । नृपाज्ञां ते पुरस्कृत्य यथुः सार्द्धं महावतीम् ॥२०५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरम्यायि
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नामैकविंशोऽध्यायः । २१

नष्ट हो जायगी । नृपश्रेष्ठ राजा मयूरध्वज ने उसे मुनकर मकरन्द को साथ लेकर दो लाख सैनिकों समेत रणस्थल में पहुँचकर शत्रुओं से दिन-रात का भीषण युद्ध आरम्भ कर दिया । बलवान् ब्रह्मानन्द बाण युद्ध कर रहे थे । उसी समय मकरन्द के भाले से मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर गये । स्वर्णवती (सोना) के पुत्र शक्सम्भव जयन्त ने शीघ्र वहाँ पहुँचकर उद्धिमान् मकरन्द को अपनी विद्या की चमत्कृति दिखाई—अपने वैष्णवास्त्र द्वारा उसके शिला अश्व को भस्म करके ब्रह्मास्त्र द्वारा शनि-भाला से उनके हाथ भूमि पर गिरा दिया । भृगुश्रेष्ठ ! उस महाबली मकरन्द को नागपाश में बांधकर उदयसिंह के साथ उसकी भगिनी का विवाह सुसम्पन्न कराते हुए उस बली ने अपनी ओर की सभी सेनाओं को जीवित किया । तुपरान्त मकरन्द ने अपनी राजधानी के प्रत्येक घरों में गहान् माङ्गलिक उत्सव बड़े समारोह के साथ सुसम्पन्न कराया । उस अस्वर पर राजा मयूरध्वज ने अनेक भाँति के द्रव्यों समेत अपनी पुत्री का दान किया । कई दिन के पश्चात् स्नेह विभोर उस राजा की आज्ञा प्राप्तकर ये वीरगण अपनी महावती (महोबा) राजधानी लौट आये । १४-२०५

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त । २१

अथ द्वादिंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

महावत्यं तु सम्प्राप्ने कृष्णांशे बलवत्तरे । मञ्जलं कृतवान्राजा तदा परिगलो बली ॥१
 पुष्पवत्या तया साद्दं गीतनृत्यविशारदः । कृष्णांशः प्रत्यहं गेहे त्रुमोह रसिभिः सह ॥२
 हेमन्तशिशिरे दीरो रहः क्रीडां करोति वै । यथा शकोऽप्सरेभिश्च तथैव हृदयो बली ॥३
 याम्यधर्मं न कृतवान्सर्वस्पर्शविशारदः । एकदा नृत्यज्ञीडायां देवी पुष्पदत्ती स्वयम् ॥४
 कृष्णांशं वचनं प्राह पूर्वजन्मनि को भवान् । इति श्रुत्वोदयो वीरो विहस्योवाच वै वचः ॥५
 नृपोऽहं चन्द्रदासश्च पूर्वजन्मनि हे प्रिये । बाल्यात्प्रभृति मे दुःखं प्राप्तं दैवदिनर्मितम् ॥६
 शालग्रामशिलापूजा प्रत्यहं वै मया कुता । तेन पुण्यप्रभातेन सार्वभौमो बभूव ह ॥७
 मृतेऽहनि तु सम्प्राप्ने शालग्रामे मनो दधौ । सायुज्यं मे हरेश्व्रासीत्स्वयं ब्रह्मप्रसादतः ॥८
 कलिना प्रार्थितो विष्णुः कालात्मा परमेहतरः । स्वदेहान्मां तु निष्काव्य भूमौ जनिमचीकरत ॥९
 यदा यदा हि धर्मस्य गतानिर्भवति वै प्रिये । युगाधर्मस्य मर्यादास्थापनाय भवाम्यहम् ॥१०
 सत्ये तु मानसी पूजा देवानां तृप्तिहेतवे । त्रेतायां वह्निपूजा च यज्ञदानादिका क्रिया ॥११

अध्याय २२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—बलवान् उदयसिंह के महावती (महोदा) नगरी में पहुँचने पर राजा परिमल ने मांगलिक उत्सव कराया । उदयसिंह प्रतिदिन सखियों समेत पुष्पवती के साथ नृत्य-गान करते हुए उसके साथ मनोरञ्जन में ही सम्पूर्ण समय व्यतीत करने लगे । जिस प्रकार इन्द्र हेमन्त शिशिर के दिनों में अप्सराओं के साथ क्रीडा में अनुरक्त रहते हैं, उसी भाँति उदयसिंह भी उसके साथ क्रीडा करने लगे । उन्होंने अपनी निपुणता से उसका सर्वस्पर्श करने पर भी उसके साथ उपभोग नहीं किया । एक बार नृत्य करते समय पुष्पवती देवी ने स्वयं उदयसिंह से पूँछा—आप पूर्व जन्म में कौन थे । इस बात को सुनकर उदयसिंह ने हँसकर कहा—प्रिये ! पूर्वजन्म में चन्द्रहास नामक राजा था । बाल्यकाल से ही मैं दैवयोग से दुःखी था । भगवान् शालग्राम की मूर्तिपूजा प्रतिदिन करता था जिसके पुण्यप्रभाव से मैं राजा हुआ । १-७। प्राणवियोग के समय मेरा मन शालग्राम की मूर्ति में आसक्त हो गया था, इसलिए स्वयं व्रह्मा की प्रसन्नतावश भगवान् में मेरी सायुज्य मुक्ति हो गई थी । अनन्तर कलि ने कालात्मा परमेश्वर विष्णु की प्रार्थना की । उन्होंने अपनी देह से मुझे पृथक कर इस भूतल में जन्म ग्रहण कराया । प्रिये ! जिस-जिस समये धर्म का नाश सम्भव होता है, युगधर्म की मर्यादा के स्थापनार्थ मैं उन दिनों जन्म ग्रहण करता हूँ । सत्ययुग में देवताओं के प्रसन्नार्थ मानसी पूजा की जाती है, उसी भाँति त्रेता में यज्ञदान आदि क्रिया रूप अग्नि पूजा, द्वापर में देवों के

द्वापरे मूर्तिपूजा च देवानां वै प्रियङ्कारी । कलौ तु दारणे प्राप्ते ब्रह्मपूजनमुत्तमम् ॥१२
 अहं हंसः सत्ययुगे त्रेतायां यज्ञपूरुषः । हिरण्यगर्भश्च प्रिये द्वापरेऽहं सुखप्रदः ॥
 शालग्रामः कलौ प्राप्ते देवानां तृप्तये हृहम् ॥१३
 मुनयो देवतास्सर्वास्तथा पितृगणाः प्रिये । त्तर्वे ते तृप्तिमायान्ति शालग्रामस्य पूजनात् ॥१४
 द्विजातिभिस्त्रिवर्णेश्च पूजनं चन्दनादिकैः । शूद्रैश्च स्नानंमात्रेण भक्तिभावेन पूजत् ॥१५
 म्लेच्छैश्च दर्शनं पुण्यं विनयादूक्तिभावतः । शालग्रामः स्वयं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ॥
 तस्य दर्शनमात्रेण क्षयं यास्यन्ति वै मत्ता: ॥१६
 इति ते कार्येत देवि युगमर्यादमुत्तमम्^१ । पुरा त्वं कस्य तनया सत्यं कथय मेऽचिरम् ॥१७

पुष्पवत्युवाच

पूर्वजन्मनि वेश्याहं चन्द्रकान्तिरिति श्रुता । गाननृत्यादिकं वाद्यं देवस्याद्ग्रे मया कृतम् ॥१८
 तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गलोकमुपागता । देवैश्च प्रार्थिता तत्र रूपयौवनशालिनी ॥१९
 ब्रह्मचर्यं न तत्याज स्वर्गलोकेऽपि वै हृहम् । तेन पुण्यप्रभावेण चौबा ब्राणमुताऽभवत् ॥
 अनिरुद्धः स्वयं ब्रह्म मम पाणिं गृहीतवान् ॥२०
 कलिना प्रार्थितो देवो मम स्वामी स्वहेतवे । अर्चावितारमासाद्य मार्कण्डेयस्थलं गतः ॥२१

प्रियार्थ मूर्तिपूजा और भीषण कलियुग के समय ब्रह्मपूजन उत्तम बताया गया है । प्रिये ! सत्ययुग में हंस, त्रेता में यज्ञपूरुष और द्वापर में हिरण्यगर्भ मैं ही हूँ, तथा कलियुग में देवों की तृप्ति के लिए सुखदायक शालिग्राम मैं ही होता हूँ । प्रिये ! शालिग्राम के पूजन करने से महर्षि, देवता और पितृगण ये सभी प्रसन्न होते हैं । द्विजाति (उपनयनधारी) तीनों वर्णों को चन्दनादि द्वारा शालिग्राम की सप्रेम पूजा करनी चाहिए । शूद्रों को केवल स्नानमात्र करके भक्ति-भाव द्वारा ही उनका पूजन करना बताया गया है, और म्लेच्छों को भक्तिभाव से नन्द्र होकर उनके दर्शन करने से पुण्य प्राप्त होती है । क्योंकि शालिग्राम सत्-चित् और आनन्द रूपी शरीर धारण करने वाले स्वयं ब्रह्म है । उनके दर्शनमात्र से मल (पाप) नष्ट हो जाते हैं । देवि ! इस प्रकार मैंने तुम्हें युग-मर्यादा की उत्तम व्याख्या बता दी । अब तुम मुझसे सत्य कहो कि—पूर्वजन्म में तुम किसकी पुत्री थी । १८-१९

पुष्पवती बोली—पूर्वजन्म में मैं चन्द्रकान्ति नामक वेश्या थी । मैंने देवता के सामने नृत्य-गायन वाद्य किये थे, जिस पुण्य के प्रभाव से मुझे स्वर्ग की प्राप्ति हुई थी । वहाँ मेरे रूप-यौवन पर मुग्ध होकर देवों ने मेरी प्रार्थना की, किन्तु उस स्वर्गलोक में रहकर भी मैंने अपने ब्रह्मचर्य को भली-भाँति सुरक्षित रखा था । उसी पुण्य के प्रभाव से मैंने ब्राणासुर के यहाँ उसकी ऊंचा नाम की पुत्री होकर जन्म ग्रहण किया, उसमें ब्रह्मरूप अनिरुद्ध ने तब मेरा पाणियहण किया था । १८-२०। पश्चात् कलि ने अपने स्वार्थ के लिए मेरे स्वामी की प्रार्थना की, इसीलिए वे अर्चावितार द्वारा उत्पन्न होकर मार्कण्डेय के यहाँ चले गये वहाँ

स्वप्रसादस्य महिमा दर्शितस्तेन तत्र वै । अत्रैव स्थितिमर्यादो दारुरूपस्य मे प॑पतेः ॥२२
 अहं तस्याज्ञया स्वामिङ्गम्बूकस्य सुताऽभवम् । दिव्यरूपसमायुक्ता नाम्राहं विजयैषिणी ॥२३
 कृतं ममैद मरणं त्वद्भ्रात्रा बलखानिना । मकरन्दस्य भगिनी भूत्वा त्वां पतिमङ्गता ॥२४
 तेन दोषेण त्वद्भ्राता यातनां तीव्रगागतः^२ । राजा इन्नगठस्यैव गेहे गजपतेः स्वदम् ॥
 इत्युक्त्वा मौनमास्थाय रेमे पत्यः सप्तं मुदा ॥२५
 होलिकासमये प्राप्ते मलनां त्नेहदुखिता । सुतां चन्द्रावली रम्यां स्वप्नाते सा ददर्श ह ॥
 रुरोद निशि दुःखेन स्वसुतास्नेहकातरा ॥२६
 तदोदयो महानीरो ज्ञात्वा रोदनकारणम् । शूरैश्च दशसाहूक्लैस्सङ्घं बहुधनैर्युतः ॥
 एकाकी प्रययौ वीरो यत्र चन्द्रावलीगृहम् ॥२७
 महीपतिस्तु तच्छ्रुत्वात्त्वा कारणमुत्तमम् । पश्चाज्जगाम कार्यार्थीं स तु दुर्योधनांशकः ॥
 ललीठाठभिति ख्यातं ग्रामं यादवपालितम् ॥२८
 दीर्घसेनो नपस्तत्र विलक्षबलसंयुतः । अष्टौ सुताश्च तस्यासन्ऱ्यपैवनशालिनः ॥२९
 कामसेनः प्रसेनश्च गहासेनस्तथैव च । सुखसेनो रूपसेनो विष्वक्सेनो मधुव्रतः ॥
 मधुपश्च क्रमाज्जाता यादवांशाश्र्व यादवाः ॥३०

उन्होंने अपने प्रसाद की महिमा उन्हें दिखाई । काष्ठरूप मेरे पति की वह मर्यादा आज यहाँ भी स्थित है । स्वामिन् । मैं उन्हीं की आज्ञा शिरोधार्य कर पुनः राजा जम्बूक के यहाँ उनकी पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई थी । उस समय मुझे दिव्य रूप की प्राप्ति थी, और मेरा नाम विजयैषिणी (विजया) था । वहाँ तुम्हारे भाई बलखानि (मलखान) द्वारा मेरा निधन हुआ था । (इस समय आप जानते ही हैं कि) मकरन्द की भगिनी होकर मैंने आपको पति रूप में प्राप्त किया है और उसी दोष से आपके भाई ने राजा गजपति के यहाँ स्वयं जाकर अत्यन्त तीव्र यातना का अनुभव किया था । इतना कहकर पति के भाथ स्थित मैना की भाँति वह मौन हो गई । होली के अवसर आने पर एक दिन रानी मलना ने अत्यन्त स्नेह के नाते दुःखी होकर अपनी सुन्दरी पुत्री चन्द्रावली को स्वप्न में देखा । उस रात वे अपनी पुत्री के स्नेह से अत्यन्त अधीर होकर सम्पूर्णरात रुदन करती हुई दुःखों का ही अनुभव करती रह गई थीं । उस समय उनके रुदन के कारण को जानकर उदयसिंह के दश सहस्र शूर सामन्तों समेत अनेक भाँति के द्रव्यों को लेकर अकेले ही चन्द्रावली के घर को प्रस्थान किया । २१-२७। उनके प्रबल शत्रु महीपति (पृथ्वीराज) ने भी कारण जानकर उनके पश्चात् ही वहाँ के लिए प्रस्थान किया था । क्योंकि दुर्योधन के अंश से उत्पन्न होने के नाते उसमें स्वार्थ की तत्परता अधिक मात्रा में थी । यदुवंशियों से सुरक्षित एक 'ठाठ' नामक गाँव था, जिसमें वीरसेन नामक राजा अपने तीन लाख सैनिकों समेत रहता था । उसके रूप यौवन सम्पन्न आठ पुत्र थे—कामसेन, प्रसेन, महासेन, सुखसेन, रूपसेन, विष्वक्सेन, मधुव्रत और मधुप यहीं क्रमशः उनके नाम थे, जो यादव के अंश से उत्पन्न यादवों की मर्यादा-वृद्धि कर रहे थे । वहाँ की सभा में पहुँचकर नर केसरी

१. पत्यः । २. क्रियाविशेषणम् ।

तत्र गत्वा च कृष्णांशस्सभायां नरकेसरी । दण्डवत्प्रणामे भूत्वा वीरसेनं महीपतिम् ॥३१
 मलनालिखितं पत्रं दत्त्वा राज्ञे महामनाः । दशभारं सुवर्णस्य पुनर्वासमचीकरत् ॥३२
 व्यञ्जनानि विचित्रणि भुक्त्वा यादवसंयुतः । चन्द्रावलीं समागत्य कुशलं च न्यवेदयत् ॥३३
 प्रेमोत्तुका च भगिनो कृष्णांशं प्राह दुखिता । भवान्द्वयवद्वया वीर तदाहं च विवाहिता ॥३४
 दिंशद्वद्स्तत्तो जातो विस्मृता पितृमातृभिः । समर्थेन त्वया वीर संस्मृता भगिनी स्वयम् ॥३५
 अद्य से सफलं जन्म जीवितं सफलं च से । तन्धुर्दर्शननात्रेण सर्वं च सफल मम ॥३६
 प्रसन्नात्मोदयस्तत्र भगिनीं प्राह नम्रधीः । जम्बुकेन गृहं सर्वं त्रुणितं बलशःलिना ॥३७
 तस्य दुःखेन भूपालो भयभीतो दिने दिने । महाकृष्णे विजयो जम्बुकाच्चाभयोऽभवत् ॥३८
 महीराजस्तु बलवान्हरोध नारीं मम । मया विवाहितो भ्राता ब्रह्मा तत्सुतया सह ॥३९
 पुनश्च सिंहलद्वीपे ज्यन्तार्थं वयं गताः । एवं विधानि दुःखानि ब्रह्मनि द्वाभद्रन्यितुः ॥४०
 अतस्त्वां प्रति सुप्रीता वयं भगिनिकिङ्कराः । मृदुवाक्यमिति श्रुत्वा तदा चन्द्रावली भुदा ॥४१
 गेहं निवासयामास स्वकोयं प्रेमविह्वलः । एतस्मिन्नन्तरे धूर्तो महीपतिरूपायौ ॥४२
 सभायां वीरसेनस्य राजा तेजैव सत्कृतः । वार्तान्तरं समासाद्य तमुवाच महीपतिः ॥४३
 निष्कासिताश्र ते सर्वे राजाह्लादादयः खलाः । चोरितो नृपतेः कोशो हीनजात्यैर्महाबलैः ॥४४

उदयसिंह ने राजा वीरसेन को दण्डवत्प्रणाम करने के उपरान्त उन्हें दश भार सुवर्ण समेत मलना का लिखा पत्र प्रदान किया । पश्चात् उन यादवों के साथ उत्तम विचित्र भाँति के व्यंजनों का आस्वादन करके चन्द्रावली के महल में जाकर उनसे सब कुशल क्षेम सुनाया । प्रेम से अधीर होकर उसने अपना दुःख प्रकट किया—वीर ! जिस समय मेरा विवाह हुआ था, आप दो वर्ष के थे । आज दीस वर्ष का दिन पूरा हो रहा है, पिता-माता ने कभी मेरा स्मरण ही नहीं किया । मुझे एकदम भूल गये । वीर ! तुम्हीं इस योग्य हुए कि मेरा स्मरण तो किया । आज मेरा जन्म एवं जीवन सफल हो गया, कहाँ तक कहाँ भाई के दर्शन से मेरा सभी कुछ सफल हो गया ॥२८-३६। उस समय प्रसन्न होकर उदयसिंह ने नम्रतापूर्वक अपनी भगिनी से कहा—सबल जम्बूक ने आकर घर को लुटवा लिया था, उसी दुःख से दुःखी एवं भयभीत होकर राजा अपना दिन व्यतीत कर रहे थे, पश्चात् हमलोगों ने (सग्ने होने पर) अत्यन्त कष्ट से जम्बूक पर विजय प्राप्त की । इधर पृथ्वीराज ने भी हमारी राजधानी को चारों ओर से घेर लिया था, फिर उन्हें पराजित कर मैंने अपने भाई ब्रह्मा का विवाह उनकी पुत्री बेला से सुसम्पन्न कराया । अनन्तर इन्दुल के लिए हमें सिंहलद्वीप जाकर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । इस प्रकार के अनेक दुःखों के अनुभव पिता जी को करने पड़े । इसलिए इधर आने-जाने का अवसर नहीं मिल सका, किन्तु भगिनी ! अब हम लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं, इसीलिए (वहाँ ले चलकर) हम लोग तुम्हारी सेवा करना चाहते हैं क्योंकि हम सब तुम्हारे सेवक ही तो हैं । इस प्रकार की कोमल वाणी को सुनकर प्रेम व्याकुल होती हुई चन्द्रावली ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें अपने निजी महल में ठहराया । उसी बीच उस धूर्त महीपति ने वीरसेन की सभा में पहुँचकर आतिथ्य सत्कार ग्रहण करने के उपरान्त बीच में बात काटकर उनसे कहा ॥३७-४३। राजा ने आह्लाद (आल्हा) आदि सभी दुष्टों को अपने यहाँ से निर्वासित कर (निकाल) दिया है । कारण कि

तदा तु कुप्तिताः सर्वे शिरीषाख्यपुरेऽवसन् । छिद्रदर्शी तु कृष्णांशो गेहं तव समागतः ॥४५
 चन्द्रावल्यांश्च वै दोलां गृहीत्वा स गमिष्यति । सत्यं ब्रवीमि भूपाल नान्यथा वचनं मन् ॥४६
 इति श्रुत्वा वीरसेनो ज्ञात्वा तत्सत्यकारणम् । कामसेनं समाहय चन्द्रावल्याः पतिं सुतम् ॥४७
 वचनं प्राह भोः पुत्र बन्धनं कुरु तस्य वै । इति श्रुत्वा कामसेनो विषमादाय दरुणम् ॥४८
 भोजनाय द्वौ तस्य ज्ञात्वा चन्द्रावली तदा । भ्रातुरन्तिकमासाद्य पात्रमादाय सा ययौ ॥४९
 कामसेनश्च कुपितो गृहीत्वा दण्डवेतसम् । स्वप्रिदां ताड्यामास स दृष्ट्वा तं तदाकुपत् ॥५०
 गृहीत्वा भुजयोत्तं वै बन्धनाय समुद्यतः । बन्धनत्वं गते पुत्रे वीरसेनो महाबलः ॥५१
 पुत्रानाज्ञापयामास तस्य बन्धनहेतवे । एतस्मिन्नन्तरे वीरो दोलामादाय सत्वरम् ॥५२
 सेनामध्ये समागम्य महद्युद्धमचीकरत् । एकतो दशसाहस्रास्त्रिलक्षास्तु तथैकतः ॥
 अहोरात्रमभूद्युद्धं दारुणं रोमहर्षणम् ॥५३
 हता लक्षं महाशूरा उदयेन महाबलाः । रोषः प्रदुद्वुस्सर्वे याद्वा भद्रकातराः ॥५४
 दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं सप्तपुत्रा भहाबलाः । स्वानाजांश्च समारुह्य कृष्णांशं रुधू रुषा ॥५५
 त वीरो बिन्दुलारुदो भूमौ कृत्वा गजासनान् । तेषामस्त्रांण संच्छिद्य बधनाति बलदर्पितः ॥५६
 इति श्रुत्वा वीरसेनः सूर्यभक्तिपरायणः । सौरमस्त्रं समादाय तस्य सैन्यमदाहयत् ॥
 तेनास्त्रेणैव कृष्णांशः सहयो मूर्च्छितो भवि ॥५७

इन नीचों ने उनके कोष (खजाने) में चोरी की थी। उसी समय से ये लोग शिरीष (मिरसा) नामक गाँव में रह रहे हैं । अवसरावादी उदयसिंह इस समय आपके घर आया हुआ है, वह चन्द्रावली का डोला लेकर चला जायगा । भूप ! मैं यह सब सत्य कह रहा हूँ, मेरी बात अन्यथा नहीं होती है। इस सुनकर राजा वीरसेन ने इसे सत्य समझकर अपने पुत्र कामसेन को, जो चन्द्रावली का पति था, बुलवाया और कहा—पुत्र ! उदयसिंह को बाँध लो ! यह सुनकर कामसेन ने तीक्ष्ण विष भोजन में डालकर उदयसिंह को दिया । यह समाचार पाकर चन्द्रावली शीघ्र भाई के पास जाकर उस पात्र को लेकर वहाँ से चली गई । कुद्ध होकर कामसेन ने अपनी पत्नी चन्द्रावली को बेंत की छड़ी से अत्यन्त पीड़ित किया । उस समय कुद्ध होकर उदयसिंह ने उसके दोनों हाथ-पाँव बाँध दिये । महाबली वीरसेन ने अपने पुत्र के बाँधे जाने पर उदयसिंह को बाँधने के लिए अन्य पुत्रों को आदेश दिया । उसी अवसर में उदयसिंह ने डोला लेकर अपने सैनिक शिविर में आकर शत्रुओं से घोर युद्ध किया । एक ओर दशसहस्र की सेना और दूसरी ओर तीन लाख सैनिक उस भीषण युद्ध में भाग ले रहे थे । वह रोमाञ्चकारी युद्ध अविराम गति से दिन-रात चल रहा था । ४४-५३। शत्रु के एक लाख सैनिकों का निधन हुआ और एक सहस्र सैनिकों का उदयसिंह के भी निधन हुआ । जो अवशिष्ट रहे वे यादवों से भयभीत होकर भाग गये । अपने सैनिकों के पराजित हो जाने पर उन सातों पुत्रों ने अपने-अपने गजों पर बैठकर उदयसिंह को चारों ओर से घेर लिया । वीर उदयसिंह ने भी बिन्दुल पर बैठे हुए हाथियों के सिंहासन समेत उन्हें पृथ्वी पर धूल-धूसरित करते हुए उनके अस्त्रों को काटकर उन सबको बाँध लिया । इसे सुनकर सूर्य के अनन्य भक्त वीरसेन ने सौर (सूर्य द्वारा प्राप्त) अस्त्र से इनकी सेना को भस्म कर दिया और उसी अस्त्र के प्रयोग से घोड़े समेत उदयसिंह भी मूर्च्छित हो गये । ५४-५७।

वीरसेनस्तु तं बद्धवा मोचयित्वा सुतान्वधूम् । स्वगेहमागतस्थूर्ण नानावाद्यान्यवादयत् ॥५८
 हतशेषास्तदा वीरा: कृष्णांशस्य ययुर्दिशः । हेतुं परिमलस्याप्ते सर्वमूच्चुस्तदादितः ॥५९
 महीपतिं महाधूर्तं मत्वा राजाब्रवीदिदम् । गच्छ त्वं मत्सनापुत्रं लक्षसैन्यसमन्वितः ॥६०
 बद्धदा स्वभगिनीकान्तं स्वबन्धुं मोचयाशु वै । इति श्रुत्वा च स सुतो लक्षसेनासमन्वितः ॥६१
 शीघ्रं गत्वा च नगरीं रुरोधं बलावान्मया । धुद्धो भूते बले तस्मिन्वारसेने नृपोत्तमः ॥
 सौरमस्त्रमुपादाय दाहनार्थं समुद्घतः ॥६२

सज्जीमूते तदस्त्रे तु ब्रह्मानन्दो प्रहाबलः । ब्रह्मानन्देन्द्रं स शरं वारयामास वै ऊप्तः ॥६३
 दृष्ट्वा भयान्वितो भूपस्तमेव शरणं ययौ । ब्रह्मानन्दस्तु तं भूं वचनं प्राह् निर्भयः ॥६४
 धूर्तवाचयेन हे भूपमद्वन्द्वर्धार्थितस्त्वया । अवध्या च सदा नारी त्वत्सुतस्तामताडयत् ॥
 अतस्त्वं भगिनीयुक्तं स्वसुतं देहि मे नृप ॥६५

इति श्रुत्वा च नृपतिर्वचनं प्राह् नन्नधीः । इत्युता च गृहे नास्ति कामसेनं गृहाण भोः ॥६६
 इत्युक्त्वा दीरसेनश्च सुतं चन्द्रादलीं तथा । इत्वा तस्मै प्रसन्नतमा तत्प्रस्थानमकारयत् ॥६७
 ब्रह्मानन्दोऽपि बलवान्कृष्णांशेन समन्वितः । सेनयाशीर्तिसहस्र्या ययौ सार्वं महावतीम् ॥६८
 मलना स्वसुतं दृष्ट्वा प्रेमविह्वलकम्पिता । स्नापयित्वा श्रुधाराभिर्द्विजातिभ्यो इदौ धनम् ॥६९

उस समय वीरसेन ने उन्हें बाँधकर अपने पुत्रों सारेत वधू (बहू) को भी मुक्त कराकर अपने घर में अनेक भाँति के वाद्यों द्वारा महोत्सव मनाया । उदयसिंह के शेष वीर सामन्त इधर-उधर भाग गये । उनमें से कुछ लोगों ने परिमल के पास पहुँचकर आदि से अन्त तक सभी वृत्तान्त कहा—महीपति (पृथिवीराज) को महाधूर्त जानकर राजा ने ब्रह्मानन्द से कहा—एक लाख सेना समेत तुम शीघ्र वहाँ जाओ । अपनी भगिनी के पति को बाँधकर अपने भाई को मुक्त कराओ । इसे सुनकर एक लाख सैनिकों को लेकर ब्रह्मानन्द ने वहाँ पहुँचकर अत्यन्त क्रोधावेश में उस नगरी को चारों ओर से घेर लिया । पश्चात् युद्धस्थल में आये हुए उनके सैनिकों को बाँध लिया । सेना के आवद्ध हो जाने पर राजा वीरसेन ने अपने सौर अस्त्र के प्रयोग से उन्हें भस्म करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनके उस अस्त्र द्वारा प्रयोग करते समय ब्रह्मानन्द ने अपने ब्रह्मास्त्र से उसे शांत करते हुए अपना कुद्ध स्वरूप प्रकट किया । उस देखकर राजा वीरसेन ने अत्यन्त भयभीत होकर उन्हीं की शरण प्राप्त की । निर्भय होकर ब्रह्मानन्द ने उनसे कहा ।५८-६४। नृप ! एक धूर्त के कहने से मेरे भाई को बाँध लिया, और स्त्रियाँ सदैव अवध्य होती हैं, किन्तु तुम्हारे पुत्र ने इसका उल्लंघन कर उसे (भगिनी को) अत्यन्त ताड़ना दी । इसलिए आप अपनी पुत्री समेत उस कामसेन पुत्र को मेरे अधीन कीजिये । इसे सुनकर राजा ने नन्नतापूर्वक कहा—मेरी कन्या इस समय घर में नहीं है, किन्तु कामसेन उपस्थित है । इतना कहकर वीरसेन ने कामसेन समेत चन्द्रावली को उन्हें सौंप दिया, पश्चात् प्रसन्नतापूर्ण होकर उनका प्रस्थान भी कराया । बलवान् ब्रह्मानन्द ने उदयसिंह और अस्सी सहस्र सेना साथ लेकर महावती (महोबा) को प्रस्थान किया ।६५-६८। घर पहुँचने पर रानी मलना ने अपने पुत्र को देखकर प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गई कि अपने आँसुओं से उन्हें स्नान कराकर

इति ते कथितं विप्रं कृष्णांशचरितं शुभम् । गृज्वतां कलिपापनं कथयिष्यामि वै पुनः ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वाविंशोऽध्यायः २२

अथ त्रयोदिशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उचाच्च

चतुर्विंशाब्दकं प्राप्ते कृष्णांशे बलशालिनि । इषशुक्लदशन्यां च कृतो राजा महोत्सवः ॥१
 भोजगित्वा द्विजश्चेष्ठान्दन्वा तेभ्यो हि दक्षिणाः । स्वभृत्येभ्यस्तथा दित्तं पथायोग्यं क्रमादृढौ ॥२
 कार्तिक्यां शुभयुक्तादां कृष्णांशो बलसंयुतः । इन्दुलेन च संयुक्तो देवसिंहेन संयुतः ॥३
 अयूतैः स्वर्णद्व्यैश्च शूरैर्दशसहस्रकैः । ययौ ब्रह्मतीस्थाने नानाभूपसमन्विते ॥४
 एतस्मिन्नन्तरे तत्र चित्ररेखा समागता । वृत्ता सप्तालिभिर्देवी चित्रगुप्तप्रपूजिनां ॥५
 गङ्गामध्ये महारम्यं यस्तं सायामयं तथा । कृतं कौतूहलयुतं बहुसम्पत्समन्वितम् ॥६
 आगतास्तत्र राजानो नाना तद्वर्णनोत्सुकाः । तदोदयो देवयुतो जयन्तेन समन्वितः ॥७
 शतशूरैश्च सहितो दर्शनार्थमुपाययौ

॥७

ब्राह्मणों को धन वितरण किया । विप्र ! इस प्रकार तुम्हें कृष्णांश (उदयसिंह) का शुभचरित सुना दिया गया, और मैं उस पापहारी चरित को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! ६९-७०

श्रीभविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक बाइसवाँ अध्याय समाप्त । २२।

अध्याय २३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—बलशाली उदयसिंह की चौबीसवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ होने पर राजा ने आश्विन शुक्ल दशमी (विजया दशमी) के दिन महान् उत्सव किया । उस उत्सव में ब्राह्मणों को भोजन और दक्षिणा प्रदानकर अत्यन्त तृप्त करने के उपरांत अपने राज्य के सेवकों को भी यथायोग्य पुरस्कार रूप धन प्रदान किया । कार्तिक मास के शुभ योग के दिन वीर उदयसिंह ने इन्दुल (इंदल) और देवसिंह (डेवा) को साथ लेकर दश सहस्र सुवर्ण एवं दशसहस्र सेना समेत बर्हिष्मती नामक नगरी के लिए प्रस्थान किया, जहाँ अनेक राजागण आकर पहले से ही निवास कर रहे थे । उसी बीच वहाँ चित्रलेखा आयी जो सात सखियों के साथ चित्रगुप्त की पूजा करती थी । उसने गंगा के मध्य में एक अत्यन्त सुन्दर यान अपनी माया द्वारा निर्मित कर कौतूहल प्रदर्शनार्थ रखा था, जिसमें सम्पूर्ण भी लगा दिया गया था । उसकौतूहल को देखने के लिए अनेक देश के भूपवन्द वहाँ आकर रह रहे थे । उस समय उदयसिंह भी देवसिंह और इन्दुल समेत अपने सौ शूर वीरों के साथ उसे देखने के लिए वहाँ आये थे । १-७। उस जल समूह में राजा बाह्लीक की परम सुन्दरी चित्ररेखा

चित्ररेखा महारम्या वाहीकनृपते: मुता । ददर्श सुन्दरं कान्तमिन्दुलं शशिवन्मुखम् ॥

येन स्वप्नान्तरे रस्यं साद्दें भुक्तं तदा सुखम् ॥१८

तमाह्लादसुतं जात्वा साभिनन्दनदेहज्ञा । कृत्वा मोहमयं जालं शुक्रभूतं तदेन्दुलम् ॥१९

हृत्वा स्वयम्बरे रम्ये परमानन्दमाययः । पुनराहृत्य तां मायां स्वगेहाय ययौ पुदा ॥२०

कृष्णांशस्तु तदा दुदध्वा न ददर्श स्वकं शिशुम् । देवर्सिंहं बोधयित्वा प्रप्रवृत्त दत्त गतः शिशुः ॥२१

कालज्ञो देवर्सिंहोऽपि भोहितश्चित्रमाययः । न ज्ञातस्तेन वै ब्रातः क्व गतः केन वा हृतः ॥२२

विस्मितं देवर्सिंहं च दृष्टुं कृष्णांशको बली । रुदोदोच्चैस्तदा गाढं चित्रमायाविमोहितः ॥२३

श्रुत्वा तु रोदनं तस्य खलस्तत्र महीपतिः । यपै शीघ्रं प्रसन्नात्मा यात्राह्लादः स्वयं स्थितः ॥

रुदित्वा तत्र वै गाढं वचनं प्राह नन्नर्थधीः ॥२४

उदयो नाम ते भ्राता मोहित्वा भद्रेन्^१ तौ । देवमिन्दुलमेवासौ हृत्वा धारास्वरोपयत् ॥२५

प्रत्यक्षं न मया दृष्टं तेन वीरेण वै कृतम् । शतं स्वर्णं च मे दत्त्वा विनयेनावरोधितः ॥२६

देवर्सिंहस्ततो^२ बुद्ध्या न ज्ञातं तेज यत्कृतम् । इति श्रुत्वा तु वचनं निश्चयं नाधिगच्छति ॥२७

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तौ तौ वीरौ रोदने रतौ । तद्वियोगेन कृष्णांशः स्वदेहं त्यक्तुमुद्यतः ॥२८

आह्लादौ निश्चयं ज्ञात्वा भाषितं च महीपतेः । कृष्णांशं ताडयामास वैतसैश्चर्मकर्तनैः ॥२९

नामक पुत्री ने उस अत्यन्त सुन्दर इन्दुल को देखा, जिसके मुख की कान्ति चन्द्रमा की भाँति निर्मल एवं सुखप्रद दिखाई देती थी तथा स्वप्न में जिसने उसके साथ रमण का सुख प्रदान किया था। अभिनन्दन की पुत्री ने उन्हें आल्हाद (आल्हा) का पुत्र जानकर उन्हें शुक्र (तोता) बनाकर एक माया जाल (माया द्वारा रचित पींजड़े) में रख लिया। उस स्वयम्बर में उनका अपहरण करने से उसे परमानन्द की प्राप्ति हुई। पश्चात् अपने माया दृश्य को समाप्तकर वह प्रसन्नता पूर्ण होती हुई अपने घर चली गई। जागने पर उदयर्सिंह ने अपने बच्चे को न देखकर देवर्सिंह को जगाकर पूँछा—लड़का कहाँ चला गया। यद्यपि देवर्सिंह प्रत्येक समय की बात जानते थे, किन्तु उस समय चित्ररेखा की माया से मोहित होने के कारण वे स्वयं न जान सके कि लड़का कहाँ गया है और उसने उसका अपहरण किया है। उनके कुछ उत्तर न देने तथा उन्हें स्वयं विस्मय प्रकट करते देखकर उदयर्सिंह उस चित्रमाया से मुग्ध होने के नाते उच्च स्वर से अत्यन्त गाढ़रुदन करते लगे। उन्हें रुदन करते हुए सुनकर दुष्ट महीपति (माहिल) ने प्रसन्न होकर आह्लाद (आल्हा) के यहाँ प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचने पर उनके सामने गाढ़रुदन करते हुए नन्नता पूर्वक कहा ।—१४। तुम्हारे भाई उदयर्सिंह ने देवर्सिंह तथा इन्दुल को अत्यन्त मद प्रद (नशीली) वस्तु खिलाकर मूर्च्छित कर दिया था। पश्चात् (उसी नशे में) इन्दुल को मृतक करके गंगा की धारा में प्रवाहित कर दिया। उस वीर ने जो कुछ किया, मैंने वहाँ अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखा है। उसने मुझे नन्नता पूर्वक सौ सुवर्ण मुद्रा प्रदानकर कहीं भी कहने से रोक दिया है, और पश्चात् चैतन्य होने पर देवर्सिंह भी अपनी बुद्धि कौशल से, उसने जो कुछ किया है, नहीं जान सके। उनके इतना कहने पर भी आल्हा (आल्हाद) को निश्चय नहीं हो रहा था, परन्तु, उसी समय रुदन करते हुए वे दोनों वीर भी वहाँ पहुँच

तत्य भ्राता तथा पत्नी भगिनी प्रेमदुःखिताः । आह्लादं बोधयामासुर्धूर्तमायाविमोहितम् ॥
न बोधितस्तदा वीरश्चित्रमायाविमोहितः ॥२०
तदा पुष्पवती देवी स्वपति भ्रातृपीडितम् । दृष्ट्वा तत्र गता शीघ्रं पतिदुःखेन दुःखिता ॥२१
विनापराधं कृणांशः महानिन्दामवाप्तवान् । तदा वेदविदो विद्रा आह्लादं प्राहुर्लिङ्गितम् ॥२२
बधस्त्यःगः समो ज्ञेयो योग्यं बुद्धच्चा विचारय । इत्युक्तः स तुरीयात्त्वा पुत्रशोकेन दुःखितः ॥२३
चाण्डालांश्च समाहय बद्धवा तं पुत्रघातिनम् । इत्तदा तेभ्यः सपत्नीकं वधं कुरुत भा त्तिरम् ॥२४
अस्य नेत्रे समुत्पाद्य मां दर्शयत जंयुताः । इति श्रुत्वा गतास्ते वै गहनं व्याघ्रसेवितम् ॥२५
देवर्सिहस्ततो गत्वा इत्वा तेभ्यो सहृदैनम् । राम्प्राप्य इयती वीरश्चाण्डलेभ्यो वनं यदौ ॥२६
बलादानेस्तु या दली गजमुक्ता पतिक्षता । इम्पति पालयामास गुह्यगेहे मुदा युता ॥२७
चाण्डालास्ते तु सङ्गत्य मृगनेत्रे च तं^१ दुः । देवर्सिहस्तदागत्य क्रोधात्मा च तमङ्गवीत् ॥
धिक्त्वां पापं दुराचारं त्वया मे हिंसितः सखा ॥२८
जीवितस्त्वत्सुतो भूमौ तदन्वेषणहेतवे । यास्यामि विद्यधान्राष्ट्रान्सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥

गये । भ्रातृपुत्र (भतीजे) के वियोग से उदयसिंह उस समय अपनी शरीर का त्याग करने को तत्पर हो गये । उनकी उस अवस्था को देखकर आह्लाद (आल्हा) को महीपति (माहिल) की बातों का विश्वास हो गया । कुद्ध होकर उन्होंने वेत के दंडे से, जिसमें चर्म लगा रहता है, उदयसिंह को अत्यन्त पीटना आरम्भ किया । उनकी माता, पत्नी, एवं भगिनी ये सभी लोग प्रेम के कारण अत्यन्त दुःखी होकर उस धूर्त की माया से मुग्ध हुए आह्लाद (आल्हा) को समझाने लगे, किन्तु चित्ररेखा की माया से मोहित होने के नाते कुछ भी ज्ञान न हो सका । उस समय पुष्पवती देवी अपने पति को भाई द्वाना पीड़ित देखकर वहाँ शीघ्र पहुँचकर पति के दुःख से दुखी होने लगी । बिना अपराध के उदयसिंह की दड़ी निन्दा हुई । उसी समय वैदिक विद्वानों ने आह्लाद (आल्हा) से कहा—वध और त्याग दोनों समान बताये गये हैं, जो योग्य हो, आप स्वयं विचार कर लें । इतना कहने पर उन शुद्धात्मा आह्लाद (आल्हा) ने पुत्र शोक से दुःखी होकर चांडालों को बुलाकर उन्हें पुढ़हन्ता उदयसिंह को बाँधकर सौंप दिया पश्चात् उन लोगों से कहा—पत्नी समेत इन दोनों (स्त्री-पुरुष) का शीघ्र वध करो और इन दोनों के नेत्र लाकर मुझे अवश्य दिखाना इसे सुनकर वे चाण्डाल (खलासी) उन्हें लेकर अत्यन्त घोर जंगल प्रदेश में चले गये, जहाँ वाघ आदि भीषण हिंसक पशुगण रहते थे । उस समय देवर्सिंह वहाँ जाकर उन चाण्डालों को अधिक धन प्रदान कर पत्नी समेत उदयसिंह को साथ लेकर बल-खानि के घर चले गये । पतिक्रता गजमुक्ता (गजमोतिना) ने उन दोनों को अपने घर में छिपा कर रख लिया, और यथावत् पालन-पोषण करना आरम्भ किया । चाण्डालों ने मृग के नेत्र लाकर आह्लाद (आल्हा) को प्रदान किया । उस समय अत्यन्त कुद्ध होकर देवर्सिंह ने उस से कहा—‘तुम्हारे जैसे दुराचारी पापी को धिक्कार है, तुमने मेरे सखा का वध कराया है । १५-२८। मैं सत्य और अत्यन्त सत्य कह रहा हूँ तुम्हारा पुत्र जीवित है, उसके अन्वेषण के लिए मैं अनेक राजाओं के

इत्युक्त्वा प्रयद्यौ दीरः शिरीषाख्यपुरं शुभम् ॥१२९
 गजमुक्तामनुज्ञाप्य दम्पती प्राप्य निर्भयः । मयूरनगरं रम्यं निशि घोरं सनायथौ ॥३०
 मकरन्दस्त् बलवाङ्गात्वा तत्सर्वकारणम् । स्वनुः पर्ति च भगिनीं स्वान्ते प्रेम्णा न्यवासयत् ॥३१
 धर्मसाराधयामास यज्ञनिनावैधैः स्त्वैः । ब्रह्मन्तो धर्मराजश्च मकरन्दमुवाच ह ॥३२
 अभिनन्दनभूपस्य सुता चित्रशूजिनी । नाटचात्मजा केसरिणी तत्सखी दम्भकोदितः ॥३३
 केसरिण्णा गुरुर्ज्ञेयः कुतुको योगरूपधृक् । तेन प्रसारिता माया शतयोजनमन्तरा ॥३४
 शत्रुभिर्दुर्गमा भूमिः शत्रुपाणामकारिणी । चित्रगुप्तप्रभावेण निर्भयो भूपतिः स्वयम् ॥३५
 चित्ररेखा भूपसुता यज्ञन्तस्तु तथा हृतः । नररूपधरो रात्रौ शुकरूपधरो दिने ॥
 इन्दुलश्च स्थिते दुःखी चित्रमायाविमोहितः ॥३६
 कृष्णांशशश्च भवान्देवः सहितः सूर्यवर्मणा : मया दत्तानि यन्त्राणि गृहीत्वा ते नुदा युताः ॥
 चित्ररेखां समागत्य नृत्यादीर्ण्तैः समं कुरु ॥३७
 मोहयित्वा च तां देवीं पठित्वा तन्मतं शुभम् । पुनरागच्छ दै शीघ्रं सैन्ययोगं पुनः कुरु ॥३८
 इत्युक्त्वान्तर्दिधे देवस्स राजा विस्मयान्वितः । कृष्णांशं वर्णयामास यथा धर्मेण जापितम् ॥३९
 फाल्गुने मासि संप्राप्ते त्रयस्ते योगिरूपिणः । युरुरिक्षगरं रम्यं नृत्यगीतविशारदाः ॥४०
 मृदङ्गाङ्कस्तदा देवो मकरन्दो विपञ्चिमान् । नृत्यगानकरो दीरः कृष्णांशः सर्वमोहनः ॥४१

यहाँ जा रहा हूँ । इतना कहकर उस दीर ने शिरीष (सिरसा) नगरी के लिए प्रस्थान किया । गजमुक्ता (गजमोतिना) से आज्ञा प्राप्तकर उन (स्त्री-पुरुष) को साथ लेकर उसे अंधेरी गत के आधीरात के समय मयूर नगर पहुँच गये । वहाँ बलवान् मकरन्द ने समस्त कारणों को भली भाँति समझकर अपनी भगिनी तथा उदयर्सिह को सप्रेम अन्तःपुर में निवास कराया । पश्चात् मकरन्द ने नाना भाँति के यज्ञ द्वारा धर्म की आराधना की । प्रसन्न होकर धर्मराज ने मकरन्द से कहा—राजा अभिनन्दन की पुत्री चित्ररेखा जो चित्रगुप्त की उपासना करती है, केशरिणी नामक उसकी सखी है जो नाट्य की पुत्री एव दम्भ की विदुषी है उसी केशरिणी का एक कुतुक नामक गुरु है, जो योगरूप धारण करता रहता है, उसी ने सौ योजन तक अपनी माया का विस्तार किया, जिसकी भूमि शत्रुओं के लिए एक अत्यन्त दुर्गम है और वह माया भूमि शत्रु को पाषाण बना देती है । चित्रगुप्त के प्रभाव से वह राजा अत्यन्त निर्भीक रहता है ॥२९-३५ । उसी राजा की चित्ररेखा नामक पुत्री ने (इन्दुल) का अपहरण किया है, वह उसे रात्रि में पुरुष के रूप में और दिन में शुक तोते के रूप में रखती है । उस चित्रमाया से मोहित होकर इन्दुल वहाँ अत्यन्त दुःख का अनुभव कर रहा है, इसलिए उदयर्सिह आप देवसिंह और सूर्यवर्मा सब लोग मिलकर मेरे दिये हुए मन्त्र को लेकर चित्ररेखा के पास जाओ । वहाँ नृत्य आदि द्वारा उसे मोहितकर उस कुमारी से उसकी विद्या का अध्ययन कर चले आवो । उपरांत सेनाओं समेत वहाँ पर युद्ध करो । इतना कहकर देव धर्मराज अन्तर्हित हो गये और जागकर राजा अत्यन्त विस्मित होने लगे । पश्चात् उन्होंने धर्मराज के बताये हुए सभी उपायों समेत उनकी आदि से अन्त तक सभी बातें उदयर्सिह से बतायी । फाल्गुन मास के आरम्भ में नृत्य-गान निपुण वे तीनों योगी का वेष धारणकर रमणीक इन्द्रगृह नगर में राजा गजपति की राजसभा में पहुँचकर देवसिंह ने मृदङ्ग, मकरन्द ने सारङ्गी बजाना आरम्भ किया और उदयर्सिह

मोहित्वा च नगरं तथा गजपतिं नृपम् । सकुलं च ससैन्यं च तुष्टो राजाब्रवीदिदम् ॥४२
 वाञ्छितं ब्रूहि मे योगिन्स श्रुत्वा प्राह नम्रधीः । देहि मे सूर्यवर्मणं स्वसुतं कार्यहेतवे ॥४३
 कृत्वा कार्यस्थं शीघ्रं पुनर्दर्स्यामि ते सुतम् । विधिना निर्भितो धर्मो राजभिर्विश्वरक्षणम् ॥४४
 इति श्रुत्वा गजपतिर्दत्त्वा तेभ्यः स्वकं सुतम् । स्वराजीमाययौ राजा गतास्ते कार्यतत्पराः ॥४५
 पक्षमःत्रेण द्वाल्लीकं नगरं प्रययुर्मुदा । धर्मदत्तानि यन्त्राणि गृहीत्वा शत्रुमन्दिरम् ॥४६
 आययुलास्यतत्त्वज्ञा नृपमोहनतत्पराः । सर्वे च नागराः प्राप्तास्तत्र क्षत्रगणा मुदा ॥४७
 मोहितास्तैश्च ते सर्वे गीतनृत्यविशारदैः । महद्वन् ददौ तेभ्यस्तोमरानवद्यमन्म्भवाः ॥४८
 तानादाय पुनर्भूपः स्वरेहमभिनन्दनः । आययौ गेहनृत्यार्थी कारदामास वै पुनः ॥४९
 नकरन्दस्तदा वीणां मृदुङ्गं भीषमजो दली । मञ्जीरं सूर्यवर्मा च कृष्णांशो गाननृत्यकम् ॥५०
 गृहीत्वा मोदयामासुनारीवृन्दा महोत्तमम् । चित्ररेखा स्वयं दृष्ट्वा तेयां मोहनहेतवे ॥५१
 मायां निर्वापयामास निष्फला साऽभवत्क्षणात् । मोहितास्तैश्च सा देवी तानुवान् मुदान्विता ॥५२
 वाञ्छितं ब्रूहि मे वीर कृष्णांशश्चाह तां वधूम् । शुकं देहि च से देहि नो चेच्छापं ददाम्यहम् ॥५३
 इति श्रुत्वा चित्ररेखा शोकव्याकुलचेतना । कृष्णांशं योगिनं प्राह सत्यं कथय को भदान् ॥५४

सर्वमोहक नृत्य-गान करने लगे । अपनी कला कुशलता से उन लोगों ने वहाँ के नागरिकों एवं राजा को एकदम मोहित कर दिया । अपने कुल कुटुम्ब एवं सेना समेत प्रसन्न होकर राजा से कहा—योगिन् ! आप मनइच्छित वस्तु बताइये, क्या चाहते हैं । इसे सुनकर उन लोगों ने नम्रता पूर्वक कहा—आप अपने पुत्र सूर्यवर्मा को (कुछ दिन के लिए) मुझे दें दीजिये, मुझे कुछ विशेष कार्य करना है । ३६-४३। कार्य हो जाने पर मैं आपके पुत्र को शीघ्र लौटा दूँगा । क्योंकि राहा ने विश्व की रक्षा के लिए ही राजाओं का धर्म बनाया है ऐसा सुनकर राजा ने उन्हें अपना पुत्र सौंप दिया, पश्चात् वे अपने अन्तः पुर में चले गये और इस लोगों ने अपना कार्यारम्भ किया । पन्द्रह दिन की यात्रा करके ये लोग बाल्लीक नगर पहुँचे, वहाँ धर्मराज द्वारा प्रदत्त यंत्र को लेकर प्रसन्नता मग्न होते हुए शत्रु के महल में नृत्य करने के लिए गये । वहाँ मकरन्द ने वीणा और देवसिंह ने मृदुङ्ग बजाना आरम्भ किया तथा सूर्यवर्मा भजीरा बजा रहे थे एवं उदयसिंह अपने नृत्य-गान द्वारा वहाँ स्थित राजा और रानियों को मोहितकर रहे थे । इनकी केलाओं से वहाँ का नारीवृन्द अत्यन्त मुग्ध हो गया । उसी समूह में चित्ररेखा भी उपस्थित थी जिसने इन लोगों के मोहनार्थ अनेक भाँति की माया का निर्माण अनेक बार भी किया, किन्तु वह उसी समय निष्फल हो गयी । मोहित होकर उसने उन लोगों से कहा वीर ! आप क्या जानते हैं, कहिये ! उदयसिंह ने उस स्त्री से कहा—देवि ! उस शुक (तोते) को मुझे दे दीजिये नहीं तो मैं शाप प्रदान करूँगा । इसे सुनकर चितित होती हुई चित्ररेखा ने योगियों से कहा—सत्य कहिये, आप कौन

इन्द्राद्या देवतास्तर्वे प्रया निर्मितया यथा । मोहितः क्षणमात्रेण न भवान्मोहितो मया ॥५५
 देवो नारायणो वापि धर्मो वापि शिवः स्वयम् । इत्युक्तस्स तु कृष्णांशो वचनं प्राह निर्भयः ॥५६
 उदये नाम ने राज्ञि देवसिंहोऽप्यनुत्तमः । मन्छयालो मकरन्दोऽयं सूर्यवर्मा तथाविधः ॥५७
 इन्दुलस्य वियोगेन वद्यं योगित्वसागताः । मदगुरुश्च तथोन्मादी । सङ्कुलस्तद्विद्योगतः ॥५८
 शुकं देहि महामाये इन्दुलं देहि वा यदि । इत्युक्तवाशु रुरोदोच्चैर्हा इन्दुल महाबल ॥५९
 दर्शनं देहि मे शीघ्रं नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् । इत्येवं वादिनं वोरं चित्ररेखा महोत्तमा ॥६०
 कृत्वा लज्जां तुमः प्राह सां च तु गृहण भोः । कृत्वा नरमयं रूपं त्वकान्तं सर्वसुन्दरम् ॥६१
 पतित्वा तच्चरणयो रुरोदोच्चैश्च दम्पती । तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा कृष्णांशो हर्षसंयुतः ॥६२
 इन्दुलेनैव लिखितं गृहीत्वा पत्रमुत्तमम् । धर्मदन्तब्रभावेण मयूरनारं यथौ ॥६३
 सूर्यवर्मा गतो गेह मकरन्देन सानितः । देवसिंहस्तु बलवान्गृहीत्वा एत्रमुत्तमम् ॥६४
 यथौ मनोरथारुढो यत्राह्लादः शुचान्वितः । को भवनिति तं प्राह महोन्मादीव दृश्यते ॥६५
 देवतिहं च मा विद्धि त्वपुत्रान्वेषणे रतन् । पत्रं गृहण भो वीर लिखितं त्वत्सुतेन वै ॥६६
 इति श्रुत्वा स आह्लादश्चाह्लादं परमाप्तवत् । ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं यथाविधि सुतो हृतः ॥६७
 महीपतिं समाहृत्य वचनं प्राह नम्रधीः । सत्यं कथय मे भूप कृष्णांशेन हतसुतः ॥६८

हैं । ४४-५४। क्योंकि मेरी जिस माया द्वारा इन्द्रादि देवगण क्षणमात्र में मुग्ध हो जाते हैं, वह आप में निष्फल हो गई, आप मोहित न हो सके, अतः आप नारायण देव, धर्मराज, अथवा स्वयं शिव देव हैं । उसके इतना कहने पर उदयसिंह ने कहा । देवि ! मेरा नाम उदयसिंह है, मेरे साथ में देवसिंह, मेरा साला मकरन्द और सूर्यवर्मा हैं । इन्दुल के वियोग में हम लोगों ने योगी का वेष धारण किया था । मेरे बड़े भाई आह्लाद (आल्हा) को उसके वियोग में उन्माद हो गया है, अतः देवि ! शुक (तोते) अथवा इन्दुल को शीघ्र मुझे सौंप दो । इतना कहकर वे मुक्त कंठ से रुदन करने लगे—हा महाबल, इन्दुल ! मुझे शीघ्र दर्शन प्रदान करो, अन्यथा मैं प्राण त्यागकर रहा हूँ । इसे सुनकर सुन्दरी चित्ररेखा लज्जा का भाव प्रदर्शित करती हुई उनसे कही—पुत्र समेत मुझे भी ग्रहण करने की कृपा कीजिये । इतना कहकर उसने इन्दुल का सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष रूप बनाया । पश्चात् वे दम्पती उनके चरण पर गिरकर उच्च स्वर से रुदन करने लगे । हर्षमग्न होकर उदयसिंह ने उन्हें आश्वासन पूर्वक इन्दुल से एक पत्र लिखाया । उसे लेकर वे उसी यंत्रे के प्रभाव द्वारा मयूर नगर पहुँच गये । ५५-६३। पश्चात् मकरन्द से सम्मानित होकर सूर्यवर्मा अपने घर चले गये । बलवान् देवसिंह ने उस पत्र को लेकर मनोरथ नामक घोड़े पर बैठकर महाबली (महोवा) के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर वे आह्लाद (आल्हा) के पास गये । वहाँ पुत्र शोक से व्यथित होकर उन्मादी की भाँति बैठे हुए आह्लाद (आल्हा) ने उन्हें देखकर कहा—आप कौन हैं, उन्मादी की भाँति धूम रहे हैं । उन्होंने कहा—मैं आप के पुत्र का अन्वेषण करने वाला देवसिंह हूँ । वीर ! इस पत्र को ग्रहण कीजिये, जिसे स्वयं आप के पुत्र ने लिखा है । इसे सुनकर आह्लाद (आल्हा) को परम आनन्द की प्राप्ति हुई । जिस प्रकार उनके पुत्र का अपहरण हुआ था, उन्होंने सभी कारणों के जानने की चेष्टा की । ६४-६८। पश्चात् महीपति ! (माहिल) को बुलवाकर नम्रता पूर्वक उन्होंने उनसे कहा—

तहोवाच श्रुतं वीर कृष्णांशेन यथा हृतः । इत्युक्त्वा तु विहस्याशु कार्यसिद्धिमुपागतः ॥६९
 अळ्हादः क्रोधताम्राक्षः केशानाकृष्य तं मुदा । वेतसैस्ताडयामास स्वहस्तेन पुनः पुनः ॥७०
 श्रुत्वा परिमलो राजा सपत्नीकस्समागतः । बहुधा मोदयामास रामांशं बहुरूपिणम् ॥७१
 अरे धूर्तं महापापिन्मद्बन्धुर्धर्यातितस्त्वया । गतो यत्र मम ग्राणस्सकुलं त्वां नयाप्यहम् ॥७२
 तदा महीपतिर्दुःखी निःश्वासो मौनमास्थितः । तदधं हृषि संस्थाप्य महापीडामवाप्तवान् ॥७३
 एतस्मिन्नल्लरे वीरो बलखानिः समागतः । विमुच्य मातुलं धूर्तं ज्येष्ठबन्धुमसान्त्वयत् ॥७४
 स चकार विवर्हार्थमुद्योगं भ्रातृजस्य वै । नेत्रसिंहो नृपः प्राप्तो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥७५
 तारकश्च तमायातस्सार्द्धं शूरसहस्रकैः । वीरसेनः स्वयं प्राप्तः शूरैः सार्द्धं नवाऽयुतेः ॥७६
 तालनश्च ततः प्राप्तो लक्षसैन्यसमन्वितः । सूर्यवर्मा तथा प्राप्तो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥७७
 अह्मानन्दः स्वयं प्राप्तस्त्रिलक्षदलसंयुतः । आळ्हादश्च शुचाविष्टो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥७८
 हा बन्धो वृक्ष गतस्त्वं दै मानं त्यक्त्वा पुण्याधमम् । इत्युक्त्वा प्रययौ वीरः शोकव्याकुलचेतनः ॥७९
 बलखानिस्तु बलवाल्लक्षसैन्यसमन्वितः । देवर्सिहेन सहितो बाह्लीकं चति सोऽगमत् ॥८०
 अहोरात्रप्रमाणेन मासैकः पथि वै गतः । ज्येष्ठकृष्णस्य पञ्चम्यां बाह्लीकग्राममाप्तवान् ॥
 व्यूहः स्वकीयसैन्यानां रचितो बलखानिना ॥८१

राजन् ! जिस प्रकार उदयसिंह द्वारा मेरे पुत्र का अपहरण हुआ है, आप सत्य बताने की कृपा करें । उन्होंने कहा—वीर ! उदयसिंह ने जिस प्रकार उसका वध किया मैंने सुना था और आप को बताया भी था । इतना कहकर उन्होंने हँसते हुए कहा—‘मेरा कार्य तो सिद्ध हो गया ।’ इतना सुनते ही आळ्हाद (आल्हा) के दोनों नेत्र क्रुद्ध होने के नाते ताँबे की भाँटि रक्त वर्ण के हो गये । उन्होंने वेत की छड़ी लेकर स्वयं अपने हाथ से उन पर आधात करना आरम्भ किया । उसे सुनकर पत्नी समेत राजा परिमल ने वहाँ आकर रामांश एवं अनेकरूप धारी आह्लाद (आल्हा) को प्रवोधित (समझाने) करने लगे । क्रुद्ध होकर दण्डित करते समय आह्लाद (आल्हा) उससे कह रहे थे—अरे धूर्तं महापापिन् ! तुमने मेरे भाई का निधन कराया है, इसलिए वह मेरा प्राण जहाँ गया है, उसी स्थान में मैं तुम्हें सकुटुम्ब भेज रहा हूँ । उस समय महीपति (माहिल) भी मौन होकर दीर्घ निश्वास लेते हुए अपने हृदय में किये हुए अपराध के स्मरण पूर्वक उस महापीडा का अनुभव कर रहे थे । उसी बलखानि (मलखान) ने आकर उन मातुल (मामा) को अपने बड़े भाई द्वारा वध किये जाने से मुक्त कराया । पञ्चात् अपने भतीजे के विवाह की तैयारी करने लगे । उस आयोजन में एक लाख सैनिक समेत नेत्रसिंह डेढ़ सहस्र शूरवीरों समेत तारक (ताहर), साढ़े नब्बे सहस्र सेना लेकर वीरसेन एक लाख सैनिक समेत सूर्य वर्मा तीन लाख सैनिक समेत ब्रह्मानन्द और अत्यन्त चितित अवस्था में आळ्हाद (आल्हा) भी एक लाख सैनिकों समेत विलाप करते हुए चल रहे थे—हा बन्धो ! मुझ नीच पुरुष को छोड़कर तुम कहाँ चले गये । उनकी चेतना भी कभी-कभी लुप्त हो जाती थी । बलवान् बलखानि (मलखान) ने भी देवर्सिह के साथ में अपने एक लाख सैनिकों समेत बाह्लीक नगर को प्रस्थान किया । दिन-रात की यात्रा करते हुए वे सब वीरगण एक मास में बाह्लीक नगर पहुँचे । उस दिन ज्येष्ठ कृष्ण की पञ्चमी थी । ६९-८१ वहाँ पहुँचने पर

एको रथः स्थितो युद्धे तत्पश्चात्संस्थितः गजाः । पञ्चाश्च क्रमात्तेषां वाजिनश्च शतंशतम् ॥८२
 तेषां पश्चात्क्रमाज्ञेयाः पत्तयो दश संस्थिताः । एका सेना च सा ज्ञेया तत्प्रमाणं ब्रवीम्यहम् ॥८३
 एको रथो गजास्तर्वं शतार्द्धं तु हयास्तु ये । सेनायां पञ्चसाहस्राः शतध्न्यस्तु तथा स्मृताः ॥८४
 पञ्चायुतरनि सेनायां सर्वे पदचराः स्मृताः । एवंविधाश्च ताः सेना बलखानेश्च घोडः ॥८५
 गजास्तु दशसाहस्रा मदमत्ता पृथग्ययुः । युद्धेऽस्मिन्नाग्निं ह्येवं गूरा शत्रुप्रहरिणः ॥८६
 अभिनन्दनभूयस्य म्लेच्छाः पैशाचधर्मिणः । त्रिलक्षाश्च हयारुद्धा एकलक्षाः शतध्निपाः ॥८७
 एकलक्षः पदचरा भुशुण्डीपरिधायुधाः । तैमरान्वयसंयुक्ताः क्षत्रियाः प्रयुतमनि वै ॥
 गजस्थास्तत्र सम्प्राप्तः यत्रह्लादमहाचमूः ॥८८
 तयोश्चासीन्महद्युद्धं तुमुलं रोमर्हषणम् । मदमत्ताश्च ते सर्वे निर्भया रणमायदुः ॥८९
 सप्ताहोरात्रमभवद्युद्धं समरशालिनात् । बाह्लीकस्याद्देसेना च क्षयं नीता च तैनृपैः ॥९०
 एकलक्षं हताः सर्वे बलखानेश्च सैन्यपैः । हाहाभूते शत्रुसैन्ये भयभीते दिशो गते ॥
 हर्षिता बलखान्याद्या जय दुर्दो वचोऽनुवन् ॥९१
 दृष्ट्वा सैन्यविनाशं च राज्ञः सप्तकुमार । कौरवांशाश्च ते मुर्यत्र जातो महारणः ॥९२
 महानन्दश्च नन्दश्च परानन्दोपनन्दकौ । सुनन्दश्च सुरानन्दः प्रनन्दः क्रमतो भवाः ॥९३
 गजस्थास्ते महावीरास्तोमरान्वयसम्भवाः । सेनां जग्नुः शरैस्तीक्ष्णैर्बलखानेमहात्मनः ॥९४

बलखानि (मलखान) ने व्यूह रचना आरम्भ किया । पहले रथ के सैनिक, गज, पचास घोड़े पश्चात् उनके पीछे दश-दश पदाति (पैदल) की सेना स्थित की गई । उस एक सेना का प्रमाण मैं बता रहा हूँ जिसमें रथ, गज, और पचास-पचास घोड़े थे—सेना में पाँच सहस्र तोरे, और पचास सहस्र पदाति (पैदल) सैनिक थे । इस प्रकार बलखानि (मलखान) की सोलह सेना थी, जिसमें दश सहस्र मदोन्मन्त गंजराज पृथक्-स्थित किये गये थे । शत्रुओं पर आघात करने वाली उनकी सेना की इस प्रकार गणना कर दी गई । राजा अभिनन्दन की सेना की गणना इस प्रकार बतायी गयी है—पिण्डाचधर्मी भ्लेच्छ तीन लाख की संख्या में अश्वारोही थे, एक लाख तोरे और एक लाख पदाति (पैदल) सैनिक, जो भुशुण्डी एवं परिध अस्त्र से सुसज्जित थे । तोमर कुल के वीर क्षत्रीयण दश लाख की संख्या में गजों पर आसीन होकर रणस्थल में आल्हाद (आल्हा) की सेना के समीप पहुँच गये । दोनों सेनाओं का रोमाञ्चकारी एवं भीषण तुमुल युद्ध होने लगा । उन मदमत्त वीरों ने निर्भय होकर रणभेरी बजाना आरम्भ कर दिया, अविराम गति से दिन-रात होते हुए वह युद्ध सात दिन तक हुआ । वाह्लीक की आदी सेना और बलखानि (मलखान) की एक लाख सेना उस युद्ध में काम आई । शत्रु की सेना में हाय-हाय मच गया, भयभीत होकर वे लोग इधर-उधर भागने लगे और बलखानि (मलखान) आदि के सैनिक ‘जयदुर्गे’ के नारे लगाते हुए हर्षित हो रहे थे । ८२-९१ । अपनी सेनाओं को विनष्ट होते देखकर वे सातों राजकुमार, जो कौरवों के अंश से उत्पन्न थे, रण-क्षेत्र में पहुँच गये । महानन्द, नन्द, परानन्द, उपनन्द, सुनन्द, सुरानन्द और प्रनन्द उनके नाम थे, और तोमर कुल के वे भूषण गजराजों पर स्थित थे । अपने तीक्ष्ण वाणों के प्रहारों से बलखानि (मलखान) के

भयभीतश्च ते सर्वे बलखानिमुपाययुः । दृष्टा सैन्यं पराभूतं बलखानिस्तदा रुषा ॥१५
 अन्यथावत्^१ वेगेन कपोतस्थो महाबलः । नन्दं प्रति तथा देवः परानन्दं च तालनः ॥१६
 उपनन्दं सूर्यदर्मा सुनन्दं प्रति तारकः । नेत्रांसिहः सुरानन्दं प्रनन्दं प्रति यादवः ॥१७
 युध्यमानास्तु ते सर्वे परस्परवर्धैविणः । दिनार्द्धशभवद्युद्धं बहुवीरप्रणाशनम् ॥१८
 पराजितास्तु ते पुज्ञा बाह्लीकस्य महाबलाः । त्यक्तदा युद्धं युर्गेहं भीरुका बलखानिना ॥१९
 दृष्टा लेषां बलं घोरमधिनन्दनभूमिपः । कुतुकं च समाहृय नाटचां वेतरिणीं तथा ॥
 कथितं कारणं राजा यथा जातः पराजयः ॥१००
 इति श्रुत्वा तु कुतुकस्तभाष्मास्य महोपतिम् । स ध्यात्वा शाम्बरीं माध्यां महादेवेन निर्मिताम् ॥
 तत्सैन्यं मोहयामास शिलाभूतमचेतनम् ॥१०१
 तदा केसरिणी नाटचा अष्टौ बद्धवा महाबलान् । राजः पाश्वमुपागम्य दत्त्वा तान्गेहमाययो ॥१०२
 बाह्लीकश्च प्रसज्जात्मा बद्धवा तप्तिगडैर्दृढैः । लुण्ठित्वा द्रविणं तेषां कोशमध्ये समाक्षिपत् ॥१०३
 देव्याश्च वरदानेन देवर्सिहो भयातुरः । महावर्तीं समग्रम्य स्वर्णवत्यै न्दवेदयत् ॥१०४
 ज्ञात्वा स्वर्णवती देवी सर्वदिव्याविशारदा । श्येनीं मूर्तिं समास्थाय यंयौ पुष्पवतीं प्रति ॥१०५
 दृष्टा तु दम्पती तत्र मकरन्दं गृहे स्थितौ । रुदित्वा कथयामास यथा प्राप्तः पराजयः ॥१०६

सैनिकों को धराशायी करने लगे । पश्चात् भयभीत होकर वे सैनिक बलखानि (मलखान) की शरण में पहुँच गये । अपनी सेना को पराजित होते देखकर बलखानि (मलखान) ने कुद्ध होकर कपोत (कबूतर) नामक घोड़े पर बैठकर उस रण क्षेत्र को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर नन्द के साथ देवर्सिह, परानन्द के साथ तालन, उपनन्द से सूर्यदर्मा, सुनन्द से तारक (ताहर), सुरानन्द के साथ नेत्रांसिह, एवं प्रनन्द के साथ यादव (मकरन्द) का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । उन वीरों ने परस्पर एक दूसरे के वध की इच्छा करते हुए दोपहर तक घोर युद्ध किया । जिसमें अनेक वीरगण हताहत हुए । पश्चात् बाह्लीक के वे राजकुमार बलखानि (मलखान) के भय से भयभीत होकर युद्ध छोड़कर भाग निकले । राजा अभिनन्दन ने शत्रु की सेना को भीषण देखकर कुतुक तथा नाट्या केशरिणी को बुलवाकर उनसे अपने पराजय का सभी कारण यथावत् बताया । इसे सुनकर कुतुक ने राजा को आश्वासन देते हुए महादेव द्वारा निर्मित उस शांबरी माया के ध्यान पूर्वक शत्रुओं की सेनाओं को पापाण बनाकर चेतनाहीन कर दिया । उस समय नाट्या केशरिणी ने महाबलवान् उन आठों वीरों को बाँधकर राजा को ले जाकर सौंप दिया और स्वयं अपने घर चली गई । बाह्लीक राज्याधिपति (अभिनन्दन) ने उन्हें हथकड़ी बेड़ी से दृढ़ आबद्धकर उनके कोष को लुटवाकर अपने कोष में संचित करा लिया । देवी द्वारा प्राप्त किये हुए वरदान के नाते देवर्सिह शेष रह गये, जो उसकी माया से प्रभावित न हो सके थे, उन्होंने भयातुर होकर महावर्ती (महोवा) में पहुँचकर स्वर्णवती (सोना) से सभी वृत्तान्त कहा । सम्पूर्ण विद्याओं की विदुषी स्वर्णवती (सोना) उसी समय वाज पक्षी का रूप धारणकर पुष्पवती के पास चली गई । १२-१०५ । बहाँ मकरन्द के घर दम्पती (स्त्री-पुरुष) को देखकर रुदन करती हुई उनसे अपने पक्ष के पराजय का कारण बताया । उस समय

१. धावु गतिशुद्धयोरित्यात्मनेपदिनो रूपमेतत् ।

कृष्णांशस्तु तदा दुःखी मकरन्दं वचोऽब्धवीत् । गच्छ वीर मया सार्द्धं मद्गुरुर्बन्धनं गतः ॥१०७
 कुलक्षये महत्पापं सुप्रोक्तं पूर्वसूरिभिः । निमग्नान्दुःखजलधौ समुद्धर मम प्रिय ॥१०८
 इति श्रुत्वा तु तच्छयातः शूरायुतसमन्वितः । संन्यस्तवेषमास्थाय खड्गचर्मसमन्वितः ॥
 कृष्णांशेन हृयारुद्धो बाह्लीके त्वरितो यथौ ॥१०९
 तदा स्वर्णवती देवी पुष्पवत्या समन्विता । श्येनीरूपमुपास्थाय यथौ यत्र महारणः ॥११०
 स छिन्ना शास्त्रर्णी मायां बोधयित्वा स्वसैनिकान् । रुरोध नगरीं तस्य बाह्लीकस्य महात्मनः ॥१११
 दृष्ट्वा ताज्ञ्ञुसंयुक्ताकुतुकस्तु तया सह । पुनश्च शास्त्रर्णीं मायां प्रेषयामास तान्प्रतिः ॥११२
 छिन्ना सा सकलां मायां बद्ध्वा तौ दैत्यसन्निभौ । नगरं दाहयामास तस्य भूपस्य नायया ॥११३
 न दाहो दाहमापन्नो न भस्मी भस्मवान्दुः । स्वर्णवत्या कृतं चित्रं स्वयं देव्या न मायया ॥११४
 तदा पुष्पवती देवी हत्वा केशरिणीं रुषा । तन्मासैत्तर्पयामास गृग्रागेमायुवायसान् ॥११५
 कुतुकं च तथाभूतं हत्वा स्वर्णवतीं स्वयम् । कारागारे लोहमये स्थितान्वीरानमोचयत् ॥११६
 पुनरागम्य सा देवी तया सार्द्धं शुभानना । मकरन्दः स्थितो यत्र कृष्णांशेन समन्वितः ॥११७
 ते सर्वे विस्मिताश्रासञ्ज्ञत्वा देव्या विमोहिताः । क्रोधवन्तो महावीरा युद्धाय समुपाययुः ॥११८
 पुनश्चासीत्योर्युद्धं सेनयोरुभयोर्मृद्ये । बलखानिं महानन्दो नन्दश्राह्लादमाययौ ॥११९

दुःखी होकर उदयसिंह ने मकरन्द से कहा—मेरे साथ चलने के लिए शीघ्र तैयारी करो, क्योंकि मेरे गुह (आह्लाद) भी बंधन में फँस गये हैं । पूर्व के विद्वानों ने बताया है कि—कुलक्षय होनं पर महापातक की प्राप्ति होती है । अतः मेरे प्रिय ! दुःख सागर में डूबते हुए मेरा उद्धार करो । इतना सुनकर उनके साते ने दश सहस्र सैनिकों समेत संन्यासी का वेष धारणकर हाथ में खड़ग और चर्म (दाल) लिए बाह्लीक नगर को प्रस्थान किया । घोड़े पर बैठे हुए उदयसिंह उस सैन्य का संचालन शीघ्रता से कर रहे थे । उस समय स्वर्णवती (सोना) भी पुष्पवती समेत उसी बाज़ पक्षी के वेष में वहाँ के रणस्थल में पहुँच गई । उसने शास्त्रर्णी माया के विध्वंस पूर्वक अपने सैनिकों को चेतना प्रदान की जो चैतन्य होने पर पुनः अभिनन्दन की राजधानी को चारों ओर से धेर लिये । शत्रु सेना को चैतन्य देखकर उनसे ऊपर कुतुक ने केशरिणी के साथ रहकर पुनः शास्त्रर्णी माया (जादू) का जाल रचा । इन दोनों (युवतियों) ने पुनः उनकी माया के नाशपूर्वक उन दोनों दुष्टों को बाँध लिया पश्चात् उस राजधानी को भस्म करने का प्रयत्न किया, किन्तु राजा की माया द्वारा सुरक्षित होने के नाते दाह में ज्वलन शक्ति रह न गई, अतः भस्म किये जाने पर वह भस्म न हो सका । क्योंकि उस माया का निर्माण स्वयं चित्ररेखा ने किया था । स्वर्णवती (सोना) के उस प्रयास को विफल होते देखकर पुष्पवती देवी ने कुद्ध होकर केशरिणी का निधन कर उसके मांसों से गीधों और स्थारों को तृप्त किया । उधर स्वर्णवती (सोना) ने भी कुतुक का हनन करके जैल में लोहे की शृंखलाओं से दृढ़ आबद्ध उन अपने वीरों को मुक्त किया । १०६-११६। पश्चात् वह (स्वर्णवती) देवी पुष्पवती के साथ मकरन्द के पास आई, जहाँ वे उदयसिंह समेत स्थित थे । शत्रु के सैनिकों ने अपने को देवी द्वारा अत्यन्त मुग्ध जानकर अत्यन्त कुद्ध होकर पुनः युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया । उन दोनों सैनिकों का घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें बलखानि (मलखान) के साथ महानन्द, आह्लाद से नंद,

परानन्दस्तथा देवं तारकं चोपनन्दनः । सुनन्दो नेत्रसिंहं च सुरानन्दश्च तालनम् ॥१२०
 प्रनन्दो वीरसेनं च ब्रह्मानन्दं स भूपतिः । गजस्थिताश्च ते सर्वे धनुर्युद्धपरायणाः ॥
 अहोरात्रमभूद्युद्धं तेषां च तुमुलं ऋमात् ॥१२१
 एतस्मिन्नन्तरे रात्रौ चित्ररेखा समागता । स्वकीयान्वयः कुलीभूतस्तादृशांश्च विलोक्य वै ॥१२२
 चित्रगुप्तं तदा ध्यात्वा चित्रमायामचीकरत् । तदा तद्वान्धवात्रासन्बहुधा चाभिनन्दनाः ॥१२३
 तान् दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे भयभीताश्च दुद्रुवुः । त्यक्त्वा युद्धमयीं भूमिं शोकव्याकुलचेतनाः ॥१२४
 पञ्चयोजनमागत्य ततो वासमकारयन् । सन्ध्याकाले तमोभूते निरस्त्वाहा महाबलाः ॥१२५
 हा कृष्णांशो भहाबाहो शरणागतवत्स्तल । इन्दुलस्ते कुमारोऽयं संहृतश्चित्ररेख्या ॥१२६
 तथा विमोहिता वीश वदं ते शरणं गताः । इत्युक्त्वा रोदनं चक्षुः क्व गतोऽसि महामते ॥१२७
 तदा कोलाहलश्चासीद्विदां बलशालिनाम् । आह्लादं गर्हयित्वा ते मूर्छिता भुविं विह्वलाः ॥१२८
 आह्लादस्तु तथा श्रुत्वा वज्रपाताहतः स्वयम् । उन्मादिवत्तदा भूत्वा तः उद्यमास वक्षसि ॥१२९
 एतस्मिन्नन्तरे योगी कृष्णांशो भगवत्कला । चन्द्रोदये स्वयं प्राप्तश्चाप्तम्यां भृगुवासरे ॥१३०
 शूरश्च दशसाहस्रैर्मकरन्देन संयुतः । तत्सेनां बोधयामास पालितां बलखानिना ॥१३१
 जित्वा तान्सर्वभूपालान्गृहीत्वा विपुलं धनम् । पञ्चशब्दस्थितं बन्धुं प्रत्यागत्य जगर्ज वै ॥१३२

देवसिंह से परानन्द, तारक से उपनन्द, नेत्रसिंह से सुनन्द और तालन से सुरानन्द, वीरसेन से प्रनन्द, और ब्रह्मा से स्वयं राजा युद्ध कर रहे थे । राजकुमार गण गजराज पर स्थित होकर धनुर्युद्ध अविराम गति से कर रहे थे । वह युद्ध दिन-रात चलता रहा पश्चात् उसी बीच रात्रि में चित्ररेखा ने वहाँ रणस्थल में आकर अपने पक्ष के सैनिकों को व्याकुल देखकर चित्रगुप्त के ध्यान पूर्वक चित्रमाया का निर्माण किया । उसने उस माया में अनेक सहायक बन्धुगण का निर्माण किया था, जो अधिकांश अभिनन्दन वंश के दिखाई दे रहे थे । उन्हें देखकर महावती के सैनिक अत्यन्त भयभीत एवं आश्चर्य चकित होकर पलायन करने लगे । शोकग्रस्त तथा व्याकुल होकर उन सैनिकों ने वहाँ से भागकर पाँच योजन (बीस कोश) की दूरी पर अपना निवास स्थान बनाया । संध्या समय अँधेरे में वे बलवान् सैनिकण हतोत्साहित होकर रुदन करते हुए विलाप कर रहे थे—महा महाबाहो, उदयसिंह ! शरणागत को अपनाने वाले चित्ररेखा ने तुम्हारे इन्दुल कुमार का अपहरण कर लिया है । उसी द्वारा विमोहित होकर हमलोग तुम्हारी शरण में प्राप्त हैं । इस भाँति विलाप करके उच्चस्वर से रुदन किया । हा महामते ! तुम कहाँ हो । सैनिकों के रुदन करने पर महान् कोलाहल (शोर) हुआ । वे सब आह्लाद (आल्हा) की निन्दा करते हुए मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गये । ११७-१२८। इसे सुनकर आह्लाद (आल्हा) भी वज्रपात हो जाने की भाँति स्वयं आहृत होकर उन्मादी की भाँति अपने वक्षःस्थल को ताडित करने लगे । उसी बीच भगवान् की कला एवं कृष्ण के अंश से उत्पन्न उदयसिंह योगी के वेष में मकरनन्द तथा दशसहस्र सैनिकों समेत अष्टमी शुक्रवार के दिन चन्द्रोदय होने पर वहाँ पहुँच गये । तदुपरान्त बलखानि (मलखान) की सेनाओं में लूट करना आरम्भ किया सभी राजाओं को जीतकर विपुल धन की प्राप्ति की । पुनः पञ्चशब्द नामक गजराज पर स्थित अपने

तस्य शब्देन शेषांशो बोधितो बलशालिना : शकुनं शुभमालोक्य भुजावुत्थाप्य वीर्यवान् ॥
 स्वांके निवेशयामास कृष्णांशं योगिरूपिणम् ॥ १३३
 स्तापयित्वाश्रुधाराभिः कृष्णांशं प्रेमविहूलः । दत्त्वा द्विजातिगुल्येभ्यो वर्जयामास कारणम् ॥ १३४
 कृष्णांशोऽपि प्रसन्नत्वा स्वकीयां सकलां कथाम् । वर्जयित्वा यथाभूतां पुनर्बाह्लीकमाययौ ॥ १३५
 चित्रविद्यां स्वयं कृत्वा पाठितां चित्ररेखया । वद्धवाभिनन्दनं द्वूपं रसुतं च समन्विणम् ॥
 चिदाहं कारयामास जयन्तस्य तया सह ॥ १३६
 बाह्लीकस्तु प्रसन्नत्वा दत्त्वा च विपुलं धनम् : स्वसुतां चित्ररेखां च जयन्ताय मुदा ददौ ॥ १३७
 शतं गजान्हयांस्तत्र सहस्राणि धनैर्युतान् । शतं दासांस्तथा दासीर्जयन्ताय स्वयं ददौ ॥ १३८
 प्रस्थान कारयामास बलखान्नेर्महात्मनः । श्रावणे मासि सन्प्राप्तास्ते सर्वे च महावतीम् ॥ १३९
 स्वं स्वं गैह यषुस्तर्वे भूपाश्वाह्लादमनिताः । इति ते कथितं विप्रं चरित्रं कलिनाशनम् ॥
 शृज्वतां सर्वपापद्वं कथयिष्यामि वै पुनः ॥ १४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरपयोगे
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रयोर्विशोऽध्यायः । २३

भाई के सामने आकर सिहनाद किया । उनके शब्द को सुनकर बलशाली (मलखान) ने उन्हें पहचान लिया । उस समय उस पराक्रमी को शुभ शकुन भी हो रहा था, अतः उसने अटल भाव से अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाकर योगी वेष्यारी उदयसिंह को अपने अंक (गोद) में बैठा लिया, पश्चात् उनके प्रेम में अधीर होकर आँसुओं की धारा से उन्हें स्नान कराया, और ब्राह्मणों को दान द्वारा तृप्त करते हुए सभी कारणों का आद्योपान्त वर्णन किया । प्रसन्न होकर उदयसिंह ने भी अपनी सकल कथा सुनाई । अनन्तर पुनः सैन्यों का संचालन करते हुए बाह्लीक नगर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर उन्होंने चित्ररेखा द्वारा अधीत उस विद्या का प्रबल प्रयोग करके चित्ररेखा की माया का ध्वंस-कर दिया । राजा अभिनन्दन को उनके पुत्रों एवं मंत्रियों समेत बाँधकर इन्दुल द्वारा उनकी पुत्री चित्ररेखा का पाणिग्रहण सुसम्पन्न कराया । उस समय राजा अभिनन्दन ने भी अत्यन्त हर्षमग्न होकर अत्यन्त धन समेत अपनी पुत्री इन्दुल को समर्पित की जिसमें सौ हाथी, सौ, घोड़े, सहस्र गायें, सौ दास और उतनी ही दासियाँ थीं । इन्हें सादर ग्रहण करते हुए बलखानि (मलखान) ने महावती (महोबा) को प्रस्थान किया । और श्रावणमास में सभी दल-बल समेत महामती (महोबा) पहुँचने पर आह्लाद (आल्हा) ने सभी सैनिकों एवं राजाओं का यथोचित्पुरस्कार पुरस्तर सम्मान किया, पश्चात् वे सब आतिथ्य ग्रहण करते हुए अपने-अपने घर चले गये । विप्र ! इस प्रकार कलिनाशक चरित्र तुम्हें मैंने सुना दिया । समस्त पापों के नाशक इस चरित्र को मैं पुनः कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! । १२९-१४०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्ग पर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक तेर्ईसर्वाँ अध्याय समाप्त । २३।

अथ चतुर्विशोऽध्यायः कलियुगेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

कृष्णांशे च गृहं प्राप्ते चेन्दुले च विवाहिते । महीपतिस्सदा दुःखी देहलीं प्रति चागमत् ॥१
 वृत्तान्तं च नृपस्याग्रे कथयित्वा स तारकः । परं दिस्मयमापन्नः कृष्णांशचरितं प्रति ॥२
 एतस्मिन्नन्तरे मन्त्रो चन्द्रभट्ट उदारधीः । भूमिराजं बचः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम् ॥३
 मया चाराधिता देवी वैष्णवी विश्वकारिणी । त्रिवर्षान्ते च तुष्टाभूद्वरदा भयहारणा ॥४
 तया इत्ते शुभं ज्ञानं कुमतिध्वंसकारकम् । ततोऽहं ज्ञानवान्भूत्वा कृष्णांशं प्रति भूपते ॥५

चरित्रं वर्णयामास तस्य कल्पणाशनम् ॥५

इत्युक्त्वा स च शुद्धात्मा ग्रन्थं भाषामयं शुभम् । माहात्म्यं देविभक्तानां श्रावयामास वै सभाम् ॥६
 तच्छ्रुत्वा भूमिराजस्तु विस्मितश्चाभवत्क्षणात् । महीपतिस्सदा प्राह दिव्याभ्यबलदीपितः ॥७

उदयो नाम बलवान्यस्यैवं वर्णितः कथा ॥७

चत्वारो वाजिनो दिव्या जलस्थलखण्डश्च ते । शीघ्रं तांश्च समाहृत्य स्वयं भूप बली भव ॥८
 इति श्रुत्वा स नृपतिः श्रुतवाक्यविशारदम् । आहूय कुन्दनमलं प्रेषयामास सत्वरम् ॥९

अध्याय २४

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—इन्दुल के विवाह संस्कार को मुसाम्पन्न कराकर उदयसिंह के घर पहुँचने पर महीपति (माहिल) सदा दुःखी रहने लगे । पश्चात् तारक (ताहर) समेत दिल्ली जाकर उन्होंने राजा के समक्ष सभी वृत्तान्त कह सुनाया । उसे सुनकर उदयसिंह के चरित्र में राजा को महान् आश्चर्य हुआ । उसी बीच उदार एवं बुद्धिमान मन्त्री चन्द्रभट्ट ने राजा से कहा—राजन् ! मैंने जगज्जननी वैष्णवी देवी की आराधना की है । उस वरदहस्ता एवं अभयदान देने वाली देवी ने, जो मेरी आराधना द्वारा तीसरे वर्ष की समाप्ति में प्रसन्न हुई थी, कुमति का नाशक शुभज्ञान मुझे प्रदान किया है । नृप ! पश्चात् उसी ज्ञान द्वारा मुझे उदयसिंह चरित्र विषयक जानकारी हुई है । इसीलिए मैंने उनके पापापहारी चरित्र का वर्णन करते हुए एक ग्रन्थ का निर्माण किया है । इतना कहकर उन्होंने उस भाषा ग्रन्थ को जिसमें शुद्ध भाषा द्वारा देवी के भक्तों का माहात्म्य वर्णन किया गया था, सभा में स्थित लोगों को सुनाया । उसे सुनकर पृथ्वीराज उसी समय अत्यन्त आश्चर्य चकित होने लगे । उस समय महीपति (माहिल) ने कहा—जिस बलवान् उदयसिंह का यह चरित्र कथारूप में वर्णित है उन्हें दिव्य धोड़ों का अभिमान अधिक है, क्योंकि उसके दिव्य शरीरधारी चार धोड़े हैं, जो जल, स्थल एवं आकाश में समान रूप से चलते हैं उनका शीघ्र अपहरण करके आप स्वयं सबसे बली हो सकते हैं ॥१-८। इसे सुनकर राजा ने कुन्दनमल नामक एक सेवक को बुलाया जो व्यावहारिक वार्तालाप में अत्यन्त निपुण था

महावतीं समागत्य स दूतो भूषितं प्रति । उवाच वचनं प्रेष्णा महीराजस्य भूषते: ॥१०
 वाजिनस्ते हि चत्वारो दिव्यरूपाः शुभप्रभाः । दर्शनार्थं तत्र वधूर्देला नाम ममात्मजा ॥११
 तथाहृतान्हयान्भूष देहि मे विस्मयं त्यज । तो चेटेलाग्निना सर्वे क्षयं यास्यन्ति सैन्यपाः ॥१२
 इति श्रुत्वा वचो धोरं स भूषो भयक्ततः । आह्लादादीन्समाहृय वचनं प्राह नप्रधीः ॥
 हयास्त्वान्स्वान्मुदा देहि मदीयं वचनं कुरु ॥१३
 इति श्रुत्वा स आह्लादो ध्यात्वा सर्वमर्यीं शिवाम् । उदाच भधुरं वाक्यं शृणु भूष शिवप्रिय ॥१४
 यत्र नः स्थिताः प्राणास्तत्र ते वाजिनः स्थिताः । न दास्यामो वयं राजन्तत्यं सत्यं त चान्यथा ॥१५
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य राजा पञ्चमलो बली ॥१६
 शपथं कृतवान्घोरं शृण्वतां बलशःलिनाम् । भोजनं बह्यमांसस्य पानीयं गोडसृजेष्पमम् ॥१७
 शश्या स्वमातृसदृशी बह्यहृत्येष्पमा सभा । मन राष्ट्रे च युज्माभिर्वासिः पापमयो महान् ॥१८
 इति श्रुत्वा तु शपथं देवकी शोकतत्परा । चकार रोदनं गाढं सगेहृजनविश्रहा ॥१९
 पञ्चविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे धोगतत्परे । भाद्रशुक्लचतुर्दशयां तद्गोहाद्वर्मतत्पराः ॥२०
 निर्दयुः कान्यकुञ्जं ते जयचन्द्रेण पालितम् । स्वर्णवत्या पुष्पवत्या सहिताश्चित्ररेखयः ॥२१
 इन्दुलः प्रदयौ शीघ्रमयुताश्चबलैस्सह । करालं हयमारुह्य पञ्चशब्दं च तत्पिता ॥

और उसे सभी बातें बताकर शीघ्र भेज दिया । वह दूत महावती (महोबा) राजधानी में पहुँचकर नप्रता पूर्वक पृथ्वीराज के सन्देश को कहने लगा—राजन् ! दिव्य एवं शुभ शरीरधारी चार धोड़े आप के हैं, उन्हें देखने के लिए मेरी पुत्री वेला, जो आप की पुत्रवधू है, अपनी इच्छा प्रकट कर रही है । अतः भूष ! उसकी इच्छा के अनुसार आप आश्र्वय का परित्याग करते हुए धोड़ों को शीघ्र भेजने की व्यवस्था करे, अन्यथा (नहीं तो) इस भीषण सन्देश को सुनकर अत्यन्त भयभीत होते हुए राजा परिमल ने आह्लाद (आल्हा) आदि को डुलाकर उनसे नप्रतापूर्वक कहा—मेरी बात स्वीकार करो—अपने-अपने धोड़े प्रसन्नता पूर्वक उन्हें समर्पित कर दो । उसे सुनकर आह्लाद (आल्हा) ने उन जगन्मयी कल्याणी पार्वती देवी का ध्यान करके भधुर वाणी द्वारा राजा से कहा—शिवप्रिय राजन् ! शरीर स्थित प्राण के समान ये धोड़े मुझे प्रिय हैं, और उन्हीं के स्थान में वे स्थित भी हैं, अतः राजन् ! धोड़े देने में हम लोग विवश हैं, यह मैं सत्य एवं ध्रुव सत्य कह रहा हूँ, यह बात अन्यथा नहीं हो सकती है, इसे सुनकर बलशाली राजा परिमल ने उन बलवीरों के समक्ष धोर शपथ किया—। ब्राह्मण मांस के समान यहाँ का भोजन, गौ के रक्त के समान जल, माता के समान शश्या, ब्रह्महृत्या के समान यहाँ की सभा और मेरे राज्य में निवास करना तुम्हारे लिए महान् पाप है ।९-१८। इस भीषण शपथ को सुनकर देवी देवकी अत्यन्त चित्तित होकर गाढ़ रुदन करने लगी, उन्हें देखकर उनके जन परिजन सभी रुदन करने लगे । उस समय उदयर्सिह की पञ्चीस वर्ष की अवस्था आरम्भ थी । भाद्रपद शुक्ल की चतुर्दशी के दिन उन धार्मिक वीरों ने उनके घर से निकल कर राजा जयचन्द्र की कान्यकुञ्ज (कन्नौज) नामक राजधानी को प्रस्ताव किया । उस यात्रा से स्वर्णवती (सोना) पुण्यवती एवं चित्ररेखा समेत इन्दुल दश सहस्र अश्वारोहियों के साथ चल रहे थे । वे स्वयं कराल नामक धोड़े पर बैठे थे और उनके पिता पञ्चशब्द नामक गजराज पर स्थित थे । उसी प्रकार

कृष्णांशो बिन्दुलारूढो देवकीमनुसंययौ

। १२२

त्यक्त्वा ते भूयतेर्ग्रामं सर्वसम्पत्समन्वितम् । पथि अहमुषित्वा ते जयचन्द्रमुपाययुः ॥२३
नत्वा तं भूर्षति प्रेष्णा गदित्वा सर्वकारणम् । उषित्वा शीतलास्थाने पूजयामासुरम्बिकाम् ॥२४
जयचन्द्रस्तु भूयालो देवसिंहेन वर्णितः । तेभ्यच्च च ददौ वृत्तिं भूमा परिमलाज्ञया ॥२५
कुण्ठितो देवसिंहस्तु गत्वा कृष्णांशुभूतमम् । उदित्वा कारणं सर्वं स श्रुत्वा रोषमादधौ ॥२६
त्वरितं बिन्दुलारूढो हयपञ्चशतावृतः । लुण्ठयामास नगरं पालित लक्षणेन तत् ॥२७
दृढ़द्वा तं लक्षणो वीरो हस्तिनः पृष्ठमास्तिथतः । शरेण ताडयामास कृष्णां शहूदयं दृढम् ॥२८
निष्फलत्वं गतो बाणो विष्णुपञ्चेण प्रेरितः । विस्मितः स तु भूपालो द्वाहनाद्भूमिमागतः ॥२९
नत्वा तच्चरणौ दिव्यौ कुलिशादिभिरन्वितौ । तुष्टाव दण्डवद्भूत्वा लक्षणो गद्गदं^१ निरा ॥३०

लक्षण उवाच

ैष्णवं विद्धि मां स्वामिन्विष्णुपूजनतप्तवरम् । ज्ञानेऽहं त्वां महाबाहो कृष्णशक्त्यवतारकम् ॥३१
त्वदृते को हि मे बाणं निष्फलं कुरुते भुवि । क्षमस्व मम दौरात्मयं नाथ ते मायया कृतम् ॥३२
इत्युक्त्वा तेन सहितो जयचन्द्रं महीपतिम् । गत्वा तं कथयामास यथा प्राप्तः पराजयम् ॥३३

विन्दुल (वेंदल) पर बैठकर उदयसिंह देवकी देवी के अनुगामी होकर चल रहे थे । १९-२२। उन वीरोंने राजा के उस सुसम्पन्न गाँव के परित्याग पूर्वक तीन दिन की यात्रा करके जयचन्द्र की राजधानी को देखा । वहाँ पहुँचकर नमस्कार पूर्वक राजा से समस्त वृत्तान्त बताकर शीतला स्थान में रहकर चण्डिका देवी की पूजा की । अपने निष्कासन के सभी कारणों जा देवसिंह द्वारा वर्णन करने पर राजा जयचन्द्र ने उन्हें कोई वृत्ति देने से इसलिए अस्वीकार किया कि परिमल की सम्मति नहीं थी पश्चात् देवसिंह ने निराश होकर उदयसिंह के पास जाकर उनसे उस वृत्तान्त का वर्णन किया जिसे सुनकर उदयसिंह ने अत्यन्त उत्तेजित होकर शीघ्र बिन्दुल पर बैठकर पाँच सौ सैनिकों समेत लक्षण (लाखन) द्वारा सुरक्षित नगर का लूटं करना आरम्भ कर दिया । उसे देखकर वीर लक्षण (लाखन) ने अपने हाथी पर बैठकर उनके सामने पहुँचकर उदयसिंह के हृदय में बाण प्रहार किया । किन्तु, विष्णु मंत्र द्वारा प्रेरित होने पर भी वह बाण निष्फल हो गया । आश्चर्य चकित होकर राजा लक्षण (लाखन) हाथी से उत्तरकर पृथिवी में खड़े होकर उनके चरण की, जो बज्र आदि सेवकों से विभूषित थे, नमस्कार पूर्वक अपनी गद्गद वाणी द्वारा उनकी स्तुति की । २३-३०

लक्षण (लाखन) ने कहा—स्वामिन् विष्णु का पूजन करने वाला मैं वैष्णव (विष्णु का भक्त) हूँ। महाबाहो ! मैं आपको भली भाँति जानता हूँ, आप कृष्ण भगवान् की शक्ति द्वारा अवतरित हुए हैं। क्योंकि आप के अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष मेरे बाण को असफल करने वाला इस भूतल में नहीं है। अतः नाथ ! मेरी इस धृष्टता को आप क्षमा करें, क्योंकि आप की माया से प्रेरित होकर मैंने ऐसा किया है । ३१-३२। इतना कहकर उनको साथ लेकर लक्षण (लाखन) जयचन्द्र के पास पहुँचकर उनसे अपने पराजय का क्रमशः

१. गद्गदं यथा स्वायत्तथा गिरा तुष्टावेत्यन्वयः ।

नृपस्तयोः परीक्षार्थ यौं तु छायाविसोहितौ । गजौं कुबलयापीडौ त्यक्तवाञ्छीतलास्थले ॥३४
 तदाह्लादोदयौ वीरौ गृहीत्वा तौ स्वलीलया । चक्रषतुर्बलातुच्छे क्रोशमात्रं पुनः पुनः ॥३५
 मृतौं कुबलयापीडौ दृष्ट्वा राजा भयातुरः । दवौं राजगृहं प्रामं तयोरर्थं प्रसन्नधीः ॥३६
 इषुक्षेत्रे तु सम्प्राप्ते लक्षणो नाम वै बली । नृपाज्ञया ययौ शीघ्रं तैश्च दिविजयं प्रति ॥३७
 सप्तलक्षबलैस्सद्वं तालनाद्यश्च संयुतः । वाराणसीं पुरीं प्राप्यं हरोदं नगरीं तदा ॥३८
 रुद्रवर्मा च शूपालो गौडवंशयशस्करः । पञ्चायुतेः स्वसैन्यश्च सार्द्धं युद्धार्थमाप्तवान् ॥३९
 यममात्रेण तं जित्वा बोडशब्दस्य वै करम् । कोटिमुद्रामप्यं प्राप्य यज्यनन्द्राय चार्पयत् ॥४०
 मागधेशं पुनर्जित्वा नाम्ना विजयकारिष्यम् । दिशत्यब्दकरं प्राप्य स्वभूपाय नमर्पयत् ॥४१
 पञ्चक्षेत्रीश्च वै मुद्रा राजतस्य पुर्नदयौ । अङ्गदेशपतिं भूपं मायावर्मणिमुत्तमम् ॥४२
 सैन्यायुतयुतं जित्वा विंशत्यब्दस्य वै करम् । कोटिमुद्राश्च सम्प्राप्य त्वभूपाय समर्पयत् ॥४३
 बङ्गदेशपतिं वीरो लक्षणो वै युतश्च तैः । लक्षसैन्ययुतं भूपं कालीवर्मणिमुत्तमम् ॥
 अहोरात्रेण तं जित्वा भग्नयुद्धेन लक्षणः , ॥४४
 विंशत्यब्दकरं प्राप्य कोटिं स्वर्णमयं तदा । प्रेषयामास शूपाय यज्यचन्द्राय वै मुद्रा ॥४५

यथोचित वर्णन किये । तदुपरान्त राजा ने उनके परीक्षार्थ कुबलयापीड नामक हाथियों को जो छाया से मोहित किये थे, शीतला-स्थान के विशाल प्राङ्गण में भेजा । उस समय आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह ने लीलापूर्वक उसे पूँछ की ओर पकड़कर एक कोश तक खींचा-खींची की, जिससे उस कुबलयापीड नामक गजराज की मृत्यु हो गई । उसका निधन देखकर भयभीत होते हुए राजा ने उन्हें राजग्रह नामक गाँव सौंप दिया । पश्चात् आश्विन शुक्ल के आरम्भ होने पर बलवान् लक्षण (लाखन) ने राजा की आज्ञा प्राप्तकर उन वीरों के साथ दिविजय के लिए प्रस्थान किया । उस यात्रा में अपने सात लाख सैनिकों समेत तालन आदि भी चल रहे थे । वाराणसी (बनारस) पहुँचकर उसे जो गौड वंश में उत्पन्न एवं यशस्वी राजा रुद्रवर्मा की राजधानी थी, उन लोगों ने चारों ओर से घेर लिया । राजा रुद्रवर्मा ने अपने पचास सहस्र सैनिकों समेत रणस्थल में आकर युद्ध करना आरम्भ किया, किन्तु, एक प्रहर के भीतर ही उनपर विजय प्राप्तकर सोलह वर्ष का कर उनसे प्राप्त किया, जो एक कोटि (करोड़) की संख्या में था । उसे जयचन्द्र के पास प्रेषितकर उन लोगों ने मगधाधिप विजय के राजा पर आक्रमण किया । विजय प्राप्ति पूर्वक बीस वर्ष का कर उनसे प्राप्तकर जो एक कोटि की संख्या में था, अपने राजा के पास पहुँचा दिया । पुनः वहाँ से बंग (बंगाल) देश के अधिनायक राजा कलिवर्मा के यहाँ पहुँचकर उनके एक लाख सैनिकों के साथ लक्षण (लाखन) ने घोर युद्ध आरम्भ किया । दिन-रात (चौबीस घंटा) अनवरत युद्ध करके विजय समेत उनसे बीस वर्ष का कर प्राप्तकर जो एक कोटि (करोड़) सुवर्ण मुद्राके रूप में था, प्रसन्नतापूर्वक राजा जयचन्द्र को अर्पित कर दिया । ३३-४५

१. विनापि सहशब्दयोगयं सहार्थं गम्यमाने तृतीया, 'वृद्धो यूना' इत्यादिनिर्देशात् ।

उष्टुदेशं^१ यथौ वोरः पालितं तैर्महाबलैः । धोयीकविस्तत्रनृपो लक्षसैन्यसमन्वितः ॥४६
जगन्नाथाज्ञया प्राप्तस्तैश्च सार्द्धं रणोन्मुखे । तयोश्वासीन्महद्युद्धं तुमुलं रोमर्हणम् ॥
अहोरात्रप्रमाणेन कृष्णांशेन जितो नृपः ॥४७

विशत्यब्दकरं सर्वं कोटिस्वर्गसमन्वितम् । सम्प्राप्य प्रेषयामास कान्यकुञ्जाधिपाय वै ॥४८
पुण्ड्रदेशं यथौ वीरो लक्षणो बलवत्तरः । नृपं नागपतिं नाम पञ्चायुतबलैर्युतम् ॥
दिनमात्रेण तं जित्वा कोटिमुद्रां गृहीतदान् ॥४९

महेन्द्रिगारमागत्य नत्वा तं भार्गवं मुनिम् । ततो निवृत्य ते सर्वे नेत्रपालपुरं ययुः ॥५०
योगसिंहस्तदागत्य कृष्णांशं प्रति भार्गवः^२ । कोटिमुद्रां ददौ तस्मै सप्तरात्रमवासयत् ॥५१
वीरसिंहपुरं जग्मुस्ते वीरा मदवत्तराः । रुद्धरुद्धरारों सर्वा हिमतुङ्गोपरिस्थिताम् ॥
पालितं गोरखाख्येन योगिनः भक्तकारणात् ॥५२

भूपानुजः प्रवीरश्च सैन्यायुतसमन्वितः । कृतवान्दारुणं दुद्धं लक्षणस्यैव सेनया ॥५३
प्रत्यहं बलवाञ्छूरो हत्वा शूरसहस्रकम् । सायंकाले गृहं प्राप्य योगिनं तमपूजयत् ॥५४
पूजनात्स प्रसन्नात्मा सैन्यमुज्जीव्य भूपतेः । दत्त्वा गजबलं तेभ्यः पुनर्योगं करोति वै ॥५५
सार्द्धमासो गतस्तत्र युद्धचत्तां बलशालिनाम् । तदा ते तु निरस्ताहं देवर्सिहं तमबुवन् ॥५६

वहाँ से आगे बढ़कर उष्टुदेशाधिपति राजा धोयी कवि की एक लाख सेना से मुठभेड़ किया । उनके भी एक लाख सैनिक थे जो जगन्नाथ की आज्ञा प्राप्तकर रणभेरी बजाते हुए युद्ध के लिए सत्रद्ध थे । दोनों सेनाओं का रोमाञ्चकारी एवं भीवण युद्ध आरम्भ हुआ । उदयसिंह ने दिन-रात के भीतर ही उस राजा को झीं जीत लिया । एक करोड़ की भंग्या में उन सुवर्ण मुद्राओं को, जो बोस वर्ष के कर के रूप में था उस राजा से प्राप्तकर कान्यकुञ्जाधिपति जयचन्द्र के पास भेज दिया । पुनः लक्षण (लाखन) वीर ने पुण्ड्र देश की यात्रा की । वहाँ नागपति नामक राजा के साथ जिनके यहाँ पचास सहस्र सैनिक सदैव सुसज्जित रहा करते थे, युद्ध कर सूर्यास्त के पहले उनसे विजय प्राप्ति पूर्वक एक कोटि मुद्रा ग्रहण किया । पश्चात् महेन्द्र पर्वत पर जाकर भार्गव मुनि के नमस्कार पूर्वक राजा योगसिंह नेत्रपाल के पुर में पहुँचे । उन्होंने उदयसिंह को एक कोटि मुद्रा प्रदान पूर्वक सात दिन तक अपने यहाँ निवास कराया । पुनः उन मदोन्मत्त वीरों ने वीरसिंह की नगरी में पहुँचकर उसे जो हिमालय की चोटी पर स्थित थी, चारों ओर से घेर लिया, जिसे योगी गोरखनाथ ने राजा के भक्त होने के नाते अत्यन्त सुरक्षित रखा था । राजा के छोटे भाई प्रवीर ने अपने दश सहस्र सैनिकों समेत लक्षण (लाखन) की सेना से घोर युद्ध आरम्भ किया । वह बलवान् वीर प्रतिदिन एक सहस्र सैनिकों को धराशायी कर सायंकाल में घर पहुँचने पर उस योगी की पूजा करता था । उसके पूजन से प्रसन्न होकर वह योगी राजा के सैनिकों को जीवित कर दिया करता था । और उन्हें हाथी के समान बल प्रदानकर दे पुनः योगनिष्ठ हो जाते । इस प्रकार उन बलशालियों का डेढ़ मास तक युद्ध होता रहा । उस समय हताश होकर सैनिकों समेत उदयसिंह ने देवर्सिह से कहा—

१. आन्ध्रामिति केचिद्वदंति, औण्ड्रमित्यन्ये, उत्कलमित्यपरे । २. शौनकसंबोधनम् ।

विजयो नः कथं भूष ब्रूहि नस्तस्त्वमग्रतः । इति श्रुत्वा स होवाच शृणु कृष्णांश मे वचः ॥५७
 योगिनं गोरखं नाम पराजित्य स्वनृत्यतः । पुनर्युद्धं कुरु त्वं वै ततो जयमवाप्स्यति ॥५८
 इत्युक्तास्ते हि कृष्णाद्याः कृत्वा योगमयं वपुः । स्थापयित्वा रणे सेनां पालितां लक्षणेन वै ॥५९
 प्रतः काले यपुस्ते वै मन्दिरं तस्य योगिनः । कृष्णांशो नर्तकश्चासीद्वेषुवाद्यविशारदः ॥६०
 देवर्सिहो मृदङ्गाढ्यो वीणाधारी च तालनः । कांस्यधारी तदाह्लादो जगौ गीतां सनातनीम् ॥६१
 तदर्थं हृष्ये कृत्वा गोरखस्सर्वयोगवान् । वरं वृणुत तदनाहृ ते तच्छ्रुत्वाऽब्रुवन्वचः ॥६२
 नमस्यामो वयं तुम्हं यदि देयो वरस्त्वया । देहि संजीविनो विद्यामाहलादाम नहात्नने ॥६३
 इति श्रुत्वा हृष्टि ध्यात्वा तानुवाच प्रसद्धधोः । विद्या सञ्जीविनी तुम्हं वर्षमात्रं भविष्यति ॥
 तत्पश्चान्निष्फलीभूयागमिष्यति मदन्तिकम् ॥६४

अद्य प्रभृति भो वीर भया त्यक्तमिदं जगत् । यत्र भर्तृहरिः शिष्यस्तत्र गत्वा शये ह्यहम् ॥६५
 इत्युक्त्वान्तर्हितो योगी जग्मुस्ते रणमूर्द्धनि । जित्वा भवीरर्त्तिहं च वीरसिहं तथैव च ॥६६
 हत्वा तस्यायुतं सैन्यं लुण्ठयित्वा च तदगृहम् । कृत्वः दासमयं भूषं लक्षणः प्रययौ मुदा ॥६७
 कोशलं देशमागत्य जित्वा तस्य महीपतिम् । सैन्यायुतं सूर्यधरं करयोग्यमचोकरत् ॥६८
 षोडशाब्दकरं प्राप्य मुद्राकोट्ययुतं मुदा । नैमिषारण्यमागम्य तत्रोषुः स्नानतत्पराः ॥६९
 होलिकाया दिने रम्ये लक्षणो बलवत्तरः । दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यो गहोत्सवमकारयत् ॥७०

राजन् ! हम लोगों की विजय क्यों नहीं हो रही है, इसका कारण हमें बताने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर उन्होंने कहा उदयसिंह ! मेरी बातें सुनो ! योगी गोरखनाथ को अपने नृत्य द्वारा पराजित करके पुनः युद्ध करने से तुम्हें निश्चय विजय प्राप्ति होगी । इतना कहने पर उदयसिंह आदि वीरों ने योगी के वेष धारणकर प्रातः काल उस योगी के मन्दिर के लिए प्रस्थान किया । ४६-६०। इधर रणस्थल में सेना की रक्खा लक्षण (लाखन) कर रहे थे । वहाँ मन्दिर में पहुँचकर वंशी वाद्य में निपुण उदयसिंह नृत्य कर रहे थे, जिसमें देवर्सिह मृदङ्ग, तालन वीणा और मजीरा आह्लाद (आल्हा) बजा रहे थे । तथा सनातनी गीता का गान आरम्भ था । योगिनिपुण गोरखनाथ ने उसके अर्थ को हृदयङ्गम करके उन लोगों से कहा—वर की याचना करो ! इसे सुनकर उन लोगों ने कहा—हम लोग आपको नमस्कार कर रहे हैं, यदि आप प्रसन्नता पूर्ण होकर वरप्रदान करना चाहते हैं, तो श्रेष्ठ आह्लाद (आल्हा) को संजीविनी विद्या प्रदान करने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर कुछ समय तक ध्यान करने के उपरांत प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—यह संजीविनी विद्या एक वर्ष तक तुम्हें फल प्रदानकर सकेगी, पश्चात् निष्फल होने पर मेरे पास लौट आयेगी । अतः वीर ! आज से मैं इस जगत का परित्याग करके शिष्य भर्तृहरि के यहाँ जाकर शयन करूँगा । इतना कहकर योगी गोरखनाथ अन्तर्हित हो गये उन वीरों ने रणस्थल में पहुँचकर प्रवीर समेत वीरसिह पर विजय प्राप्ति पूर्वक उनकी दश सहस्र सेना और गृह में लूट कराकर राजा को अपना सेवक बनाया । तदनन्तर प्रसन्न होकर लक्षण (लाखन) ने कौशल प्रदेश में पहुँचकर वहाँ के राजा सूर्यधर को जो अपनी दश सहस्र की सेना के साथ युद्ध कर रहे थे, पराजित कर उनसे सोलह वर्ष का कर, जो एक कोटि की संख्या में था, प्राप्त करके नैमिषारण्य में स्नानार्थ प्रस्थान किया । उस समय वहाँ होली के अवसर पर बली लक्षण (लाखन) ने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान-प्रदान पूर्वक महोत्सव

तदा वयं च मुनयः समाधिस्थान्न भूपतिः । यदा स लक्षणः प्राप्तो नैमिषारण्यमुत्तमम् ॥७१
 स्नात्वा सर्वाणि तीर्थानि सन्तप्ये द्विजदेवताः । कान्यकुञ्जपुरं जगमुश्वेत्रकृष्णाष्टमीदिने ॥७२
 इति ते कथितं विष्णु यथा दिग्विजयोऽभवत् । शृणु विष्र कथां रस्मां बलखानिर्यथा मृतः ॥७३
 मार्गकृष्णास्य सन्तप्यां भूमिराजो महाबलः । महीपतेश्च वाक्येन सामन्तं प्राह निर्भयः ॥७४
 मया श्रुतस्ते तनयः शारदावरदर्पितः । रक्तबीजत्वमापन्नस्ते मे देहि कृष्णं कुरु ॥७५
 इत्युक्तस्स तु सामन्तस्तेन राजेद सत्कृतः । चामुण्डं नाम तनयं समाहूय ब्रवीदिदम् ॥७६
 पुत्र त्वं नृपते: कार्यं सदा कुरु रणप्रिय । इति श्रुत्वा पितुर्वक्यं स वै राजानमब्रवीत् ॥७७
 देह्यन्नां भूपते मह्यं शीघ्रं जयमदप्यसि । इति श्रुत्वा स होवाच बलखानिर्महाबलः ॥७८
 मच्छरीषवनं छित्वा गृहीत्वा राष्ट्रमुत्तमम् । सुस्थितो निर्भयो गेहे बाहुशाली यतेन्द्रियः ॥७९
 यदि त्वं बलखानिं च जित्वा मे ह्यपर्यिष्यसि । हत्वा वा तस्य सकृतं राष्ट्रं त्वयि भविष्यति ॥८०
 इत्युक्त्वा रक्तबीजं तं समाहूय स्वकं बलम् । सप्तलक्षं ददौ तस्मै स तत्प्राप्य मुदा ययौ ॥८१
 उषित्वा त्रिदिनं मार्गे शिरीषाख्यमुपागतः । हस्योद नगरीं सर्वा बलखानेर्महात्मनः ॥८२
 चामुण्डागमनं श्रुत्वा बलखानिर्महाबलः । पूजयित्वा महामायां दत्त्वा दानान्यनेकशः ॥
 लक्षसैन्येन सहितः प्रययौ नगराद्विहिः ॥८३

कराया । उस समय हमलोग तथा मुनिगण समाधिस्थ थे । राजा लक्षण (लाखन) नैमिषारण्य में पहुँचकर समस्त तीर्थों के स्नान पूर्वक ब्राह्मणों एवं देवताओं को प्रसन्न किये । उपरांत चैत्र कृष्ण की अष्टमी के दिन कान्यकुञ्ज (कन्नीज) के लिए प्रस्थान किया । विष्र ! इस प्रकार मैंने तुम्हें उनके दिग्विजय का वर्णन सुना दिया । विष्र ! अब उस कथा को सुना रहा हूँ, जिसमें बलखानि (मलखान) के स्वर्गवासी होने का वर्णन किया गया है, सुनो ! ६१-७३ ॥बलवान् निर्भक पृथ्वीराज ने मार्गशीर्ष (अगहन) मास के कृष्ण सप्तमी के दिन महीपति (माहिल) द्वारा भेजे सामन्त से कहा—मैंने सुना है कि आपका पुत्र शारदा के वरदान से अत्यन्त मदोन्मत होकर रक्तबीज हो गया है । अतः उसे मुझे सौंप देने की कृपा करें । इस प्रकार कहने एवं राजा द्वारा सत्कृत होने पर उस सामन्त ने चामुण्ड नामक अपने पुत्र को बुलाकर यह कहा—‘रणप्रिय ! पुत्र राजा का कार्य करने के लिए तुम सदैव तैयार रहो’ पिता की ऐसी बातें सुनकर उसने राजा से कहा—‘राजन् ! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये, आपकी शीघ्र विजय होगी । इसे सुनकर राजा ने कहा—महाबली बलखानि (मलखान) ने शिरीष नामक बन को काटकर उस मेरे उत्तम राष्ट्र को अपना लिया है । उस गृह में वह बाहुशाली एवं संयमी वीर निर्भय होकर रह रहा है । यदि तुम बलखानि (मलखान) पर विजय प्राप्तकर उसे मुझे समर्पित कर दो, अथवा उसकी हत्या कर दो, तो वह सम्पूर्ण राष्ट्र तुम्हारा हो जायेगा । इतना कहकर उन्होंने अपनी सात लाख सेना उसे प्रदान किया और उसने भी प्रसन्नता पूर्वक सैन्य समेत प्रस्थान किया । मार्ग में तीन दिन व्यतीत कर शिरीष बन में पहुँचकर उस यशस्वी बलखानि (मलखान) की नगरी को चारों ओर से घेर लिया । बलशाली बलखानि (मलखान) ने चामुण्ड का आगमन सुनकर महामाया की पूजा समेत अनेक प्रकार के दान करके अपने एक लाख सैनिकों को लेकर नगर से

तस्यानुजो महाबीरसुखखानिर्बलैः सह । हरिणिं तां समारह्य शत्रुसैन्यमचिक्षपत् ॥८४
 बलखानि: कपोतस्थो नाशयित्वा रिपोर्बलम् । लक्षसैन्यं मुदा युक्तश्चामुण्ड प्रति चागमत् ॥८५
 तयोश्चासौन्महद्युद्धं रव स्वसैन्यक्षयङ्गरम् । अहोरात्रप्रसाणेन निहताः क्षत्रिया रणे ॥८६
 प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः । जग्मतुस्तौ रणे वीरौ धनुर्बाणिविशारदौ ॥८७
 रथस्थो बलखानि चामुण्डो गजपृष्ठगः । चक्रतुस्तुमुलं धोरं नरविस्मयकारकम् ॥८८
 बाणैर्बाणांश्च सञ्जित्य देवीभक्तौ च तौ मुदा । अन्योऽन्यं दाहने हत्वा भूत्तलत्वमुपागतौ ॥
 खड्गवर्मधरौ वीरौ युयुधाते परस्परम् ॥८९

वावन्तो रक्तबीजाङ्गात्मञ्जितात् रक्तबिन्दवः । तावन्तः पुरुषा जाता रक्तबीजपराक्रमाः ॥९०
 तैश्च वीरैर्मदोन्मत्तैर्बलखानिस्समन्ततः । संरुद्धोऽभूद् भृगुश्रेष्ठ शारदां शरणं यथौ ॥९१
 एतस्मिन्नन्तरे वीरः सुखखानिस्ततोऽनुजः । आग्रेयं शरमादाय रक्तबीजानदाहयत् ॥९२
 पुरा तु सुखखानिश्च हन्तैर्देवं च पावकम् । पञ्चाव्यान्पूजयामास तदा तुष्टस्त्वयं प्रभुः ॥९३
 पावकीयं शरं रथ्यं शत्रुसंहारकारकम् । ददौ तस्मै प्रसन्नात्मा तेनासादभवज्जयी ॥९४
 बलखानिस्तु बलवान्दृष्टुः शत्रुदिनाशनम् । परजितं च चामुण्डं बद्ध्या गेहमुपागतम् ॥९५
 कृत्वा नारीमयं वेषं स भीतो ब्रह्महत्यया । दोलामारोप्य बलवान्प्रेष्यामास शत्रवे ॥९६
 हतशेषं पञ्चलक्षं सैन्यं गत्वा च देहलीम् । वृत्तान्तं कथयामास यथा जातो महारणः ॥९७

बाहर रणस्थल की ओर यात्रा की । उसके छोटे भाई महाबली सुखखानि भी साथ में चल रहे थे । हरिणी नामक अश्व पर बैठकर उसने शत्रु-सैनिकों को धराशायी करना आरम्भ किया और कपोत (कबूतर) नामक अश्व पर बैठे बलखानि (मलखान) भी शत्रु की सेना का संहार कर रहे थे । पश्चात् प्रसन्नता पूर्वक वे चामुण्ड (चौड़ा) के पास पहुँचे । उन दोनों का घोर युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें दोनों दल के सैनिक शीघ्रता से नष्ट हो रहे थे । अविराम गति से दिन-रात होने वाले उस युद्ध में अनेक शूरवीर क्षत्रिय काम आये । प्रातः काल स्नान आदि क्रिया सुसम्पन्न करने के उपरांत वे दोनों धनुर्विद्या के निष्पुण वीर रण में पहुँच गये । बलखानि (मलखान) रथ पर और चामुण्ड (चौड़ा) गजारूप्त पर स्थित होकर दोनों आपस में विस्मय जनक घोरयुद्ध करने लगे । दोनों देवी भक्तों ने बाण से बाण को काटकर पश्चात् एक दुसरे के वाहनों को धराशायी कर स्वयं पृथिवी पर स्थित होकर खड़ग युद्ध करना आरम्भ किया । रक्तबीज के अंग से रक्त के जितनी बूँदै गिरती थी, उतने रक्तबीज के समान पराक्रमी पुरुष उत्पन्न हो जाते थे । ७४-९०। भृगुश्रेष्ठ ! इस प्रकार उन मदोन्मत्त वीरों के चारों ओर से धेर लेने पर बलखानि (मलखान) ने शारदा की शरण प्राप्ति की । उनके छोटे भाई वीर सुखखानि ने वहाँ पहुँचकर अपने आग्नेय बाण द्वारा रक्तबीज को दग्ध कर दिया । पहले समय में सुखखानि ने हव्य (स्त्री) द्वारा पाँच वर्ष तक अग्निदेव की आराधना की थी । उससे प्रसन्न होकर स्वयं पावक देव ने प्रत्यक्ष होकर उन्हें अपना आग्रेय बाण प्रदान किया, जिससे शत्रु का संहार हो जाता है । उसी बाण के प्रयोग द्वारा उन्हें विजय प्राप्त हुई, इसे देखकर बलवान् बलखानि (मलखान) उस शत्रुहन्ता एवं पराजित चामुण्ड को बाँधकर अपने घर लाये और ब्रह्महत्या के भय से उनका वध न कर कैवल स्त्री का वेष धारण कराकर डोला में बैठा उन्हें शत्रु (पृथ्वीराज) के पास भेज दिया । पश्चात् शेष पाँच लाख सैनिकों ने दिल्ली जाकर युद्ध का यथावत् वर्णन किया । उस समय स्त्री-वेष में चामुण्ड को देख-

नारीवेदं च चामुण्डं स दृष्ट्वा पृथिवीभृतिः । क्रोधाविष्टश्च बलवात्पर्हीपतिमुवाच ह ॥१८
 कथं जयो मे भविता सुखखानौ च जीविते । श्रुत्वा महीपतिः प्राह च्छद्यना कार्यमाकुरु ॥१९
 ब्राह्मी माता तयोर्ज्ञेया शुद्धा सैव यतिद्रता । दूतीभिः कारणं ज्ञात्या पुनर्युद्धं कुरुत्व भोः ॥२०
 इति श्रुत्वा महीराजो दूतीस्तात्त्वलकोदिदाः । आहू प्रेषयमास बलखानिगृहं प्रति ॥२१
 ब्राह्मणस्तात्तदा भूत्वा बलखानिगृहं ययुः । समुत्तां तां प्रशस्याशु पत्रच्छुर्विनयान्विताः ॥२२
 तद पुत्रो महावीरौ दिष्ट्या शत्रुक्षयद्वृतैः । तयोर्मृत्युः कथं भूयाज्जीवतां शरदां शतम् ॥२३
 तदा ब्राह्मी वचः प्राह पावकीयः शरः शुभः । मुखानेर्जीवकरो बलखानेः पदाद्वकः ॥२४
 इति ज्ञात्वा तु ता दृत्यः प्रययुर्द्वह्लोः प्रति । कथयित्वा नृपस्याप्ये धनं प्राप्य गृहं ययुः ॥२५
 महीराजस्तु तच्छृत्वा महादेवमुमापतिम् । पार्थिवैः पूजनं चक्रे सहवदिवसान्मुदा ॥२६

इति श्रीभविष्ये महामुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम चतुर्विंशोऽध्यायः । २४

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उच्चाच

षड्विंशाब्दे च कृष्णांशे यथा जातं तथा शृणु । मुने बिन्दुसरो नाम दक्षिणस्यां दिशि स्थितम् ॥१

कर पृथ्वीराज ने कुद्ध होकर महीपति (माहिल) से कहा—‘जब तक सुखखानि जीवित रहेगा, मेरी विजय कैसे हो सकेगी ।’ इसे सुनकर महीपति (माहिल) ने कहा—‘छल छल से कार्य कीजिये ।’ उन दोनों वीरों की माता ब्राह्मी हैं, जिन्हें युद्ध पतिव्रता कहा गया है । उन्हीं से दूरी द्वारा उनके मरण के कारण का पता लगाकर पुनः युद्धारम्भ कीजिये । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने एक छल-कपट निपुण दूती-वृन्द को बलखानि (मलखान) के घर भेजा । उन दूतियों ने अपना ब्राह्मणी वेष बनाकर बलखानि (मलखान) के घर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचते पर पुत्री समेत उनकी प्रशंसा करके अत्यन्त विनम्र वाणी द्वारा कहा—सौभाग्य है कि आप के दोनों पुत्र इतने बड़े वीर हैं कि पहुँचते ही शत्रु का नाश कर देते हैं, ईश्वर करें, इनकी सौ वर्ष की आयु होगी, भला, इनकी मृत्यु भी कभी हो सकती है! उसे सुनकर उस समय ब्राह्मी ने कहा—मुखखानि को प्राणदान देने वाला यह आगेय बाण है और बलखानि (मलखान) को प्राणदान देने वाला उनका चरण । इस मर्म को जानकर उन दूतियों ने दिल्ली पहुँचकर राजा के समझ सभी बातों को कहा । पश्चात् राजा से पुरस्कार रूप में धन प्राप्तकर अपने घर को प्रस्थान किया । दूती की बातों को सुनकर राजा ने उसी समय से आरम्भ कर एक सहस्र दिनों तक प्रसन्नतापूर्ण रहकर अविरत पार्थिव पूजन द्वारा उमापति महादेव की आराधना की । १-१०६

श्री भविष्यमहापुराणे के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
 नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त । २४।

अध्याय २५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुने ! उदयसिंह के छब्बीस वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर उनके द्वारा किये

तस्य तीरेऽवसद्ग्रामो योजनायामसंयुतः । नान्ना बिन्दुगढो दुर्गो वर्णधर्मप्रवर्तकः ॥२
 तस्मिन्नामेऽवसद्भूपो विष्वक्सेनान्वयोद्भूवः । शारदानन्दनो नाम ब्रह्मध्यानशरायणः ॥३
 ब्रह्मचर्यप्रभावेण तद्वीर्यं शिरसि स्थितम् । अतस्स कामपालाख्यः प्रथितोऽभून्महीतले ॥४
 यज्ञैः सम्पूजयामास सुरज्येष्ठं प्रजापतिम् । यज्ञांशभुक्तमात्रेण राज्ञी गर्भमुपादधौ ॥५
 दशसासान्तरे जाता कन्या सर्वगुणालया । पद्मिनी नाम विख्याता सर्वशेभासमन्विता ॥६
 द्वादशाब्दवद्यः प्राप्तौ बभूव वरदण्णिनी । पद्माकरो भूपमुतो महीराजपदानुगः ॥७
 पितुराजानुसारेण भूपानाहूय सत्त्वरम् । स्वयम्बरं भगिन्याश्र कारयामास वै मुदा ॥८
 नानादेश्यं यद्युर्भूषा नुख्यशूरसमन्विताः । सहाह्लादैश्रुतुर्वरैर्लक्षणः पितुराज्ञया ॥९
 यथौ बिन्दुगढं ग्रामं स्थितो यत्र महोत्सवः । महीराजस्तु बलवान्दृष्ट्वा लक्षणमागतम् ॥१०
 स्वसेनां स्थापयामास रक्षार्थं सर्वभूभुजाम् । एतस्मिन्नन्तरे देवी सखीभिः सह पद्मिनी ॥११
 सर्वभूपान्विलोक्याशु लक्षणान्तुप्राप्ययौ । इयामाङ्गं च दुष्यानं च सर्वलक्षणलक्षितम् ॥१२
 चत्वारिंशत्तथा पञ्चाशन्मानाब्दवयोदृष्टम् । व्यूढोरसकं दृढस्कन्धं निर्जरं रोगवर्जितम् ॥१३
 दृष्ट्वा तमात्मसदृशमाह्लादाद्यैश्च रक्षितम् । जयमालां ददौ तस्मै पद्मिनी लक्षणाय च ॥१४

चरित्रों को बता रहा हूँ, सुनो ! दक्षिण दिशा में बिन्दुसर नामक एक जलाशय (सरोवर) है, उसी के तट पर 'बिन्दुगढ' नामक एक दुर्ग-नगर स्थित है, जो योजन भर में विस्तृत एवं वर्ण-धर्म के प्रवर्तक व्यक्तियों से सुशोभित है । उस राजधानी का अधीश्वर शारदानन्दन जो विष्वक्सेन वंश के भूषण है, ब्रह्म-ध्यान का पारायण करते हुए भी, अपनी प्रजाओं के पालन-पोषण में तत्पर रहते हैं । उन्होंने ब्रह्मचर्य के प्रभाव से वीर्य को शिर में स्थित कर लिया या, इसीलिए इस भूतल में वे 'कामपाल' के नाम से प्रव्यात थे । एक बार उन्होंने यज्ञानुष्ठान द्वारा देवश्रेष्ठ प्रजापति (ब्रह्मा) की आराधना किया । उसमें यज्ञ का एक अंश (प्रसाद रूप में) रानी को दिया गया जिसके भक्षण करने से उनका गर्भ स्थिर रह गया । दशवें मास में 'पद्मिनी' नामक एक परमसुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई, जो समस्त गुणों की खानि (निधि) एवं सम्पूर्ण सौन्दर्य की प्रतिमा थी । बारह वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर वह उत्तम वर्ण वाली कन्या स्वयम्बर के उपयुक्त हो गई, उसे देखकर उसका भाई पद्माकर नामक राजकुमार जो पृथ्वीराज का पदानुगामी था, अपने पिता की आज्ञा प्राप्तकर सभी राजाओं को निर्मत्रित कर अपनी भागिनी का स्वयम्बर किया । उसमें अनेक देश के भूप-वृन्द उपस्थित थे । राजा लक्षण (लाखन) भी आहलाद (आल्हा) आदि चार वीरों समेत पिता की आज्ञा प्राप्ति पूर्वक यात्रा करके उस बिन्दुगढ के महोत्सव में सम्मिलित थे । बलवान् पृथ्वीराज ने वहाँ लक्षण (लाखन) को भी उपस्थित देखकर समस्त राजाओं के रक्षार्थ अपनी सेना वहाँ स्थापित कर दिया । उसी दीच राजकुमारी पद्मिनी अपनी सखियों समेत स्वयम्बर में आकर समस्त राजाओं को देखती हुई लक्षण (लाखन) के पास पहुँची, जो श्यामल वर्ण, युवा सम्पूर्ण लक्षणों से विभूषित, चालीस पचास वर्ष की अवस्था सम्पन्न, विशाल वक्ष-स्थल, दृढ़कंधे, देव के समान एवं पूर्ण स्वस्थ थे । उस कन्या ने अपने अनुरूप तथा आहलाद (आल्हा) आदि से सुरक्षित उन्हें देखकर जयमाल लक्षण (लाखन) के गले में डाल दिया । उसी समय वीर लक्षण (लाखन) ने भी उसके कोमल हाथों को पकड़-

तदा स लक्षणे वीरो गृहीत्वा पाणिमुत्तमस् । स्वरथं च समाख्या राजां मध्ये ययौ भुदा ॥१५
 पृथ्वीराजस्तथा सर्वे भूमिपा बलसंयुताः । रुद्धुः सर्वतो वीरं लक्षणं बलवत्तरम् ॥१६
 तालनः सिंहिनीसंस्थो मृहीत्वा परिधं मुदा । सैन्यानि योध्यामास भीमसेनांशसम्भवः ॥१७
 पञ्चशब्दगजारुदश्चाल्हादस्तोमरायुधः । रिपून्मिदारपामात् बलभ्रदांशसम्भवः ॥१८
 कृष्णांशो बिन्दुलारुद्दो गृहीत्वा खड्गमुत्तमस् । भूपतीन्बहुधा छित्वा महावध्यकारयत् ॥१९
 देवो मनोरथारुद्दो भैरवं भल्लमादधौ । हत्वा च बहुधा सैन्यं ननर्द च पुनः पुनः ॥२०
 लक्षणे धनुरादाय दैत्यवास्त्राणि वै पुनः । सन्धाय च जयानाशु महीराजस्य रौन्यपान् ॥२१
 यामस्त्रमभूद्युद्धं तेषां तैश्च तमन्वितम् । त्यक्त्वा युद्धं महीराजः सर्वभूप्रसमन्वितः ॥२२
 ययौ स देहलीप्राने शारदानन्दनस्तदा । संस्थाप्य मण्डपशुभं कृत्वा वैवाहिकीः किया ॥
 ददौ कन्यां विधानेन धनधान्यादिसंवृताम् ॥२३
 एतस्मन्नन्तरे प्राप्तो महीपतिरुवाच तम् । पद्माकरं भूपसुतं लक्षतैन्यसमन्वितम् ॥२४
 अहो मित्र महावीर कीदृशी ते मतिः स्थितः । विष्वक्षेनान्वदे त्वं वै सञ्जातः क्षत्रियोत्तमः ॥२५
 लक्षणे धर्मरहितो वर्णसङ्करसंयुतः । आल्हादाद्याश्च ते शूरा आभीरमातृसम्भवाः ॥
 तैर्युतश्च निवासो वै सन्त्याज्यो धर्मकोविदैः ॥२६
 इति पद्माकरः श्रुत्वा सर्वमायाविशारदः । स कृत्वा शाम्बरीं मायां बद्धवा तानेव दुर्जयान् ॥
 स्वगेहे स्थापयामास कारागारे शिलामये ॥२७

कर अपने रथ पर बैठा लिया और प्रसन्न होकर राजाओं के मध्य से उसे लेकर प्रस्थान किया । १-१५।
 पृथ्वीराज ने समस्त अन्य राजाओं को साथ लेकर जाते हुए बलवान् लक्षण (लाखन) को चारों ओर से घेर लिया । पञ्चात् सिंहिनी पर बैठे हुए तालन ने अपने परिधि अस्त्र द्वारा जो भीमसेन के अंश से उत्पन्न थे, सैनिकों से युद्ध करना आरम्भ कर दिया । पंचशब्द नामक गजराज पर स्थित आल्हाद (आल्हा) भी जो बलभ्रद के अंश से उत्पन्न थे, अपने तोमर अस्त्र से शत्रु सैनिकों को धराशायी करने लगे । उस समय बिन्दुल पर बैठे हुए उदयसिंह तो अपने खड्ग द्वारा बहुधा राजाओं के ही शिर छिन्न-भिन्न कर रहे थे । देवसिंह मनोरथ पर बैठे हुए अपने उस भीषण भाले से शत्रुओं का वध करते हुए बार-बार सिंह गर्जना कर रहे थे और लक्षण (लाखन) अपने धनुष पर वैष्णव शरों को रखकर पृथ्वीराज के सेना नायकों को धराशायी कर रहे थे । एक प्रहर तक दोनों दलों का भीषण संग्राम हुआ । पञ्चात् पृथ्वीराज समस्त राजाओं समेत युद्ध का त्यागकर दिल्ली चले गये और शारदानन्दन ने शुभ मण्डप की स्थापना समेत विवाह की सभी क्रियाओं को धनधान्य के प्रदान समेत सुसम्पन्न करके कन्यादान लक्षण (लाखन) को सौंप दिया । उसी बीच महीपति (माहिल) ने आकर राजपुत्र पद्माकर से कहा, जो अपनी एक लाख सेना समेत स्थित थे—मित्र ! महावीर ! आपकी बुद्धि कैसी हो गई है । आश्चर्य है कि आप विष्वक्षेन वंश के क्षत्रिय कुल में जन्मग्रहणकर वर्णसंकर एवं धर्मन्युत लक्षण (लाखन) के साथ संबंध स्थापित किया । आल्हाद (आल्हा) आदि अहीरिन के गर्भ से उत्पन्न हैं, इसलिए इनके साथ रहने से धर्ममर्ज्जों ने इनका परित्याग कर दिया है । इसे सुनकर पद्माकर ने जो समस्त माया करने में निपुण था, अपनी शाम्बरी माया द्वारा अजेय वीरों को बाँधकर घर में पत्थर के कारागार में डाल दिया । देवी के वरदान द्वारा

देव्यश्च वरदानेन देवर्तिहस्तदा निशि । त्यक्त्वा मायां मोहमयौं कान्यकुञ्जमुपाययौ ॥२८
 इन्दुलाग्रे च तत्सर्वे गदित्वा तेन संयुतः । प्राप्तो विन्दुगढं शोष्रं दिव्यमायाविशारदः ॥२९
 पद्माकरस्तु तच्छुत्वा कृत्वा मायां च शान्द्वरीम् । मोहनायोद्यतस्तत्र यथा मेघे रविं दिवि ॥३०
 इन्दुलश्च तदा चापे सन्धाय शरमुत्तमम् । कामास्त्रेण तु तन्मायाभस्मीभूताभवत्क्षणात् ॥३१
 तदा ते बोधिताः सर्वे कामास्त्रेण महाबलाः । भित्वा लोहस्यं जालं क्षणात् च तथा दृढम् ॥३२
 बहिर्भूताः समाजग्नुः शत्रुसैन्यान्यनाशयन् । क्षत्रियाः पञ्चमाहस्त्रा मृता यमपुरं ययुः ॥३३
 शारदानन्दने भूपस्तात्रागत्य विनम्य तात् । स्वसुतां च ददौ तस्मै लक्षण्य महात्मने ॥३४
 नानाविधानि भोज्यानि प्रशस्याभरणानि च । सर्वेभ्यश्च ददौ राजा शहस्रेभ्यस्तदा मुदा ॥३५
 कुमारिकां स्वकीयां च बहुरोदनतत्पराम् । स मत्वा कामपालो वै स्वसेहात्तं न्यवासयत् ॥
 आगतो लक्षणे गेहं माधकृष्णाष्टमीदिने ॥३६

जयचन्द्रस्तु तं दृष्ट्वा लक्षणं प्रेमिद्वूलः । शतग्राभान्ददौ तेभ्यस्तालनादिभ्य एत च ॥३७
 दत्त्वा ततोऽन्यदानानि गोवस्त्राभरणानि च । प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च स चकार महोत्तमम् ॥३८

सूत उवाच

महीराजो वरं प्राप्तः शङ्करात्पार्थिवार्चनात् । संयोज्य फाल्युने मासि सेनां शत्रुभयङ्कराम् ॥३९
 सप्तलक्ष्मैश्च सहितः शिरीषाख्यपुरं दयौ । नृपाज्ञया च चामुण्डो रुरोध नगरं पुनः ॥४०

देवसिंह उसी आधी रात के समय चेतना प्राप्तकर कान्यकुञ्ज (कन्नीज) चले गये । वहाँ पहुँचकर इन्दुल से रामस्त वृत्तान्त का दर्शन किया । उसे सुनकर इन्दुल ने देवसिंह के समेत उसी समय विन्दुगढ़ को प्रस्थान किया । पद्माकर ने उनका आगमन सुनकर उन्हें मोहित करने के लिए दिन में सूर्य को मेघ द्वारा आवृत्कर लेने की भाँति अपनी शाम्बरी माया का प्रयोग किया । १६-३०। किन्तु इन्दुल ने उसी समय अपने धनुष पर कामबाण का संधानकर उसी द्वारा उनकी समस्त माया को भस्मकर दिया । पद्मचात् कामास्त्र द्वारा चेतना प्राप्त कर उन वीरों ने अपने लोहे के बंधनों तथा किवांडों को तोड़कर बाहर जाकर शत्रुओं का नाश करना आरम्भ किया । पाँच सहस्र क्षत्रियों को यमपुरी भेज दिया । उपरान्त राजा शारदानन्द ने नम्रतापूर्वक वहाँ आकर यशस्वी लक्षण (लाखन) को सादर अपनी कन्या सौप दी और भाँति-भाँति के भोजन-वस्त्र एवं आभूषणों को अन्य लोगों में सप्रेम वितरण किया । उपरान्त राजा ने शहद करती हुई उस अपनी पुत्री को लक्षण (लाखन) के साथ स्नेहपूर्ण होकर बिदा किया । माध कृष्ण अष्टमी के दिन लक्षण (लाखन) अपने घर संकुल पहुँच गये । उनके आने पर प्रेमव्याकुल होकर राजा-जयचन्द्र ने तालनादि को सौ गाँव पुरस्कार रूप में प्रदान किया और ब्राह्मणों को गौ, वस्त्र, आभूषणों को प्रदानकर महान् उत्सव करने का आयोजन किया । ३१-३८

सूत जी बोले—पार्थिवपूजन द्वारा शिव जी से वरदान प्राप्तकर राजा पृथ्वीराज ने फाल्युन मास में सात लाख सैनिकों की एक विशाल सेना लेकर शिरीप नगर को प्रस्थान किया । राजा की आज्ञा प्राप्त-

सुखखानिस्तदा कुद्वो लक्षसैन्यसमन्वितः । नगराद्विरागत्य महावधमकारयत् ॥४१
 पावकास्त्रेण बलवान्हत्वा दशसहस्रकम् । महीराजमुपागम्य दचनं प्राह निर्भयः ॥४२
 अद्य त्वां च हनिष्यामि त्वं वा हन्ता रणे ममः स्वविद्यां कुरु भूप त्वं नो चेद्यास्यसि वैशसम् ॥४३
 इति श्रुत्वा महीराजो रौद्रस्त्रं चाप आदधे । तदस्त्राच्च महावलिः प्रादुर्भूतो भग्यङ्कः ॥४४
 सुखखानिस्तदाप्रेयं सन्दधौ तस्य शान्तये । रौद्राग्निना च सशरः सुखखानिर्लयं गतः ॥४५
 तदस्त्रं शिवतूणीरे गतं कार्यं विधाय तत् । बलखानित्तु तच्छृत्वा भयभीतः समागतः ॥४६
 आतुर्देवमुपादाय जघान च रिपोर्बलम् । ध्यात्वा च शारदां देवीं भूमिराजमुपागमत् ॥४७
 भूमिराजस्तु तं दृष्ट्वा तद्वलाधिक्यमोहितः । उवाच दचनं प्रेषण बलखाने शृणुष्व भोः ॥४८
 कोशमात्रान्तरं गर्ता द्वादशैव मया कृताः । रक्षिता द्वादशशतेः शूरैर्युद्धविशारदैः ॥४९
 शूराञ्जन्त्वा समुल्लङ्घ्य गर्तान्द्वादशसम्पितान् । ममार्द्धं सकलं राष्ट्रं गृहण बलिसत्तमः ॥५०
 इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तद्राजा सत्यभाषितम् । कपोतं हयमः रुद्धा खड्गहस्ते बनं ययौ ॥५१
 दृष्ट्वा गर्तान्महावीरो हत्वा शूराञ्जतञ्चतम् । ययौ स द्वादशान्गर्तान्बाहुशाली जितेन्द्रियः ॥५२
 द्वामुण्डत्तु तदगत्य शूरायुतसमन्वितः । रुरोधं सर्वतो वीरं छक्षकारी द्विजाधमः ॥५३
 बलखानिश्च महतीं सेनां तस्य जघान ह । चामुण्डं तमुपागम्य ननर्द च पुनःपुनः ॥५४

कर चामुण्ड ने पुनः क्रुद्ध होकर सुखखानि से अपनी एक लाख की सेना लेकर नगर के बाहर रणस्थल में आकर भीषण युद्ध करना आरम्भ किया । उन्होंने अपने आपनेय अस्त्र से दशसहस्र मैनिकों के वध करने के उपरांत पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे निर्भय होकर कहा—आज मैं तुम्हरा हनन करूँगा । अथवा इस रणक्षेत्र में मेरे हन्ता तुम्हीं होंगे । अतः भूप ! अपनी विद्या का प्रयोग पहले कर लो, नहीं तो तुम्हें नरक की तैयारी करनी होगी । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने अपने धनुषपर रौद्रबाण का संधान किया जिससे भीषण एवं महाअग्नि का उत्थान हुआ । उसकी शांति के लिए सुखखानि ने अपने पावक, अस्त्र का प्रयोग किया, किन्तु उस रौद्र-अग्नि द्वारा अपने अस्त्र समेत सुखखानि भस्म हो गये । ३९-४५। अपना कार्य करके वह अस्त्र शिव जी दे तरकस में प्रविष्ट हो गया । इस घटना को सुनकर बलखानि (मलखान) भयभीत होकर वहाँ रणस्थल में पहुँचकर भ्रातृबैर भ्रातृओं का नाश करने लगे । उसी अवसर पर शारदा के ध्यान पूर्वक पृथ्वीराज भी वहाँ पहुँचकर उन्हें देखते हुए उनके बलाधिक्य पर मोहित हो गये । पश्चात् उन्होंने प्रेम पूर्वक बलखानि (मलखान) से कहा—मेरी एक बात सुनो ! मैंने एक कोश के भीतर बाहर गढ़े बनाये हैं, युद्ध निपुण बारह सौ शूर जिसकी रक्षा में नियुक्त किये गये हैं । वीरों पर विजय प्राप्त करते हुए उन बारहों गढ़ों को पारकर लेने पर तुम्हें मैं अपना आधाराज्य सौंप दूँगा । उस बलवान् ने राजा के कहे हुए उस प्रिय वाक्य को सत्य मानकर कपोत तथा घोड़े पर बैठ हाथ में खड्ग लिए वहाँ के लिए प्रस्थान किया । वहाँ के गढ़ों को देखकर उस बलवान् ने सौ-सौ वीरों को धरणायी करते हुए उस संयमी एवं बाहुशाली महावती ने बारहवें गढ़े पर पहुँचकर उस चामुण्ड से जो दण सहस्र की सेना लेकर उसे धेर लिया था, युद्ध करना आरम्भ किया । बलखानि (मलखान) ने उस कपटी एवं ब्राह्मणाधम की सेना का हनन करके चामुण्ड के समीप पहुँचकर बार-बार गर्जना की । वहाँ

त्रयोदशं गुप्तगर्तं तृणैराच्छादितं मृदा । विषधौतैर्महाभलैस्संरुद्धं दिवरप्रभम् ॥५५
 पतितः सकपोतश्च स वीरो दैवमोहितः । अन्धकारे महाघोरं गम्भीरं कोशमात्रकम् ॥५६
 विदीर्णस्तत्र चरणस्तपद्मो दत्तजस्य वै । महाकष्टेन तद्वाजी गर्तादागत्य वै ब्रह्मः ॥
 स्वपदैस्ताड्यामास महीराजस्य तद्वलम् ॥५७

चामुण्डस्तु तदागत्य बलखनेश्वरं वै शिरः । छित्वा जघान तत्त्वं हाहाभूतं विनेश्वरम् ॥५८
 गजमुक्ता च तच्छुद्वा चितामारोप्य वै पतिम् । दाहशासास चाङ्गानि सा पत्न्या तहं वै सती ॥५९
 तदा ल्लहा स्ववधार च सार्द्धमागत्य तत्र वै । सुखखानिं च संतूय ददाह तत्कलेवरम्^३ ॥६०
 शून्यभूतं च नगरं भस्मं कृत्वा स वै नृपः । जगान देहलीं शीघ्रं महोत्साहसमन्वितः ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरयाये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् । २५

अथ षड्विंशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

श्रावणे मासि सम्प्राप्ते देहलीं च महीपतिः । नागोत्सवाय प्रययौ सदैव कलहप्रियः ॥१

तेरहवाँ गढ़ा भी बनाया गया था, जो केवल तृण (फूसों) और मिट्ठी से नाम मात्र को आवृत कर दिया गया था । उसके नीचे विषयुक्त भाले भी गड़े थे । दैवसंयोग से घोड़ा समेत (मलखान) उसी गढ़े में गिर पड़ा, जो अंधकार पूर्ण, महाघोर, गंभीर एवं एक कोश में विस्तृत था । वत्सपुत्र (मलखान) के चरण भाले द्वारा विदीर्ण हो गये । उस समय उनका घोड़ा अत्यन्त कष्ट से बाहर निकलकर अपने चरणों द्वारा शत्रुओं का हनन करने लगा । उसी अवसर पर चामुण्ड ने वहाँ पहुँचकर बलखानि (मलखान) के शिर के छेदन पूर्वक उनकी सेनाओं का नाश किया । उसे सुनकर गजमुक्ता (गजमोतिना) चिता लगवाकर पति के साथ सती हो गई । इस घटना को सुनकर अपनी स्त्री समेत ब्रह्मानन्द वहाँ आकर सुखखानि का दाह संस्कार किया । उपरांत पृथ्वीराज ने उस वीरशून्य राजधानी का नाशकर अपने दिल्ली में उसका महोत्सव मनाया । ४६-६१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णन
 नामक पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त । २५।

अध्याय २६ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—एक बार श्रावणमास की नागपञ्चमी के अवसर पर कलह-प्रिय महीपति

१. स्वं कलेवरमिति पाठस्तूतरयंथविरोधादुपेत्य एव ।

दृष्टा नागेत्सवं तत्र गीतनृत्यसप्तन्वितम् । महीराजं नमस्कृत्य वचनं प्राह नम्रधीः ॥२
राजन्महावतीप्राप्ते कीर्तिसागरमध्यगे । वामनोत्सवमत्यन्तं तं यदवीहिसमन्वितः ॥
पश्य त्वं तत्र गत्वा च ममैव वचनं कुरु ॥३
इतं श्रुत्वा महीराजो धुन्धकारेण संयुतः । सप्तलक्षबलैर्युक्तश्चामुण्डेन समन्वितः ॥
प्राप्तः शिरीषविपिने तत्र वासमकारयत् ॥४
महीपतिस्तु नृपतिं नत्वा वै चन्द्रवंशिनम् । उवाच वचनं दुःखी धूर्तो मायाविशारदः ॥५
राजन्प्राप्तो महीराजो युद्धार्थी त्वामुपस्थितः । चन्द्रावलीं च तनयां ब्रह्मानन्दं तवात्मजम् ॥
दिव्यलिङ्गं स सम्पूज्य बलात्काराद् ग्रहोप्यति ॥६
तस्मान्त्वं स्वबलैः सार्द्धं मया सह महामते । छद्मना तं पराजित्य नगरेऽस्मन्सुखी भव ॥७
इति श्रुत्वा दैववशो राजा परिमलो बली । चतुर्लक्षबलैस्त्सार्द्धं निशीथे च समागतः ॥८
शयितान्कत्रियाञ्छूरान्हत्वा पञ्चसहत्कान् । शतध्नीं रोधणीं चक्रे बहुशूरविनाशिनीम् ॥९
तदोत्थाय महीराजः कटिमादध्य सम्प्रभात् । वैरिणं परमं नत्वा महद्युद्धमवीकरत् ॥१०
युद्धचन्त्योः सेनयोस्तत्र मलना पुत्रगृद्धिनी । शारदामादरादगत्वा पूजयामास भक्तिः ॥११
देविदेवि महादेवि सर्वदुःखविनाशिनि । हरे मे सकलां बाधां कृष्णांशं बोधयाशु च ॥१२

(माहिल) ने दिल्ली को प्रस्थान किया । वहाँ के पञ्चमी उत्सव को जिसमें नृत्य-गान का महान समारोह होता है, देखते हुए पृथिवीराज के पास पहुँचकर नमस्कार के उपरांत विनाश निवेदन किया — राजन् ! महावती (महीबा) नगर के कीर्तिसागर के मध्य में यवव्रीहि युक्त वामन-महोत्सव अत्यन्त समारोह के साथ सुसम्पन्न होता है । अतः मेरी नितान्त कामना है कि अबकी बार आप उस महोत्सव को देखने की अवश्य कृपा करें । इसे सुनकर पृथिवीराज ने धुंधकार (धांधू) और चामुण्ड (चौढ़ा) समेत लाख सैनिकों को लेकर उस शृंशिप नामक वन में पहुँचकर वहाँ अपना सैनिक-निवास बनाया । उसी बीच महीपति (माहिल) शीघ्र चन्द्रवंशी राजा परिमल के यहाँ आकर नमस्कार के उपरांत उस मायावी धूर्त ने अपने मुख को गम्भीर बनाकर उनसे कहा—राजन् ! तुमसे युद्ध करने के लिए पृथिवीराज यहाँ आये हुए हैं । दिव्यलिंग की पूजा के उपरांत ये तुम्हारी पुत्री चन्द्रावली का अपहरण बलप्रयोग द्वारा करेंगे । इसलिए महामते ! अपनी सेना के साथ तुम मेरे साथ चलकर छल-छद्म द्वारा उन्हें पराजित कर अपनी राजधानी में सुख का अनुभव करो । इसे सुनकर दैववंश राजा परिमल ने अपनी चार लाख सेना लेकर आधीरात के समय वहाँ जाकर शत्रु के पाँच सहस्र सैनिक के वध करने के उपरांत उन तीपों का प्रयोग करना आरम्भ किया, जिसके द्वारा एक बार में ही अनेक सैनिक धराशायी हो जाते हैं । उस समय राजा पृथिवीराज ने स्ल्हसा उठकर कमर कसते हुए उन्हें महान् शत्रु समझकर उनसे भीषण युद्ध किया । दोनों सैनिकों के युद्ध करते समय रानी मलना ने अपने पुत्री की हित कामना से मंदिर में जाकर देवी शारदा की भक्ति समेत सादर पूजा की । और पश्चात् प्रार्थना की—महादेवि ! आप समस्त दुःख की हरण करने वाली देवी है । अतः देवि ! मेरी समस्त बाधा का अपहरण करो उदयसिंह को शीघ्र इसका ज्ञान

जात्वायुद्धमिमं मन्त्रं हुत्वा तर्पणमार्जने । कृत्वा सुष्वाप तद्वेश्मस्तदा^१ तुष्टा स्वयं शिदा ॥१३
मलने महती बाधा क्षयं यास्यति मा शुचः ॥१४

इत्युक्त्वा शारदा देवी कृष्णांशं प्रति चागमत् । पुत्र ते जननी भूमिर्महीराजेन पीडिता ॥

क्षयं पास्थति शीघ्रं च तस्मात्वं तां समुद्धर ॥१५

इति श्रुत्वा वचो देव्यास्त वीरो विस्मयान्वितः । देवकीं प्रति सञ्चाप्तः कथयामारा कारणम् ॥१६

सा तु श्रुत्वा वचो घोरं स्वर्णवत्या समन्विता । शुरोद भृशमुद्धिशा विलाय बहुधा सती ॥१७

कृष्णांशस्तु तदा दुःखी देवर्सिहमुजाच्च ह । किं कर्तव्यं मया वीर देह्याजां दारुणे भये ॥१८

तच्छ्रुत्वा तेन सहितो लक्षणेन समन्वितः । ययौ दिविवज्यार्थेन व्याजेन च महावतीम् ॥१९

तालनो भीगसेनांशः सेनापतिरुदारधीः । सप्तजक्षबलैस्सार्द्धं विनाह्लादेन सययौ ॥२०

कल्पक्षेत्रमुपागम्य योगिनस्ते तदाभवन् । सेना निवेशयामास विपिने तत्र दारुणे ॥२१

कृष्णांशस्तालनो देवो लक्षणो बलवत्तरः । गृहीत्वा लास्यवर्तूनि युद्धभूमिमुपागमन् ॥२२

सप्ताहं च तयोर्युद्धं जातं मृत्युविवर्द्धनम् । सप्तमेऽहनि ते वीरास्तस्मपाप्ता रणमूर्द्धनि ॥२३

तस्मिन्दिने महाभाग महद्युद्धमवर्तत ॥२४

दृष्ट्वा पराजितं सैन्यं राजा परिमलो बली । रथस्थश्चापमादाय महीराजमुपाययौ ॥२५

यादवश्च गजारुद्दस्तदा चन्द्रावलीपतिः । धुन्धुकारं समाहूय धनुर्युद्धमचीकरत् ॥२६

कराओ । देवी के मंत्र की दश सहस्र आवृति जप, हवन, तर्पण और मार्जन करने के उपरांत उसी मन्दिर में उन्होंने शयन किया । स्वप्न में देवी शारदा ने उनसे यह कहकर कि 'मलने देवि ! शोक भत करो, तुम्हारी यह बड़ी बाधा शीघ्र नष्ट हो जायेगी तथा उदयसिंह के पास जाकर स्वप्न में उनसे कहा—पुत्र ! तुम्हारी जन्म-भूमि राजा के द्वारा कष्टयुक्त है इसलिए उसका उद्धार करो अन्यथा वह शीघ्र विनष्ट हो जायेगी । १-१५। देवी की इन बातों को सुनकर चकित होकर उन्होंने जाकर देव की सभी बातें कहा । उसे सुनकर धोर तप करती हुई पतित्रता देवकी ने स्वर्णवती (सोना) समेत मानसिक पीड़ा से व्यथित होती हुई अत्यन्त रुदन किया । उस समय उदयसिंह ने दुःखी होकर देवर्सिह से कहा—वीर! इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये । उसे सुनकर देवर्सिह ने उन्हें तथा लक्षण (लाखन) को साथ लेकर दिविवज्य के व्याज से महावती (महोबा) को प्रस्थान किया । भीम सेनांश तालन अपनी सात लाख सेनाओं का संचालन करते हुए जा रहे थे । केवल आह्लाद (आल्हा) ही उस यात्रा से वंचित थे । कल्पक्षेत्र में पहुँचकर उन लोगों ने अपना योगी का वेष बनाकर उसी धोर जंगल में सेना रखकर उदयसिंह, तालन, देवर्सिह और सबल लक्षण (लाखन) ने अपने नृत्य-गान की सामग्रियाँ लेकर उस रणक्षेत्र को प्रस्थान किया । वहाँ उन दोनों सैनिकों में सात दिन तक धोर युद्ध होता रहा । उसी सातवें दिन वे वीरगण भी वहाँ पहुँच गये थे । महाभाग ! उस दिन धोर युद्ध हुआ था । राजा परिमल ने अपने सैनिकों को पराजित देवकर विपत्तियों के जाल में फँसकर रथ पर बैठे हुए पृथ्वीराज के समीप गमन किया । उस समय चन्द्रावली के पति यादव ने हाथी पर बैठे धुंधकार (धांधू) को उत्तेजित करते हुए उनसे धनुष युद्ध आरम्भ किया । १६-२६।

१. वेश्मनीत्यर्थः । 'डाबुत्तरपदे'—इति लोपाभावः 'नश्चवि'—इति स्त्वम् ।

हरिनागरमारुद्धा ब्रह्मानन्दो महाबलः । तारकं शत्रुमाहूय धनुर्युद्धं चकार ह ॥२७
 मर्दनं राजपुत्रं च रणजिद्गजसंस्थितः । स्वशरैस्ताड्यामास तत्सुतं च जघान ह ॥२८
 रूपणो वै सरदनं हृयारुद्दो जगाम ह । आभीरीतनयो जातो मदनो नाम वै बली ॥
 नृहरं राजपुत्रं च शडखंशश्च जगाम ह ॥२९
 तेषु सङ्ग्राममेतेषु^१ चामुण्डोऽयुतसैन्यपः । महीपतेश्च वचनं मत्वा नगरमाययौ ॥३०
 ददर्श नारीं रस्यां चतुर्वर्णसमन्विताम् । धनधान्ययुतां वीरो देवीभक्तिपरायणः ॥३१
 महीपतिस्तु वै धूर्तो दुर्गद्वारि समाप्तः । चामुण्डेन युतः पापी राजगेहमुपाययौ ॥३२
 मलनार भ्रातरं दृष्ट्वा वचनं प्राह दुःखिता । भाद्रकृष्णाष्टमी चाद्य यवव्रीहि^२ गृहे स्थितम् ॥३३
 न प्राप्त जल संस्थाने सुपुण्ये कीर्तिसागरे । महीराजो महापापी वामनोत्सवमागतः ॥३४
 विनाह्लादं च कृष्णांशं महद्वःखमुपागतम् । इत्युक्तस्स विहस्याह ब्राह्मणोऽयं महाबली ॥
 कान्यकुञ्जात्समायातः कृष्णांशेन प्रयोजितः ॥३५
 देवीदत्तश्च नाम्नाऽयं स ते कार्यं करिष्यति । श्रुत्वा चन्द्रावली देवी सर्वभूषणसंयुता ॥३६
 कामाश्चिन्नीडितं विव्रं चामुण्डं च ददर्श ह । मातरं प्रति चामस्य वचनं प्राह निर्भरम् ॥३७
 धूर्तोऽयं ब्राह्मणो मातर्निश्चयं मां हरिष्यति । कोऽयं वीरो न जानामि कथं यामि पतिव्रता ॥३८

एवं हरिनागर पर बैठे हुए ब्रह्मानन्द अपने शत्रु तारक (ताहर) को ललकारकर उनसे धनुर्युद्ध करने लगे । उसी प्रकार रणजित ने अपने शत्रु राजपुत्र मर्दन को अपने बाण प्रहारों से व्याकुल करते हुए उनके पुत्र का निधन कर दिया । रूपण अश्वारुद्ध होकर युद्ध कर रहा था, अहीरिन के गर्भ से उत्पन्न गदन जो शंख के अंश से उत्पन्न था, राजपुत्र नृहरि के साथ घोर युद्ध में लीन था । इस प्रकार उन वीरों के युद्ध करते समय चामुण्ड ने महीपति (माहिल) के कथनानुसार दश सहस्र सैनिकों समेत महावती (महोवा) नगर को, जो परमरम्य, चारों वर्णों के नागरिकों से सुशोभित एवं धन-धान्य से परिपूर्ण था, देखते हुए धूर्त महीपति (माहिल) के साथ दुर्ग के अन्दर प्रवेश किया । दरवाजे पर पहुँचकर वह पापी माहिल केवल चामुण्ड को लेकर भीतर राजमहल में चला गया । उस समय भाई को देखकर मलना ने दुखी होकर कहा—आज भाद्रपदमास के कृष्णपक्ष की अष्टमी का दिन है, इसीदिन यह यवव्रीहि जो घर में स्थित है उसे कीर्तिसागर के पुण्यजल में जाना चाहिए किन्तु न जा सका, यह पापी पृथ्वीराज भी इसी वामनोत्सव के समय आ गया है । आह्लाद (आल्हा) और उदयसिंह के बिना इस समय मैं अत्यन्त कष्ट का अनुभव कर रही हूँ । उनके इतना कहने पर हंसते हुए उस महाबली (माहिल) ने कहा—उदयसिंह का भेजा हुआ एक देवीदत्त नामक ब्राह्मण कन्नोज से आया है, वही तुम्हारा सभी कार्य सुसम्पन्न करायेगा । २७-३६ । उसे सुनकर समस्त आभूषणों से सुसज्जित देवी चन्द्रावली ने कामपीडित उस चामुण्ड नामक ब्राह्मण को देखकर माता से आकर निर्भीक होकर कहना आरम्भ किया—मातः ! यह ब्राह्मण धूर्त है, निश्चय यह मेरा अपहरण करेगा । मैं यह भी नहीं जानती हूँ कि यह कौन वीर है । इसलिए पतिव्रता होकर मैं इसके साथ कैसे

१. आगतेषु । २. यवाश्च व्रीहयश्चेति समाहारदन्वः ।

इति श्रुत्वा वचस्तस्या लज्जितस्स महीपतिः । चामुण्डेन युतः प्राप्तो यत्राभूत्स महारणः ॥३९
 एतस्मिन्नन्तरे ते वै ब्रह्माद्यास्तैः पराजिताः । त्यक्त्वा युद्धं गृहं प्राप्तास्त्रिलक्षबलसंयुताः ॥४०
 कपाटं सुदृढं कृत्वा महाचिन्तामुपास्युः । महीराजस्तु बलवान्महीपत्यनुमोदितः ॥४१
 प्रमदावनमागत्य षट्टिलक्षबलान्वितः । उल्लोपं तत्र बलवान्माननोत्सवहेतवे ॥४२
 तालनाद्याश्र चत्वारः शिरीमाख्यपुरं यथुः । स्थलीभूतं च तं ग्रामं दृष्ट्वा ते विस्मयान्विताः ॥
 प्रयगुस्ते मुखभ्रष्टा ददृशुर्हि मदं मुनिम् ॥४३
 प्रणम्योचुः शुद्धाविष्टा बलखानिर्मुने ब्रह्मीः । व्य गतः समरश्नादी रस च कुनागरैर्युतः ॥४४
 श्रुत्वाह हिमदो योगी महीराजेन नारितः । छद्मना बलखानिश्च तस्येयं सुन्दरी चिता ॥४५
 इति श्रुत्वा वचो घोरं कृष्णांशः शोकतत्परः ॥४६
 विललाप भृशं तत्र हा बन्धो धर्मजांशक । त्वदृते भूतले वासो ममातीव भयङ्करः ॥४७
 दर्शनं देहि मे किञ्चन नो चेत्याणांस्त्यजाम्यहम् ॥४८
 इत्युक्तः स तु तदभ्राता बलखानिः पिशाचगः । सपत्नीकस्समायातो रोदनं कृतवान्बहु ॥
 कथित्वा^१ सर्ववृत्तान्तं यथाजातं स्ववैशसम् ॥४९
 दिव्यं विमानमारुद्ध्य गतो नाकं मनोरमम् । युधिष्ठिरे तस्य कला बलखानेलंयं गता ॥५०
 तदा दुःखी स कृष्णांशः कृत्वा भ्रातुस्तिलाङ्गलिम् । महावर्तीं समागत्य राजगेहमुपाययौ ॥५१

(कीर्तिसागर) जा सकती हैं । इसे सुनकर महीपति (माहिल) अत्यन्त लज्जित होकर चामुण्ड समेत उस रणरथल में चला गया । उसी बीच पराजित होकर ब्रह्मादि अपने शेष तीन लाख सैनिकों को लेकर दुर्ग के द्वार को दृढ़तर बन्दकर भीतर अत्यन्त चित्तित हो रहे थे । उधर माहिल के कथनानुसार पृथ्वी राज ने छः लाख सैनिकों समेत बामनोत्सव के कारण वहाँ के प्रमोदवन को धेर लिया था । तालन आदि चारों दीरों ने शृंशिपपुर पहुँचकर वहाँ के नगर को केवल स्थौडिल (झील) मात्र देखकर अत्यन्त आश्चर्य किया । वहाँ इधर-उधर धूमते उन लोगों ने मद नामक मुनि को देखकर नमस्कार पूर्वक चिंतित होकर पूछा—मुने ! रणप्रेमी बलखानि (मलखान) बीर कहाँ चला गया और नगर निवासी कहाँ गये । इसे सुनकर योगी मद ने कहा—पृथ्वीराज ने सब नष्ट कर दिया है, उसी ने छल-छच द्वारा बलखानि (मलखान) की हत्या की है, उसी की यह सुंदरी चिता दिखाई दे रही है । इस घोर वाणी को सुनकर उदयसिंह ने शोक-सागर में निमग्न होकर विलाप करना आरम्भ किया—हा बंधो ! धर्म पुत्र के अंश, तुम कहाँ चले गये । तुम्हारे विना इस भूतल में मेरा निवास करना अत्यन्त दुःस्थ है, मुझे शीघ्र दर्शन प्रदान करो नहीं तो मैं प्राणत्याग के लिए तैयार हूँ । इस प्रकार उनके विलाप करने पर यिशाच्योनिप्राप्त बलखानि (मलखान) ने पत्नी समेत वहाँ प्रत्यक्ष होकर अत्यन्त रुदन करते हुए जिस प्रकार दुर्मृत्यु हुई थी, सभी वृत्तान्त कह सुनाया । पश्चात् दिव्य विमान पर मुशोभित होकर उस रमणीक स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया और उसकी कला युधिष्ठिर में विलीन हो गई । उपरात उदयसिंह दुःखी होते हुए भाई को

वेणुशब्देन कृष्णांशो ननर्त जनमोहनः । वीणाप्रवाद्यं च जगौ तालनो योगिरूपधृक् ॥१२
 मृदङ्गध्वनिना देवो लक्षणः कांस्यवाद्यकः । सुस्वरं च जगौ तत्र श्रुत्वा राजा विमोहितः ॥१३
 तदा तु मलना राज्ञी दृष्ट्वा तद्वामनोत्सवम् । रुदित्वा वचनं प्राह क्व गतो दे प्रियङ्करः ॥१४
 कृष्णांशो दन्धुत्तरहतस्यक्त्वा मां मन्दभागिनीम् । त्वया विरहितो इशो महीराजेन लुण्ठितः ॥१५
 इत्युक्त्वा मलनां दृष्ट्वा कृष्णांशः स्नेहकातरः । वचनं प्राह नस्तात्मा देवि त्वं वज्जनं कुरु ॥१६
 योगिनश्च वयं राज्ञी सर्वयुद्धविशारदः । तवेदं स्कलं कार्यं कृत्वा यामो हि नैमित्यम् ॥१७
 ये यवत्रीहयश्चैव तव सद्वनि संस्थिताः । गृहीत्वा योषितसर्वा गच्छन्तु सागरान्तिकम् ॥
 वयं तु योगसैन्येन तव रक्षां च कुर्महे ॥१८
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य तत्सुता च पतिव्रता । मातरं वचनं प्राह कृष्णांशोऽयं न नर्तकः ॥१९
 पुण्डरीकिनिभे नेत्रे श्यामाङ्गं तस्य सुन्दरम् । कृष्णाशेन चिना मातः को रक्षार्थं क्षमो भुवि ॥
 दुर्जयश्च महीराजः कृष्णांशेन विनिर्जितः ॥२०
 इति तद्वचनं श्रुत्वा मलना प्रेमविहृला । यवत्रीहयो निष्कास्य योषितां स्थापिता करे ॥२१
 जगुस्ता योषितसर्वा: कृष्णांशचरितं शुभम् । लक्षणः शीघ्रमागम्य योगिवेषान्स्वसैनिकान् ॥
 सज्जौकृत्य स्थितस्तत्र तालनादैः सुरक्षितः ॥२२
 कीर्तिसागरमागम्य ते वीरा बलदर्पिताः । रुधुः सर्वतो नारीर्देलायुतमितस्थिताः ॥२३

तिलाङ्गलि प्रदानकर महावती (महोवा) के राजमहल में पहुँच गये । वहाँ उदयसिंह ने वंशी बजाते हुए अपने नृत्य द्वारा देखने वालों को मोहित कर दिया । उस नृत्य में योगीरूप धारणकर तालन वीणा, देवसिंह मृदङ्ग और लक्षण (लाखन) मजीरा बजा रहे थे । उस सुरीली तान को सुनकर राजा (पारेमल) मोहित हो गये । उस समय रानी मलना उस वामनोत्सव को देखकर रुदन करती हुई कहने लगी—मेरा प्यारा कहाँ चला गया, भाई समेत उदयसिंह ने मुझ मन्द भागिनी को त्याग दिया है । मैं तुम्हें कहाँ पाऊँ । तुमसे शून्य जानकर इस प्रदेश को पृथ्वीराज ने लूट लिया है । ३७-५५ । इस प्रकार कहती हुई मलना को देख स्नेह से अधीर होकर उदयसिंह ने नम्रतापूर्वक उनसे कहा—देवि ! तुम मेरी बात स्वीकार करो ! रानी ! हम सभी योगी युद्ध करते में निपुण हैं, अतः तुम्हारे इन सभी कार्यों को सुसम्पन्न कराने के उपरांत मैमिपारण्य जांयेगे । इसलिए तुम्हारे घर में जितने यवत्रीहि स्थित हैं, उन्हें लेकर स्त्रियाँ कीर्तिसागर के समीप चलने की तैयारी करें । हमलोग इस योगी के सेना द्वारा तुम्हारी रक्षा करेंगे । इसे सुनकर उनकी पतिव्रता पुत्री (चन्द्रावली) ने अपनी माता से कहा—यह नृत्य करने वाला उदयसिंह ही है, क्योंकि इसके दोनों नेत्र कमल के समान और अंग अत्यन्त मनोरम हैं । अतः माता ! विना उदयसिंह के इस भूतल में (हम लोगों की) रक्षा के लिए कौन समर्थ हो सकता है । क्योंकि पृथ्वीराज सबके लिए दुर्जेय है, वह केवल उदयसिंह से ही पराजित हुआ है । इसे सुनकर प्रेम विभोर होकर रानी मलना ने उन यवत्रीहियों को उन सुमज्जित सुन्दरियों के हाथ में देकर डोला समेत प्रस्थान किया । चलती हुई सभी स्त्रियाँ उदयसिंह के चरित्र का वर्णन कर रही थी । उस लक्षण (लाखन) ने शीघ्रतापूर्वक अपने योगी वेषधारी सैनिकों को जो तालन आदि की अध्यक्षता में सुरक्षित होकर चल रहे थे, संचालित करते हुए कीर्तिसागर पर पहुँचकर उस दश सहस्र डोले के रक्षार्थ उसको चारों ओर से घेर

महीपतिस्तु कुलहा जात्वा कृष्णांशमागतम् । चन्द्रवंशिनमत्पद्य सपुत्रश्च रुदोद ह ॥६४
 योगिभिस्तर्महाराज त्रुणितः सर्वयोगितः । मलना संहृता तत्र तथा चन्द्रावली सुता ॥६५
 महीराजस्य ते सैन्यः^१ योगिवेपास्त्सन्तःगताः । तारकाय सुतां प्रादान्महीराजाय मत्स्वसाम् ॥६६
 इति श्रुत्वा वचो घोरं ब्रह्मानन्दे सहाबलः । लक्ष्मैन्यान्वितस्तत्र यथौ रोषसमन्वितः ॥६७
 महीराजस्तु कलही संन्यायुतमहात्मजः । रक्षितः कामसेनेन तथा रणजिता यथौ ॥६८
 तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयोर्भूति । तालनो योगिवेषश्च ब्रह्मानन्दमुपाययौ ॥६९
 लक्षणश्चाभयं शूरं देवर्सिहो महीपतिम् । जित्वा बद्धवा च मुदितौ कामसेनस्त्समागतः ॥७०
 लक्षणः कामसेनं च देवो रणजितं तदा । बद्धवा तत्र स्थितौ वीरौ शत्रुसैन्यक्षयङ्करौ ॥७१
 एतस्मन्नतरे ब्रह्मा बद्धवा वै तालनं बली । लक्षणान्तमुपायम्य धनुर्युद्धमदीकरत् ॥७२
 लक्षणं छिन्नधन्वानं पुनर्बद्धवा महाबलः । देवर्सिहस्त्रपागम्य मूर्छितं तं चकार ह ॥७३
 हाहामूर्ते योगिसैन्ये प्रद्रुते सर्वतो दिशम् । कृष्णांशो योषितस्तर्दा वचनं प्राह नम्नधीः ॥७४
 ब्रह्मानन्दोऽयमत्यातो मम सैन्यक्षयङ्करः । तस्माद्युवं मया सार्द्धं गच्छताशु च तं प्राप्ति ॥७५
 इत्युक्त्वा तास्त्समादाय ब्रह्मानन्दमुपाययौ । तयोश्चासीन्महद्युद्धं नरनारायणांशयोः ॥७६

कर स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया । उस समय कलहप्रिय महीपति (माहिल) ने उदयसिंह का आगमन जानकर पुत्र समेत चन्द्रवंशी परिमल के पास पहुँचकर रुदन करते हुए उनसे कहा—महाराज ! उन योगियों ने सब स्त्रियों को लूट लिया, जिसमें मलना और चन्द्रावली का भी अपहरण हुआ है । योगी के वेष में आये हुए वे सभी सैनिक पृथ्वीराज के ही थे जिन्होंने पुत्री (चन्द्रावली) तारक (ताहर) को और मेरी भगिनी (मलना) को पृथ्वीराज को सौंप दिया है । इस घोर वाणी को सुनकर महाबली ब्रह्मानन्द ने अत्यन्त कुद्ध होकर अपने एक लक्ष सैनिकों समेत उस स्थान को प्रस्थान किया जहाँ पृथ्वीराज अपने एक सहस्र सैनिकों के सहित उपस्थित थे । उनकी सेनाओं की रक्षा कामसेन तथा रणजित विशेष सावधानी से कर रहे थे । वहाँ की रणस्थली में दोनों सेनाओं का धोर संग्राम हो रहा था, उस साथ योगी के वेषधारी तालन ब्रह्मानन्द के लक्षण (लाखन) शूर प्रवर, अभ्यर्सिह के और देवर्सिह स्वयं महीपति के पास पहुँचकर सहायता करने लगे । उस बीच अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्ति पूर्वक उन्हें बाँध लेने एवं उन दोनों के प्रसन्न होने पर वहाँ कामसेन सहसा आ पहुँचा । ५६-७० । उसे देखकर लक्षण (लाखन) ने कामसेन को और देवर्सिह ने रणजित को पराजित कर बाँध लिया तथा वहीं अवस्थित भी रहे । उस समय बलवान् ब्रह्मा ने तालन को बाँधकर लक्षण (लाखन) के पास पहुँचकर उनसे धनुर्युद्ध आरम्भ किया । धनुष के विनष्ट हो जाने पर लक्षण (लाखन) को भी उन्होंने बाँध लिया और देवर्सिह को मूर्छित कर दिया । इससे योगियों की सेना में हाय-हाय मच गया और वे (सैनिक) इधर-उधर भागने लगे । ऐसा अनर्थ देखकर उदयसिह ने नम्रता पूर्वक उन सभी स्त्रियों से कहा—‘ब्रह्मानन्द यहाँ आकर मेरी सेनाओं को विनष्ट कर रहे हैं, इसलिए मेरे साथ में तुम सभी शीघ्र चलो । इतना कहकर उन्हें साथ लिए उदयसिह ब्रह्मानन्द के पास ज्योही पहुँचे कि दोनों (नर और नारायण) में घोर युद्ध आरम्भ हो गया । बलवान् उदयसिह ने आकाश मार्ग से उनके रथ पर

१. पुस्त्वमार्षम् । २. स्वसारमित्यर्थः ।

कृष्णांशस्तु बलवान्नभोमार्गं तं प्रति । रथस्थं च समागम्य मोहयःमास सोऽस्तिना ॥७७
 तदा तु मूर्च्छते तस्मिन्मोचयित्वा च ता मुदा । योगी सैन्यान्वितो युद्धात्पतायनपरोऽभवत् ॥७८
 पराजिते दोगिसैन्ये ब्रह्मानन्दो महाबलः । योषितस्तः सनादाय स्वगेहाय इधौ भनः ॥७९
 महीराजस्तु सम्प्राप्तो महीपत्यनुमोदितः । हरोध सर्वतो नारी शिवदत्तवरो बली ॥८०
 नृहरश्चाभयं शूरं मर्दनश्चैव रूपणम् । मदनं वै सरदनो ब्रह्मानन्दं च तारकः ॥८१
 चामुण्डः कामसेन च धनुर्युद्धमर्दीकरत् । तदाभ्यो महावीरो धून्वन्तं नृहरं रिपुम् ॥८२
 छित्वा धनुस्तमागत्य खडगयुद्धमनोकरत् । नृहरः खडगरहितोऽभवद्युद्धपराङ्गमुखः ॥
 तमाह वचनं कुद्दोऽभयो युद्धार्थमुद्यतः ॥८३
 भद्रान्वै सातृष्वस्त्रीयो महीराजस्य चात्मजः ॥८४
 क्षत्रियाणां परं धर्मं कथं संहर्तुमिच्छति । इति श्रुत्वा तु नृहरो गृहीत्वा परिघं रुषा ॥८५
 जघानं तं च शिरसि स हतः स्वर्गमाययौ । स च वै कृतवर्माशो विलीनः कृतवर्मणि ॥८६
 मदनं गोपजातं च हत्वा सरदनो बली । जयशब्दं चकःरोच्चैर्पूर्नरूप्त्वा रिपोर्बलम् ॥
 उत्तरांशश्च ए स ज्ञेयो मदनश्चोत्तरे लयः ॥८७
 रूपणश्च समागत्य धूर्छयित्वा च मर्दनम् । पुनस्सरदनं प्राप्य खडगयुद्धं चकार ह ॥८८
 ब्रह्मानन्दश्च बलवान्स बद्ध्वा तारकं रुषा । महीराजान्तमागम्य धनुर्युद्धं चकार ह ॥८९
 नृहरं रणजित्प्राप्य स्वभल्लेन तदा रुषा । जघान समरश्लाघी महीराजसुतं शुभम् ॥९०

पहुँचकर तलवार द्वारा उन्हें मूर्च्छित कर दिया । पश्चात् उनके मूर्च्छित हो जाने पर उन्होंने तालन आदि को मुक्त बंधन किया । उपरांत अपनी योगी वेदधारी सेना समेत रणस्थल से प्रस्थान कर दिया । योगी सैनिकों के पराजित होने पर महाबली ब्रह्मानन्द ने उन समस्त स्त्रियों को साथ लेकर घर के लिए प्रस्थान किया । उसी बीच महीपति (माहिल) के अनुमोदन करने पर बलवान् पृथ्वीराज ने जिन्हें शिव जी द्वारा वरदान प्राप्त था, उन स्त्रियों को चारों ओर से धेर लिया । पश्चात् युद्ध होते समय नृहर अभय के साथ, मर्दन रूपण के साथ सरदन मदन के साथ, तारक (ताहर) ब्रह्मानन्द के साथ और चामुण्ड (चौढ़ा) कामसेन के साथ धनुर्युद्ध करने लगे । अनन्तर महावीर अभय ने धनुष के टंकार करने वाले शत्रु नृहर के धनुष को भग्नकर उनसे खडगयुद्ध करना आरम्भ किया, किन्तु खड़ग के भग्न हो जाने पर युद्ध से विमुख होते नृहर को देखकर अभय ने अत्यन्त रुष्ट होकर उनसे कहा—आप पृथ्वीराज के पुत्र एवं मेरे मौसेरे भाई होकर क्षत्रिय धर्म का संहार (युद्ध से भागना, क्यों कर रहे हैं?) इसे सुनकर नृहर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर परिध अस्त्र का धातक प्रहार अभय के शिर में किया जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई, वे स्वर्गं पहुँच गये । उनका जन्म कृतवर्मा के अंश से हुआ था, इसलिए वे उन्हीं कृतवर्मा में विलीन हो गये । उसी प्रकार वली सरदन ने गोपपुत्र मदन के निधन करने के उपरांत शत्रु सेना विघ्नस करके उच्चस्वर से 'जय' शब्द की ध्वनि की । मदन का जन्म उत्तर के अंश से हुआ था, इसलिए ये उत्तर के अंश में विलीन हो गये । उस समय रूपण ने मूर्च्छित मदन के पास पहुँचकर सरदन से खड़ग युद्ध करना आरम्भ किया । उधर ब्रह्मानन्द ने क्रुद्ध होकर तारक (ताहर) को बाँध लिया पश्चात् पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे धनुर्युद्ध आरम्भ किया । विजयाभिलाषी रणजित् ने अत्यन्त रुष्ट होकर अपने भल्ल अस्त्र द्वारा पृथ्वीराज पुत्र उस नृहर का शिरच्छेदन कर दिया । ७१-९०।

स वै दुश्शासनांशश्च मृतस्तस्मिन्समागतः ॥१९१
 निहते नृहरे बन्धौ मर्दनः क्रोधतत्परः । स्वशरैस्ताडयामास सात्यकेरंशमुत्तमम् ॥१९२
 छित्वा तान्रणजिञ्छूरस्स वै परिमलोद्भवः । स्वभल्लेन शिरः कायान्मर्दनस्य स चाहरत् ॥१९३
 मृतेस्मिन्मर्दने वीरे तदा सरदनो बली । ताडयामास तं वीरं स्वभल्लेनैव वक्षसि ॥१९४
 महत्कष्टमुपागम्य रणजिन्मलनोद्भवः । स्त्रखड़गेन शिरः कायादयाहरत वैरिणः ॥१९५
 त्रिबन्धो^१ निहते युद्धे तारकः क्रोधपूर्छितः । रथस्यश्च रथस्यं च ताडयामास वै शरैः ॥१९६
 छित्वा बाणं च रणजित्तथैव च रिपोर्द्धनुः । विशरैस्ताडयामास कर्णांशं तारकं हृदि ॥१९७
 अमर्षवशमापन्नो यथा दण्डैर्भुजङ्घमः । ध्यात्वा च शङ्खरं देवं विश्वैतं शरं पुनः ॥१९८
 सन्धाय तर्जयित्वा च शत्रुकण्ठमताडयत् । तेन दणेन रणजित्यक्त्वा देहं दिवं गतः ॥१९९
 हते तस्मिन्महावीर्यं ब्रह्मानन्दश्च दुःखितः । महीराजभयाद्बह्या पुरस्कृत्य च घोषितः ॥
 सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते भाद्रकृष्णाष्टमीदिने ॥१००
 कपटं सुदृढं कृत्वा सैन्यैः षष्ठिसहस्रैः । सार्द्धं गेहमुषागम्य शारदां शरणं यद्यै ॥१०१
 महीराजस्तु बलवान्पुत्रशोकेन दुःखितः । सङ्खल्पं कृत्वान्धोरं शृण्वतां सर्वभूभृताम् ॥१०२
 शिरीषाख्यपुरं रम्यं यथा शून्यं मथा कृतम् । तथा महावती सर्वा ब्रह्मानन्दादिभिस्सह ॥
 क्षयं यास्यन्ति मद्वाणैः सर्वे ते चन्द्रवंशिनः ॥१०३

नृहर का जन्म दुःशासन के अंश से हुआ था, इसीलिए निधन होने पर उसी के अंश में विलीन हो गया । नृहर के मरणोपरांत कुद्ध होकर मर्दन अपने बाणों द्वारा उस सात्विक अंश (रणजित्) पर धात-प्रतिधात करना आरम्भ किया । परिमल पुत्र रणजित् ने उनके बाणों को छिन्न-भिन्नकर अपने भल्लास्त्र द्वारा मर्दन के शिर को शरीर से पृथक् कर दिया । वीर मर्दन के निधन होने पर वली सरदन ने अपने भल्लास्त्र द्वारा वीर रणजित् के वक्षस्थल में प्रहार किया । मलना-पुत्र रणजित् ने उस अस्त्र द्वारा ताडित होने पर अत्यन्त कष्ट का अनुभव करते हुए अपने खड़ग द्वारा उस वैरी के शिर को छिन्न-भिन्न कर दिया । तीनों भाइयों के निधन हो जाने पर रथ स्थायी तारक (ताहर) ने अत्यन्त कुद्ध होकर रथ स्थित रणजित् पर वाणों का प्रहार किया । उसी प्रकार रणजित् ने भी शत्रु के धनुष-बाण को विनष्टकर अपने तीन बाणों द्वारा शत्रु के हृदय में भीषण प्रहार किया । पश्चात् दण्ड से आहत सर्प की भाँति अत्यन्त कुद्ध होकर तारक (ताहर) ने शिवजी का ध्यान करते हुए अपने विषावत वाण द्वारा शत्रु रणजित् का कण्ठच्छेदन कर दिया और उसी अस्त्र से आहत होकर रणजित् अपनी शरीर का त्यागकर स्वर्ग पहुँच गये । उस महापराक्रमी के निधन होने पर ब्रह्मानन्द अत्यन्त दुःखी हुए । पश्चात् उस भाद्रकृष्ण अष्टमी के दिन ब्रह्मानन्द ने शेष साठ सहस्र अपने सैनिकों से सुरक्षित उन स्त्रियों समेत अपने घर आकर पुर्वीराज के भय से (सदर दरवाजे के) किवाड़ को दृढ़तापूर्वक बन्द कराकर शारदा की शरण प्राप्त की । बलवान् पृथ्वीराज ने भी पुत्र शोक से दुःखी होकर सभी राजाओं के सामने प्रतिज्ञा की कि जिस प्रकार शृणिपुर को मैंने शून्यस्थल बना दिया, उसी भाँति ब्रह्मानन्दादि चन्द्रवंशियों समेत महावती (महोवा) नगर भी मेरे बाणों द्वारा विध्वंस कर दिया जायेगा । इतना कहकर राजा ने धुंधुकार (धाधू) को बुलाकर

^१. समाहारे पुंस्त्वमार्पम् ।

इत्युक्त्वा धुन्धुकारं वै चाहृथामास भूपतिः । पञ्चलक्ष्मलैस्सार्द्धं शीघ्रमागम्यतां प्रिय ॥१०४
इति श्रुत्वा धुन्धुकारे गत्वा शीघ्रं च देहलीम् । उषित्वा सप्त दिवसान्युद्धभूमिमुपागमत् ॥१०५
तदाष्टलक्ष्महितो महीराजो महाबलः । तारकेण च संयुक्तो युद्धाय समुपाययौ ॥१०६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्दुग्धाखण्डापरपद्यते
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६

अथ सप्तविंशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

सप्तविंशाब्दके प्राप्ते कृष्णांशे सर्वमङ्गले । भाद्रकृष्णदशम्यां च मलना शोककातरा !!
जननाथकमाहृय वचनं प्राह दुःखितां ॥१
अये कच्छपदेशीय गोतमाल्ययस्तभव । हरिनागरमारुद्ध कान्यकुब्जं व्रजाधुना ॥२
पुत्रमाल्हादमाहृय सानुजं मतिप्रयङ्करम् । इति श्रुत्वा तु वचनं हृदि सञ्चिन्त्य वै पुनः ॥३
मलनां दुःखितां प्राह न त्वयास्यति स प्रभुः । राजः परिमलस्यैव वाक्यं मत्वा सुदुःखदम् ॥४
इति श्रुत्वा तु वचनं हृरोद मलना सती । पुनर्मूर्छा गता भूमौ जीवनं त्यक्तुमुद्यता ॥५

कहा—प्रिय ! पाँच लाख सैनिकों को लेकर तुम भी शीघ्र यहाँ आ जाओ । इसे सुनकर धुन्धुकार (धांधू) दिल्ली जाकर सात दिन के भीतर पुनः उस रणभूमि में आ गये । पश्चात् तारक (ताहर) समेत महाबली पृथ्वीराज ने अपने आठ लाख सैनिकों को साथ ले पुनः युद्ध की तैयारी की । १९-१०६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६।

अध्याय २७

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मंगलमूर्ति उदयसिंह की सत्ताईसवें वर्ष की अवस्था के आरम्भ में भाद्रों मास के कृष्णपक्ष की दशमी के दिन रानी मलना अधिक चिंतित होने के कारण जननायक को बुलाकर दुःखी होकर उनसे कहने लगी—कच्छप देश के निवासी एवं गौतम कुलभूषण ! प्रिय, तुम इसी समय हरिनागर पर बैठकर कान्यकुब्ज (कन्नौज) से छोटे भाई समेत पुत्र आल्हाद (आल्हा) को जो मेरे अत्यन्त प्यारे बच्चे हैं, शीघ्र बुलालाओ । इसे सुनकर उन्होंने इनकी बातों पर विशेष ध्यान देकर उस दुःखी रानी मलना को नमस्कार कर वहाँ से प्रस्थान किया । किन्तु राजा प्रसिद्ध की उन दुःखद बातों का स्मरण कर रानी मलना रुदन करने लगी । चेतना प्राप्त होने पर प्राण विसर्जन के लिए तैयार होकर कहने लगी—हा रामांश आल्हाद (आल्हा) और कृष्णांश सुन्दर

हा रामांश महाबाहो वत्स कृष्णांश सुन्दर । क्व गतौ सह देवक्या त्यक्त्वा मां मन्दभागिनीम् ॥६
तदा परिमलापुत्रो दृष्ट्वा राजीं तथा गताम् । बहुधाधास्य बलवान्कर्त्यकुब्जपुरं ययौ ॥७

ऋषय ऊचुः

त्वया परिमलापुत्रस्तम्भेन्तो जननायकः । रोमहर्षण नो द्वूहि सोऽयं कस्तेन कि कृतम् ॥८

सूत उवाच

इन्द्रप्रस्थपुरेवात्सीत्प्रद्योतः कथितो मदम् । पिता परिमलस्यवानात्योऽनङ्गमहीपतेः ॥९
तस्य कन्या सप्ताजाता नाश्चा परिमला मुने । दुःश्लांशसमुद्भूता रम्भेव सुकुमारिका ॥१०
तद्विवाहार्थमुद्योगः कृतः पित्रा स्वयम्बरः । पुत्रः कच्छपभूपस्य ता नाम्ना कमलापतिः ॥
तामुद्वाह्य विधानेत्स्वगेहाय ययौ मुदा ॥११

तयोस्समगमो जात् पुत्रोऽयं जननायकः । शत्रुविद्यापरः शूरः खड्गयुद्धविशारदः ॥१२
जित्वा भूपान्बलाद्वीरः सिन्धुतीरनिवासिनः । षडशङ्करमादाय पितृराज्यमुपस्थितः ॥१३
एकदा तु महीराजः स्वसैन्यपरिवारितः । दण्डदेशमुपागम्य करार्थं समुपस्थितः ॥१४
तयोश्चासीन्महद्युद्धं जननःयकभूपयोः । मासान्ते सूर्यवंशीयो महीराजेन निर्जितः ॥१५
त्यक्त्वा राष्ट्रं च सकुलः सम्प्राप्तश्च महावतीम् । परिमलस्तु तदा राजा तस्मै ग्रामं शुभं ददौ ॥१६
निवासं कृतवांस्तत्र स्वनाम्ना प्रथितं भुवि । स वै कच्छपदेशीयो ययौ परिमलाज्ञया ॥१७

प्यारे उदयसिंह ! मुझ हत भागिनी को छोड़कर देवकी को साथ लेकर तुम लोग कहाँ चले गये । उस समय परिमल पुत्र (जननायक) ने शनी को अनेक प्रकार के आश्रासन प्रदान किया और पश्चात् कन्नौज की यात्रा की । १-७

ऋषियों ने कहा—रोमहर्षण ! आपने जननायक को परिमल का पुत्र बताया है, अतः हमें यह जानने की इच्छा है कि ये कौन है, और क्या किया है? बताने की कृपा करें । ८

सूत जी बोले—परिमल के पिता का नाम प्रद्योत था, जो दिल्ली के निवासी एवं राजा अनंग के मंत्री थे, यह मैं पहले ही बता चुका हूँ । मुने ! उन्हीं की परिमला नामक पुत्री थी, जो दुःश्ला के अंश से उत्पन्न तथा रम्भा की भार्ति कोमल वदना थी । उसके विवाहार्थ उसके पिता ने स्वयम्बर किया । उस स्वयम्बर में कच्छप प्रदेश के अधीश्वर के पुत्र कमलापति ने उसका सविधान पाणिग्रहण कर उसे लेकर सप्रेम अपने घर को प्रस्थान किया । उन्हों दोनों के समागम से यह जननायक नामक पुत्र हुआ, जो रणकुशल शूर एवं खड्ग युद्ध में अत्यन्त निपुण है । सिन्धुतीर निवासी राजाओं पर विजय प्राप्त कर उनसे छठा अंश कर प्राप्त किया । ९-१४। एक बार राजा पृथ्वीराज ने कर ग्रहण करने के निमित्त अपनी सेनाओं समेत कच्छप देश को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उन दोनों (जननायक) और पृथ्वीराज में घोर संग्राम आरम्भ हुआ । वह सूर्यवंशीय एक मास के अन्त में पृथ्वीराज से पराजित हुआ । पश्चात् उस राष्ट्र का त्यागकर वे सपरिवार महावती (महोबा) चले आये । उस समय राजा परिमल ने उन्हें ग्राम प्रदान किया । जिसमें निवास करते हुए वे भूतल में अपने इस नाम से ख्याति प्राप्त हैं । वही कच्छप देशीय (जननायक) परिमल की आज्ञा से कन्नौज जा रहे हैं । उनके यात्रा करने के उपरांत

तदासौ च महीराजो महीपत्यनुमोदितः । चामुण्डं शीघ्रमाहूय लक्ष्मैन्यसमन्वितम् ॥

आदेशं कृतवान्राजा तस्य बन्धनहेतवे ॥१८

स च नेत्रवतीकूले सम्प्राप्ते लक्ष्मैन्यपः । रुरोधं सूर्यवंशीयं जननायकमुत्तमम् ॥१९

स तदा खड्गमादाय बाहुशाली यतेन्द्रियः । तत्र शूरशतं हत्या नभोमार्गमुपाययौ ॥२०

सेनापतेश्च मुकुटं गजस्थस्य गृहीतदान् । लज्जितः स तु चामुण्डो वचनं प्राह नम्रधीः ॥२१

भवान्वृतिकरा भट्टां क्षत्रियो ब्राह्मणस्य वै । देहि मे मुकुटं वीरं चिरञ्जीपमुखीभव ॥२२

इति श्रुत्वा स विनयं दन्त्वा तस्मै शुभं वसु । कुठारनगरे प्राप्तो वामनेन सुरक्षितः ॥२३

दृष्ट्वा तत्र वटच्छायां श्रेष्ठाणातीदं कर्षितः । सुखाप निर्भयो वीरस्तत्र स्थाने सुखप्रदे ॥२४

तदा तु वामनो ज्ञात्वा स्वद्वैतस्तत्र कारणम् । वरत्राण्याच्छायां चागम्य चाहरद्विरनागरम् ॥२५

हृते तस्मिंश्च दिव्याश्चेऽब्रुद्धो जननायकः । चिन्तामवाप्य महतीं रोदनं कृतवान्वृहु ॥२६

अश्वाइङ्ग्रचिह्नमालोक्य वारानं प्राप्य निर्भयः । वचनं प्राह नम्रात्मा नृपं गौरान्वयोद्भवम् ॥२७

क्षत्रियाणां हि संहास्त्वो भयदो भुवि सर्वदा । स भवान्नारजनीतिः । देहि मेऽवचं सुखीभव ॥२८

नो चेत्वां वै सनगरं कृष्णांशः क्षपयिष्यति । इति श्रुत्वा तु वचनं वामनो गौरवंशजः ॥२९

भयभीतो विनिश्चित्य प्रददौ हरिनागरम् ॥३०

प्रतोदं स्वर्णरचितं नानारन्तसमन्वितम् । लोभाच्च न ददौ राजा मृषा शपथकारकः ॥३१

तदा परिमलापुत्रः कुण्ठितः प्राह भूपतिम् । प्रतोदलोभाते राजनक्षयं दुर्गो गमिष्यति ॥३२

महीपति (माहिल) के अनुमोदन करने पर पृथ्वीराज ने चामुण्ड (चौढ़ा) को आज्ञा प्रदान की कि एकलाख सैनिकों समेत तुम जननायक को बाँध लो इसे शिरोधार्य कर सेनानायक चामुण्ड (चौढ़ा) ने वेत्रवती (बेतवा) नामक नदी के तटपर पहुँचकर सूर्यवंशीय जननायक को रोक लिया । उपरांत उस बाहुशालो एवं संशमी वीर ने अपने खड्ग द्वारा सौ वीरों के शिरच्छेदन करने के पश्चात् आकाश मार्ग से जाकर गजराज पर बैठे हुए सेनापति (चौढ़ा) के मुकुट को अपने हाथ में ले लिया । उस समय लज्जित होकर नम्रतापूर्वक चामुण्ड (चौढ़ा) ने उनसे कहा—आप क्षत्रिय जाति के हैं मेरे तथा अन्य ब्राह्मणों के वृत्तिदाता हैं । अतः वीर ! मुझे मुकुट देने की कृपा करके विरजीवी एवं सुखी रहें । इसे सुनकर सनम्र होकर उन्होंने उस शुभमुकुट को लौटा दिया । अनन्तर राजा वामन द्वारा सुरक्षित उनके कुठार नगर में पहुँचकर वहाँ एक वटवृक्ष की छाया में अतिभ्रान्त होने के नाते निर्भय शयन किया । उस सुखप्रद स्थान में उस वीर के शयन करने पर वामन के अपने दूत द्वारा उनके वहाँ आगमन के कारण को जानकर अपने को छिपाते हुए साधारण वेष में आकर हरिनागर घोड़े का अपहरण कर लिया । उस दिव्य अश्व के अपहरण हो जाने पर घोड़े को न देखकर चित्तित होते हुए जननायक ने बहुत रुदन किया । पश्चात् घोड़े के चरण चिह्न देखते हुए वामन के पास पहुँचकर उनसे निर्भय होकर कहा—आप गौरवंश के भूषण हैं । किन्तु क्षत्रियों के हास्यास्पद होने की बात सदैव के लिए आपने इस भूतल में उत्पन्न कर दी है । मेरी प्रार्थना है कि आप राजनीतिज्ञ हैं, अतः अश्व मुझे लौटाकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करें अन्यथा उदयसिंह इस नगर समेत तुम्हारा विनाश कर देंगे । इसे सुनकर गौरवंशीय वामन ने भयभीत होकर अपने हृदय में भली भाँति निश्चित कर हरिनागर उन्हें लौटा दिया । १५-३०। परन्तु स्वर्ण, भाँति-भाँति के रत्नों से विभूषित उस प्रतोद (कोड़े) को लोभवश न लौटा सके,

इत्युक्त्वा प्रययौ वीरः कान्यकुञ्जं महोत्तमम् । लक्षणो हस्तिनीसंस्थो वचनं प्राह गर्वितः ॥
 कस्त्वं प्राप्ते हयारुदो निर्भयः क्षत्रियोत्तमः ॥३३
 स होवाच महाराज प्रेषितचन्द्रवंशिना । तवान्तिकं समायातः शरणागतवत्सल ॥३४
 महीरजश्च बलवान्सकुलं चन्द्रवंशिनम् । हनिष्ठिति च रौद्रास्त्रैर्महीपत्यनुमोदितः ॥३५
 अतस्त्वं स्वबलैस्सार्द्धं शहाल्लादाविभिर्वृतः । गच्छ गच्छ महाराज मृतानुज्जीवयाधुना ॥३६
 इत्युत्तो लक्षणस्तेन जयचन्द्रं प्रणव्य भः । सर्वं वै कथयामास महीराजो यथातः ॥३७
 जयचन्द्रस्तु तच्छृत्वा चाहूय जननाश्कलम् । वचनं प्राह कुद्धात्मा शृणु गौतमवंशज ॥३८
 राजा परिमलः क्षूरस्त्यक्त्वा भां निजमूष्पतिम् । प्रीतिं च कृतवांस्तेन मच्छत्रोर्देहलीपतेः ॥३९
 प्रियं सम्बन्धिनं मत्वा संत्यक्त्वास्तेन रक्षकाः । यथा कृतं फलं तेन भोक्तव्य च तथा भुवि ॥४०
 इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णांशः प्राह नम्रधीः । राजच्छुद्धः परिमलो महीपत्यनुवाचकः ॥
 अतो वै त्वां समुत्सृज्य भूमिराजवशं गतः ॥४१
 भवान्त्वै मर्वधर्मजस्तत्क्षमस्वापराधकम् । आज्ञां देहि महाराज निवत्स्यामस्तदन्तिकम् ॥४२
 इति श्रुत्वा तु वचनं जयचन्द्रो भद्रीमतिः । कृष्णांशः प्राह भो वीर देहि मे भुक्तिमूल्यकम् ॥
 शीघ्रं वज त्वं सकुलो नो चेन्नो गन्तुमहंसि ॥४३
 इति श्रुत्वा विहस्याह कृष्णांशसर्वमोहनः । मया दिग्विजयः सर्वः कृतो भीरुभयङ्करः ॥
 तदेयं देहि मे राजनृष्टाण भुक्तिमूल्यकम् ॥४४

प्रत्युत झूठी शपथ करने लगे । उनके शपथ से कुठित होकर परिमल पुढ़ (जननायक) ने कहा—राजन् ! यह प्रतोद (कोड़े) का लोभ आपके दुर्ग का विनाश कर देगा । इतना कहकर वह वीर उनम कन्नीजपुरी में पहुँचा कि हस्तिनी पर नैठे हुए लक्षण (लाखन) ने अभिमान वश कहा—घोड़े पर बैठकर निर्भीक तथा उत्तम क्षत्रिय की भाँति तुम कौ हो । उन्होंने कहा—महाराज—चन्द्रवंशी (परिमल) ने मुझे भेजा है, शरणागत वत्सल ! मैं आपके ही समीप आया हूँ । महीपति (माहिल) के अनुमोदन करने पर पृथ्वीराज ने रौद्र अस्त्रोद्वारा चन्द्रवंशीय कुल का विध्वंश करना निश्चिय किया है । अतः आप अपनी सेना समेत आल्हाद (आल्हा) आदि के साथ चलने की कृपा करें । महाराज ! इस मय चलकर आप उन मृतकों को प्राणदान दीजिये । एसा कहने पर लक्षण (लाखन) ने जयचन्द्र से प्रणाम पूर्वक पृथ्वीराज के महावती (महोवा) में चढ़ाई करने आदि सभी बातें कह सुनाया । इसे सुनकर जयचन्द्र ने जननायक को बुलाकर कहा—राजा परिमल अत्यन्त कूर है, क्योंकि मुझ अपने स्वामी का संबंध स्थगितकर उन्होंने मेरे शत्रु दिल्लीपति पृथ्वीराज से प्रेम संबंध स्थापित किया है । उन्हें ही अपना प्रिय संबंध समझकर इन रक्षकों का भी परित्याग कर दिया । इसलिए इस भूतल में जैसा करे वैसा फल भोगना पड़ता है । (इसमें मैं क्या कर सकता हूँ) इसे सुनकर नम्रतापूर्वक उदयसिंह ने कहा—राजन् ! परिमल तो अतिशुद्ध है किन्तु महीपति (माहिल) की बात मानकर वे आपसे पृथक होकर पृथ्वीराज के वश में हुए हैं । इसलिए प्रार्थना है कि आप सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता है, उस अपराध को भ्रमा करें । महाराज की आज्ञा हो । हम लोग उन्हीं के यहाँ निवास करना चाहते हैं । इसे सुन राजा जयचन्द्र ने कहा—उदयसिंह ! मेरे यहाँ के रहने का मूल्य प्रदानकर परिवार समेत शीघ्र जा सकते हो, अन्यथा असम्भव है । इसे सुनकर हँसते हुए सर्वमोहन उदयसिंह ने कहा—मैंने जो चारों ओर भीषण दिग्विजय किया है, उसका कर देने की कृपा करें । पश्चात् आप अपना निवासकर (गृह-किराया) चुका

इत्युक्तस्स तु भूपालः कृष्णांशेन विलज्जितः । सैन्यमाज्ञापयामास सप्तलक्षं महाबलम् ॥४५
 तदा वै सकुलो वीरश्राह्लादो लक्षणान्वितः । नृपस्याग्रे समास्थाय नमस्कृत्य ययौ मुदा ॥४६
 कुठारनगरं प्राप्य नृपदुर्गं हरोध ह । ज्ञात्वा स वामनो भूपः प्रतोदं च ददौ मुदा ॥४७
 सैन्यायुतयुतं भूपं वामनं लक्षणो बली । पश्चात्कृत्य ययौ शीघ्रं गमनातटभुत्तमस् ॥४८
 यमुनाजलमुत्तीर्थं कल्पकेत्रमवाप्तवान् । गङ्गार्सिंहं च नृपतिं पष्टिराहस्यंयुतम् ॥
 पुरस्कृत्य ययौ वीरो लक्षणो बलवत्तरः ॥४९
 नदीं वेत्रवतीं रम्यां समागम्य बलैस्यह । तत्रोधुः लक्षणियाः शूरास्सर्वशस्त्राहत्रसंयुताः ॥५०
 एतस्मिन्नन्तरे वीरश्रामुण्डो लक्षसैन्यपः । शतघ्नीः स्थापयामास भैरवीः शत्रुनाशिनीः ॥५१
 तयोश्चासीन्नहद्युद्धं शतघ्नीरणसंस्थयोः । प्रहरान्ते च तत्सैन्यं दृष्ट्वा शूरः पराजितम् ॥५२
 रक्तबीजः समागम्य गजस्थस्त्वरितो बली । स्वबाणैत्ताड्यामास सैन्यं ताजनपालितम् ॥५३
 केचिच्छूरा हता युद्धे केचित्तत्र पराजितः । दुद्रुवुर्भयभौताश्च चामुण्डेन च पीडिताः ॥५४
 प्रभग्नं स्वबलं दृष्ट्वा तालनः परिधायुधः । जघान तेन स गजं चामुण्डो भूमिनागतः ॥५५
 खड्गयुद्धपरो वीरस्तालनं परिधायुधम् । पराजित्य ययौ पश्चाच्छत्रुसैन्यक्षयङ्ग्लः ॥५६
 लक्षणस्त्वरितो गत्वा स्वभल्लेन च तं रिपुम् । भुजयोस्ताड्यामास तदा ते बहुधाऽभवन् ॥५७

लें । उदयर्सिंह के इस प्रकार कहने पर अत्यन्त लज्जित होते हुए राजा ने अपने सात लाख सैनिकों को उनके साथ जाने का आदेश दिया । वीर उदयर्सिंह ने अपने सभी परिवार एवं लक्षण (लाखन) को भी साथ ले राजा के सामने जाकर उन्हें प्रणाम करके वहाँ से प्रस्थान किया । मार्ग में चलते हुए सर्वप्रथम कुठार नगर के दुर्ग को घेर लिया । उनका आगमन जानकर राजा वामन ने सहर्षं उस प्रतोद (कोडे) को उन्हें प्रदान किया । बलवान् लक्षण (लाखन) ने दश सहस्र सेना समेत आये हुए उन वामन को पीछे आने के लिए आदेश प्रदान कर स्वयं यमुना नदी के उत्तम टटपर पहुँचने के लिए शीघ्र प्रस्थान किया । वहाँ यमुना जल को पारकर वीर लक्षण (लाखन) ने साठ सहस्र सैनिक समेत उपस्थित राजा गंगार्सिंह को आगे चलने के लिए आदेश देते हुए स्वयं वेत्रवती (वेतवा) नदी के सुरम्य दट पर पहुँचने के लिए प्रस्थान किया । सेनाओं समेत वहाँ पहुँचने पर समस्त शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित वे वीर क्षत्रियगण वहाँ निवास करने लगे । उसी बीच एक लक्ष सैनिकों समेत वीर चामुण्ड (चौढ़ा) ने भीषण गर्जना करने एवं शत्रुघ्वंस करने वाली तोपों को वहाँ रखकर युद्ध आरम्भ कर दिया था । एक पहर तक दोनों ओर की भीषण तोपों की गोलाबारी, युद्ध होने के उपरांत, अपने शूरवीरों को पराजित होते देखकर बली रक्तबीज ने हाथी पर बैठे शीघ्र वहाँ पहुँचकर अपने वाणीं द्वारा तालन के सैनिकों को आधात करना आरम्भ किया । उस आधात से आहत होने पर कुछ सैनिक स्वर्गीय हुए और कुछ इधर उधर भागने लगे, क्योंकि वे सब चामुण्ड (चौढ़ा) द्वारा अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे । अपनी सेना को भग्न होते देखकर तालन ने अपने परिधं अस्त्र के प्रहार द्वारा गजसमेत चामुण्ड को भूमिपर गिरा दिया । उस समय वीर चामुण्ड (चौढ़ा) ने खड्ग युद्ध द्वारा परिधं अस्त्र वाले तालन को पराजित कर आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहा कि उसी समय उस शत्रु सेना (लाखन) के निहन्ता के दोनों भुजाओं में वीर लक्षण (लाखन) ने वहाँ आकर शीघ्र अपने

सहस्रं रक्तबीजाश्र खडगशक्त्युष्टिपाणयः । तिष्ठतिष्ठेति भाषन्तः क्षत्रियान्युद्धुर्मदान् ॥५८
 आह्लादाद्याश्र ते शुरा रक्तबीजभयातुराः । त्यक्त्वा पुद्धं ययुस्सर्वे ब्रह्मानन्दं महाबलम् ॥५९
 ब्रह्मानन्दस्तु तान्दृष्ट्वा गत्वा स्वपितरं प्रति । वृत्तान्तं कथयामास लक्षणगमनं मुनेः ॥६०
 श्रुत्वा परिमलो राजा प्रेमदिव्वलगदगदः । अह्लादपार्वमागम्य रुरोद भृशमातुरः ॥६१
 तदा तु देवकी देवी नृपतिं प्रेस्तत्परम् । उवाच सुमुखी दीप्ता वयं ते भक्तितत्वराः ॥६२
 भवता राम्परित्यक्ता विचरानोऽन्यभूपतिम् । क्षमस्व मम दौरात्म्यं पूर्दजन्मविपाकजम् ॥६३
 इति श्रुत्वा च नृपतिः परमानन्दनिर्भरः । मन्दिणश्चाधिकारं च रामांशाद ददौ युदा ॥
 स्वकीयं लक्ष्मैन्यं च तत्पतिश्चेदयः कृतः ॥६४
 ततः पञ्चदिनान्ते तु महीराजस्समागतः । रुरोद नगरीं सर्वा चामुण्डबलदर्पितः ॥
 तयोश्चासीन्महद्युद्धं सासमःत्रं भयानकम् ॥६५
 प्रभाते विमले जाते कृष्णांशो लक्ष्मैन्यपः । चामुण्डान्तमुपागम्य सहस्रं स्वाङ्गसङ्घवम् ॥
 चिच्छेद च शिरस्तेषां चामुण्डनां पृथक्पृथक् ॥६६
 छिन्ने शिरसि ते सर्वे लक्ष्मीरा बभूविरे । तदा तद्व्याकुलं सैन्यं चामुण्डैस्तैः प्रपीडितम् ॥६७
 विस्मितश्चैव कृष्णांशो भयभीतस्तदा मुने । तुष्टाव शारदां देवीं सर्वमङ्गलकारिणीम् ॥६८

भल्लास्त्र द्वारा प्रहार किया । उस समय वह रक्तबीज सहस्र की संख्या में दिखाई देने लगा, जो खड़ग एवं शक्ति आदि अस्त्रों से मुसज्जित होकर युद्ध में दुर्मदान्ध क्षत्रियों को ठहरो-ठहरो कहकर ललकार रहे थे : रक्तबीज के उन अनेक रूपों को देखकर आह्लाद (आल्हा) आदि वीरगण भयभीत होकर महाबली ब्रह्मानन्द के पास पहुँच गये । ब्रह्मानन्द ने उन्हें देखकर अपने पिता के पास जाकर उनसे लक्षण (लाखन) के आगमन का वृत्तान्त कहा मुने ! उसे सुनकर राजा परिमल प्रेम-व्याकुल होकर आह्लाद (आल्हा) के पास पहुँचकर आतुरतावश गदगद वाणी द्वारा रुदन करने लगे । उस समय कल्याणमुखी देवी देवकी ने प्रेम विभोर राजा से कहा—हम लोग आपके सम्मुख दीन एवं आपकी सेवा पूर्व की भाँति सदैव करने के लिए तैयार हैं । श्रीमान ने ही हमारा त्याग किया था अतः हमलोग अन्य राजा के आश्रित होने के लिए (इधर-उधर) विचर रहे थे । किन्तु यह सब पूर्वजन्म के पापों का दुष्परिणाम था उसे क्षमा करने की कृपा करें । उसे सुनकर राजा परमानन्द मग्न होकर आह्लाद (आल्हा) को मंत्रिपद और समस्त सेनाओं का आधिपत्य उदयसिंह को प्रदान किया । ३१-६४। उसके पाँचवें दिन पृथिवीराज ने जिन्हें चामुण्ड (चौढ़े) के बल का अधिक गर्व था, वहाँ पहुँचकर उनकी नगरी को चारों ओर से घेर लिया । उन दोनों में एक मास तक भयानक युद्ध होने के उपरांत प्रातः काल के निर्मल समय में लक्ष सेनाध्यक्ष उदयसिंह ने चामुण्ड के पास पहुँचकर उनके पृथक-पृथक् रूपों का शिरच्छेदन कर दिया, जो सहस्र की संख्या में विद्यमान थे । उनके शिरच्छेदन करने पर वे वीरगण लक्ष की संख्या में दिखाई देने लगे । उस समय उन चामुण्डों से पीड़ित होकर इनकी सेना व्याकुल हो उठी । मुने ! उस समय भयभीत होकर उदयसिंह भी मंगलकारिणी देवी शारदा जी की स्तुति करने लगे—६५-६८

कृष्णांशु उवाच

नमस्ते शारदे मात्रब्रह्मलोकनिवासिनि । त्वया ततमिदं विश्वं शब्दमात्रनिरन्तरम् ॥६९
 रक्तबीजविनाशाय चामुण्डारूपधारिणी । नमस्ते दिव्यचामुण्डे पाहि मां शरणागतम् ॥७०
 इंत श्रुत्वा स्तवं देवी वरदा सर्वकर्तिणी । तस्य खड्गमुपागम्य रक्तबीजं ददाह वै ॥७१
 भस्मीभूते लक्षणिपौ चामुण्डो भूमिमागतः । बद्धन्धं तं स कृष्णांशो ब्रह्मानन्दान्तिकं दद्यौ ॥७२
 भूमिराजस्तु तच्छ्रुत्वा भयभीतः समागतः । तदा परिमलं भूषं दयालुं प्रेमविद्वलम् ॥
 उवाच वचनं राजा क्षमस्त्वं मम दुष्टृतम् ॥७३
 महीपतेश्च ववनान्महद्वयनुपागतम् । अद्य प्रभृति भो वीर संत्यक्तः कलहः प्रियः ॥
 भवांश्च मम सम्बन्धी वयं वै तव किङ्कुराः ॥७४
 इति श्रुत्वा परिमले राजान्मिदमन्नवीत् । रत्नभानोश्च तनयं लक्षणं नाम विश्रुतम् ॥
 शरण्यं शरणं दाहि विष्णुभक्तं दयापरम् ॥७५
 इति श्रुत्वा भूमिराजो द्विजरूपधरो बली । साष्टाङ्गं दण्डवद् भूमौ लक्षणस्य चकार ह ॥७६
 तदा तु लक्षणो वीरः कृत्वा स्नेहं नृपोपरि । सप्तलक्षब्रलैः सार्द्धं कान्यकुञ्जमुपाययौ ॥७७
 फाल्गुने मासि सम्प्राप्ते सर्वे स्वं स्वं गृहं ययुः ॥७८

उदयसिंह बोले—ब्रह्मलोक की निवासिनी उस मातृ शारदा को नमस्कार है, जिसने शब्द मात्र से निर्मित इस सम्पूर्ण विश्व को विस्तृत किया है। उस चामुण्डा देवी को मैं नमस्कार कर रहा हूँ, जिसने रक्तबीज के हननार्थ चामुण्डा का रूप धारण किया है। (देवी) मैं आपकी शरण में उपस्थित हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। इस स्तुति को सुनकर सभी कुछ करनेवाली एवं वरदहस्ता भगवती ने उदयसिंह के खड़े में निवासकर रक्तबीज के भभी रूपों को भस्म कर दिया। उस शत्रु के लक्षरूपों के भस्म हो जाने पर केवल चामुण्ड (चौढ़ा) भूमि पर स्थित रह गया। उस समय उदयसिंह ने उसे बाँधकर ब्रह्मानन्द के पास भेज दिया। उसे सुनकर राजा पृथ्वीराज ने अत्यन्त भयभीत होकर राजा परिमल के पास जो प्रेम विभोर एवं दया की मूर्ति थे, पहुँचकर उनसे कहा—आप मेरे अपराध को क्षमा करने की कृपा करें। महीपति (माहिल) की दातों में आकर मैंने ऐसा किया था, जिसके कारण मुझे महान् भय उपस्थित हो गया है। वीर! आज से आपका हमारा कलह समाप्त होकर प्रेम के रूप में परिणत हो गया, आप हमारे सम्बन्धी हैं और हम आपके सेवक। इसे सुनकर राजा परिमल ने उनसे कहा—रत्नभानु के पुत्र, जिनकी लक्षण (लाखन) नाम से स्वाति है, और जो शरणप्रद हैं, शरण में जाइये। वे विष्णु जी के भक्त एवं अत्यन्त दयालु हैं। इसे सुनकर बली पृथ्वीराज ने ब्राह्मण वेष धारणकर लक्षण (लाखन) के सम्मुख भूमि में उनको साष्टांग दण्डवत् किया। उस समय वीर लक्षण (लाखन) ने भी उनके ऊपर अपार स्नेह प्रकट किया, पश्चात् अपनी सात लाख सेना समेत कान्यकुञ्ज (कल्नौज) के लिए प्रस्थान भी किया। अनन्तर उस फाल्गुनमास के अवसर पर सभी लोग अपने-अपने

बलखानेर्गयाश्राद्धमचीकरदविष्टुतः । चैत्रमासि सिते पक्षे सम्प्राप्य निजमन्दिरे ॥
ब्राह्मणान्भोजयामास सहस्रं वेदतत्परान् ॥७९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वण चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम सप्तविंशोऽध्यायः । २७

अथाष्टार्विशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

अष्टार्विशाष्टके प्राप्ते कृष्णांशो बलवत्तरे । कार्तिक्यामिन्दुवारे च कृत्तिकाव्यतिपातभे ॥१
कृष्णांशोऽयुतसेनाढ्यः स्वर्णवत्या समन्वितः । विवाहमुकुटस्यैव सम्यागाय ययौ मुदा ॥२
पवित्रमुत्पलारण्यं बाल्मीकिमुनिसेवितम् ; गङ्गाकूले ब्रह्मयं लोहकीलकमुत्तमम् ॥३
तत्र गत्वा स शुद्धात्मा पुष्पवत्या समन्वितः । गोसहस्रं च विप्रेभ्यो ददौ स्नाने प्रसन्नधीः ॥४
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता स्तेच्छजातिसमुद्भवा । शोभा नाम महारम्या वेश्या परमसुन्दरी ॥५
सा ददर्श परं रम्यं कृष्णांशं पुरुषोत्तमम् । तद॒दृष्टिमोहमापन्ना व्याकुला चाभवत्क्षणात् ॥६
मूर्च्छितां तां समालोक्य कृष्णांशः सर्वमोहनः । स्वनिवासमुपागम्य विग्रानाहूय पृष्ठवान् ॥७

घर चले गये । इन सोगों ने चैत्रमास के आरम्भ में बलखानि (मलखान) के निमित्त गयाश्राद करके उसके शुक्लपक्ष में अपने घर पहुँचकर सहस्र वैदिक ब्राह्मणों को भोजन कराया । ६९-७३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त । २७।

अध्याय २८ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—अपने अट्ठाईसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर उदयसिंह ने कार्तिकमास के चन्द्र दिन जिसमें कृत्तिका नक्षत्र एवं व्यतीपात योग सन्निहित थे, अपनी दश सहस्र सेना लेकर स्वर्णवती (सोना) देवी समेत विवाह-मुकुट के त्यागार्थं गंगा के तट के उस स्थान पर प्रस्थान किया जहाँ कमल का अरण्य सा दिखाई देता था । उसी पवित्र उत्पलारण्य में महर्षि बाल्मीकि जी निवास करते थे । गंगा के तट पर वह स्थान ब्रह्मय होने के नाते लोहे की भाँति कीलित कहा जाता है । वहाँ पहुँचकर शुद्धात्मा उदयसिंह ने पुष्पवती के साथ स्नान के उपरांत प्रसन्न होकर सहस्र गोदान ब्राह्मणों को प्रदान किया । उसी बीच शोभा नाम की एक परम सुन्दरी वेश्या आई, जो अत्यन्त सुरम्य और म्लेच्छ कुल में उत्पन्न थी । वह परमसुन्दर एवं पुरुषभ्रेष्ठ उदयसिंह को देखते ही उनकी तीसरी आँखों के आधात से व्याकुल होकर उसी समय मूर्च्छित हो गई । उसे मूर्च्छित देखकर सर्वमोहन उदयसिंह ने अपने

अष्टादशपुराणानि केन प्रोक्तानि कि फलम् । ज्ञात मे विदुषां श्रेष्ठा वेदशास्त्रापारायणाः ॥८
 इति श्रुत्वा वचो रम्यं विद्वांसः शास्त्रकोविदाः । अबुवन्वचनं रम्यं कृष्णांशं सर्वधर्मगम् ॥९
 पराशरेण रचितं पुराणं विष्णुदैवतम् । शिवेन रचितं स्कान्दं पाद्मं अहममुखोद्भवम् ॥१०
 शुक्रोक्तं भागवतं ब्राह्मं वै ब्रह्मणा कृतम् । गारुडं हरिणा प्रोक्तं षड् वै सात्त्विकसम्भवाः ॥११
 मत्स्यः कूर्मो नृसिंहश्च वामनः शिव एव च । यायुरेतत्पुराणानि व्यासेन रचितानि दै ॥१२
 राजसाः षट् स्मृता वीरं कर्मकाण्डमया भूति । मार्कण्डेयं च वाराहं सार्कण्डेगेन निर्मितम् ॥१३
 आग्नेयमञ्जिराश्चैव जनयामात् चोत्तमम् । लिङ्गब्रह्माण्डके चापि तण्डिना रचिते शुभे ॥

महादेवेन लोकार्थे भविष्यं रचितं शुभम् ॥१४

तामसाः षट् स्मृताः प्राज्ञः शक्तिधर्मपरायणाः । सर्वेषां च पुराणानां श्रेष्ठं भागवतं स्मृतम् ॥१५
 घोरे भूषिते कलौ प्राप्ते विक्रमो न तम् भूपतिः । कैत्तासाद् भुवमागत्य मुनीन्सर्वान्समाह्वयत् ॥१६
 तदा ते मुनयस्सर्वे नैमिषारण्यवासिनः । सूतं सञ्चोदयामासु स्तेषां तच्छ्रवणाय च ॥

प्रोक्तान्युपपुराणानि सूतेनाष्टादशैव च ॥१७

इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णांशो धर्मतत्परः । श्रुत्वा भागवतं शास्त्रं सप्तेऽत्ति महोत्तमम् ॥१८
 ददौ दानानि विप्रेभ्यो गोसुवर्णमयानि च । ब्राह्मणान्भोजयामास सहस्रं वेदतत्परान् ॥१९
 तदा तु भिक्षुकी भूत्वा शोभा नाम मदातुरा । मायां कृतवती प्राप्य कृष्णांशो यत्र वै स्थितः ॥२०
 ध्यात्वा महामदं वीरं पैशाचं रुद्रकिङ्गरम् । मायां सा जनयामास सर्वपाषाणकारिणीम् ॥२१

निवासस्थान पर पहुँचकर ब्राह्मणों को बुलवाकर उनसे प्रश्न किया—वेदशास्त्र पारायण करने वाले विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अष्टादश पुराणों के रचयिता कौन हैं, और उसके श्रवण करने से किम फल की प्राप्ति होती है ? इस उत्तमवाणी को सुनकर शास्त्र निषुण विद्वानों ने सगस्त धर्म के जानी उन उदयसिंह से सुन्दर वाणी द्वारा कहा—पराशर जी ने विष्णुपुराण शिवजी ने स्कन्दपुराण, ब्राह्म ने पद्मपुराण, शुक्रदेव ने भागवत पुराण, व्रह्मा ने व्रह्मपुराण, तथा विष्णु ने गरुडपुराण की रचना की है । यही छहो पुराण रात्तिवक कहे जाते हैं । मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, नृसिंहपुराण, वामनपुराण, शिवपुराण और वायु पुराण के रचयिता भी व्यास जी हैं । उस भूतल में ये छहोपुराण राजस् एवं कर्मकाण्डमय कहे गये हैं मार्कण्डेय और बराहपुराण की रचना मार्कण्डेय कृष्ण ने की है । १-१३। उत्तम अग्नि पुराण के रचयिता अंगिरा हैं । लिंग पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण की रचना तंडी तथा शुभ भविष्यपुराण की रचना महादेव जी ने की है । शक्तिधर्मपरायण इन छहों पुराणों को तामस् बताया गया है । समस्त पुराणों में भागवत पुराण श्रेष्ठ बताया गया है । पृथ्वी पर घोर कलि के वर्तमान होने पर राजा विक्रमादित्य ने कैलास से पृथ्वी में आगमन करके सभी मुनियों को बुलाया । उस समय नैमिषारण्य निवासी उन महर्षियों ने अट्ठारह उपपुराणों की कल्पना की है । धर्मरूढ़ उदयसिंह ने इसे सुनकर भागवतपुराण का पारायण श्रवण करने के उपरांत सातवें दिन ब्राह्मणों को गोसुवर्ण के दान प्रदान करके सहस्र वैदिक ब्राह्मणों को भी भोजन कराया । उस समय मदविह्वल शोभा ने भी भिक्षुकी का रूप धारणकर उदयसिंह के पास पहुँचकर माया करना आरम्भ किया—उसने रुद्रकिकर एवं वीर महामद पिशाच के ध्यानपूर्वक सबको पत्थर कर देने

दृष्ट्वा स्वर्णवती देवीं तां मायांशोभयोदूद्वाम् । छित्ता चाह्नाद्य वामाङ्गीं स्वगेहं गन्तुमुद्यता ॥२२
 सा वेश्या तु शुचाविष्टा तत्याः शृङ्गारमुत्सम् । स्वर्णयन्त्रस्थितं रम्यं लक्षद्रव्योपमूल्यकम् ॥
 संहृत्य मायया धूर्ता देशं बाह्लीकमायदौ ॥२३
 कल्पक्षेत्रमुपागम्य नेत्रिंहसमुद्वावा । वेश्या नम शृङ्गारं हृतं ज्ञात्वा सुदुःखिता ॥२४
 कृष्णांशं वचनं प्राह गच्छ गच्छ महाबल । गृहीत्वा मम शृङ्गारं शीघ्रानागच्छ मां प्रति ॥२५
 गुटिकेयं सगः वीरं रचिता तां मुखेन च । धूर्तमायाविनाशाय तव मङ्गलहेतवे ॥२६
 इति श्रुत्वा तथा कृत्वा कृष्णांशस्तर्दमोहनः । शूकरक्षेत्रमागम्य तत्र वेश्यां ददर्श ह ॥२७
 सा तु वेश्या च तं वीरं दृष्ट्वा कन्दर्पकारिणम् । रचयित्वा पुनर्मायां तदन्तिकमुषागता ॥२८
 तदा सा निष्कलीभूय व्यरोद करुणं बहु । रुदतीं तां समालोक्य दयालुस्त्र प्रसन्नधीः ॥२९
 गृहीत्वा सर्वशृङ्गारं वचनं प्राह निर्भयः । किं रोदिषि महाभागे सत्यं कथय भा चिरम् ॥३०
 साह मे सहरो नाम भ्राता प्राणसम्प्रियः । नाट्यैश्च पञ्चसाहवैः सहितो मरणं गतः ॥३१
 अतो रौग्नि महाभाग सम्प्राप्ता शरणं त्वयि । इत्युक्त्वा मायया धूर्ता कृत्वा शवमयान्त्यजान् ॥३२
 तस्मै प्रदर्शयामास निजकार्यपरायणा । रुदित्वा च पुनस्तत्र प्रणांत्यकुं समुद्यता ॥३३
 दयालुस्त्र च कृष्णांशस्तानाह करुणं वचः । कथं ते जीवयिष्यन्ति^१ शोभने कथयाशु मे ॥३४

वाली माया की रचना की ! उसे देखकर देवी स्वर्णवती (सोना) ने जो आह्नाद की वामाङ्गी हैं, उसकी माया का विधवंस करके घर के लिए प्रस्थान किया । उसी समय कुद्द होकर उस वेश्या ने अपनी धूर्तमाया द्वारा स्वर्णवती (सोना) के उत्तम शृंगार का, जो स्वर्ण के सुरम्य दंत में स्थापित एवं एक लक्ष के मूल्य का था, अपहरण करके वाह्लीक देश को प्रस्थान कर दिया । कल्पक्षेत्र में पहुँचकर नेत्रिसिंह की आत्मजा (सोना) ने यह जानकर कि 'उस वेश्या ने मेरे शृंगार का अपहरण कर लिया है, अत्यन्त दुःख प्रकट करती हुई उदयसिंह से कहा—महाबल ! जाओ—जाओ ! मेरे शृंगार लेकर मुझे शीघ्र मिलो वीर ! इस मेरे द्वारा रचित गुटिका को मुख में धारण करने से उसकी धूर्त माया विनष्ट हो जायेगी । आपकी मांगलिक कामना के लिए मैंने उसका निर्माण किया है । १४-२६ । इसे सुनकर सर्वमोहन उदयसिंह ने उसी भाँति गुटिका धारणकर वाराहक्षेत्र में उस वेश्या को देखा । वह वेश्या भी काम के समान सुन्दर इन्हें देखकर माया की रचना प्रूर्वक इनके समीप पहुँच गई । किन्तु उसकी माया के निष्कल हो जाने से वह कारुणिक रुदन करने लगी । दयामूर्ति उदयसिंह ने प्रसन्न होकर रुदन करती हुई उसे देखकर शृंगारवस्तु ग्रहण करने के उपरान्त उससे कहा—महाभाग ! क्यों रुदन कर रही है, सत्य कहो, विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है । उसने कहा—सहर नामक मेरे भाई का जो मेरे प्राण के समान प्रिय था, पाँच सहस्र नाट्यों के साथ निधन हो गया है । महाभाग ! इसीलिए आपकी शरण में आकर रुदन कर रही हूँ । इतना कहकर उस धूर्ता ने माया द्वारा अन्त्यजो (नीनों) के शवों का उन्हें प्रदर्शन कराया । और पश्चात् अपने कार्य को सफल करने वाली उस वेश्या ने उनके सम्मुख रुदन करती हुई अपने प्राण विसर्जन की तैयारी कर दी । दयालु उदयसिंह ने उसकी अवस्था देखकर उससे करण वचनों द्वारा कहा—शोभने ! तुम्हारे वे भ्रातृगण किस प्रकार जीवित हो सकेंगे' मुझसे शीघ्र कहो । उसने कहा—वीर ! तुम्हारे मुख

१. दशगणीपाठो बहुलमिति णिन् ।

साह वीर तवास्ये तु संस्थिता गुटिका शुभा । देहि मे कृपया वीर जीवयिष्यन्ति ते तथा ॥३५
इत्युक्तस्तु तथा वीरो ददौ तस्यै च तद्वगु । तदा प्रसन्ना सा धूर्ता कृत्वा शुकमयं वपुः ॥

पञ्जरस्थमुपादाय कृष्णांशं कामविहृला ॥३६

बाह्लीकदेशमागम्य सारठुनगरं शुभम् । उवस्तु च स्वयं गेहे कृत्वा दिव्यमयं धपुः ॥३७

निशीथे सननुप्राप्ते कृत्वा तं नररूपिणम् । आलिलिङ्गः हि कामर्ता कृष्णांशं धर्मकोविदम् ॥३८

दृष्ट्वा तां स तथाभूतां कृष्णांशो जगदम्बिकाम् । तुष्टाव मनसा धीरो रात्रिसूकेन नम्रधीः ॥३९

तदा सा स्वेडिनी भूत्वा त्यक्त्वा कृष्णांशमुत्तमम् । पुनः शुकमयं कृत्वा चिन्त्वणो वृक्षमारहत् ॥४०

तदा स्वर्णवती देवी बोधिता विष्णुमायया । कृत्वा श्येनीमयं रूपं तत्र गत्वा मुदान्विता ॥४१

ददर्श शुकभूतं च कृष्णांशं योगतत्परम् । एतस्मिन्नन्तरे वेश्या पुनः कृत्वा शुभं वपुः ॥

नरभूएं च कृष्णांशं वचनं प्राह नम्रधीः ॥४२

अदे प्राणप्रिय स्वः मिन्भज मां कामविहृलाम् । पाहि सां रतिदानेन धर्मज्ञोऽसि भवान्तदा ॥४३

इत्युक्तस्तु तु तामाह वचनं शुणु शोभने । ते आर्यवर्त्मस्थितोऽहं वै वेदमार्गपरायणः ॥४४

विवाहितां शुभां नारीं यो भजेत् क्रतौ न हि । स पापी नरकं याति तिर्यग्योनिमयं रमृतम् ॥

अतः परस्त्रिया भोगे ज्ञेयो वै निरयप्रदः ॥४५

इति श्रुत्वा तु सा प्राह विश्वामित्रेण धीमता । शृङ्गिणा च महाप्राज्ञ वेश्यासङ्गः कृतः पुरा ॥

मैं स्थित गुटिका द्वारा ही वे सब जीवनदान प्राप्त कर सकेंगे । अतः उसे मुझे देने की कृपा कीजिये । उसके इस प्रकार कहने पर उन्होंने वह गुटिका उसे दे दी । पश्चात् उस धूर्ता ने जो कामपीडित हो रही थी प्रसन्न होकर उन्हें शुक (तोता) दग्धाकर पिजरे में रखकर अपने नाहीक देश के नगर को प्रस्थान किया । वहाँ अपने घर पहुँचने पर आधीरात के समय मनुष्य रूप में उनके दिव्य शरीर को पूर्ववत् बनाकर उस वेश्या ने काम-पीडित होकर उन धर्म धुरन्धर उदयसिंह का आलिंगन किया, किन्तु उसकी वैसी अवस्था देखकर धीरवीर उदयसिंह ने नम्रता पूर्वक रात्रि सूक्त द्वारा देवी जगदम्बिका की मानसिक आराधना की । उस समय वह स्वेडिनी का रूप धारणकर इमली के वृक्षपर बैठ गई और उन्हें शुक (तोते) के रूप में परिणत कर दिया । उसी बीच विष्णु माया द्वारा स्वर्णवती (सोना) को इस रहस्य का पता लगने पर उसने बाज पक्षी का रूप धारणकर वहाँ पहुँचकर योगी उदयसिंह को शुक के रूप में देखा । उस समय उस वेश्या ने उनके मनुष्य रूप को पुनः उन्हें प्रदानकर उनसे नम्रता पूर्वक कहा— ।२७-४२। अये प्राणप्रिय स्वामिन् ! मैं मदन से अत्यन्त व्यथित हो रही हूँ, अतः शीघ्र मेरा आलिंगन कीजिये । आप निपुण धर्मज्ञाता हैं, इसलिए रतिदान द्वारा मेरी रक्षा कीजिये । इस प्रकार कहने पर उन्होंने उससे कहा—शोभने ! मेरी बात मुनो । मैं आर्य धर्म में स्थित होकर वेदमार्ग का यात्री हूँ । जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री के कृतुकाल में उसे कृतुदान नहीं प्रदान करता है, वह पापी नरकयातना के अनुभव करने के उपरांत तिर्यक् (पक्षी) योनि में जाता है । अतः परस्त्री का उपभोग नितान्त नरकप्रद है, इसमें संदेह नहीं है । इसे मुनकर उसने कहा—महाप्राज्ञ ! ज्ञानी विश्वामित्र और शृङ्गी कृषि ने पहले समय में वेश्या-प्रसङ्ग किया था, किन्तु किसी को नरक नहीं जाना पड़ा । अतः मुझ कामातुर का

न कोऽपि नरकं प्राप्तस्तस्मान्मां भज कामिनीन् ॥४६

पुनश्चाह स कृष्णांशः कृतं पापं तपोबलात् । ताभ्यां च मुनियुग्माभ्यामसमर्थो हि साम्प्रतम् ॥४७

अद्वैतः पुरुषस्य स्त्रीं मैयुने च विशेषतः । अहमार्यश्च भवती देश्या च बहुभोगिनी ॥४८

ऋषिशब्दश्च पूर्वास्याज्ञात क्रग्जस्सनातनः । योगजश्चैव यः शब्दो दक्षिणार्द्धाद्यजुर्भवः ॥४९

तद्वितान्तश्च यशाद्वः पश्चिमास्याच्च सामजः । छन्दोभूताश्च ये शब्दास्त्वें ब्राह्मणपियाः ॥

केवलो वर्णमात्रश्च स शब्दोऽर्थवजःस्मृतः ॥५०

पञ्चमास्याच्च ये जाताः शब्दाः संसारकारिणः । ते सर्वे प्राकृता ज्ञेयाश्चतुलेख्विभेदिनः ॥५१

हित्वा तान्यो हि शुद्धात्पा चतुर्वेदपरायणः । स वै भवाटवों त्यक्त्वा पदं गच्छत्यनामयम् ॥५२

न वदेद्यावनीं भाषां ग्राणैः कण्ठगतैरपि । गन्तैरार्पीडध्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम् ॥५३

इत्येवं स्मृतिवाक्यानि भुनिना दठितानि वै । कथं त्याज्यो मया धर्मस्वर्गलोकसुखप्रदः ॥५४

इति श्रुत्वा तु सा वेश्या म्लेच्छायाश्चांशसम्भवा । शोभना नाम रम्भेरूर्णहाक्रोधमुपाययौ ॥५५

वेतसैस्ताडपित्वा ता पुनः कृत्वा शुकं स्वयम् । न ददौ भेजनं तस्मै फलाहारं शुकाय वै ॥५६

तदा स्वर्णवती देवी कृत्वा नारीमयं वपुः । मशकीकृत्य तं वीरं तत्रैवान्तर्दधे तु सा ॥५७

पुनः इयेनीवपुः कृत्वा तदेशाद्यातुमुद्यता । पृष्ठमारोप्य मशकं मयूरनगरं यथौ ॥५८

आलिङ्गन करना स्वीकार कोजिये । इसे सुनकर उदयसिंह ने पुनः प्रत्युत्तर दिया—वे दोनों महर्षि प्रवर महान् तपस्वी थे, अपने तपोबल द्वारा उन्होंने वैसा किया था । परन्तु इस समय मैं गेसा करने में अमसर्थ हूँ । पुरुष का अद्वैत उसकी स्त्री है, विशेषकर मैथुनकर्म के लिए । इसलिए मैं आर्यपुरुष हूँ और तुम अनेकों के उपभोग करने वाली वेश्या हो, दोनों का साथ होना सर्वथा असम्भव है । क्योंकि पूर्व मुख से सर्वप्रथम ऋषि शब्द का अविभवि हुआ, जिससे सनातन की ख्याति हुई, उसी प्रकार दक्षिण मुख से योग यजुः शब्द और पश्चिम मुख से तद्वितान्त सामज शब्द आविर्भूत हुए, इसलिए छंद भूत (वैदिक) जितने शब्द हैं, वे ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रिय हैं । अर्थात् से केवल वर्णमात्र की उत्पत्ति हुई है एवं पंचम मुख से निकले हुए शब्द सांसारिक कहे जाते हैं, जो प्राकृत तथा चार लाख भेद पूर्ण हैं । अतः जो शुद्धात्मा एवं चतुर्वेद का पारायण करने वाला पुरुष उनके त्याग करता है, वही संसार (जन्ममरण) रूप घने जंगल को पारकर अनामय (ब्रह्म) पद-मोक्ष की प्राप्ति करता है । प्राण के कंठ तक चले आने पर भी यावनी (मुसलमानी) भाषा के उच्चारण और हाथी द्वारा कुचल जाने पर भी जैन मन्दिर में जाना नहीं चाहिए । मुनियों के कहे हुए इन स्मृति वाक्यों को भी ऐसे बता दिया । इसलिए उस धर्म का त्याग मैं कैसे कर सकतः हूँ, जो सभी लोगों को सुख प्रदान करता है । इसे सुनकर उस म्लेच्छ वंश की वेश्या ने अत्यन्त कुद्द होकर वैतों द्वारा उन्हें अत्यन्त ताडित किया, परचात् शुक बनाकर भोजन भी नहीं दिया । इस दृश्य को देखने के उपरांत स्वर्णवती (सोना) देवी ने अपना स्त्री रूप धारणकर उदयसिंह को 'मसक' बनाकर वहाँ से तिरोहित होकर पुनः वाज पक्षी का रूप धारणकर अपने देश को प्रस्थान किया । मशक रूप में उदयसिंह को अपनी पीठ पर बैठाये हुए वह मयूर नगर में पहुँच गई । ४३-५८। उसे देखकर मकरन्द ने पहचान

मकरन्दस्तु तां दृष्ट्वा कृष्णांशेन समन्विताम् । नेत्रपालस्य तनयां नाम्ना स्वर्णवतीं बली ॥

चरणः द्वुपसङ्गृह्य स्वगेहे तामवासयत् ॥१५९॥

शोभनापि च सम्बूद्ध्य पञ्जरान्तमुपस्थिता । न ददर्श शुकं रम्यं मूर्छिता चापनदभुवि ॥१६०॥

किं करोमि व्व गच्छामि विना तं रमण परम् । इन्येव बहुधालप्य मदहीनपुरं यदौ ॥१६१॥

तत्र स्थितं च पैशाचं भायामदविशारदम् । नहामदं च सम्पूज्य स्वदेहं त्यज्यमुद्यता ॥१६२॥

महामदस्तु सन्तुष्टो गत्वा वै शिवमन्दिरम् । महस्थलेभरं लिङ्गं तुष्टावार्षभाषया ॥१६३॥

तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं प्राह सेवकम् । स्वर्णवत्या हृतो वीरः कृष्णांशश्वार्यर्थर्थगः ॥

मया सह समागच्छ मयूरनगरं प्रति ॥१६४॥

इत्युक्तस्तेन पैशाचो नदैः पञ्चसहस्रैः । तया सह यशौ तूर्णं सहुरेणं समन्वितः ॥१६५॥

इन्दुलश्च तथाह्लादो बोधितो विष्णुमायया । त्रिलक्षबलसंयुक्तो देवर्सिहेन शंयुतः ॥

मयूरनगरं प्राप्य मकरन्दमुपाययौ ॥१६६॥

तदा तु शोभना वेश्या सहुरेण बलैस्सह । चकार भैरवीं मायां र्षवशत्रुभयङ्करीम् ॥१६७॥

सर्वत्रोत्थितो वातो महामेघसमन्वितः । पतन्ति बहुधा चोल्काः शर्करावर्षणे रताः ॥१६८॥

दृष्ट्वा तां भैरवीं मायां तमोभूतां समन्ततः । मकरन्दश्च बलवान्नरथस्थः स्वयमाययौ ॥१६९॥

लिया कि उदयसिंह के समेत गह नेत्रसिंह की स्वर्णवती (सोना) नामक कन्या हैं, सादर उसके चरण का स्पर्श किया और अपने महल में निवास कराया। पिंजडे के पास जाकर उसे शून्य देखकर शोभना मूर्छित होकर पुर्वी पर गिर पड़ी। पश्चात् चेतना प्राप्त होने पर हृदय करने लगी—‘मैं उस रमण उदयसिंह के बिना अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। इस प्रकार अनेक भाँति से विलाप करने के उपरांत वह मदहीनपुर चली गई। वहाँ के रहने वाले महामदनामक पिशाचकर्मी की जो अत्यन्त मायावी था, पूजा करने के उपरांत उसके सामने वह अपने प्राण विसर्जन के लिए तैयार हो गई। उसे देखकर प्रसन्न होकर वह महामद भगवान् महस्थल महादेव के मंदिर में पहुँचकर संस्कृत वाणी द्वारा उनकी आराधना करने लगा। उससे प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने अपने इस सेवक से कहा— आर्य धर्मवलम्बी एवं वीर उदयसिंह का अपहरण स्वर्णवती ने किया है अतः दर्शनार्थ मेरे साथ मयूर नगर चलने की तैयारी करो। उनके इस प्रकार कहने पर वह मायावी अपने पाँच सहस्र नटों समेत शोभना वेश्या, और सहुर को साथ लेकर वहाँ से चल पड़ा। विष्णु माया (देवी) जी द्वारा इस रहस्य का पता चलने पर इन्दुल (इंदल) आह्लाद (आल्हा) और देवर्सिंह (डेवा) ने अपने तीन लाख सैनिकों समेत मयूर नगर में पहुँचकर मकरन्द से भेट किया। उस समय सहर समेत शोभना ने अपने दल-बल के साथ वहाँ पहुँचकर अपनी भीषण माया की, जो समस्त शत्रुओं के लिये भयावह थी। रचना करना आरम्भ किया—वहाँ उस पर बड़े-बड़े मेघों के समान चारों ओर से बायुमंडल उठने लगा, उल्का (लूक) गिरने लगे, और धूल की वर्षा होने लगी। उस भीषण माया को जिसमें चारों ओर से घना अंधेरा छाया हुआ था, देखकर बलवान् मकरन्द रथ पर बैठकर स्वयं वहाँ पहुँचे, जहाँ से उस माया का संचालन हो रहा था। उस महाबली ने अपने शनिभल्ल

शनिभल्लेन तां मायां भस्म कृत्वा महाबलः । गृहीत्वा सहुरं धूर्तं सबलं गेहमाप्तवान् ॥७०
 तदा तु शोभना नारी काममायां चकार ह । बहुलाससंस्थिता वेश्या गीतनृत्यविशारदाः ॥७१
 मोहिताः क्षनियाः सर्वे मुमुहुर्लास्यदर्शनात् । देवर्सिहाच्च कृष्णांशाहृते ते जडतां गताः ॥७२
 तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षी ध्यानतत्परा । पुनरुत्थाप्यतान्सर्वान्गृहीत्वा शोभनां पुनः ॥
 मयूरध्वजसागम्य निगडैस्तान्बबन्ध ह ॥७३

महामदस्तु तज्जास्त्वा रुद्रध्यानपरायणः । चकार शाम्बरीं मायां नानासत्त्वविधायिनीम् ॥७४
 व्याघ्राः रिहा वराहाश्च दानरा दंशकाः नरा । सर्पा गृध्रात्तथा काका भक्षयन्ति समन्ततः ॥७५
 तदा स्वर्णवती देवी कामाक्षी ध्यानतत्परा । ससर्ज स्मरजां मायां तन्मायाध्वंसिनीं रणे ॥७६
 तथा तार्क्षर्यस्समुत्पन्नाः शरभाश्च महाबलाः । सिंहादीन्भक्षयामासुर्जघ्नश्चैव सहक्षशः ॥७७
 हाहाभूते च तत्सैन्ये दिक्षु विद्राविते सति । शोभना चाभवदासी स्वर्णवत्याश्र मायिनी ॥७८
 सहुरस्त्वैर्नैस्सार्द्धं चाल्हादेनैव चूर्णितः । तेषां रुधिरकुभाश्च भूमिमध्ये समारहन् ॥७९
 एवं च मुनिराहूल चतुमास्स्वभवद्रणः । वैशाखे मासि संप्राप्ते ते वीरा नेहनाययुः ॥
 इति ते कथितं विप्र चान्यतिं श्रोतुमिच्छसि ॥८०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वंणि चतुर्युगखण्डापरपरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयेऽष्टार्विशोऽध्यायः । २८

नामक अस्त्र द्वारा उस माया को नष्ट करके उस सबल एवं धूर्तं सहुर को पकड़कर अपने गृह को आगमन किया । उस समय शोभना वेश्या ने अपनी काम-माया की रचना की उसमें नृत्य-गान में अत्यन्त निपुण अनेक वेश्याओं का जमाव था, सबको लुभाने के लिए वे नृत्य-गान कर रही थीं । उस नृत्य को देखकर देवसिंह और उदयसिंह के अतिरिक्त सभी क्षनियगण जड़ की भाँति मोहित हो गये । उस समय स्वर्णवती (सोना) देवी ने कामाक्षी देवी का ध्यान करके उन्हें चेतना प्रदान कर खड़ा किया, पश्चात् उस शोभना को पकड़कर मयूरध्वज के पास लाकर लोहे की जंजीरों से उसे ब्रांध दिया । इस बात का पता लगने पर महामद ने भगवान रूद्र के ध्यान पूर्वक अपनी शाम्बरी माया का प्रसार किया—उनमें अनेक भाँति के जीव दिखाई देते थे, वाघ, सिंह सूकर, वानर, मसक, दंशक, सर्प, गीध तथा कौवे के झुण्ड चारों ओर से सिंह का भक्षण कर रहे थे । सैनिकों में हाहाकार मच गया वे इधर-उधर भागने लगे । किन्तु उस माया करने वाली शोभना को स्वर्णवती (सोना) का दासीपद स्वीकार करना पड़ा । और उन नटों समेत सहुर को आह्लाद (आल्हा) ने स्वयं चूर्ण कर दिया । पश्चात् उनके रुधिर भरे घड़ों को भूमि के भीतर गड़वा दिया । मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार वहाँ चौमासे भर युद्ध का क्रम चलता रहा, पश्चात् वैशाख मास के आरम्भ में वे वीरगण अपने घर चले गये । विप्रवृन्द ! इस वृत्तान्त को मैंने तुम्हें सुना दिया- अब और क्या सुनने की इच्छा है । ६५-८०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक अट्टाईसवाँ अध्याय समाप्त । २८।

अथैकोन्निशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

किन्नरी नाम या कन्या त्वया प्रोक्ता महामुने । कुन्द स्थानं कथं जाता तत्सर्वं कृपया वद ॥१

सूत उवाच

पुरा चैत्ररथे देशे नानाजननिषेदिते । वसन्ततमये प्राप्ते क्रीडन्त्यत्र दिवौकत्तः ॥२
 मञ्जुघोषा च स्वर्वेश्या शुकस्थाने समागता । दृष्ट्वा तं भुन्दरं बालं भोहनाय समुद्यता ॥३
 गीतनृत्यादिरागांश्च कृत्वा सा कामविह्वला । प्राञ्जलिं प्रणता दद्ध्वा पुनस्तुप्ताव तं मुनिम् ॥४
 तदा शुकस्तु भगवान्यद्यं स्तुतिमयं शुभम् । श्रुत्वा प्रसन्नहृदयो वरं ब्रह्मीति सोऽङ्गवीत् ॥५
 सा तु श्रुत्वा शुभं वाक्यं प्रोवाच श्लोक्या गिरा । दतिर्मं भव हे नाथ शरणागतवत्सल ॥६
 इति श्रुत्वा तु वचनं तथा कृत्वा तया सह् । स रेमे मुनिर्शार्द्दलः शुको विज्ञानकोद्दिदः ॥७
 तयोस्तकाशात्सञ्ज्ञे मुनिर्नाम सुतोऽन्योः । तपश्चकार बलवान्द्वदशाब्दं प्रयत्नतः ॥८
 तस्मै इदौ तदा पत्नीं स्वर्णदेवस्य वै सुताम् । कुबेरो रुद्रसहितः स मुनिस्तु मुदान्वितः ॥९
 तया रेमे प्रसन्नात्मा तयोर्जाता सुतोत्तमा । किन्नरी नाम विख्याता हिमतुङ्गे समुद्भवा ॥

अध्याय २९

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

ऋषियों ने कहा—महामुने ! आपने जिस किन्नरी नामक कन्या का नाम लिया था, वह किस स्थान में किस प्रकार उत्पन्न हुई है । कृपया विस्तार पूर्वक इसका वर्णन कीजिये । १

सूत जी बोले—पहले जमय की बात है चैत्ररथ नामक प्रदेश में जहाँ अनेक भाँति के लोग निवास करते हैं, वसंत ऋतु के आने पर देवगण क्रीड़ा करते हैं । एक बार उसी समय में स्वर्ग निवासिनी मञ्जुघोषा नामक वेश्या ने मुनिश्रेष्ठ शुक के स्थान में जाकर अत्यन्त सुन्दर बालक के रूप में उन्हें देखकर मोहित करने का प्रयत्न किया । मदनपीडिता उस वेश्या ने नृत्य-गान एवं अनेक प्रकार के अनुराग पूर्ण भावों के प्रदर्शित करने के उपरांत हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक सप्रेम उनकी स्तुति की । उस समय मुनि शुकदेव ने पद्यमय उसकी स्तुति सुनकर प्रसन्नचित्त से उसे वर की याचना करने के लिए कहा । उसने उस स्नेहवाणी को सुनकर प्रार्थना की कि हे नाथ, शरणागत वत्सल ! आप मेरा पति होना स्वीकार करें । उसकी प्रार्थना स्वीकार करने के उपरांत मुनिश्रेष्ठ एवं विज्ञान विशारद शुक ने उसके साथ रमण किया । उन दोनों के समागम के फलस्वरूप मुनि नामक एक पुत्ररत्न की उत्पत्ति हुई । उस बलवान् पुत्र ने बाहर वर्ष तक अनवरत तप का अनुष्ठान किया, जिससे संतुष्ट होकर रुद्र समेत कुबेर ने स्वर्णदेव की पुत्री को उसे स्त्री रूप में प्रदान किया । हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर पर उन दोनों के समागम से किन्नरी

तपश्चकार सा देवीं रूपयौवनशालिनी

॥१०

तदा प्रसन्नो भगवाञ्छङ्करो लोकशङ्करः । मकरन्दाय धीराय ददौ तां रुचिराननाम् ॥११

मुनित्तु शङ्करं प्राह देवदेव नमोऽस्तुते । मत्सुतायै दरं देहि राष्ट्रवर्धनमुत्तमम् ॥१२

इति श्रुत्वा शिवः प्राह गुरुण्डान्ते च भूतले । मध्यदेशे च ते राष्ट्रं भविष्यति सुखप्रदम् ॥

त्रिशद्ब्दप्रमाणेन तत्पञ्चात्कथयमेष्यति

॥१३

इति श्रुत्वा तु ज्ञ भुनिर्हनत्रङ्गनिवारकः । मकरन्देन महितस्तत्र वासमकारयत् ॥१४

इति ते कथितं विप्र पुनः शृणु कथां शुभाम् ! ऊनत्रिंशाङ्कदकं प्राप्ते कृष्णांशे रणकारणम् ॥१५

नेत्रपात्रस्य नगरं नानाधातुविचित्रितम् । मत्वा न्यूनपतिर्बाँद्वो हरोध नगरं शुभम् ॥१६

सप्तलक्षयुतो राजा बौद्धसिंहो महाबलः । त्रिलक्षबलसंयुक्तैस्तत्सार्द्धं युद्धमचीकरत् ॥१७

सप्ताहोरात्रमभवत्तेनायुद्धं भयानकम् । योगर्सिंहो भोगर्सिंहो विजयश्च महाबलः ॥१८

जधान शात्रवीं सेनां बौद्धसिंहेन यालिताम् । इतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः श्यामजापकदेशगाः ॥१९

बौद्धो शायाविज्ञत्सर्वे लोकमान्यज्ञपूजकाः । पुनर्जातं महद्युद्धं नासमेकं तयोस्तदाः ॥२०

नेत्रापालाज्ञया सर्वे कृष्णांशाद्याः समागताः । कृष्णांशो बिन्दुलारूढो देवः स्वह्यसंस्थितः ॥२१

इन्दुलश्च करालाखे मण्डलीको गजे स्थितः । गौतमश्च समायातो हरिनागरसंस्थितः ॥२२

तालनश्च समायातः सिंहिन्युपरि संस्थितः । धान्यपालस्तैत्यकारो युयुत्सोरंसम्भवः ॥२३

नाम से स्वातिप्राप्त एक कन्या रत्न की उत्पत्ति हुई । रूप-गौवन सम्पन्न होने पर वह बाला तप करने लगी । जिससे लोक के कल्याण करने वाले भगवान् शिव ने उस सौन्दर्य पूर्ण एवं कल्याणमुली कन्या को धीर-गम्भीर राजा मकरन्द को सौंप दिया । उसी बीच मुनि ने शंकर जी से प्रार्थना की—देवाधिदेव आपको नमस्कार है । आप मेरी कन्या के लिए वर और मुझे एक समृद्ध राष्ट्र प्रदान करने की कृपा कीजिये । इसे मुनकर शिव जी ने कहा—पृथ्वीदल में गुरुण्डों (गोरों) के (राज्य) सागाप्ति के अनन्तर मध्यप्रदेश में तुम्हारा सुखप्रद राष्ट्र होगा । किन्तु तीन सौ वर्ष के उपरात उसका ह्लास हो जायगा । इसे मुनकर उस हिमालय के उत्तुङ्ग शिखर के निवासी ने मकरन्द के साथ वहाँ निवास करना आरम्भ किया । २-१४। विप्र ! इतना कहकर मैं पुनः तुम्हें एक अन्य शुभ कथा सुना रहा हूँ— उदयर्सिंह की उन्तीस वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर राजा नेत्रपाल के उस अनेक धातुओं द्वारा रचित वित्र-विचित्र नगर को बौद्ध ने जारों ओर से धेर लिया । कारण कि वहाँ के राजा को वह कमजोर समझता था । राजा की सात लाख सेना के साथ महाबली बौद्धसिंह ने अपनी तीन लाख सेनाओं द्वारा धोर संग्राम आरम्भ कर दिया । सात दिन तक दोनों सैनिकों का अनवरत भीषण युद्ध हुआ जिसमें योगर्सिंह भोगर्सिंह, और महाबलवान् विजय ने शत्रु बौद्धसिंह की अध्यक्षता में युद्ध करते हुए उनकी सेना का विनाश कर दिया । उसी बीच श्याम और जापक आदि प्रदेशों के मायावी बौद्धगण भी आ गये, जो समस्त लोकों में मानपूर्वक पूज्य थे । उनके आगमन करने से वहाँ पुनः एक मास तक उन दोनों में भीषण युद्ध हुआ । राजा नेत्रपाल की प्रेरणा से उदयर्सिंह आदि वीरगण भी वहाँ पहुँच गये जिसमें उदयर्सिंह विन्दुल (बिंदुल) पर देवर्सिंह अपने घोड़े पर इन्दुल (इंदल) कराल नामक घोड़े पर मण्डलीक (आल्हा) गजराजपर, गोतम हरिनागरपर और तालन अपनी सिंहिनी नामक घोड़ी पर सवार होकर वहाँ उपस्थित हुए । धान्यपाल तेली युयुत्सु

लल्लसिंहश्च बलजान्कुन्तिष्ठोजांशसंभवः । ताम्बूलपकजातीयो लक्षणानुज्ञया दयौ ॥२४
 तदा तु नेत्रसिंहश्च सप्तलक्षबलैर्वृतः । पालितश्चाष्टभिर्वैरैस्तेषां नाशाय चाययौ ॥२५
 भयभीताश्च ते बौद्धास्त्यक्त्वा देशं समन्ततः । चीनदेशमुपागम्य युद्धामिभकारयन् ॥२६
 तदनुप्रथयुस्ते वै हृहनदमुपस्थिताः । माघमसे तु सम्प्राप्ते पुनर्युद्धमवर्तत ॥२७
 श्यामदेशोद्धवा लक्षं तथा लक्षं च जापकाः । दश लक्षाश्चीनदेश्या युद्धाय समुपस्थिताः ॥२८
 कुण्डांशो लक्षसेनाढ्यो देवो लक्षसमन्वितः । नेत्रपालश्च लक्षाढ्यो योगभोगसमन्वितः ॥२९
 मण्डलीक्षेन्दुलेन लक्षसैन्यरामन्वितः । ध्यानपालो लल्लसिंहो लक्षसैन्यान्वितः स्थितः ॥३०
 जगनायक एवापि लक्षसैन्ययुतः स्थितः । तालसे लक्षसेनाढ्यो युद्धाय समुपागतः ॥३१
 तत्र युद्धमभूद्धोरं बौद्धानामार्थकैस्मह । पक्षमात्रं मुनिश्रेष्ठ यमलोकविवर्द्धनम् ॥३२
 सप्तलक्षं हता बौद्धा द्विलक्षं चार्यदेशजाः । ततस्ते भयभीताश्च त्यक्त्वा युद्धं गृहं ययुः ॥३३
 कृत्वा दार्हमर्यां सेनां कलयन्त्रप्रभावतः । गजाश्च दशसाहस्राः सशूराः काष्ठनिर्मिताः ॥३४
 एकलक्षं हयारुडा दार्हपाश्च रणोन्मुखाः । सहस्रं महिषारुडासहस्रं कोलपृष्ठगाः ॥३५
 सिंहारुदासहस्रं च सहस्रं हंसवाहनाः । कङ्कणोमादुगृध्राणां श्यामारुडाः पृथक्तथा ॥३६
 उष्ट्राः सप्तसहस्राणि सशूराश्च रणोन्मुखाः । एवं सपादलक्षेश्च काष्ठसैन्यश्च मानुषाः ॥३७
 द्विलक्षाणि क्षयं जग्मुः कुण्डांशादैः सुरक्षिताः । ततो हाहाकृतं सैन्यं चार्याणां च ननाश तत् ॥३८
 दृष्ट्वा तत्कौतुकं रम्यं जयन्ते पुद्धकोविदः । आप्नेयं शरमादाय काष्ठसैन्येषु चाक्षिपत् ॥३९

के अंश से उत्पन्न लल्लसिंह तथा लक्षण (लाखन) की आज्ञा से वह तमोली भी साथ आया था । उस समय राजा नेत्रसिंह ने अपने सात लाख सैनिकों द्वारा जो उनके आत्मीय आठ वीरों की अध्यक्षता में सुरक्षित थे, बौद्धों के विनाशार्थ प्रस्थान कर दिया किन्तु उनसे भयभीत होकर उन बौद्धों ने इस देश का त्यागकर चीन देश को प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर रणभूमि की घोषणा की । इन लोगों ने भी बौद्धों के पीछे हूला नदी के तटपर पहुँचने का प्रयत्न किया । वहाँ माध मास के आरम्भ में दोनों सैनिकों का पुनः युद्ध आरम्भ हुआ । १५-२७। बौद्धसिंह के पास श्याम एवं जावा के एक लाख और चीन के दशलाख नीनी बौद्ध सैनिक आये थे । उसी प्रकार राजा नेत्रपाल के पास उदयसिंह देवसिंह, योगसिंह भोगसिंह समेत नेत्र पाल सिंह, इन्दुल (इंदल) समेत मण्डलीक (आल्हा) धनपाल, लल्लसिंह, जगनायक और तालन के साथ पृथक्-पृथक् एक लाख सैनिक आये थे । मुनिश्रेष्ठ ! उस स्थानपर बौद्धों और आर्यों का घोर संग्राम आरम्भ हुआ, जो निरन्तर एक पक्ष तक चलते हुए यमलोक की वृद्धि कर रहा था । उस रण भूमि में बौद्धों के सातलाख और आर्यों के दोलाख सैनिक काम आये । पश्चात् भयभीत होकर बौद्धगण अपने घर भाग गये किन्तु कलयंत्र के द्वारा उन्होंने काष्ठसेना का निर्माण कर पुनः युद्धारम्भ किया, जिसमें काष्ठ के शूरसमेत दशसहस्र गज, एक लाख अश्व, सहस्र भैसे, सहस्र कोल, सहस्र सिंह, सहस्र हंस, कंक स्यार, गीध, और सातसहस्र ऊँट सवार समेत उस रणस्थल में युद्धोन्मुख हो रहे थे । उस प्रकार उस युद्ध में बौद्धों के सवा लाख काष्ठ सैनिकों द्वारा उदयसिंह आदि के दो लाख मनुष्य सैनिकों का संहार होते देखकर आर्यों की सेनाओं में हाहाकर मच गया । २८-३१। इस दृश्य को देखकर युद्ध निपुण इंदुल ने अपने आग्नेय वाणों द्वारा उन काष्ठ सैनिकों को उनके वाहन समेत भस्मकर उन्हें विलीन

भस्मीसूताश्रव ते सर्वे तत्रैव विलयं गताः । त्रिलक्षं क्षत्रियाः शेषा जयन्तं रणकोऽविदम् ॥

चक्रुर्जयरवं तत्र तुष्टुवुश्र पुनः पुनः ॥४०

तदा तु चीनजा बौद्धाः कृत्वा विंशत्सहस्रकान् । हथारूढाँल्लोहमयान्प्रेषयामासुरुर्जितान् ॥४१

योगर्सिहो गजारूढो धर्मुदान्धरो बली । कण्ठेषु लोहजान्वीरांस्ताडयामास वै तदा ॥४२

मृतास्ते पञ्चताहस्रा योगर्सिहस्तदा शूरो दृष्ट्वा तस्य पराक्रमम् ॥

कृत्वा लोहमयं सिंहं योगर्सिहमपेषयत् ॥४३

पातेन तस्य सिंहस्य ह वीरो मरणं गतः । तदा तु भोगर्सिहश्र हृष्टारूढो जगाम ह ॥

स्वभल्लेन च तं सिंहं हृत्वा तत्र जयर्ज वै ॥४४

तदा तु बौद्धर्सिहेन शार्दूलस्तत्र चोदितः । सहयो भोगर्सिहश्र तेनैव मरणं गतः ॥४५

मातुलौ मृत्युवशगतौ दृष्ट्वा स्वर्णवतीसुतः । करालं हयमारह्य बौद्धर्सिहमुपाययौ ॥४६

शरमादाय वै शीघ्रं नान्ना सम्मोहनं गुभम् । मोहयित्वा रिपुबलं बौद्धर्सिहसमान्वितात् ॥४७

बद्ध्वा तान्बौद्धर्सिहादीन्नपान्दशतहस्तकम् । कलयन्त्रं च सञ्ज्ञूर्ध्य कृष्णांशांतिकमाययौ ॥४८

तदा ते हर्षितास्तर्वे प्रपेष्य नगरं ययुः । तदेशम् योजनायामं सर्वसम्पत्समन्वितम् ॥

लुण्ठयित्वा बलात्सर्वे नृपदुर्गमुपाययुः ॥४९

बौद्धर्सिहस्तदागत्य जयन्तेन विमोचितः । सुतां स्वां पद्मजां नान्ना जयन्ताय ददौ मुदा ॥५०

दशकोटीः सुर्वर्णस्य चाह्नादाय तदा धनम् । सर्वेश्व बौद्धवृन्देश्र तत्रैव शपथः कृतः ॥५१

कर दिया । पश्चात् शेष तीन लाख क्षत्रिय सैनिकों ने रण पंडित इन्दुल को अपने जय जयकार के सिंहनाद द्वारा संतुष्ट किया । उस समय चीन निवासी बौद्धों ने लोहनिर्मित ग्रीस सहस्र वाहन समेत सैनिकों को पूनः उस युद्धस्थल में भेजा । उन्हें देखकर हाथीपर बैठे हुए योगर्सिह ने अपने वाणों द्वारा उन वीरों को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ किया । जिसके फलस्वरूप योगर्सिह के वाणों से पीड़ित होकर लोहे के उन पाँच सहस्र सैनिकों का निधन हुआ । बौद्धर्सिह ने उनके इस पराक्रम को देखकर एक लोहे का सिंह बनाकर उनके पास भेजा । उस सिंह के आक्रमण करने से योगर्सिह का निधन हो गया । उसे देखकर घोड़े पर बैठे हुए भोगर्सिह ने अपने भल्लास्त्र द्वारा उस सिंह का वध करके भीषण गर्जना की । उसी समय बौद्धर्सिह द्वारा प्रेषित एक लोहे के वाद्य द्वारा घोड़े समेत भोगर्सिह का निधन हो गया । उस समय अपने दोनों मामा को मृत्यु की गोद में शयन किये देखकर स्वर्णवती (सोना) पुत्र इन्दुल ने कराल नामक घोड़े पर बैठकर बौद्धर्सिह के पास पहुँचते ही अपने संमोहन नामक वाण द्वारा सेना समेत बौद्धर्सिह को एवं उनके अनुयायी दश सहस्र राजाओं को मोहित करने के उपरांत बाँधकर तथा उनके कलयन्त्र को समूल नष्ट करते हुए उदयर्सिह के पास पहुँचने का प्रयत्न किया । उनके पहुँचने पर हर्षित होकर उन लोगों ने प्रपेष्य नगर की यात्रा की । सम्पूर्ण सम्पत्तियों से भरे उस नगर के घरों को जिसमें वहाँ के निवासी अत्यन्त सुख का अनुभव कर रहे थे, विघ्नस एवं लूट मचाते हुए वे लोग राजा के दुर्ग पर पहुँच गये । ३९-४१। वहाँ इन्दुल द्वारा मुक्त होने पर बौद्धर्सिह ने पद्मना नामक अपनी पुत्री का पाणिग्रहण इन्दुल के साथ सुसम्पन्न किया । तथा आह्नाद (आलहा) को दशकोटि सुर्वर्ण धन प्रदान करने के उपरांत बौद्धों ने उनके समझ

आर्यदेशं न धास्यामः कदाचिद्बाष्ट्वहेतवे । इत्युक्त्वा तांप्रणम्याशु सम्पस्थानमका रथन् ॥
त्रिलक्ष्मीश्च युतास्ते वै नेत्रपालगृहं गताः ॥५२

ऋषय ऊचुः

इन्दुलेन कथं सूत तत्र प्राणीकृता न हि । सुप्रिया योगसिंहाद्यास्तन्नो वद विचक्षण ॥५३
सूत उवाच

आगता यमलोकाद्वं कतिचित्प्राणिनो भुवि । तदा तु दुःखितो देवो महेन्द्रान्तमुपाययौ ॥५४

देवराज नमस्तुभ्यं सर्वदेवप्रियद्वृक्तः । जयन्तो लगतीं प्राप्य सृताऽजीवयति स्वयभुः ॥

अतो वै लोकमर्यादा विरुद्धा दृश्यते भुवि ॥५५

इति श्रुत्वा तु वचनं महेन्द्रो देवमायया । वडवामृतमाहृत्य तथा वै स्वर्गसं गतिभूः ॥

जयन्तास्य स्वपुत्रस्य मुमोऽस सुरैः सह ॥५६

इन्दुलश्च तदा दुःखी शारदां सर्वनङ्गलाम् । पूजयित्वा विधानेन स्तेगध्यानपरेऽभवत् ॥५७

इति ते कथितं विप्र पुनः शृणु कथां शुभाम् । नेत्रपालश्च बलवान्बहुपुत्रः शुचान्वितः ॥

दशकोटिमितं स्वर्णं तेभ्यो दत्त्वा समं समम् ॥५८

प्रस्थानं कारयामास चाष्टानां बलशालिनाम् । ते वै द्विलक्षसैन्याद्याः स्वरोहाय यथुर्मुदा ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वर्णि चतुर्युर्गखण्डापरपरयर्थि

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः । २९

शपथ भी की— ‘कि राज्य की लिप्सा से हम लोग आर्य प्रदेश में कशी भी यात्रा नहीं करेंगे।’ इसके उपरांत उन्हें प्रणालीकर वहाँ से प्रस्थान किया। और नेत्रपाल भी अपने तीन लाख सैनिकों समेत घर आये । ५०-५२

ऋषियों ने कहा—सूत ! इन्दुल ने अत्यन्त प्रिय अपने योगसिंह आदि वीरों को क्यों जीवित नहीं किया ? इसे बताने की कृपा कीजिये । ५३

सूत जी बोले—यमराज के लोक से कुछ प्राणियों ने इस पृथ्वी पर आकर (यहाँ का दृश्य देखते हुए) पुनः देवराज इन्द्र के पास पहुँचकर उनसे प्रार्थना की कि समस्त देवों के प्रिय नेता देवराज तुम्हें नमस्कार है । भगवान् ! जयतं (इन्दुल) पृथ्वीपर जाकर मृतकों को स्वयं जीवनदान प्रदान कर रहा है, इसलिए लोक की मर्यादा भूतल पर उसके विरुद्ध दिखाई दे रही है । इसे सुनकर देवसम्मान इन्द्र ने अपनी देवमाया द्वारा अपने पुत्र जयन्त की स्वर्गगामिनीगति समेत उस अमृत वडवा का अपहरण कर लिया । उस समय अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हुए इन्दुल अपने सर्वमंगला शारदा जी की सविधि पूजा करने के उपरांत ध्यान-योग करना आरम्भ किया । विप्र ! इतना कहकर मैं पुनः अन्य कथा सुना रहा हूँ । बलवान् नेत्रपाल ने पुत्र-शोक करते हुए शेष पुत्रों को दश कोटि का सुवर्ण समभाग कर विभाजित करने के उपरांत आठों बलशाली पुत्रों की शेष दो लाख सेनासमेत अपने घर को प्रस्थान किया । ५४-५९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय

वर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त । २९।

अथ त्रिशोऽध्यायः कलियुगीय इतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

यदा ते चीनदेशस्थास्तदाहृतो नृपेज वै । कामपालेन भो विप्र लक्षणे नकुलांशकः ॥१
जयचन्द्र महाभाग सावधानं वचः शृणु । वैशाखशुक्लसप्तम्यां मुहूर्तेऽयं दिनागमे ॥२
अतो वै लक्षणो वीरश्रैकाकी मां समाप्त्यात् । गृहीत्वा नत्सुतां दोलां गमिष्यति तवान्तिकम् ॥३
सेनान्वितं च तं ज्ञात्वा सहीराजो महाबलः । प्रग्रीष्यति पराजित्य तस्माद्योग्यं वचो मम् ॥४
इति तत्रत्यवचनं मत्वा राजा प्रसन्नधीः । लक्षणं हस्तिनीसंस्थं शतशूरसमन्वितम् ॥५
आहूय प्रेषयामास कामपालाय धीमते । मार्गे पञ्चदिनं वीर उषित्वा तदगृहं यथौ ॥६
तदा पद्माकरः ह्यात्मो ज्ञात्वा लक्षणमागतम् । भूमिराजं समाहूय तेन युद्धमचीकरत् ॥७
लक्षणे नकुलांशश्च दृष्ट्वा शत्रुमुपस्थितम् । स्वशरैस्तर्पयामास राजराजं शहावलम् ॥८
मूर्छेयित्वा महीराजं हृत्वा पञ्चशतं बली । कामपालं समागम्य नत्वा वासमकारयत् ॥९
उत्थितश्च महीराजो गत्वा पद्माकरं प्रति । वचनं प्राह कार्यर्थीं शृणु मित्र वचो मम् ॥१०

अध्याय ३० कलियुगीयेतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—विप्र ! जिस समय उदयसिंह आदि वीरगण चीन देश गये हुए थे, उस समय राजा कामपाल ने नकुल के अंश से उत्पन्न लक्षण (लाखन) को अपने यहाँ बुलवाया । पत्र में उसने लिखा कि—महाभाग, जयचन्द्र ! सावधान होकर मेरी बातें सुनने की कृपा कीजिये । ‘वैशाख शुक्ल सप्तमी के दिन द्विरागमन (गौने) का शुभ मुहूर्त निश्चित हुआ है, इसलिए वीर लक्षण (लाखन) अकेले ही मेरे यहाँ आने की कृपा करें । पश्चात् मेरी कन्या के डोला को साथ लेकर सादर अपने घर चले जायें । क्योंकि सैनिकों समेत आने से बलवान् पृथ्वीराज को उनके आगमन का पता लग जाने पर वे उन्हें पराजित कर डोला ले लेंगे । अतः मेरा ही कहना सर्वोत्तम प्रतीत हो रहा है’ । इसे सुनकर प्रसन्नन्वित होकर राजा जयचन्द्र ने हस्तिनी पर सुशोभित लक्षण (लाखन) को बुलाकर सौ शूरों समेत उन्हें राजा कामपाल के यहाँ भेज दिया । मार्ग में चलते हुए पाँच दिन की यात्रा समाप्तकर वे जिस दिन वहाँ उनके घर पहुँचे, उसी दिन उनके साले पद्माकर को उनके आने का पता लग गया । उसने शीघ्र पृथ्वीराज को बुलवाकर युद्धारम्भ कर दिया । नकुलांश लक्षण (लाखन) महाबली अपने शत्रु राजाधिराज पृथ्वीराज को वहाँ उपस्थित देखकर उनपर अपनी बाण वर्षा करने लगे । पश्चात् पृथ्वीराज को मूर्च्छित और पाँच सौ उनके वीरों का निधन करने के उपरात राजा कामपाल के पास पहुँचकर उन्हें नमस्कार किया । अनन्तर राजा ने सादर उन्हें अपने भवन में ठहराया । १-९। चेतना प्राप्त होने पर कार्यशील राजा पृथ्वीराज ने पद्माकर के भवन में जाकर उनसे कहा—प्रिय मेरी एक बात सुनो ! लक्षण (लाखन) मेरा परम शत्रु है,

लक्षणो मे भहाञ्छवुत्स च त्वद्गेहमागतः । यदि दास्यसि तं बद्धवा त्वां मदं ज्ञं करोम्यहम् ॥११
 इति श्रुत्वा स लोभात्मा दत्त्वा हालाह्लं विषम् । बद्धवा तं लक्षणं वीरं महीराजाय चार्पयत् ॥
 हत्वा ताञ्छतशूरांश्च गुप्तवार्तमिकारयन् ॥१२
 ज्ञात्वा तत्पदिनी नारी दुःखितालप्य वै भृशम् । चण्डिकां पूजयामास पतिमङ्गलहेतदे ॥१३
 तदा प्रसन्ना सा देवी वरदा सर्वमङ्गला । आश्वास्य पदिनीं नारीं लक्षणान्तमुपाययौ ॥१४
 स्वप्ने तमाह सा देवी हीं फट् धेघे जपं कुरु । अस्य मन्त्रप्रभावाच्च सर्वविद्धः प्रणश्यति ॥१५
 स बुद्धवा लक्षणो वीरस्तं मन्त्रं च जजाय ह । आषाढे मासि सम्प्रत्प्ने कृष्णांसाला गृहं युः ॥१६
 तालनश्च युतस्ताम्यां^१ कान्यकुञ्जमुपाययौ । न दृष्टे लक्षणो द्वेरो जयचन्द्रप्रियङ्करः ॥
 ज्ञात्वा तत्कारणं तैश्च कृतं योगमयं वपुः ॥१७
 धान्यपालः कांस्यधारी वीणाधारी च तालनः । लल्लसिंहो मृदञ्जगङ्को युस्त वै महावतीम् ॥१८
 सभां परिमात्स्यैव गत्वा ते योगरूपिणः । चकुर्गानं मुद्रा युक्तः सर्वे ते सोहमागताः ॥१९
 प्रतस्तश्च तदा राजा मुक्तामालां स्वकण्ठगाम् । तालनाय ददौ प्रीत्या ताम्यां स्वर्णाङ्गुलीयके ॥२०
 तदा ते हर्षिताः सर्वे कृष्णांशं प्रति चायुः । ज्ञात्वा कृष्णांशं एवापि धृत्वा योगमयं वपुः ॥
 ययौ बिन्दुगढं वीरस्तालनाद्यसमन्वितः ॥२१
 हट्मध्ये समागम्य कृत्वा रासोत्सवं शुभम् । गेहं पद्माकरस्यैव गत्वा ते ननृतुर्मुदा ॥२२
 एतस्मिन्नन्तरे सर्वा योषितस्तत्र चागताः । वेणुवाद्यवृतं वीरं कृष्णांशं ददृशुर्मुहुः ॥
 मोहितास्तस्य गानेन जडीभूता धनं ददुः ॥२३

और वह इस समय तुम्हारे भर में उपस्थित है । यदि उसे बाँधकर मुझे सौंप दो तो मैं तुम्हें अपना पद (प्रतिनिधि) प्रदान कर दूँगा । इस लोभ में आकर पद्माकर ने लक्षण (लाखन) को हलाहल विष देकर मूर्च्छित होने पर उन्हें बांध लिया, और पृथ्वीराज को सौंप दिया । पृथ्वीराज ने उनके साथ क्षेत्रों का निधन करके लक्षण (लाखन) को गुप्त-गृह में छिपा दिया । इस रहस्य का पता लगने पर रानी पदिनी दुख का अनुभव करती हुई अत्यन्त विलाप करने के उपरांत पति की मांगलिक कामनावश चण्डिका देवी की पूजा की । उस समय वरदायिनी सर्वमंगलादेवी ने प्रसन्न होकर रानी पदिनी को आश्वासन प्रदान कर पुनः लक्षण (लाखन) के पास प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर स्वप्न में देवी ने उनसे कहा—‘हीं फट् धे धे’ इस मंत्र का जप करो’ । इसी मंत्र के प्रभाव से तुम्हारे सभी विघ्न नष्ट हो जायेंगे । १०-१५। चेतना जागने पर लक्षण (लाखन) ने उपरोक्त मंत्र का जप किया । आषाढ मास के आरम्भ में उदयसिंह आदि वीरगण अपने-अपने घर चले आये । तालन समेत उदयसिंह ने कान्यकुञ्ज (कन्नीज) को प्रस्थान किया । वहाँ जयचन्द्र के प्रिय भतीजे लक्षण (लाखन) को न देखकर उसके कारण का पता लगाया । पश्चात् योगी के वेष धारणकर उन लोगों ने जिसमें धान्यपाल मजीरा, तालन वीणा, और लल्लसिंह मृदञ्ज को अपनाये हुए थे, महावती (महोबा) में पहुँचकर राजा परिमल के सभा भवन में नृत्य-गान आरम्भ किया उसे देखकर वहाँ के सभी सभासद अत्यन्त मोहित हो गये । प्रसन्न होकर राजा ने स्वयं अपने गले की मोती की माला तालन को प्रदानकर पश्चात् उन दोनों को

तदा तु पद्मिनी नारी सर्वलक्षणंसंयुतः । ज्ञात्वा कृष्णांशमेवापि हरोद द्विरभातुरा ॥२४
 उवाच च त्रिलप्याशु मत्पतिर्लक्षणो बली । महीराजेन शूरेण कारागारे बलात्कृतः ॥
 अहं योषा भवान्योगी कथं कार्यं भविष्यति ॥२५
 इति श्रुत्वा तु स नृपो भुजगुत्थाप्य सत्वरम् । आश्वास्य पद्मिनीं नारी यथुस्ते देहलीं प्रति ॥
 राजद्वारमुपगम्य कृष्णांशस्स ननर्त ह ॥२६
 महीराजस्तु बलान्प्रसन्नस्तर्थ लीलया । वाञ्छितं बूहि कृष्णांश सर्वं योगिन्ददाम्यहम् ॥२७
 इति श्रुत्वा भूपवचो विहस्योवाच तं प्रति । कारागारं लोहमयं नृपयोगम् च मे नृप ॥
 दर्शयाशु स्वकीयं वै भवान्भूपशिरोमणिः ॥२८
 इति श्रुत्वा स नृपतिमोर्हितः कृष्णलीलया । दर्शयित्वा च वै शीघ्रं पुनस्तेभ्यो ददौ धनम् ॥२९
 ततस्ते योगिनस्तदेव सङ्ग्राप्य च महावतीम् । नत्वा परिमलं भूपं गदित्वा सर्वकारणम् ॥३०
 स्वसेनां सज्जयामास चाह्नादश्च नृपान्नयः । पञ्चलक्ष्मं महावत्यः हयारूढास्समास्थिताः ॥३१
 तालनस्सप्तलक्षणिं सैन्यान्याहृय चागतः । एवं द्वादशलक्षणिं क्षत्रिया रणदुमेदाः ॥

सुवर्ण की अंगूठी प्रदान किया । उस सम्मान से वे हर्षित होकर उदयसिंह के पास पहुँचे । वीर उदयसिंह ने अपने समाज बालों को अत्यन्त निपुण जानकर अपना योगमय वेष धारण किये तालन आदि के साथ बिंदुगढ़ को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उस नगर के बाजार में इन्होंने सर्वप्रथम सुन्दर रास लीला दिखाई । तदुपरांत पद्याकर के भवन में जाकर अत्यन्त प्रसन्न होकर नृत्य किया । उसी बीज वहाँ सभी स्त्रियाँ भी आ गई थीं जो वंशी बजाने वाले उदयसिंह को ही बार-बार देख रही थीं । उनके नृत्य-गान को सुनकर उन स्त्रियों के मोहित होकर जड़ की भाँति हो जाने पर सर्वलक्षण सम्पन्न रानी पद्मिनी ने 'उदयसिंह यही हैं, ऐसा निश्चित कर उनके सामने रुदन करती हुई करुण वचनों द्वारा उनसे कहा—'बली लक्षण (लाखन) मेरे पति हैं, जिन्हें शूर पृथिवीराज ने अपने बल प्रयोग द्वारा जेल में बन्द कर दिया है। किन्तु, मैं स्त्री हूँ, और आप योगी हैं, अतः मुझे चिन्ता हो रही है कि (उनके मुक्त होने का) कार्य कैसे सम्पन्न हो सकेगा' । इसे सुनकर उदयसिंह ने अपने दोनों हाँथों को उठाकर रानी पद्मिनी को आश्वासन प्रदान किया, पञ्चात् दिल्ली को प्रस्थान भी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने राजदरबार में नृत्य किया । उस नृत्य की लीला में मुग्ध होकर बलवान् पृथिवीराज ने उनसे कहा—योगिन्! अपनी अभिलाषा प्रकट कीजिये, आप क्या चाहते हैं मैं सभी कुछ देने को तैयार हूँ । राजा की ऐसी बात सुनकर हँसते हुए उदयसिंह ने कहा—नृप! आप के यहाँ (शत्रु) राजाओं के लिए लोहे का जेल बना हुआ है, क्योंकि आप राजाधिराज हैं, ऐसा मैंने सुना है । मेरी इच्छा है आप वही मुझे दिखा देने की कृपा करें । इसे सुनकर कृष्णांश उदयसिंह की लीला से मुग्ध उस राजा ने उन्हें उसे शीघ्र दिखाया और धन भी प्रदान किया । उपरांत वे सभी योगी महावती (महोबा) चले गये । वहाँ पहुँचकर नमस्कार पूर्वक राजा परिमल से उन्होंने समस्त वृतान्त कह सुनाया । १६-३०। राजा की आज्ञा प्राप्तकर आह्नाद (आल्हा) ने अपनी महावती स्थित सेना को वहाँ चलने के लिए आदेश प्रदान किया, जो पाँच लाख की संख्या में वहाँ सदैव उपस्थित रहती थी । इस प्रकार तालन भी अपनी सात लाख सेना समेत उनके पास पहुँचे इस प्रकार बारह लाख

देहलीं च सभाजगमुसर्वशस्त्रसमन्विता:

॥३२

एतस्मिन्नन्तरे मन्त्री चन्द्रभट्टो विशारदः । सर्वशास्त्रार्थकुशलो वैष्णवीशक्तिपूजकः ॥३३

महीराजं सप्तागम्य वचः प्राह् शृणुष्व भोः । मया वै च रहः क्रीडा दृष्टा देवीप्रसादतः ॥३४

तत्रोदयश्च कृष्णांशः पूर्णज्ञह्याणमागमत् । वचः प्राह् प्रसन्नतमा शृणु त्वं सत्त्वविग्रह ॥३५

अग्निदंशविनाशाय चाद्य यास्यामि देहलीय । हत्वाहं कौरवांशांश्च स्थापर्यगित्वा कर्लिं भुवि ॥३६

पुनस्त्वाप्तिकं प्राप्त रहः क्रीडां करोम्यहम् । इत्युत्त्वा बिन्दुलारुद्धः स वीरस्त्वामुपस्थितः ॥

इत्यहं दृष्टवान्भूपूर्णं कृष्णांशं योगनिद्रया ॥३७

इति तस्य वचः श्रुत्वा स भूपो विरमयान्वितः । भयभीतः सहस्राणि शूरस्ताहूय सत्त्वरम् ॥

तेष्यश्च लक्षणं दत्त्वा दत्त्वनं प्राह तत्प्रति ॥३८

पद्माकराय भूपाय गत्वा दत्त्वाशु लक्षणम् । ममान्तिकमुपागम्य कारणं यदताशु तत् ॥३९

इति श्रुत्वा तु ते सर्वे नक्तिवंश्या महाबलाः । गत्वा तत्र तथा कृत्वा महीराजमुपागमन् ॥४०

भगदन्तश्च तेषां तु सहस्राणां च नायकः । महीराजं ददः प्राह् शृणु तन्तृपश्चापित्तम् ॥४१

पद्मिनी मे स्वसा राजन् गुप्तविद्याविशारदा । तस्य यज्ञपतिर्देवः सम्यगाराधितः पुरा ॥४२

दत्स्तेन वरो रम्यो ह्यन्तर्धानमयः परः । सा तु तं लक्षणं कान्तमन्तर्धानं करिष्यति ॥

इति श्रुत्वा स नृपतिः परमानन्दमाप्तवान् ॥४३

सेना समेत जिसमें रण-दुर्धर्षक्षत्रियगण सैनिक थे, अपने शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर उन लोगों ने दिल्ली को प्रस्थान किया । उसी बीच निषुण मंत्री चन्द्रभट्ट ने जो सभी शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं वैष्णवी शक्ति के उपासक थे, पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे कहा—‘देवी जी की प्रसन्नतावश मैंने ‘एकान्त’ क्रीडा, का दर्शन किया है, जिसमें कृष्णांश उदयसिंह पूर्ण वृक्ष के रूप में दिखाई दे रहे थे । उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—शारीरधारी जीव ! मैं अग्निवंश के क्षत्रियों के समूल विनाशार्थ दिल्ली को प्रस्थान कर रहा हूँ । वहाँ कौरवांश से उत्पन्न उन क्षत्रियों का विनाश करने के उपरान्त इस भुतल में कलि की स्थापना करके मैं पुनः तुम्हारे पास पहुँचकर एकान्त क्रीडा करूँगा । इतना कहकर उस वीर ने बिंदुल (बेंदुल) नामक अश्वपर बैठकर यहाँ आने का प्रस्थान कर दिया है । भूप ! इन बातों को मैंने योगनिद्रा देवी द्वारा उन कृष्णांश (उदयसिंह) से पूछा था । इसे सुनकर राजा पृथ्वीराज को अत्यन्त आश्चर्य हुआ । भयभीत होकर उन्होंने एक सहस्र शूरों को बुलाकर उन्हें लक्षण (लाखन) को सौंप दिया और कहा कि—इन्हें ले जाकर राजा पद्माकर को सौंप देने के उपरान्त वहाँ की सभी बातें मुझसे शीघ्र आकर कहो ! इसे सुनकर अग्निवंशीय महावली उन क्षत्रियों ने वहाँ जाकर कार्य सम्पन्न करने के उपरान्त पृथ्वीराज के पास आकर निवेदन किया । ३-१-४०। उन सहस्र क्षत्रिय शूरों के अधिनायक भगदन्त ने पृथ्वीराज से कहा—कि वहाँ के राजा ने जो कुछ कहा है, मैं बता रहा हूँ, कृपया सावधान होकर श्रवण कीजिये । उन्होंने कहा—‘राजन् ! मेरी भगिनी पद्मिनी जो गुप्तविद्या में अत्यन्त निषुण है, पहले समय में यज्ञाधीश देव की भली-भाँति आराधना की है । उसी से उन्होंने उसे अन्तर्धान होने का सुन्दर वरदान प्रदान किया है । इससे वह अपने पति लक्षण (लाखन) को अन्तर्हित कर देगी । इसे सुनकर पृथ्वीराज को परमानन्द की प्राप्ति हुई’ । उसी बीच महाबलवान् उदयसिंह आदि

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः कृष्णांशाद्या सहाबलाः । रुधुर्देहलीं सर्वां मुहीराजेन पालिताम् ॥४४
स तदा पृथिवीराजो गृहीत्वा बहुभूषणम् । सर्वेभ्यश्च ददौ प्रेम्णा वचनं प्राह नग्रधीः ॥४५
लक्षणो नाम ते राजा कारागारे न वै मम । यदि मन्त्रगरे चास्ति तर्हि ते रोष ईदृशः ॥४६
इत्युक्त्वा तं च कृष्णांशं दर्शयामास वै गृहम् । महादेवस्य शपथं इतदान्भूपतिर्भयात् ॥४७
तदेवयो भूपवचः तत्यं मत्वा सुदुःखितः । स्वकीयैः सह सम्प्राप्ते प्रामं बिन्दुगढं शुभम् ॥४८
कामपालस्तु तच्छ्रुत्वा कृष्णांशागमनं बली । बलिं बहु गृहीत्वातु कृष्णांशं शरणं यथौ ॥

प्राञ्जलिं प्रणतो भूत्वा वचनं प्राह भीरुः ॥४९

द्युता मे पद्मिनी नारी लक्षणेन समन्विता । न ज्ञात्वा क्व गताऽन्तस्माभिस्मत्यं सत्यं ऋदीस्यहम् ॥५०
इति तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णांशः स्वबलैस्सह । कान्यकुञ्जं समागत्य जयचन्द्रमुवाच ह ॥५१
भ्रातृजस्तद भूपाल पद्मिन्या लक्षणोऽन्वितः । कामपालगृहे नास्ति निश्चितो बहुधा मया ॥५२
न जाने क्व गतो राजा नम प्राणसमो भुवि । यदि भूष प न पश्यामि सत्यं प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥५३
हा रत्नभानुतनय विष्णुभक्तं शुभकर । स्वमित्रं मां परिन्यज्य कां दिशं गतावान्भवान् ॥

इत्युक्त्वा सूर्च्छितश्चासीत्कृष्णांशो वैष्णवप्रियः ॥५४

तदा स्वर्णवती देवी स्वदास्या शोभया सह । धृत्वा शुकमयं रूपं तत्रागत्य स्वमूर्तिगा ॥५५
तथा सम्प्रेषिता शोभा म्लेच्छमायाविशारदा । जयचन्द्रमुपागम्य धृत्वा दिव्यमयं वपुः ॥५६
उवाच वचनं तत्र शृणु भूपशिरोमणे । मायाविनीं च मां विद्धि शोभनां नाम विश्रुताम् ॥५७

वीरों ने वहाँ पहुँचकर पृथिवीराज की राजधानी दिल्ली को चारों ओर से घेर लिया । उस समय पृथ्वी-राज ने उन लोगों के पास पहुँचकर उन्हें अनेक भाँति के भूषण उपहार प्रदान करके नग्रता पूर्वक सप्रेम उनसे कहा—तुम्हारे राजा लक्षण (लाखन) मेरे जेल में नहीं हैं, यदि हमारे नगर में भी वे होते, तब आप को इस प्रकार का क्रोध करना उचित था । इतना कहकर उन्होंने उदयसिंह को वह (जेल) स्थान दिखा दिया । पश्चात् भयभीत होकर राजा ने महादेव की शपथ भी की । उस समय राजा की बात सत्यमान कर उदयसिंह ने दुःख का अनुभव करते हुए सैनिकों समेत बिन्दुगढ़ को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर राजा कामपाल ने उनके आगमन को सुनकर भाँति-भाँति के उपहार समेत उदयसिंह की शरण में जाकर सादर सप्रेम हाथ जोड़ते हुए करण वाणी द्वारा उनसे कहा—मेरी पुत्री पद्मिनी लक्षण (लाखन) के साथ कहाँ चली गई, इसे हम लोग कुछ भी नहीं जानते हैं । यह मैं सत्य एवं धूव सत्य कह रहा हूँ । इसे सुनकर उदयसिंह ने अपने सैनिकों समेत कान्यकुञ्ज (कन्नौज) आकर जयचन्द्र से कहा—आपके भतीजे लक्षण (लाखन) पद्मिनी समेत कामपाल के घर में नहीं हैं, यह मैंने अनेक प्रकार से वहाँ देखकर निश्चित किया है । प्राण के समान वह मेरा राजा इस पृथ्वी में न जाने कहाँ चला गया । राजन् ! यदि मैं उन्हें न देखूँगा, तो मैं अवश्य प्राण-परित्याग कर दूगा, हा रत्न भानु के पुत्र ! विष्णु के कल्याणकर भक्त ! मुझ अपने मित्र को छोड़कर आप कहाँ चले गये । इतना कहकर वैष्णवप्रिय उदयसिंह सूर्च्छित हो गये । उस समय देवी स्वर्णवती (सोना) ने अपनी दासी शोभा समेत शुक्ररूप धारण करके वहाँ पहुँचकर म्लेच्छ माया की दिवुषी उस शोभना को जयचन्द्र के पास भेजा । ४१-५६ । उसने दिव्य रूप धारण कर जयचन्द्र के पास पहुँचकर कहा—भूपशिरोमणे ! मेरी बात सुनते की कृपा कीजिये । मैं शोभना नामक प्रख्यात

हम्पते तव भूपाल संहृतौ येन यत्र वै ! तत्राहं च गमिष्यामि महामदसमन्विता ॥५८
 आह्लादश्वेन्दुलो दीरं देवो वै हत्तलनो बली । कृष्णांशपालितास्तर्वे यास्यामो भूपते वयम् ॥५९
 हत्युक्तदा शोभना वेश्या कृत्वा योगमयं व्रुः । महामदं समारुद्धा पैशाचं रुद्रकिञ्चुरम् ॥
 ॥६० प्रययौ तान्पुरस्कृत्य योगिवेषान्महाबलान्
 आह्लादो गजसंस्थो दै करालस्तु इन्दुलः । तालनः सिंहिनीसंस्थो देवर्सिंहः अनोरथे ॥
 ॥६१ कृष्णांशो बिन्दुलारुद्दो नर्तयामास तं हयम्
 कामरूपमयं देशं शतयोजनगालिनः । बलवन्तश्च सम्प्राप्ना नेहे गेहे जने जने ॥
 लक्षणं शोधयामासुर्तं प्राप्तात्तत्र तं नृपम् ॥६२
 पुनर्मध्यूरनगरं शोभना तैः समन्विता । चिन्वती तं मनुष्येषु न प्राप्ता तत्र वै नृपम् ॥६३
 पुनरिन्नगद्ग्रामं शोभना च जने जने । लक्षणं मृगग्रामास न प्राप्त तत्र लक्षणम् ॥६४
 गत्वा बाह्लीकनगरं शोभना तैस्समन्विता ! लक्षणं च नृपश्रेष्ठं भापश्यत्तत्र दुखिता ॥६५
 पुनः स्वदेशमागम्य बाह्लीकं म्लेच्छवासिनम् । मर्कटेन्वरमीशानं तत्राह वनवासिनम् ॥
 पूजयित्वा च सा वेश्या याननृत्यपराभवत् ॥६६
 स देवो भूमिमध्यात् समागम्यमुदान्वितः । कृष्णांशं प्रणतो भूत्वाऽब्रवीन्म्लेच्छप्रपूजितः ॥६७
 अहं कालाग्निरुद्देण भूमिगत्तेसुरोपितः । असमर्थं च मां विद्धि गच्छ वीर यथासुखम् ॥६८
 इति श्रुत्वा च सा शोभा निराशाभूत्तदा स्वयम् ॥६९
 पुनः स्वर्णवतीं प्राप्य सर्वमेवादितोऽब्रवीत् । त्रिशदब्दैश्च कृष्णांशे चैत्रशुक्ले समाप्ताते ॥७०

मायाविनी हूँ । आपके पुत्रवधू समेत पुत्र का अपहरण जिसने किया है, वहाँ महामद समेत मैं जा रही हूँ । मेरे साथ आह्लाद (आल्हा) इन्दुल देवर्सिह, एवं बली तालन आदि उदयर्सिह की अध्यक्षता में चलेंगे । इतना कहकर योगमय शरीर धारण करके उस रुद्र किंकर महामद नामक पिशाच के ऊपर आसीन होकर उस शोभना ने योगी वेषधारी उन महाबलवानों को आगे करती हुई वहाँ को प्रस्थान किया । उस यात्रा में आह्लाद (आल्हा) गज पर, इन्दुल कराल नामक अश्व पर, तालन सिहनी नामक घोड़ी, देवर्सिह मनोरथ पर और उदयर्सिह अपने बेंदुल घोड़े पर बैठे हुए उसको नचाते हुए चल रहे थे । वहाँ से कामरूप देश की सौ योजन की यात्रा करके उन बलवानों ने वहाँ के प्रत्येक घरों एवं मनुष्यों से लक्षण (लाखन) का अनुसंधान किया किन्तु कहीं उसका पता न चल सका । पुनः वह शोभना प्रत्येक मनुष्यों में ढूँढती हुई वह मयूर नगर आई किन्तु वहाँ पर भी उनका पता नहीं चला । इसी प्रकार उस शोभना नामक मायाविन ने इन्नगढ़ और बाह्लीक नगर में जाकर वहाँ के प्रत्येक नागरिकों एवं उनके घरों में ढूँढ़ने पर भी लक्षण (लाखन) का पता न चलने से पुनः अपने बाह्लीक प्रदेश में पहुँचकर मरुस्थल निवासी मकटेश्वर महादेव की सविधान पूजा करके उनके सम्मुख नृत्य गान आरम्भ किया । ५७-६६ । पश्चात् उस देव ने जो म्लेच्छों के पूज्य थे, भूमि के भीतर से बाहर निकलकर नम्रतापूर्वक उदयर्सिह से कहा—वीर ! कालाग्निरुद्रदेव ने मुझे इसी भूमि के गड्ढे के (भीतर) बैठा दिया है, अतः आपके मनोरथ सफल करने में मैं असमर्थ हूँ । कृपया यहाँ व्यर्थ कष्ट न कीजिये । इसे सुनकर वहाँ से निराश होकर शोभना ने पुनः स्वर्णवती (सोना) के पास पहुँचकर उससे समस्त वृत्तान्त कहा । उदयर्सिह की तीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ होने पर चैत्र शुक्ल के नवरात्र के दिन में उस सुवर्ण वदना

तमनाश्चास्य सुवर्णाङ्गि पूज्यासास चण्डिकाम् । नवरात्रं गतं तस्या भोजनाच्छादनं विना ॥

निशीथान्ते तमः प्राप्ते गत्वाह जगदम्बिका ॥१७६॥

पद्मिनी नाम या नारी मणिदेवस्य वै प्रिया । जाता रा कामपालस्य गृहे यज्ञावमानिता ॥१७७॥

सेनापतिः कुबेरस्य मणिदेवो हि स स्मृतः । पूर्वं हि भीमसेनेन यक्षयुद्धेषु धत्तिः ॥१७८॥

तत्त्वा तत्पद्मिनी नारी देवदेवमुमापतिम् । तुष्टाव च निराहार भत्यतिं देहि शङ्कर ॥१७९॥

शतदर्शन्ततरे देवो महादेव उवाच नाम् । कलौ विक्रमकाले हि शतद्वादशकोन्तिके ॥१८०॥

नकुलांशं च सम्प्राप्य भुक्त्वा तेऽन महत्सुखम् । तद्वियोगेन सत्यज्य देहं पद्मानुवामितम् ॥

स्वपत्तिं च तदा प्रस्पद कैलासं पुनरेष्यसि ॥१८१॥

अहावतीं पुरीं रम्यां राष्ट्रपालाय शारदा । करिष्यति तदा देवी मणिदेवस्तु त्वत्पतिः ॥१८२॥

तया विरचितो भूमौ ग्रन्थरक्षार्थमुद्यतः । प्राप्तस्त्वं पद्मिनीं नारीं कैलासं पुनरेष्यति ॥१८३॥

अतः स्वर्णवति त्वं वै कैलासं गुह्यकालयम् । गत्वाशु पद्मिनीं तत्र बोधयाशु वचः कुरु ॥१८४॥

इति श्रुत्वा स्वर्णवती पद्मिनीं पति चागमत् । वृत्तान्तं कथयित्वाग्रे पद्मिनीं तु दयातुरा ॥१८०॥

कामपालं गृहं प्राप्य तत्र वासमकारयत् । स्वर्णवत्यपि सम्प्राप्ता तदा शीघ्रं महावतीम् ॥१८१॥

तस्यां गतायां गेहे वै पद्मिन्या । लिखितं शुभम् । पत्रं परिमलो राजा वर्तयामास हर्षितः ॥१८२॥

(सोना) ने अपने अनुयायियों को आश्वासन प्रदानकर भगवती देवी चण्डिका की सविधान पूजा करना आरम्भ किया तथा नवरात्र के दिनों में भोजन और शश्या-शयन के त्याग भी । पश्चात् अन्त की रात्रि में उस घोर अंधेरी आधीरात के समय भगवती जगदम्बिका ने र्वर्णवती (सोना) से कहा—जिस पद्मिनी स्त्री के (लाखन समेत) तुम खोज रही हो, वह मणिदेव यक्ष की प्रिया है । यज्ञ में अपमानित होने पर उसने कामपाल के यहाँ जन्म ग्रहण किया है । वह मणिदेव कुबेर का सेनानायक है, युद्ध में जिसे पराजित कर भीमसेन ने हनन कर दिया था । उस समय पद्मिनी ने निराहार रहकर देवाधिदेव एवं उमापति शिव से बार-बार यही प्रार्थना किया है—हे शंकर ! मेरा पति मुझे प्रदान करो ! सौ वर्ष की आराधना करने के उपरांत महादेव ने उससे कहा—कलियुग में विक्रम काल (संवत्सर) के बारहवीं शताब्दी के अन्तिम समय के लगभग नकुलांश (लाखन) को (पति रूप में) प्राप्तकर अत्यन्त सुख का उपभोग करती हुई उससे विद्योग होने पर इस सौरभ से मुवासित देह के त्यागपूर्वक अपने पति समेत पुनः तुम्हें कैलास की प्राप्ति होगी । राष्ट्रपाल के लिए उस रमणीक महावती (महोबा) नामक राजधानी के निर्माण करती हुई देवी शारदा के ही द्वारा तुम्हें पति रूप में मणिदेव की प्राप्ति होगी । इस भूतल में देवी द्वारा उत्पन्न होकर वह ग्राम रक्षार्थ नियुक्त (राजा) होगा । पश्चात् पद्मिनी नामक तुम्हें स्त्रीरूप में प्राप्तकर पुनः कैलास चला आयेगा । इसलिए स्वर्णवती (सोना) देवि ! मेरी बात स्वीकार कर यक्षों के निवासरूप उस कैलास की शीघ्र यात्रा करके वहाँ पद्मिनी को इन बातों की जानकारी कराओ । इसे सुनकर उस सुवर्णाङ्गी (सोना) ने वहाँ पहुँचकर पद्मिनी से सभी वृत्तान्त का वर्णन किया । उससे प्रभावित होकर दयावती पद्मिनी ने कामपाल के घर निवास करना स्वीकार किया । उस समय रानी (सोना) ने महावती (महोबा) में शीघ्र पहुँचकर राजा परिमल को पद्मिनी का लिखा हुआ वह पत्र दिया जिसमें उसने अपने (पिता के) घर में निवास करना आदि सभी बातें लिखी थी । १८०-१८१। तथा यह भी

अगच्छ सेनया सर्वद्वं कृष्णांश बलवत्तर । जित्वा पद्माकरं बन्धुं भूर्पति मोचयाशु वै ॥

भूतले लक्षणो राजा स्थितः पद्माकरातिगः

॥८३

इति ज्ञात्वा च कृष्णांशे लक्ष्मद्वादशसेनया । रुद्रेध नगरीं सर्वां कामपालेन रक्षिताम् ॥८४

कामपालम्नु बलवांस्त्रिलक्ष्मबलसयुतः । सुताजया यथौ युद्धं सर्वद्वं पद्माकरेण वै ॥८५

तयोश्चासीन्महद्युद्धे तेनयोरुद्धयोस्तदा । अहोरात्रप्रमाणेन भूपसेना पराजिता ॥८६

पद्मिनीं इरणं प्राप्य तदा आता पिता स्थितः । तयोर्विजयमेवाशु यथाप्राप्तं चकार स्ता ॥

अन्तर्द्वानिस्त्रयं पत्रं तयोरर्थं च सा ददौ

॥८७

तौ तत्रान्तर्हितौ भूत्वा स्वसङ्गोन रिपोर्बलम् । अयुतं जघ्नतुर्मत्तौ तदा ते विस्मयं गताः ॥८८

तालनाद्या रणं त्यक्त्वा कृष्णांशं शरणं यथुः । कृष्णांशोऽपि तदा दुःखी ध्यान्वा सर्वमयीं शिवाम् ॥८९

दिव्यदृष्टिस्ततो जातः संप्राप्य तमयुध्यत । नभोगतं कामपालं तथा पद्माकरं नृशम् ॥९०

बद्ध्वा तत्र मुद्राविष्टो लक्षणं प्राप्य निर्भयः । दोलामारोप्य तां देवीं स्वग्रहाय मुदा यदौ ॥९१

जयचन्द्राय भूपाय दत्त्वा वै तौ च दम्पती । लक्षणं पद्मिनीं चैव कृतकृत्यस्तदाभवत् ॥९२

जयचन्द्रोऽपि बलवान्दृष्ट्वा गेहे स्वदम्पति । ददौ दानं द्विजातिभ्यो भूर्पति सममोचयत् ॥

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे कृष्णांशो गेहमागतः

॥९३

लिखा था कि सेना समेत बलवान् उदयसिंह शीघ्र आकर भाई पद्माकर को पराजित करके मैरे पति को शीघ्र मुक्त कराइये । 'राजा लखण (लाखन) इस पृथ्वी पर जीवित तथा पद्माकर द्वारा पोड़ित हैं, ऐसा जानकर उदयसिंह ने अपने बारह लाख सैनिकों समेत वहाँ पहुँचकर कामपाल की उस राजधानी को चारों ओर से घेर लिया । राजा कामपाल ने भी अन्य पुत्रों की आज्ञावश पद्माकर पुत्र तथा अपने तीन लाख सैनिकों समेत युद्धस्थल में पहुँचकर युद्धारम्भ कर दिया । दोनों सेनाओं में महान् एवं घोर संग्राम हुआ जो अविराम गति से दिन-रात चलता रहा । सेना के पराजित होने पर कामपाल ने पुत्र समेत पद्मिनी की शरण में पहुँचकर अपनी विजय की प्रार्थना की । उन दोनों की विजयकामना वश उसने उस अन्तर्हित करनेवाले पत्र को उन्हें अर्पित कर दिया । उस समय उन दोनों ने अन्तर्हित होकर शत्रु के दण सहस्र सैनिकों के हनन किये । इसे देखकर तालन आदि सेनाध्यक्षों को महान् आश्रय हुआ । फलतः रणभूमि छोड़कर वे सभी उदयसिंह की शरण पहुँचे । उसे सुनकर दुःख का अनुभव करते हुए उदयसिंह ने सर्वमयी भगवती पार्वती की आराधना करके दिव्यदृष्टि प्राप्त की, जिससे आकाश स्थित होकर युद्ध करते हुए उन दोनों को देखा । पश्चात् निर्भय होकर उन दोनों को बाँधकर लक्षण (लाखन) के पास पहुँचे और उनके समेत पद्मिनी का डोला साथ लेकर अपने घर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर राजा जयचन्द्र को दम्पती राजा लखण (लाखन) और उनकी रानी पद्मिनी सौपकर अपने को कृतकृत्य होने का अनुभव करने लगे । बलवान् जयचन्द्र ने भी अपने घर में पुत्र तथा पुत्र-वधु को उपस्थित देखकर हर्ष निमग्न होते हुए ब्राह्मणों को दान तथा बंधन समेत जेल में पड़े हुए राजाओं को साथ ही बंधन मुक्त किया । इस प्रकार ज्येष्ठमास के आरम्भ में उदयसिंह अपने घर पहुँच गये । ८३-९३। विप्र ! कृष्णांश

इति ते कथितं विप्र कृष्णांशचरितं शुभम् । पुनस्ते कथम्भिर्मि दृष्टं योगबलेन वै ॥१५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलक्षण्डापरपरयाये

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम त्रिंशोऽध्यायः । ३०

अथैकत्रिंशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

शृणु विप्र महाभाग चन्द्रभट्टस्तदा स्वयम् । नहीराजं सदस्थं तं चन्द्रतुल्यस्समागतः ॥१
तमागतं तमालोक्य स राजा शोकतत्परः । उवाच वचनं रम्यं शृणु मन्त्रिवरं प्रभो ॥२
कृष्णांशाद्यैर्महाशूरैर्मद्ग्रामे भयमागतम् । कदा ते च मरिष्यन्ति कण्टका मम दारणाः ॥३
इत्युक्तस्स तु शुद्धात्मा ध्यात्वा सर्वमर्यां शिवाम् । वचनं प्राह राजानं शृणु भूपशिरोमणे ॥४
जिङ्गोरं शास्त्रसमुद्भूतो ब्रह्मानन्दो महावतीम् । स कृष्णांशसखः श्रेष्ठः सदैवा तत्प्रिये रतः ॥५
यदा च मलनापुत्रो देहं त्यक्त्वा गमिष्यति । तदा ते सर्वदेवांशा गमिष्यन्ति यतो गताः ॥६
इत्येवं वादिनं धीरममात्यं च महीपतिः । वचनं प्राह नन्नात्मा कोऽप्यर्थश्चिन्तितो मया ॥७

(उदयसिंह) के इतने चरित्र को मैंने तुम्हें सुना दिया, किन्तु योगबल द्वारा जो कुछ उनके चरित को देखा है, मैं पुनः कहने का प्रयत्न कर रहा हूँ । १४

श्री भविष्यमहापुराणे के प्रतिसर्गार्द्धे मे कलियुगीय इतिहाससमुच्चय
वर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३०।

अध्याय ३१ कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—महाभाग, विप्र ! मैं कह रहा हूँ, सुनो ! एक बार जिस समय राजा पृथ्वीराज सिंहासन पर बैठे हुए थे, उसी समय वहाँ चन्द्रभट्ट का आगमन हुआ । आये हुए उन्हें देखकर चिन्तित होकर राजा ने उनसे कहा—मन्त्रिप्रवर ! मेरी एक बात सुनो ! उदयसिंह आदि महाशूरों द्वारा मेरा समस्त नगर भयभीत है, अतः इन मेरे भीषण शत्रुओं की मृत्यु कब होगी ? उनके इस प्रकार कहने पर उस शुद्धात्मा भट्ट ने सर्वमणि भगवती शिवा के ध्यानपूर्वक राजा से कहा—भूप शिरोमणि ! मैं कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनने की कृपा कीजिये । महावती (महोदा) नगर के निवासी ब्रह्मानन्द विजयशील विष्णु के अंश से उत्पन्न हैं । कृष्णांश (उदयसिंह) उनके परम मित्र हैं, जो सदैव उनके प्रिय कार्य करते रहते हैं । इसलिए वह मलना-पुत्र (ब्रह्मानन्द) अपनी शरीर के त्यागपूर्वक जिस समय यहाँ से प्रस्थान करेगा, उसी समय देवांश से उत्पन्न वे सभी लोग यहाँ से चले जायेंगे । १-६। ऐसा कहने वाले उस धीर गम्भीर मंत्री और राजा से महीपति (माहिल) ने विनाश होकर कहा—मैंने एक उपाय सोच-विचारकर निश्चित

एकाकिनं महाशूरं ब्रह्मानन्दं नृपोत्तमम् । समाहृय महीराजे द्विरागमनहेतवे ॥
छद्मना धातयित्वा तं कृतकृत्यो भविष्यति ॥१८

इत्युक्तं नृपां प्राह महीराजः प्रसन्नधीः । वचनं भृणु भो मित्र गच्छ शीघ्रं महावतीम् ॥१९

मलनां च समागत्य बोधयित्वा तु तां स्वयम् । समाजितकमुपागम्य चिरं जीव सुखी भव ॥२०

इति श्रुत्वा तु वचनं नत्वा तं च महीपतिः । रात्रौ वोरं नुनिश्चेष्ठ मलनां प्राह निर्भयः ॥२१

बन्धुस्तव पहाराज्ञ वेला नाम सुरूपिणी । संप्राप्ता यौवनदत्ती पतियोग्यः शुभानना ॥२२

कुजातिश्चैष कृष्णांशः श्रुतो राजा महात्मनः । अतो न प्रेषिता पुत्री तव पुत्राय धीमते ॥

अतो नद्वचनं मत्वा हुरु कार्यं तव प्रियम् ॥२३

मया सार्वं तव सुतो ब्रह्मानन्दो महावलः । उर्वायां नगरीं प्राप्य तदा मत्सैन्यसंयुतः ॥२४

महीराजमुपागम्य पत्नीं शीघ्रमवाप्स्यति । नो चेन्ममाज्ञया वेलः त्यक्त्वा कान्तं मरिष्यति ॥२५

इति श्रुत्वा तु सा राजी मोहिता देवमायथा । राजानं समुपागम्य भ्रातुर्वचनमुत्तमम् ॥

कथयामास वै सर्वं श्रुत्वा भूपोऽङ्गवीदिदम् ॥२६

महीपतिर्महाधूर्तो मद्विनाशाय वोद्यतः । तस्य वार्ता न से रम्या कपटस्तेन निर्मितः ॥२७

इति श्रुत्वा च भलना राजानां कोपसंयुतम् । वचनं प्राह भो राजन्यथा बन्धुस्तथा हृहम् ॥

वचनं कुरु मे राजन्नो चेत्प्राणांरत्यजाम्यहम् ॥२८

कर लिया है—वह यह है कि उस नृपश्रेष्ठ एवं महावली ब्रह्मानन्द को गौने के बहाने से अकेले बुलाकर छल-कपट द्वारा उनका निधन करके आप कृतकृत्य हो जायेंगे । इस प्रकार कहते हुए उस राजा से प्रसन्न होकर पृथ्वीराज ने कहा—मित्र ! मेरी बात सुनो ! तुम शीघ्र महावती (महोवा) जाकर वहाँ मलना के पास पहुँचकर स्वयं उनसे भली भाँति समझाकर कहो । पश्चात् मेरे पास आकर सूचित करो जिससे उम चिरजीवन प्राप्तकर मुख का अनुभव करो । मुनिश्रेष्ठ ! इसे सुनकर उस महीपति (माहिल) ने नमस्कार पूर्वक वहाँ से प्रस्थान किया । रात्रि के समय घोर अंधेरे में वह मलना के पास पहुँचकर निर्भीक होकर कहने लगा तुम्हारी वेला नाम की महारानी बहू ने इस समय यौवन सौन्दर्य प्राप्त किया है जिससे वह कल्याणमुखी पति के योग्य हो गई है । किन्तु महाराज पृथ्वीराज ने यह सुना है कि उदयसिंह का जन्म नीच जाति में हुआ है । इसीलिए उन्होंने अपनी पुत्री तुम्हारे पुत्र के पास भेजना उचित नहीं समझा । अतः मेरी बात मानकर जैसा मैं कहूँ, करने को तैयार हो जाओ, क्योंकि उसी में तुम्हारा हित है । तुम्हारा पुत्र महावली ब्रह्मानन्द अकेले मेरे साथ मेरी उर्वी (ऊर्रई) राजधानी में चलकर वहाँ मेरी सेना समेत पृथ्वीराज के पास पहुँच जायेगा । ७-१५। तो अबश्य अपनी पत्नी ले आयेगा, इसमें सदेह नहीं है । नहीं तो मेरी बात सुनकर वेला अपने पति का त्यागकर अपना प्राण विसर्जन कर देगी । इसे सुनकर दैवमाया में मोहित होकर उस रानी ने अपने पति के पास पहुँचकर अपने भाई की समस्त बातें उनसे कहा । उसे सुनकर राजा ने कहा—महीपति (माहिल) महाधूर्त है, वह सदैव हमारे विनाश करने के लिए ही प्रयत्नशील रहता है । इसलिए उसकी बात मुझे रुचती नहीं है, क्योंकि वह कपट कर रहा है । इसे सुनकर रानी मलना ने उस क्रोधित राजा से कहा—‘राजन् ! जैसे भाई हैं वैसे मैं भी हूँ, आप इस कहने को मेरा ही कहना समझ-

इत्युक्तवादिनीं रात्रौ तदा परिभ्लो नृपः । ब्रह्मानन्दं ददौ तस्मै स मुते मातृवत्सलः ॥१९
 मातुराज्ञां पुरस्कृत्य मातुलेन समन्वितः । रात्रौ च मातुलग्रामं सम्प्राप्य मुदितोऽभवत् ॥२०
 प्रातःकाले च सप्ताप्ते हरिनागरमास्थितः । एकाकी देहलीं रन्धां प्रययौ दैवमोहितः ॥२१
 शयद्वाले तु सन्नाप्ते भहीराजस्य मन्त्रिरे । अगमां दर्शयामास सुरूपां दिव्यविश्राम् ॥२२
 अगमा च समालोक्य परं हर्षपुषायदौ । माधशुक्लस्य चाष्टम्यां द्विग्रानन्दश्च निर्भयः ॥
 स्यालानां योषितः सन्त ददर्श रुचिरानना: ॥२३
 तिलो नार्यश्च विद्यवाश्रतलो धवसंदुत्ताः । ब्रह्मानन्दं शब्दमयं वाक्यमूर्दुमुदिताः ॥२४
 ब्रह्मानन्दं भहीभाग सावधान वचः शृणु । तव पत्नी स्वयं काली वेला कलहृषिणी ॥
 सञ्जहार धवानेव नो वयं तु मुदुःखिताः ॥२५
 सापत्न्यमस्तु तत्स्या गृहणास्मान्मनोहर । धवान्विदेहि नो वीर पतिर्भवमुदान्वितः ॥२६
 इति श्रुत्वा वचस्तासां ब्रह्मानन्दो महाबलः । उत्राच्च मधुरं वाक्यं श्रुतिस्मृतिसमन्वितम् ॥२७
 पुरा सत्ययुगे नारी चोन्नमा च पतिव्रता । त्रेतायां स्थिमा जाता निकृष्टा द्वापरे प्रनः ॥२८
 अगमा हि कलौ नारी परपुंसोपभोगिनी । अतस्तु कर्तिकाले वै विवाहो विधवास्त्रियाः ॥
 देवलेन शुभः प्रोक्तश्चासितेन स्वयं स्मृतौ ॥२९
 सती सत्ये तु सा प्रोक्ता त्रेतायां पतिभस्मगा ॥३०

कर उसे स्वीकार करने की कृपा करें, अन्यथा मैं प्राण त्याग दूँगी । इस प्रकार रानी के कहने पर विवण होकर उसी भय मरा जा ने अपना प्रिय पुत्र ब्रह्मानन्द माहिल को सौंप दिया । ब्रह्मानन्द भी माता की आज्ञा शिरोधार्यकर अपनी मामा के साथ मैं सानन्द उनके नगर उर्वा (उरई) में पहुँच गये । पश्चात् प्रातःकाल होने पर हरिनागर नामक घोड़े पर दैठकर ब्रह्मानन्द ने दैवमाया से मोहित होने के कारण अकेले ही दिल्ली को प्रस्थान किया । सायंकाल होने के समय पृथ्वीराज के भवन में पहुँचकर उन्होंने दिव्य शरीर धारणी रानी अगमा का दर्शन किया । अगमा को भी उन्हें देखकर अन्यत्त प्रसन्नता प्राप्त हुई । तदुपरांत उस माध शुक्ल की अष्टमी के दिन निर्भीक ब्रह्मानन्द ने अपने सातों सालों की उन सौन्दर्यपुर्णमुखवाली रानियों का दर्शन किया, जिसमें तीन विधवाएँ और चार सधवाएँ थी । उन विधवा स्त्रियों ने उनके आगमन से प्रसन्न होकर अपने दुख के उद्गार प्रकट करना आरम्भ कर दिया, उन्होंने कहा—महाभाग ! ब्रह्मानन्द ! निश्चल मन से मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये । आप की वेला पत्नी ने जो स्वयं काली एवं कलह की साक्षात् प्रतिमा है, हमारे पतियों के निधन कराकर हमें अन्यत्त दुःखी बना दिया है । अतः मन के हरण करने वाले ! आपसे हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि 'वीर ! हम पतिविहीन स्त्रियों के पति होने की कृपा करो । क्योंकि तुम्हीं हमारे अनुरूप हो ।' इसे सुनकर कर महाबली ब्रह्मानन्द ने उनसे मधुर एवं श्रुति स्मृति सारगम्भित वाणी द्वारा कहना आरम्भ किया—पहले सत्ययुग के समय स्त्रियाँ उत्तम पतिव्रता होती थीं । उसी प्रकार त्रेता में मध्यम, द्वापर में निकृष्ट और कलियुग में अधम स्त्रियाँ होती हैं, जो परपुरुष के साथ उपभोग करती हैं । इसलिए देवल तथा असित महर्षियों ने अपनी स्मृतियों में कलि के समय विधवा-विवाह का समर्थन किया है । १६-२१। उन्हीं लोगों का यह कहना है कि—सत्ययुग में स्त्रियाँ सती की भाँति आचरण करती थीं त्रेता में पति के साथ

सती सर मध्यमा प्रोक्ता द्वापरे विधवा सती । ब्रह्मचर्चपरा ज्ञेया कलौ नास्ति सतीव्रतम् ॥३१
 अतो गूर्णं मया सार्वं भुक्षध्वनमलं सुखम् । इति श्रुत्वा प्रियं वाक्यं तिष्ठस्ता विधवा: स्त्रियः ॥३२
 कृत्वः शुद्धाररूपाणि भूषणानि च सर्वशः । ब्रह्मानन्दमुपागम्य सम्मालिङ्गतत्पराः ॥३३
 ता दृष्ट्वा मलनापुत्रो वचनं प्राह निर्भयः ॥३४
 युष्माभिः पतयो मुत्ता ये च मदबन्धुना हताः ॥३५
 युष्मानतो न गृहणीयां रात्यं सत्यं ज्ञात्यम्यहम् । इति श्रुत्वा वचो धोरं हात्ययुक्तं च योषितः ॥३६
 भहीराजान्तमागम्य रुद्धुर्भृशदुखितः । यजन्त्वेलापतिर्घूर्तो भद्र धर्म जहाति वं ॥
 इदं देहि च धूर्ताय नोः चेत्पाणांस्त्यजाम्यहम् ॥३७
 इति श्रुत्वा महीराजो ब्रह्मानन्दं नहाबलम् । समाहूय वचः प्राह भवान्भूपकुलाधमः ॥३८
 परस्त्रियं च यो भुड्क्ते स याति यमनिदरम् । अद्यैव त्वं सुताकान्त कारागृहमवाप्नयाः ॥३९
 इति श्रुत्वा दचो धोरं ब्रह्मानन्दो जहाबलः । सत्सरोः खडगमुत्सज्ज्य भहीराजमधावत ॥४०
 दृष्ट्वा भयातुर्गे राजा चामुण्डान्तमुपायौ । लभाटं दृष्टमाच्छाद्य तत्र वासमकारयत् ॥४१

ऋषय ऊचुः

तासां कथं विदाहा: स्युस्तत्त्वं नो ब्रूहि विस्तरात् । कुत्रत्यास्ता: किमंशाश्र दृष्ट्वा योगेन वै त्वया ॥४२

भस्म हो जाती थीं । और द्वापर में विधवा रहकर सती आचरण करती हुई ब्रह्मचर्च की अन्तिम रेखा का पालन करती थीं । किन्तु कलियुग में सती-व्रत का विधान नहीं नहीं है । इसलिए तुम लोग मेरे सम्पर्क में रहकर सुखसागर की चरम सीमा का अनुभव अवश्य प्राप्त करो । उनकी इस श्रद्धा सुखद वाणी को सुनकर उन तीनों स्त्रियों ने भूषण-भूषित होती हुई आनंद सौन्दर्यमय शृद्धार की रचना करके ब्रह्मानन्द के पास पहुँचकर उनसे आलिङ्गन करने की इच्छा प्रकट की । उन्हें देखकर मलना-पुत्र ब्रह्मानन्द ने निर्भीक होकर कहा—तुम्हारे उन पतियों ने तुम लोगों का उपभोग किया है, जिन्हें रण-भूमि में हमारे भाइयों ने धराशायी कर दिया है । इसलिए तुम लोगों का ग्रहण मैं कभी नहीं कर सकता हूँ । यह सत्य ही नहीं ध्रुव सत्य कह रहा हूँ । इस हास्य-युक्त एवं घोरवाणी को सुनकर वे स्त्रियाँ पृथ्वीराज के पास जाकर रुदन करती हुई कहने लगीं—राजन् । वेला का धूर्तं पति हमें धर्मच्युत कर रहा है । इसलिए उस धूर्त को दण्ड दीजिये, नहीं तो हम प्राण देने के लिए तैयार हैं । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने महाबली ब्रह्मानन्द को बुलाकर कहा—आप अधम राजाओं के वंशज मालूम होते हैं, क्योंकि जो पर स्त्री का उपभोग करता है, उसे यमपुरी जाना पड़ता है । अतः पुत्रि कान्त ! मैं तुम्हें अभी जेल भेजता हूँ । इस कठोर वाणी को सुनकर महाबली ब्रह्मानन्द म्यान से खड़ग निकालकर पृथ्वीराज की ओर दौड़े, किन्तु उन्हें देखते ही भयभीत होकर राजा चामुण्ड (चौढ़ा) के पास चले गये । और उन्हें किवाड़ को अति दृढ़ता से बन्द कराकर उसी जेल के भीतर ही रखा । ३०-४१

ऋषियों ने कहा—सूत जी ! उन स्त्रियों के विवाह किस प्रकार हुए हैं, तथा वे कहाँ की रहने वाली एवं किस के अंश से उत्पन्न हुई हैं । इसे योगबल द्वारा जिस प्रकार आपने देखा है, उसके रहस्य का विस्तार पूर्वक वर्णन करने की कृपा कीजिये । ४२

सूत उदाच

अङ्गदेशे मुनिश्रेष्ठ मायावर्मनृपोऽभवत् । तामसीं पूजयित्वा वै शक्ति सर्वविमोहिनीम् ॥४३
 वर्मोत्तमं तथा दत्तं सर्वसत्त्वभ्यङ्करम् । गृहीत्वा स तु भूपालः प्रस्थितोऽभून्महीतले ॥४४
 प्रमदा नाम तत्पत्ती दश पुत्रानसूषुवत् । कौरवांशान्महाभाग दषान्ते नाम मे शृणु ॥४५
 मत्तः प्रमत्त उन्मत्त सुमत्तो दुर्मत्स्तथा । दुर्खलो उर्धरो लाहुः सुरथो विरथः कमात् ॥
 तिषां स्वसातुजा नासीतुनान्ना मदिरेक्षणा ॥४६

तस्या वै सुन्दरं रूपं नदधूर्जितलोचनम् । कितबो नारा वै दैत्यो दृष्ट्वा मोहमुपागतः ॥४७
 मायावर्मणभागत्य वचनं प्राह नस्तीः । यांद त्वं मे स्वतनयां देहि क्रमानुराय च ॥४८
 तर्हि ते सकलं कार्यं करिष्यामि न संशयः । इति श्रुत्वा तदा भूपो ददौ तत्यै स्वकन्यकाम् ॥४९
 कितबो गह्वरावासी रात्रौ घोरे तमोवृते । नृपगेहमुपागम्य दुभुजे त्मरविह्वलः ॥
 प्रातः काले तु तां द्यक्त्वा कन्दरान्तमुपाययै ॥५०
 वर्मदेवमते जाते ततो राजा मदातुरः । पुरोहितं समाहूय लक्षदव्यसमन्वितम् ॥
 महीराजाय सम्प्रेष्य तारकं स समावृणोत् ॥५१
 महीराजस्तु बलवाँत्लक्षणोऽशसैन्यः । संयुतः शतभूपालैर्भासान्ते समुपागमत् ॥५२
 कृष्णांशे पञ्चदशके सम्प्राप्ते व्रततत्परे । तारकश्च विवाहाय बहुभूपाठाभानयत् ॥५३

सूत जी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! अङ्गदेश का मायावर्मा नामक राजा था । उसने सबको मोहित करने वाली तामसी शक्ति की उपासना की । उसे एक उत्तम वर्म (कवच) की प्राप्ति हुई, जो समस्त प्राणियों के लिए भयप्रद था । उसे अपनाकर उस राजा ने इस पृथ्वी पर पर्यटन किया । पश्चात् प्रमदा नाम की उनकी पत्नी ने दश पुत्रों को जन्म दिया, जो एक-एक वर्ष के उपरांत कौरवों के अंश से उत्पन्न थे । महाभाग ! मैं उनके नाम भी बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये । मत्त, प्रमत्त, उन्मत्त, सुमत्त, दुर्मद, दुर्मुख, दुर्धर, बाहु, सुरथ, और विरथ और एक छोटी बहिन भी उत्पन्न हुई जिसका नाम मदिरेक्षणा था । उस कन्या के सौन्दर्यपूर्ण रूप एवं मदभरे नेत्रों को देखकर कितब नामक दैत्य अत्यन्त मोहित हो गया । पश्चात् उसने मायावर्मा के पास जाकर उनसे विनम्र ग्रार्थना की—यदि तुम अपनी पुत्री मुझ कामपीडित को सौंप दो, तो मैं तुम्हारे सभी कार्य सुमाप्नन कर दिया करूँगा, इसमें संदेह नहीं । इसे सुनकर राजा ने अपनी कन्या उसे सौंप दी । तदुपरांत गुफा निवासी कितब दैत्य कामपीडित होकर रात्रि के घोर अंधेरे के समय राजा के घर आकर नित्य उस कन्या का उपभोग करने लगा । प्रातः काल होने पर वह अपनी कन्दरा में चला जाता था । इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने पर राजा ने अपने पुरोहित द्वारा एक लक्ष द्रव्य प्रदानकर पृथ्वीराज के पुत्र तारक (ताहर) का वरण करा दिया । बलवान् पृथ्वीराज के पुत्र ने भी अपनी सोलह लाख सेना समेत सौ राजाओं को साथ लिए हुए एक मास की यात्रा कर वहाँ अपने पहुँच जाने की सूचना दी । उस समय उदयसिंह की पन्द्रहवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी । उस तारक (ताहर) के विवाह के उपलक्ष में वहाँ अनेक राजाओं का समाज एकत्रित हुआ था । ४२-५३।

मायावर्मा च तं दृष्ट्वा तारकं भूपसंयुतम् । वचनं प्राह बलवान्नराजराज वचः शृणु ॥५४
 कितबो नाम मेधावी दैत्यवंशयशस्करः । तेन मे पीडिता बाला रात्रौ घोरतमोद्वृते ॥५५
 हता भूषकुमत्तराश्च मत्सुतार्थं समागत्ताः । भक्षितास्तेन दैत्येन संयुक्ते यमालयम् ॥५६
 तेषां च बहूधा द्वयं लुण्ठयिता मदातुरः । मत्सुतार्थं ददौ सर्वं तस्मात्त्वं दितिजं जहि ॥५७
 इति श्रुत्वा महीरज्ञस्सर्वसैन्यसमन्वितः । कितवं च समाहृथं महद्युद्भवीकरत् ॥५८
 कितवस्स तु मायावी जित्वा सर्वान्महाबलान् । तारकं च समाहृत्यं गुहायां समुपागमत् ॥५९
 तारकश्च तदा दुख्ले ध्यत्वा शङ्खरमुत्तमम् । पाषाणभूतो ह्यगमन्महादेवप्रसादः ॥६०
 एतस्मिन्दत्तरे प्राप्ता महावतीनिवासिनः । क्षत्रिया दशसाहस्राः कृष्णांशाद्यश्च पालिताः ॥६१
 शहीराजस्तु तान्दृष्ट्वा बलखानिं महाबलम् । उवाच वचनं प्रेम्णा पुत्रशोकेन दुखितः ॥६२
 तारकः कितवेनैव सहृतो दितिजेन वै । यदि त्वं मे सुतं देहि कोटिस्वर्णं ददामि तत् ॥६३
 इति श्रुत्वा तु ते धीराः कृष्णांशो देवर्सिहकः । वत्सजौ च तथागम्य कितवं रुद्धुर्बलात् ॥६४
 अहोरात्रमसूद्युद्धं तेषां तेन समन्वितम् । कितवस्तु रुषाविष्टः कृष्णांशं देवर्सिहकम् ॥
 बलखानिं सोहयित्वा जगर्ज च पुनः पुनः ॥६५
 सुखखानिस्तदा शूरः कितवं बलवत्तरम् । स्वखङ्गेन शिरस्तस्य छित्वा राजानमागमत् ॥६६

उस समय मायावर्मा ने तारक (ताहर) समेत बैठे हुए राजा पृथ्वीराज से कहा—बलवान् राजाधिराज !
 मेरी विनश्च प्रार्थना सुनने की कृपा करें । दैत्यवंश का स्वातिप्राप्त एवं मेधावी एक कितव नामक दैत्य है,
 जो घोर अंधेरी रात्रि में मेरी पुत्री को पीड़ित करता रहता है । उस मेरी पुत्री के पाणिप्रहण करने के
 लिए अनेक राजकुमार आये थे किन्तु इस दैत्य ने उन्हें भक्षण करके यमपुरी भेज दिया और उनके अनेक
 प्रकार के धनों को लूटकर मेरी पुत्री को अंपित किया है । इसलिए मेरी प्रार्थना है कि आप उस दिति-पुत्र
 (दैत्य) का हनन अवश्य करें । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने सेनासमेत रणस्थल में पहुँचकर वहाँ कितव को
 बुलाकर उससे घोर युद्ध किया । उपरांत वह मायावी कितव दैत्य सभी बलवानों को पराजित कर तारक
 (ताहर) का अपहरण करते हुए अपनी गुफा में चला गया । उस समय दुख्ली होकर तारक (ताहर) ने
 शंकर का ध्यान किया जिससे प्रसन्न होकर महादेव ने उसको पाषाण की मूर्ति बना दिया । ५४-६०।
 उसी समय महावती (महोबा) निवासी क्षत्रियगण वहाँ पहुँच गये, जो दशसहस्र की संख्या एवं उदयर्सिह
 आदि की अद्यक्षता में चल रहे थे । पृथ्वीराज ने उन्हें देखकर पुत्रशोक से संतप्त होते हुए महाबली उस
 बलखानि (मलखान) से कहा—उस दिति पुत्र कितव ने तारक (ताहर) का अपहरण कर लिया है,
 यदि तुम मेरे उस पुत्र को ला दो, तो मैं तुम्हें एक कोटि सुवर्णमुद्रा प्रदान करूँगा । इसे सुनकर
 उदयर्सिह ने देवर्सिह, तथा दोनों वत्सपुत्र (मलखान और सुखखानि) इन सबने मिलाकर उस कितव
 को बलात् चारों ओर से धेर लिया । उन लोगों का उस दैत्य के साथ दिन-रात अनवरत युद्ध हुआ ।
 पश्चात् अत्यन्त कुद्ध होकर कितव ने उदयर्सिह, देवर्सिह, और मलखान को मोहितकर सिंहनाद करना
 आरम्भ किया । उसी बीच बलवान् सुखखानि ने अपने खड़ग द्वारा उस राक्षस के शिर को शरीर से
 पृथक् कर दिया और उसे पृथ्वीराज के सम्मुख उपस्थित कर दिया । उस समय वे तीनों भी

प्रयस्ते सुखिनो भूत्वा सुखखानि प्रशस्य च । महीराजाय च ददौ तारकं कैतवं शिरः ॥६७
तदा भूयसुता देवी सुखखानि समावृणोत् । महीपतिस्तदागत्य तत्सुतां मदिरेक्षणाम् ॥६८
सम्बोध्य विविधैर्वक्यैर्भूमिराजान्तमागमत् । तारकस्य तथा सार्वं विवाहो मुदितोऽभवत् ॥६९
कोटिस्वर्णं नृपत्राप्य बलवानिर्महाबलः । प्रययौ बन्धुभिस्तद्वं शिरीषाव्यपुरं शुभम् ॥७०

सूत उदाच्च

गुर्जरे गृपतिश्चोसीमूलवर्मा महाबलः । प्रभावती तस्य सुता दशपुत्रानुजाभवत् ॥७१
बलश्च प्रबलश्चैव सुबलः बलवान्बली । सुमूलश्च महामूलो दुग्गो भीमो भयङ्करः ॥७२

करभो नाम वै यक्षो लल्लराजस्य सेवकः । प्रभावतीं समालोक्य मुग्गोह मदविह्वलः ॥
पञ्चवर्षान्तरे जाते तेन भुक्ता कुमारिका ॥७३

मूलवर्मा महीराजं समाहृय ससैन्यकम् । दचनं प्राह नम्नात्मा राजराजवचः कुरु ॥७४
प्रभावतीं शुभां कन्यां नृहराय ददाम्यहम् । इत्युक्त्वा नृहरं पुत्रं समाहृय स्वमन्दिरे ॥

ददौ वेदविधानेन सुतां च नृहराय वै ॥७५

पश्चमात्रान्तरे यक्षः करभस्तत्र चागतः । दम्पती पीडयामास जित्वा रर्वमहीपतीन् ॥७६
महीराजस्तदा दुःखी वत्सजौ बलवत्तरौ । समाहृय कथित्वाग्रे रुरोद बलवान्बली॒ ॥७७

आनन्दमग्न होते हुए सुखखानि की प्रशंसा कर रहे थे । जिस समय उन्होने तारक (ताहर) समेत किंतव के शिर को पृथ्वीराज के सम्मुख उपस्थित किया, उस समय वह राजपुत्री सुखखानि के साथ अपना वरण करना चाहती थी, किन्तु महीपति (माहिल) ने वहाँ आकर उस मदिरेक्षणा को अनेक भाँति से समझा बुझाकर पृथ्वीराज के पास उपस्थित किया । अनन्तर तारक (ताहर) के साथ उसका विवाह संस्कार सम्पन्न कराया और मलखान को एक कोटि सुवर्ण की प्राप्ति हुई । जिससे वे अपने भाइयों समेत अपनी शिरीष नगरी को लौट आये । ६१-७०

सूत जी बोले—गुजरात प्रदेश में मूलवर्मा नामक महाबली राजा रहता था । उसकी प्रभावती नामक छोटी कन्या एवं दश पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके क्रमशः बल, प्रबल, सुबल, बलवान्, बली, सुमूल, महामूल, दुर्गा, शीम, एवं भयंकर नाम बताये गये हैं । करभ नामक एक यक्ष ने जो लल्लराज का सेवक था । उस प्रभावती कुमारी को देखकर अत्यन्त मोहित हो गया । उस मदन-पीडित यक्ष ने पाँच वर्ष के भीतर ही उस कुमारी के साथ उपभोग करना आरम्भ कर दिया । मूलवर्मा को इसका पता लगने पर उन्होने पृथ्वीराज को बुलाकर उनसे विनम्र प्रार्थना की । राजाधिराज ! मैं आपके पुत्र नृहर के साथ अपनी प्रभावती नामक पुत्री का पाणिग्रहण करना चाहता हूँ । इतना कहकर उन्होने पुत्र नृहर को अपने महल में बुलाकर अपनी पुत्री का सविधान पाणिग्रहण उनके साथ सुसम्पन्न कराया । एक पक्ष दिन व्यतीत होने के उपरांत उस दैत्य ने वहाँ आकर राजाओं को पराजित करके उन दम्पत्ति (स्त्री-पुरुष) को पीडित करना आरम्भ किया । उस समय अत्यन्त दुःखी होकर पृथ्वीराज ने वत्सराज के उन दोनों पुत्रों बलखानि और सुखखानि को बुलवाकर रुदन करते हुए उनके सम्मुख अपना करण दुःख प्रकट किया । ७१-७७

दयात् वत्सजौ बीरौ करभान्तमुपेयनुः । करभस्तौ समालोक्य तत्रैवान्तर्धिमागतम् ॥
नागपाशेन तौ बद्ध्वा पीडयामास दम्पती ॥७८
इति श्रुत्वा स कृष्णांशः करभं यक्षकिङ्कुरुत् । बद्ध्वा योगबलेनैव मोचयामास दम्पती ॥७९
भ्रातरौ तौ समागम्य नागपाशं तु चासिना । छित्वा मुमोद बलवान्कोटिस्वर्णं गृहीतवान् ॥
भूमिराजः प्रसन्नवात्मा देहलो मुद्रितोऽगमत् ॥८०

सूत छद्वाच

काश्मीरे न नृपश्चासीत्कैकयो नाम दिशुतः । इश पुत्राश्च तस्यैव कन्या च मदनावती ॥८१
कामः प्रकामः सङ्कुलामो निष्कामो निरपत्रपः । जयश्च विजयश्चैव जयन्तो जयवान्जयः ॥८२
स भूपो भूमिराजं च समाहृय ब्रह्मोद्भवीत् । पुत्रस्ते वै सरदनो मत्कन्यां प्राप्नुमर्हति ॥८३
गन्धर्वस्मुक्लो नाम मत्कन्यां च शुभाननाम् । ज्योत्स्नायां^१ निशि संहृत्य तथा सार्वं हि दीव्यत्ति ॥८४
पूर्णिमायां च सम्प्राप्तः स वै चित्ररथप्रियः । वैशाखस्यासिते एके चाष्टमी चाद्य षड्गळा ॥
वधं कुरु नृपश्चेष्ठ देहलो गन्तुमर्हति ॥८५
इति श्रुत्वा महीराजो लक्षसैन्यसमन्वितः । गृहीत्वा दम्पती शीघ्रं देहलीनगरं यथौ ॥८६
वैशाख्यां सुखजातायां सुक्लो नाम वीर्यवान् । गन्धर्वो दश साहस्रै रुरोध नगरं रुषा ॥८७

दयानिधान ये दोनों पुत्र करभ के पास पहुँच गये । किन्तु उस यक्ष ने उन्हें देखते ही अन्तर्हित होकर नागपाश से इन दोनों को बांधकर पुनः उन स्त्री-पुरुष को पीड़ित करना आरम्भ किया । इसे सुनकर उदयर्सिंह उस करभ के पास पहुँच और अपने योगबल द्वारा उसे बाँधकर उस दम्पती को दुख से मुक्त किया । पश्चात् भाई के पास पहुँचकर अपनी तलवार से उनके नागपाश को काट दिया । तदुपरांत पृथ्वीराज से कोटि सुवर्ण की मुद्रा का ग्रहण करते हुए प्रसन्नतापूर्वक वे लोग अपने घर चले गये और पृथ्वीराज ने भी हृषित होकर पुत्र, पुत्र-वधू और सेना समेत दिल्ली को प्रस्थान किया । ७८-८०।

सूत जी बोले—काश्मीर प्रदेश का कैकय नामक राजा था । उसके दश पुत्र तथा मदनावती नामक एक छोटी कन्या थी । काम, प्रकाम, संकाम, निष्काम, निरपत्रप, जय, विजय, जयन्त, जयवान् और जय क्रमशः यही नाम उन पुत्रों के बताये गये हैं । उस राजा ने पृथ्वीराज को बुलवाकर उनसे प्रार्थना की—कि आपके सरदन नामक पुत्र को मैं अपनी कन्या सौंप देना चाहता हूँ । किन्तु सुक्ल नामक गन्धर्व रात्रि के समय चन्द्रमा के पूर्ण प्रकाशित होने पर उस कल्याणमुखी मेरी कन्या का अपहरण करके उसके साथ क्रीड़ा करता है । चैत्र की पूर्णिमा के दिन वह गन्धर्व यहाँ आया था नृपश्चेष्ठ ! आज वैशाख कृष्ण पक्ष की मंगला अष्टमी है, मैं चाहता हूँ कि आप उसका वध करके ही दिल्ली प्रस्थान करने का विचार करें । इसे सुनकर पृथ्वीराज ने एक लाख सैनिकों द्वारा पुत्र-वधू को सुरक्षित रखते हुए दिल्ली की यात्रा की । वैशाख मास की पूर्णिमा के व्यतीत हो जाने पर उस सुक्ल नामक गन्धर्व ने क्रुद्ध होकर अपने दश सहस्र गन्धर्वों द्वारा दिल्ली नगर को चारों ओर से घेर लिया । उस समय नगर से किसी

१. मन्त्वर्थीयोच् । तद्वत्यां लक्षणा वा ।

नगराच्च बहिर्जाता ये शूरा मदविहृताः । हत्वा तान्सुकलः शोष्रं राज्ञे दुःखं चक्षार ह ॥८८
 भयभीतो महीराजो ध्यात्वा सर्वमयीं शिवाम् । मुष्वाप निशि शुद्धात्मा तुष्टाभूज्जगदम्बिका ॥८९
 कृष्णांशादीन्बोधयित्वा तैश्च सार्थं समागमत् । लेषां चासीन्महृद्युदं गन्धर्वेण तदाहितिकम् ॥९०
 बलखानिश्च बलवाच्छतगन्धर्वमुत्तमम् । त्रिदिनान्ते च संहृत्य सुखखानिस्तथैव च ॥९१
 भुक्तश्च तदा कुद्धो गन्धर्वीं च ससर्ज ह । बहुधा ते हि गन्धर्वास्त्वैश्च सार्द्धं समारुद्धन् ॥९२
 भवभीतास्तदा स्वें रामांशं शरणं ययुः । आह्लादश्च प्रसन्नात्मा शारदां सर्वमङ्गलाम् ॥९३
 दिवासूक्तेन तुष्टाव तदा प्रादुरभूच्छिवा । गन्धर्वान्मोहित्वाशु द्रावयामास शारदा ॥९४
 पराजिते च गन्धर्वे कृष्णांशो जनमोहनः । नहीराजमुपागम्य कोटिर्वर्णं गृहीतवान् ॥९५
 घोडशाब्दे च कृष्णांशे सम्प्राप्ते देविपूजके । मार्गसासं तु सम्प्राप्ते मर्दनश्च विवाहितः ॥९६

सूत उवाच

पुण्ड्रदेशे महाराजो नागवर्मा महाबलः । बभूव तक्षकपरो धर्मवाच्जगतीतले ॥९७
 पत्नी नागवती तस्य तक्षकस्य सुता शुभा । पितुः शापेन सञ्जाता कलिङ्गाधिपते: सुता ॥९८
 दशैव तनयाश्चासन्कन्या तस्य शुभानना । सुवेला नाम विव्याता रूपयौवनशालिनी ॥९९

भी मदान्ध योद्धा के बाहर होने पर उसे वह सुकल गन्धर्व भक्षण कर लेता था । इस प्रकार उसने अल्प-काल में ही पृथ्वीराज को अत्यन्त कष्ट प्रदान किया । शुद्धात्मा पृथ्वीराज ने भी उससे भयभीत होकर सर्वमयी भगवती शिवा के ध्यान पूर्वक ही शयन किया । उनके ध्यान करने से अत्यन्त प्रसन्न होकर जगदम्बिका ने उदयसिंह आदि को इसका ज्ञान कराती हुई उन्हें साथ ले वहाँ को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उन लोगों का उस गन्धर्व के साथ दिन भर घोर संग्राम होता रहा । ८१-९०। उस युद्ध में बलवान् बलखानि (मलखान) ने तीन दिन के भीतर सौ गन्धर्वों का हनन किया और सुखखानि ने भी वैसा ही किया । पश्चात् सुकल गन्धर्व ने अपनी गन्धर्वी माया को रचना की, जिसमें उस माया-जाल के सैनिकों द्वारा उन गन्धर्वों ने महोबा के वीरों को धेर लिया । उस समय वे वीरगण उससे भयभीत होकर आल्हा की शरण में पहुँचे । प्रसन्नचित्त आह्लाद (आल्हा) ने उसी समय देवी सूक्त द्वारा सर्वमंगला शारदा जी की आराधना की जिससे प्रसन्न होकर भगवती ने उन्हें दर्शन दिया और गन्धर्वों को मोहितकर शारदा जी ने उन्हें वहाँ से भागने के लिए विवश किया । गन्धर्वों के पराजित होने पर सर्वमोहन उदयसिंह ने पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे एक कोटि सुवर्ण मुद्रा की प्राप्ति की । देवी जी के उपासक उन उदयसिंह की सोलहवें वर्ष की आयु में मार्गशीर्ष (अगहन) के मास में पृथ्वीराज के पुत्र मर्दन का पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न हुआ, जिसकी कथा इस प्रकार है—९१-९६

सूत जी बोले—पुण्ड्रदेश के अधीश्वर महाबली नागवर्मा महाराज इस जगतीतल में परम धार्मिक एवं तक्षक की उपासना में सदैव संलग्न रहते थे । उनकी पत्नी का नाम नागवती था, जो तक्षक की पुत्री थी, जिसने पिता के शाप द्वारा कलिंगाधीश्वर के यहाँ उनकी पुत्री के रूप में जन्म ग्रहण किया था । उनके दशपुत्र तथा सुवेला नाम की एक कल्याणमुखी एवं रूपयौवन सम्पन्न एक कन्या थी । उस राजा ने-

पुरोहितं समाधूय महीराजाय प्रैषयत् । स गत्वा कथयित्वाग्रे मर्दनो वरितो नया ॥१००
 महीराजस्तु तच्छृत्वा त्रिलक्षदलसंयुतः । मङ्गलं कारयामास गत्वा नागपुरे शुभे ॥१०१
 सुवेला पितरं प्राह देहि मे नागभूषणम् । विवाहं हि करिष्यामि नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥१०२
 इति शुच्वा नागवर्मा महीराजान्तमाययौ । सुवेलाया अभिप्रायं वर्णयामास विस्तरात् ॥१०३
 इत्युक्तः स भगीरतजो विस्मितोभूत्युद्देखनः । प्रेषयामास वै पत्रं यत्राह्लादादयः स्थिताः ॥१०४
 इति ज्ञात्वा तदाह्लादः शूरपञ्चशतावृतः । कृष्णशवत्सज्जस्ता द्विदिनान्ते च समागतम् ॥१०५
 शतयोजनगामिन्यो व्रजिन्यश्च द्वियामके । सहस्रयोजनं वीर्यं तासां चैव दिने निशि ॥१०६
 कलांशादुद्ध्रवा अभ्या वाजिनां च हरे: स्त्यम् । रत्नाश्वस्य कलांशश्च कपोतो हरिणीभवः ॥१०७
 गायत्रो योभवद्वाजी कालचक्रप्रवर्तकः । तत्कलांशात्समुद्भूतो रविदत्तः पपीहकः ॥
 हरिणी नाम तच्छक्तिः कलांशादभूमिमागता ॥१०८
 सुखखानिः पपीहस्थो बलखानिः कपोतगः । आह्लादश्च करालस्थो बिन्दुलस्थो हरे: कला ॥१०९
 गत्वा ते तु महीराजं नत्वा तुङ्गात्सनां ययुः । प्रसन्नः स महीराजो वचनं पाह नम्रधीः ॥११०
 मम पुत्राश्र युष्माभिस्त्रयः शूरा विवाहिताः । तथैव मर्दनं वीरं समुद्वाह्य सुखी भव ॥१११
 इति श्रुत्वा स आह्लादो गत्वा भूतलमुत्तमम् । रसातलं च विस्थातं नागिनीं प्राह निर्भयः ॥११२

अपने पुरोहित द्वारा पृथ्वीराज से कहला दिया कि मैंने मर्दन नामक आपके पुत्र का वरण कर लिया है । उसे सुनकर पृथ्वीराज ने अपने तीन लाख सैनिकों समेत उस नागपुर में जाकर मांगलिक विधान सुरम्पन किया । उस समय सुवेला ने अपने पिता से कहा—आप नागभूषण मुझे प्रदान करने की कृपा कीजिये, उसके मिलने पर ही मैं विवाह करूँगी, अन्यथा प्राणपरित्याग कर दूँगी । इसे सुनकर नागवर्मा ने पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे सुवेला के समस्त अभिप्राय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया । इसे सुनकर पृथ्वीराज को महान् आश्चर्य एवं उसके साथ अत्यन्त दुःख का भी अनुभव हुआ । पश्चात् उन्होंने आह्लाद (आल्हा) आदि के पास पत्र भेजकर प्रार्थना की । उसे स्वीकार कर आह्लाद (आल्हा) ने उदयर्सिह तथा बलखानि (मलखान) और सुखखानि समेत एक दिन के भीतर वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया । उन लोगों ने उन घोड़ों पर बैठकर यात्रा की, जो दोपहर में सौ योजन का मार्ग समाप्त करते थे । इस प्रकार उनके पराक्रमी घोड़ों ने सहस्र योजन के उस मार्ग को उस दिन-रात में समाप्तकर वहाँ पहुँचने की सूचना दी । उन घोड़ों का जन्म इन्द्र के घोड़ों द्वारा हुआ है—इलाश्व की अंशकला से हरिणी द्वारा कपोत, कालचक्र के आवर्तक उस गायत्र नामक अश्व के अंश से उत्पन्न एवं सूर्यप्रदत्त पपीहा, तथा हरिणी की शक्ति-अंश से उस हरिणी का जन्म होना बताया गया है । इस प्रकार पपीहा नामक अश्व पर सुखखानि, कपोत पर बलखानि (मलखान), कराल पर आह्लाद (आल्हा) और वेंदुल पर उदयर्सिह सवार होकर जा रहे थे । वहाँ पहुँचकर इन लोगों ने पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उन्हें सादर नमस्कार किया । उन्हें देखकर प्रसन्नता प्रकट करते हुए पृथ्वीराज ने सादर विनम्र होकर कहा—जिस प्रकार आप लोगों ने मेरे तीन पुत्रों के विवाह संरक्षकर कराये हैं, उसी भाँति वीर मर्दन को भी विवाहित करके सुख का अनुभव करें । १७-११। इसे सुनकर आल्हा (आह्लाद) ने उस प्रस्थात रसातललोक में जाकर

मुद्दो हि तव भर्ता च पुण्डरीकः शुभाननः । बोधयाशु महाराज्ञि नागानां नो दयां कुरु ॥११३
 इत्युक्ता साह तं वीरं पुण्डरीकश्च मत्पतिः । रुषाविष्टश्च बलवान्दाह्येच्च वपुस्तव ॥११४
 इति श्रुत्वा विहस्याह तव भर्तुर्न नो भयस् । इत्येदं वचनं कृत्वा पद्मचां पुच्छमताडयत् ॥११५
 प्रबुद्धश्च तदा राजा नागानां च महाबलः । ज्वलामालां स्वदेहाच्च जनयामास वीर्यवान् ॥११६
 दृष्ट्वा तद्विषमुज्ज्वलं स ध्यात्वा सर्वमङ्गलाम् । शमयामास बलवान्ते वीपूजनतत्परः ॥११७
 पुण्डरीकः प्रसन्नत्मा नागभूषणमुत्तमम् । आह्लादाय ददौ शीघ्रं सर्वशृङ्गारसंयुतम् ॥११८
 अह्लादस्तु हयाण्डो महीराजाय दत्तवान् । विवाहं कारयामास वैवाहिकविधानतः ॥
 कोटिस्वर्णं नृपात्प्राप्तं गृहीत्वा शीघ्रमाययौ ॥११९
 हयविद्यासनारूढास्ते हया गेहमागताः । ज्ञेयाः पञ्चशतं सर्वे सशूरा गुहमाययुः ॥१२०

सूत उवाच

मद्रदेशेषु यश्चासीन्मद्रकेशो महाबलः । पञ्चाळं दूजयामास स्वर्गदैद्यौ सुरोत्तमौ ॥१२१
 तयोश्च वरदानेन दश पुत्रा बभूविरे । सुता कान्तिमती जाता रूपयौवनशालिनी ॥१२२
 स महीराजमाहृय व्रिक्षबलसंपुत्तम् । ददौ कन्यां विधानेन मद्रेशः सूर्यदर्मणे ॥१२३
 नवोदा तु तदा पत्नीं सूर्यवर्मा गृहीत्वान् । स्वगेहाय ययौ शीघ्रं महीराजो बलैस्सह ॥१२४

निर्भय होकर नागिनी से कहा—महारानी ! तुम्हारे पति महोदय पुण्डरीक जी शयन कर रहे हैं, मेरे आगमन की उन्हें शीघ्र सूचना दो, इस समय नागों पर दया मत करो । इसे सुनकर उसने कहा—मेरे पति पुण्डरीक जागने पर अपने वीरों समेत कुद्ध होकर तुम्हारे शरीर को दग्ध कर देंगे । उन्होने हँसते हुए कहा—मुझे तुम्हारे पति का भय नहीं है । ऐसा कहते हुए उन्होने स्वयं अपने चरणों द्वारा उनकी पूँछ में प्रहार किया । नागों के महाबली राजा उसी समय नाग बनकर अपनी शरीर से विष-ज्वलाओं की मालाएँ उत्पन्न करने लगे । उनके विष की उस ज्वला को देखकर भगवती सर्वमंगला के ध्यान पूर्वक उस बलवान् एवं देवी उपासक ने उसे शान्त कर दिया । उस समय पुण्डरीक ने प्रसन्न होकर समस्त शृङ्गार समेत वह नागभूषण आल्हा को अंपित किया । पश्चात् घोड़े पर दैठकर आल्हा ने पृथ्वीराज के पास पहुँच- कर वह शृङ्गार-भूषण उन्हें सौंप दिया । तदुपरात सविधान उनके विवाह संस्कार को सुसम्पन्न कराकर पृथ्वीराज से कोटिस्वर्ण की प्राप्तिपूर्वक अपने घर चले आये । अश्वविद्या में निपुण वे घोड़े भी शीघ्रातिशीघ्र उन्हें घर पहुँचा दिया और उनके साथ के पाँच सौ शूरर्वार भी अपने घर आ गये । ११२-१२०

सूत जी बोले—मद्रदेश में महाबली मद्रकेश नामक राजा राज्य करता था । उसने पाँच वर्ष तक देवथ्रेष्ठ अश्विनीकुमार की उपासना की । उन्होने उनकी आराधना से प्रसन्न होकर राजा को दण्डमुत्र और एक कन्धा प्रदान की जिसका नाम कान्तिमती था उस कन्धा के रूप यौवन सम्पन्न होने पर मुद्राधीश्वर ने तीन लाख सैनिक समेत राजा पृथ्वीराज को बुलाकर उनके पुत्र सूर्यवर्मा के साथ अपनी पुत्री का पाणिग्रहण सुसम्पन्न किया । अपनी नवोदा नवविवाहिता पत्नी समेत सूर्यवर्मा ने पृथ्वीराज के

कर्बुरो नाम मायावी विभीषणसुतो बली । राक्षसस्तत्र सम्प्राप्तो दृष्टा कान्तिमतीं शुभाम् ॥१२५
 मद्रकेशस्य तनयां दिव्यशोभासमन्विताम् । जहारपश्यतां तेषां सद्गादिगिरिमाययौ ॥१२६
 महीराजस्तदा दुःखी दिलाप भृशं मुहुः । देहलीगेहमागम्य दूतमाहूय सत्वरम् ॥१२७
 कृष्णांशं प्रेषथामास स गत्वा समवर्णयत् । ज्ञात्वा ते तु हयारुद्धः शूराः पञ्चशतःवृताः ॥१२८
 तद्वाद्विगिरिमागम्य कृष्णांशः कर्वुरं प्रति । निर्भयो वज्रं प्राह शृणु राक्षससत्तम् ॥१२९
 विभीषणो भक्तराजस्तस्य त्वं दग्धितः सुतः । तस्मात्त्वया न कर्तव्यं यापं वंश विनाशनम् ॥
 रावणेन पुरा जीता संहृतां विदितं तत्र ॥१३०
 इति श्रुत्वा स होक्ताच पुरेरं दग्धिता प्रिया । मम गन्धर्वतनया मुनिशापान्महीं गता ॥१३१
 अतेऽहं तद्वियोगेन त्यक्तदा लड्डां महापुरोम् । मद्रकेशमहं प्राप्य मद्रकेशभयादहम् ॥
 न जहार प्रियां रम्यां तत्रोषित्वा दिनं बहु ॥१३२
 अद्य मे वशगा साभूज्ञास्ता कान्तिमतीं शुभा । जित्वा मां च गृहाणाशु समर्थाश्च वयं सदा ॥१३३
 इति श्रुत्वा स कृष्णांशः खड्गयुद्धमचीकरत् । सप्तरात्रेण तं जित्वा लब्ध्वा कान्तिमतीं शुभाम् ॥
 तदा च देहलीं प्राप्य महीराजान्तमाययौ ॥१३४
 कोटिस्वर्णं ददौ राजा कृष्णांशाय महात्मने । स वीरो बन्धुभिः सार्धं प्रमदावनमाययौ ॥१३५

माथ अपने नगर को प्रस्थान किया । उसी बीच कर्वुर नामक मायावी राक्षस ने जिसे वली एवं विभीषण का पुत्र बताया गया है, वहाँ आकर उस कल्याणमुखी कान्तिमती को देखा । पश्चात् उसने उन लोगों के देखते ही दिव्य सौनर्यं पूर्णं उस मद्रकेण की पुत्री का अपहरणकर सहयाद्रि नामक पर्वत को प्रस्थान किया । उस समय दुःखी होकर पृथ्वीराज बार-बार विलाप कर रहे थे । किसी प्रकार से दिल्ली आकर उन्होंने अपने एक दूत को उदयसिंह के पास भेजा । दूत ने वहाँ जाकर उदयसिंह आदि लोगों से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । पश्चात् उन लोगों ने अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर पाँच सौ शूर सामन्तों समेत सहस्रादिगिरि की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर उदयसिंह ने निर्भीक होकर उस कर्वुर नामक राक्षस से कहा—श्रेष्ठ राक्षस ! मेरी एक बात सुनो ! भक्तराज विभीषण के तुम प्रिय पुत्र हो । इसीलिए तुम्हें इस प्रकार के वंश-विनाशी पाप न करना चाहिए, क्योंकि पहले समय में रावण ने जानकी जी का अपहरण किया था, जो तुमसे छिपा नहीं है । इसे सुनकर उसने कहा—यह मेरी पहले की व्रेयसी पत्नी है, जो गन्धर्व कुल में उत्पन्न हुई थी । इस समय मुनि के शापवश इस भूतल में इसने जन्म ग्रहण किया है । इसीलिए मैं इसके वियोग व्यथा से पीड़ित होने पर लंका त्यागकर मद्रदेश में ही रह रहा था किन्तु वहाँ बहुत दिन से रहते हुए भी मैं राजा मद्रकेश के भयवश इस अपनी प्रेयसी का अपहरण नहीं कर सका । आज बहुत दिनों पर यह कान्तिमती मुझे मिली है । यदि इसे प्राप्त करने की आपकी इच्छा ही है, तो मुझे जीतकर ले सकते हैं, और हम लोग तो सदैव समर्थ हैं ही । इतना सुनकर उदयसिंह ने उसके साथ खड्ग युद्ध आरम्भ किया । सात दिन के पश्चात् उन्होंने उसे पराजितकर उस शुभ कान्तिमती की प्राप्ति पूर्वक दिल्ली आकर पृथ्वीराज को उसे सौंप दिया । उस समय प्रसन्न होकर राजा ने एक कोटि सुवर्ण उस वीर उदयसिंह को अर्पित किया । अनन्तर उस वीर ने अपने भाइयों समेत प्रमदात्रन को प्रस्थान किया । १२१-१३५

सूत उचाच

पद्मनाभ्यपुरे राजा नाम्ना पूर्णभिलो बली । वसूनाराधयामास पञ्चवर्षान्तरे मुदा ॥
 तदा प्रसन्नास्ते देवा ददुस्तस्मै वरं शुभम् ॥ १३६
 वरदानाच्च सञ्जाता दश पुत्रा महीपतेः । विद्युन्माला सुता जाता रूपयौजनशालिनी ॥ १३७
 तद्विवाहर्थमाहूय नहीरङ्ग महाबलम् । सप्तलक्षबलैः सार्द्धं तत्पुत्राय सुतां ददौ ॥ १३८
 महीराजसुतो भीमं पत्नीं प्राप्य मनोरमाम् । नेहभागम्य तैः सार्थं देहलीं हर्षमाप्तवान् ॥ १३९
 तदा पैशाच्चदेशस्थः सहोदश्च महीपतिः । म्लेच्छैश्च दशसाहैर्विद्युन्मालार्थमुद्यतः ॥ १४०
 बलिदैत्याज्ञया प्राप्तः कुरुक्षेत्रं शुभस्थलम् । भित्त्वा मूर्तीं सुरणां गोरक्षस्तीर्थजलं कृतम् ॥ १४१
 पत्रमालित्य बलवान्महीराजाय धर्मिणे । स्वदूतः प्रेषितस्तेन श्रुत्वा भूपोऽब्रवीदिदम् ॥ १४२
 भवान्म्लेच्छपती राजा विद्युन्मालार्थमुद्यतः । मां शब्दवेधिनं विद्धि चौर्यदेशधुरन्धरम् ॥ १४३
 इत्युक्त्वा स त्रिलक्षैश्च कुरुक्षेत्रमुपागतः । तयोश्चासीन्महद्युद्धमहोरात्रं भयानकम् ॥ १४४
 निशीथे सप्तनुप्राप्ते ज्येष्ठे मासि तस्मेमये । पातालाद्विलिरागत्य दैत्यायुतरमन्वितः ॥ १४५
 नृपसैन्यं जघानाशु भक्षयित्वा युनः युनः । भयभीतस्तदा राजा शारदां शरणं ययौ ॥ १४६
 एतस्मिन्नन्तरे देवाः कृष्णांशाद्या महाबलाः । क्षणमात्रेण सम्प्राप्तारत्तदा पदचरा मुने ॥ १४७

सूत जी बोले—पटना नगर का अधीश्वर वली पूर्णमल था, जिसने प्रसन्नतापूर्ण रहकर पाँच वर्ष तक अनवरत वशुओं की आराधना की। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उन देवों ने उन्हें शुभ वरदान प्रदान किया, जिसके द्वारा राजा के दण पुत्र और विद्वन्माला नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। कन्या के रूप- यौवन सम्पन्न होने पर राजा ने पृथ्वीराज को अपने यहाँ सादर निमंत्रित किया। सात लाख सैनिकों समेत उस पुत्र के साथ पृथ्वीराज के वहाँ आने पर उन्होंने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण संस्कार उनके पुत्र के साथ सुसम्पन्न किया। तत्पश्चात् पृथ्वीराज के पुत्र भीमसेन ने उस मनोरम पत्नी की प्राप्ति पूर्वक उन लोगों समेत दिल्ली आकर अपने रंगमहल में हर्षपूर्ण दिनों को व्यतीत करना आरम्भ किया। उसी बीच पिशाच देश का निवासी राजा सहोद अपने दश सहस्र म्लेच्छ सैनिकों द्वारा विद्वन्माला की प्राप्ति के लिए तैयारी करने लगा। उसने बलि दैत्य की आज्ञा प्राप्तकर उस शुभस्थल कुरुक्षेत्र में पहुँचकर डेरा डाल दिया, जहाँ उसने सर्वप्रथम देवताओं की मूर्तियों को तोड़-फोड़ कर गौओं के रक्तों से तीर्थजल की अभिवृद्धि की थी। उस बलवान् ने पत्र लिखकर अपने दूत द्वारा उसे धार्मिक राजा पृथ्वीराज के पास भेज दिया। उसे सुनकर उसके प्रत्युत्तर में राजा ने यह कहा—आप म्लेच्छाधीश्वर होकर विद्वन्मालार्थ यहाँ आये हुए हैं, तो मुझे भी चौर्यदेश का धुरन्धर शब्दवेधी जान लेना। इतना कहकर वे अपनी तीन लाख सेना समेत उस कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँच गये। वहाँ उन दोनों का भीषण संग्राम आरम्भ हुआ जो दिन-रात चलता रहा। ज्येष्ठ मास की उस अंधेरी रात्रि की आधीरात के समय बलि दैत्य ने पाताल से आकर अपने दशसहस्र सैनिकों समेत पृथ्वीराज के सैनिकों को मार-मार कर भक्षण करना आरम्भ किया। उस समय भयभीत होकर राजा शारदा की शरण में पहुँचे। उसी बीच उदयरसिंह आदि दीरण भी वहाँ पहुँच गये। मुने! भगवती की कृपावश वे सब वहाँ क्षणमात्र में पहुँच गये थे। एक सहस्र

हत्या दैत्यसहस्राणि बलिदैत्यमुपायपुः । देशजौ वत्सजौ वीरौ देवसिंहस्तथैव च ॥
स्वखड्गैस्तर्पयामास दैत्यराजं महाबलम् ॥१४८
तदा प्रसन्नो बलवान्दैत्यराजो बलिः स्वयम् । वरं वृणुत तानास् ते तु श्रुत्वान्ब्रुवन्वचः ॥१४९
अर्थदेशं च ते दैत्या नागच्छन्तु तया लह । म्लेच्छदेशां सदा प्राप्य भक्षणं म्लेच्छर्थसर्गान् ॥१५०
इति श्रुत्वा वचो घोरं विप्रियं च बलिः स्वयम् : कृष्णांशमुदयं गत्वा तुष्टाव परया गिरा ॥१५१
तदा प्रसन्नः कृष्णांशो वचनं प्राह निर्भयः । यावदहं भूमिवासी तावत्त्वं गेहमावस ॥
तत्पश्चाद्भूमिनागत्य यथःयोग्यं कुरुत्व भोः ॥१५२
इति तद्वचनं श्रुत्वा सहोदो नीलसंयुतः । पैशाचं देशनगशत्पुनः प्राप्तो रसातलम् ॥१५३
भूमिराजः प्रसन्नात्मा कोटिस्वर्णं ददौ तदा । गजारुद्धाश्र ते पञ्च संयुश्च महावतीम् ॥१५४

सूत उवाच

वर्द्धनो भूमिराजस्य सुतः सर्वेभ्य उत्तमः । पञ्चमाब्दवया भूत्वा श्रीदं तुष्टाव भक्तिः ॥
बर्षनितरे द भगवान्दौ सर्वं शुभं निधिम् ॥१५५
तत्सर्वनिधिभावेन नृपकोशः समन्ततः । पूर्णो बभूव कनकैः राजराजप्रभावतः ॥१५६
किन्नरी नाम या कन्या मङ्कणस्य प्रकीर्तिता । कुबेरश्च ददौ तस्मै वर्द्धनाय प्रियाय च ॥
इति ते कथितं सर्वं विवाहचरितं मुने ॥१५७

दैत्यों के निधन करने के उपरांत ये वलि के सम्मुख पहुँचकर उनके ऊपर वत्सराज के दोनों पुत्रों और देव-सिंह ने अपने-अपने खड़ग द्वारा प्रदार करना आरम्भ किया । उनके युद्ध कौशल से प्रसन्न होकर दैत्य-राज बलि ने इन लोगों से अभिलिपित वर की याचना करने के लिए दहा । उसे सुनकर इन लोगों ने कहा—आप प्रसन्न हैं, तो अपने दैत्यों समेत आप इस आर्यप्रदेश में कभी भी न आने का वचन दें किन्तु म्लेच्छ देश में ही जाकर उन्हीं म्लेच्छों का ही भक्षण करते रहें । इस घोर एवं अप्रिय वाणी को सुनकर राजा बलि ने स्वयं उदयर्सिह के पास जाकर उनके महत्व का स्मरण करते हुए विनम्र प्रार्थना की । पश्चात् प्रसन्न होकर उदयर्सिह ने कहा—जब तक मैं इस लोक में रह रहा हूँ, तब तक तुम अपने घर में ही निवास करो । अनन्तर इस लोक में आकर यथायोग्य व्यवहार करने की चेष्टा करना । इसे सुनकर सहोदधी नील समेत पिशाच देश जाकर रसातल चला गया और पृथ्वीराज ने भी प्रसन्नतापूर्ण होकर इन लोगों को एक कोटि सुवर्ण मुद्रा प्रदान किया । पश्चात् गजराज पर बैठकर वे पाँचों अपनी महावती (महोबा) नगरी पहुँच गये । १३६-१५४

सूत जी बोले—पृथ्वीराज के वर्द्धन नामक पुत्र ने जो सभी पुत्रों में श्रेष्ठ थे, पाँच वर्ष की अवस्था में ही लक्ष्मीपति की आराधना आरम्भ की थी । उनकी उस निश्चल भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने वर्ष के भीतर ही सम्पूर्ण निधि उन्हें सौंप दी, जिससे गन्धर्वराज के प्रभाव से पृथ्वीराज का कोष सम्पूर्ण निधि से परिपूर्ण हो गया । पश्चात् हर्षमग्न होकर कुबेर ने मंकण की किन्नरी नामक कन्या भी उस पुत्र को सौंप दी । इस प्रकार मुने ! पृथ्वीराज के पुत्रों के विवाह चरित का वर्णन कर दिया गया । तदुपरांत

धुन्धुकारो महाशूरो लक्षसैन्यसमन्वितः । ब्रह्मानन्दमुपागम्य युद्धार्थयि तमाह्यत् ॥१५८
एकत्रिशत्त्वके प्राप्ते कृष्णांशे बलवत्तरे । एकाकी मलनापुत्रो दृष्ट्वा सैन्यमुपस्थितम् ॥
ब्रह्मास्त्रं चापआधाय चार्धसैन्यमदाह्यत् ॥ १५९
पञ्चायुताश्र ते शूरा भयभीता दिशो गताः । धुन्धुकारो रणं त्यक्त्वा भूमिराजमुपागमत् ॥१६०
महीराजस्तदा दुःखी भयभीतः समन्ततः । भहीपतिं समाह्य चन्द्रभृतुं च सोऽन्नवीत् ॥१६१
कथं जयो मे भविता तत्सर्वं मन्त्रयाशु वै । महीपतिस्तदा प्राह शृणु भूविशरोमणे ॥१६२
कृत्वा नारीमयं वेषं चामुण्डं बलशालिनम् । वेलां मत्ता च तदोलां ब्रह्मानन्दाय चार्दद ॥१६३
चत्वारस्ते सुताः शूरा धुन्धुकारेण संयुताः । छद्मना च स्वशस्त्रैश्च धातयेयुस्तमूर्जिताः ॥१६४
इति श्रुत्वा महीराजो ब्रह्मानन्दाय हर्षितः । तथा कृत्वा ददौ दोलां पञ्चशूरैश्च पालिताम् ॥१६५
सायद्वाले तु सम्प्राप्ते भागशुक्लाष्टमीदिने । वेलावंशश्च चामुण्डो ब्रह्मानन्दमुपाययो ॥१६६
छद्मना च त्रिशूलं च बलात्कृत्वा रिप्त्वदरे । शूरोद बलवाञ्छूरस्ते तु शूराः समगताः ॥१६७
तारको हृदि तं बाणैः सूर्यवर्मा च तोमरैः । भीमश्च गदया चात्र वर्द्धनश्च तदासिना ॥
धुन्धुकारश्च भल्लेन जघान रिपुमूर्द्धनि ॥ १६८
मूर्च्छितः पतितो भूमौ ब्रह्मानन्दो महाबलः । महद्वरणयुतस्तत्र स्वखड्गं च समाददत् ॥१६९
भीमस्य च शिरः कायाद्वर्द्धनस्य तथैव च । छित्त्वा तथैव भूमध्ये सूर्यवर्माणमागतः ॥१७०

महावली धुन्धुकार (धांधु) ने अपने एक लाख सैनिकों समेत वहाँ आकर युद्ध के लिए ब्रह्मानन्द को ललकारा । उस समय बलवान् जदयसिंह की इकतीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी । उस सेना को देखकर मलनापुत्र ब्रह्मानन्द ने अकेले ही अपने ब्रह्मास्त्र वाण द्वारा उनकी आधी सेना दग्ध कर दिया । शेष पचास सहस्र सैनिक भयभीत होकर इधर-उधर भाग गये । अनन्तर धुन्धुकार (धांधु) भी रणस्थल छोड़कर पृथ्वीराज के पास चला गया । उसे सुनकर राजा पृथ्वीराज ने दुःखी एवं भयभीत होकर महीपति (माहिल) और चन्द्रभृत को बुलाकर उनसे कहा—‘किस प्रकार मेरी विजय होगी’ इसका शीघ्रातिशीघ्र विचार कर निश्चय कीजिये । उस समय महीपति (माहिल) ने कहा—भूप शिरोमणे ! मैं अपनी सम्मति प्रदान कर रहा हूँ, सुनने की कृपा कीजिये । बलशाली चामुण्ड (चौढ़ा) को स्त्री का वेष बनाकर उसे वेला मानकर उसका डोला ब्रह्मानन्द को सौंप दिया जाय और धुन्धुकार (धांधु) के साथ आपके चारों पुत्र भी वहाँ उपस्थित रहकर कपट करते हुए अपने-अपने अस्त्रों द्वारा उन पर आधात करें । इसे सुनकर हर्षित होकर पृथ्वीराज ने माधशुक्लाष्टमी के सायंकाल के समय उसी भाँति बनाकर पाँचों शूरों से सुरक्षित उस डोले को ब्रह्मानन्द के पास भेजवा दिया । वेलारूपधारी चामुण्ड (चौढ़ा) ने ब्रह्मानन्द के पास पहुँचकर कपट करके बलात् उनकी छाती में त्रिशूल का प्रहार किया, जिससे व्यथित होकर उस बलवान् ने रुदन करना आरम्भ किया । उसी बीच उन पाँचों शूरों ने भी वहाँ पहुँचकर तारक (ताहर) ने उनके हृदय में वाण, सूर्यवर्मा ने तोमर, भीम ने गदा, बर्द्धन ने तलवार और धुन्धुकार (धांधु) ने भाले का प्रहार शत्रु के शिर पर साथ ही साथ किया । १५५-१६८। उन आधातों से मूर्च्छित होकर महाबली ब्रह्मानन्द पृथ्वी पर गिर पड़े, किन्तु उनकी शारीर में उतने बड़े ब्रण के हो जाने पर भी वहाँ उन्होंने अपने खड़ग प्रहणकर भीम और वर्द्धन के शिर को उनके धड़ से छिन्न-भिन्न करते हुए सूर्यवर्मा के पास पहुँचकर

तारको धुन्धुकरश्च चामुण्डश्च तथैव च । ब्रह्मानन्दं तदा त्यक्त्वा महीराजान्तमाययौ ॥१७१
 हतेषु तेषु पुत्रेषु महीराजो भयातुरः । वेलापार्घमुपागम्य रुरोद बहुदुःखितः ॥१७२
 इति श्रुत्वा तदा वेला दोलामाल्हा सत्वरम् । ब्रह्मानन्दं ययौ शीघ्रं मूर्च्छितं तं ददर्श ह ॥१७३
 कनिष्ठाद्वृतभावेन वेलाया बलवांस्तदा । उत्थाय रुदतीं नारीं ददर्श रुचिरान्विताम् ॥१७४
 का त्वं कस्य सुता रम्या सङ्ग्रामे मासुपस्थिता । जलं देहि महामुञ्च्रूर्वचनं कुरु सुप्रियम् ॥१७५
 इति श्रुत्वा तदा वेला जलं दत्त्वा शुचान्विता । वचनं प्राह वै रात्रौ शृणु त्वं मलनामुत ॥१७६
 वेला नाम मझीभर्तुः सुनाहं त्वामुपस्थिता । प्रत्यतिश्र भवान्धीरश्छद्वना वज्ज्वकैर्हतः ॥
 जीवनं कुरु राजेन्द्र भुद्भू भोगान्मयः सह ॥१७७
 इत्युक्तः स दु तामाह कलिकाले समागते । जीवनान्मरणं श्रेष्ठं तस्मान्महाचनं कुरु ॥१७८
 हरिनामरमाल्हा मया सार्द्धं शुभानने । गत्वा तीर्थानि रम्याणि सन्त्यजामि कलेयरम् ॥१७९
 इत्युक्त्वा तौ समाल्हृष्टे पूर्वे च कपिलान्तिकम् । गत्वा स्नात्वा च विधिवत्तोऽप्ये जग्मतुर्मुदा ॥१८०
 पृथक्पृथक्पृथक्ताथानि स्नात्वा दत्त्वा च जग्मतुः । दक्षिणे सेतुबन्धान्ते पश्चिमे द्वारिकामनु ॥१८१
 उत्तरे बद्रीस्थाने स्नात्वा तीर्थानि जग्मतुः । गन्धमादनमागत्य ब्रह्मानन्दो महाबलः ॥१८२

उन्हें भी धराशायी कर दिया । उस समय तारक (ताहर) धुन्धुकार (धांधु) और चामुण्ड (चौडा) ब्रह्मानन्द को छोड़कर पृथ्वीराज के पास चले गये । तीनों पुत्रों के हनन होने पर भयभीत होकर पृथ्वीराज ने वेला के पास पहुँच अत्यन्त काशणिक रुदन किया । इसे सुनकर उसी समय वेला ने डोला पर बैठकर अतिशीघ्र ब्रह्मानन्द के पास पहुँचकर उन्हें उसी मूर्च्छित अवस्था में देखा । पश्चात् वह मृतक अपने छोटे भाइयों को उठाकर रुदन करने लगी । उस समय ब्रह्मानन्द की आँख खुल गई, रुदन करती हुई उस सुन्दरी को देखकर उससे उन्होंने पूँछा इस युद्ध में तुम मेरे पास आई हो, तो बताओ तुम किसकी पुत्री एवं किसकी प्रिया हो ! महामुञ्च ! यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो, तो मुझे जलपिलाने की कृपा करो । उस सदाचारिणी वेला ने उन्हें उसी समय जलपान कराकर उसी रात्रि उनसे कहा—मलना-पुत्र ! मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ, उसे सुनने की कृपा कीजिये । मैं पृथ्वीराज की वेला नाम की कन्या हूँ, आप मेरे वीर पति हैं, इसीलिए मैं आपके पास आई हूँ । राजेन्द्र ! यद्यपि उन वंचकों ने कपथपूर्ण आधात करके आपका हनन कर दिया है, तथापि मेरी प्रार्थना है कि आप अपना जीवन सुरक्षित कर मेरे साथ अनेक भाँति के भोगों के उपभोग करने की कृपा करें । इसे सुनकर उन्होंने उससे कहा—इस कलि काल के समय में जीवित रहने से मरना ही श्रेष्ठ है, इसलिए मेरी बात स्वीकार करो—शुभानने ! मेरे साथ हरिनागर पर बैठकर चलो मैं तीर्थों में पहुँच अपने शरीर का त्याग करना चाहता हूँ । १६९-१७१। इतना कहकर उन दोनोंने उसी घोड़े पर बैठकर सर्वप्रथम पूर्व दिशा में स्थित कपिलमुनि के आश्रम (गंगा सागर) में पहुँचकर सविधान स्नान-दान दिया । पश्चात् प्रसन्न होकर वे लोग उसके आगे भी पहुँचे । सभी तीर्थों में पहुँचकर पृथक्-पृथक् स्नान-दान सविधान सुसम्पन्न करके वे परम सन्तुष्ट होते थे । इस प्रकार पूर्व में कपिलाश्रम दक्षिण में सेतुबन्ध, पश्चिम में द्वारिका, और उत्तर में बद्रिकाश्रम में स्नान-दान सुसम्पन्न करने के उपरांत गंधमादन पर्वतपर पहुँचकर महाबली ब्रह्मानन्द ने वेला से कहा—

वेलामुवाच वचनं भाद्रशुक्लाष्टमीदिने । देहं त्यजामि भो राज्ञि तारकं जहि भूतले ॥१८३

इति श्रुत्वा तु सा प्राह स्वामिन्मद्वचनं कुरु । कुरुक्षेत्रं मया सार्द्धं भद्रान्वै गन्तुमर्हति ॥१८४

स्थित्वा तत्र समस्वान्तो भजत्वं सर्वमङ्गलाम् । अहं महावतीं प्राप्य पुनर्वै देहतीं प्रति ॥१८५

तारकं च तथा हत्वा त्वत्समीपं चजात्यहम् । इत्युक्तः स तथेत्युक्त्वा ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ॥१८६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्थगङ्गाषडपरपरयायि

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम् । ३१

अथ द्वात्रिशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

द्वात्रिशाब्दे च कृष्णांशे सम्भ्राप्ते योगरूपिणी । वेला नाम शुभा नारी हरिनागरसंस्थिता ॥

महावतीं तमागम्य तभायां तत्र चावेशत् । ११

एतस्मन्नन्तरे प्राप्ताः कृष्णांशाद्या महाबलाः । नत्वा परिमलं भूपं वेला वचनमब्रवीत् ॥२

महीपतिं प्रियं मत्वा कृष्णांशं नृपदुष्प्रियम् । त्वया मे धातितो भर्ता ब्रह्मानन्दो महाबलः ॥३

‘रानी ! आज भाद्रशुक्ल की अष्टमी के इस शुभ अवसर पर मैं अपने शरीर का त्याग करना चाहता हूँ, तुम पृथ्वी में रहकर तारक (ताहर) का वध अवश्य करना’। इसे सुनकर उसने विनम्र प्रार्थना की—स्वामिन ! मेरी एक बात स्वीकार करने की कृपा करें। आप मेरे साथ कुरुक्षेत्र चलकर वहाँ रहकर ही अपने मंगल की कामना करते रहें और मैं वहाँ से महावती (महोवा) जाकर वहाँ से पुनः दिल्ली लौटने पर तारक (ताहर) का वध करके आपके पास आ जाऊँगी। इसे सुनकर उन्होंने वेला की बात स्वीकार कर कुरुक्षेत्र पहुँचकर ब्रह्मा का ध्यान करना आरम्भ किया ॥१८०-१८६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन

नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३१।

अध्याय ३२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—(उपरोक्त घटना के समय) उदयसिंह की बत्तीसवें वर्ष की अवस्था आरम्भ थी। उस समय रानी वेला ने योगरूप धारणकर हरिनागर नामक घोड़े पर बैठकर महावती (महोवा) नगर को प्रस्थान किया। वहाँ राजा परिमल के राजदरबार में पहुँचकर जिस समय उसने नमस्कार पूर्वक कहना आरम्भ किया। उसी समय उदयसिंह आदि वीरगण भी उस सभा में उपस्थित हुए थे। उसने कहा—आपने महीपति (महिल) को अपना प्रिय हितैषी, और उदयसिंह को राजद्रोही समझ लिया है। उसी के परिणामस्वरूप आपने पृथ्वीराज के उन धूर्त एवं महाबली तारक आदि पुत्रों द्वारा मेरे पति देव महाबलवान ब्रह्मानन्द का हनन कराया है—धुंधुकार (धांधू) चामुण्ड (चौढ़ा) को

महीराजसुतैर्धूर्तेस्तारकाद्यर्थबलैः । नारीवेषं च चामुण्डो धुन्धुकारेण कारितः ॥४
 स्वामिनं प्रति चागम्य ते जगमुश्छब्दना प्रियम् । कुरुक्षेत्रं स्थितः स्वामी महत्या मूर्ढयान्वितः ॥
 तत्साह्ययं भया सार्दी गन्तुमर्हथं तं प्रति ॥५
 इति घोरतमं वाक्यं श्रुत्वा सर्वे शुचान्विताः । धिग्भूपतिं च मलनां तास्यां नो घातितः सखा ॥६
 इत्युक्त्वदेव्यैश्च रुदुः कृष्णांशाश्र्या महाबलाः । एत्राजि प्रेषणामासुः स्वकीयानभूपतीन्प्रति ॥७
 क्रोधयुक्ता तदा वेला लिखित्वा पत्रमुल्बणम् । महीराजाय सम्ब्रेष्य मलनामेहमागमद् ॥८
 ततःत्रं च महीराजो वाच्यित्वा विधात्वतः । ज्ञात्वा तत्कारणं सर्वं तन्निशस्य विशास्याति ॥९
 चिन्ताकलेवरं प्राप्य मुखनिर्दां व्यनाशयत् । आहूय भूपतीन्स्वर्वान्धोरयुद्धोनुखोऽभदद् ॥१०
 चतुर्विंशतिलक्ष्मैश्च शूरै भूपसमन्वितैः । कुरुक्षेत्रं यदौ शीघ्रं धृतराष्ट्रांशसम्भवः ॥११
 तथा परिमलो भूपो लक्षणोडशसैन्यपः । द्रुपदांशो यदौ शीघ्रं वेलया स्वचुलैः भग्न ॥१२
 स्यमन्तपञ्चके तीर्थे शिकिराणि चकार ह । ब्रह्मानन्दः स्थितो यत्र समाधिध्यानतत्परः ॥१३
 गङ्गाकूले च ते सर्वे कौरवांशा महाबलाः । शिकिराणि विचित्राणि चक्षुत्तेनिजयैषिणः ॥१४
 कृत्वा ते कार्तिकीन्नानं दत्त्वा दानान्यनेकशः । मार्गकृष्णद्वितीयायां युद्धभूमिमुपाययुः ॥१५
 विष्वक्तेनीयभूपालो लहरस्तत्र चागतः । कौरवांशाश्च तत्पुत्राः षोडशैव महाबलाः ॥
 पूर्वजन्मनि यन्नाम तन्नाम्ना प्रश्रिता इह ॥१६

स्त्री का वेष बनाकर मेरे स्वामी के पास ले गया । वहीं सद लोगों ने मिलकर कपट द्वारा मेरे सौभाग्य का नाश किया है । इस समय मूर्च्छित अवस्था में पतिदेव कुरुक्षेत्र के स्थल में पढ़े हुए हैं, अतः तुम लोग मेरे भाथ शीघ्रातिशीघ्र वहाँ चलने की तैयारी करो ।’ इस अत्यन्त कठोरवाणी को सुनकर उदयसिंह आदि महाबली वीरगण राजा परिमल और उनकी रानी मलना को धिक्कारते हुए ‘तुम्हीं दोनों ने मेरे मित्र का अपघात कराया है’ ऐसा कहकर उच्चस्वर से रुदन करने लगे । पश्चात् पुत्रों को चारों ओर भेजकर सैन्य राजाओं को दिल्ली चलने के लिए बुलवाना आरम्भ किया । उसी समय अत्यन्त कुद्ध होकर वेला भी उल्वण (विष) की भाँति तीक्ष्ण एक पत्र पृथ्वीराज के यहाँ भेजकर स्वयं मलना रानी के महल में चली गई । विशांपते ! राजा पृथ्वीराज उस पत्र को अत्यन्त सावधानी से सुनकर उसके कारण को जानकर अत्यन्त चिंतित रहने लगे उनकी सुख की नींद एकदम नष्ट हो गई । वे भी अपने आथित राजाओं को बुलाकर युद्ध की तैयारी करने लगे । १-१०। दुर्योधनांश पृथ्वीराज ने राजाओं समेत अपनी चौबीस लाख सेना लेकर कुरुक्षेत्र के लिए शीघ्र प्रस्थान कर दिया । राजा परिमल भी उदयसिंह आदि सेनाध्यक्ष समेत सोलह लाख सैनिक और वेला आदि सभी परिवार को लेकर वहाँ पहुँच गये । वहाँ पहुँचकर सामन्त पञ्चक नामक तीर्थ में, जहाँ स्थित होकर ब्रह्मानन्द समाधि लगाये हुए थे, अपने शिविरों को बनवाया और गंगा के तट पर विजयाभिलाषी एवं महाबली उन कौरवांश दिल्ली वालों ने अपना शिविर बनाना आरम्भ किया । कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा में स्नान एवं भाँति-भाँति के दान समर्पितकर मार्गशीर्ष (अग्रहन) कृष्ण द्वितीया के दिन वह भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ जिसमें विष्वक्तेन वंश के राजा लहर अपने सोलह पुत्रों समेत आये थे, जो कौरवों के अंश से उत्पन्न एवं महाबली थे । उनके पूर्व जन्म के ही नाम

दुत्सहो दुश्शलश्चैव जलसन्धः समः सहः । विन्दस्तथानुविन्दश्च सुबाहुर्दुष्प्रधर्षणः ॥१७
 दुर्मर्षणश्च दुष्कर्णः सोमकीर्तिरनूदरः । शतः सत्त्वो विवित्सुश्र क्रमज्ञेया महाबलाः ॥१८
 तोमरान्वयभूपालो बाह्लीकपतिरागतः । त्रिलक्ष्मैश्च तथा सैन्यैः सप्तपुत्रैश्च भूपतिः ॥१९
 चित्रोपचित्रौ चित्राक्षश्चारश्चित्रः शरासनः । सुलोचनः सर्वणश्च पूर्वजन्मनि कौरवाः ॥२०
 तेषामशाः क्रमाज्ञाता अभिनन्दनदेहजाः । महानन्दश्च नन्दश्च परानन्दोपनन्दकाः ॥
 सुनन्दश्च सुरानन्दः प्रनन्दः कौरवांशकः ॥२१

नृपः परिहरवंशीयो मायावर्मा महाबली । लक्षसैन्ययुतः प्राप्नो दशपुत्रसमन्वितः ॥२२
 दुर्मदो दुर्विगाहश्च नन्दश्च विकटाननः । चित्रवर्णा सुवर्मा च सुदुर्मोदय एव च ॥२३
 उर्णनाभः सुनाभश्च दोपनन्दश्च कौरवाः । तेषामशाः क्रमाज्ञातः सुता अङ्गपतेः स्मृताः ॥२४
 मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः सुमत्तो दुर्मदस्तथा । दुर्मुखो दुर्धरो वायुः सुरथो विरथः क्रमात् ॥२५
 शुक्लवंशीयभूपालो मूलवर्मा समागतः । लक्षसैन्यैश्च बलवान्दशपुत्रसमन्वितः ॥२६
 अयोबहुर्महाबाहुश्चित्राङ्गश्चित्रकुण्डलः । चित्रायुधो निषड्गी च पाशी वृन्दारकस्तथा ॥२७
 दृढवर्मा दृढक्षत्रः पूर्वजन्मनि कौरवाः । तेषामसाः महीं जाता गृहे ते मूलवर्मणः ॥२८
 बलश्च प्रबलश्चैव सुबलो बलवान्बली । सुधूलश्च महामूलो दुर्गो भीमो भयङ्करः ॥२९
 कैकयश्चन्द्रवंशीयो लक्षसैन्यसमन्वितः । दशपुत्रान्वितः प्राप्तः कुरुक्षेत्रे महारणे ॥३०
 भीमवेगो भीमबलो बलाकी बलवर्द्धनः । उग्रायुधो दण्डधरो दृढसन्धो महीधरः ॥३१
 जरासन्धः सत्यसन्धः पूर्वजन्मनि कौरवाः । तेषामशाः समुद्भूताः कैकयस्य गृहे शुभे ॥३२
 कामः प्रकामः सङ्कामो निष्कामो निरपत्रपः । जयश्च विजयश्चैव जयन्तो जयवाऽज्जयः ॥३३

इसी जन्म में भी पड़े हुए थे—दुस्सह, दुश्शल, जलसंध, समः सह, विद, अनुविंद, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण,
 दुष्कर्ण, सोमकीर्ति, अनूदर, शत, सत्त्व, और विवित्सु क्रमणः उन महाबलवानों के नाम थे । बाह्लीक-
 पति तोमर वंश का कुलभूषण राजा था, अपनी तीन लाख सेना और महानन्द, नन्द, परानन्द, उपनन्द,
 सुनंद, सुरानंद तथा प्रनन्द नामक सात पुत्रों को साथ लेकर आये थे, जो पूर्वजन्म में चित्र, उपचित्र,
 चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, सुलोचन एवं सुवर्णा नामक कौरवों के अंश से क्रमणः उत्पन्न हुए थे । १-१-२१:
 अंगदेश का परिहरवंशीय महाबली राजा मायावर्मा दस लाख सेना और दुर्मद, दुर्विगाह, नन्द, विकटानन,
 चित्रवर्मा, सुवर्मा, सुदुर्मेचिन, उर्णनाभ, सुनाभ, तथा उपनन्द नामक कौरवांशों से क्रमणः उत्पन्न मत्त,
 प्रमत्त, उन्मत्त, सुमत्त, दुर्मद, दुर्मुख, दुर्धर, वायु, सुरथ, एवं विरथ नामक दशपुत्रों समेत आये थे ।
 शुक्लवंशीय राजा मूल-वर्मा अपने एक लाख सैनिक तथा बल, प्रबल, सुबल, बलवान, बली, सुमूल,
 महामूल, दुर्ग, भीम, और भयकर नामक दशपुत्रों को साथ लेकर आये थे, जो पूर्वजन्म में अयोबाहु, महाबाहु,
 चित्रांग, चित्रकुण्डल, चित्रायुध, निषंगी, पाशी, वृन्दारक, दृढवर्मा और दृढक्षत्र नामक कौरवों के अंश से
 क्रमणः उत्पन्न थे । चंद्रवंशी राजा कैकय एक लाख सेना और अपने दशपुत्रों समेत उस कुरुक्षेत्र के भीषण
 रणस्थल में पहुँचे थे । काम, प्रकाम, सकाम, निष्काम, निरपत्रप, जय, तित्तग, जयन्त, जयवान् और जय
 यही क्रम से उन पुत्रों के नाम थे, जो पूर्व जन्म के भीमवेग, भीमबल, बलाकी बलवर्द्धन, उग्रायुध, दंडधर,
 दृढसंग, महीधर, जरासंध तथा सत्यसंध नामक कौरवों के अंश से क्रमणः उत्पन्न थे । उसी प्रकार पुंड्रेश का

नागवंशीयभूपालो नागवर्मा समागतः । लक्षसेनान्वितः प्राप्तो दशपुत्रसमान्वितः ॥३४
 पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना तन्नाम्ना कौरवा भुवि । पुण्ड्रेशपते: पुत्रा जाता दश शिवाज्ञया ॥३५
 उग्रश्वा उग्रसेनः सेनानीर्दुष्यरायणः । अपराजितः कुण्डशायी विशालाक्षो दुराधरः ॥३६
 दृढहस्तः सुहस्तश्च सुतास्ते नागवर्मणः ॥३७

मद्रकेशः समायात्तोमरान्वदसम्भवः । लक्षसैन्यरूपो राजा दशपुत्रसमान्वितः ॥३८
 वातवेगः सुवर्चाश्च नागदन्तोग्रयाजकः । आदिकेतुश्च वक्षी च कवची क्राथ एव च ॥३९
 कुण्डश्च कुण्डधारश्च कौरवः पूर्वजन्मनि । तन्नाम्ना भुवि वै जाता मद्रकेशस्य मान्दरे ॥४०
 नृपः शार्दूलवंशीयो लक्षसैन्यसम्भवितः । तूर्णमलो मागधेशो दशपुत्रान्वितो यथौ ॥४१
 वीरबाहुभीरथश्चोपश्चैव धनुर्धरः । रौद्रकर्मा दृढरथोऽलोलुपश्चाभग्यस्तथा ॥४२
 अनाधृष्टः कुण्डभेदी कौरवः पूर्वजन्मनि । पूर्णामलस्य वै नेहे तन्नाम्ना भुवि तम्भवः ॥४३
 मङ्ग्लणः किन्नरो नाम रूपदेश महीयतिः । चीनदेशात्परे पारे रूपदेशःस्मृतो बुधैः ॥
 नरः किन्नरजातीयः वसात् प्रियदर्शनः ॥४४

मङ्ग्लणश्च तदा प्राप्तः किन्नरायुतसंयुतः । अष्टपुत्रान्वितः प्राप्तो यत्र सर्वनृपाः स्थिताः ॥४५
 विरावी प्रथमश्चैव प्रमाथी दीर्घरोमकः । दीर्घबाहुर्महाबाहुर्व्यूढोरा: कनकध्वजः ॥४६
 पूर्वजन्मनि यन्नाम्ना^२ तन्नाम्ना किन्नरा भुवि । विरजोंशश्च यो जातो मङ्ग्लणे नाम किन्नरः ॥४७
 नेत्रसिंहः समायातो लक्षसैन्यसम्भवितः । शल्यांशः स तु विज्ञेयः शार्दूलान्वयसम्भवः ॥४८

नागवंशीय राजा नागपाल अपनी एक लाख सेना और दश पुत्रों समेत आये थे, जो पूर्व जन्म के उग्रश्वा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्यरायण, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढहस्त तथा सुहस्त नामक कौरवों के अंश से उत्पन्न तथा इस जन्म में भी इसी नाम से व्याप्त थे । तोमर कुलावतंस राजा मद्रकेश अपने एक लाख सैनिकों एवं दशपुत्रों समेत वहाँ आये थे जो पूर्व जन्म के वातवेग, सुवर्चा, नागदंत, अग्रयाजक, आदि केतु, वक्षी, कवची, क्राथ, कुण्डल और कुंडधीर नामक कौरवों से क्रमशः उत्पन्न होकर इसी ग्राम से पुनः इस भूतल पर प्रस्थाप्त थे । मगधाधीश्वर शार्दूल वंशीय पूर्णमल अपने एक लाख सैनिकों और अपने दश पुत्रों समेत वहाँ उपस्थित थे जो वीरबाहु, भीमस्थ, उग्र, धनुर्धर, रौद्रकर्मा, दृढरथ, अलोलुप, अभय, अनाधृष्ट और कुण्डभेदी नामक कौरवों के अंश से उत्पन्न तथा इसी नाम से पुनः प्रस्थाप्त थे । रूपदेश का अधीश्वर मंकण नामक किन्नर वहाँ आये थे । चीन देश के उस पार रूपदेश का निर्देश विद्वानों ने किया है, जहाँ अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण किन्नर जाति के लोग निवास करते हैं । २-४४। उस रणभूमि के राज समाजमें मंकण भी उस समय दश किन्नर और अपने आठ पुत्रों समेत पहुँचे हुए थे, जो विरावी प्रथम, प्रमाथी, दीर्घरोमक, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरा तथा कनकध्वज नामक किन्नरों द्वारा उत्पन्न होकर भूतल में भी इसी नाम से व्याप्तिप्राप्त कर चुके थे । विरज के अंश से मंकण नामक किन्नर की उत्पत्ति कही गई है । अपने एक लाख सैनिकों समेत राजा नेत्रसिंह वहाँ आये थे, जो शल्य के अंश से

१. तेषामिति शेषः । २. यन्नाम्ना पूर्वजन्मनि स्यातास्तन्नाम्नैहिकजन्मन्यपीत्यर्थः ।

तदा गजपती राजा लक्षसैन्यसमन्वितः । सन्प्राप्तः शकुनेरंशस्त्यक्त्वा गेहे स्यपुत्रकान् ॥४९
 मयूरध्वज एवापि लक्षसैन्यसमन्वितः । मकरन्दं गृहे त्यक्त्वा विराटांशः समागतः ॥५०
 वीरसेनः समायातः कामसेनसमन्वितः । लक्षसेनान्वितस्तत्र चोप्रसेनांशसन्भवः ॥५१
 लक्षणश्च समायातः सप्तलक्षबलैर्युतः । सन्त्यज्ञं पद्मिनीं नारीं महाकषेत्रं भूपतिः ॥५२
 तत्त्वनो धान्यपालश्च लल्लसिंहस्तथैव च । भीमस्थांशो युयुत्सोश्च कुन्तिभोजस्य वै क्रमात् ॥५३
 आह्लादश्च^१ समायातः कृष्णांशेन लम्बितः । जयन्तेन च वै वीरो लक्षसैन्यान्वितो बली ॥५४
 जगन्नायक एवापि शूरायुतसमन्वितः । रम्प्राप्तो भगदत्तांशो गौतमान्द्रप्रसम्भवः ॥५५
 अन्ये च क्षुद्रभूपालश्च सहकाढ्याः पृथक्पृथक् । कुरुक्षेत्रं परं स्थानं संयुभदविह्वला ॥५६
 मूलवर्मा च नृपतिः लघुत्रो लक्षसैन्यपः । नृपं परिमलं प्राप्य संयुक्तो^२ देहलीपतेः ॥५७
 कैकयो लक्षसेनाढ्यः सपुत्रो नृपतिः स्वयम् । नृपं परिमलं प्राप्य स युद्धार्थमुपस्थितः ॥५८
 नेत्रसिंहश्च नृपतिः स वीरो लक्षसैन्यपः । मयूरध्वज एवापि लक्षपः शशिवंशिनम् ॥५९
 वीरसेनश्च लक्षाढ्यः सपुत्रश्चान्द्रिपक्षगः । लक्षणः सप्तलक्षाढ्यो युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६०
 आह्लादो^३ लक्षसैन्याढ्यः पक्षग्रन्थद्वंशिनः । द्विलक्षसंयुतो राजा चन्द्रवंशो रणोन्मुखः ॥
 एवं षोडशलक्षाढ्यः स्थितः परिमलो^४ रणे ॥६१

शार्दूल वंश में उत्पन्न हुए थे । शकुनि वंश राजा गजपति भी घर में पुत्रों को सौंपकर एक लाख सेना समेत वहाँ आये थे । विराटांश मयूरध्वज मकरन्द को घर सौंपकर एक लाख सैनिक लिए वहाँ आये थे । उसी प्रकार उग्रसेनांश से उत्पन्न वीरसेन कामसेन समेत एक लाख मेना लेकर वहाँ पहुँचे थे । अत्यन्त कष्ट से पद्मिनी को छोड़कर राजा लक्षण (लाखन) सात लाख लेना समेत वहाँ आये थे । भीम, युयुत्स, और कुन्तिभोज के अंश से क्रमशः उत्पन्न तालन धान्यपाल, एवं लल्लसिंह, उदयर्सिंह और इन्दुल समेत एक लाख सेना लेकर आह्लाद (आल्हा) भगदत्त के अंश से उत्पन्न एवं गौतम कुलभूषण जगन्नायक अपनी दण सहस्र सेना लेकर वहाँ आ गये थे । ४५-५१। इसी प्रकार छोटे-छोटे अन्य सहस्रों राजगण मदान्ध होकर पृथक्-पृथक् सेनाओं समेत उस कुरुक्षेत्र की रणभूमि में पहुँचे थे । पुत्र तथा अपनी एक लाख सेना लेकर मूलवर्मा ने राजा परिमल के पास पहुँचकर अपने आगमन की सूचना दी । उसी प्रकार राजा कैकय पुत्र तथा एक लाख सेना लेकर आये थे । वीर राजा नेत्रसिंह, मयूरध्वज, और वीरसेन पुत्रों समेत अपने एक-एक लाख सैनिकों समेत तथा सात लाख सेना लेकर लक्षण (लाखन) एक लाख सेना समेत आह्लाद (आल्हा) चन्द्रवंशी राजा परिमल की सहायतार्थ वहाँ उपस्थित थे । राजा परिमल की भी स्वयं तीन लाख सेना थी । इस प्रकार राजा परिमल ने अपनी कुल सोलह लाख सेना से उस युद्धभूमि में संग्राम की

१. महीराजपक्षपातिराजागमनवृत्तान्तमुक्त्वेदानीं परिमलपक्षपातिभूपागमनवृत्तान्तं वर्णयन्नाह—आह्लादश्चेति । २. युद्धायेति शेषः । ३. ‘आह्लादश्च समायातः’ इति चतुष्पञ्चाशत्सङ्ख्यापूरकपदे वर्णयित्वापि पुनरिह तद्वर्णं तत्पक्षपातिपु तस्य प्राधान्यद्योतनायेतिबोध्यम् । ४. अद्वेन परिमलं वर्णयति, तस्यैव चन्द्रवंश इति विशेषणम्—नोह्लादस्य, तस्यान्यवंशजातत्वात् । ५. ‘द्विलक्षसंयुतत्वमुक्त्वापि पुनः षोडशलक्षाढ्यः’ इति कथनं स्वीयपूर्वोक्तपरकीयसैन्यभयवर्णनद्योतनाय ।

लहरो^१ भूपतिश्चेष्ठो लक्षपः पुत्रसंयुतः । महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६२
 अभिनन्दन एवापि सपुत्रो लक्षसैन्यपः । मायावर्मा च नृपतिः सपुत्रो लक्षसैन्यपः ॥६३
 नागवर्मा समायातः सपुत्रो लक्षसैन्यपः । मद्रकेशः सपुत्रश्च लक्षसैन्यो रणोन्मुखः ॥६४
 पूर्णमिलः सपुत्रश्च लक्षपश्चैव पक्षाः । मद्भूणः किञ्चरो नाम सपुत्रस्तत्र संस्थितः ॥६५
 इजराजः समायातो महीराजं हि लक्षपः । धुन्धुकारः समायातः पञ्चलक्षपतिः स्वयम् ॥६६
 पुत्रः कृष्णकुमारस्य भगदत्तः समागतः । त्रिलक्षदलराम्युक्तो महीराजं भर्तीरात्म ॥६७
 दलवाहनपुत्रश्च देशगोपालमस्तिथः । अङ्गदस्तत्र सम्प्राप्तः सायुतो देवकोप्रियः ॥
 महीराजमुपागम्य युद्धार्थं समुपस्थितः ॥६८
 कलिङ्गश्च नृपः प्राप्तस्त्रिकोणश्च तथैव च । श्रीपतिश्च तथा राजा श्रीतारश्च तथा गतः ॥६९
 मुकुन्दश्च सुकेतुश्च रुहिलो गुहिलस्तथा । इन्द्रवारश्च बलवान्ज्यन्तश्च तथाविधिः ॥
 सर्वे दशसहस्राद्या महीराजमुपस्थिताः ॥७०
 महीराजस्य पक्षे तु सहस्रं लूद्रसूमिपाः । ते तु साहसरेनाद्या महीराजमुपस्थिताः ॥७१
 तेषां मध्ये च वै भूपान्द्विशतान्दहलों प्रति । सैन्यान्प्रेषयामास राज्यरक्षणहेतवे ॥
 एवं स देहलीराजश्चतुर्विंशतिलक्षणः ॥७२
 युद्धमष्टादशाहानि सञ्जातां र्वासंक्षयम् । शृणु युद्धकथां रम्यां भृगवर्यं सुविस्तरात् ॥७३
 मार्गकृष्णद्वितीयायां महीराजो महाबलः । आहूय लहरं भूपं वचनं प्राह निर्भयः ॥७४
 भवान्सपुत्रः सेनाद्यो धुन्धुकारेण रक्षितः । चामुण्डेन युतो युद्धे गन्तुमर्हति सत्तम ॥

तैयारो किंश्च था । उसी प्रकार राजा पृथ्वीराज के समोप उनकी सहायतार्थं नृपश्चेष्ट, लहर, मायावर्मा, नागवर्मा, मद्रकेश, पूर्णमिल अपने अपने पुत्रों और एक-एक लाख सैनिकों समेत वहाँ आये थे । पुत्र तथा दशसहस्र सेना समेत मंकण नामक किञ्चर, एकलाख सेना समेत गजराज, पांच लाख सेना समेत धुन्धुकार (धांधू) और कृष्ण कुमार का पुत्र भगदत्त, अपनी तीन लाख सेना लेकर पृथ्वीराज के पास आया था । दलवाहन पुत्र एवं देशगोपाल देश निवासी अंगद, जो देवकों का अत्यन्त प्रिय था, तथा कलिंग, त्रिकोण, श्रीपति, श्रीतार, मुकुन्द, सुकेतु, सहिल, गुहिल, इन्द्रवार, और बलवान् जयन्त वहाँ उपस्थित थे जिनकी दशदश सहस्र की सेना थी, पृथ्वीराज के सहायक छोटे-छोटे एक सहस्र राजगण, अपनी एक एक सहस्र सेना समेत वहाँ उपस्थित थे । इन्हीं सैनिकों से दो सौ राजाओं को उनके सेना समेत उन्होंने अपने राष्ट्र के रक्षार्थ दिल्ली में भेज दिया था । इस प्रकार दिल्लीश्वर राजा पृथ्वीराज अपनी चौबीस लाख सेना लेकर उस रणस्थल में युद्धार्थं उपस्थित हुए थे, जो भीषण युद्ध अटुरह दिन में समस्त धन्त्रियों के नाश-पूर्वक समाप्त हुआ था । भृगुवर्य ! मैं तुम्हें अब विस्तारपूर्वक उस युद्ध-कथा को सुना रहा हूँ, मन लगाकर सुनो ! मार्ग कृष्ण द्वितीया के दिन महाबली पृथ्वीराज ने तिर्भीक होकर राजा लहर को बुलाकर उनसे कहा—सत्तम ! पुत्र समेत आप चामुण्ड (चौड़ा) के साथ धुन्धुकार (धांधू) से सुरक्षित होकर रणभूमि में

१. इदानीं लहरादीनां महीराजपक्षपातिनां भूपानां सैन्यपरिमाणं कथयति । तेषामागमनं तु पूर्व वर्णितमेव ।

इति श्रुत्वा ययौ शीघ्रं कुरुक्षेत्रे नहारणे ॥१३५
 तदा परिमलो राजा मयूरध्वजमेव हि । समाहृय च चः प्राह शृणु पार्थिवसत्तम ॥१३६
 कृष्णांशेन ज्यन्तेन देवर्सिहेन रक्षितः । स भवाल्लंक्षसैन्यादच्यो गन्तुसर्वति वै रणे ॥१३७
 इति श्रुत्वा तु वचनं मयूरध्वजं एव हि । लक्ष्मसैन्यान्वितः प्राप्तो लहरं नृपतिं प्रति ॥१३८
 तयोऽश्वासीन्महद्युद्धं सेनयोरुभयो रणे । सेना तु लक्ष्मीरम्यं तत्र युद्धे प्रकीर्तिता ॥१३९
 एको रथो गजास्तत्र ज्ञेयः पञ्चशतं रणे । हयाश्व पञ्चसाहव्या पत्तयस्तद्युणा दश ॥
 एते रैन्द्र नरा ज्ञेया सैन्यपांश्च शृणुष्व भोः ॥१४०
 दशानां पञ्चराणां च पतिर्नाम्ना स पत्तिपः । पञ्चानां च हयानां च पतिर्नाम्ना स गुल्मपः ॥१४१
 पञ्चानां च गजानां च पतिर्नाम्ना गजाधिपः । एतैः साद्वै रथी ज्ञेयो रणेऽस्मिन्दारणे कलौ ॥१४२
 उष्ट्रारुद्धाः स्मृता द्रूताश्रत्वारिंशच्च तद्वले । शतघ्न्यस्तत्र साहल्यास्तेषां भध्ये पृथक्पृथक् ॥
 षट्क्रिशद्वै पदचरास्तेषां कर्माणि मे शृणु ॥१४३
 दरागोलकदातारो दशतपुष्टिकारकाः । दश चार्द्रकरास्ता वै त्रयस्ते वह्निदायिनः^१ ॥
 त्रयो दृष्टिकरा ज्ञेयास्त्रियामेषु पृथक्पृथक् ॥१४४
 शेषाः शूद्रास्तु सेनानां शूरकृत्यपरायणाः । एवं च लक्ष्मीराणां सेना तत्र प्रकीर्तिता ॥१४५

जाने की तैयारी कीजिये । इसे सुनकर ही उन लोगों के साथ शीघ्र उस रणस्थल में पहुँच गये । ५६-७५। उस समय राजा परिमल ने मयूरध्वज को बुलाकर कहा—तृपथेष्ठ ! उदयसिंह, ज्यन्त (इन्दुल), और देवसिंह द्वारा सुरक्षित होकर आप अपने एक लाख सैनिकों समेत वहाँ युद्ध भूमि मे पहुँच जायें । इसे सुनकर मयूरध्वज ने एक लाख भेना लेकर वहाँ रणभूमि में पहुँचकर राजा लहर के साथ घोर संग्राम आरम्भ किया । उस रणभूमि में दोनों सेनाओं का अत्यन्त भीषण युद्ध हुआ । उस युद्ध में उपस्थित एक लाख सेना का विवरण इस भाँति कहा गया है—एक रथ, पाँच सौ हाथी, पाँच सहस्र घोड़े, और उसके दण गुने पैदल की सेना थी । अब उस सेना में सैनिकों के विवरण के उपरांत मैं तुम्हें उनके सेनाध्यक्षों का विवरण बता रहा हूँ, सावधान होकर युनो ! । दश पैदल सैनिकों का एक स्वामी था, जिसे पत्तिप कहा गया है । उसी प्रकार पाँच अश्वारोही सैनिकों के स्वामी को ‘गुल्मप’ और पाँच गजराजों के अधिनायक को ‘गजाधिप’ बताया गया है । कलि के उस भीषण युद्ध में इन्हीं लोगों से युक्त एक रथी रहता था । उन सेनाओं में ऊँट (सांडियों) पर बैठे हुए चालीस सैनिक दूत का काम कर रहे थे । उन सेनाओं में पृथक्पृथक् एक सहस्र तोपें थी, जिनमें छत्तीस पैदल सैनिक काम कर रहे थे । उनके विवरण बता रहा हूँ, सुनो ! दश सैनिक गोला देने के लिए नियुक्त थे । उसी प्रकार दश सैनिक उन गोलों के मारने के लिए, दश आर्द्र (गीला) करने के लिए और तीन उसमें अग्नि (पलीता) जलाने वाले एवं वहाँ निरीक्षण के लिए नियुक्त थे । इस प्रकार उस तीन प्रहर के युद्ध में उनका विवरण बता दिया गया । जिनमें शेष शूद्रगण उन सैनिकों के साथ रहकर युद्ध में शूरों की सहायता कर रहे थे । इस प्रकार वहाँ की एक लाख सैनिकों की सेना का

१. शतघ्नीरित्यर्थः, प्रतीति शेषः ।

तत्रासीनुमुलं युद्धं धर्मेण च समन्ततः । प्रातःकालात्समारभ्य मध्याह्नं सैन्ययोद्द्वयोः ॥८६
 तत्पश्चाद्याममात्रेण सैन्यपा युद्धमागताः । तत्पश्चाच्च महाशूरा धुन्धुकारादयो बलाः ॥८७
 याममात्रं च युद्धाय संस्थिता रणमूर्धनि । चामुण्डेन च कृष्णांशो धुन्धुकारेण चेन्दुलः ॥८८
 भगदत्तेन वै देवः कृतवान्युद्धमुत्तमम् । सामङ्गले तु सम्प्राप्ते सर्वे शूराः क्षयं^३ गताः ॥८९
 कृष्णांशस्तत्र चामुण्डं जित्वा तु लहरात्मजात् । घोडशैव जघनाशु शटीमात्रेण चीर्येवान् ॥
 हृष्मौ शहूङ्गं प्रसन्नत्वा लक्षणान्तमुपाययौ ॥९०

चामुण्डो धुन्धुकारश्च भगदत्तो युतः शतैः । महीराजमुपागम्य मुषुपुर्निशि निर्भयाः ॥९१
 इन्दुले देवसिंहश्च सहस्रे संयुतौ मुदा ; गत्वा परिमलं भूरं रात्रौ सुषुप्तुस्तदा ॥९२
 प्रलःकाले तु संप्राप्ते तृतीयायां भयङ्करे । महीराजस्तदाहूय नृपं गजपतिं बली ॥९३
 वचनं प्राह भो राजस्त्वं द्विवीरः सुरक्षितः । स्वकीर्यैलक्षसैन्येष्व गन्तुमहीसि वै रणे ॥९४
 तदा परिमलो भूपो नेत्रसिंहं महीपतिम् । युद्धायाज्ञापयामास कृष्णांशाद्यः सुरक्षितम् ॥९५
 तयोश्चासीन्महद्युद्धं सेनयोर्लभयोः क्रमात् । हया हयैः क्षयं जग्मुर्गजश्वैव तथा गजैः ॥
 पच्चरा: चच्चरैः सार्द्धं शतम्यश्च शतम्निभिः ॥९६

अपराह्णे मुनिश्रेष्ठं नेत्रसिंहो महाबलः । महागजं गजपतिं गत्वा युद्धमचीकरत् ॥९७

विशेष विवरण बताया गया है, जो उस रणक्षेत्र में धार्मिक युद्ध कर रहे थे। प्रातः काल से आरम्भ कर मध्याह्न तक दोनों सैनिकों का भीषणयुद्ध होकर बन्द सा हो जाता था। तत्पश्चात् एक प्रहर के लिए सैन्यपति लोग वहाँ युद्धार्थ उपस्थित होते थे। इस प्रकार मयूरध्वज और लहर के उस रणभूमि में सैनिकों से युद्ध करने के उपरांत वली एव महाशूर धुन्धुकार (धांधू) आदि वीरगण वहाँ एक प्रहर के युद्धार्थ उपस्थित हुए। चामुण्ड (चौंढा) के साथ उदयसिंह, धुन्धुकार (धांधु) के साथ इन्दुल, और भगदत्त के साथ देवसिंह ने भीषण युद्ध किया, जिसमें रायांकाल होने पर इतर सैनिकों का निधन हो गया। इस युद्ध में उदयसिंह ने एक घड़ी समय के भीतर राजा लहर के उन सौलहों पुत्रों को धराशायी कर अपने विजय शांख को बजाते हुए राजा लक्षण (लाखन) के पास प्रस्थान किया। चामुण्ड (चौंढा) धुन्धुकार (धांधू) और भगदत्त ने शेष अपने सौ सैनिकों समेत पृथ्वीराज के पास पहुँचकर रात्रि में निर्भय होकर शयन किया। इधर इन्दुल और देवसिंह ने भी अपने शेष सहस्रों सैनिकों को लेकर राजा परिमल के पास पहुँचकर वहाँ आनन्द की नीद में रात्रि व्यतीत किया। तृतीया के दिन प्रातः काल के समय राजा पृथ्वीराज ने वली राजा गजपति को बुलाकर कहा—तीनों वीरों से सुरक्षित होकर आप अपने लक्ष सैनिकों समेत उम रणस्थल में पहुँचने की तैयारी करें। उस समय राजा परिमल ने भी नेत्रसिंह को बुलाकर कहा—उदयसिंह आदिवीरों की अध्यक्षता में आप युद्धार्थ शीघ्र प्रस्थान कीजिये। ७६-९५। उस दिन वहाँ रणस्थल में उन दोनों सेनाओं का घोर संग्राम हुआ, जिसमें क्रमशः घोड़े, घोड़े के साथ हाथी, हाथी के साथ पैदल, पैदल के साथ और बन्दूकधारी, बन्दूक वालों से एवं तोप वाले तोपों के साथ तन्मयता में युद्ध कर उन्हें धराशायी कर रहे थे। मुनिश्रेष्ठ! उस युद्ध में अपराह्ण के समय राजा नेत्रसिंह ने उस भीषण-

१. बलिन् इत्यर्थः । २. निवासम् ।

परस्परं च विरथौ सञ्जिलश्नानुषौ तदा । लङ्घाहस्तौ महीं प्राप्य चक्रतू रणमुल्बणम् ॥

अन्योन्येन वधं कृत्वा स्वर्गलोकमुपागतौ

॥१९८

इन्दुलस्तं तु चामुण्डं देवो ई धुन्धुकं तथा । कृष्णांशो भगदत्तं च जित्वा राजानमायम् ॥१९९

शेषैः पञ्चशतैः चूर्तैः सार्द्धं लक्षणं प्रति । पराजिताश्च ते सर्वे सहस्रैः सहिता ययुः ॥२००

प्रातःकाले तु सम्प्राप्ते महीराजो महाबलः । मायावर्माणिमाहृय वचनं प्राह् निर्भयः ॥२०१

भवान्दशस्तैर्वीरैलक्षसैन्यश्च रथयुतः । सर्वशत्रुविनाशाय गन्तुमर्हति सत्तम् ॥

इति श्रुत्वा स नृपतिवर्द्यान्वंवाद्य चायदौ

॥२०२

दृष्ट्वा परिमलो भूपो मायावर्माणिमागतम् । जगन्नायकमाहृय वचनं प्राह् निर्भयः ॥२०३

भवान्दशसहस्रैश्च सार्द्धं तैस्त्रिभिरच्चितः । गन्तुमर्हति युद्धाय शीघ्रं मद्विजयं कुरु ॥२०४

इति श्रुत्वा यदौ शीघ्रं सेनयोहभयोर्भृत । युद्धं चासीन्मुनिश्रेष्ठं याममात्रं भयानकम् ॥२०५

हतास्ते दशसाहत्वा: कृष्णांशादैः सुरक्षिताः । शत्रून्दध्मुश्र ते सर्वे चाङ्गदेशनिवासिनः ॥२०६

एतस्मिन्नत्तरे धीराः कृष्णांशाद्यस्तुरीयकाः । याममात्रेण सञ्जन्मुरुलक्षसैन्यं रिपोस्तदः ॥२०७

अपराह्णे महाराजो मायावर्मा सुतैः सह । कृष्णांशं देवर्सिंहं च सम्प्राप्तो जगनायकम् ॥२०८

अथाङ्गंभूपं दशपुत्रयुक्तं कृष्णांशं एवाग्नु जगाम शीघ्रम् ।

हयस्थितो वीरवरः प्रमाथी कलैकजातो मधुसूदनस्य ॥२०९

काय गजपति के साथ युद्धारम्भ किया । युद्ध में उन दोनों ने पहले विरथ होकर एक दूसरे के धनुष-वाण काटते हुए अपने-अपने खड़ग द्वारा महाविषम युद्ध किया । पश्चात् अपने रण-कौशल से एक दूसरे के वध करके वे दोनों स्वर्गीय हो गये । इधर इन्दल ने चामुण्ड (चौंडा) देवसिंह ने धुन्धुकार (धार्घु) और उदयसिंह ने भगदत्त को पराजित कर राजा के पास प्रस्थान किया, जिसमें उनलोगों के साथ शेष पाँच सौ शूर सैनिक जा रहे थे । पराजित होने पर भगदत्त आदि के पास भी सहस्रों सैनिक थे । तीसरे दिन प्रातः काल में राजा पृथ्वीराज ने मायावर्मा को बुलाकर कहा—सत्तम ! अपने वीर दश पुत्रों समेत एक लाख सैनिकों को साथ लेकर शत्रुओं के विनाशार्थ रणस्थल में शीघ्र पहुँच जाइये । इसे सुनकर उस राजा ने बाजे गाजे के साथ वहाँ पहुँचकर अपने आगमन की सूचना दी । उसे देखकर राजा परिमल ने भी निर्भीक होकर जगन्नायक से कहा—आप अपनी दश सहस्र सेना लेकर इन तीनों दीरों के साथ रणभूमि की तैयारी कीजिये । वहाँ जाकर शीघ्र भेरी विजय करना । इसे सुनकर वे ससैन्य वहाँ पहुँच गये । मुनिश्रेष्ठ ! उन दोनों सेनाओं में एक प्रहर तक भीषण युद्ध हुआ । किन्तु उदयसिंह आदि से सुरक्षित होने पर भी वे दशसहस्र सैनिक वहाँ रणस्थल में धराशायी हो गये । पश्चात् उन पुण्ड देश के सैनिकों ने अपनी-अपनी शंखध्वनि करते हुए विजय की सूचना दी । उसी समय उदयसिंह आदिवीरों ने वहाँ पहुँचकर एक प्रहर के भीतर शत्रु के उन लक्ष सैनिकों के निधन कर दिये । अपराह्ण में अपने पुत्रों समेत मायावर्मा तथा उदयसिंह और देवसिंह समेत जगनायक वहाँ रणस्थल में पहुँच गये पुत्रों समेत अङ्गाधीश्वर मायावर्मा के साथ उदयसिंह का युद्ध आरम्भ हुआ, जो वीरवर धोड़े पर बैठा हुआ, शत्रु सेनाओं का मंथन करने वाला एवं भगवान् मधुसूदन की कला से उत्पन्न था । पश्चात् अङ्गाधीश्वर ने अपने तीन वाणों द्वारा उदयसिंह

नतोऽन्नमूपस्त्रभिरेव बाणैरताडयन्मूर्धिनं च पार्श्वयोर्वै !
 अर्मष्माणो बलवान्महीपतिद्वैर्हतः काल इवाशु सर्पः ॥११०
 हयं समुद्दीय स उष्करान्तं ततोभ्यगात्तं नृपतिं रथस्थम् ।
 हयस्य पातैर्दिर्वीचकाद् स एव भूपोऽसिमुदादधानः ॥१११
 स्वेनासिना बिन्दुलमङ्गश्लयं कृत्वा त ऋणांशमुवाच वास्यम् ।
 कल्लोलमायात्तव नाशनाय त्वयाजिता भूपतयःप्रधानाः ॥११२
 तदैव कीर्तिर्भविता ममात्मा हत्वा भद्रन्तं च सुखी भवानि ।
 इत्युक्तवन्तं नृपतिं महान्तं स्वेनारित्वा तस्य शिरो जहार ॥११३
 हतेऽन्नमूर्पे दश तस्य पुत्रास्तमेव जग्मुर्युधि कौरवांशाः ।
 तानागतानिन्दुल एव पञ्च जघान बाणैस्तु तदा समन्युः ॥११४
 उभौ च देवस्तु जघान तत्र भल्लेन सिद्धेन नृपात्मजौ च ।
 ज्येष्ठं सुतं गैतम एव हत्वा द्वौ यौ स कृष्णांश उपाजघान ॥११५
 शह्वान्प्रदध्मूरुचिराननास्ते प्रदोषकाले शिविराणि जग्मुः ।
 श्रमान्वितास्ते मुषुपुर्णिशायां प्रातः समुत्थाय स्वकर्म कृत्वा ॥११६
 गत्वा सभायां नृपतिं प्रणम्य वाक्यं समूच्चुः शृणु चन्द्रवंशिन् ।
 अद्यैव सेनापतिरस्ति को वै चाज्ञापयास्मान्नप तस्य गुप्त्यै ॥११७
 श्रुत्वाह भूपोऽद्य तु वीरसेनः सकामसेनः स्वबलं समेतः ।
 रणं करिष्यत्यचिरेण वीरास्तस्मात्सुरक्षध्वमरिभ्य एव ॥११८

के शिर एवं दोनों पार्श्वभाग में आधात किया । उस समय दण्ड से आहत काल साँप की भाँति अत्यन्त कुद्ध होकर इस बलवान् ने अपने घोड़े को आकाश में उड़ाकर उनके रथ के ऊपर पहुँचते ही अपने घोड़े के चरणपात द्वारा उन्हें विरथ कर दिया । अनन्तर उस राजा ने अपनी तलवार द्वारा उस बेंदुल घोड़े के ऊपर अंगों में प्रहार करके उदयसिंह से कहा—तुमने अनेक बड़े-बड़े राजाओं पर विजय अवश्य प्राप्त की है, किन्तु तुम्हारी इस चञ्चल माया का नाश करके ही मैं सुखी हो सकूँगा और मेरी कीर्ति भी तभी दिग्दिगन्तों में विस्तृत हो सकेगी । ऐसा कहते हुए उस राजा के मस्तक को उदयसिंह ने अपनी तलवार से छिन्न-भिन्न कर दिया । अंगाधीश्वर के निधन होने पर उनके दश-पुत्रों ने उन्हें धेरकर आधात करना चाहा, पर बीच में इन्दुल ने अपने बाणों द्वारा उनके पाँच पुत्रों को धराशायी कर दिया । दो पुत्रों को देवसिंह ने अपने भाले द्वारा हनन किया और बड़े पुत्र को जगनायक एवं शेष दो पुत्रों को स्वयं उदयसिंह ने स्वर्गीय बनाया । पश्चात् उस प्रदोष के समय शंखों की रुचिरध्वनि करते हुए उन लोगों ने अपने शिविरों को प्रस्थान किया । भ्रान्त होने के नाते रात में सुखनीद शयन करने के उपरांत प्रातः काल अपने नित्य-कर्म करके राजा के पास सभा में पहुँचकर उन लोगों ने कहा—चन्द्रवंशिन् ! आज सेनापति कौन बनाया जायगा । यह हमें बताने की कृपा करें । १६-१७। उसे सुनकर राजा ने कहा—कामसेन समेत अपने सैनिकों को साथ लेकर वीरसेन आज रणस्थल में पहुँचेंगे । इसलिए तुम लोग उनकी रक्षा करने में

स वीरसेनो नृपति प्रणम्य लक्ष्मैः स्वसैन्यैर्युधि सञ्जगाम ।
 तदा नहीराजदृपः प्रतापी स नागवर्मणियुवाच तापी ॥११९
 रथाय गच्छाशु सुतैः समेतो लक्ष्मैः स्वसैन्यैरुत भूपवर्य ।
 हृत्वा रिषु घोरतमं हि वीरं पर्ति महान्तं युधि वीरसेनम् ॥१२०
 इत्युक्तवन्तं नृपति प्रणम्य सुवादयामास तदा हि वीरः ।
 तयोर्बभूवाशु रणो महान्ते सुसेनयोः सङ्कुलयुद्धकर्त्रोः ॥१२१
 त्रियाममात्रेण हताश्च सर्वे विमानमारह्य ययुश्च नाकम् ।
 हतेषु सर्वेषु च नागदर्मा सुतेषु वै याइवभूपमाह ॥१२२
 भवान्विसैन्यश्च तथैव चाहं भवान्सपुत्रश्च तथाहमेव ।
 संस्मृत्य धर्मं कुरु युद्धमाशु ततो रथस्थः सुधनुर्गृहीत्वा ॥१२३
 बागैश्च बाणान्भुवितौ च छित्त्वा बभूवस्तुस्तौ विरथौ नृपाश्यौ ।
 खड्गेन खड्गं च तथैव छित्त्वा विमानमारह्य गतौ हि नाकम् ॥१२४
 स कामसेनः स्वरिपोश्च पुत्राऽन्यान बाणैश्च तदाष्टसङ्ख्यान् ।
 ज्येष्ठौ तदा कोपसमन्वितौ तं गृहीतखड्गौ च समीयतुश्च ॥१२५
 रिषोः शिरो जहूरुप्रवेगौ सकामसेनश्च कबन्ध एव ।
 हृत्वा रिषु तौ च तदा मिलित्वा स्वर्गं ययुस्ते च विमानरुद्धाः ॥१२६
 हतेषु सर्वेषु तदा त्रयस्ते चामुण्डकाद्या जगनायकं ते ।
 रुद्धवः समेताः स्वशरैः कठोरैर्जन्मुस्तमश्च दृरिनागरं च ॥१२७

भावधान रहना । जिस समय वीरसेन ने राजा परिमल के नमस्कार पूर्वक अपने सैनिकों गमेत उस रणस्थल में प्रस्थान किया, उस प्रतापी राजा पृथ्वीराज ने नागवर्मा को बुलाकर कहा—नृपशेष ! अपने पुत्रों एवं एक लाख सैनिकों समेत आप उस रणभूमि में शीघ्र पहुँचकर अत्यन्त घोर शत्रु उस वीरसेन को पराजित कर विजय प्राप्त कीजिये । इसे सुनकर उस राजा ने उन्हें प्रणामपूर्वक रणभूमि की तैयारी किया । वहाँ पहुँच दोनों सैनिकों का घोर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें तीन पहर के भीतर सभी सैनिक धराशायी होने के नाते सुन्दर विमान द्वारा स्वर्ग पहुँच गये । सभी सैनिकों के निधन हो जाने पर नागवर्मा ने यादववंशी वीरसेन से कहा—आपके समान मैं भी विरथ होकर इस रणभूमि में पुत्रों समेत उपस्थित हूँ, अतः समानता के नाते धर्म के स्मरण पूर्वक युद्ध करने की कृपा कीजिये । इसके पश्चात् दोनों वीरों ने धनुष-बाण लेकर एक दूसरे के ऊपर प्रहार करना आरम्भ किया । धनुष बाण को छिन्न-भिन्न करने के उपरांत खड्ग युद्ध द्वारा उन दोनों राजाओं ने एक दूसरे को धराशायी करते हुए सुन्दर विमान पर बैठकर स्वर्ग की यात्रा की । ११८-१२६ । पश्चात् कामसेन ने शत्रु के उन आठ पुत्रों का अपने बाणों द्वारा निधन किया । तदनन्तर उन पुत्रों के बड़े एवं मध्यम भाइयों ने वहाँ पहुँचकर अपने खड्ग द्वारा कामसेन के शिर को उनके शरीर से पृथक् कर दिया । शिर के भूमि में गिर जाने पर कामसेन के कबंध ने उन दोनों अपने शत्रुओं का हनन किया । इस प्रकार वे सब आपस में मिलकर सुन्दर विमान पर सुखासीन होते हुए स्वर्ग चले गये । उन सभी लोगों के निधन हो जाने पर चामुण्ड (चौदू) आदि उन तीनों वीरों ने जगनायक को चारों ओर से धेर अपने कठोर बाणों द्वारा उन्हें तथा उनके घोड़े दृरिनागर को पीड़ित करना आरम्भ किया ।

स दिव्यवाजीं च तदा स्वपक्षौ प्रसार्य खेनाशुरिपुं जगाम ।
 स धुन्धुकारस्य गजं विहत्य चामुण्डकस्यैव गजं विमर्द्य ॥१२८
 रथं च भूमौ भगदत्तकस्य विचूर्णं शीघ्रं च नभो जगाम ।
 प्रवाद्य शङ्खं जगनायकश्च कृष्णांशसामागम्य कथां चकार ॥१२९
 निशामुषित्वा जगनायकाद्याः प्रातः समुत्थाय रणं प्रजग्नुः ।
 तदा महीराज उताशुकारो स किञ्चरेण कणकं सपुत्रम् ॥१३०
 उदाच राजच्छृणु किञ्चराणां महाबलास्ते रिपवो ममैते ।
 यिनाशयाशु प्रबलारिघाताद्वैर्न सार्दु युधि वै मनुष्याः ॥१३१
 इत्युक्तवान्मङ्गुणभूपतिस्तु यथौ सपुत्रोऽयुतसैन्यपश्च ।
 तमागतं तत्र विलोक्य राजा वीरान्त्वकीयाश्च समादिदेश ॥१३२
 मन्त्रेरथस्थो जगनायकश्च स तालनो वै वडवां विगृह्य ।
 कशालसंस्थश्च तदा जयन्तो विगृह्य चापं तरसा जगाम ॥१३३
 पपीहकस्थश्च स रूपणो वै जगाम कृष्णांशसमन्वितश्च ।
 स लल्लसिंहो गजपत्तसंस्थः स धान्यपालो हयमारुरोह ॥१३४
 समन्ततः किञ्चरसैन्यधोरं विनाशयामासुरुपांशुखडगैः ।
 विनश्यमाने त्रिसहस्रसैन्ये स किञ्चरेणस्तरसा जगाम ॥१३५
 ध्यात्वा कुबेरं च गृहीतचापो नभोगतस्तत्र बभूव सूक्ष्मः ॥१३६

तदुपरात उस दिव्य अश्व ने अपने पंख फैलाकर ऊपर नभ में जाकर पुनः लौटकर धुन्धुकार (धांधू) और चामुण्ड (धोंडा) के गज का मर्दन करते हुए भगदत्त के रथ को चक्रनाचूर कर दिया और स्वयं आकाश में उड़ गया । उस समय जगनायक ने अपने विजय शंख की ध्वनि करते हुए उदयसिंह के पास आकर उनसे समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । रात्रि के व्यतीत हो जाने पर प्रातः काल नित्यकर्म करने के उपरात जगनायक आदि वीरों ने रणस्थल में प्रस्थान किया । उस समय पृथ्वीराज ने किञ्चरेण मंकण को बुलाकर कहा—राजन् ! मेरे उन प्रबल शत्रुओं के विनाशार्थ आप रणक्षेत्र में पहुँचने की शीघ्रता करें । आज देवताओं के साथ मनुष्यों का युद्ध होगा दयापि ऐसा कभी हुआ नहीं है । उनके इतना कहने पर अपने पुत्रों एवं किञ्चर सैनिकों समेत राजा मंकण युद्धस्थल में पहुँच गए । वहाँ उन्हें आये हुए देखकर राजा परिमल ने अपने वीरों को आदेश दिया । मनोरथ पर बैठकर जगनायक, सिंहनी धोड़ी पर तालन, कराल अश्व पर जयन्त (इन्दुल) जो धनुष लेकर शीघ्रता से गमन कर रहे थे, पपीहा पर रूपन, उदयसिंह, हाँथी पर लल्लसिंह और धोड़े पर बैठे हुए धान्यपाल रणोन्मुख होकर अपने सैनिकों समेत धावा बोलते हुए जा रहे थे । इन लोगों ने वहाँ पहुँचकर उन किञ्चर सैनिकों को चारों ओर से घेरकर उन्हें आहत करना आरम्भ किया । अपने तीन सहस्र सैनिकों के विनष्ट हो जाने पर किञ्चरेण मंकण ने आकाश में अन्तर्हित होकर कुबेर के ध्यानपूर्वक अपने कठोर वाणों द्वारा शत्रु सैनिकों को मर्माहत

१. गमर्था इति शेषः ।

बदृश्यमानः स्वशरैः कठोरैर्विनद्य सर्वान्हि ननर्द घोरम् ।
 विलप्यमाते च समस्तशूरे जयन्त एवाशु जगाम शत्रुम् !!१३७
 ध्यात्वा महेन्द्रं कणकं च बद्ध्वा कृष्णांश्शागम्य पदौ ननाम ;
 तदा तु ते रात्रुसहस्रैन्ये निशम्य बद्धं कणकं निजेन्द्रम् !!१३८
 दिनर्थ घोरं रुधुश्च सर्वान्मायाविनो गृह्यकमस्त्रशूरुः ।
 दिनेषु सप्तेषुः तथा निशातु लृष्टव युद्धं च समन्ततस्तैः !!१३९
 श्रामान्विताः सप्त महाप्रीरा हतेषु सर्वेषु सुषुपुश्च वै यदाैः ।
 तदा कुबेरं कणकश्च ध्यात्वा लब्ध्वा वरं दन्धनमाशु छित्या !!१४०
 मुजान्तसमुत्थय च सप्त शूरान्निशीथकाते स चकार युद्धम् ।
 जित्वा च तान्वट् स वरप्रभादः तदेन्दुलेनैव रणं चकार !!१४१
 गृहीतखड्गौ रणघोरमतौ हत्वा ततो वै भुवि चेगतुश्च ।
 प्रजगमतुर्नाकिमुपान्तदेवौ संस्तूयमानौ सुरसत्तनैश्च !!१४२
 ततः प्रभाते विमले विजाते रुरोद रामांश उताललाप ।
 पापैः कलापैः परिपीडचमानः कुलान्वितः सर्वयुतो मुनीन्द्र !!१४३
 स पञ्चशब्दं गजमारुरोह त्रिलक्षसैन्यस्तरसा जगाम ।
 तदा महीराज उताह शृण्वनाच्छङ्खमद्यैव मया समेताः !!१४४

करना आरम्भ किया उसकी घोर गर्जना एवं कठोर प्रहार से त्रस्त होकर वे सब विलाप करने लगे ; उसी समय शूरप्रबर इन्दुल यहाँ शत्रु के सम्मुख पहुँच गया । १२७-१३६। उसने महेन्द्र के ध्यानपूर्वक मंकण को बाँध लिया और उदयसिंह के पास पहुँचकर उनकी चरणवन्दना की । उस समय उन किन्नर सैनिकों ने अपने स्वामी मंकण को बैंधा हुआ जानकर अपने गुह्यक अस्त्रों का प्रयोग किया, जिससे सात दिन तक लगातार रात-दिन युद्ध होता रहा । उस युद्ध में सैनिकों के निधन होने के उपरांत भ्रान्त होकर उन सातों वीरों के शश्यन करने पर मंकण ने कुबेर का ध्यान करके उनके द्वारा वरदान की प्राप्तिपूर्वक अपने बंधनों को काट दिया । और उसी आधीरात के समय उन शश्यन किये हुए वीरों को जगाकर उनसे युद्ध करना आरम्भ किया । उन प्रभावशाली छें वीरों को पराजित करने के उपरांत मंकण ने इन्दुल के साथ खड्ग युद्ध करना आरम्भ किया । मदोन्मत्त होकर उन दोनों ने एक दूसरे के ऊपर अचूक खड्ग प्रहार किया, जिससे निधन होने पर वे दोनों थ्रेष्ठ देवों से स्तुत होते हुए स्वर्ग चले गये । मुनीन्द्र ! प्रातः काल के समय इन्दुल के मृत्यु समाचार मिलने पर सपरिवार आल्हा ने रुदन किया पश्चात् तीन लाख सैनिकों ममेत अपने पंचशब्द नामक गजराज पर बैठकर रण की ओर वेग से प्रस्थान किया । उधर पुर्वीराज ने भी अपने शूर-सामन्तों को ‘मेरे साथ रण में चलने की तैयारी करो’ यह आदेश देकर अपने पाँच लाख शूरवीरों

स्वपञ्चलक्षः प्रबलैश्च शूरैः सार्द्धे रुरोधाशु रिपोश्च सेनाम् ।
 तयोर्बन्नवाशु रणः प्रघोरो विनर्दतेर्युद्धनिमित्तनाशु ॥१४५
 त्रिमात्रमात्रेण हताश्च सर्वे द्वयोश्च पक्षा बलसालिनश्च ।
 तदः महीराज उताद्यौ वै समण्डलोकश्च धनुर्विगृह ॥१४६
 स धुंथुकारश्च तदा जगाम रथस्थितं लक्षणमुग्रवीरम् ।
 तदोदयो वै भगदत्तप्रेव चामुण्डकं भीष्मकराजशूनुः ॥१४७
 स पञ्चशब्दं गजमास्तितो दै गतः स एवाशु जगाम भूपम् ।
 धनुर्विगृहाशुगमुल्बणं च नृपस्थितश्चाथ भयङ्करं च ॥१४८
 गजं प्रमत्तं शिवदत्तमुग्रमाल्लादहन्तारभुवाच वाक्यम् ।
 अये प्रभत्ताग्रजेन्द्रश्चर जयं च ये देहि शिवप्रदत्त ॥१४९
 स मण्डलीको रणदुर्मदश्च रामांशं आल्लाद इति प्रसिद्धः ।
 तस्माच्च मां रक्ष जवेन हस्तिन्महाबलात्काल रसाच्च वैरात् ॥१५०
 इत्येवमुत्तो नृपांति स हस्ती वचत्तमःहाशु शृजुष्व राजन् ।
 यावदहं वै तनु जीवधारो तावद्वावच्छन्त्रुभयङ्करश्च ॥१५१
 इत्युत्तदन्तं च गजं प्रमत्तं स पञ्चशब्दश्च तदा स्वदन्तः ।
 मुखं चतुर्भिश्च विदार्य शत्रोर्नई घोरं स महेन्द्रदत्तः ॥१५२
 स रुद्रदत्तश्च गजः प्रमत्तो रुषान्वधावतरसा गजेन्द्रम् ।
 रिपुं स्वपदभ्यां च चलान कुम्भैः स्वतुण्डदण्डेन तुदं^१ प्रकुर्वन् ॥१५३

समेत वहाँ पहुँचकर शत्रु की सेना को चारों ओर से घेर लिया । वे दोनों सैनिक उस रणस्थल में सिंहनाद की गर्जना करके आपस में युद्ध कर रहे थे जिसमें तीन प्रहर के भीतर उस युद्ध में दोनों ओर के शूर वीरण आहत हो गये । उस समय पृथ्वीराज और मण्डलीक आल्लाद (आल्हा) का अपने-अपने धनुष बाण समेत उस युद्धभूमि में आगमन हुआ । उस युद्ध में उग्रवीर राजा लक्षण (लाखन) से धुंथुकार (धांधू) का, उदयसिंह से भगदत्त का और देवसिंह से चामुण्ड (चौड़ा) का युद्धारम्भ हुआ । पञ्चशब्द नामक गजराज पर बैठकर भयंकर नामक गजपर बैठकर पृथ्वीराज ने उसी बीच शिवप्रदत्त उस मन गजेन्द्र से कहा—शिवप्रदत्त मत्तगजेन्द्र ! रणविजय मेरी ही हो और रण दुर्मदान्ध एवं मण्डलीक नामक उस प्रत्यात आल्लाद (आल्हा) शत्रु से मेरी रक्षा करो । हस्तिन् ! वह महाबली मेरा कालरूप है । इस प्रकार उनके कहने पर उस हाथी ने उनसे कहा—राजन् ! मेरी एक बात अवश्य स्वीकार करो—जब तक मैं इस शरीर को धारण किये रहूँगा, तब तक आप शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष रहेंगे । इस प्रकार कहने वाले उस शत्रु के हाथी के मुख को महेन्द्रप्रदत्त उस पञ्चशब्द नामक गजराज ने अपने चारों दाँतों द्वारा विदीर्ण कर दिया । पश्चात् मदोन्मत्त उस रुद्रप्रदत्त गजराज ने वेग से दौड़कर अपने शत्रु गजेन्द्र के ऊपर अपने मुण्ड-दण्ड से प्रहार करते हुए कुम्भस्थल एवं चरणों में पीड़ितकर उसे मूर्छित कर

१. घवजर्थे कः ।

अवाप सूच्छीं च स पञ्चशब्दस्तदाशु भूपं प्रति भण्डलीकः ।
 स्वतोमरेणःङ्गवणं प्रदाय खड्गेन हत्वा गजराजमुग्रम् ॥
 जगामपद्भ्यां स रिपुप्रमाथी यत्र स्थितश्वेन्दुल उग्रधन्वा ॥ १५४
 उत्थाप्य पुत्रं च दिलप्यस्ततः पत्नीं स्वकीयं प्रति चाजगाम ।
 तदा प्रभत्तौ च गजौ सुमूच्छीं त्यक्त्वा पुनश्चकतुरेव युद्धम् ॥ १५५
 स लक्षणः खड्गवरेण बाणान्निरपोश्च छित्वा निजवैष्णवास्त्रम् ।
 दधार चाये च सुमन्त्रयित्वा सधुन्धकारं च गजं ददाह ॥ १५६
 हते च तस्मिन्निजमुख्यबन्धौ सभूमिराजश्च गृहीतचायः ।
 शरेण रौद्रेण च लक्षणं तं जघान तत्रादिभयङ्गरस्थः ॥ १५७
 स मूर्छितः शुक्लकुलेषु सूर्यस्तदोदयो वै भगदत्तसेव ।
 सुमूच्छयित्वा च जगाम शीघ्रं यत्र स्थितो लक्षण एकवीरः ॥ १५८
 भयान्वितस्तं च विलोक्य राजा जवेन दुद्राव च रक्तबीजम् ।
 तदा सुदेवं च स रक्तबीजो जित्वा तु कृजांशयुतं जगाम ॥ १५९
 बाणेन शीघ्रं स च मूर्छयित्वा पुनश्च देवं च स मूर्छयित्वा ।
 तद्बन्धनायोद्यत आशुकारी स लक्षणस्तत्र तदा जगाम ॥ १६०
 प्रधाय चाये च स वैष्णवास्त्रं प्रचोदयामास च रक्तबीजे ।
 तदा स सामन्तसुतो बलीयान्नरं विहायाशु विलोक्य सन्ध्याम् ॥
 भयान्वितः स्वैश्च युतो यथौ वै यत्र स्थिता भूपतयः सकोपाः ॥ १६१

दिया । पंचशब्द नामक अपने गजेन्द्र के मूर्छित हो जाने पर आल्हाद (आल्हा) ने अपने तोमर अस्त्र द्वारा पृथ्वीराज के शरीर में महान् व्रण (धाव) करने के अनन्तर उनके गजराज पर खड्ग का आघात किया । पश्चात् शत्रुहन्ता आल्हा पैदल ही वहाँ चले गये, जहाँ रणस्थल में इन्दुल नामक उनका उग्र धनुर्धर पुत्र पड़ा हुआ था । १३७-१५४। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उसे उठाकर विलाप किया । तदन्तर उसे लेकर वे अपनी रोती कलपती स्त्री के पास पहुँचे । इधर उन मतवाले गजराजों ने चेतना प्राप्त होने पर पुनः युद्ध करना आरम्भ किया । उस समय वीर लक्षण (लाखन) उत्तम खड्ग द्वारा शत्रु के वाणों को काटकर पुनः धनुष पर वैष्णवास्त्र बाण के समंत्रक प्रयोग द्वारा धूंधुकार (धांधू) समेत उसके गज को भी दग्ध कर दिया । अपने निजी एवं मुख्य बंधु के निधन हो जाने पर पृथ्वीराज ने अपने आदि भयंकर नामक गज पर बैठकर अपने रौद्र बाण द्वारा लक्षण (लाखन) पर प्रहार किया । उस चन्द्रवंशी सूर्य के मूर्छित हो जाने पर उदयसिंह ने भगदत्त को मूर्छित कर अकेले पड़े हुए लक्षण (लाखन) के पास शीघ्र पहुँचने का प्रयत्न किया । राज पृथ्वीराज उन्हें वहाँ आते हुए देखकर भयभीत होकर तेजी से भागते हुए रक्तबीज के पास चले गये । उस समय रक्तबीज ने देवसिंह को पराजित कर उदयसिंह के पास पहुँचकर उन्हें मूर्छित कर दिया । और चेतना प्राप्तकर देवसिंह के वहाँ पहुँचने पर उन्हें भी । उसे देखकर रणकुशल लक्षण (लाखन) ने उसके बंधन में वहाँ पहुँचकर धनुष पर अपने वैष्णवास्त्र का अनुसधान कर रक्तबीज को ललकारा । उस समय सामन्त पुत्र रक्तबीज (भयभीत होकर) संध्या समय देखते हुए रण से पलायन कर राजाओं के बीच में छिप गया । जो अत्यन्त क्रुद्ध होकर वहाँ स्थित थे । शत्रु को भागते हुए

विलोक्य शत्रुं च स रत्नभानोः सुतो यथौ वै शिविराणि युक्तः ।

निशम्य भूपः स च चन्द्रवंशी जयं स्वकीयं सुषुपुस्तु ते वै ॥

प्रातश्च काले स च चन्द्रवंशी विलोक्य शुक्लान्वयमाह भूपम् ॥१६२

अये गुर्जरदेशीय मूलवर्मन्स्तुतैः सह । लक्षसैन्यान्वितो भूत्वा गत्तुभर्हतु वै भवात् ॥१६३

इत्युक्तः स तु भूपालो युद्धभूमिमुण्डयथौ । महीराजान्या प्राप्तो भास्मा पूर्णमिलो बली ॥१६४

दशपुत्रान्वितो युद्धे सैन्यलक्षणे संयुतः । तयोर्भासीन्भहृद्ध यामद्वयमुपस्थितश् ॥१६५

हतेषु तेषु सर्वेषु तौ नृपौ समूत्तर्बलौ । अर्देऽन्येन रणं कृत्वा यमलोकमुवागतौ ॥१६६

मार्गकृष्णचतुर्दश्यां प्रभाते विमले रवौ । कैकयो लक्षसेनाठचो इयापुत्रसमन्वितः ॥

लक्षणानुज्ञयः प्राप्तस्तस्मिन्युधि भयानके ॥१६७

मद्रकेशस्तदा राजा दशपुत्रसमन्वितः । लक्षसैन्यान्वितस्तत्र यत्र युद्धं रामन्वसूत् ॥

परथपरं हताः सर्वे दिनान्ते क्षत्रियारणे ॥१६८

पुनः प्रभाते विमले भगदत्तो मृदूबली । त्रिलक्षबलसंयुक्तो जगर्ज रणमूर्द्धनि ॥१६९

दृष्ट्वा तं लक्षणो दीरस्त्रिलक्षबलसंयुतः । चकार तु मुलं घोरसेन्या च स्वकीया ॥१७०

अपराह्ने हताः सर्वे सैनिका नृपयोस्तदा । भगदत्तः स्वयं कृद्धो रथस्थो लक्षणं यथौ ॥१७१

लक्षणो रथमारुद्ध स्वपितुः शत्रुं नृपम् । त्रिभिर्वर्णैश्च सन्तोद्य भल्लेन समताडयत् ॥१७२

देखकर रत्न भानु पुत्र लक्षण (लाखन) भी अपने शिविर में चले गये उस समय चन्द्रवंशी राजा परिमल ने अपनी विजय सुनकर हर्षित होते हुए उन लोगों के साथ शयन किया । प्रातःकाल नित्यकर्म समाप्ति के थनन्तर चन्द्रवंशी राजा परिमल ने चन्द्रवंशी एक राजा से कहा- अये गुजरात देश के अधीश्वर मूलवर्मन् ! अपने पुत्रों एवं एक लाख सैनिकों समेत आप रणभूमि के लिए प्रस्थान कीजिये । इस प्रकार कहने पर उस राजा ने रणक्षेत्र के लिए शीघ्र प्रस्थान किया । इधर राजा पृथ्वीराज की आज्ञा पाकर बलवान् राजा पूर्णमिल भी अपने दशपुत्रों एवं एक लाख सैनिकों समेत वहाँ पहुँच गगे । दोपहर तक उन दोनों सैनिकों का घोर युद्ध हुआ, जिसमें उन दोनों के सैनिक धराशायी हो गये । सैनिकों के निधन हो जाने पर पुत्रों समेत उन दोनों नरेशों ने एक दूसरे के प्रहार द्वारा प्राण परित्याग कर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया । मार्गशीर्ष (अगहन) मास में कृष्ण चतुर्दशी के दिन प्रातः काल निर्भल सूर्य के उदय होने पर पुत्रों समेत एवं एक लाख सैनिकों को लेकर राजा कैकय रण में उपस्थित हो गये । उस समय राजा मद्रकेश ने भी दश पुत्रों और एक लाख की सेना लेकर युद्धार्थ वहाँ प्रस्थान किया । उस रणस्थल में दोनों सैनिकों तथा राजाओं का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । संध्या समय तक वे क्षत्रीगण एक दूसरे को आहतकर स्वर्गीय हो गये । उसके दूसरे दिन प्रातः काल के समय महाबली राजा भगदत्त अपनी तीन लाख सेना लेकर रणभूमि में पहुँचे । उसे देखकर वीर लक्षण (लाखन) भी अपने तीन लाख सैनिकों समेत वहाँ पहुँचकर घोर संग्राम करने लगे । १५५-१७०। अपराह्न समय तक दोनों राजाओं की सेना आपस में लड़कर समाप्त हो गई । पश्चात् रथपर बैठे भगदत्त लक्षण (लाखन) के सम्मुख पहुँचे । लक्षण (लाखन) ने भी अपने पैतृक शत्रुपुत्र को देखकर तीनों वाणों एवं भाले का साथ ही प्रहार किया । उस

भगदत्तस्तदा कुद्दो विरथं तं चकार ह । कुद्दवन्तं रिपुं घोरं लक्षणः खड्गपाणिकः ॥

हृत्वः हयांस्तथा सूतं भगदत्तमुपाययौ ॥ १७३

मर्दयित्वा च तच्चर्म च्छित्वा वर्म तदुद्भवम् । त्रिधा चकार बलवान्भगदत्तं रिपोत्सुतम् ॥ १७४

सन्ध्याकाले हते तस्मिल्लक्षणस्त्वरथान्वितः । एकाकी शिविरं प्राप्तो हर्सितन्युपरि संस्थितः ॥ १७५

भगदत्ते हते तस्मिन्स राजा क्रोधमूर्छितः । स्वकीयान्सर्वभूपांश्च चामुण्डेन समन्वितान् ॥

प्रेषयत्मास युद्धाय मर्मे च प्रतिपद्दिने ॥ १७६

अङ्गदश्च कलिङ्गश्च त्रिकोणः श्रीपतिस्तथा । श्रीतारश्च मुकुन्दश्च रुहिलो गुहिलस्तथा ॥ १७७

सुकेतुर्नव भूपास्ते नवायुतबलैर्युताः । दाद्यानि वाद्यामासुस्तस्मिन्युद्भवहोत्सवे ॥ १७८

दृष्ट्वा ताँलक्षणे वीरो राजभिश्च स्वकीयकैः । सार्द्धं जगाम युद्धाय तथा व्यूहायुधद्विपून् ॥ १७९

रुद्रवर्मा च नृपतिः शूरर्देशसहस्रकैः । अङ्गदं वैरिणं मत्वा तेन सार्द्धमयुध्यत् ॥ १८०

कालीवर्मायुतस्सार्धं कलिङ्गं प्रत्ययुध्यत । वीरसिंहोयुतस्सार्द्धं त्रिकोणं प्रत्ययुध्यत ॥ १८१

ततोऽनुजः प्रवीरश्च श्रीपतिं स्तोऽयुतैस्सह । नृपः सूर्यो धरो वीरोऽयुतऽदधे बलवान्रणे ।

श्रीतारं नृपमासाद्य महद्युद्धमचाकरत् ॥ १८२

वामनोऽयुतसंयुक्तो मुकुन्दं प्रति सोऽगमत् । गङ्गासिंहश्च बलवान्महिलं प्रति सायुतः ॥ १८३

लल्लसिंहोऽयुतस्सार्द्धं गुहिलं प्रति सोऽगमत् । त्रिशतानि ततो भूपाः सहस्राद्याः पृथक्यृथक् ॥ १८४

क्षुद्रभूपाः क्षुद्रभूपास्त्रिशतानि समाययुः । अन्योऽन्येन हताः सर्वे कृत्वा युद्धं भयानकम् ॥ १८५

समय कुद्द होकर भगदत्त ने उन्हें रथहीन कर दिया । उस कुद्द एवं चोर शत्रु को देखकर लक्षण (लाखन) ने अपने खडग द्वारा उनके धोड़े और सारथी के निधन करने के उपरांत उन भगदत्त का सामना किया । उस बलवान् ने उसी खडग द्वारा शत्रुपुत्र भगदत्त के कवच और चर्म (दाल) को छिन्न-भिन्न करते हुए उनकी शारीर में तीन खंड कर दिया । संध्या समय उस शत्रु के हनन हो जाने पर लक्षण (लाखन) हाथी पर बैठे हुए अपने शिविर में अकेले ही पहुँचे । भगदत्त के स्वर्गीय होने पर राजा पृथ्वीराज ने अत्यन्त कुद्द होकर चामुण्ड के साथ सभी राजाओं को रणस्थल में भेजा । मार्गशीर्षी के शुक्ल प्रतिपदा के दिन उस रणस्थल में उपस्थित राजवृन्दों का धोर युद्धारम्भ हुआ, जिसमें पृथ्वीराज की ओर से राजा अंगद कलिंग, त्रिकोण, श्रीपति, श्रीतार, मुकुद, सहिल गुहिल, सुकेतु, और नब्बे सहस्र सैनिकों समेत वे नव राज गण वहाँ उपस्थित होकर उस युद्ध महोत्सव के उपलक्ष में अनेक भाँति के वाद्य बजवा रहे थे । उसे देखकर वीर लक्षण (लाखन) ने भी अपने राजाओं समेत वहाँ रणभूमि में पहुँचकर व्यूह रचना द्वारा शत्रुओं को धेर लिया । उस युद्ध में राजा रुद्रवर्मा अपने दशसहस्र शूरवीरों समेत एवं शत्रु अंगद राजा के साथ युद्ध कर रहे थे । उसी प्रकार दशसहस्र सैनिकों समेत कालीवर्मा कलिंग के साथ, दशसहस्र सेना समेत वीरसिंह त्रिकोण के साथ, उतने ही सैनिक लेकर उनके छोटे भाई प्रवीर श्रीपति के साथ और वीर एवं बली राजा सूर्यधर दश सहस्र सेना लेकर राजा श्रीतार के साथ भीषण युद्ध कर रहे थे । मुकुंद के साथ वामन, माहिल के साथ बलवान् गंगासिंह, और गुहिल के साथ लल्लसिंह अपने-अपने दश सहस्र सैनिकों समेत वहाँ युद्ध में मग्न थे । उनमें अन्य तीन सौ छोटे राजगण थे, जो वहाँ एक दूसरे से भयानक युद्ध करके सर्वप्रथम विनष्ट हो गये । १७१-१८५। उन नृपों के निधन देखकर चामुण्ड (चौंडा) ने लक्षण (लाखन) के

चामुण्डस्तु तदा दृष्टा का मृतकान्सर्वभूपतीन् । लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धं चकार ह ॥१८६
 लक्षणो रक्तबीजं तं ज्ञात्वा ब्राह्मणसंमतम् । वैष्णवास्त्रं तदा तस्मै न ददौ तेन पीडितः ॥१८७
 सायङ्गाले तु सम्प्राप्ते लक्षणो हस्तिनीस्थितः । एकाद्वयी शिविरं प्राप्तश्चामुण्डं नृपमाययौ ॥१८८
 द्वितीयायां प्रभाते च कृष्णांशो देवसंयुतः । शूरैर्दशसहस्रैश्च युद्धभूमिमुपाययौ ॥१८९
 तारकश्च स चामुण्डो द्विलक्षबलसंयुतः । द्विशतैश्च तथा भूपैः सार्द्धं युद्धमुपस्थितौ ॥१९०
 पुरस्कृत्य नृपान्सर्वान्सैन्यौ बलवत्तरौ । तेषामनुस्थितौ युद्धे तत्र जातो महारणः ॥१९१
 याममात्रेण तौ वीरौ हत्वा सर्वमहीपतीन् । लक्षसैन्यान्तरथा हत्वा संस्थितौ शम्खर्जितौ ॥१९२
 चामुण्डस्तारको धूर्तः सम्प्राप्तौ छिद्रदर्शिनौ । ताभ्यां शम्भान्विताभ्यां च चक्रतुस्तौ समं रणम् ॥१९३
 तेषां त्रियाम्भमात्रेण सम्भूत भवति । सायङ्गाले तु सम्प्राप्ते कृष्णांशश्च निरायुधः ॥
 तलप्रहरेण रिपुं मूर्च्छ्यदामास वीर्यवान् ॥१९४
 एतमिन्नतरे वीरस्तारको देवर्सिहकम् । हयं मनोरथं हत्वाशह्नशब्दभयाकरोत् ॥१९५
 तच्छब्दात्स च चामुण्डस्त्यक्त्वा मूर्च्छी महाबलः । कृष्णांशस्य शिरः कायादपहृत्य च वेगवान् ॥
 तयोर्गृहीत्वा शिरसी महीराजमुपाययौ ॥१९६
 महीराजस्तु ते दृष्ट्वा भरमानन्दनिर्भरः । इत्वा दानं द्विजातिभ्यो महोत्सवमकारयत् ॥१९७
 लक्षणस्य तदा सैन्ये हाहाशब्दो महानभूत् । श्रुत्वा कोलाहलं तेषां ज्ञात्वा तौ च हतौ नृपः ॥

पास पहुँचकर उनसे महान् युद्ध किया । उसके द्वारा पीडित होने पर भी लक्षण (लाखन) ने उसे ब्राह्मण समझकर उसके ऊपर अपने वैष्णवास्त्र का प्रयोग नहीं किया । संध्या समय लक्षण (लाखन) हथिनी पर बैठे अकेले ही शिविर में पहुँचे और चामुण्ड (चौंडा) राजा पृथ्वीराज के पास । द्वितीया के दिन प्रातःकाल देवर्सिह समेत उदयर्सिह दशसहस्र सेना लेकर उस रण में पहुँचे । उस तारक (ताहर) और चामुण्ड (चौंडा) भी अपने दो लाख सैनिकों तथा दो सौ राजाओं को लेकर वहाँ पहुँच गये । अन्य राजाओं को आगे कर सेना समेत दोनों ओर के प्रधान वीरों ने उनके पीछे रहकर उस दिन भीषण संग्राम किया, जिसमें उदयर्सिह और देवर्सिह ने एक प्रहर के भीतर उन समस्त राजाओं के विनाश पूर्वक उनके एक लाख सैनिकों का भी निधन कर दिया, पश्चात् श्रान्त होने के नाते वे वहाँ विश्राम करने लगे । छिद्रान्वेषी एवं धूर्त तारक (ताहर) ने चामुण्ड (चौंडा) को साथ लेकर उन ब्रान्त (थके हुए) वीरों में युद्ध ठान दिया । तीन प्रहर तक दोनों दलों का घमासान युद्ध हआ । संध्या होने पर उदयर्सिह के पास कोई अस्त्र न रह गया, किन्तु उस अवस्था में भी उस पराक्रमशाली ने अपने हाथ के चपेट से शत्रु को मूर्छित कर दिया । उसी बीच तारक (ताहर) ने देवर्सिह समेत उनके घोड़े मनोरथ के भी निधन करके अपनी शंख-ध्वनि किया । उसे सुनकर महाबली चामुण्ड (चौंडा) की मूर्च्छा नष्ट हो गई । उसने अत्यन्त वेग से उदयर्सिह का शिर उनकी शरीर से पृथक् कर दिया । पश्चात् उन दोनों वीरों के शिर लेकर वे दोनों पृथ्वीराज के पास पहुँच गये, जिसे देखकर उन्हें परमानन्द की प्राप्ति हुई । अनन्तर उन्होंने ब्राह्मणों को यथेच्छ दान देकर महान् उत्सव कराया । उन दोनों वीरों के निधन को सुनकर लक्षण (लाखन) की

ब्रह्मानन्दस्तदा शूच्छीं त्यक्त्वा वेलामुवाच ह

॥१९८

प्रिये गज्जठ रणं शीघ्रं हरिनागरमात्प्रिता । मम वेदं शुभं कृत्वा तारकं जहि मा चिरम् ॥१९९
 इति श्रुत्वा दु सा वेला रामांशेन समन्विता । सहस्रशूरसहिता युद्धयुभिमुपाययौ ॥२००
 श्रुत्वा स लक्षणो वीरस्तालनेन समन्वितः । सैन्यैश्च दशसाहत्यैर्महीराजमुपाययौ ॥२०१
 दृतीयायां प्रभाते च तारको बलवत्तरः । ब्रह्मानन्दं च तं गत्वा महद्युद्धमचीकरत् ॥२०२
 रक्तबीजश्च चामुण्डो रामांशो बलवत्तरः । चकार दारुणं युद्धं तस्मिन्वौरसमागमे ॥२०३
 याममात्रेण रामांशो हत्वा तस्य महागजम् । तच्छत्त्राणि तथः छित्तदा मल्लयुद्धमचीकरत् ॥२०४
 त्रियाममात्रेण तदा सायद्वाले समागते । समन्थं आतृहन्तारं स च वीरों समार ह ॥२०५
 तदा वेला महाशत्रुं तारकं बलवत्तरम् । छित्त्वास्त्राणि स्वखड्गेन शिरः कायादपाहरत् ॥२०६
 चितां कृत्वा विधानेन सा देवी द्वृपदात्मजा । ब्रह्मानन्दं नमस्कृत्य तच्चितायां समाख्यत ॥२०७
 तेन सार्द्धं च सा शुद्धं श्वशुरस्याज्ञया मुदा । सप्तजन्मकथां कृत्वा स्वपतेत्तु ददाहु वै ॥२०८
 तच्चितायां च भर्तारमिन्दुलं बलवत्तरम् । संस्थाप्य दाह्यामास तेन सार्द्धं कलेवरम् ॥२०९
 रात्रौ परिमलो राजा तक्षणेन समन्वितः । महीराजमुपागम्य महद्युद्धमकारयत् ॥२१०
 सपादजक्षाश्च तदा हतशेषा महाबलाः । त्रिलक्ष्मैर्हतशेषैश्च सार्द्धं योद्धुमुपस्थिताः ॥२११
 धान्यपालः शतं भूपाँत्लक्षणश्च तथा शतम् । तालनश्च शतं भूपान्त्वा राजानमाययौ ॥२१२
 महीराजस्तदा दुःखी ध्यात्वा रुदं महेश्वरम् । निशीथे समनुश्राप्ते हतशेषस्मागतः ॥

सेना में हाहाकार मच गया । उस कोलाहल को सुनकर ब्रह्मानन्द की मूर्च्छा नष्ट हो गई । उन्होंने वेला से कहा—प्रिये ! हरिनागर नामक घोड़े पर बैठकर तुम शीघ्र रण में पहुँचो । मेरा ही वेष धारणकर तुम तारक (ताहर) का शीघ्र हनन करो विलम्ब मत करो । इसे सुनकर आहलाद के साथ वेला सहस्र दीरों समेत रणस्थल में पहुँच गई । उसे सुनकर वीर लक्षण (लाखन) भी तालन एवं दश सहस्र सैनिकों समेत पृथ्वीराज के पास पहुँच गये । दृतीया के दिन प्रातः काल बलवान् तारक (ताहर) ने उस (वेला) को ब्रह्मानन्द मानकर उसके साथ धोर युद्ध किया । रक्तबीज चामुण्ड (चौंडा) का भी रामांश आल्हा के साथ भीषण युद्ध हुआ । एक प्रहर के भीतर आल्हा ने उसके गज को मार उनके समस्त अस्त्रों को नष्टकर दिया पश्चात् दोनों का मल्लयुद्ध आरम्भ हुआ । तीन प्रहर तक उस युद्ध के होने पर संघर्ष समय वीर आल्हा ने अपने भावृहन्ता चौंडा का मंथन करते हुए निधन किया । १८६-२०५ । उस समय वेला ने भी महाबलवान् उस तारक (ताहर) शत्रु के अस्त्रों को नष्ट करने के उपरांत अपने खड़ग द्वारा उनके शिर को धड़ से पृथक् कर दिया । पश्चात् उस द्वृपदात्मजा देवी ने अपने श्वसुर की आज्ञा प्राप्तकर सविधान चिता लगाकर ब्रह्मानन्द के नमस्कार पूर्वक उनके साथ चिता पर बैठ गई, और पतिसमेत अपने सात जन्म की कथा कहकर पति के साथ भस्म हो गई । उसी चिता में इन्दुल की स्त्री ने भी अपने पति के शव को देखकर उनके साथ अपने कलेवर को भस्म कर दिया । उसी रात्रि के समय अत्यन्त कुद्ध होकर राजा परिमल ने लक्षण (लाखन) समेत पृथ्वीराज के पास पहुँचकर उनसे धोर युद्ध किया । उस समय उनके पास सवालाख सैनिक शेष थे और परिमल राजा की ओर तीन लाख धान्यपाल लक्षण (लाखन) और तालन ने सौ-सौ राजाओं के निधन करके पृथ्वीराज ने पास प्रस्थान किया । उसी समय राजा पृथ्वीराज दुःखी होकर

एकाकी गजमारुह्य ययौ चादिभयङ्करम्	। १२१३
रुद्रदत्तेन ब्राणेन हत्वा परिमतं नृपम् । धान्यपालं तथा हत्वा तालनं बलवत्तरम् ॥	
लक्षणान्तमुपागम्य महद्युद्धमचीकरत्	। १२१४
महीराजस्य रौद्रास्त्रैस्तेन्यास्तर्वे क्षयं गताः । लक्षणं प्रति रौद्रास्त्रं महीराजः समाधेः ॥ १२१५	
तदा तु लक्षणो वीरो वैष्णदरक्षं समादधे । तेनास्त्रेण क्षयं जातो महीराजस्य सायकः ॥	
तेनास्त्रतेजसा राजा महासन्तापमाप्तवान्	। १२१६
ध्यात्वा रुद्रं महादेवं त्यक्त्वा विद्धिं च वैष्णवीम् । स्त्वभल्लेन शिरः कायादपाहरत भूमिपः ॥ १२१७	
हस्तिनी च तदा रुद्धा गजमादिभयङ्करम् । गत्वा युद्धं मुहूर्तेन कृत्वा इर्वग्निपाययौ ॥ १२१८	
उषःकाले च सम्प्राप्ते मलना पतिमुत्तमम् । तच्चितायां समारोप्य ददाह स्वं कलेवरम् ॥ १२१९	
तदा तु देवकी शुद्धं लक्षणं बलवत्तरम् । तालनादीस्तत्था हुत्वा ददाह स्वं कलेवरम् ॥ १२२०	
प्रभाते विभले जाते चतुर्थं भौमवासरे । तथा हुत्वा स्वर्णवतीं कृत्वा तेषां तिलाञ्जलिम् ॥	
ध्यात्वा सर्वन्यौ देवीं स्थिरीभूय स्वयं स्थितः	। १२२१
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कलिर्भार्यासिमन्वितः । वाञ्छितं कलमागम्य तुष्टाव शूक्षण्या गिरा ॥ १२२२	

कलिश्वाच

नम आल्हाद महते सर्वानन्दप्रदायिने । योगेश्वराय शुद्धाय महावतीनिवासिने ॥ १२२३	
रामांशस्त्वं महाबाहो मम पालनतत्परः । कलैकया समागम्य भुवो भारस्त्वयाहृतः ॥ १२२४	

उस आधीरात के समय नहेश्वर भगवान् शंकर के ध्यानार्दिक शेष सौनिकों के साथ अकेले हाँथी पर बैठकर युद्ध करने लगे । उन्होंने रुद्रप्रदत्त वाण द्वारा परिमल धान्यपाल एवं तालन के निधन करने के उपरांत लक्षण (लाखन) के समीप प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर उन्होंने घोर युद्ध किया, जिससे उनके रौद्रास्त्र द्वारा सभी राजवृन्द नष्ट हो गये । पश्चात् पृथ्वीराज ने लक्षण (लाखन) पर प्रहार करने के लिए रौद्रसर का अनुसंधान किया और लक्षण (लाखन) ने अपने वैष्णवास्त्र का । उन अस्त्र द्वारा पृथ्वीराज का वह अस्त्र नष्ट हो गया । तथा उसके तेज से राजा अत्यन्त सन्ताप्त हुए । तदुपरांत पृथ्वीराज ने महादेव रुद्र के ध्यानपूर्वक अपने भल्लास्त्र द्वारा उनके शिर धड़ से पृथक् कर दिया । उस समय लाखन की हथिनी क्रुद्ध होकर गज आदि भयंकर को एक मुहूर्त में पराजित करती हुई स्वयं स्वर्ण चली गई । तदनन्तर उपा काल में रानी मलना ने अपने पति के साथ चिता पर अपनी शरीर भस्म कर दिया । उसी समय देवकी ने भी शुद्ध एवं लक्षण (लाखन) तथा तालन आदि के कलेवर को उसी चिता में डालकर स्वयं अपनी शरीर को भस्म कर दिया । चौथे दिन मंगलवार में प्रातः काल आल्हा मृतक अपनी पत्नी स्वर्णवती (सोना) के शव को उसी चिता में डालकर तथा उन लोगों के लिए तिलाञ्जलि देने के उपरांत सर्वमयी देवी के ध्यानपूर्वक उसी स्थान स्थिर होकर बैठ गये । उसी बीच अपनी भार्या समेत कलि ने वहाँ आकर अपने मनोरथ के सिद्धर्थं नव्राणी द्वारा उनकी स्तुति करना आरम्भ किया । २०६-२२२

कलि ने कहा—सम्पूर्ण आनन्द को देने वाले एवं महान् उस आल्हाद (आल्हा) को नमस्कार है, जो योगेश्वर तथा विशुद्ध होकर महावती (महोवा) में निवास कर रहा है । महाबाहो ! आप राम के

- राजानः पावकीयात्र तपोबलसामन्विताः । हत्वा तात्पञ्चसाहस्रान्कुद्भूपाननेकशः ॥
योगमध्ये समासीनो नमस्तस्मै नहात्मने ॥२२५
- तेषः सैन्याः षष्ठिलक्षाः क्रमाद्वैर त्वया हताः । वरं बूहि महाभाग यते मनसि वर्तते ॥२२६
- इति श्रुत्वा स आह्लादो बचनं प्राह निर्भयः । मम कीर्तिस्त्वया देव कर्तव्या च जने जने ॥२२७
- पुनस्ते कार्यमतुलं करिष्यामि शृणुष्व भोः । महीराजञ्च धर्मात्मा शिदभक्तिपरायणः ॥
तस्य नेत्रे मया शुद्धे कर्तव्ये नीलरूपके ॥२२८
- तद प्रियः सदा नीलस्तथैव च मम प्रियः । देवानां दुःखदो देव दैत्यानां हर्षदर्ढ्नः ॥२२९
- इत्युक्त्वा स तु राजांशो गजमारुह्य वेगतः । महीराजमुपागम्य महद्युद्धं बकार ह ॥२३०
- रुद्रदत्ता गजस्तूर्णं पञ्चशब्दमुपस्थितः । पद्मदन्तान्तमारुह्य युयुधाते परस्परम् ॥२३१
- अन्योऽन्येन तथा हत्वा गजौ स्वर्गमुपेयतुः ॥२३२
- तदा भयातुरो राजा त्यक्त्वा युद्धं भयद्वूरम् । स तु दुद्राव वेगेन रामांशोऽनुययौ ततः ॥२३३
- केशेषु च महीराजं गृहीत्वा तरसा बली । कलिदत्तं महानीलं नेत्रोपोस्तेन तत्कृतम् ॥२३४
- तदाप्रभृति वै शम्भुरशुद्धं नृपतिं प्रियम् । मत्वा त्यक्त्वा ययौ स्थाने कैलासे गुह्यकालये ॥२३५
- आह्लादः कलिना सार्द्धं कदलीवनमुत्तमम् । गत्वा योगं चकाराशु पर्वते गन्धमादने ॥२३६

अंश से अवतरित और मेरे पालन करने में कठिबद्ध हैं। तपोबल प्रधान उन पाँच सहस्र अग्निवंशीय तथा अनेक क्षुद्र राजाओं के हनन द्वारा आपने इस भूतल के भार का अपहरण किया है और अनन्तर आसानासीन होकर योगध्यान में तन्मय हो रहे हैं, अतः आप ऐसे महानुभाव को सादर नमस्कार कर रहा हैं; महाभाग! आपने अपनी अद्भुत नीरता प्रकट कर उनकी साठ लाख सेना का भी विघ्वंस किया है, इसलिए मनइच्छित दर की याचना कीजिये। इसे सुनकर आह्लाद ने निर्भय होकर कहा—देव! आप मेरी कीर्ति प्रत्येक व्यक्तियों में स्थात करने की कृपा करें। आपके समस्त कार्यों को मैं पुनः सुसम्पन्न करने की चेष्ट करूँगा। मेरी और एक बात सुनने की कृपा कीजिये। देव! राजा पृथ्वीराज धर्मात्मा एवं शिव शक्ति का उपासक है, इसलिए उसके दोनों नेत्र शुद्ध नीलवर्णका बना देना चाहता हूँ, क्योंकि वह आपको प्रिय है और मुझे जो देवों को दुःख तथा दैत्यों की हर्ष-वृद्धि करता है। इतना कहकर रामांश आह्लाद ने अपने गजेन्द्र पर बैठकर पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिए अत्यन्त वेग से प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर पृथ्वीराज से संग्राम आरम्भ किया उसी समय रुद्रप्रदत्त गज ने पंचशब्द गजेन्द्र के पद्म दाँतों पर अपने दोनों चरणों के भार रखते हुए उससे महान युद्ध किया। पश्चात् आह्लाद द्वारा एक दूसरे का निधन करते हुए वे दोनों स्वर्ग चले गये। उस समय भयभीत होकर राजा पृथ्वीराज रण छोड़कर अत्यन्त वेग से भाग निकले, किन्तु आह्लाद ने भी उनके पीछे तेजी से दौड़कर उन्हें पकड़ लिया और कलिप्रदत्त उस नील द्वारा उनके दोनों नेत्रों को बलात् नीलवर्ण के समान काला कर दिया। उसी समय शिवजी ने अशुद्ध समझकर उन्हें छोड़ दिया और गुह्यकों के निवास-स्थान उस कैलास पर निवासार्थं प्रस्थान किया। आह्लाद ने भी कलि के साथ गन्धमादन पर्वत के उस कदली वन में जाकर अपनी योग समाधि लगाई। उन्हें योगाभ्यास में मग्न देखकर हर्ष विभोर होकर कलि ने बलि के यहाँ

तथा भूतं च रामांशं कलिर्दृष्टृः सुदान्वितः । बलिपार्खमुपागर्य वर्णयामास सर्वशः ॥२३७
 स वै बलिर्दैत्यराजोऽयुतैः सह विनिर्गतः । गौरदेशमुपागम्य सहोडीनमुवाच ह ॥२३८
 गच्छ वीर बलैस्सद्व निशायां रक्षितो मया । इत्वा भूपं महीराजं विद्युन्मालां गृहाण भोः ॥२३९
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य षोडशाब्दान्तरे गते । सपादलक्षेश्च बलैः कुरुक्षेनमुपाययौ ॥२४०
 महीराजसुताऽन्नित्वा समाहृद्य महावतीम् । महीपतिं प्रेषयित्वा दृण्यित्वा च तद्ब्रु ॥२४१
 लिङ्गार्थं कुरुत्वान्यत्नं स नृपः कीर्तिसागरे । न प्राप्तस्तनृपस्तं वै स्वगेहाय तदा यथौ ॥२४२
 लक्षचण्डों कारयित्वा परमानन्दमाप्तवान् । जयचन्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा पुत्रशोकस्मन्वितः ॥२४३
 निराहारो यतिर्भूत्वा मृतः स्वर्गपुरं यथौ । सहोडीनेन स नृपः कळ्वा युद्धं भयज्जुररः ॥२४४
 सप्ताहोरात्रमात्रेण म्लेच्छराजवशं गतः । मारितो बहुपत्नेन महीराजो न वै मृतः ॥२४५
 तदा म्लेच्छस्सहोडीनो निर्बन्धनमयाकरोत् । ज्योतिरूपस्थितं तत्र चन्द्रभट्टे नृपाज्ञया ॥
 क्षरप्रेण च बाणेन हत्वा बहूतै इदाह वै ॥२४६
 विद्युन्माला स च म्लेच्छो गृहीत्वा च धनं बहु । तत्रास्थाप्य स्वदासं च कुतुकोडीनमागतः ॥२४७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलङ्घापरपरपर्याये

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः । ३२

॥ इति तृतीयखण्डं समाप्तम् ॥

जाकर उनसे समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । उस समय दैत्यराज बलि ने अपने दण सहस्र सैनिकों समेत और देश में जाकर सहोडीन (सहाबुदीन) से कहा—वीर ! मैं तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा, इसी रात में अपनी सेना समेत चलो और पृथ्वीराज को पराजित कर विद्युन्माला का ग्रहण करो ! इसे सुनकर उसने अपने सेवा लाख सैनिकों समेत कुरुक्षेत्र को प्रस्थान किया । मोलह दिन की यात्रा करके वहाँ पहुँचने पर युद्ध में पृथ्वीराज के अन्य पुत्रों पर विजय प्राप्ति पूर्वक महावती (महोबा) चला गया । वहाँ महीपति (माहिल) के द्वारा वहाँ के धन-रत्नों को लूट लिया । कीर्तिसागर में लिङ्गार्थ राजा ने बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफल न हो सके विवश होकर अपने घर लौटने पर उन्होंने लक्षचण्डी के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करके परम आनन्द की प्राप्ति की । उसे सुनकर राजा जयचन्द्र ने पुत्रशोक से आहत होकर यती के बेश में निराहार रहना आरम्भ किया, जिससे अल्पकाल में ही उन्हें स्वर्ग को प्रस्थान करना पड़ा । राजा पृथ्वीराज सहोडीन (सहाबुदीन) के साथ भयंकर युद्ध करते हुए सातवें दिन पकड़ लिये गये । उस म्लेच्छराज ने उनके मारने के लिए अनेक यत्न किया, किन्तु वे मर न सके । उस समय विवश होकर सहोडीन (सहाबुदीन) ने उन्हें बन्धन मुक्त कर दिया । उसी बीच राजा पृथ्वीराज की आज्ञा में चन्द्रभट्ट ने जिस समय वहाँ एक प्रकार की ज्योति उत्पन्न हुई, अपने तीक्ष्ण वाण द्वारा उनका निधन कर उनका अग्नि संस्कार कर दिया । पश्चात् उस म्लेच्छराज ने असंख्य धनराशि समेत विद्युन्माला का अपहरण करके कुतुकोडीन (कुतुबुदीन) नामक अपने एक सेवक को वहाँ नियुक्तकर स्वयं अपने प्रदेश को प्रस्थान किया । २२३-२४७

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक
 बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३२।

चतुर्थखण्डम्
अथ प्रथमोऽध्यायः
प्रमरवंशवर्णनम्
वेदव्यास उवाच

एवं द्वापरसन्धयात् अन्ते सूतेन वर्णितम् । सूर्यचन्द्रान्वयात्यानं तन्मया कथितं तत्र ॥१
 विशालायां पुनर्गत्वा वैतालेन विनिर्मितम् । कथयिष्यति सूतस्तमितिहाससमुच्चयम् ॥२
 तन्मया कथितं सर्वं हृषीकोत्तमपुण्यदम् । पुर्वावक्रमभूपेन भविष्यति समाह्रयः ॥३
 नैमिषारण्यमासाद्य श्वावयिष्यति वै कथाम् । पुनरुक्तानि यान्येव पुराणाष्टादशानि वै ॥४
 तानि चोपपुराणानि भविष्यन्ति कलौ युगे । तेषां चोपपुराणानां द्वादशाध्यायमुत्तमम् ॥५
 सारभूतश्च कथित इतिहाससमुच्चयः । यस्ते मया च कथितो हृषीकोत्तम ते युद्धा ॥६
 विक्रमात्यानकालान्तेऽवतारः कलय । हरे । स च शक्त्यावतारे हि राधाकृष्णस्य भूतले ॥७
 तत्कथां भगवान्सूतो नैमिषारण्यमास्थितः । अष्टाशीतिसहक्षणिं श्रावयिष्यति वै मुनीन् ॥८
 यत्तन्मया च कथितं हृषीकोत्तम ते मुदा । पुनस्ते शौनकाद्याश्रम कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः ॥९
 सूतपार्श्वं गमिष्यन्ति नैमिषारण्यवासिनः । तत्पृष्ठेनैव सूतेन यदुक्तं तच्छृणुष्व भोः ॥१०

चतुर्थ खण्ड
अध्याय १
प्रमरवंश का वर्णन

वेद व्यास जी बोले—द्वापर के अन्तिम सन्धिकाल में सूतजी ने सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओं के वंश वृत्तान्त का जिस प्रकार वर्णन किया था, मैंने तुम्हें सुना दिया । विशाला नगरी में जाकर वैताल निर्मित जिस इतिहाससमुच्चय का वर्णन पुनः सूतजी जिस प्रकार करेंगे पुण्यप्रद उस इतिहास को भी मैंने सुना दिया है । राजा विक्रमाजीत द्वारा पुनः निर्मित होने पर नैमिषारण्य क्षेत्र में सूतजी जिन अष्टादश पुराणों एवं उपपुराणों की कथा सुनायेंगे वही कलियुग में भी प्रचलित होंगे । उन उपपुराणों के सारभूत इतिहासों का वर्णन बारह अध्याय में किया गया है, उसे तथा विक्रमकाल के अन्त में इस पृथ्वी पर भगवान् का जो आशिक अवतार होगा, वह राधाकृष्ण का शक्त्यावतार कहा जायेगा । भगवान् सूत नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुँचकर अट्ठासी सहस्र महर्षियों को उनकी कथा का वर्णन करेंगे, उस पुण्यप्रद कथा को मैंने सुना दिया । नैमिषारण्य निवासी वे शौनकादि क्रृष्णिगण स्नान आदि क्रियाओं से निवृत्त होने के उपरात सूत के पास जायेंगे और वहाँ जाकर उन सबके पूछने पर सूत जी जो कुछ उत्तर देंगे, उसे कह रहा हूँ, सुनो ! ॥१-१०

ऋषय ऊचुः

श्रुतं कृष्णस्य चरितं भगवन्भवतोदितम् । इदानीं श्रोतुमिच्छामि राजां तेषां क्रमात्कुलम् ॥११
चतुर्णा वह्निजातानां परं कौतूहलं हि नः । स हरिस्त्रियुगी प्रोक्तः कथं जातः कलौ युगे ॥१२

सूत उवाच

कथयामि मुनिश्रेष्ठा द्युम्बाकं प्रभ्नमुत्तमश् । अग्निवंशनृपाणां च चरित्रं शृणु विस्तरात् ॥१३
प्रमरश्च भृतीपालो दक्षिणां दिशमास्थितः । अम्बव्या रचितां दिव्यां प्रमरस्य पुरीं शुभाम् ॥१४
निवासं कृतवान् राजा सामवेदपरो बली । षट्द्वार्णि कृतं राज्यं तस्मां जातो महामरः ॥१५
त्रिवर्षं च कुतं राज्यं देवापिस्तनयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं देवद्वृतस्ततोऽभवत् ॥
पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शृणु तत्कारणं मुने ॥१६
अशोके निहते तस्मिन्बैद्वद्भूपे महाबले । कलिभास्त्रकरमाराध्य तपसा ध्यानत्पतरः ॥१७
पञ्चवर्षान्तरे सूर्यस्तस्मे च कलये मुहुः ॥ शकारथ्यं नाम पुरुषं ददौ तद्वक्तितोषितः ॥१८
तदा प्रसन्नः स कलिः शकाय च नहात्मने । तैत्तिरं नगरं प्रेषणा ददौ हर्षितमानसः ॥१९
तत्र गोपान्दस्युगणान्वशीकृत्य महाबली । आर्यदेशविनाशाय कृत्वोद्योगं पुनः पुनः ॥
हतवान्भूपतीन्बाणैस्तस्माते स्वल्पजीविनः ॥२०

ऋषियों ने कहा—आपके मुख से उदीयमान उस भगवान् कृष्ण के चरित्रों को हम लोगों ने भली-भाँति सुन लिया है । थब इस समय उन अग्निवंशीय चारों राजाओं के वंश-वृत्तान्त, हम लोग मुनना चाहते हैं तथा भगवान् त्रियुगी बताया जाते हैं अर्थात् (तीनों ही युगों में अवतरित होते हैं) पुनः कलियुग में उनका अवतरित होना कैसे बताया गया है ? ११-१२

सूतजी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! आपका प्रश्न अत्यन्त उत्तम है, मैं इसका उत्तर अवश्य दूँगा और अग्निवंशीय राजाओं के चरित्र का सविस्तार वर्णन भी करूँगा । राजा अमर एक दिव्य एवं शुभ नगरी में निवास करता था, जिसका निर्माण भगवती अम्बिका द्वारा हुआ था । उस सामवेदी एवं बली राजा के ६ वर्ष राज्य करने पर उनके महामर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उसके तीन वर्ष राज्य करने पर देवापि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । जिसने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया है । मुने ! उनके देवद्वृत नामक पुत्र हुआ । उसने भी अपने पिता के समान समय तक राज्य किया है, इसके कारण को मैं बता रहा हूँ, मुनो ! महाबली एवं बौद्ध धर्मविलम्बी राजा अशोक के स्वर्गीय होने के उपरांत कलि ने तप द्वारा भगवान् भास्कर की उपासना की । पाँचवे वर्ष सूर्य ने उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर शक नामक एक पुरुष कलि को प्रदान किया । उस समय हर्षमग्र होकर कलि ने महात्मा शक के लिए तैत्तिर नामक नगर प्रदान किया । उस महाबली ने वहाँ रहकर गोप एवं दस्युगणों को अपने अधीन करके आर्यदेश के विनाशार्थ बार-बार प्रयत्न किया, जिससे उसके वागों द्वारा राजाओं का घोर विनाश हो गया । इसीलिए वे अल्पायु कहे जाते हैं । १३-२०। देवद्वृत के पुत्र बलीराजा गन्धर्वसेन पचास वर्ष तक सिंहासनासीन रहने के पश्चात् तप करने चले गये । भगवान् शिवजी के प्रसन्न

गन्धर्वसेनश्च नृपो देवद्वूतात्मजो बती । शतार्द्धाङ्कं पदं कृत्वा तपसे उनरागतः ॥२१
 शिवाज्ञया च नृपतिविक्रमस्तनयस्ततः । शतवर्षं कृतं राज्यं देवभक्तस्ततोऽभवत् ॥
 दशवर्षं कृतं राज्यं शकईर्ष्टैर्लयं गतः ॥२२

शालिवाहन एवापि देवभक्तस्य चात्मजः । जित्वा शकान्स षष्ठ्यचब्दं राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥२३
 शालिहोत्रस्तस्य सुतो राज्यं कृत्वा शतार्द्धकम् । स्वर्गलोकं ततः प्राप्तस्तस्तुतः शालिवर्द्धनः ॥२४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शदहन्ता ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुहोत्रस्तनयोऽभवत् ॥२५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं हविर्हीत्रस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमिन्द्रपालस्ततोऽभवत् ॥२६
 पुरीमिन्द्रावतीं कृत्वा तत्र राज्यमकारयत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माल्यवान्नाम तत्सुतः ॥
 पुरीं माल्यवतीं कृत्वा पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२७

अनावृष्टिस्ततस्चासीन्महनी चतुरब्दिका । ततः क्षुधातुरो राजाश्वविष्ठाधात्यर्गहितम् ॥२८
 संस्कृत्य भन्दिरे राजा शालग्रामाय चर्षण्यत् । तदा प्रसन्नो भगवान्वचनं नभसेरितम् ॥२९
 कृत्वा ददौ वरं तस्मै शृणु तन्मुनिसत्तम् । कुले यावन्नपा भाव्यास्तद भूपतिसत्तम् ॥
 अनावृष्टिर्न भविता तावते राष्ट्रं उत्तमे ॥३०

सुतो माल्यवतश्चासीच्छभुदत्तो हरप्रियः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भौमराजस्ततोऽभवत् ॥३१
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वत्सराजस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भोजराजस्ततोऽभवत् ॥३२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शम्भुदत्तस्ततोऽभदत् । दशहीनं कृतं राज्यं भोजराजपितुस्समम् ॥३३
 शम्भुदत्तस्य तनयो बिन्दुपालस्ततोऽभवत् । बिन्दुखण्डं च राष्ट्रं वै कृत्वा स सुखितोऽभवत् ॥
 तेन राज्यं पितुस्तुल्यं कृतं वेदविदा मुने ॥३४

होने पर विक्रम नामक पुत्र उनके उत्पन्न हुआ । उनके सौ वर्ष राज्योपभोग करने पर देवभक्त नामक पुत्र हुआ । जो दश वर्ष तक राज्यपद पर प्रतिष्ठित रहकर पश्चात् शकों द्वारा विनष्ट हो गया । उस देवभक्त के शालिवाहन नामक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, जिसने शकों पर विजयप्राप्ति पूर्वक साठ वर्ष तक राज्य करने के उपरांत स्वर्ग को प्रस्थान किया । उनके शालिहोत्र नामक पुत्र हुआ जो पचास वर्ष तक राज्य कर स्वर्गीय हो गया । उनके शालिवर्द्धन, शालिवर्द्धन के शकहन्ता, शकहन्ता के सुहोत्र, सुहोत्र के हविर्हीत्र, हविर्हीत्र के इन्द्रपाल हुए, जिसने इन्द्रावती नामक नगरी का निर्माण कराकर राज्य किया । उनके माल्यवान् नामक पुत्र हुए, जिसने माल्यवती नामक पुरी का निर्माण कराया था । इस राजा के राजकाल में चार वर्ष तक लगातार अनावृष्टि हो रही थी । उस समय क्षुधा से व्यथित होकर इस राजा ने विष्टा (मल) में उत्पन्न धान्य से बनाये गये भोजन पदार्थ मन्दिर में ले जाकर भगवान् शालग्राम को अर्पित किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने आकाशवाणी द्वारा वरप्रदान किया । मैं उसे बता रहा हूँ, मुनो ! भूपश्रेष्ठ ! इस भूतल में तुम्हारे बंश के राजा जब तक सिहासनासीन होकर प्रतिष्ठित रहेंगे, तब तक तुम्हारे इस उत्तमराष्ट्र में अनावृष्टि कभी नहीं होगी । पुनः उनके भगवान् शिव का प्रिय शांउदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । २१-३३ । उसके भौमराज, भौमराज के वत्सराज, वत्सराज के भोजराज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । उपरोक्त इन सभी राजाओं ने अपने पिता के समान काल तक ही राज्य का उपभोग किया है । भोजराज

बिन्दुपालस्य तनयो राजापालस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्माज्जातो महीनरः ॥३५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सोमवर्मा नृपोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कामवर्मा सुतोऽभवत् ॥३६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भूमिपालस्ततोऽभवत् । भूसरस्तेन खनितं पुरं तत्र शुनं कृतम् ॥३७
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रङ्गपालस्ततोऽभवत् । भूमिपालस्तु नृपर्तिजित्वा भूपाननेकशः ॥३८
 वीरसिंहस्ततो नाम्ना विद्यातोऽभून्महीतते । स्वराज्ये रङ्गपालं रुचाभिषिच्य वनं ययौ ॥
 तथः कृत्वा दिवं यातो देवदेवप्रसादतः ॥३९
 कल्पसिंहस्ततो जातो रङ्गपालाश्वपोत्तमात् । अनपत्यो हि नृपतिः पितुस्तुल्यं कृतं दद्भम् ॥४०
 एकदा जाह्नवीतोये स्नानार्थं भुदितो ययौ । दानं दत्त्वा द्विजातिभ्यः कल्पक्षेत्रमवात्तदान् ॥४१
 पुण्यभूतिं समालोक्य शून्यशूतां स्थलीमपि । नगरं जारदामास तत्र स्थाने मुदान्वितः ॥४२
 कलापनगरं नाम्ना प्रतिद्वन्द्वभवद्भुवि । तत्र राज्यं कृतं तेन गङ्गासिंहस्ततोऽभवत् ॥४३
 नवत्यब्दवपुर्भूत्वा सोऽनपत्यो रणं गतः । त्यक्त्वा प्राणगङ्कुरुक्षेत्रे रुद्गत्वोकमवाप्तवान् ॥
 समाप्तिमगसद्विप्र प्रमरस्य कुलं शुभम् ॥४४
 तदन्वये च ये शेषाः क्षत्रियास्तदनन्तरम् । तन्नारीष्वमितो विप्र बभूव वर्णसङ्करः ॥४५

के शम्भुदत्त नामक पुत्र हुआ, जिसने अपने पिता से दश वर्ष कम समय तक राज्य किया। शम्भुदत्त के पुत्र विन्दुपाल हुए, जिसने विदुखण्ड नामक राष्ट्र का निर्माण कर अपने पिता के समानकाल तक सुखी जीवन व्यतीत किया। मुने ! विन्दुपाल के राजपाल, राजपाल के महीनर, महीनर के सोमवर्मा, सोमवर्मा के कामवर्मा, कामवर्मा के भूमिपाल नामक पुत्र हुआ, जिसने पृथ्वी में एक सरोवर खनकर उसमें एक सुन्दर नगर का निर्माण कराया। उसके रंगपाल नामक पुत्र हुआ। भूमिपाल ने अनेक राजाओं पर विजय प्राप्ति की। इससे इस महीतल में वीरसिंह के नाम से उनकी ख्याति हुई। उसने अपने पदपर अपने पुत्र रंगपाल का अभिषेककर स्वयं वन को प्रस्थान किया। वहाँ भगवान् देवाधिदेव की प्रसन्नता से स्वर्ग लोक की प्राप्ति की। उस नृपशेष रंगपाल के कल्पसिंह नामक पुत्र हुआ। इन सभी राजाओं का राजकाल उनके पिता के समान ही बताया गया है। कल्पसिंह ने संतानहीन ही रहकर अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया है। एक बार प्रसन्न होकर उस राजा ने गंगा स्नानार्थ प्रस्थान किया। वहाँ स्नान एवं ब्राह्मणों को दान प्रदान करके वह कल्पक्षेत्र चला गया। उस पवित्रभूमि को शून्य देखकर वहाँ एक सुन्दर नगर का निर्माण कराया, इस पृथ्वी में जो कलाप नगर से प्रस्थात हुआ। वहाँ राज्य करते समय उसके गंगासिंह नामक पुत्र हुआ, जो सन्तानहीन रहकर नब्बे वर्ष तक राज्य किया। पश्चात् कुरुक्षेत्र में जाकर उसने घोर संग्राम करके प्राणविसर्जनकर स्वर्ग की प्राप्ति की। विप्र ! इस प्रकार प्रमर का शुभ कुल समाप्त हो गया। ३४-४४। उसके अनन्तर उनके कुल में शेष क्षत्रियों ने उनकी स्त्रियों से समर्पक स्थापित किया, जिससे वर्णसंकरों की उत्पत्ति हुई। विप्र ! वे वर्णसंकर इस पृथ्वी पर वैश्यों की वृत्ति का

वैश्यवृत्तिकराः नर्वे भ्लेच्छतुल्या महीतले । इति ते कथितं विप्र कुलं दक्षिणभूपतेः ॥४६
 इति श्रीभविष्य महामुराजे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
 कलियुगीदेतिहाससमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः । १

अथ द्वितीयोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

सूत उवाच

वयहानिर्महोपालो मध्यदेशे स्वकं पदम् । गृहीत्वा ब्रह्मरचितमजमेरमवासदत् ॥१
 अजस्य ब्रह्मणो मा च लक्ष्मीस्तत्र रमा गता । तया च नगरं रम्यमजमेरमजं स्मृतम् ॥२
 दशवर्षं कृतं राज्यं तोमरस्तस्तुतोऽभवत् । पर्थिवैः पूजयामास वर्षमात्रं भहेश्वरम् ॥३
 इन्द्रप्रस्थं ददौ तस्मै प्रसन्नो नगरं शितः । तदन्वये च ये जातास्तोमराः क्षत्रियाः स्मृताः ॥४
 तोमरावरजश्वेव चयहानिसुतः शुभः । नाम्ना सामलदेवत्र ग्रंथितोऽभूमहीतले ॥५
 सप्तवर्षं कृतं राज्यं महादेवस्ततोऽभवत् । गितुस्तुल्यं कृतं राज्यमजयश्च ततोभवत् ॥६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वीरसिंहस्ततोऽभवत् । शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं ततोबिन्दुसुरोऽभवत् ॥७

अनुसरण करते हुए म्लेच्छों के साथ रहकर अपने जीवन व्यतीत किये । विप्र ! इस प्रकार दक्षिणी राजाओं की वंश परम्परा बता दी गई । ४५-४६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
 प्रमरवंश वर्णन नामक पहला अध्याय समाप्त । १।

अध्याय २

प्रमरवंश का वर्णन

सूतजी बोले—मध्यप्रदेश का निवासी राजा वयहानि ने अपने सिहासनालङ्घ होने पर ब्रह्म निर्मित उस अजमेर को अपनी राजधानी बनाया । अजन्मा और उस ब्रह्म निर्मित उस अजमेर को अपनी राजधानी बनाया । अजन्मा और उसकी माँ (लक्ष्मी) ने, जिन्हें रमा का भी सहयोग प्राप्त था वहाँ आकर उस नगर का निर्माण कराया था । इसीलिए उसका नाम ‘अजमेर’ हुआ है । दशवर्ष राज्य-भार संभालने के उपरांत उनके तोमर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने एक वर्ष तक पर्थिव-पूजन द्वारा भगवान् गहेश्वर की आराधना की । उस आराधना से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) नामक नगर प्रदान किया । उसी समय से उनके कुल में उत्पन्न होने वाले क्षत्री तोमरवंशी कहे जाने लगे । चयहानि के पुत्र जो तोमर के छोटे भाई का पुत्र था, इस भूतल में उसकी सामलदेव नाम से ख्याति हुई । सात वर्ष राज्य के उपभोग करने पर उनके महादेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । महादेव के अजय और अजय के वीरसिंह नामक पुत्र हुआ, जिसने शताब्दी के आधे समय (पचास वर्ष) तक राज्य किया

पितुरुद्धं कृतं राज्यं मध्यदेशे महात्मना । तस्माच्च मिथुनं जातं वीरा वोरविहात्कः ॥८
 विक्रमाय ददौ वीरां पिता वेदविधानतः । स्वपुत्राय स्वकं राज्यं मध्यदेशान्तरं मुदा ॥९
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भाणिक्यस्तस्तुतोऽभवत् । शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं महासिंहस्ततोऽभवत् ॥१०
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चन्द्रगुप्तस्ततोऽभवत् । पितुरुद्धं कृतं राज्यं तत्सुतश्च भ्रातापवान् ॥११
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नोहनस्तस्तुतोऽभवत् । शिशब्दं कृतं राज्यं श्वेतरायस्ततोऽभवत् ॥१२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नागवाहस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं लोहधारस्ततोऽभवत् ॥१३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वीरसिंहस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विबुधस्तस्तुतोऽभवत् ॥१४
 शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं चन्द्ररायस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो हरिहरोऽभवत् ॥१५
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वसन्तस्तस्य चात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बलाङ्गस्तनयोऽभवत् ॥१६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं प्रमथस्तस्तुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमञ्जरायस्ततोऽभवत् ॥१७
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विशालस्तस्य चात्मजः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शार्ङ्गदेवस्ततोऽभवत् ॥१८
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं मन्त्रदेवस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं जर्यसिंहस्ततोऽभवत् ॥१९
 आर्यदेशाश्र सकला जितास्तेन महात्मना । तद्दनैः कारणमास यज्ञं बहुफलप्रदम् ॥२०
 तत्श्रानन्द देवो हि जातःपुत्रः शुभाननः । शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं जर्यसिंहेन धीमता ॥२१
 तत्सुतेन पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं महीतले । लोमेश्वरस्तस्य सुतो महाशूरो बभूव ह ॥२२
 अनञ्जपालस्य सुतो ज्येष्ठां वै कीर्तिमालिनीम् । तामुद्राह्य विधानेन तस्यां पुत्रानजीजनत् ॥२३

और शेष राजगण अपने पिता के समान काल तक । उस महात्मा राजा विदुसुर ने, जो वीर-सिंह का पुत्र था, मध्य प्रदेश में अपने पिता के राजकाल के आधे समय तक सिहासनासीन रहकर 'वीरा और वीर' नामक एक कन्या एवं पुत्र को जुड़वा उत्पन्न किया । कन्या के पिता ने वेदविधान द्वारा उसका पाणिग्रहण विक्रम द्वारा सुसम्पन्न कराया । पश्चात हर्षमग्न होकर अपने पदपर अपने पुत्र को प्रतिष्ठित किया । पुनः राजा वीर के माणिक्य पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्ष तक राज्य का उपभोग किया तनन्तर उसके महासिंह तथा महासिंह के चन्द्रगुप्त हुए, जिसने पिता के आधे समय तक राज्य का उपभोग किया और शेष उपरोक्त सभी राजाओं ने अपने-अपने पिता के समान काल तक । चन्द्रगुप्त के प्रताप, एवं प्रताप के मोहन हुए जिसने तीस वर्ष तक राज्य किया तथा शेष राजाओं ने अपने पैत्रिक राजकाल के समान काल तक । अनन्तर उसके श्वेतराय हुए । श्वेतराय के नागवाहन, नागवाहन के लोहधार, लोहधार के वीरसिंह और वीरसिंह के विवृद्ध नामक पुत्र हुआ, जिसने पचास वर्ष तक राज्य का उपभोग किया और शेष लोगों ने अपने पिता के समान काल तक । पुनः विवृद्ध के चन्द्रराय, चन्द्रराय के हरिहर, हरिहर के वसंत, वसंत के बलांग, बलांग के प्रमथ, प्रमथ के अंगराय, अंगराय के विशाल, विशाल के शार्ङ्गदेव, शार्ङ्गदेव के मंत्रदेव और मंत्रदेव के जयसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने पचास वर्ष तक सिहासनासीन रहकर सम्पूर्ण आर्य प्रदेशों पर विजय प्राप्तकर उसके धनों द्वारा अत्यन्त फलयुद्ध एक महान् यज्ञ का अनुष्ठान सुसम्पन्न कराया । १-२० पश्चात् उनके आनन्ददेव नामक पुत्र रत्न हुआ, और आनन्ददेव के महापराक्रमी सोमेश्वर नामक पुत्र हुआ जिसने अनंगपाल की ज्येष्ठपुत्री कीर्तिमालिनी के साथ पाणिग्रहण करके तीन पुत्रों को उत्पन्न किया । ज्येष्ठ पुत्र का धूंधुकार (धांधू) नाम था,

धुन्धुकारश्च वै ज्येष्ठो मथुरपुराष्ट्रसंस्थितः । सध्यः कुमाराख्यमुतः पितुः पदसमास्थितः ॥२४
 महीराजस्तु बलवंस्तृतीयो देहलोपतिः । सहोद्रीनस्य नृपतेर्वशमाप्य मृत्ति गतः ॥२५
 चपहानेश्च स कूलं छाययित्वा दिवं ययौ । तस्य वंशे तु राजन्यास्तेषां पत्न्यः पिशाचकैः ॥२६
 म्लेच्छश्च भुत्तवत्यस्ता बभूवर्णसङ्कुराः । न वै आर्यं न वै म्लेच्छा जट्टा जात्या च मेहनाः ॥२७
 मेहना म्लेच्छजातीया जट्टा आर्यन्याः स्तुताः । क्वचित्क्वचिच्च ये शेषाः क्षत्रियाश्चपहानिजाः ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्पुर्गालण्डापराः ४०५
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चये नमरवंशवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।२

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

सूत उवाच

शुक्लवंशं प्रवक्ष्यामि भृणु विप्रवरादितः । यदा कृष्णः स्वयं ब्रह्म त्यक्त्वा भूमि स्वकं पदम् ॥१
 दिव्यं वृन्दावनं रम्यं प्रययौ भूतले तदा । कलेरागमनं ज्ञात्वा म्लेच्छपा द्वीपमध्यगे ॥२
 स्थिता द्वीपेषु वै नाना मनुजा वेदतत्पराः । कलिनामित्रधर्मेण दूषितास्ते बभूविरे ॥३
 अष्टषष्ठिसहन्नाणां वर्षणां मुनिसत्तम् । अद्य प्रभृति वै जातः कालः कलिसमागमे ॥४

जो मथुराराज्य का अधीश्वर था । मध्यम पुत्र का नाम कुमार था, अपने पिता के पदपर ही प्रतिष्ठित था और कनिष्ठ पुत्र का नाम पृथ्वीराज था, जिसने दिल्ली सिंहासन पर प्रतिष्ठित होकर राजा सहोड़ीन (सहाबुद्धीन) के अधीन होने पर अपना प्राणविसर्जन किया । उसी ने चयहानि वंश का समूलनाश कराया था । उनके वंश में शेष राजाओं की पत्नियों के उपभोग उन म्लेच्छों ने किया, जिससे वर्णसंकरों की उत्पत्ति हुई । चयहानि वंश के कुछ क्षत्रिय गणों की, जो इधर-उधर रह रहे थे उस समय की प्रचलित म्लेच्छ, जट्टा (जाट) और मेहन जातियों में गणना नहीं की जा सकती थी, क्योंकि वे सभी में सम्मिलित थे । उस समय मेहन को म्लेच्छ और जट्ट (जाट) को आर्य कहा जाता था । २१-२८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
 प्रमर वंश वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ।२।

अध्याय ३

प्रमरवंश का वर्णन

सूत जी बोले—विप्रवर ! मैं शुक्लवंश का आरम्भ से वर्णन कर रहा हूँ, सुनो !
 जिस समय भगवान् कृष्ण ने वृन्दावन नामक अपने दिव्यस्थान को त्यागकर दिव्यलोक की यात्रा की, उस समय कलि के आगमन एवं म्लेच्छ राजाओं की अधीनता न स्वीकारकर जो वैदिकधर्म के अनुयायी मनुष्यगण द्वीपों में जा-जाकर निवास कर रहे थे, उन्हें भी म्लेच्छ धर्मनुयायी कलि ने उनके धर्मों से वंचित कर दूषित कर दिया । मुनिसत्तम ! अड़सठ सहस्रवर्ष आज कलि के आगमन में बीत चुका । १-४।

षष्ठिवर्षसहस्राणि द्वीपराज्यमचीकरत् । स कलिस्तेच्छया सार्थं सूर्यपूजनतत्परः ॥५
 तत्पश्चाद्भारते वर्षे म्लेच्छया कलिराययौ । दृष्टा तद्भारतं वर्षं लोकपालैश्च पालितम् ॥६
 भयभीतस्त्वदराचिष्टो गन्धर्वाणां यशस्करः । स कलिः सूर्यनाराज्य समाधिस्थो बभूव ह ॥७
 ततो वर्षशताब्दान्ते सन्तुष्टो रदिरागतः । सोऽशुभिर्लोकमात्म्यं महावृष्टिमकारयत् ॥८
 चतुर्वर्षसहस्राणि चतुर्वर्षशतानि च ! व्यतीतानि मुनिश्रेष्ठं चाद्य प्रभृतिं संलग्ने ॥९
 सम्पर्हं भारतं दर्शन तदा जातं समन्ततः । न्यूहास्यो यवनो नाम तेन वै पूरितं जगत् ॥१०
 सहस्राब्दकलौ प्राप्ते महेन्द्रो देवराज् स्वयम् । काश्यं प्रेषयामास ब्रह्मावर्तं महोन्मसे ॥११
 अर्थावती देवशक्तिस्तत्करं चाग्रहीन्मुदा । दशपुद्ग्रान्मुत्पाद्य स द्विजो मिश्रमागमत् ॥१२
 मिश्रदेशोद्भवाम्लेच्छान्वशीकृत्यापुतं मुदा : स्वदेशं पुनरागत्य शिष्यांस्तान्स चकार ह ॥१३
 नष्टादां सप्तपुर्या च ब्रह्मावर्तं महोत्तमम् । सरस्वतीदृष्टद्विष्टोर्मध्यं तत्र चावस्त ॥१४
 स्वपुत्रं शुक्लमाहूय द्विजश्रेष्ठं तपोधनम् । आज्ञाप्य रैवतं शृङ्गं तपसे तु पुनः स्वयम् ॥१५
 नवपुत्रांस्तथा शिष्यान्मनुधर्मं सनातनम् । श्रावयामास धर्मात्मा स राजा मनुधर्मगः ॥१६
 शुक्लोऽपि रैवतं प्राप्य सञ्चिदानन्दविश्रहम् । वासुदेवं जगन्नाथं तपस्ता समतोषयत् ॥१७
 तदा प्रसन्नोभगवान्द्वारकानायको बली । करे गृहीत्वा तं विप्रं समुद्रान्तमुपाययौ ॥१८
 द्वारकां दर्शयामास दिव्यशोभासमन्विताम् । व्यतीते द्विसहस्राब्दे किञ्चिज्जाते भृगूत्तम ॥१९
 अग्निद्वारेण प्रययौ स शुक्लोऽर्वुदपवर्ते । जित्वा बौद्धान्द्विजैः सार्थं त्रिभिरन्वैश्च बन्धुभिः ॥२०

सान् सहस्र वर्ष तक उसने द्वीपों में राज्य किया । पश्चात् म्लेच्छ के साथ सूर्य की आराधना की । तदुपरांत भारत वर्ष में म्लेच्छ समेत उसका आगमन हुआ । लोकपालों द्वारा सुरक्षित इस भारत वर्ष को देखकर वह अत्यन्त भयभीत हुआ, किन्तु गंधर्वों के यशस्वी उस कलि ने सूर्य की आराधना पूर्वक शीघ्र ही समाधिलगाना आरम्भ किया सौ वर्ष के उपरांत उसकी आराधना से प्रसन्न होकर सूर्य ने अपनी किरणों द्वारा इस लोक को संतप्त करके महावृष्टि की । मुनिश्रेष्ठ ! इस घटना को हुए आज चार सहस्र वर्ष व्यतीत हो चुके । पश्चात् भारतवर्ष सभी प्रकार से सम्पन्न हुआ, क्योंकि उस समय संसार की पूर्ति न्यूह नामक यवन ने किया था । कलि के एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर देवसम्राट महेन्द्र ने स्वयं इस महोत्तम ब्रह्मावर्त प्रदेश में काश्यप को भेजा । उन्होंने आर्यवर्ती नामक देवशक्ति का पाणिग्रहण करके उससे दश पुत्रों की उत्पत्ति के उपरांत भिस देश को प्रस्थान किया । ५-१२। वहाँ के दश सहस्र म्लेच्छों को अपने अधीनकर अपने देश लौटने पर उन्हें शिष्य बनाया । पश्चात् सातों पुजारियों के नष्ट हो जाने पर पवित्र ब्रह्मावर्त नामक प्रदेश में, जो सरस्वती और हयद्वती के मध्य में स्थित है, उन्हें निवास करने के लिए आज्ञाप्रदान किया । अनन्तर अपने पुत्र शुक्ल को जो ब्राह्मणश्रेष्ठ एवं महान् तपस्वी था, रैवत पर्वत के शिलरपर तप करने के लिए आदेश देकर शेष नव पुत्रों और शिष्यों को मनुधर्म का अनुयायी बनाकर उस धर्मात्मा राजा ने सनातन मनुधर्म का उपदेश दिया । शुक्ल ने भी रैवतपर्वत पर पहुँचकर सत, चित् और आनन्द रूप बाले उस जननाथ वासुदेव को अपने तप द्वारा अत्यन्त सन्तुष्ट किया, जिससे प्रसन्न होकर बली एवं द्वारकाधीश्वर भगवान् ने उस ब्राह्मण का हाथ पकड़कर समुद्र के भीतर प्रस्थान किया । वहाँ दिव्य शोभा सम्पन्न उस द्वारका का दर्शन कराया । भृगूत्तम ! दो सहस्र वर्ष बीतने पर वह शुक्ल अग्निमार्ग से अर्वुद पर्वतपर पहुँच गया । वहाँ अपने तीन

द्वारकां कारयामास हरेश्च कृपया हि सः । तत्रोष्य मुदितो राजा कृष्णध्यानपरोऽभवत् ॥२१
 पश्चिमे भारते वर्षे दशाब्दं कृतवान्पदम् । नारायणस्य कृपया विष्वक्सेनः सुतोऽभवत् ॥२२
 विशदब्दं कृतं राज्यं जयसेनस्ततोऽभवत् । त्रिशदब्दं कृतं राज्यं विजेनस्तस्य चात्मजः ॥२३
 शतर्धाब्दं कृतं राज्यं मिथुनं तस्य चाभवत् । प्रमोदो मोर्दासहश्र विक्रमाय निजां सुताम् ॥२४
 दिसेनश्र ददौ प्रीत्या राष्ट्रं पुत्राद् चोत्तमम् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सिन्धुदर्मा सुतोऽभवत् ॥२५
 सिन्धुकूले कृतं राज्यं त्यक्त्वा तत्पैतृकं पदम् । सिन्धुदेशस्ततो नाम्ना प्रसिद्धोभूम्हीतले ॥२६
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रज्ञा वै सिन्धुवर्णणा । सिन्धुदीपस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं एवम् ॥२७
 श्रीपतिस्तस्य तनयो गौतमान्वयसम्भवाम् । काच्छपीं महिंषीं प्राप्य कच्छदेशमुपाययौ ॥२८
 पुलिन्दान्यवनतज्जित्वा तत्र देशमकारयत् । देशे वै श्रीपतिर्नाम्ना सिन्धुकूले बभूव ह ॥२९
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं भुजवर्मा ततोऽभवत् । जित्वा स शबराभिलास्तत्र राष्ट्रमकारयत् ॥३०
 भुजदेशस्ततो जातः प्रसिद्धोऽभूम्हीतले । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रणवर्मा सुतोऽभवत् ॥३१
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं चित्रवर्मा सुतोऽभवत् । कृत्वा स चित्रनगरीं वनमध्ये नृपोत्तमः ॥३२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धर्मवर्मा सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कृष्णवर्मा सुतोऽभवत् ॥३३
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यमुदयस्त्वतुतोऽभवत् । कृत्वोदयपुरं रम्यं वनमध्ये नृपोत्तमः ॥३४
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं वाप्यकर्मा सुतोऽभवत् । वापीकूपतडागानि नानाहर्म्याणि तेन वै ॥३५

भाइयों और ब्राह्मणों के साथ बौद्धों को जीतकर भगवान् की कृपावश द्वारका नगर स्थापित किया । पश्चात् वहाँ रहते हुए उन्होंने भगवान् कृष्ण का ध्यान करना प्रारम्भ किया । १३-२१। पश्चिमीय भारत में अधीश्वर के पदपर दश वर्ष तक प्रतिष्ठित रहने के उपरांत भगवान् की कृपा से उनके विष्वक्सेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । बीस वर्ष राज्य करने पर उसके जयसेन हुए जिसके तीस वर्ष तक राज्य करने के उपरांत विसेन नामक पुत्र हुआ । पचास वर्ष तक राज्य करने के उपरांत उनके जुड़वाँ बच्चे उत्पन्न हुए । जिनकः प्रमोद और मोर्दासह नाम था । राजा विसेन ने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण विक्रम द्वारा सुसम्पन्न कराकर अपना उत्तमराज्य अपने पुत्र को सौंप दिया । अपने पिता के समानकाल तक राज्य करने पर सिंधुवर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने अपने पिता के राज्य का त्यागकर सिंधुतट पर अपना द्वूसरा राष्ट्र स्थापित किया । उसी समय से इस भूतल में वह सिंधुदेश के नाम से प्रस्यात हुआ । पुनः उस सिंधुधर्मी राजा के सिंधुदीप और सिंधुदीप के पति हुए, जिसने गौतमकुल में उत्पन्न उस काच्छपी नामक कन्या को रानी बनाकर उसी द्वारा कच्छदेश की प्राप्ति की । वहाँ पुलिन्दों और यवनों पर विजय प्राप्ति पूर्वक देश का निर्माण किया, जो सिंधुतट पर पति के नाम से स्थापितप्राप्त है । पश्चात् उनके भुजवर्मा हुए, जिन्होंने शवरभिलों को पराजित कर वहाँ राष्ट्र स्थापित किया । इसी से पृथ्वी में भुजदेश के नाम से उनकी ख्याति हुई है । भुजवर्मा के रणवर्मा, रणवर्मा के चित्रवर्मा हुए । इन्होंने वन के भीतर चित्रनगरी का निर्माण कराया है । चित्रवर्मा के धर्मवर्मा, धर्मवर्मा के कृष्णवर्मा, कृष्णवर्मा के उदय हुए, जिन्होंने वन के मध्य में उदयपुर नामक नगर को स्थापित किया । पुनः उदय के वाप्यवर्मा उत्पन्न हुए । उन्होंने वाली, कूप एवं सरोवर आदि और अनेक महलों के निर्माण पूर्वक

धर्मर्थे कारयामास धर्मात्मा स च वै पुरम् । एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो बलदो नाम भूपतिः ॥३६
 लक्षसंन्युतो वीरो भ्रामदमते स्थितः । तेन सार्धमभूद्धं राज्ञो वै वाप्यकर्मणः ॥३७
 जित्वा ऐशाचकान्न्लेच्छान्कृष्णोत्सवमकारथत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं गुहिलस्तसुतोऽभवत् ॥३८
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कालभोजः सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं राष्ट्रपालस्ततोऽभवत् ॥३९
 स उक्त्वा पैतृकं स्थानं वैष्णवीं शक्तिभागमद् । तपसाराध्यामास शारदां सर्वाङ्गलाम् ॥४०
 प्रत्यन्ना सा तदा देवी कारयामास वै पुरीम् । महावतीं महारन्ध्रां मणिदेवेन रक्षिताम् ॥४१
 तत्रोप्य नृपतिर्धीर्मान्दशाब्दं राज्यमाप्तवान् । तस्योऽन्ते तनयौ जातौ विजयः प्रजयस्तथा ॥४२ ।
 प्रजयः पितरौ त्यक्त्वा गङ्गांकूलमुपाययौ । द्वादशाब्दं च तपसा पूजयामास शारदाम् ॥४३
 कन्यामूर्तिमयी देवी वेणुवादनतत्परा । हयमारुह्यं संप्राप्ता विहस्याह महीपतिम् ॥४४
 किञ्चिमित्तं शूपसुतं त्वया चाराधिता शिवा । तत्फलं त्वं हि तपसा मत्तः शीघ्रमवाप्स्यसि ॥४५
 इति श्रुत्वा स होवाच कुमारि मधुरस्वरे । नवीनं नगरं महां कुरु देवि ननोस्तु ते ॥४६
 इति श्रुत्वा सु सा देवी ददौ तस्मै हयं शुभम् । पुरो भूत्वा वाद्यकरारी दक्षिणां दिशमागता ॥४७
 स भूपो हयमारुह्यं नेत्र आच्छाद्य चाययौ । पुनः स भूपतिः पश्चात्पश्चिमां दिशमागता ॥४८
 ततोऽनुप्रययौ पूर्वमर्कणो यत्र पक्षिराद् । भयभीतो नृपस्तेन समुन्मील्य स चक्षुषी ॥४९

धर्मर्थ एक नगर का निर्माण कराया । २२-३५। उसी बीच वलद नामक राजा ने मदान्ध होकर अपने एक लाख सैनिकों समेत वहाँ से आकर इस राजा से युद्ध आरम्भ किया । राजा वाप्यवर्मा ने उस म्लेच्छ राजा को पराजित कर भगवान् कृष्ण का महान् उत्सव कराया । पश्चात् उनके गुहिल नामक पुत्र हुआ । गुहिल के कालभोज, कालभोज के राष्ट्रपाल उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपने पिता के पद का त्यागकर वैष्णवी शक्ति उस सर्वमङ्गला शारदा की तप द्वारा आराधना की । उस समय प्रसन्न होकर देवी जी ने महावती नामक अत्यन्त सुंदर पुरी का निर्माण किया, जो सदैव मणिदेव से सुरक्षित रहती थी । उपरोक्त ये सभी राजगण ने अपने-अपने पिता के समानकाल तक ही राज्य किये थे । उस बुद्धिमान् राजा राष्ट्रपाल के उस पुरी में दश वर्ष तक राज्य करने के उपरांत उनके विजय और अजय नामक दो पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए, जिसमें अजय ने अपने पिता के पद का त्यागकर बारह वर्ष तक शारदा देवी की उपासना की । देवी ने कन्यारूप धारणकर वेणुवादन करती हुई घोड़े पर बैठकर उस राजा के सम्मुख जाकर कहा—राजपुत ! किसलिए तुमने पार्वती की आराधना की है ? कहो ! मैं वह फल प्रदान करने के लिए तैयार हूँ । इसे सुनकर उसने कहा—मधुर भाषण करने वाली कुमारी देवि ! मेरे लिए एक नवीन नगर का निर्माण करो मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ । इसे सुनकर देवी जी ने उस शुभ घोड़े को उन्हें प्रदानकर आगे-आगे दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया । राजा भी उस घोड़े पर बैठकर अपने दोनों नेत्र को ढाँपे हुए उनके पीछे-पीछे जा रहा था । पश्चात् वह राजा पश्चिम दिशा की ओर आया । ३६-४८। वहाँ से पुनः पूर्व दिशा की ओर गया, जहाँ मर्कण नामक पक्षी रहता था । वहाँ पहुँचने पर भयभीत होकर

ददर्श नगरं रम्यं कन्याया रचितं शुभम् । उत्तरे तस्य वै गङ्गा दक्षिणेनास पाण्डुरा ॥५०
 पश्चिमे ईशसरिता पूर्वे पक्षी स मर्कणः । कुञ्जभूतमभूद्ग्रामं कान्यकुञ्ज इति स्मृतः ॥५१
 दशर्थं च तेनैव जपपालेन वै पदम् । कृतं तस्य सुतो जातो वेणुवाद्याच्च वेणुकः ॥५२
 स वेणुश्च महीपालो देवीदत्तां मनोहराम् । पत्नीं कन्यावतीं नाम्ना समुद्वाह्य रराज ह ॥५३
 तस्यां सत्तं सुता जाता मातृणां सङ्घलाः कलतः । शीतला पार्वती कन्या तथा पुष्पवती स्नृता ॥५४
 गोवर्धनी च मिन्दूरा काली नाम्ना प्रकीर्तिता । ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥५५
 वाराही च हन्देन्द्राणी चामुण्डा: कमतोऽभवन् । एकदा भूपतेः पत्नी तंतुना मृत्तिकाशदन् ॥५६
 कूदे कृतवती प्रेम्णा यथा पूर्वं तथाद्य सा । ददर्श बहुला नारीनानाभूषणमूषिताः ॥५७
 स्वयमेकैव वसना मनोगलानिमुपाययौ । तदैव स घटो भूमौ न प्राप्तः सप्रवृत्तिकाम् ॥५८
 दृष्ट्वा कन्यावतो देवी घटहीना गृहं यथौ । तदा तु सप्त कन्याश्च शिलाभूता गृहे स्थिताः ॥५९
 श्रुत्वा वेणुस्तदागत्य भर्त्सयित्वा स्वकां प्रियाम् । ब्रह्मचर्यवतं त्यक्त्वा रमयामास योषितम् ॥६०
 नृपाहै चैरवत्यां च यशोविद्रह अत्मजः । ब्रह्मूव बलवान्धर्मी चार्यदेशपतिः स्वयम् ॥६१
 पिशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राजा महीतले । महीचन्द्रस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥६२
 चन्द्रदेवस्तस्य सुतो राज्यं तेन पितुः समम् । कृतं तस्मात्सुतो जातो मनोपालो महीपतिः ॥६३

राजा ने अपने नेत्रों को खोला, तो उस स्थान पर उस कन्या द्वारा रचित एक रमणीक नगर सामने दिखाई दिया, जिसके उत्तर की ओर गंगा, दक्षिण की ओर पाण्डुरा, पश्चिम की ओर ईश और पूर्व की ओर वही मर्कण नामक पक्षी रहता था । वह नगर कुञ्ज (ऊँची-नीची भूमि होने के नाते कुञ्ज) था, इसीलिए उसका नाम ‘कान्यकुञ्ज’ हुआ । उस नगर के राजमिहासा पर दश वर्ष तक आसीन रहने पर उनके वेणु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो वेणुवादन में अधिक रुचि रखता था । राजा वेणु ने देविप्रदत्त एक अन्यन्त मनोरम कन्यावती नामक कन्या के साथ पाणिग्रहण करके उसे अपनी सहर्दूमणी बनाया । उनकी उस स्त्री से सात कन्यायें उत्पन्न हुईं, जो माताओं की मांगलिक कला के रूप में थीं । शीतला, पार्वती, कन्या, पुष्पवती, गोवर्धनी, मिन्दूरा और काली उन कन्याओं के नाम थे, जो क्रमशः ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी एवं चामुण्डा के नाम से प्रस्यात हुईं । एक बार उस राजा की पत्नी ने नित्य की भ्रांति उस दिन भी सूत की रस्सी से मिट्टी के घड़े को फॉर्सकर जल लेने के लिए कूएँ में लटकाया । उसी समय वहाँ और भी स्त्रियों का आगमन हुआ, जो सुन्दर वस्त्र एवं अनेक प्रकार के भूषणों से विभूषित थीं । उन्हें उस प्रकार सुसज्जित और अपने केवल एक ही वस्त्र को देखकर उसके मन में इतनी अधिक ग्लानि उत्पन्न हुई कि वह घड़े को कूएँ से बाहर न निकाल सकी । उन स्त्रियों को आपस में आलाप-संलाप में तन्मय देखकर देवी कन्यावती बिना घड़े के अपने घर चली आई । घर पहुँचने पर उसने अपनी कन्याओं को शिला के रूप में स्थित देखा । ४९-५१। उसे सुनकर राजा वेणु अपने घर आये और अपनी पत्नी की अन्यन्त भर्त्सना की । पश्चात् ब्रह्मचर्य का त्यागकर अपनी पत्नी के साथ रमण किया, जिससे उस बीर रानी के गर्भ से मूर्तिमान यश के रूप में एक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जो बलवान, धर्मी एवं आर्यदेश का अधीश्वर हुआ । उस राजा ने इस भूतल पर बीस वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । पश्चात् उसके महीचन्द्र नामक पुत्र हुए । पुनः महीचन्द्र के चन्द्रदेव और चन्द्रदेव के

तस्य भूपरस्य समये सर्वं भूपाः समन्ततः । त्यक्त्वा हं मन्दपालं च तद्ददत्ते संस्थिता गृहे ॥६४
 पितुरर्द्धं कृतं राज्यं कुम्भपालस्ततोऽभवत् । राजनीया च नगरी पिशाचविषये स्थिता ॥६५
 तत्पतिश्च यहामोदे म्लेच्छपैशाचधर्मगः । स जित्वा बहुधा देशात्मुष्ठियित्वा धनं बहु ॥६६
 म्लेच्छधर्मकरः प्राप्तः कुम्भपालो यतः स्थितः । कुम्भपालस्तु तं दृष्ट्वा कलिना निर्मिता नृप ॥६७
 महामोदं समागम्य प्रणनाम स बुद्धिमान् । तदा म्लेच्छप्रतिश्चित्तिः शुरो दत्त्वा तस्मै धनं बहु ॥६८
 राजनीयां च नगरीं प्राप्तयः नूर्तिलण्डकम् । विशदबद्धतं राज्यं कुम्भपालेन धीमता ॥६९
 तत्पुत्रो देवपात्रभानज्ञभूपरस्य कन्यकाम् । समुद्धाहृ विधानेन चन्द्रकीर्तिं तथा सह ॥७०
 कान्त्कुब्जगृहं प्राप्य जित्वा शूपाननेकशः । मित्रुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्योभौ तनयोः स्मृतौ ॥७१
 जयचन्द्रोरत्नभानुर्दिशं पूर्वा तथोत्तराम् । आर्यदेशस्य वै जित्वा वैष्णवो राज्यमाप्तवान् ॥७२
 रत्नभानोश्च तनयो लक्षणो नाम विश्रुतः । कुरुक्षेत्रे रणं प्राप्य त्यक्त्वा प्राणान्दिवं गतः ॥७३
 समाप्तिमगमद्रांशो वैश्यपालस्य धीमतः । कुम्भपालस्य शौकलस्य वैश्यानां रक्षकस्य च ॥७४
 विष्वक्सेनान्वयेजातः विष्वक्सेना नृपाः स्मृताः । विसेनस्य कुले जाता विसेनाः क्षत्रियाः स्मृताः ॥७५
 गुहितस्य कुले जाता गौहिलाः क्षत्रिया हि ते । राष्ट्रपालान्वये जाता राष्ट्रपाला नृपाः स्मृताः ॥७६
 वैश्यपालस्य वै वंशे कुम्भपालस्य धीमतः । वैश्यपालात्म राजन्यो बभूवर्बहुधाः हि ते ॥७७

मन्दपाल उत्पन्न हुए, जिसके राजकाल में सभी राजाओं ने मन्दपाल के त्यागपूर्वक उसके दिये हुए गृहों में निवास किया था । इसने अपने पिता के आधे समय तक राज्यभार को संभाला था और उपरोक्त अन्य राजाओं ने अपने-अपने पिता के समान काल तक । राजा मन्दपाल के कुम्भपाल हुआ, जिसने महामोद को अपनी बुद्धिमानी से लौटा दिया । एकबार पिशाचों के जीच में स्थित राजनीय नगरी के अधीश्वर महामोद नामक म्लेच्छ ने अनेक देशों को पराजितकर उसके धनों को लूटते हुए राजा कुम्भपाल की राजधानी के समीप आगमन किया । नृप! राजा कुम्भपाल ने कलिमूर्ति उस महामोद नामक म्लेच्छ को देखकर विचार किया, पश्चात् उस बुद्धि-कुशल राजा ने वहाँ जाकर उसे सर्वप्रणाम किया, जिससे प्रसन्न होकर उस बीर एवं मूर्तिधवंसी म्लेच्छराज ने इन्हें बहुत-सा धन देकर अपनी राजनीया नामक नगरी को प्रस्थान किया । बीस वर्ष तक राज्य करने पर राजा कुम्भपाल के देवपाल नामक पुत्र हुआ, जिसने अनंगराज की चन्द्रकीर्ति नामक कन्या के साथ सविधान पाणिग्रहण करके उसके समेत कान्यकुञ्ज (कन्त्रीज) आकर अत्यन्त सुखीजीवन व्यतीत किया । वहाँ रहकर अनेक राजाओं पर विजय प्राप्ति पूर्वक उन्होंने अपने पिता के समान काल तक राज्य का उपभोग किया । ६०-७१। पश्चात् उनके जयचन्द्र और रत्नभानु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्होंने उत्तर और पूर्व के आर्य प्रदेशों को जीतकर वैष्णव राज्य की प्राप्ति की । रत्नभानु के पुत्र ख्यातिप्राप्त लक्षण (लाखन) हुए, जिन्होंने कुरुक्षेत्र के रणस्थल में घोर संग्राम करते हुए प्राण विसर्जनकर स्वर्ग की प्राप्ति की । इस प्रकार बुद्धिमान वैश्यपाल और वैश्यों के रक्षक शुक्लवंशीय कुम्भपाल के राष्ट्र-वंश का वृत्तान्त समाप्त हुआ । विष्वक्सेन के वंशज राजालोग विष्वक्सेन विसेन कुल में उत्पन्न क्षत्रिय विसेन, गुहिल कुल में उत्पन्न क्षत्रियविषयण गौहिल और राष्ट्रपाल वंश के क्षत्रिय राजगण राष्ट्रपाल कहे गये हैं । वैश्यपाल एवं बुद्धिमान् कुम्भपाल के वंशज नृपगण अनेक भाँति के भेद उत्पन्न करने के नाते

लक्षणे मरणं प्राप्ते शुक्लवंशधुरन्धुरे । सर्वे ते अत्रिया मुख्याः कुरुक्षेत्रे लयं गताः ॥७८
शेषास्तु क्षुद्रभूपाला वर्णसङ्करसम्भवाः । म्लेच्छैश्च दूषिता जाता म्लेच्छराज्ये भयानके ॥७९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्व्युगःखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रभरवंशवर्णनं नाम वृतीयोऽध्यायः । ३

अथ चतुर्थोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्यं शृणु त्वं वै वंशं परिहरस्य च । जित्वा बौद्धान्परिहरोऽथर्वेदापरायणः ॥१
शौक्तं सर्वमर्यां नित्यां ध्यात्वा प्रेमपरोऽभवत् । प्रसन्ना सा तदा देवीं सार्ध्योजनंमायत्तम् ॥२
नगरं चित्रकूटाद्वौ चकार कलिनिर्जरभ् । कलिर्यत्र शब्देद्वादो नगरेऽस्मिन्तुरप्रिये ॥३
अतः कलिज्जरो लाङ्गा प्रसिद्धोऽभून्महीतले । द्वादशाब्दं कृतं राज्यं तेन पूर्वप्रदेशके ॥४
गौरवर्मा तस्य सुतः कृतं राज्यं पितुः समम् । स्वानुजं घोरवर्मणं तत्रास्थाप्य मुदान्वितः ॥५
गौडदेशं समागम्य तत्र राज्यमकारयत् । सुपर्णो नाम नृपतिस्ततोऽभूद्गौरवर्मणः ॥६

अनेक भाँति के बताये गये हैं। चन्द्रवंश के धुरंधर राजा लक्षण (लाखन) के स्वर्गीय होने पर उस कुरुक्षेत्र के स्थल में अधिकांश मुख्य अत्रियों का नाश हो गया था। उस समय छोटे ही राजागण शेष थे, जिनकी स्त्रियों से बलात् रमण करके उन म्लेच्छों ने उस भीषण म्लेच्छराज के समय में वर्णसंकरों की उत्पत्ति की । ७२-७९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन में
प्रभरवंश वर्णन नामक तीसरा अध्याय समाप्त । ३

अध्याय ४ कलियुगीय इतिहास समुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुवर्य ! मैं परिहार वंश का वर्णन करता हूँ, सुनो ! अर्थवर्वेद के पारायण करने वाले उस राजा परिहर ने बौद्धों पर विजय प्राप्ति करने के उपरांत सर्वशक्तिमयी भगवती की आराधना सप्रेम प्रारम्भ की। उससे प्रसन्न होकर देवी जी ने चित्रकूट पर्वत के समीप डेढ़ योजन का विस्तृत कलिनिर्जर (कलीजर) नामक एक नगर का निर्माण किया। उस देवप्रिय नगर में कलि बाँध दिया गया है। इससे वहाँ इसके अस्तित्व न रहने पर पृथ्वी में उसकी स्थाति 'कलिजर' के नाम से हुई। वह सुरम्य नगर, जो पूर्वी प्रदेश में बसा हुआ है, बाहर हर्ष तक उसके राजा के राज करने पर गौरवर्मा नाम पुत्र उनके उत्पन्न हुआ। उसने अपने छोटे भाई घोरवर्मा को अपने पिता के सिहासनपर प्रतिष्ठित कर स्वयं गौडदेश में जाकर वहाँ राज्य स्थापन किया। वहाँ राजा गौरवर्मा

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं रूपणस्तस्तुतोऽभवत् : पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कारवर्मा सुतोऽभवत् ॥७
 शको नाम ततो राजा महालक्ष्मी^१ सनातनीम् । त्रिवर्षान्ते च सा देवी कामाक्षीरूपधारिणी ॥८
 स्वभक्तपालना चैव तत्र वासमकारयत् । शतार्द्धाब्दं कृतं राज्यं तेन वै कामवर्मणा ॥९
 मिथुनं जनयामास भोगो भोगवती हि सा । दिक्कमायैव नृपतिः सुतां भोगवतीं ददौ ॥१०
 स्वराज्यं च स्वपुत्राय प्रददौ भोगवर्मणे । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं कालिवर्मा सुतोऽभवत् ॥११
 महोत्सवं महाकाल्याः कृतदान्स च भूषणिः । तस्मै प्रसन्ना वरदा कली भूत्वा स्वयं स्थिता ॥१२
 रत्तिका बहुपुष्णाणः सा चकार इवर्हषतः । ताभिर्भवं च नगरं सञ्जातं च मनोहरम् ॥१३
 कलिकाता पुरी नाम्ना ग्रसिद्धाशून्महीतले । कौशिकस्तस्य तनयः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥१४
 कात्यायनस्तस्य सुतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । तस्य पुत्रो हेमवतः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥१५
 शिववर्मा च तत्पुत्रः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् । भववर्मा च तत्पुत्रस्त्यक्त्वा वै पैतृकं पदम् ॥१६
 रुद्रवर्मा च तत्पुत्रः कृतं राज्यं पितुः समम् । भोजवर्मा च तत्पुत्रस्त्यक्त्वा वै पैतृकं पदम् ॥१७
 भोजराष्ट्रं वनोद्देशो कारयामास धीर्यवान् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं गववर्मा नृपोऽभवत् ॥१८
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं विन्ध्यवर्मा नृपोऽभवत् । स्वानुजाय स्वकं राज्यं दत्त्वा वज्रमुपाययौ ॥१९
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सुखसेनस्ततोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं बलाकस्तस्य चात्मजः ॥२०
 दशवर्षं कृतं राज्यं लक्षणस्तस्तुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं माधवस्तस्तुतोऽभवत् ॥२१

ने सुपर्ण नाम के पुत्र को उत्पन्न किया । १-६। पश्चात् सुपर्ण के रूपण और रूपण के कायवर्मा हुए, जिन्होंने अपना शक नाम परिवर्तन करके सनातनी महालक्ष्मी की उपासना की । तीन वर्ष तक आराधना करने के उपरांत कामाक्षी रूपधारिणी देवी ने अपने भक्त के पालनार्थ वहाँ निवास किया । पचास वर्ष तक राज्योपभोग करने पर कामवर्मा के भोगवती एवं भोग नामक कन्या और पुत्र का एक जुड़वाँ उत्पन्न हुआ । राजा ने अपनी भोगवती पुत्री का पाणिग्रहण विक्रम द्वारा सुसम्पन्न कराकर अपना राज्य अपने उस पुत्र भोगवर्मा को प्रदान किया । अनन्तर उस भोगवर्मा के कलिवर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने महाकाली का महान् उत्सव किया । वरदायिनी भगवती ने उसके ऊपर प्रसन्न होकर कालीरूप में वहाँ अपनी स्थिति की तथा हर्षातिरेक होने से वहाँ असंख्य पुष्टों में कलियाँ निकल आईं । पुनः उन्हीं द्वारा एक मनोहर नगर का निर्माण हुआ, जो कलिकाता (कलकत्ता) नाम से इस भूतल पर प्रस्वात हुआ । पश्चात् उस राजा के कौशिक नामक पुत्र हुआ और कौशिक के कात्यायन, कात्यायन के हैमवत, हैमवत के शिववर्मा, शिववर्मा के भववर्मा, भववर्मा के रुद्रवर्मा, रुद्रवर्मा के भोजवर्मा हुए, जिस पराक्रमी ने वन के भीतर भोजराष्ट्र स्थापित किया । भोजवर्मा के गववर्मा, गववर्मा के विन्ध्यवर्मा हुए, जो अपना राज्य अपने छोटे भाई को सौंपकर स्वयं वंगदेश चले गये थे । ७-११। पुनः उनके सुखसेन तथा सुखसेन के बलाक नामक पुत्र हुआ, जिसने केवल दश वर्ष तक राज्य किया और शेष उपरोक्त राजाओं ने अपने-अपने पिता के समान काल तक ।

१. सिषेवे इति शेषः ।

पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं केशदस्तत्सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं सूरसेनस्ततोऽभवत् ॥२२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो नारायणोऽभवत् ; पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं शान्तिवर्मा सुतोऽभवत् ॥२३
 गङ्गाकूले शान्तिपुरं रचितं तेन धीमता । निवासं कृतवान्भूपः पितुस्तुल्यं कृतं पदम् ॥२४
 नदीवर्मा तस्य सुतोः गङ्गादत्तवरो बली । चकार नगरी रम्यां नदीहां गौडराष्ट्रगाम् ॥२५
 गङ्गावा च तदाहूतोऽभिज्ञो विद्याधरः स्वयम् ; तेनैव रक्षिता चासीत्पुरी वेदपरायणा ॥२६
 विशद्वर्षं कृतं राज्यं तेन राजा महात्मनः । गङ्गावंशस्ततो जातो विश्रुतोऽभून्धाहते ॥२७
 शार्दूलेन्तस्तस्य सुतो बलवान्हरिपूजकः । गौडदेवामुपागम्य हरिध्यानपरोऽभवत् ॥२८
 दशवर्षं कृतं राज्यं गङ्गादेवस्तु तत्सुतः । विशद्वर्षं कृतं राज्यं चानग्नस्तस्य भूपतिः ॥२९
 तनयो बलवान्शासीदगौडदेशमहीपतिः । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं ततो राजेश्वरोऽभवत् ॥३०
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं नृसिंहस्ततयोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिवर्मा सुतोऽभवत् ॥३१
 राष्ट्रदेशमुपागम्य जित्वा तस्य नृपं बली । महोवतीं पुरीं रम्यामध्यास्य सुखितोऽभवत् ॥३२
 पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं धृतिवर्मा सुतोऽभवत् । पितुस्तुल्यं कृतं राज्यं तस्य पुत्रो महीपतिः ॥३३
 जयचन्द्राजया भूप उर्वर्मायामिति स्मृताम् । नगरीं कारयामास तत्र वासन्नकारयत् ॥३४
 कुरुक्षेत्रे हताः सर्वे क्षत्रियाश्चन्द्रवंशिनः । तदा महीपती राजा महावत्यधिपोऽभवत् ॥३५
 विशद्वर्षं कृतं राज्यं सहोदीनेन वै ततः । कुरुक्षेत्रे मृतिं प्राप्ताः सुयोधनकलांशकाः ॥३६
 घोरवर्मा तु नृपतिः सुतः परिहरस्य वै । कलिञ्जरे कृतं राज्यं शार्दूलस्तस्तुतोऽभवत् ॥३७

बलाक के लक्ष्मण, लक्ष्मण के माधव, माधव के केशव, केशव के सुरसेन, सुरसेन के नारायण, नारायण के शान्तिवर्मा हुए, जिसने गंगातट पर शान्तिपुर का निर्माण किया । शान्तिवर्मा के नदीवर्मा और नदीवर्मा के गंगादत्त हुए, जिस बली ने गौडराष्ट्र में 'नदीहा' नामक नगरी का निर्माण किया । राजा गंगादत्त ने विद्याधर की आराधना द्वारा उन्हें प्रसन्नकर उसके द्वारा अपनी उस धार्मिक नगरी की सुरक्षा की । उस महात्मा राजा के बीस वर्ष तक उस राज्यपद को प्रतिष्ठित करने के उपरांत उसी से गगावंश की स्थापित इस भूतल में हुई । उपरोक्त शेष राजाओं ने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया । २०-२७ गंगादत्त के बलवान् एवं विष्णुभक्त शार्दूलेव नामक पुत्र हुआ, जो गौडदेश में आकर सदै व भगवान् का ध्यान हाँ करता था । दशवर्ष तक राज्य करने के उपरांत उनके गंगादेव नामक पुत्र हुआ, जिसने बीस वर्ष तक उस पद को सुशोभित किया । पश्चात् उनके अनंग नामक पुत्र हुआ, जो बली एवं गौडदेश का अधीश्वर था । राजा अनंग के राजेश्वर, राजेश्वर के नृसिंह, और नृसिंह के कलिवर्मा नामक पुत्र हुआ, जिसने राष्ट्रदेश के अधीश्वर को पराजित कर रमणीक महावती (महोवा) नगरी में अपना सुखी-जीवन व्यतीत किया । तदनन्तर उनके धृतिवर्मा तथा धृतिवर्मा के महीपति (माहिल) नामक पुत्र हुआ, जिसने राजा जयचन्द्र की आज्ञा से 'उर्वो' 'माया' (उरड) नामक नगरी का निर्माण कराकर वहाँ निवास किया । कुरुक्षेत्र के रणस्थल में वन्द्रवंशी आदि सभी राजाओं के विनष्ट हो जाने पर माहिल महोवा का राजा हुआ । बीस वर्ष राज्य करने के उपरांत उसी कुरुक्षेत्र में सहोदीन (सहावुदीन) द्वारा उस सुयोधनांश की अब मृत्यु हो गई । ऐप अन्य राजगणों ने उत्तरोत्तर अपने-अपने पिता के समान काल तक राज्य किया था । परिहर पुत्र घोरवर्मा के कलिजर में राज्य करते हुए शार्दूल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके बंश में उत्पन्न क्षत्रियगण शार्दूलीय (वधेल) वंशीय कहे जाते

तदन्वये च ये भूपाः शार्दूलीयाः प्रकीर्तिताः । भूपानां बहुधः राष्ट्रं शार्दूलान्वयसम्भवम् ॥३८
बभूव सर्वतो भूमौ महामायाप्रसादतः । इति ते कथितं विप्र यावकीयमहीभुजाम् ॥३९
कुलं सकलपापद्धनं यथैव शशिसूर्ययोः । पुनरन्यत्रवद्यामि यथा जातः हरिः स्वयम् ॥४०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्दुग्खाण्डापरपर्याप्ति
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये चतुर्थोऽध्यायः ।४

अथ पञ्चमोऽध्यायः

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

मध्याह्नकाले सम्प्राप्ते ब्रह्मोऽव्यक्तजन्मनः । चाक्षुषान्तरमेवापि नहावायुर्बभूव ह ॥१
तत्प्रभावेन हेमाद्विः कम्पमानः पुनः पुनः । यथा वृक्षस्तथैवतसौ तत्कम्पादेव मण्डलः ॥२
नभसो भूतले प्राप्तस्तदा भूमिः प्रकम्पितः । बभूव मुनिशार्दूल सर्वलोकविगताग्निनी ॥३
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च जलभूता बभूविरे । लोकालोकस्तदा शेषोऽभवत्सोत्तरपर्वतः ॥४
शेषा भूमिर्लयं प्राप्ता मुने मन्वन्तरे लये । सहस्राब्दान्तरे भूमिर्बभूव जलमध्यगा ॥५
तदा स भगवान्विष्णुर्भवेन विधिना सह । शैशुमारं शुभं चक्रं चकार नभसि स्थितम् ॥६
गृहीत्वा सकलास्तारा ग्रहान्सर्वान्यथाविधि । स्थापयामास भगवान्यथायोग्यं पितामहः ॥७

हैं । उस शार्दूल (बधेल) वंश राजाओं का पृथ्वी में चारों ओर महामाया के प्रसाद से विस्तृत अनेक प्रकार का राष्ट्र हुआ । विप्र ! इस प्रकार अप्निवंशीय राजाओं के सूर्य-चन्द्रवश के समान पदित्रकुल का वर्णन कर दिया गया । पुनः अब मैं जिस प्रकार भगवान् अवतरित हुए वह कथा सुनाऊंगा । २८-४०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त ।४।

अध्याय ५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूतजी बोले—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के मध्यान्ह काल के समय महावायु का प्रकोप प्रारम्भ हुआ जिससे प्रभावित होकर हिमालय वृक्ष की भाँति बार-बार काँपने लगा । उसके कम्पित होने पर वह बायुमंडल आकाश से पृथ्वी पर आया, जिसमें पृथ्वी में भूचाल होने लगा। मुनिशार्दूल ! उस भूचाल से समस्त लोकों का विनाश हो गया सातों द्विप और समुद्र सभी जलमय हो गये । उस समय केवल उत्तरकी ओर स्थित लोकालोक पर्वत ही शेष रहा । मुने ! शेष भूमि के लय होने पर, जबकि मन्वन्तर काल का भी विलयन हो गया, उसके सहस्र वर्ष व्यतीत होने के उपरान्त पृथ्वी भी जलमध्य में लिलीन हो गई । १-६। उस समय शिव और ब्रह्मा समेत भगवान विष्णु ने उस शैमुमार शुभ चक्र को आकाश में स्थापित किया । पुनः उन्होंने उन ज्योतिष्चक्रों (ज्योतिर्गणो) द्वारा पृथ्वी का शोषण करना आरम्भ किया, जिससे वह पृथ्वी दश सहस्र

पुनर्वै ज्योतिषां चक्रैः शोषिता सकला मही । स्थलीभूयायुताब्दान्ते दृश्यमाना बभूव ह ॥८
 तदा स भगवान्ब्रह्मा मुखात्सोमं चकार ह । द्विजराजं नहाप्राङ्मं सर्ववेदविशारदम् ॥९
 भुजःभ्यां भगवान्ब्रह्मा क्षत्रराजं महाबलम् । सूर्यं च जनयामास राजनीतिपरायणम् ॥१०
 ऊरुस्यां वैश्यराजं च समुद्रं सरितां पतिम् । रत्नाकरं च कृतवान्परमेष्ठी पितामहः ॥११
 पद्भ्यां च जनयामास विश्वकर्मणमुत्तमस् : दक्षं नाम कलाभिज्ञं शूद्रराजं सुकृत्यकम् ॥१२
 सःमाद्वै ब्राह्मणा जाताः सूर्याद्वाजन्यवंशजाः । समुद्रत्सकला वैश्या दक्षाच्छूद्रा बभूविरे ॥१३
 सूर्यमाद्विलतो जातो मनुर्वेवस्वतः स्वयम् । तस्य राज्यमभूत्सर्वं प्राणिनां लोकवासिनाम् ॥१४
 दिव्यानां च युगानां च तज्जेयं चैकसप्ततिः । तदा स भगवान्निष्ठुर्विश्वरूपाऽवतारकः ॥१५
 विष्णुः पूर्वार्द्धितो जातः परार्द्धद्वामनः स्वयम् । बालः सत्ययुगे देवो विश्वरूपः सनातनः ॥१६
 चतुश्शतानि वर्षाणि परमायुर्नृणां तदा । त्रेतायां यौवनं प्राप्तः पूर्वार्द्धात्सम्भवो हरे: ॥१७
 वर्षाणां व्रिशतानां च नृणामायुः प्रकीर्तितम् । द्वापरे वर्षार्द्धको देवो नृणामायुः शतहृयम् ॥१८
 कलो तु मरणं प्राप्तो विश्वरूपो हरिः नरो । नृणामायुः शताब्दं च केषाच्चद्वामर्शालिनाम् ॥१९
 परार्द्धद्वामनो देवो भहेन्द्रावरजो हरिः । चतुर्भुजो महाश्यामो गरुडोपरि संस्थितः ॥२०
 विश्वरूपहितार्थाय त्रियुगी सम्बभूव ह । वामनार्द्धच्च त्रियुगी जातो नारायणः स्वयम् ॥२१
 श्वेतरूपो हरिः सत्ये हंसाख्यो भगवान्स्वयम् । त्रेतायां रक्तरूपश्च यज्ञाख्यो भगवान्स्वयम् ॥

वर्ष के निरन्तर प्रयत्न करने पर स्थल के रूप में दिखाई देने लगीं । उस समय भगवान् ब्रह्मा ने अपने मुख द्वारा सोग को उत्पन्न किया, जिन्हें द्विजराज, महाबुद्धिमान एवं सर्ववेद विश्वारद कहा जाता है । पुनः भगवान् ब्रह्मा ने अपनी भुजाओं द्वारा क्षत्रराज सूर्य को उत्पन्न किया, जो महाबली एवं राजनीति के विशेषज्ञ हैं । उसी प्रकार ऊरु ने वैश्यराजसमुद्र को उत्पन्न किया, जिन्हें सरिताओं का पति और रत्नाकर कहा गया है तथा परम बुद्धिमान-पितामह जी ने चरणों से विश्वकर्मा दक्ष को उत्पन्न किया, जो कलाओं के विशेषज्ञ, शूद्रराज एवं सुकृत्यकर्मा कहे जाते हैं । पश्चात् द्विजराज सोम द्वारा ब्राह्मण, सूर्य द्वारा क्षत्रियगण, समुद्र द्वारा समस्त वैश्य और सूर्यमण्डल द्वारा वैवस्वतगनु उत्पन्न हुए, जिनका समस्त जीवलोक में एकच्छत्र राज्य स्थित है । दिव्य युगों के एकहत्तर बार व्यतीत होने पर भगवान् विष्णु विश्वरूप से अवतरित होते हैं । समस्त युगकाल के पूर्वार्द्ध में विष्णु और उत्तरार्द्ध में स्वयं वामन अवतरित होते हैं । सत्ययुग में विश्वरूप सनातन भगवान् का बाल्यरूप प्रकट होता है । उस समय मनुष्यों की आयु चार सौ वर्ष की होती है, पूर्वार्द्ध में उत्पन्न भगवान् विष्णु त्रेतायुग में युवा होते हैं, उस समय मनुष्यों की आयु तीन सौ वर्ष की कही गई है और द्वापर में उस (विष्णु) देव की वृद्धावस्था होती है उस समय मनुष्यों की आयु दो सौ वर्ष की होती है तथा कलियुग में विश्वरूप और सनातन विष्णु का स्वयं मरण हो जाता है । इस युग में कुछ धार्मिक मनुष्यों की आयु सौ वर्ष की होती है । ७-११। परार्द्धकाल में अवतरित होकर वामन के रूप में भगवान् जो इन्द्र के अनुज कहे जाते हैं, चार भुजाएँ, श्यामल वर्ण, धारणकर गरुडपर स्थित होकर विश्वरूप के हितार्थ त्रियुगी होते हैं । उन त्रियुगी वामनार्द्ध के द्वारा स्वयं नारायण उत्पन्न होते हैं, सत्ययुग में स्वयं भगवान् श्वेतरूप धारणकर हंसनाम से प्रस्वात होते हैं । उसी प्रकार त्रेता में

द्वापरे पीतरूपश्च स्वर्णगर्भो हरिः स्वयम्

॥२२

कलिकाले तु सम्प्राप्ते सन्ध्यायां द्वापरे युगे । कला तु सकला विष्णोर्वामिनस्य तथा कला ॥
एकभूता च देवस्थां जातो विष्णुस्तदा स्वयम्

॥२३

वसुदेवगृहे रम्ये मथुरायां च देवताः । ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुर्देवं परं ब्रह्म सनातनम् ॥२४
तदा प्रसन्नो भगवान्देवानाह शुभं वचः । देवानां च हितार्थ्य दैत्यानां निधनाय च ॥
अहं कलौ च बहुधा भवामि सुरसत्तमाः

॥२५

दिव्यं वृन्दावनं रम्यं सूक्ष्मं भूतलसंस्थितम् । तत्राहं च रहः क्रीडां करिष्यामि कलौ युगे ॥२६
सर्वे वेदाः कलौ घोरे गोपीशूताः समन्ततः । रस्यन्ते हि मया शार्दूल्यकृत्वा भूमण्डलं तदा ॥२७

राधया प्रार्थितोऽहं वै यदा कलियुगान्तके । समाप्य च रहः क्रीडां कल्की च भवितास्म्यहम् ॥२८

युगान्तप्रलयं इत्वा पुनर्भूत्वा द्विधातनुः । सत्यधर्मं करिष्यामि सत्ये प्राप्ते सुरोत्तमाः ॥२९

इति श्रुत्वा तु ते देवास्त्रैवान्तर्लयं गताः । एवं युगे युगे क्रीडा हरेरद्भुतकर्मणः ॥३०

गे तु वै विष्णुभक्ताश्रमं ते हि जानन्ति विश्वगम् । यथैव नृपतेर्दिसाः स्वराज्ञः कार्यगौरवम् ॥

॥३१

ज्ञानन्ति नापरे विप्र तथा दासा हरे: स्वयम्

विष्णुवाङ्छानुसारेण विष्णुमाया सनातनी । रचित्वा विविधांल्लोकान्महाकाली बभूव ह ॥३२

कृत्वा कालमयं सर्वं जगदेतच्चराचरम् । पञ्चातु भक्षयित्वा तान्महागौरी भविष्यति ॥३३

यज्ञ नामक रक्तवर्ण एवं द्वापर में हिरण्यगर्भ नामक पीत नर्ण के अवतरित होते हैं । द्वापर के संध्या समय में कलिकाल के आगमन होने पर विष्णु की रामस्तकला और वामन की एक कला एक होकर मथुरा निवासी वसुदेव के घर देवकी के गर्भ से भगवान् विष्णु के रूप में आविर्भूत हुई । उस समय समस्त ब्रह्मा आदि देवगणों ने उस सनातन ब्रह्म की स्तुति की । अनन्तर प्रसन्न होकर भगवान् ने देवों के हितार्थ और दैत्यों के विनाशार्थ अनेक रूप में प्रकट होऊँगा और इस पृथ्वी में सूक्ष्मरूप में स्थित उस दिव्य वृन्दावन में एकान्त क्रीडा भी करूँगा यह कहा । उस समय घोर कलि जानकर भूमण्डल के त्यागपूर्वक समस्त वेद गोपी के रूप में वहाँ प्रकट होकर मेरे साथ रमण करेंगे । पुनः कलि के अंत में राधिका जी के प्रार्थना करने पर मैं उस एकान्त क्रीडा को समाप्त करके कल्की अवतार लूँगा । सुरसत्तम वृन्द । पुनः युगान्त प्रलय करने के उपरांत मैं उस समय युग के आरम्भ में अपनी शरीर को दो रूप में विभक्तकर सत्यधर्म करूँगा । इसे सुनकर वे देवगण भी उसी में विलीन हो गये । २०-३१ इसी प्रकार उस अद्भुत कर्मा भगवान् की प्रत्येक युगों में क्रीडा होती रहती है, किन्तु विष्णुभक्त ही उस ब्रह्माण्डनायक को जानता है अन्य नहीं । विप्र ! जिस प्रकार राजा के कार्यगौरव को उसका सेवक ही जान सकता है अन्य नहीं । उसी प्रकार भगवान् के चरित्रों को उनके दास के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता है । विष्णु की सनातनी माया उनकी इच्छानुसार अनेक भाँति के लोकों की रचना करके महाकाली का स्वरूप धारणकर लेती है, जिससे कालमय एवं चराचर इस सम्पूर्ण जगत् का भक्षणकर लेती है और तदनन्तर वही महागौरी के रूप में

नमस्तस्यै महाकाल्यै विष्णुमाये नमोनमः । महागौरि नमस्तुभ्यमस्मान्याहि भयान्वितान् ॥३४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वाणि चतुर्युगलण्डापरपर्याये
कलियुगीयेत्तिहाससमुच्चये पञ्चमोऽध्यायः ।५

अथ षष्ठोऽध्यायः

प्रमरवंशवर्णनम्

ऋषिरुचाच

महीराजान्मुनिश्रेष्ठ के राजानो बभूदिरे । तन्नो दद महाभाग सर्वज्ञोऽस्ति भवान्सदा ॥१
सूत उचाच

पैशाचः कुतुकोदीनो देहलीराज्यमास्थितः । वलीगढं महारम्यं याद्वै रक्षितं पुरम् ॥

ययौ तत्र स पैशाचः शूरायुतसमन्वितः ॥२

बीरसेनस्य वै पौत्रं भूपसेनं नृपोत्तमम् । स जित्वा कुतुकोदीनो देहलीप्रामसंस्थितः ॥३

एतस्मिन्नन्तरे भूया नानादेश्याः समागताः । जित्वा स कुतुकोदीनः स्वदेशात्तैर्निराकृतः ॥४

सहोदीनस्तु तच्छृत्वा पुनरागत्य देहलीम् । जित्वा भूपान्देत्यवरो मूर्तिखण्डमथाकरोत् ॥५

तत्पश्चाद्वृद्ध्या म्लेच्छा इहागत्य समन्ततः । पञ्चषट्सप्तवर्षाणि कृत्वा राज्यं लयं गताः ॥६

अद्यप्रभृति देशेऽस्मिन्न्यतवर्षान्तरे हि ते । भूत्वा चाल्पायुषो मन्दा देवतीर्थविनाशकाः ॥७

परिवर्तित हो जाती है। अतः विष्णु की उस माया को नमस्कार है और महाकाली को बार-बार नमस्कार है, तथा महागौरी को नमस्कार है, वे हम भयभीतों की रक्षा करें। ३२-३४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय
इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक पाँचवां अध्याय समाप्त ।५।

अध्याय ६

प्रमरवंश का वर्णन

ऋषि बोले—मुनिश्रेष्ठ ! (पृथ्वीराज) के पश्चात् कौन-कौन राजा हुएः । महाभाग ! इसे हमें बताने की कृपा करें, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं ।१

सूत बोले—दश सहस्र यवन सेनाओं को लेकर वहाँ पहुँचने पर उसने राजा बीरसेन के पौत्र नृपश्रेष्ठ भूपसेन को पराजित कर पुनः दिल्ली लौटकर सुखीजीवन व्यतीत करना आरम्भ किया । किन्तु उसी बीच अनेक प्रान्तों के राजाओं ने वहाँ पहुँचकर उससे घोर संग्राम करके उस कुतुकोदीन (कुतुबुदीन) को अपने इस भारत प्रदेश से बाहर किया । उसे सुनकर सहोदीन (सहाबुदीन) पुनः दिल्ली आकर उन राजाओं पर विजय प्राप्तिपूर्वक मूर्तियों के तोड़ने-फोड़ने का कार्य करता रहा । उसके अनन्तर अनेक म्लेच्छ वंश के लोगों ने यहाँ भारत में आकर पाँच सौ वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् उनका विलय हो गया । मुनिश्रेष्ठ ! इसीलिए आज से सौ वर्ष के भीतर ही देवमूर्तियों तथा तीर्थों के

स्लेच्छभूपा मुनिश्रेष्ठास्तस्माद्यं मया सह । गन्तुमर्हथ वै शीघ्रं विशालां नगरों शुभाम् ॥८
इति श्रुत्वा तु वचनं दुःखात्सन्त्पञ्च नैमिषम् । ययुः सर्वे विशालायां हिमाद्रौ गिरिसत्तमे ॥९
तत्र सर्वे समाधिस्था ध्यात्वा सवेमयं हरिम् । शतवर्षान्तरे सर्वे ध्यानाद्ब्रह्मगृहं ययुः ॥१०

व्यास उवाच

इत्येवं सकलं भावं योगाभ्यासवशाद्द्रुतम् । वर्णितं च मया तुभ्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥११

मनुरुद्धवाच

भगवन्वेदतत्त्वज्ञ रस्वलोकशिवङ्कर । अहं मायाभवो जातो भवान्वेदभवो शुभिः ॥१२
अविद्यया च सकलं सम ज्ञातं समाहृतम् । अतोऽहं दिविधा योनीर्गृहीत्वा लोकमागतः ॥१३
परं ब्रह्मैव कृपया दृष्ट्वा मां मन्दभागिनम् । व्यासरूपं त्वयं कृत्वा समुद्दर्तुमुपागतः ॥१४
तमस्तस्मै मुनीन्द्राय वेदव्यासाय साक्षिणे । अविद्यामोहभावेभ्यो रक्षणाय नमोनमः ॥१५
पुनरन्यच्च मे ब्रूहि सूताद्यैः कि कुतं मुने । तत्सर्वं कृपया स्वामिन्वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥१६

व्यास उवाच

ब्रह्माण्डे ये स्थिता लोकास्ते सर्वेऽस्मिन्कलेवरे । अहङ्कारो हि जीवात्मा सर्वः स्यात्कोटिहीनकः ॥१७
पुराणोऽणोरणीयांश्च षोडशात्मा सनातनः । इन्द्रियाणि मनश्चैव पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥१८

विनाशक वे प्रथम यवन भूपगण अत्यायु होकर त्रिष्ट होते रहेंगे । अतः तुम लोग मेरे साथ उस विशाला नामक श्रेष्ठपुरी चलने के लिए तैयारी करो । इसे सुनकर दुःख प्रकट करते हुए किसी प्रकार नैमिषारण्य तीर्थ का त्यागकर वे मुनिवन्द पर्वतश्रेष्ठ उस हिमालय पर स्थित विशाला पुरी के लिए प्रस्तिथ हो गये । वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने समाधिस्थ होकर भगवान् का ध्यान करना आरम्भ किया । पश्चात् वैसं ही ध्यान करते हुए वे कृषि ब्रह्मलोक पहुँच गये । २-१०

व्यासजी बोले—योग के अन्यास वश जानी गई इन बातों को मैंने सुना दिया । अब इसके अतिरिक्त क्या मुनना चाहते हो ! ११

मनु ने कहा—भगवन् ! आप वेद के मर्मज्ञ और समस्त लोकों के कल्याणप्रद हैं तथा इस भूतल में माया द्वारा उत्पन्न और आप वेद द्वारा । इसीलिए अविद्या द्वारा मेरा समस्तज्ञान, अपहृत हो जाने के नाते मैं अनेकों योनियों में भ्रमण करता हुआ इस लोक में आया हूँ । उस परब्रह्म की यह असीम कृपा थी, जो मुझ ऐसे मन्दभागी को देखकर मेरे उद्घारार्थ व्यासरूप धारण कर यहाँ दर्शन दिया । अतः उस मुनीन्द्र वेदव्यास को नमस्कार है, जो कर्म का साक्षी रूप है और अविद्याजनित भाव-बन्धनों से मुक्त करने वाले उस ब्रह्मरूप को बार-बार नमस्कार है । मुने । तदुपरांत सूतादिक मुनियों ने क्या किया । स्वामिन् ! मुझे उन सभी को पुनः बताने की कृपा कीजिये । १२-१६

व्यासजी बोले—ब्रह्माण्ड में स्थित सभी लोकों के और इस शरीर में अहंकार ही जीवात्मा कहलाता है, जो अत्यन्त हीन होता है । पुराण (प्राचीन), अणु (सूक्ष्म) और सूक्ष्मतर आदि भेद से वह सनातन परात्मा ही आत्मा कहलाता है । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (थ्रवण, नेत्र, नासिका, जिह्वा, एवं त्वक्), पाँच

ज्ञेयो जीवः शरीरेऽस्मिन्स ईशगुणबन्धितः । ईशो हृष्टादशात्मा वै शङ्करो जीवशङ्करः ॥१९
 बुद्धिर्मनश्च विषया इन्द्रियाणि तथैव च । अहंकारस्तचेशो वै भहादेवः सनातनः ॥२०
 जीवो नारायणस्ताक्षाच्छङ्करेण विमोहितः । स बद्धस्त्रिगुणैः पाशैरेकश्च बहुधाऽभवत् ॥२१
 कातात्मा भगवानीशो महाश्लास्वरूपकः । शिवकल्पो ब्रह्मकल्पो विष्णुकल्पस्तृतीयकः ॥
 ईशनेत्राणि तान्देव बन्धकल्पश्चत्र्यकः ॥२२

वायुकल्पे वहिंकल्पो ब्रह्माण्डो लिङ्गकल्पकः । ईशवक्त्राणि पञ्चैव तत्त्वज्ञैः कथितानि वै ॥२३
 भविष्यकल्पश्च तथात तथा गरुडकल्पकः । कल्पो भागदत्तश्चैव मार्कण्डेयश्च कल्पकः ॥२४
 वामनश्च नृसिंहश्च वराहो मत्स्यकूर्मकैः । ज्ञानात्मनो महेशस्य ज्ञेया दश भुजा बुधैः ॥२५
 अष्टादशदिनेष्वेव ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कल्पाश्वाष्टादशास्तर्वे बुधैर्ज्ञेया विलोमतः ॥२६
 कूर्मकल्पश्च तत्राद्यो मत्स्यकल्पो द्वितीयकः । तृतीयैः षेषत्वाराहः कल्पो ज्ञेयैः पुरातनैः ॥२७
 द्विधां च भगवान्ब्रह्मा सूक्ष्मः स्थूलोऽगुणो गुणी । सगुणः स विराणनाम्ना विष्णुनाभिसमुद्भवः ॥२८
 निर्गुणोऽव्ययरूपश्चाव्यक्तजन्मा स्वभूः स्वयम् । ब्रह्मणः सगुणस्यैव शतायुः कालनिर्मितम् ॥२९
 ऊर्विंशत्सहस्राणि लक्ष्मैको मनुषाबदकः । एभिर्वर्षैर्दिनं ज्ञेयं विराजो ब्रह्मणः स्वयम् ॥३०
 निर्गुणोऽव्यक्तजन्मा च कालात्सर्वेश्वरः परः । अव्यक्तं प्रकृतिर्ज्ञेया द्वादशाङ्गानि वै ततः ॥३१
 इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरव्यक्तस्य स्मृतानि वै । अव्यक्ताच्च परं ब्रह्म सूक्ष्मज्योतिस्तदव्ययम् ॥३२

कर्मन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ) और मन संयुक्त इस शरीर में रहने वाला जीव ही ज्ञेय (जानने के योग्य) है, जो इस शरीर का अधिष्ठाता होकर (तीनों) गुणों (सत्त्व, रज, और तम्) द्वारा बँधा हुआ है। वह परात्मा अष्टादशात्मा और जीव का कल्याणकर्ता शंकर कहा जाता है। बुद्धि मन और इन्द्रियाँ यही इसके विषय हैं। जीवात्मा अहंकार ही ईश महादेव एवं सनातन कहा जाता है। किन्तु वही जीवात्मा होने पर, जो साक्षात् ब्रह्म रूप है, शंकर द्वारा विमोहित होने पर तीनों गुणरूपी पाश से आवद्ध होता है और वही एक से अनेक भी, जो काल, भगवान्, ईश एवं महाकल्प रूपधारी कहा जाता है। १७-२२। शिवकल्प, ब्रह्मकल्प और विष्णुकल्प, यही तीनों कल्प उस ईश के नेत्र हैं और वही ईश का नेत्र चौथा बन्धकल्प कहा गया है। वायुकल्प, वहिनकल्प, ब्रह्माण्ड और लिङ्गकल्प को ईश का पाँचों मुख उन तत्त्वज्ञों ने बताया है। भविष्य कल्प, गरुडकल्प, भगवत्कल्प और मार्कण्डेयकल्प तथा वामन, नृसिंह, वाराह, मत्स्य और कूर्म (कच्छप) उस ज्ञानात्मा महेश्वर की दस भुजाएँ हैं। उस अव्यक्त ब्रह्म के ये अट्टारहकल्प अट्टारह दिन में निर्मित होते हैं, जिनकी गणना के लिए विद्वानों ने विलोमतः बताया है। पहला कूर्मकल्प, दूसरा मत्स्य कल्प और तीसरे श्वेत वाराहकल्प को जानने के लिए पुरातन मर्हियों ने सर्वप्रथम प्रयत्न किया है। भगवान् ब्रह्मा ने अपने को दो रूपों में निभक्तकर सूक्ष्म, स्थूल, निर्गुण, गुणी, सगुण और विराट रूप में अपनी ख्याति की है, जिनका भगवान् विष्णु की नाभि से प्रकट होना बताया जाता है। उन्हीं निर्गुण, व्ययरूप, अव्यक्तजन्मा एवं स्वयंभू (अपने द्वारा उत्पन्न होने वाले) कहे जाने वाले सगुण ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु होती है। मनुष्यों के अस्सी सहस्र वर्षों का उस विराट ब्रह्मा का एक दिन होता है। निर्गुण एवं अव्यक्त जन्मा वह सर्वेश्वर काल से भी महान् है। उस परमेश्वर की अव्यक्त प्रकृति और बारह अंग बताये गये हैं—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मन्द्रिय मन एवं बुद्धि यही उस अव्यक्त के अंग हैं। अव्यक्त से वह

यदा व्यक्ते स्वयं प्राप्तोऽव्यक्तजन्मा हि संस्मृतः । शतवर्षसमाधिस्थो यस्तिष्ठेच्च निरन्तरम् ॥३३
 सूक्ष्मो मनोऽनिलो भूत्वा गच्छेद्वै ब्रह्मणः पदम् । सत्यलोकमिति ज्ञेयं योगगम्यं सनातनम् ॥३४
 तत्र स्थाने तु मुनयो गताः सर्वे समाधिना । तत्रोपित्वा च लक्षाब्दं भूलोकात्क्षणमात्रकम् ॥३५
 सञ्चिदानन्दधनकं ततः प्राप्ताः कलेवरे । नेत्राणि च समुन्मील्य सम्प्राप्ते द्वितयाह्निके ॥३६
 ददृशुर्नुजान्सर्वान्पशुदुलानिः सूक्ष्मकान् । षष्ठ्यद्वद्यायुर्तान्धोरान्सार्द्धकिञ्चुहयोन्नतान् ॥३७
 स्वचित्क्वचित्स्थिता वर्णवर्णसङ्करसन्निभाः । सर्वे म्लेच्छाश्र पाषण्डा बहुरूपमतो रित्थतः ॥३८
 तीर्थानि सकलतः वेदास्त्यक्तव्यः भूमण्डलम् तद्वा । गोप्यो भूत्वा च हरिणा सार्वं चकुर्महोत्सवम् ॥३९
 पाषण्डा बहुजातीया नानाभाव्यप्रदर्शकाः । कलिना निर्मितान्वर्णान्वच्चयित्वा स्थिता शुद्धिः ॥४०
 इति दृष्ट्वा तु मुनयो रोमहर्षणमन्तिके । गत्वा तत्र भविष्यन्ति ततः प्राञ्जलयो हि ते ॥४१
 तैश्च तत्र स्तुतः सूतो योगनिद्रां सनातनीम् । कथयिष्यति सत्यज्य कल्पाख्यानं मुनीन्प्रति ॥
 तच्छुणुधं मुनिश्रेष्ठा यथा भूतेन वर्णितम् ॥४२

सूत उवाच

कल्पाख्यानं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टं दोषनिद्रया । तच्छुणुधं मुनिश्रेष्ठा लक्षाब्दान्ते यथाभवत् ॥४३
 मुकुलान्वयसम्भूतो म्लेच्छभूपः पिशाचकः । नान्ना तिमिरलिङ्गश्च मध्यदेशमुपाययौ ॥४४

परब्रह्म आविर्भूत होता है, जिसकी सूक्ष्म ज्योति अव्यय कही जाती है । उसके अव्यक्त अवस्था में स्वयं प्राप्त होने पर उसे अव्यक्तजन्मा कहा जाता है, जो सगुण अवस्था में प्राप्त होकर निरन्तर सौ वर्ष तक समाधिस्थ रहता है । यह सूक्ष्ममन वायु के रूप में सतत प्रयत्न करते हुए ब्रह्मा के जिस स्थान की प्राप्ति करता है, वही सनातन एवं योग द्वारा जानने योग्य सत्यलोक बताया गया है । २३-३५ । उस स्थान पर पहुँचकर महर्षिणं समाधिस्थ होकर एक लक्ष वर्ष तक रहने के उपरान्त धणमात्र में भूलोक से सञ्चिदानन्द धन की उसं शारीर में प्रविष्ट हो गये । पश्चात् दूसरे दिन के आरम्भ में आँखें खोलने पर उन लोगों ने सभी मनुष्यों को पशुतुल्य सूक्ष्म रूप में देखा, जो साठ वर्ष की आयु, घोर एवं दो बिसे के ऊँचे थे । कहीं-कहीं पर तो वर्णशंकर के अनुसार जातियाँ दिखायी देती थीं, किन्तु वे सभी लोग पाखंडी, म्लेच्छ तथा अनेक रूपधारी थे । उस समय सभी तीर्थ और चारों वेद पृथ्वी परित्यागकर गोपी के रूप में भगवान् के साथ उस महोत्सव में सम्मिलित हो गये थे । इस भूतल में कलि ने सभी मनुष्यों को पाखण्डी, अनेक जातियाँ, एवं अनेक पंथ के प्रदर्शक बनाकर उन्हें अपने धर्मकर्म से वंचितकर स्वयं दृढ़ स्थिति कर लिया, ऐसा देखकर महर्षिवृन्द रोमहर्षण (सूतजी) के पास पहुँचने का प्रयत्न करेंगे । तथा वहाँ पहुँचकर मन ही मन हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम भी । इस प्रकार उन महर्षियों द्वारा स्तुत होने पर सूतजी अपनी उस सनातनी योगनिद्रा का त्यागकर उन्हें कल्प के आख्यान सुनायेंगे । इन्द्रियश्रेष्ठ ! सूत द्वारा वर्णित किये जाने वाले आख्यान को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो ! ३६-४२

सूत जी बोले—मुनिश्रेष्ठ ! उस एक लाख वर्ष के उपरान्त जो कुछ हुआ है, मैंने अपनी योगनिद्रा द्वारा उसका पूर्णज्ञान कर लिया है, अतः उस कल्प के आख्यान को मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । म्लेच्छों में तिमिर लिङ्ग (तैमूर) नामक राजा हुआ, जो मुकुल (मुगल) वंश में उत्पन्न एवं

आर्यान्त्लेज्ञांस्तदा भूपाञ्जित्वा कालस्थरूपकः । देहलीनगरीमध्ये नहावधमकारयत् ॥४५
 आहूय सकलान्विप्रानार्यदेशनिवासिनः । उवाच वचनं धीमान्यूयं मूर्तिप्रपूजकाः ॥४६
 निर्मिता येन या मूर्तिस्तस्य पुत्रीसमा स्मृता । तस्याः किं पूजनं शुद्धं शालग्रामशिलामयम् ॥
 विष्णुदेवश्च युष्माभिः प्रोक्तः स तु न वै हरिः ॥४७
 अतो दः सकला वेदाः शास्त्राणि विदिधानि च । वृथाकृतानि मुनिभिर्लोकवच्चनहेतवे ॥
 इत्युक्त्वा तान्बलाद्गृह्य ज्वलहनौ समाक्षिपत् ॥४८
 शालग्रामशिला: सर्वा बलात्तेलां सुपूज्यकाः । गृहीत्वा चोष्टपृष्ठेषु समारोप्य गृहं ययौ ॥४९
 तैत्तिरं देशमागम्य दुर्गं तत्र चकार सः । शालग्रामशिलानां च स्वासनारोहणं कृतम् ॥५०
 तदा तु सकलाः देवा दुखिता वासवं प्रभुग् । समूचुर्बहुधालप्य देवदेवं शचीपतिम् ॥५१
 वयं तु भगवन्सर्वे शालग्रामशिलास्थिताः । त्यक्त्वा मूर्तीश्च सकलाः कृष्णांशेन प्रबोधिताः ॥
 शालग्रामशिलामध्ये वसामो मुदिता वयम् ॥५२
 शिलास्सर्वाश्च नो देव शालदेशसमुद्भवाः । ताश्च वै म्लेच्छराजेन स्वपदारोहणीकृताः ॥५३
 इति श्रुत्वा तु वचनं देवानां भगवान्स्वराट् । ज्ञात्वा बलिकृतं सर्वं देवपूजानिराकृतम् ॥५४
 चुकोप भगवानिन्द्रो दैत्यान्प्रत्यभ्रवाहनः । गृहीत्वा वज्रमतुलं स्वायुधं दैत्यनाशनम् ॥
 तैत्तिरे प्रेषयामास देशे म्लेच्छनिवासके ॥५५

पिशाच धर्मी था । उस कालरूपी तिमिरलिंग (तैमूर) ने मध्यदेश में जाकर आर्यों तथा म्लेच्छराजों पर विजय प्राप्त करते हुए दिल्ली नगर में पहुँचकर भीषण वध करना आरम्भ किया । आर्य देश निवासी सभी ब्राह्मणों को बुलाकर उसने लोगों से कहा—आप लोग मूर्ति के पुजारी हैं तथा जिस व्यक्ति द्वारा उस मूर्ति का निर्माण हुआ वह उसके पुत्र के समान है । इसलिए उस मूर्ति का पूजन करना उचित हो सकता है ? क्योंकि शिलामय शालग्राम को तुम लोगों ने विष्णुदेव बताया है, अतः वे शालग्राम निर्मित होने के नाते विष्णु नहीं हो सकते हैं । इसलिए मेरा कहना है कि तुम्हारे मुनियों ने तुम्हारे वेदों एवं शास्त्रों को लोगों को ठगने के लिए व्यर्थ बनाया है । ४३-५०। इतना कहकर उन ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रज्जलित अग्नि में डलवा दिया । अनन्तर शालग्राम शिला और उसके पुजारियों को बलात् पकड़कर ऊँटों पर उन्हें बैठाकर साथ में लिए अपने घर गया । वहाँ पहुँचकर उस तैत्तिर देश में एक दुर्गा (किले) का निर्माण कराकर रहने लगा और शालग्राम को अपनी शय्या का आरोहण (पावदान) बनाया । उस समय समस्त देवों ने दुःखी होकर अपने स्वामी इन्द्र के पास पहुँचकर उन देवनायक एवं शचीपति से सभी वृत्तान्त का वर्णन किया । भगवन् ! भगवान् कृष्णांश के द्वारा प्रबोधित होने पर हमलोग सभी मूर्तियों को त्यागकर शालग्राम शिलाओं के मध्य में सहर्ष निवास करते हैं तथा देव ! वे शिलाएँ शालदेश में उत्पन्न होती हैं । किन्तु उस म्लेच्छराज ने उन शिलाओं को अपने पैर का आरोहण (पावदान) बना लिया है । इसे सुनकर देवसम्राट् भगवान् इन्द्र के समस्त देव-पूजन को बलि द्वारा तिरस्कृत करना जानकर दैत्यों के ऊपर महान् क्रोध किया । मेघवाहन इन्द्र ने अपने उस दैत्यनाशक एवं अतुल वज्रायुध को ग्रहणकर उन्हें म्लेच्छों के निवासभूत तैत्तिर प्रदेश में भेजा । वहाँ उनके शब्दों से वह सम्पूर्ण देश कई

तस्य शब्देन सकला देशाश्रम बहुभिन्नकाः । स म्लेच्छो मरणं प्राप्तस्तदा सर्वसभाजनैः ॥५६
शालग्रामशिलाः सर्वा गृहीत्वा विबुधास्तदा । गण्डक्यां च समाक्षिप्य स्वर्गलोकमुपाययुः ॥५७
महेन्द्रस्तु सुरैः सार्द्धं देवपूज्यमुवाच ह । महीतले कलौ प्राप्ते भगवन्दानवोत्तमाः ॥५८
वेदधर्मं समुल्लङ्घ्य मम नाशनतत्पराः । अतो मां रक्ष भगवन्देवैः सार्द्धं कलौयुगे ॥५९

जीव उवाच

महेन्द्र तव या पत्नी शची नाम्नि, महोत्तमा । इदौ तंस्यै वरं विष्णुर्भवितास्मि सुतः कलौ ॥६०
त्वदाज्ञया च सा देवीं पुरीं शान्तिमयीं शुभाम् ! गौडदेशे च गङ्गायाः कूले लोकनिवासिनीम् ॥६१
प्रत्यागत्य द्विजो भूत्वा कार्यसिद्धिं करिष्यति । भवान्वै ब्राह्मणो भूत्वा देवकार्यं प्रसाधय ॥६२
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं रुद्धरेकादशैः सह । अष्टभिर्वसुभिः सार्धमश्वभ्यां स च वासवः ॥६३
तीर्थराजमुपागम्य प्रयागं च रविप्रियम् । माघे तु मकरे सूर्ये सूर्यदेवमतोषयत् ॥६४
बृहस्पतिस्तदागत्य सूर्यमाहात्म्यभुत्तमम् । इन्द्रादीन्कथयामास द्वादशाध्यायमापठन् ॥६५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
कलियुगीयेतिहाससमुच्चये प्रमरवंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६

भागों में छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गया और वह म्लेच्छराज अपने कुल समेत विनष्ट हो गया । पश्चात् देवों ने उस शालग्राम शिला को लेकर उस गंडकी में डालकर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर महेन्द्र देव ने देवों समेत गुरु बृहस्पति के पास पहुँचकर उनसे कहा—भगवन् ! पृथ्वी पर कलि के आने पर दानवगण वेदधर्म का उल्लंघन करके मेरे नाश के लिए तुल जायेंगे । अतः भगवन् ! कलियुग में देवों समेत मेरी रक्षा करना ।५-१-५९

बृहस्पति ने कहा—महेन्द्र ! विष्णु ने तुम्हारी शची नाम की श्रेष्ठ पत्नी को वरदान दिया है कि ‘कलि के समय मैं तुम्हारा पुत्र हूँगा ।’ तुम्हारी आज्ञा प्राप्तकर वह देवी उस शान्तिमयी एवं शुभपुरी में, जो गौडदेश में गङ्गा के तट पर स्थित है, ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न होकर कार्यसिद्धि करेगी अतः आप भी ब्राह्मण होकर देवकार्य के सफल होने की चेष्टा कीजिये । इस प्रकार गुरु की बात सुनकर इन्द्र ने एकादश रुद्र, आठ वसु और अश्विनी कुमार के साथ माघ में मकर के अवसर पर सूर्यप्रिय तीर्थराज प्रयाग में जाकर सूर्यदेव की उपासना की । उस समय बृहस्पति ने भी वहाँ पहुँचकर वारह अध्याय में निर्मित सूर्य माहात्म्य उन इन्द्रादि देवों को सुनाया ।६०-६५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय
इतिहाससमुच्चय वर्णन नामक छठवाँ अध्याय समाप्त ।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः

रामानन्दनिम्बार्कसमुत्पत्तिवर्णनम्

ऋषय ऊचुः

बृहस्पतिस्तु भगवान्मुनिर्देवात्सप्तस्थितान् । किं प्रोवाच च माहात्म्यं मण्डलस्थस्य वै रवे: ॥१
तत्सर्वं कृपया ब्रह्मन्बूहि नस्तत्समुत्सुकान् । इति श्रुत्वा वच्चतेषां सूतो वच्चनमब्रवीद् ॥२
बृहस्पतिं समासीनं जीवरूपं गुणालयम् । प्रयागस्यो महेन्द्रश्च सुरैः सार्द्धमुवाच ह ॥३
कथयस्व महाभाग सूर्यमाहात्म्यमुत्सम् । यच्छ्रुतेन रविः साक्षात्प्ररक्षोऽद्य भवेत्प्रभुः ॥४

बृहस्पतिरुचाच

धातृशर्मा द्विजः कश्चिदपत्यार्थं प्रजापतिम् । तपसा तोषयामास बर्हिष्यतिपुरे स्थितः ॥५
पञ्चमाब्दे तु भगवान्सन्तुष्टश्च प्रजापतिः । सुतं कन्यां पुनः पुत्रं त्रीण्यपत्यानि सन्ददौ ॥६
वर्षान्तरे जनयित्वा अप्यत्यं स द्वेजोत्तमः । धातृशर्मा परं हर्षमाप्तवान्युत्रलालनैः ॥७
विवाहश्च कथं तेषां भवितव्या महेत्तमाः । इति चिन्तान्वितो विप्रो गन्धर्वेण तु तुम्बुरुम् ॥८
हवनैस्तोषयामास वर्षमात्रविधानतः । तुम्बुरुश्च तदागत्य तं चकार मनोरथम् ॥९
प्रसन्नस्तु तदा विप्रो वधूर्जामातरं मुदा । दृष्ट्वा तेषां विहारं च पुनश्चिन्तां चकार ह ॥१०

अध्याय ७

रामानन्द तथा निम्बार्क के उत्पत्ति का वर्णन

ऋषियों ने कहा—ब्रह्मन् ! भगवान् बृहस्पति ने वहाँ एकत्र स्थित देववृन्दों से मण्डलस्थ सूर्यदेव के किस माहात्म्य का वर्णन किया है । उसे जानने के लिए हमलोग अत्यन्त समुत्सुक हैं अतः उसे सुनाने की कृपा कीजिये । उन लोगों की ऐसी बात सुनकर सूतजी बोले कि—जीवरूप एवं गुणनिधि बृहस्पति को वहाँ प्रयाग में शोभन आसन पर आसीन देखकर देवों समेत महेन्द्र ने उनसे कहा—महाभाग ! सूर्य के उस माहात्म्य का वर्णन कीजिये, जिसे सुनकर साक्षात् सूर्य भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हों । १-४

बृहस्पति बोले—बर्हिष्यती नामक पुरी के रहने वाले किसी धातृशर्मा नामक ब्राह्मण ने संतानार्थ प्रजापति की तप द्वारा आराधना की । पाँचवें वर्ष प्रसन्न होकर भगवान् प्रजापति ने दो पुत्र और एक कन्या उस ब्राह्मण को प्रदान किया । वह ब्राह्मण श्रेष्ठ को वर्ष के भीतर ही उन तीनों संतान की प्राप्ति हो गई, जिससे वह धातृशर्मा अत्यन्त हर्षित होकर उन संतानों का लालन-पालन करने लगा । पश्चात् इनका उत्तम विवाह सम्बन्ध किस प्रकार सुसम्पन्न हो, ऐसी चिन्ता करते हुए उस ब्राह्मण ने एक वर्ष हवन द्वारा तुम्बुर नामक गन्धर्व नायक की उपासना की । उपरान्त प्रसन्न होकर उस गन्धर्व ने उनके उस मनोरथ को सफल किया । अपने पुत्र तथा उनकी बहुओं को देखकर उस ब्राह्मण को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । किन्तु उनके उपभोग साधनों के लिए पुनः चिन्तित होने लगा—मैं निर्धन हूँ तथा साठ वर्ष की मेरी आयु

भूषणानि च वासांसि धनानि विविधानि च । तेषां कथं भविष्यन्ति निर्धनानां ममाशुच ॥११
 षष्ठिवर्षमयो भूत्वा चन्दनादैर्धनाधिपम् । विधिवत्पूजयामास वर्षमात्रं तु तत्परः ॥१२
 तदा प्रसन्नो भगदत्तदौ तस्मै धनं बहु । विद्यां यक्षमयीं रस्यां पञ्चस्वर्णप्रदां भुदा ॥१३
 सहत्रजापी लम्पूज्य हवनं तदृशांशकम् । तर्पणं मार्जनं चैव बृत्वा वाञ्छामवाप्तवान् ॥१४
 इत्येवं वर्तमानस्य गतः कालो नहान्स्वयम् । मृत्योरागमनं तस्य जातं रोगसमन्वितम् ॥१५
 पीडितस्तु रुजा विप्रः शङ्कुरं लोकराङ्कुरम् । स्तुतिभिः श्रुतिरूपाभिस्तुष्टाव बलवर्जितः ॥
 मासमाद्रेण भगवत्पद्मदौ ज्ञानं स्वयं हरः ॥१६

धातृशर्मा तु तत्प्राप्य भास्करं मोहनाशनम् । सूर्यवारव्रतैस्तत्र तोषयामास नम्रधीः ॥१७
 पञ्चाब्दे भगवान्सूर्यो भक्तिभावेन वत्सलः । चैत्राणां तमाह वचनं वरं बूहि धुनः पुनः पुनः ॥१८
 धातृशर्मा तु तच्छृत्वा भास्करं मोहनाशनम् । प्रश्रयावनतो भूत्वा तुष्टाव परया गिरा ॥१९

धातृशर्मोवाच

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च भनसोऽस्य तनौ प्रिया । रात्रिरूपा प्रदृत्तिश्च निवृत्तिर्दिनरूपिणी ॥
 भवतस्तेजसा जाते लोकबन्धनहेतवे ॥२०
 अव्यक्ते तु स्थितं तेजो भवतो दिव्यसूक्ष्मकम् । त्रिधाभूतं तु विश्वाय तस्मै तेजात्मने नमः ॥२१
 राजसी या स्मृता बुद्धिस्तत्परिभगवान्विधिः । भवतस्तेजसा जातस्तस्मै ते विधये नमः ॥२२

भी हो चुकी है, इसलिए इनके लिए भाँति-भाँति के भूषण और वस्त्रों की प्राप्ति कैसे हो सकेगी । इस प्रकार चिन्तित होकर उसने एक वर्ष तक चन्दनादि सामग्री द्वारा कुबेर की विधिवत् अर्चिना की । १-१२। उस समय प्रसन्न होकर कुबेर ने उन्हें अन्यत धन समेत पाँच सुवर्ण मुद्रा प्रदान करने वाली यक्ष विद्या प्रदान की । (मंत्र की) सहस्र संख्या के जप करने वाले उस ब्राह्मण ने उनकी पूजापूर्वक उसका दणांश हवन, तर्पण और मार्जन करके अपना मनोरथ सफल किया । इस प्रकार उसके सुखी-जीवन का एक महान् समय व्यतीत हुआ । पश्चात् मरण के दिन सन्निकट होने पर वह रोगी हो गया । रोग से पीड़ित होने पर उस ब्राह्मण ने वैदिक स्तुति द्वारा लोक के कल्पाणमूर्ति श्रीशंकर की उपासना की । एक मास के उपरान्त भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उसे ज्ञान प्रदान किया, जिससे उस विनम्र धातृशर्मा ने रविवार-न्त्रतों द्वारा मोहनाशक भगवान् भास्कर को प्रसन्न करना आरम्भ किया । पाँच वर्ष के उपरान्त भक्तवत्सल भगवान् सूर्य ने उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर चैत्र पूर्णिमा के दिन मन इच्छित वरदान के लिए उसे प्रेरित किया । उसे सुनकर धातृशर्मा ने मोहनाशक भगवान् भास्कर जी की विनम्र एवं उत्तम वाणी द्वारा स्तुति करना प्रारम्भ किया । ५-१९

धातृशर्मा ने कहा—इस शरीर में रहने वाले मन की प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो प्रियायें हैं, जिसमें प्रवृत्ति रात्रिरूप एवं निवृत्ति दिनरूप वाली कही जाती है । सांसारिक बंधनों की कारण भूत ये प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप परिस्थितियाँ आपके उस तेज द्वारा ही उत्पन्न होती हैं जो आपका तेज दिव्य एवं सूक्ष्म रूप से अव्यक्त में स्थित हैं और विश्व के लिए वही तीन भागों में विभक्त होता है, अतः उस तेजरूप वाले आत्मा को बार-बार नमस्कार है । २०-२१। राजस् बुद्धि, जिसके पति भगवान् ब्रह्म हैं, आपके तेज द्वारा

सात्त्विकी या तनौ बुद्धिस्तत्पतिर्भगवान्हरिः। भवता निर्मितस्सत्त्वात्तस्मै ते हरये नमः ॥२३
 तामसी मोहना बुद्धिस्तत्पतिश्च स्वयं शिवः । तमोभूतेन भवता जातस्तस्मै नमो नमः ॥
 नेहि मे भगवन्मोक्षं संज्ञाकान्त नमोनमः ॥२४

बृहस्पतिरुचाच

इत्येवं संस्तुतस्तेन भगवान्धातृशर्मणा । महेन्द्रद्वच्चां प्राहुं तं द्विजं ज्ञानकोविदम् ॥२५
 मोक्षश्चतुर्विधो विप्र सालोक्यं तपसोद्भूवम् । सामीप्यं भक्तिरो जातं सारूप्यं ध्यानसम्भवम् ॥२६
 सायुज्यं ज्ञानतो ज्ञेयं तेऽनां स्वामी परः पुमान् । सगुणो विगुणो ज्ञेय आनन्दो मोक्षिणो क्रमात् ॥२७
 देवानां चैव देहेषु ये मोक्षाः पुनरागताः । यदगत्वा न निर्वर्तन्ते तद्विष्णोः परमं पदम् ॥२८
 यत्प्रसन्नेन विप्रेन्द्रं सायुज्यं मे भवेत्तत्र । मनुमात्रश्च यः कालस्तावते मोक्ष आस्थितः ॥
 इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तेन मोक्षीकृतो द्विजः ॥२९

सूत उचाच

इत्युक्त्वन्तं वागीशं चैत्रमासे दिवाकरः । स्वरूपं दर्शयामास देवदेवः सनातनः ॥३०
 शृणुध्वं सकला देवा यन्निमिताः समागताः । वज्ञीये स्वांशमुत्पाद्य देवदर्थं करोम्यहम् ॥३१
 इत्युक्त्वा स्वमुखातेजः समुत्पाद्य दिवाकरः । स्वभक्तायै सुकन्न्यायै द्विजपत्यै ददौ हि तत् ॥३२

ही उत्पन्न हैं, अतः उस विधिरूप ब्रह्मा को बार-बार नमस्कार है । शरीर में स्थिति उस सात्त्विकी बुद्धि का जन्म जिसके अधीश्वर भगवान् विष्णु कहे गये हैं, आपके द्वारा ही हुआ है, इसलिए उस हरिरूप आपको नमस्कार है । इसी प्रकार मोहात्मक तामसी बुद्धि भी, जिसके अध्यक्ष स्वयं शिवजी हैं, तमोरूप आपसे ही उत्पन्न हुई है, अतः उस रूपधारी आपको नमस्कार है । भगवन्, संज्ञाकान्त ! मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ, आप मुझे मोक्ष-प्रदान करने की कृपा करें । २३-२४

बृहस्पति जी बोले—महेन्द्र ! धातृशर्मा ब्राह्मण के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् सूर्य ने उस ज्ञान-निपुण द्विजश्रेष्ठ से कहा—विप्र ! मोक्ष चार प्रकार का होता है सालोक्य की प्राप्ति तप द्वारा सामीप्य भक्ति द्वारा, सारूप्य ध्यान द्वारा और सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान द्वारा होती है तथा इन सभी प्रकार के मोक्ष के अधिपति वही परमात्मा है और क्रमणः उत्तरोत्तर मोक्षों के आनन्द दुगुने बताये गये हैं । देवों की शरीर में वही मोक्ष आकर पुनः स्थित हैं इसलिए जहाँ पहुँचने पर पुनः वहाँ से निवृत्ति (लौटना) नहीं होता है वही विष्णु का परमपद कहा गया है विप्रेन्द्र ! जिसकी प्रसन्नतावश मेरे सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति तुम्हें हुई है । यह तुम्हारा मोक्ष इस मनु की स्थिति काल तक स्थित रहेगा । इतना कहकर सूर्यदेव अन्तर्हित हो गये और उस ब्राह्मण को मोक्ष की प्राप्ति हुई । २५-२९

सूत जी बोले—इस प्रकार (उनके माहात्म्य) वर्णन करने पर चैत्रमास की उस पूर्णिमा के समय सूर्य ने उन बृहस्पति को अपने स्वरूप का दर्शन प्रदान किया । पश्चात् उन सनातन एवं देवाधिदेव सूर्य ने कहा—देवबृन्द ! जिस कार्य के लिए आपलोग यहाँ एकत्रित हुए हैं, मैं उसे बता रहा हूँ, सुनिये । काश्मीर नगर में मैं अपने अंश से उत्पन्न देव-कार्य को सफल करूँगा । इतना कहकर सूर्य ने अपने मुख द्वारा तेज निकालकर अपने भक्त उन दोनों ब्राह्मण-पत्नियों को समर्पित कर दिया । उस धातृशर्मा ब्राह्मण का जो

धातुशर्मा द्विजो थो वै सूर्ये मोक्षमुगागतः । स वै तत्तेजसा जातः काव्यकारस्य मन्दिरे ॥३३
ईश्वरो नाम विख्यातः पुरोशद्वान्त आत्मवान् : जित्वा विप्रःन्देदपरान्महतीं कीर्तिमाप्तवान् ॥३४
इति ते कथितं विप्र यथा जीवनभाषितम् । पुनः शृणु कथां रम्यां देवेभ्यो जीवनिर्मिताम् ॥३५

बृहस्पतिस्तुवाच

मायावत्यां द्विजः कश्चिन्मित्रश्चेति विश्रुतः । काव्यविद्यापरं नित्यं रसिकः कामिनीप्रियः ॥३६
कुम्भराशिं मांयं प्राप्ते गङ्गाद्वारे महोत्सवः । ब्रह्मव बहुतैर्भूषैः कारित्स्तीर्थत्परः ॥३७
तत्रोत्सवे नरा नार्यो बहुभूषणभूषिताः । समाययुर्दीर्शनार्थं परमानन्दनिर्भराः ॥३८
मित्रशर्मा तु सम्प्राप्य कामसेनस्य वै सुताम् । काव्यकेलिकलायुक्तां द्वादशाब्दमयीं शुभाम् ॥३९
दक्षिणात्यस्य भूपस्य तत्यां मधुराननाम् । दृष्ट्वा तां शृगशावाक्षीं तद्विशित्वमुपागतः ॥४०
सा तु तं चित्रिणो नाश्रा मित्रशर्मणिगुत्तमम् । दृष्ट्वा तु मूर्च्छिता चासीद्विप्रमूर्तिहृदि स्थिता ॥४१
स्वगेहं पुनरागत्य चित्रिणी भास्करं प्रभुम् । प्रत्यहं पूजयामास बहुमानपुरस्सरा ॥४२
मित्रशर्मा तु तत्स्थाने गङ्गाकूले मनोहरे । प्रातः स्नात्वा शुचिभूत्वा वैशाखे जलमध्यगः ॥४२
स्तोत्रमादित्यहृदयमजपत्सूर्यंतप्त्वः । प्रत्यहं द्वादशावर्त्तस्तोषयामास भास्करम् ॥४४
मासान्ते भगवान्सूर्यो ददौ तस्मै हि तं वरम् । स तु लब्धवरो विप्रः स्वगेहं पुनरागतः ॥४५

सूर्य में सायुज्य मोक्ष की प्राप्तिकर सुखानुभव कर रहा था, सूर्य के तेज द्वारा काव्यकार के घर पुनः जन्म हुआ जो केशव नाम से प्रख्यात एवं समस्त शास्त्रों में निपुण था । उसने वेद के पारगामी ब्राह्मणों पर विजय प्राप्तिपूर्वक अत्यन्त महान् यश की प्राप्ति की । विप्र ! इस प्रकार मैंने बृहस्पति के कहे हुए उरा समस्त माहात्म्य को सुना दिया, किन्तु देवों के लिए बृहस्पति द्वारा कही हुई उस कथा को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! ३०-३५

बृहस्पति जी बोले—मायावती पुरी में मित्रशर्मा नामक कोई ब्राह्मण रहता था, जो नित्य काव्य रचना में तन्मय, रसिक एवं कामिनी प्रेमी था । कुम्भ राशि पर मेरे स्थित होने पर उस समय हरिद्वार में एक महान् उत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें अनेक देशों के आये हुए उस तीर्थ के निवासी अनेक राजगण सम्मिलित थे । उस उत्सव के दर्शनार्थ वहाँ परमानन्द प्रेसी एवं भूषणों से सुसज्जित पुरुष तथा स्त्रियों का एक महान् समाज उपस्थित हुआ । मित्रशर्मा भी उस उत्सव में पट्ठेचकर दक्षिण प्रदेश के निवासी राजा कामसंग की पुत्री को, जो काव्यक्रीडा में निपुण बारह वर्ष की आयु, शुभमूर्ति, सौन्दर्यपूर्णमुख तथा मृग-बच्चों के समान विशाल नेत्रवाली थी, देखकर अत्यन्त अधीर हो गया । वह चित्रिणी नामक कन्या भी मित्रशर्मा को देखते ही उस ब्राह्मण-मूर्ति को हृदय में स्थापित करती हुई मूर्च्छित हो गई । पश्चात् अपने घर आकर वह चित्रिणी कन्या सादर सम्मानपूर्वक भगवान् भास्कर की आराधना करने लगी । मित्रशर्मा ने भी वही रमणीक गंगा-तट पर रहकर वैशाखमास के प्रारम्भ से प्रातःकाल स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर आदित्यहृदय स्तोत्र का पाठ करना आरम्भ किया । प्रतिदिन उस स्तोत्र के बारह बार पाठ करके वह ब्राह्मण भगवान् भास्करदेव को प्रसन्न कर रहा था । मास के अन्त में भगवान् सूर्य ने प्रसन्न होकर उसे वर प्रदान किया । पश्चात् वर प्राप्तकर वह ब्राह्मण अपने घर आया । चित्रिणी को भी

चित्रिणी तु वरं प्राप्ता वाज्ञितं लोकभास्करात् । पुनस्तौ पितरौ स्वप्ने भास्करेण प्रबोधितौ ॥४६

मित्रशर्मणमाहूय वरयामासतुः सुताम् । स्वान्ते निवासयामास कामसेनश्च दम्पती ॥४७

तौ तु चकं मुदाविष्टौ प्रत्यहं सूर्यदेवतम् । ताम्रपात्रे च तद्यन्तं लेखयित्वा विधानतः ॥४८

ईजत्रू रक्तकुमुमैर्वैतं कृत्वा रविप्रिष्ठम् ॥४९

शताब्दवपुषौ चोभौ निर्जरौ श्रमवर्जितौ । आरोग्यौ मरणं प्राप्य सामीप्यं च रवेगतौ ॥५०

इति श्रुत्वा रवेगिथां वैशाख्यां देवरात् स्वथम् । प्रत्यक्षं भास्करं देवं ददर्श सहितं सुरैः ॥५१

भक्तिनश्चान्मुरान्दृष्ट्वा भगवांस्तमिराप्तुः । उवत्त्र वचनं रस्यं देवकार्यपरं शुभम् ॥

ममांशात्तनयो भूमौ भविष्यति सुरोत्तम् ॥५२

सूत उवाच

इत्युक्त्वा स्वस्य विम्बस्य तेजो राशिं समन्ततः । समुत्पाद्य कृतः काश्यां रामानन्दस्ततोऽभवत् ॥५३

देवलस्य च विभस्य कान्यकुञ्जस्य वै सुतः । बाल्यात्प्रभृति स ज्ञानी रामनामपरायणः ॥

स्त्रिमात्रा परित्यक्तो राधयं शरणं गतः ॥५४

तदा तु भगवान्साक्षाच्चतुर्दशकलो हरिः । सीतापतिस्तदृदये निवासं कृतवान्मुदा ॥५५

इति ते कथितं विप्रमित्रदेवांशतो यथा । रामानन्दस्तु बलवान्हरिभक्तेश्च सम्भवः ॥५६

भगवान् भास्कर द्वारा उसके मनोऽनुरूप वर की प्राप्ति हुई । सूर्यदेव ने दोनों के माता-पिता को स्वप्न द्वारा एक दूसरे का ज्ञान कराया । अनन्तर राजा कामसेन ने मित्रशर्मा को बुलाकर उसके साथ चित्रिणी का विवाह संस्कार सुसम्पन्न कराकर उन दोनों को अपने यहाँ रख लिया । वहाँ, आनन्दमग्न रहकर उन दोनों ने सूर्यदेव की आराधना आरम्भ की—तांबे के पत्रपर उनका मंत्र लिखवाकर प्रतिदिन रक्तपुष्पों द्वारा उसकी पूजा और सूर्यप्रिय उस रविवार ब्रत द्वारा उन्हें प्रसन्न करना प्रारम्भ किया । इससे वे दोनों देवों की भाँति सदैव युवा ही रहकर आरोग्य एवं सुखी-जीवन व्यतीत करते हुए अन्त में मरण के अवसर पर शरीर परित्यागकर सामीप्य गोक्ष द्वारा सूर्य के यहाँ पहुँच गये । वैशाख मास के सूर्य के इस माहात्म्य को सुनकर महेन्द्र देव ने देवों समेत भास्कर देव का प्रत्यक्ष दर्शन किया । अत्यन्त भक्ति से विनम्र उन देवों को देखकर अन्धकारनाशक भगवान् सूर्य ने उन लोगों से कहा—सुरोत्तम ! देवकार्य के सिद्धयर्थ भूतल में मेरा अंश उत्पन्न होगा । ३६-५२

सूतजी बोले—इतना कह सूर्य ने अपने विष्व मण्डल से तेजराशि निकालकर काशी में डाल दिया, जिससे रामानन्द की उत्पत्ति हुई । किसी कान्यकुञ्ज ब्राह्मण एवं मन्दिर के पुजारी के घर रामानन्द का जन्म हुआ, जो बाल्यकाल से ही ज्ञानी तथा रामनाम के अत्यन्त प्रेमी थे । पिता-माता के त्याग करने पर वे भगवान् की शरण में चले गये । सीतापति भगवान् ने, जो चौदह कलाओं से युक्त एवं विष्णु के रूप में स्थित हैं, प्रसन्न होकर साक्षात् उनके हृदय में निवास किया । विप्र ! इस प्रकार मैंने सूर्यदेव के अंश की, जो रामानन्द के रूप में परिणत होकर भगवान् का महान् भक्त हुआ, कथा तुम्हें सुना दिया । ५३-५६

बृहस्पतिरुचाच

शृणु शक्त कथं रम्यां ज्येष्ठमासस्य वै रवैः । अर्यमा नाम वै विप्रः पुराद सत्ययुगे ह्यभूत् ॥
 वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धर्मशास्त्रपरायणः ॥५७
 तस्य पल्ली पितृमती श्राद्धयज्ञस्य भूपतेः । तनया च नहात्ताध्वो सप्त पुत्रानकल्मषान् ॥५८
 अर्यम्णो जनयामास धर्मशास्त्रपरायणान् ॥५८
 एकदा स द्विजो धीमान्विचार्य बहुधा हृदि । धनार्थी भास्करं देवं तुष्टाव बहुपूजनैः ॥५९
 प्रभाते घेत्कुमुमैश्चन्दनादिभर्चनैः । मध्याह्ने रक्तकुमुमैः पीतपुष्टैः पितृप्रसोैः ॥६०
 भासमात्रं तु विधिना पूजयामास भास्करम् । ज्येष्ठे वै भगवान्सूर्यो इदौ तस्मै मणि शुभम् ॥६१
 तन्मणेश्च प्रभावेण प्रस्थमात्रं च काञ्चनम् । प्रत्यहं जनयामास तेन धर्मः समर्जितः ॥६२
 वापीकूपतडागान्हि तथा हर्मणि भूतले । कारयामास धर्मार्थी सूर्यदेवप्रसादतः ॥६३
 सहस्राब्दवपुर्भूत्वा निर्जरो निरुपद्रवः । त्यक्त्वा कलेवरं रम्यं सूर्यलोकमुपाययौ ॥
 उषित्वा तत्र लक्षाब्दं सूर्यरूपेः बभूव ह ॥६४
 इत्येवं भास्करस्यैव माहात्म्यं कथितं मया । तत्माच्छक्त सुरैः सार्द्धं भज मण्डलं रविम् ॥६५
 इति श्रुत्वा तु ते देवाः पद्मैः सूर्यकथामयैः । तोषयाञ्चक्रिरे प्रेम्णा ज्येष्ठमासि रविस्त्वसौ ॥
 प्रत्यक्षमभवत्तत्र देवानाह प्रसन्नधीः ॥६६
 सुदर्शनो द्वापरान्ते कृष्णाजप्तो जनिष्यति ॥६७

बृहस्पति ने कहा—इन्द्र ! सूर्य की ज्येष्ठ मास की एक रम्य कथा तुम्हें सुना रहा हूँ । पहले सत्ययुग में अर्यमा नामक एक ब्राह्मण हुआ, जो वेद, वेदाङ्ग का मर्मज्ञ और धर्मशास्त्र का महान् विद्वान् था । श्राद्धयज्ञ नामक राजा की पितृमती नामक कन्या उसकी पल्ली थी । उस अर्यमा ब्राह्मण ने उस पल्ली द्वारा सात पुत्र और एक पतिप्राणा पुत्री उत्पन्न किया । उसके बै पुत्र धर्मशास्त्र के निपुण विद्वान् थे । एक बार उस बुद्धिमान् ब्राह्मण ने अपने हृदय में भलीभांति विचारकर धन के लिए अनेक पूजनों द्वारा भास्कर देव की उपासना की । प्रातःकाल में श्वेतपुष्प एवं चन्दनादि, मध्याह्न में रक्तपुष्प और सायंकाल में पीतपुष्पों द्वारा उनकी आराधना प्रारम्भ की । विधानपूर्वक एक मास तक उनकी पूजा करने के उपरान्त ज्येष्ठमास के अन्त में भगवान् सूर्य ने उसे एक शुभमणि प्रदान किया, जिससे उस मणि के प्रभाव से एक सेर सुवर्ण प्रतिदिन उन्हें मिलने लगा । उसके द्वारा उन्होंने अत्यन्त धर्म किया—पूष्ट्य में अनेक स्थानों पर बाबली, कुएँ, तालाब और सुन्दर मन्दिरों का निर्माण कराया । पश्चात् सूर्यदेव के प्रसन्नतावश इन कार्यों के सुसम्पन्न होने के उपरान्त उस धार्मिक ने एक सहस्र वर्ष तक तरुण एवं आरोग्य जीवन व्यतीत किया । अनन्तर अपनी शरीर को त्यागकर रमणीक सूर्यलोक की प्राप्ति पूर्वक वहाँ एक लाख वर्ष तक रह पुनः सूर्यरूप की प्राप्ति की । इस प्रकार सूर्य का माहात्म्य मैंने तुम्हें सुना दिया ।

१. हस्त आर्षः ।

निम्बादित्य इति ख्यातो धर्मगलानि हरिष्यति ।

सूत उवाच

शृणुष्व चरितं तस्य निम्बार्कस्य महात्मनः

॥६८

यमाह भगवान्कृष्णः कुरु कार्यं मसाज्ञया । नेरोश्च दक्षिणे पाश्वे नर्मदायास्तटे शुभे ॥६३
 देशे तैलज्ञके रम्ये देवर्घिवरसेविते । तत्रावतीर्थं सद्गर्भान्नारदाद्वैवदर्शनात् ॥६७०
 लब्धवा भूम्यौ चर्तयस्व नष्टप्रायान्तमाज्ञया । मात्थुरे नैमित्यारण्ये द्वारवत्यां ममाश्रमे ॥६७१
 सुदर्शनाश्रमादौ च स्थितिः कार्या त्वयानघ । ओमित्यदेशमादाध भगवाऽश्रीमुदर्शनः ॥६७२
 भक्ताभीष्टप्रदः साक्षात्तद्वतीर्थो महीतले । देशे तैलज्ञके पुण्ये द्विजवर्यो महःमनाः ॥६७३
 सुदर्शनाश्रमे पुण्ये शृगुंवंशसमुद्भवः । नामाऽरुण इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥६७४
 कृषिरूपधरश्रासीज्जयन्त्या भार्यया सह ! समाहितं तेन तेजो विष्णुचक्रसमुद्भवम् ॥६७५
 दधार मनसा देवी जयन्ती पतिदेवता । तेजसा शुभे तेन चन्द्रेणेव दिशामला ॥६७६
 अथ सर्वगुणोपेते काले परमशोऽशने । कर्त्तिकस्य सिते पक्षे पूर्णिमायां वृद्धे विधौ ॥६७७
 कृतिकाभे महारम्ये उच्चस्थे ग्रहपञ्चके । सूर्याविसानसमये मेषत्सर्वे निशामुखे ॥६७८
 जयन्त्यां जयरूपिण्यां जजान जगदीश्वरः । येन सर्वमिदं विश्वं वेदधर्मं नियोजितम् ॥६७९
 विरच्छिरेकदा तस्मिन्निम्बार्कस्याश्रमे शुभे । समागम्याह भो ब्रह्मन्प्राप्तोऽहं क्षुधयान्वितः ॥६८०
 यावत्सूर्यः स्थितो व्योन्नितावन्मां भोजय द्विज । इति श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा ददौ तस्मै च भोजनम् ॥६८१
 तदा तु भगवान्सूर्यो ह्यस्ताचलमुपागतः । मुनिना कृषिणा तेन निम्बवृक्षे तदा शुभे ॥६८२
 स्थापितं तेजसा स्वेन तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् । तत्तेजः सूर्यसङ्काशं दृष्ट्वा वेधाः स्मयान्वितः ॥६८३
 भिक्षुवेषधरं बालं मुनिं सूर्यमिवापरम् । ननाम दाढदद्भूमौ तपसा तस्य तोषितः ॥६८४

इसलिए इन्द्र ! देवों समेत तुम मण्डलस्थ सूर्य की उपासना करो । इसे सुनकर देवों ने सूर्यदेव की पद्यात्मक कथाओं द्वारा उनकी आराधना आरम्भ की । उससे प्रसन्न होकर ज्येष्ठ मास में सूर्य ने वहाँ प्रकट होकर देवों से कहा—देवगण ! भयानक कलि के समय में कृष्णसप्तसुदर्शन निम्बादित्य के रूप में उत्पन्न होकर ख्यातिपूर्वक देवों का कार्य सफल करेगा, तथा धर्म की गतानि को हरेगा । ५७-६८

सूत जी बोले—उस महात्मा निम्बार्क के चरित्र को सुनिये । जिसको भगवान् विष्णु ने कहा था कि मेरी आज्ञा से कार्य करोगे । मेरु के दक्षिण तरफ नर्मदा के शुभ तट पर, देवर्घियों द्वारा सेवित तेलंगक देश में अवतार लेकर देवताओं के दर्शन एवं नारद से सद्गर्भों को लेकर निर्लिप्तभाव से मेरी आज्ञा से भूमि पर निवास करो । नैमित्यारण्य, हरिद्वार आदि मेरे आश्रम एवं सुदर्शनाश्रम में आवास बनाओ । सूर्य जब तक आकाश में ठहरे हुए हैं, उसी के भीतर ही हमें भोजन करा दो, इसे सुनकर उसने स्वीकार किया और भोजन तैयार कराकर उन्हें भोजन के लिए बैठाया तो सूर्यास्त हो गया किन्तु उसने सूर्य को पुनः आवाहित किया, जिससे निम्बवृक्ष के समान सूर्य का दर्शन उन वैष्णवों को हो गया । उस

उवाच वचनं रम्यं साधु साधिवति पूजयन् । निम्बादित्य इति ख्यातो वसुधायां भविष्यति ॥८५
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्पुर्णग्रन्थापरपर्याये कलियुगीयेति हाससमुच्चये
 रामानन्दनिम्बार्कसमृत्यत्तिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।७

अथाष्टमोऽध्यायः

मध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणीभूषणभट्टोजि-
 दीक्षितवराहमिहिराचार्येत्यतिवर्णनम्
 बृहस्पतिरुचाच

पुरा त्रेतायुगे शक शक्रशर्मा द्विजो ह्यभूत् । अयोध्यायां भहाभागो देवपूजनतत्परः ॥१
 अश्विनौ च तथा रुद्रान्वसून्त्यर्थक्षयकृथक् । यजुर्वेदमयैर्मन्त्रैरचयित्वा प्रसन्नाशीः ॥
 हव्यैश्च तर्पयामास देवाँस्तानपत्यहं द्विजः ॥२
 तद्वावतस्त्र्यस्त्रिंशद्वेवाः क्षुद्रगण्युत्ताः । दुर्मनोरथं तस्मै दुर्लभं सुलभोक्तम् ॥३
 दशवर्षसहस्राणि निर्जरो निरुपद्रवः । पश्चात्कलेवरं त्यक्त्वा पश्चात्सूर्यो बभूव सः ॥४
 लक्षाब्दं मण्डले तस्मिन्नधिकारः कृतस्ततः । ब्रह्मलोकं यथौ विप्रः सर्वदेवप्रसादतः ॥५
 अष्टवर्षसहस्राणि दिव्यानि पदमुतमन् । विलोक्य मण्डले प्राप्तं तं सूर्यं जपपूजनैः ॥६

समय उन वैष्णवों ने साधु-साधु कहकर उनकी अत्यन्त प्रशंसा की । उसी दिन से वह बालक निम्बादित्य के नाम से इस भूतल में प्रस्त्यात हुआ । ६९-८५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इति हाससमुच्चय में
 रामानन्द और निम्बार्क का उत्पत्ति वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ।७।

अध्याय ८

मध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणीभूषणभट्टोजिदीक्षित
 वराहमिहिराचार्य की उत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—इन्द्र ! पहले त्रेतायुग में आयोध्यापुरी में शक शर्मा नामक एक ब्राह्मण उत्पन्न हुआ, जो अत्यन्त पुण्य एवं देवोपासना में तत्पर रहता था । प्रसन्नतित्व होकर वह ब्राह्मण अश्विनीकुमार, एकादश रुद्र, आठ वसु और सूर्यदेव की यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा पृथक्-पृथक् अर्चना करने के उपरान्त हव्य (धी और दुग्ध के बने) पदार्थों द्वारा उन्हें नित्य तृप्त करता रहता था । उसके उस प्रेम से प्रसन्न होकर क्षुद्र देवों समेत उन तैतीस देवों ने उसके दुर्लभ मनोरथ को सुलभ बनाया—दश सहस्र वर्ष तक तरुण एवं आरोग्य रहकर सुखी-जीवन व्यतीत किया । पश्चात् शरीर परित्यागकर सूर्य में लीन हो गया । वहाँ उनके मण्डल में एक लाल वर्ष तक रहकर सभी देवों के प्रसाद से वह ब्रह्मलोक पहुँच गया । वहाँ दिव्य आठ सहस्र वर्ष तक स्थित रहा, जहाँ उसके मण्डल में स्वयं सूर्यदेव रहते थे । इसे सुनकर देवों

इति शुत्वा तु वचनं प्रहेन्द्रः सुरसं युतः । आषाढे भास्करं देवं पूजयामास नम्रधीः ॥७
आषाढपूर्णिमायां च स देवो जगतीतले । प्रत्यक्षमगमत्तत्र सुरानाह शृणुव्व तत् ॥८
वृन्दावने महारम्ये जनशिष्ये कलौ भये । स द्विः सूर्यरूपश्च देवकार्यं करिष्यति ॥९
माधवस्य द्विजस्यैव तत्त्वः स भद्रिष्यति । मधुरामि महाभागो वेदमार्गपरायणः ॥१०

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो देवकार्यर्थमुन्नतः । स्वाङ्गान्तु तेज उत्पाद्य वृन्दावनमपेषयत् ॥११
विशुखान्मधुरालापैर्वशीकृत्य समन्ततः । तेष्यश्च वैष्णवीं शक्तिं प्रददौ भुक्तिमुक्तिदाम् ॥
मध्याचार्य इति स्वातः प्रसिद्धोऽभून्महीतले ॥१२

जीव उवाच

द्वापरे च द्विजश्रेष्ठो मेघशर्मा बभूव ह । ज्ञानवान्मतिमानधर्मी वेदमार्गपरायणः ॥१३
कृषिकृत्यपरे नित्यं तद्वैश्च दशांशकैः । प्रत्यहं सकलान्देवानर्चयामास भक्तिमान् ॥१४
एकदा पञ्चवर्षाद्वये शान्तनौ च महीपतौ । सम्प्राप्ते तत्य वै देशे ह्यनावृष्टिर्भूव ह ॥१५
क्रोशमात्रं हि तत्क्षेत्रं पर्जन्येनैव सेचित्तम् । धान्यानां द्रोणमानश्च भावोऽभूदेकमुद्यया ॥१६
मेघशर्मा तदा तत्र धनधान्यद्युतोऽभवत् । अन्ये तु पीडिता लोका राजानं शरणं ययुः ॥१७
तदा तु दुःखितो राजा मेघशर्मणिमाह्ययत् । द्विजश्रेष्ठ नमस्तुभ्यं गुरुर्भव मम प्रियः ॥१८

समेत सुरेश ने विनम्र होकर आषाढ़ मास में भास्कर की उपासना की । उस आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन इस भूतल पर प्रकट होकर सूर्य ने उन देवों से कहा—भीषण कलि के समय में अत्यन्त रमणीक उस वृन्दावन में उत्पन्न होकर वह सूर्यरूप ब्राह्मण देवकार्य की सिद्धि करेगा । माधव नामक ब्राह्मण के घर उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होकर वह बालक मधु नाम से प्रख्यात, महायोग्य एवं वैदिक धर्म का प्रचारक होगा । १-१०

सूत जी बोले—इतना कहकर सूर्यदेव ने देव-कार्य के लिए तैयार होकर अपने शरीर से तेज निकालकर वृन्दावन में भेज दिया । वहाँ उत्पन्न होकर उस बालक ने अपने विरोधियों को अपने वशीभूत कर उन्हें भुक्ति-मुक्तिप्रदायिनी वैष्णवी शक्ति (मंत्र) प्रदान किया (अपना शिष्य बनाया) । उसी दिन से इस भूमण्डल में उनकी 'मध्याचार्य' के नाम से प्रख्याति हुई । १-१२

बृहस्पति ने कहा—द्वापर युग में मेघशर्मा नामक एक ब्राह्मण हुआ, जो ज्ञानवान्, मतिमान्, धार्मिक एवं वेद-धर्म का प्रचारक था । वह भक्तिमान् कृषि (खेती) के द्वारा जो कुछ उपार्जित करता था, उसके दशांश आय से नित्य देवों की अर्चना करता रहा । एक बार राजा शान्तनु के राजकाल में उनके राज्य में अनावृष्टि हुई । केवल मेघशर्मा के क्षेत्रों (खेतों) में, जो एक कोश का विस्तृत था, मेघवृष्टि करते थे । उस समय (द्वाकानों पर) एक मुद्रा प्रदान करने पर एकद्रोण अन्न मिलता था । मेघशर्मा ही धनधान्यपूर्ण थे, और अन्य प्रजागण उस अनावृष्टि से अत्यन्त पीड़ित होकर राजा शान्तनु की शरण में पहुँचे । उनके दुःख से दुःखी होकर राजा ने मेघशर्मा को बुलाकर कहा—द्विजश्रेष्ठ ! आपको नमस्कार

अनावृष्टिर्थथा न स्थात्तथा विप्र समादिश ॥१३

इत्येवं वादिनं भूपं मेघशर्मा वचोऽन्नवीत् । श्रावणे मासि सम्प्राप्ते विप्रान्वेष्परायणान् ॥२०

द्वादशैव समाहूय लक्ष्मात्रं रवे: स्वयम् । जापयित्वा सुमनसा सूर्गिमायां तु तद्वती ॥

सूर्यमन्त्राहुतोर्वह्नौ तदशांशं हि तदिद्वजैः ॥२१

कारयित्वा विधानेन कृतकृत्यः सुखोभव । इति श्रुत्वा तथा कृत्वा भोजयस्मास देवगान् ॥२२

प्रसन्नस्तु तदा सूर्यः पर्जन्यात्मा समन्ततः । भूमिमाच्छाद्य स दिशं प्रभुर्दृष्टिसकारयत् ॥२३

शान्तनुस्तु तदा राजा सूर्यवित्परायणः । तद्वतेन महायुण्यो बभूव नृपसत्तमः ॥२४

यं यं करेण सूर्यस्ति वृद्धो भवति वै युवा । सूर्यटेवप्रभावेन मेघशर्मा तथा ह्यभूत् ॥२५

स वै पञ्चशतायुश्च निर्जरो निरुपद्रवः । त्यक्तदः प्राणान्वरिभूत्वा सूर्यलोकमुपागमत् ॥

लक्षात्तदं भुवमासाद्य ब्रह्मतोकं गमिष्यति ॥२६

इत्येवं वादिनं जीवं पर्जन्यो भगवान्रविः । स्वरूपं दर्शयामास प्रमाणं प्रति चागतः ॥२७

सुरानाहुं प्रसन्नात्मा म्लेच्छराज्ये कलौ युगे । वृन्दावने समागम्य देवकार्यं करोम्यहम् ॥२८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो गत्वा वृन्दावनं शुभम् । श्रीधरो नाम विव्यातः पुत्रोभूद्वेदशर्मणः ॥२९

श्रीमद्भूगवतं शास्त्रं समालोक्य विशारदः । चकार विदुषामर्थं प्रदीप्तं श्रीधरः शुभम् ॥

है । आप मेरे गुरु होने की कृपा करें । तथा विप्र ! जिससे राज्य में अनावृष्टि न हो, उसके लिए आज्ञा प्रदान करें । राजा के इस प्रकार कहने पर मेघशर्मा ने उनसे कहा—श्रावण मास के आरम्भ होने पर बारह वेद के निष्णात विद्वानों को बुलाकर सूर्य के मंत्र का एक लक्ष जप कराइये । पश्चात् पूर्णिमा के दिन व्रती रहकर ब्राह्मणों द्वारा उस मंत्र की दण्डांश आहुति प्रज्वलितकर अग्नि में डलवाकर तथा सविधान तर्पण-मार्जन सुसम्पन्न होने पर कृतकृत्य होते हुए सुख का अनुभव कीजिये । इसे स्वीकार कर राजा ने जप के उपरान्त वैदिक ब्राह्मणों को भोजन कराया । उसी समय प्रसन्न होकर सूर्य ने मेघ रूप से पृथिवी को चारो ओर से आच्छादितकर अत्यन्त वृष्टि की । उसी समय से राजा शान्तनु सूर्यव्रत का पारायण करते हुए उस व्रत के प्रभाव से नृपथ्रेष्ठ एवं अत्यन्त पुण्यात्मा प्रव्यात हुए । वे अपने हाथों से जिसका स्वर्ण कर लेते थे वृद्ध होने पर भी युवा हो जाता था । सूर्यदेव के प्रभाव से मेघशर्मा भी इसी भाँति के थे । इस प्रकार मेघशर्मा ने पांच सौ वर्ष का तश्शु और आरोग्य जीवन व्यतीत कर अन्त में देहावसान के समय सूर्य रूप होकर सूर्यलोक की प्राप्ति की । एक लाख वर्ष वहाँ रहकर वह पश्चात् ब्रह्मलोक की प्राप्ति करेगा । इस प्रकार उपदेश देने वाले बृहस्पति को प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने प्रयाग में प्रकट होकर अपना साधात् दर्शन दिया और उन देवों से कहा भी—म्लेच्छराज कलियुग के समय मैं वृन्दावन में अवतरित होकर देवकार्य करने का निश्चय कर रहा हूँ ॥१३-२८

सूत जी बोले—इतना कहकर भगवान् सूर्य ने उस वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर वेदशर्मा के घर उत्पन्न होकर ‘श्रीधर’ नाम से अत्यन्त स्थाति प्राप्त की । उस निपुण विद्वान् ने श्रीमद्भूगवत्पुराण को अत्यन्त रहस्यमय समझकर विद्वानों के हितार्थ उसकी एक अत्यन्त सुन्दर टीका

श्रीमद्भागवतं शास्त्रं पुराणोपरि तत्त्वतम्

॥३०

जीव उवाच

पुरा कलौ युगे प्राप्ते प्रांशुशर्मा द्विजोऽभवत् । वेदशास्त्रपरो नित्यं देवतातिशिपुजकः ॥३१
 सत्यवदी महासाधुः स्तेयहिंसादिवर्जितः । भिक्षावृत्तिपरो नित्यं गुत्रदारप्रपोषकः ॥३२
 एकदा पथि भिक्षार्थं गच्छतरतरयं भूपतेः । मात्यगृह्यकरो धूर्तः कलिस्तत्राक्षिगोचरः ॥३३
 बभूव वाटिकां श्रुत्वा कलिर्दानमनोहराम् । तमुवाच द्विजो भूत्वा प्रांशुशर्मन्वचः शृणु ॥३४
 ममेयं वाटिका रम्या तत्र गच्छ त्रुखी भव । इति जिप्रतत्तः श्रुत्वा वाटिकां तां समाप्तः ॥३५
 कलिस्तु वाटिकामध्ये गत्वा रम्यफलानि च । चोटगित्वा ददौ तस्मै भोजनार्थं महाखलः ॥३६
 प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा प्रांशुशर्मणमद्वीत । भूंक्ष्व विप्र मया सार्द्धं कलिन्दस्य फलं शुभम् ॥३७
 इत्युक्तः स तु तं प्राह चिह्नस्य मधुरस्वरम् । वृक्षे विभीतके चैव कलिन्दस्य फले तथा ॥
 कृतिः प्राप्तः स्मृतः प्राज्ञैस्तस्माद् गृहणाम्यहं न हि ॥३८
 यदि इत्तं फलं भक्त्या त्वयाद्य द्विजसेविना । शालग्रामाय वै दत्त्वा प्रसादं तद्वजाम्यहम् ॥
 शालग्रामः स्वयं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ॥३९
 दर्शनात्तस्य चाभक्ष्यो भक्ष्यो भवति निश्चितः । इति श्रुत्वा कलिस्तत्र लज्जितोऽभून्निराशकः ॥
 द्विजस्तु तत्कलं गृह्य भूमिग्राममुपाययौ ॥४०
 नृपतिस्तत्र चागत्य द्विजमाह प्रसन्नधीः । किं गृहीतं त्वया विप्र दर्शयाशु प्रियं कुरु ॥४१

की, जो श्रीमद्भागवत पुराण पर ‘श्रीधरी’ के नाम से विद्वानों द्वारा अत्यन्त सम्मानित है । २९-३०

बृहस्पति बोले—पहले कलियुग के आरम्भ समय में प्रांशु शर्मा नामक एक ब्राह्मण था, जो नित्य वेद एवं शास्त्रों का अध्ययन करने वाला, देवता तथा अतिथि के पूजक, सत्यवक्ता, महासाधु और चोरी, हिंसादि दोषों से रहित थे । वह सदैव भिक्षाठन द्वारा अपने पुत्र तथा पत्नी का पालन करता था । भूपतेः ! एक वार भिक्षा के लिए जाते हुए मार्ग में उसे मायाबी एवं धूर्त कलि दिखाई दिया । उसने एक सौन्दर्यपूर्ण वाटिका का निर्माणकर ब्राह्मण के वेष में उससे कहा—प्रांशुशर्मन् ! मेरी एक वात सुनो ! यह मेरी सुन्दर वाटिका है, आप इसमें चलने की कृपा करें । ब्राह्मण की यह वात सुनकर प्रांशुशर्मा उस वाटिका में जाकर विश्राम करने लगे । पश्चात् उस दुष्ट कलि ने उस वाटिका के सुन्दर एवं गधुर फल तोड़कर भोजनार्थ उन्हें अर्पित किया और हाथ जोड़कर प्रांशुशर्मा से कहा—विप्र ! मेरे साथ इस कलिन्दफल के भक्षण करने की कृपा कीजिये । इसे सुनकर ब्राह्मण ने हँसकर मधुरवाणी से कहा—विद्वानों ने बहेड़ा नामक वृक्ष और कलिन्दफल में कलि की स्थिति रहती है, इसलिए मैं इसका ग्रहण नहीं कर सकता । अथवा यदि आपने ब्राह्मण सेवा के निमित्त इसे अर्पित किया है, तो मैं इसे शालग्राम भगवान् को समर्पितकर उनके प्रसादरूप में इसका भक्षण करूँगा, क्योंकि शालग्राम स्वयं ब्रह्मरूप हैं, जो सच्चिदानन्दरूप कहते जाते हैं । तथा उनके दर्शन से अभयं भी भव्य हो जाता है । इसे सुनकर कलि अत्यन्त लज्जित और निराश हो गया । ३१-३२। ब्राह्मण ने उस फल को लेकर भूमिग्राम को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर राजा ने वहाँ आकर ब्राह्मण से पूँछा विप्र ! आप क्या लिए हैं, मेरी उसे देखने की इच्छा है । इसे

इति श्रुत्वः प्रांशुशर्मा तत्कलं वत्समुण्डवत् । गृहीत्वा प्रददौ राजे विस्मितो द्विजसत्तमः ॥४२
 तदा तु स कलिर्भूपस्तं विप्रं ताड्य वेतसैः । कारागारे लोहमये कृतवान्त्यद्यमित्रकः ॥४३
 प्रातःकाले रथौ प्राप्ते प्रांशुशर्मा सुदुःखितः । तुष्टाव भास्करं देवं स्तोत्रैर्त्रिग्वेदसम्भवैः ॥४४
 तदा प्रसन्नो भगवान्नर्दिः सत्शात्तनातनः । विप्रस्य कर्णयोदयक्षियमुवाच नभसेरितम् ॥४५
 शृणु विप्र महाभाग कालरूपो हरिः स्वगङ् । चतुर्युगं तेन कृतं विश्वपालः दिहेतवे ॥४६
 कलिर्विश्वसमूहानां मृत्यवे रचितस्तथा । अतो शोरे कलौ प्राप्ते विष्णुमायः विनिर्मितम् ॥
 कलिञ्जरं च नगरं ततोऽयं मुदितो भव ॥४७

इत्युक्त्वा रक्षणं कृत्वा तस्य विप्रस्य भास्करः । कलिञ्जरे च नगरे प्रेषयानास तं द्विजम् ॥४८
 सपादशतवर्षं च द्विजस्तत्र वसन्तरविम् । आराध्य पुत्रपत्नीको रविलोकमुपाययोः ॥४९
 स वै भ्रादपदे मासि सूर्यो भूत्वायुताब्दकम् । पश्चाद्ब्रह्मपुरं प्राप्य परमानन्दमाप्तवान् ॥

इति ते कथितं विप्र यथा जीवस्तमब्दवीत् ॥५०
 आगत्य भास्करो देवः पूर्णिमायां तु भाद्रके । अष्टाविंशे कलौ प्राप्ते स्वयं जातः कजिञ्जरे ॥५१
 शिवदत्तस्य तनयो विष्णुशर्मेति दिश्रुतः । वेदशास्त्रकलाभिज्ञो वैष्णवो देवपूजकः ॥५२
 चतुर्वर्णन्निराळ्विप्र समाहूय हरेर्हृहे ! वचनं प्राह धर्मात्मा विष्णुः सर्वेभ्वरो हरिः ॥५३
 शृणु तत्कारणं शिष्य विश्वकारण कारकः । भगवान्सच्चिदानन्दश्रुतुर्विशतित्त्ववान् ॥
 देवान्ससर्ज लोकार्थं तस्मात्सर्वेभ्वरोऽभवत् ॥५४

सुनकर प्रांशुशर्मा ने वत्स-मुण्ड की भाँति उस फल को लेकर राजा को अर्पित किया । उस समय उसे देखकर ब्राह्मण को अत्यन्त आश्र्य भी हुआ । उस समय उस कलि राजा ने वेत की छड़ी से ब्राह्मण को ताड़ित कर लोहे की श्रुखला से हाथ-पैर बाँधकर जेल में डाल दिया । प्रातःकाल सूर्य के उदय होने पर दुखी प्रांशुशर्मा ने क्रृग्वेद के भंत्रों द्वारा भगवान् सूर्य की आराधना की । उस समय प्रसन्न होकर सनातन एव भगवान् सूर्य ने साक्षात् उस ब्राह्मण के कानों में आकाशवाणी की—विप्र ! महाभाग ! भगवान् विष्णु स्वयं काल (समय) रूप हैं । उन्होंने इस विश्व के पालनार्थ चार युगों का निर्माण किया है, जिनमें कलि समस्त विश्व के विनाशार्थ उत्पन्न किया गया है । अतः इस घोर कलि के समय तुम विष्णु की माया द्वारा रचित कलिञ्जर नामक-पुरी में रहकर अपना सुखी-जीवन व्यतीत करो । भास्कर ने इस प्रकार कहकर उस ब्राह्मण को सुरक्षित रखते हुए कलिञ्जर नगर भेज दिया । उस ब्राह्मण ने वहाँ रहकर सवा सौ वर्ष अपनी पत्नी एवं पुत्र समेत सुखी जीवन व्यतीत कर सूर्यलोक की प्राप्ति की । उस भाद्रों के मास में सूर्य होकर दण सहस्र वर्ष तक स्थित रहकर पश्चात् ब्रह्मलोक पहुँचकर परमानन्द की प्राप्ति की । विप्र ! इस प्रकार बृहस्पति की कही हुई समस्त कथा मैंने तुम्हें सुना दी है । उस भाद्रों मास की पूर्णिमा के दिन अटुडाइसवे कलियुग के समय कलिञ्जर नगर में आकर स्वयं भास्कर देव ने शिवदत्त के घर जन्म ग्रहण किया । ‘विष्णु शर्मा’ के नाम से उनकी स्थानिति हुई । वे वेद एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा विष्णुदेव के उपासक थे । ४०-५२। उन्होंने भगवान् के मन्दिर में चारों वर्णों के मनुष्यों को बुलाकर कहा—धर्मात्मा विष्णु ही सबके ईश्वर हैं । शिष्य ! मैं उस कारण को बता रहा हूँ, जिससे वे विश्व-निर्माण के कारण के भी कर्ता हो गये हैं । सुनो ! भगवान् सच्चिदानन्द धन चौबीस तत्वों में परिणत होकर लोकों के हितार्थ देवों की उत्पत्ति करते हैं । अतः

पूर्व हि सकलान्देवान्तूजयित्वा नरः शुचिः । पश्चात्ज्व धूज्येद्विष्णुं यथा भूत्वा तृष्णं पुनः ॥५५
हति श्रुत्वा ते सर्वे प्रशस्य बहुधा हि तम् । विष्णुस्वामीति तं नाम्ना कथां चकुञ्च हर्षिताः ॥५६
इति ते कथितं विप्र विष्णुस्वामी यथाभवत् । पुनः शृणु कथां रम्यां बृहस्पतिनुखेरिताम् ॥५७

जीव उवाच

पुरा चैत्ररथे देशे भगशर्मा द्विजोऽभदत् । स्वर्वेश्यामञ्जुघोषादां मुनिमेधाविना भुवि ॥५८
पितृमातृपरित्यक्तः स बालः श्रद्धयान्वितः । तृष्णमाराधयामास तपसा शतवार्षिकम् ॥५९
सूर्यमण्डलमध्यस्था जावित्री नाम देवतः । सर्दनूर्दस्य जननी क्षयः तन्मण्डलस्य वै ॥६०
प्रसन्ना तपसा तस्य प्राञ्छुर्भूताः सनातनी । आश्चिने मासि राजानं द्विजं चक्रे च मण्डले ॥६१
लक्षवर्षसहस्राणि मासि मासि तथाभिन्ने । प्रकाशं कृतान्विप्रः पूजितो लोकवासिभिः ॥६२
त्वं सूर्यं भज देवेन्द्र स ते कार्यं करिष्यति । इति श्रुत्वाश्चिने मासि स रविर्देवपूजनात् ॥६३
प्रत्यक्षमगमतत्तद वचः प्राह उरानप्रति । कान्यकुञ्जे शुभे देशे वाणीभूषण इत्यहम् ॥
भवामि सत्यदेवस्य विप्रस्य तनयः शुभः ॥६४

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो जातः कान्यपुरे शुभे । जित्वा पाखण्डिनो विप्रान्मांसभक्षणतपरान् ॥
छन्दोपन्नं स्वनाम्ना वै कृतवान्देवतप्रियः ॥६५

वे सबके अधीश्वर कहे जाते हैं और इसीलिए जिस प्रकार सेवक की प्रथम पूजा होकर फिर राजा की पूजा होती है, उसी प्रकार समस्त देवों की पहले पूजा करके पश्चात् विष्णु की पूजा सबको करनी चाहिए । इसे सुनकर वहाँ के लोगों ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और 'विष्णुस्वामी' के नाम से उनकी स्वाति करते हुए अत्यन्त हर्ष की प्राप्ति की । विप्र ! इस प्रकार मैंने विष्णुस्वामी की उत्पत्ति की कथा तुम्हें सुना दिया ; किन्तु बृहस्पति द्वारा कही गई एक सुन्दर कथा का वर्णन पुनः कर रहा हूँ, सुनो ! । ५३-५७

बृहस्पति बोले—पहले समय में चैत्ररथ नामक प्रदेश में मेधावी मुनि द्वारा मंजु घोषा नामक अप्सरा के गर्भ से 'भगशर्मा' नामक एक ब्राह्मण बालक उत्पन्न हुआ । माता-पिता के परित्याग कर देने पर वह बालक श्रद्धालु होकर तप द्वारा सूर्य की उपासना करने लगा । सौ वर्ष तक आराधना करने के उपरान्त सूर्यमण्डल के मध्यभाग में रहने वाली सावित्री नामक देवी ने, जो सम्पूर्ण सूर्य की जननी एवं उनके मण्डल की कन्या हैं, प्रसन्न पूर्ण प्रकट होकर उस ब्राह्मण को कुआर मास के मण्डल का राजा बनाया । उस लोक के निवासियों द्वारा पूजित होकर उस ब्राह्मण ने प्रत्येक आश्विन (कुआर) मास में एक लाख सहस्र वर्ष तक सूर्य रूप में लोक को आकाश प्रदान किया । अतः देवेन्द्र ! उन्हीं सूर्य की आराधना करो वे तुम्हारे कार्य सफल करेंगे । इसे सुनकर उन्होंने आश्विनमास के सूर्य की आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर सूर्य ने वहाँ आविर्भूत होकर देवों से कहा—मैं कान्यकुञ्ज प्रदेश में सत्यदेव नामक ब्राह्मण के घर 'वाणीभूषण' के नाम से उनके पुत्र रूप में अवतरित हूँगा । ५८-६४

सूत जी बोले—इतना कहकर भगवान् सूर्य ने उस कान्यकुञ्ज प्रदेश में उत्पन्न होकर उन पाखण्डी ब्राह्मणों पर विजय प्राप्ति की, जो अत्यन्त मांसभक्षी थे । देवप्रिय सूर्य ने अपने नाम के आधार पर छन्द

सत्स्यमांसाशना विप्रा मृगमेषाजकाशनाः । एकीभूय समागम्य चकुः शास्त्रार्थमुल्बणम् ॥६६
कलिनाऽर्थमित्रेण रक्षितास्ते द्विजातयः । तं द्विजं च पराजित्य मस्त्यकेतुं च तदगृहे ॥६७
बलाच्च स्तम्भनं चकुस्तदा विष्णुप्रियो द्विजः । दैष्णवाँशक्तिमागम्य स्वमुखान्मीनखादितान् ॥६८
सञ्जीव्य दर्शयामास ते दृष्ट्वा दिस्मितास्तदा । शिष्यभूताश्च ते तस्य दैष्णवं मतमागमन् ॥६९

जीव उवाच

कदाचित्सरयूतीरं देवयाज्ञी द्विजोऽभवत् । सर्वदेवयरे नित्यं वेदपठपरायणः ॥७०
तत्सुतस्तु मृतिं प्राप्तो जन्मस्त्रे हि दाहये । तदा तु स द्विजः श्रुत्वा सूर्यदेवमतोषयत् ॥७१
जिजीव तत्सादेन विवस्वान्नाम चाभवत् । षोडशाब्दवपूर्भूत्वा सर्वविद्याविशारदः ॥७२
अपत्यवन्धर्मपरः सूर्यनन्तपरायणः । शिवरात्रिदिने प्राप्ते तत्पत्नी भूषणप्रिया ॥७३
सुशीला नाम विख्याता पतिसेवार्थभागता । स व्रती रुद्रदेवस्य दृष्ट्वा तां भधुराननाम् ॥७४
बलाद्गृहीत्वा तु निशि त्रुभुजे स्मरविहृतः । नैथुनस्यैव दोषेण तस्य कुष्ठो महानभूत् ॥७५
लिङ्गेन्द्रियं च पतितं गुदभ्रष्टो महाङ्ग्रहक् । केनचिदुपदेशेन रविवारस्य वै व्रतम् ॥७६
स चक्रे द्वादशं प्रेम्णा निराहारे यतेन्द्रियः । तेन व्रतप्रभावेण सर्वपीडा लयं गताः ॥७७
तदा श्रद्धा रवौ प्राप्ता प्रत्यहं स द्विजोत्तमः । आदित्यहृदयं जप्त्वा कामरूपो द्विजोऽभवत् ॥७८

ग्रंथ की रचना की । उस समय मत्स्य, मांस, मृग, भेड़ और बकरी आदि के मांस भोजी उन ब्राह्मणों ने एकत्रित होकर उनसे धोर शास्त्रार्थ करना आरम्भ किया । और अधर्ममित्र कलि द्वारा सुरक्षित रहकर उन ब्राह्मणों ने इन्हें पराजित कर उनके घर में बलात् मत्स्यकेतु (मछली का झंडा) स्थापित कराया । उस समय विष्णुप्रिय उस ब्राह्मण ने वैष्णवी शक्ति का आवाहन कर भक्षण की गई मछली को अपने मुख से जीवित निकालकर उन लोगों को दिखाया, जिससे वे सब आश्चर्य चकित हो गये । पश्चात् वैष्णवमत को प्रधान मानकर वे सब उनके शिष्य हो गये । ६५-६९

बृहस्पति बोले——सरयू नदी के तट पर देवयाजी नामक कोई ब्राह्मण रहता था, जो समस्त देवों का भक्त एवं वेदपाठी था । उसका पुत्र दारुण जन्मग्रहण के समय ही मृतक हो गया । उसे सुनकर उस ब्राह्मण ने उसी समय सूर्यदेव को प्रसन्न किंगा, जिससे उनके प्रसाद से वह जीवित होकर विवस्वान् नाम से प्रख्यात हुआ । सोलह वर्ष की अवस्था तक उसने समस्त विद्याओं में निपुणता प्राप्त की, जो पुत्रवान्, धार्मिक एवं सूर्यनन्तपरायण था । एक बार शिवरात्रि के दिन आभूपणों से सुसज्जित सुशीला नामक उसकी पत्नी पतिसेवार्थ उनके समीप आई । शिव के व्रत रहने वाले उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी के मुख सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कामपीड़ित होने पर उस रात्रि के समय बलात् उसे पकड़कर उसका उपभोग किया जिससे उस मैथुन करने के दोष से उसे महान कुष्ठ हो गया—उसका लिंगेन्द्रिय गिर गया, गुदाभ्रष्ट हो गई और समस्त शरीर उस असाध्य रोग से अत्यन्त पीड़ित हो गई । किसी के उपदेश देने पर उसने निराहार एवं संयमपूर्वक बारह रविवार व्रत का अनुष्ठान किया, जिससे उस व्रत के प्रभाव से उसकी समस्त पीड़ा नष्ट हो गई । ७०-७१ उस समय से सूर्य में उसकी अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हुई जिससे उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने आदित्यहृदय स्तोत्र का प्रतिदिन जप-पाठ करके सौन्दर्यपूर्ण रूप की प्राप्त की । जो पहले

नारीभिर्भूतिः पूर्वं सोऽथ कामिनीधाचितः । ब्रह्मचर्यव्रतं कृत्वा ब्रह्मध्यानपरोऽभवत् ॥७९
शतायुर्ब्रह्मणो भूत्वा ज्ञानवान्नरोगवर्जितः । त्यक्त्वा प्राणान्नरविभूत्वा सूर्यमण्डलमध्यगात् ॥८०
कार्तिके मासि लक्षाद्वं प्रकाशं कृतवान्नभः । तं च सूर्यं महेन्द्रस्त्वं पूजयाशु सुरैः सह ॥८१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा महेन्द्रस्तु मात्रमात्रं हि भास्करन् । पूजयित्वा विध्ननेन पूर्णिमायां ददर्श ह ॥८२
उवाच शक्रं स रविर्देवकार्यं करोम्यहम् । भद्रैविद्यामयैर्धृतैः सूत्रपाठश्च सण्डितः ॥८३
धातुपाठोन्यपडितो भ्रंशार्थः स्वरवर्णकः । जित्वा तान्भट्टपाषण्डान्वैदमुद्घारयामि भोः ॥८४
इत्युक्त्वा स गतः काश्यां गेहे वै वेदशर्मणः । दीक्षितान्वयमूतस्य नाम्ना कार्यगुणोऽभवत् ॥८५
द्वादशाब्दवपुर्भूत्वा सर्वशस्त्रविशारदः । शिवमाराध्यामास विश्वनाथं शिवाश्रियम् ॥८६
त्रिवर्षान्ते च भगवांस्तस्मै ज्ञानं महद्वौ । तस्य ज्ञानप्रभावेण व्यक्तमव्यक्तमुत्तमम् ॥८७
ज्ञातं कार्यगुणेनैव दीक्षितेन तदा हृदि । अव्यक्तं तु यदा बुद्धिः सा विद्या द्वादशाङ्गिनी ॥८८
व्यक्तेऽहं कारभूते च बुद्धिर्जया । अविद्या नाम विद्याता षोडशाङ्गस्दरूपिणी ॥८९
अव्यक्तं तु परं ब्रह्म व्यक्तं शब्दमयं स्मृतम् । अहङ्कारो लोककरो हि व्यक्तोऽष्टदशाङ्गिकः ॥९०
वृष्टरूपधरो मुख्यो नन्दियानः स्मृतो बुधैः । शृङ्गाणि तस्य चत्वारि त्रिपादो द्विशिरा वृषः ॥९१

स्त्रियों द्वारा निन्दित एवं त्याज्य था स्त्रियाँ अब इस रूप में उससे याज्ञना करने लगी । किन्तु उसने अपने ब्रह्मचर्य व्रत को अखण्डित रखकर अनवरत ब्रह्मा का ध्यान एवं उपासना किया । इस प्रकार उस ब्राह्मण ने सौ वर्ष की आयु तक ज्ञानवान् एवं रोगहीन रहकर अपने सुखी जीवन व्यतीत करने के उपरान्त शरीर त्यागकर सूर्य मण्डल के मध्य में सूर्यरूप से स्थित रहकर प्रत्येक कार्तिक मास में एक लाख वर्ष तक आकाश को प्रकाशित किया । अतः महेन्द्र ! देवों समेत तुम उसी सूर्य की आराधना करो । ७८-८१

सूतजी बोले—इसे सुनकर महेन्द्रदेव ने एक मास तक सविधान भास्कर देव की उपासना की । पूर्णिमा के दिन सूर्य ने प्रसन्न होकर स्वयं दर्शन देकर उनसे कहा—तुम्हारा कार्य करने के लिए मैं तैयार हूँ । उन धूर्ते एवं पात्रणी भट्ट पण्डितों को, जिन्होंने सूत्रपाठ, धातुपाठ तथा अन्य पाठ को खण्डितकर स्वरवर्ण के अर्थों को भी नष्ट कर दिया है, पराजित कर मैं वेदों का उद्घार करने जा रहा हूँ । इतना कहकर सूर्य ने काशी में जाकर वेदशर्मा दीक्षित के घर अवतरित होकर ‘दीक्षित’ के नाम से स्वाति प्राप्त की । बाहर हवर्ष की आयु तक उन्होंने सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुणता प्राप्तकर पार्वतीप्रिय भगवान् विश्वनाथ देव की आराधना आरम्भ की । तीन वर्ष के अनन्तर प्रसन्न होकर भगवान् विश्वनाथ ने उन्हें महाज्ञानी बनाया, जिससे उनके हृदय में व्यक्त और अव्यक्त का पूर्ण ज्ञान उदय हो गया । अव्यक्त में बुद्धि के स्थिर होने पर उसे द्वादशाङ्ग कहा गया है, और अहंकारभूत व्यक्त में स्थिरबुद्धि को विद्वानों ने अजन्मा कहा है । उसी प्रकार अविद्या को भी षोडशाङ्ग रूप वाली बताया गया है । अव्यक्त परब्रह्म का नाम है तथा व्यक्त, शब्द (नाद) मय का । वह व्यक्त, जो अहंकार रूप एवं लोकप्रस्ता है, अट्टारह प्रकार का होता है । विद्वानों ने वृष रूपधारी उस मुख्य नन्दी यान (वाहन) के विषय में बताया है कि उसकी चार सींगें तीन

त तहस्तस्त्रिधा द्वदो नित्यशुद्धो मुखे स्थितः । सुबन्तश्च तिङ्गन्तश्च कृदन्तश्चाव्ययस्तथा ॥९२
 द्वौ द्वौ शूङ्गै च शिरसोर्निदियानस्य वै स्मृतौ । भूतं भव्यं भवच्चैव द्रवः पादा हि तस्य वे ॥९३
 रूढिश्च योगरूढिश्च शब्दौ तस्य शिरोद्वयम् । कर्ता कर्म च करणं संप्रदानं विभागतः ॥९४
 सम्बद्धश्चाधिकारश्च भुजास्तस्य वृषस्य वै ; वाक्यं स्वरान्वितं ज्ञेयं विभक्त्यन्तं पदं स्मृतम् ॥९५
 ताभ्यां बद्धश्च स दृष्टे नन्दियानाय ते नमः । तस्योपरि स्थितं नित्यमव्यक्तं लिङ्गरूपियम् ॥९६
 जातश्च वृषलिङ्गाभ्यां सोऽहङ्कारो हरिः स्वयम् । नारायणः षोडशात्मा बहुमूर्तिरमूर्तिकः ॥९७
 इति ज्ञानं हृदि प्राय तदा सिद्धान्तकौमुदीम् ; जित्वा भृत्यश्च कारणम् भट्टोजिः शशुतोऽभवत् ॥९८

जीव उवाच

पुरा काञ्चीपुरे रम्ये गणको ब्राह्मणोत्तमः । पुरोधाः सत्यदन्तस्य राज्ञो वेदपरस्य वै ॥९९
 एकदा गणको धीमान्सत्यदन्तमुवाच ह । मुहूर्तोऽभिजिदात्म्योयं पुष्यनक्षत्रसंयुतः ॥
 हाटं कुरु महाराज साम्प्रतं बहुवृत्तिदम् ॥१००
 इति श्रुत्वा तथा कृत्वा डिण्डिमध्यनिनाः पुरे । नरत्नाज्ञापायामः स तच्छणुष्व सुरोत्तम ॥१०१
 अक्रीतं यस्य वै वस्तु हाटेऽस्मिन्वैश्यकोविदैः । मया क्रीतं च तज्जेयं सत्यमेतद्वचो मम ॥१०२
 इति श्रुत्वा शूद्रजनाश्चकुर्त्तनाविधिं वसु । वैश्यैस्सर्वं तदा क्रीतं महान्हाटो हि सोऽभवत् ॥१०३

चरण, दो शिर, सात हाथ हैं तथा दो प्रकार से आबद्ध होकर वह नित्य शुद्धात्मा मुख में स्थित है। उस वृष के शिर में 'सुवन्त', तिङ्गन्त, कृदन्त और अव्यय रूप चार सीरें, भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् रूप तीनों चरण, रूढियोगरूढि दो शिर, कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अगादान, सम्बन्ध और अधिकरण रूप सात भुजाएँ एवं स्वरयुक्त वाक्य तथा विभक्त्यन्त पद, इन दोनों से आबद्ध है अतः नन्दियान रूपप्राय को नमस्कार है। उस वृष के ऊपर अव्यक्त लिङ्गधारी वह ब्रह्म नित्य स्थित रहता है। इस प्रकार उस वृष और लिङ्ग द्वारा अहंकार उत्पन्न होता है, जो स्वयं हरि, षोडशात्मा नारायण, अनेक रूप एवं एक रूप रहता है। इस प्रकार इस विशाल ज्ञान को अपने हृदय में स्थितकर दीक्षित ने धूर्त भट्टों को पराजित कर सिद्धान्त कौमुदी का निर्माण किया, जिससे 'भट्टोजिः' (भट्टोजिदीक्षित) के नाम से उनकी अत्यन्त ख्याति हुई। ८२-१०४

बृहस्पति बोले——पहले कांचीपुरी में 'गणक' नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो वैदिक धर्मानुयायी राजा-सत्यदेव का पुरोहित था। एक बार उस धीमान् गणक ब्राह्मण ने राजा सत्यदेव से कहा—महाराज ! पुष्यनक्षत्र युक्त यह अभिजित नामक मुहूर्त उपस्थित हो रहा है। आप इसमें बाजार लगवाना आरम्भ करें तो, इससे अधिक धन का लाभ होगा। इसे सुनकर राजा ने अपने नगर में डिङ्डिम (डुग्गी) की ध्वनि द्वारा सभी लोगों को एकत्र किया। सुरोत्तम ! उपस्थित लोगों से राजा ने जो कुछ कहा, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! उसने उन्हें आज्ञा प्रदान किया कि इस बाजार में जिस वस्तु का क्रेता (खरीददार) कोई निपुण वैश्य न हो सकेगा, उसे मैं अवश्य क्रय (खरीद) कर लूँगा। यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। इसे सुनकर शूद्रों ने भी भाँति-भाँति की वस्तुएँ बनाकर उस विशाल बाजार में बिक्रयार्थ

एकदा लोहकारश्च दारिद्र्यं लोहरूपिणम् । कृत्वा हाटमुपागम्य शतमुद्रामयाचत ॥१०४
अङ्गीतं पुरुषं राजा ज्ञात्वा लोहदरिद्रकम् । क्रीतं तं शतमुद्राभिर्गृहीत्वा गेहमागमत् ॥

कोशागारे तदा राजा स्थापितोभूद्दरिद्रकः ॥१०५

निशीथे तम उद्भूते कर्म धर्मश्च ना तथा । भूपगेहात्समागत्य पश्यतस्तस्य निर्गता ॥१०६
तत्पश्चात्तात्यपुरुषो राजानभिदमवैत् । दरिद्रो यत्र भूपाल तत्र कर्मपरो न हि ॥

कर्मणा रहितो धर्मो भूतले न स्थिरो भवेत् ॥१०७

धर्मेण रहिता लक्ष्मीर्ण शोभेत कदाचन । अहं लक्ष्म्या विहीनश्च न तिष्ठापि कदाचन ॥१०८

इत्युक्त्वा गन्तुमिच्छन्त गृहीत्वा करयोर्नैः । न त्रीभूतो दचः प्राह शृणु सत्यं सम प्रियम् ॥१०९

न त्याज्यो हि मया देव भवान्कञ्जन्तुमहिति । इति श्रुत्वा तु वचनं सत्यदेवो गृहेऽगमत् ॥११०

तत्पश्चाच्च स्वयं लक्ष्मीस्तद्गेहे गन्तुमुद्यता । तामाह भूपतिर्धीरो देवि त्वं चञ्चला रादा ॥१११

अचला भव भो मातस्तर्हि मन्मन्दिरं व्रज । इति श्रुत्वा वरं दत्त्वा नृपगेहं यथौ तदा ॥११२

पुरोधसं तं गणकं समाहृय नृपोत्तमः । लक्षस्वर्ण ददौ तस्मै कथित्वा सर्वकारणम् ॥११३

पुत्रजन्मनि काले तु सम्प्रा तं तेन वै धनम् । व्ययं कृत्वा धनं सर्वं पोषयामास बालकम् ॥११४

पूषा नाम ततो जातो मार्गशीर्षं शुभे दिने । स तु सूर्यं समाराध्य ज्योतिःशास्त्रपरः सुतः ॥११५

लाना आरम्भ किया । एक बार एक लोहार ने लोहे की दरिद्र की मूर्ति बनाकर उस बाजार में विक्रयार्थ उपस्थित किया और सौ रुपया उसका निर्धारित मूल्य बताया । राजा ने देखा कि उस दरिद्र की मूर्ति को कोई क्रय (खरीद) नहीं कर रहा है, तो सौ रुपया देकर स्वयं सबका क्रय कर अपने घर के कोशागार में उसे स्थापित की । उसी दिन आधी रात के अंधेरे समय में राजा के भवन से कर्म, धर्म, और लक्ष्मी उनके देखते-देखते सामने से होकर निकल गये । पञ्चात् सत्यपुरुष ने भी राजा से कहा—राजन् ! जिसके गृह में दरिद्र निवास करता है, वह मनुष्य कर्तव्य-पालन नहीं कर सकता । कर्तव्यहीन होने पर उसका धर्म भी इस पृथ्वी पर स्थित नहीं रह सकता । धर्मरहित होने पर उसके घर लक्ष्मी भी कभी सुशोभित नहीं हो सकती हैं और लक्ष्मीविहीन होकर मैं कभी नहीं रहता हूँ । इतना कहकर सत्य वहाँ से चलना चाहता था कि राजा ने उन्हें रोककर विनम्र वाणी द्वारा उनसे कहा—सत्य ! मेरी एक बात सुनने की कृपा करें । देव ! आप मुझे अत्यन्त प्रिय हैं, अतः आपका त्याग मैं कभी नहीं कर सकता । क्या अब भी आप जाना चाहेंगे । इसे सुनकर सत्यदेव उनके घर लौट गये, पश्चात् लक्ष्मी भी राजा के यहाँ लौटने के लिए उत्सुक हुई । उन्हें उच्यत देखकर राजा ने कहा—देवि ! तुम सदैव चंचल रही हो, किन्तु मातः । अब मेरे महल में चलकर अपनी अचल स्थिति करें । इसे सुनकर लक्ष्मी ने उन्हें वरदान प्रदान किया और उनके घर अचल निवास भी । अनन्तर उस नृपथेष्ठ ने अपने गणक पुरोहित को बुलाकर समस्त वृत्तान्त निवेदनपूर्वक उन्हें एक लाख स्वर्ण मुद्रा प्रदान किया । उस समय पुरोहित के घर पुत्र-जन्म हुआ था । गणक ने उस धन से उसी बालक का सुचारू रूप से पोषण किया । मार्गशीर्ष के शुभ दिन मैं जन्म ग्रहण करने के नाते उसका नाम पूषा हुआ जिसने सूर्य की आराधना द्वारा ज्योतिष्शास्त्र में अत्यन्त सुख्याति प्राप्त की । तदुपरान्त

सूर्ये तु मोक्षमग्मद्वेवदेवप्रसःदतः । तस्मात्वं मार्गासे वै रविं देवेन्द्रं पूजय ॥११६
सूत उवाच

देवेन्द्रपूजनात्सूर्यस्समागम्य तदा स्वयम् । पूषा नाम दचो देवानुवाच सधुरस्वरम् ॥११७
उज्जयिन्यामहं देवा यास्ये रुद्रपशोगृहि । नान्नाच मिहिराचार्यो ज्योतिशास्त्रप्रवर्तकः ॥११८
इत्युक्त्वा भगवान्पूषा पुत्रो जातो द्विजस्य वै । मूलगण्डान्तविषयेऽभिजिद्योगे रुनङ्क्षरे ॥११९
जातमात्रं च तं पुत्रं पिता काष्ठकटाहके । दृत्वा क्षित्या नदीमध्ये निशीथे समवाहयत् ॥१२०
सनुद्भग्मत्युत्रो राक्षसीभिश्च रक्षितः । लङ्घःमागम्य तत्रैव ज्योतिःशास्त्रमधीतवान् ॥१२१
जातकं फलितं चैव शुक्रप्रश्नं तथादितः । पठित्वा राक्षसेन्द्रं च विभीषणमुपागतम् ॥१२२
भक्तराज नमस्तुभ्यं विभीषणं हरिप्रिय । आहृतो राक्षसीभिश्च त्वामहं शरणं गतः ॥१२३
इति श्रुत्वा च स नृपो वैष्णवं द्विजमुत्तमम् । मत्वा सन्प्रेषयामास यत्र तज्जन्मभूमिका ॥१२४
स्तेच्छेविनाशितं यसु वेदाङ्गं ज्योतिषां गतिः । पुनरुद्धारितं तेन त्रिधामूलं सनातनम् ॥१२५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डपरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये
मध्वाचार्यश्रीधराचार्यविष्णुस्वामिवाणीभूषणभट्टोजिदीक्षितदराहमिहिराचार्योत्पत्तिवर्णनं

नामाष्टमोऽध्यायः ।८

शरीर त्यागने पर वह देवाधिदेव सूर्य के प्रसाद से उन्होंने मैं लीन हो गया । अतः देवेन्द्र ! तुम उसी मार्ग (अग्रहन) मास के सूर्य की अर्चना करो ॥१०५-११६

सूतजी बोले—इन्द्र के पूजन करने पर उस समय पूषा नामक सूर्य ने वहाँ उपस्थित होकर देवों से मधुर वाणी द्वारा कहा—उज्जयिनी पुरी में रुद्रपशु के गृह में उत्पन्न होकर मैं ज्योतिशास्त्र प्रवर्तक एवं मिहिराचार्य के नाम से स्वाति प्राप्त करूँगा । इतना कहकर भगवान् पूषा ने उस ब्राह्मण के घर बालक रूप में जन्म ग्रहण किया । मूल गण्डान्त नक्षत्र तथा शुभदायक, अभिजित योग में उत्पन्न होने के नाते उस बालक को उसके माता-पिता ने काष्ठ की सन्दूक में उसे बन्दकर आधी रात के समय नदी में डाल दिया । नदी द्वारा वह बालक समुद्र में पहुँच गया, वहाँ राक्षसियों द्वारा सुरक्षित रहकर समुद्र से लंका में पहुँचा । वहाँ रहकर उसने ज्योतिशास्त्र का विशेषाध्ययन किया, जिससे जातकफलित और शुक्रप्रश्न आदि की विशेष निपुणता उन्हें प्राप्त हुई । पश्चात् राक्षसेन्द्र विभीषण के पास पहुँचकर उन्होंने कहा—भक्तराज, एवं हरिप्रिय विभीषण ! तुम्हें नमस्कार है । राक्षसियों द्वारा मेरा अपहरण हुआ है अतः मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ । इसे सुनकर उस राजा ने उस वैष्णव ब्राह्मणश्रेष्ठ को उनकी जन्मभूमि में पहुँचा दिया । वहाँ पहुँचकर उसने म्लेच्छों द्वारा विनष्ट उस वेदाङ्गं ज्योतिशास्त्र का, जो सनातन एवं तीन भागों में विभक्त है, पुनः उद्धार किया ॥१२७-१२५

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी, वाणीभूषण, भट्टोजीदीक्षित और वाराहमिहिराचार्य की उत्पत्ति वर्णन
नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अथ नवमोऽध्यायः

धन्वन्तरिसुश्रुतजयदेवसमुत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवाङ्जीवस्सूर्यमाहात्म्यमुत्तमम् । प्रयागे तु पुनर्देवानुवाच वच्चां पतिः ॥१
 प्रतिष्ठानपुरे रम्ये सूर्यो जाते हराज्ञया । पुरा त्रेतायुगान्ते च तच्छृणुष्व सुरोत्तम ॥२
 त्रेतान्ते सिंहलद्वीपे परीक्षितनृपोऽभवत् । वेदधर्मपरो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥३
 कन्या भानुमती तत्य सूर्यव्रतपरायणा । भक्तिभावेन सविता प्रत्यहं तदगृहे स्वयम् ॥४
 तया कृतं शुभं भक्ष्यं मध्याह्ने भुक्तवान्प्रभुः । रविवारे कदाचित्सा नलिनी सागरं प्रति ॥५
 स्नानार्थमागता कन्या तदा नारद आगतः । दृष्ट्वा मनोरमां बालामेकाकीं जलमध्यम् ॥६
 गृहीत्वा वसनं तस्या वच्चनं प्राह निर्भयः । पाणिं गृहण मे सुभूस्त्वद्दृष्ट्या वशमागतः ॥७
 इत्युक्त्वयन्तं तु मुनिं कुमारी नम्रकन्धरा । उवाच शृणु देवर्षे कन्याहं त्वं सुतप्रदः ॥८
 भवान्देवाङ्गनाभिश्च प्रार्थितः स्वर्गमण्डले । दव च वै मेनका रम्भा क्वाहं मनुजयोनिजा ॥९
 नवद्वारेषु देहेस्मिन्दुर्गन्धाः संस्थिताः सदा । नैव देवाङ्गनाङ्गे वै तस्मात्तुभ्यं नमोनमः ॥१०
 इति श्रुत्वा वचस्तस्या लज्जितो नारदस्तदा । महादेवमुपालम्य चोक्तवान्सर्वकारणम् ॥११

अध्याय ९

धन्वन्तरिसुश्रुतजयदेवसमुत्पत्ति का वर्णन

सूतजी बोले—प्रयागतीर्थ में भगवान् वृहस्पति ने देवों को सूर्य का उत्तम माहात्म्य सुनाकर पुनः कहना आरम्भ किया । सुरोत्तम ! पहले त्रेतायुग के अन्त समय में भगवान् शंकर की आज्ञा से सूर्य ने प्रतिष्ठानपुर (झांसी) में जन्म ग्रहण किया था । मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो ! त्रेतायुग के अन्त समय में सिंहलद्वीप का राजा परीक्षित था, जो वेद-धर्म का अनुयायी और देवों तथा अतिथियों की नित्य पूजा करता था । उसकी भानुमती नामक कन्या सूर्यव्रत का परायण करती थी । उसके भक्तिभाव से प्रसन्न होकर सूर्यदेव प्रतिदिन उसके घर स्वयं आकर मध्याह्न समय उसके द्वारा समर्पित भक्ष्य पदार्थ का भोजन करते थे । एक बार रविवार के दिन उस कमलाङ्गी कुमारी ने सागर में स्नानार्थ प्रस्थान किया । उसके वहाँ पहुँचने पर नारद जी वहाँ आये । जल के मध्य न्नान करती हुई उस मनोरमा कुमारी को अकेली देखकर नारद ने उसके वस्त्र पकड़कर निर्भीक होकर कहा—शुभ्रे ! मैं तुम्हारे कटाक्ष-पात से अधीर हो गया हूँ, अतः मेरा हाथ ग्रहण करो ! ऐसा कहने पर उस कुमारी ने शिर झुकाकर उस मुनि से कहा—देवर्षे ! मेरी एक बात सुनने की कृपा करें—मैं कुमारी हूँ और आप पुत्र प्रदाता हैं तथा आकाश मण्डल में स्थित होकर देवाङ्गनाएँ आपकी प्रार्थना करती हैं । इसलिए कहाँ वह मेनका और कहाँ मानुषी मैं । क्योंकि मनुष्यों के नवद्वारों वाली इस देह में सदैव दुर्गन्ध ही स्थित रहती है और देवस्त्रियों के अंगों में नहीं । इसलिए मेरी उत्तकी समता अत्यन्त दुर्लभ है ॥१-१०। इतना सुनकर नारद अत्यन्त लज्जित हुए । पश्चात्

कुष्ठीभूतं मुनिं इृष्ट्वा शङ्करो लोकशङ्करः । तुष्ट्वा भास्करं देवं तदा प्रादुरभूत्प्रभुः ॥१२
 नारदस्य शुभं देहं कृत्वा शिवमुवाच ह । आज्ञां देहि महादेव तवाशां पूरयाम्यहम् ॥१३
 इन्द्रियं तं शिवः प्राह द्विजो भूत्वा भवान्भुवि । गृहाण नृपतेः कन्यां रविणा तु तथा कृतम् ॥१४
 सविता भानुमत्या च सादैँ कृत्वा तपोन्वहम् । सूर्यलोकं पुनः प्रा तस्स पौषे च प्रकाशकृत् ॥
 तं भजामु महेन्द्र त्वं देवकार्यं प्रसाधय ॥१५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्बाक्ष्यं महेन्द्रश्च सुरैस्सह । सवितरं शौष्ठमासे तुष्ट्वा शुभपूजनैः ॥१६
 तदा प्रसन्नो भगवान्देवानाह शुश्रं चचः । अहं काश्यां भवाम्बद्य नाम्ना धन्वन्तरिः स्वयम् ॥१७
 रोगैश्च पीडितांलोकान्कलिना निर्मितिर्भुवि । शमिष्यामि तत्रोष्य देवकार्यं भविष्यति ॥१८
 इत्पुक्त्वा भगवान्सूर्यः काशीनगरमाप्तः । कल्पदत्तस्य दिप्रस्य पुत्रो भूत्वा महीतले ॥१९
 सुश्रुतं राजपुत्रं च विप्रवृद्धसमन्वितम् । शिष्यं कृत्वा प्रसन्नात्मा कल्पवेदमचोकरत् ॥२०
 रोगैश्च क्षयितं देहं काल्पमेतस्मृतं बुधैः । तस्य ज्ञानं च तन्त्रेऽस्मिन्कल्पवेदोहृतः स्मृतः ॥२१
 धन्वन्तरिस्स भगवान्त्रसिद्धोऽभूत्कलौ युगे । यस्य दर्शनमात्रेण रोगा नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥२२
 सुश्रुतः कल्पवेदं तं धन्वन्तरिविनिर्मितम् । पठित्वा च शताध्यायं सौऽश्रुतं तन्त्रमाकरोत् ॥२३

महादेव जी के पास जाकर समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । लोक-कल्याणकर्त्ता शिवजी ने उन्हें कुष्ठरोग से ग्रस्त देखकर भास्करदेव की आराधना की । उस समय सूर्यदेव ने साक्षात् प्रकट होकर नारद के शरीर को नीरोग करते हुए शिवजी से कहा—महादेव ! आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं आपकी आशा पूरी कर दूँ । १-१३ । उनके इस प्रकार कहने पर शिव जी ने कहा—आप ब्राह्मण के वेष धारणकर उस कन्या का ग्रहण करें । पश्चात् सूर्य ने वैसा ही किया । सविता (सूर्य) ने उस भानुमती के साथ पाणिग्रहण करने के उपरान्त तप करना आरम्भ किया, जिससे सूर्यलोक की पुनः प्राप्ति की । वही प्रत्येक पौष में प्रकाश प्रदान करते हैं । अतः महेन्द्र ! उन्हीं सूर्य की आराधना द्वारा देवकार्य शीघ्र सफल करो । १४-१५

सूत जी बोले—गुरु की ऐसी बात सुनकर सुरेश ने देवों के साथ शुभपूजन द्वारा पौष मास के उस सूर्य की आराधना आरम्भ की । उस समय प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य ने शुभ वाणी द्वारा देवों से कहा—मैं काशीपुरी में धन्वन्तरि के नाम से उत्पन्न हूँगा । वहाँ रहकर कलि द्वारा उत्पन्न रोगों से पीड़ित प्राणियों को नीरोग करूँगा, जिससे देवकार्य स्वयं सिद्ध हो जायेगा । इतना कहकर भगवान् सूर्य काशीपुरी में आकर कल्पदत्त ब्राह्मण के घर पुत्रलूप में उत्पन्न हुए और प्रसन्न होकर उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण समेत उस सुश्रुत राजपुत्र को शिष्य बनाकर कल्पवेद की रचना की, जिससे रोगद्वारा नष्ट देह (कायाकल्प) नवीन हो जाती है । उस कल्पवेद का समस्त ज्ञान इस तंत्र में निहित हैं । उस समय वे सूर्य उस रूप में धन्वन्तरि के नाम से इस भूतल में प्रख्यात हुए, जिसके दर्शनमात्र से उसी समय रोग नष्ट हो जाते हैं । सुश्रुत ने धन्वन्तरि द्वारा रचित उस कल्पवेद के सौ अध्याय का अध्ययन करके ‘अश्रुततं’ की रचना की । १६-२३

बृहस्पतिरुचाच

पुरा पम्पापुरे रम्ये हेली नाम्ना द्विजोऽभवत् । चतुष्पष्टिकलाभिज्ञो रविपूजनतत्परः ॥२४
त्यक्त्वा प्रतिग्रहं वृत्तिं काश्वृत्तिं गृहीतवान् । इत्वा वस्त्रकलं लौहं तथा चित्रकलं पुनः ॥२५
धातुमूर्तिकलं चैव सर्वकाश्कलं तथा । पञ्चसहस्रमुद्राभिराक्षीणन्काश्कोऽभवत् ॥२६

कलएको मासमात्रे काले तेजैव निर्मितः । तद्धनेन रविं देवं यज्ञैर्याधि हि सोऽर्चगत् ॥

विश्वकर्मा रविः साक्षान्माध्यमासे प्रकाशःकः ॥२७

हेलिनो बहुलैर्यज्ञसन्तुष्टः प्रत्यहं प्रभुः । पम्पासरोवरे रम्ये निर्मितः स्तम्भ उत्तमः ॥२८

ज्योतीरूपो पहारम्यस्तत्र प्रा तो रविः स्वयम् । मध्याह्ने हेलिना इत्तं भोजनं दैवतप्रियम् ॥२९

भूत्वा स प्रत्यहं स्वामी मासिमाति दिवाकरः । त्रैलोक्यं भावायाऽचक्रे सर्वदेवमयो हरिः ॥३०

सहस्रायुद्धिं जो भूत्वा त्यक्त्वा प्राणान्नरविः स्वयम् । भूत्वा मण्डलमध्यात्म्य माध्यमासमतोषयत् ॥

तं सूर्यं भज देवेन्द्र स ते कार्यं करिष्यति ॥३१

सूत उत्ताच

इति श्रुत्वा गुरोर्वक्यं वासवो दैवतैस्सह । सूर्यमाराध्यामासं विश्वकर्मणमुत्तमम् ॥३२

तदा प्रसन्नो भगवांस्त्वष्टा तुष्टिकरो जनान्^१ । सुरानाह वचो रम्यं शृणुध्वं सुरसत्तमाः ॥३३

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में रम्य पम्पापुर में एक हली नामक ब्राह्मण रहता था, जो चौसठ कलाओं में निपुण और नित्यसूर्य का उपासक था । प्रतिग्रह (दान) वृत्ति का त्यागकर उसने कलावृत्ति स्वीकार की । वस्त्रकला, लोह-कला, चित्रकला एवं धातुओं की मूर्तिकला को अपनाकर वह समस्त कलाओं का कार्य करता था, जिससे उसे पाँच सहस्र मुद्रा की प्राप्ति हुई । एक मास के भीतर ही उसने एक फल का निर्माण किया । उस धन से उसने माघ मास में यज्ञानुष्ठान द्वारा सूर्यदेव को प्रसन्न किया, जिससे विश्वकर्मा के नाम से सूर्यदेव प्रत्येक माध्यमास में प्रकाश करते रहते हैं । उस हली ब्राह्मण ने अनेक यज्ञों द्वारा सूर्य को अत्यन्त प्रसन्न किया, जिससे पम्पासरोवर में उसके द्वारा निर्मित स्तम्भ के स्थापित होने पर सूर्य वहाँ अन्यन्त सुरम्य ज्योतिरूप में स्वयं उस स्तम्भ पर गद्याह्न समय पहुँचकर उसके द्विये हुए भृत्य का ग्रहण करते हैं । इस प्रकार प्रत्येक मास के उस देवप्रिय भृत्यपदार्थ को ग्रहणकर सूर्यदेव सर्वदेवमय होकर वहाँ त्रैलोक्य की कल्याण भावना करते रहते हैं । पश्चात् सहस्र वर्ष की आयु के उपरान्त उस ब्राह्मण ने प्राण परित्यागकर सूर्य के रूप में मण्डल के मध्य पहुँचकर माघ मास में सूर्य की सन्तुष्ट किया । अतः देवेन्द्र ! तुम उसी सूर्य की आराधना करो, वही तुम्हारा कार्य सिद्ध करेगे । २४-३१

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर देवों समेत इन्द्र ने उस विश्वकर्मा सूर्य की आराधना की । उस समय प्रसन्न होकर त्वष्टा रूप सूर्य ने भी उन देवों को प्रसन्न किया । उन्होंने देवताओं से मधुर वाणीद्वारा कहा—सुरोत्तमवृन्द ! मेरी बात सुनो ! वंगदेश के विल्व नामक

१. जनानामित्यर्थः ।

द्वित्यग्रामे वद्भुद्देशे सम्भवतमि निरस्तङ्कृत् । जयदेव इति स्थातः कवीनां हि शिरोमणिः ॥३४
 इत्युक्त्वा भगवान्सूर्यो दद्भुद्देशमुपाययौ । गेहे कन्दुकिनो जातो ब्राह्मणस्य महीतले ॥३५
 त च चाव्यवपुभूत्वा पितृनातृपरायणः । द्वादशाब्दं महासेवा तत्र तेन तयोः कृता ॥३६
 मृतिमन्तौ च पितृरौ प्रेतकृत्येन तर्हितौ । जयदेवेन तौ भाकं गयाशाद्वे हि जगमनुः ॥३७
 जयदेवस्तदा दिशो भूत्वा वैराग्यवान्भुवि । तत्रस्थाने महारम्भे इने वासमकारण्यत् ॥३८
 त्रिविंशाब्दे ततः प्रा ते केनचिन्मधुरतनना । ब्राह्मणेन शुभा कन्या जगन्नाथाय चार्पिता ॥३९
 अर्चादिसाने भगवाननिरुद्धसनातनः । द्वादशत्पूजयः साक्षादाह तं द्वेष वै वद्यः ॥४०
 शृणु त्वं भोः सत्यक्त जयदेवो व्युर्ममः पद्मावतीं सुतां तत्त्वै निवेदय ममाज्ञया ॥४१
 इत्युक्तस्स द्विजस्त्वूर्णं दृष्ट्वा वैरागलिपिण्म् । तत्र स्थाप्य निजां कन्यां स्वगेहाय मुद्वा ययौ ॥४२
 सा तु पद्मावती कन्या मत्वा तं सुन्दरं पतिम् । तत्सेवां सा मुद्वा युक्ता चकार बहुवार्षिकम् ॥४३
 निरुक्तं वैदिकं चाङ्गं कृतवान्स समाधिना । वर्णागमो गवेन्द्रादौ लिहे वर्णविपर्ययः ॥
 षोडशादौ विकारश्च वर्णनाशः पृष्ठोदरे ॥४४
 वर्णविकारनाशान्म्भां धातोरतिशयेन यः । योगस्तदुच्यते प्राज्ञर्मूरत्रभ्रमरादिषु ॥४५
 एवं पञ्चविधान्येवं निरुक्तानि स्मृतानि वै । शूद्रैश्च नागवंशीदैर्भृशितानि कलौ युगे ॥४६

ग्राम में मैं निरुक्तकार के रूप में उत्पन्न होकर जयदेव नामक कवि शिरोमणि हूँ गा । इतना कहकर भगवान् सूर्य ने वंग प्रदेश में पहुँचकर कन्दुकी ब्राह्मण के घर जन्म ग्रहण किया । पांच वर्ष की अवस्था से उन्होंने अपने माता-पिता की अनवरत सेवा बारह वर्ष तक की । पश्चात् उन दोनों के निधन हो जाने पर उन्होंने उनकी अन्त्येष्टिक्रिया द्वारा भी उन्हें सन्तुष्ट किया और गया जी में श्राद्ध करके स्वर्ग का निवासी बनाया । तदनन्तर यज्ञोपवीत होने पर जयदेव ने वैराग्य धारणकर उसी स्थान के एक महारण्य में निवास करना आरम्भ किया । उस समय उनकी तेर्वेस वर्ष की अवस्था आरम्भ थी । किसी ब्राह्मण ने अपनी शुभ-कन्या जगन्नाथ जी को अर्पित किया, पश्चात् पूजा करने के उपरान्त सनातन अनिरुद्ध भगवान् ने, जो ब्रह्मय काष्ठरूप में स्थित थे, साक्षात् अपनी बाणी द्वारा उस ब्राह्मण से कहा—सत्यदेव ! मेरी बात सुनो ! जयदेव की शरीर मेरी ही शरीर है, अतः मेरी आज्ञा से तुम अपनी इस पद्मावती को उन्हें समर्पित करो । इतना कहने पर उस ब्राह्मण ने शीघ्र वहाँ जाकर उन वैरागी जयदेव के पास अपनी पूत्री को छोड़कर हर्षमग्न होकर अपने घर को प्रस्थान किया । उस पद्मावती कन्या ने भी उन्हें अपना सुन्दर पति समझकर उनकी बहुत वर्षों तक सेवा की । जयदेव जी ने समाधिस्थ होकर वैदिक अंगभूत निरुक्त की कल्पना की, जो गवेन दद की सिद्धि में गो + इन्द्र अवस्था में ओ के प्रस्थान पर ‘अब’ आदेश रूप वर्णागम ‘सिंह’ में हसिं की अवस्था में सिं का प्रथम आना, वर्ण विपर्यय (उलटफेर) षोडश में षष + दश अवस्था में ष के स्थान पर उकार और द के स्थान पर ड्र रूप वर्ण विकार, एवं पृष्ठोदर में पृष्ठ उदर में त का लोप रूप वर्णनाश के क्रम से वर्ण विकार वर्णनाश और मयूर तथा भ्रमर पदों की सिद्धि में धातु के अतिशयित्व रूप योग विद्वानों द्वारा बताया गया है । इस प्रकार पांच प्रकार के निरुक्त की रचना उनके द्वारा की गई है । ३२-४६। कलियुग में नागवंशीय शूद्रों द्वारा भ्रष्ट की गई उस प्राकृत भाषा के उन कलिप्रिय एवं मूर्खों

जित्वा प्राकृतभाषायाः कर्तूमूढान्कलिप्रियान् । शुद्धं हि पाणिनिः शास्त्रं चकार सुरहेतवे ॥४७

एकदा तु कलिर्धूर्तो हृदिस्थश्चैरकर्मणाम् । नृपदत्तं द्विजस्यैव लुण्ठयित्वा धनं बहु ॥४८

पश्चावतीं सतीं मत्वा त्यक्त्वा तदै गतो गृहम् । हस्तौ पादौ द्विजस्यैव कलिश्चैरैः समाच्छिगत् ॥४९

तदा तु दुःखिता देवी गर्तमध्ये स्थितं पतिस् । निष्काश्य बहुधालप्यापीड्य हस्तेन चाहरत् ॥५०

एकस्मिन्दिवसे राजा मृगयार्थमुपागतः ! अहस्तपादं च मुनिं जयदेवं दर्श इह ॥

स पृष्ठस्तेन तत्रैव कृतं केन तवेदृशम्

॥५१

स होवाच महाराज हस्तपादविहीनकः । कर्मणाहमिह प्राप्तो न केनापि कृतं खलु ॥५२

इति श्रुत्वा धर्मपालो नृपतिस्तं द्विजोत्तमम् । सपत्नीकं च शिविकामारोप्य स्वगृहं यथौ ॥५३

तस्य दीक्षां नृपः प्राप्य धर्मशालामकारयत् । कदाचिद्वैष्णवा भूता ते चौराः कलिनिर्मिताः ॥

धर्मपालगृहं प्राप्य राजान्मिदमवृत्वन्

॥५४

वदं हि शास्त्रनिपुणास्तद गेहमुपागताः । अस्माभिनिर्मितं भोज्यं स्वयं विष्णुः शिलामयः ॥

सम्भुक्ते प्रत्यहं प्रीत्या तत्पश्य नृपसत्तम्

॥५५

इत्युक्त्वा कलिभक्तास्ते विष्णुरूपं चतुर्भुजम् । नृपाय दर्शयामासु भुक्तवन्तं स्वमायथा ॥५६

विस्मितो धर्मपालश्च जयदेवमुवाच ह । गुरो मद्भूवने प्राप्ता वैष्णवा विष्णुतत्पराः ॥

अदीदृशन्हरिं साक्षात्स्मात्वं शीघ्रमाव्रज

॥५७

को पराजित कर इन्होंने देवों के निमित्त पाणिनि शास्त्र की रचना की । एक बार धूर्त कलि ने चोरों के हृदय में स्थित होकर उन चोरों द्वारा इन जयदेव व्राघ्ण के धनों को, जिसे राजा ने प्रदान किया था, लुटवाकर पश्चावती को सती ममझकर छोड़ दिया किन्तु इनके हाथ-पाँव भी कटा लिए । उससे दुःखी होकर उनकी पत्नी ने गड्ढे में गिरे हुए अपने पति को करुण कन्दन करती हुई किसी भाँति हाथ के सहारे उस गड्ढे से निकाला । उसी समय राजा शिकार के लिए जा रहे थे, मार्ग में जयदेव को कर-चरणहीन देखकर उन्होंने उनसे पूछा—किसने आपकी यह दशा की है । उन्होंने कहा—महाराज ! मैं अपने कर्म द्वारा ही इस अवस्था को प्राप्त हुआ हूँ, इसमें किसी अन्य का अपराध नहीं है । इसे सुनकर राजा धर्मपाल ने पत्नी समेत उन्हें पालकी पर बैठाकर अपने घर को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर राजा ने उनसे दीक्षा ग्रहण की, पश्चात् एक धर्मशाला का निर्माण कराया । एक बार कलिनिर्मित उन चोरों ने वैष्णव के रूप में राजा धर्मपाल के गृह आकर उनसे कहा—हम लोग शास्त्र के निपुण विद्वान् हैं, किन्तु इस समय तुम्हारे यहाँ आये हैं । नृपसत्तम ! हम लोगों के बनाये हुए भोज्य पदार्थ को शालग्राम शिलामय विष्णु भगवान् स्वयं सप्रेम भक्षण करते हैं, उसे आज आप भी देखिये मैं दिखाऊँगा । इतना कहकर उन कलिभक्त वैष्णवों ने अपनी माया द्वारा भोजन करते हुए भगवान विष्णु का दर्शन राजा को करा दिया, जिससे आश्चर्य चकित होकर धर्मपाल ने जयदेव से कहा—गुरो ! मेरे घर में विष्णुभक्त वैष्णव लोग आये हुए हैं, जो भगवान् का साक्षात् दर्शन करा रहे हैं, अतः आप भी वहाँ शीघ्र चलने की कृपा करें ॥५७-५८। इसे सुनकर जयदेव वहाँ पहुँचे किन्तु राजा को उस समय महान् आश्चर्य हुआ, जब उन

इति श्रुत्वा द्विजः प्राप्तो विस्मितोऽभूतथा नृपः । तदा तु तं हि पाखण्डा भूपद्मूर्च्छिर्हस्य ते ॥५८
असौ विप्रश्च नृपते गौडदेशे निवासिनः । शूदो भक्ष्यकरस्तस्मै कदाचिद्भूलोभतः ॥५९
गरलं मिश्रितं भक्ष्ये तेन^१ पाखण्टरूपिणा । ज्ञात्वा राजा तु तं विप्रं शूलमध्ये ह्यरेपयत् ॥६०
एतस्मिन्नन्तरे राजन्वयं तत्र सम्भगताः । आगस्त्यतं द्विजं भूत्वा दत्त्वा ज्ञानान्यनेकशः ॥

शूलातं हि समुत्तार्य हृष्टौ पादौ नृपोऽच्छिन्नत् ॥६१

अस्माकं शिष्यभूतो हि राजास्मातिः प्रबोधितः । इत्युन्नमात्रे वचने दुःखिताभूच्छ दागिता ॥६२
चौरास्तान्ता हि प्रताले चकार मुररक्षितान् । जयदेवस्तथा शूतान्दृष्ट्वा चोरान्हरोद ह ॥६३
झान्दमाने द्विजे तस्मिन्हस्ताङ्गी^२ प्रकृतिं गतौ । विस्मितं नृपतिं तत्र सर्वं हेतुमवर्णयत् ॥६४
श्रुत्वा राजा प्रसन्नात्मा जयदेवमुखोद्भवत् । गीतगोविन्दमेवाशु पठित्वा मोक्षमागमत् ॥६५
इति ते दृष्टिं विप्रं जयदेवो यथाभवत् । कृष्णचैतन्यचरितं यथा जातं शृणुच्च तत् ॥६६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगाखण्डापराययि कलियुगीयेतिहाससमुच्चये
धन्वन्तरिमुश्रुतजयदेवसमुत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्याय ।९

पाखण्डयों ने हँसते हुए जयदेव को देखकर राजा से कहना आरम्भ किया—यह ब्राह्मण गौड़ देश निवासी राजा के यहाँ पाचक (रसोइया) था । एक बार इस पाखण्डी ने धन के लोभ से मुझे विषमिश्रित भोजन कराया, जिसके विदित हो जाने पर राजा ने इस शूली पर नढ़ाना चाहा, उसी समय हम लोगों ने वहाँ पहुँचकर इस ब्राह्मण को अपराधी समझते हुए भी राजा को अनेक भाँति से ज्ञान प्रदान किया, तथापि राजा ने शूली से हटाकर इसके हाथ-पैर कटवा लिये, क्योंकि राजा हाथ लोगों का शिष्य था, इसलिए हम लोगों ने ऐसा ही बताया था । इतना कहने पर उन्हें अत्यन्त कष्ट हुआ हृदयविदीर्ण-सां प्रतीत होने लगा । पश्चात् राजा ने उस चोरों को पाताल में ठहराया, जो सुरनाथक की रक्षा कर रहे थे । उसे देखकर जयदेव ने रुदन किया । उनके करणक्रन्दन करने पर उनके हाथ-पैर पूर्व की भाँति स्वस्थ हो गये । इसे देखकर राजा को महान् आश्चर्य हुआ, उस समय जयदेव ने उनसे सभी कारणों का वर्णन किया । उसे सुनकर राजा को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । पश्चात् उस राजा ने जयदेव के मुख से निकले उस गीत गोविन्द के गायन-भजन द्वारा मोक्ष प्राप्त की । विप्र ! इस प्रकार मैंने जयदेव की उत्पत्ति कथा सुना दी । अब कृष्ण चैतन्य की कथा कह रहा हूँ, सुनो ।५८-६६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में धन्वन्तरि, मुश्रुत और जयदेव की
उत्पत्ति वर्णन नामक नवाँ अध्याय समाप्त ।९।

१. दत्तमिति शेषः । २. जातित्वादेकवचनान्तहस्तपादयोर्द्वन्द्वः ।

अथ दशमोऽध्यायः
कृष्णचैतन्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्तिदर्जनम्
जीव उवाच

विष्णुशर्मा पुरा कश्चिद्दिप्रोभूदेवारगः । सर्वदेवमयं विष्णुं पूजयित्वा प्रसन्नधीः ॥१
 अन्यैस्तुरैश्च सम्पूज्यो बाहूव हरिपूजनात् । भिक्षावृत्तिपरो नित्यं पत्नीमान्युत्रदर्जितः ॥२
 कदाचित्स्य गेहे वै व्रती कश्चित्समागतः । द्विजपत्नीं तदैकाकीं^१ भक्तिनन्नां दरिद्रिणीम् ॥
 दृष्ट्वोवाच महाभागः त त्यगद्विचो^२ दयापरः ॥३
 अनेन स्पर्शमणिना लोहधातुश्च काञ्चनम् । भवेत्स्मान्नहासाद्धि त्रिदिनान्तं गृहण तम् ॥४
 स्नात्वा तावत्तरय्वां चायास्यादि तेन्तिकं मुदा । इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो ब्राह्मणो बहु काञ्चनम् ॥
 दृष्ट्वा लक्ष्मीं समाप्यासोद्विष्णुशर्मा तदागमत् ॥५
 बहुस्वर्णयुतां पत्नीं दृष्ट्वोवाच हरिप्रियः । गच्छ नानि मदाघूर्णे यत्र वै रसिको जनः ॥६
 अहं विष्णुपरो दीनश्वौरभीतः सदैव हि । मधुमत्तां कथं त्वां वै गृहीतुं भुवि च क्षमः ॥७
 इति श्रुत्वा वचो घोरं पतिभीता पतिव्रता । सस्वर्णं स्पर्शकं तस्मै दत्त्वा सेवापराऽभवत् ॥८

अध्याय १०
कृष्णचैतन्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—पहले कोई विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण था, जो वेद का मर्मज्ञ तथा प्रसन्नचित्त होकर नित्य सर्वदेवमय विष्णु की आराधना करता था । भगवान् की उपासना करने के कारण समस्त देवों के पूज्य होने पर भी वह ब्राह्मण भिक्षा याचन द्वारा ही अपनी जीविका निर्वाह करता था । घर में केवल पत्नी ही थीं पुत्र आदि अन्य कोई नहीं । एक बार उस ब्राह्मण के घर एक कोई सन्यासी आया । उसने उस ब्राह्मण-पत्नी को भक्ति विनष्ट्र एवं अत्यन्त दरिद्र-पीडित देखकर कहा—यह पारस पत्थर अत्यन्त पुष्पात्मा एवं अत्यन्त दयालु है क्योंकि इसके स्पर्शमात्र से लोहा भी सुवर्ण हो जाता है अतः साधिव ! इसे तुम तीन दिन तक अपने पास रखकर मन इच्छित सुवर्ण बना लो । तब तक मैं सरयु-स्नान करके आ जाऊँगा । इतना कहकर वह ब्राह्मण म्लानार्थ चला गया और वह ब्राह्मणी मनोमुरूप मात्रा में सुवर्ण बनाकर लक्ष्मी की भलीभाँति प्राप्ति की । उसी समय विष्णुशर्मा भी भिक्षा लेकर घर आये । उन्होंने अत्यन्त सुवर्णयुक्त अपनी पत्नी को देखकर कहा—मतवाली कामिनि ! तुम अब किसी रसिक प्रेमी के यहाँ जाकर रहो, क्योंकि मैं विष्णु का उपासक, दीन एवं चोरों आदि से भयभीत होने वाला ब्राह्मण हूँ, तुम सौन्दर्यपूर्ण मदोन्मत्त हो रही हो इसलिए मैं तुम्हारा ग्रहण कैसे कर सकता हूँ । इस दारुण वचन को सुनकर पति से भयभीत होकर उस पतिव्रता ने समस्त सुवर्ण समेत उस पारस को पति के समक्ष रख दिया

१. आर्षोयम् । २. पारस इति भाषायाम् ।

द्विजोऽपि धर्घरैऽप्यदे तद्द्रव्यं बलतोऽक्षिप्त् । त्रिदिनान्ते च स यतिस्त्रागत्य मुदान्वितः ॥
 उवाच ब्राह्मणीं दीनां स्वर्णं किं न कृतं त्वया ॥
 साह भो सत्पतिशशुद्धो गृहीत्वा स्पर्शकं रुषा । धर्घरे च निचिक्षेप ततोहं वह्निपाकिनी ॥
 निलोहो वर्तते विप्रस्ततः प्रभृति हे गुरे ॥
 इति श्रुत्वा तु वचनं तस्य यतिर्विस्मयान्वितः । स्थित्वा दिनान्ते तं विप्रनुवाच बहु भर्त्येन् ॥११
 दरिद्रे भिक्षुकश्चास्ति भवानैवेन मोहितः । देहि मे स्पर्शकं शीघ्रं नो चेत्प्राणंस्त्यजाम्यहम् ॥१२
 इत्युक्त्यन्तं यतिनं विष्णुशर्मा तदाबदीत् । गच्छ त्वं धर्घराकूले तत्र वै स्पर्शकस्तव ॥१३
 इत्युपत्तदा यतिना सार्द्धं गृहीत्वा कण्टकान्बहून् । यद्गिने दर्शयामास स्पर्शकान्विव कण्टकान् ॥१४
 तदा तु त यती विप्रं नत्वा प्रोवाच नव्रधीः । मया वै द्वादशाब्दान्तं सम्यगाराधितः शिवः ॥
 ततः प्राप्तं शुभं रत्नं ततुत्वदर्शनेन दै ॥
 स्पर्शको बहुधा प्राप्तो मया लोभात्मना द्विजः । इत्याभाष्य शुभं ज्ञानं प्राप्तो मोक्षमवाप्तवान् ॥१६
 विष्णुशर्मा रहस्याब्धमुषित्वा जगतीतले । सूर्यमाराध्य विधिवद्विष्णोर्नैक्षमवाप्तवान् ॥१७
 स द्विजो वैष्णवं तेजो धृत्वा वै मासि फाल्गुने । त्रैलोक्यमतपत्स्वामी देवकार्यपरायणः ॥१८

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवाऽजीवः पुनः प्राह् शचीपतिस् । फाल्गुने मासि तं सूर्यं समाराध्य मुखी भव ॥१९

और उनकी सेवा करने लगी । १-८। वह ब्राह्मण भी उस सुर्वण और पारस को ले जाकर धाघरा नदी में डाल दिया । पश्चात् तीन दिन के अन्त में उस सन्यासी ने वहाँ आकर उस दीन ब्राह्मणी से कहा—क्या तुमने उस पारस से सुर्वण नहीं बनाया । उसने कहा—मेरे यतिदेव अत्यन्त विशुद्धात्मा हैं, उन्होंने सुर्वण समेत पारस को धाघरा नदी में डाल दिया । क्योंकि जब तक पारस घर में था मुझे भोजन बनाने की वे आज्ञा नहीं दे रहे थे । गुरो ! इस समय हम लोगों के पास वह पारस नहीं है । इस सुनकर उस सन्यासी को महान् आश्चर्य हुआ । पश्चात् उस ब्राह्मण के आने पर उसे भर्त्यत करने लगा—आप दैवमोहित होकर ही दरिद्र एवं भिक्षुक बने हुए हैं । यदि आपको उसकी आवश्यकता नहीं है तो मुझे मेरा पारस लौटाने की कृपा कीजिये अन्यथा मैं प्राण परित्याग कर रहा हूँ । ऐसा कहने पर उस यति से विष्णुशर्मा ने कहा—धाघरा के तट पर चले जाओ तुम्हारा पारस उसी स्थान रखा हुआ है । इतना कहकर उस यति के साथ वहाँ जाकर अनेक कट्टकों को लेकर पारस की भाँति उसे ही दिखा दिया । उस समय उस यति ने नमस्कार पूर्वक विनम्र होकर उस ब्राह्मण से कहा—मैंने बारह वर्ष तक शिव की आराधना करके उस शुभ-रत्न पारस की प्राप्ति की थी किन्तु आपके दर्शन मात्र से ही यहाँ मुझ लोभी को अनेक पारस की प्राप्ति हो गई । इतना कहकर उस यति ने शुभ ज्ञान प्राप्तिपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति की और विष्णुशर्मा ने इस पृथिवी तल पर एक सहस्र वर्ष रहकर सूर्य की विधिं आराधना द्वारा विष्णु में मोक्ष प्राप्त किया । वही ब्राह्मण वैष्णव तेज धारणकर प्रत्येक फाल्गुन मास में तीनों लोकों को प्रकाशित किया जिससे देवकार्य की सिद्धि हुई । ९-१८

सूत जी बोले—इतना कहकर भगवान् बृहस्पति ने पुनः शचीपति इन्द्र से कहा—फाल्गुन मास के

इत्युक्तो गुरुणा देवो ध्यात्वा सर्वमयं हरिम् । शूजनैर्बहुधाकारैर्देवदेवमपूजयत् ॥२०
तदा प्रसन्नो भगवान्समभूत्सूर्यमण्डलात् । चतुर्भुजो हि रक्ताङ्गो यथा यक्षस्तथैव सः ॥

पश्यतां सर्वदेवानां शक्तदेहमुपागमत् ॥२१

तत्तेजसा तदा शक्तः स्वान्तर्लीय स्वकं व्युः । अयोनिस्स द्विजोः भूत्वा शची देवी तथैव सा ॥२२

तदा तौ मिथुनीभूतौ वैष्णवाप्तिप्रपीडितौ । रमेते वर्षपर्यन्तं गङ्गाकूले महावने ॥२३

अधादगर्भं तदा देवी शची तु द्विजरूपिणी । भाद्रशुक्ले गुरुै वारे द्वादश्यां ब्राह्मण्डले ॥२४

प्रादुरत्सीत्स्वयं विष्णुर्धृत्या सर्वकलां हरिः । चतुर्भुजश्च रक्ताङ्गो रविकुम्भसमप्रभः ॥२५

तदा रुद्राश्च वसवो विश्वेदेवा मरुदगणाः । साध्याश्च भास्कराः सिद्धास्तुष्टु वुस्तं सनातनम् ॥२६

देवा ऊचः

कुलिशाध्वजपद्मगदाङ्कुशाभ्यं चरणं तद नाथ महाभरणम् ।

रमणं मुनिर्भिर्विधिंश्च भुयुतं प्रणमाम वयं भवभीतिहरम् ॥२७

दरचक्कगदाङ्कुञ्जमानधरः । सुरशत्रुकठोरशरीरहरः ।

सचराचरलोकभरश्वपलः । खलनाशकरस्तुर्कार्यकरः ॥२८

नमस्ते शचीनन्दनानन्दकारिन्महापापसन्तापदुर्लापहारिन् ।

सुरारीन्निहत्याशु लोकाधिधारिन्स्वभक्त्यायजाताङ्गकोटिप्रहारिन् ॥२९

उस सूर्य की आराधना करके सुख का अनुभव करो । गुरु बृहस्पति के ऐसा कहने पर इन्द्र ने सर्वदेवमय विष्णु के ध्यानपूर्वक उन देवाधिदेव की अनेक भाँति अर्चना की । उस समय प्रसन्न होकर भगवान् ने सूर्य मण्डल से प्रकट होकर चार भुजाएँ एवं रक्तवर्ण यज्ञेश की भाँति प्रकट होकर भभी देवों के समक्ष शक्त (इन्द्र) के शरीर में प्रवेश किया । उस समय इन्द्र ने अपनी पूर्व शरीर को अपने में ही विलीनकर अयोनिज ब्राह्मण का वेश धारण किया और उसी भाँति उनकी पल्ली इन्द्राणी भी । पश्चात् उन दोनों ने वैष्णव अग्नि से पीडित होकर उस गंगातट के महारण्य में एक वर्ष तक रमण किया । ब्राह्मणी रूप धारणी इन्द्राणी ने उस गर्भ को धारण किया । भाद्रपद मास की शुक्ल द्वादशी बृहस्पति के दिन उस वृह्य मण्डल समय में स्वयं विष्णु भगवान् उस गर्भ द्वारा अवतरित हुए, जो सम्पूर्ण कलाओं को धारण किये, चार भुजाओं वाले, रक्तवर्ण, और कुम्भराशि स्थित (फाल्गुन मास के) सूर्य के समान प्रभापूर्ण थे । उस समय रुद्राण, वसुण, विश्वदेव, मरुदगण, साध्य, भास्कर एवं सिद्धगण वहाँ उपस्थित होकर उन सनातन देव की स्तुति करने लगे । १९-२६.

देवों ने कहा—नाथ ! शिव समेत आपको हम लोग प्रणाम कर रहे हैं, वज्र, ध्वजा, पद्म, गदा एवं अंकुश लक्षणों से विभूषित चरण ही आपका आभूषण है । आप, मुनियों के साथ रमण करने वाले एवं संसार भय का नाश करने वाले हैं । आप दर (शंख) चंक, गदा और कमल धारण करने वाले, देव-शत्रुओं की कठोर शरीर के नाशक, तथा चर-अचर रूप ब्रह्माण्ड लोक के पोषक हैं, एवं आपकी चपलता शत्रु के विनाशपूर्वक देव-कार्य को सिद्ध करती है । मैं शची नन्दन को नमस्कार करता हूँ, जो आनन्द प्रदाता, और महान् पाप, सन्ताप एवं कठोर भाषण के अपहर्ता हैं । आप देव-शत्रुओं को शीघ्र विनष्ट

त्वया हंसरूपेण सत्यं प्रपाल्यं त्वया यज्ञरूपेण वेदः प्ररक्ष्यः ।

स वै यज्ञरूपो भवाँल्लोकधारी शचीनन्दनः शक्तिशम्प्रसक्तः ॥३०

अनर्थितचरोऽचिरात्करुणगावतीर्णः कलौ समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् ।

हरे: पुनरसुन्दरद्युतिकदम्बसन्दीपितः सदा स्फुरतु नो हृदयकन्दरे शचीनन्दनः ॥३१

विसर्जेति नरानभद्रान्करुणगाव प्रपाल्य क्षितौ निदेवयितुमुद्ग्रवः परात्मः स्वकीयं पदम् ।

कलौ दितिजसन्मवाधिव्यथाविद्युसुरमधगान्स्मुद्ग्र भाष्ट्रभो कृष्णचैतन्य शचीमुत ॥३२

माधुर्यैर्मधुभिसुसुगन्धवदनः स्वर्णम्बुजानां वनं कारुण्यामृतनिर्ज्ञैरैरुपचितः सत्प्रेमहेताचलः ।

भक्तार्प्रोधरथार्दिणी विजयिनी निष्कम्पसप्तावली देवो नः कुलदैवतं विजयते चैतन्यकृष्णो हरिः ॥३३

देवारातिजनैरर्धमेजनितैस्सम्पीडितेयं मही तड़कृच्छ्रसु कलौ कलेदरभिदं वीजाय हा वर्तते ।

त्वन्नामैव सुरारयो विदलिताः पातालगः पीडिता स्लेच्छा धर्मपराः सुरेशनमनास्तस्मै नमो व्यापिने ॥३४

सूत उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं यज्ञेशं च शचीपतिर् । बृहस्पतिमुणाःस्य देवा वचनमब्रुवन् ॥३५

वयं रुद्रा महाभाग इमे च वसवोऽश्चिनौ । केन केनांशकेनैव जनिष्यामो महीतते ॥

तत्सर्वं कृपया देव वक्तुमहर्ति नो भवान् ॥३६

कर लोक की शान्ति स्थापना पूर्वक लोक के सेवक और कोटि पापियों के उद्धारक हैं । आपने हंसरूप धारणकर सत्य के पालन-पूर्वक यज्ञरूप धारणकर वेद की रक्षा की है । उसी यज्ञरूप से लोक-पालक आप इन्द्र द्वारा इस समय शची नन्दन (पुत्र) होकर अवतरित हुए हैं । हम लोगों की हृदयरूपी गुफाओं में शचीनन्दन की स्फूर्ति सदैव होती रहे, जो प्राणी द्वारा अनर्थित करुणावश अवतरित, समुन्नत एवं पूर्ण प्रकाशित इस महिमण्डल में कलि के समय अपनी भक्ति प्रदान करते हुए शंकर की अमुन्दर प्रभा पटल से विभूषित है । महाप्रभो, कृष्णचैतन्य एवं शची सुत ! आप ही इस भूमण्डल में मनुष्यों को उत्पन्नकर करुणावश उनका पालन-पोषण करते हैं, तथा सर्वोत्तम अपने उस परमपद को उन्हें प्रदान करने के लिए अवतरित भी हुए हैं ।, इसलिए इस घोर कलि के समय दिति-पुत्र (दैत्यों) से पीडित हम देवों की रक्षा कीजिये । हमारे कुलदेव भगवान् चैतन्य कृष्ण की सदैव विजय होती रहे, जो सुरांधित सुन्दर पदार्थों की सुरभि से सुरभित अंग, सुर्वाण कमल के बन, तथा प्रेम के इस प्रकार के हिमालय हैं, जो करुणामृत के झरनों से विभूषित और भक्त रूपी मेघों को धारण करने वाली विजयिनी एवं निष्कम्प सप्तावली देवी से युक्त है । हम लोग सुरेश वन्दित एवं (समस्त) व्यापक (उस देव) को नमस्कार कर रहे हैं, जो इस घोर कलि के समय अधार्मिक देवशत्रुओं से पीडित पुरियाँ को पल्लवित करने के लिए अपने शरीर को संकुचित कर बीज रूप में पुनः अवतरित हैं, और जिसके नाम ही सुनकर सुरारिगण पददलित होकर पाताल पहुँच जाते हैं एवं अर्धमपरायण स्लेच्छागण सदैव पीडित होते हैं । २७-३४

सूत जी बोले—इस प्रकार उस शचीपति यज्ञेश पुरुण की आराधना करने के उपरान्त देवों ने बृहस्पति के पास जाकर उनसे कहा—महाभाग ! हम लोग रुद्रगण, वसुगण और अश्विनी कुमार भूतल में जाकर किन-किन अंशों द्वारा जन्म ग्रहण करें । देव ! कृपाकर हमें यह सब बतायें । ३५-३६

बृहस्पतिरुच

अहं वः कथयिष्यामि शृणुध्वं सुरसत्तमः । पुरा पूर्यभवे चासीन्मृगव्याधो द्विजाधमः ॥

धनुर्बाणधरो नित्यं मार्गे विप्रविहिंसकः

॥३७

हत्वा द्विजान्महामूढस्तेषां यज्ञोपवीतकम् । गृहीत्वा हेतयः दुष्टो महाक्रोशस्तु तत्कृतः ॥३८

ब्राह्मणरय च यद्द्रव्यं सुधोपमसनुक्तमम् । मधुरं क्षत्रियस्यैव वैश्यस्यान्नसमं त्सृतम् ॥३९

रूद्रस्य वस्तु रुधिरमिति ज्ञात्वा द्विजाधमः । स ज्ञानं त्रिवर्णश्च ब्राह्मणान्वहुलान्वलः ॥४०

द्विजनाशःत्सुरास्सर्वे भयभीतास्सनन्ततः । परमेष्ठिनमागम्य कथांश्चकुश्च कारणम् ॥४१

श्रुत्वा व दुःखितो ब्रह्मा मप्तर्षान्प्राहुं लोकगान् । उद्देशं कुरु तत्रैव गत्वा तस्य द्विजोत्तम ॥४२

इति श्रुत्वा मरीचिस्तु वशिष्ठादिभिरन्वितः । तत्र गत्वा स्थितास्सर्वे मृगव्याधस्य वै वने ॥४३

मृगव्याधस्तु तान्दृष्ट्वा धनुर्बाणधरो बली । उवाच वचनं घोरं हनिष्येऽहं च वौद्य वै ॥४४

मरीचाद्या विहस्याहुः किमर्थं हनुमुद्यतः । कुलार्थं वात्मनोऽर्थं वा शीघ्रं वद महाबल ॥४५

इत्युक्तस्तान्दिजः प्राहुं कुलार्थं चात्मनो हिते । हन्मि युज्मान्धनैर्युक्तान्ब्राह्मणांश्च विशेषतः ॥४६

श्रुत्वा तमाहुस्ते विप्रा गच्छ शीघ्रं धनुर्धर । विप्रहत्याकृतं पापं भृत्यजीपात्को विचारय ॥४७

इति श्रुत्वा तु घोरात्मा तेषां दृष्ट्या सुनिर्मलः । गत्वा वंशजनानाह भूरि पापं मर्याजितम् ॥४८

तत्पापकं भवद्विश्च ग्रहणीयं धनं यथा । ते तु श्रुत्वा द्विजं प्राहुर्न वयं पापभोगिनः ॥४९

बृहस्पति बोले—देवसत्तमवृन्द ! मैं तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो, पहले समय में मृगों का शिकार करने वाला मृगव्याध नामक एक प्रथम ब्राह्मण था । वह सदैव धनुपबाण लिए मार्ग में आने-जाने वाले ब्राह्मण यात्रियों की हिंसा करता था । उस महामूर्ख ब्राह्मण ने ब्राह्मणों का वध करके कौतुकवश उनके यज्ञोपवीत का भी संचय किया । इस प्रवार वह दुष्ट अत्यन्त निन्दनीय कर्म करता था और यह भी जानता था कि ब्राह्मण के द्रव्य उत्तम अमृत, क्षत्रिय के द्रव्य मधुर, वैश्य के द्रव्य अब एवं शूद्र के (द्रव्य) धनिर के समान है, इसीलिए उस प्रथम ने तीनों वर्णों तथा विशेषकर अधिक ब्राह्मणों की ही हिंसा की थी । उस खल द्वारा ब्राह्मणों के नाश होने पर भयभीत होकर देवों ने ब्रह्मा के पास पहुँचकर समस्त कारणों को सुनाया, जिसे सुनकर ब्रह्मा को अत्यन्त दुःख हुआ । उन्होंने लोकगामी सातों कृषियों से कहा—द्विजोत्तम ! आप लोग उसी के उद्देश्य से वहाँ जाकर उसका उद्घार करें । इसे सुनकर वशिष्ठादि कृषियों समेत मरीचि वहाँ जाकर उसी मृगव्याध के बन में उसके मार्ग पर खड़े हो गये । उन्हें वहाँ उपस्थित देखकर धनुषबाणधारी उस बलवान् मृगव्याध ने कड़ककर कहा—आज मैं तुम लोगों का वध करूँगा । मरीचि अदि कृषियों ने हँसते हुए उससे कहा—महाबल ! हम लोगों के वध करने का यह प्रयत्न तुम अपने व्यक्तिगतस्वार्थ अथवा कुटुम्ब के लिए कर रहे हो । इतना कहने पर उस ब्राह्मण ने कहा—अपने और कुटुम्ब के लिए भी मैं तुम लोगों का वध अवश्य करूँगा, इसलिए कि विशेषकर मैं धनी ब्राह्मणों का ही वध करता हूँ । उसे सुनकर महर्षियों ने कहा—धनुर्धर ! आवो, हम लोग तैयार हैं, किन्तु एक बात यह बताओ कि इस ब्रह्महत्या का पापभागी कौन होगा ! यह सुनकर वह भीषणमूर्ति ब्राह्मण, जो उन लोगों की दृष्टि से निर्मल हो रहा था, घर जाकर अपने परिवारों से कहने लगा कि—मैंने अत्यन्त पापकर्म

साक्षीयं भूमिरुचला साक्षीः सूर्योऽयमुत्तमः । इति श्रुत्वा मृगव्याधो मुनीनाह कृताञ्जलिः ॥५०
 यथा पारं क्षयं याति तथा माज्जातुमर्हेद्^१ । इत्युक्तान्तेन ते प्राहुः शृणु त्वं मन्त्रमुत्तमम् ॥५१
 राम नाम हि तज्ज्ञेण सर्वाधौघविनाशनम् । यावत्त्वत्याश्वभायामस्तावत्त्वं जप चोत्तमम् ॥५२
 इत्युक्त्वा ते गता विप्रात्स्तीर्थातीर्थन्तरं प्रति : मरामरामरेत्येवं राहस्याब्धं जजाप ह ॥५३
 जपप्रभावादभवद्वन्मुत्पलसङ्कुलम् । तत्स्थानमुत्पलारण्यं प्रसिद्धमभवद्भुविः ॥५४
 ततः सात्तर्ष्यः प्राप्ता वल्मीकात्तं निराकृतम् । दृष्ट्वा शुद्धं तदा विप्रमूचुस्ते वित्तमयगान्वताः ॥५५
 वल्मीकर्णिस्तुतो यस्मात्स्माहल्लीकिरूतम् । तत्र नाम भवेद्विप्र त्रिकालज्ज महामते ॥५६
 एदमुत्त्वा यथुर्लोकं स तु रामायणं मुनिः । कल्पाष्टादशयुक्तं हि शतकोटिप्रनिस्तरम् ॥५७
 चकार निर्मलं पद्मैः सर्वाधौघविनाशनम् ! तत्प्रात्रात्स शिवो भूत्वा तत्र वासमकारयत् ॥५८
 अद्यापि संस्थितः स्वामी मृगव्याधः सनातनः ; शृणुच्च च सुराः सर्वे तच्चरित्रं हरप्रियम् ॥५९
 वैदस्वतेऽन्तरे प्राप्ने चाद्ये सत्ययुगे शुभे । ब्रह्मागत्योत्पलारण्यं तत्र यज्ञं चकार ह ॥६०
 तदा सरस्वती देवी नदी भूत्वा समागता । तदर्शनात्स्वयं ब्रह्मा मुखतो ब्राह्मणं शुभम् ॥६१

किया है । ३७-४९। अतः आप लोग धन की भाँति इसके भी भाग (हिस्से) ग्रहण कीजिये । उसे सुनकर घर वालों ने कहा—हमलोग पाप के भागी नहीं होंगे । यह अचला भूमि और देवथ्रेष्ठ सूर्य इसके साक्षी हैं । यह सुनकर उस मृगव्याध ने हाथ जोड़कर उन महर्षियों से कहा—मेरे पापों को नष्ट करने के लिए आप लोग कोई उपाय बताने की कृपा करें । इस प्रकार नम्रतापूर्वक उसके कहने पर महर्षियों ने कहा—मैं तुम्हें एक उत्तम मंत्र बता रहा हूँ, सुनो ! सम्पूर्ण पापों के विनाशक एवं परमोत्तम इस ‘रामनाम’ का जप तब तक तुम करो, जब तक हमलोग तुम्हारे पास पुनः लौटकर न आयें । ऐसा कहकर उन क्रृषियों ने एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ की यात्रा करना आरम्भ किया और इधर उस मृगव्याध ने ‘मरा, मरा, मरा’ मंत्र का जो तीसरे शब्द के उच्चारण में शुद्ध राम रूप हो जाता है, एक सहस्र वर्ष तक जप किया । उस मंत्र-जप के प्रभाव से वहाँ उत्पल (कमल) वृन्द का एक वन उत्पन्न हुआ, जिससे वह स्थान इस भूतल में ‘उत्पलारण्य’ के नाम से प्रस्त्यात हुआ । तदनन्तर सातों क्रृषियों ने जप करने वाले उस ब्राह्मण को वहाँ आकर बल्मीकि से पृथक् कर उन्हें शुद्ध रूप में देखकर कहा—विप्र, त्रिकालज्ज एवं महामते ! बल्मीकि से निकलने के नाते ‘बाल्मीकि’ इस उत्तम नाम से तुम्हारी प्रस्त्याति होगी । ५०-५६। इतना कहकर उन क्रृषियों ने स्वर्गलोक को प्रस्थान किया । पश्चात् उस बाल्मीकि मुनि ने अष्टादश कल्पयुक्त एवं शतकोटि के विस्तृत रामायण की रचना की, जो निर्मल पद्मरूप में निर्मित होकर समस्त पापों का विनाशक है । अनन्तर शिव होकर उस मुनि ने वहाँ निवास किया और वह मृगव्याध एवं सनातन स्वामी आज भी वहाँ स्थित है । देववृन्द ! शिवप्रिय उनके चरित्र को मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! सत्ययुग के प्रारम्भ में जबकि वैदस्वत मन्वन्तर वर्तमान रहे हैं, ब्रह्मा ने उस ‘उत्पलारण्य’ में जाकर एक विशाल यज्ञ का अनुष्ठान किया । उस समय सरस्वती ने वहाँ नदी रूप में पदार्पण किया, जिन्हें देखकर

१. ‘त्वामौ द्विती’—इति मादेशे सर्वण्दीर्घः ।

ब्राह्म्यां क्षत्रियं चैव चोरभ्यां कैश्यनुत्तमम् । पद्भ्यां शूद्रं शुभाचारं जनयामास वीर्यवान् ॥६२
द्विजराजस्तथा सोमशचन्द्रमा नामतो द्विजः । लोके सर्वातपः सूर्यः कश्यं वीर्यं हि पाति यः ॥६३
कश्यपो हि द्वितीयोऽसौ मरीचिम्भुत ततोऽभवत् । रत्नानामाकरो घो वै स हि रत्नाकरः स्मृतः ॥६४
लोकान्धरति यो द्रव्यैः स तु धर्मो हि नामतः । गम्भीरश्चास्ति सदृशः कोशो यस्य सरित्पतिः ॥६५
लोकान्धरति यः कृत्यैः स तु दक्षः प्रजापतिः । ऋग्मणोऽङ्गाच्च ते जटास्तस्माद्वै ऋग्मणाः स्मृताः ॥६६
वर्णधर्मेण ते सर्वं वर्णात्मानश्च दै कमात् । दक्षस्य भनसो जाताः कन्याः पञ्चशतं ततः ॥

विष्णुमायाप्रभावेन कलाभूताः स्थिता भुवि ॥६७
तदा तु भगवान्ब्रह्मा स्त्रेमायाभिन्निमण्डलम् । सप्तविंशद्वयाणं श्वेषं ददौ लोकविवृद्धये ॥६८
कश्यपायादितिग्रन्थं क्षद्ररूपं त्रयोदशम् । धर्माय कीर्तिप्रभृतीर्ददौ स च महामुनिः ॥६९
जानादिधानि सृष्टानि चासन्वैवस्वतेऽन्तरे । तेषां पतिस्त्वयं दक्षोऽभूद्विधेराज्ञया भुवि ॥७०
तत्र वासं स्वयं दक्षः कृतवान्यज्ञतत्परः । स्वर्वे देवगणा दक्षं नमस्कृत्य चरन्ति हि ॥७१
भूतनाथो महादेवो न ननाम कदाचन । तदा कुद्वा स्वयं दक्षः शिवभागं न दत्तवान् ॥७२
मृगव्याधः शिवः कुद्वो वीरभद्रो बभूव ह । त्रिशिराश्च त्रिनेत्रश्च त्रिपदस्तुत्र चागतः ॥७३

ब्रह्मा ने अपने मुख द्वारा ब्राह्मण, भुजाओं द्वारा क्षत्रिय, उड़ द्वारा वैश्य और अपने चरण द्वारा शुभाचार के अनुगामी शूद्रों को उत्पन्न किया । उस पराक्रमी (ब्रह्मा) ने ब्राह्मण नाम से द्विजराज सोम को उत्पन्न किया, जिन्हें द्विजश्रेष्ठ चन्द्रमा कहा जाता है, क्षत्रिय नाम से सूर्य को उत्पन्न किया, जो सभी के लिए आतप रूप होकर लोक में कश्य-वीर्य (पराक्रम) की रक्षा करते हैं । इसलिए उन्हें कश्यप भी कहा जाता है और उसके अनन्तर मरीचि भी । रत्नों के आकर (निधि) होने के नाते उसे (समुद्र को) रत्नाकर कहा गया है और द्रव्यों द्वारा लोकों के पोषण करने से धर्म तथा अगाध एवं असाधारण कोश होने के नाते सरित्पति भी । अपने कार्यों द्वारा जो लोक को कार्यकुशल बनाये उसे दक्ष प्रजापति कहा जाता है । ब्रह्मा के अंगों द्वारा उत्पन्न होने के नाते ये सभी ब्रह्म कहे गये हैं । ५७-६६ । जो वर्णधर्म के अनुसार क्रमशः वर्णों को अपनाये हुए हैं । पश्चात् दक्ष प्रजापति के मन द्वारा पाँच सौ कन्यायें उत्पन्न हुईं जो भगवान् विष्णु की माया से प्रभावित होकर इस भूतल में कलामूर्ति होकर स्थित हैं । उस समय भगवान् ब्रह्मा ने लोक के अत्यन्त वृद्ध्यर्थ सोम (चन्द्रमा) को अश्विनी आदि नक्षत्र मण्डल रूप में सत्ताईस, कश्यप (ऋषि) को क्षत्री रूप अदिति और धर्म को कीर्ति आदि कन्याएँ प्रदान किया । उस महामुनि के इस प्रकार वितरण करने पर उस वैवस्वत मन्वन्तर के समय लोकों में अनेक भाँति की सृष्टियाँ हुईं । पश्चात् ब्रह्मा की आज्ञा से लोक-समूद्र इस भूतल के अद्यक्ष दक्षप्रजापति ही निश्चित किये गये, जिससे वहाँ निवास करते हुए दक्ष ने एक विशाल यज्ञानुष्ठान का आयोजन किया । उनके उस यज्ञ महोत्सव में सभी देवगण पहुँचकर उन्हें नमस्कार पूर्वक यथेच्छ विचरण कर रहे थे, किन्तु भूतनाथ महादेव ने उन्हें किसी भाँति नमस्कार नहीं किया जिससे अत्यन्त कुद्वा होकर दक्ष ने उन्हें शिव-भाग देना अस्वीकार कर दिया । उस समय मृगव्याध शिव ने उस अपमान को सहन न कर वीरभद्र का रूप धारण किया—तीन नेत्र, तीन शिर और तीन चरण-धारण कर उनके आगमन करने से देव, मुनि एवं पितृगण अत्यन्त पीड़ित होने लगे और

तेनैव पीडिता देवा नुनयः पितरोऽभवन् । तदा वै यज्ञपुरुषो भयभीतः समन्ततः ॥७४
मृगभूतो यथौ तूर्णं दृष्ट्वा व्याधः शिष्ठोऽभवत् । रुद्रव्याधेन स मृगो विभिन्नाङ्गो बभूव ह ॥७५
तदा तु भगवान्नह्या तुष्टाव मधुरस्वरैः । सन्तुष्टश्च मृगव्याधो यज्ञं पूर्णमकरयत् ॥७६
तुलाराशिस्थिते भानौ तं रुद्रं चन्द्रमण्डले । स्थापयित्वा स्वयं ब्रह्मा सप्तविंशद्विनामके ॥
प्रययौ सप्तलोकं दै स रुद्रशचन्द्ररूपवतान् ॥७७

इति श्रुत्वा वीरभद्रो रुद्रः संहृष्टभानसः । स्वांशं देहात्समुत्साद्य द्विजगेहमचोदयत् ॥७८
विप्रभैरददत्तस्य गेहं गत्वा स वै शिवः । तत्पुत्रोऽभूत्कलौ घोरे शङ्करो नाम विश्रुतः ॥७९
स बालश्च गुणी वेता ब्रह्मचारी बभूव ह । कृत्वा शङ्करभाष्यं च शैवमार्गमदर्शयत् ॥८०
त्रिपुण्ड्रशङ्कभूत्ताव च भन्तः पञ्चाक्षरः शुभः । शैवानां मञ्जलकरः शङ्करचार्यतिर्मितः ॥८१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युग्मखण्डापरपर्यणे कलियुगीयेतिहाससमुच्चये
कृष्णचैत्यशङ्कराचार्यसमुत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः । १०

अथैकादशोऽध्यायः

आनन्दगिरिवनशर्मपुरीशर्म-उत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुचाच

पुरा तु नैमिषारण्ये विप्रश्चाजगरोऽभवत् । वेदान्तशास्त्रनिपुणो ज्ञानवाञ्छ्वभुपूजकः ॥१

यज्ञपुरुष के भयभीत होकर मृगरूप धारणकर चारों ओर भागने पर शिव ने व्याधरूप धारण किया ।
अनन्तर उस व्याधरूपी रुद्र द्वारा मृगरूपधारी यज्ञपुरुष का अंग छिन्न-भिन्न हो गया । उसी समय
भगवान् ब्रह्मा ने मधुरवाणी द्वारा उनकी रतुति की, जिससे प्रसन्न होकर उस मृगव्याध ने उनके खक्कों
पूर्ण तथा सुसम्पन्न किया । तदुपरांत ब्रह्मा ने तुलाराशि पर सूर्य के स्थित होने पर सत्ताईस नक्षत्रों के
अधिपति उस चन्द्रमा के मण्डल में स्वयं रुद्र को प्रतिष्ठितकर अपने लोकों प्रस्थान किया और चन्द्ररूप
में रुद्र ने सातों लोकों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया । इसे सुनकर वीरभद्र ने अत्यन्त हर्षमग्न
होकर अपनी देह से अपने अंश को निकालकर उस भैरवदत्त नायक ब्राह्मण के घर भेज दिया, जो उनके
यहाँ उनके पुत्र रूप में अवतरित होकर उस घोर कलि के समय शंकराचार्य के नाम से भूतल में प्रख्यात
हुआ । उस गुणी, वेता एवं ब्रह्मचारी बालक ने शंकरभाष्य की रचनाकर उस शैवमार्ग का प्रदर्शन
किया, जो त्रिपुण्ड्र चन्दन, रुद्राक्षमाला एवं पञ्चाक्षर (ओं शिवाय नमः) मंत्र के रूप में शैवों के लिए
अत्यन्त मांगलिक है । ६७-८१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
कृष्णचैतन्य और शंकराचार्य की उत्पत्ति वर्णन नामक दशवाँ अध्याय समाप्त । १०।

अध्याय ११

आनन्दगिरि, वनशर्मा और पुरीशर्मा की उत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जो बोले—पहले समय में नैमिषारण्य स्थान में एक ब्राह्मण अजगर की योनि प्राप्तकर

द्वादशाब्दान्तरे रुद्रस्तुष्टोऽभूत्यार्थिवार्चनात् । तदागत्य ददौ ज्ञानं जीवन्मोक्षत्वमागतः ॥२
सङ्कृष्णं समाराध्य तज्जानेन द्विजोत्तमः । तुष्टाव पुष्कलभिश्च स्तुतिभिः परमेश्वरम् ॥३

अजगर उवाच

सदैव्यं प्रधानं परं ज्योतिरूपं निराकारमव्यक्तमानन्दनित्यम् ।
त्रिधा तत्तु जातं त्रिलङ्घक्यभिन्नं उमानस्त्वरूपो रजोरूपनारी ॥
तदर्थेत् शेषं तमोरूपमेव तत्तशेषनाम्ने नमस्तेनमस्ते ॥४
रजाभ्यादिभूतो गुणस्सैव माया तथा मूर्खभूतो नरस्त्वरूपम् ।
तथैवान्तभूतो नपुंस्कं तमोवत्सदैवाद्य नागेश तुभ्यं नमन्ते ॥५
नराधाररूपो भवान्कालकर्ता नराकर्षणस्त्वं हि सङ्कृष्णश्च ।
रमन्ते मुनीशास्त्वयि ब्रह्माधाम्नि नमस्तेनमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तु ॥
नराङ्गेषु चाधारभूता शिवा या स्मृता योगनिद्रा हि शक्तिस्त्वदीया ॥६

जीव उवाच

एवं हि संस्तुतो देवो द्विजं चाजगरं प्रभुः । सायुज्यं कृतवान्स्वाङ्गे रुद्रः सर्पे हि सोऽभवत् ॥७
फणासहस्रसहितो गौराङ्गो गौरविग्रहः । क्षीराब्धौ मन्दिरं यस्य बभूव च गुणाकरम् ॥८
तं सर्पाख्यं महाश्वं प्रत्यागत्यात्मभूः स्वयम् । कर्कराशिस्थिते सूर्ये चन्द्रे भगणमण्डले ॥९
तं रुद्रं स्थापयामास चन्द्रमाः स तु चाभवत् । इति श्रुत्वा शेषनागो रुद्रः श्रीगुरुभाषितम् ॥१०

रह रहा था, जो वेदान्तशास्त्र में नियुण, ज्ञानी और शिव का नित्य उपासक था। बारह वर्ष के उपरान्त उसकी पार्थिव-अर्चना से प्रसन्न होकर रुद्र ने वहाँ आकर उसे जीवन्मोक्ष होने का ज्ञान प्रदान किया, जिससे उस ब्राह्मणथेष्ठ ने उन संकर्षण (शिव) के समीप पहुँचकर विशुद्ध स्तुतियों द्वारा उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा की । १-३

अजगर ने कहा—उस दिव्य, प्रधान परं ज्योतिरूप निराकार, अव्यक्त एवं नित्यानन्द को जो तीन रूप में होकर पुनः तीनों लिंगों (पुमान्, स्त्री और नपुंसक) से भिन्न है, वही सत्त्व रूप से पुरुष और रजरूप से स्त्री होता है और उन दोनों के शेष तमोगुण से भिन्न है । बार-बार नमस्कार है । नररूप होकर आप कालकर्ता, नरों के आकर्षण करने के नाते संकर्षण कहे गये हैं । आप के ही ब्रह्मतेज में मुनिवृन्द रमण करते हैं और उस नररूप होने में आपकी शक्ति ही उस अंग की आधार है, जो शिवा एवं योगनिद्रा के नाम से जगत् में प्रथित है । अतः आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । ४-६

दृहस्पति ने कहा—इस प्रकार स्तुति करने पर शिवदेव ने उस अजगर ब्राह्मण को अपने अंग में सायुज्य मोक्ष प्रदान करने के हेतु सर्परूप धारण किया, जो सहस्र फण, गौरवर्ण की शरीर, क्षीरसागर निवासी एवं गुणनिधि था । पश्चात् ब्रह्मा ने उस सर्परूप शिव के पास आकर उन्हें कर्कराशिस्थित सूर्य के समय नक्षत्र मण्डल के अधिनायक चन्द्र में स्थापित किया, जिससे शिव ने चन्द्ररूप होकर अपने मुख से तेज निकालकर विद्युपर्वत के निवासी देवदत्त ब्राह्मण के घर भेज दिया, जो वहाँ उत्पन्न होकर

वचनं स प्रसन्नात्मा तेज उत्पाद्य वै मुखात् । विन्ध्यादौ जनयामास देवदत्तद्विजातये ॥११
गिरिशर्मा स वै विप्रो विजित्य विदुषां गणान् ; काशीपुरीं समायातः शिष्योभूच्छङ्गुरस्य वै ॥१२
इति ते कथितं विप्र प्रथा रुद्रो बभूव ह । पुनः शृणु कथां विप्र प्रथा जीवेत भाषिताम् ॥१३

जीव उदाच

प्रयागे च पुरा ह्यासीद्बाह्यणो हरिसेकः । दारिद्र्यात्तो मन्दभाग्यो नैर्कृतो नाम विश्रुतः ॥१४
महाकष्टे न तस्यैव भिक्षा प्राप्ता दिनादत्तके । नैर्कृतः पुत्रपत्नीको दारिद्र्यात्तो दिनेदिने ॥१५
एकदा नारदो योजी सम्प्राप्तो वैष्णवप्रियः । पूजितस्तेन विप्रेण विष्णुलोकमुपाययौ ॥१६
दृष्ट्वा नारायणं देवं नमस्कृत्य पुनःपुनः । वचनं प्राह नम्रहत्मा सदैव भगवत्प्रियः ॥१७
भगवन्ये मुराः सर्वे सदा त्वपूजने रताः । तेषां भक्ताश्च ये भूमौ धनधान्यसमन्विताः^१ ॥१८
त्वद्भूकाश्च मया दृष्टा दारिद्र्यात्ताः सदा भुवि । किमर्थं ब्रह्म मे स्वामिज्जनार्दनं नमोऽस्तु ते ॥१९
इत्युक्तो नारदेनैव भगवान्भक्तवत्सलः । तमाह वचनं रम्यं तच्छृणु त्वं सुरोत्तम ॥२०
मद्भूक्तो भगवान्नहा दृष्ट्वा नारायणप्रियान् । जनांश्च स्ववशीकृत्य लोककार्यं करोति हि ॥२१
धर्मोऽधर्मस्तेन कृतो धर्मो वेदमयः स्मृतः । सप्त लोकाश्च धर्मस्य तिर्मितास्तेन धीमता ॥२२

'गिरिशर्मा' के नाम से प्रस्थात हुआ । उस ब्राह्मण ने विद्वानों को पराजित कर काशी की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर उसने शंकराचार्य की सेवा (शिष्य रूप से) करना स्वीकार किया, जिससे आनन्दगिरि नाम से वह विस्थात हुआ । विप्र ! इस प्रकार मैंने रुद्रावतार की कथा सुना दी, किन्तु बृहस्पति की कही हुई कथा को पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! ७-१३।

बृहस्पति जी बोले—पहले प्रयाग में नैर्कृत नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो भगवद्भक्त, मंदभागी-दरिद्र था । वह नैर्कृत ब्राह्मण संघ्या समय तक किसी भाँति भिक्षा की प्राप्तिकर अपने पुत्र और पत्नी का पालन कर रहा था । इस प्रकार उत्तरोत्तर प्रतिदिन दरिद्र्य से अत्यन्त पीड़ित उस ब्राह्मण के घर एकदार वैष्णव-प्रिय नारद जी का आगमन हुआ । ब्राह्मण ने यथाणकित उनकी पूजा की । पश्चात् वे विष्णुलोक चले गये । वहाँ पहुँचकर नारायण देव को बार-बार दण्डवत् प्रणाम करके सदैव भगवत्प्रिय नारद ने विनाश होकर उनसे कहा—भगवन् ! आपकी पूजा में निरन्तर संलग्न देवों के जितने भक्त होते हैं, सभी धन-धान्य से पूर्ण रहते हैं, किन्तु भूतल में मैंने आपके भक्तों को भी देखा है, जो दरिद्रता से अत्यन्त पीड़ित रहते हैं, स्वामिन्, जनार्दन मैं इसमें कुछ निश्चय नहीं कर पाता हूँ कि इस विभेद का क्या कारण है, अतः मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ, इसके भेद बताने की कृपा करें । १४-१९। इस प्रकार नारद जी के कहने पर भक्तवत्सल भगवान् ने उनसे सुन्दर वाणी में कहा—सुरोत्तम ! मैं बता रहा हूँ, सुनो ! मेरे भक्त भगवान् ब्रह्मा नारायण प्रिय मनुष्यों को देखकर उन्हें अपने अधीनकर लोक का कार्य करते रहते हैं । उन्होंने धर्म और अधर्म का निर्माण किया जिसमें धर्म वेदमय कहा गया है । उस

१. सन्तीति शेषः ।

भूर्भुवः स्वो महश्चैव जनश्चैव तपस्तथा । सत्यं तथैव क्रमतो नृणां द्विगुणदं सुखम् ॥२३
अधर्मो वेदरहितो भुवि शब्दान्यकर्तृकः । ये शब्दाश्च महावाण्या दूषितास्ते हि लोकगाः ॥२४

देदेतर पापमया दैत्यवृद्धिकरा: सदा । अधर्मः स तु विज्ञेयः सप्तलोकाश्च तस्य वै ॥२५
भूमिगर्तर्षु विधिना निर्मिताः सुखदायकः । अतलं वितलं चैव सुतलं च तत्सातलम् ॥

महातलं रसा चैत्र पातालं चान्यर्थर्मजम् ॥२६

अन्यर्थर्मो द्वृष्टमश्च देवाहत्वन्ये हि तेऽसुराः । धर्मपक्षाः सुरा ज्ञेया असुराश्चान्यर्थर्मजाः ॥२७
तयोर्दिहीनो यो धर्मो देवैर्दैत्यैश्च दूषितः । विर्धमः स तु विज्ञेयस्त्र लोका व्यथाकुलाः ॥२८

तामिक्षमन्धतामिक्षं कुम्भीपाकश्च रौरवम् । महारौरवमेवापि तथामूर्तिरयस्तथा ॥२९
इक्षुयन्त्रं शाल्मलं च ह्यसिपत्रवनं तथा । ज्ञेयमित्येव रचितं विधिना दैकविंशतिः ॥३०

ब्रह्माण्डोऽयं लोकमयः परं तस्माच्च नत्पदम् । मदूक्ता भूतले ये वै ते गच्छन्ति परं पदम् ॥३१
देवभक्ताश्च ये लोकाः सप्त लोकान्नजन्ति ते । ये तु वै तामसा लोका दैत्यपूजनतप्तराः ॥

ते गच्छन्ति महीलोकान्तलादिभयाँस्तथा ॥३२

पातालाद्योजनं लक्षमधोलोकः प्रकीर्तिः । विर्धमतप्तरा लोकास्ते गच्छन्ति ह्यधोगतिम् ॥

अतो वै विधिना भ्रष्टा मदूक्ताश्च दरिद्रगाः ॥३३

ये मदूक्ताः सुरान्पूर्वं पूजयित्वा भजन्ति माम् । लक्ष्मीवन्तश्च ते ज्ञेया भुक्तिमुक्तिपरायणाः ॥३४
प्रयागे नैर्घ्र्यते विप्रस्त्यक्त्वा देवान्मम प्रियात् । भजत्यनन्यभावेन तस्मात्स हि दरिद्रवान् ॥३५

बुद्धिमान् ने धर्म के सात लोकों का निर्माण किया, जो भूलोक, भुवलोक, स्वलोक, महलोक, जनलोक, तपलोक एवं सत्यलोक के नाम से निर्मित होकर मनुष्यों को उत्तरोत्तर क्रमशः दुगुने सुख प्रदान करने की नेष्टा करता है। उसी प्रकार वेदरहित को अधर्म कहा गया है, जो भूतल में प्रतिकूल शब्दों की रचना करता है, महावाणी द्वारा दूषित उन शब्दों को अपनाने पर प्राणियों को उसी प्रकार के लोकों की प्राप्ति होती है। वेदरहित होने के नाते वह अधर्म पापमय दैत्यों की सदैव वृद्धि करता रहता है। उस अधर्म के भी सातलोक विदित हैं, जो भूमि के गर्त (नीचे भाग) में ब्रह्मा द्वारा निर्मित होकर वहाँ के प्राणियों के लिए सुखावह होते हैं। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल उनके नामकरण हैं। इनमें देवगण धर्म और असुरगण अधर्म को अपनाते हैं, अतः धर्मपक्ष के देव एवं अधर्मपक्ष के दैत्य बताये जाते हैं किन्तु इन देवों और दैत्यों से हीन एवं दूषित जो अन्य मार्ग है, उसे विधर्म कहा गया है उसमें रहने वाले प्राणी सदैव व्यथित रहते हैं—तामिस, अंध्रातामिन्न, कुम्भीपाक, रौरव, महारौरव, मूर्तिरय, ऊखवंत्र (कोत्त्व) शाल्मल (फांसी देने के लिए सेमर का वृक्ष), असि (तलवार के समान) पत्र वाला वन आदि इक्कीस स्थानों की ब्रह्मा ने रचना की है। इस प्रकार इस समस्त को लोकमय ब्रह्माण्ड कहते हैं, जिससे मेरा परमपद अत्यन्त समुन्नत है। भूमण्डल के रहने वाले मेरे भक्त ही उस परमपद की प्राप्ति करते हैं, किन्तु देवों के भक्तगण उन्हीं स्वर्ग आदि सातलोकों की उसी भाँति दैत्यों के उपासक तामसी पुरुष पृथ्वी के नीचे स्थित उन पातालादि लोकों की प्राप्ति करते हैं। २०-३२। पाताल से अधोलोक एक लक्ष योजन की दूरी पर स्थित है, जिसमें विधर्मी प्राणियों की यात्रा होती है। इसलिए मेरे भक्त ब्रह्मा द्वारा उस (समस्त पदों) से भ्रष्ट होकर दरिद्र होते हैं किन्तु जो मेरा भक्त देवों की पूजापूर्वक मेरी उपासना करता है वह लक्ष्मीयुक्त एवं भुक्ति-मुक्ति परायण होता है और प्रयागनिवासी वह नैर्घ्र्यत ब्राह्मण

देवैर्दत्तं हि यद्द्रव्यं भोक्तव्यं सर्वदा जनेः । मया दत्तं हि यद्वस्तु ब्रह्माण्डे नास्ति नारद ॥

अतो मदाज्ञया विप्र देहि तस्मै वरं शुभम् ॥३६

इत्युक्तो नारदो योगी हरिणा विश्वकारिणा । द्विजपत्नी स्थिता गेहे तत्र प्राप्य वचोऽब्रवीत् ॥३७

वरं वरय हे साधिव त्वया यद्विच्छित हृदि । साह देहि वरं स्वामिन्भूपराज्ञी भवाम्यहम् ॥३८

इत्युक्त्वा वचनं तत्र दिव्यरूपा वसूल ता । आगतस्तत्र नृपतिर्गृहीत्वा गेहमाययौ ॥३९

सायद्ङ्लाले तु सन्प्राप्ते द्विजस्तत्र समागतः । नारदस्तं वचः प्राह शृणु विप्र हरिप्रिय ॥४०

वरदानाच्च ते पत्नी भूपराज्ञी हि वर्तते । त्वया किं वाचिष्ठत वस्तु मतः प्राप्य सुखी भव ॥४१

इति श्रुत्वा दैववशो वचः प्राह रुषान्वितः । क्रोष्टी भवेच्च मतस्त्वं देहि विप्र वरं मन ॥४२

इत्युक्त्वावचनात्कोऽद्वी सा वसूल द्विजप्रिया । एकस्मिन्नन्तरे प्राप्तस्तत्पुत्रो गुरुखूजकः ॥४३

श्रूत्वा तत्कारणं सर्व नारदं स वचोऽब्रवीत् । मम माता यथा स्वामिस्तथा शीघ्रं वराद्दूवेत् ॥४४

एतत्तिर्भिर्वरैः प्राप्तं दैवमायाविमोहितैः । तदा तु नारदो दुःखी नैर्कृतं प्राह वै वचः ॥४५

द्वाह्याण्डोऽयं देवमयो भवस्तस्य महेश्वरः । अतो भवं भजाशु त्वं स ते कार्यं करिष्यति ॥४६

इत्युक्तवचनो विप्रो भवं तं पर्याचार्नैः । तुष्टाव पराणा भक्त्या वर्षमात्रं हि नैर्कृतः ॥४७

तदा प्रसन्नो भगवान्महेशो भक्तवत्सलः । कुबेरसदृशं दिव्यं ददौ तस्मै महद्वन्द्व ॥४८

तद्वनेन स वै विप्रो धर्मकार्यं चकार ह । प्रसिद्धोऽभून्महीपृष्ठे नाम्ना पुण्यजनो धनैः ॥४९

मेरे प्रिय देवों के त्यागपूर्वक केवल अनन्यभाव से मेरी ही उपासना करता है इसीलिए दरिद्र है । नारद ! देवों के दिये हुए द्रव्यों का उपभोग सर्वदा सभी मनुष्य किया करते हैं, किन्तु मैं जो वस्तु अपने भक्त को प्रदान करता हूँ, वह ब्रह्माण्ड में ही नहीं । इसलिए मेरी आज्ञा से उसे शुभात्मक वरदान प्रदान करो । विश्व रचयिता भगवान् के इस भाँति कहने पर नारद ने उसके घर जाकर उसकी पत्नी से कहा—पतित्रे ! तुम अपने अभिलिष्ट वर को याचना करो ।’ इसे सुनकर उसने कहा—स्वामिन् ! मेरी राजरानी होने की इच्छा है । इतना कहते ही वह एक दिव्य रूप से परिणत हो गई और उस समय राजा आकर उसे अपने घर ले गया । सायंकाल होने पर ब्राह्मण देव के घर आने पर नारद जी ने उनसे कहा—भगवत्प्रिय, ब्राह्मणदेव ! मैं कुछ कह रहा हूँ, सुनिये ! वरदान प्राप्तकर आपकी पत्नी राजरानी हो गई है, अब आप भी मुझसे अपनी मन-इच्छित वस्तु प्राप्तकर सुख का अनुभव करें । इसे सुनकर उस ब्राह्मण ने दैववश कुद्ध होकर कहा—विप्र ! मुझे यही वरदान देने की कृपा कीजिये कि मेरी पत्नी गीदड़ी हो जाये ।’ इतना कहने पर वह ब्राह्मण पत्नी गीदड़ी हो गई । उसी समय उस ब्राह्मण के गुरुभक्त पुत्र ने वहाँ आकर उन कारणों को सुनकर नारद जी से कहा—स्वामिन् ! मेरी माता पूर्व की भाँति हो जायें । इस प्रकार वे तीनों दैवमाया से मोहित होने के कारण वरदान प्राप्त करने पर भी अपने मनोरथों से वंचित ही रहे । उस समय दुःखी होकर नारद ने नैर्कृत से कहा—विप्र ! देवमय होने के नाते इस समस्त ब्रह्माण्ड के अधीश्वर महेश्वर जी हैं, अतः तुम उनकी उपासना करो, वे तुम्हारा कार्य शीघ्र सफल करेंगे । इस प्रकार कहने पर उस ब्राह्मण नैर्कृत ने पर्याच शूप्त द्वारा भगवान् महेश जी ने कुबेर के समान दिव्य एवं अगाध धन उसे प्रदान किया । उस धन द्वारा ब्राह्मण ने अनेकों धर्म-कार्य सुसम्पन्न किया जिससे इस भूतत में उसकी द्रव्यजन

शिवभक्तिप्रभावेण प्राप्य द्रव्यमकण्टकम् । सहस्राब्धवायुभूत्वा त्यक्तदा प्राणान्दिवं यथौ ॥५०
 वृषराशिस्थिते सूर्ये राजा चन्द्रस्य सोमवत् । नैऋतो नाम विद्यातो रुद्रः सर्वजनप्रियः ॥५१
 इति श्रुत्वा नैऋतस्तु भृगुवर्य गुह्यदितम् । स्वांशाद्भूतलमागम्य गिरिनालगिरौ वने ॥५२
 योगिनः सिद्धसाङ्ख्यस्य पुत्रोऽभूद्वनवासिनः । वनशर्मेति विद्यातो वेदशास्त्रपरायणः ॥५३
 द्वादशाब्दवपुर्भूत्वा जिन्ना विद्वज्जनान्बूद्धून् । काशीमागम्य तत्त्वार्थी शङ्कराचार्यमुत्तमम् ॥ ॥५४
 प्रणम्य तस्य शिष्योऽभूद्वनशर्मा विशारदः ॥५५

बृहस्पतिरुचाच

वसुशर्मा द्विजः क्षश्रित्नमाहिष्मत्यां पुराभ्वत् । शिवव्रतपरो नित्यं पुत्रार्थी धर्थिवर्चकः ॥५५
 चतुर्विशतिवर्षाणि पूजतस्तत्य धीमतः । व्यतीतानि सुरास्तत्र न प्रसन्नोऽभवच्छिवः ॥५६
 तदा तु दुःखितो विप्रो वह्निं प्रज्वात्य भैरवम् । जुहात् स्वाङ्गमांसानि मुखतश्वरणान्तकम् ॥५७
 न प्रसन्नोभवद्वृद्धस्तदा विप्रः शुचान्वितः । गृहीत्वा चोत्सं सेषं संस्कारं कृतवाऽछुचिः ॥
 तेन मेषेण सहितो ज्वलदग्नौ समापयौ ॥५८
 प्रसन्नो भगदान्वद्वस्तत्रागत्य गणैर्युतः । स्वरूपं दर्शयासात् शुद्धस्फटिकमुन्दरम् ॥
 वरं ब्रूहि वचः प्राह वसुशर्माणमुत्तमम् ॥५९
 तच्छृत्वा स प्रसन्नात्मा नत्वा पार्वतिवल्लभम् । प्रश्रयावनतो भूत्वा वचनं प्राह शङ्करम् ॥६०

(देवमूर्ति कुबेर) के नाम से अत्यन्त ख्याति हुई । इस भाँति शिवजी की भक्ति के प्रभाव से निष्कटंक द्रव्य की प्राप्तिपूर्वक एक सहस्र वर्ष तक दिव्य जीवन व्यतीत करने के उपरान्त उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई । वृषराशि पर सूर्य के स्थित होने पर चन्द्रराज सोम की भाँति वह नैऋत ब्राह्मण भी सर्वजनप्रिय और रुद्र की भाँति प्रख्यात हुआ । भृगुवर्य ! बृहस्पति के इस प्रकार देवों से कहने पर उस नैऋत ने अपने अंश द्वारा गिरिनाल पर्वत के बन में रहने वाले सिद्धसाङ्ख योगी के यहाँ पुत्ररूप में जन्म-ग्रहण किया । वेदशास्त्र के पारायण में निरत रहकर उन्होंने 'वनशर्मा' के नाम से अत्यन्त ख्याति प्राप्त की । बारह वर्ष की अवस्था में अनेकों विद्वानों को पराजितकर वसुशर्मा ने काशी आकर तत्त्वज्ञानार्थ योगी शिरोमणि शंकराचार्य की शिष्य-सेवा स्वीकार की । ३-३-५४

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में माहिष्मती नामक पुरी में वसुशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था । उसने पुत्रप्राप्ति के लिए पार्थिव पूजन एवं ब्रत विधान द्वारा भगवान् आशुतोष की उपासना आरम्भ की । देववृन्द ! चौबीस वर्ष तक उसने अनवरत आराधना की, किन्तु शिव जी की प्रसन्नता उसके ऊपर न हुई । पश्चात् दुःखी होकर उस ब्राह्मण ने प्रज्वलित अग्नि की भीषण ज्वला में मुख से चरण तक की अपनी देह के मास को आहुतिरूप में हवन कर दिया, परन्तु रुद्रदेव तब भी न प्रसन्न हुए । उस समय शोक-पीडित होकर उस ब्राह्मण ने पवित्र होकर एक उत्तम भेड़ का संस्कार करके उसके समेत उसी अग्नि में प्रवेश किया कि उसी समय भगवान् रुद्रदेव ने अपने गणों समेत वहाँ आकर शुद्धस्फटिक के समान अपने सुन्दर स्वरूप का दर्शन उसे दिया । तदुपरात उन्होंने वसुशर्मा से कहा—यथेच्छ वर की याचना करो । उसे सुनकर प्रसन्नता से गद्गद होकर उन पार्वतीप्रिय के नमस्कार पूर्वक उसने विनश्च होकर

देहि मे तनयं स्वामिन्द्धरजागतवत्सल । इत्युक्तशङ्करस्तेन विहस्योवाच तं द्विजम् ॥६१
 पुत्रदाता स्वयं ब्रह्मा भाग्यकर्ता परात्परः । तुम्यं च शतजन्मान्तं तेन पुत्रो न निर्मितः ॥
 तस्मादहं सुतं स्वांशात्तरं विप्र ददामि भोः ॥६२
 इत्युक्ल्वा स्वभुवातेजो निराकृत्य महेश्वरः । तत्पत्न्यां जनयामास सकाशाद्भुवर्मणः ॥६३
 दशमात्सान्तरे जातः सुपुत्रो मधुराननः । अजस्येव पदश्चेको द्वितीयो तरवत्ततः ॥
 अजैकपाद इति स प्रसिद्धोऽभून्महीतले ॥६४
 चतुश्शताब्दवपुषि प्राप्ते तस्मिन्सुते प्रिये । सम्प्राप्ते भगवान्मृत्युस्तदा रोगाणैर्युतः ॥६५
 तस्य तैरभवद्युद्धाऽजैकचरणस्य वै ॥६६
 वर्षमात्रेण तस्मर्वाच्छिन्त्वा भल्लरणोत्कटः । मृत्युञ्जयः स वै नान्ना प्रसिद्धोऽभून्महीतले ॥६७
 दुःखितो भगवान्मृत्युस्तेन विग्रेण निर्जितः । परब्रेष्ठिनमागम्य कथयामास कारणम् ॥६८
 तदा तु भगवान्ब्रह्मा सर्वदेवगणैर्युतः । कुम्भगोद्युमणौ देने चन्द्रमण्डलगं नृपम् ॥
 तं द्विजं च चकाराशु रुद्ररूपं भयः गहम् ॥६९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा महादेवः स विप्रश्च तदाजपाद् । पुरीं माहिष्मतीं प्राप्तः कलिशुद्धिकरः प्रभुः ॥
 पुरीशर्मेति विख्यातो यतिदत्तस्य वै सुतः ॥७०
 षोडशाब्दवपुर्भूत्वा जित्वा वेद परायणान् । शङ्कराचार्यमागम्य तस्य शिष्यो बभूव ह ॥

शंकर जी से कहा—स्वामिन्, शरणागत वत्सल ! मुझे पुत्र देने की कृपा कोजिये ।’ इतना कहने पर शिव जी ने हँसते हुए कहा—पुत्रदाता तो स्वयं ब्रह्मा जी हैं, जो परमोत्तम एवं भाग्यविधाता हैं । उन्होंने सौ जन्म तक तुम्हें पुत्र नहीं दिया है । अतः विप्र ! मैं अपने अंश से तुम्हें पुत्र दे रहा हूँ । इतना कहकर भगवान् महेश्वर जी ने अपने मुख में तेज निकालकर उनकी पत्नी को प्रदान किया, जो दो भागों में विभक्त होकर दशवें मास में प्रथम बकरे के समान चरण वाला और दूसरा मनुष्य के रूप में उत्पन्न हुआ तथा इस भूतल में ‘अजैकपाद’ के नाम से उसकी अत्यन्त ख्याति भी हुई । चार सौ वर्ष के सुखीजीवन व्यतीत करने के उपरान्त मृत्युदेव अपने रोगणों समेत उस पुत्र के समक्ष उपस्थित हुए, किन्तु उसी समय दोनों का भीषण युद्ध आरम्भ हो गया । पश्चात् उस उत्कट योद्धा ने उस संग्राम में वर्ष के भीतर ही उन सबको पराजित कर पृथिवी मण्डल में ‘मृत्युञ्जय’ के नाम से अत्यन्त ख्याति प्राप्त की । अनन्तर मृत्युदेव ने दुःखी होकर उस ब्राह्मण द्वारा पराजित होने पर ब्रह्मा के पास जाकर उनसे सभी वृत्तान्त का वर्णन किया, जिससे भगवान् ब्रह्मा ने निखिल देवों समेत वहाँ आकर कुम्भ-राशि पर सूर्य के स्थित होने पर उस भीषण रुद्ररूप ब्राह्मण को चन्द्रमण्डल में राजपद पर प्रतिष्ठित किया ।५५-६९

सूत जी बोले—इसे सुनकर ब्राह्मण रूपधारी उस ‘अजपाद’ महादेव ने, जो कलि के शुद्धि-निर्माता एवं प्रभु हैं, माहिष्मती पुरी में जाकर यतिदत्त के पुत्र पुरीशर्मा के नाम से ख्यातिप्राप्त करते हुए सोलह वर्ष की अवस्था में वेदनिष्णात विद्वानों को पराजित करने के उपरान्त शंकराचार्य की शिष्य सेवा

इति ते कथितं विप्र यथा मृत्युञ्जयोभवत्

॥७१॥

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपदयःये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये

आनन्दगिरिवनशर्मपुरीशर्मउत्पत्तिवर्णं नानैकादशोऽध्यायः । ११

अथ द्वादशोऽध्यायः

भारतीशगोरक्षनाथक्षेत्रशर्मद्विष्टिराजोपपत्तिवर्णनम्

सूत उदाच्र

पुनः भृष्णु कथां इन्यां प्रयामे जीवभाविताम् । हर्षुर्नामि पुरा चासीद्वानदो लोककण्ठकः ॥१॥
 निकुम्भान्वयसम्भूतः शक्तुल्यपराक्रमः । सहस्राब्दं तपः कृत्वा तापयामास वै सुरान् ॥२॥
 तदा लोकपतिर्ब्रह्मा लोकरक्षार्थमुद्यतः । वरं ज्ञाहीति वचनमुवाच दनुजेश्वरम् ॥३॥
 नमस्कृत्य विधातारं वचनं प्राह नम्रधीः । यदि देयो वरः स्वामिस्त्वया तिष्वकृता विभो ॥४॥
 मरणं न च मे भूयात्त्वक्तृतैश्च चराचरैः । इत्युत्तम्स तथेत्युक्त्वा ब्रह्मलोकमुपाययौ ॥५॥
 दानवस्तु रौद्रात्मा जित्वा स्वर्गनिवासिनः । आहूय दानवान्दैत्यान्तिवरेभ्यः प्रसन्नधीः ॥६॥
 स्वर्गं निवासयामास ते देवा भूतलीकृताः । लक्ष्माब्दं च सुरास्तर्वं बुभुजुः परमापदः ॥७॥
 एकदा नारदो धीमान्दृष्ट्वा देवांस्तथागतान् । वचनं प्राह दोगात्मा भजद्वं लोकशङ्करम् ॥८॥

स्वीकार किये । विप्र ! इस प्रकार मैंने मृत्युञ्जय की उत्पत्ति कथा तुम्हें सुना दिया । ७०-७१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में
 आनन्दगिरि, उनशर्मा और पुरीशुर्मा की उत्पत्ति वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त । ११

अध्याय १२

भारतीश, गोरखनाथ, क्षेत्रशर्मा और द्विष्टिराज की उत्पत्ति का वर्णन

सूत जी बोले—वृहस्पति की कही हुई कथा मैं पुनः कह रहा हूँ, सुनो ! पहले हर्षु नामक एक दानव हुआ था, जो प्राणीमात्र के लिए कंटक को भाँति सदैव दुःखदायी रहता था । निकुम्भ दैत्य के कुल में उत्पन्न होकर उसने इन्द्र के समान पराक्रमी होने पर भी एक सहस्र वर्ष तक घोर तपस्या की, जिससे उसके तेज द्वारा देवों को अत्यन्त पीड़ा होने लगी । उस समय लोकनियन्ता ब्रह्मा ने लोक के रक्षार्थ उसके समीप पहुँचकर उस दानवेश्वर से वर-याचना करने के लिए कहा—उसने विधाता को नमस्कार करके विनम्र होकर कहा—स्वामिन् ! विश्वस्त्रष्टा होकर आप मुझे यदि कृपया वर प्रदान करने के लिए उत्सुक है, तो आपकी सृष्टि में चर-अचर किसी प्राणी द्वारा कभी मेरी मृत्यु न हो ।' वर प्रदानकर ब्रह्मा के ब्रह्मलोक चले जाने पर दुरात्मा दैत्य ने स्वर्ग निवासी देवों को पराजितकर पाताल से दैत्यों को बुलाकर वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया और देवों ने भूतल निवास करना आरम्भ किया । एक लाख वर्ष तक देवों का इस प्रकार परम दुरुपयोग करने के उपरान्त एक बार योगिराज नारद ने देवों की दुरावस्था देखकर उनसे कहा—लोकशंकर भगवान् शिव की आराधना करो, क्योंकि वे ही महादेव एवं ब्रह्माण्ड के

स देवश्च महादेवो ब्रह्माण्डेशो विपर्तिहा । इति श्रुत्वा तु वचनं ते देवा विस्मयान्विताः ॥१५
 पार्थिवैः पूजयामासुर्देवदेवमुमापतिम् ; गतैकादशवर्षाश्च तेषां पूजनकारिणाम् ॥१०
 तदा प्रसन्नो भगवान्महेशो लोकशङ्करः । ज्योतिर्लिङ्गमयो भूत्वा लोकांस्त्रीन्समदाहयत् ॥११
 ये तु च देवभक्ताश्च शैवाश्रासन्महान्ये । अन्ये तु दानवैस्सार्द्धं भस्मीभूता बभूविरे ॥१२
 एतस्मिन्नक्तरे ब्रह्मा विष्णुना सह हर्षितः । तुष्टाव स महारुद्धं स्तोत्रैस्सामसमुद्भवैः ॥१३
 नियुनस्थे दिवानाथे शशिनण्डलभूपतिम् । हिर्वृन्दं च महारुद्धं चकार उरहेतवे ॥१४
 इति श्रुत्वा स हिर्वृन्दो देवकार्यथमुद्यतः । हिमालये गिरौ रम्ये पुत्रोऽभूत्साद्यकमणः ॥१५
 पतिरुदाः कलान्भिजो भारतीश इति श्रुतः । स जित्वा विदुषां वृन्दान्काशीनगरमागतः ॥
 शङ्कराचार्यमागत्य शिष्योऽभूत्तेन निर्जितः ॥१६

बृहस्पतिरुच

मयपुत्रः स्मृतो मायो तसोघोरं चकार ह ॥१७
 पदैकेन स्थितः सूर्ये सहस्रार्द्धं प्रयत्नतः । सः लोकांत्तापयामास तपसा लोकवासिनः ॥१८
 तदा प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठो पितामहः । त्रयो ग्रामास्तत्प्रियार्थं क्रमादौ तेन निर्मिताः ॥१९
 सौवर्णं स्वर्गसदृशं पुरं षोडशयोजनम् । तदधो योजनान्ते च राजतं च भुवर्मयम् ॥२०
 तदधो योजनान्ते च भूर्लोकमिव चायसम् । एवं पुरनिवासिन्यो दैत्यानां योषितो मुदा ॥२१

अधिनायक दुःखभंजन है। इसे सुनकर विस्मित होते हुए देवों ने पार्थिव पूजन द्वारा उमापति महादेव की आराधना आरम्भ की। ग्यारह वर्ष के अनन्तर उन पूजन करने वाले देवों के ऊपर प्रसन्न होकर लोक के कल्याणमूर्ति भगवान् शिव ने ज्योतिर्लिङ्ग रूप धारणकर तीनों लोकों को भस्म कर दिया। १-११। उस समय केवल देवभक्त ही शेष रह गये और अन्य लोग उन्हीं दानवों के साथ उस भीषण अग्नि की ज्वाला में भस्म हो गये। उसी समय ब्रह्मा ने हर्षमग्न होकर विष्णु समेत वहाँ आकर सामवेद की स्तुति द्वारा उन महारुद्ध को प्रसन्न किया, पश्चात् देवों के हितार्थ नियुन राशि पर सूर्य के स्थित होने पर उन हिर्वृच्छ महारुद्ध को चन्द्रमण्डल के राजपद पर विभूषित किया। इसे सुनकर हिर्वृच्छदेव ने देवों के कार्य सकल करने के लिए हिमालय पर्वत निवासी साद्यकमा के घर पुत्र-रूप में जन्म ग्रहण किया, जो यतिरूप एवं कला के पूर्ण ज्ञाता होकर 'भारतीश' के नाम से प्रस्थात हुए। उन्होंने अनेक विद्वानों को पराजित कर काशी यात्रा की। वहाँ पहुँचकर शंकराचार्य से पराजित होने पर उन्होंने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की। १२-१६

बृहस्पति जी बोले—मयपुत्र मायी ने एक चरण से स्थित होकर एक सहस्र वर्ष तक सूर्य की ओर दृष्टि लशाये कठिन तपस्या की। जिस समय उसके तेज द्वारा लोक एवं लोक निवासी प्राणियों को अत्यन्त सन्ताप होने लगा। उस समय भगवान् पितामह ब्रह्मा प्रसन्न होकर उसके प्रसन्नार्थ तीन ग्रामों (लोकों) के निर्माण पूर्वक क्रमशः तीनों उसे प्रदान किये। १७-१९। जिसमें स्वर्ग के समान सोलह योजन का विस्तृत सुवर्ण निर्मित महल बाला पहला, उसके एक योजन के नीचे भूर्लोक की भाँति रजत (चाँदी) निर्मित द्वारा और उसके एक योजन के नीचे भूलोक की भाँति विस्तृत लोहे द्वारा रचित तीसरा लोक था। इस प्रकार ब्रह्मा

शतकोटिमिता दैत्या धर्मात्मनो निवासिनः । गृहीत्वा यज्ञभागं च देवतुल्या ब्रह्मविरे ॥२२
 तदा निर्बलिनो देवाः क्षुधया पीडिताः प्रभुम् ; भगवन्तं महाविष्णुं दुष्टुदुः परया गिरा ॥२३
 चतुर्युगसमूहानां वर्षणां भगवन्प्रभो । अधिकारविहीनाश्च वर्तन्ते स्वर्गमण्डले ॥२४
 तामसान्तरमेदापि षोडशैव चतुर्युगान् । व्यतीतानि महाविष्णो भायिनां दुःखभुञ्जताम् ॥२५
 इति श्रुत्वा वचस्तेषां भगवान्मधुसूदनः । दृष्ट्वा संस्कृतवार्तायां दैत्यान्धर्मपरायणान् ॥२६
 बौद्धरूपस्वयं जातः कलौ प्राप्ते भयानके । अजिनस्य द्विजसैव सुतो भूत्वा जनार्दनः ॥२७
 वेदधर्मपरान्विप्रान्मोह्यमास वीर्यवान् । निर्वेदाः कर्मरहितस्त्रिवर्णात्मसान्तरे ॥२८
 षोडशे च कलौ प्राप्ते लभुवर्यज्ञवर्जिताः । तदा दैत्या रूषाद्विष्टास्सर्वे त्रिपुरवासिनः ॥२९
 मनुजान्पौडयामासुरिर्ज्ञात्वेदवर्जितान् । क्षयं जन्मुर्नरास्सर्वे कल्पान्ते दैत्यभक्षिताः ॥३०
 पुनस्सत्युगे प्राप्ते कैलासे गुद्यकालये । देवैश्चाराधितः शम्भुस्सदलोकाशवङ्गः ॥३१
 ज्योतिर्लिङ्गं वपुः कृत्वा तत्र तस्थौ भयङ्गः । एतस्मन्नन्तरे देवाः प्रसन्नास्तामसान्तरे ॥३२
 भूमेस्सारं गृहीत्वा ते रथं कृत्वा विधानतः । चन्द्रभास्करयोस्साराच्चके कृत्वा तथैव च ॥३३
 सुमेरोश्च तथा सारात्केतुं कृत्वा रथस्य वै । ददौ शिवाय महते यानं स्यन्दनरूपि तत् ॥३४
 तदा ब्रह्मा स्वयं प्राप्य ब्रह्मव रथसारथिः । वेदाश्च वाजिनश्चासन्देवदेवस्य वै रथे ॥३५

द्वारा रचित उन पुरों में दैत्यों की स्त्रियाँ तथा सौ कोटि धार्मिक दैत्यगण प्रसन्नतापूर्ण निवास कर रहे थे । वहाँ रहकर दैत्यों ने देवों के यज्ञ-भाग को भी ग्रहण करना आरम्भ किया जिससे क्षुधा से पीडित होकर देवों ने अपने स्वामी भगवान् विष्णु की उत्तम स्तुतियों द्वारा आराधना की—भगवन्, प्रभो ! हम लोगों को अधिकारहीन होकर रहते हुए चारों युगों के सभी वर्ष व्यतीत हो गये । महाविष्णो ! यहाँ इस कलि के समय भूमण्डल में भी दुःखों के भोग करते सोलह बार चारों युग व्यतीत हो गये । २०-२५। इस प्रकार उन लोगों के आर्तनाद सुनकर भगवान् मधुसूदन ने उन धार्मिक दैत्यों को संस्कृत भाषा में निपुणता प्राप्त करते हुए देखकर उस भीषण कलि के समय स्वयं बौद्ध रूप धारण किया, जो पहले अजिन ब्राह्मण के पुत्र रूप में प्रकट हुए थे । जनार्दन भगवान् ने उन वेदधर्म परायण दैत्यों को अपनी माया से मोहितकर उन्हें सुखी एवं कर्मरहित किया । इस प्रकार उस कलि में इनके सोलह वर्ष की अवस्था प्राप्त होने के समय तक इनसे प्रभावित होकर तीनों वर्णों के मनुष्य यज्ञ करना छोड़ दिये । उस समय त्रिपुरवासी दैत्यों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेदाध्ययन एवं यज्ञानुष्ठान से रहित उन मनुष्यों को देखकर पीडित करना आरम्भ किया जिससे उस कल्पान्त के समय दैत्यों द्वारा भक्षित होकर सभी मनुष्य नष्ट हो गये । पुनः सत्ययुग के प्रारम्भ में कैलास में जाकर देवों ने लोक शंकर शिव की उपासना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने अपनी ज्योतिर्लिङ्ग की शरीर धारण किया । उस समय देवों ने प्रसन्न होकर पृथिवी के सार को निकालकर एक विचित्र रथ का निर्माण किया, जिसमें चन्द्र-सूर्य के सार से चक्र, सुमेर पर्वत के सार से उस रथ का केतु (धुरा) निर्मित था । इस प्रकार उन लोगोंने उस विचित्र रथ का निर्माण कर जिस समय उसे महाशिव जी को अर्पित किया उसी समय ब्रह्मा ने वहाँ आकर सारथी पद को अपनाया और वेदोंने उनके वाहन (अश्व) का रूप धारण किया । देवाधिदेव शंकर जी के उस रथपर प्रतिष्ठित होने पर उनके

लोकालोकगिरेः सारो धनुश्चासीन्महात्मनः । घोरं चाजगवं नाम प्रसिद्धमभवद्धनुः ॥३६
 राज्यं चकार भगवांस्तद्धनुः कठिनं महत् । भग्नीभूतमभूच्छापं देवदेवस्य वै रुषा ॥३७
 विस्मितो भगवान्विज्ञुस्सारं स्वर्गस्य दै तदा । गृहीत्वाशु धनुर्दिव्यं पिनाकं स चकार ह ॥३८
 सज्यं जातं च रुद्देण पुष्टिभूतं महद्धनुः । तदा ऋग्यर्थस्तुष्टास्तुष्टुवुर्जनसा हरम् ॥३९
 पिनाकीति न तप्त्रान्ना प्रसिद्धोऽभूत्महेष्वरः । गुणश्रापस्य वै शेषः शको बाणस्तदाभवत् ॥४०
 शरपक्षो वह्निदायू शल्यं विष्णुसनातनः । तेन बाणेन दैत्यानां कोटिसंख्या मृता च खे ॥४१
 त्रिपुरं हाहयामास नायिना पालितं शिवः । भस्मीशृते पुरे घोरे तदालोकपतिर्विधिः ॥४२
 पिनाकिनं भहारदं मीनराशिस्थिते रवौ । शशिनो मण्डलस्त्वैव राजानं स चकार तम् ॥
 स्वाधिकारांस्तदा देव अवापुस्तामसान्तरे ॥४३

सूत उवाच

इति श्रुत्वा पिनाकी च स्वमुखात्स्वांशमृतम् ॥४४
 समुद्दाय हरद्वारे हिमसानौ चकार ह । मच्छन्दो नाम तत्रैव योगी शम्भुपरायणः ॥४५
 गोरखस्य गुरुर्यो वै तन्मुखे तेज आविशत् । रम्भा नाम्रैव तत्रैव स्वर्वेश्या कामरूपिणी ॥४६
 मच्छन्दं च वशीकृत्य बुश्वजे स्मरविहूला । तयोस्सकाशाद्वै जातस्स पुत्रो रुचिराननः ॥४७
 नाथशर्मोति विल्यातो विद्वाऽच्छेष्टतरोऽभवत् । स जित्वाः पण्डितान्भूमौ पुरों काशीं समागतः ॥
 शङ्कराचार्यविजितस्तस्य शिष्यो बभूव ह ॥४८

लिए लोकालोक पर्वत का सारभूत एक धनुष बनाया गया, जो भीषण धनुष 'अजगव' के नाम से विल्यात हुआ । उस धनुष को भगवान् सत्यदेव ने अत्यन्त कठोर बनाया था, किन्तु देवाधिदेव भगवान् शंकर द्वारा उसे भग्न होते देखकर आश्चर्यचिकित होकर भगवान् विष्णु से उस समय स्वर्गलोक के स्तर द्वारा एक दिव्य धनुष का निर्माण किया । जिस समय भगवान् रुद्र द्वारा उस अत्यन्त पुष्ट एवं विशाल धनुष की प्रत्यक्षा चढ़ाई गयी उस समय हर्षातिरेक से मग्न होकर देव ब्रह्मपिण्यों ने उनकी आरधना की और भगवान् महेश्वर उसी समय से 'पिनाकी' के नाम से प्रस्तुत हो गये । उस धनुष की प्रत्यक्षा शेष और बाण इन्द्र हुए थे तथा अग्नि और वायु उस बाण के पक्ष एवं शत्य स्वयं सनातन विष्णु भगवान् हुए । भगवान् शंकर ने उस बाण द्वारा आकाश में करोड़ों दैत्यों के विनाशपूर्वक उस त्रिपुर का भस्मावशेषं किया । तीनों पुरों के भस्म हो जाने पर लोकतायक द्वारा ने महारुद्ध उन पिनाकी देव को मीनराशिस्थ सूर्य के समय चन्द्रमण्डल का राजपद प्रदान किया । पश्चात् देवगणों ने भी अपने-अपने अधिकारों को प्राप्त किया । २६-४३

सूत जी बोले—इसे सुनकर पिनाकी देव ने मुख द्वारा अपने अंश को निकालकर हिमालय पर्वत के समीप हरिद्वार में भेजा जो वहाँ मच्छन्द नामक योगी की स्थाति प्राप्तकर भगवान् शंकर का अनन्य उपासक हुआ । वही गोरखनाथ का गुरु वर्ण भी था जिसके मुख में वह तेज आविष्ट हुआ था । रम्भा नामक देवाङ्गना ने जो यथेच्छ रूप धारण किया करती हैं कामपीड़ित होने पर योगी मच्छन्द द्वारा अपनी कामपिपासा शान्ति की । पश्चात् उन दोनों के रमण करने पर एक मधुरमूर्ति बालक की उत्पत्ति हुई, जो 'नाथ शर्मा' (गोरखनाथ) के नाम से प्रस्तुत होते हुए अत्यन्त गम्भीर विद्वान् हुआ । उसने अनेक धुरन्धरं पण्डितों को पराजित कर काशीपुरी की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर योगिराज शंकराचार्य से पराजित होने पर उनकी शिष्य-सेवा स्वीकार की । ४४-४८

बृहस्पतिरुदाच्च

चाक्षुषान्तरसम्प्राप्ते द्वादशे द्वापरे युगे

॥४९

क्षत्रियैस्तालजङ्घीयैब्रह्मणा भृगुवंशजाः । विनाशिताः कुरुक्षेत्रे गृहीत्वा तद्धनं बहु ॥५०
 जभुर्जुर्बलवन्तस्ते दैत्यपक्षा महाध्यनः । कस्यचित्तु मुनेः पत्नी गुर्विणी च भयान्विता ॥५१
 हिमत्रुद्भ्वे समागम्य तद्गर्भं मुनिसम्भवम् । शतवर्ष ददौ देवीं तपसा ज्ञानरूपिणी ॥५२
 मातुरुरुरु चुतो भित्त्वा ततो जातो महीतले । तेजसा तस्य पुत्रस्थ भस्मीसूतमभृज्जगत् ॥५३
 तदा तु सकला देवाः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् । वज्रस्थितश्च वैतालास्समाजम् भृयातुराः ॥५४
 पितृभिर्दैवतैर्बालिसमाजातो हिमाच्छ्वे ! लोकनाशकरं तेजो जलमध्ये स चाक्षिपत् ॥५५
 जलदेवीं च बडवा भूत्वा तत्तेज उत्तमम् । पीत्वा ववाम तत्रैव पीडितः रौद्रतेजसा ॥५६
 तदागत्य स्वयं ब्रह्मा त्रिकुटे यत्र वै गिरिः । तदधः सागरे घोरे स्थापयामास लोकपः ॥५७
 भेषगे द्युमणौ प्राप्ते शशिमण्डलगं प्रभुम् । तं रुदं स चकाराशु परमेष्ठी पितामहः ॥५८
 ऊजातात्मृतो वोवों दहनो लोकदाहतः । बडवामुखतो जातो बाडवो नाम स प्रभुः ॥५९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा तु दहनो गुरुवाक्यं मनोहरम् । स्वमुखातेज उत्पाद्य कुरुक्षेत्रं चकार ह ॥६०

बृहस्पति बोले—द्वापर युग में चाक्षुष मन्वन्तर के समय तालजंघीय क्षत्रियों द्वारा कुरुक्षेत्र के स्थान में भृगुवंशीय ब्राह्मणों के विनष्ट हो जाने पर जनके धनों का अपहरण कर उन नीच दैत्यों ने उसका उपभोग किया । उररी समय किसी मुनि की पत्नी ने उस गर्भिणी अवस्था में अत्यन्त भयभीत होकर हिमालय के शिखर पर पहुँचने का प्रयत्न किया । वहाँ पहुँचकर ज्ञानरूपिणी उस मुनिपत्नी के सौं वर्ष तक उस गर्भ को धारण करने के उपरान्त उह के भेदनपूर्वक एक तेजस्वी बालक ने उस गर्भ से जन्म ग्रहण किया । इस भ्रमण्डल पर जिस समय उस शिशु ने पदार्पण किया उसी समय उसके तेज द्वारा सम्पूर्ण संसार भस्म हो गया । पश्चात् देवों ने भयभीत होकर ब्रह्मा को आगे कर वज्रस्थित वैताल समेत वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया । वहाँ पहुँचने पर पितरों एवं देवों की आज्ञा को स्वीकार कर उसने उस लोक-नाशक तेज को जल के मध्य में डाल दिया । उस समय जल-देवी ने बडवा (घोड़ी) रूप धारणकर उस तेज का पान किया किन्तु उस रुद्ध तेज से पीडित होने पर उसने उसका वमन कर दिया । उस समय स्वयं ब्रह्मा ने वहाँ जाकर त्रिकूट पर्वत के नीचे घोर सागर में उसकी स्थापना की । सूर्य के मेषराशिस्थ होने पर पितामह ब्रह्मा ने उस रुद्ध रूप को चन्द्रमण्डल के स्वामी पद से विभूषित किया । उह से उत्पन्न होने के 'वोवों' लोक करने से 'दहन' और बडवा के मुख से उत्पन्न होने के नाते उसका 'बाडव' नाम हुआ । ४९-५९

सूतजी बोले—उस दहन (तेजस्वी) ने बृहस्पति की ऐसी सुन्दर वाणी सुनकर अपने मुख से तेज निकालकर कुरुक्षेत्र में भेजा, जो सारस्वत ब्राह्मण के घर पुत्ररूप में उत्पन्न होकर 'क्षेत्रशर्मा', के नाम से

सारस्वतस्य विप्रस्थं गृहे जातस्स वै शिवः । क्षेत्रशमीति विल्यातो विद्वच्छृष्टो बभूव ह ॥६१
शङ्कराचार्यमागम्य शिष्यो मूल्या पराजितः । ब्रह्मचर्यवती काश्यां तस्थौ शम्भुपरायणः ॥६२

ब्रह्मस्पतिरुवाच

एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावर जड्ममे । शताब्दे आह्मणः प्राप्नेऽव्यक्तजन्मनि लोकगे ॥६३
अव्यक्तं प्रकृतिमर्या पीत्वा सर्वजलं मुवा । भर्तुकाली स्वयं मूर्तिरन्धकारस्वरूपिणी ॥६४
एका बभूव तत्रैव प्राकृते कल्पदर्शणे । चतुर्गुणानां कोटीनां त्रयाणां दाखणे लने ॥६५
षष्ठिलक्ष्युतानां च कालस्तद व्यतीतदान् । तदा सा प्रकृतेदेवी नित्यशुद्धा सनातनी ॥६६
स्वेच्छ्या च स्वरूपं स्वं महागौरमनुतमम् । पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं च दधौ शिवः ॥६७
भालनेत्रेण सा माता सूक्ष्मतेजो ददर्श ह । शून्यमूलं परं नित्यमविकारि निरञ्जनम् ॥६८
तदा दिक्षु गतं ब्रह्म स्वभुजैः प्रकृतिः पुरा । अहीतुमिच्छती तत्र न समर्था बभूव वै ॥६९
विस्मिता प्रकृतिर्माता पञ्चवक्त्रैः सनातनम् । द्रुष्टाद परया भक्त्या चिरकालात्परात्परम् ॥७०
धातुशब्दः प्राइमुखजैः प्रत्यर्थ्याप्यवक्त्रजैः । मुविभक्तिमयैः शब्दैर्मुखपश्चिमजैः स्थिरा ॥७१
तिङ्गविभक्तिमयैनित्या मुखोत्तरमयैर्मुद्वा । नभोवक्त्रमयैः शब्दैर्वर्णमात्रैर्निरञ्जनम् ॥७२
सञ्चिदानन्दघनकं पूर्णब्रह्म सनातनम् । तुतोष ततु सर्वज्ञं पञ्चवक्त्रेषु चागमत् ॥७३
पुरुषत्वमभूदब्रह्म स्वयम्भूर्नामि चाभवत् । अव्यक्तत्रप्रकृतेजर्जारेऽव्यक्तजन्मा हि स स्मृतः ॥७४

विल्यात एवं श्रेष्ठ विद्वान् हुआ । उसने काशी पहुँचकर शंकराचार्य की शिष्य सेवा स्वीकार करने के उपरान्त ब्रह्मचर्यवती रहकर विश्वनाथ जी की सेवा का पारायण किया । ६०-६२

ब्रह्मस्पति जी बोले—स्थावर जंगमरूप जगत् के उत्त प्रलयकालीन एकार्णव में विलीन होने पर अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के सौ वर्ष के उपरान्त प्रकृति माया ने उस आसव जल रूप अव्यक्त का पानकर स्वयं मूर्तिमती होकर अध्यकार स्वरूपिणी महाकाली का रूप धारण किया । उस भीतिण प्राकृतकल्प के समय एकाकिनी उत्पन्न होकर साठ लाख कोटि चारों युग के समय को व्यतीत किया । पश्चात् उस प्रकृति देवी ने, जिसे शुद्ध एवं सनातनी कहा जाता है, स्वेच्छ्या अपने स्वरूप को अत्यन्त गौरवर्ण बनाया । उस शिवा ने उस स्वरूप में पाँच मुख, दश भुजाएँ और तीन नेत्र धारण किया और उस मातके भालनेत्र द्वारा सूक्ष्म तेज का दर्शन किया, जो शून्य पर नित्य, अविकारि एवं निरंजन है । उसे देखकर प्रकृति देवी ने अपनी भुजाओं द्वारा उस दिग्दिग्नत व्यापक ब्रह्म को ग्रहण करने की इच्छा की किन्तु समर्थ न हो सकी । पश्चात् विस्मित होकर प्रकृतिमाता ने उस सनातन एवं परात्पर देव की अपने पाँचों मुखों द्वारा चिरकाल तक भक्तिपूर्वक आराधना की पूर्वमुख से धातु, दक्षिण मुख से प्रत्यय, पश्चिम मुख से सुप विभक्तिमय, उत्तरमुख से तिङ्गविभक्तिमय और आकाशीय मुख से वर्णमात्र शब्दों द्वारा उस निरञ्जन की उपासना की जो सञ्चिदानन्द, धन, पूर्ण एवं सनातन ब्रह्मा है । तदनन्तर प्रसन्न होकर उस सर्वज्ञ ने उनके पाँचों मुखों में प्रविष्ट होकर पुरुष रूप धारण किया, जो स्वयम्भू के नाम से विश्व विल्यात हुआ और अव्यक्त प्रकृति से उत्पन्न होने के नाते वह अव्यक्तजन्मा भी कहा गया है । ६३-७४। पश्चात् उसी पुरुष के लिए वरदात्री एवं

तस्य हेतोः स्वयं देवी वरदा लोकरूपिणी । महालक्ष्मीश्र पूर्वार्द्धज्जाता षोडशलोकिनी ॥७५
 अष्टादशभुजास्तस्या लोकरक्षणतत्पराः । दृष्ट्वा तदद्भुतं रूपं स्वयंभूर्विस्मयान्वितः ॥७६
 प्रदिश्य बहुधा भूत्वा नान्तं तस्या जगाम ह । बृहत्वाद्बहुरूपत्वाद्ब्रह्मा नामेति विश्रुतः ॥७७
 श्रमितो भगवान्ब्रह्मा सत्यलोकमुपस्थितः । मुखेभ्य उद्भूवैर्देवो वैदस्तुष्टाव शङ्करम् ॥७८
 चिरं कालं तदञ्जनादै नदीनदसमुद्रवदः । एकार्णवं तदा जातं शेते तत्र स्वयं प्रभुः ॥७९
 सहस्रयुगपर्यन्तमुषित्वाऽव्यक्तम् । सत्यलोकमुपागम्य पुनः सृष्टिं चकार ह ॥८०
 अनन्ताः सृष्ट्यश्चासनायरूपाः पृथक्पृथक् । ताभिर्व्यक्तमभूतस्वं महालक्ष्मीमयं जगात् ॥८१
 दृष्ट्वा बहुत्वं सृष्टीनां महालक्ष्मीः सनातनी । विभिन्नताभूच्च सर्वेशं भगवन्तमुपाययौ ॥८२
 नत्वोवच वचो रस्यं कृष्णमव्यक्तसङ्खलम् । भगवन्नित्यशुद्धात्मन्त्रराध्रासन्महत्तराः ॥८३
 कथं तेषां च गणना कर्तव्या च मया सदा । इति श्रुत्वा वचस्तस्या द्विधाभूतश्च सोऽव्ययः ॥८४
 पूर्वार्द्धात्म तु रक्ताङ्गः परद्वाद्गौररूपवान् । चतुर्भुजस्स रक्ताङ्गो गौरवर्णश्चतुर्भुजः ॥८५
 सर्वसृष्टिगणानां च स ईशो भगवान्भवः । गणेशो नाम विश्वातश्चेष्वरस्तु तु विश्रुतः ॥८६
 परश्चतुर्भुजो दो वै योगिध्येयो निरञ्जनः । एकदा विधितो जातः शिवः पार्वतिवल्लभः ॥८७
 गणेशं पूजयामास सहस्राब्दं प्रयत्नतः । तदा प्रसन्नो भगवान्नाशेः शर्वपूजकः ॥८८

लोकरूपिणी देवी ने स्वयं अपने पूर्वार्द्ध भाग से महालक्ष्मी का रूप धारण किया, और उस सोलह लोकनायिका ने अपने अट्ठारह भुजाओं द्वारा लोक की रक्षा की । उस अद्भुत रूप को देखकर स्वयम्भू को महान् आश्चर्य हुआ । अनन्तर उन्होंने उस रूप में प्रतिष्ठ होकर अनेक रूपों से उसका पता लगाया किन्तु उसका पार न पा सके । उसी समय से बृहत् (वज्र) और बहुत्व (अनेक) होने के नाते 'ब्रह्मा' नाम से उसकी स्थाति हुई । तदुपरान्त श्रान्त होकर भगवान् ब्रह्मा ने सत्यलोक पहुँचकर अपने मुखों से उत्पन्न वेदों द्वारा भगवान् शंकर को प्रसन्न किया । चिरकाल के उपरान्त उनके अंगों द्वारा नदी एवं नदों द्वारा (प्रलयकालीन जल बढ़कर) एकार्णव (एक समुद्र) हो गया जिससे उसी में शयन करते हुए स्वयम्भू ब्रह्मा ने सहस्र युग व्यतीतकर सत्यलोक पहुँचकर पुनः सृष्टि करना आरम्भ किया । उस प्रमत्त सृष्टि द्वारा जो गणरूप में पृथक्-पृथक् स्थित थे, सम्पूर्ण विश्व महालक्ष्मीमय दिखाई देने लगा । उस समय सनातनी महालक्ष्मी ने सृष्टि की अधिकता एवं अनेकता देखकर आश्चर्यचकित होकर सर्वेश भगवान् के समीप जाकर न भ्रतापूर्वक उन अव्यक्त एवं मांगलिक कृष्ण भगवान् से कहा—भगवन्, नित्यशुद्धात्मन् ! नरों की महत्तर सृष्टि हो गई है, मैं सदा उनकी गणना किस प्रकार करूँगी । इसे सुनकर उस अव्यय ने अपने को दो भागों में विभक्तकर पूर्वार्द्ध से रक्तवर्ण और चार भुजाएँ तथा उत्तरार्द्ध से गौरवर्ण और चार-भुजाएँ धारण किया, जिसमें रक्तवर्ण एवं चार भुजाओं वाले रूप ने समस्त सृष्टिगणों के ईश का स्थान ग्रहण किया, जो भगवान् भव गणेश के नाम से विश्वविश्वात हुए और उनका दूसरा गौरवर्ण का स्वरूप जो निरंजनस्वरूप है योगियों का परमध्येय हुआ । एक बार ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न शिव ने पार्वती समेत ब्रती होकर भगवान् गणेश की एक सहस्र वर्ष तक सप्रयत्न आराधना की । उस समय शिव जी की पूजा

वरं दरय तं प्राह् पार्वतीसहितं हरम् । प्रसन्नात्मा भवः साक्षात्पूष्टाव च विनम्रधीः ॥८९
शिव उवाच

नमो विष्णुस्वरूपाय गणेशाय परात्मने । चतुर्भुजाय रक्ताय यज्ञपूर्णकराय च ॥९०
विष्णहन्त्रे जगद्गृहे सर्वानन्दप्रदायिने । सिद्धीनां पतये तुम्यं निधीनां पतये नमः ॥९१
प्रसन्नो भव देवेश पुत्रो भव मन त्रियः । इति श्रुत्वादिगूज्यस्तु गणेशो भक्तवत्सलः ॥९२
पार्वत्याः सर्वदेहात् तेजोभूतात्समुद्भवः । तदा कैलासशिखरे सर्वे देवास्त्वासवाः ॥९३
मङ्गलार्थमुपाजगमुर्दवदेवस्य मन्दिरे । महोत्सवश्च तत्रासीत्सर्वलोकमुखावहः ॥९४
एतस्मन्नल्लरे तत्र सूर्यपुत्रः शनिः स्वयम् । कूरदृष्टिः समायातः कालात्मा देवमण्डये ॥९५
तस्य दर्शनमात्रेण स बालो दिशिरा ह्यभूत् । हाहाकारो महांश्रासीत्कैलासे गुह्यकालये ॥९६
तच्छ्रवन्दलोके वै तुलासंस्थे दिवाकरे । सप्तविंशद्विनान्येद प्रकाशयति भूतले ॥९७
निन्दितो दैवतस्तत्र शनिर्जनभयङ्गः । गजरय मस्तकं छित्त्वा दन्तकं रागरूपि यत् ॥९८
तदित्थोः कन्धे रक्तेऽरेपयत्सूर्यसम्भवः । गजयोन्या स्तुतो ब्रह्मा कर्कटस्य तदा शिरः ॥९९
समारोप्य तु तद्योनिः कर्कटो दिशिरीकृतः । एवं गजाननो जातो गणेशश्वेश्वरः स्वयम् ॥१००

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गणेशस्तु गुरोर्बचनमुत्तमम् । स्वमुखात्स्कन्धमुत्पाद्य काश्यां जातः स चेश्वरः ॥१०१

से प्रसन्न होकर भगवान् गणेश ने उनसे कहा—वरदान की याचना कीजिये । उन्होंने प्रसन्न होकर नम्रतापूर्वक उनकी स्तुति किया । ७५-८९

शिव जी बोले—उस विष्णुस्वरूप को नमस्कार है, जो गणेश, परात्मा, एवं यज्ञ की मूर्ति के लिए रक्तवर्ण एवं चार भुजाओं को धारण किये हैं । विघ्नहर्ता; जगत् के भर्ता समस्त आनन्दप्रदाता एवं सिद्धि-कृद्धि के अधीश्वर को नमस्कार है । देवेण ! ‘आप प्रसन्नतया मेरा पुत्र होना स्वीकार करें’ इसे सुनकर भक्तवत्सल एवं आदिशून्य भगवान् गणेश ने तेजरूप में पार्वती के समस्त अंगों से निकलकर बालक रूप धारण किया । उस समय उस कैलास के शिखर पर देवाधिदेव शंकर के घर उस पुत्र-जन्म के मांगलिक महोत्सव के उपलक्ष में समस्त इन्द्रादि देव उपस्थित हुए । जो महोत्सव प्राणीमात्र के लिए अत्यन्त सुखावहथा । उसी बीच सूर्य पुत्र शनि का भी वहाँ आगमन हुआ, जो कूरदृष्टि एवं कालात्मा कहे जाते हैं । उनके देखते ही उस शिशु का शिर विलीन हो गया, ऐसा देखकर उस कैलास पर हाहाकार मच गया । तुला राशि पर स्थित सूर्य के समय चन्द्रलोक में स्थित होकर वही शिर इस भूमण्डल पर सतत ईस दिन तक प्रकाश करता रहता है । उस समय वहाँ देवगणों से निन्दित होने पर उस जनभयङ्गर शनि ने गज का मस्तक काटकर उस बालक के मस्तक स्थान पर रख दिया । पश्चात् ब्रह्मा ने उस गज के मस्तक स्थान पर कर्कट (केकड़ा) का शिर रखकर उस केकड़ा को मस्तकहीन किया । इस प्रकार गजानन की उत्पत्ति बता दी गई, जो गणेश एवं स्वयं ईश्वर कहे जाते हैं । ९०-१००

सूतजी बोले—इसे सुनकर गणेश जी ने मुख द्वारा अपने स्कन्ध को निकालकर काशी में दैवज्ञ

देवजनस्य द्विजस्यैव पुणो भूत्वा गुभाननः । दुष्टिराजस्ततो नाम्ना ब्रह्मिणोऽभूत्वं हीतले ॥१०२
जातकाभरणं नाम ज्योतिशास्त्रं फलात्मकम् । कृत्वा स वेदरक्षार्थं शङ्कराचार्यसागमत् ॥१०३
शिष्यो भूत्वा प्रसन्नात्मा गुरुसेवापरोऽभवत् । इति ते कथितं विप्र दुष्टिराजो यथाभवत् ॥१०४

इति श्रोभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरयदि कलियुगीयेतिहाससमुच्चये
भारतीशगोरखनाथक्षेत्रशर्मदुष्टिराजसमुत्पत्तिवर्णनो नाम द्वादशोऽध्यायः । १२

अथ ब्रयोदशोऽध्यायः

अधोरपथभैरवहनुमज्जन्मरुद्माहात्म्यबालशर्मसमुत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिश्वाच

षोडशाब्दे च सम्प्राप्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । स उषित्वा च कमले स्थितः सृष्टिर्थमुद्यतः ॥१
एतस्मिन्नन्तरे वक्षत्रात्मसुद्धूता च शारदा । द्विव्याङ्गं सुन्दरं तस्या दृष्टि । ब्रह्मा स्मरातुरः ॥२
पलाद् गृहीत्वा तां कल्प्यामुवाच स्मरपीडितः । रत्ति देहि नवाधूर्णे रक्ष मां कामविद्वलम् ॥३
इति श्रुत्वा तु सा माता श्वा प्राह पितामहम् । पञ्चवक्त्रोऽयमशुभो न योग्यस्तद कन्धरे ॥४
चतुर्वर्कक्षो वेदमयो योग्यस्वर्वश्वरे त्वयि । इत्युक्त्वान्तर्दधे माता ब्रह्मा क्रोधान्वितोऽभवत् ॥५
तस्य कोपाप्रिना तोयं शुष्कभूतमभूदभुवि । शान्तिभूते च तत्कोपे रुद्रो जाते भयङ्करः ॥६

ब्राह्मण के यहाँ पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया, जिस कल्याणमुख बालक की इस भूतल में दुष्टिराज के नाम से अत्यन्त स्थाति हुई है। उन्होंने जातकाभरण नामक ज्योतिशास्त्र के फलित ग्रन्थ का, समस्त देवों के रक्षार्थ निर्माण करने के उपरान्त शंकराचार्य की शिष्य सेवा स्वीकार की। विप्र ! इस प्रकार मैंने दुष्टिराज की उत्पत्ति कथा तुम्हें सुना दी । १०-१-१०४

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में भारतीश,
गोरखनाथ, क्षेत्राशर्मा और दुष्टिराज की उत्पत्तिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त । १२।

अध्याय १३

अधोरपंथिभैरव हनुमज्जन्म, रुद्माहात्म्य और बालशर्मा की उत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति बोले—अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा ने सोलह वर्ष तक कमल में स्थित रहने के उपरान्त पुनः सुष्टि करने का प्रयत्न किया। उसी समय उनके मुख द्वारा शारदा देवी का आविभाव हुआ, जिसके दिव्य सौन्दर्यपूर्ण अंगों को देखकर ब्रह्मा ने कामपीडित होकर बलात् उसे पकड़कर अपनी अधीरता प्रकट की थी—उन्होंने कहा—मदोन्मते ! रतिदान द्वारा मेरी कामपीड़ा-शान्तिपूर्वक रक्षा करो। इसे सुनकर उस माता ने कुद्ध होकर पितामह ब्रह्मा से कहा—यह तुम्हारा पाँचवा मुख अशुभ होने के नाते तुम्हारे कन्धे पर रहने योग्य नहीं है। तुम सर्वश्वर हो, अतः वेदमय यह चार ही मुख तुम्हारे कन्धे पर रहने योग्य हैं। इतना कहकर वह माता अन्तर्हित हो गयी, जिससे ब्रह्मा अत्यन्त कुद्ध हो गये। उनके उस

भैरवो नाम विख्यातः कालात्मा सप्तवाहनः । स्वत्कैश्च नृसिंहाभैः क्षिप्त्वा तत्पञ्चमं शिरः ॥१७
जगर्ज बलवान् रुद्धः शङ्कुरो लोकशङ्करः । भयभीतस्तदा ब्रह्मा भैरवं शरणं यथौ ॥८
नाथ नः पापमूलानां धियो योऽसौ प्रचोदयात् । इति श्रुत्वा स भगवान्भैरवो लोकविश्रुतः ॥९
ब्रह्ममूलमहं स्वामिन्वरेण्यं त्वामुपागतः । सविदुस्तद्वरेण्यं यद्भूर्गो देवस्य धीमहि ॥१०
गाढ़मुच्चे रुद्रोदालु ऋत्येतुश्रावुभिन्दनः । ततो वृक्षास्त्वुद्भूता रुद्राक्षाणां पृथक्पृथक् ॥११
शिवो ब्रह्मवधाद्गौतस्तक्पतं गृहीतवान् । कपाली नाम विख्यातं भैरवस्य तदा ह्यभूत् ॥१२
सर्वलोकेषु पूतानि यानि चादतनानि च । तानि तान्येव गत्वा शु शुद्धो नानुच्छिवद्भूरः ॥१३
एकदा तेषु वृक्षेषु संस्थितो भगवान् रुद्धः । तदा ब्रह्मवधे दोषं त्यक्त्वा दूरमुपागतः ॥१४
ततः प्रभृति वै शम्भुर्धृत्वा रुद्राक्षमूलतमस् । पुरीं काशीं समावातः कपालस्तेन मोचितः ॥१५
क्षमालनोचनं नाम तीर्थं जातमदापहम् । एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वदेवसमन्वितः ॥१६
समागत्य भगवान् तुष्ट्रव स्तुतिजैस्तदैः । मकरस्थे दिनानाथे शशिनश्चेष्वरं धुभम् ॥
कपालिनं महारुद्धं चकार भगवान्विधिः ॥१७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं कपाली भैरवः शिवः । स्वमुखात्स्वांशमुत्पाद्य काश्यां जातो ह्ययोनिजः ॥१८

क्रोधाग्नि द्वारा पृथिवी के समस्त जल सूख गये, पश्चात् क्रोध के शान्त होने पर भयंकर रुद्र का आविर्भाव हुआ, जो भैरव, कालात्मा एवं सप्तवाहन के नाम से प्रस्थात हैं । उन्होने अपने नृसिंह के समान नखों द्वारा उनके उस पाँचवें मुख का छेदन कर दिया । पश्चात् लोककल्याणकर्ता भगवान् शंकर ने उस रुद्र देव में भीषण गर्जना की जिससे भयभीत होकर ब्रह्मा भैरव की शरण में गये । उन्होने कहा—नाथ ! मुझ पापात्मा की मद्भुद्धि की यह प्रेरणा करें । इसे सुनकर लोकप्रस्थात भगवान् भैरव ने कहा—स्वामिन् ! ब्रह्मरूप मैं भी आप वरेण्य (तेजस्वी) के समीप उपस्थित हूँ, जो सविता देव का तेज एवं वरेण्य रूप है । पश्चात् उन्होने अत्यन्त प्रगाढ़ रुदन किया जिससे आकाश से अशुभिन्दुओं का अविरल पतन हुआ । उसी से रुद्राक्ष के पृथक्-पृथक् वृक्ष उत्पन्न हुए । १-११। शिवजी ने ब्रह्म-वध से भयभीत होकर उनके कपाल को ग्रहण किया, जिससे उन भैरव की कपाली नाम से प्रस्थाति हुई । उस समय शिवजी ने सभी लोकों के पवित्र स्थानों एवं मन्दिरों में यात्रा की, किन्तु उस ब्रह्महत्या से मुक्त न हो सके । एक बार भगवान् हरने भ्रमण करते हुए उन रुद्राक्ष के वृक्षों के आश्रित रहना आरम्भ किया, वहाँ ब्रह्महत्या उन्हें मुक्तकर दूर चली गई । उसी समय से शिव ने उस परमोत्तम रुद्राक्ष को धारण किया और पश्चात् काशी आकर उस कपाल का मोचन किया, जिससे उस स्थान की अधिवानाशक कपालमोचन नामक तीर्थपद से विस्तृत स्थाति हुई । उसी बीच समस्त देवों समेत ब्रह्मा ने वहाँ आकर स्तुतियों द्वारा महादेव की आराधना की । तदुपरात ब्रह्मा ने मकर राशिस्थ सूर्य के समय उन कपाली महादेव को चन्द्रमण्डल का अधिनायक बनाया । १२-१७

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर उन कपाली भैरवशिव ने अपने मुख द्वारा अपने अंश

कपालमोचनात्कुण्डात्समागम्य महोतले । यतिरूपो वेदनिधिर्भैरवो नाम विश्रुतः ॥
अघोरं कठिनं मार्गं स्वशिष्यान्समचोदय ॥११९
शङ्करन्नार्यमागम्य शिष्योभूत्वा स औरवः । डमरं नाम वै तन्त्रं मन्त्रभूतं चकार ह ॥
कीलिता ये तु वै मन्त्रास्तेन चोक्कीलितीकृताः ॥२०

बृहस्पतिरुचाच

मन्दोदरी मयसुता त्रिपुराधीपतेः स्वता । त्रिपुरे तु तदा नष्टे महाविष्णुं सनातनम् ॥
भक्त्या तुष्टाव सा देवी प्रत्यहं गुप्तभाविनी ॥२१
भक्तिभावात्ततो योगं हरौ प्राप्य महोत्तमम् । दिन्ध्याद्विकन्धरे घोरे तत्रैवान्तरधीयत ॥२२
चतुर्युगं च द्विशतं तस्या जातं समाधितः । वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते द्वादशे चैव कुण्डे ॥२३
पुलस्त्यो छहणः पुत्रो विश्रवा रोषतोऽभवत् । शताब्दं च तपस्तप्त्वा विश्रवा नाम यो मुनिः ॥२४
सुमालिनोऽथ दैत्यस्य मुतां वै कैकसीं मुदा । समुद्धाह्य विधानेन पुलस्त्यस्स च विश्रवाः ॥२५
कदलीविपिने रम्ये गन्धमाइनपर्यते । स रेमे च तथा सार्द्धं विश्रवा भगवानृषिः ॥२६
रावणः कुम्भकर्णश्च तयोर्जातो हि राक्षसौ । रावणो मातृभक्तश्च पितृभक्तस्तोऽनुजः ॥२७
सहस्राब्दं तपो घोरं चक्रतुस्तो वरार्थनौ । तदा प्रसन्नो भगवान्यरमेष्ठी पितामहः ॥२८
ददौ ताभ्यां वरं रम्यमजेयं देवदानवैः । तौ तु लब्धवरौ कुद्धौ पुष्पकं यानमुत्तमम् ॥
गृहीत्वा च बलाद्वीरौ युयुधाते परस्परम् ॥२९

को निकालकर काशी में अयोनिज जन्म ग्रहण किया, जो कपालमोचन नामक कुण्ड से भ्रतल पर आकर 'देदनिधि' संन्यासी के नाम से विश्व-विश्वात हुए । उन्होने अपने शिष्यों को उस कठिन अघोरमंत्र के उपदेश देने के उपरान्त शंकराचार्य की शिष्य सेवा स्वीकार की । उन्होने एक यंत्र-मन्त्रात्मक ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें कीलित मंत्रों का उत्कीलन-विधान बताया गया है । १८-२०

बृहस्पति ने कहा—मयदानव की पुत्री मन्दोदरी ने, जो त्रिपुराधीश्वर की भगिनी थी, त्रिपुर के नष्ट हो जाने के उपरान्त सनातन विष्णु भगवान् की भक्तिपूर्वक, अनवरत आराधना की । इस प्रकार उसके गुप्तभाव से प्रतिदिन सप्रेम आराधित होने के नाते भगवान् ने प्रसन्नतया उसे योग प्रदान किया, जिससे वह विष्यपर्वत के उस घोर शिखर पर उनमें तन्मय होकर समाधि द्वारा अदृश्य हो गई । पश्चात् चारों युगों के दो सौ बार व्यतीत होने पर वैवस्वत मन्वन्तर के बारहवें कृतयुग के समय ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य कृषि के क्रोध द्वारा विश्रवा की उत्पत्ति हुई । तदनन्तर सौ वर्ष तक घोर तप करने के उपरान्त पुलस्त्य पुत्र विश्रवा ने सुमाली दैत्य की कैकसी नामक कन्या के साथ पाणिग्रहण संस्कार सुसम्पन्न कर गन्धमादन पर्वत के उस कदली बन के रमणीक स्थान में उसके साथ रमण किया । उससे राक्षस रावण और कुम्भकर्ण की उत्पत्ति हुई । रावण मातृभक्त और कुम्भकर्णी अपने पिता का परमभक्त था । उन दोनों ने वरदान प्राप्ति के निमित्त एक सहस्र वर्ष तक घोर तप किया, उससे प्रसन्न होकर भगवान् पितामह ब्रह्मा ने वहाँ जाकर उन्हें देव-दानवों द्वारा अजेय होने का वरदान प्रदान किया । पश्चात् उन दोनों ने बलप्रयोग द्वारा पुष्पक यान का अपहरण करके देवों के साथ घोर युद्ध में सुखप्रद

ताम्यां चिनिर्जिता देवास्त्यदत्तवा स्वर्गं मुखप्रदम् । पार्थिवैः पूजयामासुः शिवं कैलाससंस्थिताः ॥३०
एकादशः ब्दमाराध्य ते देवा गिरिजापतिम् । राङ्गुराञ्च वरं प्राप्ता निर्भयाश्र तदाभवन् ॥३१
शिवोऽपि च स्वपूर्वाद्विज्ञातो वे मानसोत्तरे । गिरौ यद्र स्थिता देवी गौतमस्य तनूद्वावा ॥

अञ्जना नाम विल्याता कीशकेसरिभोगिनी ॥३२

रौद्रं तेजस्तदा घोरं मुखे क्षसरिणो यथौ । स्मरातुरः कपीन्द्रस्तु बुभुजे तां शुभाननाम् ॥३३
एतस्मिन्नन्तरे बायुः कपीन्द्रस्य तनौ गतः । वाञ्छितामञ्जनां शुभ्रं रमयामास वै बलात् ॥३४
द्वादशाङ्गमतो जटं बृष्ट्यर्मेयुनस्थयोः । तदनु भूषणमासाद्य वर्षमात्रं हि सादधूत् ॥३५
पुत्रो जातस्त रागात्मा स रुद्रो वानराननः । कुरुपाञ्च ततो मात्रा ब्रह्मिष्ठोऽभूदिगरेरथः ॥३६
बलवानागत्य बलवान्दृष्ट्वा सूर्यमुपस्थितम् । विलिल्य भगवान्द्रद्वो देवस्तत्र समागतः ॥३७
बज्जसन्ताडितो वायि न तत्याज तदा रविन् । भयभीतस्तदा प्रानशुस्त्रूर्य त्राहीति जल्पितः ॥३८
श्रुत्वा तदात्वचनं रावणो लोकरावणः । पुच्छे शृहीत्वा तं कोशं युष्टियुद्धमचीकरत् ॥३९
तदा तु केसरिसुतो र्द्वं त्यक्त्वा रुषान्वितः । वर्षमात्रं महाघोरं मल्लयुद्धं चकार ह ॥४०
श्रमितो रावणस्तत्र भयभीतस्समन्ततः । पलायनपरो शूतः कीशरुद्देण ताडितः ॥४१
एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्रवा भगवानृषिः । स्तोत्रैवेदमयैर्देवं तुष्टाव परया गिरा ॥४२

स्वर्ग के त्यागपूर्वक पराजित होकर देवों ने कैलासपर्वत पर रहकर गिरिजापति भगवान् शंकर की पार्थिवार्चन द्वारा ग्यारह वर्ष तक आराधना की । अनन्तर शंकर द्वारा वरदान प्राप्तकर निर्भीकता प्राप्त की और उधर भगवान् शिव भी अपने पूर्वांश्च भाग द्वारा मानसरोवर के उत्तरीय पर्वत पर स्थित गौतम ऋषि की पुत्री के गर्भ द्वारा अवतरित हुए जो अंजना के नाम से विल्यात एव केसरी वानरेन्द्र की सहधर्मिणी थी, उस रौद्र तेज के उनके मुख द्वारा प्रविष्ट होने के नाते काम विह्वल होकर वानरेन्द्र केसरी ने उस कल्पाणमुखी के साथ सम्भोग किया । २१-३३ । उसी समय केसरी के शरीर में प्रविष्ट होकर वायु ने भी बलात् उस अंजना के साथ रमण किया । इस प्रकार रमण करते हुए उस दम्पती के बाहर वर्ष व्यतीत हो गये पश्चात् उस सुन्दरी के एक वर्ष तक गर्भ धारण करने के उपरान्त भगवान् रुद्र ने वानर रूप से रक्तवर्ण के पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया, किन्तु कुरुरूप होने के नाते माता द्वारा पर्वत के नीचे भाग में डाल देने पर भी उस बलवान् पुत्र ने बलात् पर्वत के ऊपर आकर वहाँ उपस्थित सूर्य को पकड़ लिया । भगवान् रुद्रदेव के द्वारा सूर्य के पीडित होने पर देवेन्द्र ने वहाँ आकर उन पर अपने वज्र का प्रहार किया, किन्तु उस पर भी उन्होंने सूर्य का त्याग नहीं किया । अनन्तर भयभीत होकर देवों ने 'सूर्य त्राहि' (सूर्य की रक्षा करो) की ध्वनि उच्च स्वर से की । उसे सुनकर लोक दुःखदायी रावण ने उस वानर की पूँछ पकड़कर मुष्टि युद्ध करना आरम्भ किया । उस समय केसरी पुत्र ने कुद्र होकर सूर्य के त्यागपूर्वक उस राक्षस से एक वर्ष तक महाघोर मल्लयुद्ध किया । पश्चात् उस वानर रूपधारी रुद्र से पीडित होने पर श्रान्त एवं भयभीत रावण ने आरों और आगना आरम्भ किया । उसी समय भगवान् विश्रवा ऋषि ने वहाँ आकर वैदिक स्तोत्रों द्वारा उनकी आराधना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् रुद्र ने

प्रसन्नस्तु तदा रुद्रो रावणं लोकरावणम् । त्यक्त्वा पम्पात्तरस्तीरे निवासं कृतवान्बली ॥	
स्थाणुमूतः स्थितस्तत्र स्थाणुर्नामि ततोऽभवत्	॥४३
निघनतं च सुरान्मुख्यान् रावणं लोकरावणम्	॥४४
निहन्ति मुष्टिभिर्यो न हनुमानिति विश्रुतः	॥४५
तपसा तस्य कीशस्य प्रसन्नो भगवान्विधिः न अधीर्वचनं प्राह शृणु रुद्र तपोनिधे ॥४६	
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाष्टाविशत्तमे युगे । व्रेतायाः पूर्वचरणे रामस्ताक्षाद्बृविष्यति ॥	
तस्य भक्तिं च सम्प्राप्य कृतकृत्यो भविष्यस्ति	॥४७
इति चोक्त्वा ददौ तस्मै चन्द्रं भाद्रप्रकाशकम् ! रावणाय त्रियां रस्यां ददौ मन्दोदरो विधिः ॥४८	
नैऋत्यस्यैव दिक्पालस्स बभूव च रावणः । अल्पायुर्मरणं प्राप्तो रामेण हरिरूपिणा ॥४९	

सूत उवाच

इति श्रुत्वा स हनुमानयोनिः कदलीवने । देहभूतो महीं प्राप्तो बालशर्मेति विश्रुतः ॥५०
 पुरीं काशीं समायातो यत्र वै गणिर्णिजा । रामपक्षे बालशर्मा शिवपक्षे तु राङ्करः ॥५१
 मासमात्रं च शास्त्रार्थस्तपोश्रासीन्महोत्तमः। शङ्कुराचार्ययतिना बालशर्मा पराजितः ॥५२
 शिष्यो भूत्वा च तत्रैव गुरुसेवापरोऽभवत् । यश्वकार तन्त्रमन्त्रं सर्वं जातिकथामयम् ॥५३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये
 अघोरपथभैरवहनुमज्जन्मरुद्रमाहात्म्यबालशर्मसमुत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः । १३

उस लोकापकारी रावण के त्यागपूर्वक पम्पा सरोवर के निकट अपना निवास स्थान बनाया वहाँ स्थाणु की भाँति स्थित रहने के नाते उनकी 'स्थाणु' के नाम से प्रस्त्याति हुई । मुख्य देवों और लोक विद्वेषी रावण को मुष्टि द्वारा प्रताडित करने पर भी उन लोगों की मुष्टियों द्वारा हनन न होने के कारण उस वानर रूपधारी रुद्र की 'हनुमान' नाम से स्थाति हुई । पश्चात् उनके तप से प्रसन्न होकर व्रह्मा ने वहाँ आकर न प्रतापूर्वक कहा—तपोनिधे रुद्र ! मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये । वैवस्वत मन्वतर के समय अद्वाइसवें व्रेतायुग के प्रथम चरण में साक्षात् भगवान् राम अवतार धारण करेंगे, उस समय उनकी भक्ति की प्राप्तिपूर्वक आप दृतकृत्य होंगे । इतना कहकर उन्हें भाद्रमासकालीन चन्द्र का अधिनायक बनाया और रावण को उस अनुपम रमणी मन्दोदरी को प्रदान किया । वह रावण नैऋत्य दिशा का अधीश्वर होते हुए भी भगवान् राम द्वारा हनन होने के नाते अल्पायु ही हुआ । ३४-४९

सूत जी बोले—इसे सुनकर अयोनिज हनुमान ने देहधारणकर इस भूतल में 'बालशर्मा' के नाम से विश्याति प्राप्त की । पश्चात् काशी में मणिकर्णिका नामक घाट स्थान पर रामपक्ष की ओर से बालशर्मा और शिवपक्ष की ओर से शंकराचार्य का एक मास तक शास्त्रार्थ हुआ, अनन्तर शंकराचार्य द्वारा पराजित होने पर बालशर्मा ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की और उसी गुरुसेवा के साथ सर्वजाति की कथा एक तंत्र-मंत्र के ग्रन्थ का निर्माण भी किया । ५०-५३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में अघोरपथभैरव हनुमज्जन्म, रुद्रमाहात्म्य और बालशर्मा की उत्पत्ति वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त । १३।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

रुद्रमाहात्म्यवर्णनम्

बृहस्पतिरुवाच

इदं दृश्यं यदा नासीत्सदसदात्मकं च यत् । तदाक्षरमयं तेजे व्याप्तरूपमचिन्त्यकम् ॥१
 न च स्थूलं न च सूक्ष्मं शीतं नोर्णं च तत्परम् । आदिमध्यान्तरहितं मनागाकारवर्जितम् ॥२
 योगिदृष्ट्ये इर्व नित्यं शून्यभूतं परात्परन् । एका दै प्रकृतिर्माया रेता या तदधः सृता ॥३
 महत्तत्वमयी ज्ञेया तदद्वयोर्धरेखिकाः । रजस्तस्त्वतभोभूता ओमित्येदमुलक्षणम् ॥४
 तत्सद्ब्रह्म परं ज्ञेयं यत्र प्राप्य पुनर्भवः । कियता चैव कालेन तस्येच्छा समपद्यत ॥५
 अहङ्कारस्ततो जातस्ततस्तन्मात्रिकाः पराः । पञ्चभूतान्यतेष्यासञ्ज्ञानविज्ञानकान्यतः ॥६
 द्वार्दशज्जडभूतांश्च दृष्ट्वा स्वेच्छामयो विभुः । द्वन्द्वभूतश्च सगुणो दुद्विर्जीवस्समागतः ॥७
 पूर्वद्विर्त्सगुणः सोमौ निर्गुणश्च परार्द्धतः । ताभ्यां गृहीतं तत्सर्वं चैतन्यमभवत्ततः ॥८
 सविराडितिसंज्ञो वै जीवो जातस्सनातनः । विराडो नाभितो जातं पदं तच्छत्योजनम् ॥९
 पद्माच्च कुरुमं जातं योजनायाममुत्तमम् । तत्पदमकुसुमाज्जातो विरच्छिः कमलासनः ॥१०
 द्विभुजस्स चतुर्वक्त्रो द्विपादो भगवान्विदिः । ज्ञेयः सप्तवितत्यज्ञो महाचिन्तामवाप्तवान् ॥११

अध्याय १४

रुद्रमाहात्म्य का वर्णन

बृहस्पति बोले—जिस समय यह सदसदात्मक दृश्य (स्थूल प्रपञ्च-जगत्) महाप्रलय में विलीन हो जाने के कारण दिवाई नहीं देता है, उस समय केवल अक्षर (अविनाशी) तेज वर्ममान रहता है, जो व्याप्त एवं अचिन्त्य (मन, वाणी द्वारा अगोचर) है । वह तेज, स्थूल, सूक्ष्म, शीत (ठंडा) और उष्ण (गरम) नहीं है तथा आदि, मध्य एवं अन्तरहित होते हुए उसका कोई आकार भी नहीं है । उस पर, नित्य, शून्यभूत एवं परात्पर तेज के नीचे जिसका दर्शन केवल योगियों को होता है, एक वही प्रकृति जाया रेता की रहती है । पुनः उसके नीचे उद्धरेखा की भाँति महत्तत्वमयी रज, सत्त्व और तम की स्थित रहती है । इन सबका आधार भूत 'ओंकार' ही तत्सत् रूप परात्प्रह्य है, जिसकी प्राप्ति हो जाने पर पुनः जन्म नहीं होता है । इस प्रकार उस महाप्रलय के अगाध पर्याप्ति में विहार करते हुए बहुत दिनों के उपरांत उस पर ब्रह्म की पुनः इच्छा उत्पन्न होती है, जिससे उसके साथ ही अहंकार तथा अहंकार से पंचतन्मात्र और उससे ज्ञान-विज्ञान रूप पंचभूत (आकाशादि) की उत्पत्ति हुई । उस वाइस तत्त्वों से युक्त जडभूत प्रकृति कार्य (ब्रह्माण्ड) को देखकर स्वेच्छामय विभु ने दो भागों में विभक्त होकर सगुण के द्वारा दुद्धि और जीव का निर्माण किया । इन्हीं दोनों द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चेतना प्राप्त होती है जिससे उस सनातन जीव की 'विराड' संज्ञा होती है । उसी विराड के नाभि द्वारा सौ योजन का विस्तृत कमल एवं उस कमल से एक योजन का विस्तृत पुष्प उत्पन्न होता है । १-१० और उसी कमलपुष्प द्वारा कमलासन ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है, जो दो भुजाएँ, चारमुख और दो चरणों से सुसज्जित रहते हैं सत्ताइस अंगों से विभूषित भगवान् ब्रह्मा को अपने जन्म ग्रहण करने के उपरान्त घोर चिंता उत्पन्न होती है कि—मैं कौन हूँ, किसके द्वारा

कोऽहं कस्मात्कुत आवातः का मे जननी को मे तातः ।

इत्यधिचिन्तय तं हृदि देवं शब्दमहत्वमयेन स आह ॥१२

तपश्चैव तु कर्तव्यं संशयस्यापनुज्ञे । तदाकर्ष्य विधिसाक्षात्तपस्तेषे महत्तरम् ॥१३
 सहवाद्वं प्रयत्नेन ध्यात्वा विष्णुं सनातनम् । चतुर्भुजं योगगम्यं निर्णयं गुणविस्तरम् ॥१४
 समाधिनिष्ठो भगवान्बभूव कमलासनः । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुबाह्यो भूत्वा चतुर्भुजः ॥१५
 श्यामाङ्गो बलवानस्त्री दिव्यभूषणभूषितः । अह्यणेऽद्वै हरिमत्स्थौ यथा बालः पितुः स्वयम् ॥१६
 तदा प्रबुद्धश्च विधिस्तं दृष्ट्वा नोहमागतः । वत्सवत्सेति वच्चनं विधिः प्राह् प्रसन्नधीः ॥१७
 विहस्याह तदा विष्णुरहं ब्रह्मन्यिता तव । तयोविददतोरेवं रद्वो जातस्तमोमयः ॥१८
 ज्योतिर्लङ्घश्च भयदो योजनानन्तविस्तरः । हंसरूपं तदा ब्रह्मा वराहो भगवान्नभु ॥१९
 शताब्दं तौ प्रयत्नेन जातौ चोर्धवस्थः क्रमात् । लज्जितौ पुनरागात्य तदा दुष्टुवतुर्मुदा ॥२०
 ताभ्यां स्तुतो हरः साक्षाद्वौ नान्ना तमागतः । कैलासनिलयं कृत्वा समाधिस्थो बन्धुव ह ॥२१
 जातं पञ्चयुगं तत्र दिव्यं रुद्रस्य योगिनः । एतस्मिन्नन्तरे घोरो दानवस्तारकासुरः ॥२२
 सहवाद्वं तपः कृत्वा ब्रह्मणो दरमात्तवान् । भववीर्योद्भवः पुत्रः स ते मृत्युं करिष्यति ॥२३
 इति मत्वा सुराच्छित्वा महेन्द्रश्च तदाभवत् । ते सुराश्चैव कैलासं गत्वा रुद्रं प्रतुष्टुत्वः ॥२४
 वरं ब्रूहीति वच्चनं सुरान्प्राह तदा शिवः । ते तु श्रुत्वा प्रणम्योचुर्दच्चनं नन्नकन्धराः ॥२५

कहाँ से उत्पन्न हुआ, और मेरी माता एवं पिता कौन हैं? इस प्रकार की चिंता करते हुए उनके हृदय में एक महान्-ध्वनि द्वारा परब्रह्म ने कहा—अपने संशय के नाशार्थ तुम्हें तप करना परमावश्यक है! इसे सुनकर विधि ने एक सहस्र वर्ष तक भगवान् सनातन विष्णु की धोर आराधना की, जो चार भुजाओं से युक्त योगगम्य, निर्णय एवं विस्तृत गुणरूप हैं। भगवान् कमलासन (ब्रह्मा) के समाधिस्थ होने पर विष्णु बालक का रूप धारणकर, जो श्यामल वर्ण, बलवान् एवं अस्त्रादिसमेत भूषणों से भूषित था, दिता की गोद में बच्चे की भाँति ब्रह्मा उस बालक के अङ्कुओं में स्थित हो गये । १०-१६। उस समय प्रबुद्ध होने पर ब्रह्मा ने उस बालक को देखकर मोह-मुध होते हुए 'वत्स, वत्स' कहना आरम्भ किया। उसे सुनकर प्रसन्नतापूर्ण भगवान् ने हँसकर उनसे कहा—ब्रह्मन्! मैं तुम्हारा पिता विष्णु हूँ। किन्तु ब्रह्मा इसे स्वीकार नहीं कर रहे थे। उन दोनों के इस प्रकार विवाद करने के समय ही तमोमय रुद्र का आविर्भाव हुआ, जो ज्योतिर्लिंग रूप, भयदायक एवं अनन्त योजन विस्तृत थे। उस समय ब्रह्मा ने हंसरूप और भगवान् विष्णु ने वाराह रूप धारणकर ऊपर-नीचे क्रम से सौ वर्ष तक उसकी सीमा का पता लगाने के लिए प्रयत्न किया, किन्तु उसका पता न लगने पर लज्जित होते हुए दोनों ने उसकी आराधना की। उन दोनों की स्तुति में प्रसन्न होकर शिव ने भगवान्म से वहाँ साक्षात् प्रकट होकर पश्चात् कैलास को अपना आवास स्थान बनाकर समाधि लगाया। वहाँ रुद्रयोगी के समाधिस्थ होने पर दिव्य पाँच युगों के बीत जाने के उपरान्त दानव श्रेष्ठ तारकासुर ने एक सहस्र वर्ष तक धोर तप करके ब्रह्मा द्वारा वरदान प्राप्त किया। उस समय ब्रह्मा ने उससे यह भी कहा था कि—(शिव) के बीर्य द्वारा उत्पन्न पुत्र से तुम्हारी मृत्यु होगी। इसे सुनकर उसने देवों पर विजय प्राप्ति पूर्वक देवन्द्र का पद अपना लिया। अनन्तर उन देवों ने कैलास जाकर भगवान् रुद्र की आराधना थी। प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें वर याचना के लिए कहा। इसे सुनकर विनीत भाव से प्रणाम पूर्वक

भगवन्नत्रह्याणा दत्तो वरो वै तारकाय च । शिवनीर्देहूद्वः उत्र स ते मृत्युर्भविष्यति ॥

अतोऽस्मान्नरक्ष भगवन्विवाहं कुरु शङ्कर ॥२६

स्वायम्भूदेऽन्तरे पूर्वं दक्षश्रासोत्रजापतिः । षष्ठिकन्यास्ततो जातास्तासां मध्ये सती वरा ॥२७

वर्षमात्रं भवन्तं सा पार्थिवैः समपूजयत् । तस्यै त्वया वरो इतः सा बभूव तव ग्रिय ॥२८

तत्पित्रा या कृता निन्दा भवते ऽज्ञानवक्षुषा । तन्य दोषात्सती देवी तत्पाज स्वं कलेवरम् ॥२९

सतीतेजस्त्राव दिव्यं हिमाद्रौ घोगमागमत् । पीडितस्तेन गिरिराङ् बभूव स्मरविह्वलः ॥३०

पित्रीश्वरं स तुष्टाव कामव्याकुलवेतनः । अर्यमा तु नदा तुष्टो ददौ तस्मै सुता निजाम् ॥

नेनां मनोहरा शुद्धां स दृष्ट्वा हर्षितोऽभवत् ॥३१

नररूपं शुभं कृत्वा देवतुल्यं च तत्प्रियम् । स रेमे च तया सार्द्धं चिरं कालं महावने ॥३२

गर्भीं जातस्तदा रम्यो नववर्षात्मित्युत्तमः । कन्या जाता नदा सुभूर्गाँरी गौरमयी सती ॥३३

जातमाद्रा च सा कन्या बभूव नवहत्यिनी । तुष्टाव शङ्करं देवं भवन्तं तपसा चिरम् ॥३४

शताब्दं च जले भग्नाशताब्दिवह्विस्त्रियता । शताब्दे च स्थिता वस्यौ झटाब्दं नभसि स्थिता ॥३५

शताब्दं च स्थिता चन्द्रे शताब्दं रविमण्डले । शताब्दं गर्भभूम्यां च स्थिता सा गिरिजा सती ॥३६

शताब्दं च महत्तत्वे गत्वा योगबलेन सा । भवन्तं शङ्करं शुद्धं तत्र दृष्ट्वा स्थिताद्य वै ॥३७

त्रिशताब्दिमतो जातं तस्मात्वं पार्वतीं शिवाम्^१ । वरं देहि प्रसन्नात्मा महादेव नमोऽस्तु ते ॥३८

देवों ने उनसे कहा—भगवन् ! ब्रह्मा ने तारकासुर को वरदान दिया है कि—शिव के वीर्य से उत्पन्न हुए पुत्र द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी। अतः भगवान् ! शंकर ! हम लोगों के रक्षार्थ आप विवाह अवश्य करें। पहले स्वायम्भूव मन्वन्तर के समय में दक्ष नामक प्रजापति हुए थे। उनकी साठ कन्याओं में सती कन्या सर्वश्रेष्ठ थी जिसने पार्थिव पूजन द्वारा एक वर्ष तक आपको आराधना की। उससे प्रसन्न होकर, आपने वरदान प्रदान पूर्वक उसे अपनी सहधर्मिणी बनाया था किन्तु अज्ञानी उनके पिता दक्ष ने आपकी निन्दा की जिस दोष के कारण सती ने अपनी शरीर का परित्याग कर दिया। पश्चात् सती का वह दिव्य तेज हिमालय पर्वत पर गया, उससे पीडित होकर गिरिराज कामचेष्टा करने लगे। काम से अत्यन्त पीडित होने पर उन्होंने पितरों के अधीश्वर अर्यमा की आराधना की। प्रसन्न होकर अर्यमा ने उन्हें मैना नामक अपनी सुन्दरी कन्या प्रदान किया, जो मनोहर एवं अत्यन्त विशुद्ध थी। उसे देखकर इन्होंने हर्षित होकर देवतुल्य एवं प्रिय मनुष्य का रूप धारण कर उसके साथ उस महावन में चिरकाल तक रमण किया। १७-३३। तदुपरात उनके गर्भ द्वारा नववर्ष की एक परमाङ्गत कन्या की उत्पत्ति हुई। जो सुभूत, गौरमयी एवं सती गौरी थी। उत्पन्न होते ही वह नववर्ष की हो गई और भगवान् शंकर देव की तप द्वारा चिरकाल तक उसने आराधना की—सौ वर्ष जल में, सौ वर्ष अग्नि से आवेष्टित (पंचाग्नि), सौ वर्ष तक वायु द्वारा और सौ वर्ष तक आकाश में स्थित, सौ वर्ष चन्द्र मण्डल, सौ वर्ष सूर्य मण्डल, सौ वर्ष भूगर्भ (गुफा), और सौ वर्ष तक योगबल द्वारा महत्तत्व में स्थित रहकर—आप का शुद्ध द्विर्णन किया। इसीलिए आज तीन सौ वर्ष हो रहे हैं वह उसी स्थान स्थित है। अतः महादेव ! आप प्रसन्न होकर उस पार्वती शिवा को वर प्रदान करें। महादेव आपको नमस्कार कर रहा हूँ। इस

१. सम्प्रदाने द्वितीयार्षी ।

इति श्रुत्वा वचो रम्यं शङ्करो लोकशङ्करः । देवानाह तदा वाक्यमयेऽग्यं वचनं हि वः ॥३९
 मत्तो ज्येष्ठाश्च ये रुद्राः कुमारवतधारिणः । मृगव्याधादयो मुख्या दशज्योतिस्समुद्भवाः ॥४०
 अहं तेषाम्बद्धजो भवो नासैव योगराट् । माया ल्पां सुभां नारीं कथं गृह्णामि लोकदाम् ॥४१
 नारी भगवती साक्षात्तदा सर्वमिदं ततम् । मातृरूपा तु ता ज्ञेया योगिनां लोकवासिनाम् ॥४२
 अहं येनी कथं नारीं सातरं वारितुं क्षमः । तत्सादहं भद्रदर्थे स्ववीर्यमाददास्यहम् ॥४३
 तद्वीर्ये भगवान्वह्निः प्राप्य कार्यं करिष्यति । इत्युक्त्वा वह्नये देवो ददौ वीर्यमहुत्तन्म् ॥
 स्थयं तत्र समाधिस्थो बभूव भगवान्हरः ॥४४

तदा शक्तादयो देवा दह्निना सह निर्यपुः । सत्यलोकं समागत्याबुवन्त्सर्वं प्रजापतिम् ॥४५
 श्रुत्वा तत्कारणं सर्वं स्वयम्भूश्चतुराननः । नमस्कृत्य परं ब्रह्म कृष्णध्यानपरोऽश्वत् ॥४६
 ध्याननामेण भगवान्नात्वा ब्रह्मा परं पदम् । हेतु तद्वीर्याभास यथा शङ्करभाषितम् ॥४७
 श्रुत्वा दिहस्य भगवान्स्वमुखातेज उत्तमम् । समुत्पाद्य ततो जातः पुरुषो इच्छिराननः ॥४८
 ब्रह्माण्डस्य च्छर्विर्या वै स्थिता तस्य कलेवरे । प्रद्युम्नो नाम विल्वातं तस्य जातं महात्मनः ॥४९
 तेन खार्द्धं तदा ब्रह्मा तस्माप्य स्वं कलेवरम् । ददौ तेभ्यस्तु पुरुषं प्रद्युम्नं शम्बरार्तिदम् ॥५०
 तेजसा तस्य देवस्य नरा नार्यस्समन्ततः । एकीभूतास्त्रिलोकेषु बभूदुः स्मरपीडिताः ॥५१
 स्थावराः सौम्यभूता वै ते तु कामाप्निपीडिताः । सरिद्विश्च लताभिश्च मिलितास्सम्भूत्विरे ॥५२

सुन्दर वाणी को सुनकर लोकशंकर शिवजी ने देवों से कहा—‘ब्रह्मा का कहना उचित नहीं है ।’ क्योंकि मुझसे ज्येष्ठ रुद्रगण, जो कुमारावस्था में ही ब्रह्मारण किये हैं, ज्योति से उत्पन्न होकर मृगव्याघ आदि के रूप में रह रहे हैं । मैं उनसे कनिष्ठ (छोटा) योगीश्वर भव के नाम से स्वात हूँ । माया रूप शुभ स्त्री का ग्रहण करना, जो लोक सर्जन कर्त्ता है, मेरे लिए अनुचित है । क्योंकि साक्षात् भगवती नारी हैं, जिसने इस ब्रह्माण्ड का विस्तार किया है । अतः लोक निवासी योगियों की वह मातृरूप है । मैं योगी होकर उस मातृरूप नारी का ग्रहण कैसे कर सकता हूँ । इसलिए आप लोगों के कार्य के लिए मैं स्वयं अपने वीर्य को निकालकर अग्निदेव को दे दूँगा, उसके द्वारा वे आपका कार्य करेंगे । इतना कहकर शिवजी ने अपना वीर्य अग्नि को देकर पुनः उसी स्थान पर समाधि लगाया । पश्चात् इन्द्रादि देवों ने अग्निसमेत वहां से निकलकर सत्यलोक की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने प्रजापति ब्रह्मा से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया । उसे सुनकर चतुर्मुख ब्रह्मा ने परब्रह्म कृष्ण का नमस्कार पूर्वक ध्यान किया । ब्रह्मा ने ध्यान मार्ग से परमपद पर पहुँचकर शंकरजी की कही हुई सम्पूर्ण बातें भगवान् को सुनाया, जिसे सुनकर हँसते हुए भगवान् ने अपने मुख द्वारा उत्तम तेज बाहर निकाला, जो अत्यन्त सुन्दर पुरुष हुआ और ब्रह्माण्ड की सभी छवि उसकी शारीर में झलक रही थी । उस पुरुष का ‘प्रद्युम्न’ विश्वविल्वात नाम हुआ, जिसके साथ ब्रह्मा ने अपने कलेवर में प्रवेश किया । ब्रह्मा ने उस शम्बरासुर को पीड़ित करने वाले प्रद्युम्न नामक पुरुष को सभी लोगों को सौंप दिया । ३४-५०। जिसके तेज से कामपीड़ित होकर तीनों लोक के स्त्री-पुरुष गण एक होकर अत्यन्त कामातुर होने लगे । यहाँ तक कि सौम्य वृक्षगणों ने भी नदियों, एवं लताओं से मिलकर कामाग्नि की शांति की इच्छा प्रकट की । उस समय ब्रह्माण्ड नायक कालरूप शिव ने,

ब्रह्माण्डेशः शिवः साक्षाद्गुद्रः कालाग्निसन्धिभः । १त्रिनेत्रात्तेज उत्पाद्य शमयामास तद्वयथाम् ॥५३
तदा कुद्धः स कृष्णाङ्गो शृहीत्वा कौसुमं धनुः । दिव्यान्पञ्च शरान्धोरान्महादेवाय दन्धवे ॥५४
उच्चाटनेन बाणेन गन्तामूल्लोकशङ्करः । वशीकरणबाणेन नारीवश्यः शिवोऽभवत् ॥५५
स्तम्भनेन महादेवः शिवापर्खे स्थिरोऽभवत् । आकर्षणेन भगवाञ्छिवाकर्षणतत्परः ॥
मारणेनैव बाणेन मूर्छितोऽभूम्नहेश्वरः ॥५६

एतस्मिन्नन्तरे देवी महत्त्वे स्थिता शिवा । मूर्छितं शिवमालोक्य तत्रैवान्तर्द्धिमागमत् ॥५७
तदोत्थाय महादेवो विललाप भृशं मुहुः । हा प्रिये चन्द्रवदने हा शिवे च घटस्तनि ॥५८
हा उमे सुन्दराभे च पाहि मां त्मरानिह्वलम् । दर्शनं देहं रम्भोरु दत्सभूतोऽस्मि साम्प्रतम् ॥५९
एवं विलपनानं तं गिरिजा योगिनी स्वयम् । समागत्य वचः प्राह नत्वा तं शङ्करः प्रियम् ॥६०
कन्याहं भगवन्देव मातृपित्रानुसारिणी । तयोस्सकाशाद्गगवन्मम पाणिं गृहाण भोः ॥६१
तथेति मत्वा स शिवः प्रद्युम्नशरपीडितः । सप्तर्षींप्रेषयामास ते तु गत्वा हिमाचलम् ॥
सम्बोध्य च विवाहस्य विर्धि चक्रुम्भदान्विताः ॥६२

ब्रह्माण्डे ये स्थिता देवास्तेषां त्वामी महेश्वरः । विवाहे तस्य सम्प्राप्ते सर्वे देवास्समाप्युः ॥६३
अनन्तांश्च गणांश्चैव सुरान्दृष्टुः हिमाचलः । गिरिजां शरणं प्राप्य तस्थौ पर्वतराद् स्वयम् ॥६४

जो साक्षात् शृददेव हैं, अपने त्रिनेत्र से तेज प्रकटकर उस पीड़ा की शान्ति किया । उस समय कृष्णांग प्रद्युम्न ने कुद्ध होकर महादेवजी के लिए अपने कुसुम धनुषपर उन धोर दिव्य पाँचो वाणों का अनुसन्धान किया, जिससे उच्चाटन वाण द्वारा लोक रक्षक शिव ने गमन किया, वशीकरण वाण द्वारा स्त्री के अधीन, स्तम्भन वाण द्वारा पार्वती के समीप स्थित, आकर्षण वाण द्वारा शिवा के आकर्षणार्थ उद्यत होकर और मारण वाण द्वारा मूर्छा प्राप्त की । उमी बीच महत्त्व में स्थित पार्वती ने शिव को मूर्छित देखकर उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गई । पश्चात् शिव ने उठकर बार-बार विलाप करना आरम्भ किया—हा प्रिये, चन्द्रवदने, हा कलशस्तनी शिवे ! हा सौन्दर्यं पूर्णे ! मुझ कामपीडित की रक्षा करो । रम्भे ! मुझे दर्शन दो, इस समय मैं तुम्हारा सेवक हूँ । इस प्रकार विलाप करने वाले शिव के समीप पहुँचकर योगिनी गिरिजा ने नमस्कार पूर्वक कहा—देव ! माता-पिता के अनुसार चलनेवाली मैं कन्या हूँ । भगवन् ! उन दोनों के अनुमोदन द्वारा मेरा पाणिग्रहण करें । प्रद्युम्न के शर से पीडित होने पर शिव ने पार्वती की बात स्वीकार पूर्वक सप्तर्षियों को हिमालय के पास भेजा । सप्तर्षियों ने वहाँ जाकर हिमाचल को विशेष जानकारी कराते हुए विवाह के लिए स्वीकृति प्राप्त की । सहर्ष उनके विवाह में सभी देवगणों ने यात्रा की । क्योंकि ब्रह्माण्डनायक के विवाह में उन्हें सम्मिलित होना परमावश्यक था । हिमालय विवाह के अवसर पर शिव के साथ अनन्त देवगणों को देखकर विचलित हो उठे । अन्त में पर्वतराज गिरिजा की शरण में जाकर समस्त वृतान्त

तदा तु पार्वती देवी निधीन्सिद्धीः समन्ततः । चकार कोटिशस्तत्र बहुरूपां सनातनो ॥६५
दृष्ट्वा तद्विस्मिता देवा ब्रह्मणा सह हर्षिताः । तुष्टुवुः पार्वतीं देवीं नारीरत्नं सनातनीम् ॥६६

देवा ऊचुः

उ वितर्के च मा लक्ष्मीर्बहुरूपा विदृश्यते । उमा तस्माच्च ते नाम नमस्तस्यै नमो नमः ॥६७
कतिदिदयनान्येव ब्रह्माण्डेऽस्मिन्निष्ठे तव ! कात्यायनी हि विजेया नमस्तस्यै नमो नमः ॥६८
गौरवर्णाच्च वै गौरीः इयामवर्णाच्च कालिका । रक्तवर्णाद्वैमदती नमस्तस्यै नमो नमः ॥६९
भवस्य दयिता त्वं वै भवानी रुद्रसंयुता । दुर्गा त्वं योगि दुष्प्राप्या नमस्तस्यै नमोनमः ॥७०
नान्तं जग्मुर्वयं^१ ते वै चण्डिका नान् विश्रुता । अम्बा त्वं मातृभूता नो नमस्तस्यै नमोनमः ॥७१
इति श्रुत्वा स्तवं तेषां दद्वा सर्वमङ्गला । देवानुवाच मुदिता दैत्यभीर्ति हरामि वः ॥७२
स्तोत्रेणानेन सम्प्रीता भवामि जगतीतले ॥७३

इत्युक्त्वा शम्भुसहिता कैलासं गुह्यकालयम् । गुह्यायां मिथुनीभूय सहस्रालं भुमोद वै ॥७४
एतस्मिन्नतरे देवा भीरुका लोकनाशनात् । ब्रह्माण च पुरस्कृत्य दुष्टुवुर्गरिजापतिम् ॥७५
लज्जितौ तौ तदा तत्र पश्चात्तापं हि चक्रतुः । महान्क्रोधस्तयोश्चासीतेन वै दुद्रुवुः सुरा: ॥७६
प्रदुष्मो बलवाँस्तत्र सन्तस्यै गौरिवाचलः । रुद्रकोपाग्निना दग्धो बभूव बलवत्तरः ॥७७

कहा । उसे सुनकर पार्वती देवी ने, जो बहुरूपा एवं सनातनी है, चारों ओर कृद्धियों और सिद्धियों की करोड़ों मूर्तियों को उत्पन्नकर सभी को सेवा कार्य में नियुक्त किया । ब्रह्मा समेत देवों ने उसे देख अत्यन्त आश्र्य प्रकट करते हुए नारीरत्न सन्तस्यै उस पार्वती देवी की आराधना की । ५१-६६

देवों ने कहा—आपके उमा नामक शब्द में उ का अर्थ वितर्क और मा का लक्ष्मी अर्थ है । इसीलिए आपका बहुरूप दिवार्हा देता है । हम लोग उमा नामक आपको बार-लार नमस्कार कर रहे हैं । शिवे ! इस ब्रह्माण्ड में आपके कतिचित् (अनेकों) स्थान हैं अतः कात्यायनी रूप आपको नमस्कार करता है । भव (शिव) की दयिता होने के नाते रुद्र समेत रहने वाली भवानी तथा योगियों के लिए भी दुष्प्राप्य होने के नाते तुम्हें दुर्गा को नमस्कार कर रहा है । आपके प्रत्यात रूप का पार हमलोग न पा सके । अतः चण्डिका और मातृरूप होने के नाते अम्बारूप आपको नमस्कार है । देवों की ऐसी स्तुति को सुनकर वरदायिनी सर्वमंगलादेवी ने देवों से कहा—मैं तुम्हारे दैत्य भय को दूर करूँगी । क्योंकि त्रिलोक से प्रसन्न होने के नाते मैं भूतल पर प्रकट हूँगी । इतना कहने के उपरांत पार्वती शिव के साथ कैलास पहुँचकर उसकी गुफा में सहस्र वर्ष तक आनन्द प्राप्त की । उसी बीच देवगणों ने लोक नाश होने के भय से भयभीत हो ब्रह्मा को आगे कर शिव की आराधना किया । उस समय लज्जित होकर उन दोनों ने अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए पीछे अत्यन्त क्रोध भी किया, जिससे भयभीत होकर देवों ने वहाँ से पलायन किया किन्तु बलवान् प्रद्युम्न निश्चल वृषभ की भाँति उसी स्थान पर स्थित रहने के नाते उस प्रचण्ड रुद्र

प्रद्युम्नः स्थूलरूपं च त्यक्त्वा भस्ममयं तदा । सूक्ष्मदेहमुपागच्छ विशुतोऽभूहनज्ञकः ॥
यथा पूर्वं तथैवासीत्कायं कृत्वा स्मरो विभुः ॥७८
स्थूलरूपा रतिदेवी शताब्दं शङ्करं परम् । ध्यानेनाराधयामास गिरिजावल्लभं ब्रतैः ॥
तदा ददौ वरं देवस्तस्यै रत्यै सनातनः ॥७९
रतिदेवि शृणु त्वं वै सोकानां हृत्सु जायते । यौवने दंयसि प्राप्ते नृणां देहैः पर्वतं स्वकम् ॥
भजिष्यसि मध्येन्द्र प्रद्युम्नं कृष्णसम्भवम् ॥८०
स्वारोचिषान्तरः कालो वर्तते चाऽद्यमुप्रियः । वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते हृष्टावेंशतमे युगे ॥
द्वापरान्ते च भगवान् कृष्णः साक्षात्जनिष्यति ॥८१
तदा तस्य सुतं देवं प्रद्युम्नं मेष्मुर्द्धनि । भजिष्यसि सुखं रस्ये विपिने नन्दने चिरम् ॥८२
अन्येषु द्वापरान्तेषु स्वर्णगर्भोः हि तत्पतिः । जन्मवान्वर्तते भूमौ यथा कृष्णस्तथैव सः ॥८३
मध्याह्ने चैव सन्ध्यायां ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कल्पेकल्पे हरिस्साक्षात्करोति जन्मज्ञलम् ॥८४
इत्युक्त्वा भगवाऽच्छम्भुत्सत्रैवान्तर्द्विमागमत् । राजा बभूव रुद्राणी गिरिजावल्लभो भदः ॥८५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा भवः साक्षात्स्वमुखात्स्वांशमुत्तमम् । समुत्पाद्य तदा भूमौ गोदावर्यां बभूव ह ॥८६
आचार्यशर्मणो गेहे पुत्रो जातो भवांशकः । रामानुजस्त वै नामानुजोऽभूद्रामशर्मणः ॥८७
एकदा रामशर्मा वै पतञ्जलिमते स्थितः । तीर्थतीर्थान्तिरं प्राप्तः पुरीं काशीं शिवप्रियाम् ॥८८
शङ्कराचार्यमागम्य शतशिष्यसमन्वितः । शास्त्रार्थं कृतवान् रम्यं कृष्णपक्षो हरिप्रियः ॥८९

कोपग्नि में दग्ध को गये । भस्ममय उस स्थूल रूप के परित्याग पूर्वक सूक्ष्म देह की प्राप्ति की, जिससे उन्हें 'अनङ्ग' कहा गया है । अंगहीन होने पर भी कामदेव पूर्व की भाँति ही शक्तिशाली है । पश्चात् रति ने भगवान् शंकर की जो गिरिजावल्लभ कहे जाते हैं । एक वर्ष तक आराधना की । उससे प्रसन्न होकर सनातन शिव ने रति को वर प्रदान किया कि—रति देवि ! मैं कह रहा हूँ, सुनो ! मनुष्यों के हृदय में तुम्हारी उपस्थिति होगी युवावस्था प्राप्त मनुष्यों के देह द्वारा अपने उस पति के उपभोग प्राप्त करोगी जो मेरी अर्चना एवं कृष्ण द्वारा उत्पन्न प्रद्युम्न नामक है । इस स्वरोचिष मन्वन्तर काल के बीत जाने के उपरांत वैवस्वतमन्वन्तर के समय जो अट्टाईसवें द्वापर का अन्त भाग कहलायेगा, साक्षात् भगवान् का अवतार होगा । उस समय उनके पुत्र रूप में उत्पन्न प्रद्युम्न के साथ मेरुर्वत के उस नन्दन वन में चिरकाल तक रमण सुख तुम्हें प्राप्त होगा । अन्य द्वापरान्त युगों में वह सुवर्ण गर्भित होकर भूमि में भगवान् कृष्ण की भाँति वर्तमान रहेगा । इस प्रकार अव्यक्त ब्रह्म के मध्याह्न और संध्या समय प्रत्येक कल्पों में भगवान् विष्णु साक्षात् प्रकट होकर जन मांगलिक क्रिया करते हैं । इतना कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्हित हो गये । पश्चात् रुद्र गिरिजावल्लभ भवराज पद से प्रतिष्ठित हुए । ६७-८५

सूतजी बोले—इसे सुनकर साक्षात् भव ने अपने मुख से अपने अंश को निकालकर गोदावरी नदी में डाल दिया, जो आचार्य शर्मा के गृह में पुत्र रूप से उत्पन्न होकर रामशर्मा के अनुज होने के नाते 'रामानुज' नाम से प्रल्यात हुआ । एक बार रामशर्मा ने पतञ्जलि मतावलम्बी होकर तीर्थों में ब्रह्मण करते हुए शिवप्रिय काशी की यात्रा की । वहाँ शंकराचार्य के पास जाकर अपने सौ शिष्यों समेत उन हरिप्रिय रामशर्मा द्वारा पराजित होने पर

शङ्कराचार्यविजितो लज्जितो निशि भीरुकः । त्वगेहं पुनरायातः शाङ्करैर्वा शरैर्हतः ॥१०
 रामानुजस्तु तच्छुत्वा सर्वशास्त्रविशारदः । भ्रातृशिष्येश्च सहितः पुरीं काशीं समाधयौ ॥११
 वादो वेदान्तशास्त्रे च तयोश्चासीन्महात्मनोः । शङ्करः शिवपक्षश्च कृष्णपक्षस्स वै द्विजः ॥१२
 मासमात्रेण देवान्ते दर्शितस्तेन वै हरिः । वासुदेवस्स वै नाम सच्चिदानन्दविग्रहः ॥१३
 वासुदेवस्स वै ज्ञेयो वसुष्वशेन दीव्यतिः । वसुदेवस्स वै ब्रह्म तस्य सारो हि यः स्मृतः ॥१४
 वासुदेवो उरिरस्साक्षाच्छिवपूज्यः सनातनः । शङ्करो लज्जितस्तत्र भाष्यशास्त्रे सन्दर्भगतः ॥१५
 पक्षमात्रं शिवैस्त्वैर्वर्णयामास वै शिवम् । रामानुजेन तत्रैव भाष्ये सन्दर्भितो हरिः ॥१६
 गोविन्दो नाम विख्यातो वैव्याकरणदेवता । नन् परां विन्दते यस्माद्गोविन्दो नान् वै हरिः ॥१७
 गिरीशस्तु न गोविन्दो गिरीणामीश्वरो हि सः । गोपलस्तु न वै ल्द्रो यवारूढः प्रकोर्तितः ॥१८
 ज्ञेयः पशुपतिः शम्भुर्गोपतिनैर्व विश्रुतः । लज्जितः शङ्कराचार्यो मीमांसाशास्त्रमहातः ॥१९
 तयोर्दशदिनं शास्त्रे विवादस्सुमहानभूत् । यस्तु वै यज्ञपुरुषो रामानुजमतप्रियः ॥२००
 विच्छिन्नः शङ्करैव सृगभूतः पराजितः । आचार्यप्रभवो धर्मे यज्ञदेवेन निर्मितः ॥२०१
 भ्रष्टचारस्तदा जातो यज्ञे दक्षप्रजापतेः । इति रामानुजः श्रुत्वा वचनं प्राह् नन्नधीः ॥२०२
 कर्मणे जनितो यज्ञो विश्वपालनहेतवे । कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥२०३
 अक्षरोऽयं शिवः साक्षाच्छब्दब्रह्मणि संस्थितः । पुराणपुरुषो यज्ञो ज्ञेयोऽक्षरकरो भुवि ॥
 अक्षरात्त तु वै श्रेष्ठः परमात्मा सनातनः ॥२०४

लज्जित एवं उन शांकर वर्णों से पीड़ित होते हुए वे अपने घर लौट आये । उनके वृत्तान्त सुनकर समस्त शास्त्र नियुण रामानुज ने अपने भाई के शिष्यों समेत काशीपुरी की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर उन दोनों ने वेदान्त शास्त्र का विषय लेकर शंकराचार्य ने शिव और रामानुज ने कृष्ण पक्ष का समर्थन करना आरम्भ किया । इस प्रकार एक मास तक वेदान्त की चर्चा करते रहने पर रामानुज ने भगवान् विष्णु का दर्शन कराया, जो सच्चिदानन्द एवं वासुदेव कहे जाते हैं । इसलिए वासुदेव ब्रह्म हुए और उनके सारभूत वासुदेव हुए । जो शिवपूज्य, सनातन एव साक्षात् विष्णु कहे जाते हैं । पश्चात् लज्जित होकर शिव ने भाष्य में प्रवेश किया जिससे शिव सूत्रों द्वारा एक पक्ष तक शिव पक्ष की स्थापना की वसुओं में अपने अंश द्वारा प्रकाशित रहने वाले को वासुदेव कहा गया है । किन्तु रामानुज ने उस भाष्य में भी भगवान् का दर्शन कराया, जो गोविन्द के नाम से वैयाकरण देव प्रस्त्यात है । जिस नाम के सामर्थ्य से परावाणी की प्राप्ति हो सके उसे गोविन्द कहा गया है इसलिए यह भगवान् का नामान्तर ही बताया जाता है । और गिरीश गोविन्द नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे पर्वतेश्वर हैं । रुद्र वृषवाहन के नाते गोपाल भी नहीं कहे जा सकते । यद्यपि शिवजी पशुपति कहे जाते हैं किन्तु गोपति नाम से उनकी ख्याति नहीं है । इससे लज्जित होकर शंकराचार्य ने मीमांसा शास्त्र का अवलम्बन किया । उस शास्त्र में भी दोनों का दस दिन तक महान् विवाद हुआ । उसमें रामानुज ने यज्ञ पुरुष का समर्थन किया । ८६-१०० । किन्तु शंकराचार्य ने उसका इस प्रकार खण्डन किया कि यद्यपि आचार से उत्पन्न धर्म की व्यवस्था यज्ञ देव ने ही की है, तथापि दक्ष प्रजापति के यज्ञ में वह आचार भ्रष्ट हो गया था, इसे सुनकर रामानुज ने विनाश होकर कहा—‘विश्वपालन रूप कर्म के सुसम्पन्न करने के लिए यज्ञ की उत्पत्ति की गई और वह कर्म अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न है, और वही अक्षर शिव रूप है जो साक्षात् शब्द ब्रह्म में अवस्थित है । उसी अक्षर कर्ता को पुराण पुरुष, यज्ञ कहा जाता है । अतः उस अक्षर से सनातन परमात्मा

अक्षरेण न वै तृप्तात्पृष्ठोऽभूद्यज्ञकर्मणि । नान्ना स यज्ञपुरुषो वेदे लोके हि चिश्रुतः ॥१०५
 प्रपौत्रस्य तदा वृद्धि दृष्टा स्पद्धातुरः शिवः । मृगभूतश्च रुद्रोऽसौ दिव्यबतैरतर्पयत् ॥१०६
 समर्थो यज्ञपुरुषो ज्ञात्वा गुरुमयं शिवम् । पलायनपरो भूतो धर्मस्तेन महान्कृतः ॥१०७
 लज्जितः शङ्खराचार्यो न्यायशास्त्रे समागतः । भद्रतीति भवो ज्ञेयो मृडतीति स वै मृडः ॥१०८
 लोकान्भरति यो देवः स कर्ता भर्ग एव हि । हरतीति हरो ज्ञेयः स रुद्रः पापदावजः ॥१०९
 स्वयं कर्ता स्वयं भर्ता स्वयं हर्ता शिवः स्वयम् । शिवाद्विष्णुर्महीं धातो विष्णोर्निर्हारा च पद्मम् ॥११०
 इति श्रुत्वा तु वचनं प्राह रामानुजस्तदा । धन्योऽय भगवाञ्छस्मभुर्यस्यायं महिना परः ॥१११
 सत्यं सत्यं समाज्ञेयं कर्ता कारयिता शिवः । रामनाम परं नित्यं कथं शस्मभुर्जपेद्वरम् ॥११२
 अनन्ता सृष्ट्यः सर्वा उद्भूता यस्य तैजसा । अनन्तः शेषतः शेषारामन्ते योगिनो हि तम् ॥११३
 स च वै अत्रभोर्धार्मि सच्चिदानन्दविग्रहः । इति श्रुत्वा तदा वाक्यं लज्जितः शङ्खरोऽभवत् ॥११४
 योगशास्त्रं परो देवः कृष्णस्तेनैव दर्शितः । कालात्मा भगवान्कृष्णो योगेशो योगतत्परः ॥११५
 साङ्ख्यशास्त्रे च कपिलस्तस्मै तेनैव दर्शितः । कं वीर्यं पाति यो वै स कपिस्तं चैव लाति यः ॥
 कपिलस्तु विज्ञेयः कपी रुद्रः ब्रकीर्तितः ॥११६

श्रेष्ठ है । यज्ञकर्म में वह कर्ता अक्षर द्वारा तृप्त न होने पर लोक और वेद में यज्ञपुरुष नाम से प्रव्याप्त हुआ । उस समय शिव ने अपने प्रपौत्र की वृद्धि देखकर स्पद्धा की—यज्ञभूत रुद्र ने अपने दिव्य वाणों द्वारा उसकी तृप्ति की, किन्तु समर्थ यज्ञपुरुष ने शिव को गुरुमय समझकर वहाँ से पलायन किया । इस प्रकार उसने महान् धर्म सुसम्पन्न किया । इसे सुनकर शंकराचार्य ने लज्जित होकर न्याय शास्त्र का अवलम्बन किया । कहा—भवतीति (उत्पन्न) और मृडतीति (संतुष्ट) होने के नाते उन्हें भव एवं मृड कहा गया है : लोकों के भरण करने वाला ही देव कर्ता और भर्ग (तेज) रूप है । उसी प्रकार हरतीति (हरण) करने के नाते उन पापनाशक रुद्र को हर कहा जाता है । इस प्रकार साक्षात् शिव ही स्वयं कर्ता, स्वयं भर्ता एवं स्वयं हर्ता कहे जाते हैं । उसी शिव द्वारा इस भूतल पर विष्णु, और विष्णु द्वारा कमलासन ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है । इसे सुनकर रामानुज ने कहा—भगवान् शंकर धन्य हैं जिनकी इस प्रकार महान् महिमा है, यह सत्य एवं ध्रुवसत्य है कि कर्ता कारयिता शिव ही हैं, किन्तु मुझे एक महान् संशय है कि महामहिम सम्पन्न शिव नित्य राम नाम पर आधृत रहकर हरि का जप क्यों करते हैं ? जिसके तेज द्वारा अनन्त सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं और शेष से भी अनन्त है एवं उसी में योगीगण रमण करते हैं और वही सच्चिदानन्द विग्रहधारी मेरे प्रभु का धाम है । इसे सुनकर लज्जित होते हुए शंकराचार्य ने योगशास्त्र की चर्चा प्रारम्भ की । उसमें भी उन्होने भगवान् कृष्ण की ही उपासना सिद्ध की । जो कालात्मा, भगवान् कृष्ण, योगनायक एवं योगारुद्र हैं । पश्चात् सांख्य शास्त्र को अपनाने पर रामानुज ने कपिल भगवान् की प्रधानता सिद्ध की—क (वीर्य) को पान करनेवाला कपि कहा गया है, उसे ले आने वाले को कपिल । इस प्रकार कपि रुद्र की संज्ञा हुई और कपिल भगवान् विष्णु की जो सर्वज्ञ एवं

क्षयिलो भगवान्विष्णुः सर्वज्ञः सर्वरूपवान् । तदा तु शङ्कराचार्यो लज्जितो नम्रकन्धरः ॥११७
शुद्धलाम्बरधरो भूत्वा गोविन्दो नामं निर्मलम् । जजाय हृदि शुद्धात्मा शिष्यो रामानुजस्य वै ॥११८
इति ते रुद्रमाहात्म्यं प्रसङ्गेनात्मि वर्णतम् । धनदान्युत्रवान्वाग्मी भवेद्यः भृष्णुयादिदम् ॥११९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रात्सर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये
रुद्रमाहात्म्यदर्शनोत्तररामानुजोत्पत्तिवर्णनं नामं चतुर्दशोऽध्यायः । १४

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

वसुमाहात्म्ये त्रिलोचनदैश्योत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

भृगुवर्यं महाभागं शृणु त्वं जीवर्णितम् । पवित्रं वसुमाहात्म्यं सर्वदस्तुतुखप्रदम् ॥१

बृहस्पतिरुच्च

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते चाद्ये सत्ययुगे शुभे । इल्वला तामसी शक्तिः प्रिया विश्रवस्ते मुनेः ॥१
शिवमाराधयामास सती सा पार्थिवार्चनैः ॥२
एतस्मिन्नन्तरे जातो दीक्षितान्वयसम्भवः । यक्षशर्मा महाधूर्तो यक्षिणीपूजने रतः ॥३
तस्य मित्रक्षुषा सुभ्रू रमिता तेन पापिना ! तेन द्वेषेण विप्रोऽसौ कुष्ठभूतस्तदाभवत् ॥४

सर्वरूपवान् है । इसे सुनकर शंकराचार्य ने नम्रतापूर्णं रामानुजं के शिष्यं होकर शुक्लवस्त्रं धारणकरं अपने हृदयं में निर्मलं गोविन्दं का नामं स्मरणं करना प्रारम्भ किया । इस प्रकार मैंने इस रुद्रं महात्म्यं का वर्णनं प्रसंगवशं सुना दिया, जिसे सुनकर मनुष्यं धनं, पुत्रं एवं सत्यवाणीं से विभूषित होता है । १०१-११९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में रुद्रमाहात्म्यं और रामानुजोत्पत्ति वर्णनं नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त । १४

अध्याय १५

वसुमाहात्म्यं में त्रिलोचनदैश्योत्पत्ति का वर्णन

सूत जी बोले—भृगुवर्य एवं महाभाग ! बृहस्पति द्वारा कथित उस वसुमाहात्म्य का वर्णन कर रहा हूँ, जो पवित्र एवं सर्व वस्तुओं को सुख प्रदान करता है, सुनो ! १

बृहस्पति जी बोले—सतयुग के आदि काल में वैवस्वत मन्वन्तर के समय विश्रवा मुनि की उस तामसी प्रिया एवं इल्वला सती शक्ति ने पार्थिव पूजन द्वारा शिव की आराधना की । उसी समय दीक्षित कुल में उत्पन्न महाधूर्तं यक्षशर्मा ने यक्षिणी की आराधना करके उसे प्रसन्न किया । पश्चात् उस पापी ने अपने मित्र की पुत्रवधू के साथ भी रमण किया, जिससे उसे कुष्ठ का रोग उत्पन्न हो गया । उस ब्राह्मण

कुष्ठभूतं द्विजं त्यक्त्वा यक्षिणी मन्त्रवत्सला : शिवलोकं ययौ देवी कैलासं गुह्यकालयम् ॥५
 क्षुधातुरो यक्षशर्मा शिवरात्रे महोत्तमे । दर्शितं पूजनं तेन योषिद्धूचश्रोपदेशतः ॥६
 प्रभाते समनुप्राप्ते पारणां कृतवान्द्विजः । मरणं प्राप्तवान्कुष्ठी तत्रैव शिवमन्दिरे ॥७
 तेन पुण्यप्रभावेन राजासीत्करणाटके । राजराज इति ख्यातो मण्डलीको नृपोऽभवत् ॥८
 शिवार्चनं मञ्जूरतं गेहे गेहे दिते दिने : ब्राह्मणः कारयामात्स राजराजो महाबज्ज्ञः ॥९
 शताब्दं भूतले राज्यं कृतं तेन महात्मना । राज्याधिकारं श्रेष्ठस्य सुतस्य प्रददौ नृपः ॥
 ततः काशीपुरीं प्राप्य शिवं दुष्पात पूजनैः ॥१०
 त्रिवर्षान्ते महादेवो योतिर्लिङ्गो बभूव ह । राजराजेश्वरो नाम प्रसिद्धोऽभूच्छिवः स्वयम् ॥११
 स नृपः पावितस्तेन त्यक्त्वा प्राणांस्तदा स्वयम् । इल्वलागर्भमानम्य पुत्रोऽभूच्छुभलक्षणः ॥१२
 जातः कुत्सितवेलायां रात्रौ घोरतमोवृते । कुद्रेर इति तनाम प्रसिद्धमभवद्वृवि ॥१३
 तपसा तोषयामास स बत्तः परमेष्ठिनम् । तस्मै ब्रह्मा तदागत्य लङ्घां नाम पुरीं शुभाम् ॥
 सुवर्णरचितां रम्यां कारयित्वा ददौ प्रभुः ॥१४
 तिथः कोटचः स्मृता यक्षा लतेककार्यपरायणाः । तेषां स्वामी स वै चासीद्यक्षराडिति विश्रुतः ॥१५
 किन्नरा बहुरूपाश्च तदादेशनिवासिनः । बलिभिः पूजयामासुः किन्नरेशस्तदा स्वयन् ॥१६
 गुह्यका नरभावस्था दिव्यमूल्यप्रकारिणः । तेषां स्वामी स वै चासीत्कुबेरो भगवान्स्वयम् ॥१७

को कुष्ठ का रोगी देखकर उस यक्षिणी ने उसे त्यागकर गुह्यकाल कैलास की यात्रा की । एक समय शिव-रात्र व्रत के दिन भूख से पीड़ित होने पर यक्षशर्मा को भोजन नहीं दिया, किन्तु उपदेश देकर उसे शिवार्चन का दर्शन करने के लिए विवश किया । प्रातः होने पर उस ब्राह्मण ने पारण किया । तदुपरात उसी मंदिर में उसका निधन हो गया । उस पुण्य के प्रभाव से वह करणाटक देश का राजा हुआ, जो राजराज के नाम से प्रख्यात मण्डलीक राजा कहा जाता था । उस महाबली राजराज ने अपने राज्य में प्रत्येक प्रजाओं के यहाँ प्रतिदिन ब्राह्मणों द्वारा उस मांगलिक शिवार्चन की व्यवस्था सुसम्पन्न कराना आरम्भ किया । उस पुण्य प्रभाव से सौ वर्ष तक मुखी जीवन व्यतीत करने के उपरात उस महात्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य भी सौंपकर स्वयं काशी की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर शिवपूजन करना आरम्भ किया । तीन वर्षों के उपरात महादेव जी योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हो राज राजेश्वर के नाम से प्रख्यात हुए । उनके द्वारा पूतात्मा होकर उस राजा ने इल्वला के गर्भ में पहुँचकर शुभ लक्षणों से विभूषित पुत्र का जन्म ग्रहण किया । अंधेरी रात की कुत्सित (निंदित) वेला में उत्पन्न होने के नाते उस पुत्र का कुबेर नाम से इस भूमण्ड में प्रख्याति हुई । उसने अपने तपश्चर्या द्वारा पितामह ब्रह्मा को प्रसन्न किया तत्पश्चात् ब्रह्मा ने सुवर्ण रचित लंका नामक पुरी उसे प्रदान किया । लोककार्य सुसम्पन्न करने के लिए तीनि कोटि यक्षों की उत्पत्ति की गई है । और उनके स्वामी कुबेर 'यक्षराट' के नाम से विख्यात हैं । २-१५। बहुरूपी किन्नरण जो उनके आदेश पालक हैं, उन्हें बलि प्रदान द्वारा प्रसन्न रखते हैं । नरभाव से दिव्य एवं सुसज्जित केशपाश धारण करने वाले उन गुह्यकों के स्वामी भगवान् कुबेर स्वयंभू ही हैं । उन्होंने लोक कल्याणार्थ

गिरिभ्यो बहुरत्नानि गृहीत्वा लोकहेतवे । रक्षोभिः प्रेषयामास गेहे गेहे जने जने ॥१८
 धर्मकार्यकरा ये तु नरा वेदपरायणाः । तेषां कोशाश्च तेनैव पूरिता नरधर्मिणा ॥१९
 ये तु लोभपरा धूर्ता नराः सञ्चयकारिणः । तेषां राजा स भगवान्द्वयदो राक्षसेश्वरः ॥२०
 शब्दूता नरा ये वै दाहिता वह्निकर्मणि अग्निद्वारेण तन्मासं भुज्जते राक्षसाः सदा ॥२१
 आभिर्विभूतिभिर्युक्तं दृष्ट्वा तां रावणो बली । जित्वा निष्काश्य लङ्घयाः स्त्यं राजा बभूव ह ॥२२
 कुबेरो दुःखितस्तद शङ्करः दुःखनाशनम् । रारणं शरणं प्राप्तस्तदा तु भगवान्हरः ॥
 तेन मैत्री कृता रम्या कुबेरेण समं दधौ ॥२३

अलकावती नाम पुरी रचिता विश्वकर्मणा : स तां मङ्गलदामाप्य कुबेरो हर्षमाप्तवान् ॥२४
 इति श्रुत्वा तदनुजो रावणो लोकरावणः । कैलासं गिरिमागम्य नलकूबरभोगिनीम् ॥२५
 दृष्ट्वा पुलस्त्यतनयः पम्पर्य मधुराननाम् । तदा पतिग्रहतः देवी सुप्रभा प्राह तं रुषा ॥२६
 स्तुषेव तत्पापात्मन्वतेऽहं लोकरावण । कुष्ठो भवेत्तव तनौ तेन दोषेण दारुणः ॥२७
 त्वया हृतं विमानं यज्ञयेष्ठबन्धोश्च पुष्पकम् । निष्फलत्वमवाप्नोतु यथा चौरैर्हृतं धनम् ॥२८
 इति शापान्वितो वीरत्तथाभूतः सुदुःखितः । शिवमाराधयामास कैलासे पार्थिवार्चनैः ॥२९
 द्वादशाब्दमतो जातं पूजनं तस्य कुर्वतः । स रुद्रो न प्रसन्नोऽभूतदा दुःखी स रावणः ॥३०
 जुहाव वह्नौ क्रमतः शिरांसि पुरुषादनः । स्थूलदेहं च सकलं स रुद्राय तदार्पयत् ॥३१

पर्वतों से रत्नों के संग्रहकर प्रत्येक घरों एवं मनुष्यों के लिए राक्षस द्वारा भेज दिया है । जितने वेदमार्गानुयायी धार्मिक लोग होते हैं उनके कोशों की पूर्ति इन्हीं धर्ममूर्ति कुबेर द्वारा होती है । इसी भाँति लोभी धूर्ते धनिकों के राजा जो उन्हें द्रव्य प्रदान करते हैं, भगवान् राक्षसेश्वर होते हैं, जिनके राक्षस गण अग्नि में जलाये गये शवों के मांस उसी अग्नि द्वारा भक्षण करते हैं । इन विभूतियों से सुसम्पन्न इन्हें देखकर बलवान् रावण ने लंका से हटकर स्वयं राजसिंहासन अपना लिया । उस समय दुःखी होकर कुबेर ने दुःखनाशक एवं शरण्य भगवान् शंकर की शरण प्राप्त की । भगवान् शिव ने कुबेर के साथ मैत्री करके विश्वकर्मा द्वारा अलकावती पुरी की रचनाकर उन्हें उसका अधीश्वर बनाया । वह पुरी सज्जनों को सदैव मंगल प्रदान करती रहती है । भगवान् कुबेर ने उसमें रहकर अत्यन्त हर्षित जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया । इसे सुनकर उनके अनुज लोकविदारक रावण ने कैलास जाकर नलकूबर की प्रेयसी को देखा । पुलस्त्य वंशज रावण ने अधीर होकर उस सुन्दरी का उपभोग बलात् किया, जिससे कुद्ध होकर उस पतिव्रता सुप्रभा देवी ने उससे कहा । लोक दुःखदायी रावण ! पापिन् ! मैं तुम्हारी पुत्र-वधू की भाँति हूँ । इस पाप से तुम्हें भीषण कुष्ठ का रोग हो जायेगा और अपने ज्येष्ठ भाई कुबेर के विमान का जो तुमने अपहरण कर लिया है, चौरों के यहाँ से चुराये गये धन की भाँति तुम्हारे घर से निवृत्त होकर वहीं चला जायेगा । इस प्रकार शाप से अभिमूत होने के कारण दुःखी होकर रावण ने उसी कैलास पर रहकर पार्थिव पूजन द्वारा शिव की आराधना की । बारह वर्ष तक पूजन करने पर भी भगवान् रुद्र के प्रसन्न होने पर रावण ने । १६-३० । अत्यन्त दुःख प्रकट करते हुए प्रज्वलित अग्नि में अपने शिर का हवन करना आरम्भ किया उसने अपनी स्थूल देह का समस्त भाग रुद्र के लिए अर्पित

भस्मभूतस्तदा रक्षो न मृतो ब्रह्मणो वरात् । पावकादुद्भूवं चान्यं देहं प्राप्य मनोहरम् ॥३२
 शिवाय वायुरूपाय ददौ स्वाङ्गं पुनर्बली । पिशाचैर्वायुरूपैश्च भक्षितः संच रावणः ॥३३
 न ममार वराद्वारो वायोर्जातं कलेवरम् । गृहीत्वा स च इद्याय नभेभूताद चार्दयत् ॥३४
 तदा मातृगणीर्थोरैर्भक्षितोऽनुन्तः रावणः । ब्रह्मणे वरदानेन न पञ्चत्वमवाप्त्वान् ॥३५
 न भस्मश्चोद्भूवं देहं शून्यभूतं स रावणः । पुनः प्राप्य शिवायैव सोऽहं भूताद चार्दयत् ॥३६
 तदा प्रसन्नो भगवान्खदोऽहङ्कारदेवता । कुबेरस्य यथा मित्रं रावणस्य तथाभवत् ॥३७
 एकैकेनेव शिरसा कोटिकोटिशिरोऽभवत् । बज्रभूतोऽभवद्देहो देवदेवप्रसादतः ॥
 एवं स रावणो घोरो बभूव वरदर्पितः ॥३८

देवदैत्यमनुव्याणां पश्चगानां च योषितः । नवोढा रमिताश्रासन्नह्याण्डे तेज रक्षसा ॥३९
 पतिदत्तामहतो रस्यो वेदधर्मः सनातनः । भग्नीभूतोऽभवत्सर्वः सर्वलोकेषु रक्षसा ॥४०
 क्षुत्रृङ्गम्यां वज्जितो नित्यं शङ्कुरेणैव तर्पितः । अन्ये सुरा विना यज्ञैः क्षुधिताः सम्बूद्धिरे ॥४१
 लह्याणं च पुरस्कृत्य क्षीराधौ प्राप्य दुःखिताः । एकीभूय सुरासर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥४२
 तदा प्रसन्नो भगवान्सगुणो निर्गुणो हरिः । उदाच सकलान्देवान्भक्तिनन्नान्यतेन्द्रियान् ॥४३
 कल्पास्ये श्वेतवाराहे नेदृशः कोऽपि दानवः । ब्रभूव च यथैवासौ रावणो लोकरावणः ॥४४
 पुरा मार्कण्डकल्पे च निशुम्भः शुम्भ एव हि । यथा जातौ तथा घोरौ कुम्भकर्णश्च रावणः ॥४५

कर दिया । केवल भस्मावशेष रह गया, किन्तु ब्रह्मा के वरदान द्वारा उसकी मृत्यु न हुई । उस समय अग्निकुण्ड से निकली हुई अन्य मनोहर शरीर की प्राप्तिकर उस बली ने अपने अंग को पुनः उन वायु रूप शिव के लिए अपित किया । उस समय वायुरूपधारी पिशाचों ने रावण की उस शरीर का भक्षण कर लिया था, किन्तु वरदान के प्रभाव द्वारा वह जीवित ही रहा । उस वायु द्वारा आधी देह को आकाश रूप रुद्र के पुनः अपित किया । उस समय भी घोर मातृगणों द्वारा उसके भक्षित होने पर भी वरदान प्राप्ति के नाते उसकी मृत्यु न हो सकी । पश्चात् आकाश जन्य उस शून्यभूत देह की प्राप्तिकर रावण ने पुनः उसे अहं भूतरूप शिव को समर्पित कर दिया । उस समय अहंकार देव भगवान् रुद्र प्रसन्न होकर कुबेर की भाँति रावण से भी मैत्री स्थापित की । तदुपरांत उसे एक शिर के बदले में कोटि-कोटि शिरों की प्राप्ति पूर्वक देवाधिदेव की प्रसन्नतावश उसकी वज्र की भाँति कठोर देह हो गई । इस प्रकार उस रावण ने भीषण वरदान द्वारा गर्वित होकर देव, दैत्य, मनुष्य एवं पन्नगों की नवोढा रमणियों के साथ इस ब्रह्माण्ड में घूमते हुए रमण करना आरम्भ किया । उस राक्षस ने सम्पूर्ण लोकों के वैदिक एवं सनातनी पतिव्रता धर्म को निर्मल कर दिया । शिव द्वारा तृप्त होने के नाते उसे भूल प्यास नहीं लगती थी । उस समय यज्ञानुष्ठान स्थगित हो जाने के नाते देवगण क्षुधा पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी रहने लगे । तदुपरांत दुःखी देवों ने ब्रह्मा को आगे कर क्षीरसागर में जाकर एक साथ परमेश्वर की आराधना आरम्भ की । उस समय प्रसन्न होकर सगुण निर्गुण भगवान् ने संयमी एवं भक्ति नम्र समस्त देवों से कहा—इस श्वेतवाराह नामक कल्प में इस लोक दुःखदायी रावण की भाँति अन्य कोई दानव उत्पन्न नहीं हुआ । पहले मार्कण्डेय कल्प में उत्पन्न शुम्भ निशुम्भ की भाँति ऐसे कुम्भ कर्ण और रावण भीषण हैं ॥३१-४५॥

रावणा बहवश्चासन्हीदृशो नैव रावणः । अहं ब्रह्मा तथा रुद्रो यतो जातास्तनातनाः ॥

सा तु वै प्रकृतिर्मया कोटिविश्वविद्यायिनी ॥४६

देवसङ्कटघोरेषु समर्थो देवराट् स्वयम् । शक्रविघ्ने समुद्धूते समर्थो भगवान्हरः ॥४७

रुद्राणां सङ्कुटे घोरे समर्थोऽहं सदा भुवि । स्मयि सङ्कटसम्प्राप्ते समर्थो भगवान्हरः ॥४८

ब्रह्मणः परमे दुःखे समर्था प्रकृतिः परा : नवुकैटभौ पुरा जातौ दानवौ लोकविशुतौ ॥४९

तास्यां दुखमयो ब्रह्मा तुष्टाव जगदम्बिकाम् । तदा तस्या बलेनाहं जघान नधुकैटभौ ॥५०

अतो भद्रजया सर्वे विष्णुमायां सनातनोम् । शरण्यां शरणं प्राप्य कुर्वतां जन्मतो हितम् ॥५१

इति श्रुत्वा तु ते देवास्तुष्टुदुः प्रकृतिं पराम् । प्रसन्ना च तदा देवां ब्रह्मज्योतिर्मयी शिवा ॥५२

द्विधाभूता महीं प्राप्ता सीतारामौ परापरौ । त्रिलङ्घजननी सीता तथा तदपरं द्विधा ॥

कृतं तौ च द्विधा जातौ शब्दार्थे रामलक्ष्मणौ ॥५३

शब्दमात्रसभूहानां स्वानी रामस्तनातनः । अर्थमात्रसभूहानामीशः कलीबस्स लक्ष्मणः ॥५४

यस्य वज्रमयं वीर्यं ब्रह्मचर्यं दृढं तथा । स कलीबश्च ततोऽन्ये वै कलीबभूता हि वानराः ॥५५

परा तु प्रकृतिस्सोता तयोर्मङ्गलदायिनी । भूमिमध्यात्समुद्भूता ह्ययोनिर्योनिकारिणी ॥५६

सहस्रं रामरामेति जपितं येन धीमता । सीतानाम्ना च तस्यैव फलं ज्ञेयं च तत्समम् ॥५७

योनिभूतौ च तौ देवौ राधेयस्य गृहं गतौ । इदं दृश्यं यदा नासीत्तामसी प्रकृतिस्तदा ॥

अक्षराशेषभूता च स्वयं जाता त्रिधेच्छ्या ॥५८

रावण भी अनेक हो चुके हैं किन्तु इस रावण के समान वे नहीं थे। जिस प्रकृति द्वारा मैं ब्रह्मा, तथा सनातन रुद्र उत्पन्न हुए हैं, वह माया प्रकृति कोटि विश्व की रचना एवं धारण करने की शक्ति है। और देवों के घोर संकट उपस्थित होने पर उसके निवारण के लिए स्वयं देवराट् समर्थ हैं, शक्र विघ्न के उपस्थित होने पर भगवान् शिव, और रुद्र के भीषण संकट उपस्थित होने पर मैं उसे निवारण के लिए सदैव समर्थ रहता हूँ। उसी प्रकार मेरे संकट के वारणार्थ भगवान् हरि समर्थ हैं और ब्रह्मा के अत्यन्त संकट ग्रस्त होने पर परा प्रकृति निवारण करती है। पहले समय में लोक विल्यात मधु और कैटभ दानव के उत्पन्न होने पर उनसे दुःखी होकर ब्रह्मा ने जगदम्बिका की आराधना की। उस समय अम्बिका द्वारा बल प्राप्तकर मैने मधु कैटभ का संहार किया था। इसलिए मेरी आज्ञा से सबलोग उस विष्णु माया की जो शरण प्रदान करती है, शरण में पहुँचकर उसकी आराधना करो। उसे सुनकर देवों ने पराप्रकृति की आराधना आरम्भ की। उस समय प्रसन्न होकर उस ब्रह्मा ज्योतिर्मयी शिवा ने द्विधा (दो भोगों में विभक्त) होकर सीताराम के रूप में जो पर अपर कहलाते हैं, अबतार धारण किया। त्रिलिंग उनकी सीता ने अपने अपर रूप को दो भागों में विभक्तकर उसके द्वारा शब्द और अर्थात्मक राम लक्ष्मण की उत्पत्ति की जिसमें शब्द मात्र समूह के स्वामी राम और अर्थ मात्र समूह के ईश कलीब लक्ष्मण हुए। जिसका वीर्य वज्रमय और ब्रह्मचर्य दृढ़ था। उसी प्रकार अन्य वानर गण भी कलीब ही थे। उन दोनों की मंगलदायिनी सीता, जो परा प्रकृति रूप है, भूमि के मध्य से अयोनिज रूप में उत्पन्न हुई। ४६-५६। जिस बुद्धिमान् ने राम राम का सहस्र जप किया है, उसका फल सीता नाम के समान ही उसे प्राप्त होता है। इस दृश्य के

पूर्वं शेषस्त्र वै रामो मध्ये क्लीबस्य लक्षणः । अपरौं पूर्वतो जातौ पुंकलीबौ च परेभ्रतौ ॥
परो भागस्तु सा देवी योगनिद्रा सनातनी ॥१५३
अन्यकल्पेषु हे देवाः क्षीरशायी हरिः स्वयम् । रामो ज्ञेयस्तथा शेषो रुद्ररूपस्त्र लक्षणः ॥१६०
सीता भगवती लक्ष्मीजीता जनकनन्दिनी । चुदशनश्च भरतो हरे: शत्रुघ्नितोऽनुजः ॥१६१
कल्पास्ये श्वेतवाराहे रामो जातः परात्परः । प्रद्युम्नो भरतो ज्ञेयोऽनिरुद्धः शत्रुहा प्रभुः ॥
तैश्च सर्वे विदलिता राक्षसः राज्यादयः ॥१६२
कीर्ति स्वकीयां लोकेषु संस्थाप्य पावनीं प्रभुः । पुष्पकं च कुद्देराय विमानं च तदा ददौ ॥
रुद्रसङ्ख्या सहस्राब्दं राज्यं कुत्वा परं यथो ॥१६३

सूत उचाच

इति श्रुत्वा कुबेरस्तु प्रथमो वसुदेवता ! स्वमुखात्स्वंशमुत्पाद्य वैश्ययोनौ बभूव ह ॥१६४
धरददत्स्य वैश्यस्य पुत्रो भूत्वा महीतले । त्रिलोचनस्त्र वै नाम मथुरायां बभूत्व ह ॥१६५
सर्वद्वन्यव्ययं कृत्वा नानातीर्थेषु हर्षितः । पुरों काशीं समाप्त्य रामानन्दं च वैष्णवम् ॥
नत्वा तदृश्यमभजच्छ्यो भूत्वा त्रिलोचनः ॥१६६
स्वगेहं पुनरागत्य स वैश्यश्राज्यया गुरोः । रामभक्तिपरश्चासीत्साधुसेवापरायणः ॥१६७
तदा तु भगवान्नामो दासभूतश्च तदृग्है । स्थितस्त्रयोदशे मासि सर्ववाञ्छितदायकः ॥१६८
मणिरत्नहिरण्यानि वासांसि विविधानि च । नाना व्यञ्जनयोग्यानि ब्राह्मणेभ्यः स्वयं ददौ ॥१६९

अभाव काल में तामसी प्रकृति, जो अक्षर (अविनाशिनी) एवं अशेष (सम्पूर्ण) रूप है, स्वयं तीन भागों में विभक्त होकर पूर्व भाग द्वारा राम मध्य से लक्षण और तूर्व भाग से क्लीब (अलिंग और नपुंसक) रूप दो और की उत्पत्ति हुई है । देववृन्द ! अन्य तीसरे भाग से सनातनी योगनिद्रा देवी प्रकट होकर अवस्थित हैं । अन्य कल्पों में क्षीरशायी स्वयं भगवान् राम और रुद्र लक्षण एवं लक्ष्मी जनक-नन्दिना भगवती सीता के रूप में प्रकट होती हैं । उसी प्रकार उनके अस्त्र मुदर्शन भरत एवं शंख शत्रुघ्न रूप धारण करते हैं । श्रेत वाराह कल्प में परात्पर ब्रह्म राम, प्रद्युम्न लक्षण और अनिरुद्ध भरत के रूप में प्रकट होकर रावणादि राक्षसों के विनाश करते हैं । वह स्वयं प्रभु राम रूप में जो अवतरित रहते हैं, ब्रह्मण्ड गं अपनी पावन कीर्ति की स्थापना पूर्वकं पृथक् विमान कुबेर को लौटा देते हैं । पश्चात् एकादश सहस्र वर्षे राज्योपभोग करने के उपरांत परमपद की प्राप्ति करते हैं । ५७-६३

सूत जी बोले—इसे सुनकर प्रथम वसुदेवता कुबेर ने मुख द्वारा अपने अंग को निकालनर धरदत्त वैश्य के घर भेजा जो वहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न होकर इस भ्रमण्डल पर प्रव्याप्त हुआ । उसकी पुरी का नाम 'मथुरा' और उसका नाम त्रिलोचन था । उसने अपने समस्त द्रव्य को व्यय करते हुए तीर्थों में अभ्रण करते काशी की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर 'रामानन्द वैष्णव' के अधीन होकर उनकी शिष्य रोता स्त्रीकार की । पश्चात् अपने घर जाकर त्रिलोचन ने गुरु की आज्ञा से राम भक्ति में तत्पर रहकर राधु सेवा करना आरम्भ किया । उस उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर राम ने तेरहवें मास दास रूप में ज्ञाने के घर रहकर उसकी इच्छापूर्ति समेत मणि रत्न, सुवर्ण भाँति-भाँति के वस्त्र तथा अनेक भाँति के व्यंजन

वैष्णवेभ्यो यतिभ्यश्च इनोवाञ्छितदायकः । ततस्त्रिलोचनं प्राह भगवान्मावणार्तिहा ॥७०
 अहं रामो न वै दासस्तव भक्तिविमोहितः । निवासं कृतवत्नेहे तव प्रियहिते रतः ॥७१
 अद्यप्रभृति भो वैश्य वसामि हृदये तव । इत्युक्त्वान्तर्हितो देवः स वैश्यो हर्षमागतः ॥७२
 त्यक्त्वा कलत्रं पुत्रं च प्राप्य वैराग्यमुत्कटम् । उषित्वा सरयूतीरे रामध्यानपरोभवत् ॥७३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगजण्डपरथर्यां
 कलियुगीयेतिहासमुच्चये तुमुम्हाराम्ये त्रिलोचनवैश्योत्पत्तिवर्णन नाम पञ्चदशोऽव्यायः ॥१५

अथ षोडशोऽध्यायः

रद्धणवैश्योत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुदाच

स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं ध्रुववंशसमुद्रवः । राजाप्राचीनवर्हिंश्च दभूव मखकारकः ॥१
 नारदस्योपदेशेन त्यक्त्वा हिंसामयं मखम् । ज्ञानवान् वैष्णवो भूत्वा दशपुत्रानजीजनत् ॥२
 प्रचेतानाम तेषां वै जातं ते चैकरूपिणः । पितुराजां पुरस्कृत्य जलमध्ये तपोऽर्थिनः ॥
 रत्नाकरस्य सिन्धोश्च मम्भूता बभूविरे ॥३
 तेषां तु तपसा तुष्टः स्वयम्भूश्चतुराननः । सप्ताब्धिषु स तान्सप्त सुतान्संस्थाप्य लोकराट् ॥४

ब्राह्मणों को स्वयं प्रदान कर उन्हें तृप्त करना आरम्भ किया । उस समय वैष्णवों एवं योगियों को उनके मनदाढित पदार्थ दिये जाते थे । इस प्रकार अनेक वर्षों की सेवा करने के उपरांत रावण विनाशी भगवान् ने एक दिन त्रिलोचन वैश्य से कहा—मैं राम हूँ, तुम्हारा मनुष्य सेवक नहीं । तुम्हारी भक्ति से मोहित होकर तुम्हारे घर रहकर तुम्हारा प्रिय एवं हितसाधन किया करता था, किन्तु अब आज ही मैं इस सेवक रूप में रहकर तुम्हारे हृदय में निवास करूँगा । इतना कहकर भगवान् अन्तर्हित हो गये और उस वैश्य ने जाकर वैराग्य उत्पन्न होने के नाते हर्षमग्न होकर अपनी स्त्री एवं पुत्र के परित्याग पूर्वक सरयू के तट पर भगवान् का ध्यान करना आरम्भ किया । ६४-७३

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व के कलियुगीय इतिहासमुच्चय में त्रिलोचन वैश्य की उत्पत्ति वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त । १५।

अध्याय १६

रंकणवैश्योत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—स्वायम्भुव मन्वन्तर काल में ध्रुववंशज राजा प्राचीन बर्हि ने यज्ञानुष्ठान करना आरम्भ किया । नारद के उपदेश से हिंसामय यज्ञों के त्यागपूर्वक उन्होंने ज्ञानी वैष्णव के रूप में रहते हुए दश पुत्रों को उत्पन्न किया । उन समान रूप वाले पुत्रों का प्रचेता नामकरण किया गया, जो पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर समुद्र के मध्य तप करने की इच्छा प्रकटकर समुद्र के भीतर रहना प्रारम्भ किये । उनके तप से प्रसन्न होकर लोकराट् एवं स्वयंभू चतुरानन ने सातों समुद्रों में क्रमशः

रत्नाकरेऽष्टमं पुत्रं नवमं मानसोत्तरे । दशमं मेरुशाखायां पुत्रं कृत्वा मुमोद ह ॥१५
 आपो वहति यो लोके स आपव इति स्मृतः । द्वितीयो वरुणो नाम यादसां पतिरप्पतिः ॥१६
 ददौ पाशं तदा ज्ञाता दैत्यबन्धनहेतवे । पाशी ज्ञम ततो जातं तरुणत्य महात्मनः ॥१७
 स तु पूर्वभवे चासीद्ब्राह्मणः शक्तिपूजकः । आपवो नाम विख्यातो वारुणीपानतत्परः ॥१८
 भद्रकाल्याः प्रियो भक्तो नित्यं पूजनतत्परः । नानारक्तमयैः पुष्पेर्गुणितां रक्तमालिकाम् ॥१९
 रक्तचन्दनसंयुक्तां गृहीत्वा मन्त्रसंयुतः । भद्रकाल्यै निवेद्यात्तु नवार्णवपरोऽभवत् ॥२०
 धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यस्तम्बूलैर्कृतुजैः फलैः । पूजयित्वा महालक्ष्मीं भद्रकालीं सनातनीम् ॥२१
 तिलैः शर्करया युक्तं मधुना च हविः स्वयम् । वह्निद्वारेण संहृत्य तुष्टाव जगद्मिकाम् ॥२२
 चरित्रं मध्यमं देव्या विष्णुदेवेन निर्मितम् । नवार्णवेन तेनैव प्रत्यहं जाप्ततत्परः ॥२३
 एवं वर्षत्रयं जातं तस्य पूजां प्रकुर्वतः । प्रसन्नाभूतदा देवी वरदा सर्वमङ्गला ॥
 वरं ब्रूहीति वचनं तमाह द्विजसत्तमम् ॥२४
 इति वाक्यं प्रियं श्रुत्वा द्विज आपव नमस्थीः । तुष्टाव दण्डवद्भूत्वा भद्रकालीं सनातनीम् ॥२५

आपव उवाच

विष्णुकल्पे पुरा चासीद्ब्रानवो महिषासुरः । कोटिकोटिसहकैस्तु रथैर्वाजिगजैर्युतः ॥१६
 त्रैलोक्यं स्ववशे कृत्वा महेन्द्रस्स तदाभवत् । स्वारोचिषान्तरः कालो गतो राज्यं प्रकुर्वतः ॥१७

उनके सात पुत्रों को अधिनायक पद पर प्रतिष्ठित करके आठवें पुत्र को रत्नाकर में, नवें को मानस के उत्तर प्रदेश और दशवें को मेरु की शाखा में प्रतिष्ठित करके प्रसन्नता प्रकट की । लोक ऐं आप (जल) प्रवाहित होने के नाते 'आपव' प्रथम पुत्र का और यादवगण के स्वामी होने के नाते 'वरुण' दूसरे पुत्र का नामकरण हुआ । उस समय ब्रह्मा ने वहाँ जाकर दैत्यों के बन्धनार्थ उन्हें 'पाश' प्रदान किया, उसी दिन से वरुण माहात्म्य का 'पाशीत्र' हुआ । पूर्व जन्म में उसने ब्रह्म शक्ति की उपासना की थी, आपव नाम से प्रख्यात वह वाहणी (मदिरा) पान में निरत रहता था । भद्रकाली का प्रिय भक्त होने के नाते वह अनेक भाँति के रक्तवर्ण के पुष्प एवं उसी भाँति के पुष्पों की माला और रक्तचन्दन द्वारा समंत्रक भद्रकाली की नित्य पूजन करता था और पूजनोपरांत नवार्ण मंत्र के जप भी । इस प्रकार धूपदीप, नैवेद्य, ताम्बूल और कृतु फलों द्वारा सनातनी एवं भद्रकाली रूप महालक्ष्मी की भक्तिपूर्वक आराधना करने के उपरांत तिल शक्कर, शहद, युक्त हविं की आहुति-प्रदान कर नित्य भगवती जगद्मिका को प्रसन्न करता था । विष्णु देव निर्मित मध्यम चरित्र के पाठ और नवार्ण मंत्र के जप सविधान सुसम्पन्न करना उस ब्राह्मण का नित्य नियम था । इस भाँति तीन वर्ष पूजन करने के उपरांत सर्वमंगला भगवती देवी ने प्रसन्न होकर उससे वर याचना के लिए कहा । इस प्रिय वाणी को सुनकर ब्राह्मण श्रेष्ठ आपव ने विनश्च होकर दण्डवत् करते हुए सनातनी भद्रकाली देवी की आराधना आरम्भ की । १-१५।

आपव ने कहा—विष्णु कल्प में पहले महिषासुर नामक दानव रहता था, जिसके कोटि-कोटि सहस्र रथ, घोड़े एवं गजराज थे । उस समय उसने तीनों लोक को अपने अधीन करके स्वयं देवेन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित होकर उसका गासन आरम्भ किया । इस प्रकार उसके राज्य करते हुए स्वारोचिष मन्वन्तर

ततस्स भगवान्विष्णुस्तर्देवसर्मन्वितः । समुत्पाद्य मुखातेजो ज्वालामाली बभूव ह ॥१८
ज्योतिर्लिङ्गात्तदा देवी भवती स्वेच्छया भुवि । सम्भूय महिषं हन्त्री तस्यै देव्यै नमोनमः ॥१९
रुद्रकल्पे पुरा ज्ञासीद्वृदच्छम्भुमुखादिवि । रावणश्च सहस्रास्यो जातो ब्रह्माण्डरावणः ॥२०
राक्षसो बलवान्धोरो लोकालोकगिरेरथः । न्यवसद्देवदैत्यानां भनुष्याणां च भक्षकः ॥
बष्ठे मन्वन्तरे तेन ब्रह्माण्डं राज्यसाकृतम् ॥२१
ततो वैवस्वते धार्ते त्रेताप्ताविंशके प्रभुः । स जातो राघवगृहे रामस्तद्गुरुणः स्वयम् ॥२२
घोडसत्त्वपुरुषत्वा स गतो जनकालये । धनुश्रात्नगं घोरं प्रभरन् तेन धीमतः ॥२३
तदा ब्रह्मादयो देवा ज्ञात्वा रामं सनातनम् । सहस्रवदनस्यैव वर्णयमास कारणम् ॥२४
तच्छुत्वा हंसयानं च समाख्या स सीतया । तोकालोकगिरौ प्राप्य घोरयुद्धमचीकरत् ॥२५
हंसयानपत्तकायां सस्थितो हनुमान्कदिः । वेदाश्च वाजिनस्तत्र नेता ब्रह्मा सनातनः ॥२६
दिव्यवर्षममूर्होरः सहग्रामस्तेन रक्षसा । रायणस्स तदा कुद्धो द्विसहस्रैश्च बाहुभिः ॥२७
अपरौ भूर्षीयित्वा तौ भ्रतरौ रामलक्ष्मणौ । जगर्ज बलवान्धोरस्स च ब्रह्माण्डरावणः ॥२८
ब्राह्मणा संस्तुता माता भवती ब्रह्मरूपिणी । सीता शान्तिमयी नित्या तया ब्रह्माण्डरावणः ॥
विनाशितो नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२९
ब्रह्मकल्पे पुरा ज्ञासीत्तलजं धान्वयोद्भवः । मुरो नाम महादैत्यो ब्रह्मणो बलदर्पितः ॥३०

का काल व्यतीत हो गया । पश्चात् समस्त देवों के साथ विष्णु अपने मुख द्वारा तेज निकालकर माला की भाँति ज्वालाओं से आच्छादित हो गये । उस समय भगवती देवी ने अपनी इच्छा से ज्योतिर्लिंग द्वारा प्रकट होकर उस महिषासुर का वध किया था, उन्हें मैं बार-बार नमस्कार कर रहा हूँ । पहले रुद्रकल्प में रुद्र शिव जी के मुख द्वारा सहस्र मुख वाला एक राक्षस उत्पन्न हुआ जिसका ब्रह्माण्ड रावण नाम था । वह बलवान् एवं घोर राक्षस लोक पर्वत के नीचे अपना वासस्थान बनाकर देव, दैत्य एवं भनुष्यों के भक्षण करता था । इस प्रकार उसने छठे मन्वन्तर काल तक समस्त ब्रह्माण्ड को अपने अधीन रखकर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था । तदनन्तर वैवस्वत् मन्वन्तर काल के अट्टाईसवें त्रेतायुग में राघव के घर स्वयं संकर्षण राम ने अवतरित होकर सोलह वर्ष की अवस्था में जनकपुर जाकर ‘अजगव’ नामक धनुष का भेजन किया । उस समय ब्रह्मादिक देवों ने वहाँ आकर उन्हें सनातन राम समझते हुए कहा—सहस्र वदन रावण ने लोक को अत्यन्त पीड़ित किया है । उसे सुनकर सीता समेत हंसयान पर बैठकर लोकालोक पर्वत पर जाकर उन्होंने उस राक्षस से घोर युद्ध किया । उस समय उनके हंसयान में पताका के ऊपर हनुमान् जी अवस्थित रहते थे, वेद घोड़ों के रूप में और उसके नेता स्वयं ब्रह्मा थे । दिव्य वर्ष तक घोर युद्ध करने के ऊपरांत उस राक्षस ने कुद्ध होकर अपनी दो सहस्र भुजाओं द्वारा राम लक्षण को मूर्छित कर भीषण गर्जना किया । उस समय ब्रह्मा ने ब्रह्मरूपिणी, आप माता जी की स्तुति की जिससे प्रसन्न होकर सनातनी एवं शान्तिमयी सीता रूप अपने उस ब्रह्माण्ड रावण का विनाश किया था । प्रातः आपको बार-बार नमस्कार है । १६-२९ । पहले ब्रह्मकल्प में लालजंघ के कुल में मुर नामक एक दैत्य उत्पन्न हुआ था, जो ब्रह्मा द्वारा वर प्राप्तकर अत्यन्त मदान्ध हो गया था । उसने देवेन्द्र समेत समस्त

ब्रह्माण्डेरं महारुदं महेन्द्रादिसमन्वितम् । भ बभूव पराजित्याधिकारी रौद्र आसने ॥३१
 देवैस्सार्द्धं महादेवो माधवं क्षीरशायिनम् । गत्वा निवेदयामास स विष्णुः क्रोधसंयुतः ॥३२
 जगाम गरुडाल्ढो यत्र दैत्यो मुरः स्थितः । तेन सार्द्धमभूद्युद्धं तस्य देवस्य दारुणम् ॥३३
 सहस्राल्दमतो जात दृष्ट्वा ब्रह्मा भव्यान्वितः । परां तु प्रकृतिं नित्यां तुष्टाद इलश्चण्या गिरा ॥३४
 प्रस्त्रभा सा तदा देवी कुमारी सप्तहायिनी । दनुर्भुजाल्लस्तहिता भूत्वा दैत्यनुवाच ह ॥३५
 पराजितोऽयं भगवान्दैत्यराजेन वै त्वदः । विजया नाम मे रम्या कैश्चिन्नाहं परजिता ॥३६
 उन्मीलिनी विञ्जुली च त्रिस्पृशा पक्षवर्दिनी । जया जयन्ती विजया वर्षेवर्षे क्रमादहम् ॥३७
 एकादशशुभ्रत्त्वारा विष्णवस्तनया मम । एकादशीति विल्लाता वेदमध्ये सदा ह्यहम् ॥३८
 अतो मां बलवान्निजत्वा विजयां विष्णुमात्रम् । पाणि ग्रहाण मे रम्यं सर्वपूज्यो भवान्नवेत् ॥३९
 इति श्रुत्वा भुरो दैत्यत्स्तस्या रूपेण मोहितः । युग्मुधे स तथा सार्द्धं क्षणादेन लयज्ञतः ॥४०
 तं भुरं निहतं दृष्ट्वानुजस्तन्नरकासुरः । दैत्यमायां महाशोरां चकार सुरनाशिनीम् ॥४१
 एकादशी त्वयं माया हुङ्कारेणैव तं तदा । नरकेण समं हत्वा जगर्ज जगदस्त्विका ॥४२
 तयोस्तेजो महाघोरमन्नमध्येषु चागमत् । हुङ्कारभूतमभूदवन्नं नृणां रोगभयप्रदम् ॥४३
 दृष्ट्वा चैकादशी नान्ना रविशुक्रावुवाच ह । कुरुतां शुद्धमेवान्तर्भवन्तौ लोकविश्रुतौ ॥४४

देवों एवं ब्रह्माण्ड नायक महादेव को पराजितकर उस रौद्र आसन का अधिकार प्राप्त कर लिया था ।
 पश्चात् देवों समेत महादेव ने क्षीरशायी भगदान् के पास जाकर उनसे समस्त वृतान्त का वर्णन किया ।
 उसे सुनकर विष्णु ने अत्यन्त कृद्ध होकर गरुण पर बैठकर कूर दैत्य के यहाँ युद्धार्थ प्रस्थान किया । वहाँ
 पहुँचने पर उन दोनों का भीषण युद्ध आरम्भ हुआ । ३०-३३। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर
 भयभीत होकर ब्रह्मा ने अपनी विनम्र वाणी द्वारा परा प्रकृति की उपासना की । उससे प्रसन्न होकर
 देवी ने सात वर्ष की कुमारी का रूपधारण कर जो चार भुजाओं में अस्त्र लिए सुसज्जित थी, मुर दैत्य से
 कहा—दैत्यराज ! यह भगवान् तुमसे पराजित हो चुके हैं । मैं अभी तक युद्ध में किसी से पराजित नहीं
 हुई हूँ, अतः मेरा विजया नाम है । प्रत्येक वर्ष में क्रमशः उन्मीलिनी, विञ्जुली, त्रिस्पृशा, पक्षवर्दिनी,
 जया, जयती, और विजया के नाम में परिवर्तित हुआ करती हूँ । शुभाचार को अपनाने वाले विष्णव
 आदि एकादश (ग्यारह) मेरे पुत्र हैं, इसलिए एकादशी नाम से मैं वेदमध्य में सदैव निवास करती हूँ ।
 अतः तू बलवान् होकर युद्ध में विजय प्राप्ति पूर्वक विजया नामक मुञ्च विष्णु माता का पाणिग्रहण कर
 सर्वपूज्य बनो । इसे सुनकर मुर दैत्य ने उस रूप पर मोहित होकर देवी के साथ युद्ध करना आरम्भ
 किया, किन्तु एक क्षण के आधे समय तक भी युद्ध में न ठहर सका देवी ने उसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया ।
 पश्चात् मुर दैत्य के निधन होने पर उसके अनुज नरकासुर ने देव विनाशिनी एक महाभीषण माया की
 रचना की, पर जगन्माता एकादशी देवी ने अपने हुंकार द्वारा नरकासुर समेत उस माया का विनाशकर
 भीषण गर्जना की । उस समय उन दोनों दैत्यों का तेज अन्न के मध्य में व्याप्त हो गया । जिससे अन्न के दूषित
 होने के नाते मनुष्यों के अनेक रोग उत्पन्न होने लगे । उसे देखकर देवी जी ने सूर्य और शुक्र से कहा—आप
 लोग लोक प्रख्यात हैं अतः अन्न का अन्तःस्थल शुद्ध करो । पश्चात् वे दोनों उनकी आज्ञा का पालनकर देव

तदाज्ञयत तथा कृत्वा देव पूज्यौ बभूवतुः । एवं भातस्त्वया सर्वं कृतं तस्यै नमो नमः ॥४५
 इति श्रुत्वा भद्रकालो स्तोत्रं दिव्यं कथामयम् । आपवं प्राह स! देवी ब्राह्मणं वेदकोविदम् ॥४६
 प्रलये च तदा प्राप्ते नष्टे स्थावरजड़मे । एकार्णवे पुरा त्वं वै मत्प्रसादात्सुखी भव ॥४७
 स्तोत्रेणानेन सुग्रीता वरदाहं सदा नरान्^१ । इत्युदत्तान्तहिता देवी स पित्रो वरुणोऽभवत् ॥४८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भगवःनिवित्तियो^२ दसुः । वरुणः स्वमुखात्तेजो जनयामास भूतले ॥४९
 देहत्प्या त तु वै जातो धर्मभक्तस्य वै गृहे । विधवा तस्य या कन्या गर्भं धते हरे: स्वयम् ॥५०
 इति ज्ञात्वा धर्मभक्त्वे मुमुद्दे सुतजन्मनि । नामदेव इति ख्यातः साङ्ख्ययोगपरायणः ॥५१
 आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं विष्णुमयं जगत् । ज्ञात्वा दृष्ट्वा गतः काश्यां रामानन्दं हरिप्रियम् ॥५२
 नन्त्वा तच्छिष्यतां प्राण्यं तत्र वासमकारयत् । सिकन्दरो म्लेच्छपतिर्देहलीराज्यमास्थितः ॥५३
 नामदेवं समाहूय सम्परीक्ष्य तदा सुखी । अर्धकोटिमितं द्रव्यं ददौ तस्मै कलिप्रियः ॥५४
 नामदेवस्तु तद्द्रव्यैर्गङ्गारोहणमुत्तमम् । कारयामास वै काश्यां शुश्रं सर्वं शिलामयम् ॥५५
 दशविप्रान्पञ्च नृपान्पञ्च वैश्यान्पञ्चं गवाम् । पुनरुज्जीवयामास शब्दूतान्स योगवान् ॥५६

पूज्य हुए । इस प्रकार माता आपने राब कुछ सुसम्पन्न किया है । अतः आपको बार-बार नमस्कार है । इस भाँति दिव्य कथामय उस स्तोत्र को सुनकर भद्रकाली देवी ने उस वेद निपुण आपव नामक ब्राह्मण से कहा—स्थावर जंगमरूप इस जगत् के प्रलय होने पर उस एकार्णव के समय भी तुम मेरे प्रसाद से सुखी जीवन व्यतीत करो और इस स्तोत्र द्वारा प्रसन्न होकर मैं मनुष्यों को सदैव वर प्रदान करती रहूँगी । इतना कहकर देवी अन्तर्हित हो गई और वह विप्र वरुण के रूप में परिवर्तित हो गया । ३४-४८

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर भगवान् वरुण ने जो दूसरे वसु कहलाते हैं अपने मुख द्वारा तेज निकालकर भूतल में प्रक्षिप्त किया । जो दिल्ली नगर में धर्मभक्त के घर उनकी विधवा कन्या के गर्भ में प्रविष्ट हुआ । कन्या के गर्भ में भगवान् स्वयं अपना अंश स्थापितकर पुत्र रूप में अवतरित होगे, यह जानकर धर्मभक्त को अत्यन्त प्रसन्नता हुई । पुत्र के उत्पन्न होने पर उन्होंने उसका ‘नामदेव’ नामकरण किया, जो सांख्ययोग का निपुण विद्रान् था । उसने निपुण ज्ञान प्राप्तकर आब्रह्मस्तम्ब पर्वत पर्यन्त इस जगत् को विष्णुमय समझकर काशी की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर हरिप्रिय रामानन्द की शिष्य सेवा नमस्कार पूर्वक स्वीकार कर वहाँ निवास करने लगा । उस समय दिल्ली अधीश्वर पद पर प्रतिष्ठित होकर सिकन्दर ने नामदेव को बुलवाकर उनकी परीक्षा की । उससे प्रसन्न होकर उस कलिप्रिय म्लेच्छ ने उन्हें अर्धकोटि द्रव्य प्रदान किया । उस द्रव्य द्वारा नामदेव ने काशी में गंगा में स्नानार्थ पथर की उत्तम शिलामय सीढ़ियाँ बनवाई । उस योगी ने अपने योगबल द्वारा दश ब्राह्मण, पाँच राजाओं एवं पाँच वैश्यों और सौ गौओं को पुनः जीवनदान प्रदान किया । ४९-५६

१. नरेभ्यः इत्यर्थः । २. हस्त आर्षः ।

बृहस्पतिरुचाच

विश्वानरः पुरा त्रासीद्ब्राह्मणो वेदकोविदः । अनपत्यो विधातारं तुष्टाव बहुपूजनैः ॥५७
 वर्षमात्रेण भगवान्परमेष्ठो प्रजापतिः । समागत्य वचः प्राह वरं बूहि द्विजोत्तम ॥५८
 इति श्रुत्वा स होवाच भगवंस्ते नमो नमः । प्रकृतेष्व यरः पुत्रो भूयान्स्म वरात्तव ॥५९
 इति श्रुत्वा तदा ब्रह्मा विस्मितः प्राह तं द्विजस् । एका वै प्रकृतिर्माया त्रिलिङ्गजननी स्वयम् ॥६०
 तथा दृश्यं जगत्सर्वं समुत्पादित मात्मना । प्रकृतेष्व परो यो ये वै परमात्मा स नाव्ययः ॥६१
 अबुद्धिर्बोधनिरतो ह्यश्रुतिश्च शृणोति वै । अदेहः स स्मृशत्येतदचक्षुः पश्यति स्वयम् ॥६२
 अजिह्वोत्रं स गृह्णाति स जिग्रहति न सा विना । अमुखो वेदवक्ता च कर्मकारः करं दिना ॥६३
 अपदो गच्छति ह्यतदलिङ्गो नारिभोगवान् । अगुहो हि करोत्येतां सतत्त्वां गुह्यश्रुतिनीम् ॥६४
 शब्दब्रह्म स्पर्शस्यं रूपब्रह्मा रसात्मकम् । गन्धब्रह्मा परं ज्ञेयं तस्मै तद्ब्रह्मणे नमः ॥६५
 प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादि उभावपि । विकारांश्च ग्रुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥६६
 एकार्थै तौ च शब्दकौ रूपैकौ नित्यविग्रहौ । आदिमध्यान्तरहितौ नित्यशुद्धौ सन्नातनौ ॥६७
 पुस्त्रीनपुंसकजननो ज्ञेया सा प्रकृतिः परा । पुरुषश्च कविः स्मृत्यः कूटस्थो ज्ञानवान्परः ॥६८
 अजन्मार जन्म चाप्नोति मया जातः स जन्मवान् । कथं स पुरुषो नित्यस्तव पुत्रो भविष्यति ॥६९
 अतो विश्वानर मुने मायाभूतो हर्तिः स्वयम् । तव पुत्रत्वमाप्नोति वरान्मम जनार्दनः ॥७०

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में विश्वानर नामक एक वेद निपुण ब्राह्मण था । उसने सन्तान-हीन होने के नाते पितामह ब्रह्मा की अनेक भाँति की पूजा आरम्भ की । एक वर्ष के व्यतीत होने पर उस पूजन से प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्मा ने वहाँ आकर उस ब्राह्मण से वर याचना करने के लिए कहा । उसे सुनकर उसने कहा—भगवन् ! तुम्हें नमस्कार रहै, आप मुझे यही वरदान दें कि—प्रकृति से परे रहने वाला वह परब्रह्म मेरे पुत्र के रूप में अवतरित हो इसे सुनकर विस्मय प्रकट करते हुए ब्रह्मा ने उस ब्राह्मण से कहा—एक उसी माया प्रकृति ने जो स्वयं त्रिलिंग जननी है, अपने द्वारा इस समस्त दृश्य जगत् की उत्पत्ति की है । और उस प्रकृति से परे रहने वाला परमात्मा, जो अधम कहलाता है, बुद्धिहीन होने पर भी बोद्धा, विना काल के श्रवण, विनादेह के स्पर्श, एवं विना नेत्र के देखता है तथा विना जिह्वा के अन्न का ग्रहण, बिना नासा के गन्ध ग्रहण, बिना मुख के वेदवेक्ता, कर निना सर्व कर्मकर्ता, बिना पैर के चलना और बिना लिंग के नारि भोग करता है उसी भाँति बिना गुह्येन्द्रिय के प्रकृति को गुह्य युक्त करता है । वही ब्रह्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्धात्मक हैं, अतः उस ब्रह्मा को नमस्कार करता हूँ ॥५७-६५। इस भाँति प्रकृति और पुरुष वे दोनों अनादि और प्रकृति से उत्पन्न सभी गुण विकारी कहे जाते हैं । इसलिए वे दोनों एकार्थ, एक शब्द, एक रूप, एवं नित्य शरीरात्मक हैं, जो आदि, मध्य, अन्तरहित, नित्य, शुद्ध, सनातन हैं । उसमें पुं (पुलिंग) स्त्रीलिंग और नपुंसक की जननी वह परा प्रकृति है, एवं वह पुरुष कवि, सूक्ष्म, कूटस्थ, ज्ञानवान् और पर होने के नाते अजन्मा है । यद्यपि वह उपरोक्त गुण सम्पन्न होने पर भी मेरे द्वारा जन्म ग्रहण करता है, तथापि वह तुम्हारा पुत्र कैसे हो सकेगा । इसलिए विश्वानर ! माया विशिष्ट भगवान् जिन्हें जनार्दन कहा गया है, मेरे वर द्वारा तुम्हारे यहाँ पुत्र रूप में अवतरित होगे ।

इत्युक्त्यान्वदेहे देवः पावकस्तद्वरादभूत् । अष्टानां च वसूनां च पावको हि पतिस्त्वयम् ॥७१
 वैश्वानर इति ख्यातोऽभवत्स्वाहापतिः प्रभुः । स तु पूर्वभवे देवः पुरा कल्पेऽनलोऽभवत् ॥७२
 नैषधो आहुणो धीमान्यथा राजा नलस्तथा । सङ्कलायां गते शूषे दमयन्ती पतिव्रता ॥७३
 स्वपितुर्गंहमासाद्यान्वेददामास भूपतिम् । तदा नलो द्विजं प्राप्तो दमयन्तीपतिः प्रभुः ॥७४
 दृष्ट्वा तं शोहमापन्ना दमयन्ती शुभादना । एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी ॥७५
 नायं नलस्त्वं पतिर्बाहुणोऽयं सुनोहितः । अनलो नाम विख्यातो देदवाक्यात्स चाभवत् ॥७६
 महासरस्वतेः देवों तुष्टाव स तु मोहितः । तस्य पुण्यप्रभः ब्रेन विश्वानरसुतोऽभवत् ॥७७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरुर्वाक्यं पावको भगवान्प्रभुः । स्वमुखात्क्वांश्मुत्पाद्य सञ्जातस्तु ततो दमुः ॥७८
 रङ्गुणो नाम विख्यातो लक्ष्मीदत्तस्य वै मुतः । नगरे काञ्चनपुरे वैश्यजातिसमुद्घवः ॥७९
 यङ्गुणा नाम तत्पत्नी बभूव च पतिव्रता । सद्वद्वव्यव्ययं कृत्वा धर्मकार्येषु दम्पती ॥८०
 काष्ठमानांय विकीर्य तुम्भजाते परस्परम् । रामानन्वस्तस्य गुरु रङ्गुणस्य महात्मनः ॥८१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये
 वसुमाहात्म्ये रङ्गुण वैश्योत्पत्तिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः । १६

इतना कहकर ब्रह्मा के अन्तर्हित हो जाने पर पावक उत्पन्न हुए जो आठों वसुओं के अधीश्वर हैं । उन स्वाहापति पावक की वैश्वानर नाम से प्रस्थाति हुई । वे पहले कल्प में अनल नाम से ब्राह्मण कुल में उत्पन्न, जो निषध देश में राजानल के समय रहा करते थे । जिस समय राजा नल संकट में पड़कर जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय पतिव्रता दमयन्ती अपने पिता के घर रहकर राजा नल का अन्वेषण कर रही थी । उस समय अनल ब्राह्मण को देखकर दमयन्ती ने मोहित होकर उन्हें अपना पति निश्चित किया था किन्तु उसी बीच आकाशवाणी हुई कि यह तुम्हारे पति नल नहीं अनल है । इसने ब्रह्मा की उपासना से यह रूप प्राप्तकर अनल नाम से स्थाति प्राप्त की है और उसने मोहित होकर देवी सरस्वती की भी उपासना की है, जिससे वैश्वानर के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ है । ६६-८७

सूत जी बोले—बृहस्पति की इन बातों को सुनकर भगवान् पावक ने मुख द्वारा अपना तेज निकालकर भूतल पर भेज दिया, जो कांचनपुर नगरी के प्रतिष्ठित एवं वैश्य शिरोमणि लक्ष्मीदत्त के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ, जो रंकण नाम से प्रस्थात था । उसकी पतिव्रता पत्नी का नाम पंकणा था । वे दम्पती (दोनों) अपने सम्पूर्ण द्रव्यों को धार्मिक कार्यों में व्यय करने के उपरांत लकड़ी बेंच-बेंचकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे जो अपने गुरु रामानन्द से वैसी ही शिक्षा ग्रहण किये थे । ८८-८९

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में रंकण वैश्योत्पत्ति वर्णन
 नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त । १६।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

कबीरनरसमुत्पत्तिवर्णनम्

बृहस्पतिरुच्च

दितिपुत्रौ महाघोरौ विष्णुना प्रभविष्णुना । संहतो तु दितिज्ञातिका कश्यपं समपूजयत् ॥१

द्वादशत्वदान्तरे स्दामी कश्यपो भगवानृषिः । उवाच पत्नीं स हि तां वरं बृहि वराननेः ॥

सा तु श्रुत्वा नमस्कृत्य वचनं प्राह हर्षिता ॥२

अदितिर्मम या देवी सपल्ती पुत्रसंयुता : द्वादशतनयास्तस्या सप्त द्वौ तनयौ स्मृतौ ॥३

तदवर्यसुते नैव विष्णुना शुरपालिना । विनाशितौ सुतौ घोरौ ततोऽहं भृशदुखिता ॥४

देहि ने तनयं स्वामिन्द्रादशादित्यनाशनम् । इति श्रुत्वा वचो घोरं दिति प्राह सुदुःखितः ॥५

ब्रह्मणा निर्मितौ लोके धर्माधर्मौ परापरौ । धर्मपक्षास्तु ये लोके नरास्ते ब्रह्मणः प्रियाः ॥६

अर्धमपक्षास्तु नरा वैरिणस्तस्य धोमतः । अर्धमपक्षौ तनयौ तस्मान्मुत्युमुपागतौ ॥७

अतो धर्मप्रिये शुद्धं कुरु तस्मान्महाबलः । भविष्यति सुतो धीमाँश्चिरञ्जीवि तत्र प्रियः ॥८

इति श्रुत्वा दितिर्देवी कश्यपाद्गर्भमुत्तमम् । सम्प्राप्य सा शुभाचारा बक्षव व्रतधारिणी ॥९

तस्या गर्भगते पुत्रे महेन्द्रश्च भयान्वितः । दासभूतः स्थितो गेहे स दितेराज्या गुरोः ॥१०

अध्याय १७

कबीरनरसमुत्पत्ति का वर्णन

बृहस्पति जी बोले—सम्पूर्ण शक्ति सम्पन्न भगवान् विष्णु द्वारा उन दोनों भीषण पुत्रों के निधन होने पर दिति ने अपने पति काश्यप ऋषि को प्रसन्न करना आरम्भ किया । बारह वर्ष के उपरात उसके स्वामी भगवान् कश्यप ने प्रसन्न होकर अपनी उस पत्नी से कहा—सुन्दरि ! वर की याचना करो । उसे सुनकर उसने हर्षित होकर नमस्कार पूर्वक कहा—मेरी सपल्ती (सौत) अदिति देवी के बारह पुत्र हैं और मेरे दो पुत्र थे । किन्तु उनके छोटे भाई विष्णु ने जो सदैव सुरों की ही रक्षा करते हैं, मेरे उन दोनों पुत्रों का निधन कर दिया, इसीलिए मैं अत्यन्त दुःखी हूँ । स्वामिन् ! मुझे एक ऐसा पुत्र प्रदान करें, जो बारह आदित्यों का विनाशक हो, इस घोर वाणी से दुःखी होकर कश्यप ने उस पत्नी से कहा, ब्रह्मा ने लोक में धर्म और अधर्म की सृष्टि की है, उसमें लोक में धर्मानुयायी मनुष्य ब्रह्मा को प्रिय होते हैं और अधर्मानुयायी मनुष्य शत्रु । अतः अधर्म के अनुयायी होने के नाते तुम्हारे दोनों पुत्रों का निधन हुआ है । धर्मप्रिये ! इस पर मेरा यह कहना है कि पहले अपने मन की शुद्धि पूर्वक धर्मचरण करो ।, इससे तुम्हें एक बलवान् पुत्र की प्राप्ति होगी, जो धीमान्, चिरजीवी एवं प्रिय होगा । इसे सुनकर दिति ने कश्यप द्वारा गर्भ धारण करने के उपरात व्रत धारणकर शुभाचरण द्वारा काल यापन का नियम किया । उसके गर्भ में पुत्र की अवस्थिति समझकर इन्द्र ने भयभीत होकर दिति के घर सेवक की भाँति रहकर गुरु की भाँति उसकी

सप्तमासि स्थिते गर्भे शक्रमायाविमोहिता । अशुचिश्च दितिर्देवी सुष्वाप निजमन्दिरे ॥११
 अङ्गुष्ठमात्रो भगवान्महेन्द्रो वज्रसंयुतः । कुक्षिमध्ये समागम्य चक्रे गर्भ स सप्तधा ॥१२
 जीदभूतानतिबलान्दृष्ट्वा सप्त महारिपून् । एकैकः सप्तधा तेन महेन्द्रेण तदा कृतः ॥१३
 नन्दीभूतश्च तान्दृष्ट्वा महेन्द्रस्तैः नमन्वितः । योनिद्वारेण चागम्य प्रणनाम तदा दितिम् ॥१४
 प्रसन्ना ता दितिर्देववन्महेन्द्राय च तान्दृतौ । मरुदगणाश्च ते सर्वे निष्याताः शक्रसेवकः ॥१५
 स तु पूर्वभवे जातो ब्राह्मणो लक्षकविश्रुतः । इलो नाम स वेदस्तो यथेतो नृपतिस्तदा ॥१६
 एकदा बलवान्नाजाः मनुपुत्रः इलः स्वयम् । एकाकी हयमारुह्य मेरोर्विदिननायौ ॥१७
 मेरोरघः स्थितः खण्डः स्वर्णगर्भो हरिप्रियः । निवास कृतवांस्तत्र कृत्वा राष्ट्रं भ्रहोत्तमम् ॥१८
 इलेनावृतमेवापि कृतं तत्र स्थले मुराः । इलावृतमिति ख्यातः खण्डोऽभूद्विद्विधप्रियः ॥१९
 भारते ये स्थिता लोका इलावृतमुपागताः । मेर्गिरिर्वृक्षमयो विधात्रा निमित्ते हि सः ॥२०
 आरोहणं नरैस्तस्मन्कृतं स्वर्णमयं शुभम् । तमारुह्य क्रमाल्लोकः स्वर्गलोकमुपागतः ॥२१
 तान्दृष्ट्वा मनुजान्प्राप्तान्सदेहान्दर्वासण्डपे । दितिस्ताश्च सुरास्तर्वे महेशं शरणं ययुः ॥२२
 जात्वा स भगवान्दुदो भवान्या सह शङ्क्रः । इलावृतवने रम्ये स रेमे च तया सह ॥२३
 एतस्मन्नन्तरे प्राप्तो वैवस्वतसुतो महान् । इलो नाम महाप्राज्ञो मृगयार्थी सदाशिवम् ॥२४
 नग्नभूतं समालोक्य नेत्रे सन्मील्य संस्थितः । लज्जितां गिरिजां दृष्ट्वा शशाप भगवान्धरः ॥२५

सेवा करना आरम्भ किया । गर्भ के सात मास के होने के उपरांत इन्द्र की माया से मोहित दिति देवी ने अपने घर में अपवित्रता पूर्ण शयन किया । उस समय भगवान् इन्द्र ने अंगुष्ठ के समान छोटा रूप धारण- कर वज्रसेवत दिति के कुक्षि में प्रविष्ट होकर उस गर्भ का सात खण्ड कर दिया । उन महाबली सातो शत्रुओं को जीवित देखकर एक-एक का सात सात खण्ड किया । पश्चात् दिन ओहोकर महेन्द्र ने उन सबको साथ लिए योनि द्वार से बाहर निकालकर दिति को प्रणाम किया । उस समय प्रसन्न होकर दिति ने अपने उन सभी पुत्रों को शुरेन्द्र को सौंप दिया, जिससे वे सभी इन्द्र सेवक के रूप में रहकर 'मरुदग्न' के नाम से प्रख्यात हुए । १-१५ । वह गर्भस्थजीव पहले समय में राजा इल की भाँति 'इल' नामक प्रख्यात ब्राह्मण था । एक दार मनुपुत्र बलवान् राजा इल ने अश्वारुद्ध होकर एकाकी मेरुपर्वत के घोर जंगल में यात्रा की । उस राजा ने वहाँ पहुँचने पर मेरु के नीचे उस खण्ड प्रदेश को, जो स्वर्ण गर्भित एवं हरिप्रिय था, उत्तम राष्ट्र के रूप में परिणत कर वहाँ निवास पूर्वक अपना आधिपत्य स्थापित किया । इल के अधित्य स्थापित होने पर देवगण भी वहाँ रहने लगे । इसलिए उस देवप्रिय खण्ड की 'इलावृत' प्रदेश से प्रख्याति हुई । पश्चात् भारत के सभी जनवर्ग इलावृत प्रदेश में पहुँच गये । ब्रह्मा ने मेरुपर्वत का निर्माण वृक्ष की भाँति किया । जिसमें आरोहण करने के लिए मनुष्यों ने स्वर्णमयी सीढ़ियों की रचना की है । उस पर चढ़कर सभी लोग क्रमशः स्वर्ग लोक पहुँचने लगे । उस समय देवों ने उस स्वर्ण मण्डल में मनुष्यों को सदेह, पहुँचते हुए देखकर आश्चर्य-चकित होकर महेश जी के यहाँ जाकर उनसे सब वृत्तान्त कहा—उसे मुनकर भगवान् शंकर ने भवानी पार्वती^१ को साथ लेकर उसी बन में जाकर रमण करना आरम्भ किया । उसी बीच वैवस्वत पुत्र इल ने मृगया (शिकार) के लिए भ्रमण करते हुए उस बन में यात्रा की वहाँ पहुँचने पर उस राजा ने सदाशिव भगवान् को नग्न देखकर नेत्र मूँदकर वहाँ खड़ा हो गया । उस समय गिरिजा को लज्जित होते देखकर भगवान् शिव ने यह शाप

अतिमन्त्वण्डे सदा नर्यो धर्विज्यन्ति च पां विना । इत्युक्त्वा वचनं तस्मिन्नार्थस्सर्वा बभूविरे ॥२६
इला बभूव नृपतेः कन्या जनमनोहरा । बहुकालं मेरुशृङ्गे महत्तपमचीकरत् ॥२७
इलासमाधिभूतायाः सप्तविंशच्चतुर्युगम् । जातं तत इला कन्या त्रेतामध्ये तु चन्द्रजन्म ॥
बुधं देवं पर्ति कृत्वा चन्द्रवंशमजीजनत् ॥२८

अयोध्याधिपतिः श्रीमान्यदेलावृतमागतः । तस्य राज्ञी मदवती नाम्ना तुष्ट्वा पार्वतीम् ॥२९
तदा प्राप्त इले विप्रस्तस्या रूपेण स्तोहितः । पस्पर्शं तां मदवतीं राज्ञीं कामविमोहितः ॥३०
एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी । इले नायं द्विजाश्यां तव रूपविमोहितः ॥३१
अनिलो नाभं तत्रैव विल्यातोऽभूदिद्वज्जस्य वै ! कामाशिर्षीडितो विप्रम् तुष्ट्वाव च दावकम् ॥३२
छित्त्वाछित्त्वा शिरो रम्यं तस्मै जातं पुनः पुनः । दत्त्वा तुष्ट्वाव तं देवं प्रसन्नोऽभूद्वन्नज्जयः ॥३३
प्राह त्वमूनपञ्चाशद्विभेदाऽङ्गनयिष्यसि । तथाहं सिववान्भूत्वा तत्सङ्ख्यस्तव कामदः ॥३४
यथा कुबेरो भगवन्त्यङ्गविंशद्वरुणप्रिणः । तथाहमूनपञ्चाशद्विभेदस्तव वै सलाः ॥३५
इत्कुर्ते वचने तस्मिन्दितिकुक्षौ द्विजोत्तमः । दायुर्नामि स वै जातः पावकस्य प्रियस्सखा ॥३६

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वैश्यजात्यां समुद्भूतः । धान्यपालस्य वै गेहे मूलगण्डान्तजः सुतः ॥
पितृमातृपरित्यक्तः काश्यां विन्द्यवने तदा ॥३७

प्रदान किया कि—इस खण्ड प्रदेश में जो कोई आये गा, मेरे अतिरिक्त वे सभी स्त्री हो जायेंगे । उनके इस प्रकार कहने पर वहाँ सभी लोग स्त्री के रूप में परिणत हो गये । राजा इल भी एक परम सुन्दरी कन्या के रूप में परिणत हो गया । उस इला कन्या ने वहाँ उस मेरे ग्रुण पर रहकर समाधिस्थ होकर महान् तप करना आरम्भ किया । सत्ताइस बार चारों युगों के व्यतीत होने के उपरांत इस इला ने इन्द्र पुत्र बुध देव को अपना पति स्वीकारकर चन्द्रवंश की उत्पत्ति की । जिस समय अयोध्या नरेश इल ने इलावृत में अपना आधिपत्य स्थापित किया उस समय उसकी रानी मदमती ने सुरा द्वारा पार्वती देवी को प्रसन्न किया । उसी समय इला नामक ब्राह्मण ने जो राजा के समान सौन्दर्य पूर्ण था, रानी के रूप पर मोहित होकर कामपीड़ा से अधीर होते हुए उस रानी मदमती का स्पर्श किया । १६-३०। उस समय आकाशवाणी हुई । यह राजा इल नहीं अपितु इल नामक ब्राह्मण है, जो तुम्हारे रूप पर आसक्त हैं, वहाँ अनिल नाम से उस ब्राह्मण की स्वातित हुई । पश्चात् कामव्यथित होकर उस ब्राह्मण ने पावकदेव की आराधना की—बार-बार उस अपने शिर को आहुति रूप में उन्हें अपित किया, जो सौन्दर्य पूर्ण पुनः पुनः उत्पन्न हो रहा था । उससे प्रसन्न होकर धनंजय ने कहा—तुम अपने को उनचास रूपों में उत्पन्न करोगे, और मैं तुम सबका यथेच्छ सहायक रहूँगा । जिस प्रकार भगवान् कुबेर उन छब्बीस वरुणों के प्रिय सहायक हैं । उसी भाँति मैं तुम उनचासों का प्रिय रहूँगा । इतना कहने पर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने दिति के कुक्षि में जाकर बायु नाम से उत्पत्ति की, जो पावक का प्रिय सखा था । ३१-३६

सूत जी बोले—बृहस्पति की ऐसी बात सुनकर वह काशीपुरी के वैश्य कुल में धनपाल के घर मूल गण्डान्त के समय पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ, जिससे उसके माता-पिता ने विद्याटवी में लाकर परित्याग

अलिको नाम वै म्लेच्छस्तत्र स्थाने समागतः ॥३८

अनपत्यो वस्त्रकारी सुतं प्राप्य गृहं ययौ । कबोर इति विल्यातः स पुत्रो मधुराननः ॥३९
स सप्ताब्दवपुर्भूत्वा भोदुग्रधपानतत्परः । रामानन्दं गुरुं मत्वा रामध्यानपरोऽभवत् ॥४०
स्वहस्तेनेव संस्कृत्य भोजनं हरयेऽर्पयत् । तत्प्रियार्थं हरिस्साक्षात्सद्विभावदोऽभवत् ॥४१

बृहस्पतिरुचाच

उत्तानपादतनयो ध्रुवोऽभूत्क्लित्रियः पुरा । पितृमातृपरित्यक्तः स दालः पञ्चहायनः ॥४२
गोवर्द्धनगिरौ प्राप्य नारदस्योपदेशतः । स चक्रे भगवद्व्यानं मातृन्धृतं च महाव्रती ॥४३
तदा प्रसन्नो भगवान्विष्णुनारायणः प्रभुः । खमण्डले पदं तस्मै ददौ प्रीत्या नभोमयन् ॥४४
दृष्ट्वा तद्वदनं रस्यं मायाशक्त्या दिशो दश । स्वामिनं च ध्रुतं मत्वा भक्तिनन्ना बभूविरे ॥४५
ध्रुवोऽपि भगवान्साक्षात्सर्वपूज्यो बभूव ह । दिस्पतिः ज तु विजेयो भगवानां पतिः स्वयम् ॥४६
नभः पतिः कालकरः शिशुमारपतिस्स वै । पञ्चतत्त्वां^१ हि वै गाया प्रकृतिस्तत्पतिः स्वयम् ॥४७
तस्माद्वरायां सम्भूतो भौमो नाम महाग्रहः । जलदेव्यात्सतो जातः शुक्रो नाम महाग्रहः ॥४८
वह्निदेव्यां ततो जातश्चाहं तत्र महाग्रहः । वासुदेव्यां ध्रुवाज्जातः केतुनाम महाग्रहः ॥४९
ग्रहभूतः स्थितस्तत्र नभोदेव्यां तदुद्ध्रवः । राहुनाम तथः घोरो महाग्रह उपग्रहः ॥५०

किया । उसी समय अलिक नामक एक म्लेच्छ वहाँ आ गया । सन्तानहीन होने के नाते उस जुलाहे ने उस शिष्णु को लेकर अपने घर को प्रस्थान किया । पश्चात् वह सुन्दर बालक 'कबीर' के नाम से प्रस्थान हुआ । सात वर्ष की अवस्था तक वह बालक गोदुध का पान ही कर रहा था । और उसी समय से रामानन्द को अपना गुरु मानकर उसने राम का ध्यान भो करना आरम्भ किया । वह अपने हाथ से स्वयं भोजन बनाकर भगवान् को अर्पित करता था । और भगवान् ने भी साक्षात् प्रकट होकर उसकी सभी कामनाओं की पूर्ति की । ३७-४१

बृहस्पति जी बोले—पहले समय में राजा उत्तानपाद के प्रिय पुत्र राजा ध्रुव हुए थे, जो पाँच वर्ष की अवस्था में ही माता-पिता द्वारा परित्यक्त किये गये थे । पश्चात् उन्होंने नारद जी के उपदेश से गोवर्द्धन पर्वत की यात्रा की । उस समय महाव्रती ने वहाँ पहुँचकर छे मास तक भगवान का ध्यान किया, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु नारायण स्वामी ने आकाशमण्डल के पद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया । उनके सुन्दर बदन को देखकर माया शक्ति जो दश दिशाओं में पूर्ण व्याप्त है, ध्रुव को अपना स्वामी स्वीकार कर भक्तिपूर्वक अपनी विनम्र अवस्थिति की । अनन्तर भगवान् ध्रुव भी साक्षात् सर्व पूज्य हुए । तथा वे दिशाओं, नक्षत्रों, एवं आकाश के भी पति वहीं हैं वे कालकर्ता, शिशुमार पति तथा पाँच तत्वों वाली उस प्रकृति माया के भी पति हैं । उसी प्रकार पृथ्वी के गर्भ से महाग्रह भौम, जल देवी के गर्भ से महाग्रह शुक्र, अग्नि की स्त्री के गर्भ से महाग्रह मै (गुरु), वासुदेवी के गर्भ से महाग्रह केतु, और नगो देवी के गर्भ से महाग्रह राहु, जो घोर एवं उपग्रह भी कहा जाता है । उन्हीं ध्रुव द्वारा उत्पन्न हुए हैं । ४२-५०।

१. पञ्चतत्त्वा माया प्रकृतिस्तत्पतिस्स स्वयमित्यर्थः ।

पूर्वस्यां दिशि वै तस्माज्जातश्चेरावतो गजः । अग्नेणां दिशि वै तस्मात्पुण्डरीको गजोऽभवत् ॥५१
 वामनः कुमुदश्चैव पुष्पदन्तः क्रमादगजाः । सर्वभौमः सुप्रतीको नभोदिक्षु तु तत्सुताः ॥५२
 अभ्रनुः कपिला चैव पिङ्गलाख्या इमाः क्रमात् । ताम्रकर्णी शुभ्रदन्ती चाङ्गना चाङ्गनावती ॥५३
 भूमिदिक्षु करिष्यश्च जातास्तस्मात्तु तत्प्रियाः । भगिनी च तथं माता मुता चैव स्नुषा तथा ॥५४
 पश्योन्मुद्भूवानां च नृणां ता योषितस्सदा । देवयोन्मुद्भूवानां च नृणां पत्नी स्मृता स्वसा ॥५५
 मनुवंशोद्भूवानां च नृणां चान्योद्भूवाः स्त्रियः । इति धनैर्विधानेत्तो मया प्रोक्तः सुरा हि वः ॥५६
 द्विधा ध्रुवस्स विनेयो भूमेहर्धमधस्तथा । सदगुणः स दिवारूपो रात्रिरूपस्तसोगुणः ॥५७
 अधोध्रुवे सदा रात्रिनरकास्तत्र वै स्थिताः । ऊर्ध्वध्रुवे दिवा नित्यं तपोमध्ये निशा दिवा ॥५८
 महो जनस्तपस्तत्य तेषु नित्यं दिवं स्मृतम् । रौरवश्चान्धूपश्च तामिलं च तमोमयम् ॥
 तेषु नित्यं त्स्तुता रात्रिः कल्पमानं च करेविदैः ॥५९
 स तु पूर्वभवे चासीद्बाहृणी माधवप्रियः । षष्ठ्यचब्दं सर्वतीर्थेषु प्रातःस्नानं चकार ह ॥६०
 तीर्थे पुष्यात्स वै विप्रो माधवो माधवप्रियः । सुनीत्यां गर्भनासाच्च ध्रुवो भूत्वा रराज ह ॥
 षट्ट्रिशत्त्वं सहस्राब्दं राज्यं कृत्वा ध्रुवोऽभवत् ॥६१

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्ष्यं स ध्रुवः पञ्चमो वसुः । गुर्जरे देश आगम्य वैश्यजात्यां समुद्रवः ॥

उनके द्वारा पूर्व दिशा में ऐरावत नामक गज, अग्नि दिशा में पुण्डरीक नामक गज, और वामन, कुमुद एवं पुष्पदन्त नामक गजेन्द्रों की उत्पत्ति हुई सार्वभौम एवं सुप्रतीक नामक उन गजेन्द्रों के पुत्र उन्हीं द्वारा उत्पन्न हुए जो आकाश दिशाओं के अधिपति हैं एवं अभ्रनु, कपिला, पिंगला, ताम्रकर्णी, शुभ्रदन्ती, अंगना, अंजनावती आदि उनकी पत्नियाँ भी उन्हीं द्वारा उत्पन्न हुईं, जो पृथिवी की दिशाओं में रहती हैं । उसी प्रकार उनकी भगिनी, माता, पुत्री, पुत्रवधू आदि भी । जो पश्युगति में उत्पन्न नरपशुओं की सदैव स्त्रियाँ हो रही हैं । देवयोनि में उत्पन्न नरों की स्वसा उनकी स्वसा (भगिनी) ही पत्नी और मनुवंश में उत्पन्न पुरुषों की पत्नियाँ अन्य द्वारा उत्पन्न स्त्रियाँ हुई हैं । देववृन्द! इस धर्म की व्यास्या ब्रह्मा ने स्वयं की थी, मैंने तुम्हें सुना दिया । वह ध्रुव दो भागों में विभक्त होकर भूमिके ऊपर एवं नीचे लोकों में अवस्थित हैं, जो सतोगुण रूप से दिवारूप और तमोगुण रूप से रात्रिरूप है । तथा पृथिवी के नीचे रात्रिरूप में सदैव अवस्थित हैं, जहाँ नारकीयों की स्थिति होती है । पृथिवी के ऊपर ध्रुव की अवस्थिति होने से ऊपर के लोकों में सदैव दिवस, मध्य के तपलोक में रात्रि दिवस दोनों, तथा महलोक, जनलोक के तपलोक और सत्यलोक में दिन रहता है । उसी भाँति पञ्चतों ने रौरव, अंधकूप, और तमोमय तामिक्ष में सदैव रात्रि ही रहती है । पूर्व जन्म में वे माधव नामक ब्राह्मण थे, जो अत्यन्त भगवत् प्रियथे । उन्होंने साठ वर्ष की अवस्था तक सभी तीर्थों में भ्रमणकर प्रातः स्नान किया था । जिस पुण्य के प्रभाव से वे भगवान् के अत्यन्त प्रिय हुए । पञ्चांत रानी सुनीति के गर्भ द्वारा उत्पन्न होकर ध्रुव नाम से राजपद पर प्रतिष्ठित हुए । इस प्रकार छत्तीस सहस्र वर्ष तक राज का उपभोग करके उन्होंने अटल ध्रुव का पद प्राप्त किया । ५१-६१

सूत जी बोले—इस प्रकार बृहस्पति की बाणी सुनकर पाँचवें वसु ध्रुव ने अपने तेज को निकाल

नरश्रीनाम विख्यातो गुणवैश्यस्य वै सुतः:

॥६२

कुसीदगुणगुप्तश्च नरश्रीः पुत्रवत्सलः । त्यक्त्वा प्राणान्यदौ स्वर्गं स वैश्यतनयो ध्रुवः ॥६३
प्रत्यहं स हरेः ज्ञीडां वृन्दावनमहोत्तमे । शिवप्रसादातप्रत्यक्षां दृष्ट्वा हर्षमवाप्तवान् ॥६४
थस्य पुत्रविवाहे च भगवान्भक्तवत्सलः । याददैस्सहं सम्प्राप्तस्तस्य वाञ्छितदायकः ॥६५
तुरीं काशीं समागम्य नरश्रीभक्तराद् स्वयम् । रामानन्दस्य शिष्योऽभूद्विष्णुधर्मविशारदः ॥६६

बृहस्पतिरुचाच

कदाचिद्भूगवत्तन्त्रिर्गङ्गाकूलेऽनसूयया । सार्वं ततो महत्कुर्वन्नद्विद्यानपरोऽभवत् ॥६७
तदा ब्रह्मा हरिश्चन्थुः स्वस्ववाहनमास्थिता । वरं ब्रह्मीति वचनं तमाहुस्ते तदातनाः ॥६८
इति श्रुत्वा वचस्तेषां स्वयम्भूतनयो मुनिः । नैव किञ्चिद्वृचः प्राह संस्थितः परमात्मनि ॥६९
तस्य भाव सनात्नोदय त्रयो देवाः सनातनाः । अनसूयां तस्य पत्नीं समागम्य वचोऽभुवन् ॥७०
लिङ्गहस्तः स्वयं श्रुतो विष्णुस्तद्वसद्वृन्नः । ब्रह्मा कामब्रह्मलोपः स्थितस्तस्या वशं गतः ॥
र्तिं देहि मशाध्युणे नो चेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥७१
पतिव्रताऽनसूया च श्रुत्वा तेषां वचोऽशुभम् । नैव किञ्चिद्वृचः प्राह कोपभीता सुरान्प्रति ॥७२
मोहितास्तत्र ते देवा गृहीत्वा तां बलात्तदा । मैथुनाय समुद्योगं चक्रुर्मायाविमोहिताः ॥७३

कर फेंका । उसी द्वारा गुजरात देश निवासी गुण वैश्य नामक वैश्यशिरोमणि के घर पुत्र रूप से उत्पन्न हुए, नर श्री नाम से प्रस्त्यात हुए । रूपये के व्याज द्वारा जीवन-यापन करने वाले गुणगुप्त वैश्य अपने पुत्र को बहुत प्यार करता था, किन्तु वैश्यपुत्र ध्रुव ने अल्पकाल में ही अपना प्राण परित्याग कर स्वर्ग की यात्रा की । शिव जी की प्रसन्नता से वे उस उत्तम वृन्दावन में भगवान् की रासकीडा का दर्शन प्रत्यक्ष किया करते थे, जो उन्हें अत्यन्त हर्षातिरेक से प्राप्त हुआ था । उस भक्तराद् के पुत्र के विवाह में भक्त-वत्सल भगवान् कृष्ण ने अपने यादवगणों समेत आकर उनका मनोरथ पूरा किया । पश्चात् विष्णुधर्म प्रिय नरश्री ने काशीपुरी में जाकर रामानन्द की शिष्य सेवा स्वीकार की । ६२-६६

बृहस्पति जी बोले—एकबार भगवान् अत्रि कृषि ने अपनी अनसूया नामक पत्नी समेत गंगा के तट पर ब्रह्माद्यान में निमग्न होकर महान् तप करना आरम्भ किया । उस समय ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव जी ने अपने-अपने वाहनों पर बैठकर वहाँ पहुँचने का प्रयत्न किया । वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने ब्रह्मपुत्र अत्रि से वरयाचना करने के लिए कहा । किन्तु अत्रि इन लोगों की बात पर कुछ ध्यान न देकर पूर्व की भौति ब्रह्माद्यान में मग्न ही रहे । उनके भाव को जानकर उन तीनों देवों ने उनकी पत्नी अनसूया के पास जाकर उनसे कहना आरम्भ किया । उस समय अनसूया के वशीभूत होकर रुद्र हाथ से लिंग ग्रहण किये थे, विष्णु उसमें रस वृद्धि कर रहे थे और ब्रह्मा अपनी कामवासना नष्ट करने पर तुले थे । वे लोग उससे बार-बार यही कह रहे थे कि—मदभरे नेत्रों से कटाक्षपात करने वाली प्रिये ! मुझे रति दान प्रदान करो, अन्यथा तुम्हारे सामने मेरा प्राण निकल रहा है । उस समय पतिव्रता अनसूया ने उन लोगों की उस अशुभ वाणी को सुनकर भी उनके कोपभय से भयभीत होने के नाते उन लोगों से कुछ नहीं कहा । किन्तु अत्यन्त मोहित उन बलवान् देवों ने जो माया विमुग्ध थे, बलात् उसे पकड़कर मैथुनार्थ प्रयत्न किया । ६७-७३।

तदा जुद्धा सती सा वै ताञ्छशगम मुनिप्रिया : सम पुत्रा भविष्यन्ति यूयं कामविमोःहिताः ॥७४
महादेवस्य वै लिङ्गं ब्रह्मणोऽस्य महाशिरः । चरणौ वासुदेवस्य पूजनीया नरै सदा ॥

भविष्यन्ति भुरश्रेष्ठा उपहासोऽयमुत्तमः ॥७५

इति श्रुत्वा वचो धोरं नशकृत्य मुनिप्रियाम् । नुष्टुदुर्भक्तिनश्राव्य देवपाठैश्च क्रह्मयैः ॥७६

अनसूया तदा प्राह भवन्तो मम पुञ्जका । भूत्वा शारपं मदीयं च त्यक्त्वा तृप्तिनवाप्यथ ॥७७

इत्युक्ते वचने ब्रह्म चन्द्रमाश्च तदा ह्यभूत् । दत्तात्रेयो हरिः साक्षदुर्वासा भगवन्हृः ॥

तत्पाप्तर्गिहारार्थं योगदन्तो बसूविरे ॥७८

एतस्मन्नन्तरे देवी प्रकृतिस्वर्धमिल्ली । दिंधि दिष्णुं हरं चान्यं चक्रे सा गुणरूपिणी ॥७९

मन्वन्तरमतो जातं तेषां योगं प्रकुर्वताम् । हृषिताश्च त्रयो देवास्समागम्य च तान्प्रति ॥८०

उवाच वचनं रम्यं तेषां मङ्गलहेतवे । चन्द्रमाश्च भद्रेत्सेमो वसुः षष्ठः सुरप्रिय ॥८१

रुद्रांशश्रैव दुर्वासाः प्रत्यूषः सप्तमो वसुः । उत्तात्रेयमयो योगी प्रभासश्चाष्टमो वसुः ॥

तेषां वाक्यं रामाकर्णं वसदस्ते त्रयोऽभवन् ॥८२

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं वसवो हृषितास्त्रयः । स्वांशेन भूतलं जग्मुः कलिशुद्धाय दारुणे ॥

दक्षिणात्ये राजगृहे वैश्यजात्यां समुद्भवः ॥८३

पीपा नाम सुतः सोमः सुदेवस्य तदा ह्यभूत् । कृतं राज्यपदं तेन यथा भूपेन तत्पुरे ॥८४

उस समय कुद्ध होकर उस सती मुनिपत्नी ने उन्हें शाप दिया कि—काम मोहित होने के नाते तुम लोग मेरे पुत्र होगे । सुरश्रेष्ठ ! महादेव का लिंग, ब्रह्मा का शिर और विष्णु के चरण की पूजा मनुष्यों द्वारा सदैव जो होती है, यह एक उत्तम उपहास की बात होगी । इस धोर वाणी को सुनकर नमस्कार पूर्वक उन देवों ने भक्ति नश्र होकर वेद क्रह्चाओं के पाठ द्वारा उस मुनिपत्नी की आराधना की । पश्चात् अनसूया ने कहा—आप लोग मेरे पुत्र होकर शापमुक्ति पूर्वक ही प्रसन्नचित्त हो सकेंगे । क्रष्णि पत्नी के इस प्रकार कहने पर उस पाप के परित्यागार्थ ब्रह्मा ने चन्द्रमा, विष्णु ने दत्तात्रेय, और रुद्र ने दुर्वासा के रूप में परिणत होकर योग करना आरम्भ किया । उसी बीच समस्त धर्मधारिणी प्रकृति देवी ने जिसे गुणात्मक (सत्, रज एवं तम रूपा) कहा गया है, अन्य ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का निर्माणकर अपना कार्य सुसम्पादन करना आरम्भ किया था । इस प्रकार योग करते हुए उपरोक्त क्रष्णियों का वह मन्वन्तर काल समाप्त हो गया । पश्चात् हृषित होकर उन तीनों देवों ने उन योगियों के पास जाकर उनके कल्याणार्थ मांगलिक वाणी द्वारा उन सब से कहा—सोम नामक देव विष्र छठां वसु चन्द्रमा, प्रत्यूष नामक सातवाँ वसु रुद्रांश दुर्वासा, और प्रभास नामक आठवाँ वसु, योगिश्रेष्ठ दत्तात्रेय होंगे । इस भाँति उन दोनों की बातें सुनकर वे तीनों योगी वसु हो गये । ७४-८२

सूत जी बोले—बृहस्पति जी इस बात को सुनकर हृष्पूर्ण उन तीनों वसुओं ने कलि शुद्धार्थ इस भूतल में अपने अंश का प्रेषण किया, जो दक्षिण देश के वैश्यशिरोमणि राजकुल में सुदेव के गृह उत्पन्न होकर पीपा नामक पुत्र हुआ । अपने पिता के समान ही पीपा ने यथावसर राजपद पर प्रतिष्ठित होकर

रामानन्दस्य शिष्योऽशूद्धारकां स समागतः । हरेन्द्रां स्वर्जमयीं त्राप्य कृष्णात्स वै नृपः ॥
 वैष्णवेभ्यो ददौ तत्र प्रेततत्त्वविनाशिनीम् ॥८५
 प्रत्यूषस्त्रैव पञ्चाले वैश्यजात्यां समुद्भवः । मार्गपालस्य तनयो नानको नाम विश्रुतः ॥८६
 रामानन्दं समागम्य शिष्यो भूत्वा स नानकः । स वै म्लेच्छान्वशीकृत्य सूक्ष्ममार्गमदर्शवत् ॥८७
 प्रभासो रै शान्तिपुरे ब्रह्मजात्यां समुद्भवः । शुक्लदत्तस्य तनयो नित्यानन्द इति स्मृतः ॥
 इति ते वसुनाहात्म्यं मया शौनक वर्णितम् ॥८८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्दणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगोथेतिहाससमुच्चये
 वसुमाहात्म्ये कबीरनरश्रीपीपानानकनित्यानन्दसमुत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥९७

अथाष्टादशोऽध्यायः सधनरैदाससमुत्पत्तिवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तान्सुरान्देवो भगवान्वृहतां पतिः । अश्विनौ च समालोक्य तयोर्गत्थामवर्णयत् ॥१
 वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं पूर्वं विश्वकर्मा विचित्रकृत् । चित्रगुप्तश्रियं दृष्ट्वा चित्रलेखाविनिर्मिताम् ॥
 स्पर्ढाभूतो महामायां तुष्टाव बहुपूजनैः ॥२

राज्य का उपभोग किया था । पश्चात् रामानन्द के शिष्य होकर उन्होंने द्वारका की यात्रा की : वहाँ रहकर उन्होंने भगवान् कृष्ण द्वारा प्रेततत्त्वविनाशिनी सुवर्ण की मुद्राओं को प्राप्तकर वैष्णवों में वितरण करने का नियम किया था । उसी भाँति प्रत्यूष ने भी पांचाल (पंजाब) प्रदेश में वैश्य श्रेष्ठ मार्गपाल के घर पुत्ररूप में जन्म ग्रहण किया । जिनकी नानक नाम से ख्याति हुई । रामानन्द के शिष्य होकर नानक ने म्लेच्छों (यवनों) को अपने अधीनकर उन्हें सूक्ष्म मार्ग का दिग्दर्शन कराया और प्रभास ने शांतिपुर में ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्लदत्त के घर पुत्ररूप में जन्म ग्रहण किया । उनकी ख्याति नित्यानन्द नाम से हुई थी । इस प्रकार शौनक ! मैंने तुम्हें वसु माहात्म्य का वर्णन सुना दिया । ८३-८८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्द में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय के वसुमाहात्म्य में कबीर, नर श्री पीपा नानक और नित्यानन्द की उत्पत्ति का वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त । ९७।

अध्याय १८ सधनरैदाससमुत्पत्ति का वर्णन

सूत जी बोले—भगवान् वृहस्पति ने देवों से इस प्रकार की बातें कहकर पुनः अश्विनी कुमार की गाथों का वर्णन करना आरम्भ किया । वैवस्वत मन्त्रतर काल के पूर्व समय में विचित्र कारीगरी करने वाले विश्वकर्मा ने चित्रलेखा द्वारा निर्माण की हुई उस चित्रगुप्त को भी देखकर ईर्ष्या प्रकट करते हुए अनेक भाँति के पूजनों द्वारा महामाया का पूजन करना आरम्भ किया । पश्चात् प्रसन्न होकर उस

प्रसन्ना सा तदा देवीं चित्रायां तस्य योषितिः । स्वांशाज्जाता स्मृता संज्ञा सर्वज्ञानकरी स्वयम् ॥३
 लोडशब्दे वयः प्राप्ते संज्ञायास्तत्पिता सुखी । विवाहार्थी सुरान्सर्वानाहृथन्नेरमूर्द्धनि ॥४
 यक्षादीशाश्र षड्विशत्कुबे नायास्समागतः । यादसां पतयः प्राप्ता दश तत्रैव कामुकाः ॥५
 यादका ऊनपृनाशदायवश्च तथा स्मृताः । ध्रुवौ द्वौ च स्वयं प्राप्तौ मोमास्त्वैद लोडश ॥६
 लोडश च प्रत्यूषाः प्राप्ताः विश्वप्ररक्षकाः । षट्पूरुतरं च त्रिशतं ब्रह्मासा दिनरक्षकाः ॥७
 भावद्याश्र तदा रुद्राः शशिमण्डलरक्षकाः । आदित्याश्र लिथतःसर्वे संज्ञायाश्र स्वयंवरे ॥८
 दानवः विप्रचित्याद्याश्र तुराशीतिरायुः । प्रह्लादाद्यास्तदा दैत्या शाखुर्मध्याश्र यन्नगाः ॥९
 शेषः द्याश्र तदा नगास्तक्षर्याद्या गुरुः स्मृताः । तर्वे स्वयंवरे प्राप्ता महान्दोलाहलो हृभूत् ॥१०
 एतस्मिन्नन्तरे देवी देवकन्यासमन्विता । संज्ञा देवान्प्रति तदा प्रत्यक्षमभवद्विवि ॥११
 तां समालोक्य दलवान्बलिः कामदिमोहितः । करे शृहीत्यः प्रययौ पश्यतः सर्वधन्विनाम् ॥१२
 तदा क्रोधातुरा देवा रुधुर्देत्यस्तमम् । रास्त्रास्त्रैस्तर्पयित्वा तं महद्युद्धमकारयन् ॥१३
 दानवांश्र तदा दैत्या ननावाहनसंस्थितः । देवैः सार्द्धं महद्युद्धं तुमुलं चक्रिरे मुदा ॥१४
 दानवैश्र हता देवाः सुरैर्दत्या विनाशिताः । शवभूतैरिलावर्तेऽभूदगम्या वसुन्धरा ॥१५
 पक्षमाद्यमभूद्युद्धं दिव्यं दानवदेवयोः । पाञ्चजन्यस्तथा धाता हयग्रीवश्च मित्रकः ॥१६
 अघासुरोर्यमा चैव बलः शक्तस्तथैव च । बकासुरश्च वरुणः शक्टः प्रांशुरेव च ॥१७
 वत्सासुरो भगवैव विवस्वांश्र बलिः स्वयम् । प्रलम्बश्च तथा पूषा गर्दभः सविता युधि ॥१८

माहामाया ने जो सम्पूर्ण ज्ञानों की प्रदात्री है, उनकी चित्रा नामक पत्नी में अपने अंश द्वारा संज्ञा नाम से जन्म ग्रहण किया। संज्ञा की सोलह वर्ष की अवस्था होने पर उसके सूखी पिता ने मेहशिलर पर स्वयम्बर का आयोजन किया, जिसमें सभी देवों का आवाहन किया गया। उस स्वयम्बर में छब्बीस यक्षों समेत उनके अधीश्वर कुबेर, यादों गणों समेत उनके अध्यक्ष वरुण, पावकगण, उनचास वायुगण दोनों ध्रुव सोलह सोमगण, विश्वरक्षक तेरह प्रत्यूषगण, दिनरक्षक तीन सौ साठ प्रभास गण, चन्द्रमण्डलरक्षक भवादि रुद्रगण, , तथा सभी आदित्य उपस्थित थे। उसी प्रकार चौरासी विप्रचिति आदि दानव, प्रह्लाद आदि दैत्य, वासुकी आदि पन्नग, शेष आदि नाग और तार्क्ष्य आदि गरुणगण भी उपस्थित थे। उस समय उस स्वयम्बर में महान् कोलाहल हो रहा था। उसी बीच देवकन्याओं के साथ वह संज्ञा देवी देवों के सामने आकाश में दिखाई पड़ी। उसे देखकर काममोहित होकर बलवान् बलि ने हाथ से पकड़कर उन सभी के देखते ही उन्हें लेकर चल दिया। उस समय देवों ने कुद्ध होकर उस दैत्यशेष को रोकने की चेष्टा की। अपने शस्त्रास्त्रों के धात-प्रतिधात द्वारा उससे महान् युद्ध आरम्भ किया। दानवों और दैत्यों ने अनेक भाँति के अपने-अपने वाहनों पर बैठकर उन देवों के साथ भीषण युद्ध किया। १-१४। जिससे दानवों ने देवों का और देवों ने दैत्यों का विनाश किया। देव-दानवों का वह दिव्य युद्ध एक पक्ष (पन्द्रह दिन) तक हुआ, जिसमें उस इलावृत की भूमि शवमय दिखाई देती थी। उस युद्ध में पाञ्चजन्य-धाता, हयग्रीवमित्रक, अघासुर अर्यमा, बल-इन्द्र, वकासुर-वरुण, शक्ट-प्रांशु, वत्सासुरभग विवस्वान्-बलि, प्रलम्ब-पूजा, गर्दभ-सविता,

विश्वकर्मा स्यश्रैव कालनेमिर्हरिः स्वयम् । काञ्छमणौ च विजयं ययुधाते परस्परम् ॥
 पराजिताश्च ते दैत्या युद्धं त्यक्त्वा प्रदुद्धुवुः ॥१९
 विवस्वांश्च तदा संज्ञां गृहीत्वा रथसंस्थिताम् । विश्वकर्माणमागम्य ददौ तस्मै प्रसन्नधीः ॥२०
 विवस्वन्तं सुरश्रेष्ठं दृष्ट्वा संज्ञा वचोऽब्रवीत् । मत्स्तिश्च भवान्देवो भवेत्कार्यकरस्सदा ॥२१
 त्यया जिताहं भगवन्बलेर्विप्रियकारिणः । भाद्रजाग्रहणे दोषो न भनेत्स कदाचन ॥२२
 वीरभुक्ता सदा नारी स्त्रीरत्नं मुनिभिः स्मृतम् । चतुर्द्वा प्रकृतिर्देवी गुणभिन्ना गुणैकिका ॥
 एका सा प्रकृतिर्माता गुणसाम्यात्सनातनी ॥२३
 सत्त्वभूता च भगिनी रजोभूता च गेहिनो । तमोभूता च सा कन्या तस्यै देव्यै नमो नमः ॥२४
 नहवः पुरुषा ये वै निर्गुणश्रैकरूपिणः । चैतन्याऽज्ञानवन्तश्च लोके प्रकृतिसम्भवाः ॥२५
 अलोके पापजास्तर्वे देवब्रह्मसमुद्भवाः । या तु ज्ञानमयी नारी वृषेण्यं पुरुषं शुभम् ॥
 कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः परिर्भवेत् ॥२६
 स्वकीयां च सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम् । भगिनीं भगवाञ्छम्भुर्गृहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७
 इति श्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादितिसम्भवः । विवस्वान्भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवान्भूत् ॥२८
 सुताः कन्यास्त्ययोर्जाता मनुवैवस्वतस्तथा । यमश्च यमुना चैव दिव्यतेजोभिरन्विताः ॥२९
 तदा संज्ञा सती साक्षात्तेजोभूतं पर्ति स्वकम् । ज्ञात्वा छायां समुत्पाद्य तपसे वनमागता ॥३०

विश्वकर्मा मय, और कालनेमि विष्णु आपस में एक दूसरे को पराजित करने की इच्छा से युद्ध कर रहे थे । पश्चात् उस युद्ध में पराजित होकर दैत्यों ने पलायन किया । उस समय विवस्वान् ने संज्ञा को रथ पर बैठाकर ले जाकर विश्वकर्मा को सौंप दिया । उस समय देवश्रेष्ठ विवस्वान् को प्रसन्न देखकर संज्ञा ने उनसे कहा—आप मेरे पति होकर मेरा कार्य सदैव किया करें । क्योंकि भगवन् ! तुम्हीं ने उस वली बलि को पराजित कर विजय रूप में मुझे प्राप्त किया है । भाई की पुत्री (भतीजी) का ग्रहण करने में कोई दोष भी न होगा, क्योंकि मुनियों ने यह स्वीकार किया है कि नारी सदैव वीरभोग्या हैं और विशेषकर स्त्रीरत्न-गुणभुक्ता प्रकृति देवी अपने को गुण भेद द्वारा चार रूपों विभक्त करती है—एक भाग से वह सनातनी प्रकृति माता, सतोगुण रूप से भगिनी, रजोगुण रूप में गृहिणी, और तमोगुण रूप से कन्या होती है, अतः उस देवी को नमस्कार है । तथा एकरूपी उस निर्गुण को अनेक पुरुष रूपों में विभक्त किया है, जो चैतन्य, अज्ञानी एवं प्रकृति द्वारा उत्पन्न कहे जाते हैं । अलोक निवासी सभी लोग पापकर्म द्वारा ब्रह्मादि देवों से उत्पन्न हैं । और उसे ही ज्ञानमयी नारी पुरुष रूप में वरण करती है । अतः उस स्त्री के पुत्र, पिता, भ्राता और पति कौन हो सकते हैं? क्योंकि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री, विष्णु ने अपनी माता, एवं भगवान् शंभु ने अपनी भगिनी का (स्त्रीरूप) ग्रहणकर श्रेष्ठता प्राप्त की है । अदितिपुत्र विवस्वान् ने इस वेदमयी वाणी को सुनकर उस भ्रातृपुत्री संज्ञा का ग्रहणकर श्रेष्ठता प्राप्त की । १५-२८। पश्चात् उन दोनों के द्वारा कन्या सुत यम और यमुना वैवस्वत तेजपूर्ण जन्म हुआ । उस समय संज्ञा ने अपने पति को तेजपुञ्ज जानकर अपनी प्रतिनिधि छाया को वहाँ रखकर स्वयं तप करने के लिए प्रस्थान किया । अनन्तर

सावर्णिश्वमनुस्तस्यां शनिश्च तपती तथा । छायायां च समुद्रभूताः कूरदृष्ट्या विवस्वतः ॥३१
 पुत्रभेदेन तां नारों सत्वा मायां रुषान्वितः । चकार भस्मभूतां तां विवस्वान्भगवान्द्विः ॥३२
 तदा शनिश्च सावर्णिर्विवस्वन्त रुषान्वितम् । ज्ञात्वा च क्रोधताष्ट्राक्षौ युयुधाते परस्परम् ॥३३
 कियता चैव कालेन भग्नभूतौ विवस्वता । हिमाचले गिरौ प्राप्य तेष्टुः परमं तपः ॥३४
 त्रिदर्षन्ते च सा देवी महाकाली समागता । अर्चितं च वरं ताम्यं ददौ तद्वक्तिवत्सला ॥३५
 पुनस्तौ च समागम्य युयुधाते विवस्वता । विवस्वान्भयभीतश्च त्यक्त्वा युद्धं पराभवत् ॥३६
 तत्र स्थिता प्रिया संज्ञा बडवारूपधारिणी । कुम्हस्पदे महारम्भे तपन्ती तप उल्बणम् ॥३७
 गत्वा दर्श भगवान्संज्ञां सम्बोधकारिणीम् । कामानुरो हयो भूत्वा तत्र रेमे तथा सह ॥३८
 पञ्चवर्षान्तरे संज्ञा गर्भं तस्माद्धौ स्वयम् । तनयौ च समुद्रभूतौ दिव्यरूपपराक्रमौ ॥३९
 पितुर्दुःखं समालोक्य जग्मत् रविमण्डलम् । जित्वा बन्धु दुराचारौ कूरदृष्ट्या तदा स्वयम् ॥४०
 बद्धध्वा तौ स्वपितुः पार्श्वं सम्प्राप्तौ बडवासुतौ । दृष्ट्वा विवस्वान्भगवान्दैरिणौ समुपागतौ ॥४१
 सम्पीडय ताडयामास लोहदण्डर्भयानकैः । पञ्चभूतौ पुनस्त्यक्त्वा छायापुत्रौ दिवाकरः ॥४२
 आश्चिनेयौ समालोक्य वचनं प्राह तौ मुद्रा । जीव ईशो यथा मित्रे नरनारायणौ यथा ॥
 एकनाम्ना युवां प्रीतौ नासत्यौ च भविष्यथः ॥४३
 सोमशक्तिरिडादेवी ज्येष्ठपत्नी भविष्यति । पिङ्गला सूर्यशक्तिश्च लघुपत्नी भविष्यति ॥४४

विवस्वान् ने सावर्णि मनु शनि और तपती को अपनी कूरदृष्टि द्वारा छाया के गर्भ से उत्पन्न किया । किन्तु पुत्रभेद से उसे नारी समझने पर भी कुछ होकर भगवान् विवस्वान् ने उस माया को भस्मकर दिया । पश्चात् शनि और सावर्णि ने विवस्वान् को कुछ होते देखकर आपस में युद्ध किया । कुछ काल के उपरांत विवस्वान् द्वारा भीत होकर उन दोनों ने हिमालय पर्वत पर जाकर तप करना आरम्भ किया । तीन वर्ष के उपरांत भक्तवत्सला महाकाली देवी ने उन दोनों को वर प्रदान किया । वे दोनों पुनः आकर विवस्वान् से युद्ध करने लगे, किन्तु भयभीत होकर विवस्वान् ने उस युद्ध से पलायन कर उस रमणीक कुरु प्रदेश की यात्रा की, जहाँ उनकी संज्ञा नामक प्रिय बडवा (धोड़ी) का रूप धारणकर महाभीषण तप कर रही थी । भगवान् विवस्वान् ने वहाँ पहुँचकर उस अपनी संज्ञा पत्नी को देखकर कामपीडित होते हुए अश्वरूप धारण पूर्वक उसके साथ रमण किया । पांच वर्ष तक रमण करने के उपरांत संज्ञा ने गर्भ धारण किया, जिससे दिव्य रूप एवं पराक्रम पूर्ण दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया । उन दोनों पुत्रों ने अपने पिता को दुःखी देखकर रविमण्डल में पहुँचकर उन दोनों दुराचारी बन्धुओं को विजयपूर्वक बाँधकर अपने पिता के सामने उपस्थित किया । उन दोनों बडवापुत्रों द्वारा उपस्थित अपने शत्रुओं को देखकर भगवान् विवस्वान् ने भयानक लोहदण्ड से उन्हें इस भाँति प्रताडित किया जिससे वे दोनों छायापुत्र पंगु हो गये । २९-४२। पश्चात् दिवाकर ने बडवा पुत्रों की ओर देखकर हर्षित होकर कहा—जिस प्रकार जीव, ईश (परमात्मा) और नर-नारायण एक रूप रंग एवं अभिन्न मित्र हैं, उसी प्रकार 'नासत्य' इस एक नाम से प्रस्त्यात होकर तुम दोनों प्रसन्न रहोगे । सोम की शक्ति इडादेवी ज्येष्ठ की और सूर्य की शक्ति पिंगला कनिष्ठ पुत्र की पत्नी होगी । इसलिए प्रथम पुत्र की इडापति और दूसरे की पिंगलापति

इडापतिस्म वै नाम द्वितीयः पिङ्गलापतिः । द्वादशस्स नृणां राशेः क्लूरदृष्टिः शनैश्चरः ॥
 तस्य शान्तिकरो ज्येष्ठो भविष्यति महीतले ॥४५
 द्वितीयश्च नृणां राशेः सावर्णिर्भूमकारकः । तस्य शान्तिकरो भूमौ भविता पिङ्गलापतिः ॥४६
 जन्मराशिस्थिता देवी तपती तापकारिणी । इडा च पिङ्गला तस्याः शान्तिकर्त्रै भविष्यतः ॥४७
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य सुरवैद्यो बभूवतुः । सावर्णिश्च शनी राहुः केतुः स्वर्गप्रतापनः ॥
 तेषां तु परिहारार्थो दस्त्रौ चाधिनिसन्भवौ ॥४८

सूत उवाच

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं प्रसन्नौ सुरसत्तमौ । स्वांशान्मधीतले जातौ शूद्रयोन्यां रवेस्सुतौ ॥४९
 चाण्डालस्य गृहे जातश्छागहन्तुरिडापतिः । सधनो नाम विख्यातः पितृमातृपरायणः ॥५०
 शालिग्रामशिलातुल्यं छागमांसं विन्निक्रिये । कबीरं समुपागम्य शिष्यो भूत्वा रराज वै ॥५१
 स तु सत्यनिधिः पूर्वं ब्रह्मणस्तप आस्थितः । भयभीतां च गां तत्र चाण्डालाय हृदर्शयत् ॥
 राजगेहे क्लूरस्त्समात्सधनस्य लयं गतः ॥५२
 चर्मकारगृहे जातो द्वितीयः पिङ्गलापतिः । मानदा सस्य तनयो रैदास इति विश्रुतः ॥५३
 पुरीं काशीं समागम्य कबीरं रामतत्परम् । जित्वा मतविवादेन शङ्कराचार्यमागतः ॥५४
 तयोर्विवादो ह्यभवदहोरात्रं मतान्तरे । पराजितस्स रैदासो नत्वा तं द्विजसत्तमम् ॥

के नाम से स्वाति होगी ; मनुष्यों की बारहवीं राशि के स्थान में प्राप्त क्लूरदृष्टि शनि की शांति इस भूतल में ज्येष्ठ पुत्र द्वारा होगी और उसी भाँति दूसरे स्थान में प्राप्त सावर्णि (शनि) राहु और केतु भ्रमण कारक होते हैं, उसकी शांति पिंगलापति करेंगे । उसी प्रकार जन्म राशि-स्थान में रहकर तपती देवी ताप करने वाली होगी । उसकी शांति दुर्गा और पिंगला द्वारा होगी । इसे सुनकर अश्विनी कुमार वैद्य और सावर्णि शनि, राहु और केतु हुए, जो स्वर्ग में ताप प्रदान करते रहते हैं । उन्ही के वारणार्थ अश्विनी कुमारों का जन्म है । ४३-४८

सूत जी बोले—गुरु की ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होकर उन दोनों देव श्रेष्ठों ने अपने अंश द्वारा इस भूतल में शूद्र कुल में जन्म ग्रहण किया । उनमें प्रथम पुत्र इडापति ने बकरे का वध करके चाण्डाल के घर उत्पन्न होकर 'सधन' नाम से प्रस्वाति प्राप्त की, जो माता-पिता का परमभक्त था । उसने शालग्रामशिला के समान छाग (बकरे) का मास विक्रय किया था । पश्चात् कबीर के पास पहुँचकर उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की । यह पूर्व जन्म में सत्यनिधि नामक तपस्वी ब्राह्मण था । एक बार एक भयभीत गौ इसने चाण्डाल को सौंप दी, जिससे इसे राजधर से कर की प्राप्ति हुई । अनन्तर धन समेत स्वयं विनष्ट हो गया था । दूसरे पुत्र पिंगलापति ने मानदास चर्मकार के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न होकर रैदास के नाम से प्रस्वाति की । उसने काशीपुरी में राम परायण कबीरदास को अपने मत-विवाद द्वारा पराजित किया था । पश्चात् शंकराचार्य के सामने भी उन दोनों का एक रात-दिन विवाद हुआ, जिसमें

रामानन्दमुषागम्य तस्य शिष्यत्वमागतः

॥५५

इति ते कथितं विश्व मुरांशाश्र्व यथाभवन् । कलिशुद्धिकरी लीला येषां मार्गप्रदीशनाश् ॥५६

इति श्रीभविष्ये नहपुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये

अश्विनीकुमारावतारे सधनरैदाससमुत्पत्तिवर्णनं नामाज्ञादशोऽध्यायः ॥५८

अथैकोनविंशोऽध्यायः विष्णुस्वामीमध्वाचार्यवर्णनम्

सूत उवाच

इत्युक्त्वा भगवाऽज्जीवो देवमाहात्म्यमुत्पाद्य ब्रह्मयेनौ बभूव ह ॥१
इष्टिका नगरी रम्या गुरुदत्तस्य वै सुतः । रोपणो नाम विख्याते ब्रह्ममार्गप्रदर्शकः ॥२
सूत्रग्रन्थमयों मालां तिलकं जलनिर्मितम् । वासुदेवेति तन्मन्त्रे कलौ कृत्वाजनेजने ॥३
कृष्णचैतन्यमागम्य कम्बलं च तदाज्ञय । ॥ गृहीत्वा स्वपुरीं प्राप्य कृष्णधरनपरोभवत् ॥४
अतः परं शृणु मुने चरित्रं च हरेसुदा । यच्छृृत्वा च कलौ घोरे जनो नैव भयं द्रजेत् ॥५
पञ्चाब्दे कृष्णचैतन्ये यज्ञांशे यज्ञकारिणि । वज्ञदेशभवो विप्र ईश्वरः शारदाप्रियः ॥६
प्राप्तः शान्तिपुरे ग्रामे वागदेवीवरदर्पितः । सतां दिग्विजयं कृत्वा सर्वशास्त्रविशारदः ॥७

रैदास ने पराजित होकर रामानन्द की शिष्य-सेवा स्वीकार की । विप्र ! इस प्रकार मैने उन देवाशों की उत्पत्ति सुना दी, जिन मार्गप्रदर्शकों की लीला कलि को शुद्ध करती है । ४९-५६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में अश्विनी कुमार, सधन, रैदास की उत्पत्ति वर्णन नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त । ५८ ।

अध्याय १९ विष्णुस्वामी मध्वाचार्य का वर्णन

सूत जी बोले—इस प्रकार देवों के माहात्म्य वर्णन करने के उपरांत भगवान् वृहस्पति ने मुख द्वारा अपना अंश निकालकर ब्रह्मयोनि में उत्पन्न होने के लिए प्रेषण किया, जो इष्टिका नामक रमणीक पुरी के निवासी गुरुदत्त के यहाँ पुत्ररूप से उत्पन्न होकर रोपण नाम से ख्याति प्राप्त की । ब्रह्ममार्ग के प्रदर्शक उस रोपण ने गाँठयुक्त सूत्र की माला, जल का तिलक और वासुदेव नामक मंत्र का अनेक मनुष्यों में प्रसार किया था । पश्चात् कृष्ण चैतन्य के पास पहुँचकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर कम्बल धारण किये । अपनी पुरी में जाकर कृष्ण का ध्यान करना आरम्भ किया । मुने ! इसके उपरांत मैं भगवत्त्रित्र का वर्णन कर रहा हूँ, सुनो ! जिसके श्रवण करने से मनुष्यों को कलिभय नहीं होता है । कृष्ण चैतन्य की पाँच वर्ष की अवस्था में, जो यज्ञांश एवं यज्ञकर्ता कहे जाते हैं, एक केशव नामक ब्राह्मण आया, जो काश्मीर नगर का रहने वाला एवं शारदा प्रिय था । उस शास्त्र मर्मज्ञ विद्वान् ने शास्त्रार्थ द्वारा दिविजय करते हुए वाग् देवी द्वारा प्राप्त वरदान से मदान्ध होकर शान्तिपुर की यात्रा की । १-७। वह ब्राह्मण

गङ्गाकूले स्तवं दिव्यं रचित्वा^१ सोऽपठद्विजः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र यज्ञांशस्समुपायतः ॥

उवाच वचनं रन्धमीश्वरं स्तुतिकारिणम् ॥१८

सुकृतं पूर्तमर्णं च शुतीनां सारमेव हि : इत्युक्तं भवता स्तोत्रे द्रूषणं भूषणं वद ॥१९
तथाह चैश्वरो धीमान्दूषणं नैव दृश्यते । इत्युक्त्वा प्राह भगवान्भूषणं नैव दृश्यते ॥२०
सुकृतं च स्मृतं धर्मः पूर्तं चैतन्यमुच्यते । अर्ण वीर्यनिति ज्ञेयं श्रुतिसारमतस्त्रयम् ॥

गङ्गाजले द्रूषणोऽयं भूषणोऽयं कलेदरे ॥२१

इति श्रुत्वा रा दै भूक्षुर्विस्मितोऽभूल्लग्नीः प्रियः । लज्जितं स्वजनं दृष्ट्वा शारदा सर्वमङ्गला ॥

विहस्येश्वरमित्याह कृष्णचैतन्यसंज्ञकः ॥२२

इति श्रुत्वा दु तच्छिष्यः कृष्णमन्त्रउपासकः । बभूव वैष्णवश्रेष्ठः कृष्णचैतन्यसेवकः ॥२३

सूत उवाच

श्रीधरो नाम विख्यातो ब्राह्मणः शिवपूजकः । पत्तने नगरे रम्ये तस्य सप्ताहमुत्तमम् ॥१४

राजा भागवतं तत्र कारितं सधनं वहु । गृहीत्वा श्रीधरो विष्णो जगत्प्रशुग्रालये ॥१५

तत्रोद्य मासमात्रं च स्वपत्न्या सह वै द्विजः । स्वगोह्मगमन्मार्गं चौराः सप्त तु तं प्रति ।

शपथं रामदेवस्य कृत्वा सार्द्धमुपाययुः ॥१६

वहाँ पहुँचकर गंगा के तट पर अपने बताये हुए स्तोत्र से उनकी आराधना कर रहा था । उसी बीच यज्ञांशदेव ने वहाँ आकर उस स्तुति करने वाले केशव नामक ब्राह्मण से रम्य वाणी द्वारा कहा—सुकृत, पूर्त और अर्ण यही तीन श्रुतियों के सार बताये गये हैं, जो आपके इस स्तोत्र में द्रूषणरूप हैं तथा इसमें भूषण कौन हैं, कहने की कृपा कीजिये ? इसे सुनकर केशव ने कहा—इसमें कोई दोष नहीं दिखाई देता है, इतना कहने पर यज्ञांश भगवान् ने कहा—तो इसमें कोई भूषण भी नहीं दिखाई देता है । क्योंकि सुकृत धर्म, पूर्त चैतन्य और अर्ण बीज को कहते हैं, इसीलिए ये तीनों श्रुतियों के तत्त्व कहे गये हैं । जिस प्रकार गंगाजल में जो द्रूषणरूप है, वही इस देह में भूषणरूप होता है । इसे सुनकर सरस्वती प्रिय उस ब्राह्मण ने आश्चर्यचकित नेत्र से उन्हें देखने लगा । उस समय सर्वमंगला शारदा ने अपने भक्त को लज्जित होते देखवार मन्दहासपूर्वक केशव से कहा—स्वयं भगवान् यह यज्ञांश रूप हैं । यह सुनकर उस ब्राह्मण ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार करके कृष्ण मंत्र की उपासना आरम्भ की, जो पश्चात् कृष्ण चैतन्य का वैष्णवश्रेष्ठ सेवक हुआ ।—१३

सूत जी बोले—श्रीधर नामक एक प्रस्त्यात ब्राह्मण था, जो सदैव शिव जी की उपासना करता था । पत्तनाधीश्वर ने एक बार श्रीधर ब्राह्मण को सादर बुलवाकर अपने यहाँ उनके द्वारा भागवत का सप्ताह पारायण कराया, जिसमें उन्हें बहुत सा धन प्राप्त हुआ । उसे लेकर श्रीधर ने अपने श्रसुर के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर एक मास के उपरात पल्ली समेत अपने घर की यात्रा की । यात्रा के समय मार्ग में सातों चौरागण भगवान् राम के शपथ द्वारा अपनी सज्जनता का परिचय देकर उनके साथ चल रहे

समान्ते विपिने रस्ये हृत्वा ते श्रीधरं द्विजम् । गोरथं सधनं तत्र सभार्यं जगृहुस्तदा ॥१७
एतस्मिन्नन्तरे रामः सच्चिदानन्दविग्रहः । सप्त तांत्रं शरैर्हृत्वा पुनरुज्जीव्य तं द्विजम् ॥१८
प्रेणयामास भगवांस्तदा वृन्दावने प्रभुः । तदा प्रभृति वै विप्रः श्रीधरो वैष्णवोऽभवत् ॥१९
सप्ताब्दे चैव यज्ञांशे गत्वा शान्तिपुरीं शुभाम् । ब्रह्मज्ञानमुपागम्य यज्ञांशतच्छ्रवतां गतः ॥
टीका भगवत्तस्यैव कृता तेन महात्मना ॥२०

सूत उच्चाच

रामशर्मा स्थितः काश्यां शङ्करार्चिनतत्परः । शिवरात्रे द्विजो धीमानविमुक्तेश्वरःस्थले ॥
एकाकी लागरन्ध्यानी जप्त्वा यज्ञाक्षरं शुभम् ॥२१
तदा प्रसन्नो भगवांच्छङ्करो लोकशङ्करः । वरं ब्रूहीति वचनं तमाह द्विजसत्तमम् ॥२२
रामशर्मा शिवं नत्वा वचनं प्राह नम्रधीः । भवान्यस्य समाधिस्थो ध्याने यस्य परो भवान् ॥२३
स देवो हृदये महां वसेत्तव वरात्रप्रभो । इत्युक्तवचने तस्मिन्निवृहस्याह महेश्वरः ॥२४
इका वै प्रकृतिर्माया त्रिधा ब्रह्मस्वरूपिणी । शून्यभूताव्यवस्थैव पुरुषस्यार्दृतैजसम् ॥
गृहीत्वा लोकजननीं पुंक्तीबौ सुषुप्ते तुतौ ॥२५
पुमान्नारायणः साक्षाद्गौरश्चाष्टभुजैर्युतः । त्रिधा बभूव भगवान्वेच्छया विश्वरक्षकः ॥२६
अर्धतेजास्त स वै विष्णुर्वन्माली चतुर्भुजः । क्षीरशायी स आदित्यः स्वयं सद्गुणदेवता ॥२७

थे, किन्तु जंगल प्रदेश के समाप्त होने पर उन चोरों का जो उन श्रीधर ब्राह्मण के निधन पूर्वक गोरथ (वहलु) समेत धन और स्त्री लेकर उपस्थित होना चाहते थे कि उसी समय सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् राम ने अपने बाणों द्वारा उन चोरों के निधन करने के उपरांत श्रीधर को जीवन-प्रदान कर उनके घर भेज दिया । भगवान् के उस चरित्र का स्मरण कर श्रीधर ने उसी समय से वृन्दावन में जाकर वैष्णव के देव में रहते हुए उस शुभ शान्तिपुर की भी यात्रा की । उस यज्ञांशदेव की सात वर्ष की अवस्था थी । वहाँ पहुँचने पर ऊन्होंने यज्ञांशदेव द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति पूर्वक उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की और वहीं रहकर भागवत पुराण की टीका की रचना की । १४-२०

सूत जी बोले—एक बार रामशर्मा काशीपुरी में शिवरात्रि के दिन भगवान् शिव की अर्चना कर रहे थे । उस समय उस विमुक्तेश्वर स्थान में वही एकाकी ब्राह्मण शिव जी के पंचाक्षर मंत्र के जप पूर्वक ध्यान कर रहा था । उसे ध्यानमग्न देखकर लोक के कल्याणकारी भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणेश्वे से वरयाचना के लिए कहा । उस समय रामशर्मा ने नमस्कार पूर्वक विनम्र वाणी द्वारा शिव जी से कहा—आप जिसके लिए समाधिनिष्ठ होते हैं, और जिसके ध्यान में अत्यन्त तल्लीन रहते हैं । प्रभो ! वह देव आपके वरदान द्वारा मेरे हृदय में निवास करे । ब्राह्मण के ऐसा कहने पर हँसते हुए महेश्वर जी ने कहा—उसी एक प्रकृति-माया ने जो ब्रह्मस्वरूपिणी एवं लोक की जननी है शून्य भूत उस अव्यय पुरुष के आधे तेज के ग्रहण पूर्वक स्वयं तीन भागों में विभक्त होकर पुमान् (नर) और कलीब (नपुंसक) दो पुत्रों की उत्पत्ति की । वह पुमान् (पुरुष) साक्षात् नारायण भगवान् है, जो गौरवर्ण एवं आठ भुजाओं से युक्त हैं । उस विश्व के त्राता भगवान् ने स्वेच्छया । तीन भागों में विभक्त होकर आधे तेज द्वारा विष्णु, वनमाली, चतुर्भुज, क्षीरशायी, एवं आदित्य के रूपों में प्रकट होकर पुनः आधे तेज द्वारा नर-

अर्धतेजा द्विधः सैव नरनारायणावृषी । जिष्णुर्विष्णुः स वै ज्ञेयो पर्वते गन्धसादने ॥२८
 क्लीबः संझूर्षणः साक्षाद्ब्रह्मरूपं त्रिधाभवत् । पूर्वद्वार्दगौरशेषश्च परार्धद्वामलक्ष्मणौ ॥२९
 गौरशेषो द्वापरान्ते बलभद्रः स वै स्वयम् । रामलक्ष्मण्योऽर्थनं बलभद्रस्य पूजनम् ॥
 सदा मया च कृत्यं तत्प्राप्य त्यं सुखी भव ॥३०

इत्युक्त्यान्तदर्थे देवो रामानन्दस्य चाभवत् । कृष्णःचैतन्यमागम्य द्वादशाब्दवयोवृत्तम् ॥३१
 शिष्यो भूत्वा स्थितस्तत्र कृष्णचैतन्यपूजकः । कृतं तदाज्ञयातेनाध्यात्मरामायणं शुभम् ॥३२

सूत उवाच

जीवानन्दस्स वै निप्रो रूपानन्दसमन्वितः । श्रुत्वा चैतन्यचरितं पुरीं शान्तिमयीं गतः ॥३३
 चैतन्ये षोडशाब्दे च नत्वा तं तौ समास्थितौ । ऊचतुः कृष्णचैतन्यं भवता किं भतं स्मृतम् ॥३४
 विहस्याह स चैतन्यः शक्तोऽहं शक्तिपूजकः । शैवोऽहं वै द्विजौ^१ नित्यं लोकार्थे शङ्करवती ॥
 वैष्णवोऽहं ध्यानपरे देवदेवस्य भक्तिमान् ॥३५
 अहं भक्तिमदं पीत्वा पापपुंसो बलिं शुभम् । शक्तवै समर्प्य होमान्ते ज्ञानान्तौ यज्ञतत्परः ॥३६
 इति श्रुत्वा द्विजौ तौ तु तस्य शिष्यत्वमागतौ । आचारमार्गमागम्य सर्वपूज्यौ बभूवतुः ॥३७
 तदाज्ञयाषट्सन्दर्भं जीवानन्दश्रकार वै । उवास तत्र मतिमान्कृष्णचैतन्यसेवकः ॥३८

नारायण कृष्ण के रूप में अवतरित हुआ है । जो गंधसादन पर्वत पर जिष्णु विष्णु रूप से प्रथित है । साक्षात् ब्रह्मरूप संकर्षण ने जो तीन भागों में विभक्त होकर पूर्वद्वं भाग से गौरवर्ण के शेष और अपराद्वं से रामलक्ष्मण का रूप धारण करता है । वही गौर शेष द्वापर के अन्तिम समय में स्वयं बलभद्र होता है । इसलिए राम लक्ष्मण ध्यान और बलभद्र का पूजन मैं सदैव करता हूँ, उसकी प्रार्प्ति करके तुम सुखी होगे । इतना कहकर शंकर जी अन्तर्हित हो गये और वह देव रामानन्द के यहाँ उत्पन्न होकर बारह वर्ष की अवस्था प्राप्तकर कृष्ण चैतन्य के घर जाकर उनकी शिष्य सेवा स्वीकार करके कृष्ण चैतन्य के पुजारी हुए । पश्चात् कृष्ण चैतन्य की आज्ञा प्राप्तकर उन्होंने अध्यात्म रामायण की रचना की । २१-३२

सूत जी बोले—इस भाँति यज्ञांशदेव के चरित को सुनकर निम्बादित्य ब्राह्मण ने रामानुज समेत शान्तिपुरी की यात्रा की । वहाँ पहुँचकर वे दोनों यज्ञांशदेव को नमस्कार करके उनके पास बैठ गये और कृष्ण चैतन्य से प्रश्न किया कि—आप किस मत के अनुयायी हैं? उस समय यज्ञेश देव की सोलह वर्ष की अवस्था थी । उन्होंने हँसकर कहा—ब्राह्मण देव! मैं शाक्तमत को स्वीकार कर शक्ति की उपासना करता हूँ, लोक के कल्याणार्थ शंकर के व्रतानुष्ठान को सुसम्पन्न करते हुए शैव, और देवाधिदेव का भक्ति पूर्वक ध्यान करते वाला वैष्णव भी हूँ । मैं भक्तिरूपी मद का पानकर पापपुण्ड की बलि उस शक्ति देवी को समर्पित करते हुए ज्ञानरूप अग्नि की ज्वाला में हवन करके यज्ञ की पूर्ति करता हूँ । इसे सुनकर वे दोनों उनकी शिष्य सेवा स्वीकार पूर्वक आचार मार्ग अपनाकर सर्वपूज्य हुए । वहाँ रहकर मतिमान् रामानुज मुनि आचार-भाष्य की रचना करके कृष्ण चैतन्य की ही उपासना करते रहे ।

१. इदमुभयोत्सम्बोधनम् ।

स्त्यानन्दो गुरोराजां पुरस्कृत्य महामुनिः । कृष्णखण्डं पुराणाङ्गं चक्रे दशसहस्रकम् ॥
तत्रोष्य गुरुसेवाढो राधाकृष्ण प्रपूजकः ॥३९

सूत उवाच

विष्णुस्वामी स वै विप्रो गतः शान्तिपुरीं शुभाम् । यज्ञांश ऊनविंशाढ्वे नत्वा तं प्राह स द्विजः ॥४०
को देवः सर्वदेवानां पूज्यो ब्रह्माण्डगोचरे : इति श्रुत्वा स भगवानुवाच द्विजसत्तमम् ॥४१
सर्वगूज्यो महादेवो भक्तानुग्रहकारकः । विष्णवीश्वरश्च रुद्रेशो ब्रह्मेशो भगवान्हरः ॥४२
विना तत्पूजकेनैव षष्ठार्था निष्कला हि ते । ये तु वै विष्णुभक्ताश्च शङ्करार्चनतत्पराः ॥४३
शिवप्रसादात्सुलभा वैष्णवी भक्तिरूपतमा । वैष्णवः पुरुषो भूत्वा शङ्करं लोकशङ्करम् ॥४४
कर्मभूम्यां समागम्य न पूजयति नारकः । विष्णुस्वामीति तच्छ्रुत्वा शिष्यो भूत्वा च तद्गुणेः ॥४५
कृष्णमन्त्रमुपासित्वा^१ स ब्रह्मव शिवार्चकः ॥४६
वैष्णवी संहिता तेन निर्मिता च तदाज्ञया । तत्रोष्य विष्णुभक्तश्च कृष्णचैतन्यपूजकः ॥४७

सूत उवाच

मध्वाचार्यः कृष्णपरो ज्ञात्वा यज्ञांशमुत्तमम् । गत्वा शान्तिपुरीं रम्यां नत्वा तं प्राह स द्विजः ॥४८
कृष्णोऽयं भगवान्साक्षात्तदन्ये विश्वकारकाः । देवा धात्रादयो ज्ञेयास्तर्हि तत्पूजनेन किम् ॥४९

महामुनि निम्बादित्य ने भी गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर दशसहस्रात्मक कृष्णखण्ड की रचना की, जो पुराण का अंग कहा गया है । पश्चात् राधा कृष्ण की उपासना पूर्वक गुरु की सेवा में तत्पर रहकर जीवन व्यतीत किया । ३-३-३९

सूत जी बोले—विप्रवर विष्णु स्वामी ने भी उस शुभ शान्तिपुरी जाकर नमस्कारं पूर्वक यज्ञांशदेव से कहा—इस निखिल ब्रह्माण्ड में समस्त देवों का पूजक गौन देव है? उस समय यज्ञांशदेव की उन्नीस वर्ष की अवस्था थी । उसे सुनकर भगवान् यज्ञाशदेव ने उस ब्राह्मण श्रेष्ठ से कहा—सर्वपूज्य भगवान् भ्रह्मदेव हैं, वही भक्तों के ऊपर कृपा किया करते हैं । भगवान् शिव ही विष्णु, रुद्र एवं ब्रह्म के ईश्वर हैं । अतः विना शिव की पूजा किये सभी पदार्थ निष्कल हो जाते हैं । जो विष्णुभक्त नित्य शिव की अर्चना करता है, उसे शिव जी की प्रसन्नता द्वारा भगवान् विष्णु की उत्तम भक्ति सुलभ हो जाती है । जो पुरुष इस कर्म भूमि में उत्पन्न होकर वैष्णव होते हुए लोक शंकर भगवान् शंकर की पूजा नहीं करता है, वह नारकीय है । इसे सुनकर विष्णु स्वामी ने उनके गुणों पर मुख्य होकर उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की । कृष्ण मंत्र की आराधना पूर्वक शिव जी की अर्चना कर जीवन व्यतीत किया । वहाँ रहकर उस विष्णु भक्त एवं कृष्ण चैतन्य के सेवक ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर वैष्णवी संहिता की रचना की । ४०-४७

सूत जी बोले—भगवान् कृष्ण के उपासक मध्वाचार्य ने देवश्रेष्ठ यज्ञांश को अवतरित सुनकर शान्तिपुरी को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उस ब्राह्मण ने नमस्कारं पूर्वक यज्ञांशदेव से कहा—साक्षात् यह कृष्ण ही सब के भगवान् एव आराध्य देव हैं और अन्य ब्रह्मादि देवता केवल विश्व ऋष्टा

१. ल्यबभाव आर्वः ।

शक्तिमार्गपरा विप्रा वृथा हिंसामर्यैर्महेः । अश्वमेधादिभिर्वान्पूजयन्ति महीतले ॥५०
 इति श्रुत्वा विहस्याह यज्ञांशश्च शचीसुतः । न कृष्णो भगवान्साक्षात्तामसोऽयं च शक्तिजः ॥५१
 चौरोऽयं सर्वभोगी च हिंसको मांसभदकः । गरस्त्रियं भजेद्यो वै स गच्छेद्यमन्दिरम् ॥५२
 चौरो यमालयं गच्छेज्जीवहन्ता विशेषतः । एभिष्ठ लक्षणैर्हानो भगवान्प्रकृतेः परः ॥५३
 यस्य बुद्धिः स वै ब्रह्माङ्गुड्कारो यस्य वै शिदः । शब्दमात्रा गणेशश्च स्पर्शमात्रा यमः स्त्रयम् ॥५४
 रूपमात्रा कुमारो वै रसमात्रा च यक्षराट् । गन्धमात्रा विश्वकर्मा श्रवणं भगवाङ्गुड्निः ॥५५
 यस्य त्वक्स बुधो ज्ञेयश्चक्षुसूर्यः सनातनः । यज्जित्वा भगवाङ्गुड्को ध्राणस्तस्याश्चनीसुतौ ॥५६
 यन्मुखं भगवाङ्गीजो यस्य हस्तस्तु देवराट् । कृष्णोऽयं तस्य चरणौ लिङ्गं दक्षः प्रजापतिः ॥
 गुदं तद्वगवान्मृत्युस्तस्मै भगवते नमः ॥५७
 हिंसायज्ञैश्च भगवान्स च दृप्तिमवान्पुयात् । स च यज्ञपशुर्दहनौ ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥
 तस्य मोक्षप्रभावेन नहत्पृष्ठमवान्पुयात् ॥५८
 विधिहीनो नरः पापी हिंसायज्ञं करोति यः । अन्धतामिक्षनरकं तदोषेण वसेच्चिरम् ॥५९
 महत्पृष्ठं महत्पापं हिंसायज्ञेषु वर्तते । अतस्तु भगवान्कृष्णो हिंसायज्ञं कलौ युगे ॥६०
 समाप्य कार्तिके मासि प्रतिपच्छुक्लपक्षके । अन्नकूटमयं यज्ञं स्थापयामास भूतले ॥६१
 देवराजस्तदा कुद्धो हानुजं प्रति दुःखितः । वज्रं संप्लावयामास तदा कृष्णः सनातनीम् ॥

आदि हैं अतः इनके पूजन से कोई लाभ नहीं । शक्ति मार्ग अपना कर जो ब्राह्मण हिंसापूर्ण अश्वमेधादि यज्ञों द्वारा देवों की आराधना करते हैं, उनका वह करना व्यर्थ है ।’ इसे सुनकर इन्द्राणीं पुत्र यज्ञांशदेव ने हँसकर कहा—कृष्ण साक्षात् भगवान् नहीं अपितु तामसी शक्ति द्वारा उत्पन्न होने के नाते तामस है ये चोर, सर्वभोगी, हिंसक, और मांसभोजी भी हैं क्योंकि परस्त्री का उपभोग करने वाले चोर और विशेषकर जीवहिंसक को यमपुरी जाना पड़ता है । भगवान् इन लक्षणों से हीन एवं प्रकृति से भी परे हैं । उसकी बुद्धि अहंकार शिव, शब्दमात्रा गणेश, स्पर्शमात्रा यम, रूपमात्रा कुमार, रसमात्रा कुबेर, गंधमात्रा विश्वकर्मा, श्रवण शनि, त्वक् बुध एवं नेत्र सनातन सूर्य, जिह्वा शुक्र, ध्राण (नासा) अश्विनी कुमार, मुख वृहस्पति, हाथ देवेन्द्र, हैं । यह कृष्ण उसी देव के चरण, लिंग दक्ष प्रजापति, तथा गुदा मृत्यु हैं, उस भगवान् को नमस्कार है । वह भगवान् हिंसापूर्ण यज्ञों के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने से ही प्रसन्न होता है और वह पशु, जो आहुति द्वारा अग्नि में प्रविष्ट होता है परमपद की प्राप्ति करता है । उसके मोक्ष हो जाने पर कर्ता को अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है । जो पापी पुरुष हिंसायज्ञ की पूर्ति सविधान नहीं करता है, उसी दोष के कारण वह अंध तामिक्ष नामक नरक में चिरकाल तक निवास करता है । इसलिए हिंसायज्ञ के अनुष्ठान में अत्यन्त पुण्य और अत्यन्त पाप की भी प्राप्ति होती है । अतः भगवान् कृष्ण ने इस कलि के समय हिंसायज्ञ का निषेध कर कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के दिन इस भूतल पर अन्नकूट यज्ञ की स्थापना की है । ४८-६१। उस समय देवराज ने कुद्ध होकर अपने अनुज के लिए दुःख

प्रकृतिं स च तुष्टाव लोकगङ्गलहेतवे

॥६२

तदा सा प्रकृतिर्माता स्वपूर्वाद्विविग्रहम् । राधारूपं महत्कृत्वा हृदि कृष्णस्य चागता ॥६३

तच्छक्त्या भगवान्कृष्णो धृत्वा गोवर्धनं गिरिम् । नाम्ना गिरिधरो देवः सर्वपूज्यो बभूव ह ॥६४

राधाकृष्णस्स भगवान्पूर्णब्रह्म सनातनः । अतः कृष्णो न भगवान्राधाकृष्णः परः प्रभुः ॥६५

इति श्रुत्वा वचस्तस्य मध्वाचार्यो हरिप्रियः । शिष्यो भूत्वा स्थितस्तत्र कृष्णचैतन्यपूजकः ॥६६

इति श्रीभविष्ये भहापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरयिति कलियुगीयेति हाससमुच्चये
कृष्णचैतन्ययज्ञांशिष्यबलभद्रविष्णुस्वामिमध्वाचार्यादिवृत्तान्तवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१

अथ विंशोऽध्यायः

जगन्नाथमाहात्म्यवर्णनम्

सूत उवाच

भट्टोजिस्स च शुद्धात्मा शिवभक्तिपराणः । कृष्णचैतन्यमागम्य नमस्कृत्य वचोऽब्रवीत् ॥१

महादेवो गुरुः स वै शिव आत्मा शरीरिणाम् । विष्णुर्ब्रह्मा च तदासौ तर्हि तत्पूजनेन किम् ॥२

इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विशदद्वयोवृतः । विहस्याह स भट्टोजिं नाथं शम्भुर्महेश्वरः ॥३

समर्थो भगवाञ्छम्भुः कर्ता किञ्च शरीरिणाम् । न भर्ता च विना विष्णुं संहर्तायं सदा शिवः ॥४

प्रकट करते हुए वह ब्रज को डुबा देने की आयोजना की थी । किन्तु कृष्ण ने उसी समय लोक के कल्याणार्थ सनातनी प्रकृति देवी की आराधना की । प्रसन्न होकर प्रकृति माता ने अपने पूर्वाद्वि देह से महत्पूर्ण राधा का रूप धारणकर कृष्ण के हृदय में निवास किया । उसी शक्ति द्वारा भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाया था, जिससे उस देव का गिरिधर नाम हुआ और वह स्वयं सर्वपूज्य हुए । वहीं राधा कृष्ण भगवान् एवं सनातन पूर्ण ब्रह्म हैं । इसलिए कृष्ण नहीं प्रत्युत राधाकृष्ण भगवान् कहे जाते हैं, जो सबसे पर एवं स्वामी हैं । इसे सुनकर कृष्णप्रिय मध्वाचार्य ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार करते हुए उन कृष्ण चैतन्य की सदैव आराधना की । ६२-६६

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में कृष्णचैतन्य यज्ञांश शिष्य बलभद्र विष्णुस्वामी और मध्वाचार्य के वृत्तान्त वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त । १९।

अध्याय २०

जगन्नाथ माहात्म्य का वर्णन

सूत जी बोले—एक बार शुद्धात्मा एवं शिव भक्ति में निमग्न रहने वाले भट्टोजि ने कृष्ण चैतन्य के यहाँ जाकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—समस्त प्राणियों के गुरु महादेव हैं और शिव ही उनकी आत्मा भी । तदितर ब्रह्मा विष्णु देव उनके दास हैं अतः उन दोनों के पूजन से क्या लाभ होता है । उस यज्ञांश-देव की बीसवें वर्ष की अवस्था प्रारम्भ थी, उन्होंने हँसकर भट्टोजि से कहा—यह शम्भु महेश्वर नहीं हैं और विना विष्णु के सदाशिव शम्भु प्राणियों के कर्ता, भर्ता, एवं संहर्ता होने की क्षमता नहीं रख सकते

एकमूर्तिस्त्रिधा जाता ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । शक्तसार्गं भगवान्ब्रह्मा मोक्षप्रदयकः ॥१५
 विष्णुर्वैष्णवमार्गेण जीवानां मोक्षदायकः । शन्मुखैँ शैवमार्गेण मोक्षदाता शरीरिणाम् ॥१६
 शक्तः सदाश्रनो गेही यज्ञभुक्षिप्तदेवगः । वानप्रस्थाश्रमी यो वै वैष्णवः कन्दमूलभूकः ॥१७
 यत्याश्रमः सदा रौद्रो निर्मुणः शुद्धविग्रहः । ब्रह्मचर्याश्रमस्तेषामनुगामी महाश्रमः ॥१८
 इति श्रुत्वा गुरोर्वक्यं शिष्यो भूत्वा स वै द्विजः । दृतीयाङ्गं च वेदानां व्याकल्पौ पाणिनिकृतम् ॥१९
 तदत्तमा च सिद्धान्तकौमुद्यास्स चकार ह । तत्रोष्ट दीक्षितो धीमान्कृष्टवैतन्यसेवकः ॥२०

सूत उवाच

वराहमिहिरो धीमान्स च सूर्यपरायणः । द्वत्विंशब्दे च यज्ञांश तमागत्य वचोऽब्रवीत् ॥११
 सूर्योऽयं भगवान्साक्षात्त्रयो देवा यतोऽभवन् । प्रातर्ब्रह्मा च मध्याह्ने विष्णुः सायं सदाशिवः ॥१२
 अतो रवेः शुभा पूजां त्रिदेवप्रजनेन किम् । इति श्रुत्वा स यज्ञांशो विहस्याह शुभं च चः ॥१३
 द्विधा बभूव प्रकृतिरपरा च परा तथा । नाममात्रा तथा युष्ममात्रा तन्मात्रिका तथा ॥१४
 शब्दमात्रा स्पर्शमात्रा रूपमात्रा रसा तथा । गंधमात्रा तथा ज्ञेया परा प्रकृतिरष्ट्था ॥१५
 अपरायां जीवभूतः नित्यशुद्धा जगन्मयी । भूमिरापोऽनलो वायुः खं भनोबुद्धिरेव च ॥
 अहंङ्कार इति ज्ञेया प्रकृतिश्चापराष्ट्था ॥१६

हैं । क्योंकि एक ही मूर्ति के तीन विभागों में विभक्त होने के नाते उसी द्वारा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का जनन होता है । इसलिए शक्तमार्ग अपनाकर भगवान् ब्रह्मा, वैष्णव मार्ग के अनुयायी होकर विष्णु और शैवमार्ग द्वारा शिव प्राणियों को मोक्षप्रदान करते हैं । शक्त ही गृहस्थाश्रम है, जिसमें पितर एवं देव यज्ञ के भोक्ता होते हैं । उसी भाँति वैष्णव को वानप्रस्थाश्रम कहा गया है, जिसमें कन्दमूल के भक्षण द्वारा जीवन व्यतीत होता है, सन्यास आश्रम सदैव रौद्ररूप, निर्मुण एवं शुद्ध शरीर रहा है । इस प्रकार प्राणियों के ब्रह्मचर्याश्रम के अनुयायी महेश्वर हैं, जो अति श्रमसाध्य हैं ; ये उनकी बातें सुनकर ब्राह्मण ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार की । पश्चात् उनकी आज्ञा से पाणिनि व्याकरण की जो वेदों का तीसरा अंग है, उन्होंने व्याख्या की, जो सिद्धान्त कीमुदी के नाम से प्रथित है । भट्टोजिदीक्षित ने वहाँ रहकर ही अपनी जीवन लीला भी समाप्त की । १-१०

सूत जी बोले—वराह मिहिराचार्य ने, जो अति धीमान् एवं सूर्य के उपासक थे, यज्ञांशदेव के यहाँ पहुँचने का प्रयत्न किये । उस समय यज्ञांशदेव की बाईस वर्षे की अवस्था थी । वहाँ पहुँचकर उन्होंने यज्ञांशदेव से कहा—सूर्य ही साक्षात् भगवान् है, क्योंकि अन्य तीन प्रधान देवों की उत्पत्ति उन्हीं द्वारा हुई है । सूर्य प्रातःकाल ब्रह्मा, मध्याह्न में विष्णु, और संध्यासमय शिव रूप हैं, अतः सूर्य की ही शुभ पूजा करनी चाहिए, तीनों देवों के पूजन से कोई लाभ नहीं है । इसे सुनकर यज्ञांश देव ने शुभ वाणी द्वारा हास पूर्वक उनसे कहा । प्रकृति देवी ने परा और अपरा नाम से दो रूपों में प्रकट होकर इस ब्रह्माण्ड की रचना की है । नाममात्रा, पुष्पमात्रा, तन्मात्रा, शब्दमात्रा, स्पर्शमात्रा रूपमात्रा, समात्रा, और गंधमात्रा के नाम से परा प्रकृति आठ भागों में विभक्त हैं । उसी प्रकार अपरा प्रकृति भी, जो जीवभूत, नित्यशुद्ध एवं जगन्मयी है, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार

विष्णुर्ब्रह्मा महादेवो गणेशो यमराज् गुहः । कुबेरो विश्वकर्मा च परा प्रकृतिदेवता ॥१७
 सुरेश्वररुणो वहिर्विश्वैव ध्रुवस्तथा । सोमो रविस्तथा शेषोऽपरा प्रकृतिदेवता ॥१८
 अतः सोमपती रुद्रो रविः स्वामी चिधिः स्वयम् । शेषस्वामी हरिः साक्षात्मस्तेभ्यो नमो नमः ॥१९
 इति श्रुत्वा तदा विप्रः शिष्यो भूत्वा च तद्गुरोः । तदाज्ञया चतुर्थाङ्गं ज्योतिःशास्त्रं चकार ह ॥२०
 वराहसंहिता नाम वृहज्ञातकमेव हि । क्षुद्रतन्यांस्तथान्यान्वै कृत्वा तत्र ता नावसत् ॥२१

सूत उदाच

वाणीभूषण एवायि शिवभक्तिपराप्रणः । कृष्णचैतन्यमागम्य बद्धः प्राह विनश्रधीः ॥२२
 विष्णुमाया जगदुत्त्री सैका प्रकृतिश्वकृता । तथा जातमिदं विश्वं विश्वाद्वै वसमुद्भवः ॥२३
 विश्वेदेवस्स पुरुषशक्तिजो बहुधाभवत् । ब्रह्मा विष्णुर्हरश्वैव देवाः प्रकृतिसम्भवाः ॥
 अतो भगवती पूज्या तर्हि तत्त्वं जनेन किम् ॥२४
 इति श्रुत्वा स दज्ञांशो विहस्याह द्विजोत्तमम् । न तै भगवती श्रेष्ठा जडरूपा गुणात्मिका ॥२५
 एका सा प्रकृतिमाया रचितुजेगां क्षमा । पुरुषस्य सहायेन योगितेव नरस्य च ॥२६
 देवीभागवते शास्त्रे प्रसिद्धेयं कथा द्विज । कदाचित्प्रकृतिर्देवी स्वेच्छयेद जगत्खलु ॥२७
 निर्मितं जडभूतं तद्बहुधा बोधितं तथा । न चैतन्यमभूद्विप्रा विस्मिता प्रकृतिस्तदा ॥२८
 शून्यभूतं च पुरुषं चैतन्यं समतोषयत् । प्रविष्टो भगवान्देवीमायाजनितगोलके ॥२९

रूप आठ भागों में विभक्त हैं । विष्णु ब्रह्मा, महादेव, गणेश, यमराज, गुह, कुबेर एवं विश्वकर्मा, परा प्रकृति के देवता हैं । सुमेह, वरुण, अग्नि, वायु, ध्रुव, सौम, रवि और शेष अपरा प्रकृति के देव हैं । अतः सोमपति रुद्र ही रवि, ब्रह्मा स्वामी, और शेष स्वामी, साक्षात् हरि हैं । उन्हें बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार उनकी बातें सुनकर उस मिहिराचार्य ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार पूर्वक वेद के चौथे अंग ज्योतिः शास्त्र का निर्भाण किया, जो बाराह संहिता एवं वृहज्ञातक नाम से प्रख्यात है । वहाँ रहकर उन्होंने क्षुद्र तंत्रो एवं अन्य ग्रन्थों की भी रचना की है । ११-२१

सूत जी बोले—शिव जी की भक्ति में निमग्न रहने वाले वाणीभूषण ने भी कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर न प्रता पूर्वक उनसे कहा—विष्णु की माया ही जग को धारण करती है, इसलिए वही एक प्रकृति सर्वोत्कृष्ट है । उसी ने इस विश्व की रचना की है, विश्व से देवगण और विश्वेदेव पुरुष की शक्ति द्वारा अखिल की उत्पत्ति हुई है । अतः ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव की उत्पत्ति प्रकृति द्वारा कही गई है । इस भगवती की ही उपासना करनी चाहिए अन्य किसी देव की नहीं इसे सुनकर यज्ञांशदेव ने हँसकर उस ब्राह्मणश्रेष्ठ से कहा—जडरूप एवं गुणमयी होने के नाते भगवती श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती है क्योंकि प्रकृति अकेले जगत् की रचना करने में पुरुष की सहायता विना स्त्री की भाँति कभी भी समर्थ नहीं है । विप्र ! देवी भागवत में यह कथा प्रसिद्ध है कि—एक बार प्रकृति देवी ने स्वेच्छया इस जगत् की रचना की, किन्तु विप्र ! अनेक बार बोधित करने पर भी उस जड जगत् में चैतन्यता न आई । उसे देखकर प्रकृति को अत्यन्त आश्रय हुआ । उसी समय उसने शून्यभूत पुरुष की जो चैतन्य रूप है, उपासना की, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने देवी द्वारा रचित उस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया । २२-२९। समस्त

स्वप्नवद्वा स्वयं जातश्चेतन्यभवज्जगत् । अतः श्रेष्ठः स भगवान्त्युरुषो निर्गुणः परः ॥३०
 प्रकृत्यां स्वेच्छया जातो लिङ्गरूपस्तदाऽभवत् । पुंलिङ्गप्रकृतौ जातः पुंलिङ्गोऽयं सनातनः ॥३१
 स्त्रीलिङ्गप्रकृतौ जातः स्त्रीलिङ्गोऽयं सनातनः । नपुंसकप्रकृतौ जातः क्लीबरूपः स वै प्रभुः ॥३२
 अव्ययप्रकृतौ जातौ निर्गुणोऽयमधोक्षजः । नमस्तस्मै भगवते शून्यरूपाय साक्षिणः ॥३३
 इति श्रुत्वा तु तद्वाक्यं शिष्यो भूत्वा स द्वे द्विजः । त्रिविशान्वे च यज्ञांशे तत्र वासमकारयत् ॥३४
 छन्दोद्ग्रन्थं तु वेदाङ्गं स्वनाम्ना तेन निर्मितम् । राधाकृष्णपरं नाम जप्त्वा हर्षमवाप्त्वान् ॥३५

सूत उवाच

धन्वन्तरिर्द्विजो नाम ब्रह्मभक्तिपरायणः । कृष्णचैतन्यमस्माय नत्वा वचनमब्रवीत् ॥३६
 भवांस्तु पुरुषः श्रेष्ठो नित्यशुद्धसनातनः । जड़भूता च तन्माया समर्थो भगवान्त्वयम् ॥३७
 नित्योऽव्यक्तः परः सूक्ष्मस्तस्मात्प्रकृतिरूद्धवः । अतः पूज्यस्त भगवान्प्रकृत्याः पूजनेन किम् ॥३८
 इति श्रुत्वा विहस्याह यज्ञांशस्तर्वशास्त्रगः । नायं श्रेष्ठस्य पुरुषो न क्षमः प्रकृतिं चिना ॥३९
 पुराणे चैव वाराहे प्रसिद्धेयं कथा शुभा । कदाचित्पुरुषो नित्यो नाममात्रः स्वकेच्छाया ॥
 बभूव बहुधा तत्र यथा प्रेतस्तथा स्वयम् ॥४०
 असमर्थो विरचितुं जगन्ति पुरुषः परः । तुष्टाव प्रकृतिं देवीं चिरकालं सनातनीम् ॥४१

जगत, उसी समय स्वप्न की भाँति उद्बुद्ध होकर चैतन्य हो गया । अतः वही भगवान् श्रेष्ठ है, जो पुरुष, निर्गुण एवं पर है । स्वेच्छया प्रकृति में उत्पन्न होने के नाते वह लिंगरूप हुआ, जिससे पुंलिंग प्रकृति में उत्पन्न होने के आरण सनातन पुंलिंग, स्त्रीलिंग की प्रकृति में उत्पन्न होकर सनातन स्त्रीलिंग, नपुंसक प्रकृति में उत्पन्न होकर नपुंसक रूप कहा गया है । अव्यय प्रकृति में उत्पन्न होकर वह निर्गुण अधोक्षज (इन्द्रियजेता) कहलाता है । इसलिए, उस शून्यरूप, एवं साक्षीभूत भगवान् को नमस्कार है । इसे सुनकर उस ब्राह्मण ने उनकी शिष्य सेवा सुसम्पन्न करने के लिए उनके यहाँ निवास करना प्रारम्भ किया । उस समय यज्ञांश देव की तेईस वर्ष की अवस्था थी । वाणीभूषण ने वहाँ रहकर वेदाङ्ग छन्द ग्रन्थ की धारणे नाम से रचना की । इस प्रकार राधाकृष्ण के उत्तम नाम जप करते हुए उन्होंने सर्व का जीवन व्यतीत किया । ३०-३५

सूत जी बोले—न्राभक्ति में तन्मय रहने वाले धन्वन्तरि नामक ब्राह्मण ने कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—आप पुरुषश्रेष्ठ, नित्यशुद्ध, एवं सनातन हैं और आपकी माया जड़रूप हैं । नित्य, अव्यक्त, पर, एवं सूक्ष्म होने के नाते स्वयं भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि प्रकृति उन्हीं से उत्पन्न हुई है । इसलिए सर्वश्रेष्ठ भगवान् की ही पूजा करनी चाहिए प्रकृति की नहीं । इसे सुनकर समस्त शास्त्रों के मर्मज्ञ यज्ञांश देव ने हँसकर कहा—केवल पुरुष सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि प्रकृति के बिना वह सर्वदा असमर्थ है । वराहपुराण में इस विषय की एक प्रसिद्ध कथा है कि—एक बार उस नित्य पुरुष ने जो केवल नाममात्र हैं, स्वेच्छया प्रेत की भाँति अनेक रूप धारण किया किन्तु वह नित्य पुरुष जगत् की रचना करने में असमर्थ ही रहा । पश्चात् उसने सनातनी प्रकृति देवी की चिरकाल

तदा देवी च तं प्राप्य नहत्तत्वं चकार ह । सोऽहङ्कारश्च महतो जातस्तन्मात्रिकास्ततः ॥४२
महाभूतान्यतोऽप्यासंस्तैः सञ्जातनिदं जगत् ॥४३

अतस्सनातनौ चोभौ पुरुषात्प्रकृतिः परा । प्रकृतेः पुरुषश्चैव तस्मात्तात्यां नमो नमः ॥४४

इति धन्वन्तरिः श्रुत्वा शिष्यो भूत्वा च तद्गुरोः । तत्रोप्य चैव वेदाङ्गं कल्पवेदं चकार ह ॥

नुश्रुतादपरे चादि शिष्या धन्वन्तरे: स्मृतः ॥४५

सूत उचाच

जयदेवस्स वै विश्रो बौद्धमार्गपरायणः । कृष्णचैतन्यमागम्य पञ्चविंशत्योवृत्तम् ॥
नत्वोवाच वचो रन्यं स च श्रेष्ठ उषापतिः ॥४६

यस्य नाभेरभूत्यद्वं बह्यणा सह निर्गतम् । अतस्स ब्रह्मसूनामि सामवेदेषु गीयते ॥४७

विश्वो नारायणस्साक्षात्यस्य केतौ समास्थितः । विश्व केतुरतो नाम न निरुद्गोऽनिरुद्गः ॥४८

ब्रह्मवेला च तत्पत्ती नित्या चोषा महोत्तमा । स वै लोकहितार्थाय स्वयमर्चादितारकः ॥४९

इति श्रुत्वा विहस्याह यज्ञांशस्तं द्विजोत्तमन् । वैदो नारायणः साक्षात्पूजनीयो नरैः सदा ॥५०

ततः कालस्ततः कर्म ततो धर्मः प्रवर्तते । धर्मात्मकामः समुद्भूतः कामपत्नी रतिः स्वयम् ॥५१

रत्यां कामात्सुमुद्भूतोऽनिरुद्धो नामदेवता । उषा सा तस्य भगिनी तेन सार्द्धं समुद्भवः ॥५२

कालो नाम स वै कृष्णो राधा तस्य सहोदरा । कर्मरूपः स वै ब्रह्मा नियतिस्तत्सहोदरा ॥५३

धर्मरूपो महादेवः श्रद्धा तस्य सहोदरा । अनिरुद्धः कथं चेशो भवतोक्तः सनातनः ॥५४

तक उपासना की । ३६-४१। उससे प्रसन्न होकर देवी ने उसके पास जाकर सहयोग प्रदान पूर्वक महत्तत्व की रचना की । पुनः उस महत्तत्व से अहंकार और अहंकार द्वारा तन्मात्रा एवं तन्मात्र से पाँच महाभूतों की उत्पत्ति हुई । उसी आकाशादि भूतों द्वारा इस विश्व की रचना हुई है । अतः उन सनातन पुरुष और प्रकृति में पुरुष से प्रकृति ही श्रेष्ठ है और प्रकृति से पुरुष । इसलिए उन दोनों को नमस्कार है । इसे सुनकर धन्वन्तरि ने उनकी शिष्य सेवा स्वीकार कर वहाँ रहते हुए वेदाङ्गं कल्पवेद की रचना की । धन्वन्तरि के सुश्रुत के अतिरिक्त दो शिष्य और थे । ४२-४५

सूत जी बोले—बौद्ध मतावलम्बी जयदेव नामक ब्राह्मण ने पञ्चीस वर्ष की आयु से कृष्णचैतन्य के पास जाकर नमस्कार पूर्वक सुन्दर वाणी द्वारा उनसे कहा—उषापति ही सर्वश्रेष्ठ देव हैं क्योंकि जिसकी नामिद्वारा ब्रह्मासमेत पद्म की उत्पत्ति हुई अतः सामवेद में उसे ब्रह्मा का जन्मभूत कहा गया है । साक्षात् विश्व नारायण जिसकी केतु (पताका) में स्थित रहते हैं, उसे विश्वकेतु एवं निरुद्ध नहीं अनिरुद्ध कहा जाता है । ब्रह्मवेला उसकी पत्नी है, जो नित्या, एवं सर्वश्रेष्ठ उषा कही गयी है । अतः लोक कल्याणार्थ वही उषापति यथावसर अवतरित होता है । इसे सुनकर यज्ञांशदेव ने हासपूर्वक उस ब्राह्मणश्रेष्ठ से कहा—वेद ही साक्षात् नारायणस्वरूप है, मनुष्यों को सदैव उसकी पूजा करनी चाहिए । क्योंकि वेद से काल, काल से कर्म, कर्म से धर्म, और धर्म से काम और काम से पत्नी रति की उत्पत्ति हुई है । उसी कामरति के संयोग से अनिरुद्ध नामक देवता की उत्पत्ति हुई है और उनकी भगिनी उषा ने भी उसी के साथ जन्म ग्रहण किया है । ४३-५२। काल नाम कृष्ण का है, और राधा उनकी सहोदरा (भगिनी) है । कर्मरूप ब्रह्म हैं, नियति उनकी सहोदरा है । उसी प्रकार धर्मरूप महादेव हैं और श्रद्धा उनकी सहोदरा हैं । इसलिए आप के कहे हुए अनिरुद्ध सनातन ईश कैसे कहे जा सकते हैं । इस निखिल ब्रह्माण्ड में स्थूल,

त्रिधा सृष्टिश्च ब्रह्मण्डे स्थूला सूक्ष्मा च कारण । स्थूलसृष्टचै समुद्रभूतो देवो नारायणः स्वयम् ॥५५
 नारायणी च तच्छक्तिस्तयोर्जलसमुद्रवः । जलाज्जातस्त वै शेषस्तस्योपरि समाप्तितौ ॥५६
 मुप्ते नारायणे देवे नाभेः पञ्चमुत्तमम् । अनन्तयोजनायाम्मुदभूच्च ततो विधिः ॥५७
 विधेः स्थूलसमयी सृष्टिर्देवतिर्यग्नरादिका । सूक्ष्मसृष्टचै समुद्रभूतः सोऽनिरुद्ध उषापतिः ॥५८
 ततो वीर्यमयं तोयं जातं ब्रह्माण्डमस्तके । वीर्यज्जातस्त वै शेषस्तस्योपरि स चाप्तिः ॥५९
 तस्य नाभेस्तमुद्रभूतो ब्रह्मा लोकपितामहः । सूक्ष्मसृष्टिततो जाता यथा स्वप्नेतपि दृश्यते ॥६०
 हेतुसृष्टचै समुद्रभूतो वेदा नारायणः स्वयम् । वेदात्कालस्ततः कर्म ततो धर्मादयः स्मृताः ॥६१
 त्वदगुह्यश्च जगन्नाथ उड्डेशनिवासकः । मया तत्रैव गन्तव्यं सशिष्येणाद्य भो द्विजाः ॥६२
 इति श्रुत्वा तु वचनं कृष्णचैतन्यकिङ्कराः । स्वान्त्वाच्छिष्यान्सक्षाहूय तत्पञ्चात्मयपुरुषं ते ॥६३
 शाङ्करा द्वादशगणा रामानुजमुपाययुः । नामदेवादयस्तत्र गणास्सप्त समागताः ॥६४
 रामानन्दं नमस्कृत्य संस्थितास्तस्य सेवकाः । रोपणश्च तदागत्य स्वशिष्यर्बहुभिर्वृतः ॥६५
 कृष्णचैतन्यमामास्य नमस्कृत्य स्थितः स्वयम् । जगन्नाथपुरों ते वै प्रयपुर्भक्तितप्यरा ॥६६
 निधयः सिद्ध्यस्तत्र तेषां सेवार्थभागताः । सर्वे च दशसाहस्रा वैष्णवाः शैवशक्तकैः ॥६७
 यज्ञांशं च पुरस्कृत्य जगन्नाथपुरों ययुः । अर्चावितारे भगवाननिरुद्ध उषापतिः ॥६८

सूक्ष्म, एवं कारण के भेद से तीन प्रकार की सृष्टि हुई है जिसमें स्थूल सृष्टि के कर्ता स्वयं नारायण देव हैं, और नारायणी उनकी शक्ति है। उन दोनों से जल की उत्पत्ति हुई एवं उस जल से शेष की उत्पत्ति हुई है, जिस पर वे (नारायण और उनकी नारायणी शक्ति) दोनों सहर्ष सुशोभित हैं। नारायण देव के शदन करने पर उनकी नाभि द्वारा कगल की उत्पत्ति हुई, जो अनन्त योजन तक विस्तृत है। पुनः उसी से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है। और ब्रह्मा ने देव पशु पक्षी एवं मनुष्यों आदि की स्थूल सृष्टि की रचना की है। सूक्ष्म सृष्टि के लिए उषापति अनिरुद्ध का जन्म हुआ। पश्चात् ब्रह्माण्ड के मस्तक में उन्हीं द्वारा वीर्यमय जल का आविर्भाव हुआ और उसी से शेष की उत्पत्ति हुई जिस पर वे स्थित हैं। उनकी नाभि द्वारा लोक पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई जिनके द्वारा स्वप्न दर्शन की भाँति सूक्ष्म सृष्टि का सर्जन हुआ। उसी प्रकार कारण सृष्टि के लिए स्वयं वेद द्वारा नारायण का आविर्भाव हुआ। पश्चात् वेद द्वारा काल, काल से कर्म, और कर्म द्वारा धर्मादि की उत्पत्ति हुई है। विप्रवृन्द! तुम्हारे गुरुवर जगन्नाथ जी उड़ (उड़िया) देश के निवासी हैं, मैं भी शिष्यों समेत वहाँ के लिए आज ही प्रस्थान करना चाहता हूँ। इसे सुनकर उनके अनुयायी शिष्यगणों ने भी अपने-अपने शिष्यों को बुलाकर उनके समेत जगन्नाथ पुरी के लिए प्रस्थान किया। बारह शांकर मतानुयायी समेत रामानुज, नामदेव आदि सात गणों समेत रामानन्द, जो दूर से आकर नमस्कार करके उनके समीप स्थित थे, और अनेक शिष्यों समेत रोपण में कृष्ण चैतन्य के पास पहुँच कर नमस्कार करके उनकी सेवा में तत्पर रहते हुए । ५३-६५। जगन्नाथ पुरी की यात्रा किये। उस उनसब की सेवा वहाँ आकर ऋद्धियाँ एवं सिद्धियाँ कर रही थीं। उस जनसमूह में शैवों एवं शाक्तों समेत दशसहस्र वैष्णव उपस्थित थे, जो यज्ञांश देव को सम्मान पूर्वक आगे कर जगन्नाथ पुरी की यात्रा कर रहे थे। वहाँ पहुँचने पर उस समय अर्चावितार भगवान् उषापति अनिरुद्ध ने यज्ञांशदेव का आगमन जानकर

तदागमनमालोक्य द्विजरूपधरो मुनिः । जगन्नाथः स्वयं प्राप्तो यत्र यज्ञांशकादयः ॥६९
यज्ञांशस्तं समालोक्य नत्वा वचनमब्रवीत् । किं मतं भवता ज्ञातं कलौ प्राप्ते भयानके ॥७०
तत्सर्वं कृपया द्वूहि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः । इति श्रुत्वा तु वचनं जगन्नाथो हरिः स्वयम् ॥
उवाच वचनं रम्यं लोकमङ्गलहेतवे ॥७१

मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छाः काश्यपेनैव शासिताः । संस्कृताः शूद्रवर्णेन अहर्वर्णमुपागतः ॥७२
शिखासूत्रं समाधाय पठित्वा वेदनुत्तमम् । यज्ञैश्च पूजयाः मासुर्वदेवं शचीपतिम् ॥७३
दुःहितो भगवानिन्द्रः श्वेतद्वीपमुपागतः । स्तुत्यां मां बोध्यामास देवमङ्गलहेतवे ॥७४
प्रबुद्धं मां वचः प्राह् शृणु देव दयनिधे । शूद्रसंस्कृतमन्नं च खादितुं न द्विजोर्झति ॥७५
तथा च शूद्रजननित्यैर्ज्ञैस्तृप्तिं न ज्ञाप्याम् । काश्यपे स्वर्गते प्राप्ते मागधे राज्ञि शासति ॥७६
मम शत्रुर्बलदीर्त्यः कलिष्कमुपागतः । निस्तेजाश्च यथाऽहं स्यां तथा वै कर्तुमुद्यतः ॥७७
मिश्रदेशोद्भवे म्लेच्छे सांस्कृती तेन संस्कृता । भाषा देवविनाशाय दैत्यानां वर्द्धनाय च ॥७८
आर्येषु प्राकृती भाषा द्वूषिता तेन वै दृष्टा । अतो मां रक्ष भगवन्भवन्तं शरणागतम् ॥७९
इति श्रुत्वा तदाहं वै देवराजमुवाच ह । भवन्तो द्वादशादित्या गन्तुमर्हन्ति भूतले ॥८०
अहं लोकहितार्थाय जनिष्यामि कलौ युगे । प्रवीणो निपुणोऽभिज्ञः कुशलश्च कृती सुखी ॥८१

ब्राह्मण वेष धारण किया और और और जहाँगण समेत वे ठहरे थे, उस स्थान पर जगन्नाथ देव स्वयं चले गये । यज्ञांशदेव ने उन्हें देखकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—इस भयानक कलि के समय आप का कौन सिद्धान्त है, विस्तार पूर्वक उसे बताने की कृपा कीजिये । मैं उसे तत्त्वसमेत जानना चाहता हूँ । इसे सुनकर जगन्नाथ देव ने जो स्वयं विष्णु रूप हैं, लोक के कल्याणार्थ सुन्दर वाणी द्वारा कहना आरम्भ किये—मिश्र देश के निवासी म्लेच्छ लोगों ने जो काश्यप द्वारा शासित एवं शूद्र वर्ण द्वारा जिनके संस्कार सुसम्पन्न हुए हैं, ब्राह्मण बनकर शिखाभसूत्र के धारण पूर्वक वेदाध्ययन के उपरांत यज्ञानुष्ठान द्वारा देवाधि देव इन्द्र की पूजा की । उससे दुःख प्रकट करते हुए वे श्वेतद्वीप चले गये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने देवों के कल्याणार्थ मेरी आराधना स्तुति द्वारा की । पश्चात् मेरे प्रबुद्ध होने पर उन्होंने कहा—देव, दयनिधे ! मेरा दुःख सुनने की कृपा करें—शूद्र के बनाये हुए अन्न का भोजन ब्राह्मण कैसे कर सकता है, उसी प्रकार शूद्रों के यज्ञानुष्ठान द्वारा मैं कैसे तृप्त हो सकता हूँ । काश्यप के स्वर्गीय हो जाने पर मगध राज के शासन काल में मेरे शत्रु बलि दैत्य ने कलि के पक्ष का समर्थन किया है । वह मुझे निस्तेज बनाने के लिए प्रयत्नशील है । उसी ने मिश्रदेश के निवासी उन म्लेच्छों की भाषा को देवों के विनाश पूर्वक दैत्यों के वलवर्द्धनार्थ संस्कृत का रूप दिया है । और आर्यों में दूषित प्राकृत भाषा का प्रचार किया है । ६६-७१। अतः भगवन् ! मैं आपकी शरण में प्राप्त हूँ, आप मेरी रक्षा करें । इसे सुनकर मैंने देवराज इन्द्रं से कहा—आप बारहों आदित्यों से भूतल में जन्म ग्रहण करने के लिए कहिये । मैं भी इस घोर कलि के समय लोक के कल्याणार्थ वहाँ अवतार धारण करूँगा । प्रवीण, निपुण, अभिज्ञ, कुशल, कृती, सुखी, निष्णात, शिक्षित, सर्वज्ञ, सुनत, प्रबुद्ध, और बुद्ध के रूप में क्रमशः इन धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, मेघ,

निष्णातः शिक्षितश्चैव सर्वज्ञः सुगतस्तथा । प्रबुद्धश्च तथा बुद्ध आदित्याः क्रमतो भवाः^३ ॥८२
धाता मित्रोऽर्यमा शक्तो भेघः प्रांशुर्भगस्तथा । विवस्वांश्च तथा पूषा सविता त्वाष्ट्रविष्णुकौ ॥

कीकटे देश आगत्य ते सुरा जन्मिरे क्रमात् ॥८३

वेदनिन्दां पुरस्कृत्य बौद्धशास्त्रमचीकरन् । तेभ्यो वेदान्तसमादाय मुनिस्यः प्रददुस्सुराः ॥८४

वेदनिन्दाप्रभावेण ते सुराः कुण्ठिनोऽभवन् । विष्णुदेवमुपासन्य तुष्टुवबौद्धरूपिणम् ॥८५

हरिर्योगवलेनैव तेषां कृष्णमनाशयत् : तद्दोषाश्चग्नभूतश्च बौद्धस्स तेजसाऽभवत् ॥८६

पूर्वाष्टमिनाथश्च पराष्ट्राष्ट्रौद्ध एव च । बौद्धराज्यविनाशाय दारुपाषाणरूपवत् ॥८७

अहं सिन्धुतदे जातो लोकमञ्जलहेतवे । इन्द्रद्युम्नश्च नृपतिः स्त्रगलोकादुपमगतः ॥

मन्दिरं रचितं तेन तत्राहं समुपागतः ॥८८

अत्र स्थितश्च यज्ञांशप्रसादभहिमा महान् । सर्ववाचिष्ठतदं लोके स्थापयामास मोक्षदम् ॥८९

वर्णधर्मश्च नैवात्र वेदधर्मस्तथा न हि । व्रतं चात्र न यज्ञांशमण्डले योजनान्तरे ॥९०

येनोक्ता यावनी भाषा येन बौद्धो विलोकितः । तस्य प्राप्तं महत्पापं स्थितोऽहं तदधापहः ॥

मां विलोक्य नरः शुद्धः कलिकाले भविष्यति ॥९१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगखण्डापरपरपर्याये कलियुगीयेतिहाससमुच्चये

कृष्णचैतन्यचरित्रे जगन्नाथमाहात्म्यवर्णनं नाम विशोऽध्यायः । २०

प्रांशु, भर्ता, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वाष्ट्र, और विष्णु नामक आदित्य देवों ने कीकट देश में जन्म ग्रहण किया । इन लोगों ने वेद की निन्दा पूर्वक बौद्ध शास्त्र की रचना की । उन लोगों से वेदों को लेकर मुनियों को प्रदान किया । इसीलिए इस वेद की निन्दा करने के कारण वे सभी देव गण, जो इस भूमण्डल पर आकर उत्पन्न हुए थे, कुष्ठ रोग से पीड़ित होने पर उन बौद्ध रूपी विष्णु देव के पास पहुँचकर उनकी स्तुति करने लगे । जिससे प्रसन्न होकर भगवान् ने अपने योगबल द्वारा उनके कुष्ठरोग का नाश किया । किन्तु उस दोष के कारण तेजस्वी होते हुए बौद्ध नश्च रहने लगे । पूर्वाष्टमि भाग से नैमिनाथ और उत्तराष्ट्र भाग से बौद्ध का अविर्भाव हुआ । उस बौद्धराज्य के विनाशार्थ एवं लोक के कल्याणार्थ मैं सिधु तट पर स्वर्ग से आये हुए राजा इन्द्रद्युम्न, द्वारा रचित उस मन्दिर में दारु-पाषाण (काष्ठ-पत्थर) का रूप धारण कर रहता हूँ । इस स्थल में यज्ञांश देव के ठहरने से इसकी महिमा बढ़ गई है जिन्होंने लोक में सभी मनोरथों को सिद्ध एवं मोक्षदायक धर्म की स्थापना की है । इस स्थल की महिमा बढ़ जाने के कारण इस एक योजन के मण्डल में वर्णधर्म, वेदधर्म और व्रत-पारायण की विशेष व्यवस्था मोक्ष के लिए नहीं की गई है, क्योंकि वह यहाँ अत्यन्त सुलभ है । जिसने यवनों की भाषा का व्यवहार और बौद्धदर्शन किया या करते रहते हैं, उनके उस महान् पाप के विधवंस के लिए मैं यहाँ रहता हूँ । क्योंकि कलियुग में मनुष्य मेरे दर्शन करने से शुद्ध हो जायेगे । ७९-९१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में जगन्नाथ माहात्म्य वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त । २०

अथैकविंशोऽध्यायः

कृष्णचैतन्यवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा नचस्तस्य जगद्वाथस्य धीमतः । कृष्णचैतन्य एवस्यि तमुवाच प्रसन्नधीः ॥१
भगवन्प्राणिनां श्रेयो यदुक्तं भवता मुने । पिस्तरात्तकयां बूहि यथा बौद्धसमुद्भवः ॥२

जगन्नाथ उदाच

तहसाब्दे कलौ प्राप्ते कर्मभूम्यां च भारते । कण्वो नाम मुनिश्चेष्टस्सप्राप्तः कश्यपात्मजः ॥३
आर्यावती देवकन्या कण्वस्य दयिता प्रिया । शक्राज्ञया च सम्प्राप्तौ दम्पती शारदातटे ॥४
सरस्वतीं नदीरूपां कुरुक्षेननिवासिनीम् । चतुर्वेदमयैः स्तोत्रैः कण्वस्तुष्टाव नम्रधीः ॥५
वर्षमात्रान्तरे देवी प्रसन्ना समुपागता । आर्यसृष्टिसमृद्धौ जा ददौ तस्मै वरं शुश्रम् ॥६
दशपुत्रास्तयोर्जर्ता आर्यबुद्धिकरा हि ते । उपाध्ययो दीक्षितश्च पाठकः शुक्लमिश्रकौ ॥७
अग्निहोत्री द्विवेदी च त्रिवेदी पाण्ड एव च । चतुर्वेदीति कथिता यथा नाम तथा गुणाः ॥८
ते वै सरस्वतीं देवीं तुष्टुवुर्नम्रकन्धराः । द्वादशाब्दवयोभ्यश्च तेभ्यो देवी स्वशक्तिः ॥९
कृत्वा कन्यां ददौ माता शारदा भक्तिवत्सला

॥९

अध्याय २१

कृष्णचैतन्य का वर्णन

सूत जी बोले—धीमान् जगन्नाथ की ऐसी बातें सुनकर प्रसन्न होकर कृष्णचैतन्य ने कहा—भगवन् ! प्राणियों के कल्याणार्थ आप ने जो कुछ कहा है, उसे और मुने ! बौद्ध की उत्पत्ति आप विस्तार पूर्वक कहने की कृपा करें । १-२

जगन्नाथ जी बोले—कलि के सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर इस कर्मभूमि भारत में कश्यप पुत्र कण्व मुनि का आगमन हुआ । देवकन्या आर्यावती कण्व की प्रिया स्त्री थी । उसे साथ लेकर इन्द्र की आज्ञापूर्वक शारदा के तट पर वे दोनों दम्पति पहुँचे । वहीं जाकर कण्व ने नम्रतापूर्वक चारों वेदों के स्तोत्रों द्वारा कुरुक्षेन निवासिनी सरस्वती देवी की आराधना की, जो वहाँ महीरूप में रह रही है । उससे प्रसन्न होकर सरस्वती देवी ने वर्ष के भीतर ही आर्यसृष्टि के समृद्धयर्थ उन्हें शुभ वरदान प्रदान किया । पश्चात् उन दोनों स्त्री-पुरुष द्वारा आर्यबुद्धि वाले दण्डपुत्रों की उत्पत्ति हुई । उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डेय और चतुर्वेदी उनके नाम एवं उसी के अनुसार गुण हुए । बारह वर्ष की अवस्था में उन पुत्रों ने नम्र होकर सरस्वती देवी की आराधना की उससे प्रसन्न होकर भक्तवत्सला शारदा माता ने अपनी शक्ति द्वारा कन्याएँ उत्पन्न कर उन्हें प्रदान किया, जो

उपाध्यादी दीक्षिता च पाठकी शुक्लिका क्रमात् । मिश्राणी च तथा ज्ञेया षष्ठी सा च ग्रन्थिहोत्रिणी ॥१०
द्विवेदिनीं तथा ज्ञेया चाष्टमीं च त्रिवेदिनी । पाण्डायनी च नवमीं दशमीं तुर्यवेदिनी ॥११
तासां च स्वपतिभ्यो वै सुताःषोडश षोडश । ते तु गोद्रकरा ज्ञेयास्तेषां नामानि मे शृणु ॥१२
कश्यपश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः । जमदग्निर्विशिष्टश्च वत्सो गौतम एव च ॥१३
पराशरस्तथा गर्णोऽत्रिभृगुश्चांज्ञरास्तथा । शृङ्गी कात्यायनश्चैव याज्ञवल्क्यः कश्यात्सुताः ॥
इति नाम्ना सुतास्सर्वं ज्ञेयाः षोडश षोडश ॥१४
सरस्वत्याज्ञया कण्वो निश्चेष्टमुपाययौ । म्लेच्छान्संस्कृतमभाष्य तदा दशसहस्रकान् ॥
वशीकृत्य स्वयम्प्राप्तो ब्रह्मावर्तं महोत्तमे ॥१५
ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम् । पञ्चवर्षान्तरे देवीं प्रादुर्भूता सरस्वती ॥
सप्तलीकांश्च तान्स्तेच्छान्त्यद्वरणाय चाकरोत् ॥१६
कारुदृत्तिकरास्सर्वे बभूवुर्बहुपुत्रकाः । द्विसहस्रास्तदा तेषां मध्ये दैश्या बभूविरे ॥१७
तन्मध्ये चाचार्यपृथुर्नाम्ना कश्यपसेवकः । तपसा स च तुष्टव द्वादशाब्दं महामुनिम् ॥१८
तदा प्रसन्नो भगवान्कण्वो देववराद्वरः । तेषां चकार राजानं राजपुत्रपुरं ददौ ॥१९
राजन्या नाम तत्पत्नी मागधं सुषुवे तदा । तस्मै कण्वो ददौ ग्रामं पूर्वस्यां दिशि मागधम् ॥२०
स्वर्गलोकं पुनः प्राप्तः स मुनिः कश्यपात्मजः । स्वर्गते काश्यये विप्रे ते म्लेच्छाः शूद्रवर्णकाः ॥२१
यज्ञस्समर्चयामासुर्देवदेवं शचीपतिम् । दुःखितो भगवान्निन्द्रस्सबन्धुर्जगतीतले ॥२२

उपाध्यादी, दीक्षिता, पाठकी शुक्लानी, मिश्राणी, अग्निहोत्राणी, द्विवेदिनी, त्रिवेदिनी, पाण्डायनी, और
चतुर्वेदिनी नाम से प्रस्त्र्यात हुई । ३-१०। इन कन्याओं ने अपने उन उपरोक्त पति की सेवाकर सोलह-
सोलह पुत्रों को उत्पन्न किया, जो गोत्रवंश के प्रचारक हुए । कश्यप, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम,
जमदग्नि, वशिष्ठ, वत्स, गौतम, पराशर, गर्ग, अत्रि, भृगु, अंगिरा, शृङ्गी, कात्यायन, एवं याज्ञवल्क्य
क्रमसः उन पुत्रों के नामकरण हुए । तदुपरांत सरस्वती की आज्ञा से कण्व मिश्रदेश चले गये । वहाँ
पहुँचकर उन्होंने दशसहस्र म्लेच्छों को संस्कृत भाषा द्वारा अपने वशीभूत कर पुनः उन लोगों समेत
सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवर्त प्रदेश में आगमन किया । यहाँ आने पर उन लोगों ने सरस्वती देवी की तप द्वारा
आराधना की । पांच वर्ष के उपरांत उनकी आराधना से प्रसन्न होकर सरस्वती देवी ने वहाँ प्रकट होकर
पत्नी समेत उन म्लेच्छों को शूद्र वर्ण बनाया । अनन्तर बहुपुत्र वाले उन म्लेच्छों ने कार (शिल्प) वृत्ति
अपनाकर अपना जीवन व्यतीत करना आरम्भ किये, उनमें दो सहस्र म्लेच्छ वैश्य हो गये थे, जिनमें सर्वश्रेष्ठ
आचार्य पृथु ने जो कश्यप का सेवक था, बारह वर्ष तप द्वारा उन महामुनि की आराधना की । उस समय
प्रसन्न होकर भगवान् कण्व ने वरदान प्रदान पूर्वक उन्हें राजा बनाकर राजपुत्र नामक पूर सौंप दिया ।
पश्चात् राजन्या नामक उनकी रानी ने मागध नामक पुत्र उत्पन्न किया जिसे कण्व ने पूर्व दिशा के मागध
नामक ग्राम को सौंप दिया था । १-२०। तदुपरांत कश्यपपुत्र कण्व मुनि स्वर्ग चले गये । उनके स्वर्ग यात्रा
करने पर शूद्र वर्ण वाले उन म्लेच्छोंने यज्ञानुष्ठान द्वारा शचीपति इन्द्र की आराधना की । उससे दुःखी होकर
भगवान् इन्द्र ने अपने बंधुओं समेत इस भूतल पर ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करवेदों के अपहरण करने के लिए

वेदानाहर्तुमिच्छन्तो ब्रह्मयोनौ बभूविरे । जिनो नाम द्विजः कश्चित्तपत्नी जयनी स्मृता ॥२३
 कश्यपाददितेरंशास्त्रातौ तौ कीकटस्थले । तयोस्सकाशात्सञ्जाता आदित्या लोकहेतवे ॥२४
 कर्मनाशानदीतीरे पुरी बोधगया स्मृता । तत्रोष्य बौद्धशास्त्रादचाश्रहः शास्त्रार्थमुत्तमम् ॥२५
 वेदाञ्छुद्रेभ्य आहृत्य विशालां प्रथयुः पुरीस् । समाधिस्थानमुनीन्सर्वान्समुत्थाप्य ददुः स्वयम् ॥२६
 गतास्सर्वे सुरास्स्वर्गे ततः प्रभृतिभूतले । म्लेच्छा बभूविरे बौद्धास्तदन्ये वेदतत्त्वाः ॥२७
 सरस्वत्याः प्रभावेण त आर्या बहवोऽभवन् । तैश्च देवपितृभ्यश्च हृव्यं कव्यं समाप्तम् ॥२८
 तृप्तिमन्तः सुराश्रासंस्त आर्याणां सहस्रकाः । सप्तविशच्छते भूमौ कलौ सवंत्सरे गते ॥२९
 बतिना प्रेषितो भूमौ मयः प्राप्तो महासुरः । शास्त्र्यसिंहगुरुर्यो बहुमायाप्रवर्तकः ॥३०
 त नान्ना गौतमःचार्यो दैत्यपक्षविवर्द्धकः । सर्वतीर्थेषु तेनैव यन्त्राणि स्थापितानि वै ॥३१
 तेषामधो गता ये तु बौद्धाश्रासन्तपन्ततः । शिखास्मूत्रविहीनाश्र बभूवुर्वर्णसङ्करः ॥३२
 दश कोट्यः स्मृता आर्या बभूवुर्बौद्धाश्रागिगः । पञ्चलक्षास्तदा शेषाः प्रययुगिरस्मूद्धनिः ॥३३
 चतुर्वेदप्रभावेण राजन्या वह्निवंशजाः । चत्वारिंशभवा योधास्तैश्च बौद्धास्समुज्जिताः ॥३४
 आर्यारितांस्ते तु संस्कृत्य विन्द्याद्रेदक्षिणे कृतान् । तत्रैव स्थापयामासुर्वर्णरूपान्समन्ततः ॥३५
 आर्यार्वतः पुण्यभूमिस्तत्रस्थाः पञ्चलक्षकाः ॥३५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य यज्ञांशो भगवान्हरि: ॥३६

प्रथत्न करना आरम्भ किया । उनका नाम 'जिन' था तथा उनकी पत्नी का नाम 'जयिनी' । इस कीकट नामक प्रदेश में कश्यप और अदिति के संयोग से इन दोनों की उत्पत्ति हुई थी और लोक के मंगलार्थ आदित्यों की भी । कर्मनाशा नदी के टटपर बोधगया नामक स्थान में रहकर उन लोगों ने उन बौद्ध निष्ठुण विद्वानों से शास्त्रार्थ किया । उन लोगों ने उन शूद्रों से वेदों का अपहरण कर विशाला में पहुँचकर वहाँ के समाधिनिष्ठ मुनियों को जागृतकर सौंप दिया । पश्चात् सभी देवगण इस भूतल से प्रस्थान कर स्वर्ग चले गये । पश्चात् वे म्लेच्छ तथा उनके अनुयायी वेदपाठी लोग बौद्ध हुए । सरस्वती जी के प्रभाव से वे ही बहुसंख्यक आर्य हुए जिन्होंने देवों एवं पितरों के उद्देश्य से हृव्य, कव्य का समर्पण किया, और उससे देवों की अत्यन्त तृप्ति हुई । इस भूतलपर कलि के सत्ताईस सौ वर्ष व्यतीत होने के उपरांत बलि दैत्य की प्रेरणावश मायावी मय दानव आया, जो अत्यन्त मायावी एवं शाक्यसिंह का गुण था । उसकी प्रस्थाति गौतम के नाम से हुई जो सदैव दैत्यपक्षों के वर्धनार्थ प्रयत्न करता रहा । उसी ने समस्त तीर्थों में जाकर यंत्रों की स्थापना की थी । उसके नीचे जो कोई बौद्ध पहुँच गये वे सभी शिखा-सूत्रहीन होकर वर्ण संकर हो गये । उन आर्यों की दश कोटि संख्या थी, जो बौद्ध पथ गामी थे । शेष पाँच लाख आर्य उनके ऊपर पर्वत-शिखरों पर पहुँचे । चारों वेद के प्रभाव से अग्निवंश के चालीस राजपुत्र क्षत्रिय-गणों ने जो महान् योद्धा थे, अपने यहाँ से बौद्धों को निकाल दिया । उन्होंने उन आर्यों को विन्द्यपर्वत के दक्षिण प्रदेश में संस्कार पूर्वक निवास कराया, जिन्होंने वर्ण व्यवस्था को अत्यन्त दृढ़ किया । उस आर्यार्वत नामक पुण्य प्रदेश में पाँच लाख आर्य रहे थे । २१-३५

सूत जी बोले—इसे सुनकर यज्ञांशदेव ने जो साक्षात् नारायण रूप हैं, जगन्नाथ जी के शिष्य होकर

जगन्नाथस्य शिष्यो भूद्वेदमार्गपरायणः । शुक्लदत्तस्य तनयो नित्यानन्दो द्विजोत्तमः ॥३७
 जगन्नाथपदं नत्वा शिष्यो भूत्वा रराज ह । तदा प्रसन्नो भगदाननिरुद्ध उषापतिः ॥३८
 अभिषेकन्तयोर्भालि महत्तत्वे चकार ह । महत्त्वपदवीं जाता तदा प्रभृतिभूतले ॥३९
 गुरुबन्धुं प्रसन्नौ तौ स्वशिष्यान्प्रोचतुर्मुदा । जगन्नाथस्य वदनं पदनाभेषणपतेः ॥
 दृष्ट्वा यश्चात्र सम्माप्य स तै स्वर्गमवाप्नुयात् ॥४०

प्रसादं यश्च भुज्जीयात्तस्य^१ देवस्य सादरम् । कोटिजन्म भवेद्विप्रो वेदपात्रो महाधनीः ॥४१
 मार्कण्डेय वटे कृष्णं दृष्ट्वा स्नात्वा भहोदधौ । इन्द्रद्युम्नरारस्येव पुनर्जन्म न दिन्दते ॥४२
 इमां गथ्यां शृणोद्यो^२ वै श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । यत्तुरुगमने पुष्पं फलं तच्छीघ्रभाष्युयात् ॥४३
 इति यज्ञांवचनं श्रुत्वा हावतारकः । वैष्णवैश्च तथेत्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥४४
 एतस्मन्नन्तरे विप्र कलिना प्रार्थितो बन्निः । मयदैत्यं रामाहृय वचनं प्राह दुःखितः ॥४५
 सुकन्दरो म्लेच्छपतिः सदा मद्भूत्वे रतः । सहायं तस्य दैत्येन्द्र कुरु शीघ्रं मप्याज्ञया ॥४६
 इति श्रुत्वा वलेर्वाक्यं शतदैत्यसमन्वितः । कर्मभूम्यां मयः प्राप्तः कलविद्याविशारदः ॥४७
 म्लेच्छजातीन्नरान्दुष्टन्नरेखागणितमुत्तमम् । एकविंशतिमध्यायं कलवेदमशिक्षयत् ॥४८
 तदा कलान्विता म्लेच्छाः कलाविद्याविशारदाः । यन्त्राणि कारयामासुः सप्तस्वेव पुरोषु च ॥४९
 तदधो ये गतालोकस्ते सर्वे म्लेच्छां गताः । महूकोलाहलं जातमार्याणां शोककारिणाम् ॥५०

वेदमार्ग का विस्तार करना आरम्भ किया । शुक्लदत्त के पुत्र ब्राह्मण श्रेष्ठ नित्यानन्द ने नमस्कार पूर्वक जगन्नाथ की शिष्य सेवा स्वीकार की । उस समय प्रसन्न होकर उषापति भगवान् अनिरुद्ध ने उन दोनों के मस्तक में महत्त्वपूर्ण अभिषेक (तिलक) किया । उसी समय से पृथ्वी पर महत्त्व पदवी की रुप्यति हुई । गुरु एवं उनके बंधु ने प्रसन्न होकर अपने शिष्यों से कहा—उषापति, एवं पदनाभ भगवान् जगन्नाथ के बदन का दर्शन करने से लोग स्वर्ग की प्राप्ति करेंगे और जो मनुष्य सादर उनके प्रसाद का भक्षण करेगा वह कोटि जन्म तक वेदपाठी एवं महाधनवान् ब्राह्मण होता रहेगा । मार्कण्डेय वटवृक्ष के नीचे कृष्णदर्शन और समुद्रस्नान के उपरांत इन्द्रद्युम्न सरोवर में स्नान करने वाले प्राणी का पुनर्जन्म नहीं होगा । श्रद्धाभक्ति पूर्वक इस कथा का श्वरण करने वाला जगन्नाथ पुरी की यात्रा का फल प्राप्त करेगा । इस प्रकार अवतारित होने वाले वैष्णवों ने यज्ञांश की बातें सुनकर अन्तहित होकर स्वर्ग को प्रस्थान किया । विप्र ! उसी बीच कलि की प्रार्थना करने पर वलि दैत्य ने दुःख प्रकट करते हुए मय दानव से कहा—सुकन्दर (सिकन्दर) नामक म्लेच्छ को, जो मेरी वृद्धि के लिए सदैव अटूट परिश्रम करता है, शीघ्र मेरा सहाय बना दीजिये । बलि की इस बात को सुनकर वह विद्या निपुण मय दैत्य अपने सौ दैत्यगणों समेत इस कर्मभूमि भूतल पर आगमन किया । यहाँ आकर उसने म्लेच्छ जाति के दुष्टों को रेखागणित के उस समय इक्कीस अध्यायों का अध्ययन कराया । ३६-४८ । पश्चात् कलापूर्ण होने पर उन कलाविद्या विशारद म्लेच्छों ने सातों पुरियों में यंत्रों की स्थापना की जिससे म्लेच्छों की अधिक वृद्धि हुई । उन यंत्रों के नीचे जो पहुँच जाते थे,

श्रुत्वा ते वैष्णवाः सर्वे कृष्णचैतन्यसेवकाः । दिव्यमन्त्रं गुरोन्नैव पठित्वा प्रयगुः पुरीन् ॥५१
 रामानन्दस्य शिष्यो वै अयोध्यायामुपागतः । श्रुत्वा विलोमं तं मन्त्रं वैष्णवांस्तानकारयत् ॥५२
 भाले त्रिशूलचिह्नं च श्वेतरक्तं लदाभवत् । कण्ठे च तुलसी माला जिह्वा राममयी कृता ॥५३
 म्लेच्छास्ते वैष्णवाश्रासन्नरामानन्दप्रभावतः । संयोगिनश्च ते ज्ञेया रामानन्दमते स्थिताः ॥५४
 आर्यश्च वैष्णवा मुख्या अयोध्यायां बभूविरे । निम्बादित्ये गतो धीमास्ताश्च्यः काञ्चित्कां पुरीम् ॥
 म्लेच्छायन्त्रं राजमार्गे स्थितं तत्र ददर्श ह ॥५५
 विलोमं स्वगुरुर्मन्त्रं कृत्वा तत्र स चावसत् । वंशपत्रसमा रेखा ललाटे कण्ठमालिका ॥५६
 गोपीवल्लभमन्त्रो हि मुखे तेषां रराज ह । तदधो ये गता लोका वैष्णवाश्र बभूविरे ॥५७
 म्लेच्छाः संयोगिनो ज्ञेया आर्यस्तन्मार्गवैष्णवाः । विष्णुस्वामी हरिद्वारे जगाम स्वगर्णैर्दृतः ॥५८
 तत्र स्थितं महायन्त्रं विलोमं तच्चकार ह । तदधो ये गता लोका आसन्सर्वे च वैष्णवाः ॥५९
 ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विरेखाभं तन्मध्ये बिन्दुरुत्तमः । ललाटे च स्थितस्तेषां कण्ठे तुलसिगोलकम् ॥६०
 मुखे साधवस्त्रश्च बभूव हितदायकः । मथुराम्पां रप्तायातो मध्वाचार्यो हरिप्रियः ॥६१
 राजमार्गे स्थितं यन्त्रं विलोमं स चकार ह । तदधो ये गता लोकां वैष्णवास्तस्य पक्षगाः ॥६२
 करवीरपत्रसदृशं ललाटे तिलकं शुभम् । स्थितम् नासाद्वभागान्ते कण्ठे तुलसि मालिका ॥
 राधाकृष्णशुभं नाम मुखे तेषां बभूव ह ॥६३

वे सभी म्लेच्छ हो जाते थे । इसे सुनकर आर्यवृन्दों में एक महान् शोकपूर्ण कोलाहल उत्पन्न हुआ । उसे सुनकर कृष्णचैतन्य के सेवक उन वैष्णवों ने अपने गुरु के दिव्य मंत्र के पाठपूर्वक उन पुरियों की यात्रा की । रामानन्द के दोनों शिष्यों ने अयोध्या में पहुँचकर उस मंत्र के विलोम पाठ द्वारा उन वैष्णवों के आकार में परिवर्तन किया—भाल में त्रिशूल का चिह्न (तिलक) जो श्वेत एवं रक्त वर्ण का होता है, कंठ में तुलसी की माला धारण किये । उनकी जिह्वा राममयी हो गई । रामानन्द के प्रभाव से अयोध्या के म्लेच्छ संयोगी वैष्णव रूप में परिवर्तित हो गये, जो गृहस्थाश्रम में रहते हुए उनके मत का अवलम्बन किये थे । इस प्रकार अयोध्या में वे आर्य मुख्य वैष्णव हुए । बुद्धिमान् निम्बादित्य ने अपने शिष्यों समेत काञ्चीपुरी की यात्रा की । उन्होंने राजमार्ग में उस म्लेच्छयन्त्र को देखा । पश्चात् अपने गुरु मंत्र के विलोम पाठ द्वारा प्रचार करना आरम्भ किया । उनके उपदेश द्वारा वहाँ की जनता के ललाट में वांस के पते के समान एक रेखा, कंठ में माला और मुख से सदैव गोपीवल्लभ का मंत्रोच्चारण होने लगा । उनकी छाया में जो कोई पहुँचे सभी वैष्णव हुए । म्लेच्छ संयोगी और आर्य शुद्धवैष्णव हुए । विष्णु स्वामी ने अपने शिष्यगणों समेत हरिद्वार की यात्रा की । वहाँ पहुँचने पर अपने विलोम मंत्र द्वारा वहाँ के यंत्र को शुद्ध किया । उसके नीचे पहुँचने वाले वैष्णव हो जाते थे । उनके वेष में मस्तक में ऊर्ध्व पुण्ड्र की दो रेखा थी जिसके मध्य में एक उत्तम विन्दु रहता था । कंठ में तुलसी की गोलमाला और मुख से माधव मंत्र का सदैव उच्चारण होता था । मथुरा में हरिप्रिय मध्वाचार्य की यात्रा हुई । ४९-६१ । उन्होंने राजमार्ग में यंत्र को देखकर उसे विलोम किया जिससे उसके नीचे पहुँचने वाले सभी वैष्णव हो जाते थे । वहाँ के वैष्णव वेश में भाल में करवीर पत्र के समान शुभ तिलक भी, जो नासा के आधे भाग तक स्थित रहती है, कंठ में तुलसी की माला और मुख से सदैव राधाकृष्ण का परमोत्तम नामोच्चारण होता था । शैवमतावलम्बी

शङ्कराचार्य एवःपि शैवमार्गपरायणः । रामानुजाज्ञया प्राप्तः पुरों काशीं गणेयुतः ॥६४
 कृत्वा विलोमं तद्यन्तं शैवाश्र तदधोऽभवन् । त्रिपुण्डं च स्थितं भाले कण्ठे रुद्राक्षमालिका ॥
 नेविन्दमन्त्रश्च मुखे तेषां तत्र बभूव ह ॥ ६५
 तोतादर्थं च सम्प्रात्तस्तदा रामानुजः सुखी । अर्धरेखाद्योर्मध्ये सूक्ष्मरेखा च पीतिका ॥
 ललाटे तु तथा कण्ठे माला तुलसिका शुभा ॥ ६६
 उज्जग्निन्यां च सम्प्राप्तो वराहनिहरो गुणी । तद्यन्तं निष्कलं कृता नराञ्छैवांश्चकार ह ॥६७
 चिताभस्मस्थितं भाले कण्ठे रुद्राक्षमालिका । शिवेति मङ्गलं नाम तेषां तत्र बभूव ह ॥६८
 कान्यकुञ्जे स्वयं प्राप्तो वाणीभूषण एव हि ! अर्धचन्द्राकृतिं पुण्डं रक्तचन्दनमालिका ॥
 देव्याश्र निर्मलं नाम तेषां तत्र बभूव ह ॥ ६९
 धन्वन्तरिः प्रयागे च गत्वा तद्यन्तमुत्सम् । विलोमं कृतवांस्तत्र तदधो ये गता नराः ॥७०
 अर्धपुण्डं स्मृतं रक्तं सबिन्दु च ललाटके । रक्तचन्दनजा माला कण्ठे तेषां बभूव ह ॥७१
 भट्टोजिः स गतो धीमानुत्पलारण्यमुत्तमस् । त्रिपुण्डं च तथा रक्तं ज्ञाणे रुद्राक्षमालिका ॥
 विश्वनाथेतितन्मन्त्रं तेषां तत्र बभूव ह ॥ ७२
 रोपणश्रैष्टिकां प्राप्तस्तद्यन्तं चैव निष्कलम् । कृत्वा जने जने तत्र ब्रह्म मार्गम् ददर्श ह ॥७३
 जयदेवः स्वयं प्राप्तो द्वारकां विष्णुभक्तिमान् । तद्यन्तं निष्कलं यातं तदधो ये गता नराः ॥७४
 रक्तरेखा स्थिता भाले चैका कण्ठे तु मालिका । पद्माक्षा मन्त्रगोविन्दस्तत्र तेषां बभूव ह ॥

शंकराचार्य ने रामानुज की आज्ञा से अपने गणों समेत काशीपुरी की यात्रा की । ६२-६४। वहाँ पहुँच-कर उन्होंने उस यंत्र को विलोक्य कर शैवों का प्रचार किया । उसके नीचे आने वाले सभी शैव हुए । उनके मस्तक में त्रिपुण्ड कण्ठ में रुद्राक्ष की माला, और मुख से सदैव गोविद नाम का उच्चारण हो रहा था । तोतादरी में सुखी रामानुज ने प्रस्थान किया । उनके वेष में मस्तक में उर्ध्व दोनों रेखा के मध्य पीत वर्ण की एक सूक्ष्मरेखा रहती थी । कण्ठ में तुलसी की माला रहती है । गुणी वराहमिहिराचार्य ने उज्ज्वलिनी में जाकर उस यंत्र को विफल करके वहाँ की जनता में शैव मत का प्रचार किया । उस वेष में भाल में चिताभस्म, कण्ठ में रुद्राक्ष की माला और मुख में मांगलिक शिव, नाम का उच्चारण सदैव होता है । वाणी भूषण ने स्वयं कान्यकुञ्ज (कन्नीज) में जाकर शाक्तमत का प्रचार किया, जिस वेष में अर्धचन्द्राकार पुण्ड रक्तचन्दन की माला, और मुख से देवी के निर्मल नाम का उच्चारण होता रहता है । धन्वन्तरि ने प्रयाग में पहुँच कर उस यंत्र के विलोम पूर्वक वहाँ की एकत्रित जनता में भाल में रक्तवर्ण के विन्दु समेत अर्धपुण्ड एव कण्ठ में रक्तचन्दन की माला धारण करने का प्रचार किया । बुद्धिमान् भट्टोजि ने उत्पलारण्य में जाकर वहाँ की जनता में रक्तचन्दन के त्रिपुण्ड, कण्ठ में रुद्राक्ष की माला और विश्वनाथ जी के परमोत्तम नाम यंत्र के जप करने का प्रचार किया । रोपण ने इष्टिका में जाकर उस यंत्र को विफल करके वहाँ की जनता में ब्रह्मार्ग का प्रचार किया । उसी भाँति सर्वश्रेष्ठ विष्णु भक्त जयदेव जी ने द्वारका में जाकर उस यंत्र को निष्कल करके वहाँ की जनता के मस्तक में रक्तवर्ण की रेखा, कण्ठ में पद्माक्ष की माला तथा गोविन्द नाम का उच्चारण करने का प्रचार किया । इस प्रकार उन वैष्णव, शैव, एवं

एवं ते वैष्णवाः शैवाः शाक्तका बहुधाऽभवन्

११५

निर्गुणाः शाक्तका ज्ञेयाः सगुणा वैष्णवाः स्मृताः । निर्गुणाः सगुणा ये तु शैवा ज्ञेया बुधैस्तदा ॥७६

समाधिस्थास्त्रयस्त्रशहेवाः पुण्या बन्धुविरे । नित्यानन्दः शान्तिपुरे नदीहापत्त्वे हरिः ॥७७

कबीरो मागधे देशो रैदासस्तु कलिङ्गजे । सधनो नैमित्यारण्ये समाधिस्थो बभूव ह ॥७८

अद्यापि संस्थितो विप्र दैष्णवानां गणो महान् । यज्ञभागमहावृद्धिः सञ्जाता मेरुमूर्द्धनि ॥७९

इति ते अथितं विप्र यज्ञांशचरितं शुभम् । यच्छ्रूत्वा च नरा नार्यो महत्पुण्यमवाप्नुयः ॥

मयादा निष्फला दैत्या बलिपार्वमुष्यागताः ॥ १८०

इते श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वेण चतुर्युगखण्डादरपद्यपि कलियुगीयेतिहाससमुच्चये

कृष्णचैतन्यचरित्रं नामैकविंशोऽध्यायः । २१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

गुरुण्डमौनराज्यवर्णनम्

सूत उवाच

इति श्रुत्वा बलिदैत्यो देवानां विजयं महत् । रोषणं नाम दैत्येन्द्रं समाहृय बचोऽन्नवीत् ॥१

सुतस्तिमिरलिङ्गस्य सरुषो नाम विश्रुतः । त्वं हि तत्र समागम्य दैत्यकार्यं महत्कुरु ॥२

शाक्त गणों की अत्यन्त अभिवृद्धि हुई । विद्वानों ने शाक्त को निर्गुण, वैष्णव को सगुण और निर्गुण सगुण मिश्रित को शैव बताया है । तदनन्तर तैतीस देवों ने समाधिस्थ होकर इस भूमि को अत्यन्त पावन किया । शान्तिपुर में नित्यानन्द नदीहा में हरि, मागधप्रदेश में कबीर, कलिङ्गर में रैदास, और नैमित्यारण्य में सधन ने समाधिस्थ होकर उन-उन प्रदेशों को परमपवित्र किया है । विप्र ! उसी से आज भी वैष्णवों का महानगण इस भूतल पर स्थित रहकर मेरुमूर्धा स्थान में यज्ञों की महान् अभिवृद्धि का रहा है । विप्र ! इस प्रकार मैंने यज्ञांशदेव का शुभ चरित तुम्हें सुना दिया, जिसके सुनने से स्त्री एवं पुरुषों को अत्यन्त पुण्य की प्राप्ति होती है । पश्चात् मय आदि दैत्यों ने पलायन कर बलि दैत्यराज के पास पहुँचकर उनसे निवेदन किया । ६५-८०

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में कृष्णचैतन्यचरित्र वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त । २१।

अध्याय २२

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—दैत्यराज बलि ने देवों के इस प्रकार की महान् विजय को सुनकर रोपण नामक दैत्येन्द्र को बुलाकर उससे कहा—तिमिरलिंग के सरुष नामद् पुत्र को साथ लेकर उसी स्थान पर दैत्यों के उस महान् कार्य को पूरा करो । इसे सुनकर उस दैत्य ने दिल्ली प्रदेश में निवासपूर्वक अपने हृदय में

इति श्रुत्वा स वै दैत्ये हृदि विप्राप्तरोषणः । ननाश वेदमार्गस्थान्देहलीदेशमास्थितः ॥३
 पञ्चवर्षं कृतं राज्यं तत्सुतो बावरोभवत् । विशदब्दं कृतं राज्यं होमायुस्तसुतोऽभवत् ॥४
 होमायुषः मदान्धेन देवताश्च निराकृताः । ते सुराः कृष्णचैतन्यं नदीहोपवने स्थितम् ॥५
 दुष्टवुर्बहुधा तत्र श्रुत्वा क्रुद्धो हरिः स्वयम् । स्वतेजसा च तद्राज्यं दिग्भूतं चकार ह ॥६
 तत्सैन्यजनितैर्लोकैर्होमायुश्च निराकृतः । महाराज्यस्तदा तत्र शेषशाकः समाप्तिः ॥७
 देहलीनगरे रम्ये म्लेच्छो राज्यं चकार ह । धर्मकार्यं कृतं तेन तद्राज्यं पञ्चहायनम् ॥८
 ब्रह्मचारी मुकुन्दश्च शङ्कराचार्योत्रजः । प्रदग्ने च तपः कुर्विंशच्छैर्युतस्थितः ॥९
 बापरेण च धूर्तेन म्लेच्छराजेन देवताः । भूंशिता स तदा ज्ञात्वा वह्नौ देहं जुहाव वै ॥१०
 तत्य शिष्या गता वह्नौ म्लेच्छनाशनहेतुना । गोदुर्धे च स्थितं रोमं पीत्वा स पयसा मुनिः ॥११
 मुकुन्दस्तस्य दोषेण म्लेच्छयोनै बभूत्र ह । होमायुश्च काश्मीरे संस्थितरथैव पुत्रकः ॥१२
 जातमात्रे मुते तस्मिन्वागुजाचा शरीरिणी । अकस्माच्च वरो जातः पुत्रोऽयं सर्वभाग्यवान् ॥१३
 पैशाचे दारुणे मर्त्ये न भूतो न भविष्यति । अतः सोऽकदरो नाम होमायुस्तनयस्तव ॥१४
 श्रीधरः श्रीपतिः शम्भुर्वरेण्यश्च मधुव्रती । विमलो देववान्सोमो वर्द्धनो वर्तको रुचिः ॥१५
 मान्धाता मानकारी च केशवो माधवो मधुः । देवापिः सोमपाः शूरो मदनो यस्य शिष्यकाः ॥१६

अत्यन्त क्रुद्ध होकर वेदमार्ग के अनुयायियों का विनाश करना आरम्भ किया । पाँच वर्ष तक राज्योपभोग करने के उपरांत उसके 'बावर' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने बीस वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् उसके होमायु (हुमायूँ) नामक पुत्र हुआ । उस होमायु ने मदान्ध होकर देवताओं को अपमानितकर देश से निकालना आरम्भ किया, जिससे दुखी होकर देवों ने नदीहा के उपवन में पहुँचकर भगवान् कृष्णचैतन्य की अनेक भाँति से आराधना की जिसे सुनकर स्वयं विष्णु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपने तेज द्वारा उस राज्य में महान् विघ्न उत्पन्न किया—वहाँ की जनता ने जो सैनिकों के पद पर काम कर रही थी, होमायु (हुमायूँ) को पराजित कर निकाल दिया । उस समय महाराष्ट्रों की सहायता से शेषशाक ने दिल्ली में पहुँचकर उस म्लेच्छराज्य को अपने अधीन किया । उन्होंने उस पद पर पाँच वर्ष तक रहकर धार्मिक कार्यों की अत्यन्त वृद्धि की । उसी समय ब्रह्मचारी मुकुन्द ने जो शंकराचार्य के गोत्र में उत्पन्न होकर अपने बीस शिष्यों समेत प्रयाग में तप कर रहे थे, धूर्त म्लेच्छराज बावर द्वारा देवों का भ्रष्ट होना सुनकर प्रदीप्त अग्नि में अपनी देह को भस्म कर दिया । उनके शिष्यगणों ने भी इस म्लेच्छ के नाशार्थ अपने को उसी अग्नि में भस्मावशेष किया । एकबार उन मुनि मुकुन्द ने गोदुर्ध के साथ लोम का भी पानकर लिया था । उसी दोष के कारण उन्हें म्लेच्छ के यहाँ उत्पन्न होना पड़ा । उस समय होमायु (हुमायूँ) काश्मीर में रह रहा था । उसी के यहाँ पुत्ररूप में ब्रह्मचारी मुकुन्द ने जन्म ग्रहण किया । पुत्र के उत्पन्न होने के समय आकाशवाणी हुई—'यह पुत्र अकस्मात् वर (सर्वश्रेष्ठ) और सर्वभाग्यवान् होगा ।' इस भाँति का पुत्र उस भीषण पिशाचों के यहाँ न हुआ और न होगा । इसलिए इस होमायु (हुमायूँ) पुत्र का 'अकबर' नाम होगा । १-१४। जिस तपस्वी के श्रीधर, श्रीपति, शम्भु, वरेण्य, मधुव्रती, विमल, देववान्, सोम, वर्द्धन, वर्तक रुचि, मान्धाता, मानकारी, केशव, माधव, मधु, देवाधि, सोमपा, शूर,

स मुकुन्दो द्विजः श्रीमान्दैवात्मद्गेहमागतः । इत्याकाशवनः श्रुत्वा होमायुष्मं प्रसन्नधीः ॥१७
 ददौ दानं क्षुधातर्तेभ्यः प्रेम्णा पुत्रमपालयत् । दशाब्दे तनये जाते देहलीदेशमागतः ॥१८
 शेषशाङ्कं पराजित्य स च राजा बभूव ह । अब्दं तेन कृतं राज्यं तत्पुत्रश्च नृपोऽभवत् ॥१९
 सम्प्रादेऽकबरे राज्यं स्त्वांशिष्याश्र तत्प्रिया । पूर्वजन्मनि ये मुख्यास्ते प्राप्ता भूपतिं प्रति ॥२०
 केशवो गानसेनश्च वैजवाक्स तु माधवः । म्लेच्छात्ते च हमुतास्तत्र हरिदासो मधुस्तथा ॥२१
 मध्वाचार्यकुले जातो वैष्णवः सर्वरागःवित् । पूर्वजन्मनि देवापि: स च वीरबलोऽभवत् ॥२२
 ब्राह्मणः पात्रिमात्यो वै वादेवीवरदर्पितः । सोमपा मानसिहश्च गौतमान्वयसम्भवः ॥२३
 सेनापतिश्च नृपतेरार्यभूपशिरोप्लोः । सूर्यांश्च द्विजो जातो दक्षिणश्चैव पण्डितः ॥२४
 बिल्वमङ्गलं एवापि नाम्ना हन्त्यपते: सङ्खा । नायिकाभेदनिपुणो वेश्यानां स च पारगः ॥२५
 मदनो ब्राह्मणो जातः पौर्वात्यः स च नर्तकः । चन्दलो नाम विख्यातो रहः क्रीडाविशारदः ॥२६
 अन्यदेशे गताः शिष्यास्तेषां पूर्वास्त्रयोदश । अनपस्य सुतो जातः श्रीधरः शत्रुदेवितः ॥२७
 विख्यातस्तुलसीशर्मा पुराणनिपुणः कविः । नारीशिखां समादाय राघदःनन्दमागतः ॥२८
 शिष्यो भूत्वा स्थितः काश्यां रामानन्दनते स्थितः । श्रीपतिः स बभूवान्धो मध्वाचार्यमते स्थितः ॥२९
 सूरदास इति ज्ञेयः कृष्णलीलाकरः कविः । शम्भुर्वै चन्द्रभट्टस्य कुले जातो हरिप्रियः ॥३०

और मदन शिष्य हैं, वही श्रीमान् मुकुन्द ब्राह्मण दैवात् तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार की आकाशवाणी सुनकर होमायु (हुमायुँ) ने अत्यन्त प्रसन्न होकर क्षुधापीडितों को दान देकर अत्यन्त प्रेम से उस पुत्र का लालन-पालन किया। पुत्र की दश वर्ष की अवस्था में उसने दिल्ली आकर शेषशक को पराजित कर पुनः राजपद को अपने अधीन किया। उसके एक वर्ष राज्य करने के उपरांत अकबर ने उस पद को अलंकृत किया। अकबर के राजपद पर प्रतिष्ठित होने पर पूर्वजन्म के उनके सप्त शिष्यों ने उस राजदरबार में आकर अपने-आपने गुणों के अनुसार उन पदों को मुझोभित किया—केशव, गानसेन, वैजवाक् एवं माधव ने म्लेच्छ के यहाँ जन्म ग्रहण किया था, हरिदास तथा मधु मध्वाचार्य के कुल में उत्पन्न होकर सर्वरागवेता वैष्णव हुए। पूर्वजन्म के देवाधि वीरबल हुए जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर वादेवी से वरदान प्राप्तकर स्वातिप्राप्त आमात्य हुआ था। सोमपा, एवं मानसिह गौतम कुल में उत्पन्न होकर आर्येष्ठ राजा के सेनापति हुए। सूर ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर कुशल पण्डित हुए जो उस राजा के परम मित्र एवं विल्वमंगल नाम से प्रस्ताव थे। उन्हें नायिका भेद का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान था और उसी प्रकार वेश्याओं का भी। मदन पूर्वदेश निवासी ब्राह्मणकुल में जन्म ग्रहणकर कुशल नर्तक हुए जो एकान्त क्रीड़ा में निपुण होकर चन्दन नाम से प्रथित थे। उनके शेष तेरह शिष्यों ने अन्य देशों में जाकर जन्म ग्रहण किया—शत्रु मर्मज्ज श्रीधर ने अनघ के यहाँ पुत्ररूप में उत्पन्न होकर तुलसी शर्मा के नाम से स्वाति प्राप्त की, जो पुराण के निपुण कवि थे। उन्होंने नारी द्वारा शिक्षा प्राप्तकर काशी में राघवानन्द के पास आकर। १५-२१। उनकी शिष्य सेवा स्वीकार पूर्वक रामानन्द मत का अवलम्बन किया। श्रीपति अन्धे होकर मध्वाचार्य का मत अपनाये जो सूरदास के नाम से प्रस्त्यात होकर कृष्णलीला के परमोत्तम कवि थे। हरिप्रिय शम्भु ने चन्द्रभट्ट के कुल में जन्म ग्रहणकर रामानन्द का मार्ग अपनाया। वे भक्तों की

रामानन्दमते संस्थो भक्तकीर्तिपरायणः । वरेण्यः सोग्रभुद्नामा रामानन्दमते स्थितः ॥३१
ज्ञानध्यानपरो नित्यं भाषाछन्दकरः कविः । मधुव्रती स वै जातो कीलको नाम विश्रुतः ॥३२
रामलीलाकरो धीमान्नरामानन्दमते स्थितः । विमलश्च स वै जातः स नान्नैव दिवाकरः ॥३३
सीतालीलाकरो धीमान्नरामानन्दमते स्थितः । देववाकेष्वो जातो विष्णुस्वामिमते स्थितः ॥३४
कविप्रियादिरचनां कृत्वा प्रेतत्वमागतः । रामज्योत्सनामयं ग्रन्थं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३५
स्तोमो जातः स वै व्यासो निष्वादित्वमते स्थितः । रहः क्रीडामयं ग्रन्थं कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३६
वर्द्धनश्च स वै जातो नाम्ना चरणदासकः । ज्ञानमालामयं कृत्वा ग्रन्थं रैदासमार्गेः ॥३७
वर्तकः स च वै जातो रोपणस्य मते स्थितः । रत्नभानुरिति ज्ञेयो भाषाकर्ता च जैमिनेः ॥३८
रुचिश्च रोचनो जातो मध्वाचार्यमते रिश्वतः । नन्नागानश्चयीं लीलां कृत्वा स्वर्गमुपाययौ ॥३९
मान्धाता भूपतिर्नाम कायस्थः स बभूव ह । मध्वाचार्यो भागवतं चक्रे भाषामयं शुभम् ॥४०
मानकारो नारिभावान्नारीदेहमुपागतः । मीरानामेति विद्याता भूपतेस्तनया शुभा ॥४१
मा शोभा च तनौ यस्य गरिंजसमाकिल । सा मीरा च बुधः प्रोक्ता मध्वाचार्यमते स्थिता ॥४२
एवं ते कथितं विप्र भाषाग्रन्थप्रकारणम् । प्रबन्धं मञ्जलकरं कलिकाले भयद्वारे ॥४३
स भूपोऽक्षरो नाम कृत्वा राज्यमकण्टकम् । शतार्द्धेन च शिष्यैश्च वैकुण्ठभवनं ययौ ॥४४
सलोमा तनयस्तस्य कृतं राज्यं पितुः समम् । खुर्दकस्तनयस्तस्य दशाब्दं च कृतं पदम् ॥४५

कीर्ति को सदैव तन्मय होकर गाया करते थे । वरेण्यह्नि सोग्रभुक् नाम से प्रथित होकर रामानन्द का मत स्वीकार किया । जो ज्ञानी ध्यानी होते हुए भाषा छन्द के निपुण कवि हुए थे । मधु का कीलक नाम से ख्याति हुई, जो रामलीला करने वाले एवं रामानन्द के मतावलम्बी थे विमल दिवाकर नाम से प्रख्यात होकर सीता जी की लीला करते हुए रामानन्द के परमभक्त हुए । देवबाबू ने केशव नाम से प्रथित होकर विष्णु स्वामी का मत अपनाया जिन्होंने कविप्रिया की रचना की । किन्तु उन्हें प्रेतयोनि में ही जाना पड़ा । उन्होंने राम ज्योत्स्नामय ग्रन्थ की भी रचना की है । सोम ने व्यास के नाम से उत्पन्न होकर निष्वादित्य का मार्ग ग्रहण किया, जिन्होंने एकान्त क्रोड़ा के विवेचनात्मक ग्रन्थ का निर्माण किया । वर्द्धन ने ज्ञानमाला नामक ग्रन्थ की रचना कर रैदास का मत अपनाया । वर्तक ने रोपण का मत ग्रहण किया । रुचि ने रोचन नाम से प्रथित होकर मध्वाचार्य का मत अपनाया । उन्होंने अनेक भाँति के गान लीला की रचनाकर पश्चात् स्वर्ग को प्रस्थान किया । मांधाता कायस्थ कुल में उत्पन्न होकर राजपद से विभूषित हुए । मध्वाचार्य ने भाषा में शुभ भागवत की रचना की । मानकार ने नारीभाव की प्रधानता वश नारीदेह धारण किया, जो राजा की 'मीरा' नामक प्रख्यात पुत्री थी । विद्वानों ने जिसकी शरीर में मा (लक्ष्मी) की भाँति सौन्दर्य और गज की भाँति गति हो, उसे मीरा कहा है । वह मीरा मध्वाचार्य की अनुयायिनी थी । २९-४२। विप्र ! इस प्रकार भाषाग्रन्थ का प्रकरण मैंने कहकर समाप्त किया, जो प्रबन्ध एवं भीषण कलि समय अत्यन्त मांगलिक है । उस अकबर नामक राजा ने अकंटक राज्य का सुखोपभोग करके अपने पचास शिष्यों समेत वैकुण्ठ भवन की यात्रा की । उसके सलोमा (सलीम) जहाँगीर नामक पुत्र ने अपने पिता के समान काल तक राज्य किया और खुर्दक (खुर्रम) सलीम का पुत्र था,

चत्वारस्तनयास्तस्य नवरङ्गो हि मध्यमः । पितरं च तथा भ्रातुञ्जित्वा राज्यमचीकरत् ॥४६
 पूर्वजन्मनि दैत्येऽयमन्धको नाम विश्रुतः । कर्मभूम्यां तदंशेन दैत्यराजाज्ञया यथौ ॥४७
 तेनैव बहुधा सूर्तीर्थशिताश्च समन्ततः । दुष्टा देवास्तदागत्य कृष्णचैतन्यमनुवन् ॥४८
 भगवन्दैत्यराजांशः स जातश्च महीपतिः । अंशसित्वा सुरान्वेदान्दैत्यपक्षं विवर्द्धते ॥४९
 इति श्रुत्वा स यज्ञांशो नदीहेष्वने स्थितः । शशाप तं दुराचारं यज्ञा वशक्षयो भवेत् ॥५०
 राज्यमेकोनपद्वशत्कृतं तेन दुरात्मना । सेवाज्ञयो नाम नृपो देवपक्षविवर्द्धनः ॥५१
 महाराष्ट्रद्विजस्तस्य युद्धविद्याविशारदः । हत्वा तं च दुराचारं तत्पुत्राय च तत्पदम् ॥५२
 दत्वा यथौ दाक्षिणात्ये देशे देवविवर्द्धनः । अलोमा नामतनयः पञ्चाब्दं तत्पदं कृतम् ॥५३
 तत्पश्चान्मरणं प्राप्तो विद्रधेन रुजा मुने । विक्रमस्य गते राज्ये सप्तत्युत्तरकं शतम् ॥५४
 ज्ञेयं सप्त दशं विप्र यदालोमा मृतिं गतः । तालनस्य कुले जातो म्लेच्छः फलरुषो बली ॥५५
 मुकुलस्य कुलं हत्वा स्वयं राज्यं चकार ह । दशाब्दं च कृतं राज्यं तेन भूपेन भूतले ॥५६
 शत्रुभिर्भरणं प्राप्तो दैत्यलोकमुपागमत् । महागदस्तत्तनये विंशत्याब्दं कृतं पदम् ॥५७
 तद्राष्ट्रे नादिरो नाम दैत्यो देश उपागमत् । हत्वार्याश्च सुराञ्जित्वा देशं खुरजमाययौ ॥५८
 महामत्यो हि मदस्य तनयस्तपितुः पदम् । गृहीत्वा पञ्चवर्षान्तं स च राज्यं चकार ह ॥५९
 महाराष्ट्रहृतो दुष्टस्तालनान्वयसम्भवः । देहलीनगरे राज्यं दशाब्दं साधवेन वै ॥६०

जिसने दश वर्ष तक राज्य किया । उसके चार पुत्रों में नवरंग (औरङ्गजेब) मध्यम पुत्र था जिसने अपने पिता और भ्राताओं पर विजय प्राप्तकर राज्यपद अपने अधीन किया । पूर्वजन्म में वह अन्धक नामक दैत्य था । दैत्यराज बलि की आज्ञा से उसने इस कर्मभूमि भारत में जन्म ग्रहण किया, जिसके द्वारा अनेकों देवमूर्तियाँ भ्रष्ट की गई थीं । उसे देखकर देवों ने कृष्णचैतन्य से कहा—भगवन् ! वह दैत्यराज के अंश से उत्पन्न होकर राज्यपद की प्रतिष्ठा के उपरांत देवों एवं वेदों को नष्ट-भ्रष्टकर दैत्यपक्षों को बढ़ा रहा है । इसे सुनकर नदीहा के उपवन में स्थित यज्ञांश ने उस दुराचारी के वंशनाशार्थ शाप प्रदान किया । उस दुष्ट के उनकास वर्ष राज्य करने के उपरांत सेवाजय (शिवा जी) नामक राजा ने, जो देवपक्ष के अभिवर्द्धक थे, और महाराष्ट्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर युद्ध विद्या की निपुणता प्राप्त की थी । उस दुराचारी का निधन कर उसका पद उसके पुत्र को सौंपकर दक्षिणदेश की यात्रा की । मुने ! उसके आलोमा नामक उस पुत्र ने पाँच वर्ष तक राज्य करने के उपरांत विद्रध (भगन्दर) नामक रोग से पीड़ित होकर शरीर का त्याग किया । विक्रमराज्य के सत्रह सौ सत्तर वर्ष उस समय आलोमा के शरीर त्याग के समय व्यतीत हुआ था । तालन कुल में उत्पन्न बली फल रुष म्लेच्छ ने मुकुल (मुगल) की कुल की समाप्तिकर स्वयं राज्यपद को अपने अधीन किया । इस भूमण्डल पर दश वर्ष तक राज्य करने के उपरांत ॥४३-५६। शत्रुओं द्वारा मृतक होकर उसने दैत्यलोक की यात्रा की । उसके पुत्र महामद ने बीस वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् उसके राज्य में नादर (नादिर शाह) नाम का दैत्य ने आर्यों एवं देवों पर विजय प्राप्तिपूर्वक खुरजा प्रदेश में आगमन किया । उसके पुत्र महामत्यस्य ने अपने पिता के पद को अपने अधीन कर पाँच वर्ष तक राज्य किया । तदनन्तर महाराष्ट्रों द्वारा तालनवंशीय उस दुष्ट के निधन होने पर दिल्ली

कृतं तत्र तदा म्लेच्छ आलोमा राज्यमाप्तवान् । तद्राष्ट्रे बहवो जाता राजानो निजदेशजाः ॥६१
 ग्रामपा बहवो भूपा देशे देशे बभूविरे । मण्डलीकपदं तत्राक्षयं ज्ञातं महीतले ॥६२
 त्रिशदद्वमतो जातं ग्रामे ग्रामे नृपे नृपे । तदा तु सकला देवा: कृष्णचैतन्यमात्ययुः ॥६३
 यज्ञांशश्च हरिः साक्षात्ज्ञात्वा दुःखं महीतले । मुहूर्तं ध्यानमागम्य देवान्वचनभब्लवीत् ॥६४
 पुरा तु राघवो धीमाङ्गित्वा रावणराक्षसम् । कपीनुज्जीवयामात्स सुधावर्षेस्समन्ततः ॥६५
 विकटो वृजिलो जालो वरलीनो हि सिहलः । जवस्तुमात्रश्च तथा नाम्ना ते क्षुद्रदानराः ॥६६
 रामचन्द्रं वचः प्राहुर्देहि नां वाऽन्धितं प्रभो । रामो दाशरथिः श्रीमाङ्गात्वा देषां मनोरथम् ॥६७
 देवाङ्गनोद्भवाः कन्या रावणाल्लोकरावणात् । दत्त्वा तेन्यो हरिस्साक्षाद्वचनं प्राह हर्षितः ॥६८
 भवन्नाम्ना च ये द्वीपा जालन्धरविनिर्मिताः । तेषु राजो भविष्यन्ति भवन्तो हितकारिणः ॥६९
 नन्दिन्यं गोअं रुण्डाद्वै जाता म्लेच्छा भयानकाः । गुरुण्डा जातयस्तेषां तास्तु तेषु तदा स्थिताः ॥७०
 जित्वा तांश्च गुरुण्डान्वै कुरुध्वं राज्यमुत्तमम् । इति श्रुत्वा हर्यं नत्वा द्वीपेषु प्रययुर्मुदा ॥७१
 विकटान्वयसः सूता गुरुण्डा वानराननाः । वाणिज्यार्थमिहायाता गौरुण्डा बौद्धमार्गिणः ॥७२
 ईशापुत्रमते संस्थास्तेषां हृदयमुत्तमम् । सत्यव्रतं कामजितमक्रोद्धं सूर्यतत्परम् ॥७३
 यूयं तत्रोष्य कार्यं च नृणां कुरुत मा चिरम् । इति श्रुत्वा तु ते देवाः कुर्युरार्चिकमादरात् ॥७४

सिंहासनासीन होकर माधव ने दश वर्ष तक राज्य किया । उन्होंने आलोमा के समस्त राज्यपर अपना आधिपत्य स्थापित किया था । उस राज्य में अपने देश के अनेक लोग राजा थे और अनेक ग्रामपति भी अनेक देशों में राज्यपद पर रहकर राज्य कर रहे थे उस समय मण्डलीक पद के नष्ट होने पर प्रत्येक गाँवों के अधिपति राजा कहे जाते थे । इस प्रकार उन राजाओं के उस पद पर तीस वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरांत समस्त देवों ने कृष्णचैतन्य के पास जाकर उनसे कहा । जिसे सुनकर साक्षात् विष्णु रूप यज्ञांश-देव ने पृथिवीं तल पर लोगों को दुःखी देखकर एक मुहूर्त ध्यान करने के उपरांत देवों से कहा—पहले समय में धीमान् राधव ने रावण रक्षस को पराजित कर चारों ओर अमृत वर्षा करके बानरों को जीवित किया था । उस समय वहाँ उपस्थित होकर विकट, वृजिल, जाल, वरलीन, सिहल, जव, और सुमात्रा नामक वानरों ने रामचन्द्र जी से कहा—प्रभो ! मनइच्छित वरदान देने की कृपा कीजिये । उसे सुनकर भगवान् दाशरथी श्रीमान् राम ने उन लोगों के मनोरथ को जानकर लोक रावण द्वारा देवाङ्गनाओं के गर्भ से उत्पन्न कन्याएँ उन्हें प्रदान किया तथा तदनन्तर हर्षित होकर कहा—जालंधर के बनाये हुए जो द्वीप आप लोगों के नाम से प्रथित हैं, उन्हीं के राजाओं के यहाँ उत्पन्न होकर आप लोग उनके हितैषी बने । नन्दिनी नामक गौ के देह से भीषण म्लेच्छों की उत्पत्ति हुई थी । उन्हीं की गुरुण्ड जाति हुई, जो उनमें से सदैव स्थित रहती है । ५७-७०। उन गुरुण्डों को जीत कर तुम लोग उस राज्य को अपनाओ । इसे सुनकर उन वानरों ने भगवान् राम के नमस्कार पूर्वक अपने उन द्वीपों को प्रस्थान किया । विकट नामक वानर कुल में उत्पन्न उन गुरुण्डों ने जिनके मुख वानरों की भाँति होते हैं, और बौद्ध मत के अनुयायी हैं, व्यापार के उद्देश्य से वहाँ आगमन किया । किन्तु उनके हृदय में ईशामत की ओर अत्यन्त विनम्रता है । वे सत्यव्रती, कामजीतने वाले, एवं क्रोधीन होते हैं और सूर्य की ही आराधना करते हैं । आप देवगण वहाँ जाकर मनुष्यों के हित साधन में शीघ्रता करें । इसे सुनकर उन देवों ने सादर अर्चना करके उस कलकत्ता नगर

नगर्या कलिकातायां स्थापयामासुरुद्यताः । विकटे पश्चिमे द्रीपे तत्पत्नी विकटावती ॥७५
 अष्टकौशलमार्गेण राजमन्त्रं चकार ह । तत्पतिस्तु पुलोमार्चिः कलिकातां पुरीं स्थितः ॥७६
 विक्रमस्य गते राज्ये शतमष्टादशं कलौ । चत्वारिंशं तथाब्दं च तदा राजा बभूव ह ॥७७
 तदन्वये सप्तनृपा गुरुण्डाश्र बभूविरे । चतुष्षष्ठिमितं वर्षं राज्यं कृत्वा लयं गताः ॥७८
 गुरुण्डे द्वाष्टमे भूषे प्राप्ते न्यायेन शासति । कलिपक्षो बलिदैत्ये भुरं नाम महासुरम् ॥७९
 यारुण्डे द्वेषयमास देवदेशे महोत्तमे । स मुरो वांडलं शूपं वशीकृत्य हृदि स्थितः ॥८०
 आर्यधर्मविनाशाय तत्य बुद्धिं चकार ह । मूर्तिरास्थास्तदा देला इत्वा यज्ञांशयोगिनम् ॥८१
 नमस्कृत्यानुवन्सर्वे यथा प्राप्तो मुरोऽसुरः । ज्ञात्वा शशाप छृण्णांशो गुरुण्डान्बौद्धमार्गिणः ॥८२
 क्षयं यास्यन्ति ते सर्वे वे मुरस्य वशं गताः । इत्युक्ते वचने तस्मिन्नुरुण्डः कालनोदिताः ॥८३
 स्वसैन्येश्च धर्यं जम्बुवर्षमात्रान्तरे खलाः । सर्वे त्रिशत्सहस्राश्र ब्रययुर्यममन्दिरे ॥८४
 वागदण्डैस्स च भूषालो वार्डिलो नाशसाप्तवान् । गुरुण्डो नवमः प्राप्तो भेकलो नात्न वीर्यवान् ॥८५
 न्यायेन कृतवान्नराज्यं द्वादशाब्दं प्रयन्ततः । आर्यदेशे च तद्राज्यं बभूव न्यायशासति ॥८६
 लाईलो नाम विस्थातो गुरुण्डो दशमोहितः । द्वार्तिशब्दं च तद्राज्यं कृतं तेनैव धर्मिणा ॥८७
 लाईले स्वर्गते प्राप्ते मकरन्दकुलोद्भवाः । आर्याः प्राप्तास्तदा मौना हिमतुङ्गनिवासिनः ॥८८
 बभूवर्णाः सूक्ष्मनसो वर्तुला दीर्घमस्तकाः । एवं लक्षाश्र सम्प्राप्ता देहल्यां बौद्धमार्गिणः ॥८९

में राजधानी स्थापित किया । विकट नामक पश्चिम द्रीप के राजा की पत्नी का विकटावती नाम था । जिसने आठ प्रकार के कुशल मार्गों द्वारा वहाँ का शासन संचालित किया उसके पति पुलोमार्चि कलकत्ता में रह रहे थे । उस समय विक्रम काल के अठारह सौ चालीस वर्ष के व्यतीत हो जाने पर राजा हुए थे । उस गुरुण्ड (गोरे अंग्रेज) कुल में सात राजा हुए । गुरुण्ड जाति के आठवें राजा के शासनाधिकार के समय कलिपक्ष के समर्थक दैत्यराज बलि ने मुर नामक महासुर को बुलाकर उस मुर दैत्य ने वाडिल नामक राजा को अपने वशीभूत कर उनके हृदय पर अधिकार किया—उसकी बुद्धि को इस भाँति भ्रष्ट किया कि वह आर्यधर्मों के विनाशपूर्वक देव मूर्तियों को तोड़ने-फोड़ने लगा । उस समय मूर्ति स्थित देवों-ने यज्ञांशदेव के पास जाकर नमस्कार पूर्वक मुर राक्षस का पूर्ण वृत्तान्त सुनाया । उसे सुनकर यज्ञांशदेव ने उन बौद्धमार्गनियायी गुरुण्डों को शाप दिया—मुरराक्षस के अधीन रहने वाले सभी गुरुण्ड नष्ट हो जायेंगे । उनके इस प्रकार शाप देने पर अपनी सेनाओं द्वारा नष्ट-भ्रष्ट हो गये । उस समय उनकी संख्या तीस सहस्र की थी, वे सबके सब मृतक होकर यमराज के यहाँ चले गये । ७१-८४ । उस वागदण्ड द्वारा वार्डिल राजा का भी नाश हुआ । अनन्तर 'मेकल' नामक नवें गुरुण्ड राजा ने जो महान् शक्तिशाली था, अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक न्याय द्वारा बारह वर्ष तक राज्य का उपभोग किया । उस समय आर्यों के प्रदेश में न्यायप्रिय शासनाधिकार सर्वत्र विस्तृत हो रहा था । तदुपरांत लाईल नामक दशवें गुरुण्ड राजा ने भी उस प्रकार धर्मपूर्वक बत्तीस वर्ष तक राज्य किया । लाईल राजा के स्वर्गीय होने पर मकरन्द वंश के मौन आर्यों ने, जो हिमलाय के शिखर निवासी एवं वस्त्र वर्ण, सूक्ष्मनासा, गोल एवं विस्तृत मस्तक वाले होते हैं, एक लाख की संख्या में दिल्ली पहुँचकर उनमें श्रेष्ठ 'अर्जिक' ने उस सिहासन पद को विभूषित किया ।

आर्जिको नाम वै राजा तेषां तत्र बभूव ह । तस्य पुत्रो देवकणो गङ्गोत्रगिरिमूर्द्धनि ॥१०
 द्वादशाब्दं तपो घोरं तेषे राज्यविवृद्धये । तदा भगवती गङ्गा तपसा तस्य धीमतः ॥११
 स्वरूपं स्वेच्छया प्राप्य ब्रह्मलोकं जगाम ह । कुबेरश्च तदागत्य इत्वा तस्मै महत्पदम् ॥१२
 आर्यजिं मण्डलीकं च तत्रैवन्तरधीन्तत । मण्डलीको देवकणो बभूव जनपालकः ॥१३
 षष्ठ्यचब्दं च कृतं राज्यं तेन राजा महीतते । तदन्वयेऽष्ट भूपाश्च ब्रह्मदेवपूजकाः ॥१४
 द्विशतःब्दं पदं कृत्वा स्वर्गलोकमुपादयुः । एकादशश्च यो मौनः पञ्चगारिरिति श्रुतः ॥१५
 चत्वारिंशत्त्र्य वर्षाणि राज्यं कृत्वा प्रयत्नतः । स्वर्गलोकं गतो राजा पञ्चगौर्मरणं गतः ॥१६
 एवं च मौर्यजातीयैः कृतं राज्यं महीतते ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलण्डापरपरयायि कलियुगीयेतिहाससमुच्चये
 गुरुण्डमौनराज्यपर्णनं नाम द्वार्चिंशोऽध्यायः । २२

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

सूत उवाच

वैक्रमे राज्यविगते चतुष्पष्टचुत्तरं मुने । द्वार्चिंशदब्दशतकं भूतनन्दिस्तदा नृपः ॥१

गंगोत्री पर्वत के निवासी उसके पुत्र देवकर्ण ने उस राज्य को विस्तृत करने की इच्छा से बारह वर्ष तक घोर तप किया, जिसके प्रभाव से भगवती गंगा ने अपने स्वरूप की प्राप्तिकर स्वेच्छया ब्रह्मलोक की यात्रा की । पश्चात् कुबेर ने उस राजपुत्र के पास जाकर उसे 'आर्यमण्डलीक' नामक महान् पद प्रदान किया । उसी दिन से राजा देवकर्ण की मण्डलीक नाम से स्वातित हुई । इस भूमण्डल पर उस राजा ने साठ वर्ष तक राज्य किया । उनके बंशज आठ राजाओं ने क्रमशः उस राजपद को दो सौ वर्ष तक अलंकृत कर पश्चात् स्वर्ग की यात्रा की । उसने ग्यारहवें पञ्चगारि नामक मौन राजा के प्रयत्नं पूर्वक चालीस वर्ष तक राज्य करने के उपरांत पञ्चगों द्वारा मृतक होकर स्वर्ग की यात्रा की । इस प्रकार इन मौन जातीयों का इस भूमण्डल पर राज्य करने का वर्णन कर दिया गया । ८५-९७

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय में गुरुण्ड
 एवं मौन राज्य का वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त । २२।

अध्याय २३

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

सूत जी बोले—मुने ! बाईस सौ चौंसठ वर्ष विक्रम काल के व्यतीत होने पर भूत नन्दि नामक

कुबेर्यक्षकान्मौनान्धनधान्यसमन्वितान् । सार्द्धलक्षान्कलैघोरैर्जित्वा तान्युद्धकारिणः ॥२
 किल्किलयां स्वयं राज्यं नागवंशेश्वकार ह । आग्नेय्यां दिशि विस्थाता पुण्डरीकेण निर्मिता ॥३
 पुरी किलकिला नाम तत्र राजा द्भूद ह । पुण्डरीकादयो नागास्तस्मिन्राज्यं प्रशासति ॥४
 गेहे गहे जनैस्त्वर्वेः पूजनीया वभूविरे । स्वाहा स्वधा वषट्कारो देवपूजा भटीतले ॥५
 त्यक्त्वा देवानुपागम्य संस्थिता मेरसूर्द्धनि । शक्नाजया कुबेरस्तु शूकभान्यं समन्ततः ॥६
 यक्षैः षडंशानादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभुः । मणिस्वर्णादिवस्तूनि मौनराज्येषु धानि वै ॥७
 दत्तानि तानि कोशेषु युनदेवश्वकार ह । मण्डलीकं पदं तेन सत्कृतं भूतनन्दिना ॥८
 शताद्धं तु ततो राजा शिशुनन्दिर्भूव ह । नागपूजां पुरस्कृत्य तिरस्कृत्य सुरानभुवि ॥९
 चक्कार राज्यं विंशाबदं यशोनन्दिस्ततोऽनुजः । भ्रात्रासतं स्वयं प्राप्तो ज्ञागपूजापरायणः ॥१०
 पञ्चविंशतिवर्षणि स च राज्यमचीकरत् । ततस्तननयो राजा स वभूव प्रवीरकः ॥११
 एकादशाब्दं तदाज्यं कर्मभूस्यां प्रकीर्तितम् । कदाचित्स च बाह्लीके सेनया सार्द्धमागतः ॥१२
 तत्र तैरभवद्युद्धं पैशाचैस्त्वेच्छदारुणैः । मासमात्रान्तरे म्लेच्छा लक्षसंख्या मृतिं गताः ॥१३
 तथा षष्ठित्तहस्तान्न नागभक्ता लयं गताः । बादले नाम तद्राजा रोमज्जस्थो महाबलः ॥१४
 यशोनन्दिनमाहूय ददौ जालवतीं सुताम् । गृहीत्वा म्लेच्छराजस्य सुतां गेहमुपागतः ॥१५

राजा ने उस समय उन धन-धान्य पूर्ण मौन वंशजों को, जिन्हें कुबेर के यक्ष कहा जाता है, और डेढ़ लाख की संख्या में उपस्थित थे, उन्हें पराजित कर शासन-सूत्र को अपने अधीन किया। उस समय किल्किला में नाग वंश वाले राज्यपद पर प्रतिष्ठित थे जो आग्नेय दिशा में पुण्डरीक द्वारा निर्मित होकर प्रस्थात पुरी थी। पुण्डरीक आदि नाग वहाँ पर राजा हुए। उनके राज्य करते हुए घर-घर में सभी पूजनीय होने लगे थे। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार एवं देव की पूजा प्रारम्भ हो गयी थी। देवताओं को छोड़कर लोग मेरुपर्वत के शिखर पर स्थापित होने लगे थे। शक्र की आशा से कुबेर तो चारों तरफ से शूक धान्य यक्षों द्वारा ग्रहणकर षडंश को देवताओं को दे दिये। यौनराज्य में जो मणि एवं स्वर्णादि की वस्तुएँ थीं सबको कोशों में दे दिया। मण्डलीक के पद की सृष्टि कर भूतनन्दि द्वारा उसका सत्कार किया गया। उन्होंने पचासवर्ष तक राज्य किया। इसके बाद शिशुनन्दि नाम के राजा हुए। उन्होंने नागों की पूजा करके देवताओं का तिरस्कार करके बीस वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद उनके छोटे भाई नाग की पूजा करने वाले यशोनन्दि ने राज्य किया। उन्होंने पचीसवर्ष तक राज्य किया। इसके बाद प्रवीरक नाम का उनका पुत्र राजा हुआ। वह ग्यारहवर्ष तक इस कर्मभूमि में राज्य किया। एक बार बाह्लीक प्रदेश में सेना समेत आकर उस राजा ने उन पिशाच म्लेच्छों के साथ घोर युद्ध किया, जिससे एक लाख म्लेच्छों का निधन हुआ। और साठ सहस्र नाग भक्तों की भी मृत्यु हुई। उन्हीं दिनों रोम देश के राजा बादल ने जो अत्यन्त पराक्रमी था। १-१४। यशोनन्दि को बुलाकर उन्हें अपनी जालमती नामक पुत्री सौंप दी। अनन्तर म्लेच्छराज की उस पुत्री को लेकर वे अपने घर लौट आये। कुछ समय के उपरान्त दोनों के

गर्भे जातस्ततस्तस्यां बभूव तनयो बली । बाह्लीको नाम विद्यातो नागपूजनतत्परः ॥१६
 तदन्वये नृपः जाता बाह्लीकाश्र ब्रयोदश । चतुशशतानि वर्षाणि कृत्वा राज्यं मृति गताः ॥१७
 अयोमुखे च बाह्लीके राज्यमन्त्र प्रशासति । तदा पितृगणास्तर्वेऽ कृष्णचैतन्यमाययुः ॥१८
 नत्वोऽचुर्दचनं तत्र भगवञ्छृणु मे वचः । वयं पितृगणा भूपैर्नागिवंश्यैर्निराकृतः ॥१९
 श्राद्धतर्णिकर्माणि तैर्वयं वर्दितास्सदा । पितृवृद्धात्मोमवृद्धिस्ततो देवाश्र वर्द्धनाः ॥२०
 देवदृद्धाल्लोकवृद्धिस्तस्माद्ब्रह्मा! प्रजापतिः । ब्रह्मवृद्धात्परं हर्षं गेहे गेहे जने जने ॥२१
 अतोऽस्मान्नरक्ष भगवन्नप्नजाः पराहि सनातनीः । इति श्रुत्वा वचस्तेषां यज्ञांशो भगवान्हरिः ॥२२
 पुष्यमित्रं धर्मस्तरमःर्यदंशदिवर्द्धनस् ॥२३

जातप्रात्रः स वै बालः षोडशाद्वयोऽभवत् । अयोनियोनिभूतांस्तानयोमुख पुरस्सरान् ॥२४
 जित्वा देशान्निराकृत्य स्वयं राज्यं गृहीतवान् ! यक्षा शिवांशतो जातो विक्रमो नाम भूपतिः ॥२५
 शकान्नान्धर्वपक्षीयाऽन्नित्वा पूज्यो बभूव ह । नागपक्षांस्तथा भूपान्गोलकास्यान्भयङ्करान् ॥२६
 पुष्यमित्रस्तदा जित्वा सर्वपूज्योऽभवद्भुवि । सप्तविशच्छतं वर्षं द्विसप्तत्युत्तरं तथा ॥२७
 राज्यं विक्रमतो जातं समाप्तिमगमत्तदा । पुष्यमित्रे राज्यपदं प्राप्ते समभवत्तदा ॥२८
 शतवर्षं राज्यपदं तेन धर्मात्मना धृतम् । अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ॥२९

संयोग द्वारा एक बलवान् पुत्र की उत्पत्ति हुई, जो बाह्लीक नाम से प्रख्यात एवं नाग देवों का उपासक था । उसके वंश में उत्पन्न होकर तेरह बाह्लीक राजाओं ने क्रमशः चार सौ वर्ष तक राज्य करते के अनन्तर अपनी देह का परित्याग किया । अधोमुख नामक बाह्लीक के शासनाधिकार के समय पितरणों ने कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा— भगवन् ! आप हम लोगों की कुछ प्रार्थना सुनते की कृपा करें— नाग वंशीय राजाओं ने हम लोगों को निकाल दिया है । श्राद्ध और तर्पणरूप कर्मों द्वारा हम लोगों की सदैव वृद्धि होती रही है । क्योंकि पितरों की वृद्धि द्वारा सोमवृद्धि सोमवृद्धि भे देवों की वृद्धि, देववृद्धि द्वारा लोक की वृद्धि, और उसके द्वारा प्रजापति ब्रह्मा की वृद्धि होती है एवं ब्रह्मा की वृद्धि से अनेक घरों के प्रत्येक प्राणी सुखी-जीवन व्यतीत करते हैं । इसलिए भगवन् ! हम सनातनी प्रजाओं की रक्षा कीजिये । इसे सुनकर विष्णुरूप भगवान् यज्ञांशदेव ने आर्यवंश के वृद्धर्यथं धर्ममूर्ति पुष्यमित्र के यहाँ पुत्ररूप में जन्मग्रहण किया । उत्पन्न होते ही वह बालक आठ वर्ष के बालक की भाँति दिखाई देने लगा । उस अयानिज बालक ने योनिद्वारा उत्पन्न उन अयोमुख नामक आदि बाह्लीक राजाओं को पराजित करके देश से निकाल दिया और स्वयं उस राज्य का शासनाधिकार अपनाया । जिस प्रकार शिवांश से उत्पन्न होकर राजा विक्रमादित्य ने गन्धर्व पक्ष के समर्थक शकों को पराजितकर दिया था और स्वयं सर्वपूज्य हुए, उसी भाँति उस समय राजा पुष्यमित्र ने भीषण एवं गोल मुख वाले उन नागवंशीय राजाओं को पराजित किया और स्वयं सर्वपूज्य हुए । राजा पुष्यमित्र के राज्यपद प्राप्ति के समय विक्रम काल का सत्ताईस सौ बहतर वर्ष व्यतीत हो चुका था । १५-२८। उस धर्ममूर्ति ने सौ वर्ष तक राज्यपद को सुशोभित किया था । उसी राजा ने अपने राजकाल के समय अयोध्या, मथुरा, माया

पुरी द्वारवती तेन रक्षा च पुनरुद्धृताः । कुरुस्करपद्मानि क्षेत्राणि विविधानि च ॥३०
 नैमिषोत्पलवृन्दानां बनजेत्राणि भूतले । नानातीर्थानि तेनैव स्थापितानि समन्ततः ॥३१
 तदा कलिः स गन्धर्वो देवतापितृदूषकः । ब्राह्मणं वपुरास्थाय पुष्यमित्रमुपागमत् ॥३२
 नत्वोवाच प्रियं वादयं शृणु भूप दयापरं । आर्यदेशो पितृगणाः पूजार्हाः श्राद्धतर्पणैः ॥३३
 अज्ञानस्मिति तज्ज्ञेयं भुवि यत्पितृपूजनम् । मृता ये तु नरा भूमौ पूर्वकर्मनशालुगाः ॥३४
 भवन्ति देहवन्तस्ते चतुराशीतिलक्षणाधा । छद्मना भयदेवेन पितृपूजा विनिर्मिता ॥३५
 वृथा श्रमं वृथा कर्म नृणां च पितृपूजनम् । इति श्रुत्वा वन्दो धरें विहस्याहूः महीपतिः ॥३६
 भवान्मूर्खो महामूढो न जानीष परं फलम् । भुदर्लोके न ये दृष्टाः शून्यभूताश्च भास्वरः ॥३७
 गे तु ते वै पितृगणाः पिण्डरूपविमानगाः । सत्पुत्रैश्च विधानेन पिण्डदानं च यत्कृतम् ॥३८
 तद्विमानं न भोजात सर्वानन्दप्रदायकम् । अब्दमात्रं स्थितिस्तेषां पिण्डपाद्यसरूपिणाम् ॥३९
 गीतास्त्रादशकाध्यायैः सप्तशत्याश्चरित्रकैः । पावितं यत्तु वै पिण्डं त्रिशताब्दं च तत्स्थितिः ॥४०
 श्राद्धतर्पणहीना ये दृश्यन्ते मानवा भुवि । ते सर्वे नारका ज्ञेयाः कुलमेकोत्तरं शतम् ॥४१
 श्राद्धकर्म भहानर्धमः श्राद्धोऽयं सर्वकारणम् । इति श्रुत्वा स गन्धर्वः कलीराजोऽन्नं देहिनाम् ॥४२
 नत्वोवाच नृपश्चेष्ठं प्रसन्नवदनो हि सः । सदा भव ममाशु त्वं तवाहं नृप किङ्करः ॥४३

(हरिद्वार), काशी, कांची, अवन्तिका और द्वारकापुरी नामक तीर्थ स्थानों का पुनरुद्धार किया था । उन्होंने ही इस भूमण्डल पर चारों ओर कुण, सूकर (वाराह) पद्म नामक विविध क्षेत्र नैमिषारण्य उत्पलारण्य एवं वृन्दावन और अनेक तीर्थों की स्थापना की थी । उस समय देवता तथा पितरों के निंदक कलि ने गन्धर्वसमेत ब्राह्मणवेद धारणकर राजा पुष्यमित्र के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर नमस्कार पूर्वक उनसे कहा—दयालु राजन् ! कुछ मेरी बात सुनने की कृपा कीजिये—आर्य प्रदेशों में श्राद्ध-तर्पण द्वारा पितरों की पूजा का जो एक महान् क्रम चला आ रहा है, मैं उस उचित नहीं समझता । क्योंकि इस पृथ्वी पर पितरों की पूजा करना अज्ञानता प्रकट करना है, इसलिए कि इस कम्पक्षेत्र में जिस मनुष्य की परलोक यात्रा होती है, वे वहाँ जाकर चौरासी लाख योनियों की शरीर क्रमणः प्राप्त करते रहते हैं । अतः देवों ने इस पितृ-पूजा का क्रमेण पूर्ण प्रचार किया । क्योंकि पितृ-पूजन के निमित्त किये गये मनुष्यों के श्रम एवं कर्म व्यथ हैं । इस सुनकर राजा ने हंसकर कहा—आप सूखे ही नहीं महामूढ़ हैं, इसलिए उस उत्तम फल की प्राप्ति आप नहीं जान सकते हैं । भूवलोक में शून्य-भूत एवं भास्वर रूप जो दिखाई पड़ते हैं, वे पिण्डरूप विमान पर सुशोभित पितृगण हैं । सत्पुत्रों द्वारा सविधान दिये गये पिण्ड दान आकाश में पहुँचकर सभी प्रकार के आनन्दप्रदायक विमानरूप हो जाते हैं । पश्चात् वे विमान जो पायस पिण्ड द्वारा निर्मित होते हैं पूरे वर्ष तक वहाँ स्थित रहते हैं । गीता के अठारह अध्याय और सप्तशती (दुर्गाजी) के चरित्र पाठ द्वारा पवित्र किये गये पिण्डदान विमानरूप में वहाँ तीन सौ वर्ष स्थित रहते हैं । इस पृथ्वी तल पर जो मनुष्य श्राद्धतर्पण कर्म से वर्जित होते हैं, उनके वंश के एक सौ एक पीढ़ी के लोग नारकीय होते हैं । अतः श्राद्ध कर्म महान् धर्म है, क्योंकि वही समस्त का कारण है । इसे सुनकर गन्धर्वसमेत राजा कलि ने प्रसन्न होकर नमस्कार पूर्वक १२९-४२। नृप श्रेष्ठ राजा पुष्यमित्र से कहा—नृप ! मैं आप का सेवक हूँ, मेरी इच्छा है कि आप मेरे मित्र हों । इससे आपका कलिमित्र पुष्य-

कलिमित्रः पुष्पमित्रो भवान्भुवि भवेत्सदा । यथा दिक्कनराजस्य वैतालस्य च वै सखा ॥४४
 सर्वकार्यकरोऽहं वै तथा तब न संशयः । इत्युक्त्वा च नृपं धीरं समादाय स वै कलिः ॥४५
 सप्तद्विपास्तथा खण्डान्नभोमार्गाननेकशः । स्वपृष्ठस्थाय राज्ञ च दर्शयामास वीर्यवान् ॥४६
 आर्यधर्मं कलौ स्थाप्य नष्टश्रूतं स वै नृपः । त्यक्त्वा प्राणांश्च यज्ञांशे तेजस्तस्य समाप्तम् ॥४७
 आनन्ददेशोद्भवो राजा सुगदो नाम वीर्यवान् । दिना भूपं च तं देशं दृष्ट्वा राज्यमचीकरत् ॥४८
 पिंशदब्दं पदं तेन कर्मभूम्यां च सत्कृतम् । तदन्वये षष्ठिनृपा बभूवुर्बहुमार्गिणः ॥४९
 पुष्पमित्रगते राज्ये दशोन्नरशतत्रयम् । तस्मिन्काले लयं जग्मुश्वदान्ध्रदेशनिवासिनः ॥५०
 शताद्वार्ष्विं ततो भूमिर्विना राजा बभूव ह । तदा क्षुद्रा नरा लुब्धा लुण्ठिताश्रौदराहृणैः ॥५१
 दारिद्रमगमन्धोरं विना स्वर्णं च भूरभूत् । पुनर्देवश्च भगवान्नार्थितस्तानुवाच ह ॥५२
 देशो कौशलके ज्ञातः सूर्यांशाच्च महीपतिः । राक्षसारिरिति ख्यातो देवमार्गपरायणः ॥५३
 समाज्ञया स वै राजा भविष्यति महीतले । इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुर्देवलोकानुपागमत् ॥५४
 राक्षसारिन्योध्यायां स्थापयामासुरेव तम् । आनन्दराज्ञे च यद्द्रव्यं राक्षसैश्च समाहृतम् ॥५५
 तद्द्रव्यं राक्षसाङ्गत्वा ग्रामे ग्रामे चक्रार सः । तारथातोरष्टमूल्यं सुवर्णं भुवि तत्कृतम् ॥५६
 आरथतोः शतं मूल्यं राजतं तेन वै कृतम् । ताम्रथातोः पञ्चमूल्यमारथातोश्च तत्कृतम् ॥५७

मित्र नाम इस भूमण्डल में सदैव स्थापित रहेगा । जिस प्रकार राजा विक्रमादित्य के मित्र वैताल उनके सभी कार्य सुसम्पन्न करते थे, उसी में मैं आपकी सेवा पूर्वक समस्त कार्यों को पूरा करूँगा, इतना कहकर उस पराक्रमी कलि ने उस धीर गम्भीर राजा को अपनी पीठ पर बैठाकर आकाश के मार्गों द्वारा उन्हें सातों द्वीपों नव खण्डों के दर्शन कराया । राजा पुष्पमित्र ने कलि के समय सभी प्रदेश में नष्ट प्राय उस आर्य-धर्म का पुनः विस्तृत प्रचार किया । पश्चात् शरीर परित्याग करने पर उनका तेज यज्ञांश में विलीन हुआ । उस समय आंध्र देशीय एवं पराक्रम शाली राजा सुगद ने राज्य के न रहने पर उस राज्य को अपने अधीन कर उसका उपभोग किया । इस कर्मभूमि क्षेत्र में बीस वर्ष तक राज्य पद सुधोभित करने के उपरांत उनकी परलोक यात्रा हुई । अनन्तर उनके वंश के साठ राजाओं ने जो अनेक मार्गावलम्बी थे, क्रमशः उस सिंहासन को सुधोभित किये । पुष्पमित्र राज्य के च्युत होने के तीन सौ दश वर्ष व्यतीत होने पर उसी समय आंध्र देश निवासी राजा का भी विनाश हुआ था । पश्चात् पचास वर्ष तक यह पृथिवी विना राजा की ही रही । उस समय चोर डाकुओं ने छोटे-छोटे मनुष्यों को लूटकर अत्यन्त दुःखी बना दिया था, उससे धोर दरिद्र का आगमन हुआ—पृथ्वी सुवर्ण हीन हो गई । उसे देखकर देवों ने पुनः भगवान् से प्रार्थना की । प्रसन्न होकर भगवान् ने उन देवों से कहा—कौशल देश में सूर्यांश द्वारा ‘राक्षसारि’ नामक राजा है, जो अत्यन्त देवों का अनुयायी है मेरी आज्ञा से वही नदीतल का राजा होगा । इतना कहकर विष्णु ने अन्तर्हित होकर देवलोक की यात्रा की । अनन्तर उस राक्षसारि को अयोध्या के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया । उस राजा ने आंध्रप्रदेश में राक्षसों द्वारा अपहृत किये गये द्रव्यों को पराजित राक्षसों से प्राप्तकर प्रत्येक ग्रामों में मोतियों का आठ सुवर्ण मूल्य निर्धारित किया । ४३-५६ । उसी प्रकार पीतल का सौ मुद्रा चाँदी, ताँबे का पाँच पीतल, नागधातु का पाँच ताँबे का मूल्य निश्चित

नागधाता: दञ्चमूल्यं भुवि तेनैव निर्मितम् । तान्नं पवित्रमधिकं नागो वद्धस्तथोत्तमः ॥५८
 लौहधातोः शतं मूल्यं वज्ञोऽसौ तेन सत्कृतः । शतार्द्धाल्बं महीं भुक्त्वा सूर्यलोकमुपाययौ ॥५९
 तदन्वये षष्ठिनृषा जाता वेदपरायणाः । पुष्यमित्रगते राज्ये ढाब्दे सप्तशते नते ॥६०
 कौशलान्वयसम्भूता शूपाः स्वर्गमुपाययुः । शतार्द्धाल्बं ततो भूमिर्षण्डलीकं नृपं विना ॥६१
 क्षुद्रभूपांश्र बुभुजे देशो देशे च भार्गवः । ततो वैदरदेशीयो नाम्ना भूपो विशारदः ॥६२
 आर्यदेशमुपागम्य लक्ष्मैन्यसम्बन्धितः । क्षुद्रभूपान्वशीकृत्य मण्डलीको द्वैश्रव ह ॥६३
 नानाकलैश्च कर्णाणि विचित्राणि महीतते । द्वासे ग्रामे ज्ञाराश्चकुर्वर्णसङ्करकारकाः ॥६४
 बहुक्षत्रमयो वर्जो नाममात्रेण दृश्यते । वैश्यप्राया नरा आर्याः शूद्रप्रायाश्च कारिणः ॥६५
 तदाष्टे मनुजाश्चासन्नाममात्रं सुरार्चकाः । षष्ठिवर्षं पदं तेन कर्मभूम्यां च सत्कृतम् ॥६६
 ततो नृपं महीं प्राप्ताः षट्सङ्ख्यास्तु तदन्वयः । पुष्यमित्रगते राष्ट्रे शतषोडशहायनी ॥६७
 वैदुरा निधनं जग्मुः कलिकाले भयानके । चतुशशतानि वर्षाणि क्षुद्ररूपा च भूरभूत् ॥६८
 तत्प्रश्नान्वेष्ये राष्ट्रे कालमाली नृपोऽभवत् । क्षुद्रभूपान्वशीकृत्यस्वयं राजा बभूव है ॥६९
 यमाभूयः शुवि त्वष्टा नगरी यमुनातटे । निर्मिता योजनायातु कालकालेति विक्रुता ॥७०
 तत्रार्यदेश भूपानां पूज्यो राजा स चाभवत् । देवान्पितृन्स्तिरसङ्कृत्य प्रेतपूजां जने जने ॥७१

किया । पश्चात् उसी क्रम से नागवंश का भी । और लोहे का सौ वंश मूल्य स्थापित किया । इस भाँति उसने पचास वर्ष तक राज्य पद सुशोभित करनेके उपरांत सूर्यलोक की यात्रा की । अनन्तर उनके कुल के साठ राजाओं ने क्रमशः उस राजपद को सुशोभित करते रहे । पुष्यमित्र के राज्य काल के सात सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर कौशलवंशीय राजाओं ने स्वर्गरोहण किया, जिससे पचास वर्ष तक यह पृथ्वी मण्डलीक राजा से वन्नित रही । भार्गव ! उस समय छोटे-छोटे राजा पृथ्वी पर राज कर रहे थे । उसी बीच वैदर देश के राजा ने आर्यदेश में पटुँचकर अपने लाख सैनिकों द्वारा उन छोटे-छोटे राजाओं को अपने अधीनकर मण्डलीक पद को अपनाया । उस राजा ने इस भूमण्डल पर अनेक भाँति के कलापूर्ण एवं विचित्र कार्यों के सुसम्पन्न होने के लिए प्रत्येक ग्रामों में ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त किया, जो वर्णसंकर के प्रचारक थे । उस राज काल में ब्राह्मण-क्षत्रियवर्ण नाममात्र का रह गया था । आर्य मनुष्य वैश्य और शूद्र राजगीर हो गये थे । उसके राज्य में मनुष्य नाममात्र के देवपूजक थे । इस प्रकार उसने इस कर्म भूमि प्रदेश में साठ वर्ष तक उस सिंहासन को अपनाया था । पश्चात् उसके वंश के क्रमशः छे राजाओं ने उस पद को अपनाकर राज्य किया । पुष्यमित्र राजा के सोलह सौ वर्ष व्यतीत हो जाने पर उस भीषण कलिकाल के समय दूर राजाओं का समूल विनाश हो गया । पुनः छोटे-छोटे राजाओं ने पृथक्-पृथक् अपना आधिपत्य स्थापित किया । चार सौ वर्ष के उपरांत नैवध राज्य के प्रदेश में कालमाली नामक राजा ने राजसिंहासन को सुशोभित किया । उसने अनेक छोटे राजाओं को अपने अधीन करने के उपरांत उस नगर में अपनी राजधानी स्थापित की, जो यमुना नदी के तट पर त्वष्टा द्वारा एक योजन में विस्तृत एवं ‘काल-काला’ नाम से प्रस्तुत थी । ५७-७०। आर्य राजाओं पर अपना आधिपत्य स्थापित करके उसने देवों तथा पितरों के अपमान पूर्वक प्रत्येक जनों में प्रेत-पूजा का प्रचार किया । इस प्रकार

कालमाली च छृतवान्देशनैषधसंस्थितः । द्वार्त्रिशूद्धराज्यं तद्भूव जनयीडनम् ॥७२
 तदन्वये षष्ठिनृपः बभूवः प्रेतपूजकाः । शताब्दांतमनूद्राज्यं तेषां नैषधदेशिनाम् ॥७३
 सहस्राब्दं तु तत्पश्चात्कुद्धभूपा मही ह्यभूत् । सुराचर्वनं वेदमार्यः श्रुतमात्रश्च दृश्यते ॥७४
 पुष्यमित्रगते राज्ये चैकर्त्रिशच्छते कलौ । द्वार्त्रिशदुत्तरे चैव तदा देवाश्र दुःखिताः ॥७५
 कृष्णचैतन्यशागम्य नत्वोचुर्वचनं प्रियम् । भगवन्कलिकालेऽद्य वर्णाश्रित्वारिभूतले^१ ॥७६
 भ्रष्टाचाराः प्रेतमयाः शताद्वाब्दिप्रजीविनः । देवान्पितृस्तिरस्तृत्य पिशाचान्पूजयन्ति वै ॥७७
 ग्रामे ग्रामे च कुम्भानि पूजितानि नरैर्भुविः । दृश्यन्तेऽस्माभिरद्येव दुःखिताश्च नरा भ्रशन् ॥७८
 भूतप्रेतपिशाचाश्च डाकिनीशाकिनीगणाः । स्वपूजाभिर्मदान्धाश्च निन्दयन्ति सुरान्पितृन् ॥७९
 अतोऽस्मान्दुर्बलान्विद्धि सबलान्पूतनाश्यकान् । कृपया पाहि नः स्वामिद्धरणागतवत्सल ॥८०
 इति श्रुत्वा स यज्ञांशो नदीहोपवने स्थितः । नम्रभूतान्सुरान्प्राह मागधे तु महीपतिः ॥८१
 पुरञ्जयो ब्रह्मपरस्तस्य पत्नी पुरञ्जनी । मदाज्ञया तथोः पुत्रे भविष्यति महाबलः ॥८२
 विश्वस्फूर्जिरिति ख्यातो ब्रह्मार्गपरो गुणी । इत्युक्तवचने तस्मिन्नार्भं धर्ते पुरञ्जनी ॥८३
 दशमासान्तरे जातो विश्वस्फूर्जिर्महाबलः । जातमात्रे सुते तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी ॥८४
 उष्यमित्रो यथा चासीद्वृण्धर्घमप्रवर्तकः । तथायां बालको जातो ब्रह्मार्गपरो बली ॥८५
 करिष्यति परो वर्णान्कलिन्द्यदुमद्वकान् । प्रजाश्र ब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः ॥८६

उस कालमाली राजा ने प्रजाओं को पीड़ित करते हुए बत्तीस वर्ष तक राज्य किया । तदनन्तर उसके बंशज साठ राजाओं ने जो नैषध देश के निवासी थे, क्रमशः सौ वर्ष तक राज्य किया । पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक पुनः पूर्व की भाँति छोटे-छोटे राजाओं ने पृथक्-पृथक् शासन सूत्र ग्रहण किया । उस समय देवों-की पूजा, वैदिकधर्म केवल नाममात्र सुनाई गङ्गता था । पुष्यमित्र के राज्यकाल के इकतीस सौ वर्ष व्यतीत हो जाने के उपरांत बत्तीसवें के अन्त समय में देवों ने दुःख प्रकट करते हुए कृष्णचैतन्य के पास जाकर नमस्कार पूर्वक प्रियवाणी द्वारा उनसे कहा—भगवन् भूमडल में इस समय चारों वर्ण झाँट हो गये हैं, जो प्रेतमय जीवन व्यतीत करते हुए पचास वर्ष तक ही जीवित रहते हैं । वे लोग पृथ्वी में चारों ओर देवों एवं पितरों के अपमानपूर्वक पिशाचों की ही पूजा करते हैं । इस प्रकार प्रत्येक ग्रामों में मनुष्यों द्वारा वही निन्दित पूजन चल रहा है । उसी लिए वे अत्यन्त दुःखी भी है यह हम लोगों ने भली भाँति देखा है, और भूत-प्रेत, पिशाच, डाकिनी एवं शाकिनीगण अपनी पूजा से मदान्ध होकर देवों और पितरों की निन्दा करते हैं । अतः स्वामिन् शरणागत वत्सल ! कृपाकर हमारी रक्षा कीजिये, क्योंकि वे सब सबल और हम लोग सभी निर्बल हैं । इसे सुनकर नदीहा के उपवन में स्थित यज्ञांशदेव ने विनयविनम्र देवों से कहा—मगध देश के राजा पुरञ्जय और उसकी पत्नी पुरञ्जनी ब्रह्म की उपासना कर रहे हैं, मेरी आज्ञावश उनके संयोग से एक महाबली पुत्र की उत्पत्ति होगी, जो ‘विश्व स्फूर्जि’ के नाम से प्रख्यात, ब्रह्मार्गपरायण एवं गुणी होगा । इसके अनन्तर पुरञ्जनी ने गर्भ धारण किया, जिससे दशवें मास में महाबली विश्वस्फूर्जि नामक राजकुमार का जन्म हुआ । ७१-८४। उस राजकुमार के जन्म ग्रहण करने के समय आकाश वाणी हुई—वर्णधर्म के प्रवर्तक राजा पुष्यमित्र की भाँति यह बली बालक भी वर्णधर्म के प्रचार पूर्वक ब्रह्मार्ग का अनुगामी होगा । यदुवंशियों, तथा भद्रदेश निवासियों में वर्णव्यवस्था

दीर्घवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्या: स वै पुरम् । इत्याकाशाद्यचः श्रुत्वा स नृपस्तु पुरञ्जयः ॥८७
 ददौ दानं क्षुधार्तेभ्योऽतिथिभ्यस्परिन्छदः । अष्टौ वर्षसहस्राणि चाष्टवर्षशतानि च ॥८८
 कर्मभूम्यां कलौ प्राप्ते व्यतीतानि तदा मुने । विश्वस्फूर्जिर्नृपश्चासीन्महादुद्गो महाबलः ॥८९
 क्षद्रभूयान्वशीकुत्य सर्ववर्णग्निरांस्तदा । स्थापयामास वै ब्रह्मे वर्णे ब्रह्मपरायणे ॥९०
 क्षत्रनिट्टच्छ्रद्धका वर्णाः पिशाचाः वर्णसङ्कुरा । गुरुण्डाद्यास्तथा म्लेच्छाः ब्राह्मणास्ते ब्रह्मविरे ॥९१
 सन्ध्यातर्पणदेवानां पूजादिविविधाः क्रियाः । चक्षुस्ते वेदविधिना तुल्यभरेजनशीलिनः ॥९२
 षष्ठिवर्षे हृतं राज्यं तेन सम्यक्षृता मुने । तदन्वये नृपाश्रतस्त्वक्षा भुवि विश्रुताः ॥९३
 अयुताब्दान्तरे जाता भद्रुमार्गपरायणाः । तैश्च दत्तानि भागानि यज्ञमध्ये विधानतः ॥९४
 दैत्येभ्यश्च सुरेभ्यश्च तुल्यरूपाणि चागमन् । विस्मिताश्च सुरास्तर्वे यज्ञांशं शरणं युः ॥९५
 तदुक्तं कारणं ज्ञात्वा शक्रपुत्र उवाच तान् । वेदो नारायणः साक्षाद्विवेकी हंसरूपवान् ॥९६
 नृणां च युगमेदेन वर्णमेदं चकार ह । सद्गुणो ब्राह्मणो वर्णः क्षत्रियस्तु रजोगुणः ॥९७
 तमोगुणस्तथा वैश्यो गुणसाम्यात् शूद्रकः । तृप्तिं यान्ति पितुर्वृद्दा ब्राह्मणैः क्षत्रियैः सुराः ॥९८
 वैश्यैश्च यक्षरक्षांसि शूद्रैदैत्याश्च दानवाः । एकवर्णे च चत्वारो वर्णाः कायस्थ एव सः ॥९९
 भूतप्रेतपिशाचाद्याः कायस्थैस्तर्पितास्तदा । ब्रह्मवर्णे तु वर्णश्चिस्थिताश्रत्वारि साम्प्रतम् ॥१००

की स्थापना करते हुए कलि के दमन करने वाला यह राजपुत्र उन दुष्ट बुद्धिवाली प्रजाओं को वैदिक मार्ग के अनुयायी करने के उपरांत दुष्ट राजाओं के विनाश-पूर्वक पद्मवतीपुरी की स्थापना करेगा । इस प्रकार की आकाशवाणी मुनकर राजा पुरञ्जय ने क्षुधा पीडितों अतिथियों को वस्त्रादि समेत दान प्रदान किया । मुने ! उस समय कलि के आगमन का आठ सहस्र आठ सौ वर्ष व्यतीत हो चुका था । उस अवसर पर महाबलवान् एवं महाप्रबुद्ध राजा विश्वस्फूर्जि ने छोटे-छोटे राजाओं को अपने अधीनकर सभी वर्ण के मनुष्यों को ब्राह्मण वर्णों में सम्मिलित किया—क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर पिशाच, गुरुण्ड और म्लेच्छ सभी ब्राह्मण हो गये । उन दुल्य भोजियों ने वैदिक विधान द्वारा संध्या, तर्पण एवं देवों की विविध भाँति की पूजाओं को मुसम्पन्न करते हुए अत्यन्त सुखी जीवन व्यतीत किया । मुने ! इस प्रकार साठ वर्ष तक राज्य के सुखोपभोग करने के उपरांत उनके कुल सहस्र राजाओं ने क्रमशः जो इस महिमण्डल में अत्यन्त प्रस्त्यात थे, दशसहस्र वर्ष तक राज्य किया । उन ब्रह्मार्गविलम्ब राजाओं द्वारा यज्ञानुष्ठान में दिये गये भाग को दैत्य और देवगण समान रूप में ग्रहण करते थे । उसे देखकर देवों को महान् आश्चर्य हुआ । पश्चात् उन देवों ने यज्ञांशदेव की शरण जाकर उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदन किया । उसका कारण जानकर शक्रपुत्र (यज्ञांशदेव) ने कहा—वेद साक्षात् नारायण भगवान् हैं । उन्होंने विवेकी हंस-रूप धारण करके मनुष्यों में गुणमेद के अनुसार वर्णमेद की व्यवस्था स्थापित की है—सतोगुण वाले ब्राह्मण, रजोगुण वाले क्षत्रिय, तमोगुण वाले वैश्य, और तीनों गुणों के समान वाले शूद्र कहे गये हैं, जिनमें ब्राह्मणों क्षत्रियों द्वारा पितरवृन्द और देवगण, वैश्यों द्वारा यक्ष राक्षस । ८५-९१ । और शूद्रों द्वारा दैत्य-दानवगण तृप्त होते हैं । एक वर्ण में चारों वर्णों के धर्म की समानता हो जाने से वह वर्ण कायस्थ कहलाया जो सदैव भूत-प्रेत और पिशाचों को तृप्त करते रहते हैं । इसलिए इस समय ब्रह्म,

ब्रह्मशङ्करवर्णोऽयं तेभ्यः पूर्व हि दानवाः । अर्द्धतृप्ता भविष्यन्ति तत्पश्चात्स्वर्गवासिनः ॥१०१
 अतोऽहं च कलौ धोरे युष्मदर्थे महीतले । सौराष्ट्रनृपतेर्गेहं स्वांशाद्यात्म्यामि भोः सुराः ॥१०२
 इत्युक्त्वा स च यज्ञांशः सोमनाथः कलैकया । नाम्ना ब्रूप तद्गेहे सौराष्ट्रनगरीस्थितः ॥१०३
 जित्वा भूपान्त्वयं गज्यं चकाराभिन्नते मुदा । क्षत्रवर्णमयी भूमिस्तदा जाता कलौ युगे ॥१०४
 सोमनाथः स वै यज्ञैः सुरान्सर्वान्तर्यथैः । शताब्दं च छत्रं राज्यं तेन देवप्रसादतः ॥१०५
 तत्य राज्यस्य अन्तर्यामी संवदभवल्लोकविश्रुतम् । तदन्वये सार्द्धशतं भूपात्मासन्सुरप्रियाः ॥१०६
 अयुताद्वान्तरे किञ्चिचदधिके च लुप्तप्रदाः । कर्मभूम्यां कलौ प्राप्ते हायना अयुतत्रयम् ॥१०७
 व्यतीतं च ततो दैत्या दुःखिताः कलिमबुवन् । पुरात्समाभिः शताब्दं च तपसा वै महेश्वरः ॥१०८
 तुष्टीकृतस्तदासम्भ्य भवान्दत्तो हितेन वै । अर्धभर्तं वज्रमयमर्धभागं च कोमलम् ॥१०९
 तवाङ्गं सुन्दरं देव कलेऽस्मानरक्ष दुःखितान् । इति श्रुत्वा च स कलिर्देत्यपक्षविद्वनः ॥११०
 स्वांशाज्जन्म कलौ प्राप्य गुर्जरे देशदारणे । आभोरी सिंहिका नाम सिंहमांसाशना खला ॥१११
 तस्या योनौ समागम्य राहुर्नाम स चाभद्रः । यथा राहुर्नभोमार्ण दारणो हि विघ्नतुदः ॥११२
 तथा राहुः कलेरंशो भुवि जातः सुरन्तुदः । जातमात्रे मुते तस्मिन्भूमिकम्पो महानभूतः ॥११३
 विपरीता ग्रहाः सर्वे जनयन्ति गहन्यम् । तद्वयात्सकला देवास्त्यक्त्वा मूर्तीः समन्ततः ॥११४

वर्ण में चार वर्ण हुए हैं । ये सभी ब्रह्म शंकर वर्ण के हैं । इन सब द्वारा दिये गये यज्ञ-भागों से सबभासे पहले दानव अर्धतृप्त होते हैं, फिर स्वर्गीय देवलोग । अतः देववृन्द ! इस भीषण कलि के समय तुम लोगों के हित के लिए मैं भूमण्डल में सौराष्ट्र राजा के यहाँ आगे अंश से अवतरित होने जा रहा हूँ । इतना कहकर यज्ञांशदेव ने अपनी एक कला द्वारा सौराष्ट्र नगरी के अधीश्वर के यहाँ अवतरित होकर सोमनाथ नाम से प्रव्याप्ति प्राप्त की । उन्होंने सभी राजाओं को पराजित कर रसमुद्र तट पर अपनी राजधानी स्थापित की । उस समय कलियुग में पृथ्वी पर क्षत्रिय वर्ण की अधिकता दिखाई देने लगी । सोमनाथ ने अनेक यज्ञानुष्ठानों की सुसम्पन्नता द्वारा सदैव देवों को तृप्त किया । इस प्रकार उन्होंने देवों के प्रसाद से सौ वर्ष तक उस राजसिंहासन को सुशोभित किया । और उनके राज्यकाल में ही उनके नाम पर संवत् आरम्भ हुआ । पश्चात् उनके कुल के डेढ़ सौ राजाओं ने देवप्रिय होकर दश सहस्र वर्ष तक क्रमशः राज्याधिकार पूर्वक सुखी जीवन व्यतीत किया । इस कर्मभूमि भारत प्रदेश में कलि के तीस सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर दुःखी होकर दैत्यों ने कलि से कहा—पहले हम लोगों ने सौ वर्ष तक महेश्वर की आराधना की थी, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने उसके फलस्वरूप हमें आपको दिया, और आप की शरीर में आधा भाग वज्र की भाँति कठोर और आधे भाग को कोमल बनाया । अतः कलि महाराज ! आप हमारी रक्षा करें । इस समय हमलोग अत्यन्त दुःखी हैं । इसे सुनकर दैत्यपक्ष के समर्थक उस कलि ने अपने अंश से उस दारुण गुर्जर (गुजरात) प्रदेश में सिंहिका नामक आभोरी (अहीरिन) के गर्भ से जो सिंहमांस भक्षण करती थी, जन्म ग्रहण किया । उसका नाम 'राहु' हुआ जिस प्रकार आकाशमार्ग में स्थित होकर राहु चन्द्रमा को पीड़ित करने के नाते विघ्नतद् कहलाता है । १९-११२। उसी प्रकार आह्य की राहु भी कलि अश द्वारा भूतल पर जन्म ग्रहण करने के नाते सुरन्तुद् (देवों को दुःख देने वाला) कहा जाने लगा । उसके जन्म ग्रहण करने के समय महान् भूकम्प हुआ, सभी देवगण प्रतिकूल होकर भयंकर भय की

महेन्द्रं शरणं जग्मुः सुमेरुगिरिमूर्द्धनि । तदर्थे भगवाऽऽकस्तुष्टाव जगदम्बिकाम् ॥११५
 कन्यामूर्तिमयी देवी सुरान्प्राह शिवद्वूरी । मभाङ्गदर्शनादेवः क्षुत्तृद्भ्यां च विना सदा ॥११६
 भद्रवं च ततो यूयं मद्विलोकनतप्तरा: । इति श्रुत्वा तु ते देवा हर्षिताः सम्बूविरे ॥११७
 आशीरेत्तनयो राहुः कृत्वा राज्यं शतं समाः । त्यक्त्वा प्राणान्कलौ लीनोः द्वभूव सुनिसत्तम् ॥११८
 तदन्वये सार्द्धशतम्युताब्दान्तरेभवत् । महामदमतं घोरं चिरकालाद्विनाशितम् ॥११९
 तैः पुनश्चोद्धृतं भूमौ सर्वे म्लेच्छा द्वभूविरे । न देवाश्र न देवाश्र न वर्णाश्र कलौ युगे ॥१२०
 दृश्यन्ते च च मर्यादा कलिकाले तदन्वये । द्विजेषाः तहस्त्राश्र पुनर्खुदमूर्द्धनि ॥१२१
 द्वादशाब्दं प्रयत्नेन देवानाश्राधितुं क्षमाः । अर्दुदाच्च समुद्भूतोराजन्यः खडगचर्नधृक् ॥१२२
 जित्वा म्लेच्छान्त्वुराधर्षान्निश्चाचार्वबली ह्यभूत् । पञ्चयोजनमाना स भूमिरात्मदिवृद्धये ॥१२३
 निर्मितां तेन शुद्धेन नान्ना चार्वपुरी स्मृता । शनैः शनैरार्थकुलं पुनस्तत्र वदर्ज्ज ह ॥१२४
 शताद्वाब्दं प्रयत्नेन तेन राज्यं महत्कृतम् । तदन्वये सार्द्धशतं नृपाश्रासंस्तदामुने ॥१२५
 अयुताब्दान्तरेवीरा म्लेच्छमित्राश्र सङ्कूरा: । म्लेच्छकन्योद्वहा घोरा नाममात्रार्थमार्गाः ॥१२६
 तदा मलयदेशस्थैर्म्लेच्छैर्लक्षप्रमाणैः । आरुदार्यैः समं युद्धमभवल्लोनहर्षणम् ॥१२७

सूचना देने लगे । उस समय समस्त देवों ने अपनी मूर्ति का निवास त्यागकर सुमेरु पर्वत के लिए शिखर पर महेन्द्रदेव की शरण प्राप्त की । इसे सुनकर इन्द्र ने भगवती जगदम्बा की आराधना की । तदनन्तर प्रसन्नतापूर्वक कन्यारूप में प्रकट होकर कल्याणकारिणी भगवती ने देवों से कहा—देववृन्द ! मेरे अंग दर्शन के फलस्वरूप तुम्हें क्षुधा एवं पिपासा का नष्ट नहीं होगा, इसी भाँति सदैव यहाँ स्थित रहकर तुम लोग मेरा दर्शन करते रहो । इसे सुनकर देवों ने सहर्ष उस स्वीकार कर किया । मुनिसत्तम ! वह आभारी (अहीरिन) का पुत्र राहु सौ वर्ष तक राज्य करके अपने प्राण के परित्याग पूर्वक कलि में विलीन हो गया । पश्चात उसके बश में डेढ़ सौ राजाओं ने दश सहस्र वर्ष तक महामद (मुहम्मद) के मृतकों जो घोर एवं चिरकाल में विनष्ट हो गये, अपनाकर राज्य का उपभोग किया । उन्होंने अपने उस मत का पुनः विस्तृत प्रचार आरम्भ किया, जिससे पृथ्वी के सभी लोग म्लेच्छ होने लगे । उस भीषण कलि में उन राजाओं के राजकाल के समय वेद, देव, एवं वर्ण की व्यवस्था का प्रायः लोप हो चला था, और मर्यादा तो एकदम विलीन हो गई थी । उस समय शेष सहस्र ब्राह्मणों ने अर्बुद पर्वत के शिखर पर जाकर सप्रयत्न देवों की आराधना करना आरम्भ किया, जिससे उसी अर्बुद पर्वत से खड़ग एवं चर्म अस्त्रधारी एक राजाओं का समूह उत्पन्न हुआ, जो उन दुर्धर्ष म्लेच्छों पर विजयप्राप्ति पूर्वक बलवान् ‘चार्व’ के नाम से स्थानि प्राप्त की । उन्होंने अपने वंश वृद्धयर्थ पाँच योजन की समतल भूमि पर अपने शुद्ध नाम की एक पुरी का निर्माण कराया । उसी स्थान पर पुनः आर्यकुल की वृद्धि धीर-धीरे होने लगी । उन्होंने वहाँ रहकर प्रयत्न पूर्वक पचास वर्ष तक राज्य किया । मुने ! उसके अनन्तर उनके कुल के डेढ़ सौ राजाओं ने इस भूमण्डल पर राजपद को दश सहस्र वर्ष तक समलङ्कृत किया । पश्चात दश सहस्र वर्ष के उपरांत उन वीरों ने म्लेच्छों से मैत्री स्थापितकर म्लेच्छ कन्याओं के साथ विवाह करना आरम्भ किया, जिससे नाममात्र आर्यों की उत्पत्ति हुई और उस समय आर्यमार्ग के अनुयायी नाममात्र के रह गये थे । उसी बीच मलयदेश के निवासी म्लेच्छों ने एक लाख की संख्या में एकत्र होकर आरुद आर्यों पर

वर्गमात्रान्तरे जित्वा मालवस्था महाबलाः । मण्डलीकपदातैश्च भुक्तमार्यैः समन्ततः ॥१२८
 चत्वारिंशत्सहस्राणि वर्षाणि जगतीतते । म्लेच्छभूपाश्च शतशो बभूदुः स्वल्पजीविनः ॥१२९
 पंचदिंशत्सहस्राणि तेवां संख्या च भूभुजाद् । ये तु पुण्या महीपालाः पूर्वजन्मतपेद्भवाः ॥१३०
 तेषां लीला च मुनिभिः पुराणेषु प्रकीर्तिता । नानासंवत्कराः सर्वे पैशाच्चा धर्मदूषकाः ॥१३१
 नवत्यब्दसहस्राणि व्यतीतानि कलौ धुगे । जाता म्लेच्छमयी भूमिरलङ्घोस्तु जनेजने ॥१३२

इति श्रीभाविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युक्तखण्डपरपर्याये

कलियुगीयेतिहाससमुच्च्यवर्णनं नाम त्रयोविरोध्यायः । २३

अथ चतुर्दिंशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्च्यवर्णनम्

सूत उवाच

ततस्ते सकला दैत्याः कलिना च पुरस्कृताः । कृत्वा च जलदानानि हरिखण्डमुपाययुः ॥१
 मनुजा हरिखण्डे च देवतुल्या महाबलाः । अयुध्यस्तान्महाशस्त्रैरयुताब्दप्रजीविनः ॥२
 दशवर्षान्तरे सर्वे मायायुद्धैः पराजिताः । महेन्द्रं शरणं जगमुहरिखण्डनिवासिनः ॥३

चढाई की जिससे एक वर्ष तक रोमाञ्चकारी युद्ध होता रहा । उस भयानक युद्ध में मालवदेश के महाबली म्लेच्छों ने जो राजा के पैदल सैनिक थे, राजा को पराजित कर आर्यों को उनके देश से निकाल दिया । इस प्रकार उन म्लेच्छ भूपों ने क्रमशः इस भूमण्डल पर चालीस सहस्र वर्ष तक राज्य किया, उन स्वल्पजीवी म्लेच्छ राजाओं की संख्या पच्चीस सहस्र थी । उनमें जो पुण्यात्मा राजा थे, जिन्होंने पूर्व जन्म के तप द्वारा राज्यपद की प्राप्ति की थी, उन्हीं के चरित्रों का वर्णन मुनियों ने पुराणों में किया है । वे अनेक भाँति के संवत्प्रवर्तक पैशाच धर्मे (अर्धम) के विनाशक थे । पश्चात् नव्वे सहस्र वर्ष व्यतीत होने के उपरांत कलि युग में समस्त भूमि म्लेच्छमयी हो गई जिसमें प्रत्येक प्राणी दरिद्रता से पीड़ित हो रहा था । ११३-१३२

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहास समुच्च्य
वर्णन नामक तेर्इसवाँ अध्याय समाप्त । २३।

अध्याय २४

कलियुगीय इतिहाससमुच्च्य का वर्णन

सूत जी बोले—उसके पश्चात् सभी दैत्यों ने कलि को आगे कर जलयान द्वारा हरिखण्ड को प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचने पर उस खण्ड के निवासी मनुष्यों ने जो देवतुल्य, महाबली, एवं दशसहस्री वर्ष की आयु वाले होते हैं, अपने महास्त्रों द्वारा उन दैत्यों से धोर युद्ध किया । दशवर्ष के उपरांत हरिखण्ड के निवासियों ने उन मायावी दैत्यों द्वारा युद्ध में पराजित होकर सुरेन्द्र की शरण प्राप्त की । १-३। उस समय

तदा तु भगवाञ्छको विश्वकर्मणिमन्बवीत् । भ्रमिश्च नासयन्त्रोऽयं संस्थितः सप्तसिन्धुषु ॥४
 त्वया विरचितस्तात तत्प्रभावान्नरा भुवि । अन्यखण्डे न गच्छन्ति स च यन्त्रस्तु मायिना ॥५
 मयेन ऋंशितो ऋत्रा स्लेच्छैः सादृं समन्ततः । सप्तद्वीपेषु यास्यन्ति मनुजा मम बैतिणः ॥६
 अते नः पाहि मर्यादां भूमध्ये भवता कृताम् । इति श्रुत्वा विश्वकर्मा दिव्यद्यन्त्रमचीकरत् ॥७
 तेज यन्त्रप्रभादेन भ्रमितास्ते बभूविरे । भ्रमियन्त्रान्महावायुज्जातो स्लेच्छविनाशकः ॥८
 तदायोरभवत्युत्रो वात्यो वात्यासमुद्भवः । दैत्यदक्षांश्च पैशाचाञ्जित्वा ज्ञानमयो बली ॥९
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रिवर्णस्तेन सत्कृताः । बलान्स्लेच्छान्वर्णमयान्कृत्वा वात्यो महाबलः ॥१०
 शतार्द्धबिं मण्डलीकं पदं भुवि गृहीतवन् । तदन्वये तहस्मात्र नृपाश्रासन्कलौ युगे ॥११
 वायुपक्षस्त्रिवर्णार्दिच्याः लोडास्त्रदसहल्वके । वायोर्जातिः स्वयं ब्रह्मा वायोर्जातिः स वै हरिः ॥१२
 वायोर्जातिः महादेवः सर्वं वायुमयं जगत् । विना वायुं मृताः सर्वं वायुना भुवि जीविनः ॥१३
 इति मत्वा तु ते तोका वायुं च समतर्पयन् । युनस्तदत् कलिर्घोरो दैत्यराजं बलिं प्रभुम् ॥१४
 नत्वा निवेदयामास दुःखितोऽभूतदा बलिः । वामनान्तिकरणागम्य कलिमित्रेण संयुतः ॥१५
 नत्वोवाच स वै राजा देवदेवं जनार्दनम् । त्वया कलिः कृतो महां प्रसन्नैन सुरोत्तमः ॥१६

देवेन्द्र ने विश्वकर्मा से कहा—तात ! सातों समुद्रों में तुम्हारे बनाये हुए यंत्र स्थापित हैं, जिससे प्रभावित होकर मनुष्य एक खण्ड से दूसरे खण्ड की यात्रा नहीं कर सकता है, किन्तु उस मायावी मय दैत्य ने उस यंत्र को नष्ट कर दिया, जिससे स्लेच्छों के साथ मेरे शत्रु मनुष्यगण भी सातों द्वीपों में यथेच्छ विचरण कर सकेंगे । इरालिए भूमण्डल की उस मेरी मर्यादा की जो आपके द्वारा निर्धारित हुई है, रक्षा कीजिये । इसे सुनकर विश्वकर्मा ने एक दिव्य यंत्र की रचना की, जिससे प्रभावित होकर वहाँ के सभी यात्री चक्कर काटने लगे । पुनः उस भूमियंत्र द्वारा स्लेच्छों के विनाशार्थ एक महावायु की उत्पत्ति हुई । पश्चात् उस वायु के 'वात्य' नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस बली एवं ज्ञानमय पुत्र ने दैत्य, यक्ष तथा पिशाचों को पराजित कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, एवं वैश्य, इन तीनों वर्णों का स्थापनपूर्वक विशेष सम्मान किया । महाबलवन् वात्य ने स्लेच्छों में भी वर्ण-व्यवस्था स्थापित की । इस प्रकार इस भूमण्डल में उन्होंने मण्डलीक पद को सुशोभित करते हुए पचास वर्ष तक राज्य का उपर्योग किया । उस कलियुग के समय उनके कुल के एक सहस्र राजाओं ने उनके अनन्तर क्रमशः जो वायु पक्ष के समर्थक और तीनों वर्णों के विस्तृत प्रचारक थे, सोलह सहस्र वर्ष तक इस पद को विभूषित किया । क्योंकि वायु द्वारा स्वयं ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई और उसी भाँति विष्णु, महादेव की उत्पत्ति पूर्वक समस्त विश्व वायुमय हैं, विशेषकर भूतल में वायुहीन होने पर मृतक और वायुद्वारा जीवित होते हैं । ऐसा जानकर लोक निवासियों ने वायु को प्रसन्न करने के लिए विविध भाँति की चेष्टा की । पश्चात् धोर कलि में दैत्यराज बलि के पास जाकर नमस्कार पूर्वक उनसे समस्त वृत्तान्त का निवेदन किया । उसे सुनकर दुःख प्रकट करते हुए बलि ने कलि मित्र समेत वामन भगवान् के पास जाकर नमस्कार पूर्वक उन देवाधिदेव जनार्दन से कहा—सुरश्वेष्ठ ! आपने प्रसन्नता पूर्वक मेरे लिए कलि का निर्माण किया था । ४-१६ । किन्तु कर्मक्षेत्र (भारत) में कलि के

वात्यैर्द्विजैः कर्मभूमेः कलिस्तु स निराकृतः । एकपादो व्यतीतोऽवं किञ्चिद्वृनं कलेः प्रभोः ॥१७
 मया सम्यक्तु वै मुक्ता भूमिदेवेन्द्रसायया । सहस्राब्दं कलौ प्राप्ते मया भुक्तं महीतलम् ॥१८
 ततः साद्वं सहस्राब्दं देवैर्भुक्तं सुरस्थलम् । ततः पंचशतं वर्षं किञ्चिद्वदधिकमेव च ॥१९
 मया भुक्ता कर्मभूमिः सर्वलोकस्य कारणात् । ततः साद्वं सहस्राब्दं देवैर्भुक्तेयमुक्तमा ॥२०
 ततः साद्वं सहस्राब्दं किञ्चिद्वृनं मया भूता । साद्वं त्रिशत्सहस्राब्दं देवैर्दैत्यस्तदा मही ॥२१
 भुक्ता दैत्यैः पुनर्दैत्यैः तथादेवैश्च दानवैः ॥२२

त्वया वत्तो हि मे देव कलिः कलिविनाशनः । नाधिकारं कृतं नाथ सत्यं सत्यप्रियक्षम् ॥२३
 इति श्रुत्वा ब्लेवक्यं भगवात्वामनो हरिः । स्वांशान्नहीतले प्राप्तो दैत्यप्रक्षविवर्धनः ॥२४
 कामशर्मा तदा विप्रो यपुनातटसंस्थितः । हरिं तुष्टाद मनता द्वादशाब्दं प्रयत्नतः ॥२५
 तदा तु वामनः श्रीमान्वचः प्राह द्विजोत्तमम् । दरं ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ यत्ते मनसि संस्थितम् ॥
 इति श्रुत्वा कामशर्मा तुष्टाव शूक्षण्या गिरा ॥२६

कामशर्मोवाच

नमो देवाद महते सर्वपूज्याय ते नमः ॥२७

धर्मप्रियाय धर्माय देवदैत्यकराय च । दैवाधीननृणां भर्त्रे कर्मकर्त्रे नमो नमः ॥२८

जाने पर वात्य के अनुयायी ब्राह्मणों ने उसे वहाँ से अपमान पूर्वक निकाल दिया है । प्रभो ! कलि के एक चरण व्यतीत होने में भी अभी कुछ अवशेष समय रह गया है । देवेन्द्र के समान अधिकार पूर्वक मैंने भूमि का भलीभाँति उपभोग कर लिया है । कलि के समय में भी एक सहस्र वर्ष तक मैंने पृथ्वीतल का उपभोग किया है । पश्चात् देवों ने डेढ़ सहस्र वर्ष तक उस देवभूमि का उपभोग किया । तदनन्तर मैंने सभी लोकों के कारणवश पाँच सौ वर्ष से कुछ अधिक समय तक इस कर्मभूमि (भारत) का सुखोपभोग किया । अनन्तर देवों ने डेढ़ सहस्र वर्ष तक इस सर्वोत्तम पृथ्वी का उपभोग किया । पश्चात् उससे कुछ कम समय तक मैंने उस पर आधिपत्य स्थापित किया । उसके अनन्तर साढ़े तीन सहस्र वर्ष तक देवों और दैत्यों का भूमण्डल पर आधिपत्य रहा । इस प्रकार दैत्यों के अनन्तर देवों का और देवों के अनन्तर दैत्यों तथा दानवों का आधिपत्य होता रहा । देव ! कलिविनाशक यद्यपि आपने मुझे कलि प्रदान किया, तथापि नाथ, सत्यप्रिय अधिकार कुछ भी न दिया । इसे सुनकर भगवान् वामन विष्णु ने दैत्यप्रक्ष के वृद्धर्थ अपने अंश द्वारा इस भूतल पर अवतरित होने का विचार किया । उस समय कामशर्मा नामक ब्राह्मण यमुना तट पर स्थित होकर अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक वारह वर्ष से भगवान् विष्णु की आराधना कर रहा था । उसकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान् वामन ने उस ब्राह्मण से कहा—द्विजश्रेष्ठ ! मन इच्छित वर की याचना करो । इसे सुनकर कामशर्मा ने नम्रतापूर्वक स्नेहमयी वाणी द्वारा भगवान् की स्तुति करना आरम्भ किया । १७-२६

कामशर्मा ने कहा—देवों में महान् एवं सर्वपूज्य आपको नमस्कार है । धर्मविप्र, धर्ममूर्ति, देवों और दैत्यों के जनक, दैवाधीन होने के नाते मनुष्यों के घोषण करने वाले, एवं कामकर्ता आपको बार-बार

दैवाधीनाश्च ते देवा दैवोल्लाङ्घाश्च सानवाः । तेषां भर्ता क्रमादृता तस्मै देवाय ते नमः ॥२९
 पुत्रो भव हरे स्वामिन्सफलं बाच्छितं कुरु । इति श्रुत्वा हरिः साक्षाद्वामनो बलिरक्षकः ॥३०
 स्वपूर्वाद्दिव्यहृत्यां तत्पत्न्यां च समुद्भवः । द्विधा भूत्वा मही जातौ दिव्याङ्गौ दिव्यविग्रहौ ॥३१
 भोगांसहः केलिसिंह देवपां दैत्यपो हरिः । जित्वा वात्योद्भवान्भूपान्कलशक्तमुपस्थितः ॥३२
 रहः क्रीडावती नाम नगरी मयनिर्मिता । तत्रोष्य बलवन्तौ तौ दधतुश्च कलेधुरम् ॥३३
 पत्नीयं सर्वधर्माणां सारभूता सनातनोः । पतिव्रतायां ये जाता नरा आर्द्धः तुरप्रियाः ॥३४
 द्वूषितायां नरा जातास्ते सर्वे वर्णसङ्कुरा । इति सञ्चिन्त्य भगवःकृत्वा काममयं वपुः ॥३५
 दिने दिने सहस्रणि दोषितो दुभुजे हरिः । ताः सर्वा गर्भमाधाय यमौ सुषुविरे मुदा ॥३६
 नार्या तथा सहोदर्या रेमिरे ते सहोदरा । एवं च बहुधा सुविट्स्तेषां जाता कलौ युगे ॥३७
 दूर्वजातांस्त्रिवर्णाश्च भक्षयित्वा दिनेदिने । कर्मभूम्यां वृद्धिरे पक्षिणश्च यथा द्वुमे ॥३८
 उभयाब्दसहस्रान्ते तैरन्नाः पूर्वमानवाः । तदा कलेश्च चरणो द्वितीयो शुवि चागमत् ॥३९
 साम्प्रतं वर्तते वार्ता किन्नराणां च भूतले । द्विकिञ्चुमात्राश्च नराः सार्द्धा दैत्यमयाः स्मृताः ॥४०
 यथा खगाः कर्महीनाश्रत्वार्दिशाब्दजीविनः । भूमिगाश्च तथा ते वै भेदं तेष्वेषु नैव भोः ॥४१

नमस्कार है । आपके देवगण दैव के अधीन रहते हैं, और दानवगण उस दैव का उल्लंघन करते हैं, क्रमशः उन सबके भर्ता और हर्तारूप आपको नमस्कार है । स्वामिन् ! हरे ! मेरी बहुत बड़ी इच्छा है कि आप मेरे पुत्र हों । कृपाकर इसकी पूर्ति कीजिये । इसे सुनकर साक्षात् विष्णु ने, जो वामन रूप से बलि कीरक्षा करते हैं, अपने पूर्वाद्दिभाग द्वारा देवहृति के यहाँ और पुनः उस ब्राह्मण की पत्नी में अवतरित होने के लिए इस भूतल में दो भागों में विभक्त होकर दिव्यांश और दिव्य शरीर धारण किया । भोगसिंह और केलिसिंह के नाम से उनकी स्थाति हुई, जो देवरक्षक और दैत्यरक्षक थे । उन्होंने वायुकुल के राजाओं पर विजय प्राप्तकर कल्पक्षेत्र में निवास स्थान बनाया । २७-३२। वहाँ रहः क्रीडावती नामक एक नगरी का निमणि मयदैत्य ने किया था, उसी में उन दोनों बलवानों ने रहकर उसमें अपनी राजधानी स्थापित की । वहाँ रहकर उन दोनों से कलि की अत्यन्त वृद्धि की । यह सारभूत सनातनी एवं समस्त धर्मों की पत्नी है, किन्तु उस पतिव्रता के साथ जिन देवप्रिय आर्यों ने गमन किया वे सभी द्वूषित होकर वर्णसंकर धर्म के प्रवर्तक हो गये । ऐसा समझकर भगवान् ने काममय शरीर धारण एक एक दिन में सहस्रों स्त्रियों का उपभोग करना आरम्भ किया, जिससे प्रसान्न होकर वे सभी स्त्रियाँ गर्भ धारणकर सन्तानों को उत्पन्न कीं । उन प्रत्येक स्त्रियों के गर्भ द्वारा पुत्र-पुत्री का एक जुड़वाँ उत्पन्न हुआ, जो सृष्टि करने की अवस्था प्राप्त होने पर पति-पत्नी के रूप में रमणकर कलिसृष्टि की वृद्धि किया । इस प्रकार उस कलियुग में अनेक भाँति की सृष्टि हुई । उन लोगों ने पूर्व के तीनों वर्णों के प्रतिदिन भक्षण करके उनके विनाश पूर्वक इस कर्म-भूमि में वृक्ष पर रहने वाले पक्षी की भाँति अपनी अत्यन्त वृद्धि की । इस समय भूतल पर कलि का दूसरा चरण आरम्भ था । उसी दो सहस्र वर्ष के उपरांत जिन पुत्रों द्वारा पूर्व के मनुष्य विशालकाय हुए थे, उन्हीं पुत्रों से जीवित होकर आज के मनुष्य इस पृथ्वी पर दो मूठे अर्थात् एक बीते के हो रहे हैं, जिनके आचरण दैत्यों की भाँति हैं । इस प्रकार की वार्ता किन्नरों में उस समय हो रही थी । जिस प्रकार कर्महीन होने के नाते पक्षीगण चालीस वर्ष का ही जीवन प्राप्त करते हैं,

दृश्यन्ते चाद्य युज्माभिर्भूतले किञ्चरा नराः । द्वितीयचरणान्ते च भविष्यन्तेऽप्येव हि ॥४२
न विवाहो न भूपश्च नोद्यमो न हि कर्मकृत् । भविता च तदा तेषां द्वितीयचरणान्तिके ॥४३
सपादलक्षाब्दमितमद्यप्रभृति भो द्विजाः । भोगकेत्यन्वयोद्भूता भविष्यन्ति महीतले ॥४४
अतो मया च सहिता भवन्तो मुनिसत्तमाः । कृष्णचैतन्यसागम्य गमिष्यःमस्तदाज्ञया ॥४५

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तु मुनयो विशालापूर्निवासिनः । भो नमस्ते गमिष्यन्ति यज्ञांशं प्रति हर्षिताः ॥४६
नत्वा सर्वे मुनिश्चेष्ठः यज्ञांशं यज्ञहपिणम् । तच्चनं च वदिष्यन्ति देहाज्ञां भगवन् भो ॥४७
इन्द्रलोकं गमिष्यामो नाकमध्यं मनोहरम् । इति श्रुत्वा तु यज्ञांशः सर्वशिष्यसमन्वितः ॥४८
तैः सर्वे सह स्वर्लोकं गमिष्यति सुरप्रियः । तदा कलिः समं दैत्यर्भजिष्यति महीतलम् ॥
किमन्यच्छ्रोतुमिच्छा ते हृषीकोत्तम तद्वद् ॥४९

मनुरुवाच

भगवन्विस्तराद्भूहि भोगकेलिचरित्रकम् । कलौ यथा भविष्यन्ति मनुजास्तत्तथा प्रभो ॥५०

व्यास उवाच

भोगसिंहे केलिसिंहे वामनांशसमुद्भवे
जित्वा दैत्यान्नरमयान्नरान्वात्योद्भवान्भुवि । वामनांशमुपागम्य हर्षिताः सम्बभूविरे ॥५२

उसी भाँति आजकल इस मर्त्यलोक में और उनमें कोई भेद नहीं है । आज भूतल में तुम लोगों को किन्नरगण भी दिखाई दे रहे हैं । किन्तु कलि के दूसरे चरण की सप्ताप्ति के अवसर पर ऐसा न होकर अत्यन्त प्रतिकूल दिखायी देगा—उस समय न कोई मनुष्य विवाह करेंगे, न राजा होगा, न कोई उद्यम करेगा और न तो कोई कर्म । द्विजवृन्द ! यह सब दूसरे चरण की सप्ताप्ति के समय ही होंगे और आज से सवा लाख वर्ष तक भूतल पर दोनों भोगसिंह तथा केलिसिंह के वंशज राजपद सुशोभित करेंगे । अतः मुनिसत्तम वृन्द ! आप लोग मेरे साथ कृष्णचैतन्य के पास चलकर उके बताये हुए स्थान को चलें । ३३-४५

व्यास जी बोले—इसे सुनकर विशालापुरी के निवासी मुनिगण ने सहर्ष यज्ञांश के दर्शनार्थ यात्रा की । वहाँ पहुँचकर श्रेष्ठ मुनिगणों ने नमस्कार पूर्वक यज्ञरूपी यज्ञांशदेव से कहा—प्रभो ! आपकी आज्ञा हो तो हम सब स्वर्ग के मध्य में सुरम्य उस इन्द्रलोक की यात्रा करें । उसे सुनकर उन सब मुनियों समेत यज्ञांशदेव स्वर्ग की यात्रा करेंगे । पश्चात् इस पुरुषी पर चारों ओर कलि का साप्राज्य स्थापित होगा । अब उसके उपरान्त तुम हृषीकोत्तम ! अन्य कौन-सी गाथा सुनना चाहते हो । ४६-४९

मनु ने कहा—भगवन् ! भोग और केलि के चरित्र का सविस्तार वर्णन करने की कृपा कीजिये और कलि में मनुष्य किस भाँति के होंगे, वह भी बताने की कृपा कीजिये । ५०

व्यास जी बोले—वामन के अंश से उत्पन्न भोगसिंह और केलिसिंह ने वात्य के वंशज उन मनुष्यों को, जो दैत्य के आचरण वाले थे, पराजितकर सहर्ष राजपद को सुशोभित किया और उनके अनुयायी

तदा तु दुःखिता देवास्त्यक्त्वा भूतीः समन्ततः । कृष्णचैतन्यमागम्य नत्वे चुर्नतकन्धराः ॥५३
 भगवंस्त्वत्प्रसादेन चरणं प्रथमं कलेः । भुक्ता तथा मही स्वामिज्जित्वा दैत्यपूजकः ॥५४
 किं कर्तव्यं च यज्ञांश नमस्ते करुणाकर । इति श्रुत्वा हरिः प्राह तदा शृणु ध्वं सुरसत्तमाः ॥५५
 अहं स्वर्गं नमिष्यामि भवद्भूः सह हर्षितः । अतो यूयं सुरः सर्वे देववंशान्नरान्सदा ॥५६
 उत्थाय शीघ्रमागम्य गच्छध्वं द त्रिविष्टप्रम् । इति सूतेन कथिते भुनीन्प्रति सुमण्डलम् ॥५७
 देवा विमानमादाय तत्र यास्यन्ति भो भजः । सूतादीश्वरं युग्मीन्सर्वान्समारुद्ध्य सुरास्तदा ॥५८
 यज्ञांश च गमिष्यन्ति नदीहोपवने तदा । अह्नाद्य तदा योगी गोरखाद्यास्तथैव च ॥५९
 शङ्कुराधाश्च रुद्रांशा नृपो भर्तृहरिस्तदा । अन्ये तु योगनिष्ठाश्च गमिष्यन्ति हितप्रदाः ॥६०
 तैः सार्द्धं कृष्णचैतन्यो देवलोकं गमिष्यति । तदा तौ वामनांशौ च द्वितीयचरणे कलौ ॥६१
 योगनिष्ठां समाधाय कल्पक्षेत्रे वसिष्यतः । तदैव सकला दैत्या हर्षितास्तैर्नभिर्युहुः ॥६२
 विवरान्वद्यपिष्यन्ति पातालाद्यान्समन्ततः । कलेस्तृतीयचरणे सम्प्राप्ते किन्नराश्च ते ॥६३
 शनैःशनैः क्षयं भूमौ गमिष्यन्ति समन्ततः । षड्विंशाब्दसहस्रे च त्रुतीयचरणे गते ॥६४
 रुद्राज्ञया भृङ्गकृष्णभूतपक्षो नमिष्यति । सौरभी नाम तत्पत्नी जनिष्यति महाबलान् ॥६५
 कौलकल्पान्नरान्द्योरान्सर्वकिन्नरभक्षकान् । षड्विंशाब्दवयस्तेषां भविष्यति तदा कलौ ॥६६
 शरणं वामनांशं च गमिष्यन्ति सकिन्नराः । भोगर्सिहः केतिसिंहस्तैश्च सार्द्धं महद्वणम् ॥६७

उन वामनांश को अपने स्वामी के रूप में पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । उस समय देवों ने दुःख प्रकट करते हुए सभी मूर्तियों के परित्याग पूर्वक कृष्णचैतन्य के पास पहुँचकर नमस्कार पूर्वक विनश्र होकर उनसे कहा—भगवन् ! आपको कृपा से कलि के प्रथम चरण के समय तक हमलोगों ने दैत्यों के अधिनायकों को पराजितकर इस पृथ्वी का सुखोपभोग किया । किन्तु करुणेण यज्ञांश देव ! इस समय हम लोग क्या करें? बदाने की कृपा कीजिये । हम सब आपको नमस्कार कर रहे हैं । इसे सुनकर विष्णु ने कहा—सुरोत्तम वृन्द ! मैं कह रहा हूँ सुनो ! मैं आप लोगोंके साथ सहर्ष स्वर्ग चलने को प्रस्तुत हूँ, इसलिए तुम देववृन्द देववंशज मनुष्यों को लेकर शीघ्र स्वर्ग चले आओ । मनु ! इस प्रकार मुनियोंसे सूत जी के कहने पर देव लोग विमान लेकर सूत आदि मर्हिष्यों के पास जायेंगे, जिससे वे सब भी नदीहा के उपवन में स्थित कृष्णचैतन्य के समीप पहुँचकर उनके दर्शन पूर्वक स्वर्ग की यात्रा कर सकें । उन सबके साथ आह्लाद योगी गोरखनाथ आदि शंकराचार्य आदि रुद्रांश, और भर्तृहरि आदि नृपराण तथा अन्य योगनिष्ठ जनसमेत जो सदैव लोक के हितैषी थे, कृष्णचैतन्य देव के साथ देवलोक की यात्रा करेंगे । पश्चात् कलि के उस दूसरे चरण के समय वामन के अंश से उत्पन्न वे दोनों (भोग और केलिसिह) योगी की भाँति ध्यानमन्त होकर कल्पक्षेत्र में निवास करेंगे । उस समय हर्षित होकर दैत्यगण मनुष्यों के साथ पाताल की यात्रा के लिए उसके सभी विवरों (मार्गों) को पुनः विस्तृत करेंगे । कलि के तीसरे चरण के समय वे किन्नरगण पृथ्वी में धीरे-धीरे विवरण हो जायें । छब्बीस सहस्र वर्ष व्यतीत होने के उपरांत १५ १-६४ । रुद्र की आज्ञा से भूंग कृष्णभूतपक्ष के समर्थन पूर्वक उस कुल में जन्म ग्रहण करेंगे । अनन्तर सौरभी नामक अपनी पलीद्वारा महाबली एवं कोल की भाँति घोर मनुष्यों को उत्पन्न करेंगे, जिससे वे समस्त किन्नरों का भक्षण करके विनाश कर देंगे । उस कलि के समय मनुष्यों की आयु छब्बीस वर्ष की होगी । वे किन्नरगण उस समय त्रस्त्र होकर उन वामनांश

करिष्यति दशाब्दं च उनस्तैश्च पराजितौ । दैत्यैः सार्द्धं च पातालं वाननांशौ गमिष्यतः ॥६८
 भृङ्गसृष्टिर्भग्नाधोरा भविष्यति तदा कलौ । मातृः स्वसृः सुतास्ते वै नराश्च पशुरूपिणः ॥६९
 भुक्त्वा प्रीत्या च कामान्धा जनिष्यन्ति सूतान्बहून् । कलेस्त्वृतीयचरणे समाप्ते तास्तु सृष्ट्यः ॥७०
 निर्यास्योनिधारा धोरा: क्षयिष्यति कलौ युगे । कलेश्वर्तुर्थचरणे सम्प्राप्ते तु तदा नरा: ॥७१
 विंशदब्दवयस्काश्च मरिष्यन्ति च नारकाः । यथा जलमनुष्याश्च यथैव वनजा नराः ॥७२
 कन्दमूलफलाहारा भविष्यन्ति कलौ तदा । आलोकाः पै तु विष्यातास्तामिकाद्या भयानकाः ॥७३
 ते तर्वे पूर्णमेष्यन्ति कर्मभूमिभवैर्नैः । यथा सत्यस्य प्रथमे चरणे सत्यलोककः ॥७४
 द्वितीये च तपोलोके जनलोकस्त्वृतीयकः । चतुर्थे स्वर्गलोकश्च पूरितः कर्मभूमिजैः ॥७५
 त्रेतायुगाद्यचरणे भुवर्लोकं भुवास्यदम् । स्वर्गलोकं यथा तैश्च मनुजैः पूरितं स्मृतम् ॥७६
 द्वितीये ऋषिलोकं च त्रृतीये ग्रहविष्टपम् । चतुर्थे च भुवर्लोकं पूरितं कर्मजैर्नैः ॥७७
 द्वापरायापदे पूर्णं भवेद्द्वीपः स पुष्करः । द्वितीये शाल्मलः क्रौञ्चस्त्वृतीये द्वीपशेषकः ॥७८
 जम्बूद्वीपश्वतुर्थे च चरणे मुनिभिः स्मृतः । कलेश्वरं चरणे चाद्येधश्चोर्ध्वं पूरितं जगत् ॥७९
 द्वितीये सप्तपतालास्त्वृतीये भूतविष्टपम् । पूरितं मनुजैस्तत्र कर्मभूमिसमुद्भवैः ॥८०
 तदायनारकास्वर्वे पूर्णमेष्यन्ति तैर्नैः । इति ते कथितं सर्वं यत्पृष्ठोऽहं मनो त्वया ॥८१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगाखण्डापरपर्याये

कलियुगीयेतिहाससमुच्चयो नाम चतुर्विशोऽध्यायः । २४

भोगसिंह और केलिमिह की शरण में आश्रित होंगे, जिससे उन मनुष्यों के साथ उन दोनों का भीषण युद्ध होगा । किन्तु दश वर्ष के उस युद्ध में वे दोनों पराजित होकर दैत्यों समेत पाताल चले जायेंगे । उस समय भृंग ऋषि की सृष्टि अत्यन्त वोररूप धारण करेगी—माता, भगिनी एवं पुत्री के साथ पशु के समान वे मनुष्य कामान्ध होकर सप्रेम रति करके उनके पुत्रों की उत्पत्ति करेंगे । पश्चात् कलि के तीसरे चरण की समाप्ति होने पर वे सभी सृष्टियाँ नष्ट हो जायंगी, जो उस कलि के समय पक्षीयोंनि धारण किये रहेंगी । कलि के चौथे चरण के प्रारम्भ में मनुष्यों की बीस वर्ष की आयु होगी । वे नगरीय मनुष्य, जल मनुष्य और वनज मनुष्यों की भाँति कन्दमूल के आहार करेंगे । उस समय तामिकादि नरककुण्डों की पूर्ति वेदि कर्मभूमि के निवासी मनुष्यों द्वारा होगी । जिस प्रकार सत्ययुग के प्रथम चरण में कर्म क्षेत्र (भारत) निवासी मनुष्य सत्यलोक, द्वासरे चरण में तपलोक, तीसरे चरण में जनलोक, और चौथे चरण में स्वर्गलोक की पूर्ति करते हैं । त्रेतायुग के पहले चरण में ध्रुवलोक नामक भुवर्लोकं तथा स्वर्गलोगं की पूर्ति मनुष्यों ने की है । दूसरे चरण में ऋषिलोक, तीसरे में स्वर्ग, और चौथे चरण में भुवर्लोक और द्वापर युग के पहले चरण में पुष्करद्वीप, दूसरे चरण में शाल्मल, तीसरे चरण में क्रौञ्च, एवं चौथे चरण में जम्बूद्वीप को मुनियों ने पूरा किया है । उसी प्रकार कलि के पहले चरण में समस्त संसार ऊपर एवं नीचे के लोक समेत पूरा हुआ है, दूसरे चरण में सातों लोकसमेत पाताल तथा तीसरे चरण में भूतलोक की पूर्ति कर्मभूमि (भारत) निवासी मनुष्यों ने की है और इन्हीं मनुष्यों द्वारा समस्त नरक कुण्डों की पूर्ति हुई है । मनु ! इस प्रकार तुम्हारे प्रेशन के उत्तर में मैंने सब कुछ सुना दिया । ६५-८१

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन

नामक चौबीसवाँ अध्याय समाप्त । २४।

अथ पञ्चांशोऽध्यायः कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्

व्यास उवाच

चतुर्थयरणे जातैर्नुजैरेकविंशतिः । अजीर्णभूता नरका दस्यन्ति च यमालयम् ॥१
 नमस्ते धर्मराजाय नश्च त्रृप्तिकरण्य च । वचनं शृणु सर्वज्ञ नश्च जातमजीर्णकम् ॥२
 यथा भजाम प्रकृतिं तथा कुरु सुरोत्तम् । इति श्रुत्वा धर्मराज चित्रगुप्तेन संयुतः ॥३
 ब्रह्माणं च गर्निष्यन्ति सन्ध्यायां च कलौ युगे । चतुरश्च यमान्दृष्टा परमेष्ठी पितान्नहः ॥४
 तदैरितं स्वयं ज्ञात्वा क्षीराब्धिं प्रति यास्यति । पूजयित्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकर्णिम् ॥५
 साङ्ख्यशास्त्रमयैः स्तोत्रैः संस्तोष्यति परम् प्रभुम् ॥६

जय जय निर्गुण गुणधारिन्रगजगजीवतत्त्वशुभकारिन् ।
 सारंभुतसद्गुणमय तत्त्वैर्देवान्वच्यति पाति गुणसत्त्वैः ॥
 तस्मै नमो नमो गुणराशे देववृन्दहृदि कृष्णविकाशे ॥७
 रजोभूततत्त्वेभ्य उताशु विरचति भुवि च नरान्स्वयमाशु ।
 पाति हन्ति यो देव उदारस्तस्य शिरसि संस्थितजगभारः ॥

अध्याय २५

कलियुगीय इतिहाससमुच्चय का वर्णन

व्यास जी बोले—कलि के बौधे चरण के आरम्भ होने पर मनुष्यों द्वारा अजीर्ण होने पर इक्कीस प्रधान नरकगण यमराज के यहाँ जाकर नमस्कार पूर्वक उनकी प्रार्थना करते—धर्मराज को नमस्कार है, जिन्होने मुझे अत्यन्त त्रृप्ति दी है, किन्तु सर्वज्ञ ! मेरी प्रार्थना सुनने की कृपा कीजिये—सुरोत्तम ! मुझे अब अजीर्ण का रोग हो गया है । जिस प्रकार स्वस्य हो सकूँ, वह उपाय बताने की कृपा कीजिये इसे सुनकर धर्मराज चित्रगुप्त को साथ लेकर उस कलियुग के संघाकाल में ब्रह्मा के पास आयेंगे । परमश्रेष्ठी, एवं पितामह ब्रह्मा ने चारों गणों समेत यमराज को देखकर उनके अभिप्राय जानने के उपरांत क्षीरसागर के निवासी विष्णु के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर वे सांख्यशास्त्र के स्तोत्रों द्वारा वे परब्रह्म की जो जगत् के स्वामी एवं देवों के अधिदेव हैं, आराधना करते । निर्गुण एवं सगुणरूप धारण करने वाले ब्रह्म की बार-बार जय हो, जो इस चर अचरमय जगत् के जीव-तत्त्व का शुभ निर्माता है । जो सारंभुत सतोगुण के तत्त्वों द्वारा देवों को उत्पन्नकर सतोगुण द्वारा उनकी रक्षा करता है, उस गुण राशि एवं देवों के हृदय में कृष्ण-रूप के विकास करने वाले को बार-बार नमस्कार है । रजोगुण तत्त्व से जगती तल के मनुष्यों की शीघ्र सृष्टिकर जो उसका पालन एवं सहार स्वयं करता है, वह अंत्यन्त उदार देव है, क्योंकि उसी के शिर पर जगत् का समस्त भार निहित है । अतः दैत्यों के विनाश करने वाले नाथ !

साहि नाथ नो दैत्यविनाशिन्कालजनितलीलगुणभासिन् ॥१६

तेषामिति वचनं प्रभुः श्रुत्वा हृवनिमिदाशु । यथा जनिष्यति स प्रभुस्तच्छृणु वै मन आशु ॥१९
 नर्मीभूतान्सुरान्विष्णुर्नमोवाक्येन तान्प्रति ! वदिष्यत वचो रस्यं लोकमङ्गलहेतवे ॥२०
 भोः सुराः सम्भलग्राने कश्यपोऽयं जनिष्यते । नाम्ना विष्णुयशाः स्वातो विष्णुकीर्तिस्तु तत्प्रिया ॥२१
 कृष्णलीलामयं ग्रन्थं नरान्स्ताज्ज्ञावयिष्यति । तदा ते नन्दिनो भूत्तः चैकीभूय समन्ततः ॥२२
 तं द्विजं विष्णुयशसं गृहीत्वा निगडैर्दृढैः । दद्धवा सर्वे सपत्नीकं कारागारे दृढायसे ॥२३
 करिष्यन्ति महाधूर्ता नारकः इव दारुणाः । विष्णुकीर्त्या स भगदान्पूर्णो नारायणो हरिः ॥२४
 जनिष्यति महाविष्णुः सर्वलोकशिवङ्ग्नः । निशीथे तस्सोऽभूते मार्गकृष्णाष्टमीदिने ॥२५
 ब्रह्माण्डं मङ्गलं कुर्वन्सुराः प्रादुर्भविष्यति । ब्रह्म विष्णुर्हरश्चैव गणेशो वासदो गुरुः ॥२६
 वह्निः पितृपतिः पक्षो वरुणः सविभीषणः । चित्रो वायुर्धुवो विश्वे रविः सोमः कुजो बुधः ॥२७
 गुरुः शुक्रः शनिः राहुः केतुस्तत्र गमिष्यति : एत्यैकैकन ते देवाः स्तोष्यन्ति परमेश्वरम् ॥२८

महत्तमा मूर्तिमयी तवाजा तदास्य पूर्वज्जनितोऽहमऽदौ ।

मया ततं विश्वमिदं सदैव यतो नमस्तपुरुषोत्तमाय ॥२९

अजस्य याम्याज्जनितोऽहमादौ विष्णुर्महाकल्पकरोऽधिकारी ।

स्वकीयनाम्ना तु मया ततं तद्विश्वं सदैवं च नमो नमस्ते ॥२०

हमारी रक्षा कीजिये । क्योंकि आप कलि के लीला गुणों से प्रकट होते रहते हैं । मन ! उन देवों की ऐसी बातें सुनकर समर्थवान् प्रभु भूतल पर जिस प्रकार शीघ्र अवतरित होंगे, मैं कह रहा हूँ सुनो ! उस समय विनय विनम्र देवों को देखकर विष्णु भगवान् नमः शब्द के उच्चारण पूर्वक देवों से कहेंगे—दैववृन्द ! संभल ग्राम में कश्यप जी जन्म ग्रहण करेंगे । उस समय उनकी विष्णुयशा नाम से प्रस्त्याति होगी और विष्णु कीर्ति उनकी पत्नी का नाम होगा । वे जिन मनुष्यों को कृष्ण लीलाप्रधान ग्रंथ को सुनायेंगे उस समय वहाँ की जनता एकत्र होकर नन्दी होने के नाते उस ब्राह्मण को पकड़कर लोहे की दृढ़ श्रुखला से बांध देगी और पत्नी समेत उन्हें जेल में बन्द कर देगी उससे उन महाधूर्तों को, जो नारकीयों की भाँति अत्यन्त भीषण रूप थे, अत्यन्त प्रसन्नता होगी । वहाँ उस जेल में उस ब्राह्मण पत्नी विष्णुकीर्ति के गर्भ से पूर्ण परब्रह्म अवतरित होंगे जिन्हें नारायण हरि, महाविष्णु, एवं समस्त लोकों के कल्याणार्थ कहा जाता है । मार्गशीर्ष मास की कृष्णाष्टमी के उस अंधेरी आधी रात के समय देवों समेत समस्त ब्रह्माण्ड के मंगलार्थ उनके अवतरित होने पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, इन्द्र वृहस्पति । १-१६। अग्नि, अर्यमा, यक्ष, विभीषण समेत वरुण, चित्र, वायु, ध्रुव, विश्वेदेव, सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु देवगण वहाँ पहुँचकर एक-एक पद्य द्वारा उन परमेश्वर की स्तुति करेंगे—आपकी महत्तमा मूर्ति से जिसे अज कहा गया है, इस पूर्वमुख द्वारा सर्वप्रथम मेरी उत्पत्ति हुई है । जिसके द्वारा मैंने देवसमेत इस समस्त विश्व का विस्तृत प्रसार किया है, उस पुरुषोत्तम को मैं नमस्कार करता हूँ । अर्यमा विष्णु के उस दक्षिण मुख द्वारा, जो महत्कल्प कर्ता एवं अधिकारी है, सर्वप्रथम मेरा जन्म हुआ है, मैंने अपने नाम द्वारा इस देवसमेत विश्व का अत्यधिक विस्तार किया है अतः मैं उस देव को नमस्कार करता हूँ ।

अव्यक्तपाश्चात्यमुखात्मुजन्मा शिवोऽहमादौ सुरतत्त्वकारी ।
 मया महाकल्पकरस्तृतीयात्वदाज्ञया देव नमो नमस्ते ॥२१
 प्रधानवक्रोत्तरतोऽहमादौ जातो गणेशः किल कल्पकर्ता ।
 मया ततं विश्वमिदं सदैव तस्मै नमः कारणिकेत्तमाय ॥२२
 आर्जद्ववक्राज्जनितोऽहमादौ मरुन्महाकल्पकरो महेन्द्रः ।
 मया ततं विश्वमिदं स्वकल्पे यदाज्ञया देव नमो नमस्ते ॥२३
 प्रधानभालाक्षिसमुद्भवोऽहं वह्नेऽहाकल्पकरो गुहाख्यः ।
 विनिर्मितं विश्वमिदं मया तद्यदाज्ञया नाथ नमो नमस्ते ॥२४
 अजामुखात्पूर्वगताच्च जातश्चादौ महाकल्पकरोऽहर्मणिः ।
 ब्रह्माण्डमेतच्च मया ततं वै ब्रह्माण्डकल्पाय नमो नमस्ते ॥२५
 अजाभुजाहृदिणितोऽहमादौ जातो महाकल्पकरः सधर्मः ।
 मया सदैवैरचितं समग्रं लिङ्गाख्यकल्पाय नमो नमस्ते ॥२६
 अजाभुजात्पश्चिमतोऽहमादौ जातो महाकल्पकरः स यज्ञः ।
 मया ततं विश्वमिदं समग्रं मत्स्याख्यकल्पाय नमो नमस्ते ॥२७
 प्रधानबाहूत्तरतोऽहमादौ जातो महाकल्पकरः प्रचेताः ।
 मया ततं नाथ तवाज्ञयेदं कर्माख्यकल्पाय नमो नमस्ते ॥२८

अव्यक्त के पश्चिम मुख द्वारा मुझ शिव का सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ है, मुझे सुरतत्त्व का कर्ता, एवं अधिकारी बनाया गया है, इसीलिए मैंने आपकी आज्ञा से तीसरे महत्वकल्प का निर्माण किया है । अतः देव ! आपको नमस्कार है । आपके प्रधान मुख द्वारा, जो उत्तर की ओर स्थित है, मुझ कल्पकर्ता गणेश का सर्वप्रथम अविर्भाव हुआ है । दैव ! मैंने देवों समेत उस समय विश्व का विस्तृत प्रसार किया है, अतः आप करुणामूर्ति को नमस्कार है । अज के आधे मुख द्वारा सर्व प्रथम मेरा जन्म हुआ, मैंने मरुत्महत्कल्प को रचना की जिससे महेन्द्र नाम से मेरी स्थाति हुई । देव ! मैंने भी उस अपने कल्प के समय देवोंसमेत विश्व का निर्माण किया है । नाथ ! आपको नमस्कार है । अग्निरूप आप के भाल में स्थित उस प्रधान नेत्र द्वारा सर्वप्रथम मेरा जन्म हुआ और गुह देव के नाम से मेरी स्थाति हुई । नाथ ! आपकी आज्ञा से मैंने महाकल्प के निर्माण पूर्वक इस विश्व का विस्तृत निर्माण किया है, आपको नमस्कार है । उस अजन्मा देव की पूर्व भुजा द्वारा सर्वप्रथम मुझ अग्नि की उत्पत्ति हुई है, मैंने अपने समय में महान् कल्प की रचना की है, और इस ब्रह्माण्ड का प्रचुर विस्तार भी । अतः ब्रह्माण्ड कल्परूप आपको नमस्कार है । अजन्मा के दक्षिण बाहु द्वारा सर्वप्रथम धर्म समेत मेरी उत्पत्ति हुई, मैंने देवों समेत इस लिंगकल्प की रचना की है, अतः लिंग कल्परूप, आपको नमस्कार है । उस अजदेव की पश्चिम भुजा द्वारा सर्वप्रथम मुझ यज्ञ की उत्पत्ति हुई, मैंने मत्स्यकल्प की रचनापूर्वक इस विश्व की रचना की है । अतः मत्स्यकल्प रूप आपको नमस्कार है । प्रधान बाहु द्वारा जो उत्तर की ओर स्थित है सर्वप्रथम मुझ अचेता की उत्पत्ति हुई है नाथ ! आपकी आज्ञा से मैंने कर्म नामक महानकल्प की रचना पूर्वक इस विश्व

ब्रह्माण्डतमसो जातस्त्वद्वासोऽहं विभीषणः । मया ततं त्रिलोकं च नमस्ते मनुरूपिणे ॥२९
 ब्रह्माण्डसद्गुणाज्जातश्चित्तोऽहं मनुकारकः । मया ततं च त्रैलोक्यं स्वायम्भुव नमोऽस्तुते ॥३०
 ब्रह्माण्डरजसो जातो वायुर्मन्वन्तरं ततम् । मया स्वारोचिषं स्वामिन्नमस्ते मनुरूपिणे ॥३१
 ब्रह्माण्डमनसे? जातो ध्रुवोऽहं मनुकारकः । मदोत्तमं च रचितं नमस्तेऽस्तु तवाज्ञया ॥३२
 ब्रह्माण्डश्रवणाज्जातो विश्वकर्माहीम्भूरः । मया ततं रैवतं च नमो देव तवाज्ञया ॥३३
 ब्रह्माण्डदेहतो जातस्सूर्योऽहं चक्रभूषप्रदः । तवाज्ञयः ततं विश्वं मनुरूपाय ते नमः ॥३४
 ब्रह्माण्डनेत्रतो जातः सोमोऽहं तु मया ततम् । वैवस्त्वान्तरं रम्यं नमस्ते मनुरूपिणे ॥३५
 ब्रह्माण्डरसनाज्जातो नोहोऽहं मनुकारकः । नमस्ते मनुरूपाय मयः स्तार्दणिकं ततग् ॥३६
 ब्रह्माण्डघ्राणतो जातो बुधोऽहं नाथ किङ्कूरः । निर्मितं ब्रह्मसावर्णं मया तात नमो नमः ॥३७
 ब्रह्माण्डवक्त्रतो जातो जीवोऽहं मनुकारकः । मया वै दक्षसावर्णं ततं तते नमः नमः ॥३८
 ब्रह्माण्डकरतो जातः शुक्रोहं तव किङ्कूरः । निर्मितं रुद्रसावर्णं मया तुन्यं नमो नमः ॥३९
 ब्रह्माण्डपदतो जातोमन्दोऽहं नाथ तेजनुः । ततं वै धर्मसावर्णं प्रभातेस्मै नमो नमः ॥४०
 ब्रह्माण्डलिङ्गतो जातो राहुश्राहं तव प्रियः । मया भौमं कृतं नाथ नमस्ते मनुरूपिणे ॥४१

का प्रसार किया है, अतः कर्मकल्प नामक आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के तम द्वारा आपके दास मुझ विभीषण का जन्म हुआ है, मैंने तीनों लोकों का अत्यन्त प्रसार किया है, अतः मनुरूपी आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के सतोगुण से मुझ चित्त की उत्पत्ति हुई । मैंने मनु का निर्माण किया है और तीनों लोकों का प्रसार भी । अतः स्वायम्भुवरूप आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के रजोगुण द्वारा मुझ वायु की सर्वप्रथम उत्पत्ति हुई । मैंने आपकी आज्ञा से मन्वन्तर का प्रसार किया है । अतः स्वामिन् । स्वरोचिष नामक मैं आप मनुरूप को नमस्कार करता हूँ । ब्रह्माण्ड के मानसिक कर्म द्वारा ध्रुव नामक मेरी उत्पत्ति हुई । मैंने आपकी आज्ञा द्वारा मनु निर्माण पूर्वक उस उत्तम की रचना की है । अतः आपको नमस्कार है । १७-३२। ब्रह्माण्ड के श्रवण द्वारा मुझ ईश्वर विश्वकर्मा की उत्पत्ति हुई है । देव ! आपकी आज्ञा द्वारा मैंने रैवत की रचना की है । अतः आपको नमस्कार करता हूँ । ब्रह्माण्ड के देव से मुझ सूर्य की उत्पत्ति हुई है । मैंने काश्कृप् तेज प्रदान पूर्वक इस विश्व का विस्तृत प्रसार किया है । अतः मनुरूप आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के नेत्र से मुझ सोम की उत्पत्ति हुई है । मैंने विश्वनिर्माणपूर्वक वैवस्त्वत की रचना की है, अतः मनुरूपी आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के रसना इन्द्रिय द्वारा मुझ मोह की उत्पत्ति हुई देव ! मैंने सावर्णि मनु का विस्तृत प्रसार किया है, अतः मनुरूप आपको नमस्कार है । नाथ ! ब्रह्माण्ड के घाण (नाक) इन्द्रिय द्वारा मुझ बुध की उत्पत्ति हुई है । तात ! मैंने ब्रह्म सावर्ण्य का प्रचुर प्रसार किया है । अतः आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के मुख द्वारा मुझ जीव की उत्पत्ति हुई है । मैंने इस सावर्ण मनु के निर्माणपूर्वक अत्यन्त प्रसार किया है । अतः आपको नमस्कार है । ब्रह्माण्ड के कर द्वारा आपके दास शुक्र की उत्पत्ति हुई है । मैंने रुद्र सावर्ण की रचना की है अतः आपको नमस्कार करता हूँ । ब्रह्माण्ड के चरण से उत्पन्न होने के नाते मेरी मन्द (शनि) नाम से स्वयंति हुई । नाथ मैंने गर्भ सावर्ण की प्रचुर स्थाति एवं विस्तार किया है । अतः प्रभारूप आपको नमस्कार है । उसी प्रकार ब्रह्माण्ड के लिंगेन्द्रिय द्वारा आपके प्रिय राहु की उत्पत्ति हुई है । नाथ ! मैंने भौम का निर्माण किया है

ब्रह्माण्डुहृतो जातः केतुश्चाहं तवानुगः । भौतं मन्वतरं सृष्टं तस्मै देवाय ते नमः ॥४२

व्यास उवाच

इति तेषां त्तवान्त्वानी श्रुत्वा देवान्वदिव्यति । इरं शूहीति वचनं ततं प्रति भनुः क्रमात् ॥४३

इति श्रुत्वा तु ते देवा बालरूपं हरिं स्वयम् । नमस्तुत्य वदिव्यन्ति वाञ्छितं लोकहेतवे ॥४४

भद्रान्बूहि लोकानां कल्पे कल्पे तमुद्गूदयम् । तथा मन्वत्तरे चैव श्रोदुमिञ्चाभ्यहे वयम् ॥४५

कल्पयुवाच

अष्टादश भद्राकल्पः प्रकृतेभ्य तनौ स्थिताः । आद्ये ब्रह्ममहाकल्पस्तत्र ब्रह्मा परः युज्ञान् ॥४६

तत्पूर्वार्द्धात्मसुहृत्यात्मास्त्रयस्त्रिवराच्च देवताः । परार्द्धाद्बूगवान्ब्रह्मा योगिध्येयो निरञ्जनः ॥४७

तस्मिन्कल्पे तु या लीला ब्रह्मपौराणिकैः स्मृता । शतकोटिप्रविस्तारो ब्रह्मपौराणिकस्य वै ॥४८

पुराणपुरुषस्याल्लोक्ये महाकल्पः स्मृतो ब्रूधः । ब्रह्माण्डप्रलये कल्पो युगदेवसहस्रकः ॥४९

कल्पाश्राष्टादशख्यातास्तेषां नामानि ने शृणु । कूर्मकल्पो मत्स्य कल्पः श्वेतवाराहकल्पकः ॥५०

नृसिंहकल्पश्च तथा तथा दग्धनकल्पकः । स्कन्दकल्पो रामकल्पः कल्पो भागवतस्तथा ॥५१

तथा मार्कण्डकल्पश्च तथा भविष्यकल्पकः । लिङ्गकल्पस्तथा ज्येष्ठस्तथा ब्रह्माण्डकल्पकः ॥५२

अग्निकल्पो वायुकल्पः पद्मकल्पस्तथैव च । शिवकल्पो विष्णुकल्पो ब्रह्मकल्पस्तथा क्रमात् ॥५३

द्विसहस्रमितावतैरिणां कल्पो महान्स्मृतः । सहस्रयुगर्यन्तं ब्रह्माण्डायुः प्रकीर्तितम् ॥५४

यन्नान्नाच स्मृतः कल्पस्तस्माज्जातो दिराडयम् । चतुर्दशमनूनां च मध्ये कल्पः स कालवान् ॥५५

अतः मनुरूपी आपको नमस्कार है । तथा ब्रह्माण्ड के गुह्येन्द्रिय द्वारा केतु की उत्पत्ति हुई है, जो आपका अनुगामी है । मैंने भूत मन्वत्तर की सर्जना की है, इसलिए उस देवरूप आपको नमस्कार है । ३३-४२

व्यास जी बोले—इस प्रकार उनकी स्तुतियों को सुनकर स्वामी विष्णुदेव उन प्रत्येक देवों से वर याचना के लिए कहेंगे । इसे सुनकर वे देवगण भगवान् के उस बालरूप के नमस्कार पूर्वक उनसे लोक के मंगलार्थ अपनी-अपनी अभिलाषा प्रकट करेंगे । आप प्रत्येक कल्प के प्राणियों की कथा और मन्वत्तरों की कथा सुनाने की कृपा करें । ४३-४५

कल्पिने कहा—प्रकृति माया के शरीर में अड्डारह महाकल्प सन्निहित हैं जिनमें सर्व प्रथम ब्रह्म महाकल्प नामक कल्प का सर्जन होता है । उसके अधिनायक श्रेष्ठ पुरुष ब्रह्म है । उनके पूर्वार्द्ध भाग से तैतीस देवों एवं परार्द्ध भाग से उस भगवान् ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ है, जिस निरंजन का ध्यान योगीगण सदैव किया करते हैं । इस कल्प में जो लीला होती है वह ब्रह्मपुराण में विस्तारपूर्वक स्पष्ट है, वह पुराण सैकड़ों कोटि का विस्तृत है । पुराण पुरुष के मध्य महाकल्प का स्थान विद्वानों ने बताया है । ब्रह्माण्ड प्रलय के समय दिव्य चार सहस्र वर्ष तक कल्प उसमें अन्तहित रहता है । वे कल्प अड्डारह भाँति के हैं उनके नाम मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कूर्मकल्प, मत्स्यकल्प, श्वेतवाराहकल्प, नृसिंहकल्प, वामन- कल्प, स्कन्दकल्प, रमकल्प, भगवतकल्प, मार्कण्डकल्प, भविष्यकल्प, लिंगकल्प, ब्रह्माण्डकल्प, अग्नि कल्प, वायुकल्प, पद्मकल्प, शिवकल्प, विष्णुकल्प, तथा ब्रह्मकल्प का क्रमशः निर्माण हुआ । दो सहस्र आर्वत होने के नाते ये सभी महाकल्प कहे गये हैं । उसी प्रकार एक सहस्र युग तक ब्रह्माण्ड की आयु बतायी गई है । जिस नाम द्वारा कल्प की ख्याति हुई है, उसी से इस विराट् की उत्पत्ति हुई है । चौदह

स्वायम्भुवान्तरे यद्वै जातं जातं चतुर्युगम् । तर्स्मश्चतुर्युगे सर्वे नृणामायुर्हरे शृणु ॥५६
लक्षाब्दं वै सत्ययुगे त्रेतायामयुताब्दकम् । द्वापरे च सहस्राब्दं कलौ चायुशताब्दकम् ॥५७
स्वारोचिषेऽन्तरे देव जातं जातं चतुर्युगम् : शृणु तत्र नृणामायुस्सत्येऽशीतिसहस्रकम् ॥५८
त्रेतायां च तदद्वाब्दं द्वापरे तु तदद्वकम् । कलौ द्विक सहस्राब्दं नृणामायुः प्रकीर्तितम् ॥५९
औत्तमस्यान्तरे चैव सत्ये षष्ठिसहस्रकम् । त्रेतायां च तदद्वाब्दं द्वापरे तु तदद्वकम् ॥६०
कलौ सार्द्धसहस्राब्दं नृणामायुः प्रकीर्तितम् । तामसान्तरके चैव षट्क्रियाब्दसहस्रकम् ॥६१
नृणामायुः सत्ययुगे त्रेतायां च तदद्वकम् । द्वापरे च तदद्वाब्दं कलौ वर्षतःसहस्रकम् ॥६२
रैवतान्तरके चैव सत्ये त्रिंशत्सहस्रकम् । त्रेतायां च तदद्वाब्दं द्वापरे च तदद्वकम् ॥६३
कलौ चाष्टशताब्दायुर्नृणां देवैः प्रकीर्तितम् । चाक्षुषान्तरके चैव सत्ये तुर्यसहस्रकम् ॥६४
त्रेतायां त्रिसहस्राब्दं द्वापरे द्विसहस्रकम् । कलौ सहस्रवर्षान्तं नृणामायुः प्रकीर्तितम् ॥६५
वैवस्वतेन्तरे चैव सत्ये तुर्यसहस्रकम् । त्रेतायां त्रिशताब्दं च द्वापरे द्विशताब्दकम् ॥६६
कलौ शताब्दकं प्रोक्तमायुर्वैदस्तथा नृणाम् । सार्द्धिकेऽन्तरे देव नृणां त्रिंशत्सहस्रकम् ॥६७
आयुः सत्ये तदद्वं तु त्रेतायां च प्रकीर्तितम् । द्वापरे च तदद्वाब्दं तदद्वाब्दं तु वै कलौ ॥६८
ब्रह्मसार्वणिके चैव सत्ये दशसहस्रकम् । त्रेतायां च तदद्वाब्दं द्वापरे तु तदद्वकम् ॥६९
कलौ चैव तदद्वाब्दं नृणामायुः प्रकीर्तितम् । दक्षसार्वणिके चैव तथाब्दायुश्चतुर्युगे ॥७०

मनुष्यों के मध्य में कालवान् कल्प ही बताया गया है । जिस स्वायम्भुव नामक मन्वन्तर में चारों युग क्रमशः उत्पन्न एवं व्यतीत होते रहते हैं, उन युगों में मनुष्यों की आयु बता रहा हूँ सुनो ! सत्ययुग में एक लाख, त्रेतायुग में दश सहस्र, द्वापरयुग में एक सहस्र, और कलियुग में सौ वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । देव ! स्वारोचिष मन्वन्तर में चारों युग क्रमशः उत्पन्न एवं व्यतीत होते हैं, उनके समय मनुष्यों की आयु बता रहा हूँ, सुनो ! सत्ययुग में अस्ती सहस्र, त्रेता में चालीस, द्वापर में बीस, और कलि में दो सहस्र वर्ष मनुष्यों की आयु कही गयी है । उत्तम मन्वन्तर के समय सत्ययुग में साठ सहस्र, त्रेता में तीस सहस्र, द्वापर में पन्द्रह सहस्र और कलि में डेढ सहस्र वर्ष मनुष्यों की आयु बतायी गयी है । तामस मन्वन्तर में सत्ययुग में छत्तीस सहस्र, त्रेता में अट्ठारह सहस्र, द्वापर में नवसहस्र और कलि में एक सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । रैवत मन्वन्तर के समय सत्ययुग में तीस सहस्र त्रेता में पन्द्रह सहस्र, द्वापर में साढ़े सात सहस्र और कलि में आठ सौ वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । चाक्षुष मन्वन्तर में सत्ययुग में चार सहस्र, त्रेता में तीन सहस्र, द्वापर में दो सहस्र, एवं कलि में एक सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । वैवस्वत मन्वन्तर के समय सत्ययुग में चार सहस्र, त्रेता में तीन सौ, द्वापर में दो सौ, और कलि में सौ वर्ष की आयु आयुर्वेद ने मनुष्य की बतायी है । ४६-६४। देव ! सार्वणि मन्वन्तर में सत्ययुग में बीस सहस्र त्रेता में दश सहस्र द्वापर में पाँच सहस्र, और कलि में ढाई सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । ब्रह्मसार्वणि मन्वन्तर में सत्ययुग में दशसहस्र त्रेता में पाँच सहस्र, द्वापर में ढाई सहस्र, तथा कलि में सवा सहस्र वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । दक्षसार्वणि मनु के समय

रुद्रसावर्जिके चैव सत्ये चाष्टसहस्रकम् । त्रेतायां तदद्वाब्दं द्वापरे च तदद्वकम् ॥७१
 कलौ तदद्वकं ज्ञेयं नृणामायुः पुरातने । धर्मसावर्जिके चैव तथाब्दायुश्चतुर्युगे ॥७२
 भौममन्वन्तरे चैव सत्ये तुर्यमहस्तकम् । त्रेतायां त्रिसहस्राब्दं द्वापरे च तदद्वकम् ॥७३
 कलौ तदद्वकं ज्ञेयं नरायुश्चार्थसम्मतम् । भौतमन्वन्तरे चैव सत्ये तुर्यशताब्दकम् ॥७४
 त्रेतायां त्रिशताब्दं च द्वापरे तु तदद्वकम् । तदद्वकं कलौ घोरे नृणामायुः प्रकीर्तितम् ॥७५
 मन्वन्तरे तु यन्नास्ता द्वूपाश्रासंश्वतुर्युगे । तन्नास्ता च नृपा जातास्तेषां लीलाः पृथक्पृथक् ॥७६
 एवमन्यत्र वै ज्ञेयं युगे तुर्यं मनों मनौ । यो मनुस्तस्य वंशज्ञ दिव्यैकयुःसप्ततौ ॥७७
 युगान्ते कर्मभूमेश्वर लयः कल्पः स वै स्मृतः । मन्वन्ते सर्वभूमेश्वर प्रलयः स च कल्पकः ॥७८
 पुराणपुरुषस्यैव दिनान्ते प्रलयो हि यः । मुख्यकल्पः स वै ज्ञेयः सर्वलोकविनाशकः ॥७९
 षड्विंशत्कल्पसःहृष्मैर्हाकल्पो हि यः स्मृतः । यदा पुराणपुरुषो नेष्ठराशौ समास्थितः ॥८०
 तदा ब्रह्मा सुरैः सार्द्धं भूपं स्वायम्भुदं गतः । यदा पुराणपुरुषो मकरे च समान्तः ॥८१
 स्वायम्भुवमनोर्मध्ये वाराहोऽभूत्स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषो गतः सिंहे स्वकेच्छया ॥८२
 स्वारोचिष्मनोरन्ते नृसिंहोऽभूत्स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषो वृष्टराशौ समास्थितः ॥८३
 तदैत्तममनोर्मध्ये रुद्रोऽभूत्सगणो भुवि । यदा पुराणपुरुषो मीनराशौ समास्थितः ॥८४

चारों युगों में समान आयु होती रही । रुद्र सावर्जिके समय सत्ययुग में आठ सहस्र त्रेता में चार सहस्र, द्वापर में दो सहस्र, तथा कलि में एक सहस्र की आयु मनुष्यों की होती रही । धर्मसावर्जिके समय भी चारों युगों में एक वर्ष की समान आयु होती रही । भौम मन्वन्तर के समय सत्ययुग में चार सहस्र, त्रेता में तीन सहस्र द्वापर में डेढ़ सहस्र एवं कलि में पन्द्रह सौ वर्ष मनुष्यों की आयु होती है । उसी भाँति भौम मन्वन्तर के समय सत्ययुग में चार सौ, द्वापर में डेढ़ सौ, एवं कलि में साढ़े सतत सौ वर्ष की आयु मनुष्यों की होती है । मन्वन्तरों के समय जिस नाम से राजा चारों युग में कहे गये हैं, उसी नाम के भूप उत्पन्न होते हैं जिनकी पृथक्-पृथक् लीला का वर्णन किया गया है । इसी प्रकार प्रत्येक मनु के चारों युगों में जिस मनु का अधिपत्य रहता है, उसके वंशज दिव्य एकहत्तर युग तक स्थित रहते हैं, उसके पश्चात् इस कर्मभूमि (भारत) का प्रलय हो जाता है, जिसे कल्प कहा गया है और मनु की समाप्ति के समय समस्त भूमि का प्रलय होता है, जो पुराण पुरुष के दिनान्त का प्रलय कहा गया है । उसे ही मुख्य कहा जाता है, क्योंकि उस प्रलय में समस्त लोकों का विनाश होता है । अतः छब्बीस सहस्र कल्प का एक महाकल्प बताया गया है जिस समय पुराणपुरुष मेषराशि पर स्थित होता है । ६५-८०। उस समय देवों समेत ब्रह्मा 'स्वयम्भुव' मनु होते हैं । पुनः पुराण पुरुष के मकर राशि पर स्थित होने पर स्वायम्भुव मनु के मध्यकाल में भूतल पर वह वाराह के रूप में अवतरित होता है । जिस समय पुराण पुरुष अपनी इच्छा से सिंह राशि पर स्थित होता है, उस समय स्वारोचिष्म नामक मनु का काल होता है और उसके अन्त में भूतल पर नृसिंह का अवतार होता है । पुराण पुरुष के वृष राशि पर स्थित होने पर उत्तम मनु का काल आरम्भ होता है तथा उसके मध्य समय गणसमेत रुद्र अवतरित होते हैं । जिस समय पुराणपुरुष मीन (राशि) पर स्थित होता है, उस समय तामस मनु का काल होता है, उसके अन्त

तामसान्तेऽभवद्मत्स्यः स वै भुवि सनातनः । यदा पुराणपुरुषो युग्मराशौ समास्थितः ॥८५
 दैवस्वतमनोर्मध्ये कृष्णोभूद्भुवि स प्रभुः । यदा पुराणपुरुषः कर्कराशौ समास्थितः ॥८६
 रैवतान्तेऽभवत्कूर्मः स वै भुवि सनातनः । यदा पुराणपुरुषः कन्दाराशौ समास्थितः ॥८७
 चाक्षुषान्ते जामदग्न्योऽभवद्वामः स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषः प्राप्तोऽलौ च त्वकेच्छ्या ॥८८
 दैवस्वतमनोरादै दामनोऽभूत्स वै भुवि । यदा पुराणपुरुषः सुतुलराशौ समास्थितः ॥८९
 दैवस्वतमनोर्मध्ये कल्की नान्नाहमागतः । यदा पुराणपुरुषः कुन्भराशौ समास्थितः ॥९०
 सावर्णिकादौ भविता बुद्धो नाम्ना स दै भुवि । यदा पुराणपुरुषः धनुराशौ समास्थितः ॥९१
 दैवस्वतमनोर्मध्ये रामो दाशरथिर्भुवि । यदा पुराणपुरुषः नक्नराशौ समास्थितः ॥९२
 सर्वपूज्यादत्तारश्च न भवेद्वै कदाचन । अस्त्विन्नश्चतुर्युगे देवाः पुराणपुरुषस्य हि ॥९३
 ऋयोऽवताराः कथितास्तथा नान्यच्चतुर्युगे । त्रेतायाः प्रथमे पादे रामो दाशरथः प्रभुः ॥९४
 द्वापरस्य तथा कृष्णः शेषण सह वै भुवि । क्लेशोर्णे तथाहं वै द्वात्रिंशाब्दसहस्रके ॥९५
 अतः खण्डः पवित्रोऽयं नृणां एत्तकनाशनः । इमं चतुर्युगं खण्डं यः पठेच्छ्रावयेच्च यः ॥९६
 जन्म प्रभृति पापानि तस्य नश्यन्ति नान्यथा । इति वः कथितं देवा महाकल्पचरित्रकम् ॥९७
 द्वितीयो यो महाकल्पो विष्णुपौराणिकैर्नरैः ॥९८

समय भूतल पर सनातन भगवान् का मत्स्यावतार होता है । पुराण पुरुष के मिथुन राशि पर स्थित होने पर उस वैवस्वत मनु के मध्यकाल में इस वसुन्धरा पर भगवान् कृष्ण का अवतार होता है । उसी प्रकार पुराण पुरुष के कर्क राशिस्थ होने पर उस रैवतअन्त मनु के समय सनातन भगवान् का कूर्मावतार होता है उस पुराण पुरुष के कन्या राशि पर स्थित होने पर उस चाक्षुष मनु का काल होता है, भूतल पर भगवान् राम का जामदग्न्यावतार और उसके वृश्चिक राशिस्थ के समय उस वैवस्वत मनु के आदि काल में भगवान् का भूमण्डल पर वामनावतार होता है । जिस समय पुराण पुरुष तुला राशि पर स्थित होता है, उस समय वैवस्वत मनु के मध्यकाल में भगवान् का कल्कि अवतार होता है । उसी भाँति पुराण पुरुष के कुम्भ राशि पर गमन करने के समय उस सावर्णि मनु के आदि काल में भूतल पर भगवान् का बुद्धावतार, धनुराशि पर स्थित होने पर वैवस्वत मनु के मध्य काल में भूतल पर भगवान् का दाशरथी (दशरथपुत्र) राम का अवतार और उसके मकर राशि पर स्थित होने के समय भगवान् का सर्वपूज्यावतार होता है, जो कभी भी नहीं होता है । देववृन्द ! इन चारों युगों में होने वाले पुराण पुरुष के तीनों अवतार को बता दिया गया त्रेता के पहले चरण में भगवान् राम का (दशरथ के यहाँ) रामावतार, द्वापर में शेष के साथ कृष्णावतार और कलियुग में बत्तीस सहस्र वर्ष शेष रहने पर कल्कि अवतार होता है । अतः यह खण्ड अत्यन्त पावन है, जिससे मनुष्यों के पातक नष्ट होते हैं । इस प्रकार इन चारों खण्डों के पाठ करने का दूसरे को सुनाने से मनुष्यों के सभी जन्मों के पाप नष्ट होते हैं । ८१-९६। देववृन्द ! इस भाँति मैंने महाकल्प के पवित्र चरित्र को तुम्हें सुना दिया । दूसरे महाकल्प को विष्णुकल्प कहा गया है, उसी की कथा विष्णुपुराण में कही गयी है, जिसे मनुष्यों ने सप्रेम हृदयङ्गम किया है । वह पुराण सैकड़ों कोटि का

शतकोटिप्रविस्तारो विष्णुपौराणिकल्य वै ! तत्रं च महाकल्पो दिष्णोनाभिसमुद्भवः ॥१९९
 पूर्वार्द्धद्वागवान्ब्रह्मा सर्वदेवसमन्वितः । परार्द्धद्वागवान्विष्णुः पुराणपुरुषः स वै ॥२००
 तृतीयो यो महाकल्पः शिवकल्पः स वै स्मृतः । शिवपूर्वार्द्धतो जातो विष्णुस्तस्माद्विधिः स्वयम् ॥२०१
 शतकोटिप्रविस्तारः शिवपौराणिकैः स्मृतः । चतुर्थे यो महाकल्पः पद्मकल्पः स वै स्मृतः ॥२०२
 गणेशस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने । गणेशादभवद्वद्वो रुद्राद्विष्णुः सुहेत्तमः ॥२०३
 विष्णोनाभिसमुद्भूतः परमेष्ठो पितामहः । कल्पेकल्पे क्रमादादौ देवात्रासन्समन्ततः ॥२०४
 पञ्चमो यो महाकल्पो वायुकल्पः स वै स्मृतः । भहेन्दस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने ॥२०५
 महेन्द्रादभवत्प्राप्तो महेन्द्रादिन्द्रियाणि च । इन्द्रियेभ्यश्च तदेवास्तेषां नामानि मे शृणु ॥२०६
 शनिर्बुधो रविः शुक्रो विश्वकर्मा दृहस्पतिः । इन्द्रो विष्णुस्तथा ब्रह्मा स्त्रः सौमः क्रमात्स्मृताः ॥२०७
 सृष्टिकर्ता स वै ब्रह्मा लिङ्गेन्द्रियसमुद्भवः । सृष्टिपाता स वै विष्णुरवतारितद्वद्भवः ॥२०८
 चतुर्विशतितत्त्वेषु कल्पेकल्पे प्रभुर्गतः । सन्तकुमारो हंसश्च वाराहो नारदस्तथा ॥२०९
 नारायणो च कपिलात्रेयौ यज्ञाश्वकाटकौ : वृषभश्च पृथुर्मत्स्यः कूर्मो धन्वन्तरित्स्तथा ॥२१०
 नोहिनी च नृसिंहश्च वामनो भार्गवस्तथा । रामो व्यासो बलः कृष्णो बुद्धः कल्पी स्वतत्त्वगः ॥२११
 गुह्यजन्मा महादेवः सृष्टिदैत्यविनाशकः । एवं जातास्त्रयो देवा महाकल्पे च पञ्चमे ॥२१२
 यज्ञो यस्तु महाकल्पो बहिकल्पः स वै स्मृतः । स्कन्दस्तत्रैव भगवान्पुराणपुरुषासने ॥२१३

विस्तृत है । उसी महाकल्प में उस विष्णु भगवान् की नाभि का उत्पन्न होना बताया गया है । जो अपने पूर्वार्द्ध भाग से देव समेत भगवान् ब्रह्मा, और परार्द्ध भाग से पुराणपुरुष कहलाता है । शिवकल्प नामक तीसरे महाकल्प में शिवजी के पूर्वार्द्ध भाग से विष्णु और विष्णु द्वारा स्वयं ब्रह्मा का उत्पन्न होना बताया गया है, जो शिवपुराण के रूप में सौ कोटि का विस्तृत है । पद्मकल्प नामक चौथे महाकल्प में भगवान् गणेश पुराण पुरुष कहे गये हैं, जिससे रुद्र, रुद्र से विष्णु और उस विष्णु की नाभि से क्रमल समेत परमेष्ठी पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है । प्रत्येक कल्प के आदि में क्रमशः देवों की भी चारों ओर से स्थिति होती है । उसी प्रकार वायुकल्प नामक पाँचवें महाकल्प में महेन्द्र भगवान् पुराणपुरुष के स्थानापन्न होते हैं । उस महेन्द्र द्वारा महेन्द्र, महेन्द्र द्वारा इन्द्रियाँ और इन्द्रियों द्वारा देवों की उत्पत्ति होती है, जिनके विषय में मैं बता रहा हूँ, सुनो ! शनि, बुध, रवि, शुक्र, विश्वकर्मा, बृहस्पति, इन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र और सौम (चंद्र) नामक देवों की क्रमशः उत्पत्ति होती है । उसके लिंगेन्द्रिय द्वारा उत्पन्न होने के नाते ब्रह्मा सृष्टिकर्ता का पद सुशोभित करते हैं, और वरण द्वारा उत्पन्न होकर सृष्टि का पालन करने के नाते विष्णु को अवतारी कहा गया है । प्रत्येक कल्प के चौबीस तत्त्वों में भगवान् सन्निहित रहते हैं—सन्तकुमार, हंस, वाराह, नारद, नर, नारायण, कपिल, यज्ञाश्व, कंठक, वृषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, भार्गव, राम, व्यास, बल, कृष्ण, बुद्ध और भगवान् का कल्पी स्वरूप अपने-अपने कल्प के तत्त्व में निहित है । इसी प्रकार गुह्येन्द्रिय द्वारा महादेव की उत्पत्ति हुई है, जो सृष्टि एवं दैत्यों के विनाशक हैं । पाँचवें महाकल्प में इस प्रकार तीनों देवों की उत्पत्ति बतायी गयी है । १७-१२। बहिकल्प नामक छठे महाकल्प में स्कन्ददेव पुराणपुरुष कहे जाते हैं उस अव्यय पुरुष के

पुरुषाव्यग्रतः स्कन्दः स्कन्दस्तस्मान्महार्चिमान् । सूर्यरूपा महार्चिर्या तस्यां जातो हरिः स्वयम् ॥११४
 वह्निरूपा महार्चिर्या तस्यां जातः पितामहः । चन्द्ररूपा महार्चिर्या तस्यां जातः स वै हरः ॥११५
 कृष्णो मुनयो वर्णो लोका जाताः पितामहात् । अदित्या विश्ववसवस्तुषिता भास्वरानिला ॥११६
 महाराजिकसाथ्याश्र देवा विष्णुसमुद्भूवाः । यज्ञराजसंवगधर्वाः पिशाचाः किन्नरादयः ॥११७
 दैत्याश्र दानवाः भूतास्त्तामसा श्वसम्भवाः । कल्पे कृत्ये समुद्भूतमेवं ब्रह्माण्डगोचरे ॥११८
 सप्तमो यो महाकल्पः स वै ब्रह्माण्डकल्पकः । पावकस्तत्र भगवान्युररणपुरुषासने ॥११९
 अचिन्त्यतेजसस्तस्मात्पुरुषाद्विद्वद्भूवः । ततो जातो महाबिंश्च तस्माज्जातं विराण्मयम् ॥१२०
 रोम्णि रोम्णि ततस्तस्य ब्रह्माण्डः कोटिशोऽभवन् । ब्रह्माण्डदद्वद्वह्ना सर्वलोकपितामहः ॥१२१
 तस्माज्जातो विभुविष्णुस्तस्माज्जातो हरः स्वयम् । शतकोटिप्रविस्तारे ब्रह्माण्डात्मपुराणके ॥१२२
 त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च दंशबाहुर्भयस्य च । अष्टादशानां कल्पानां द्वायुर्वै वैदिकैः स्मृतः ॥१२३
 महाकल्पेऽन्वन्सर्वे द्विसहस्राः क्षयं गताः । अष्टमो यो महाकल्पो लिङ्गकल्पः स वै स्मृतः ॥१२४
 तत्रैव भगवान्धर्मः पुराणपुरुषासने । अचिन्त्याव्यक्तरूपश्च जातो धर्मः सनातनः ॥१२५
 धर्मात्कामः समुद्भूतः कामालिङ्गस्त्रिधाभवत् । पुल्लिङ्गः क्लीबलिङ्गश्च स्त्रीलिङ्गश्च सुरोत्तमः ॥१२६
 पुल्लिङ्गादभवद्विष्णुः स्त्रीलिङ्गाच्च महेन्द्रिरा । क्लीबलिङ्गात्म वै शेषस्तस्योपरि स च स्थितः ॥१२७
 त्रिभ्यस्तमोमयेभ्यश्च जातमेकार्णवं जगत् । सुप्ते नारायणे देवे नाभेः पञ्चमुत्तमम् ॥१२८

स्कन्द होने से उनका स्कन्द नाम हुआ । इसलिए वे महा अर्चिमान् (पूर्णप्रकाश युक्त) कहे गये हैं । उन्हीं सूर्य रूप महार्चि से स्वयं विष्णु की वह्निरूप महार्चि द्वारा पितामह (ब्रह्मा) द्वारा ऋषि, मुनि, वर्ण एवं लोकों की उत्पत्ति हुई है, विष्णु द्वारा आदित्यगण, विश्वावसु देव, तुषित, भास्वर, अनिल, और महाराजिक साध्व देवी की उत्पत्ति हुई है । और छद्म द्वारा यज्ञ राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, किन्नर, दैत्य, दानव एवं भूतगणों की उत्पत्ति हुई है । इस प्रकार प्रत्येक कल्पों में ब्रह्माण्ड के सर्जन को शुभ बताया गया है । ब्रह्माण्ड कल्प नामक सातवें महाकल्प में पुराण पुरुष के आसन पर भगवान् पावक प्रतिष्ठित होते हैं, जिस अजेय तेजस्वी पुरुष द्वारा अग्नि का जन्म हुआ । उसी अग्नि द्वारा महासागर और उसी सागर द्वारा इस विराट् की उत्पत्ति हुई, जिसके रोम रोम में कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए हैं । उस ब्रह्माण्ड से समस्त लोकों के पितामह ब्रह्मा, ब्रह्मा से विभु विष्णु, और उस विष्णु द्वारा स्वयं हर की उत्पत्ति हुई । इसीलिए उस ब्रह्माण्ड नामक पुराण का सैकड़ों कोटि का विस्तार हुआ है । शिव के तीन नेत्र, पाँच मुख और दश भुजाएँ हैं अठारह कल्पों के वैदिकों ने वायु नाम से स्वाति की है । इस महाकल्प में सबकी उत्पत्ति होने से दो सहस्र उसी समय नष्ट हो गये । लिंगकल्प नामक आठवें महाकल्प में भगवान् धर्म पुराणपुरुष के आसनासीन होते हैं, जो अचिन्त्य, अव्यक्त एवं सनातन धर्मरूप हैं । उस धर्म से काम की उत्पत्ति हुई और काम द्वारा वह लिंग तीन (पुल्लिंग स्त्रीलिंग एवं नपुंसकलिंग) भागों में विभक्त होकर पुल्लिंग द्वारा विष्णु स्त्रीलिंग द्वारा इन्द्रिरा (लक्ष्मी), एवं नपुंसक लिंग से उस शेष का आविर्भाव हुआ, जिस पर विष्णु शयन किये रहते हैं । पुनः इन तीनों तमोमय रूप द्वारा एक समुद्र जगत् की उत्पत्ति होती है । उसी में नारायण देव के शयन करने पर उनकी नाभि द्वारा एक उत्तम कमल की उत्पत्ति होती है । ११३-१२८।

जातं तस्मात्स वै ब्रह्मा तस्माज्जातो विराट्यम् । शतकोटिप्रविस्तारैलिङ्गपौराणिकैः कथा ॥१२९
 गीता चैव विधेरप्येत्स्य सारोऽयमुत्तमः । नवमो यो महाकल्पो मत्स्यकल्पः स वै स्मृतः ॥१३०
 कुबेरस्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने । अव्ययाच्च समुद्भूतो धूलिवृन्दो महामत्तथा ॥१३१
 रजोभूताच्च तस्माच्च कुबेरस्य समुद्भूवः । कुबेराङ्गुष्ठवन्मत्त्वां देवमूर्तिश्च सदगुणः ॥१३२
 मत्स्योदरात्समुद्भूतो विष्णुर्नारायणो हरिः । दिष्ठोनाभेः समुद्भूतो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१३३
 ब्रह्मण्डोऽङ्गवं दैवं दैवाहेदा भूमिरे । चतुर्विंशतितत्वानि तैर्देवैर्जनितानि वै ॥१३४
 कल्पेकत्ये क्षमादेवं कल्पनामान्यकारयत् । मत्स्यकल्पे तु मत्स्यश्च महामत्स्यात्समुद्भूवः ॥१३५
 तन्मत्स्याङ्गवान्विष्णुस्ततो ब्रह्मण उद्भूवः । कूर्मकल्पे महामत्स्यात्कूर्मो जातः स कच्छपः ॥१३६
 कूर्माच्च भगवान्विष्णुस्ततो ब्रह्मा ततो विराट् । श्वेतवाराहकल्पे च वराहाङ्गुरुद्भूवः ॥१३७
 विष्णोनाभेष्ट स ब्रह्मा ततो जातो विराट्यम् । एव सर्वे च वै कल्प्या ज्ञेयाः सर्वत्र वै द्रुधैः ॥१३८
 इशमो यो महाकल्पः कूर्मकल्पः स वै स्मृतः । अचेतास्तत्र भगवान्पुराणपुरुषासने ॥१३९
 प्रस्तुतेश्च पनो यो वै तुरीयोऽव्यय एव च । शून्यभूतात्ततो जातः अचेता भगवान्स्वयम् ॥१४०
 तस्माज्जातो महानव्यस्तत्र सुष्वाप त प्रभुः । नारायण इति ख्यातः स वै जलपतिः स्वयम् ॥१४१
 तदद्वाच्च महाकूर्मस्ततः शेषो महानभूत् । त्रिधाऽभवत्स वै शेषो भूमा शेषश्च भौमनी ॥१४२
 भूमा स वै विराङ्गज्ञेयः शेषोपरि स चास्थितः । भौमनी च महालक्ष्मीः सा भूमो हृदि संस्थिता ॥१४३

जिससे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं और ब्रह्मा द्वारा यह विराट् ! इसलिए लिंग पुराण की कथा सैकड़ों कोटि की विस्तृत है । उसी का साररूप गीता ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित हुआ है । मत्स्यकल्प नामक नवे महाकल्प में भगवान् कुबेर पुराणपुरुष के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं । पश्चात् उस अव्यय द्वारा एक अत्यन्त बड़ी धूल राशि उत्पन्न होती है, जिस रजोभूत धूलि द्वारा कुबेर जन्म ग्रहण करते हैं । पुनः कुबेर द्वारा वेदमूर्ति एवं सदगुण रूप मत्स्य की उत्पत्ति होती है । उसी मत्स्य के उदर से स्वयं नारायण विष्णु देव उत्पन्न होते हैं और विष्णु की नाभि से पितामह ब्रह्मा, ब्रह्मा से दैव और दैव द्वारा देवों की उत्पत्ति होती है । पश्चात् उन्हीं देवों ने चौबीस तत्त्वों को उत्पन्न किया है । इस प्रकार प्रत्येक कल्प में देव प्रधान नाम द्वारा कल्पों के नाम होते हैं—मत्स्यकल्प में महामत्स्य द्वारा मत्स्य की उत्पत्ति कही गयी है । जिस मत्स्य के द्वारा भगवान् विष्णु और विष्णु द्वारा ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । कूर्मकल्प में महामत्स्य द्वारा कूर्म (कच्छप) का आविर्भाव और उसी कूर्म द्वारा भगवान् विष्णु, उनसे ब्रह्मा और ब्रह्मा द्वारा विराट् उत्पन्न होते हैं । श्वेत वाराहकल्प में वराह द्वारा विष्णु उत्पन्न होते हैं । उसी विष्णु की नाभि द्वारा ब्रह्मा और उस ब्रह्मा से विराट् उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार विद्वानों को सभी कल्पों में उनकी प्रधानता एवं समस्त कथा का ज्ञान करना चाहिए । कूर्मकल्प नामक दशवें महाकल्प में भगवान् अचेता पुराण कहे गये हैं । जो प्रकृति से परे तुरीय, अव्यय एवं शून्यभूत हैं । उसी से भगवान् अचेता स्वयं उत्पन्न होते हैं और अचेता द्वारा महासागर उत्पन्न होता है जिसमें शयन करने पर भगवान् को जलपति नारायण कहा गया है । उवके अर्द्धभाग से महाकूर्म और महाशेष की उत्पत्ति होती है । वह शेष पुनः तीन रूप में विभक्त होकर भूमा, शेष और भौमनी के रूप में प्रकट होता है, उस भूमा को विराट् कहा गया है, जो भूमा

भूम्नो जातः स वै ब्रह्मा सृष्टिस्थितिविनाशकः । त्रिधामूर्तिः स वै ब्रह्मा कल्पे कल्पे क्रमादयम् ॥१४४
 पटं सुषुप्तभूतं यत्पुराणपुरुषासनम् । यत्र गत्वेन्द्रियायेव तृप्तिं प्राप्य क्षयन्ति चै ॥१४५
 अहङ्कारस्तदागत्य चैतन्यं मनसि स्थितम् । चञ्चयित्वा पुनर्लोकं करोतेस्मस्वलीलया ॥१४६
 तुरीयशक्तिर्या ज्ञेया महाकाली सनातनी । महाकल्पैश्च तैः सर्वस्तदङ्गं श्रुतिभिः स्मृतम् ॥१४७
 नमस्तस्यै महाकालै मम मात्रे नमो नमः । यतः पुराणपुरुषा भवन्ति च लियन्ति च ॥१४८
 दशैव च महाकल्पा व्यतीता इह भोः सुरा: । साम्प्रतं वर्तते यो वै भग्नकल्पो भविष्यतः ॥१४९
 तदुत्पत्तिं शृणुध्वं भो देवाः सर्पिगणा भन । अचिन्त्यमस्तरं यत्तु तुरीयं च सदा स्थितम् ॥१५०
 यद्गत्वा न निर्वर्तन्ते नरास्तदेव तत्पदम् । अनेकसृष्टिरचनाः सक्ति तस्यैव लीलया ॥१५१
 तस्यान्तं न दिदुर्देवाः कथं जानन्ति वै नराः । भूतो भूतो महाकल्पो दृष्टो वैदेह्मतीरितः ॥१५२
 भाव्या ये तु महाकल्पा न वै जानन्ति ते सदा । अस्तिरन्नहाकल्पाः कैश्चिद्द्वैरुद्दीरिताः ॥१५३
 अष्टादश महाकल्पाः पृथङ् नाम्नोपर्वर्णिताः । एकादश महाकल्पाः कैश्चित्प्रोक्ताः पुरातनैः ॥१५४
 अतोऽहं निश्रेयताद्य भाव्यकल्पेषु भोः सुरा: । वेदानां वचनं सत्यं नान्यथा च भवेत्कवचित् ॥१५५
 तदव्ययात्समुद्भूते राधाकृष्णः सनातनः । एकीभूतं द्वयोरङ्गं राधाकृष्णो बुधैः स्मृतः ॥१५६
 सहस्रयुगपर्यन्तं यत्तेष परमं तपः । तदा स च द्विधा जातोः राधाकृष्णः पृथक्पृथक् ॥१५७

(विराट) के हृदय में स्थित है । उसी भूमा द्वारा सृष्टि, स्थिति एवं उसके विनाशक देवों की उत्पत्ति होती है । वही ब्रह्मा प्रत्येक कल्पों में त्रिधा विभक्त होकर तीनों रूपों को धारण करता है ॥१२९-१४४। पुराण पुरुष का वह आसन है, जो उसके शयन काल का स्तरण घर रूप है वहाँ पहुँचने पर इन्द्रियाँ तृप्त होकर नष्ट हो जाती है । वह अहंकार चैतन्य रूप से गन में स्थित होता है, उसे वंचितकर अपनी लीला द्वारा जो लोक-निर्माण करती है, वह सनातनी तुरीय शक्ति महाकाली है । समस्त महाकल्प एवं श्रुतियों द्वारा जिसके अंगभूत (लोक कथाओं) का वर्णन किया गया है, उस अपनी माता महाकाली को मैं नमस्कार करता हूँ । तथा उसी द्वारा पुराणपुरुष का आविर्भाव और विलय होता है । देववृन्द ! दश महाकल्प व्यतीत हो चुके हैं । इस समय भविष्य महाकल्प का आरम्भ है । इसमें देवों समेत मेरा जिस प्रकार जन्म हुआ है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनो ! अचिन्त्य, अविनाशी, तुरीय रूप से सदैव स्थित, तथा जिसके पद को प्राप्तिकर मनुष्यों को पुनः संसार में नहीं आना पड़ता है, वह अपनी लीला द्वारा अनेक सृष्टियों की रचना करता है । उसके अंत को देवगण नहीं जान सकते हैं तो उसके लिए मनुष्यों को क्या कहा जा सकता है । वेद तो यही कहता है कि महाकल्प हुए हैं, किन्तु भविष्य रूप में होने वाले कल्पों को वे भी नहीं जानते हैं । कुछ वेदों का यह कहना है कि तैतीस महाकल्प होते हैं, कुछ लोग अष्टादश कल्पों को स्वीकार करते हैं, जो अपने नामानुसार पृथक्पृथक् बर्णित हैं और किसी प्राचीन वादी ने ग्यारह महाकल्प को स्वीकार किया है । देवगण ! अतः मैंने निश्चय किया है—भावी कल्पों के विषय में वेदों की बातें सत्य माननी चाहिए, जो किसी प्रकार कभी अन्यथा नहीं हो सकती है और उसने बताया है कि उस अव्यय द्वारा सनातन राधाकृष्ण का आविर्भाव हुआ है, जिस दोनों के अंग एक हो जाने पर विद्वानों ने उसे राधाकृष्ण कहा है । प्रकट होने के उपरांत राधाकृष्ण ने सहस्र युग तक धोर तपस्या की । पश्चात् वह दो भागों में विभक्त होकर राधाकृष्ण के नाम से पृथक्पृथक् अवस्थित होकर उन दोनों ने एक सहस्र युग

सहस्रयुगपर्यन्तं तेषुत्सौ परं तपः । तयोरज्ञात्समुद्भूता ज्योत्स्ना तमनाशिनी ॥१५८
 तज्योत्सनाभिः समुद्रं भूतं दिव्यं वृन्दावनं शुभम् : एकविंशत्प्रकृतयो योजने योजने स्मृतः ॥१५९
 दिव्यं वृन्दावनं जातं चतुराशीतिसम्मिते । क्रोशायामं महारस्यं तत्त्विज्ञं शृणु मे प्रभो ॥१६०
 इन्द्रियप्रकृतीनां च दशानां प्राप्तदृष्टशः^१ । गोकुलं वार्ष नान्दं भाण्डीरं माथुरं तथा ॥१६१
 वज्रं च यामुनं मान्यं श्रेयस्कं गोपिकं क्रमात् । मात्राभूतदशभ्यश्च प्रकृतिभ्यः समुद्रवम् ॥१६२
 तथर दशवनं रस्यं तेषां नामानि मे शृणु । वृन्दावनं गोपवनं बहुलावनसेव च ॥१६३
 मधुशृङ्गं कुञ्जवनं दनं दधिवनं तथा । रहः क्रीडावनं रस्यं वेणुपद्मवनं क्रमात् ॥१६४
 अनसः प्रकृतेज्ञातो गिरिर्गाविर्द्धनो महान् । दिव्यं वृन्दावनं दृष्ट्वा परमानन्दमात्र सः ॥१६५
 कृष्णादुदभवनोपास्तितः कोट्यो गुणात्मकाः । श्रीदामाद्याः सात्त्विकाश्र राजसा अर्जुनादयः ॥१६६
 कंसाद्यास्त्तमसा जाता दिव्यलीलाप्रकारिणः ! राधाज्ञानुद्भव गोप्यस्तितः कोटचस्तथा क्रमात् ॥१६७
 ललिताद्याः सात्त्विकाश्र कुञ्जाद्या राजसास्तथाः तामसाः पूतनाद्याश्च नानाहेलाचरित्रकाः ॥१६८
 सहस्रयुगपर्यन्तं तेषां लीला बभूव ह । ततस्तौ तान्समाहृत्य तेषुत्तुष्व पुनस्तपः ॥१६९
 द्विधा जातः स वै कृष्णो राधा देवी तथा द्विधा । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥१७०
 पूर्वार्द्धात्मित्स च वै जातः परार्द्धात्मित्स एव हि । एकशीर्षा त्रिनेत्रा च द्विपदी द्विसहस्रिका ॥१७१

तक पुनः घोर तपस्या की जिससे उन दोनों के अंग से तम नष्ट करने वाली ज्योत्स्ना का अविर्भाव हुआ । उसी ज्योत्स्ना द्वारा शुभमूर्ति वृन्दावन का निर्माण हुआ, जिसके एक-एक योजन की दूरी पर इक्कीस प्रकृति तत्त्व का सन्निहित होना बताया गया है । वह दिव्य वृन्दावन चौरासी कोश में विस्तृत है । प्रभो ! उसके लिंग की व्याख्या कर रहा हूँ सुनो ! १५५-१६०। दश प्राकृतिक इन्द्रियों द्वारा उसके दश ग्रामों का निर्माण हुआ है—गोकुल, वार्षभ, नान्द, भाण्डीर, माथुर, व्रज, यामुन, मान्य, श्रेयस्क, एवं गोपियों की क्रमशः उत्पत्ति हुई । दश तन्मात्रा प्रकृति द्वारा दश रमणीक वन उत्पन्न हुए हैं, उनके नाम बता रहा हूँ सुनो ! वृन्दावन, गोपवन, बहुलावन, मधुवन, भृङ्गवन, दधिवन, एकान्त क्रीडावन, रस्य वेणु और पद्मवन का क्रमशः जन्म हुआ । प्रकृति के मन द्वारा महान् गोवर्द्धन पर्वत का अविर्भाव हुआ, जिसने दिव्य वृन्दावन को देखकर अत्यन्त हर्ष प्रकट किया है । भगवान् कृष्ण द्वारा तीन कोटि गोपों का जन्म हुआ है, जिसमें श्रीदामा आदि गोपा के जन्म सतोगुण द्वारा अर्जुन आदि के रजोगुण और कंस आदि के जन्म तमोगुण द्वारा हुए हैं, जो दिव्य लीला के विषय में उसी भाँति क्रमशः राधा जी के अंग द्वारा ललिता आदि तीन कोटि गोपियों के जन्म हुए हैं, जिसमें ललिता आदि गोपियाँ सात्त्विकी, कुञ्जा आदि राजसी, और पूतना आदि गोपियाँ तामसी प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुई हैं । जो अनेक हाव-भाव के चरित्रों का चित्रण किये हैं इन लोगों ने एक सहस्र युग तक अनेक भाँति की लीला करने के उपरांत इन (राधाकृष्ण) दोनों ने अपने में उन सब के संहरण पूर्वक पुनः घोर तप किया है । कृष्ण और राधादेवी पृथक् पृथक् दो-दो भागों में विभक्त हुए । कृष्ण ने अपने पूर्वार्द्ध भाग से एक-एक पुरुष को प्रकट किया जिसके- सहस्र शिर, सहस्र नेत्र और सहस्र चरण हैं तथा उत्तरार्द्ध भाग कृष्णरूप हुआ । उसी प्रकार राधा

१. प्रयोगोयमार्दः ।

पूर्वार्थित्सा तु वै जाता राधा देवी परार्द्धतः । पुरुषः प्रकृतिश्चोभौ तेषतुः परमं तपः ॥१७२
 सहस्रयुगपर्यन्तं दिव्ये वृन्दावने शुभे । तपसा वृद्धाते तौ नानानन्तो ह्यनन्तकः ॥१७३
 एकाभूतौ तु तत्पश्चात्संस्थितौ नैथुनेच्छया : तदङ्गरोभकूपेषु ब्रह्माण्डः कोटिशोऽभवन् ॥१७४
 कोटचर्द्धयोजनायामास्ते तु सर्वे पृथक्पृथक् : हृदि रोमसमुद्भूतो ब्रह्माण्डयं च भोः सुराः ॥१७५
 ब्रह्माण्डादुद्भूतो ब्रह्मा पद्मपुष्टे समाप्तिः । स पद्मो योजनायामो भूमिमण्डलसंस्थितः ॥१७६
 यतो जातं विधे: पद्मं तदै पद्मसरोवरम् । प्रसिद्धं पुष्करक्षेत्रं तत्पद्मसरसं सुराः ॥१७७
 विस्मितः स तदा ब्रह्मा नररूपश्चतुर्मुखः । नाले नाले गतोसौः वै दिव्यं जातं शतं ममः ॥१७८
 नान्तं जगान पद्मस्य पुनर्ब्रह्मा स चागतः । सायदा सोहितस्तत्र रुग्रोद ब्रह्मा तदा ॥१७९
 रोदनादुद्भूते उत्पन्नः स च तत्क्षेत्रकारकः । किं रोदिषि महाभाग त्वदीशो हृदये तव ॥१८०
 इति श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मा लोकपितामहः । समाधिभूतो हृदये विरं तेषे स्वकेच्छया ॥१८१
 दिव्यवर्षशताब्दे तु प्रादुर्भूतो हरिः स्वयम् । वत्तनं प्राह भगवन्मेघगम्भीरया गिरा ॥१८२
 कर्मभूमिरियं ब्रह्मज्ञीवान्ता जीवकारिणी । सहस्रयोजनायां तु विश्वस्मिन्भूमिमण्डले ॥१८३
 हिमाद्रिशतरे तस्याः पूर्वेऽब्दिष्वं महोदधिः । रत्नाकरः पश्चिमेऽब्दिर्दक्षिणे बडवाब्दिकः ॥१८४
 अतः सर्वे भविष्यन्ति लोकाश्चोदध्वं तथा ह्रादः । कर्मभूमेर्षध्यभूतः पुष्करोऽयं सनातनः ॥१८५

देवी के पूर्वार्द्ध भाग द्वारा दो सहस्र (मूर्ति) उत्पन्न हुई, जिनके एक शिर तीन नेत्र एवं दो चरण हैं और परार्द्ध भाग राधारूप हुआ। उस शुभे एवं दिव्य वृन्दावन में उन प्रकृति-पुरुष दोनों ने सहस्र युग पर्यन्त घोर तप किया जिसके कारण उनकी इतनी वृद्धि हुई है कि उसका पार न मिलने से उनका अनंत नामकरण हुआ। पश्चात् वे दोनों मैथुन करने को इच्छा से एक होकर स्थित हुए। उस समय उनके अङ्ग के रोमकूपों में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुए, जो पृथक्-पृथक् स्थित होकर आधे-आधे कोटि के विस्तृत थे। देवगण ! उनके हृदय रोम द्वारा इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। अनन्तर ब्रह्माण्ड द्वारा कमलपुष्ट पर स्थित ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। वह कमलपुष्ट भूमि में एक योजन के विस्तार में स्थित था। १६१-१७६। वह ब्रह्म-कमल जिससे उत्पन्न हुआ वह पद्मसरोवर के नाम से प्रख्यात होकर पुष्कर क्षेत्र में स्थित है। उस समय चतुर्मुख धारण किये नररूप में अवस्थित ब्रह्मा ने उस कमल को देखकर अत्यन्त आश्चर्य प्रकट किया। तदुपरांत उसके नाल में प्रवेशकर ब्रह्मा ने दिव्य सौ वर्ष तक उसके मूलं कपता लगाया किन्तु उसके अन्त का पार न प्राप्त कर सके। किन्तु माया से मोहित होकर अनेक भाँति रुदन करना आरम्भ किया, जिससे रुद्र की उत्पत्ति हुई, जो उनके कल्याण कर्ता हुए। उन्होंने कहा—महाभाग ! क्यों रुदन कर रहे हो, तुम्हारा स्वामी तो तुम्हारे हृदय में ही स्थित हैं इसे सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा ने अपनी इच्छा से अपने हृदय में उनके ध्यान पूर्वक समाधि लगाना प्रारम्भ किया। सौ दिव्य वर्ष व्यतीत होने के उपरांत विष्णु भगवान् के स्वयं आविर्भूत होकर अपनी मेघ-गम्भीर वाणी द्वारा गर्जना करते हुए ब्रह्मा से कहा—ब्रह्मन् ! यह कर्मभूमि है, जिसमें जीवगण उत्पन्न एवं विलीन होते रहते हैं। इस विश्व के भूमण्डल में यह सहस्र योजन में विस्तृत है, जिसके उत्तर में हिमालय पर्वत, पूर्व में समुद्र, पश्चिम में रत्नाकर समुद्र और दक्षिण में बडवानलं वाला समुद्र है। अतः कर्मभूमि के ऊपर नीचे लोकों की अवस्थिति होगी और मध्य में इस सनातन पुष्कर को

मत्तो देवान्भवान्प्राप्य करिष्यति भर्तुं शुभम् । यज्ञादेवा भविष्यन्ति त्रिधाशूता गुणत्रयात् ॥१८६
 सिद्धा विद्याधराश्चैव चारणः सात्त्वकस्त्रिधा । गन्धर्वयक्षरक्षांसि राजसा गिरिसंस्थिताः ॥१८७
 पिशाचगुह्यका भूतास्तामसा गामिनो ह्याथः । तथा स्वधामया यज्ञास्त्रिधा पितृगणा विद्ये ॥१८८
 भविष्यन्ति सुरै रम्या विमानसदृशाश्च खे । लेचरा मौरवर्णांश्च श्यामास्ते सात्त्विकाः स्मृताः ॥१८९
 गिरिद्वीपमया रम्याः सरोह्पाङ्क राजसाः । भूचरास्ते भविष्यन्ति त्रिधा पितृगणा विद्ये ॥१९०
 विलेतलमया ये तु नारका यातनामयाः । तामसास्ते भविष्यन्ति पितरोऽधोऽश्वीतले ॥१९१
 व्ययभूताश्च ते लोका वृद्धा मध्याः क्षयाः क्रमात् । इयं भूनिर्महाभागा उर्वदा च सनातनी ॥१९२
 मेरुर्वै च नमेरुङ्ग द्वीपाश्चात्संस्तथा न हि । इलावर्तादिलण्डाश्च सन्ति नैव द्वच्छित्क्वचित् ॥१९३
 ये तु तारामया लोका विमानसदृशां विद्ये । स्वेच्छया च करिष्यन्ति रक्षिता एज्जकर्मणा ॥१९४
 यज्ञो नास्ति यदा भूनौ तदा ते भगणा विद्ये । विद्यभूताश्चरिष्यन्ति नित्यवक्त्रातित्त्वारिणः ॥१९५
 कर्मभूताश्च गौरेश्वरा श्रुतिरूपा जगन्मयी । यस्तां पाति च भो ब्रह्मन्म गोप इति विश्रुतः ॥१९६
 गोपशक्तिः स वै गोपो गोपनामर्चको हरिः । कोटिकोटिसहस्राश्र सर्वे गोपा हरे: कलाः ॥१९७
 तावन्तश्चैव ब्रह्माण्डा गोपनाम्ना प्रकीर्तिताः । कर्मभूमेस्तथोऽर्धं च रविर्योजनलक्षकः ॥१९८

मुझसे देवों की प्राप्ति करके आप लोग यज्ञानुष्ठान सुसम्पन्न करेंगे जिससे तीनों युगों के तीन भाग द्वारा देवों की उत्पत्ति होगी उस सात्त्विक गुण के तीन भागों में विभक्त होने से सिह विद्याधर एवं चारण राजस द्वारा पर्वत निवासी गन्धर्व यक्ष तथा राक्षस और अद्योलोक में रहने वाले पिशाच एवं गुह्यकों की उत्पत्ति तामस गुणों द्वारा होगी । उसी प्रकार पितृगणों के लिए स्वधामय यज्ञ (पिंडान) तीन भागों में विभक्त होकर देवों के यानों से अधिक रमणीक विमान रूप में आकाश में उनके समीप स्थित होंगे । पुनः सतोगुण द्वारा खेचरों की उत्पत्ति होगी, जो गौरवर्ण एवं श्यामल वर्ण के होते हैं । राजस गुण द्वारा गिरि, द्वीप एवं सरोवरों की उत्पत्ति होगी और पितृगणों के समीप रहने वाले भूचर तीन भागों में विभक्त होंगे । विल (पाताल आदि) रूप, और यातनामय नरकाकुण्डों की तमोगुण द्वारा उत्पत्ति होगी जो पितरों के नीचे भूतल पर अवस्थित हैं । १७७-१९२ । क्रमशः लोकों में ऊपर के लोकों का मध्य व्यय मध्य वाले की वृद्धि और नीचे वाले लोकों का क्षय होता है । यह पवित्र भूमि सनातनी है, किन्तु इस पर स्थायी मेह के रूप में तथा द्वीपगण, और इलावर्त आदि खंग अपने रूप में सदैव स्थित नहीं रहते हैं अर्थात् महाप्रलय होने पर विलीन हो जाते हैं । विमान के समान आकाश में दिखायी देने वाले तारागण यज्ञों द्वारा सुरक्षित होने पर स्वेच्छया लोक की रक्षा किया करते हैं । जिस समय भूतल पर यज्ञानुष्ठान नहीं होते उस समय वे भगण नित्य उनकी और अतिचारी होकर लोक में विघ्न उत्पन्न करते हैं । ब्रह्मन् ! श्रुति रूप एवं संसारमयी यह कर्मभूमि गौरूप है, जो इसका पालन-पोषण करता है, उसे गोप कहा जाता है । गोपशक्ति एवं गोरूप भगवान् प्रिष्ण है, जो गोपियों की सदैव पूजा करते हैं । सहस्र कोटि के उत्पन्न सभी गोप भगवान् के कला स्वरूप है और उतने ही ब्रह्माण्ड गोप नाम से कहे गये हैं । इस कर्म-

ततशशशी तथामानस्ततश्चोर्ध्वं भमण्डलम् । द्विलक्षयोजनगतस्ततते: भौमस्तथाविधिः ॥१९९
 भौमाद्बुधस्तथा ज्ञेयो ब्रुधाच्च बृहतांपतिः : गुरोः शुक्रस्तथामानः शुक्रात्मौरिस्तथागतः ॥२००
 शतेराहुस्तथा ज्ञेयो राहोः केतुस्तथोर्ध्वगः । सप्तलक्षमितज्ञेयं केतोः सप्तर्षिमण्डलम् ॥२०१
 लक्ष्यकादशगाः सर्वे ततश्चोर्ध्वं ध्रुवास्पदम् । लक्षयोजनगं चैव ततश्चोर्ध्वं ध्रुवपदम् ॥२०२
 लक्ष्ययोजनगं ज्ञेयं ततश्चोर्ध्वं जनास्पदम् । लक्ष्यान्नगं ज्ञेयं तद्वृध्वे तपसः स्थलम् ॥२०३
 एवं च कर्मभूमेश्च तपः कोटचर्धयोजनम् । कर्मभूमेरधश्चैव पातालाः सप्त चान्तराः ॥२०४
 लक्ष्ययोजनगा ज्ञेयास्ततश्चाधोगताश्च ये । नरकाश्च क्रमाज्ञेया भूमेः कोटचर्द्योजनाः ॥२०५
 कर्मभूमेश्चतरे च खण्डान्यष्टौ ततः परम् । लवणाब्धिस्ततो द्वीपस्ततः क्षीराब्धिरेव हि ॥
 ततो द्वीपस्तातः सिन्धुस्ततो द्वीपस्ततोऽविधिः ॥२०६
 कोटचर्द्यलक्षव्यानेन योजनेन विधे स्वद्यम् ॥२०७
 कर्मभूमेः स वै ज्ञेयो लोकालोका महाच्चलः । लोकालोको दक्षिणे च पश्चिमे च स वै गिरिः ॥२०८
 पूर्वे च कर्मभूमेश्च लोकालोकस्तथाविधिः । एतेषां समुदायानां ब्रह्माण्डोऽयं प्रकीर्तितः ॥२०९
 त्वतो भविष्यति विधे कल्पर्यन्तमेव हि । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म ततो विष्णुस्त्रिद्यभवत् ॥२१०
 अद्य विष्णुः स वै कृष्ण इह विष्णुः स वै विराट् । इति विष्णुः स वै ज्ञेयः पुराणपुरुषोत्तमः ॥२११
 पुराणपुरुषो ज्ञेय आदिब्रह्मा चिरायुगः । दैवे युगसहस्रे द्वड्होरात्रं तस्य कीर्तितम् ॥२१२
 विष्णोस्तु रोमकूपेषु ब्रह्माण्डाः कोटिशोऽभवन् । अद्य विष्णुरहं ब्रह्मन्विघ्ना तव भूतले ॥२१३

भूमि से ऊपर एक लक्ष योजन की दूरी पर सूर्य स्थित है, उनसे उतनी ही दूर चन्द्रमा और उनसे ऊपर उतने दूर पर नक्षत्रों का मण्डल स्थित है । उनसे दो लक्ष योजन की दूरी पर मंगल, उनसे उतनी दूर बुध, बुध से उतनी दूरी पर बृहस्पति, बृहस्पति से उतने दूर शुक्र, शुक्र से शनि, शनि से राहु और राहु से केतु उपरोक्त दो लाख की समान दूरी पर स्थित हैं । केतु से सात लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षियों का मण्डल अवस्थित है । इस प्रकार सभी ग्यारह लाख योजन की दूरी पर स्थित हैं और उनसे एक लाख योजन की दूरी पर ध्रुव का स्थान, उससे लक्ष योजन पर महात्पद गहात्पद से ऊपर लक्ष योजन पर जनपद, उस से ऊपर लक्ष योजन पर तप लोक स्थित है । इस भाँति कर्मभूमि से तपलोक आधे कोटि योजन की दूरी पर है । कर्मभूमि से एक लक्षयोजन की दूरी पर नीचे पाताल आदि लोक और उनसे उतनी ही दूर नीचे नरक कुण्ड अवस्थित हैं, जो भूमि से आधे कोटि योजन पर कहा गया है । कर्मभूमि के उत्तर आठ खण्डों का निर्माण हुआ है—लवण सागर उसके अनन्तर द्वीप, उसके पश्चात् क्षीरसागर है इसी भाँति द्वीप सागर और पुनः द्वीप का निर्माण किया गया है, जो आधे कोटि लक्ष योजन की दूरी पर है । कर्मभूमि के चारों ओर लोकालोक नामक पर्वत अवस्थित है । विधे ! इन्हीं सब समुदायों का यह प्रस्यात ब्रह्माण्ड नाम है जो तुम्हारे द्वारा उत्पन्न होकर कल्प पर्यन्त सुस्थित रहेंगे । १९३-२०८। ओम् इस एकाक्षर ब्रह्मद्वारा विष्णुकी उत्पत्तिहोती है, जो विष्णु, कृष्ण, एवं विराट् रूप से प्रस्यात होते हैं । वही विष्णु पुराण पुरुष आदि ब्रह्मा के नाम से प्रस्यात हैं, जिनकी चिरायु होती है । दिव्य दो सहस्र युग का उनका दिन रात होता है । इस विष्णु के रोमकूपों में कोटि ब्रह्माण्ड स्थित हैं । ब्रह्मन् ! विष्णु मैं इस भूतल पर तुम्हारे

इत्युक्तदान्तर्दद्धे विज्ञुर्बहा सृष्टिमचीकरत् । तेन प्रोक्तं यतो भाव्यं महाकल्पो हि स सूतः ॥२१४
 भविष्यो नाम विश्वातो द्विसहस्रभवायुषा । पूर्वद्विश्र कूपरार्द्धन्च पुराणपुरुषस्यहिः ॥२१५
 अष्टादशसहस्राणि कल्पाः पूर्वद्विश्रे गताः । परार्द्धः साम्प्रतं ज्ञेयो जातं तस्य दिनद्वयम् ॥२१६
 अद्याहं कूर्मकश्चैव वाहने भृत्यः प्रकीर्तिः । तृतीयः श्वेतवाराहो दिवसस्तस्य कल्पवान् ॥२१७
 तथा सध्याह्नकालो हि सम्प्रतं वर्तते सुराः । भविष्याख्ये महाकल्पे कथा भाविष्यकैर्जनैः ॥२१८
 कथिता ब्रह्मणश्चाग्रे शतकोटिप्रविस्तरैः । दशलक्षणसंयुक्तं शतकोटिप्रदित्तरम् ॥२१९
 महापुराणं कथितं पुराणं पञ्चलक्षणम् । पद्मत्रिंशत्सहस्रं च कल्पे कल्पे प्रकीर्तितम् ॥२२०
 कल्पनाम्ना पुराणं च महादेवेन निर्मितम् । अष्टादशपुराणाणि निर्मितानि शिवात्मना ॥२२१
 द्वापरान्ते च भगवान्व्यताः सत्यवतीसुतः । तात्येव जनयामास लोकमङ्गलहेतवे ॥२२२

यात उवाच

इति कल्कवचः श्रुत्वा ते देवः विस्मयान्विताः । नमस्कृत्य गमिष्यन्ति स्वं स्वं धाम प्रहर्षिताः ॥२२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वतिः चतुर्युगलक्षण्डापरपर्याये
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः । २५

विघ्न के अपहरणार्थ स्थित हूँ । इतना कर विज्ञु अन्तर्हित हो गये और ब्रह्मा ने शृष्टि करना आरम्भ किया । उन्होंने ही यह बताया है कि भावीकल्प भविष्यमहाकल्प के नाम से प्रस्यात होगा, जिसकी दो सहस्र वर्ष की आयु बतायी गयी है । पुराण पुरुष के पूर्वद्विश्र भाग द्वारा उत्पन्न अट्ठारह सहस्र कल्पव्यतीत हो चुके हैं और इस समय वर्तमान परार्द्धभाग के भी दो दिन व्यतीत हो गये हैं । यहाँ कूर्म और अग्नि का मत्स्य, तथा तीसरा श्वेत वाराह नामक कल्प उसका दिवस रूप बताया गया है । सुरवृन्द ! इस समय उस भविष्य महाकल्प का मध्याह्न काल है, जिसकी कथा भावी जनों द्वारा निर्मित होकर ब्रह्मा के सम्मुख कही गयी है । वह महाकल्प सैकड़ों कोटि का विस्तृत और उन शतलक्षणों से अंकित है, जो सैकड़ों कोटि विस्तृत है, उसे ही महापुराण कहा गया है । पुराणों के पांच लक्षण होते हैं और उसमें तीस सहस्र पद्म जो प्रत्येक कल्पों में विरचित होते हैं । कल्प नामं पुराण का है, जिसे महादेव जी ने स्वयं निर्मित किया है । इस प्रकार शिव जी ने अट्ठारह पुराणों का निर्माण किया है, जिसे द्वापर युग के अन्तिम समय में सत्यवती पुत्र व्यास जी ने लोकों के हितार्थ उत्पन्न (दृष्टि गोचर) किया है ।

व्यास जी बोले—कल्पित देव की इस प्रकार की बातें सुनकर देवों को अत्यन्त विस्मय हुआ । अनन्तर वे नमस्कार करके अपने-अपने लोक चले जायेगे । २०९-२२३

श्री भविष्य महापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक पञ्चविंशीसर्वां अध्याय समाप्त । २५

**अथ षड्विंशोऽध्यायः
कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनम्**

व्यास उवाच

तदा स भगवान्कलिकः पुराणपुरुषोऽद्वावः । दिव्यं वाजिनमारहृष्ट उड्गरी वर्मी च चर्मधृक् ॥१
 म्लेच्छांस्तान्दैत्यभूतांश्च हत्वा योगं गमिष्यति ॥२
 षोडशब्दसहस्राणि तद्योगाग्निप्रतापिता । भस्मभूता कर्मभूमिनिर्जीवा भविता तदा ॥३
 ततोऽनुदोगं जनितो मेघो भूत्वा लयङ्कूरः । प्रलयाग्रेण सा भूमिर्जलमध्ये गमिष्यति ॥४
 तदा कलियुगे घोरो बलिपार्व गमिष्यति । गते कलियुगे घोरे कर्मभूमि पुनर्हर्षिः ॥५
 कृत्वा स्थलमयीं रम्यां यज्ञैर्देवान्यजिष्यति ॥६
 यज्ञभागमुपादाय देवास्ते बलसंयुताः । दैवस्वतं मनुं गत्वा कथगिष्यन्ति कारणम् ॥७
 कलिकनो वदनात्जाते ब्राह्मणो वर्ण एव हि । ब्राह्मोः क्षत्रं विशो जान्वोः शूद्रो वर्णस्तदङ्गयोः ॥८
 गौरो रक्तस्तथा पीतः श्यामस्ते ब्राह्मणादयः । देव्याः शक्तिं समादाय जनिष्यन्ति सुतान्बहून् ॥९
 एकर्क्षित्विक्षुभितः मनुजा धर्मरूपिणः । जातिर्धर्ममुपादाय यजिष्यन्ति सुरान्मुदा ॥१०
 तदा वैवस्वतो धीमान्तत्वा तं कलिकनं हरिस् । अयोध्यायां राजपदं करिष्यति तदाज्ञया ॥११

अध्याय २६
कलियुगीयेतिहाससमुच्चय वर्णन

व्यास जी बोले—पुराण पुरुष द्वारा उत्पन्न कलिक देव दिव्यअश्व पर सुशोभित होकर खड़ग, चर्म के धारण पूर्वक उन दैत्यरूप म्लेच्छों का हनन करेंगे । तदुपरांत योग समाधिनिष्ठ होकर सौलह सहस्र वर्ष तक तप करेंगे, जिससे उस योग द्वारा उत्पन्न अग्नि से यह कर्मभूमि भस्म हो जायगी । कर्मक्षेत्र के निर्जीव हो जाने पर उनके योग द्वारा प्रलयकारी मेघों की उत्पत्ति होगी, जिनके द्वारा प्रलय होने पर वह भूमि जल मध्य में विलीन हो जायगी । उस समय कलियुग बलिदैत्य के समीप चला जायगा । कलियुग के चले जाने पर भगवान् विष्णु पुनः इस कर्मभूमि (भारत भूमि) को सौन्दर्यं पूर्ण स्थल बनाकर उस पर यज्ञों द्वारा देवों की पूजा करेंगे । उस यज्ञ भाग के ग्रहणपूर्वक बली होकर देवगण वैवस्वत मनु के समीप पहुँच कर उनसे समस्त कारण का वर्णन करेंगे । तदनन्तर कलिकदेव के मुख द्वारा ब्राह्मण वर्ण, भुजा द्वारा क्षत्रिय, जानु द्वारा वैश्य और चरणों द्वारा शूद्र वर्णों की उत्पत्ति होगी जो क्रमशः गौर, रक्त, पीत, एवं श्याम वर्ण के रहेंगे । वे ब्राह्मण आदि वर्ण के मनुष्य देवी शक्ति (स्त्री) को अपनाकर उनके द्वारा अनेक पुत्रों की सृष्टि करेंगे । वे मनुज धर्म वाले नुष्य जो इक्कीस किष्कु^१ परिमाण के रहेंगे अपने-अपने जातीय धर्म के आलम्बनपूर्वक देवों की अर्चना आदि करेंगे । उस समय धीमान् वैवस्वत मनु कलिकरुपी विष्णु के नमस्कार पूर्वक उनकी आज्ञा से अयोध्या के राजपद को विभूषित करेंगे । १-१। उनकी शिक्षा-

तच्छक्षातो भवेत्पुत्रो यः स इक्ष्वाकुरेव हि । पितॄ राज्यं पुरस्कृत्य भूमौ दिश्यं शतं समाः ॥
 दिव्यर्क्षेशतायुश्च त्यक्त्वा देहं गमिष्यति ॥१०
 यदा तु भगवान्कल्पी ब्रह्मसूत्रं करिष्यति । तदा वेदाश्च चत्वारो मूर्तिमन्तश्च साङ्घकाः ॥
 अष्टादशपुराणैश्च तत्रायास्यन्ति हर्षिताः ॥११
 स्तोष्यन्ति कल्पिनं देवं पुराणपुरुषांशकम् : कार्तिके शुक्लपक्षे च नवम्यां गुरुवासरे ॥१२
 यज्ञकुण्डाल्लभ्य पुरुषो भविष्यति महोन्मः । नाम्ना सत्ययुगो ज्ञेयः सत्यं मार्गप्रदर्शकः ॥१३
 दृष्ट्वा तं पुरुषं रन्यं तदा ब्रह्मादयः सुराः । तां त्तिथिं वर्णयिष्यन्ति कर्मक्षयकर्तां भन्ते ॥१४
 अस्यां तिथौ च मनुजो धातृवृक्षतटे मुदा । येऽर्चयिष्यति यान्देवान्देवास्ते तस्य वश्यगाः ॥१५
 अक्षयत नवमी नाम युगादिनवमी हि सा । लोकमङ्गलदात्री च सर्वकिल्बिष्णनाशिनी ॥१६
 धातृसूतत्त्वे चैव मालतीं तुलसीं मुदा । संस्थाप्य वेदविधिना शालग्रामं यजन्ति ये ॥
 जीवन्मुक्ताश्च ते ज्ञेया पितॄणां तृप्तिकारकाः ॥१७
 धातृवृक्षत्त्वे गत्वा यो वै शशद्वं करिष्यति । गयाशाद्वस्त्रहस्तस्य लप्स्यते च फलं परम् ॥१८
 यः करोति तथा होमं सहस्रमखसन्निभम् । मृतः सस्वर्गमाप्नोति सकुलः सपरिच्छदः ॥१९
 इत्युक्ते वचने तेषां कल्पी देवो मुदान्वितः । तथास्त्वत्येव वचनं वदिष्यति सुरानन्प्रति ॥२०
 इत्युक्त्वा भगवान्कल्पी यश्यतां देवरूपिणाम् । तत्रैवान्तर्गतो भूत्वा सुषुप्तश्च भविष्यति ॥२१
 गते तस्मिन्भगवति कर्मभूमिः सुदुःखिता । विरहाप्निमती भूत्वा बीजांस्तान्संक्षयिष्यति ॥२२

दीक्षा द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसका इक्ष्वाकु नाम होगा जो पृथ्वी पर अपने पिता के राज्य-भार का वहन करते हुए दिव्य सौ वर्ष का सुखमय जीवन व्यतीत करेंगे और उसके पश्चात् आयु की समाप्ति में देह का परित्याग करेंगे । भगवान कल्पि जिस समय ब्रह्मास्त्र नामक यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करेंगे उस समय उनके सेवा में चारों देव एवं अट्ठारहो पुराण मूर्तिमान होकर साङ्घोपाङ्गं वहाँ उपस्थित होंगे । अनन्तर कल्पिदेव की जो पुराणपुरुषरूप हैं, आराधना करने पर कार्तिक शुक्ल नवमी गुरुवासर के समय उस यज्ञकुण्ड द्वारा एक महोत्तम पुरुष का आविर्भाव होगा, जो सत्ययुग के नाम से प्रस्थात एवं सत्यमार्ग के प्रदर्शक होंगे । मन ! उस समय उस पुरुष को देखकर ब्रह्मादि देवगण उस तिथि को कर्मक्षय करने वाली बतायेंगे उस तिथि के दिन जो मनुष्य धातृ (आँवला) वृक्ष के नीचे प्रसन्नता पूर्वक देवों की अर्चना करेंगे, तो वे देवगण उनके वशीभूत हो जायेंगे । युग की आदि नवमी होने के नाते इसको अक्षय नवमी कहते हैं, जो लोक का मंगल करने वाली, एवं समस्त पापों को विनष्ट करती है । आँवले वृक्ष के नीचे मालती और तुलसी को स्थापितकर जो मनुष्य शालिग्राम देव की सविधान पूजा करते हैं, वे स्यवं जीवन्मुक्त होकर पितरों की तृप्ति करेंगे । आँवले वृक्ष के नीचे जो श्राद्ध करता है, उसे गयाशाद्व करने के फल प्राप्त होते हैं । जो उसके नीचे हवन करेंगे, उन्हें सहस्रयज्ञों के सुसम्पन्न करने का फल प्राप्त होगा । १०-११ । और उसके नीचे मृतक प्राणी अपने साङ्घ सपरिवार समेत स्वर्ग की प्राप्ति करता है । उन देवों के इस प्रकार वर्णन करने पर कल्पिदेव प्रसन्नतया उन्हें 'तथास्तु' कहकर देवों को प्रसन्न करेंगे और पश्चात् उन देवों के समक्ष कल्पिदेव अन्तर्हित होकर पुनः (क्षीरसागर) में शयन करेंगे । भगवान् के चले जाने पर यह कर्मभूमि अत्यन्त दुःखी होकर उनके

तस्मिन्काले महादैत्या: पातालतलदासिनः । प्रह्लादं च पुरस्कृत्य गमिष्यन्ति सुरान्प्रति ॥२३
 खरोष्टगृह्यमहिषकाकर्कसमास्थिताः । सिंहव्याघ्रवृकारूढाः शृगालश्येनवाहनः ॥२४
 प्रासपट्टिशखङ्गाणश्च भुशुण्डीपरिघादिकान् । गृहीत्वा वेगवन्तस्ते गर्जिष्यन्ति पुनः पुनः ॥२५
 तदा शकादयो देवास्त्रयस्त्रिशद्गणा नुदा । स्वायुधानि गृहीत्वाशु करिष्यन्ति रणं महत् ॥२६
 दिव्यवर्षमयं द्योरं युद्धं तेषां भविष्यति । मृतान्मृतान्तरणे दैत्यान्भार्यावो जीवपिष्यति ॥२७
 “ममभूतास्तथा देवास्त्यस्त्वा युद्धं समन्ततः । क्षीराभिं च गमिष्यन्ति यत्र साक्षाद्द्विरिः स्वप्यद् ॥२८
 तेषां स्तुत्वा स भगवान्देवमङ्गलहेतवे । स्वपूर्वद्विं स्वरूपं च करिष्यति सनातनः ॥२९
 स च हंसो हरिः साक्षान्छतसूर्यसमप्रभः । शुक्रं प्रह्लादप्रभुखानस्तेजसा तापायिष्यति ॥३०
 तदा पराजिता दैत्यास्त्यक्त्वा गां दुःखिता भृशम् । वितले च गमिष्यन्ति नहादेवेन रक्षिताः ॥३१
 पुनस्ते सकला देवा निर्भया निलुपद्वाः । वैवस्वतस्य तनयं चाभिवेद्यन्ति भूपदे ॥३२
 दिव्यवर्षशतायुश्च स इक्ष्वाकुर्भविष्यति । वर्षणां च प्रमाणेन नृणामायुश्चतुशतम् ॥३३
 इति ते कथितं सर्वं पत्पृष्ठोऽहं ननो त्वया । चतुर्युगानां चरितं नृपाणां च पृथक् पृथक् ॥३४
 चतुष्पादा हि धर्मस्य ज्ञानं ध्यानं ध्यानं शमो दम । आत्मज्ञानं स दै ज्ञानं ध्यानमध्यात्मचिन्तनम् ॥
 मनः स्थिरत्वं च शमो दमस्त्विन्दियनिग्रहः ॥३५
 चतुर्लक्षाब्दकान्येव द्वार्त्रिशच्च सहस्रकम् । तत्सङ्ख्यया हि धर्मस्य पादश्वेकः प्रकीर्तिः ॥३६

वियोगाग्नि से संतप्त होने पर बीजों को विनष्ट करेगी । उसी बीच पाताल निवासी महादैत्य-गण प्रह्लाद को आगे कर देवों से युद्ध करने के निमित्त अपने गधे, ऊँट, गीदा, महिष, कौवे, केकहरा, सिंह, बाघ, रेडिया स्यार, बाज पक्षी आदि वाहनों पर बैठकर प्रास, पट्टिश, खड़ग, भुशुण्ड एवं परिच आदि अस्त्रों से सुरांजित होकर अत्यन्त वेग से वहाँ पहुँचकर बार-बार गर्जन करेंगे । उसे सुनकर इन्द्रादि देवगण अपने तैतीस गणों समेत अपने अस्त्रों को ग्रहणकर शीघ्र धोरण आरम्भ करेंगे, जो दिव्य वर्ष तक अनवरत चलता रहेगा । उस युद्ध में मृतक दैत्यों को शुक्र पुनः पुनः जीवित करेंगे । उसे देखकर श्रान्त देवगण पलायनकर क्षीरसागर पहुँचने का प्रबल प्रयास करेंगे, जहाँ साक्षात् विष्णुदेव शयन किये हैं । वहाँ पहुँचकर देवगण उनकी स्तुति करेंगे, जिससे प्रसन्न होकर भगवान् उस समय लोक के कल्याणार्थ अपने पूर्वद्विं भाग द्वारा हंस का रूप धारण करेंगे, जो सनातन, एवं सूर्य के समान प्रखर तेज युक्त होगा । पश्चात् उस अपने तेज द्वारा शुक्र तथा प्रह्लाद आदि प्रमुख दैत्यों को संतप्त करेंगे, जिससे पराजित होकर दैत्यगण दुःख प्रकट करते हुए पृथ्वी के त्याग पूर्वक वितल लोक की यात्रा करेंगे । उस समय उनकी रक्षा महादेव जी करते रहेंगे । अनन्तर समस्त देवगण निर्भय होकर वैवस्वत मनु के पुत्र इक्ष्वाकु का पृथ्वी के राजसिंहासन पर अभिषेक करेंगे । जो दिव्य सौ वर्ष की आयु प्राप्त किये रहेंगे । मनु उस समय तदितर मनुष्यों की आयु चार सौ वर्ष की होगी । इस प्रकार मैंने तुम्हारे सभी प्रश्नों के उत्तर विस्तार पूर्वक सुना दिया, जो चारों युगों के मनुष्यों के पृथक् पृथक् चरित रूप हैं । धर्म के ज्ञान, ध्यान, श और दम ये चार चरण कहे गये हैं, जिनमें आत्मज्ञान को ज्ञान अध्यात्म चिन्तन करने को ध्यान, मन को सुस्थिर करने को शम और इन्द्रियों को वश में करने को दम कहा गया है । इस प्रकार चार लाख बत्तीस सहस्र वर्ष का धर्म



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS

- HINDUISM SCRIPTURES
- HINDU COMICS
- AYURVEDA
- MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

प्राह्णमध्यात्मसत्यात् त्रिसन्ध्यं च भवेत्सदा । एकेन पदा तस्य दिराजो भुवि वर्तते ॥३७
 यदा धर्मो भवेद्बृहस्तदायुग्रैव वर्दते । सप्तश्लोकसहन्नाणि खण्डे स्मिन्कथितानि हि ॥
 अतश्चोत्तरखण्डं हि वर्णयामि मनो भृणु ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रतिसर्गपर्वणि चतुर्युगलक्षण्डपरपर्याप्ति
 कलियुगीयेतिहाससमुच्चयवर्णनं नाम दण्डिशोऽध्यायः । २६

इति श्रीभविष्ये भहापुराणे तृतीयं प्रतिसर्गपर्वचतुर्युगलक्षण्डपरपर्याप्ति तमाप्तम् ॥३॥

का एक चरण होता है, जिसमें पूर्वार्द्ध यद्यात् सायात् रूपी तीन संध्याएँ होती हैं। इस भाँति भूतल पर एक चरण से वह सदैव वर्तमान रहता है। जिस समय धर्म की वृद्धि होती है उस समय प्रणियों की आयु भी बढ़ जाती है! भनु! इस खण्ड में मैंने जात सहस श्लोकों का वर्णन तुम्हें सुना दिया। अब इसके उपरांत उत्तरखण्ड का वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो। २०-३८

श्री भविष्यमहापुराण के प्रतिसर्गपर्व में कलियुगीय इतिहाससमुच्चय वर्णन
 नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त । २६।